

મળવાનું ઠેકાણું :

શ્રી અ. ભા. શ્રે. સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ઠે. ગરેડિયા કૂવારોડ, ગ્રીન લોજ
પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર)

★

બીજી આવૃત્તિ : પ્રત ૧૦૦૦
વીર સંવત : ૨૪૮૪
વિક્રમ સંવત : ૨૦૧૪
ઈ સ્વી સ ન : ૧૯૫૮

★

: સુદ્રઠ :

મણિલાલ છગનલાલ શાહ
ધી નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ
ધીકાંટા રોડ :: અમદાવાદ.

રૂ. ૧૦.૦૦૦) આપનાર આદ્ય મુરબ્બી સમિતિના પ્રમુખ;
દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ.

श्री-वर्धमान-श्रमण-संघना आचार्यश्री

पूज्य आत्मारामजी महाराजश्रीजे

आपेल

सभमतिपत्र

*

उपरांत

पूज्य श्री घासीलालजी महाराज-रचित

पील सूत्रानी टीका भाटे तेजोश्रीना मंतव्ये।

*

तेमज

अन्य महात्माज्यो, महासतीलज्यो, अद्यतन-पद्धतिवाणा डोळेजना प्रोद्देशेरा

तेमज

शास्त्रज्ञ आवडेना अलिप्राये।

सम्मतिपत्र

(भाषान्तर)

श्रीवीरनिर्वाण सं० २४५८ आसोज

शुक्ल १५ (पूर्णिमा) शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पंडितमृनि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमृनिश्री घासीलाल-
जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका
पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम
तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-
संयमरूप जीवनको देनेवाली-ही है। टीकाकार ने मूलसूत्र के भावको
सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है ?
और विशेष धर्म क्या है ? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे
पतलाया है। स्यादादका स्वरूप, कर्म-पुरुषार्थ-चाह और श्रावकोंको
धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण
इसमें भलीभांति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती
है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म
किस जाहोजहाली पर था और वर्तमान समय जैनधर्म किस
स्थितिमें पहुंचा इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया
है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंको
भी पूरा लाभ होगा, क्योंकि टीका संस्कृत है, उसकी सरल हिन्दी
कर दी गई है। इसके पढ़नेसे कर्नाकी योग्यताका पता लगता है कि
वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका
यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढ़ने
वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें ! श्रावकों (गृहस्थों) का
तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया
जाता है, जिन्होंने : अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम
उपकार किया है। इसमें श्रावक के वारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने
योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा
मोक्षका अधिकारी होता है, तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामी
 महाराज तथा न्यायव्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७
 श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ
 श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

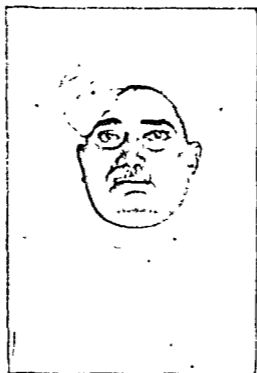
सिरि-धीरनिव्वाण-संवच्छर २४५८ आसोई
 (पुष्णमासी) १५ सुकवारो लुहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवा-
 समसुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंतं
 सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तथा गुणेवि धारेइ, सच्चं अगाराणं तु इमा
 जीवण (संजमजीवण) दाई एव अत्थि । वित्तिकत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जु-
 सेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्विसेसधम्मो, णयसियवायवाओ,
 कम्मपुरिसट्टवाओ, समणोवासयस्स धम्मदढया य, इच्चाइविसया अस्सि फुडरीइओ
 वणिणया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुट्टुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि
 सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाणभरहवासस्स य कत्तुणा विसय-
 प्पयारेण चित्तं चित्थियं, पुणो सक्कयपाठीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए
 भासीणं य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्जं
 परमप्पसंसणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव
 लाहप्पयं, अत्रि उ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो
 अणेगकोडिसो धन्वाओ अत्थि, जेहिं अच्चंतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमो-
 वयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पठणिज्जा अत्थि,
 जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ
 पुरिसकारपरकमवाओ य अवस्समेव दंसणिज्जो, किंहुणा इमोए वित्तीए पत्तेय-
 विसयस्स फुडसहेई वणगं कयं, जइ अन्नोवि एवं अम्हाणं पसुत्तप्पाए समाजे विज्जं
 भवेज्जा तथा नाणस्स चरित्तस्स तथा संघस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं हं मन्ने॥

भवईओ-

उवज्झाय-जइणमुणि-आयाराम-पंचनईओ,

રૂ. ૬૦૦૦) આપનાર આદ્ય મુરબીથી



શ્રેઠ હરખચંદ કાળીદાસ વાઝીયા
ભાણવડ.

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहां तक कहें, इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे घताये गये हैं। हमारी सुसप्राय (सोई हुई सी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान, चारित्र तथा श्रीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसामें मानता हूँ।

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८
श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी
महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके
प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज—कृत श्री उपासकदशाङ्ग
सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका
अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बड़े परिश्रम व पुरुपार्थसे
तय्यार किया है, सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्ति-
योंकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके
विद्वान् साधुवर्ग पढ़ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढ़नेसे हमको
अत्यानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी
समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे
लिये बड़े गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.



श्री ज्ञाताधर्मकथासूत्र की 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर
 जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय
 जैनाचार्य श्री आत्मरामजी महाराजका
 सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म० द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी'
 टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथासूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त
 श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी
 म० ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रमाणिक अर्थ और कठिन
 स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को
 सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी
 संस्कृतज्ञ पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम
 को सफल बना कर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित
 करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।



श्रीमान्जी जयचीर

आपकी सेवामें पोष्टद्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की
 जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुंचने पर समाचार दें।

श्री आचार्यश्री आत्मरामजी म० ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं।
 पूज्य श्री घासीलालजी म० सा० ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर
 सुखशाता पूर्णें।

पूज्यश्री घासीलालजी म० जीका लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी
 देखना चाहते हैं। इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस
 भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो जहांसे मिले वहांसे १ कापी जरूर भिज-
 वाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता. ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल जैन

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्यश्री आत्मारामजी-
महाराजानां पञ्चनद-(पंजाब) स्यानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-
बोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिव्यमुखेनाऽश्रावि मया, इयं
हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं
यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्धमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेयं वृत्तिः
सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सु-
भिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-
दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाथकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोपाय
जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः
सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च "मुनिवरस्य परिश्रमं सकलयितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां
सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं सुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः"
इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२ }
श्रावणकृष्णा मतिपदा }
लुधियाना }

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि
श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की
आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी (महाराज)की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी ।

यह टीका, न्यायसिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है । तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है ।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयोंका विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके पात्र हैं ।

मैं आशा करता हूँ कि जिज्ञासु महोदय इसका भलीभाँति पठन-द्वारा जैनागमसिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से, दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे । तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमोंके विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे ।

वि. सं. २००२ }
मृगसर सुदि १ }

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम
लुधियाना (पंजाब). शुभमस्तु ॥

*

श्रीकानेरवासी समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरूदानजी शेटियाका अभिप्राय-

*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है ।
इससे जैनजनताको काफी लाभ पहुँचेगा ।

(ता. २८-३-५६ के पत्रमेंसे)

૩૧. પરપણુ આપનાર આદ્ય સુરભીશ્રી



કોઠા શ્રી હરગોવિંદભાઈ જેચંદ
રાજકોટ.

(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥श्री वीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम्.

मए पंडितमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-भूलचन्दयासवारा पत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सक्कय-हिन्दी-भापाहिं जुसा सिरि-दसवेयालिय-नामसुत्तस्स आयारमणिमंजूसा वित्ती अवलो-इया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सदाणं अइसयजुत्तो अत्थो वणिणओ, विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ। आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरुवं जे जहा-तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडस्व्वेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय-जुत्ता सिज्झइ। सक्कयछाया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुवोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दइव्वा। अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सन्भावो समाजस्स अहोभग्गं अत्थि, किं उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ, जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ अम्हकेरं साहिच्चं च लुत्तप्पायं अत्थि, तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ? जस्स कारणाओ भविष्पा मोकखस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाचिहिइ। अओहं आयारमणिमंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि- ॥

वि. सं. १९९० फाल्गुन
शुक्लत्रयोदशी मङ्गले
(अलवरस्टेट)

३३-

उवज्जाय-जइण-मुणी, आयारामो
(पंचनईओ)

ऐसे ही :—

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी
श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टि-
गत हुआ, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है, यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग-
सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है।

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र
 आगमवाराधि-सर्वत्रन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य पूज्यश्री
 आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुआ
 सम्मतिपत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबन्दजी पानाचंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य टीक न होनेसे उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है, आपको भेज रहे हैं, कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये, और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ! !

भवदीय.

गूजरमल-बलवंतराय जैन

॥ सम्मति ॥

(लेखक जैनमुनि पण्डित श्री हेमचंद्रजी महाराज)

सुन्दरयोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जर-भाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्यर्थनान्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्वोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा संकृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाचिनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराजानां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो, धन्यवादाहार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः । एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्रीकन्हैलालजी-मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादाहौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोपोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि चरतरं स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सर्वेऽप्यन्वेपकविद्वांसोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्थाध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलियन्तीत्याशास्महे । इति ।

- (१०) सेलाना-ता. २०-११-३६ का पत्र, शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी होसी.
- (११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ मुधावक श्रीयुत् माधवलालजी.

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक चयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके यहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पृछें, आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिधरों की सम्मति मंगाई, उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचनेका साहस जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है ही, संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैनसमाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढ़े, यही शुभ कामना है। आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परस्वे जैनसमाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण
महान् विद्वान् संतोष तेमज विद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी
छे, तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे-

- (१) लुधियानां-संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमाका पत्र, श्रुतज्ञान के
भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री
आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणचेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य
श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज.
- (२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित श्री
१००८ श्री भागचन्द्रजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७
श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.
- (३) खीचन-से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८
श्री भारतरत्न श्री समर्थमलजी महाराज.
- (४) वालाचोर-ता. १४-११-३६ का पत्र, परमप्रसिद्ध भारतरत्न श्री
१००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचंदजी महाराज.
- (५) चम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री
कवि नानचंद्रजी महाराज.
- (६) आगरा-ता. १८-१२-३६, जगत्-बल्लभ श्री १००८ जैनदिवाकर
श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी
श्री प्यारचन्दजी महाराज.
- (७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित
भाग्यवान् पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्धवक्ता श्री १००७
श्री सोभागमलजी महाराज.
- (८) जयपुर-ता. २७-११-३६ का पत्र, संमदाय के गौरववर्धक शांत-
स्वभावी श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज.
- (९) अम्याला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परममतापी पंजाबकेशरी श्री
१००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी होसी.

(११) खीघन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ मुधावक श्रीयुत् माधवलालजी.

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पढ़ें, आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई, उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचनेका साहस जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है ही, संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैनसमाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढ़े, यही शुभ कामना है। आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोधमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

ान् न्यायतीर्थं पण्डित

माधवलालजी खीचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-
त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूं ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत सराहना की है,
एतव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत
आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा
कते हैं । ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्र-
से यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव
नी हुई, महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति
अग्रसर होती रहेगी ।



ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला । श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया । आपकी भेजी हुई
उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई ।
दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं ।
ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है । इन पुस्तकों
से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है । आपका यह पुरुषार्थ
सराहनीय है ।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

૩. ૫૦૦૧૫ આપનાર આદ્ય સુરક્ષીશ્રી



(સ્વ.) શેઠ ધારસીભાઈ જીવણભાઈ
સોલાપુર.

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खाँचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-
तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत सराहना की है,
चाएतव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत
आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा
सकते हैं । ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्र-
काशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव
करनी हुई, महावीर के असूत्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति
में अग्रसर होती रहेगी ।



ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला । श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया । आपकी भेजी हुई
उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई ।
दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं ।
ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है । इन पुस्तकों
से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है । आपका यह पुरुषार्थ
सराहनीय है ।

आपका

शशिभूषण शास्त्री
अध्यापक जैन हाईस्कूल
अम्बाला शहर

शान्तस्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्त्ववारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री सूत्रचंदजी महाराज साहेबने मंत्र श्री उपासकदशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि श्री घासीलालजी महाराज ने उपासक-दशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखनेमें बड़ा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होनेसे भगवान निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रसका लाभ मिल सकता है।

*

बालाचौर से भारतरत्न शतावधानी पण्डित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोतां मूलसूत्रनी संस्कृत टीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज भाटे मगरुरी लेवा जेहुं छे, बळी करांचीना श्री संघे सारा कागळमां अने सारा टाईपमां पुस्तक छपावी मगट कर्युं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.

*

बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।

*

खीचन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडित-रत्न मुनि श्री समर्थमल्लजी फरमाते हैं कि—विद्वान् महात्मा पुरुषों का प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम श्रीमद् उपासकदशाङ्गसूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधिनी शुद्ध हिन्दी भाषा बड़ी ही सुंदरता से लिखी है।

*

इतयारी याजार

नागपुर ता. १९-१२-५६

प्रखर चिद्वान् जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्वारा हुआ और हो रहा है सचमुच महाराज श्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कह मार्मिक स्थलोंको पढा, पढ कर चिद्वान् मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी।

वास्तवमें मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाजका नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घरमें होना आनश्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन



श्री वीतरागाय नमः ।

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जे-
नाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शाल्त्र मास्टर
शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा
कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्यने
नहीं किया ।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह
कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना
करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान
करें ता कि आप जैनसमाज से ऊपर और भी उपकार करते रहें, और
आप चिरञ्जीवी हों ।

हम हैं आपके मुनि तीन
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन,

શ્રમણ સંઘના પ્રચારમંત્રી પંતળકેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદ્ર
મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલ હતાં ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને
માટે મળેલો અભિપ્રાય.

*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી
ધાસીલાલજી મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય નિનસમાજ
તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીનિનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતની
જડને મજબૂત કરવાવાળું છે.

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં
યથાશક્તિ લોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જદ્દીથી
જદ્દી અપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરિસારધીરં

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર શ્રી ધાસીલાલ મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલજી
મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામાં—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત.

આપ સવે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશે નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મરા-
ધનામાં લીન હશે.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવેકાલિક તથા
આચારાંગ એક એક ભાગ અહીં છે, ટીકા ખુબ સુંદર, સરળ અને અર્થ સાથે પ્રકા-
શન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂજ્ય આચાર્ય શુરૂદેવને
આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સાઈ છે એજ.

આસો સુદ ૧૦, મંગળવાર, તા. ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઇચ્છતો,
દયામુનિના પ્રણિપાત.

શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રનું સમ્મતિપત્ર

શ્રમણ સંઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતંત્ર નીનાચાર્ય પૂન્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

*

મેં તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પંડિત મુલચંદ વ્યાસ (નામૌર મારવાડવાલા) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી ધાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું. આ ટીકા સુંદર બની છે. તેમાં પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજાવવામાં આવેલ છે.

તેથી તે વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાવાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો ઉલ્લેખ સારો કરેલ છે. જે આધુનિક-મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, હયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શું વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આ વૃત્તિમાં એક ખીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રનાં પદ અને પદરચ્છેદ મુખોષ્ઠાયાક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ. વધારે શું કહેવું? અમારી સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે. આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુમપ્રાય-સુતેલો સમાજ અને હુંમપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી હૃદય થશે. અમે વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુન શુકલ
તેરસ મંગળવાર
(અક્ષવર સ્ટેટ)

ઈતિ
ઉપાધ્યાયજ્ઞૈનમુનિ આત્મારામ
(પંબખી)

હોળી સંપ્રદાયના સુનિત્રી હોટાલાલજી

મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર-નામ-ગોત્ર બાંધવાતું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર, જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય કરી દેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે. શાસ્ત્ર, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે. તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનીય છે. તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે. જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કે:—

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પંડિત અપ્રમાદી સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારકતું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે-પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહોંચીવળવા માટે સાડું સરખું ફંડ જોઈએ. એના માટે મારી એ સુચના છે કે-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો-જે બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા જે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી ગેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જે કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે. વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જે સંભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા યવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારતું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ન્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમાં એમની જ્ઞાનશક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિવાઈ શેઠ જેવાએ વિનંતિ કરી અમદાવાદ પધરાવવા, અને ત્યાં અનુકૂળતા મુજબ જે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારતું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ.

થોડા વખતમાં જામજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.

દરિયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઈચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય
શ્રી

રાણપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ
મુનિવરોની સેવામાં, આપ સર્વ સુખસમાધીમાં હશે.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુંદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ. આપના
પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાંક સૂત્રો મેં જોયાં. સુંદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ
કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સૂત્રપ્રકાશનનું કામ
ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત
થાય એજ અભ્યર્થના.

લી. પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી
પૂ. શ્રી ભાઈચંદ્ર મહારાજની
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના
પાયવંદન સ્વીકારશે.

*

તા. ૧૧-૫-૫૬
વિરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના
આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા. ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ભૂત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુંદર
અને સરળ ભાષામાં થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ
સમય જોઈને મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા નથી. છતાં જેટલું સાહિત્ય
જોયું છે, તે જહુજ સાડું અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને
અનુરૂપ લાગે છે. આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાંચવા યોગ્ય છે. આમાં
સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસલ્યાની દૃઢતા જાણાતુકું છે.
આચાર્યશ્રી અર્પૂર્વ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે.

લી. કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.
મુ. ખીચન.

*

હીંબડી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી હોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર-નામ-ગોત્ર ધાંધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર, જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય કરી દેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે. શાસ્ત્રજ્ઞ, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે. તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનીય છે. તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે. જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કે:—

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પંડિત અપ્રમાદી સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારકનું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે-પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહોંચીવળવા માટે સાડું સરખું ફંડ જોઈએ. એના માટે મારી એ સુચના છે કે-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો-જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને ધીજા જે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેન્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે. વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જો સંભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સંકેળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ત્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમાં એમની જ્ઞાનશક્તિને જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિવાર્ધ શેઠ જેવાઓ વિનંતિ કરી અમદાવાદ પધરાવવા, અને ત્યાં અનુકૂળતા મુજબ જે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ.

થોડા વખતમાં જામજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.

કરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ.

આતુર્ભાસ સ્થળ લીંબડી
સં. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરુ

લી.

સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશ્વાદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે. તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાયું છે, આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ધણી જ સુંદર છે. સંસ્કૃતરચના માધુર્ય, તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી સુક્ત છે. વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ. અને હરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ.

આ મહાન કાર્યમાં પંડિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે.

અમદાવાદ

તા. ૨૨-૪-૫૬ રવીવાર
મહાવીર ન્યાંતિ

મુનિ પુનમચંદ્રજી

*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસંતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય
લખતર તા. ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલભાઈ મંગળદાસભાઈ.

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્રવેં સ્થાં જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુ. અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. મા. આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીનાં સૂત્રોમાંથી ઉપાસકદ્વંશાંગસૂત્ર, આચારાંગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર

દર્શવૈકાલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જ્યાં તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયક છે. તે વાંચન ઘણું જ સુંદર અને મનોરંજન છે. આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અગાધ પુરૂષાર્થ કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણો લાભ થવા સંભવ છે.

હંસ સમાન પુદ્ગિવાળા આત્માઓ સ્વપરના લેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોક કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે. દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરું છું કે આ સૂત્રો પોતા-પોતાના ઘરમાં વસાવવાની સુંદર તકને ચૂકસો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરંપરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ મુશ્કેલ છે. આ કાર્યમાં આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમાં મહાન નિર્જરાતું કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એ જ.

લી, શારદાબાઈ સ્વામી
ખંભાત સંપ્રદાય.

*

બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મેંઘીબાઈ
સ્વામીને અભિપ્રાય

ધંધુકા તા. ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ

પ્રમુખ અં ભાં પ્રવેં સ્થાં જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

સું રાજકોટ

અત્રે ખીરાજતા ગું ગુંના લંડાર મહાસતીજી વિદુષી મેંઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિઠાણાં બન્ને સુખશાતમાં ખીરાજે છે. આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશો એજ આશા છે.

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી લેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આઘોપાન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગમાર્ગને પુખ જ ઉન્નત બનાવનાર છે. તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે. હંસ સમાન

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાડીને વિક્ષિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન લવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરું કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ. બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી
મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામી
ના કુરમાનથી લી. જોડીદાસ ગણેશભાઈ—ધંધુકા
સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન
પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાખંડ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયાં છે તે હું જોઈ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધભાગધી હિંદી ભાષાઓના નિબળાત છે. એ એમનો ટુંક પરિચય કરતાં સહજ જણાઈ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સંપાદન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમાં ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે. સ્થાનકવાસી સમાજમાં વિદ્વતા; ઘણી ચોઈ છે, તે દિગંબર મૂર્તિપૂજક શ્વેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતાં હું વિરોધના લય વગર કહી શકું. પૂઠ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારાં આપવામાં આવ્યાં છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલાં છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમાં અને કુટુંબોમાં વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગંજ, વડોદરા

કાંમદાર કેશવલાલ હિંમનરામ

તા. ૨૭-૨-૧૯૫૬

મુંબઈની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઈ તા. ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મંગળદાસ

પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ,
રાજકોટ.

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે, અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો સંપૂર્ણ આપવામાં આવ્યાં છે. સંસ્કૃતટીકા અને ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એક સરખા અસાધારણ પ્રમુલ્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હિંદીમાં થયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એથી વિદ્વજ્ઞન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજી ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે. બીજાં ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાય થઈ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન-સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી. આચાર્યશ્રીના આ મહાન કર્યને જૈનસમાજનો વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાંપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. રમણુલાલ ચીમનલાલ શાહ
સેંટ એલિયસ કોલેજ, મુંબઈ.

પ્રો. તારા રમણુલાલ શાહ
સોફીયા, કલોજ, મુંબઈ

*

રાજકોટ ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ

ભગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, તા. ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પં. મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે ખુબ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ. મેં જોયાં.

આ સૂત્રો જોતાં પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાણુ જણાઈ આવે છે. એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી. આપણે જોઈએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, એટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાંતર પૂઠ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણાં અહોભાગ્ય છે. યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવનાં ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલાં સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાંતર દરેક જિજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ. સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યાં છે. મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સંકળાયેલા જોઈએ છીએ. એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કદવના કરી શકાય તેમ છે. તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે.

પ્રો. રસીકલાલ કર્સ્તુરચંદ ગાંધી
એમ. એ. એલ. એલ. બી
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ લિનાસર કોન્ફેરેન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખત શ્રી પ્રવેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુંભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્યમંત્રી નીમ્યા છે, તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ. ભા. પ્રવે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે. જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમંત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે. અને છેલ્લામાં છેલ્લા વઠોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે. તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કોન્ફેરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે. અને તેમના કામને ન્યાં ન્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પડિતોની અને નાણાંની તે તે પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઈચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને ન્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે, ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફેરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ ત્રુટી હોય તે પં. ર. શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાંનિધ્યમાં જઈ, બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે.

(૨થા. જૈન પત્ર તા. ૪-૫-૫૬)

*

સ્વતંત્રવિચારક અને નિહર લેખક ‘જૈનસિદ્ધાંત’ના તંત્રી
શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં જોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામાં આવતા નથી. લાંબી તપાસને અંતે મેં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે.”

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્યા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં

નધાર્ઠ નથી. અને પૂ. શ્રી ઘાસીલાલજીનાં બનાવેલાં સૂત્રો જોતાં સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ તે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ. પાસેથી રાખેલી તે ધરાબર કૃતીભૂત થયેલ છે.

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ. ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થયે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને. અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાંચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે. વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે. ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાંચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાંચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે.

કેટલાકને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાંચવાનું કામ આપણું નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે. બીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં આ સૂત્રો સામાન્ય વાંચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં (અર્ધભાગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલાં છે. એટલે સૂત્રો વાંચવા તેમજ સમજવામાં ઘણું સરળ છે.

માટે કોઈ પણ વાંચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાંચવાને ચૂકવું નહિ. એટલું જ નહિ પણ જરૂરી પહેલાં સૂત્રો જ વાંચવાં.

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે. અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડ્યા છે, જે સૂત્રો-અનુયોગદ્ધાર અને કાણ્ડાંગ સૂત્ર-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે. તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે.

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા. બંધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ.

‘જૈન સિદ્ધાંત’ પત્ર-મે ૧૯૫૫

શ્રુત-ભક્તિ

(૫૦ આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મં સાંની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)
 ડ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય. જ્ઞાનદિવાકર પં ૦ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મં ચરમ તીર્થંકર લગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ કસ્યાણુકારક, ચરમ શીતળ વાણીના ઘોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે, તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પંડિત છે, અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ, સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે. એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે.

હાલ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણધર મહારાજનેએ શ્રુતપરંપરાએ સાચવી રાખ્યો. શ્રુતપરંપરાથી સચવાતું જ્ઞાન ત્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવદિગ્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વડલીપુર-વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઠ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે. તે અર્ધમાગધી ભાષામાં છે. અત્યારે આ ભાષા લગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મભાષા છે. તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા સમુદ્ધ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે.

જિનાગમ એ આપણાં શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે. એ આપણી આંખો છે. તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે. તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સહભાગ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજે સત્ સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે.

હાલ મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે લગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય? લગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને તેઓ સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે, અને સંસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષની ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આવા જ્ઞાનકાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મિઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે. હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હજારો ટીકા ગ્રંથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે. ઈસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રંથ બાઈબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સર્વ

ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી તેને પઠતર કરતાં પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે. સુસ્ત્રિભ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું અનેક ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે. આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવાં જોઈએ. અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાંપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઈએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ. સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ. ૨૫૧૭૯૨ની સમિતિના સભ્ય બનવું જોઈએ. ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મૂકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાનપ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું જોઈએ.

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહંમેશ તત્પર રહેવું જોઈએ. જેથી પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય. (સ્થા. જૈન તા. ૫-૭-૫૬)

*

શ્રી. અ. ભા. ૨વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં પ્રમુખ શ્રી વગેરે. રાણપુર
પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર ન્યારથી શાંત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં પુનીત પગલાં થયાં છે ત્યારથી ઘણા ભાંગા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનવરણીય કર્મનાં પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે. અને જે પ્રવચનની પ્રલાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાલ લે છે, મને તો સમજત્ય છે કે સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે. એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાંચ-સાત સાધુઓ જે સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે સમાજ-કાશમાં સ્થા. જૈન સંપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે પણ વો દિન.....

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણલિકા યુવાનોને શરમાશે તેવી છે. તેમને ગામેગામ વિહાર કરવું અને શાસ્ત્રોદ્ધારવું કાર્ય કરવું તેમાં ઘણાં શારીરિક માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાંના શ્રાવકો ભક્તિ વાળા હોય. વાડાનાં રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય. એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારવું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ. બીજા કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડ કરી અપાય તો વધુ સારું. મ્હારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપું છું. ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકાર્યો. લી. સદાનંદી જૈનસુનિ છોટાલાદ

“જૈનસિદ્ધાંતના” તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાઠનારી આ એકની એક સંસ્થા છે, અને એના આ છેટલા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે—તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પડવાં એ કાંઈ મહેતું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે.

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચુક્યાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે. નવ સૂત્રો લખાઈ ગયાં છે અને જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ તથા નંદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યાં છે.

હાલમાં મંત્રી શ્રી સાંકરચંદ્ર ભાઈચંદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આગ્રહ વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે. તેમના ખંત માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ. મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે. મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઝણુ અદા કર્યું જણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે પદ્મં જાણં તઓ દયા પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મ યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ.

એટલા માટે શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા. જૈને પોતાના ઘરમાં વસાવવાં જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો મહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાંચે એ ખાસ જરૂરનું છે.

શ્રી ઉપાસકદશાંગસૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે ણનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક-અ. ભા. શ્રવે. સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ ધીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ. પાકું પુકું, બેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત રૂ. ૮-૮-૦

આપણા મૂળ ખાર અંગ સૂત્રોમાંનું ઉપાસકદશાંગ એ સાતસું અંગ સૂત્ર છે. એમાં ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોનાં જીવનચરિત્રો આપેલાં છે, તેમાં પહેલું ચારિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને ખાર વ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધાં તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે, તેની અંતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે ખાર વ્રત લીધાં તે ખાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે. તેજ પ્રમાણે ધીજી નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે.

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામાં અરિહંત્ત્વેદ્યાઈ શબ્દ આવે છે. મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજ સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે. અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણે આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહંત્ત્વેદ્યાઈનો અર્થ સાધુ થાય છે. તે બતાવી આપેલ છે.

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ. નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે.

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાંચવું જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વસાવવું જોઈએ.

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સંમતિપત્ર તથા ધીજી સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે.

“ જૈનસિદ્ધાંત ” બા-યુઆરી-૫૭

એકઠો સર્વોદ્ધારકો ઉપરાંત હાલમાં મળેલ
કેટલાક તાજ અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તંત્રીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૬-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ સુકામે સરસપુરના સ્થા. જૈન ઉપાશ્રયમાં ગિરાજમાન છે. તેઓ શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય ખૂબ જ ખંત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે. તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે. આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલાં શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીનાં સૂત્રોની ટીકા જેમ બને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે. સ્થા. જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ બને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ. આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી. પૂજ્યશ્રી અમુલખક્રમીજી મહારાજે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ, ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણાં શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયાં. પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ. પૂજ્ય શ્રી જ્વાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂચકાંગસૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ. શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાંગની હિંદી ટીકા લખેલ. પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા. જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી. જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બંધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસ બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ હીંદીમાં છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે.

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના ડૉ. ૨૫૧૭ ભરીને લાઈફ મેમ્બર થનારને તમામ શાસ્ત્રો શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી લેટ મળે છે. આ રીતે એક પંથ અને દો કાજ. બન્ને રીતે લાલ થાય તેમ છે. ડૉ. ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રસાવના કરવાનો ધર્મ-લાલ પણ મળે છે.

શ્રી ઉપાસકદશાંગસૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે ઇનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક-અ. ભા. શ્રવે. સ્થાનકવાસી નૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ ખીજી આવૃત્તિ એવડું (માટું) કદ. પાકું પુકું, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત રૂ. ૮-૮-૦

આપણા મૂળ ધાર અંગ સૂત્રોમાંનું ઉપાસકદશાંગ એ સાતમું અંગ સૂત્ર છે. એમાં લગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોનાં જીવનચરિત્રો આપેલાં છે, તેમાં પહેલું ચારિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે નૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને ધાર મત લગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધાં તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે, તેની અંતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે ધાર મત લીધાં તે ધાર મતની વિગત અતિથારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે. તેજ પ્રમાણે ખીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે.

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામાં અરિહંતવેદ્યાઈ શબ્દ આવે છે. મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે. અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણે આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહંતવેદ્યાઈનો અર્થ સાધુ થાય છે. તે બતાવી આપેલ છે.

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ. નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે.

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાંચવું જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વસાવવું જોઈએ.

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સંમતિપત્ર તથા ખીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણબૂતતાની ખાત્રી આપે છે.

“ નૈનસિદ્ધાંત ” નાનુઆરી-૫૭

શતાવધાની મુનિશ્રી ન્યતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “ સ્થાનકવાસી જૈન ” તા. ૫-૯-૫૭ ના અંકમાં છપાએલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા. ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે ખિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ. સા. સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને લખી કરાવા માટે લખું છું.

‘ શાસ્ત્રોનું કામ એક ગહન વસ્તુ છે. અપ્રમાદી થઈ તેમાં અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે. આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમાં ખિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે. શાસ્ત્રલેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શંકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર થાય છે? કરવામાં આવે છે? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે; કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર થયેલા છે. જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શંકા થાય.

પણ ખરી રીતે જોતાં, અલ્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રિ આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અલ્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલાં આગમોના મૂળ પાઠોમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામાં આવેલ નથી અને લલિપ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થયે તેમાં ફેરફાર થયે નહિ તેની સમાજ નોંધ લે.

લી.

શતાવધાની શ્રી ન્યતિ મુનિ-અમદાવાદ

આ સાથે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના મુશિખ્ય પં. મિત્રશ્રી કનૈયા-
લાલજી મહારાજ મલાઠ મુકામે આતુર્ભાસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના
મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બાજવી રહ્યા છે. અને
અત્યાર સુધીમાં મુંબઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઇફ
મેમ્બર બની ગયા છે અને મુંબઈમાં લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે
ઈચ્છવા યોગ્ય છે. શ્રીમંત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમાં તેમજ
મોજશોખના કામોમાં તેમજ વ્યવહારિક કામોમાં વાપરી રહ્યા છે તો આવા
શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમાં રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે.
અને બદલામાં ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે. જેનું વાંચન
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રાસા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.

શ્રી દશવૈકલિક તથા ઉગાસકદશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલાં પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઈએ. તે વાંચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારતું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એષણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બળવી શકે છે. વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અંધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે. પરંતુ ‘કલ્પ શુ’ અને અકલ્પ શુ’ એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે, અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાયઃ કુસેવા કરી રહ્યા છે. તેમાંથી બચી લાલનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે. શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે.

પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોદ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીયા ૨૫૧૭ લરી મેમ્બર થનારતે રૂ. ૪૦૦-૫૦૦ ની લગભગ કીંમતના બત્રીસે આગમો ક્ષી મળી શકે છે તો તે રૂ. ૨૫૧૭ લરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા જોઈએ. બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તો તે લાલ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુબંધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે. ઉપરોક્ત બંને સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કંઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમંત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મક્ત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે.

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ—ઉપરની સુચનાને અમે આવાકારીએ છીએ. આવાં સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાંચવા યોગ્ય છે. તંત્રી—

“રત્નચોત” પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સંસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમાં તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધાં છે. સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજાં કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે.

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઈ સર્વ સ્થા. જૈન ભાઈબહેનોએ આ સંસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે.

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા. કૉન્ફરન્સ જેમ જોટાં બણુગાં કુંકનારી સંસ્થાની કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન્ ઉપકાર છે. વયોવૃદ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજી સુધી બીજા કોઈ એ કયું નથી અને બીજું કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શંકાભયું છે. પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે. સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામાં પાછો હોતે તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

“જૈનસિદ્ધાંત પત્ર” એપ્રિલ ૧૯૫૭

*

શ્રી દશવૈકલિક તથા ઉગાસકદશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલાં પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત જે સૂત્રો નૈન ધર્મ યાજતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઈએ. તે વાંચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એવણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બલવી શકે છે. વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અંધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે. પરંતુ ‘કલ્પ શુ’ અને અકલ્પ શુ’ એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ધસડી રહ્યા છે, અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાયઃ કુસેવા કરી રહ્યા છે. તેમાંથી બચી લાલનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે. શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે.

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોદ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીયા ૨૫૫૫ ભરી મેમ્બર થનારતે રૂા. ૪૦૦-૫૦૦ ની લગલગ કીંમતના બત્રીસે આગમો ક્રી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૫૫ ભરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા જોઈએ. બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગલગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તો તે લાલ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુબંધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે. ઉપરોક્ત બંને સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કંઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમંત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મક્ત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે.

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ—ઉપરની સુચનાને અમે આવકારીએ છીએ. આવાં સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાંચવા યોગ્ય છે. તાંત્રી—

“રત્નચોત” પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં

બનાવેલાં સૂત્રો

કાશ્મીર.....થી.....કન્યાકુમારી

તેમજ

કરાંચી.....થી.....કલકત્તા

સુધી

દરેક સ્થળે હોંશથી વંચાય છે.

કારણ કે

આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનું અનોખું કાર્ય

હલુ સુધી કોઈ કરી શક્યું નથી

* * *

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉપરાંત

શ્રી દેરાવાસી સંપ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી

તથા અન્ય સુનિવરોએ

તેમજ

તેરાપંથી મહાસલા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યાં છે.

* * *

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાંચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણુમોલો

લાભ લઈ રહ્યા છે.

હમણાંજ લંડનની ઈન્ડિયા એાફ્રીસ લાયબ્રેરીએ આ સૂત્રો મંગાવ્યાં છે.

* * *

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોંધાવી હપ્તે હપ્તે લગભગ રૂપીઆ પાંચસો સુધીની કિંમતનાં શાસ્ત્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છો.

વધુ વિગત માટે લખો :

કે. શ્રીન લોજ પાસે,
ગરેડીઆકુવા રોડ
રાજકોટ.

મંત્રી

શ્રી અખિલ ભારત પ્રવે. સ્થા. જૈન
શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ

श्री आचाराङ्गसूत्र प्रथमश्रुतस्कन्ध प्रथम अध्ययनका

विषयानुक्रम

विषय-	पृष्ठाङ्क-
मङ्गलाचरण	१-३
अवतरणा	३-१५९
(१) भगवान् के वचनों में कल्पवृक्ष के फूलों के पच्चीस (२५) गुणोंकी उपमा	४-१३
(२) भगवान् की वाणी के ३५ अतिशय	१४-१९
(३) अनुयोग (४)	२०-१५८
(१) चरणकरणानुयोग	२०-२३
(२) धर्मकथानुयोग	२३-२४
(१) आक्षेपाप्यादिधर्मकथा (४)	२५-३१
(२) धर्ममहिमा	३२-३४
(३) गणितानुयोग	३५-५३
प्रब्रज्यादानसमयनिर्णय	३६-५३
(१) मासविचार	३७
(२) पक्षविचार	३८
(३) तिथिविचार	३८
(४) वारविचार	३९
(५) नक्षत्रविचार	३९
(६) योगविचार	४१
(७) करणविचार	४१
(८) लग्नविचार	४६
(९) ग्रहविचार	४६
(१०) शीघ्रप्रब्रज्यासमयनिरूपण	४७

विषय-	पृष्ठाङ्क-
(११) केशलुञ्ज	५१
(१२) प्रथमगोचरीविचार	५२
(१३) नूतनपात्रव्यापारण	५३
(१४) आचार्यादिपदप्रदानसमय	५३
(४) द्रव्यानुयोग	५३-१५९
द्रव्यलक्षण	५४
पर्यायलक्षण	५८
द्रव्यविभाग (भेद-६)	६१
[१] धर्मास्तिकायस्वरूप	६३
[२] अधर्मास्तिकायस्वरूप	६७
[३] आकाशास्तिकायस्वरूप	७२
[४] कालनिरूपण	८२
कालशब्दव्युत्पत्ति	८२
कालसिद्धि	८३
काललक्षण	८४
कालस्वरूप	८८
[५] पुद्गलास्तिकाय	९६
पुद्गलशब्दार्थ	९६
पुद्गललक्षण	९७
पुद्गलमदेशसंख्या	९८
पुद्गलक्षेत्रस्थिति	९८
पुद्गलभेद	१०४
परमाणुस्वरूप	१०५
स्कन्धस्वरूप और उसके भेद	१०८
परमाणुबन्धकारण	११२
परमाणुबन्धव्यवस्था-कोष्टक	१२१

विषय-	पृष्ठाङ्क-
[६] जीवास्तिकाय	१२२
जीवशब्दार्थ	१२२
जीव स्वरूप भाव और उसके भेद-५	१२४
(१) औपशमिक भाव	१२५
(२) क्षायिक भाव	१२६
(३) क्षायोपशमिक भाव	१२७
(४) औदयिक भाव	१२७
(५) पारिणामिक भाव	१२८
जीव का स्थितिक्षेत्र	१३०
जीव की हास-वृद्धि	१३२
जीव की ऊर्ध्वगति	१३४
जीवलक्षण	१३५
इति जीवास्तिकाय	१४०
पद्द्रव्य विचार	१४१
जीवस्कन्ध विचार	१४३
पद्द्रव्यों का सक्रिय- निष्क्रिय विचार—	१४५
व्यवहारनय को लेकर पद्द्रव्य विचार—	१४७
पद्द्रव्यों के विषय में— कर्तृत्वाकर्तृत्वनिरूपण	१४७
व्यवहार नय-(६)	१४८
(१) शुद्धव्यवहार नय	१४८
(२) अशुद्धव्यवहार नय	१५०
(३) शुभव्यवहार नय	१५१
(४) अशुभव्यवहार नय	१५२

विषय-	पृष्ठाङ्क
(५) उपचरितव्यवहार नय	१५२
(६) अनुपचरितव्यवहार नय	१५४
जीव के स्वरूप में सदृश- विसदृश विचार	१५६
इति अवतरण सम्पूर्ण	१५९
सूत्र का उपक्रम	१५९
सूत्र प्रथम	१६०
'भग' शब्दार्थ	१६१
सूत्र द्वितीय (संज्ञा)	१६४-१९५
संज्ञा के भेद (१६)	१६६
(१) आहारसंज्ञा	१६७
(२) भयसंज्ञा	१६९
(३) मैथुनसंज्ञा	१६९-१७०
(४) परिग्रहसंज्ञा	१७०
(५) क्रोधसंज्ञा	१७१
(६) मानसंज्ञा	१७१
(७) मायासंज्ञा	१७२
(८) लोभसंज्ञा	१७२
(९) लोकसंज्ञा	१७२-१७३
(१०) ओघसंज्ञा	१७३
(११) सुखसंज्ञा	१७३
(१२) दुःखसंज्ञा	१७४
(१३) मोहसंज्ञा	१७४
(१४) विचिकित्सासंज्ञा	१७४-१७५
(१५) शोकसंज्ञा	१७५
(१६) धर्मसंज्ञा	१७५-१७६
ज्ञानसंज्ञा के भेद-(५)	१७६

विषय—	पृष्ठाङ्क—
(१) मतिज्ञान	१७६
(२) श्रुतज्ञान	१७७
(३) अवधिज्ञान	१७९
(४) मनःपर्ययज्ञान	१८१
(५) केवलज्ञान	१८४
मतिज्ञान के भेद (५)	१८५-१९०
ईहा	१८५-१८६
अपोह	१८६-१८७
मीमांसा	१८७
मार्गणा	१८८
गवेपणा	१८८
संज्ञा	१८८-१८९
स्मृति	१९०
मति	१९०
प्रज्ञा	१९५-२०२
सूत्र तृतीय (संज्ञा)	१९८
तीन प्रकार का जन्म	१९८-१९९
(१) संमूर्च्छनजन्म	१९९-२००
(२) गर्भजन्म	२०१
(३) उपपातजन्म	२०२-२०८
सूत्र चतुर्थ (संज्ञा)	२०९-३९७
सूत्र पञ्चम	२१०-२६८
आत्मवादिप्रकरण	२११
आत्मशब्दार्थ	२१३
आत्मास्तित्वसिद्धि	२२८
आत्म का द्रव्यत्व	२३३
आत्माका स्वरूप (१३)	

विषय-

पृष्ठाङ्क-

(१) जीवत्वनिरूपण	२३३
(२) नित्यत्वनिरूपण	२३७
(३) चेतनावचननिरूपण	२४३
(४) उपयोगवचननिरूपण	२४४
(५) परिणामित्वनिरूपण	२४७
(६) प्रभुत्वनिरूपण	२४८
(७) कर्तृत्वनिरूपण	२५०
(८) भोक्तृत्वसिद्धि	२५३
(९) शरीरपरिणामत्वसिद्धि	२५५
(१०) अमूर्त्तत्वनिरूपण	२५९
(११) प्रतिशरीरभिन्नत्वसिद्धि	२६३
(१२) पौद्गलिककर्मसमुक्तत्वसिद्धि	२६३
(१३) ऊर्ध्वगतिस्वभावत्वसिद्धि	२६८
इति आत्मवादि प्रकरण	२६८
लोकवादिप्रकरण	२६९-२९९
पद्मजीवनिकाय	२७०-२७१
(१) पृथिवीकायभेद	२७१
(२) अप्कायभेद	२७३
(३) तेजस्कायभेद	२७४
(४) वायुकायभेद	२७४-२७५
(५) वनस्पतिकायभेद	२७५-२७६
(६) त्रसकायभेद	२७६
(१-४) द्वित्रिचतुरिन्द्रियभेद	२७७-२७८
(६) पञ्चेन्द्रियभेद (४)	२७९
मनुष्यभेद	२८०
अकर्मभूमि	२८२
देवनिकाय (४)	२८३

विषय	पृष्ठाङ्क
(१) भवनपतिदेवभेद	२८४
(२) व्यन्तरदेवभेद	२८६
(३) ज्योतिष्कदेवभेद	२८७
(४) वैमानिकदेवभेद	२८८
कल्पातीत	२९४
पद्मजीवनिकायभेदसंकलन	२९५
जीवसंख्या	२९८
कर्मवादिप्रकरण	२९९
(१) कर्मस्वरूप	३००
(२) कर्मसिद्धि	३०१
(३) कर्म का मूर्त्तत्व	३१२
(४) जीव और कर्म का संबन्ध	३१३
(५) कर्म का अनादित्व	३१७
(६) अकर्मवादिमतनिराकरण	३१८
(७) बन्धस्वरूपनिरूपण	३२०
(८) बन्धकारणनिरूपण	३२५
(१) प्रकृतिबन्ध	३३२
आठ कर्मों के लक्षण	३३३
(२) स्थितिबन्ध	३३४
स्थितिबन्धकोष्ठक	३३६-३३७
(३) अनुभावबन्ध	३३८
पुण्यपापकर्मनिरूपण	३४४
सर्वघाति प्रकृतियाँ (२०)	३४७
देशघाति प्रकृतियाँ (२५)	३५२
अघाति प्रकृतियाँ (७५)	३५६
उत्तरप्रकृतिसंख्या (१४८)	३५८-३७४

विषय-	पृष्ठाङ्क
कर्मक्षयविचार	३७४
इति कर्मवादिप्रकरण	३८३
क्रियावादिप्रकरण	३८३-३९७
प्राणातिपातक्रिया	३८६
मृगवध में उद्यत की क्रिया	३८८
कुसूल में लोह डालने वाले की क्रिया	३८९
धनुष से बंधने वाले की क्रिया	३९०
दृष्टिज्ञान के लिये हस्तादि-	
फैलाने वाले की क्रिया	३९१
ताड़ पर चढ़ कर उसके फल तोड़नेवाले	
की क्रिया	३९२
अठारह पापस्थान	३९२-३९७
(१) प्राणातिपात	३९२
(२) मृषावाद	३९४
(३) अदत्तादान	३९४
(४) मैथुन	३९४-३९५
(५) परिग्रह	३९५
(६-१८) क्रोध से मिथ्यादर्शनशल्यतक	३९५-३९७
इति क्रियावादि प्रकरण	३९७
छठा सूत्र (कर्मसमारम्भ)	३९७-४०१
सूत्र सप्तम (अपरिज्ञात कर्मजीव)	४०२-४०३
सूत्र अष्टम (जीव का योनिसंधान)	४०३-४०९
योनिभेद (९)	४०४
चोरासी लाख योनियाँ	४०७
सूत्र नवम (परिज्ञा)	४०९
सूत्र दशम (कर्मसमारम्भ)	४११
सूत्र एकादश (उपसंहार)	४१५
सूत्रद्वादश (उपसंहार)	४१६

विषय-	पृष्ठाङ्क-
प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशकी समाप्ति	४१७
दूसरे उद्देशका उपक्रम	४१८
जीव के विशिष्ट ज्ञानके अभावका कारण	४२०
पृथिवीकाय की हिंसा में तदाश्रित- जीवों की हिंसा	४२३
पृथिवीकायलक्षण	४२५
पृथिवीकायप्ररूपणा	४३३
पृथिवीकायजीवपरिणाम	४३७
पृथिवीकायवधद्वार-शस्त्रद्वार	४४०
पृथिवीकाय का उपभोग	४४१
पृथिवीकायसमारम्भप्रयोजन	४४२
पृथिवीकायसमारम्भफल	४४९
दृष्टान्तद्वारा पृथिवीजीवसिद्धि	४५५
पृथिवीकायसमारम्भनिवृत्ति	४६१
उपसंहार-उद्देशसमाप्ति-	४६३
तृतीय उद्देश	४६४
उपक्रम और दृष्टान्त	४६४-४६८
अनगारलक्षण	४६९
अनगारकर्त्तव्य	४७३
श्रद्धास्वरूप	४७४-४९८
(१) यथाप्रवृत्तिकरण	४८५
(२) अपूर्वकरण	४८९
(३) अनिवृत्तिकरण	४९२
(४) अधिगमश्रद्धा	४९४
अष्कायश्रद्धोपदेश	४९९-५०३
अष्काय की हिंसा में	
तदाश्रित अन्य जीवों की हिंसा	५०४
अष्कायशस्त्र	५०५
अष्कायरक्षोपदेश	५०९
अष्कायभोग-	५१२

विषय-	पृष्ठाङ्क-
अपकायसचित्तता	५१४
अपकायजीवलक्षण	५१९
अपकायप्ररूपणा	५२०
अपकायजीवपरिमाण	५२२
अपकायशस्त्र	५२४
धावनजल-धावनपानी-(२१)	५२८
अपकायविराधनादोष	५३०
अपकाय के विषय में अन्य- मत समीक्षा	५३२
अन्यमतागमविरोध	५३४
उपसंहार	४३७
चतुर्थोद्देशक	५३८
उपक्रम	५३८
अग्निकाय के अभ्याख्यान में आत्मा का अभ्याख्यान	५३९
अग्निकायलक्षण	५४१
अग्निकायसचित्तता	५४२
अग्निकायप्ररूपणा	५४३
अग्निकायजीवपरिणाम	५४६
अग्निकायापलाप	५४८
दीर्घलोकशस्त्र (अग्निकाय) का- खेदज्ञ	५५०
दीर्घलोकशब्दार्थ	५५३
अग्निकायशस्त्र	५५५
अग्निकायसमारम्भनिवृत्तिप्रतिज्ञा	५६०
अग्निविराधनादोष	५६२
अग्निकायोपभोग	५६७
अग्निसमारम्भदोष	५७०
अग्निसमारम्भ में उसके आश्रित अन्य जीवों की हिंसा	५७३
उपसंहार	५७९

विषय-	पृष्ठाङ्क-
उद्देशकसमाप्ति	५८१
पञ्चमोद्देशक (वनस्पति)	५८२
उपक्रम	५८२
अनंगारलक्षण	५८४
वनस्पतिकायसचित्ता (लक्षणद्वार)	५८६
वनस्पतिप्ररूपणा (भेद)	५९१
वनस्पतिपरिमाण	६०९
वनस्पतिकायोपमर्दन संसार का हेतु है-	६१२
रूपादि गुण में मूर्च्छा संसार का कारण है-	६१७
रूपादिगुणमूर्च्छादोष	६२१
वनस्पतिशस्त्रसमारम्भ में तदाश्रित अनेक जीवहिंसा-	६२२
वनस्पतिविराधक साध्याभास उपभोगद्वार	६२६
वनस्पतिविराधनाफल	६३०
मनुष्यशरीर के साथ वनस्पति-की सचित्ता की सिद्धि-	६३२
उपसंहार	६३६
उद्देशसमाप्ति	६४१
षष्ठोद्देश (त्रसकाय)	६४३
उपक्रम	६४४
त्रसों के भेद	६४४
त्रसकायलक्षण	६४५
त्रसकायप्ररूपणा	६५०
त्रसकायपरिणाम	६५१
प्रत्येक त्रस जीवों के मुख दुःख अलग अलग हैं-	६५२

विषय-

पृष्ठाङ्क-

प्रत्येक दिशा विदिशा में	
पृथिवी आदि आश्रित	
प्रसजीवों को परिताप	
देने से संसार भ्रमण-	६५७
प्रसकाय के समारम्भ में	
अन्य प्राणियों की हिंसा	६५९
प्रसकाय की हिंसा में	
परिज्ञा (प्रसकायसमारंभदोष)	६६३
उपभोगद्वार	६६४
वेदनाद्वार	६६६
प्रसजीवविराधनाफल	६६७
प्रसजीवहिंसाप्रयोजन	६७०
उपसंहार	६७३
उद्देशसमाप्ति	६७५
सप्तम उद्देश (वायुकाय)	६७६
वायुकायविराधनविवेक	६७७
वायुकायलक्षण	६८३
वायुकायप्ररूपणा	६८४
वायुकायपरिमाण	६८५
वायुकायशस्त्र	६८६
वायुकाय की हिंसा में पद्मजीव-	
निकायरूप लोक की हिंसा	६८९
द्रव्यलिङ्गिकृत वायुकायविराधना	६९०
वायुकायोपभोग	६९३
वायुविराधनादोष	६९६
वायुविराधनापरिहार	७००
मुखवस्त्रिकाविचार	७०४
पद्मनिकायारम्भदोष	७१२
पद्मजीवविराधनापरिहार	७१७
प्रथम अध्ययन समाप्ति .	७२०

श्री आचार्य विनयचन्द्र प्रान भण्डार
संचालकः-
श्री श्वे० म्य.नरदासं, जैन धारक संघ
जयपुर ।

श्रीवीतरागाय नमः



जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजीमहाराजविरचिता-
ऽऽचारचिन्तामणिटीकासमलङ्कृतम्

आचाराङ्गसूत्रम् ।

[प्रथमः श्रुतस्कन्धः]

मङ्गलाचरणम्.

अर्थमदं धीरजिनं प्रणम्य,

लब्धेर्धरं गौतम-भासशक्तिम् ।

गणीश्वरं पूर्वधरं च चित्ते,

सन्धाय जैनीं गिरमुज्ज्वलन्तीम् ॥ १ ॥

आचाराङ्गसूत्रकी

आचारचिन्तामणिटीका का हिन्दीभाषानुवाद ।

मङ्गलाचरण

(१)

भव्य जीवोके मनोरथ पूर्ण करते जो जुदा,

उन वीताराग जिनेन्द्र के चरणाम्बुजों में नति सदा ।

आचारसूत्रे मुनिघासिलालः,

प्रयत्नतः साधुजनेष्टसिद्धये ।

आचारचिन्तामणिमादधेऽहं,

भव्याः सदैने हृदि धारयन्तु ॥ २ ॥

अनेक लब्धिमाहि चौदह पूर्वधारक जो तथा,

अध्यात्मशक्ति विभूतियुक्त विराजते हैं जिन यथा ॥

(२)

आचार्य गणधर लोक हित गौतमपदाम्बुज में नती,

मेरी विराजे सर्वदा देवे विमल मति शुभ गती ।

निर्दोषतत्त्वरूपिणी उनकी समुज्ज्वल भारती,

धरते उसे हिय में सदा जो भव्यजन को तारती ॥

(३)

विनीत 'घासीलाल' मुनि जनता तथा मुनि के लिये,

भगवत्सुभाषितरत्न 'आचाराङ्ग गुणगुंफित किये ।

मणिमालिका के रूपमें करते प्रकाशित हैं अभी,

आचारचिन्तामणि हृदयगृह में रखे जनता सभी ॥

(४)

जड द्रव्य चिन्तामणि हृदयपै बाहिरे जाते धरे,

'आचारचिन्तामणि' (टीका) हृदयमें धारिता तमको हरे ॥

सब भव्यजन संसार वन में घूमते इसको गहे,

जिससे प्रकाशित मार्ग हो निज लक्ष्य पद सत्वर लहे ॥

इह सार्द्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरे पञ्चदशक्षेत्रात्मकनन्दनकानने सम्यक्त्वालवालमद्ये
आत्मरूपाः कलम्या विशतिस्थानकपुनःपुनःसमाराधनसलिलेन संवर्द्धिताः सन्त-
स्तीर्थङ्कस्वरूपा अभिनवकल्पपादपाः प्रादुर्भवन्ति ।

भव्यजीवां के समस्त मनोरथ पूर्ण करने वाले श्री वीर भगवान् को प्रणाम करके,
तथा विविध प्रकार की लब्धियों के धारक चौदह १४ पूर्वों के ज्ञाता आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न
श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके समस्त दोषों से रहित होने के कारण, तथा वास्तविक
वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने के कारण उज्ज्वल जिनवाणीको हृदय में धारण करके—

मैं 'घासीलाल' मुनि प्रयत्न करके भव्य पुरुषों की तथा मुनिजनों की इष्टसिद्धि के लिये
आचाराङ्ग रूप सूत्र (दोरे) में भगवद्भाषित विविध आचाररूप मणियां मालारूपमें पिरोता
हूँ । भव्यजन इसे सदैव अपने हृदयमें धारण करें । जडद्रव्यरूप चिन्तामणि हृदय पर
अर्थात् वक्षःस्थल पर धारण किया जाता है किन्तु यह आचारचिन्तामणि (टीका) हृदय में
धारण करने योग्य है ॥ २ ॥

✓ इस अढाई द्वीप के भीतर पन्द्रह कर्मभूमि रूप नन्दनवन में सम्यक्स्वरूप क्यारीमें
आत्मारूपी कलम्ब, तीर्थङ्कर गोत्र वांछने के कारणभूत वीस स्थानों की वारंवार आराधना रूपी
जलसे वृद्धि को प्राप्त होकर तीर्थङ्कररूप नूतन कल्पवृक्ष उत्पन्न होते हैं ।

आचारारंग सूत्रनी आचारचिन्तामणि टीकानो गुजराती अनुवाद.
भंगलायरणु.

लव्य लुवेना तमाम मनोरथ पूर्ण करवावाणा श्री वीर भगवानने प्रणाम करीने,
तथा विविध प्रकारनी लब्धियेना धारक, चौद पूर्वोना ज्ञाता, आध्यात्मिक शक्तिथी सम्पन्न
श्री गौतम गणधरने नमस्कार करीने सकल दोषोथी रहित होवाना कारणे तथा वास्तविक
वस्तुस्वरूपने प्रकाशित करवाना कारणे उज्ज्वल जिनवाणीने हृदयमां धारण करीने—

हुं घासीलाल मुनि प्रयत्न करीने, लव्य पुत्रो-लुवेनी तथा मुनिजनोनी इष्ट
सिद्धि भाटे, श्री आचारारंगरूप सूत्र (दोरा)मां भगवद्भाषित-विविध आचार रूप
मणियोने मालारूपमां परोयुं छुं. लव्य मनुष्य तेने उभेशां हृदयमां धारण करे. जडद्रव्य
रूप चिन्तामणि हृदय पर अर्थात् वक्षस्थण उपर धारण कराय छे. किन्तु आ
आचारचिन्तामणि (टीका) हृदयमां धारण करवा योग्य छे. २.

आ अढी द्वीपनी अंदर, पंदर कर्मभूमिथी नन्दन-वनमां सम्यक्स्वरूप
क्यारीमां आत्मरूपी कलम्ब-कलम (अणी), तीर्थङ्करगोत्र आंधवामां कारणभूत वीस
स्थानोनी वारंवार आराधनारूपी जलथी वृद्धि पाभीने तीर्थङ्कररूप नूतन-नवीन
कल्पवृक्ष उत्पन्न थाय छे.

तद्वचनेषु हि कल्पतरुकुसुमगतसौन्दर्यादिगुणाः समुपलभ्यन्ते । यथा-

(१)-सौन्दर्यम्, (२)-सुगन्धः, (३)-त्रिदोषनाशकत्वम्, (४)-सप्तधातु-
पौष्टिकत्वम्, (५)-त्वग्रोमबलकरत्वम्, (६)-हृदयाहादकत्वम्, (७)-तापशमनत्वम्,
(८) शोभाकारित्वम्, (९) उत्साहकत्वम्, (१०) स्फूर्तिकारकत्वम्, (११) वीर्य-
वर्द्धकत्वम्, (१२)-श्रमहारित्वम्, (१३)-मधुरत्वम्, (१४)-स्निग्धत्वम्, (१५)-
बहुदलत्वम्, (१६)-विषविनाशकत्वम्, (१७)-मकरन्दधारित्वम्, (१८)-
व्याधिनाशकत्वम्, (१९)-विकसनशीलत्वम्, (२०)-तृष्णानिवारकत्वम्,

जैसे कल्प वृक्षां के फूलों में सौन्दर्य आदि गुण पाये जाते हैं उसी प्रकार तीर्थङ्करोंके वचनोर्मि भी सौन्दर्य आदि सभी गुण पाये जाते हैं । दोनोंमें समान रूपसे पाये जाने वाले गुण इस प्रकार हैं—

(१)-सौन्दर्य, (२)-सुगन्ध, (३)-त्रिदोषनाशकता, (४)-सप्तधातुपुष्टिकरता,
(५)-त्वक्-रोम-बलकारित्व, (६) हृदयाहादकत्व, (७) तापशमनत्व, (८) शोभाकारित्व,
(९)-उत्साहकता, (१०)-स्फूर्तिजनकता, (११)-वीर्यवर्धकता, (१२)-श्रमहारित्व, (१३)-
मधुरता, (१४)-स्निग्धता, (१५)-बहुदलता, (१६)-विषविनाशकता, (१७)-मकरन्द-
(पुष्परस) धारित्व, (१८)-व्याधिविनाशकता, (१९)-विकसनशीलता, (२०)-तृष्णा-

जैसी रीते कल्पवृक्षाना कूलोभां सौन्दर्य आदि शुष्णो हेभाय छे, ते प्रभाष्णो तीर्थङ्कशाना वचनोभां पणु सौन्दर्य आदि तमाभ शुष्णो हेभाय छे. जन्नेभां समान रूपथी हेभाता शुष्णो आ प्रकारना छे—

(१)-सौन्दर्य, (२)-सुगन्ध, (३)-त्रिदोषनाशकपणु, (४)-सात धातुनी पुष्टि
करना, (५)-आमडी, वाण-जणकारीपणु, (६)-हृदयने आनंदकारक, (७)-तापनु शमन
करवापणु, (८)-शोभाकारीपणु, (९)-उत्साहकपणु, (१०)-स्फूर्तिजनकपणु, (११)-
वीर्यवर्धकपणु, (१२)-श्रमनिवारणुपणु, (१३)-मधुरता (१४)-स्निग्धता-चिकष्णा-
पणु, (१५)-बहुदलता, (१६)-विषविनाशकपणु, (१७)-मकरंद-पुष्परस-धारकता,
(१८)-व्याधिविनाशकता, (१९)-विकसनशीलता, (२०)-तृष्णानिवारकता,

(२१) मूर्च्छाहारकत्वम्, (२२) पथ्यत्वम्, (२३) मेध्यत्वम्, (२४) उत्कृष्ट-
भावोत्पादकत्वम्, (२५) अवयवसन्निवेशविशेषत्वम् ।

तत्र सौन्दर्यादिकं यथा कल्पतरुकुसुमेषु भगवद्वचनेषु च विद्यते, तथा
प्रदर्शयामः—

सं. गुणाः	कल्पतरुकुसुमपक्षे	भगवद्वचनपक्षे
१ सौन्दर्यम्	मनोहराकृतिमत्त्वम्,	माधुर्यप्रसादगुणवत्त्वम्,
२ सुगन्धः	घ्राणेन्द्रियतृप्तिजनकत्वम् ।	दिव्यध्वनिरूपत्वेन भगवद्वचन- स्वार्थानार्थद्विपदचतुष्पदादीनां

निवारकता, (२१)—मूर्च्छाहारित्वं, (२२)—पथ्यता, (२३) मेध्यता (२४)—उत्कृष्टभावो-
त्पादकता, (२५)—अवयवसन्निवेशविशेषत्व ।

ये पचीस गुण कल्प वृक्षके फूलों में तथा भगवान् के वचनों में किस प्रकार समानरूप
से पाये जाते हैं यह बतलाते हैं.

सं. गुण	कल्पवृक्षके फूलोंके पक्षमें	भगवानके वचनोंके पक्षमें ।
(१) सौन्दर्यं,	मनोहर आकृति वाला,	माधुर्य और प्रसाद गुण वाला
(२) सुगन्ध,	घ्राणेन्द्रियको तृप्तकरने वाला,	दिव्यध्वनिरूप होने के कारण आर्य, अनार्य, द्विपद, तथा

(२१)—मूर्च्छानिवारकता, (२२)—पथ्यता, (२३)—मेध्यता, (२४)—उत्कृष्ट भावोत्प-
त्पादकत्वम् अने (२५)—अवयवसन्निवेशविशेषत्वम्.

आ पचीस गुणो कल्पवृक्षना कुलोभां तथा भगवानना वचनोभां देवी शीते
समानपक्षे देखाय छे ते गतावे छे—

सं. गुण	कल्पवृक्षना कुलोना पक्षभां	भगवानना वचनोनापक्षभां
(१) सौन्दर्यं,	मनोहर आकृतिवाणा,	मधुर अने मोहक शब्द सौन्दर्यं.
(२) सुगन्ध,	नासिकाने तृप्त करनार,	दिव्यध्वनिरूप होवाथी आर्य, अनार्य, जे भगवाणां तथा आर पगवाणां

		स्वस्वभावापरिणतत्वेन तृप्ति- जनकत्वम् ।
३ त्रिदोषनाशकत्वम्,	वात-पित्त-कफ नाश- कत्वम्,	मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वमोहनीय दोषनाशकत्वम् ।
४ सप्तधातुपौष्टिक- त्वम्,	रसासृङ्-मांसमेदोऽस्थिम- ज्जाशुक्र-वर्द्धकत्वम्,	द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-नया- भ्यां स्यादस्त्यादिसप्तभङ्गानां पुष्टिकरत्वम् ।

		चतुष्पद आदि की अपनी २ भाषा में परिणत होजानेके कारण तृप्तिकारक ।
(३) त्रिदोषनाशकत्व,	वात पित्त और कफ इन तीन दोषों को दूर करने वाला ।	मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय इन तीन कर्मों को नष्ट करने वाला ।
(४) सप्तधातुपौष्टि- कत्व,	रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी और वीर्य, इन सात धातुओं को बढ़ाने वाला ।	द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कथंचित् अनित्यता आदि सात भंगों का पोषक ।

		दोषोने पोत पोतानी लापाभां परिष्कृत होवाना कारणे तृप्तिकारक.
(३) त्रिदोषनाशकत्व,	वात, पित्त અને કફ, આ ત્રણ દોષોને દૂર કરવા વાળા	મિથ્યાત્વ, મિશ્ર અને સમ્ય- ક્ત્વ-મોહનીય, આ ત્રણકર્મોના નાશ કરનાર
(૪) સાતધાતુને પુષ્ટ, કરવાપણું	રસ, રક્ત માંસ, મેદ, હાડકાં મજ્જા અને વીર્ય, આ સાત ધાતુને બલવાન કરનાર.	દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક- નયની અપેક્ષાએ કથંચિત્ નિત્યતા કથંચિત્ અનિત્યતા આદિ સાત ભંગોના પોષક

५ त्वगूरोमवलकरत्वम्,	शारीरिकविकारहारक- त्वम्	आत्मवर्तिन आर्त्तरौद्रध्याना- त्मकविकारस्य निवारकत्वम्।
६ हृदयाहादकत्वम्,	दर्शनमात्रेण हृदयमुखजन- कत्वम्	श्रवणमात्रेण सर्वेषां प्राणिना- ममन्दानन्दजनकत्वम्।
७ तापशमनत्वम्,	शैत्यगुणवत्त्वेन तापहारक- त्वम्,	शान्तरसवत्त्वेन कपायानलताप- हारकत्वम्।
८ शोभाकारित्वम्,	भूषणरूपेण द्युतिवर्द्धकत्वम्,	मिथ्यात्वादिकालुष्यापहरणपू- र्वकमात्मतेजःप्रकाशकत्वम्।

(५) त्वग् रोमवलकरत्व,	शरीरसंबंधी विकार दूर करने वाला।	आत्मा के आर्त्तध्यान और रौद्रध्यानरूप विकारोंका नाशक।
(६) हृदयाहादकत्व,	दृष्टि पडते ही हृदयको आनन्दित करने वाला।	कानमें पडतेही प्राणिमात्र को अत्यन्त आनन्द देने वाला।
(७) तापशमनत्व,	शीतल होने से सन्ताप हरने वाला।	शान्तरसमय होने के कारण कपायजनित सन्तापको नष्ट करने वाला।
(८) शोभाकारित्व,	आभूषणरूप होने के कारण शोभा बढ़ाने वाला।	मिथ्यात्व आदि की मलीनता दूर करके आत्माका तेज चमकाने वाला।

(५) आभडी अने वाग्ने प्यकारक.	शरीरसंघंधी विकार दूर करनार.	आत्माना आर्त्तध्यान अने रौद्र ध्यानरूप विकारोनेो नाश करनार
(६) हृदयने आनंदकारी,	दृष्टि पडतां व हृदयने आनंद आपनार	कानमां पडतां व प्राणी मात्रने अत्यन्त आनंद आपनार
(७) तापनिवारणु करनार,	शीतल होवाथी संताप हरनार,	शान्तरसमय होवाथी कपाय- जनित संतापनेो नाश करनार.
(८) शोभाकारीपणुं,	धरेणुंरूप होवाथी शोभा वधारनार	मिथ्यात्व आदिनी मलीनता दूर करीने आत्माना तेजने प्रकाशित करनार.

९ उत्साहकत्वम्,	उत्साहजनकत्वम्,	प्रमादपञ्चकनिवारकत्वेन धर्मा- राधने योगप्रयोजकत्वम् ।
१० स्फूर्तिकारकत्वम्,	हर्षोत्पादकत्वेन स्वैष्टला- भाय प्रवृत्तिजनकत्वम्,	मोक्षाय पराक्रमस्फोटनत्वम् ।
११ वीर्यवर्धकत्वम्,	सकलेन्द्रियशक्तिदायकत्वम्,	तपःसंयमाभ्यामात्मबलोत्कर्ष- कत्वम् ।

(९) उत्साहकत्व,	उत्साह उत्पन्न करने वाला ।	पांच प्रमादों का निवारण करके धर्म की आराधना में तीनों योगों को उत्तेजित करने वाला ।
(१०) स्फूर्तिकारकत्व,	हर्षजनक होने के कारण अपनी इष्ट सिद्धि के लिये प्रवृत्ति कराने वाला ।	मोक्ष के लिये पराक्रम फोड़ने की प्रेरणा करने वाला ।
(११) वीर्यवर्धकत्व	सब इन्द्रियों को शक्ति देने वाला ।	तप, और संयम द्वारा आध्या- त्मिक बल बढ़ाने वाला ।

(९) उत्साहकपक्षः.	उत्साह उत्पन्न करना	पांच प्रमादों का निवारण करके धर्म की आराधना में तीनों योगों को उत्तेजित आपनार.
(१०) स्फूर्ति उत्पन्न करवापक्षः.	हर्ष उत्पन्न करना होवार्थी चेतानी ध्यानानुसार सिद्धि माटे प्रवृत्ति करवानार	मोक्ष माटे पराक्रम करवानी प्रेरणा करना.
(११) वीर्यवर्धकपक्षः.	सब इन्द्रियों को शक्ति आपनार	तप अने संयम द्वारा आध्या- त्मिक बल बढ़ानार.

१२ श्रमहारित्वम्,	सौगन्ध्यादिविविधगुणोत्कर्षेण तत्तदिन्द्रियाणां शैथिल्यनिवारकत्वम्,	चतुर्गतिपरिभ्रमणेन श्रान्तानां भवभ्रमणोपरमेण खेदात्पन्तिकविध्वंसकत्वम् ।
१३ मधुरत्वम्,	मधुररसवत्त्वम्,	अपूर्वाक्षयशिवसुखानुभवात्मकरसत्वम् ।
१४ स्निग्धत्वम्,	सुखदस्पर्शकत्वम्,	श्रवणमात्रेणाऽऽत्मनः प्रतिप्रदेशं धर्मानुरागजनकत्वम् ।

(१२) श्रमहारित्व, मुगन्ध आदि अनेक गुणों की अधिकता होनेसे उससे इन्द्रियों की शिथिलता दूर करने वाला । चार गतियों में भ्रमण करके थके हुए प्राणियों का भव-भ्रमण मिटाकर उनके खेदको सर्वथा नाश करने वाला ।

(१३) मधुरत्व, मधुर रस वाला । अपूर्व अविनाशी मोक्षसुखकी-अनुभूति रस वाला ।

(१४) स्निग्धत्व चिकनापन । कान में पडते ही आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में धर्मानुराग जगाने वाला ।

(१२) श्रमनिवारण करवापणुं. सुगंध आदि अनेक गुणों की विशेषता होवारी ते ते इन्द्रियों की शिथिलता दूर करनार. चार गतिओमां भ्रमण करीने थाकी गयेला एवोना लव भ्रमणने निवारणु करीने तेना जेहनो सर्वथा नाश करनार

(१३) मधुरपणुं. मधुर रसवाणा. अपूर्व, अविनाशी मोक्ष सुभना अनुभव रूप रसवाणा

(१४) स्निग्धता. चिकणुपणुं. कानमां पडतां ए आत्माना हरेके-हरेक प्रदेशमां धर्मानु-राग एगाडनार

- १५ बहुदलत्वम्, शतपत्रसहस्रपत्रादिरूपेणा-
ऽधिकपत्रवत्त्वम्, स्वपरसमयस्वरूपप्रदर्शकबहुवि-
धप्रमाणनयनिक्षेपादिवत्त्वम् ।
- १६ विषविनाशकत्वम्, स्थावरजङ्गमविषहारकत्वम्, विषयवासनाऽपहारकत्वम् ।
- १७ मकरन्दधारित्वम्, परागवत्त्वम्, अनित्यादिभावनाजनितवैरा-
ग्यवत्त्वम् । (१)

- (१५) बहुदलत्व, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि रूपसे स्वसमय और परसमय के बहुत पत्तोंवाला । स्वरूपका प्रकाशक होने के कारण भांति-भांति के प्रमाण, नय, निक्षेप, आदि से युक्त ।
- (१६) विषविनाशकत्व, स्थावर और जङ्गम विष का नाश विषय वासनारूप विषका नाश करने वाला । करने वाला ।
- (१७) मकरन्दधारित्व, पुष्परसवाला । अनित्य आदि बारह भावनाओं से उत्पन्न वैराग्यजनित शान्त रस वाला ।

- (१५) बहुदलता. सो पत्र, हजार पत्र आदि रूपकी धनुं पत्रों (पांढडा) वाणा स्वरूपना प्रकाशक होवाना कारणे नूही नूही नतना प्रमाण, नय, निक्षेप आदिथी युक्त.
- (१६) विषनाशकत्व. स्थावर अने जंगम विषनो नाश करनार विषयवासनारूप विषनो-अेरनो नाश करनार.
- (१७) मकरन्द-धारित्व. कुलोनार रस वाणा. अनित्य आदि गार लावना-ओधी उत्पन्न वैराग्यजनित शान्तरस प्रगटावनार.

१....वैराग्यवत्त्वम्-प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धेन ।

- १८ व्याधिनाशकत्वम्, क्षतक्षयादिसकलातङ्कनिवा- सर्वधातिप्रभृतिसकलकर्मनाशक-
रक्तत्वम्, त्वम् ।
- १९ विकसनशीलत्वम्, मुकुलितपत्रस्फुटन स्वभाव- अनन्तकालप्रसुप्तात्मगुणविका-
त्वम्, सित्वम् ।
- २० तृणानिवारकत्वम्, अभिलापापहारकत्वम्, विषयाभिलापनिवर्त्तकत्वम् ।
- २१ मूर्च्छाहारकत्वम्, नष्टचेष्टानिवारकत्वम्, मोहविनाशकत्वम् ।

(१८) व्याधिनाशकत्व, भय आदि समस्त व्याधियोको सर्वधाति आदि समस्त कर्मोका
हटानेवाला । नाश करने वाला ।

(१९) विकसनशीलत्व, क्रमशः विकसित होता जानेवाला । अनादिकालसे सोये पडे आत्मा
के गुणोंका विकास करनेवाला ।

(२०) तृणानिवारकत्व, लालसा हटानेवाला । विषयों की अभिलाषा दूर
करने वाला ।

(२१) मूर्च्छाहारकत्व, मूर्च्छा (बेहोशी) मिटाने वाला । मोह का नाशक ।

(१८) व्याधि विनाशक- लय आदि तमाम व्याधियोने सर्वधाति प्रकृति आदि
पणुं. निवारणु करनार. तमाम कर्मोना नाश करनार.

(१९) विकासवापणुं क्रमशः विकास पाभवावाणा. अनादि कालथी सुता पडेला
आत्माना शुष्णोना विकास
करनार.

(२०) तृणानिवारकपणुं. लालस्य हर करनार. विषयोनी अभिलाषा हर
करनार.

(२१) मूर्च्छानिवारकपणुं. बेमानपणुं भटाडनार मोह नाश करनार

१५ बहुदलत्वम्, शतपत्रसहस्रपत्रादिरूपेणा-
ऽधिकपत्रवत्त्वम्, स्वपरसमयस्वरूपप्रदर्शकबहुवि-
धप्रमाणनयनिक्षेपादिवत्त्वम् ।

१६ विषविनाशकत्वम्, स्थावरजङ्गमविषहारकत्वम्, विषयवासनाऽपहारकत्वम् ।

१७ मकरन्दधारित्वम्, परागवत्त्वम्, अनित्यादिभावनाजनितवैरा-
ग्यवत्त्वम् । (१)

(१५) बहुदलत्व, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि रूपसे स्वसमय और परसमय के
बहुत पत्तोंवाला । स्वरूपका प्रकाशक होने के
कारण मांति-मांति के प्रमाण,
नय, निक्षेप, आदि से युक्त ।

(१६) विषविनाशकत्व, स्थावर और जङ्गम विष का नाश विषय वासनारूप विषका नाश
करने वाला । करने वाला ।

(१७) मकरन्दधारित्व, पुष्परसवाला । अनित्य आदि बारह भावनाओं
से उत्पन्न वैराग्यजनित शान्त
रस वाला ।

(१५) बहुदलता. सो पत्र, हजार पत्र आदि स्वसमय अने परसमयना
रूपधी धलुं पत्रो (पांढडा) स्वरूपना प्रकाशक होवाना
वाणा कारखे नृही नृही नतना
प्रमाण, नय, निक्षेप आदिधी
युक्त.

(१६) विषनाशकत्व. स्थावर अने जंगम विषनो विषयवासनारूप विषनो-अरेनो
नाश करनार नाश करनार.

(१७) मकरन्द-धारित्व. कुलोना रस वाणा. अनित्य आदि बार भावना-
ओधी उत्पन्न वैराग्यजनित
शांतरस प्रगटावनार.

१....वैराग्यवत्त्वम्-प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धेन ।

२५ अवयवसंनिवेश- सकलावयवपूर्णत्वम्, सकलाङ्गोपाङ्गपूर्णत्वम् ।
विशेषवत्त्वम्

तीर्थङ्करकल्पपादपानां वचनप्रमुनानि गणधराः श्रद्धामूत्रे संग्रन्थ्य गद्य-
पद्यात्मकविविधाङ्गोपाङ्गरूपा माला व्यरीरचन् । अथ ता माला हृदये निधाय तत्त-
द्गतमहत्त्वं स्वात्मनि भावयन्तो भावितात्मानः सन्तो ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मरजोऽप-
नीय बाधापीडाऽपवर्जितमपुनरावृत्तिं सिद्धिगतिनामधेयं शिवपदं समाश्रयन्ति,
भवभीरून् भव्यानपि तत्पदं प्रापयन्ति ।

(२५) अवयवसन्निवेश- सव अवयवों से परिपूर्ण । सव अङ्गों और उपाङ्गोंसे युक्त ।
विशेषवत्त्व,

↳ तीर्थङ्कररूपी कल्पवृक्षां के वचनरूपी पुष्पां को गणधरानि श्रद्धारूपी सूतमें गूंधकर गद्य-
पद्यरूप विविध अङ्गउपाङ्गमय मालाएँ रचीं, उन मालाओं को धारण करके उनकी महत्ता
का अन्तःकरण में विचार करते हुए भावितात्मा पुरुष ज्ञान और क्रिया के द्वारा कर्मरजको
हटाते हैं । तथा सव प्रकार की बाधा और पीडासे रहित, जिहें पाकर फिर कभी आना नहीं
पडता, ऐसे सिद्धिगतिरूप शिवपद प्राप्त करते हैं, साथ ही भवभीरु अन्य भव्य जीवों को
भी उसी पद की प्राप्ति कराते हैं ।

(२५) अवयवसन्निवेशतुं. सर्व अवयवोथी परिपूर्णं. सर्व अंगो अने उपांगोथीयुक्त
विशेषपद्युं.

तीर्थङ्कररूपी कल्पवृक्षोना वचनरूप पुष्पाने, गद्यधराये श्रद्धारूपी सूतर-दोराभां
शुंथी करी गद्य-पद्यरूप विविध अंग-उपांगमय भाणाये रची. ते भाणायेने हृदयभां
धारण करीने, तेनी भङ्गाने अंतःकरणभां विचार करनार भावितात्मा पुरुषज्ञान अने
क्रिया द्वारा कर्मरजकणुने दूर करे छे. तथा सर्व प्रकारनी उपाधि अने पीडाथी रहित,
जेने प्राप्त करीने करीथी कर्षवभत आववुं पडतुं नथी. अथी सिद्धिगतिरूप शिवपदने
प्राप्त करे छे, तेमज्ज अवलोक अन्ध लज्ज एवोने पद्य ते पद (शिवपद) नी प्राप्ति
करावे छे.

२२ पथ्यत्वम्	हितकरत्वम् ,	ऐहिकपारत्रिकसुखोत्पादकत्वे- नात्मनो नितान्तोपकारित्वम् ।
२३ मेध्यत्वम् ,	पवित्रत्वम् ,	मिथ्यात्वमलाभावेन नैर्मल्यम् ।
२४ उत्कृष्टभावोत्पा- दकत्वम्	दैन्यशोकादिजनितदुश्चिन्त- नापनयेन विशुद्धविचारा- ऽऽविष्कारकत्वम् ।	विभावपरिणामजन्यदुर्वासनाप- नयेन तीर्थङ्करगोत्रोपार्जन- योग्यविशिष्टभावनाजनकत्वम् ।

(२२) पथ्यत्व, हितकर । इहलोक और परलोक सम्बन्धी सुखजनक होनेसे आत्मा का अत्यन्त उपकारी ।

(२३) मेध्यत्व, पवित्रता वाला । मिथ्यात्वादि पांच आश्रव रूपी मल से रहित होने के कारण निर्मल ।

(२४) उत्कृष्टभावोत्पा- दकत्व, दैन्यशोक आदि से उत्पन्न हुई चिन्ता को दूर करके विशुद्ध विचार उत्पन्न करने वाला । विभाव परिणति द्वारा जनित दुर्वासना को दूर करके तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के योग्य विशिष्ट भावनाको उत्पन्न करने वाला ।

(२२) पथ्यता, हितकर. आ लोक अने परलोक सं'ंधी सुख उत्पन्न करना होवाही आत्मने अत्यन्त उपकारी.

(२३) मेध्यता, पवित्रता करना. मिथ्यात्व आदि पांच आश्रव रूपी भणती रहित होवाना कारणे निर्मल.

(२४) उत्कृष्ट भावो उत्पन्न. दैन्यशोक आदिची उत्पन्न विभाव परिणति द्वारा उत्पन्न करना चिंतने दूर करीने थयेही दुर्वासनाने दूर करीने विशुद्ध विचार उत्पन्न करना तीर्थ'कर गोत्र बांधवा योग्य विशिष्ट भावना उत्पन्न करना.

(१) संस्कारवचनम् = प्रकृतिप्रत्ययलिङ्गवचनादियुक्तत्वम् । (२) उदात्तत्वम् = श्रोत्रमुवेद्यत्वम् (३) उपचारोपेतत्वम् = अप्राज्ञजनभाषावदश्लीलादिदोषरहितत्वम् । (४) गम्भीरध्वनित्वम् = मेघवद् गम्भीरनादवचनम् । (५) अनुनादित्वम् = प्रतिशब्दोपेतत्वम् । (६) दक्षिणत्वम् = ऋजुत्वम् । (७) उपनीतरागत्वम् = मालकोशरागगुणवचनम्, यथा मालकोशरागः प्रस्तरानपि द्रावयति, तथा कठिनचेतसोऽपि जनान् भगवद्वचनं द्रावयतीति हृदयद्रावकत्वमिति भावः । (८) महार्थत्वम् = मोक्षमार्ग-

यहाँ सत्य वचन का अर्थ है—भगवान के वचन, क्योंकि वे सबके हित करने वाले हैं । उन वचनों के—वाणीके अतिशय अर्थात् गुण पैंतीस हैं । परम्परा के अनुसार वाणीके पैंतीस गुण इस प्रकार माने जाते हैं—

(१) संस्कारवचन—प्रकृति, प्रत्यय, लिङ्ग, वचन आदि से युक्त होना (२) उदात्तता—श्रोताओं के लिये सुगम । (३) उपचारोपेतता—गँवारो की भाषा में पाये जाने वाले अश्लीलता आदि दोषों से रहित । (४) गंभीरध्वनित्व—मेघकी समान गम्भीर नाद होना । (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनिसे युक्त होना । (६) दक्षिणता—सरलता । (७) उपनीतरागवचन—मालकोश राग सरीखा गुण होना, अर्थात् जैसे— मालकोश राग पापाण को भी पिघला देता है, उसी प्रकार भगवान् के वचन कठोर हृदय को भी पिघला देते हैं । तात्पर्य यह है कि—भगवान के वचन बड़े ही हृदयद्रावक होते हैं । (८) महार्थता—भगवान् के वचन मोक्ष—मार्ग के प्रतिपादक होने से महत्वपूर्ण और अर्थ

(१) संस्कारवचन—प्रकृति, प्रत्यय, लिङ्ग, वचन आदिथी युक्त भनवुं. (२) उदात्तता—श्रोताओं भाटे सुगम. (३) उपचारोपेतता—भूर्ण—जंगली भाषुसोनी भाषामां नेवामां आवता अश्लील—अराण, शरभ आवे तेवा भाषाना दोषो रहित. (४) गंभीरध्वनित्व—मेघना नेवो गंभीर शब्द. (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनि युक्त होवुं (पडघाश्च यत्तुं). (६) दक्षिणता—सरलता (७) उपनीतरागवचन—मालकोश राग नेवो शुष्ण होवुं. अर्थात्—नेवी रीते मालकोश राग पथ्यरने पष्ण पिगणावी दे छे. ते प्रभाळ्णे भगवानना वचने कठोर हृदय—वाणा भाषुसने पष्ण पिगलावी दे छे, तात्पर्य ये छे डे—भगवानना वचन महान हृदय द्रावक होय छे. (८) महार्थता—भगवानना वचन मोक्षमार्गनुं प्रतिपादन करनारा छे तेथी महत्वपूर्ण अने अर्थथी युक्त होय छे. (९) अव्याहृतपूर्वापर्य—पूर्वापर

કલ્પપાદપા હિ ણેહિકમેવાધુવ ક્ષણમહુરં મુલં પ્રદાતુમીશતે, ઇમે તુ લોકોત્તર-
મક્ષયં શાશ્વતં મુલં વિતરન્તિ । લૌકિકમુલં તુ મૃતરાં સિદ્ધમેવ, ન પુનસ્તત્ર
પ્રદાનાપેક્ષેતિ ભાવઃ ।

મગવદ્વચનેપુ પશ્ચત્રિશદ્ અતિશયા લોકોત્તરાઃ સર્વેરન્તુભૂયન્તે, પશ્ચત્રિશતો-
તિશયાનાં સમવાયાઙ્ગસૂત્રે નિર્દેશાત્ । તથા ચ મૂત્રમ્—“પણતીસં સચ્ચવયણાઈસેસા
પન્નત્તા” ઇતિ । પશ્ચત્રિશદ્ સત્યવચનાતિશેપાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, ઇતિ ઞ્છાયા । સત્ય-
વચનં — મગવદ્વચનં સકલહિતકરત્વાત્, તસ્ય અતિશેપાઃ = અતિશયાઃ પશ્ચ-
ત્રિશદ્ પ્રજ્ઞપ્તાઃ કથિતાઃ, ઇત્યર્થઃ । તૈત્તે પશ્ચત્રિશદતિશયાઃ—પરંપરયાઽવગમ્યન્તે—

કલ્પવૃક્ષ તો ઇસી લોકસમ્બન્ધી મુલ દે સકતે હં ઓર વહ મુલ મી અધુવ ઓર
ક્ષણમહુર હોતા હૈ, કિન્તુ તીર્થદ્ધર મગવાન્ લોકોત્તર અક્ષય ઓર શાશ્વત મુલ પ્રદાન કરતે હં ।
લૌકિક મુલ તો કિસાન કે લિયે મૂસે કે સમાન સ્વતઃ સિદ્ધ હૈ હી—વહ આનુપદ્ધિક હૈ ।

મગવાન્ કે વચનોં મં પૈતીસ લોકોત્તર અતિશયોં કા સમી પ્રાણિયોં કો અનુભવ હોતા
હૈ । શ્રી સમવાયાઙ્ગસૂત્ર મેં પૈતીસ અતિશયોં કા ઉલ્લેખ પાયા જાતા હૈ । મૂલ પાઠ ઇસ પ્રકાર
હૈ—“પણતીસં સચ્ચવયણાઈસેસા પણ્ણત્તા ।”

અર્થાત્ સત્ય વચન કે પૈતીસ અતિશય—ગુણ કહે ગયે હૈ ।

કલ્પવૃક્ષ તો આ લોક સંબંધી મુળ આપી શકે છે અને તે મુળ પણ અધુવ
અને ક્ષણભંધુર હોય છે, પરન્તુ તીર્થ'કર ભગવાન લોકોત્તર અક્ષય અને શાશ્વત—નિત્ય
મુળ આપેછે; લૌકિક મુળ તો જેડુત માટે ભુશકા (અનાજ વિનાનાં ક્ષેતરાં) સમાન
સ્વાભાવિક સિદ્ધજ છે.

ભગવાનના વચનોમાં પાંત્રીશ લોકોત્તર અતિશયોનો સર્વ પ્રાણીઓને અનુભવ
થાય છે, શ્રી સમવાયાંગ સૂત્રમાં એ પાંત્રીશ અતિશયોનો ઉલ્લેખ ભોવામાં આવે છે.
મૂલ પાઠ આ પ્રકારે છે— “ પણતીસં સચ્ચવયણાઈસેસા પણ્ણત્તા ”

અર્થાત્—સત્ય વચનના પાંત્રીશ અતિશય ગુણ કહેવામાં આવ્યા છે. અહિં સત્ય-
વચનનો અર્થ છે—ભગવાનના વચન, કેમકે તે સર્વ હિત કરનારા છે. તે વચનોનો અતિશય
અર્થાત્ ગુણ પાંત્રીશ છે. પરંપરાના નિયમ પ્રમાણે પાંત્રીશ અતિશય આ પ્રમાણે
માનવામાં આવ્યા છે—

(१) संस्कारवचम् = प्रकृतिप्रत्ययलिङ्गवचनादियुक्तत्वम् । (२) उदात्तत्वम् = श्रोत्रमुवेद्यत्वम् (३) उपचारोपेतत्वम् = अप्राज्ञजनभाषावदश्लीलादि दोषरहितत्वम् । (४) गम्भीरध्वनित्वम् = मेघवद् गम्भीरनादवचम् । (५) अनुनादित्वम् = प्रतिशब्दोपेतत्वम् । (६) दक्षिणत्वम् = ऋजुत्वम् । (७) उपनीतरागत्वम् = मालकोशरागगुणवचम्, यथा मालकोशरागः प्रस्तरानपि द्रावयति, तथा कठिनचेतसोऽपि जनान् भगवद्वचनं द्रावयतीति हृद्यद्रावकत्वमिति भावः । (८) महार्थत्वम् = मोक्षमार्ग-

यहाँ सत्य वचन का अर्थ है—भगवान के वचन, क्योंकि वे सबके हित करने वाले हैं । उन वचनों के—वाणीके अतिशय अर्थात् गुण पैंतीस हैं । परम्परा के अनुसार वाणीके पैंतीस गुण इस प्रकार माने जाते हैं—

(१) संस्कारवच-प्रकृति, प्रत्यय, लिङ्ग, वचन आदि से युक्त होना (२) उदात्तता-श्रोताओं के लिये सुगम । (३) उपचारोपेतता-गँवारो की भाषा में पाये जाने वाले अश्लीलता आदि दोषों से रहित । (४) गंभीरध्वनित्व-मेघकी समान गम्भीर नाद होना । (५) अनुनादित्व-प्रतिध्वनित्से युक्त होना । (६) दक्षिणता-सरलता । (७) उपनीतरागवच-मालकोश राग सरीखा गुण होना, अर्थात् जैसे- मालकोश राग पापाण को भी पिघला देता है, उसी प्रकार भगवान् के वचन कठोर हृदय को भी पिघला देते हैं । तात्पर्य यह है कि—भगवान के वचन बड़े ही हृद्यद्रावक होते हैं । (८) महार्थता-भगवान् के वचन मोक्ष-मार्ग के प्रतिपादक होने से महत्वपूर्ण और अर्थ

(१) संस्कारवच-प्रकृति, प्रत्यय, लिंग, वचन आदिथी युक्त अननु' । (२) उदात्तता-श्रोताओं भाटे सुगम. (३) उपचारोपेतता-भूर्ध-गंगली भाषुसोनी लापाभां नेवाभां आवता अश्लील-भराण, शरम आवे तेवा लापाना दोषो रक्षित. (४) गंभीरध्वनित्व-मेघना नेवो गंभीर शब्द. (५) अनुनादित्व-प्रतिध्वनि युक्त डोपु' (पडघाडप थकुं). (६) दक्षिणता-सरलता (७) उपनीतरागत्व-मालकोश राग नेवो शुष् डोपु'. अर्थात्-नेवी रीते मालकोश राग पथरने पणु पिगलावी हे छे. ते प्रभाणुे लगवानना वचनो कठोर हृद्य-वाणा भाणुसने पणु पिगलावी हे छे, तात्पर्य अे छे डे-भगवानना वचन महान हृद्य द्रावक डोय छे. (८) महार्थता-लगवानना वचन मोक्षमार्गनु' प्रतिपादन करनारा छे तेथी महत्वपूर्णुं अने अर्थथी युक्त डोय छे. (९) अव्याहृतपौर्वापर्य-पूर्वापर

प्रतिपादकत्वेन महत्वविशिष्टार्थकत्वम् (९) अव्याहृतपूर्वापर्यत्वम् । = पूर्वापर-
विरोधराहित्यम् । (१०) शिष्टत्वम् = शिष्टाभिमततत्त्वबोधकत्वम् । (११) असं-
दिग्धत्वम् = अभिधेयार्थानां स्फुटतया प्रतिपादनेन संशयाजनकत्वम् । (१२)
अपहृतान्योत्तरत्वम् = सकलगुणपूर्णत्वेन परकृतदोषान्वेषणाऽविषयत्वम् । (१३)
हृदयग्राहित्वम् = सर्वेषां प्राणिनां श्रवणमात्रेण हृदयहारित्वम् । (१४) देशकाला-
व्यतीतत्वम् = द्रव्यक्षेत्रकालभावानुकूलत्वम् । (१५) तत्त्वानुरूपत्वम् = विवक्षित-
वस्तुद्रव्यपर्यायस्वरूपप्रकाशकत्वम् । (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्वम् = प्रसङ्गं विना-
न विस्तीर्णत्वं नातिसंक्षिप्तत्वम् (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्वम् = पदानामर्थानां वा

से युक्त होते हैं । (९) अव्याहृतपूर्वापर्य—पूर्वापर विरोध से रहित होते हैं । (१०)
शिष्टता—शिष्ट पुरुषों द्वारा स्वीकृत तत्व का बोध कराते हैं । (११) असंदिग्धता—अभिधेय
अर्थ का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करने के कारण संशयजनक नहीं होते । (१२) अपहृता-
न्योत्तरत्व—समस्त गुणों से युक्त होने के कारण दूसरे वादी उनमें कोई दोष नहीं निकाल
सकते । (१३) हृदयग्राहित्व—समस्त श्रोतागणोंके हृदय को हरण करने वाले । (१४) देशकाल-
लाव्यतीतत्व—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुकूल । (१५) तत्त्वानुरूपत्व—विवक्षित
वस्तुके द्रव्य और पर्याय का स्वरूप प्रकाशित करने वाले (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्व—

विशेषधी रहित होय छे. (१०) शिष्ट पुरुषों द्वारा स्वीकारेला तत्त्वनेो बोध करावे छे.
(११) असंदिग्धता—अभिधेय—वाक्यार्थनुं स्पष्ट रूपधी प्रतिपादन करवाना कारण संशय
उत्पन्न थयो नथी. (१२) अपहृतान्योत्तरत्व—समस्त गुणोधी युक्त होवाधी गीवन पक्षना
वादीःतेमां कोर्ष पणु प्रकरनेो दोष काटी शकता नथी. (१३) हृदयग्राहित्व—तमांम श्रोता-
वर्गना हृदयने उरुणु कंवावाणा (१४) देशकालाव्यतीतत्व—द्रव्य, क्षेत्र काल अने
भावने अनुकूल. (१५) तत्त्वानुरूपत्व—विवक्षित—वस्तु अटले जोलवा माटे मनमां नक्षी
करेणु, तेना द्रव्य अने पर्यायना स्वरूपने प्रकाशिन करवावाणा. (१६) अप्रकीर्ण—प्रसृतत्व
प्रसंग विना विस्तार अहित नहि कडेणुं, तथा संक्षेपमां नहि कडेणुं. (१७) अन्योन्य
प्रगृहीतत्व—पूर्वापर पडोनी अने अर्थोनी अपेक्षा राणवा वाणा, अर्थात् प्रकरणु संगत.

पूर्वापरसापेक्षत्वम् । (१८)-अभिजातत्वम् = सूक्ष्मस्यापि जीवादिस्वरूपस्य चाक्षुष-
प्रत्यक्षीकरणवत्प्रतिपादकत्वम् । (१९)-अतिस्निग्धमधुरत्वम्=अमृतवत्तृप्तिजनकत्वम् ।
(२०)-अपरमर्मवेधित्वम् = परमर्मोद्घाटनरहितत्वम् । (२१)-अर्धधर्माभ्यासान-
पेतत्वम्=पारमार्थिकार्थधर्मबोधकत्वम् (२२)-उदारत्वम्=सर्वप्राणिकल्याणकारित्वं,
तुच्छार्थानभिधायकत्वं वा । (२३)-परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रयुक्तत्वम् = परोक्षेपात्म-
प्रशंसाहीनत्वम् (२४)-उपगतश्लाघत्वम् = सकलहितकरत्वेन समादृतत्वम् (२५)-

प्रसङ्ग के बिना न कहना, न विस्तारयुक्त और न संक्षिप्त कहना, (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्व
पूर्वापर पदों की और अर्थ की अपेक्षा रखनेवाले, अर्थात् प्रकरणसङ्गत, (१८) अभि-
जातता - जीव आदि के अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूपको भी इतना स्पष्ट निरूपण करने वाले
जैसे कि आंखों से देख रहे हों, (१९) अतिस्निग्धमधुरता - अमृत के समान
तृप्तिकारक, (२०) अपरमर्मवेधित्व - दूसरों के मर्म को न प्रगट करने वाले, अथवा
प्रतिपक्षियों के मर्म (हेतुओं एवं युक्तियों) का निराकरण करने वाले, (२१) अर्ध-
धर्माभ्यासानपेतता - परमार्थ अर्थात् मोक्ष तथा मोक्ष के साधनरूप धर्म का बोध
कराने वाले, (२२) उदारता - प्राणिमात्र का कल्याण करने वाले अथवा तुच्छ अर्थों का
प्रतिपादन न करने वाले, (२३) परनिन्दाऽऽत्मोत्कर्षविप्रमुक्तता - परनिन्दा और
आत्मप्रशंसा रहित, (२४) उपगतश्लाघत्व - सर्वहितकारी होने के कारण सभी

(१८) अभिजातता—एव आदि तत्त्वेना अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपं यत्तु अटलं स्पष्ट
निर्णयं कर्वावाणा चेभ्यो नेत्रधी जेध रक्षा होय. (१८) अतिस्निग्धमधुरता—अमृत
समान तृप्ति कर्वा वाणा. (२०) अपरमर्मवेधित्व—भीजाना मर्मने प्रगट नहि
कर्वा वाणा, अथवा प्रतिपक्षीयाना मर्म (हेतुयो-युक्तियो) नुं निराकरण-कर्वा
वाणा. (२१) अर्धधर्माभ्यासानपेतता—परमार्थ—अर्थात् मोक्ष तथा मोक्षना साधनरूप
धर्मने बोध कर्वावाणा. (२२) उदारता—प्राणीमात्रं कल्याण कर्वा कर्वावाणा, अथवा
तुच्छ अर्थोनुं प्रतिपादन नहि कर्वा वाणा (२३) परनिन्दाऽऽत्मोत्कर्षविप्रमुक्तता—पर
निन्दा अने आत्मप्रशंसाधी रहित (२४) उपगतश्लाघत्व—सर्वहितकारी होवाने

अनपनीतत्वम् = श्रुतिकडुत्वादिवचनदोषापेतत्वम् (२६)-उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्वम् = नवनवार्थप्रतिपादकत्वेन पुनः पुनः श्रवणाभिलाषजनकत्वम् । (२७)-
अद्भुतत्वम् = शीघ्रतारहितत्वम् । (२८)-अनतिविलम्बितत्वम्=वाक्यपरिसमाप्तौ
विश्रामरहितत्वम् । (२९)-विभ्रमविक्षेपरोषावेशादिराहित्यम् = विभ्रमो=भ्रान्तिः,
विक्षेपः=वित्रक्षितार्थं प्रत्यनासक्तता, रोषावेशः=क्रोधावैगस्तैर्विमुक्तत्वम् । (३०)-
विचित्रत्वम् = वर्णनीयवस्तुस्वरूपप्रकाशनेन लोकोत्तरत्वम् । (३१)-आहितविशेषत्वम्
=द्रव्य-पर्याय-विशेषप्रतिपादकत्वम् । (३२)-साकारत्वम्=हेतुकारणादिभिः स्फुटतया

के लिये उपादेय, (२५) अनपनीतत्व - कर्णकटुकता आदि दोषों से रहित,
(२६) उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्व - नूतन नूतन अर्थ का निरूपण करने के कारण बार
बार सुनने की अभिलाषा उत्पन्न करनेवाले, अर्थात्-भगवानके वचनोंको बार बार सुनने की
इच्छा होती है । (२७) अद्भुतत्व-शीघ्रता से रहित, (२८) अनतिविलम्बितत्व-बहुत विलम्ब
से उच्चारण न किये जाने वाले, अर्थात् वाक्य समाप्त होने से पहले विश्राम लिए बिना ही
बोले जाने वाले । (२९) विभ्रम-विक्षेप-रोषाऽऽवेशादिराहित्य, विभ्रम अर्थात् भ्रान्ति, विक्षेप
अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तु के प्रति असावधानी, रोष अर्थात् क्रोध, के आवेश से रहित, (३०)
विचित्रता वर्णन की जाने वाली वस्तु का स्वरूप प्रकाशित करने के कारण लोकोत्तर,
(३१) आहितविशेषता - द्रव्य और पर्याय की विशेषता का प्रतिपादन करने वाले,

कारणों सर्वमे भाटे उपादेय-श्रद्धा करवा योग्य. (२५) अनपनीतत्व-कानने अप्रिय
लोगों सेवा होयोधी रहित. (२६) उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्व-नवानवा अर्थनुं निरूपण
करवाना कारणे वारंवार सांलणवानी अलिलाषा उत्पन्न करवावाणा, अर्थात् लजवानना
वचनोने वारंवार सांलणवा अलिलाषा-अच्छा थाय छे, (२७) अद्भुतत्व-शीघ्रताथी रहित
(२८) अनतिविलम्बितत्व-अहुञ्ज विलम्बथी उच्चारण नहि करवावाणा, अर्थात्-वाक्य
समाप्त थया पडेलां विश्राम लीधा बिनाञ्ज जोलवावाणा. (२९) विभ्रम-विक्षेप-रोषा-
वेशादिरहितत्व-विभ्रम अर्थात्-भ्रान्ति, विक्षेप-अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तु तरक्ष गइलत,
रोष-अर्थात् क्रोधना आवेशथी रहित (३०) विचित्रता-वर्णन करवा योग्य वस्तुना
स्वरूपने प्रकाशित करवाना कारणे लोकोत्तर (३१) आहितविशेषता-द्रव्य अने पर्यायनी

प्रकाशनेनार्थानां साक्षात्कारजनकत्वम् । (३३)-सत्त्वपरिगृहीतत्वम्=उत्पादव्ययघ्नौव्य-
युक्तसत्तयाऽर्थप्रकाशकत्वम् । (३४)-अपरिखेदितत्वम् = स्वपरखेदानुत्पादकत्वम् ।
(३५)-अव्युच्छेदित्वम् = वर्णनीयपदार्थनिर्णयं यावदविच्छिन्नत्वम् ।

वृद्धसपदायविद्धिरप्युक्तम्—

(१)-सकारवत्तं, (२)-उदत्तं, (३)-उत्पारोवेयत्तं (४)-गंभीरञ्छुणितं,
(५)-अणुणादितं, (६)-दक्खिणत्तं, (७)-उवणीयरगतं, (८)-महत्तत्तं, (९)-
अव्वाहयपुव्वावज्जत्तं, (१०)-सिद्धत्तं, (११)-असंदिद्धत्तं, (१२)-अवहरियअनुत्तरत्तं,
(१३)-हिययग्गाहितं, (१४)-देसकालअव्वईयत्तं, (१५)-तत्ताणुरुत्तं, (१६)-
अण्णपइण्णसरियत्तं, (१७)-अन्नुन्नप्पग्गाहीयत्तं, (१८)-अहिजायत्तं, (१९)-अइण्णिद्ध-
महुरत्तं, (२०)-अवरमम्मवेहितं, (२१)-अत्थधम्मभासाणवेयत्तं, (२२)-उयारत्तं,
(२३)-परनिंदाअप्पुक्करिसविप्पजुत्तत्तं, (२४)-उवगयसिलाघत्तं, (२५)-अणवणीयत्तं,
(२६)-उप्पाइयच्छिन्नकोउइलत्तं, (२७)-अदुयत्तं, (२८)-अणइविलंविद्यत्तं, (२९)-
विवमविक्खेवरोसावेसाइराहिच्चं, (३०)-विचित्तत्तं, (३१)-आहियविसेसत्तं, (३२)-
सागारत्तं, (३३)-सत्त्वपरिगृहीयत्तं, (३४)-अपरिखेइयत्तं, (३५)-अव्युच्छेइत्तं ।

(३२) साकारता-हेतु कारण आदि के द्वारा स्पष्ट रूप से प्रकाशित करके पदार्थों का साक्षात्कार कराने वाले, (३३) सत्त्वपरिगृहीतत्व-उत्पाद व्यय और धौव्यमय सत्ता के रूपमें अर्थ के प्रकाशक (३४) अपरिखेदितत्व - स्व को और पर को खेद न पहुँचाने वाले, (३५) अव्युच्छेदित्व - प्रतिपाद्य विषय का निर्णय हुए बिना न रुकने वाले, अर्थात् विवक्षित वस्तु का पूर्ण निर्णय करने वाले ।

विशेषतानुं प्रतिपादन करवा वाणा (उ२) साकारता—हेतु, कारण आदि वडे रूपेत्
इथी प्रकाशित करीने पदार्थोना साक्षात्कार करवावा वाणा. (उ३) सत्त्वपरिगृहीतत्व—
उत्पाद, व्यय, अने धौव्य-मय सत्ताना इपमां अर्थना प्रकाशक (उ४) अपरिखेदितत्व
येताने अने पारकाने जेह नहि पडोयाडनार (उ५) अव्युच्छेदित्व—प्रतिपाद्य विषयनो
निर्णय थय बिना नहि अटकनार, अर्थात् विवक्षित वस्तुनो पूर्ण निर्णय करवा वाणा.

ભગવદ્વચનાનિ ચતુર્વિધેઽનુયોગે પ્રવિભક્તાનિ, સ ચેત્યમ્—

(૧)—ચરણકરણાનુયોગઃ, (૨)—ધર્મકથાનુયોગઃ, (૩)—ગણિતાનુયોગઃ, (૪)—દ્રવ્યાનુયોગશ્ચ ।

યુજ્યતે=સંવધ્યતે ભગવદુક્તાર્થેન સહેતિ યોગઃ = ગણધરકથનરૂપઃ,

અનુ = અનુકૂલો યોગોઽનુયોગઃ । ભગવદ્વચનાનુરૂપા ગણધરોક્તિરિત્યર્થઃ । (૧)

(૧) અથ ચરણકરણાનુયોગઃ—

(૧) ચર્યતે = ગમ્યતે = પ્રાપ્યતે ભવોદધેઃ પરં કૂલં ચતુર્દશગુણસ્થાના-

ભગવાન્ કે વચનો મેં યે પૈતીસ અતિશય અર્થાત્ ગુણ હોતે હૈં । પ્રાચીન આચાર્યો ને મી કહા હૈ —‘સકારવત્ત’ ઇત્યાદિ ૩૫ ।

(વાણી કે પૈતીસ ગુણ પહેલે કહ ચુકે હૈં અતઃ યહૌં ઇનકા અર્થ કહને કી આવશ્યકતા નહીં ।

ભગવાન્ કે વચન ચાર અનુયોગો મેં વિભક્ત હૈં । ચાર અનુયોગ યે હૈં :—

૧ ચરણકરણાનુયોગ, ૨ ધર્મકથાનુયોગ, ૩ ગણિતાનુયોગ, ઓર ૪ દ્રવ્યાનુયોગ ।

— ભગવાનકે વચનો કે અનુકૂલ ગણધરોં કા વ્યાખ્યાન અનુયોગ કહલાતા હૈ ।

(૧) ચરણકરણાનુયોગ—

જિસકે દ્વારા ભવ-સાગર કા કિનારા અર્થાત્ ચૌદહવૌં ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત ક્રિયા જાય

ભગવાનના વચનોમાં આ પ્રમાણે પાંત્રીશ અતિશય અર્થાત્-ગુણ હોય છે. પ્રાચીન આચાર્યોએ પણ કહ્યું છે:— “સકારવત્ત” ઇત્યાદિ ૩૫. (પાંત્રીશ વાણીના ગુણો પહેલા કહી ગયા છીએ તેથી અહિં એનો અર્થ કહેવાની આવશ્યકતા નથી.)

ભગવાનના વચન ચાર અનુયોગોમાં વહેંચાયેલા છે. ચાર અનુયોગ આ છે— (૧) ચરણકરણાનુયોગ. (૨) ધર્મકથાનુયોગ, (૩) ગણિતાનુયોગ અને (૪) દ્રવ્યાનુયોગ.

ભગવાન-દ્વારા પ્રરૂપિત અર્થની સાથે ગણધરોના વચનનો યોગ હોય તે અનુયોગ કહેવાય છે, તાત્પર્ય એ છે કે:—ભગવાનના વચનોને અનુકૂળ ગણધરોએ કરેલું વ્યાખ્યાન તે અનુયોગ કહેવાય છે.

(૧) ચરણકરણાનુયોગ—

નેનાથી ભવસાગરનો કિનારો અર્થાત્ ચૌદમું ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરી શકાય, તેને અર્થાત્ મૂલગુણને ‘ચરણ’ કહે છે, અથવા ત્રત આદિ ચરણ કહેવાય છે. તે સિત્તેર (૭૦) છે. કહ્યું પણ છે—

वस्यास्वरूपमनेनेति चरणं = मूलगुणरूपम् । यद्वा चरणं=व्रतादि, तच्च सप्तति-संख्यकम्, उक्तञ्च—

“ वयं समणधम्मं १० संजम १७, वेयावच्चं १० च वंभगुत्तीओ ९ ।
गाणाइत्तियं ३ तव १२ कोहनिग्गाहई ४ चरणमेयं ॥ १ ॥ ” इति ।

क्रियते चरणस्य पुष्टिरनेनेति करणम् = उत्तरगुणरूपम् । यद्वा करणं= पिण्डविशुद्ध्यादि, एतदपि सप्ततिसंख्यकम्, उक्तञ्च—

उसे अर्थात् मूलगुणको ‘चरण’ कहते हैं । अथवा व्रत आदि ‘चरण’ कहलाते हैं । वे ७० सत्तर हैं । कहा भी है —

पांच महाव्रत, दश श्रमणधर्म, सत्रह संयम, दश वैयावृत्य, नौ ब्रह्मचर्य की गुप्तियां, रत्नत्रय — (सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र), चारह प्रकारका तप, चार क्रोधादि-विजय—(क्रोधविजय, मायाविजय, मानविजय, लोभविजय), यह ७० सत्तर प्रकारका ‘चरण’ कहलाता है ।

चरण की पुष्टि करने वाला ‘करण’ कहलाता है । करण का अभिप्राय है— उत्तर गुण । अथवा पिण्डविशुद्धि आदिको करण कहते हैं । इसके भी सत्तर ७० भेद हैं । कहा भी है :—

पांच महाव्रत, दस श्रमणधर्म, सत्तर संयम, दश वैयावृत्य, नव ब्रह्मचर्यनी गुप्तियां, रत्नत्रय—(सम्यग्ज्ञान, दर्शन अने चारित्र) चार प्रकारको तप, चार क्रोधादिविजय,—(क्रोधविजय, मानविजय, मायाविजय, लोभविजय) आ प्रभाषु सित्तेर (७०) प्रकारना चरणु कडेवाय छे. ॥ १ ॥

चरणुनी पुष्टि करवा वाणा करणु कडेवाय छे. करणुनो अलिप्राय छे—उत्तर शुषु, अथवा पिंडविशुद्धि आदिने करणु कडे छे, तेना पणु सित्तेर लेद छे. कहुं पणु छे —

“पिंडविसोद्दोष समिर्इ५, भावण१२, पडिमा१२, य इन्द्रियनिरोद्दो५ ।
पडिलेहण२५ गुत्तीओ३, अभिगहा४ चैव करणं तु ॥ १ ॥” इति ।

तयोरनुयोगश्चरणकरणानुयोगः (१) ।

धर्मकथानुयोगादयश्चरणकरणयोर्मन्व्यजीवान् प्रवर्त्तयन्तीति तेषां चरण-
करणाङ्गतया प्राधान्यमेतस्यानुयोगस्य, अत एवास्य प्राथम्यम् । उक्तञ्च—

आत्मन् ! जानीहि पूर्वं चरणकरणयोराश्रये यन्महत्त्वं,

मोहं दूरीकरोति प्रकटयति परं निश्चयात्मस्वरूपम् ।

“चार पिण्डविशुद्धि, पांच समितियां, चारह भावना, चारह पडिमा, पांच
इन्द्रियनिरोध, पचीस प्रतिलेखना, तीन गुप्तियां, चार अभिप्रह, यह सत्तर ७० प्रकारका करण
कहलता है ।

इस तरह चरण और करण के अनुयोग को, अर्थात् भगवान् की वाणी के अनुकूल
व्याख्यान को चरणकरणानुयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—जिस शास्त्र में चारित्र्य
सम्बन्धी निरूपण है, वह चरणकरणानुयोग समझना चाहिए ।

धर्मकथानुयोग आदि शेष तीन अनुयोग मन्व्यजीवों को चरण और करण में
प्रवृत्त करते हैं, अतः वे इसी अनुयोग के अङ्ग हैं । इस प्रकार चारों अनुयोगों में
चरणकरणानुयोग ही प्रधान है । प्रधान होने के कारण ही इस की गणना सर्वप्रथम की गई
है । कहा भी है—

हे आत्मन् ! चरण और करण में जो महत्त्व है, उसे पहले समझ ले । वह मोह को
निवारण करता है, आत्मा के निश्चय अर्थात् वास्तविक स्वरूप को प्रकट करता है, वह सब

“चार पिंडविशुद्धि, पांच समितिओ, चार भावना, चार पडिमा, पांच इन्द्रिय
निरोध, पचीस प्रतिलेखना, त्रय गुप्तिओ, चार अभिप्रह, आ सप्त करण
कहेवाय छे.” ॥ १ ॥

आ प्रमाणे चरण अने करणना अनुयोगने अर्थात् भगवान् की वाणीने अनुकूल
व्याख्यानने चरणकरणानुयोग कहे छे । तात्पर्य ये छे के—ये शास्त्रमां चारित्र्यसम्बन्धी
निर्णय छे ते चरणकरणानुयोग समन्वयुं जेधये ।

धर्मकथानुयोग आदि पाकीना त्रय अनुयोग मन्व्य जीवोंने चरण अने करणमां
प्रवृत्त करे छे; तेतला भाटे ते पण्ये अनुयोगनु अंग छे । आ प्रकारे आर्य अनुयो-
गोमां चरणकरणानुयोग प्रधान-मुष्य छे ।

मुष्य होवानां कारणे तेनी गणना सोधी प्रथम करीं छे । कहुं पण्ये छे—

“हे आत्मन् ! चरण अने करणमां जे महत्त्व छे, तेने प्रथम समझ ले; ते

आधारोऽयं गुणानामपनयति सदाऽनादिमिथ्यात्वदोषं,

हेतुर्योऽयं विशुद्धेदमयति नितरामिन्द्रियाणि द्रुतं यः ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञानस्य दाता शिवमुखजनकः; कर्मधूलेश्च हर्ता,

कर्ता विद्योतनस्याऽऽत्मनि सकलगुणस्याऽद्वितीयः प्रकाशः ।

आत्मन्नेवात्मनीनश्रणकरणयोराश्रयः काऽत्र शङ्का ?

शङ्कारो नैप लोकः परिणतिविरसः किं सुखाशां करोपि ? ॥ २ ॥

(२) अथ धर्मकथानुयोगः—

भवजलनिधौ निपतन्तं भव्यजातं धारयति=तरिरिव तारयति शुभस्थानं
मापयतीति धर्मः, तस्य कथा भगवद्देशनालक्षणो वाक्यप्रबन्धः धर्मकथा । अहिंसा-
दिप्ररूपणा वा धर्मकथा । अथवा श्रुतचारित्रलक्षणधर्मप्रधानकथा-धर्मकथा । यद्वा

गुणों का आधार है, और अनादिकालीन मिथ्यात्व दोष को दूर करता है, विशुद्धि का कारण है, और इन्द्रियों को शीघ्र ही दमन करने वाला है ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञान का दाता है, मोक्षमुख उत्पन्न करने वाला है, कर्मरूपी धूलको दूर करने वाला है, आत्मामें उद्योत-प्रकाश करने वाला है और समस्त गुणों का अद्वितीय प्रकाशक है, हे आत्मन् ! चरण और करण का आश्रय लाभकारी है, इस विषयमें शंका (को) स्थान ही कहाँ है ? अर्थात् निश्चितरूपसे ही वह कल्याण करने वाला है, यह लोक (संसार) तो परिणाम में एकदम नीरस है, तू इस से सुख की अभिलाषा क्यों करता है ॥ २ ॥

(२) धर्मकथानुयोग

संसाररूपी सागरमें डूबते हुए भव्य जीवों को धारण करनेवाला—जौका के समान

मोहोंनुं निवारणुं करे छे, आत्मानां निश्चय अर्थात् वास्तविक स्वप्नने प्रगट करे छे, ते सर्व शुद्धीना आधार अने अनादि कालना मिथ्यात्व दोषने हर करे छे, विशुद्धितुं कारणुं अने इन्द्रियोना शीघ्र दमन भाटे ते सहायक छे ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञान देनार छे अने मोक्षमुख उत्पन्न करवावाणुं छे, कर्मरूपी धूलने हर करवावाणुं छे, आत्मां उद्योत-प्रकाश करवा वाणुं छे, अने समस्त शुद्धीना अद्वितीय प्रकाशक छे, हे आत्मन् ! चरणुं अने करणुं आश्रय कल्याणकारी छे; आ विषयमां शंकांने स्थान वा क्यां छे ? अर्थात् निश्चित रूपी वा ते कल्याणुं करवावाणुं छे; आ लोक (संसार) तो परिणामे एकदम नीरस-रसरहित छे; तुं तेमां सुखनीं अभिलाषा शा भाटे करे छे ? ॥ २ ॥

(२) धर्मकथानुयोग

संसाररूपी सागरमां डुगता भव्य जीवोंने धारण करवावाणी, मोहोंनुं निवारणुं

શુભાશુભકર્મવિપાકોપદર્શનં ધર્મકથા । ક્રિઞ્ચ - તિર્થંકરચક્રવર્ત્યાદિચારિત્રવર્ણનં
ધર્મકથા । તસ્યા અનુયોગઃ ધર્મકથાનુયોગઃ ।

ધર્મકથા ચતુર્વિધા—(૧)—આક્ષેપણી—(૨)—વિક્ષેપણી— (૩)—સંવેદની—
(૪)—નિર્વેદનીભેદાત્ ।

આક્ષેપણ્યાદિધર્મકથામિરાક્ષિપ્તાઃ વિક્ષિપ્તાઃ સંવેદિતા નિર્વેદિતાઃ સન્તો
ભવ્યપ્રાણિનશ્ચારિત્રં પ્રાપ્નુવન્તિ ।

કિનારે લગાદેને વાલા, અર્થાત્ શુભસ્થાનમેં પહુંચા દેનેવાલા ધર્મ કહલાતા હૈ ।
ઉસ ધર્મ કી કથા અર્થાત્ ભગવાન કી દેશના જિસમેં પાઈ જાય ઉસે ધર્મકથા કહતે હૈં । અથવા
અહિંસા આદિ કી પ્રરૂપણા ધર્મકથા કહલાતી હૈ । અથવા શ્રુત ઓર ચારિત્ર કી પ્રધાનતા
વાલી કથા કો ધર્મકથા કહતે હૈં । અથવા શુભ ઓર અશુભ કર્મફલ કો પ્રકાશ કરના
ધર્મકથા હૈ । યા તીર્થંકર ચક્રવર્તી આદિ મહાપુરુષો કા ચરિત્ર વર્ણન કરના ધર્મકથા હૈ ।
ઉસકે અનુયોગ-વ્યાખ્યાન કો ધર્મકથાનુયોગ કહતે હૈં ।

ધર્મકથા ચાર પ્રકાર કી હૈ:—(૧) આક્ષેપણી (૨) વિક્ષેપણી (૩) સંવેદની ઓર
(૪) નિર્વેદની ।

આક્ષેપણી આદિ ધર્મકથાઓ સે આક્ષિપ્ત સંવેદિત ઓર નિર્વેદિત (વિરક્ત) હુપ ભવ્ય
બીવ ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરતે હૈં ।

કિનારે લઈ જનારી, અર્થાત્ શુભ સ્થાનમાં પહોંચાડી દેવા વાળી વસ્તુને ધર્મ કહેવામાં
આવે છે. તે ધર્મની કથા અર્થાત્ ભગવાનનો ઉપદેશ જેમાં જેવામાં આવે છે. તેને
ધર્મકથા કહે છે. અથવા અહિંસા આદિની પ્રરૂપણા તે ધર્મકથા કહેવાય છે. અથવા
તો શ્રુત અને ચારિત્રની પ્રધાનતાવાળી કથાને ધર્મકથા કહે છે, અથવા શુભ અને
અશુભ કર્મ-ફલને પ્રગટ કરવું તે ધર્મકથા છે. અથવા તીર્થંકર, ચક્રવર્તી આદિ
મહાપુરુષોના ચરિત્રનું વર્ણન કરવું તે ધર્મકથા છે. તેનાં અનુયોગ-વ્યાખ્યાનને
ધર્મકથાનુયોગ કહે છે.

ધર્મકથા ચાર પ્રકારની છે. (૧) આક્ષેપણી (૨) વિક્ષેપણી (૩) સંવેદની અને
(૪) નિર્વેદની.

આક્ષેપણી આદિ ધર્મકથાઓથી આક્ષિપ્ત, વિક્ષિપ્ત, સંવેદિત અને નિર્વેદિત
(વિરક્ત) થયેલા ભવ્ય છવ ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરે છે.

(१) आक्षेपणी—

आक्षिप्यते=मोहं निराकृत्य चारित्रं प्रति समाकृष्यते श्रोताऽनयेति-आक्षेपणी,
उक्तञ्च—

“स्याप्यते सत्पथे श्रोता, यया साऽऽक्षेपणी कया ।

यथेपुकारं कमला,—वती धर्मे व्यतिष्ठिषत् ॥ १ ॥”

वाल्यावस्थतनयद्वयसमन्वितः सपत्नीको भृगुपुरोहितः सर्वस्वं परिहाय दीक्षायं
सदनाचरिष्यौ । तदीयं सकलं वस्तु परिगृहीतं पत्येति विदित्वा कमलावती राज्ञी
वैराग्यमुपगता स्वपतिमिपुकारं नृपतिं प्रत्यबोधयत् । ‘राजन् ! किं वान्ताशिवद्

(१) आक्षेपणी

जिस कथा के द्वारा श्रोता मोह से हटकर चारित्र के प्रति आकर्षित होते हैं, वह
आक्षेपणी धर्मकथा कहलाती है, कहा भी है —

“जिस के द्वारा श्रोता सन्मार्ग में स्थापित किये जाते हैं, उसे आक्षेपणी कथा कहते
हैं । जैसे कमलावतीने इपुकार को धर्म में स्थिर किया ॥ १ ॥”

छोटी उम्र वाले अपने दो बालकों के साथ पत्नीसहित भृगु पुरोहित सर्वस्व त्याग
कर दीक्षा ग्रहण करने के लिये अपने घर से निकला । उस पुरोहित का समस्त धन मेरे
पति (राजा) ने ले लिया है, ऐसा जान करके रानी कमलावती को वैराग्य हो गया और
उसने अपने पति राजा इपुकार को समझाया—“महाराज ! जिस धनका भृगु पुरोहित ने

(१) आक्षेपणी—

ये कथाद्वारा श्रोता मोहथी हुई जधने चारित्र तरङ्ग आकर्षित थाय. छे. ते
आक्षेपणी धर्मकथा कहेवाय छे. कहुं पणु छे:—

“जेनाथी श्रोताने सन्-मार्गमां स्थापित करी शकय छे तेने आक्षेपणी कथा
कहे छे, जेवी रीते कमलावतीजे धुकारने धर्ममां स्थिर कथे. ॥ १ ॥

नानी उमरवाणा पोताना जे बाणकेनी साथे तथा पत्नी सहित लृगु पुरोहित
सर्वस्व त्याग करीने दीक्षा ग्रहण करवा भाटे पोताना घेरथी नीकण्या, ते पुरोहितवुं
तमाभ धन मारा पति (राज) जे लछ लीधुं छे. जेवुं जणुीने राजुी कमलावतीने
वैराग्य उत्पन्न थरुं गथे. जने तेबु पोताना पति राज धुकारने समज्जया-

भोगमाशंससे ?' इत्यादि । अथ कमलावतीवचनश्रवणक्षणसंजातप्रतिबोध इष्टुकारः कमलावती च दीक्षार्थं सर्वैव निष्क्रान्ता ।

(२) विक्षेपणी—

विक्षिप्यते=सम्यग्वादाद्युणोत्कर्षप्रदर्शनेन मिथ्यावादादपसार्यते श्रोताऽनयेति
विक्षेपणी । उक्तञ्च—

“सम्यग्वादप्रकर्षेण, मिथ्यावादस्य खण्डनम् ।
यथा विक्षेपणी सैव, यथा केशी प्रदेशिनम्” ॥ २ ॥

मिथ्यावादादपसारयामासेति शेषः ।

वमन कर दिया, वह धन भोगोगे ? आप वमन का सेवन करने वालों की तरह भोग की लालसा क्यों करते हैं ?” इत्यादि । इष्टुकार को कमलावती के वचन सुनते ही वैराग्य हो आया और राजा तथा रानी दोनों साथ-साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद या सिद्धान्त के गुणों का दिग्दर्शन कराकर श्रोताओं को मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवाद से हटाने वाली कथा विक्षेपणी कहलाती है । कहा भी है—

“महाराज ! जे धनने लुशु पुरोहिते वमन करी नाञ्छुं छे ते धनने आप लोगवशे ? आप वमननुं सेवन करवावाजानी पेटे लोगनी लालसा शा भाटे करे छे ?” इत्यादि

राज्य इष्टुकार पोते कमलावतीना वचन सांभजतां ज वैराग्य पाग्या अने राज तथा राज्ञी अन्ने साथे-साथे दीक्षा ग्रहण करी. ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद, अथवा सत्यसिद्धांतना शुद्धांतुं दिग्दर्शन करवावने श्रोताओंने मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवादथी हर करवावारी कथा ते विक्षेपणी कथा कहैवाय छे. कहुं पणु छे:—

केशिश्रमणतः करुणारसपरिपूर्णमास्तिकतावादमाकर्ण्य प्रदेशी नाम भूपालो नास्तिकतावादं परित्यज्य द्वादशव्रतधारी श्रावको भूत्वा मृत्वा च प्रथमकल्पे सूर्यामनामा देवो बभूव ।

(३) संवेदनी—

संवेद्यते = संसारासारताप्रदर्शनेन मोक्षामिलाप उत्पाद्यतेऽनयेति संवेदनी ।

उक्तञ्च—

“यस्याः श्रवणमात्रेण, मुक्तिवाञ्छा प्रजायते ।

संवेदनी यथा मल्ली, पङ्क नृपान् प्रत्यवोधयत् ॥३॥”

“सम्यग्वाद का उत्कर्ष दिखला कर मिथ्यावाद अर्थात् मिथ्यामान्यता का खण्डन करने वाली विक्षेपणी कथा है। जैसे—केशी श्रमणने प्रदेशी राजा को मिथ्यावाद से हटाया था” ॥ २ ॥

श्री केशी श्रमण के श्रीमुखसे करुणा—रस से परिपूर्ण आस्तिकवाद सुन कर प्रदेशी नामक राजा नास्तिकवाद त्याग कर बारह व्रतधारी श्रावक हो कर मरकर प्रथम सौधर्म कल्पमें सूर्याम नामक देव हुआ ।

(३) संवेदनी

जो धर्मकथा संसार की असारता प्रदर्शित करके भव्य जीवों में मोक्षकी अमिलापा जागृत करती है, वह संवेदनी धर्मकथा है। कहा भी है—

“सम्यग्वादनो उत्कर्षं भतापीने मिथ्यावाद अर्थात् मिथ्या मान्यतानुं भूतं कर्षावाणी विक्षेपणी कथा छे. जेवी रीते केशी श्रमणु प्रदेशी राजने मिथ्यावादथी मुक्त कथा छता. ॥ २ ॥”

श्री केशी श्रमणना श्रीमुखथी कर्षणरसथी परिपूर्ण आस्तिकवाद सांलणीने प्रदेशी नामना राजन्ये नास्तिकवाद त्याग कथे, बार व्रतधारी श्रावक यधने मरीने प्रथम सौधर्मकल्पमां सूर्याम नामना देव थया.

(३) संवेदनी

जे कथा संसारनी असारता भतापीने लव्यलुपोमां मोक्षनी अमिलापा जागत करे छे, ते संवेदनी धर्मकथा छे. कहुं पणु छे:—

भोगमाशंससे ?' इत्यादि । अथ कमलावतीवचनश्रवणक्षणसंज्ञातप्रतिबोध इषुकारः कमलावती च दीक्षार्थं सदैव निष्क्रान्ता ।

(२) विक्षेपणी—

विक्षेप्यते=सम्यग्वादगुणोत्कर्षप्रदर्शनेन मिथ्यावादादपसार्यते श्रोताऽनयेति
विक्षेपणी । उक्तञ्च—

“सम्यग्वादप्रकर्षेण, मिथ्यावादस्य खण्डनम् ।
यथा विक्षेपणी सैव, यथा केशी प्रदेशिनम्” ॥ २ ॥

मिथ्यावादादपसारयामासेति शेषः ।

वमन कर दिया, वह धन भोगोगे ? आप वमन का सेवन करने वालों की तरह भोग की लालसा क्यों करते हैं ?' इत्यादि । इषुकार को कमलावती के वचन सुनते ही वैराग्य हो आया और राजा तथा रानी दोनों साथ-साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद या सिद्धान्त के गुणों का दिग्दर्शन कराकर श्रोताओं को मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवाद से हटाने वाली कथा विक्षेपणी कहलाती हैं । कहा भी है—

“महाराज ! जे धनने लुगु पुरेछिते वमन करी नाञ्छुं छे ते धनने आप लोगवेशे ? आप वमननुं सेवन करवावाणानी पेठे लोगनी लालसा शा भाटे करे छे ?” इत्यादि

राज उषुकार पोते कमलावतीना वचन सांभणतां ज वैराग्य पाञ्छा अने राज तथा राजी अन्ने साथे-साथे दीक्षा ग्रहण करी. ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद, अथवा सत्यसिद्धांतना शुद्धोत्तुं दिग्दर्शन करावने श्रोताओंने मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवादथी हर करावनारी कथा ते विक्षेपणी कथा कहेवाय छे. कहुं पद्य छे—

कमलकोमलकान्ताकारः शालिभद्रकुमारः श्रीमहावीरतीर्थङ्करकथितधर्मदेशना-
श्रवणसमनन्तरं त्वरया वैराग्यमुपगतचारित्र्यं प्राप । उक्तञ्च—

“भवस्य सर्वे क्षणभङ्गं सुखं,

विदन्ति ये धर्मकथानुरागिणः ।

विहाय ते भोगमनन्तदुःखदं,

चरन्ति चारित्रवने विरागिणः” ॥ ४ ॥

उत्तराध्ययनसूत्रस्यैकोनत्रिंशोऽध्ययने धर्मकथाफलमाह—

“धम्मकहाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? । धम्मकहाए णं जीवे निज्जरं
जणयइ । धम्मकहाए णं पवयणं पभावेइ । पवयणपभावणेणं जीवे आगमेसस्स
भइत्ताए कम्मं निवंधइ । ”

कमल के समान कोमल और कान्तिमान आकृति वाला शालिभद्र कुमार श्री महावीर
भगवान् को धर्मदेशना सुनते ही वैराग्य को प्राप्त हुआ, और उसने चारित्र धारण कर लिया ।
कहा भी है :—

“धर्मकथा में अनुराग रखने वाले जो पुरुष संसार के सुख क्षणभङ्गर समझ लेते
हैं, वे अनन्त दुःख देने वाले भोगका त्याग करके, विरागी हो कर चारित्ररूपी बगीचे में
विहार करते हैं” ॥ १ ॥

उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवें अध्ययन में धर्मकथा का फल बतलाया गया है । वह
इस भांति है—

कमलना जेवा कोमल अने कान्तिमान आकृतिवाणा शालिभद्रकुमार श्री महावीर
भगवाननी धर्मदेशना सांलजतां जे वैराग्यने प्राप्त थया अने चारित्र धारणुं कथुं
कहुं पणुं छे:—

“धर्मकथां प्रीति राषवावाणा जे पुरुष संसारना सुभने क्षणभङ्गर समझ
ले छे ते अनन्त दुःख आपवावाणा लोगने त्याग करीने वैराग्य धारणु करी
चारित्ररूपी बगीचां विहार करे छे. ॥ १ ॥”

उत्तराध्ययन सूत्रना जोगलुत्रीसभां अध्ययनभां धर्मकथां क्वं बतलावुं छे, ते
आ प्रभाणुं छे:—

મહીકુમારી પદ્મ ભૂમિપાલાન્ સ્વસ્મિન્નુસ્તાન્ વિજ્ઞાય, તેભ્યઃ સંસારા-
સારતાં પ્રદર્શ્ય મોક્ષામિલાપં જનયામાસ ।

(૪) નિર્વેદની—

નિર્વેદ્યતે=વિષયમોગેભ્યો વિરજ્યતે શ્રોતાઽનયેતિ નિર્વેદની, ઉક્તઞ્ચ—

“યદાઽઽકર્ણનમાત્રેણ, વૈરાગ્યમુપજાયતે ।

નિર્વેદની યથા શાલિ, -મદ્રો વીરેણ વોધિતઃ” ॥ ૪ ॥

“જિસ કથા કો શ્રવણ કરને માત્ર સે હી મોક્ષ કી આકાંક્ષા ઉત્પન્ન હોતી હૈ, વહ સંવેદની ધર્મકથા હૈ । જૈસે—મહી નામક. રાજકન્યાને છહ રાજાઓ કો વોધ દિયા” ॥ ૩ ॥

છહ રાજા મેરે ઉપર અનુરક્ત હૈ, યહ જાનકર મહીકુમારીને ઉન્હે સંસારકી નિઃસારતા સમજાઈ ઓર ઉન મેં મુક્તિ કી અમિલાપા ઉત્પન્ન કર દી । મહી કુમારી કા વહ ઉપદેશ સંવેદની ધર્મકથા હૈ ॥ ૩ ॥

(૪) નિર્વેદની

જો કથા શ્રોતાઓ કો વિષયમોગસે વિરક્ત બનાતી હૈ, વહ નિર્વેદની ધર્મકથા કહલાતી હૈ । કહા મી હૈ :—

“જિસકા શ્રવણ કરતે હી વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન હોતા હૈ, વહ નિર્વેદની ધર્મકથા હૈ । જૈસે ભગવાન્ મહાવીરને શાલિમદ્ર કો પ્રતિવોધ દિયા” ॥ ૪ ॥

“જે કથા સાંભળવામાત્રથી જ મોક્ષની ઈચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે તે સંવેદની ધર્મકથા છે. જેવી રીતે મહી નામની રાજકન્યાએ છ રાજાઓને વોધ આપ્યો.” ॥ ૩ ॥

છ રાજા મારા ઉપર આસક્ત-પ્રેમવાળા છે. એવું બાણીને મહી કુમારીએ તેઓને સંસારની નિઃસારતા સમજાવી અને તેઓમાં મુક્તિની અભિલાષા ઉત્પન્ન કરી, મહીકુમારીનો તે ઉપદેશ સંવેદની ધર્મકથા છે.

(૪) નિર્વેદની

જે કથા શ્રોતાઓને વિષય ભોગથી વિરક્ત બનાવે છે તે નિર્વેદની કહેવાય છે. કહ્યું પણ છે:—

“જેનું શ્રવણ કરતાં જ વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે, તે નિર્વેદની ધર્મકથા છે જેવી રીતે ભગવાન મહાવીરે શાલિમદ્રને પ્રતિવોધ આપ્યો. ॥ ૪ ॥”

સમ્યક્ત્વમુપસ્થાપયન્, કર્મકોટિં ક્ષપયતિ । ઉત્કૃષ્ટરસાયનપરિણામમસૌ લભેત
ચેત્, ત્રૈલોક્યપવિત્રં તીર્થઙ્કરનામગોત્રં સમુપાર્જયતિ ।

અપિ ચાસૌ સ્વતઃપ્રકાશસ્વભાવસ્યાપિ જિનશાસનસ્ય મિથ્યાત્વાદિ-
તિમિરાદૃતદેશકાલાદિષુ યથોચિતપ્રચારલક્ષણારાધનતઃ પ્રભાવકપદં વિભર્તિ ।
ઉક્તશ્ચ—

“પાવયણી ધમ્મકહી; વાઈ લઢ્દીસરો તવસ્સી ય ।

ધિજ્ઞાસિદ્ધો ય કવી, અદ્દેવ પભાવગા મણિયા ॥ ૧ ”

ઔર સમ્યક્ત્વ કી ઉપસ્થાપના કરતા હુઆ કર્મકોટિ કો સ્વપાતા હૈ । કદાચિત્ પરિણામ મેં
ઉત્કૃષ્ટ રસાયન આ જાય તો વહ ત્રિલોક મેં પવિત્ર તીર્થઙ્કર ગોત્ર કા મી ઉપાર્જન કરતા હૈ ।

જિન ભગવાન કા શાસન સ્વતઃ ઉગ્જ્વલ હૈ, તથાપિ જિસ દેશવિશેષ ઔર કાલ
વિશેષ મેં મિથ્યાત્વ કા અન્યકાર ફૈલ જાતા હૈ, વહાં ભગવાન કે શાસન કા પ્રચારરૂપ
આરાધન કરકે ધર્મકથાકાર પ્રભાવક પદ પ્રાપ્ત કરતા હૈ । કહા મી હૈ :—

“પ્રભાવક આઠ પ્રકાર કે હૈં :— (૧) પ્રાવચનિક, (૨) ધર્મકથી, (૩) વાદી,
(૪) લઘ્વિયોં કા સ્વામી, (૫) તપસ્વી, (૬) વિદ્યાવાન્-રોહિણી પ્રજ્ઞતિ આદિ વિદ્યા કે
ધારક, (૭) સિદ્ધ-વચનસિદ્ધિ આદિ સિદ્ધિયોં વાલા, (૮) કવિ” ।

તે ધર્મકથા કહેનાર અનેક-અનેક લઘ્વિયોંને દીક્ષિત કરે છે અને સંસાર
રૂપી કુવામાં પડવાવાળા પ્રાણીઓને રક્ષણ કરવાનું આશ્વાસન દેવાવાળા જિનશાસનને
મહિમા વધારતા થકા સમસ્ત જગતને જિનશાસનમાં પ્રીતિવાળા બનાવી મિથ્યાત્વ
નિવારણ અને સમ્યક્ત્વની સ્થાપના કરી કર્મકોટીને ખપાવે છે. કદાચિત્ પરિણામમાં
ઉત્કૃષ્ટ રસાયન આવી જાય તો ત્રિલોકમાં પવિત્ર તીર્થઙ્કર ગોત્રની પણ પ્રાપ્તિ
કરે છે.

જિન ભગવાનનું શાસન પોતે ઉજ્જ્વલ છે તો પણ જે દેશવિશેષ અને કાલ-
વિશેષમાં મિથ્યાત્વને અધકાર ફેલાઈ જાય છે, ત્યાં ભગવાનના શાસનપ્રચારરૂપ
આરાધન કરીને ધર્મકથાકાર “પ્રભાવક”નું પદ પ્રાપ્ત કરે છે. કહ્યું પણ છે:—

“પ્રભાવક આઠ પ્રકારના છે. (૧) પ્રાવચનિક, (૨) ધર્મકથાકાર (૩) વાદી,
(૪) લઘ્વિયોંનો ધણી, (૫) તપસ્વી, (૬) વિદ્યાવાન્-રોહિણી-પ્રજ્ઞતિ આદિ વિદ્યાના
ધારક, (૭) સિદ્ધ-વચનસિદ્ધિઆદિસિદ્ધિઓવાળા, (૮) કવિ” ॥ ૧ ॥

આક્ષેપણ્યાદિચતુર્વિધધર્મકથાસંચારોદ્ગાથિતાનન્દધારાતરક્કસમૃદ્ધસિતસ્વાન્તપ્ર-
 ભૂતભવ્યભાવિતાત્મા ધર્મકથી જન્મજરામરણાદિભીષણપીનપાઠીનમીનમ-
 ગણસંક્રમણમિયવિયોગાપ્રિયસંયોગવડવાનલાકુલિતાપારસંસારસાગરાત્ સ્વયં તરતિ,
 પરાનપિ તારયત્તિ ।

સ ચ પ્રભૂતભવ્યાન્ પ્રવાજયન્ ભવકૂપપતત્માણત્રાણસમાશ્વાસનજિનશાસન-
 મહિમાનમ્પવૃંહયન્ સમસ્તમેવ જગત્ જિનશાસનરસિકં કુર્વન્, મિથ્યાત્વમુત્થાપયન્,

“ ભગવન્ ! ધર્મકથા સે જીવ કો વ્યા લાભ હોતા હૈ ? ઉત્તર—ધર્મકથા સે જીવ કો
 નિર્વાણ કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । ધર્મકથા સે જીવ પ્રવચન કી પ્રમાવના કરતા હૈ । પ્રવચન કી
 પ્રમાવના સે આગે કે લિયે મદ (શુભ) કર્મો કા વન્ધ કરતા હૈ ” ॥ ૪ ॥

આક્ષેપણી આદિ ચાર પ્રકાર કી ધર્મકથા સે ઉત્પન્ન હોને વાલી આનન્દ કી ધારાઓ
 કી તરફો સે જિન કા અન્તઃકરણ ઉદ્ધાસ કો પ્રાપ્ત હુઆ હૈ, એસે અનેક ભાવિતાત્મા ભવ્ય
 ધર્મકથા કરને વાલે પુરુષ જન્મ જાત ઓર મરણ રૂપી મયાનક ઓર વિશાલ મગરમચ્છોલે
 વ્યાપ્ત, એવં ઈષ્ટ—વિયોગ ઓર અનિષ્ટ—સંયોગ રૂપી વડવાનલ સે આકુલ—વ્યાપ્ત અપાર
 સંસાર સાગર સે સ્વયં મી પાર હોતે હૈ ઓર દૂસરો કો મી પાર કરતે હૈ ।

વહ ધર્મકથાકાર અનેકાનેક ભવ્ય જીવો કો દીક્ષિત કરતા હુઆ, સંસારરૂપી કૂપ મેં
 પડનેવાલે પ્રાણિયો કો ત્રાણ કરને કા આશ્વાસન દેને વાલે જિનશાસન કી મહિમા વડાતા
 હુઆ સમસ્ત જગત્ કો જિનશાસન કા રસિક—અનુરાગી વનાતા હુઆ મિથ્યાત્વ કી ઉત્થાપના

“ ભગવન્ ! ધર્મકથાથી જીવને શું લાભ થાય છે ?

ઉત્તર—ધર્મકથાથી જીવને નિર્વાણની પ્રાપ્તિ થાય છે, ધર્મકથાથી જીવ
 પ્રવચનની પ્રભાવના કરે છે, પ્રવચનની પ્રભાવનાથી આગળ શુભ કર્મોનો બંધ કરે છે.”

આક્ષેપણી આદિ ચાર પ્રકારની ધર્મકથાથી ઉત્પન્ન થનારા આનન્દની ધારાઓના
 તરફોથી જેનું અંતઃકરણ ઉત્લાસને પ્રાપ્ત થયું છે, એવા અનેક ભાવિતાત્મા ભવ્ય-
 ધર્મકથા કરવાવાળા પુરુષ જન્મ-જરા અને મરણરૂપી લયાનક અને વિશાલ મગર-
 મચ્છોથી વ્યાપ્ત એ પ્રમાણે ઈષ્ટ—વિયોગ અને અનિષ્ટ—સંયોગરૂપી વડવાનલથી
 સંહિત અપાર સંસારસાગરથી પોતે પણ પાર ઉતરે છે, અને બીજાને પણ પાર
 ઉતારે છે.

विणा सिद्धं जगं भूमि, - णिहाणं णेव लब्धम् ।
 सुयचारित्तधम्मणेण, विणा णो णाणमप्पणो ॥ ३ ॥
 अप्पणाणं विणा णेव, तत्तातत्तविणिच्छओ ।
 तं विणा णेव भव्वाणं, जायएऽमियभावणा ॥ ४ ॥
 विमुद्धज्जाणसंपत्ती, णंतराऽमियभावणं ।
 विणा विमुद्धज्जाणं णो, खवगस्सेणिरप्पई ॥ ५ ॥
 अनोवाएण केणापि, - खवगस्सेणिणा विणा ।
 वितीयपाओ सुक्कस्स, ज्ञाणस्स नहि लब्धम् ॥ ६ ॥

छाया—

श्रुतचारित्रधर्मेण, विना नो ज्ञानमात्मन ॥ ३ ॥
 आत्मज्ञानं विना नैव, तत्त्वाऽतत्त्वविनिश्चयः ।
 तं विना नैव भव्यानां, जायतेऽमृतभावना ॥ ४ ॥
 विशुद्धध्यानसंप्राप्ति, - नान्तराऽमृतभावनाम् ।
 विना विशुद्धध्यानं नो, क्षपकश्रेणिराप्यते ॥ ५ ॥
 अन्योपायेन केनापि, क्षपकश्रेणिना विना ।
 द्वितीयपादः शुक्लस्य, ध्यानस्य नहि लभ्यते ॥ ६ ॥

सिद्धब्रह्म के अभाव में पृथ्वी के भीतर का खजाना नहीं प्राप्त किया जा सकता, इसी प्रकार श्रुत चारित्र के विना आत्मा को सम्यग्ज्ञान नहीं होता ॥ ३ ॥

आत्मज्ञान के अभाव में तत्त्व—अतत्त्व का निश्चय नहीं हो सकता, और तत्त्व अतत्त्व का निश्चय हुए विना भव्य जीवों को अमृतभावना नहीं हो सकती ॥ ४ ॥

अमृतभावना के अभाव में विशुद्ध ध्यान की प्राप्ति नहीं होती, और विशुद्ध ध्यान के विना क्षपकश्रेणी पर आरोहण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

क्षपक श्रेणी के सिवाय किसी अन्य उपाय से शुक्ल—ध्यान का एकत्ववितर्क अविचार नामक दूसरा पाया नहीं प्राप्त किया जा सकता ॥ ६ ॥

सिद्धांजन विना पृथ्वीनी अंदरने भ्रमने प्रप्त करी शकते नथी. येवी वरीते श्रुत—चारित्र विना आत्मज्ञान थतुं नथी. ॥ ३ ॥

आत्मज्ञानना अलावथी तत्त्व—अतत्त्वने निश्चय थर्छ शकते नथी, अने तत्त्व—अतत्त्वने निश्चय कर्था विना लब्ध लुवेने अमृतलावना थती नथी ॥ ४ ॥

अमृतलावनाना अलावथी विशुद्ध ध्याननी प्राप्ति थती नथी; अने विशुद्ध

અથ ધર્મમહિમોચ્યતે—

“જન્મંતરેવિ સુલહા, પિઝમાઝમુયાહયા ।

પરંતુ સુવચારિત્ત, — ધમ્મો ણો સુલહો ધુવિ ॥ ૧ ॥

વારસંગાવણે ધમ્મં, ણિચ્છપવ્યવહારિણો ।

લહંતે સંજયા મન્વા, મત્તિપણ્ણેણ નન્નહા ॥ ૨ ॥

સંસ્કૃતચ્છાયા—

જન્માન્તરેઽપિ સુલભા, — પિતૃ-ધ્રાતૃ-સુતાદયઃ ।

પરન્તુ શ્રુતચારિત્ર, — ધર્મો ન સુલભો ધુવિ ॥ ૧ ॥

દ્વાદશાઙ્ગાપણે ધર્મં, નિશ્ચયવ્યવહારિણઃ ।

લમન્તે સંયતા મન્વા, —મક્તિપણ્યેન નાન્યયા ॥ ૨ ॥

તથા-વિના સિદ્ધાઞ્જનં ભૂમિ, —નિધાનં નૈવ લમ્યતે

ધર્મ-મહિમા —

“પિતા, ભ્રાતા ઓર પુત્ર વ્યાદિ તો જન્માન્તર મેં-આગામી મવ મેં-મી સુલભ હૈં કિન્તુ સંસાર મેં શ્રુત-ચારિત્ર ધર્મ સુલભ નહીં હૈ” ॥ ૧ ॥

“દ્વાદશાઙ્ગીરૂપી દુકાન મેં નિશ્ચયનય ઓર વ્યવહારનય કો જાનને વાલે સંયમી પુરુષ મક્તિરૂપી મૂલ્ય ચુકાકર ધર્મ પ્રાપ્ત કર સકતે હૈં, એસે કિયે વિના ધર્મ કો પ્રાપ્તિ નહીં હો સકતી” ॥ ૨ ॥

ધર્મમહિમા—

“પિતા ભાઈ અને પુત્ર વગેરે તો આગલા લવમાં-હવે પછીના લવમાં પણ સુલભ છે, પરન્તુ સંસારમાં શ્રુત-ચારિત્ર ધર્મ સુલભ નથી” ॥ ૧ ॥

“દ્વાદશાઙ્ગીરૂપી દુકાનમાં નિશ્ચયનય અને વ્યવહારનયને જાણવાવાળા સંયમી પુરુષ ભક્તિરૂપી મૂલ્ય આપીને ધર્મ પ્રાપ્ત કરી શકે છે. એમ કર્યા વિના ધર્મની પ્રાપ્તિ થતી નથી.” ॥ ૨ ॥

અથ ગણિતાનુયોગઃ—

ગણિતં = સંખ્યાનં તસ્યાનુયોગો-ગણિતાનુયોગઃ—

જીવાઽજીવાદિપદ્મદ્રવ્યતત્પર્યાયપરિગણનં ગણિતાનુયોગસાધ્યમ્ ।

તેન જિનોક્તપદાર્થાનાં યથાવસ્થિતં પરિગણનાત્ સમ્યક્ત્વશુદ્ધિસ્તત્ચારિત્રશુદ્ધિઃ ।

પૂર્વાનુપૂર્વાદીનાં મહ્જ્જાલાદીનાં ચ પરિગણનયા ચિત્તસ્થૈર્યમ્, તત્તથ્ચ કપાયાનલપ્રશમનમ્, તેન ચારિત્રનૈર્મલ્યમ્ ।

અપિ ચ ગણિતાનુયોગેન મગવતઃ કેવલજ્ઞાનાદિગુણપર્યાયાણામાનન્ત્યમાવેદયતિ । સંખ્યાનમતિક્રાન્તાનાં તેપાં સંખ્યાતુમશક્યતા સંખ્યાજ્ઞાનં વિના નૈવ

(૨) ગણિતાનુયોગ—

ગણિત અર્થાત્ સંખ્યાકા અનુયોગ ગણિતાનુયોગ કહલાતા હૈ ।

જીવ, પુદ્ગલ આદિ હહ દ્રવ્યોં કી ગણના કરને કે લિષ્, તથા દ્રવ્યોં કી પર્યાયોં કી ગિન્તી કરને કે લિષ્ ગણિતાનુયોગ કી આવસ્યકતા હોતી હૈ । ગણિતાનુયોગસે જિન મગવાન્ દ્વારા ઉપદિષ્ટ પદાર્થોં કી ઠીક-ઠીક ગણના હોને સે સમ્યક્ત્વ કી શુદ્ધિ હોતી હૈ, ઓર સમ્યક્ત્વ કી શુદ્ધિ સે ચારિત્ર કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ।

પૂર્વાનુપૂર્વા પશ્વાનુપૂર્વા તથા અનાનુપૂર્વા આદિ સે, તથા મહ્જ્જ-જાલોં કી ગણના કરનેસે ચિત્તમેં સ્થિરતા આતી હૈ, ઓર ચિત્તકી સ્થિરતા સે કપાયરૂપી અગ્નિ જ્ઞાન્ત હોતી હૈ ઓર ઉસસે ચારિત્ર નિર્મલ હોતા હૈ ।

ગણિતાનુયોગ હી મગવાન કે કેવલજ્ઞાન આદિ ગુણ ઇવં પર્યાયોંકી અનન્તતા કો પ્રગટ કરતા હૈ, ' સંખ્યાતીત ગુણોં ઇવં પર્યાયોં કી સંખ્યા કા જ્ઞાન મુશ્કિલ હૈ ' યહ વાત

(૩) ગણિતાનુયોગ—

ગણિત અર્થાત્ સંખ્યાનો અનુયોગ તે ગણિતાનુયોગ કહેવાય છે. ઇવ પુદ્ગલ આદિ છ દ્રવ્યોની ગણના કરવા માટે, તથા દ્રવ્યોના પર્યાયોની ગણતરી કરવા માટે ગણિતાનુયોગની આવસ્યકતા હોય છે, ગણિતાનુયોગથી જિન ભગવાન દ્વારા કહેલા પદાર્થોની ઠીક ઠીક ગણના થઈ શકતી હોવાથી સમ્યક્ત્વની શુદ્ધિ થાય છે, અને સમ્યક્ત્વની શુદ્ધિથી ચારિત્રની શુદ્ધિ થાય છે.

પૂર્વાનુપૂર્વા પશ્ચાનુપૂર્વા તથા અનાનુપૂર્વા આદિથી, અને ભગવાનોની ગણના કરવાથી ચિત્તમાં સ્થિરતા આવે છે, અને ચિત્તની સ્થિરતાથી કપાયરૂપી અગ્નિ શાન્ત થાય છે. અને તેથી ચારિત્ર નિર્મલ થાય છે.

सुकृद्ज्ञानंस्त पायं च, वितीयं पप्प संजमी ।
 केवलज्ञानलाहेण, केवलित्ति णिगज्जई ॥ ७ ॥
 अवस्था णहि सेलेसी, केवलज्ञानमंतरा ।
 भवई समणंदस्स, सब्बकम्मक्खओ तओ ॥ ८ ॥
 सब्बकम्मक्खए सिद्धी, - तओ सिद्धो हि सासओ ।
 मोक्खट्ठी सुयचारित्त, - धम्मं तम्हा समायरे ॥ ९ ॥

छाया—

शुक्रध्यानस्य पादं च, द्वितीयं प्राप्य संयमी ।
 केवलज्ञानलाभेन, केवलीति निगद्यते ॥ ७ ॥
 अवस्था नहि शैलेशी, केवलज्ञानमन्तरा ।
 भवति श्रमणेन्द्रस्य, सर्वकर्मक्षयस्ततः ॥ ८ ॥
 सर्वकर्मक्षये सिद्धि, - धर्मं तस्मात्समाचरेत् ।
 मोक्षार्थी श्रुतचारित्र, - धर्मं तस्मात्समाचरेत् ॥ ९ ॥

संयमी पुरुष शुक्ल ध्यान का दूसरा पाया प्राप्त करके, केवल ज्ञान प्राप्त करता है और केवली कहलाता है ॥ ७ ॥

केवल ज्ञान के विना शैलेशी अवस्था प्राप्त नहीं होती । शैलेशी अवस्था जब प्राप्ति हो जाती है तो मुनिरात्र समस्त कर्मों का क्षय कर डालता है ॥ ८ ॥

समस्त कर्मों का क्षय होने पर सिद्धि प्राप्त होती है । सिद्धि लाभ होने पर शाश्वत सिद्ध होजाता है, अतः मोक्षार्थी पुरुष को श्रुत-चारित्ररूप धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ९ ॥

ध्यान विना क्षपकश्रेणी उपर आरोहणु यथं शक्तुं नथी ॥ ५ ॥

क्षपकश्रेणी विना भीष्म ढोह उपायथी शुक्ल ध्यानने अकत्व-वितर्क-अविचार नामक भीष्म पाथे प्राप्त करी शक्तो नथी ॥ ६ ॥

संयमी पुरुष शुक्ल ध्यानने भीष्म पाथे प्राप्त करीने केवलज्ञान प्राप्त करे छे, अने केवली कहेवाय छे ॥ ७ ॥

केवलज्ञान विना शैलेशी अवस्था प्राप्त थती नथी, शैलेशी अवस्था न्यारे प्राप्त थथ नय छे, त्यारे मुनिरात्र संकल कर्मोना क्षय करी नाथे छे ॥ ८ ॥

सकल कर्मोना क्षय थथा पछी सिद्धि प्राप्त थाय छे, सिद्धि लाल थथा पछी शाश्वत सिद्ध थाय छे, अे माटे मुक्षार्थी पुरुषोअे श्रुत-चारित्ररूप धर्मनुं आचरण करवुं न्नेथये ॥ ९ ॥

(१) तत्र मासविचारः

पौष-चैत्र-ज्येष्ठा-पाद-मासान् विहाय शेषा मासाः प्रशस्ताः ।

विशेषतो मासफलमाह-

- | | |
|------------------------------|--|
| (१) श्रावणे-शुभम् । | (७) माघे-ज्ञानवृद्धिः । |
| (२) भाद्रपदे-शिष्याल्पता । | (८) फाल्गुने-सुख-सौभाग्य-यशोवृद्धिः । |
| (३) आश्विने-सुखम् । | (९) चैत्रे-अल्पसुखम् । |
| (४) कार्तिके-विद्यावृद्धिः । | (१०) वैशाखे-रत्नत्रयलामः । |
| (५) मार्गशीर्षे-शुभम् । | (११) ज्येष्ठे-सामान्यम्, तत्रान्यवलसत्त्वे शुभम् । |
| (६) पौषे-विद्यावृद्धयभावः । | (१२) आपादे-गुरुबन्धुना सह प्रेमाल्पता । |

(१) मास-विचार

पौष, चैत्र, ज्येष्ठ और आपाद मास को छोड़कर शेष महीनों में दीक्षा देना प्रशस्त है ।

विशेष मास-विचार

- | | |
|--------------------------------|--|
| (१) श्रावण - शुभ । | (७) माघ - ज्ञान की वृद्धि |
| (२) भाद्रपद - शिष्यों कमी । | (८) फाल्गुन-सुख-सौभाग्य और यश की वृद्धि |
| (३) आश्विन - सुख । | (९) चैत्र - अल्प सुख |
| (४) कार्तिक - विद्यावृद्धि । | (१०) वैशाख - रत्नत्रय का लाभ |
| (५) मार्गशीर्ष - शुभ । | (११) ज्येष्ठ - साधारण, यह मास दूसरे नक्षत्र आदि का बल हो तो शुभ है । |
| (६) पौष-विद्यावृद्धि का अभाव । | (१२) आपाद-गुरुभाइयों के साथ प्रेम की कमी । |

(१) मास-विचार-

पौष, चैत्र, ज्येष्ठ અને આપાદ માસને ત્યજીને બાકીના બીજા મહિનાઓ દીક્ષા આપવા માટે ઉત્તમ છે.

વિશેષ માસ-વિચાર-

- | | |
|------------------------------|--|
| (૧) શ્રાવણ-શુભ. | (૭) માઘ-જ્ઞાનની વૃદ્ધિ. |
| (૨) ભાદ્રપદ-શિષ્યોની કમી. | (૮) ફાલ્ગુન-સુખ સૌભાગ્ય અને યશની વૃદ્ધિ. |
| (૩) આશ્વિ-સુખ. | (૯) ચૈત્ર-અલ્પ સુખ. |
| (૪) કાર્તિક-વિદ્યાવૃદ્ધિ. | (૧૦) વૈશાખ-રત્નત્રયનો લાભ. |
| (૫) માર્ગશીર્ષ-શુભ. | (૧૧) જ્યેષ્ઠ-સાધારણ, આમાસમાં બીજા નક્ષત્ર વગેરેનું બલ હોય તો શુભ છે. |
| (૬) પૌષ-વિદ્યાવૃદ્ધિનો અભાવ. | (૧૨) આપાદ-ગુરુભાઈઓની સાથે પ્રેમની કમી. |

વિજ્ઞાતું શક્યતે, તદ્દિ ગણિતાનુયોગમ્યમ્ । મગવદુગાનુસ્મરણેન મગવઃ
સ્તુતિઃ સંપદ્યતે, તયા ચ દર્શનશુદ્ધિસ્તવચારિત્રશુદ્ધિઃ ।

મવ્રજ્યાપ્રદાનાદયોઽપિ શોભનતિથિનક્ષત્રાદિયુક્તસમય એવ વિધેયા ઇતિ
તાદૃશસમયાવબોધકતયા ગણિતાનુયોગસ્યાપિ ચરણપ્રાપ્તિ પ્રતિ સાધનતા સિદ્ધયતિ ।
તયા વાસ્યાપિ ફલં ચારિત્રરક્ષણમેવ ।

અથ પ્રસન્નાજ્જ્યોતિષ્કવિપયઃ કિચ્ચિત્પ્રદર્શ્યતે—
તત્ર પૂર્વ મવ્રજ્યાપ્રદાનસમયો નિર્ણયતે—

મી સંખ્યા કા જ્ઞાન કિયે વિના જાની નહીં જા સકતી હૈ । મગવાન કે ગુણો કા વારંવાર
સ્મરણ કરને સે મગવાન કી સ્તુતિ હોતી હૈ, ડસસે દર્શન-શુદ્ધિ હોતી હૈ, દર્શન-શુદ્ધિ કે
હોને સે ચારિત્ર કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ॥

શુભ તિથિ તથા શુભ નક્ષત્ર સે યુક્ત સમય મેં હી દીક્ષા આદિ દેના ચાહિણ, ઇસ
પ્રકાર કે સમય કા વોધ કરાને વાલા હોને સે ગણિતાનુયોગ મી ચારિત્રકી પ્રાપ્તિ કા કારણ
હૈ, ઇસા સિદ્ધ હોતા હૈ, ડસસે ગણિતાનુયોગ કા ફલ મી ચારિત્ર કી રક્ષા કરના હી હૈ ।

યહાં પ્રસન્ન હોનેસે કુલ્લ જ્યોતિષ કા વિપય દિસલાયા જાતા હૈ—

દીક્ષાદાનસમયકા નિર્ણય—

ગણિતાનુયોગ જ ભગવાનના કેવલજ્ઞાન આદિ એ ગુણો એ પ્રમાણે પર્યાયોની
અનંતતા પ્રગટ કરે છે. 'સંખ્યાતીત ગુણો અને પર્યાયોની સંખ્યા બહુવી અશક્ય
છે' તે વાત પણ સંખ્યાનું જ્ઞાન કર્યા વિના બહુ શકાતી નથી, તે ગણિતાનુયોગ
દ્વારા બહુ શકાય છે. ભગવાનના ગુણોનું વારંવાર સ્મરણ કરવાથી ભગવાનની સ્તુતિ
થાય છે, અને તેથી દર્શન-શુદ્ધિ થઈ શકે છે, અને દર્શન વિશુદ્ધ થવાથી ચારિત્રની
શુદ્ધિ થાય છે.

શુભ તિથિ તથા શુભ નક્ષત્રથી યુક્ત સમયમાં જ દીક્ષા આદિ આપવી ભેઈએ,
આ પ્રકારના સમયનું જ્ઞાન કરાવવાવાળો હોવાથી ગણિતાનુયોગ પણ ચારિત્રની પ્રાપ્તિનું
કારણ છે એમ સિદ્ધ થાય છે. તેથી ગણિતાયોગનું જ્ઞાન પણ ચારિત્રની રક્ષા કરવી એજ છે.
અહીં પ્રસંગથી થોડા બ્યોતિષનો વિષય બતાવવામાં આવે છે—

દીક્ષા આપવાના સમયનો નિર્ણય—

नव तिथयश्च वर्जनीयाः—

(१) शुक्ल चतुर्दशी (२) अमावास्या (३) यस्यां तिथौ रविसंक्रमणं, सा ।
(४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) पष्ठी, (७) अष्टमी, (८) नवमी, (९) द्वादशी ।

(४) वार-विचारः—

रवि - चन्द्र - बुध - गुरु - वाराः प्रशस्ताः

(५) नक्षत्र-विचारः—

दीक्षायां त्रयोदश नक्षत्राणि प्रशस्तानि—(१) अश्विनी, (२) रोहिणी,
(३) मृगशिरः, (४) पुष्यम्, (५) उत्तरफाल्गुनी, (६) हस्तः (७) अनुराधा,
(८) ज्येष्ठा, (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित्, (११) श्रवणम्, (१२) उत्तरभाद्र-
पदा, (१३) रेवती ।

नौ तिथियां त्याज्यं ह्ये—

(१)—शुक्ल चतुर्दशी, (२)—अमावास्या, (३)—जित तिथि में सूर्य-संक्रमण हो वह,
(४)—द्वितीया (५)—चतुर्थी (६)—पष्ठी (७)—अष्टमी (८)—नवमी (९)—द्वादशी ।

(४) वार-विचार—

रवि, सोम, बुध, गुरु, और शनिवार प्रशस्त हैं ।

(५) नक्षत्र-विचार—

दीक्षा के विषय में तेरह १३ नक्षत्र प्रशस्त हैं । (१)—अश्विनी, (२)—रोहिणी, (३)—
मृगशीर्ष, (४)—पुष्य, (५)—उत्तरफाल्गुनी (६)—हस्त, (७)—अनुराधा, (८)—ज्येष्ठा, (९)—
उत्तराषाढा, (१०)—अभिजित्, (११)—श्रवण, (१२)—उत्तरभाद्रपद, (१३)—रेवती ।

नव तिथिभ्यो त्याज्यं च—

(१) शुक्ल चतुर्दशी, (२) अमावास्या (३) नौ तिथिमां सूर्य-संक्रमणं थाय
ते, (४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) पष्ठी, (७) अष्टमी (८) नवमी (९) द्वादशी
(४) वार विचार—

रवि, सोम, बुध, गुरु अने शनिवार उत्तम छे.

(५) नक्षत्र-विचार—

दीक्षाना विषयमां तेर नक्षत्र उत्तम छे— (१) अश्विनी, (२) रोहिणी,
(३) मृगशीर्ष, (४) पुष्य, (५) उत्तराफाल्गुनी, (६) हस्त, (७) अनुराधा (८)
ज्येष्ठा (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित् (११) श्रवण (१२) उत्तरभाद्रपद, (१३) रेवती.

(२) पक्ष-विचारः—

कृष्णपक्षे-प्रतिपदा आरभ्य पञ्चमी यावत्तिथयः शुभाः । पष्ठीतः समारभ्य दशमी यावत्तिथयो मध्यमाः । एकादशीतः प्रारभ्यामावास्यां यावदशुभाः ।

शुक्लपक्षे तु प्रतिपत्तिथितः पञ्चमी पर्यन्तमशुभाः । पष्ठीतो दशमी यावन्मध्यमाः । एकादशीतः समारभ्य पूर्णिमान्तास्तिथयः शुभाः ।

(४) तिथि-विचारः—

दीक्षायां प्रतिपत् (१), तृतीया (३), पञ्चमी (५), सप्तमी (७), एकादशी (११), त्रयोदशी (१३) च प्रशस्ता ।

(२) पक्ष-विचारः—

कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पञ्चमी पर्यन्त तिथियाँ शुभ हैं । पष्ठी से लेकर दशमी तक की तिथियाँ मध्यम हैं, और एकादशीसे लेकर अमावास्या तक अशुभ तिथियाँ हैं ।

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लगाकर पञ्चमी तक अशुभ हैं, पष्ठी से दशमी तक मध्यम हैं और एकादशी से पूर्णिमा तक की तिथियाँ शुभ हैं ।

(३) तिथि-विचारः—

दीक्षा के विषयमें प्रतिपदा, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी प्रशस्त हैं ।

(२) पक्ष-विचारः—

कृष्ण पक्षमां पडवेथी पांचम सुधीनी तिथिओ अशुल छे. छकुथी लधने दशम सुधीनी तिथिओ मध्यम छे, अने ओकादशी-अगीयारसथी लधने अमावास्या सुधीनी तिथिओ अशुल छे.

शुक्ल पक्षमां-पडवेथी लधने पांचम सुधीनी तिथिओ अशुल छे. छकुथी दशमी सुधी मध्यम छे, अने ओकादशीथी पुनम सुधीनी तिथिओ शुल छे.

(३) तिथि-विचारः—

दीक्षाना विषयमां पडवे, त्रीज, पांचम, सातम, ओकादशी अने तेरस, आ तिथिओ उत्तम छे.

(७) ग्रहभिन्नम्—यत्र त्रयो ग्रहास्तिष्ठन्ति तादृशं नक्षत्रम् ।

(६) योग-विचारः—

योगास्तु नाम्नेव शुभाशुभफलाः, यथा—विष्कम्भादिषु दैनिकयोगेषु प्रीत्यादयः शुभफलाः, विष्कम्भादयोऽशुभफलाः । आनन्दादिषु सांयोगिकेषु वारनक्षत्र-संयोगजनितेषु योगेषु आनन्दादयः शुभाः, कालदण्डादयोऽशुभाः ।

(७) अथ करण-विचारः—

करणानि एकादश सन्ति; यथा—(१) वचम्, (२) बालवम्, (३) कौलवम्,

(७) ग्रह-भिन्नजिस में तीन ग्रह हों ऐसा नक्षत्र ।

(६) योग-विचार—

योगों के नामसे ही शुभ अशुभ फल प्रतीत हो जाता है । जैसे—विष्कम्भ, आदि दैनिक योगों में से प्रीति आदि योग शुभफल वाले, और विष्कम्भ आदि योग अशुभ फल वाले हैं । आनन्द आदि सांयोगिक (वार नक्षत्र के संयोग से बनने वाले) योगों में से आनन्द आदि योग शुभफलदाता हैं, और कालदण्ड आदि अशुभफलदायक हैं ।

(७) करण-विचार

करण ११ ग्यारह होते हैं, जैसे—(१) वच, (२) बालव, (३) कौलव,

(७) ग्रहभिन्न-नेमां त्रयु अडो डोय, अेषु नक्षत्र.

(६) योग-विचार—

योगोना नामथी व शुभ-अशुभ क्षणनी प्रतीति यथं ज्ञायते. नेमकेः—विष्कंभ आदि दैनिक योगोभांथी प्रीति आदि शुभ क्षणवाणां छे, अने विष्कंभ आदि योग ते अशुभ क्षण आपनारा छे. आनन्द आदिके सांयोगिके (वार-नक्षत्रना संयोगथी अनवावाणां) योगोभां आनन्द आदि योग शुभ क्षण देनारा छे, अने कालदण्ड आदि अशुभ क्षण आपनारा छे.

(७) करण-विचार—

करण अगिआर डोय छे. (१) वच (२) बालव (३) कौलव (४) अविवाचन

नक्षत्रेषु सप्त दोषाः सन्ति, यथा-

- (१) संध्यागतम्-यत्र नक्षत्रे सूर्योऽनन्तरं स्थास्यति तादृशं नक्षत्रम् । यथा हस्ते रविर्वर्त्तते चेत् तदा दैनिकं चित्रानक्षत्रं संध्यागतं बोध्यम् ।
- (२) रविगतम्- यत्र रविस्तिष्ठति तादृशं दैनिकं नक्षत्रं रविगतं बोध्यम् ।
- (३) दुर्गतम्-यत्रोन्मार्गगामी-वक्रो ग्रहो भवति, तादृशं नक्षत्रम् ।
- (४) सग्रहम्-यत्र क्रूरो ग्रहस्तिष्ठति, तादृशं नक्षत्रम् ।
- (५) विलम्बितम्-सूर्येण परिसृज्य मुक्तं नक्षत्रम् ।
- (६) राहुगतम्-यत्र चन्द्र-सूर्योपरागः संजातस्तादृशं नक्षत्रम् । ईदृशे नक्षत्रे षण्मासान् यावत् प्रव्रज्या न देया ।

नक्षत्रों में सात दोष

- (१) सन्ध्यागत-जिस नक्षत्र में सूर्य आगे जाने वाला है वह नक्षत्र । जैसे-अगर हस्त नक्षत्र में सूर्य हो तो दैनिक चित्रा नक्षत्र सन्ध्यागत कहलाता है ।
- (२) रविगत-जिस नक्षत्र में रवि हो, वह दैनिक नक्षत्र रविगत जानना चाहिए ।
- (३) दुर्गत-जिस में उन्मार्गगामी-वक्र ग्रह हो वह नक्षत्र दुर्गत कहलाता है ।
- (४) सग्रह-जिस नक्षत्र में क्रूर ग्रह हो ।
- (५) विलम्बित-सूर्य-द्वारा भोग कर छोड़ा हुआ नक्षत्र ।
- (६) राहुगत-जिस नक्षत्र में चन्द्र-ग्रहण या सूर्य-ग्रहण हुआ हो । ऐसे नक्षत्र में छह मास तक दीक्षा देना वर्जनीय है ।

नक्षत्रमां सात दोष-

- (१) संध्यागत-जो नक्षत्रमां सूर्य आगण आववावाणो छे ते नक्षत्र, जेवी दीते के हस्त नक्षत्रमां सूर्य होय तो दैनिक चित्रा नक्षत्र संध्यागत कहेवाय छे.
- (२) रविगत-जो नक्षत्रमां रवि होय ते दैनिक नक्षत्र रविगत जालुपुं जेधये.
- (३) दुर्गत-जोमां उन्मार्गगामी-वक्र-ग्रह होय ते नक्षत्र दुर्गत कहेवाय छे.
- (४) सग्रह-जो नक्षत्रमां क्रूर ग्रह होय.
- (५) विलम्बित-सूर्यद्वारा लोणवीने छुटुं करायेलुं नक्षत्र.
- (६) राहुगत-जो नक्षत्रमां चंद्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण थयुं होय. जेवा नक्षत्रमां छ मास सुधी दीक्षा आपवी वर्जनीय छे.

कइ करणा स्थिरा पण्णत्ता?, गोयमा सत्त करणा चरा, चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता ।” इत्यादि ।

तत्र दिवाशब्देन तिथेः पूर्वार्द्धभागः, रात्रिशब्देन तियेरुत्तरार्द्धभागो गम्यते ।

एकादशसु करणेषु ववम्, बालवम्, कौलवम्, वणिजम्, एतानि चत्वारि शुभफलानि ।

विष्टिकरणस्य नामान्तरं भद्रा । इयं दीक्षादौ वर्जनीया । उक्तञ्च—

“यदि भद्राकृतं कार्यं, प्रमादेनापि सिद्ध्यति ।

गया है । वहां कहा है —

“हे भद्रन्त ! इन ग्यारह करणों में कितने करण चर और कितने करण स्थिर कहे गये हैं ?, हे गौतम ! सात करण चर और चार करण स्थिर कहे गये हैं ।” इत्यादि ।

यहां दिन शब्द का अर्थ है—तिथिका पूर्वार्ध भाग और रात्रि शब्द का अर्थ है—तिथि का उत्तरार्ध भाग ।

इन ग्यारह करणों में से वव, बालव, कौलव, और वणिज, ये चार करण शुभ फल दायक है ।

विष्टि करण का दूसरा नाम भद्रा, है । दीक्षा आदि कार्यों में यह वर्जनीय है । कहा भी है —

इपथी करेळुं छे, त्यां कळुं छे—

“हे लढन्त ! आ अग्यार करेळोभां केटला करेळु अर अने केटला करेळु स्थिर केडेवाभां आव्या छे ?, हे गौतम ! सात करेळु अर अने चार करेळु स्थिर केडेवाभां आव्या छे” इत्यादि ।

आ स्थणे दिन शब्दनेो अर्थ छे के—तिथिनेो पूर्वार्धं लाग, अने रात्री शब्दनेो अर्थ छे के—तिथिनेो उत्तरार्धं लाग ।

ओ अग्यार करेळोभांथी अव, बालव, कौलव अने वणिज, आ चार करेळु शुभफलदायक छे ।

विष्टिकरणस्य नामान्तरं भद्रा छे । दीक्षा आदि कार्योंमें ते भद्रा त्यज्जवा योअ्य छे । कळुं पळु छे—

(४) स्त्रीविलोचनम्, इदं तैत्तिमिति, कोचदाहुः, (५) गरादि, इदं गरमित्या-
 हुन्ये, (६) वणिजम्, (७) विष्टिः, (८) शकुनिः, (९) चतुष्पदं, (१०) नागम्,
 (११) किस्तुम्, इति।

अत्र ववादिविष्टयन्तानि सप्त करणानि चराणि, शकुन्यादीनि चत्वारि स्थिराणि
 वेदितव्यानि।

ववादिविष्टयन्तानां सप्तानां कस्यांश्चिदेकस्यां तिथौ नियमतः स्थित्यभावात्तानि
 सप्त-चराणि, शकुन्यादीनां कृष्णपक्षीयचतुर्दशमावस्याशुक्लप्रतिपत्तिथिषु नियत-
 स्थित्या तानि चत्वारि स्थिराणि प्रोच्यन्ते। स्पष्टं चेदं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ सप्तमवक्ष-
 स्कारे। उक्तञ्च तत्र—“एएसिणं भंते! एकारसण्हे करणाणं कइ करणां चरा ?

(४) स्त्रीविलोचन (कोई कोई इसे 'तैत्तिल' भी कहते हैं), (५) गरादि ('गर' नाम भी है),
 (६) वणिज, (७) विष्टि, (८) शकुनि, (९) चतुष्पद, (१०) नाग, (११) किस्तुम्।

इन ग्यारह करणों में बव से लेकर विष्टि तक सात करण चर हैं, और अन्त के
 शकुनि आदि चार स्थिर हैं।

बव से लेकर विष्टि तक सात करण किसी एक तिथि में नियम से नहीं रहते इस
 कारण ये चर कहलाते हैं, शकुनि आदि अन्तिम चार करण कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी,
 अर्मावास्या तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि में नियम से होते हैं, अत एव ये स्थिर कहलाते
 हैं। इस विषय का जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के सातवें वक्षस्कार में स्पष्ट रूप से विवेचन किया

(कोई कोई अने 'तैत्तिल' पण्डु कहे छे), (५) गरादि (तेनुं 'गर' नाम पण्डु छे)
 (६) वणिज, (७) विष्टि (८) शकुनि (९) चतुष्पद (१०) नाग, (११) किस्तुम्।

आ अगियार करणों में अवधी लधने विष्टि सुधी सात करण चर छे, अने
 छेदेला शकुनि आदि चार स्थिर छे।

अवधी लधने विष्टि सुधीना सात करणु कोई अक तिथि में नियमित रहेला
 नथी ते कारणुथी तेने चर कहे छे; शकुनि आदि छेदेलां चार, कृष्ण पक्षनी चौदस,
 अर्मावास्या तथा शुक्ल पक्षनी प्रतिपदा-पडवे तिथि में नियमित रहे छे अनेले ते
 स्थिर कहेवाय छे, आ विषयनुं विवेचन जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिना सातवां वक्षस्कार में स्पष्ट

શકુનિ-ચતુષ્પદ-નાગ-કિંસ્તુવ્રનામાનિ કરણાનિ તુ કૃષ્ણચતુર્દશ્યમાવાસ્વા-
શુક્રપ્રતિપદ્યોગભાવિત્વાચ્યાજ્યાનિ । અવશિષ્ટે દ્વે કરણે સ્ત્રીવિલોચનગરાદિસઙ્ગકે
સામાન્યે, ઇતિ સામ્પ્રદાયિકાઃ ।

યત્તુ ગણિવિદ્યાપ્રકીર્ણકકૃતશ્વતુષ્પદં નાગં ચેતિ દ્વે કરણે નિષ્ક્રમણે પ્રશંસન્તિ,
યયા—“ નાગે ચઝપ્પણ યાવિ, સેહનિક્સત્તમણં કરે ” ઇતિ ।

તત્ત્વ સમીચીનમ્, નિષ્ક્રમણેઽમાવાસ્વાયાઃ પ્રતિષિદ્ધત્વેન નિયમતસ્તદ્યોગ-
ભાવિનોસ્તયોઃ પ્રાચ્યસ્ત્યાઽસંભવાત્ ।

શકુનિ, ચતુષ્પદ, નાગ ઓર કિંસ્તુવ્ર નામક કરણ કૃષ્ણ પક્ષકી ચતુર્દશી, અમાવાસ્વા,
શુક્રપક્ષકી પ્રતિપદા કે યોગસે ભાવિત હોને કે કારણ ત્યાજ્ય હો જાતે હૈં । શેષ દ્વો કરણ
સ્ત્રીવિલોચન ઓર ગરાદિ નામક સાધારણ હૈં । પરમ્પરા કો જાનને વાલોં કા યહ મત્ત હૈં ।

ગણિવિદ્યાપ્રકીર્ણકકારને દીક્ષા કે વિષય મં ચતુષ્પદ ઓર નાગ નામક દો કરણ
પ્રશસ્ત માને હૈં, ઉન્હોં ને કહા હૈં કિ-“નાગે ચઝપ્પણ યાવિ સેહનિક્સત્તમણં કરે” અર્થાત્
નાગ ઓર ચતુષ્પદ નક્ષત્ર મં નિષ્ક્રમણ કરના ચાહિયે, અર્થાત્ શિષ્યકો દીક્ષા દેના ચાહિય,
ઉનકા યહ કથન સમીચીન નહીં હૈં, કારણ યહ હૈં કિ નિષ્ક્રમણ મં અમાવાસ્વા નિષિદ્ધ
માની ગઈ હૈં, ઇસીલિયે અમાવાસ્વા કે યોગ સે ભાવિત ઉક્ત દોનોં કરણોં કા પ્રશસ્ત હોના
અસંભવ હૈં ।

શકુનિ, ચતુષ્પદ, નાગ અને કિંસ્તુવ્ર નામના કરણ કૃષ્ણ પક્ષની ચૌદશ,
અમાવાસ્વા, શુક્ર પક્ષના પડવાના યોગથી ભાવિત હોવાથી ત્યાજ્ય બની જાય છે.
બાકી બે કરણ સ્ત્રીવિલોચન અને ગરાદિ નામના સાધારણ છે. પરમ્પરા બાલ્યવા-
ધાણાનો આ પ્રમાણે મત છે.

ગણિવિદ્યાપ્રકીર્ણકકારે દીક્ષાના વિષયમાં ચતુષ્પદ અને નાગ નામના બે
કરણોને ઉત્તમ માન્યા છે. તેણે કહ્યું છે કે:-“નાગે ચઝપ્પણ યાવિ સેહનિક્સત્તમણં કરે”
નાગ અને ચતુષ્પદ નક્ષત્રમાં નિષ્ક્રમણ કરવું જોઈએ, અર્થાત્ શિષ્યને દીક્ષા આપવી
જોઈએ. તેમનું આ કથન બરાબર નથી, કારણ એ છે કે-નિષ્ક્રમણમાં-દીક્ષામાં-
અમાવાસ્વા નિષિદ્ધ માની છે, એટલા માટે અમાવાસ્વાના યોગથી ભાવિત ઉપર
કહેલા બંને કરણો ઉત્તમ હોય તે વાત અસંભવ છે.

मासे तु पौडशे मासे, समूलं तद्विनश्यति ॥ १ ॥” इति ।

शुक्लपक्षे भद्रा चतुर्थ्यामेकादश्यां च तिथिपरार्द्धभागस्थायिनी, अष्टम्या पूर्णिमायां च तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी भवति, कृष्णपक्षे तु सा तृतीयायां दशम्यां च तिथिपरार्द्धभागस्थायिनी, सप्तम्यां चतुर्दश्यां च तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी भवति ।

तत्र तिथिपश्चार्द्धभागस्थायिनी भद्रा दिवसं व्याप्नोति, तथा तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी रात्रिं व्याप्नोति चेत्तदा न दोषावहा ।

भद्रायार्द्धिशर्द्धटिकामानेन पश्चिमं घटिकात्रयं पुच्छमित्यभिधीयते । तद् भद्रापुच्छं शुभम् ।

“भद्रा करण में किया हुआ कार्य प्रथम तो सिद्ध ही नहीं होता, कदाचित् सिद्ध भी होजाय तो सोलहवाँ महीना आने पर उसका समूल विनाश हो जाता है” ॥१॥

भद्रा शुक्लपक्ष में चौथ तथा एकादशी तिथि के उत्तरार्ध में रहती है, और अष्टमी तथा पूर्णिमा के दिन तिथि के पूर्वार्ध में रहती है ।

कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के दिन तिथि के उत्तरार्ध में और सप्तमी एवं चतुर्दशी को तिथि के पूर्वार्ध में रहती है ।

तिथि के उत्तरार्ध में रहने वाली भद्रा दिनको व्याप्त करती हो और पूर्वार्धभाग में रहने वाली रात्रिको व्याप्त करती हो तो कोई दोष नहीं है ।

तीस घड़ीकी भद्रा की अन्तिम तीन घड़ियाँ पूँछ कहलाती हैं । भद्राकी यह पूँछ शुभ है ।

“भद्रा करणुमां करेणुं काम प्रथम तो सिद्ध धतुं नथी, कदाचित् सिद्ध पण् धाय तो सोणयो भंदिनेो आपतां तेना समूल विनाश धाय छे.” ॥ १ ॥

भद्रा शुक्ल पक्षमां चोथ तथा ओकादशी तिथिना उत्तरार्धमां रहे छे, अने आठम तथा पूनंभना द्विसे तिथिना पूर्वार्धमां रहे छे.

कृष्णपक्षमां त्रीज अने दशमीना दिन तिथिना उत्तरार्धमां अने सातम तथा चौदशना दिन तिथिना पूर्वार्धमां रहे छे.

तिथिना उत्तरार्धमां रहेवावाणी भद्रा द्विपसने व्याप्त करती होय, अने पूर्वार्ध भागमां रहेवावाणी रात्रीने व्याप्त करती होय तो कोई दोष नथी.

तीस घड़ीनी भद्रानी छेवही तलु घड़ीजां पूँछ कहेवाय छे; अने भद्रानी ते पूँछ शुभ छे.

चन्द्रतो लग्नतश्च सप्तमे स्थाने रविकुजभार्गवास्त्योज्याः, तत्र प्रयाणां संगमे दीक्षणीयः प्रतिपाती भवति । एषु त्रिषु द्वावन्यतमो वा तत्र तिष्ठति चेत्तदा कुशीलः क्रोधादिवशमथ भवति । यदि सप्तमं स्थानं रिक्तं, चन्द्रश्च ग्रहान्तरवर्जितस्तदा दीक्षा शुभा । यदि चन्द्रस्य गुरु-बुधयोरन्यतरेण संगमस्तर्हि शुभम् ।

(१०) अथ त्वरितकर्त्तव्यदीक्षासमयनिरूपणम् ।

(क) सिद्धच्छायालग्नम् ।

चन्द्रमासे तथा लग्न से सातवें स्थान पर सूर्य, कुज (मङ्गल) भार्गव, (शुक्र) हों तो व्याज्य हैं। अगर इन तीनों का सङ्गम हो तो दीक्षा लेने वाला प्रतिपाती (पडिवाई) हो जाता है । अगर इन तीनों में से दो अथवा कोई भी एक वहां हो तो दीक्षा लेने वाला कुशील और क्रोध आदि दुर्गुणों का धारक होता है । अगर चन्द्र दूसरे ग्रहों से वर्जित हो तो दीक्षा शुभ समझनी चाहिए । अगर गुरु और बुध में से किसी एक के साथ चन्द्रमाका सङ्गम हो तो शुभ है ।

(१०) तुरन्त दीक्षा देनेका समय—

(क) सिद्धच्छाया-लग्न—

त्रील, छका, नवमा अने अग्निसारमा स्थानमा स्थित शुक्र निर्भल होय छे, तेथी करी शुक्र अस्त होय तो पशु दीक्षा अडण्ड करवी ते उत्तम मानवामा आव्यु छे. जेवो केछि आचार्यनो मत छे.

यद्रमाथी तथा लग्नथी सातमा स्थानमा सूर्य, मंगल शुक्र होय तो त्याज्य छे. अथवा जे त्रैयनो संगम होय तो दीक्षा लेनार प्रतिपाती (पडिवाई) थर्हल्य छे, अथवा जे त्रैभुमाथी जे अथवा केछि पशु जेक त्यां होय तो दीक्षा लेवावाणी कुशील अने क्रोध आदि दुर्गुणो धारण करनार अने छे, अथवा चन्द्र तथा लग्नथी सातमु स्थान भासी होय अथवा यद्रमा भील अहोथी वर्जित होय तो दीक्षा शुभ समझवी जेछि जे, अथवा शुक्र अने बुधमाथी केछि पशु जेकनी साथे यद्रनो संगम होय तो शुभ छे.

(१०) तुरन्त दीक्षा आपवानो समय—

(क) सिद्धछायालग्न—

અથ લગ્નવિચાર:-

નિષ્ક્રમણે મિથુન-સિંહ-કન્યા-વૃશ્ચિક-ધનુ-મકર-કુમ્ભ-મીનાનિ લગ્નનિ શુભાનિ । અન્યાનિ ચત્વારિ વર્જનીયાનિ ।

(૯) પ્રહવિચાર:-

દીક્ષાલગ્ને શનિશ્વર મધ્યમવલં, ગુરુ વલિયાંસં, શુક્ર વલહીનં ત્રિધાય દીક્ષા દેયા । દ્વિતીયે, પશ્ચમે, પષ્ટે, સપ્તમે, એકાદશે સ્થાને શનિમધ્યમવલ્લી ભવતિ । ત્રિકોણે કેન્દ્રે એકાદશે ચ સ્થાનેશ્વસ્થિતો ગુરુર્વલિયાન્ ભવતિ । તૃતીયે, પષ્ટે, નવમે, દ્વાદશે ચ સ્થાને સ્થિતઃ શુક્રો વલહીનો ભવતિ, અત એવ શુક્રાસ્તેઽપિ દીક્ષા ગ્રાહ્યેતિ સંપ્રદાયવિદઃ ।

(૮) લગ્ન-વિચાર—

દીક્ષા અહીંકાર કરને મેં-મિથુન, સિંહ, કન્યા, વૃશ્ચિક, ધનુ, મકર, કુમ્ભ ઓર મીન, લગ્ન શુભ હૈં । શેષ ચાર વર્જનીય હૈં ।

(૯) પ્રહ-વિચાર—

દીક્ષાલગ્ન મેં શનૈશ્વર મધ્યમ વલ વાલા, ગુરુ વલશાલી ઓર શુક્ર વલહીન હો' તો દીક્ષા દેની યાહિયે । દૂસરે પાંચવેં, છઠે, સાતવેં ઓર ગ્યારહવેં સ્થાન મેં શનિ મધ્યમ વલ વાલા હોતા હૈ । ત્રિકોણ મેં કેન્દ્ર મેં ઓર ગ્યારવેં સ્થાન મેં રહા હુબા, ગુરુ (વૃહસ્પતિ) વલશાલી સમજા યાતા હૈ । તીસરે, છઠે, નૌવેં ઓર ગ્યારહવેં સ્થાન મેં સ્થિત શુક્ર નિર્બલ હોતા હૈ । અત એવ શુક્ર કા અસ્ત હોને પર મી દીક્ષા પ્રહણ કરના પ્રશસ્ત માના ગયા હૈ, એસા કર્કે આચાર્યો કા કથન હૈ ।

(૮) લગ્ન-વિચાર—

દીક્ષા અંગીકાર કરવામાં મિથુન, સિંહ, કન્યા, વૃશ્ચિક, ધનુ, મકર, કુમ્ભ અને મીન-લગ્ન શુભ છે. બાકીના ચાર ત્યાગ્ય છે.

(૯) પ્રહ-વિચાર—

દીક્ષાલગ્નમાં શનૈશ્વર મધ્યમ બળવાળો શુક્ર બલશાળી અને શુક્ર બલહીન હોય તો દીક્ષા આપવી જોઈએ, ખાંભા, પાંચમા, છઠા, સાતમા અને અગિયારમા સ્થાનમાં શનિ મધ્યમ બળવાળો હોય છે, ત્રિકોણમાં કેન્દ્રમાં અને અગિયારમા સ્થાનમાં રહેલો શુક્ર (વૃહસ્પતિ) બળશાળી સમજવામાં આવે છે.

नक्षत्राणि त्रिधिवारा-स्ताराश्चन्द्रवलं ग्रहाः ।
दृष्टान्यपि शुभं भावं, भजन्ते सिद्धछायाया ॥ १ ॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं, न वारा न च चन्द्रमाः ।
ग्रहा नोपग्रहाश्चैव, छायालग्नं प्रशस्यते ॥ २ ॥

न योगिनी न विष्टिश्च, न शूलं न च चन्द्रमाः ।
एषा वज्रमयी सिद्धिः, -रभेद्या त्रिदशैरपि ॥ ३ ॥

“सिद्धच्छाया लग्न हो तो दूषित तिथि नक्षत्र, वार, तारा, चन्द्र तथा दूषित ग्रह भी शुभफलदायक हो जाते हैं, अर्थात् सिद्धच्छायालग्न की विद्यमानता में नक्षत्र आदि का दोष नहीं माना जाता है ॥ १ ॥

एक मात्र छाया लग्न ही उत्तम है, उसकी समानता न तिथि कर सकती है, न नक्षत्र कर सकता है, न वार कर सकता है, न चन्द्रमा, न ग्रह कर सकने हैं और न उपग्रह ही कर सकते हैं ॥ २ ॥

योगिनी उसके सामने कुछ नहीं है, विष्टि (भद्रा) कोई चीज नहीं है, शूल और चन्द्रमा भी उस की विद्यमानता में कुछ भी नहीं विगाड सकता । सिद्धच्छाया लग्न एक ऐसी वज्रमयी सिद्धि है, जिसे देवता भी नहीं भेद सकते ॥ ३ ॥

“सिद्धछायालग्न होय तो दूषित नक्षत्र, तिथि, वार, तारा, चंद्र तथा दूषित ग्रह पक्ष शुभ धर्म न्यथे, अर्थात् सिद्धछायालग्ननी छात्ररीमां नक्षत्र आदिनो दोष मानवामां आवतो नधी. ॥ १ ॥”

एक मात्र छायालग्न ही उत्तम है. तेनो मुकाबलो तिथि, नक्षत्र, वार, चंद्रमा ग्रह अने उपग्रह कोष्ठ पक्ष करी शकता नधी. ॥ २ ॥

योगिनीनुं तेना सामे गण नधी. विष्टिनुं पक्ष गण नधी, शूल अने चन्द्र पक्ष छायालग्ननी छात्ररीमां कोष्ठ प्रकारे कोष्ठ पक्ष गणाडी शकता नधी. सिद्ध-छायालग्न एक ऐसी वज्रमयी सिद्धि है अने देवता पक्ष सेवी शकता नधी. ॥३॥”

शुभतिथिवारनक्षत्रलग्नादीनामभावे त्वरितकर्त्तव्येषु कार्येषु सिद्धच्छायालग्न-
मुपादेयम् । यदि समतलभूमौ स्वशरीरच्छाया चन्द्र-शुक्र-शनि-वासरेषु साक्षांऽष्टपद-
प्रमाणा, भीमे नवपदप्रमाणा, बुधेऽष्टपदप्रमाणा, रवावेकादशपदप्रमाणा, गुरौ सप्त-
पदप्रमाणा भवेत्तदा सा सिद्धच्छायाख्यं लग्नं प्रोच्यते । तत्र दीक्षादिशुभकार्यं
विधेयम् । अस्मिन् सिद्धच्छायालग्ने संप्राप्ते तिथिवारनक्षत्रभद्रालग्नादिचिन्तनमनाव-
श्यकम् । उक्तञ्च—

शुभ तिथि, वार; नक्षत्र और लग्न आदि के अभाव में तुरन्त करने योग्य कार्यों में
सिद्धच्छायालग्न ही उपादेय है ।

समतल भूमि पर अपने शरीर की छाया सोमवार, शुक्रवार, और शनिवार, के दिन
साढे आठ पैर बराबर हो, मङ्गलवार को नौ पैर बराबर हो, बुधवार को आठ पद प्रमाण हो,
रविवार को ग्यारह पद प्रमाण हो, और गुरुवार को सात पैर छाया हो तो उसे सिद्धच्छाया
लग्न कहते हैं, उस में दीक्षा आदि शुभ कार्य किये जा सकते हैं । यह सिद्धच्छायालग्न प्राप्त
हो तो तिथि, वार, नक्षत्र, भद्रा और लग्न आदि का विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।
कहा भी है —

शुभ तिथि, वार, नक्षत्र અને लग्न आदिना अभावमा तुरन्त करवा योज्य
कार्योमा सिद्धछायालग्न न् ग्रहणु करवा योग्य छे.

समतल भूमि उपर पेटाना शरीरनी छाया, सोमवार शुक्रवार અને शनिवारना
दिवसे साढा आठ पग प्रमाणु होय, मंगलवारना दिवसे नव पग प्रमाणु होय,
बुधवारे आठ पग प्रमाणु, रविवारे अंगिआर पग, शुक्रवारे सात पगलां छायां
होय तो तेने सिद्ध छायालग्न कहे छे. आ लग्नमां दीक्षा आदि शुभ कार्यं
करी शक्य छे. आ सिद्धछायालग्न प्राप्त होय तो तिथि, वार, नक्षत्र, भद्रा અને
लग्न आदिना विचार करवानी आवश्यकता नथी. कहुं पबु छे—

नलवन्नितान्तमातुरः सन् निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तरसार्णवं द्रव्यक्षेत्रकालभावविदं निर्ग्रन्थप्रवचनमर्मज्ञं गुरुं दीक्षादानार्थं प्रार्थयते तदा तस्मै तदानीमेव प्रवक्ष्यामदानं शुभम्, नहि तत्र तिथिवारनक्षत्रादीनां विचारापेक्षा ।

(११) अथ केशलुञ्चनम्—

दीक्षाग्रहणानन्तरं यदा कदापि केशलुञ्चनं कर्तुमिच्छेत्तदा शनिमङ्गल दिवसौ त्याज्यौ, कृत्तिका, विशाखा, मघा, भरणी, एतानि चत्वारि नक्षत्राणि च वर्जनीयानि ।

आत्मरक्षा का अन्य उपाय न देखकर एकमात्र दीक्षा को ही शरण समझने वाला तीव्र वैराग्य की प्रभा से चमकता हुआ मोक्षाभिलाषी शिष्य, रोम-रोम में जिस के आग लगी हो ऐसे पुरष की भाँति अत्यन्त आतुर होकर तरङ्गरहित समुद्र के समान, शान्त रस के सागर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के ज्ञाता और निर्ग्रन्थ प्रवचन के मर्मज्ञ गुरुसे दीक्षा देने के लिये प्रार्थना करे तो उसको उसी समय दीक्षा दे देना शुभ है, ऐसे प्रसंग पर तिथि, वार, नक्षत्र आदि के विचार की आवश्यकता नहीं है ।

(११) केशलोच—

दीक्षा धारण करने के पश्चात् केशलोच करने में शनिवार और मंगल वार त्यज्य है तथा कृत्तिका, विशाखा, मघा, और भरणी, ये चार नक्षत्र वर्जनीय हैं ।

यद्यं गयुं छे ज्येवा पुरषणी जेम, आत्मरक्षानो अन्ये केर्य उपाय नहि हेष्वाथी ज्येक मात्र हीक्षाने ज शरषु-आश्रय समज्जवावाणा, तीव्र वैराग्यनी प्रभा-तेज्ज्थी यमकतो मोक्षाभिलाषी शिष्य रोम-रोममां जेने अग्नि लागी छे, ज्येवा पुरषणी जेम अत्यन्त आतुर जनीने तरङ्गरहित समुद्र प्रभाज्जे शान्त रसना सागर, द्रव्य, क्षेत्र, काल अने लावना जलुनार अने निर्ग्रन्थ प्रवचनना मर्मज्ञ गुरुथी हीक्षा देवा भाटे प्रार्थना करे, तो तेने तेज्ज वपथे हीक्षा आपथी शुभ छे ज्येवा प्रसंगे तिथि, वार, नक्षत्र आदिने विचार करवानी जर नथी.

(११) केशलोच

हीक्षा धारण कर्था पछी केशलोच करवामां शनिवार अने मंगलवार त्याज्य छे तथा कृत्तिका, विशाखा, मघा, अने भरणी, आ चार नक्षत्र त्यज्जवा योग्य छे,

(સ્વ) શકુચ્છાયાલગ્ન—

દ્વાદશાકુલપરિમિતશકુચ્છાયા રવિ-સોમ-મૌમ-બુધ-ગુરુ-શુક્ર-શનિ-વાસરેષુ ક્રમેણ વિંશતિ-પોહશ-પદ્મદશ-ચતુર્દશ-ત્રયોદશ-દ્વાદશ-દ્વાદશાકુલપરિમિતા, તથા શનિવાસરે દ્વાદશાકુલપ્રમાણા ચેત્તર્હિ સા શકુચ્છાયાલ્પ્યં લગ્નં પ્રોચ્યતે । તત્ર દીક્ષાદિ કાર્યં શુભમ્ ।

(ગ) અત્યુત્કણ્ઠિતયોગ્યશિષ્યાય દીક્ષાસમયઃ—

વિપયાટવીદાવદહનજ્વાલામાલાકલિતસ્થાન્તોઽનન્તજન્મજરામરણાદિભયોદ્વિગ્નિઃ સમન્તતઃ પ્રજ્વલિતે સન્નિ સુપ્તમિવાદીપ્તપ્રદીપ્તસંસારાન્તઃ સરન્તમાત્મનં રક્ષિતમુષાયાન્તરમનવલોક્ય પ્રવ્રજ્યામાત્રશરણદર્શીં તીવ્રચૈરાગ્યપ્રભાભાસમાનઃ પ્રતિરોમોજ્જ્વલિતા-

(સ્વ) શકુચ્છાયાલગ્ન—

વારહ અક્ષલ લઘ્વી કીલી કો પરછાઈ અગર રવિવાર કો વીસ અંગુલ, સોમવાર કો સોલહ અંગુલ, મંગલવાર કો પન્દરહ અંગુલ, બુધવાર કો ચૌદહ અંગુલ, ગુરુવાર કો તેરહ અંગુલ, શુક્રવાર કો વારહ અંગુલ, તથા શનિવાર કો મી વારહ અંગુલ હો ઉસે શકુચ્છાયા લગ્ન કહતે હૈ । ઇસ લગ્ન મેં દીક્ષા આદિ કાર્યં શુભ હૈં ।

(ગ) તીવ્ર ઉત્કણ્ઠા વાલે દીક્ષાર્થી કા દીક્ષાસમય—

વિપયવાસના કી વિપય અટવી મેં વ્યાપ્ત દાવાનલ કી વિકટ જ્વાલાઓ સે જિસકા અન્તઃ-કરણ છુલસ ગયા હૈ, ઓર જો અનન્ત જન્મ જરા મરણ આદિ કે ભય સે ઉદ્વિગ્ન હૈ, ચારો ઓર સે મકાન મેં આગ લગ જાને પર જિસ કા સર્વસ્વ ભસ્મ હો ગયા હૈ એસે પુરુષ કી માંતિ

(સ્વ) શકુચ્છાયાલગ્ન—

બાર આંગળ લાંબી ખીલીનો પડછાયો રવિવારે વીસ આંગળ, સોમવારે સોળ આંગળ, મંગળવારે પંદર આંગળ, બુધવારે ચૌદ આંગળ, ગુરુવારે તેર આંગળ, શુક્રવારે બાર આંગળ, તથા શનિવારે પશુ બાર આંગળ હોય તો તેને શકુચ્છાયાલગ્ન કહે છે. તે લગ્નમાં દીક્ષા આદિ કાર્યં શુભ છે.

(ગ) તીવ્ર ઉત્કંઠાવાલા દીક્ષાર્થીનો સમય—

વિપયવાસનાની વિપય અટવી (વન)માં વ્યાપ્ત દાવાનલની વિકટ જ્વાલાઓથી જેનું અન્તઃકરણ બળી ગયું છે, અને જે અનન્ત જન્મ, જરા, મરણ વગેરેના ભયથી ચિંતાતુર છે, ચારે બાજુથી મકાનમાં આગ લાગવાથી જેનું સર્વસ્વ ભસ્મ

(१३) अथ नूतनपात्रव्यापृतिः—

गोचर्यादिनिमित्तं नूतनपात्रव्यापृतिश्च, मृगशिरःपुष्याश्विनीहस्तानुराधा-
चित्रारैवतीषु, सोमगुरुवासरयोश्च शुभदा ।

(१४) आचार्यादिपदप्रदानसमयः—

आचार्यादिपदप्रदाने—श्रवणं, ज्येष्ठा, पुष्यम्, अभिजित्, हस्तः, अश्विनी,
रोहिणी, उत्तराश्रयं, मृगशिरः, अनुराधा, रैवती, एतानि नक्षत्राणि शुभानि
शोभनतिथिवाराद्योऽपि द्रष्टव्याः ।

अथ (४) द्रव्यानुयोगः—

द्रवति=गच्छति प्राप्नोति मुञ्चति वा तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यम् । अथवा—

(१३) नूतन पात्र का प्रयोग

गोचरी आदि के लिए नवीन पात्र का उपयोग मृगशिर, पुष्य, अश्विनी, हस्त,
अनुराधा, चित्रा और रैवती नक्षत्रों में, तथा सोमवार और गुरुवार के दिन करना शुभ है ।

(१४) आचार्य आदि पदवीदान का समय

आचार्य आदि पदवी देने में श्रवण, ज्येष्ठा, पुष्य, अभिजित्, अश्विनी, रोहिणी,
उत्तराश्रय, (उत्तराषाढा उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी) मृगशिर, अनुराधा और रैवती, ये
नक्षत्र शुभ हैं । इस प्रसङ्ग पर शुभ तिथि और शुभ वार आदि भी देखना चाहिए ।

(४) द्रव्यानुयोग—

आगे की पर्याय प्राप्त करने वाला और पूर्व पर्यायों का त्याग करने वाला द्रव्य

(१३) नया पात्रनेो उपयोग

गोचरी आदि भाटे नया पात्रनेो उपयोग मृगशीर्षं, पुष्य, अश्विनी, हस्त,
अनुराधा, चित्रा, अने रैवती नक्षत्रोभां, तथा सोमवार अने गुरुवारना दिवसे करवो
ते शुभ छे.

(१४) आचार्य आदि पदवीदाननेो समय—

आचार्य आदि पदवी आपवामां श्रवण, ज्येष्ठा, पुष्य, अभिजित्, हस्त,
अश्विनी रोहिणी, उत्तराश्रय (उत्तरा-षाढा, उत्तरा-भाद्रपद, उत्तरा-फाल्गुनी)
मृगशिर, अनुराधा अने रैवती, आ नक्षत्रो शुभ छे. आ प्रसंगे उपर शुभ तिथि
अने शुभ वार वगेरे पणु नेवुं नेधये.

(४) द्रव्यानुयोग—

आगणनी पर्याय प्राप्त करनारा अने प्रथमनी पर्यायनेो त्याग करवावाणाने

(१२) अथ नवदीक्षितस्य प्रथमगोचरीविचारः—

प्रथमगोचरीविषये तीक्ष्णोग्रमिश्रनक्षत्राणि शनिमङ्गलदिवसौ च वर्जयेत् ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, मूलम्, एतानि चत्वारि तीक्ष्णनक्षत्राणि । भरणी, पूर्वात्रयं, मघा, एतानि पञ्चोग्रनक्षत्राणि । कृत्तिका, विशाखा, इमे द्वे मिश्रनक्षत्रे ।

रिक्ताऽमावास्याक्षयतिथयस्त्याज्याः । शनिमङ्गलवारयोगे रिक्ताऽपि प्रशस्ता विज्ञेया ।

(१२) नव दीक्षित की प्रथम गोचरी—

पहली वार गोचरी के विषय में तीक्ष्ण उग्र और मिश्र नक्षत्र एवं शनि तथा मङ्गल वार त्याज्य हैं ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा और मूल, ये चार नक्षत्र तीक्ष्ण हैं । भरणी, पूर्वात्रय— (पूर्वाषाढा पूर्वभाद्रपदा और पूर्वाफाल्गुनी) और मघा, ये पाँच उग्र नक्षत्र हैं । कृत्तिका और विशाखा, ये दो नक्षत्र मिश्र कहलाते हैं ।

रिक्ता तिथि, अमावास्या और क्षय तिथि त्याज्य है, हैं। यदि शनि और मंगल वार का योग हो तो रिक्ता तिथि भी प्रशस्त है ।

(१२) नवदीक्षितनी प्रथम गोचरी—

पहलेवार गोचरीना विषयमां तीक्ष्ण, उग्र अने मिश्र नक्षत्र तथा शनि अने मंगलवार त्याज्य छे.

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, अने मूल, आ चार नक्षत्र तीक्ष्ण छे, भरणी, पूर्वा (पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, अने पूर्वाफाल्गुनी) अने मघा अने पांच नक्षत्र उग्र नक्षत्र छे. कृत्तिका अने विशाखा, आ जे नक्षत्र मिश्र कहलाय छे.

रिक्ता तिथि, अमावास्या अने क्षय तिथि त्याज्य छे, परन्तु जे शनि अने मंगलवारने योग होय तो रिक्ता तिथि पण उत्तम छे.

दयः सामान्यगुणाः सन्ति । एवं गतिहेतुत्वं धर्मे, स्थितिहेतुत्वमधर्मे, अवकाश-
दानहेतुत्वमाकाशे, वर्तनहेतुत्वं काले, रूपादिमत्त्वं पुद्गले विशेषगुणाः सन्तीति
द्रव्यलक्षणसमन्वयः ।

कश्चित् 'सद् द्रव्यलक्षणम्' इति सूत्रयित्वा 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं
सत्' इति सूत्रेण सच्छब्दविवरणं कुर्वन् द्रव्यसामान्यलक्षणमुक्त्वा विशेष-
विज्ञानजननाय विशेषलक्षणमवोचत्-'गुणपर्यायवद्द्रव्यम्' इति । तदपि प्रकृत-

अस्तित्व (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी विनाश न हो) वस्तुत्व-द्रव्यत्व
(जिस शक्ति के निमित्त से पर्याय सदैव बदलती रहे) और प्रमेयत्व-ज्ञेयत्व (जिस शक्ति के
निमित्त से द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय हो) आदि सामान्य गुण हैं । इसीप्रकार
परमास्तिकाय में गतिहेतुत्व (गतिकारणता) अधर्मास्तिकाय में स्थितिहेतुत्व (स्थितिकारणता)
आकाश में अवकाशदानहेतुत्व (अवकाशदायिता) काल में वर्तनाहेतुत्व, (नवपुराण-
कारणता) आदि, और पुद्गल में रूपादिमत्त्व विशेष गुण हैं ? अतः इन सब में द्रव्य के लक्षण
की संगति होजाती है ।

किसी आचार्यने 'सद् द्रव्यलक्षणम्' ऐसा सूत्र रचकर 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं
सत्' अर्थात् जिस में उत्पाद विनाश और ध्रौव्य युगपत् पाये जायें, वह सत् है, इस सूत्र
के द्वारा सत् की व्याख्या करते हुए सामान्य द्रव्य का स्वरूप बतला कर विशेष बोध

अस्तित्व (जे शक्तिना निमित्तथी द्रव्यना क्यारेय पण नाश न होय.) वस्तुत्व-
द्रव्यत्व (जे शक्तिना निमित्तथी पर्याय हुंभेशां बदलती रहे) अने प्रमेयत्व-ज्ञेयत्व
(जे शक्तिना निमित्तथी द्रव्य कोरि न कोरि ज्ञानना विषय होय) आदि सामान्य
गुण छे. जे प्रमाणे धर्मास्तिकायमां गतिहेतुत्व (गतिकारणता) अधर्मास्तिकायमां
स्थितिहेतुत्व (स्थितिकारणता) आकाशमां अवकाशदानहेतुत्व (अवकाशदायित्व)
कालमां वर्तनाहेतुत्व (नवपुराणकारणता) आदि, अने पुद्गलमां रूपादिमत्त्व विशेष
गुण छे. तेथी जे सर्वमां द्रव्यना लक्षणनी संगति थछ नय छे.

कोरि आचार्ये "सद् द्रव्यलक्षणम्" जेथुं सूत्र रचीने 'उत्पाद व्यय-ध्रौव्ययुक्तं
सत्' अर्थात् जेमां उत्पाद, विनाश अने ध्रौव्य जेक कारणे जेवामां आवे ते "सत्"
छे. आ सूत्र द्वारा सत्नी व्याख्या करता थका सामान्य द्रव्यनुं स्वरूप बतावीने

દ્રૂયતે = પાપ્યતે મુચ્યતે વા તૈસ્તૈઃ પર્યાયૈરિતિ દ્રવ્યમ્ । દ્રવ્યસ્ય - અનુયોગઃ
દ્રવ્યાનુયોગઃ ।

દ્રવ્યાનુયોગો હિ દ્રવ્યાનાં યથાવસ્થિતસ્વરૂપાવગ્રોધને સમીચીનયુક્તિ મદર્શ-
યતિ । તથા દર્શનસ્ય નૈર્મલ્યમ્ । તતશ્ચ સમ્યક્ ચારિત્રં સંપદ્યતે । તથા ચાયમપિ
ચરણકરણાનુયોગં પોપયતીતિ વોધ્યમ્ ।

દ્રવ્યલક્ષણમ્—

અથ કિં તાવદ્ દ્રવ્યમ્ ? ઉચ્યતે- “ગુણાશ્રયો દ્રવ્યમ્” । યથા
જીવે જ્ઞાનદર્શનચારિત્રમુલ્લોપયોગાદયો વિશેષગુણાઃ, અસ્તિત્વ-દ્રવ્યત્વ-જ્ઞેયતા

કહલાતા હૈ । અથવા જો પર્યાયોં કે દ્વારા પ્રાપ્ત હો, અથવા પર્યાયોં સે મુક્ત હો ઉસે, દ્રવ્ય
કહતે હૈં । એસે દ્રવ્ય કે અનુયોગ કો દ્રવ્યાનુયોગ કહતે હૈં ।

દ્રવ્યાનુયોગ દ્રવ્યોં કા યથાર્થ સ્વરૂપ સમજાને કે લિપ્ સમીચીન માર્ગ પ્રદર્શિત
કરતા હૈ । ઉસ સે સમ્યગ્દર્શન નિર્મલ હોતા હૈ, ઓર સમ્યગ્દર્શન કી નિર્મલતા સે સમ્યક્
ચારિત્ર કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । ઇસ પ્રકાર યહ અનુયોગ મી ચરણકરણાનુયોગ કા પોષક હૈ ।

દ્રવ્ય કા લક્ષણ—

દ્રવ્ય કિસે કહતે હૈં ? ઇસ પ્રશ્ન કા ઉત્તર ઇસ પ્રકાર હૈ—જો ગુણોં કા આધાર
હો વહ દ્રવ્ય હૈ, જૈસે જીવન મેં જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, સુખ ઓર ઉપયોગ આદિ વિશેષ ગુણ હૈં ।

દ્રવ્ય કહે છે, અથવા જે પર્યાયોં દ્વારા પ્રાપ્ત હોય અથવા પર્યાયોંથી યુક્ત હોય તેને
દ્રવ્ય કહે છે. એવા દ્રવ્યના અનુયોગને દ્રવ્યાનુયોગ કહે છે.

દ્રવ્યાનુયોગ દ્રવ્યોના યથાર્થ સ્વરૂપને સમજાવવા માટે બરાબર સાચા માર્ગ
પ્રદર્શિત કરે છે, તેથી સમ્યગ્દર્શન નિર્મલ થાય છે, અને સમ્યગ્દર્શનની
નિર્મલતાથી સમ્યક્ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે. એ પ્રમાણે આ અનુયોગ પણ ચરણ
કરણાનુયોગનો પોષક છે.

દ્રવ્યનું લક્ષણ—

દ્રવ્ય કોને કહે છે ? એ પ્રશ્નનો ઉત્તર આ પ્રમાણે છે—જો ગુણોના આધાર હોય તે દ્રવ્ય
છે, જે પ્રમાણે ભવમાં જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર સુખ અને ઉપયોગ આદિ વિશેષ ગુણ છે.

सुखवीर्यादयः, पुद्गलस्य वर्णगन्धरसस्पर्शादयो गुणाः । 'मात्र'-शब्दोपादनं पर्यायेऽतिप्रसङ्गनिवारणाय ।

द्रव्यस्वरूपविचारेण 'गुणसमुदायो द्रव्य'-मिति प्रतीयते, यथा मूलस्कन्धशाखाप्रशाखादीनां समुदायो वृक्षः, तथैवास्तित्व-परिणामित्व-वस्तुत्व - ज्ञेयत्व - प्रमेयत्व - प्रदेशवत्त्वादिसामान्यगुणानां चेतनत्व-गतिहेतुत्व-स्थितिहेतुत्वा - अवकाशदानहेतुत्व - वर्तनाहेतुत्व - वर्ण - गन्ध - रस - स्पर्श-

लक्षण है, जैसे-जीव के गुण-ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य आदि हैं, तथा पुद्गल के गुण वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श आदि हैं । उपर जो 'मात्र' (सिर्फ) शब्द का प्रयोग किया गया है; वह पर्याय में अतिप्रसङ्ग निवारण करते के लिए है । अर्थात् गुण केवल द्रव्य में होते हैं, पर्याय में नहीं होते ।

द्रव्य के स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है । जैसे मूल, स्कन्ध, शाखा और प्रशाखा आदि का समूह ही वृक्ष है, उसी प्रकार अस्तित्व, परिणामित्व, वस्तुत्व, ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशवत्त्व आदि सामान्य गुणों का, तथा चेतना, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवकाशदानहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्व आदि विशेष गुणों का समूह ही द्रव्य है । यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि-विभिन्न द्रव्यों के

रहेषु' ते शुषुतुं लक्ष्यु' छे. जेवी रीते एवना शुषु-ज्ञान, दर्शन, सुख अने वीर्य आदि छे. तथा पुद्गलना शुषु-वर्ण, गंध, रस अने स्पर्श आदि छे. उपर जे 'मात्र' शब्दने प्रयोग क्यो' छे ते पद्योपमां अतिप्रसंग निवारणु करवा भाटे छे, अर्थात् शुषु हेवल द्रव्यमां डोय छे, पद्योपमां डोय नहि.

द्रव्यना स्वरूप पर विचार करवाधी नष्टाय छे के शुषुनो समुदाय ज द्रव्य छे. जे रीते-मूल, स्कंध, शाखा अने प्रशाखा आदिनो समूह ते वृक्ष छे. जे प्रमाणे अस्तित्व, परिणामित्व वस्तुत्व, ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशवत्त्व आदि सामान्य शुषुनो, तथा चेतना गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवकाशदानहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, वर्ण, रस, गंध, स्पर्शवत्त्व आदि विशेष शुषुनो समूह ते द्रव्य छे. आदि' जे प्राद प्र. भा. ८

लक्षणे समाविष्टमेवेति गुरुरलक्षणं नावश्यकमिति ज्ञेयम् ।

परमार्थतस्तु पर्याया न गुणतो भिन्नाः कार्यकारणयोरभेदात् । यथा कटककुण्डलादीनि कनकतो न भिन्नानि, घटशरावादीनि मृदो नातिरिक्तानि, तथा गुणजन्मनां पर्यायाणां न भेदो गुणेषु इति द्रव्यलक्षणे पर्यायशब्दमवेषो नावश्यक इत्यवसेयम् ।

गुणलक्षणम्—

द्रव्यस्याऽऽश्रयाश्रयिभावेन नित्यसहवर्तिनो धर्मा गुणाः, ते द्रव्यस्य शक्तिविशेषाः । द्रव्यमात्राश्रितं गुणस्य लक्षणम् । यथा जीवस्य ज्ञानदर्शन-

कारने के लिये विशेष लक्षण यह बतलाया है—'गुणपर्यायवद् द्रव्यम्' यह लक्षण भी प्रकृत लक्षण 'गुणाश्रयो द्रव्यम्' में समाविष्ट है, इस लिये उनका बड़ा लक्षण करने की आवश्यकता नहीं है ।

वास्तव में तो पर्याय, गुण से भिन्न नहीं है, क्योंकि कार्य और कारण में भेद नहीं होता । जैसे—कटक, कुण्डल आदि पर्याय सुवर्ण से भिन्न नहीं है, अतः गुणों से उत्पन्न होने वाले गुणों से भिन्न नहीं हैं । ऐसी अवस्था में द्रव्य के लक्षण में पर्याय शब्द डालना आवश्यक नहीं है ।

गुण का लक्षण—

द्रव्य के आश्रय आश्रयी रूपसे अथवा कथञ्चित् तादात्म्यरूपसे नित्य सहवर्ती धर्म, 'गुण' कहलाते हैं । 'गुण' द्रव्य की शक्तिविशेष है । सिर्फ द्रव्याश्रित होना गुण का

विशेष-लोभ करानेवा भाटे विशेष लक्षण अर्थात् तादात्म्य छे के—“गुणपर्यायवद् द्रव्यम्” आ लक्षण पणु प्रकृत (आलू) लक्षण (गुणाश्रयो द्रव्यम्) भां समाविष्ट छे । तेथी विशेष लक्षण करवानी आवश्यकता नथी ।

वास्तवभां तो पर्याय, शुद्धी भिन्न नथी, कारण के कार्य अने कारणभां लेक नथी, जेवी रीते कडां अने कुंडल आदि पर्याय सुवर्णथी भिन्न नथी घट अने शंकर आदि पर्याय भूतिका—माटीथी भिन्न नथी, कारण के शुद्धी उत्पन्न थवा वाणा पर्याय, शुद्धी भिन्न नथी, जेवी अवस्थाभां द्रव्यना लक्षणभां पर्याय शब्द नापवे ते जरूरी नथी ।

शुद्धता लक्षणम्—

द्रव्यना आश्रय—आश्रयी—रूपथी अथवा कथञ्चित् तादात्म्यरूपथी नित्य सहवर्ती धर्म शुद्ध कडेवाय छे । शुद्ध अर्थात् द्रव्यनी शक्तिविशेष छे, मात्र द्रव्याश्रित

ક્રમેણ દ્વાદશાઙ્ગતત્ત્વં વિજ્ઞાય જ્ઞાનધારાં મવર્દ્યયતિ । તત્ર તસ્ય વાલસંયમિનો જ્ઞાનં પ્રતિક્ષણં વિલક્ષણતામાપદ્યમાનમર્ધ્વમર્ધ્વં જાપમાનં જ્ઞાનં પર્યાયશબ્દવાચ્યતાં મજતિ । एवं दर्शनचारित्रादीनामपि पर्याया ज्ञातव्या । जीवस्य मानुषत्ववाल्यादयोऽपि पर्यायाः । पुद्गलस्य तु एकगुणकालत्वादयो पर्याया ज्ञेयाः । एवं च द्रव्यगुणाश्रितत्वं पर्यायस्य लक्षणमिति निश्चीयते । तथा चोक्तमुत्तराध्ययने—(अ. २८)

પહલે—પહલ આવશ્યક માત્ર કા અધ્યયન કરતા હૈ, ફિર સમિતિ ઓર ગુપ્તિ કા જ્ઞાન સમ્પાદન કરતા હૈ । તદનન્તર ક્રમ સે દ્વાદશાઙ્ગ કા તત્ત્વ જાન કર જ્ઞાન કી ધારા મેં વૃદ્ધિ કરતા હૈ, ઉસ વાલ મુનિ કા જ્ઞાન ક્ષણ—ક્ષણ મેં વિલક્ષણ હોકર નવીન—નવીન રૂપો મેં ઉત્પન્ન હોતા હુઆ 'પર્યાય' શબ્દ દ્વારા કહા જાતા હૈ । ઇસી પ્રકાર દર્શન ઓર ચારિત્ર આદિ ગુણો કે પર્યાય મો સમજ લેના ચાહિય । મનુષ્યતા, વાલકપન આદિ જીવ કે પર્યાય હેં ઓર એક—ગુણ—કાલપન આદિ પુદ્ગલ કે, વર્ણ—ગુણ કે પર્યાય હેં । ઇસ પ્રકાર યહ નિશ્ચિત હોતા હૈ કિ પર્યાય દ્રવ્ય ઓર ગુણ દોનો મેં હી રહતા હૈ । ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર મેં કહા હૈ—

“ગુણો કા જો આશ્રય હો ઉસે દ્રવ્ય કહતે હેં, ગુણ એક માત્ર દ્રવ્ય મેં હી રહતે હેં” । પર્યાયો કા લક્ષણ ઉમયાશ્રિત હોના હૈ, અર્થાત્ પર્યાય, દ્રવ્ય ઓર ગુણ દોનો મેં હી પાયે જાતે હેં” ।

કમળોની સેવા કરતા થકા પ્રથમ આવશ્યક માત્રનું અધ્યયન કરે છે, પછી સમિતિ અને શુષ્પિતનું જ્ઞાન સંપાદન કરે છે; ત્યાર પછી કમથી દ્વાદશાંગનું તત્ત્વ બાણી જ્ઞાનની ધારામાં વૃદ્ધિ કરે છે; તે બાલમુનિનું જ્ઞાન ક્ષણ—ક્ષણમાં વિલક્ષણ—તરેહવાર બની નવીન રૂપોમાં ઉત્પન્ન થાય છે તેને 'પર્યાય' શબ્દથી ઓળખવામાં આવે છે, એ પ્રમાણે દર્શન અને ચારિત્ર આદિ શુભોના પર્યાય પણ સમજ લેવા નોંધવે. મનુષ્યતા, બાલકપણ આદિ જીવના પર્યાય છે, અને એકશુભકાળપણ આદિ પુદ્ગલના વર્ણશુભનો પર્યાય છે. આ પ્રમાણે આ નિશ્ચિત થાય છે કે—પર્યાય, દ્રવ્ય અને શુભ એ બન્નેમાં રહે છે. ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રમાં કહ્યું છે—

“શુભોના જે આશ્રય હોય, તેને દ્રવ્ય કહે છે; શુભ એક માત્ર દ્રવ્યમાં જ રહે છે, અને પર્યાયોનું લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોય છે, અર્થાત્ પર્યાય, દ્રવ્ય અને શુભ બન્નેમાં નોવામાં આવે છે”.

વંત્લાદિવિશેષગુણાનાં ચ સમુદાયો દ્રવ્યમ્ । एवं 'द्रव्यपर्यायस्वरूपमपी'-स्यनुपदमेव
વક્ષ્યતે ।

પર્યાયલક્ષણમ્—

परियन्ति=उत्पादविनाशौ प्राप्नुवन्ति न सर्वदा तिष्ठन्तीति पर्यायाः । यद्वा-
परि=सर्वथा अयन्ते=गच्छन्ति द्रव्यगुणौ समाश्रयन्तीति पर्यायाः ।

द्रव्यस्योत्पादविनाશશાલિનો ધર્માઃ પર્યાયાઃ । પર્યાયા હિ દ્રવ્યં ગુણ
ચાશ્રિત્ય વર્તન્તે । કાલભેદાદેકમેવ જ્ઞાનં જીવસ્યાન્યદન્યદ્રૂપં દધત્ પર્યાયશબ્દ-
વાચ્યં ભવતિ, યથા કશ્ચિદ્દષ્ટવર્ષીયો વિનયી પ્રમાદવિકથાવર્જિતો વાલમુનિ-
ગુરુચરણસરોજં સેવમાનઃ પૂર્વમાવશ્યકમાત્રમધીત્ય સમિતિગુપ્તિજ્ઞાનં સંપાદયતિ,

વિશેષ ગુણો કા સમૂહ નહીં બન સકતા હૈ । ऐसे द्रव्य और पर्याय के विषय में भी समझना
चाहिए, वह अभी आगे बतायेंगे ।

પર્યાય કા લક્ષણ—

जिनके निरन्तर उत्पाद और व्यय होता है, जो सदैव स्थिर नहीं रहते उन्हें पर्याय
कहते हैं । अथवा द्रव्य और गुण का आश्रय लेने वाले पर्याय कहलाते हैं ।

द्रव्य के उत्पाद और विनाश—शील धर्म पर्याय कहलाते हैं । पर्याय, द्रव्य में भी
रहते हैं और गुण में भी रहते हैं । जीवका एक ही ज्ञानगुण काल के भेदसे भिन्न-भिन्न
रूप धारण करता हुआ पर्याय कहलाता है । जैसे एक आठ वर्ष का विनयी प्रमाद और
विकथा से दूर रहने वाला बाल मुनि अपने गुरु के चरण कमलों की सेवा करता हुआ
संपदुं जોઈએ કે વિભિન્ન દ્રવ્યોના વિશેષ ગુણોનો સમૂહ બની શકતો નથી. એવી
રીતે દ્રવ્ય અને પર્યાયના વિષયમાં પણ સમજવું જોઈએ. વિશેષ આગળ બતાવીશું.

પર્યાયનું લક્ષણ—

જેની અંદર હમેશાં ઉત્પાદ અને વ્યય થયા કરે છે. અને જે હમેશાં—સદાકાળ
સ્થિર રહેતું નથી તેને પર્યાય કહે છે, અથવા દ્રવ્ય અને ગુણનો આશ્રય લેનાર
તેને પર્યાય કહેવામાં આવે છે.

દ્રવ્યનો ઉત્પાદ અને વિનાશ—શીલ ધર્મ તે પર્યાય કહેવાય છે. પર્યાય, દ્રવ્યમાં
પણ રહે છે અને ગુણમાં પણ રહે છે. જીવનો એકજ જ્ઞાનગુણ કાલના ભેદથી
ભિન્ન ભિન્ન રૂપ ધારણ કરીને પર્યાય કહેવાય છે. જેવી રીતે કે એક આઠ વર્ષના
વિનયવંત, પ્રમાદ અને વિકથાથી દૂર રહેવાવાળા બાલમુનિ પોતાના ગુરુના ચરણ

द्रव्यविभागः—

द्रव्यं पट्टविधम्—धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवभेदात् । उक्तञ्च भीमगवतीसूत्रे—

“कइ णं भंते ! दव्वा पणत्ता ?, गोयमा ! छ दव्वा पणत्ता, तं जहा-
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए,
अद्दासंमये” ॥

उत्तराध्ययनसूत्रेऽपि—(अ. २८)

“धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो ।
एस लो गोत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ ७ ॥

द्रव्य के भेद—

द्रव्य छह प्रकार का है—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल
(५) पुद्गल और (६) जीव । श्री भगवतीसूत्र में कहा है—

“भगवान् । द्रव्य कितने कहे गये हैं ?, गौतम । छह द्रव्य कहे गये हैं, वे इस
प्रकार—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और
अद्दा—समय” ।

उत्तराध्ययनसूत्र में भी कहा है—

“धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, और जीव को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जिन भगवान्
ने लोकसंज्ञा दी है ॥ ७ ॥

द्रव्यना भेद—

द्रव्यना छ प्रकार छे—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल (५)
पुद्गल अने (६) जीव । श्री भगवती सूत्रमां पणु कहुं छे—

“भगवान् ! द्रव्य केटलां कहां छे ? गौतम ! छ द्रव्य कहेला छे । ते आं
प्रमाणे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय
अने अद्दा—समय,”

उत्तराध्ययन सूत्रमां पणु कहुं छे—

“धर्म अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अने जीवने सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिन
भगवाने लोकसंज्ञा आपी छे” ॥ ७ ॥

“ગુણાણમાસઙ્ગો દ્વં, ઇગદ્વસ્તિયા ગુણા ।

લક્ષ્ણં પંજ્જવાણં તુ, દુહઓ અસ્તિયા ભવે ॥ ૬ ॥” ઇતિ ।

છાયા—

“ગુણાનામાશ્રયો દ્રવ્યમ્, ઇકદ્રવ્યાશ્રિતા ગુણા :

લક્ષ્ણં પર્યવાણાં તુ, ઉભયોરાશ્રિતા ભવેયુઃ” ॥ ૬ ॥ ઇતિ ।

દ્રવ્યલક્ષણે પર્યાયાનુક્ત્યા કાર્યકારણયોરભેદવિવક્ષ્યા પર્યાયાણાં ગુણેષુ સમાવેશ ઇતિ ભગવદભિપ્રાયો ગમ્યતે । “ઇકદ્રવ્યાશ્રિતા ગુણાઃ” ઇતિ, ઇકં=કેવલં દ્રવ્યમાશ્રિત્ય ગુણા વર્તન્ત ઇત્યર્થઃ । અનેન ગુણલક્ષણમુક્તમ્ । ‘પર્યવાણાં લક્ષ્ણં તુ ઉભયોરાશ્રિતા ભવેયુઃ’ ઇત્યન્વયઃ । પર્યવઃ, પર્યયઃ, પર્યાયઃ, ઇતિ સમાનાર્થકાઃ । ઉભયોઃ=દ્રવ્યગુણયોરાશ્રિતાઃ પર્યાયાઃ, ઇતિ પર્યાયલક્ષ્ણં વોઘ્યમિત્યર્થઃ । પર્યાયાસ્તુ દ્રવ્યં ગુણં ચોભયમાશ્રિત્ય વર્તન્ત ઇતિ ભાવઃ ।

દ્રવ્યં કે લક્ષણં મેં ‘પર્યાય’ પદ કા સમાવેશ નં કરને કે કારણ ભગવાન્ કા અભિપ્રાયં યહ હૈ કિ—કાર્ય કારણ કે અભેદસે ગુણ મેં હી પર્યાય કા સમાવેશ હો જાતા હૈ । ‘ઇગદ્વસ્તિયા ગુણા’ ઇસ વાક્ય કા અર્થ યહ હૈ કિ—ગુણ કેવલ દ્રવ્ય મેં હી હોતે હૈ । ઇસ કથનદ્વારા ગુણ કા લક્ષણ મી કહ દિયા ગયા હૈ ।

પર્યાય કા લક્ષણં ઉભયાશ્રિત હોના હૈ, દોનો મેં અર્થાત્ દ્રવ્ય મેં મી ઓર ગુણ મેં મી પર્યાય રહતે હૈ । પર્યવ, પર્યય ઓર પર્યાય ચે સમી સમાનાર્થક હૈ ।

દ્રવ્યના લક્ષણમાં ‘પર્યાય’ પદનો સમાવેશ નહિ કરવાથી ભગવાનનો અભિપ્રાય એ છે કે—કાર્ય કારણના અભેદથી શુભમાં જ પર્યાયનો સમાવેશ થઈ વ્યથ છે. ‘ઇગદ્વસ્તિયા ગુણા’ આ વાક્યનો અર્થ એ છે કે—શુભ કેવલ દ્રવ્યમાં જ હોય છે. આ કથનદ્વારા શુભનું લક્ષણ પણ કહી આપ્યું છે.

પર્યાયનું લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોય છે, અનેમાં અર્થાત્ દ્રવ્યમાં અને શુભમાં પણ પર્યાય રહે છે. પર્યવ, પર્યાય અને પર્યાય શબ્દ સમાન અર્થવાળા છે.

દ્રવ્યવિભાગ:—

દ્રવ્યં પદ્ધવિષમ્-ધર્માધર્માકાશકાલપુદ્ગલજીવભેદાત્ । ઉક્તઞ્ચ શ્રીભગવતીસૂત્રે—

“કહ ણં મંતે ! દ્વા પ્ણત્તા ?, ગોયમા ! છ દ્વા પ્ણત્તા, તં જહા-
ધંમ્મત્થિકાપ્, અધમ્મત્થિકાપ્, આગાસસ્થિકાપ્, પુગ્ગલત્થિકાપ્, જીવત્થિકાપ્,
અદ્દાસમયે” ॥

ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રેઽપિ-(બ. ૨૮)

“ધમ્મો અહમ્મો આગાસં, કાલો પુગ્ગલ જંતવો ।
एस लोकोत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ ७ ॥

દ્રવ્ય કે ભેદ—

દ્રવ્ય છહ પ્રકાર ફા હૈ—(૧) ધર્મ (૨) અધર્મ (૩) આકાશ (૪) કાલ
(૫) પુદ્ગલ ઓર (૬) જીવ । શ્રી ભગવતીસૂત્ર મેં કહા હૈ—

“ભગવાન્ ! દ્રવ્ય કિતને કહે ગયે હૈં ?, ગૌતમ ! છહ દ્રવ્ય કહે ગયે હૈં, વે હ્સ્ત
પ્રકાર—ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશસ્તિકાય, પુદ્ગલસ્તિકાય, જીવાસ્તિકાય ઓર
અદ્દા—સમય” ।

ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર મેં શ્રી કહા હૈ—

“ધર્મ, અધર્મ, આકાશ, કાલ, પુદ્ગલ, ઓર જીવ કો સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી જિન ભગવાન્
ને લોકસંજ્ઞા દી હૈ ॥ ૭ ॥

દ્રવ્યના ભેદ—

દ્રવ્યના છ પ્રકાર છે—(૧) ધર્મ (૨) અધર્મ (૩) આકાશ (૪) કાલ (૫)
પુદ્ગલ અને (૬) જીવ. શ્રી ભગવતી સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે—

“ભગવાન ! દ્રવ્ય કેટલાં કલાં છે ? ગૌતમ ! છ દ્રવ્ય કહેલા છે. તે આં
પ્રમાણે—ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય આકાશસ્તિકાય, પુદ્ગલસ્તિકાય, જીવાસ્તિકાય
અને અદ્દા—સમય.”

ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં પણ કહ્યું છે—

“ધર્મ અધર્મ, આકાશ, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવને સર્વજ્ઞ સર્વદર્શી જિન
ભગવાને લોકસંજ્ઞા આપી છે” ॥ ૭ ॥

“ગુણાણમાસઑ દ્રવ્યં, એગદવ્યસ્તિયા ગુણા ।

લક્ષણં પંજ્જવાણં તુ, દુહઑ અસ્તિયા ભવે ॥ ૬ ॥” ઇતિ ।

છાયા—

“ગુણાનામાશ્રયો દ્રવ્યમ્, એકદ્રવ્યાશ્રિતા ગુણા :

લક્ષણં પર્યવાણાં તુ, ઉભયોરાશ્રિતા ભવેયુઃ” ॥ ૬ ॥ ઇતિ ।

દ્રવ્યલક્ષણે પર્યાયાનુક્ત્યા કાર્યકારણયોરભેદવિવક્ષ્યા પર્યાયાણાં ગુણેષુ સમાવેશ ઇતિ ભગવદભિપ્રાયો ગમ્યતે । “એકદ્રવ્યાશ્રિતા ગુણાઃ” ઇતિ, એકં=કેવલં દ્રવ્યમાશ્રિત્ય ગુણા વર્તન્ત ઇત્યર્થઃ । અનેન ગુણલક્ષણમુક્તમ્ । ‘પર્યવાણાં લક્ષણં તુ ઉભયોરાશ્રિતા ભવેયુઃ’ ઇત્યન્વયઃ । પર્યવઃ, પર્યયઃ, પર્યાયઃ, ઇતિ સમાનાર્થકાઃ । ઉભયોઃ=દ્રવ્યગુણયોરાશ્રિતાઃ પર્યાયાઃ, ઇતિ પર્યાયલક્ષણં વોઘ્યમિત્યર્થઃ । પર્યાયાસ્તુ દ્રવ્યં ગુણં ચોભયમાશ્રિત્ય વર્તન્ત ઇતિ ભાવઃ ।

દ્રવ્ય કે લક્ષણ મેં ‘પર્યાય’ પદ કા સમાવેશ ન કરને કે કારણ ભગવાન્ કા અભિપ્રાયં યહ હૈ કિ—કાર્ય કારણ કે અભેદસે ગુણ મેં હી પર્યાય કા સમાવેશ હો જાતો હૈ । ‘એગદવ્યસ્તિયા ગુણા’ ઇસ વાક્ય કા અર્થ યહ હૈ કિ—ગુણ કેવલ દ્રવ્ય મેં હી હોતે હૈ । ઇસ કથનદ્વારા ગુણ કા લક્ષણ મી કહ દિયા ગયા હૈ ।

પર્યાય કા લક્ષણં ઉભયાશ્રિત હોના હૈ, દોનો મેં અર્થાત્ દ્રવ્ય મેં મી ઓર ગુણ મેં મી પર્યાય રહતે હૈ । પર્યવ, પર્યય ઓર પર્યાય યે સમી સમાનાર્થક હૈ ।

દ્રવ્યના લક્ષણમાં ‘પર્યાય’ પદનો સમાવેશ નહિ કરવાથી ભગવાનનો અભિપ્રાય એ છે કે—કાર્ય કારણના અભેદથી શુભમાં જ પર્યાયનો સમાવેશ થઈ નથી છે. ‘એગદવ્યસ્તિયા ગુણા’ આ વાક્યનો અર્થ એ છે કે—શુભ કેવલ દ્રવ્યમાં જ હોય છે, આ કથનદ્વારા શુભનું લક્ષણ પણ કહી આપ્યું છે.

પર્યાયનું લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોય છે, બન્નેમાં અર્થાત્ દ્રવ્યમાં અને શુભમાં પણ પર્યાય રહે છે. પર્યવ, પર્યય અને પર્યાય શબ્દ સમાન અર્થવાળા છે.

द्रव्यविभागः—

द्रव्यं पद्विधम्—धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवभेदात् । उक्तञ्च श्रीभगवतीसूत्रे—

“कइ णं भंते ! दव्वा पणत्ता ?, गोयमा ! छ दव्वा पणत्ता, तं जहा-
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए,
अंदासमये” ॥

उत्तराध्ययनसूत्रेऽपि—(अ. २८)

“धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो ।
एस लोगोत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ ७ ॥

द्रव्य के भेद—

द्रव्य छह प्रकार का है—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल
(५) पुद्गल और (६) जीव । श्री भगवतीसूत्र में कहा है—

“भगवान् । द्रव्य कितने कहे गये हैं ?, गौतम ! छह द्रव्य कहे गये हैं, वे इस
प्रकार—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और
अंदा-समय” ।

उत्तराध्ययनसूत्र में भी कहा है—

“धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, और जीव को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जिन भगवान्
ने लोकसंज्ञा दी है ॥ ७ ॥

द्रव्यना भेद—

द्रव्यना छ प्रकार छे—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल (५)
पुद्गल अने (६) जीव. श्री भगवती सूत्रमां पणु कहुं छे—

“भगवान् ! द्रव्य केटवां कहां छे ? गौतम ! छ द्रव्य कहेला छे. ते आ
प्रमाणे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय
अने अंदा-समय,”

उत्तराध्ययन सूत्रमां पणु कहुं छे—

“धर्म अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अने जीवने सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिन
भगवाने लोकसंज्ञा आपी छे” ॥ ७ ॥

ધમ્મો અહમ્મો આગાસં, દવ્વં ઇક્કિમાહિયં ।

અણંતાણિ ય દવ્વાણિ, કાલો પુદ્ગલ જંતવો ॥ ૮ ॥”

અત્ર કાલમાત્રં વિહાય ધર્માદિયોઽસ્તિકાયા ઉચ્યન્તે । ‘અસ્તી’ તિ તિહન્ત-
પ્રતિરૂપકમવ્યયં પ્રદેશવાચકમ્ । પ્રદેશઃ સ્વસ્થાનાદનપાયિં નિર્વિભાગં સ્વખંડમ્ ।
ઇદં નિર્વિભાગં સ્વખંડં યદા પુદ્ગલમ્ય ગલનસ્વભાવાત્તદીયસ્કન્ધદેશાભ્યામવયુત્ય-
પૃથગ્ભૂત્વા વર્તન્તે તદા પરમાણુનામ્ના વ્યવહ્રિયતે । યાવદપૃથગ્ભૂત્વા વર્તન્તે
તાવત્તદેવ નિર્વિભાગં સ્વખંડં પ્રદેશ ઇત્યુચ્યતે । અનેનૈવાશયેન પુદ્ગલાસ્તિકાયસ્ય
ચત્વારો ભેદા ભગવતા કથિતાઃ—સ્કન્ધઃ, દેશઃ, પ્રદેશઃ, પરમાણુથેતિ । કાયઃ=

ધર્મ, અધર્મ ઓર આકાશ, યે તૌન દ્રવ્ય એક એક હૈ, કાલ, પુદ્ગલ, જીવ, અનન્ત
અનન્ત દ્રવ્ય હૈ” ॥ ૮ ॥

કાલ કો છોડ કર શેપ પાંચ દ્રવ્ય અસ્તિકાય કહલાતે હૈં । ‘અસ્તિ’ યહ તિહન્તરૂપ
પ્રતીત. હોને વાલા એક અવ્યય હૈ ઓર પ્રદેશ કા વાચક હૈ । જો અપને સ્થાન સે સ્યુત ન
હોને વાલા, અર્થાત્ જો દ્રવ્ય કે સાથ હી જુડા હુઆ નિર્વિભાગ—જિસ કા ફિર વિભાગ ન હો
સકે વહ સ્વખંડ, પ્રદેશ કહલાતા હૈ । પુદ્ગલ ગલનસ્વભાવ વાલા હૈ અત એવ જબ યહ
નિર્વિભાગ સ્વખંડ પુદ્ગલ કે સ્કન્ધ યા દેશ સે વિલુહ કર અલગ હો જાતા હૈ તબ વહી સ્વખંડ
પરમાણુ કહલાતા હૈ । જબ વહી પરમાણુ પુદ્ગલ કે સ્કન્ધ યા દેશ મેં ફિર મિલ જાતા હૈ તબ

ધર્મ અધર્મ અને આકાશ આ ત્રણ દ્રવ્ય એક-એક છે, કાલ, પુદ્ગલ અને
જીવ અનન્ત-અનન્ત દ્રવ્ય છે.” ॥ ૮ ॥

કાલ સિવાયના બાકીના પાંચ દ્રવ્ય અસ્તિકાય કહેવાય છે. ‘અસ્તિ’ એ
તિહન્ત રૂપ જણાતું એક અવ્યય છે, અને પ્રદેશનું વાચક છે. જે પોતાના સ્થાનથી
સ્યુત નહિ થવા વાળા, અર્થાત્ દ્રવ્યની સાથે જ જોડાઈ રહેલા નિર્વિભાગ-જેનો ફરી
ભાગ ન થઈ શકે તે ખંડ, પ્રદેશ કહેવાય છે. પુદ્ગલ ગલનસ્વભાવ વાળા છે,
તે કારણે ન્યારે તે નિર્વિભાગ ખંડ પુદ્ગલના સ્કન્ધ અથવા દેશથી છુટા થઈ જાય
છે; ત્યારે તે ખંડ પરમાણુ કહેવાય છે. ન્યારે તે પરમાણુ પુદ્ગલના સ્કન્ધ અથવા
દેશમાં ફરીને મળી જાય છે ત્યારે તે પરમાણુના બદલે ફરી પ્રદેશ કહેવાય છે.

समूहः । अस्ति=प्रदेशानां कायः=समूहो यत्र यस्य वा स अस्तिकायः, प्रदेशसमूहवान्, धर्मशास्त्रावस्तिकायश्चेति धर्मास्तिकायः । एवं च धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः, जीवास्तिकायः, इति नामानि सन्ति तेषाम् । कालस्तु प्रदेशभावादस्तिकायो न भवतीत्यतः कालः कालास्तिकाय-शब्देन न व्यवह्रियते ।

धर्मास्तिकायलक्षणम्—

स्वभावतो गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गतिं प्रति सहकारि कारणं धर्मास्तिकायः । जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतो गच्छन्ति, तत्रोपादानकारणस्वरूपास्ते वह परमाणु के बदले फिर प्रदेश कहलाने लगता है, इसी अभिप्राय से भगवान् ने पुद्गलास्तिकाय के चार भेद बतलाये हैं (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) परमाणु ।

काय का अर्थ है समूह । जिसमें या जिसके प्रदेशों का समूह है वह अस्तिकाय कहलाता है । अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशों का समूहवाला । धर्मरूप अस्तिकाय धर्मास्तिकाय समझना चाहिए । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय, ये अस्तिकायों के नाम हैं । कालद्रव्य प्रदेशों का समूहरूप न होने के कारण अस्तिकाय नहीं है अतः काल 'कालास्तिकाय' नहीं कहलाता है ।

धर्मास्तिकायका लक्षण—

स्वभाव से या प्रयोग से गतिक्रियामें परिणत हुए जीव और पुद्गलों की गति में जो सहकारी कारण हो उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं । जीवों और पुद्गलों का गमन करना स्वभाव ही है ।

आ अलिप्राये लगवाने पुद्गलास्तिकायना आर लेड भताव्या छे. (१) स्कंध, (२) देश, (३) प्रदेश अने (४) परमाणु.

कायना अर्थ छे-समूह, जेभां अथवा जेनां प्रदेशोना समूह होय ते अस्तिकाय कहेवाय छे, अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशोना समूह वाणा, धर्मरूप अस्तिकाय धर्मास्तिकाय समजवो जेधजे. जेज प्रमाणे अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय अने जीवास्तिकाय, जे अस्तिकायोनां नाम छे.

कालद्रव्य-प्रदेशोना समूहरूप नहि होवाथी अस्तिकाय नथी तेथी काल जे 'कालास्तिकाय' कहेवाय नहि.

धर्मास्तिकायतुं लक्षण—

स्वभावथी अथवा प्रयोगथी गतिक्रियाभां परिणत थयेला जेवो अने पुद्गलोनी गतिभां जे सहकारी कारण होय, तेने धर्मास्तिकाय कहे छे. जेवो अने

ગતિ પ્રતિ, પુનસ્તસ્યામેવ ગતિ-ક્રિયાયાં ધર્માસ્તિકાયઃ સહાયરૂપં નિમિત્તકારણં ભવતિ ।

(૧) યથા સરિત્સમુદ્રાઘવગાહનશીલાનાં મત્સ્યાનાં સ્વત એવ જિગમિષાં ગતિશ્ચ જાયતે, તત્ર તેષાં ગમનં પ્રતિ સહાયરૂપં નિમિત્તકારણં વારિ । સ્વયં તિષ્ઠતાં તુ મત્સ્યાનાં ન તત્ પ્રેરકં ગમનાય ।

(૨) યથા વા મૃત્પરિણામભૂતસ્ય ઘટસ્ય ઢુન્ડો નિમિત્તકારણમ્ ।

(૩) યથા વા સ્વત એવાવગાહમાનસ્ય દ્રવ્યસ્યાવગાહનં પ્રતિ ગમનમ્, ન પુનરવગાહમાનં દ્રવ્યં વલાદવગાહયતિ તત્ ।

इस गमनक्रिया में उपादान कारण वह स्वयं ही होते हैं, धर्मास्तिकाय सहायकमात्र होने से निमित्त कारण है ।

(૧) જૈસે—નદી અથવા સમુદ્રમાં અવગાહન કરનેવાલે મચ્છો મેં ગમન કરને કી ઇચ્છા સ્વયં હી ઉત્પન્ન હોતી હૈ ઓર સ્વયં હી વે ગતિ કરતે હૈં, જલ્ ઉન કી ગતિ મેં સહાયક રૂપ નિમિત્ત કારણ હોતા હૈ । હૈં, મચ્છ અગર ઠહરે તો જલ્ ઉન્હેં ગમન કરને કે લિચ્છે પ્રેરિત નહીં કરતા ।

(૨) અથવા જૈસે—મૃત્તિકા સે વનને વાલે ઘડે મેં હંડા નિમિત્ત કારણ હોતા હૈ ।

(૩) અથવા જૈસે—સ્વયં હી અવગાહન કરને વાલે દ્રવ્ય કી અવગાહના મેં આકાશ નિમિત્ત કારણ હોતા હૈ ।

युद्गढो नो गमनं કરવું તે સ્વભાવ જ છે, એ ગમન-ક્રિયામાં ઉપાદાન કારણ તો પોતે જ હોય છે; ધર્માસ્તિકાય સહાયકમાત્ર હોવાથી તે નિમિત્ત કારણ છે.

(૧) જેવી રીતે નદી અથવા સમુદ્રમાં અવગાહન કરવાવાળા મચ્છોમાં ગમન કરવાની પોતાની જ ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે, અને પોતે જ તે ગતિ કરે છે, પરંતુ જલ તેની ગતિમાં સહાયરૂપ નિમિત્ત કારણ થાય છે પરંતુ મચ્છ જો સ્થિર રહેવાની ઇચ્છા કરે તો જલ તેને ગમન કરવા માટે પ્રેરણા કરતું નથી.

(૨) અથવા જેવી રીતે—માટીથી તૈયાર થતા ઘડામાં હંડા અને ચાક નિમિત્ત કારણ હોય છે.

(૩) અથવા જેવી રીતે—પોતે જ અવગાહન કરનારા દ્રવ્યના અવગાહનમાં આકાશ નિમિત્ત કારણ હોય છે.

(૪) યથા વા-જલવૃષ્ટૌ સત્યાં સ્વયમેવ કૃપિકર્મારમ્ભં કુર્વતાં કૃપીવલાનાં કૃપિકર્મારમ્ભં પ્રતિ વૃષ્ટિઃ સહકારિ કારણં ભવતિ ।

(૫) અપરોઽપિ શાસ્ત્રીયો દૃષ્ટાન્તો દૃષ્ટિપથમવતરતિ, યથા-‘સિદ્ધસ્વરૂપોઽ-હમ્, અનન્તસુખભાજનોઽહમ્’ ઇત્યાદિભાવનયા વ્યવહારનયેન શુદ્ધસિદ્ધસ્વરૂપ-ધ્યાનકર્તૃણાં, નિશ્ચયનયેન નિર્વિકલ્પધ્યાનપરિણામિનાં સ્વયં તદુપાદાનકારણસ્વરૂ-પાણાં ભવ્યાનાં સ્વયમેવ જાયમાનાં સિદ્ધગતિ પ્રતિ પ્રેરણારહિતો નિષ્ક્રિયો મૂર્તિરહિતોઽપિ સિદ્ધભગવાન્ સહાયકઃ સન્ સહકારિ કારણં ભવતિ, તદ્દમૂર્તો નિષ્ક્રિયઃ પ્રેરણારહિતથ ધર્માસ્તિકાયો જીવાનાં પુદ્ગલાનાં ચ ગતિરૂપે પરિણામે સહાયકઃ સન્નિમિત્તકારણં ભવતિ ।

(૪) અથવા જેસે—જલ કી વર્ષા હોને પર સ્વયં હી કૃપિકાર્ય આરમ્ભ કરને વાલે કિસાનોં કે કૃપિકાર્ય કે આરમ્ભમેં વૃષ્ટિ સહકારી કારણ હોતી હૈ ।

(૫) एक शास्त्रीय दृष्टान्त और भी दृष्टिगोचर होता है—‘मैं सिद्धस्वरूप हूँ, मैं अनन्त सुख का भाजन हूँ’ । इस प्रकार की भावनापूर्वक व्यवहार नय से शुद्ध सिद्ध परमात्मा का ध्यान करने वालों को, और निश्चय नय से निर्विकल्प ध्यान में परिणत होने वालों को जो सिद्धगति की प्राप्ति होती है उस में उपादान कारण स्वयं ध्यान करने वाला भव्यात्मा है, और प्रेरणारहित, निष्क्रिय, तथा अमूर्तिक होते हुए भी सिद्ध भगवान् उसमें सहायक होने से निमित्त कारण हो जाते हैं । इसी प्रकार अमूर्तिक, निष्क्रिय और प्रेरणारहित धर्मास्तिकाय भी जीव और पुद्गलों के गतिरूप परिणाम में सहायक होता हुआ निमित्त कारण होता है ।

(૪) અથવા જેવી રીતે પાણી વરસવાથી ખેડુત પોતે જ ખેતીના કામને આરંભ કરે છે, ખેતીને આરંભ કરવાવાળા ખેડુતોના ખેતી કાર્યના આરંભમાં વૃષ્ટિ (વરસાદ) સહકારી કારણ હોય છે.

(૫) એક શાસ્ત્રીય દૃષ્ટાંત ખીલું પણ દૃષ્ટિગોચર થાય છે:—

“હું સિદ્ધ સ્વરૂપ છું. હું અનન્ત સુખતું ભાવન-પાત્ર છું.” આ પ્રકારની ભાવનાપૂર્વક, વ્યવહાર નયથી શુદ્ધ સિદ્ધ ભગવાન-પરમાત્માતું ધ્યાન કરવાવાળા અને નિશ્ચયનયથી નિર્વિકલ્પ ધ્યાનમાં પરિણત થવા વાળાને જે સિદ્ધ-ગતિ પ્રાપ્ત થાય છે તેમાં ઉપાદાન કારણ ધ્યાન કરવાવાળા પોતે ભવ્યાત્મા છે; અને પ્રેરણારહિત નિષ્ક્રિય તથા અમૂર્તિક હોવા છતાં પણ સિદ્ધ ભગવાન તેમાં સહાયક હોવાથી નિમિત્ત કારણ થઈ બંધ છે.

એ પ્રમાણે અમૂર્તિક, નિષ્ક્રિય અને પ્રેરણારહિત ધર્માસ્તિકાય પણ જીવ અને પુદ્ગલોનાં ગતિરૂપ પરિણામમાં સહાયક હોવાથી નિમિત્ત કારણ છે.

ननु धर्मास्तिकायस्य दण्डादिवन्निमित्तकारणता नोपपद्यते, सव्यापारं हि कारणं भवति, निर्व्यापारस्य कारणत्वे युक्त्यभावादिति चेन्न,

धर्मास्तिकायस्य हि स्वाभाविकव्यापारसत्त्वात् कारणत्वं मूपपादम् । उक्तं च धर्मास्तिकायलक्षणं भगवता—

“ गइलक्खणो उ धम्मो ” इति,

‘ गतिलक्षणस्तु धर्मः ’ इति श्रुत्या । (उत्तराध्ययनसूत्रे २८ अ.) गतिकार्यानुमेयो धर्मास्तिकाय इति भावः ।

शङ्का—धर्मास्तिकाय दंडा आदि के समान निमित्त कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह व्यापार नहीं करता, कार्य की उत्पत्ति में व्यापार करने वाला ही कारण होता है । कार्य की उत्पत्ति में व्यापार न करने पर भी अगर किसी को कारण मान लिया जाय तो चाहे जो वस्तु चाहे जिस कार्य में कारण हो जायगी । ऐसी दशा में नियत कार्य-कारण भाव का अभाव हो जायगा ।

समाधान—यह शङ्का ठीक नहीं है; क्योंकि यहाँ हेतु असिद्ध है । गतिरूप कार्य में धर्मास्तिकाय व्यापाररहित नहीं है, किन्तु धर्मास्तिकायका स्वाभाविक व्यापार विद्यमान होने के कारण उसे कारण मानना युक्तिसङ्गत है । भगवान् ने धर्मास्तिकायका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

“ गइलक्खणो उ धम्मो ” धर्मास्तिकाय गति लक्षण वाला है । (उत्तराध्ययनसूत्र अ० २८) अर्थात् गतिरूप कार्य से धर्मास्तिकायका अनुमान होता है ।

शंका—धर्मास्तिकाय दंड आदि प्रमाणे निमित्त कारण थर् शकतुं नथी, डेभके ते व्यापार करतुं नथी, कार्यनी उत्पत्तिमां व्यापार करनार न कारण होव छे. कार्यनी उत्पत्तिमां व्यापार नहि करवा छतां य जे डेधने कारण मानवाभां आवशे तो गमे ते वस्तु गमे ते कार्यमां कारण थर् नथे. जेवां दशांमां नियत कार्य कारण लावने अभाव थर् नथे.

समाधान—आ शंका ठीक नहीं; कारण के अहिं हेतु असिद्ध छे. गतिरूप कार्यमां धर्मास्तिकाय व्यापाररहित नहीं, धर्मास्तिकायने स्वाभाविक व्यापार विद्यमान होवार्थी तेने कारण मानवुं ते युक्तिसङ्गत छे. भगवाने धर्मास्तिकायनुं लक्षण आ प्रमाणे बतलावुं छे—

“ गइलक्खणो उ धम्मो ” धर्मास्तिकाय गतिलक्षणवाणुं छे (उत्तराध्ययन सूत्र अ० २८) अर्थात् गतिरूप कार्यथी धर्मास्तिकायनुं अनुमान थायुं छे.

अस्य-(१) अरूपित्वम्, (२) अचेतनत्वम्, (३) अक्रियत्वम्, (४) गतिसहायकत्वं चेति गुणाः । (१) स्कन्धः, (२) देशः, (३) प्रदेशः, (४) अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः । अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा-द्रव्यत एको धर्मास्तिकायः, क्षेत्रतो लोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, भावतो रूपरहितः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित इति । गुणतश्चलनगुणः ।

अधर्मास्तिकायस्वरूपम्—

स्वभावतः स्थितिपरिणतानां जीवपुद्गलानां स्थितिं प्रति सहकारि कारणत्वमधर्मास्तिकायस्य लक्षणम् ।

(१) अरूपित्व, (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व, ये धर्मास्तिकाय के गुण हैं । (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) अगुरुलघुत्व, ये उसके पर्याय हैं । धर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण, इस तरह पांच भेदों से जाना जाता है । जैसे-द्रव्य से धर्मास्तिकाय एक है, क्षेत्रसे लोकप्रमाण है, कालसे आदि-अन्तरहित है, भावसे रूपादिरहित है-रूप, रस, गन्ध, स्पर्श उस में नहीं है, और गुण से चलन-गुण वाला है ।

अधर्मास्तिकायका स्वरूप—

स्वभाव से स्थितिरूप परिणत हुए जीव और पुद्गलोंकी स्थिति में सहकारी होना अधर्मास्तिकायका लक्षण है ।

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व, ये सर्व धर्मास्तिकायना गुणो छे, (१) स्कंध (२) देश (३) प्रदेश अने (४) अगुरुलघुत्व, ये तेना पर्याय छे. धर्मास्तिकाय-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने गुण, ये पांच बोद्धोधी लक्ष्यी शक्य छे. जेवी रीते-द्रव्यधी धर्मास्तिकाय अक छे, क्षेत्रधी लोकप्रमाण छे, कालधी आदि-अन्त रहित छे, भावधी रूपादिरहित छे—रूप-रस-गंध-स्पर्श तेमां नधी, अने गुणधी चलन-गुणवाणा छे.

अधर्मास्तिकायनुं स्वरूप—

स्वभावधी स्थितिरूप परिणत थयेला लोको अने पुद्गलद्वानी स्थितिमां सहकारी थवुं ते अधर्मास्तिकायनुं लक्षण छे.

जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतः स्वयं तिष्ठन्ति, तत्रोपादानकारणस्वरूपास्ते स्थितिं प्रति, पुनस्तस्यामेव स्थितिक्रियायामधर्मास्तिकायः सदायरूपं निमित्तकारणं भवति ।

(१) यथा—स्वयं तिष्ठतां पथिकानां स्थितौ छाया सहकारि कारणं भवति । अतिष्ठत्तस्तु स्थातुं न पुनः सा प्रेरयति ।

(२) यथा वा स्वयं तिष्ठतो देवदत्तस्य स्थितिं प्रति पृथिवी सहकारि कारणं भवति । अतिष्ठन्तं तु देवदत्तं न पृथिवी स्थापयति ।

(३) यथा-समितिगुप्तिधारिणो रत्नत्रयाराधिनः समरसकन्दाः समाहितमतयो महात्मानो निश्चयनयेन निजात्मस्वरूपं चिन्तयन्तः क्षपकश्रणिं समारूढ्य समुत्पन्न-

जीव और पुद्गल जय स्वभाव से ही स्थित होते हैं, अपनी स्थिति में उपादान कारण तो स्वयं वही हैं, पर अधर्मास्तिकाय उस में सहायक होता है, अतः वह निमित्त कारण है ।

(१) जैसे—स्वयं ठरने वाले पथिकों की स्थिति में छाया सहकारी कारण होती है । अगर कोई न ठहरे तो वह ठहरने की प्रेरणा नहीं करती ।

(२) अथवा जैसे—स्वयं ठहरने वाले देवदत्त की स्थिति में पृथिवी सहकारी कारण है । मगर देवदत्त को न ठहरना हो तो पृथ्वी जबरदस्ती नहीं ठहराती ।

(३) अथवा जैसे—समिति गुप्तिके धारक, रत्नत्रय की आराधना करने वाले, समभाव के रस में निमग्न समाधियुक्त मति वाले महारमा निश्चय नय से आत्मस्वरूपका चिन्तन करते

एव अने पुद्गल न्यारे स्वभावथी न स्थित थाय छे तो पोतानी स्थितिमां उपादान कारणुं तो पोते न छे, परन्तु अधर्मास्तिकाय तेमां सहायक थाय छे, तेथी ते निमित्त कारणु छे.

(१) जेवी शीते-पोते उला रहेवा वाणा मुसाक्षरीनी स्थितिमां छाया सहकारी कारणुं छाय छे. अगर कोंछ उला न रहे तो ते उला रहेवानी प्रेरणा नथी करती.

(२) अथवा-जेवी शीते पोते न उला न रहेवा वाणा देवदत्तनी स्थितिमां पृथ्वी सहकारी कारणु छे, परन्तु जे देवदत्तने उला न रहेवुं छाय तो पृथ्वी देवदत्तने षण्णवरीथी उला राणी शकती नथी.

(३) अथवा-जेवी शीते समिति-गुप्तिना धारक, रत्नत्रयनी आराधना करवा-वाणा, समभावना रसमां निमग्न, समाधियुक्त मतिवाणा महात्मा निश्चयनयथी

केवलज्ञान-केवलदर्शनभृतः सन्तः सकलकर्मक्षयं कृत्वा, शरीरमौदारिकमिह परि-
त्यज्य, सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं गतास्तिष्ठन्ति, तेषां निश्चयनयेन स्वतः स्थिति-
परिणतानां तत्र साद्यपर्यवसितां स्थितिं प्रति तत्स्थानं सहकारि कारणं भवति । न तु
तत् स्थानं तानवस्थातुं प्रेरयति ।

(४) यथा व्यवहारनयेन सिद्धभक्त्या स्वयं समुत्पन्नसविकल्पध्यानावस्थितानां
महात्मनां सविकल्पध्याने स्थितिं प्रति, निष्क्रियो मूर्त्तिरहितः प्रेरणारहितोऽपि
सिद्धभगवान् सहायः सन् सहकारि कारणं भवति । न त्वसौ तान् तद्ध्याने स्थातुं प्रेरयति ।

हुए क्षपकश्रेणी पर आरूढ हो कर उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने
वाले हो कर समस्त कर्मों का क्षय करके औदारिक शरीर को यहीं त्याग कर सिद्धिगति
नामक स्थान को प्राप्त हो कर स्थिर हो जाते हैं । निश्चयनय से स्वयं स्थिति में परिणत
हुए उन सिद्ध जीवों की साद्धि-अनन्त स्थिति में वह स्थान सहकारी कारण होता है,
किन्तु वह स्थान उन्हें टहरने के लिए प्रेरित नहीं करता ।

(४) अथवा जैसे-व्यवहारनय से सिद्ध भगवान् की भक्तिसे स्वयं उत्पन्न हुए
सविकल्प ध्यान में अवस्थित महात्मा पुरुषों की सविकल्प में जो स्थिति है, उस में अक्रिय
अमूर्तिक और प्रेरणारहित भी सिद्ध भगवान् सहायक होने से निमित्त कारण होते हैं, किन्तु
वे उन्हें ध्यान में स्थित होने की प्रेरणा नहीं करते ।

आत्मस्वरूपतुं चिंतन करता थका क्षपकश्रेणी पर आरूढ थकने उत्पन्न केवलज्ञान
अने केवलदर्शनने धारण करवा वाणा थकने समस्त कर्मोंने क्षय करीने औदारिक
शरीरने आद्धि न त्याग करीने सिद्धिगति नामना स्थानने प्राप्त थक स्थिर थक
जय छे. निश्चयनयथी स्वयं स्थितिमां परिणत थयेला ते सिद्ध जीवोनी साद्धि
अनन्त स्थितिमां ते स्थान सहकारी कारण छे; परंतु ते स्थान तेने थालवा
भाटे प्रेरण नथी करतुं.

(४) अथवा-जैसी रीते व्यवहारनयथी सिद्ध भगवान्नी लक्षितथी स्वयं उत्पन्न
थयेला सविकल्प ध्यानमां अवस्थित महात्मा पुरुषोनी सविकल्प ध्यानमां जै स्थिति
छे, तेमां निष्क्रिय, अमूर्तिक अने प्रेरणारहित सिद्ध भगवान् सहायक होवाथी
निमित्त कारण छे; पण सिद्ध भगवान् तेने ध्यानमां स्थित थवानी प्रेरण
करता नथी.

इदमेवाभिप्रेत्य भगवताऽभिहितम्—

“अहम्मो ठाणलक्खणो” इति (उत्तरा. अ. २८)

‘अधर्मः स्थानलक्षणः’ इति च्छाया । लक्ष्यते=दृश्यते परिचीयते अनेनेति लक्षणं=परिचायकं ज्ञापकम् । स्थानं=स्थितिरेव लक्षणं=ज्ञापकं यस्याऽसाविति स्थानलक्षणः । स्थितिकार्यानुमेयोऽधर्मास्तिकाय इत्याशयः ।

अधर्मास्तिकायस्य—(१) अरूपित्वम्, (२) अचेतनत्वम्, (३) अक्रियत्वम्, (४) स्थितिसहायकत्वमिति गुणाः ।

(१) स्कन्धः, (२) देशः, (३) प्रदेशः, (४) अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः ।

इसी अभिप्राय से भगवान ने कहा—“अहम्मो ठाणलक्खणो” अधर्मास्तिकाय स्थिति लक्षण वाला है । (उत्तरा० अ० २८) जिस के द्वारा कोई वस्तु लखी जाय (देखी जाय) या जो, वस्तु का परिचायक (परिचय कराने वाला) हो वह लक्षण कहलाता है । स्थान अर्थात् स्थिति ही जिस का लक्षण है, अर्थात् स्थितिरूप कार्य से जिस का अनुमान होता है उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं ।

अधर्मास्तिकाय के गुण—(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व और स्थितिसहायकत्व है । (१) स्कन्ध, (२) देश (३) प्रदेश, और (४) अगुरुलघुत्व, अधर्मास्तिकाय के पर्याय हैं ।

ये अभिप्रायधी लगवाने कहुं छे के—“अहम्मो ठाणलक्खणो” अधर्मास्तिकाय स्थिति लक्षणु वाणा छे. (उत्तराध्ययन. अ. २८)

जेना द्वारा कोई वस्तु लखी शक्य (देखी शक्य) अथवा जे वस्तुने परिचय करावतार होय ते लक्षणु कडेवाय छे. स्थान अर्थात् स्थिति जे जेनुं लक्षणु छे अर्थात् स्थितिइप कार्यधी जेनुं अनुमान थाय छे, तेने अधर्मास्तिकाय कडे छे.

अधर्माकायना गुणु—(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व अने (४) स्थितिसहायकत्व छे.

(१) स्कंध, (२) देश, (३) प्रदेश, अने (४) अगुरुलघुत्व, ये अधर्मास्तिकायना पर्याय छे.

अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा—अधर्मास्तिकायो द्रव्यत एकः, क्षेत्रतो लोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, भावतो रूपरहितः—वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति, गुणतः स्थितिगुणः ।

ननु धर्माधर्मशब्दाभ्यां पुण्यपापरूपौ शुभाशुभफलदौ धर्माधर्मौ कथं नात्र गृह्येते ? इति चेत्, उच्यते—नयोर्गुणत्वेन द्रव्यप्रकरणे समावेशासंभवात् । किञ्च तौ धर्माधर्मौ पुण्यपापरूपौ पुद्गलत्वेनाभिमताौ पुद्गलद्रव्यान्तर्भूताौ, ततस्तयोर्न धर्माधर्मास्तिकायमध्ये समावेशः ।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेदसे पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे—अधर्मास्तिकाय द्रव्य से एक है, क्षेत्र से लोकप्रमाण है, काल से आदि अन्त रहित है, भावसे अरूपी अर्थात् रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित है, और गुण से स्थितिगुण वाला है ।

शङ्का—धर्म शब्द से शुभ फल देने वाले पुण्य का और अधर्म शब्द से अशुभ फल देने वाले पाप का ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—पुण्य और पाप, द्रव्य नहीं, गुण हैं, इसी लिये इनका द्रव्यके प्रकरण में समावेश नहीं हो सकता । अथवा पुण्य—पाप रूप धर्म और अधर्म पुद्गल हैं, अतः उनका समावेश पुद्गल में ही हो जाता है । धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय में उन्हें गर्भित नहीं किया जा सकता ।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव अने शुष्कता वेदधी प्रायः प्रकारे लक्ष्णी शक्ये छे । जेभङ्गे—अधर्मास्तिकाय द्रव्यधी अेक छे, क्षेत्रधी लोकप्रमाण छे, कालधी आदि-अन्त रहित छे, भावधी अरूपी अर्थात् रूप, रस गन्ध अने स्पर्शधी रहित छे, अने शुष्कधी स्थितिशुष्कवाणा छे ।

शङ्का—धर्म शब्दधी शुभ फल आपवा वाणा पुण्य अने अधर्म शब्दधी अशुभ फल आपवा वाणा पापतुं ग्रहणु शा भाटे करवाभां आपतुं नधी ?

समाधान—पुण्य अने पाप, द्रव्य नहीं, शुष्क छे अेटला भाटे द्रव्यनां प्रकरणभां तेना समावेश थर्न शकते नधी अथवा पुण्य—पापरूप धर्म अने अधर्म पुद्गलरूप छे, तेधी तेना समावेश पुद्गलभां न थर्न लय छे । धर्मास्तिकाय अने अधर्मास्तिकायभां तेने गर्भित नधी करी शकता ।

અધાકાશસ્વરૂપમ્—

આ-સમન્તાત્ કાશતે=અવગાહદાનેન પ્રતિભાસતે इत्याकाशम्, यद्वा-आकाशन्ते=दीपन्ते धर्माधर्मकालपुद्गलजीवाः स्वस्वरूपेण यत्र तत् ।

ધર્માધર્માદિસર્વદ્રવ્યાણામાધારતયાઽવકાશં દદાતીત્યવકાશદાયિત્વં લક્ષણમાકાશાસ્તિકાયસ્ય । અવકાશદાયિત્વં વ્યવહારનયેનૌપચારિકમ્ । અસ્તિકાયગન્દઃ પ્રાગ્ વ્યાખ્યાતઃ । ઉક્તં ચોત્તરાધ્યયનસૂત્રે (૨૮ અધ્યયને)—

“ભાયણં સવ્વદ્વ્યાણં, નહં ઓગાહલક્ષણમ્ ।” ઇતિ ।

આકાશકા સ્વરૂપ—

‘આકાશ’ શબ્દ મેં ‘આ’ ઓર ‘કાશ’ દ્વો હિસ્સે હેં । ‘આ’ કા અર્થ હે—સર્મા ઓર સે—સર્વત્ર, ઓર ‘કાશ’ કા અર્થ હે—પ્રકાશિત હોને વાલા । તાત્પર્ય યહ હે કિ અપને અવગાહદાનનામક ગુણસે સર્વત્ર પ્રભાસિત હોતા હે, વહ આકાશ હે । અથવા જહાં ધર્મ, અધર્મ, કાલ, પુદ્ગલ ઓર જીવ અપને—અપને સ્વરૂપ સે પ્રકાશિત હોતે હે, ઉસે આકાશ કહતે હેં ।

ધર્મ, અધર્મ, આદિ સમસ્ત દ્રવ્યોં કા આધાર હોકર જો ઉન્હેં આશ્રય દેતા હે, વહી આકાશ હે । અવકાશ દેને વાલા હી આકાશ કહલાતા હે । યહી ‘અવકાશ દેના’ આકાશ કા જો લક્ષણ બતલાયા ગયા હે, વહ વ્યવહારનયસે ઉપચરિત કથન હે । ‘અસ્તિકાય’ શબ્દ કોં વ્યાખ્યા પહેલે હી કોં જા ચુકો હે । ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ૦ ૨૮) મેં કહા હે :—
“ભાયણં સવ્વદ્વ્યાણં નહં ઓગાહલક્ષણમ્” ઇતિ ।

આકાશનું સ્વરૂપ—

‘આકાશ’ શબ્દમાં ‘આ’ અને ‘કાશ’ બે ભાગ છે. ‘આ’ નો અર્થ છે—આરેય કારથી—સર્વત્ર, અને ‘કાશ’નો અર્થ છે પ્રકાશિત થવા વાળા, તાત્પર્ય એ છે કે—પોતાના અવગાહદાન (અવકાશ આપવો) નામના ગુણથી બે સર્વત્ર પ્રતિભાસિત હોય છે તે આકાશ છે, અથવા ન્યાં ધર્મ, અધર્મ, કાલ, પુદ્ગલ અને જીવ પોતપોતાના સ્વરૂપથી પ્રકાશિત હોય છે—પ્રતીત થાય છે તેને આકાશ કહે છે.

ધર્મ, અધર્મ આદિ તમામ દ્રવ્યોનો આધાર બની બે તેને આશ્રય આપે છે તે આકાશ છે. અવકાશ આપનાર જ આકાશ કહેવાય છે. અવકાશ આપવો તે આકાશનું લક્ષણ બતાવવામાં આવ્યું છે, તે વ્યવહારનયથી ઉપચારરૂપ કથન છે. ‘અસ્તિકાય’ શબ્દની વ્યાખ્યા પ્રથમ જ કહી દીધી છે, ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ. ૨૮)માં કહ્યું છે કે— “ભાયણં સવ્વદ્વ્યાણં નહં ઓગાહલક્ષણમ્” ઇતિ.

'भाजनं सर्वद्रव्याणां, नभोऽवगाहलक्षणम्' । इति च्छाया ।

सर्वद्रव्याणां भाजनम् = आधारः, इति हेतुगर्भविशेषणम् । यतः सर्व-
द्रव्याणां भाजनम्, अतः अवगाहलक्षणं नम इति भावः ।

धर्माधर्मकालानामन्तः समावेशेन जीवपुद्गलानामौपचारिकसंयोगविभागाभ्यां
चावगाहः । अवगाह तत्तद्देशरूपोपाधिभेदादवगाहस्य नानात्वेन संयोगविभागा
उपपद्यन्ते ।

अवगाहोऽवकाशः, स एव लक्षणं=ज्ञापकं यस्य तद् अवगाहलक्षणं नमः=
आकाशं कथ्यते, इत्यर्थः । अवगाहदानकार्यानुमेयमाकाशमित्याशयः ।

धर्माधर्मादिद्रव्याणामाधारान्यथाऽनुपपत्तेराकाशमस्तीति निःशङ्कं विश्व-

'आकाश' सब द्रव्यों का आधार है । सारांश यह है कि आकाश सब द्रव्यों का
आधार होनेसे अवगाह-लक्षण वाला है ।

'धर्मास्तिकाय' 'आधर्मास्तिकाय' और काल का आकाश में ही समावेश होने से जीव
और पुद्गलों के औपचारिक संयोग और विभाग के द्वारा अवगाह होता है । अवगाह होने पर
देश के भेद से अवगाह भी भिन्न हो जाता है और संयोग तथा विभाग उत्पन्न होते हैं ।

तात्पर्य यह है कि—अवगाह या अवकाश ही जिस का लक्षण है, अर्थात् अवगाह
से जिस का अनुमान होता है वह द्रव्य आकाश है ।

आकाश न होता तो धर्म, अधर्म आदि द्रव्यों की स्थिति कहां होती ? अर्थात् उनका
कोई आधार ही नहीं रहता, अत एव आकाश का अस्तित्व, किसी प्रकार की शङ्का किये

आकाश सर्वद्रव्योन्मा आधार छे. सारांश ओ छे के आकाश सर्व द्रव्योन्मा
आधार होनाथी अवगाहन लक्षणवाणुं छे.

धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय अने कालने आकाशमां समावेश होवाथी एव
अने पुद्गलनेओ औपचारिक संयोग अने विभाग द्वारा अवगाह थाय छे, अवगाह
थवाथी देशना वेदथी अवगाह यणु भिन्न अर्थ जाय छे, अने संयोग तथा विभाग
उत्पन्न थाय छे.

तात्पर्य ओ छे के—अवगाह अथवा अवकाश न लेनुं लक्षण छे, अर्थात्
अवगाहथी लेनुं अनुमान थाय छे ते द्रव्य आकाश छे. अथवा आकाश न होय
तो धर्म, अधर्म आदि द्रव्योन्मा स्थिति कथां होय ? अर्थात् तेना कौन आधार न

સનીયમ્, इत्यपि भगवता बोधितम् । आकाशसिद्धयर्थं 'भायणं सच्चद्व्याणं'-
इति, 'ओगाहलक्खणं' इति च विशेषणद्वयमुपात्तम् ।

आकाशं द्विविधम्—लोकालोकमेदात्, उक्तं च स्थानाण्णसूत्रे—

“दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा—लोगागासे चेव अलोगागासे चेव” इति ।
द्विविध आकाशः प्रज्ञप्तमन्वद्यथा—ल्लोकाकाशश्चैव अलोकाकाशश्चैव, इति च्छाया ।
धर्मादिसर्वद्रव्याणामाधारभूतमसंख्यातप्रदेशात्मकमाकाशखण्डं लोकाकाशम् । तद्भि-
न्नमनन्तप्रदेशात्मकमलोकाकाशम् ।

ननु धर्माधर्मद्रव्यस्वीकारे प्रयोजनं न किमपि पश्यामः, जीव-पुद्गलानां
गतिस्थितिकार्ययोः सहायरूपं कारणं त्वाकाशमेव स्यात् ? ।

विना विश्वास करने योग्य है, यह भी भगवान् ने उक्त कथन से च्वनित कर दिया है ।
आकाश की सिद्धि के लिये 'भायणं सच्चद्व्याणं' और 'ओगाहलक्खणं' ये दो विशेषण
लगाये गये हैं ।

आकाश दो प्रकार का है—लोकाकाश, और अलोकाकाश । स्थानाण्णसूत्र में कहा है—
“दुविहे आगासे पन्नत्ते तं जहा—लोगागासे चेव अलोगागासे चेव”

धर्म आदि सब द्रव्यों का आधार और असंख्यातप्रदेशरूप आकाशखण्ड, लोकाकाश
कहलाता है । लोकाकाश से भिन्न अनन्तप्रदेशी अलोकाकाश है ।

शुद्धा—जब कि आकाश ही जीव और पुद्गलों की गति एवं स्थिति में सहायक कारण
हो सकता है तो फिर धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्यों को स्वीकार करने का कोई
न संदेह, એટલા માટે આકાશના અસ્તિત્વ, કોઈ ભતની પણ શંકા કયો વગર
વિશ્વાસ કરવા યોગ્ય છે; એ પણ લગવાને ઉક્ત કથનથી ધ્વનિત કશું છે.
આકાશની સિદ્ધિ માટે 'ભાયણં સચ્ચદ્વ્યાણં' અને 'ઓગાહલક્ખણં' આ બે વિશેષણ
લગાવેલા છે.

આકાશ બે પ્રકારના છે. (૧) લોકાકાશ અને (૨) અલોકાકાશ. 'સ્થાનાંગ
સૂત્રમાં કહ્યું છે —“દુવિહે આગાસે પન્નત્તે, તંજહા—લોગાગાસે ચેવ અલોગાગાસે ચેવ”

ધર્મ આદિ તમામ દ્રવ્યોનો આધાર અને અસંખ્યાતપ્રદેશરૂપ આકાશખંડ
તે લોકાકાશ કહેવાય છે. લોકાકાશથી ભિન્ન અનન્તપ્રદેશી અલોકાકાશ છે.

શંકા—જે કે આકાશ જ છવ અને પુદ્ગલોની ગતિ અને સ્થિતિમાં સહાયક
કારણ થઈ શકે છે તે પછી ધર્માસ્તિકાય અને અધર્માસ્તિકાય દ્રવ્યોનો સ્વીકાર

અત્રોચ્યતે-ધર્મશ્ચાધર્મથેતિ દ્રવ્યદ્વયમવશ્યમક્ષીકરણીયમ્, અન્યથા
દોષવાહુલ્યપ્રસક્તાત્ ।

(૧) આકાશસ્ય ગતિહેતુત્વસ્વીકારે જીવપુદ્ગલાનામલોકાકાશગમનાપત્તિઃ ।

(૨) અલોકાકાશસ્યાપિ જીવપુદ્ગલપૂર્ણત્વે લોકત્વમસંગઃ, તથા ચાલોકાકાશ-
સ્ય નામાઽપિ વન્ધ્યાપુત્રવદેવ સ્યાત્ ।

(૩) ભગવત્પરુપિતાઽઽકાશઙ્ઘૈવિધ્યવ્યવસ્થાઽપિ ન સિદ્ધથેત્ ।

પ્રયોજન દિશ્વાઈ નહીં દેતા ।

સમાધાન-ધર્મદ્રવ્ય ઝીર અધર્મદ્રવ્ય અવરય સ્વીકાર કરના ચાહિયે । ઉન્હે સ્વીકાર ન
કરને સે વહુતસે દોષ આતે હેં । વે ઇસ પ્રકાર-

(૧) આકાશ કો હી ગતિ કા કારણ માન લિયા જાય તો જીવોં ઝીર પુદ્ગલોં કા
અલોકાકાશ મેં મી ગમન માનના પડેગા, ક્યોંકિ અલોકાકાશ મી તો આશ્વિર આકાશ હી હેં ।

(૨) અલોકાકાશ અગર જીવોં ઝીર પુદ્ગલોં સે વ્યાપ માન લિયા જાય તો વહ
અલોકાકાશ ન રહકર લોકાકાશ હી હો જાયગા । ઈસી સ્થિતિ મેં અલોકાકાશ તો વન્ધ્યાપુત્ર
કે સમાન હો જાયગા, અર્થાત્ અલોકાકાશ કા અસ્તિત્વ નહીં રહેગા ।

(૩) ભગવાન્ ને દો પ્રકાર કા આકાશ વતલાયા હેં, વહ વ્યવસ્થા મજ્જ હો જાયગી ।

કરવાનું કોઈ પણ પ્રયોજન જોવામાં આવતું નથી.

સમાધાન-ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યનો અવશ્ય સ્વીકાર કરવો જોઈએ,
તેનો સ્વીકાર નહિ કરવાથી બહુ જ દોષ આવે છે, તે આ પ્રમાણે-

(૧) આકાશને જ ગતિનું કારણ માની લેવામાં આવે તો જીવો અને પુદ્ગલોનું
અલોકાકાશમાં પણ ગમન માનવું પડશે; કેમકે અલોકાકાશ પણ છેવટે તો
આકાશ જ છે.

(૨) અથવા અલોકાકાશ જીવો અને પુદ્ગલોથી વ્યાપ માની લેશે તો તે
અલોકાકાશ નહિ રહેતાં લોકાકાશજ થઈ જશે; એવી સ્થિતિમાં અલોકાકાશ તો
વન્ધ્યા પુત્રના સમાન થઈ જશે, અર્થાત્ અલોકાકાશનું અસ્તિત્વ જ રહેશે નહિ.

(૩) ભગવાને જે પ્રકારના આકાશ બતાવ્યાં છે, તે વ્યવસ્થા ભંગ થઈ જશે.

(४) अपिच-सिद्धभगवान् ऊर्ध्वं गत्वा लोकाग्रेष्वस्थित इति मर्यादाऽपि खपुष्पायमानैव स्यात् ।

(५) भवन्मते गतिकारणीभूतस्याकाशस्योर्ध्वदेशे विद्यमानत्वात्तस्य (सिद्धस्य) गतेरवरोधाभावो भवेत् ।

धर्माधर्मद्रव्ययोरकाशतः पृथक् स्वीकारे तु लोकाकाशत उर्ध्वमलोकाकाशस्य सत्त्वेन तत्र गतिहेतोर्धर्मस्याभावान्न गतिर्भवति । स्थितिहेतोरधर्मद्रव्यस्य लोकान्तर्वर्चित्वेन लोकमध्य एवोपरिभागे गतिहेतोर्धर्मद्रव्यस्य साहाय्येन गत्वा तत्रैवाधर्मद्रव्यसाहाय्येन तिष्ठति । एवं च लोकाग्रे भगवानवस्थितो जष्टे

(४) सिद्ध भगवान् उपर जाकर लोक के अग्र भाग में स्थित हो जाते हैं, यह आगम की मर्यादा भी आकाशपुष्प के समान हो जायगी ।

(५) आप के मत के अनुसार गतिका कारण आकाश है और वह उर्ध्व देश में लोकाकाश के अग्रभाग से भी आगे विद्यमान है, अतः सिद्धों की गति में रुकावट नहीं होगी ।

धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को आकाश से भिन्न मान लेने से लोकाकाश से उपर अलोकाकाश में गति का कारण धर्मद्रव्य नहीं है, अतः लोकाकाश से आगे गति भी नहीं होती, तथा स्थिति का कारण अधर्मद्रव्य लोक के अन्तर्गत ही है, अतः धर्मद्रव्य की सहायतासे सिद्ध जीव, लोक के अन्त तक पहुँच कर अधर्म की सहायता से वहाँ अर्थात् लोकाकाशके

(४) सिद्ध भगवान् उपर उर्ध्वेन लोकान्ना अग्रभागमां स्थित यावु छे, ते आगमनी मर्यादा पक्षु आकाश-पुष्पना समान धर्म न्ये.

(५) आपना मत प्रमाणे गतिनुं कारणु आकाश छे अने ते उर्ध्व-उपरना देशमां लोककाशना अग्रभागथी पक्षु आगण विद्यमान-डेयात छे. तेथी सिद्धोनी गतिमां रुकावट-रोकाणु नहि थाय.

धम द्रव्य अने अधर्मद्रव्यने आकाशथी लिन्न मानी देवाथी लोककाशथी उपर अलोकाकाशमां गतिनुं कारणु धर्मद्रव्य नथी, तेथी लोककाशथी आगण गति पक्षु यती नथी, तथा स्थितिनुं कारणु अधर्मद्रव्य लोकना अन्तर्गतन् (अंदरन्) छे, तेथी धर्मद्रव्यनी सहायताथी सिद्ध लोकना अंत सुधी पछोयाने अधर्मद्रव्यनी

तुम्बीवदिति मर्यादा मृतरामुपपद्यते । उक्तं चौपपातिकसूत्रे-

“कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पडिहया ।
कहिं वोंदिं चइत्ता णं, कत्थ गंतूण सिज्झइ ॥ १ ॥
अलोगे पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पडिहया ।
इह वोंदिं चइत्ता णं, तत्थ गंतूण सिज्झइ ॥२॥” इति ।

छाया—

“कुत्र प्रतिहताः सिद्धाः, कुत्र सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ।
कुत्र वोंदिं (शरीरं) त्यक्त्वा, कुत्र गत्वा सिद्धयति ॥१॥
अलोके प्रतिहताः सिद्धाः, लोकाग्रे च प्रतिष्ठिताः ।
इह वोंदिं (शरीरं) त्यक्त्वा, तत्र गत्वा सिद्धयति ॥ २ ॥ इति

अन्तर्गत ही टहर जाता है । इस प्रकार जलके अग्रभाग पर टहरे हुए तुंबे के समान सिद्ध भगवान् लोकाकाश के अग्रभाग पर स्थित है, यह मर्यादा स्वतः सिद्ध हो जाती है ।

औपपातिकसूत्र में कहा है—

“सिद्ध भगवान् कहाँ रुकजाते हैं ! कहाँ स्थित होते हैं ! । कहाँ शरीर का त्याग करके कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ! ॥१॥

सिद्ध भगवान् अलोक में रुक जाते हैं, लोकके अग्रभाग में स्थित होते हैं । यहाँ शरीर का त्याग करके वहाँ जाकर सिद्ध हो जाते हैं ॥२॥”

सहायताथी त्यां न् अर्थात् बोधाकाशना अंदरन् बोली नय छे. तात्पर्यं ये छे डे नलना अग्रभाग उपर स्थित रहेला तुंभडानी पेठे सिद्ध भगवान् बोधाकाशना अग्रभाग उपर स्थित छे. आ मर्यादा स्वतः सिद्ध यर्ध नय छे. औपपातिक सूत्रमां पणु कथुं छे—

“सिद्ध भगवान् कथां शिकार्ध नय छे ? कथां स्थित थाय छे ? कथां शरीरनो त्याग करीने, कथां न्धने सिद्ध थाय छे ? ॥ १ ॥

सिद्ध भगवान् अबोधमां शिकार्ध नय छे, बोधना अग्रभागमां स्थित थाय छे, अहिं शरीरनो त्याग करीने त्यां न्धने सिद्ध यर्ध नय छे. ॥ २ ॥”

नन्वेवं धर्माधर्मद्रव्ये एव समाद्रियेताम्, किमाकाशद्रव्यावलम्बनेन, आकाश-
कार्याविगाहसाहाय्यं धर्माधर्मद्रव्याभ्यामेव संपद्येत?, इति चेत्, उच्यते-सिद्धान्ते
तयोर्जीवादिगतिस्थितिसाधकत्वेन सिद्धान्तितत्वादवकाशं दातुं तौ न प्रभवतः।
अन्यसाध्यं कार्यमन्यो न साधयति, अन्यधाऽतिप्रसंगात्। लोकेऽपि चक्षुरसाध्यं
दर्शनकार्यं न श्रोत्रं साधयति।

ननु केवलज्ञानस्य योऽनन्ततमो भागस्तत्प्रमाणमेव नभोद्रव्यम्, तस्य
चानन्ततमभागपरिमितं लोकाकाशम्, एतादृशोऽल्पतरुस्य लोकाकाशे लोकाकाश-

शङ्का—यदि ऐसा हो तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ही स्वीकार करने चाहिये,
फिर आकाश की क्या आवश्यकता है? आकाश का कार्य अवगाह देना है सो वह कार्य
धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य से ही सम्पन्न हो जायगा।

समाधान—आगम में धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को गति और स्थिति में ही सहायक
बतलाया है, इस लिए वह अवकाश देने में समर्थ नहीं है, और का कार्य कोई और नहीं
कर सकता। अगर ऐसा होने लगे तो सर्वत्र गडबड हो जायगा। लोक में चक्षुका देखना
कार्य कान नहीं कर सकता।

शङ्का—केवल ज्ञान का जो अनन्तवाँ भाग है उसी के बराबर आकाशद्रव्य है, और
आकाशद्रव्य का भी अनन्तवाँ भाग लोकाकाश है तो इतने छोटे से लोकाकाश में समस्त
लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशवाले धर्मद्रव्य का, अधर्मद्रव्य का, अनन्तानन्त जीवों का

शङ्का—जे जे प्रमाणे छे ते धर्मद्रव्य अने अधर्मद्रव्यने स्वीकार करी
लेवे जेधजे, करीने आकाशनी शुं आवश्यकता छे? आकाशनुं कार्य अवगाह-
अवकाश आपवे ते छे, ते कार्य धर्मद्रव्य अने अधर्मद्रव्यथी ज संपन्न थई जशे.

समाधान—आगममां धर्मद्रव्य अने अधर्मद्रव्यने गति अने स्थितिमां
सहायक पताव्या छे, जेटला भाटे ते अवकाश आपवामां समर्थ नथी. पीजनुं
कार्य केध पीजे नहि करी शके, जे जेभ थवा लागथे ते सर्वत्र गडबड थई
जशे. जगतमां नेत्रधी जेवानुं कार्य कान करी शकता नथी.

शङ्का—केवलज्ञानने जे अनन्तमे लाग छे तेना परापर आकाशद्रव्य छे,
अने आकाशद्रव्यने पण अनन्तमे लाग लोकाकाश छे, ते जेवका नाना सख्या
लोकाकाशमां समस्त लोकव्यापी अने असंख्यात प्रदेशवाला धर्मद्रव्यने, अधर्म-

व्यापिनोः प्रत्येकमसंख्यातपदेशात्मकयोर्धर्माधर्मास्तिकाययोरनन्तजीवानां तेभ्योऽ-
प्यनन्तगुणपुद्गलानां च कथं समावेशः, एकस्य लोकाकाशस्य सर्वद्रव्यावकाशदाना-
संभवात्?, इति चेदुच्यते—

लोकाकाशस्यावकाशशक्तिर्हि महीयसी विलक्षणा चिन्तयितुमशक्या च,
अत एव भगवता—“भायणं सच्चदव्याणं नहं ओगाहलक्खणं” इत्युक्तम् ।

नभसोऽवकाशशक्तिं केवललोकेनावलोक्य सर्वद्रव्याणामाधारत्वं भगवता
प्रतिबोधितम् । महीयसी नभसोऽवकाशशक्तिः, मृकरोऽत्र सर्वद्रव्याणां समावेश
इति तदाशयः ।

यथा—वतासानामधेयं मधुरद्रव्यं दुग्धपरिपूरितेऽपि भाजने निहितं सत्
और उन से भी अनन्तगुने पुद्गलका समावेश किस प्रकार हो सकता है? एक लोकाकाश
समस्त द्रव्यों को अवगाह दे सके, यह असम्भव है ।

समाधान—लोकाकाश को अवकाश देने की शक्ति महान् है, विलक्षण है, और अचिन्त्य
है, इसीलिये तो भगवान् ने कहा है—“भायणं सच्चदव्याणं नहं ओगाहलक्खणं”
अवगाहलक्षण वाला आकाश सब द्रव्यों का आधार है ।

भगवान् ने अपने केवलज्ञान में आकाश की अवगाहदानशक्ति को देखकर उसे सब
द्रव्यों का आधार निरूपण किया है । भगवान् के कथन का अभिप्राय यही है कि आकाश
की अवगाहनाशक्ति बहुत बड़ी है, उस में सब द्रव्यों का समावेश सरलता से हो जाता है ।

जैसे—दूध से परिपूर्ण पात्र में वतासे डाल दिये जायें तो वे उसी में समाविष्ट हो
द्रव्येनो, अन्तानन्त एवोनेो अने तेनाथी पण अन्तगणु पुद्गलोनेो समावेश
केवी रीते थर्ध शके ? ओक लोकाकाश समस्त द्रव्येनो अवगाह-अवकाश आपी
शके, ओ अशंभव छे.

समाधान—लोकाकाशनी अवकाश आपवानी शक्ति महान छे, विलक्षण छे
अने अचिन्त्य छे ओटला भाटे लगवाने कहुं छे—“भायणं सच्चदव्याणं नहं
ओगाहलक्खणं” अवगाहलक्षणवाणा आकाश सर्व द्रव्येनो आधार छे. लगवाने
पोताना केवल ज्ञानमां आकाशनी अवगाहदान-अवकाश आपनारी-शक्ति ओधने
तेने ‘सर्व द्रव्येनो आधार छे’ ओम नित्पणु कथुं छे. लगवानना वचननेो
अभिप्राय ओ छे के-आकाशनी अवगाहनशक्ति अहुं न भोटी छे, अने तेमां
सर्व द्रव्येनो समावेश सरलताथी थर्ध नथ छे.

जेवी रीते ह्दना परिपूर्ण पात्रमां पतासां नाभवामां आवे तो ते तेमां

तस्मिन् समाविशति । यथा वा भित्तीं शङ्कोः समावेशस्त्वैवानन्तद्रव्याणां लोकाकाशे समावेश इति बोध्यम् ।

नन्वलोकाकाशस्य कथं सिद्धिः, नासौ हि द्रव्याणामाधारः, नाप्यवकाशदायित्वं तस्य ?, इति चेत्, उच्यते—गतिस्थितिकारणयोर्धर्मधर्मयोरभावादेव तत्र विद्यमानापि द्रव्याधारताशक्तिरवकाशदानशक्तिश्च नाभिव्यक्ता भवति । तदस्वीकारे तु जीवद्भूतानां कर्मनिगडविमुक्तसिद्धानां चोर्ध्वगतिविरामो न स्यात्, भगवत्प्रतिबोधितलोकालोकव्यवस्थाऽपि न तिष्ठेत्, एवं चागमयुक्तिप्रमाणाभ्यामलोकाकाशं सिद्धम् ।

जाते हैं, अथवा जैसे दीवाल में कील का समावेश हो जाता है उसी प्रकार लोकाकाश में अनन्त द्रव्यों का समावेश हो जाता है ।

शङ्का—अलोकाकाश की सिद्धि कैसे होती है ? न तो वह द्रव्यों का आधार है, न अवकाशदानरूप लक्षण ही उस में घटित होता है ?

समाधान—गति और स्थिति के कारण धर्म और अधर्मद्रव्य का अभाव होने के कारण ही अलोकाकाशकी द्रव्याधारता की शक्ति और अवकाशदानशक्ति प्रकट नहीं होती है । अगर अलोकाकाश न माना जायतो जीवों और पुद्गलों की, तथा धर्मरूपी बेडी से मुक्त हुए सिद्ध जीवों की गति का अन्त ही न होगा, और भगवान् की कही हुई लोक अलोक की व्यवस्था भी कायम नहीं रहेगी । इस प्रकार आगम और युक्ति प्रमाणों से अलोकाकाश की सिद्धि होती है ।

(इधमां) समाविष्ट—ज्योतप्रोत यथं नय छे, अथवा जेवी रीते दीवालमां कील—जीवीने समावेश यथं नय छे, ते प्रमाहे लोकाकाशमां अनन्त द्रव्येनो समावेश यथं नय छे.

शंका—अलोकाकाशनी सिद्धि केवी रीते होई शके ? ते द्रव्येनो आधार नथी अने अवकाशदानरूप लक्षण तेनामां घटी शकतुं नथी.

समाधान—गति अने स्थितिना कारण धर्म अने अधर्म द्रव्येनो अभाव होवाना कारणे न अलोकाकाशनी द्रव्याधारतानी शक्ति अने अवकाशदान—शक्ति प्रकट यती नथी. अथवा अलोकाकाश मानवामां नहि आवे तो जेवो अने पुद्गलोंने, तथा कर्मरूपी बेडीधी मुक्त थयेला सिद्ध जेवोनी गतिने कयांय अन्त—छेडा न नहि आवे, अने लगवाने कडेवी लोक—अलोकनी व्यवस्था पणु कायम नहि रहे. जे प्रमाहे आगम अने युक्ति प्रमाहोथी अलोकाकाशनी सिद्धि थाय छे,

अन्यसकलद्रव्यापेक्षया महत्परिमाणमाकाशस्य, अनन्तपदेशित्वात् ।

तेनाकाशं महास्कन्धरूपम् ।

आकाशास्तिकायस्य (१)-अरूपित्वम्, (२)-अचेतनत्वम्, (३)-अक्रियत्वम्, (४)-अवगाहदायित्वं चेति गुणाः । (१)-स्कन्धः, (२)-देशः, (३)-प्रदेशः, (४)-अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा-द्रव्यत एक आकाशास्तिकायः, क्षेत्रतो लोकालोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, भावतो रूपरहितः-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति । गुणतोऽवकाशदायी ।

आकाश का प्रमाण अन्य सब द्रव्यों की अपेक्षा बड़ा है, क्योंकि वह अनन्तप्रदेशी है, अतः आकाश महास्कन्धरूप है ।

(१) अरूपित्व, (२) अचेतनत्व, (३) अक्रियत्व, (४) अवगाहदायित्व, ये आकाशास्तिकाय के गुण हैं । (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश तथा (४) अगुरुलघुत्व, उसके पर्याय हैं ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुणके भेदसे आकाश द्रव्य साँच प्रकार से जाना जाता है । जैसे द्रव्य से आकाशास्तिकाय एक है, क्षेत्र से लोकालोकप्रमाण है, काल से आदि-अन्त रहित है-भावसे अरूपी है, उस में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नहीं पाये जाते । गुणसे अवकाश देने वाला है ।

आकाशतुं परिमाणं पीतं सर्वं द्रव्योनी अपेक्षाये मोदुं छे, केभके ते अनन्तप्रदेशी छे. अटले के आकाश महास्कंधरूप छे.

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) अवगाहदायित्व, ये आकाशास्तिकायना गुण छे, अने (१) स्कंध, (२) देश, (३) प्रदेश, तथा अगुरु-लघुत्व, तेना पर्याय छे.

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने गुणना सेदधी आकाश द्रव्य पांच प्रकारधी वलुणी शक्य छे. केभके—द्रव्यधी आकाशास्तिकाय अेक छे, क्षेत्रधी लोकालोकप्रमाण छे, कालधी आदि-अन्तरहित छे, भावधी अरूपी छे-तेमां वर्ण, गंध, रस अने स्पर्श नहीं, गुणधी अवकाश आपवावाणुं छे.

कालनिरूपणम्—

तत्र कालशब्दस्य व्युत्पत्तिः—

कलयते=परिच्छिद्यते घस्त्वनेनेति कालः । करणे घञ् । 'मासिकोऽयं बालः, वार्षिकोऽयं बालः, वासन्तिकमिदं पुष्पम्' इत्यादिरूपेण वस्तूनां परिच्छेदो=निर्णयः कालमाश्रित्य भवति ।

अथवा स्वभावतः परिणमद्भिः पदार्थजातैः, कलयते=गम्यते=प्राप्यते निमित्तत्वेनाऽसौ, इति कालः । सकलवस्तुपरिणतिहेतुः काल इत्यग्रे वक्ष्यते ।

कालनिरूपणम्—

काल शब्द की व्युत्पत्ति—

जिस के द्वारा वस्तु कली जाय अर्थात् जानी जाय वह काल है । यहाँ करणमें 'घञ्' प्रत्यय हुआ है । यह बालक मासिक (एक मासका) है, यह बालक वार्षिक (वर्ष भरका) है, यह फूल वासन्तिक (वसन्तऋतुसम्बन्धी) है, इस रूपमें वस्तुओं का ज्ञान काल के द्वारा ही होता है ।

अथवा स्वभावसे परिणत होने वाले पदार्थ समूहों द्वारा निमित्त रूपमें जो प्राप्त किया जाय वह काल कहलाता है । 'काल, समस्त वस्तुओं के परिणमन का हेतु है यह बात आगे बतलाई जायगी ।

कालनिरूपणम्—

काल शब्द की व्युत्पत्ति—

नेना द्वारा वस्तु ज्ञात्री शक्य ते काल छे. अर्द्धिं करणुमां 'घञ्' प्रत्यय धयी छे "आ बालक मासिक-अेक मासनेा छे, आ बालक वार्षिक-अेक वर्षनेा छे, आ फूल वासन्तिक-वसन्तऋतुसंघधी छे" अे रूपमां वस्तुओनुं ज्ञान काल द्वारा न शक्य छे.

अथवा स्वभावथी परिणत अथावाणा पदार्थसमूहो द्वारा निमित्तरूपमां न प्राप्त करी शक्य ते काल कहेवाय छे. "काल समस्त वस्तुओना परिणमननुं कारणु छे" अे आगण अतावथामां आवशे.

कालस्य सिद्धिः—

‘पदार्थाः सन्ति, अथवा पदार्था वर्तन्ते’ इति व्यवहारो वर्तनामूलः ।
 “अनुदात्तेतश्च हलादेः”—रिति पाणिनिद्वारेण वृत्तधातोर्युच्प्रत्ययः । वर्तनशीला
 वर्तना । उत्पत्तिः, अप्रच्युतिः, विद्यमानतारुष्या वृत्तिः=क्रिया वर्तना । इयं
 वर्तना सर्वेषु भावेषु विद्यते । वर्तना=पदार्थानां परिणामविशेषः । पदार्थानां वर्तना-
 रूपं कार्यं नोपपद्यते विना केनचिन्निमित्तकारणेन, तस्माद् वर्तनारूपकार्योत्पत्तौ
 यन्निमित्तं धर्मद्रव्यमिव गती, स एव काल इत्युच्यते ।

काल की सिद्धि—

‘पदार्थे हे, या पदार्थे वर्त रहे हैं’ इस प्रकार के व्यवहार का कारण वर्तना है ।
 ‘अनुदात्तेतश्च हलादेः’ पाणिनि के इस सूत्र से ‘वृत्तु’ धातु से ‘युच्’ प्रत्यय हुआ है ।
 वर्तनशील हो उसे वर्तना कहते हैं । उत्पत्ति, अप्रच्युति, और विद्यमानतारूप वृत्ति
 अर्थात् क्रिया वर्तना कहलाती है । यह वर्तना सभी पदार्थों में विद्यमान है । वह पदार्थों का
 विशेष परिणाम है । पदार्थों का वर्तनारूप कार्य किसी निमित्त कारण विना नहीं हो सकता
 अतः वर्तनारूप कार्यकी उत्पत्ति में जो निमित्त कारण है, वही काल-द्रव्य है, जैसे गति का
 निमित्त कारण धर्म द्रव्य है ।

कालनी सिद्धि—

‘पदार्थे हे अथवा पदार्थे वर्त रहे हैं’ के प्रकारना व्यवहारनुं कारण
 वर्तना हे ‘अनुदात्तेतश्च हलादेः’ पाणिनिना आ सूत्रधी ‘वृत्तु’ धातुधी ‘युच्’ प्रत्यय
 थयो हे. ने वर्तनशील होय तेने वर्तना कडे हे. उत्पत्ति, अप्रच्युति, अने
 विद्यमानतारूप वृत्ति, अर्थात् क्रिया वर्तना कडेवाय हे. वर्तना सर्व पदार्थोंमां विद्यमान
 हे. ते, पदार्थोंनुं विशेष परिणाम हे. पदार्थोंनुं वर्तनारूप कार्य कोर्ध निमित्त कारण
 विना थर्ध शक्तुं नथी. तेधी वर्तनारूप कार्यनी उत्पत्तिमां ने निमित्त कारण हे ते
 काल द्रव्य हे. नेवी रीते गतिनुं निमित्त कारण धर्म-द्रव्य हे.

तस्मात्सर्वेषां परिणामानां नियामकं निमित्तकारणं काल इति सिद्धम् । यथा कर्त्तरी
वह्नकृन्तने निमित्तकारणं तथा द्रव्याणां पर्याये निमित्तकारणं कालः ।

क्रिया=द्रव्यपरिणामः । तस्या अपि नियामकं निमित्तकारणं कालः ।
यथा—‘आकाशदेशे—अङ्गुलिस्ति, आसीत्, भविष्यति च’ इत्ययं व्यवहारः काल-
मवलम्ब्य संपद्यते, कालस्यासत्त्वे त्वतीत एव वर्तमानोऽनागतश्च स्यात्, क्रिया-
नियामकाभावात्, एवमतीतादिविभागाभावे व्यवहारोच्छेदापत्तिः, तस्मात् “अस्ति
कालः यमाश्रित्यातीतादिव्यवहाराः सुस्पष्टं प्रसिध्यन्ति” इति, मन्तव्यम् ।

नयापन, पुरानापन, और प्रनष्टरूप परिणमन एक साथ नहीं होते हैं, अत एव
समस्त परिणामों का नियामक निमित्त कारण काल ही सिद्ध होता है । जैसे कैंची
वह्न काटने में निमित्त कारण होती है, उसी प्रकार द्रव्यों के परिणमन में काल निमित्त
कारण होता है ।

क्रिया द्रव्य का परिणामविशेष है । उसका निमित्त कारण भी काल ही है । जैसे
‘आकाश में अंगुली है, थी और होगी’ इस प्रकार का व्यवहार काल के आश्रित है ।
काल की सत्ता न मानी जाय तो अतीत ही वर्तमान और अनागत (भविष्य) हो
जायगा, क्योंकि क्रिया का कोई नियामक नहीं है । इस प्रकार अतीत आदि-
कालों का विभाग न रहने से व्यवहार का लोप हो जायगा, अतः “काल अवश्य
है, जिस के सहारे अतीत आदि के व्यवहार स्पष्ट रूप से सिद्ध होते हैं” ऐसा मानना
ही समुचित है ।

कारण काल न सिद्ध थाय छे जेभके डातर, वखने डापवामां निमित्त कारण थाय
छे, ते प्रभाण्डे द्रव्येना परिणमनमां काल निमित्त कारण थाय छे.

क्रिया जे द्रव्यतुं परिणाम विशेष छे. तेतुं निमित्त कारण पण काल न छे.
जेभ ‘आकाशमां आंगणी छे, हुती अने हुशे’ आ प्रकारने व्यवहार कालने आश्रित
छे. कालनी सत्ता न मानवामां आवे तो अतीत-भूतकाल न वर्तमान अने भविष्य
काल थर्छ नशे, जेभके क्रियाने नियामक डोर्छ नथी, आ प्रभाण्डे अतीत भूतकाल
आदि कालोने विभाग नछि रहेवाधी व्यवहारने लोप थर्छ नशे. जेतला माटे
“काल अवश्य छे, जेनी सहायताधी भूतकाल आदिने व्यवहार स्पष्टरूपधी सिद्ध
थाय छे” जेभ मानवुं ते न योग्य छे.

प्रतिदिवसमुभयकालिकसकलवस्त्रपात्रादिप्रतिलेखनं, प्रत्यहोरात्रमुभयकालिक-
मावश्यकं, चतुष्कालिकं स्वाध्यायकरणं मुनीनां कर्तव्यतया भगवतोपदिष्टं, तच्च
कालस्यासत्त्वे तद्विभागज्ञानाभावेन यथाकालमनुष्ठातुमशक्यं मुनिभिरिति
शास्त्रानर्थक्यमापद्येत ।

भिक्षार्थमकालवर्जनपूर्वककालानुरोधेन निष्क्रमप्रतिक्रमकर्तव्यता भगवत्प्ररूपिता
गृहीतप्रव्रज्यानां भिक्षूणां नष्टप्राया स्यात् ।

प्रतिदिन दोनों वक्त समस्त वस्त्र पात्र आदि का प्रतिलेखन करना, प्रत्येक
दिन और रात्रि के अन्त में आवश्यक करना, चौकालीन स्वाध्याय करना भगवान्‌ने
मुनियों का कर्तव्य बतलाया है । अगर कालद्रव्य की सत्ता न मानी जाय तो दिन रात
आदि के भेद का पता ही नहीं चलेगा और समय पर उक्त सब कार्य नहीं किये जा सकेंगे ।
ऐसी अवस्था में शास्त्रों का यह उपदेश निरर्थक हो जायगा ।

“अकाल का त्याग कर के समुचित समय पर मुनियों को भिक्षा के लिए जाना
और आना चाहिए ” भगवान्‌ ने मुनियों का यह कर्तव्य बतलाया है, कालद्रव्य न
मानने पर यह सब कर्तव्य, और उनका उपदेश भी नष्टप्राय हो जायगा ।

प्रतिदिन अन्ने वप्यत समस्त-तमात्र वस्त्र, पात्र आदितुं प्रतिलेखनः कर्तुं,
प्रत्येक द्विवस अने रात्रिना अन्तमां आवश्यक कर्तुं, चौकालीन-स्वाध्याय काल स्वाध्याय
करवो. ते भगवाने मुनिभ्योतुं कर्तव्यं पताव्युं छे. अगर कालद्रव्यनी सत्ता नहि
मानो तो द्विवस रात वगेरे लेहनेो पत्तो भणशे नहि, अने समय पर आगण
कहेलां सर्व कार्थोऽकरी शकशे नहि, ओवी अवस्थाभां शास्त्रोनेो ओ उपदेश निरर्थक
थर्ध नशे.

“अकालनेोत्याग करीने योग्य समय पर मुनिभ्योओ भिक्षाने भाटे नवुं-आववुं
नेधओ” भगवाने मुनिभ्योतुं ओ कर्तव्य कहुं छे. कालद्रव्यने नहि मानवामां आवे
तो आ सर्व कर्तव्य अने तेमनेो उपदेश पणु नष्टप्राय थर्ध नशे.

किञ्च—ग्रीष्मादिषु संयतानामतापनादयो धर्माः भगवदुक्ताः कालसत्त्व एवोपपद्यन्ते । अन्यथा ग्रीष्मादिऋतुज्ञानाभावाद् भगवदुपदिष्टक्रियाहानिः प्रसज्येत । एवं च वर्तना, परिणामः, क्रियाश्च द्रव्यस्वभावाः कालमाश्रित्य भवन्तीति निरूपितम् ।

परामपरव्यतिकरज्ञानमपि कालेनैव संपद्यते । विप्रकृष्टः कनिष्ठपर्यायो मुनिः क्षेत्रेण परोऽपि कालेनापरः, संनिष्ठो ज्येष्ठपर्यायो मुनिः क्षेत्रेणापरोऽपि

इसके अतिरिक्त ग्रीष्म आदि ऋतुओं में साधुओं के लिये भगवान्ने आतापना आदि धर्मोंका उपदेश दिया है, काल के होने पर ही यह उपदेश बन सकता है । काल के अभाव में ग्रीष्म ऋतु का ही ज्ञान नहीं होगा और भगवान् द्वारा उपदिष्ट क्रिया की हानि हो जायगी ।

यहां तक यह बतलाया जा चुका कि वर्तना, परिणाम और क्रिया, जो कि द्रव्य के स्वभाव हैं, काल के सहारे ही होते हैं ।

परत्व और अपरत्व का मिला-जुला सा ज्ञान भी काल द्वारा ही होता है । दूरवर्ती छोटीदीक्षापर्यायवाला मुनि दूर होने के कारण क्षेत्र से पर होने पर भी (दीक्षा में छोटा होने के कारण) काल से अपर कहलाता है । समीपवर्ती है, मगर ज्येष्ठदीक्षापर्यायवाला मुनि क्षेत्र से अपर होने पर भी काल से पर कहलाता है । यहाँ 'पर' भी 'अपर' हो गया है और 'अपर' भी 'पर' बना गया है ।

ते सिवाय ग्रीष्म आदि ऋतुओंमें साधुओं भाटे लगवाने आतापना आदि धर्मोंना उपदेश आये छे, काल द्रव्यने मानवामां आवे तो न, अथवा काल द्रव्य होय तो न ये उपदेश घटी शकै छे. कालना अलावमां ग्रीष्म ऋतुनुं ज्ञान थये नहि, अने लगवाने कडेली क्रियानी हानि थछ नथे.

अडिं सुधी जनतावी यूक्या के वर्तना, परिणाम अने क्रिया, जो के द्रव्यने स्वभाव छे, कालनी सहायताथी न थाय छे.

परत्व अने अपरत्वनुं मिला-जुला जेनुं ज्ञान पण कालद्वारा न थाय छे. दूरवर्ती, नानी दीक्षा-पर्यायवाला मुनि दूर होवाना कारखे क्षेत्रथी पर होवा छतांय पण (दीक्षामां नाना होवाना कारखे) कालथी अपर कडेवाय छे, समीपवर्ती छे पण ज्येष्ठ-मोटीदीक्षापर्यायवाला मुनि. क्षेत्रथी अपर होवा छतांय कालथी पर कडेवाय छे. अडिं 'पर' पण 'अपर' थछ गयो छे. अने 'अपर' पण 'पर' भनी गयो छे.

કાલેન પર ઇત્યુચ્યંતે । અત્ર પરસ્યાપરત્વમ્ ; અપરસ્ય પરત્વમિતિ પરાપરવ્યતિ-
કેરઃ X કારણં વિના ન સંભવતિ, યદત્ર કારણં સ એવ કાલઃ ।

યૌગપદ્યાયૌગપદ્યપ્રત્યયેનાપિ કાલદ્રવ્યસ્યાસ્તિત્વં સિધ્યતિ । ‘આમ્યાં
યુંગપદધીતો દષ્ટિવાદઃ’ ‘એમિસ્તુ મુનિભિર્યુગપત્ પઠિતા દ્વાદશાઙ્ગી’ ઇતિ વાક્ય-
તોઽધ્યયનગતયૌગપદ્યાયૌગપદ્યપ્રતીતૌ કાલમન્તરેણાન્યન્નિમિત્તં નોપલભ્યતે, યદ્વ
નિમિત્તં સ કાલઃ ।

X ‘પરસ્પરવિપયગમનં વ્યતિકરઃ’ ।

પર ઓર અપરકા યહ વ્યતિકર+ કારણ કે વિના સંભવ નહીં હૈ, અત એવ ઇસ
વ્યતિકર મેં જો કારણ હૈ, તસ વહી કાલ હૈ ।

યૌગપદ્ય (એક સાથ) ઓર અયૌગપદ્ય (આગે-પીછે) કા જો જ્ઞાન
હોતા હૈ તસ સે મી કાલદ્રવ્ય કા અસ્તિત્વ મિદ્ર હોતા હૈ । “ઇન દોનો મુનિયોને
એક સાથે દષ્ટિવાદ કા અધ્યયન ક્રિયા” ઓર “ઇન મુનિયોને ચારહ અઙ્ગ એક સાથે નહીં
પઢે-આગે પીછે પઢે હૈ,”-ઇસ વાક્ય સે યૌગપદ્ય ઓર અયૌગપદ્ય કા-એક સાથે કાં
ઓર આગે પીછે કા-જો જ્ઞાન હોતા હૈ તસમેં કાલ કે અસ્તિત્વ કે સિવાય ઓર કોઈ
કારણ નહીં પાયા જાતા । જો કારણ હૈ વહી કાલ હૈ ।

+ ‘પરસ્પરવિપયગમનં વ્યતિકરઃ’, અર્થાત્ એક કા વિપય દૂસરે મેં ચલા જાના
વ્યતિકર કહલોતા હૈ, જૈસે-પર કા અપર હો જાના ઓર અપર કા પર હો જાના ।

પર અને અપરનાં એ વ્યતિકર* કારણ વિના સંભવ નથી, તેથી એ
વ્યતિકરમાં એ કારણ છે, એસ તેજ કાળ છે.

યૌગપદ્ય-એક સાથે અને અયૌગપદ્ય-આગળ-પાછળનું જે જ્ઞાન થાય છે,
તેમાં પણ કાલદ્રવ્યનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે. “એ બન્ને મુનિઓએ એક સાથે
દષ્ટિવાદનું અધ્યયન કર્યું” અને “એ મુનિઓએ બાર અંગોનું એક સાથે અધ્યયન
કર્યું” નથી-આગળ-પાછળ અધ્યયન કર્યું છે” આ વાક્યથી યૌગપદ્ય અને
અયૌગપદ્યનું-એક સાથેનું અને આગળ-પાછળનું જે જ્ઞાન થાય છે. તેમાં કાલ વિના
ખીલું કેઈ કારણ હોખાતું નથી. જે કારણ છે તે જ કાળ છે.

+પરસ્પરવિપયગમનં વ્યતિકરઃ” અર્થાત્-એકનેા વિષય ખીલમાં ચાલ્યો ત્ય
તે વ્યતિકર કહેવાય છે. જેવી રીતે-પરનું અપર થઈ જવું અને અપરનું પર થઈ જવું.

ચિરક્ષિપ્રપ્ત્યયોઽપિ કાલમાસાઘૈવ જાગર્તિ । યથા—અનેન મહાત્માના ચિરં તપશ્ચરિતમ્, ગજસુકુમાલેન સિપ્રમાત્મકલ્યાણં કૃતમ્, ક્ત્યાદિવાક્યૈસ્તપશ્ચરણકલ્યાણસાધનાદીનાં વિલમ્બાવિલમ્બપ્રતીતિઃ કાલાભાવે સતિ નોપપદ્યતે ।

‘હ્યઃ શ્વોઽઘ પરશ્વઃ’—હત્યાદયઃ કાલાભિધાયિનઃ શબ્દાઃ કાલાલ્પ્યમર્થ ગમયન્તિ । સર્વજ્ઞેન ભગવતોચ્ચારિતત્વાદિમે શબ્દા યથાર્થૈવસ્તુબોધકાઃ સ્વપદ્મવદ્ અસમસ્તપદત્વાત્, શુદ્ધૈકપદત્વાચ પ્રસિદ્ધ સદ્ભૂતમર્થમાવેદયન્તિ કાલશબ્દાદયઃ ।

વર્તનાહેતુત્વા-અસ્તિત્વ-જ્ઞેયત્વાદિગુણાશ્રયતયા, અતીતાનાગતવતમાનાદિપર્યા-

જલ્દી ઓર દેર કા જ્ઞાન મી કાલ કે કારણ હી હોતા હૈ, જૈસે—“ઇસ મહાત્મા ને નિરકાલ તક તપ ક્રિયા, ગજમુકુમાલ ગુનિને શીખી હી । આત્મકલ્યાણ કર લિયા ।” ક્ત્યાદિ વાક્યો સે તપશ્ચરણ ઓર કલ્યાણ—સાધન ક્ષોદિમાં “વિલમ્બા” ઓર અવિલમ્બ કા જ્ઞાન કાલ કે અભાવ મેં નહી હો સકતા ।

‘કલ, આજ, પરસો’ ક્ત્યાદિ કાલવાચક શબ્દ મી કાલનામકાઃ દ્રવ્ય કો પ્રકટ કરતે હૈ । સર્વજ્ઞ ભગવાન કે દ્વારા ઉચ્ચારણ કિયે હુએ કાલ ક્ત્યાદિ શબ્દ વાસ્તવિક વસ્તુ કે બોધક હૈ, ક્યોકિં યહ સમાસરહિત પદ હૈ ઓર શુદ્ધ એક પદ હૈ । જો પદ સમાસરહિત ઓર શુદ્ધ એક પદ હોતે હૈ વે વાસ્તવિક પદાર્થ કે હી બોધક હોતે હૈ, જૈસે રૂપ આદિ ।

વર્તનાહેતુત્વ, અસ્તિત્વ, જ્ઞેયત્વ, આદિ ગુણો કા આધાર હોને સે, તથા અતીત, અનાગત (ભવિષ્યત્) ઓર વર્તમાન આદિ પર્યાયો કા આશ્રય હોને સે, કાલ કા

જલ્દી—તુરત અને ઠીલનું જ્ઞાન પણ કાલના કારણથી જ થાય છે. જેમ—“આ મહાત્માએ લાંબા સમય સુધી તપ કર્યું, ગજસુકુમાલ ગુનિએ તુરતમાં આત્મકલ્યાણ કરી લીધું.” ક્ત્યાદિ વાક્યોથી તપશ્ચરણ અને કલ્યાણસાધન વગેરેમાં વિલમ્બ અને અવિલમ્બનું જ્ઞાન કાલના અભાવમાં થઈ શકશે નહિ.

‘ગઈ કાલ, આવતી કાલ, આજ, પરમ દિવસે,’ ક્ત્યાદિ કાલવાચક શબ્દ પણ કાલ નામનાં દ્રવ્યને પ્રગટ કરે છે, સર્વજ્ઞ ભગવાન દ્વારા કહેવામાં આવેલાં એ કાલ આદિ શબ્દ વાસ્તવિક વસ્તુના બોધક છે, કેમકે એ સમાસરહિત પદ છે અને શુદ્ધ એક પદ છે. જે પદ સમાસરહિત અને શુદ્ધ એક એવું હોય છે, તે વાસ્તવિક પદાર્થના જ બોધક હોય છે. જેમ રૂપ આદિ.

વર્તનાહેતુત્વ, અસ્તિત્વ, જ્ઞેયત્વ આદિ ગુણોનો આધાર હોવાથી, તથા ભૂતકાલ, ભવિષ્યકાલ અને વર્તમાનકાલ આદિ પર્યાયોનો આશ્રય હોવાથી, કાલનું દ્રવ્યપણું

याथयतया च तस्य द्रव्यत्वं सिद्धयति, तस्मात् 'पष्टं द्रव्यं कालः' इति युक्त्योप-
पत्त्या च सिद्धम् ।

आगमोऽप्यत्र प्रमाणमिति चक्षुरुद्वाट्य पश्य—

“कइ णं भंते ! दव्वा पण्णत्ता?, गोयमा छ दव्वा पण्णत्ता, तं जहा-
धम्मत्थिकाए,, अधम्मत्थिकाए,, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए,
अद्दासमए,” इति ।

कति खलु भदन्त ! द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! पइ द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि,
तानि यथा—धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः,
जीवास्तिकायः, अद्दासमयः । इति च्छाया ।

‘कइविहा णं भंते ! सच्चदव्वा पण्णत्ता?, गोयमा ! छच्चिहा सच्चदव्वा
पण्णत्ता, तंजहा—धम्मत्थिकाए, जाव अद्दासमए’ इति । (भगवती श० २५, उ० ४)

द्रव्यपन सिद्ध होता है, अतएव युक्ति तथा उपपत्ति से कालनामक छठा द्रव्य
सिद्ध हुआ ।

आंख खोल कर देखो, इस विषय में आगम—प्रमाण भी विद्यमान है—

“कइ णं भंते ! दव्वा पण्णत्ता ! गोयमा ! छ दव्वा पण्णत्ता, तंजहा-
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए,
अद्दासमए ।”

सिद्ध थाय छे. जेटला कारणुधी युक्ति तथा उपपत्ति (पुरावा—प्रमाण)धी काल
नामनुं छहुं द्रव्य सिद्ध थाय छे.

आंख उघाडीने खुलो, आ विषयमां आगम—प्रमाण पणु विद्यमान छे—

“कइ णं भंते ! दव्वा पण्णत्ता ?, गोयमा ! छ दव्वा पण्णत्ता, तंजहा-
धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्दासमए ” ।

अर्थात्—‘लगवन्’ द्रव्य केटलां छे ? गौतम ! द्रव्य छ छे—धर्मास्तिकाय,
अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय अने अद्दासमय
अर्थात् काल.

तथा—“कइविहा णं भंते ! सच्चदव्वा पण्णत्ता ?, गोयमा ! छच्चिहा सच्चदव्वा
पण्णत्ता, तंजहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, जाव अद्दासमए ।”

कतिविधानि खलु भदन्त ! सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम !
षडविधानि सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा-धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः,
यावत्-अद्वासमयः, इति च्छाया ।

“ धम्मो अधम्मो आगासं; दव्वं इक्किकमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो ” ॥८॥ (उक्त० अ० २८)
धर्मोऽधर्मः आकाशः, द्रव्यमेकैकमाख्यातम्
अनन्तानि च द्रव्याणि, कालः पुद्गला जन्तवः । इति च्छाया ।

कालस्य स्वरूपम्—

अर्धतृतीयद्वीपव्यापी, निर्विभागोऽनाद्यपर्यवसितः,
एकोवर्तमानः समयः कालपदार्थः । एकत्वादेवास्तिकायो नायम् ।

अर्थात्—‘भगवन् ! सब द्रव्य कितने हैं ?’ ‘गौतम ! सब द्रव्य छह हैं—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यावत् अद्वा-समय’ (भगवतीसूत्र श. २५ उ. ४)

उत्तराध्ययन सूत्र (अ. २८) में भी कहा है— ‘धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य
एक एक कहे गये हैं । काल, पुद्गल और जीव अनन्त-अनन्त है’ इति ।

काल का स्वरूप—

समयक्षेत्रव्यापी, निर्विभाग, आद्यन्तरहित, एकप्रदेशरूप वर्तमान समय को
‘काल’ कहते हैं । यह एक होने के कारण अस्तिकाय नहीं है ।

अर्थात्—‘भगवन् ! सर्व द्रव्य कितने हैं ? गौतम ! सर्व द्रव्य छह हैं—धर्मास्तिकाय
अधर्मास्तिकाय यावत् अद्वासमय’ (भगवती. श. २५ उ. ४). उत्तराध्ययनसूत्र
(अ. २८) में पञ्च कक्षुं छे-धर्म, अधर्म, अने आकाश द्रव्य अेक अेक कक्षुं छे,
काल, पुद्गल अने जीव अनन्त-अनन्त छे.

कालस्य स्वरूपम्—

समयक्षेत्र (अर्धद्वीप) व्यापी, निर्विभाग (नेना भाग न पडे तेसुं), आद्यन्त-
रहित, एकप्रदेशरूप वर्तमान समयने काल कहे छे, आ अेक छेवाना कारणथी
‘अस्तिकाय’ नहीं.

सूर्यचन्द्रादिय्योतिष्काणां गतिमाश्रित्य कालविभागो भवति, गतिश्च मनुष्यलोकाभ्यन्तर एव तेषाम् । दिवसरात्रिमुहूर्तपक्षमासऋतुव्ययनवर्षयुगादीनां विभागः सूर्यादिगत्यैव लोके भवति । एवमतीतवर्तमानादयो विभागाः । यस्तु संख्यातुमशक्य उपमानमात्रावगम्यः कालः सोऽसंख्येयः, यथा-पल्योपमः, सागरोपम इत्यादि । असंख्येयादिकालज्ञानमपि भगवता मनुष्यलोकप्रसिद्धोपमानप्रदर्शनेन प्ररूपितम् ।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कां की गति का आश्रयण कर काल का विभाग होता है । सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कां की गति मनुष्यलोक के अन्दर में ही होती है । दिन, रात, मुहूर्त, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग आदि का विभाग सूर्य आदि की गति से ही लोक में होता है । इसी प्रकार अतीत, वर्तमान आदिका विभाग भी समझना चाहिये । जिसकी संख्या नहीं हो सकती, जो उपमान मात्र से गम्य है, वह काल असंख्येय है, जैसे—पल्योपम, सागरोपम, इत्यादि । असंख्येय आदि काल का ज्ञान भी मनुष्यलोकप्रसिद्ध उपमान का प्रदर्शन करके भगवान ने प्ररूपित किया है, समय आवलिका आदि सूक्ष्म काल तो सूर्यादिज्योतिष्कां की गति से नहीं जाना जाता है, क्यों कि वह अति सूक्ष्म है । इस लिये कालका व्यवहार समयक्षेत्र के भीतर ही होता है । समयक्षेत्र के बाहर जीवों के आयुष्य आदि की गणना मनुष्यक्षेत्रप्रसिद्ध प्रमाण से ही होती है ।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्केानी गतिना आश्रयथी कालनो विभाग थाय छे, सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्केानी गति मनुष्य लोकमां व छाय छे. दिन, रात, मुहूर्त, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग आदिना विभाग सूर्य आदिनी गतिथी व लोकमां थाय छे. या प्रकारे अतीत (भूतकाल) वर्तमान आदिना विभाग पणु समज्वा जेधञ्जे, जेनी गणुतरी न थर्छ शके, जे उपमान मात्रथी गम्य (समल शकय तेवुं) छे, ते काल असंख्येय छे, जेभके—पल्योपम, सागरोपम, इत्यादि. असंख्येय आदि कालनुं ज्ञान पणु जगवाने मनुष्यलोकप्रसिद्ध उपमाननुं प्रदर्शन करी प्ररूपित कयुं छे. समय, आवलिका आदि सूक्ष्म काल तो सूर्यादि ज्योतिष्केानी गतिथी पणु जणुी शकयुं नथी, जेभके ते अति सूक्ष्म छे. आथी कालनो व्यवहार समयक्षेत्र-अही द्वीपनी अंदर व थाय छे, समयक्षेत्रथी अंदर जेवानी आयुष्य आदिनी गणुता थाय छे ते मनुष्यक्षेत्रप्रसिद्ध प्रमाणथी व थाय छे, जेभ समल जेवुं.

સમયાવલિકાદિગુહમકાલસ્તુ મૃયાદિવ્યોત્પિકાણાં ગત્યા નાવગમ્યઃ, અતિસૂક્ષ્મત્વાત્ । તસ્માત્ કાલવ્યવહારોઽર્ધતૃતીયદ્વીપ એવમ્ । અર્ધતૃતીયદ્વીપાદ્ધિ- જીવાનામાંયુષ્કાદિગણના તુ મનુવ્યક્ષેત્રપ્રસિદ્ધપ્રમાણેનૈવ ભવતીતિ જ્ઞેયમ્ ।

एकोऽपि कालोऽतीतानागतपर्यायभेदैरनन्तः, अत एव भगवता—“अणंताणि य द्रव्याणि कालो पुग्गल जंतवो” इत्युपदिष्टम् । वर्तमानसमयस्य तु पर्यायत्वेऽपि नानन्त्यम्, एकरूपत्वात् ।

નિશ્ચયનયેન તુ “લોકવ્યાપી કાલઃ” इत्यवसीयते, अत एव भगवता— “धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो । एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहि वरदंसिहि” । इत्यभिहितम् । धर्मोऽधर्म आकाशः कालः पुद्गला जन्तवः । एष लोक इति प्रज्ञप्तः, जिनवरदशिभिः । इति च्छाया ।

કાલ યદાપિ એક હી છે, તો મી વહ મૂત-ભવિન્યત્પર્યાય ભેદ સે અનન્ત છે, ઇસીલિયે ભગવાને કહા છે—‘અણંતાણિ ય દ્રવ્યાણિ કાલો પુગ્ગલ જંતવો’ ઇતિ । કાલ, પુદ્ગલ ઓર જીવ, યે સમી અનન્ત હી । વર્તમાન સમય પર્યાયસહિત હોતે હુએ મી અનન્ત નહીં છે, ક્યોંકિ વહ એક હી છે ।

નિશ્ચયનય સે તો કાલ લોકવ્યાપી માના જાતા છે, અતએવ ભગવાને કહા છે—

“ધમ્મો અધમ્મો આગાસં, કાલો પુગ્ગલ જંતવો ।

એસ લોગોત્તિ પન્નત્તો જિણેહિ વરદંસિહિ” ॥ ૧ ॥

જે કે કાલ એક જ છે તો પણ ભૂત ભવિન્યના ભેદથી અનન્ત છે, તેથી ભગવાને કહ્યું છે—‘અણંતાણિ ય દ્રવ્યાણિ કાલો પુગ્ગલ જંતવો’, ઇતિ, કાલ પુદ્ગલ અને જીવ એ દ્રવ્યો અનન્ત છે. વર્તમાન સમય પર્યાયસહિત હોવા છતાં પણ અનન્ત નથી કેમકે તે એક જ છે.

નિશ્ચયનયથી તો કાલ લોકવ્યાપી માનવામાં આવે છે આથી ભગવાને કહ્યું છે કે— “ધમ્મો અધમ્મો આગાસં કાલો પુગ્ગલ જંતવો” ।

એસ લોગોત્તિ પન્નત્તો જિણેહિ વરદંસિહિ” ।

વરદશી-લોકલોકને ભોવાવાણાં જિન ભગવાને ‘ધર્મોસ્તિકાય, અધર્મોસ્તિકાય, આંકાશસ્તિકાય, કાલ, પુદ્ગલાસ્તિકાય અને ભવાસ્તિકાય, એજ લોક છે’ એમ કહ્યું છે.

एष सामान्यरूपेण प्रसिद्धो लोकः-अनन्तरोक्तद्रव्यपट्टकसमुदायरूप इति भाव ।

कालस्य—(१)-अरूपित्वम्, (२)-अचेतनत्वम्, (३)-अक्रियत्वम्, (४)-वर्तनाहेतुत्वं चेति गुणाः । (१)-अतीतत्वम्, अनागतत्वम्, (२)-वर्तमानत्वं, (३)-अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते । यथा-द्रव्यत-एकः कालः क्षेत्रतः-अर्द्धतृतीयद्वीपप्रमाणः, कालतः-आद्यन्तरहितः, भावतः-अरूपी-वर्णगन्धरसस्पर्शरहित इति, गुणतः-वर्तनालक्षणः, इति ।

वरदर्शा-लोकालोक को देखनेवाले जिन भगवानने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुटलास्तिकाय और जीवास्तिकाय; इन सबको अर्थात् इनके समुदाय को लोक कहा है ।

उपरिनिर्दिष्ट छ द्रव्यों के समुदाय को भगवानने सामान्यतया लोक कहा है ।

काल के-अरूपित्व, अचेतनत्व, अक्रियत्व, वर्तनाहेतुत्व, ये चार गुण हैं । अतीतत्व, अनागतत्व, वर्तमानत्व, अगुरुलघुत्व, ये चार पर्याय हैं ।

यह काल-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे-द्रव्य से काल एक है, क्षेत्र से समयक्षेत्रप्रमाणवाला, काल से आद्यन्तरहित, भाव से अरूपी, अर्थात् वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित, और गुण से वर्तनालक्षणवाला है ।

उपरि दर्शावेला छ द्रव्योना समुदायने भगवाने सामान्य रीते लोक कहले छे.

काणना-अरूपित्व, अचेतनत्व, अक्रियत्व अने वर्तनाहेतुत्व, अने चार गुण छे. अने अतीतत्व, अनागतत्व, वर्तमानत्व, तथा अगुरुलघुत्व अने चार पर्याय छे.

आ काण-द्रव्य, क्षेत्र, काण, भाव अने गुणना लेइथी पांच प्रकारे ज्ञाय छे, अने अर्द्ध-द्रव्यथी काण अहे, क्षेत्रथी अर्द्धीय प्रमाण, कालथी आद्यन्तरहित, भावथी अरूपी-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित छे, अने गुणथी वर्तनालक्षणवाणे छे.

समयावलिकादिगुरुक्षमकालस्तु मूर्यादिव्योतिष्काणां गत्या नावगम्यः, अतिसूक्ष्मत्वात् । तस्मात् कालव्यवहारोऽर्धतृतीयद्वीप एव । अर्धतृतीयद्वीपाद्भिर्जीवानामायुष्कादिगणना तु मनुष्यक्षेत्रप्रसिद्धप्रमाणेनैव भवतीति ज्ञेयम् ।

एकोऽपि कालोऽतीतानागतपर्यायभेदैरनन्तः, अत एव भगवता—“अण्ताणि य द्रव्याणि कालो पुग्गल जंतवो” इत्युपदिष्टम् । वर्तमानसमयस्य तु पर्यायत्वेऽपि नानन्त्यम्, एकरूपत्वात् ।

निश्चयनयेन तु “लोकव्यापी कालः” इत्यवसीयते, अत एव भगवता—“धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो । एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहि वरदंसिहि” । इत्यभिहितम् । धर्मोऽधर्म आकाशः कालः पुद्गला जन्तवः । एष लोक इति प्रज्ञसः, जिनवर्दशिभिः । इति च्छाया ।

काल यद्यपि एक ही है, तो भी वह भूत-भविष्यत्पर्याय भेद से अनन्त है, इसीलिये भगवानने कहा है—‘अण्ताणि य द्रव्याणि कालो पुग्गल जंतवो’ इति । काल, पुद्गल और जीव, ये सभी अनन्त हैं । वर्तमान समय पर्यायसहित होते हुए भी अनन्त नहीं है, क्योंकि वह एक ही है ।

निश्चयनय से तो काल लोकव्यापी माना जाता है, अतएव भगवानने कहा है—

“धम्मो अधम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो ।

एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहि वरदंसिहि” ॥ १ ॥

जैसे के काल एक न छे तो पणु भूत भविष्यना लेदधी अनन्त छे, तैथी भगवाने कहु छे—‘अण्ताणि य द्रव्याणि कालो पुग्गल जंतवो’ इति, काल पुद्गल अने एव अये द्रव्ये अनन्त छे, वर्तमान समय पर्यायसहित होवा छतां पणु अनन्त नथी केमके ते एक न छे.

निश्चयनयथी तो काल लोकव्यापी मानवाभां आवे छे आथी भगवाने कहु छे—
“धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो”

एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहि वरदंसिहि” ॥

वरदंशी—लोकलोकने जेवावाणां जिन भगवाने ‘धर्मास्तिकायं, अधर्मास्तिकायं, आकाशास्तिकायं, कालं, पुद्गलास्तिकायं अने एवास्तिकायं, अने लोक छे’ अने कहु छे.

एष सामान्यरूपेण प्रसिद्धो लोकः—अनन्तरोक्तद्रव्यपट्टकसमुदायरूप इति भाव ।

कालस्य—(१)—अरूपित्वम्, (२)—अचेतनत्वम्, (३)—अक्रियत्वम्, (४)—वर्तनाहेतुत्वं चेति गुणाः । (१)—अतीतत्वम्, अनागतत्वम्, (२)—वर्तमानत्वं, (३)—अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्यक्षेत्रकालभावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते । यथा—द्रव्यत-एकः कालः क्षेत्रतः—अद्वैततीयद्वीपप्रमाणः, कालतः—आद्यन्तरहितः, भावतः—अरूपी—वर्णगन्धरसस्पर्शरहित इति, गुणतः—वर्तनालक्षणः, इति ।

वरदर्शा—लोकालोक को देखनेवाले जिन भगवानने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय; इन सबको अर्थात् इनके समुदाय को लोक कहा है ।

उपरिनिर्दिष्ट छ द्रव्यों के समुदाय को भगवानने सामान्यतया लोक कहा है ।

काल के—अरूपित्व, अचेतनत्व, अक्रियत्व, वर्तनाहेतुत्व, ये चार गुण हैं । अतीतत्व, अनागतत्व, वर्तमानत्व, अगुरुलघुत्व, ये चार पर्याय हैं ।

यह काल—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे—द्रव्य से काल एक है, क्षेत्र से समयक्षेत्रप्रमाणवाला, काल से आद्यन्तरहित, भाव से अरूपी, अर्थात् वर्ण—गन्ध—रस—स्पर्श—रहित, और गुण से वर्तनालक्षणवाला है ।

उपरि दर्शावेला छ द्रव्योंना समुदायने भगवाने सामान्य रीते लोक कहेल छे.

काणना—अरूपित्व, अचेतनत्व, अक्रियत्व अने वर्तनाहेतुत्व, अने चार शुषु छे. अने अतीतत्व, अनागतत्व, वर्तमानत्व, तथा अगुरुलघुत्व अने चार पर्याय छे.

आ काण—द्रव्य, क्षेत्र, काण, भाव अने शुषुना भेदधी पांच प्रकारे ज्ञाय छे, अने द्रव्यधी काण अके, क्षेत्रधी अदीद्वीप प्रमाण, कालधी आद्यन्तरहित, भावधी अरूपी—वर्ण—गन्ध—रस—स्पर्श—रहित छे, अने शुषुधी वर्तनालक्षणवाणो छे.

સમયાવલિકાદિગુહમકાલસ્તુ । મૂર્યાદિવ્યોત્પિકાણાં ॥ ગત્યા નાવગમ્યઃ,
અતિમુક્તવાત્ । તસ્માત્ કાલવ્યવહારોઽર્ધતૃતીયદ્વીપ એવ । અર્ધતૃતીયદ્વીપાદ્ધિ-
ર્જીવાનામાયુષ્કાદિગણના તુ મનુષ્યધેત્રપસિદ્ધપ્રમાણેનૈવ ભવતીતિ જ્ઞેયમ્ ।

‘‘ એકોઽપિ કાલોઽતીતાનાગતપર્યાયભેદૈરનન્તઃ, અત એવ ભગવતા—‘‘અણતાણિ
ય દવ્વાણિ કાલો પુગ્ગલ જંતવો’’ હત્યુપદિષ્ટમ્ । વર્તમાનસમયસ્ય તુ પર્યાયત્વેઽપિ
નાનન્ત્યમ્, એકરૂપત્વાત્ ।

નિશ્ચયનયેન તુ ‘‘લોકવ્યાપી કાલઃ’’ ઇત્યવસીયતે, અત એવ ભગવતા—
‘‘ધમ્મો અધમ્મો આગાસં કાલો પુગ્ગલ જંતવો । એસ લોગોત્તિ પન્નત્તો જિણેહિ
વરદંસિહિ’’ । ઇત્યભિહિતમ્ । ધર્મોઽધર્મ આકાશઃ કાલઃ પુદ્ગલા જન્તવઃ । એવ લોક
ઇતિ પ્રજ્ઞપ્તઃ, જિનવરદર્શિભિઃ । ઇતિ ચ્છાયા ।

કાલ યદપિ એક હી હૈ, તો મી વહ મૂત-મવિષ્યતપર્યાય મેદ સે અનન્ત હૈ,
ઈસીલિયે મગવાનને કહા હૈ—‘‘અણતાણિ ય દ્રવ્વાણિ કાલો પુગ્ગલ જંતવો’’ ઇતિ ।
કાલ, પુદ્ગલ ઓર જીવ, યે સમી અનન્ત હૈ । વર્તમાન સમય પર્યાયસહિત હોતે હુએ મી
અનન્ત નહી હૈ, ક્યોકિ વહ એક હી હૈ ।

નિશ્ચયનય સે તો કાલ લોકવ્યાપો માના જાતા હૈ, અતએવ મગવાનને કહા હૈ—

‘‘ધમ્મો અધમ્મો આગાસં, કાલો પુગ્ગલ જંતવો ।

એસ લોગોત્તિ પન્નત્તો જિણેહિ વરદંસિહિ’’ ॥ ૧ ॥

જો કે કાલ એક જ છે તો પણ ભૂત ભવિષ્યના ભેદથી અનન્ત છે, તેથી
લગવાને કહ્યું છે—‘‘અણતાણિ ય દ્રવ્વાણિ કાલો પુગ્ગલ જંતવો’’, ઇતિ, કાલ પુદ્ગલ
અને જીવ એ દ્રવ્યો અનન્ત છે. વર્તમાન સમય પર્યાયસહિત હોવા છતાં પણ
અનન્ત નથી કેમકે તે એક જ છે.

નિશ્ચયનયથી તો કાલ લોકવ્યાપી માનવામાં આવે છે આથી લગવાને કહ્યું છે કે—
‘‘ધમ્મો અધમ્મો આગાસં કાલો પુગ્ગલ જંતવો’’ ॥

એસ લોગોત્તિ પન્નત્તો જિણેહિ વરદંસિહિ’’ ॥

વરદશી—લોકાલોકને જોવાવાળા જિન લગવાને ‘ધર્મસ્તિકાય, અધર્મસ્તિકાય,
આકાશસ્તિકાય, કાલ, પુદ્ગલાસ્તિકાય અને જીવાસ્તિકાય, એજ લોક છે એમ કહ્યું છે.

पुद्गललक्षणम्—

रूपवत्त्वं पुद्गलानां लक्षणम्, अत्र रूपं मूर्तत्ववर्णादिकम् । यद्यपि परमाणुप्रभृतयः स्रग्माः पुद्गलास्तेषां गुणाश्चातीन्द्रियतया नेन्द्रियैर्गृह्यन्ते तथापि वादरस्कंधरूपे परिणामविशेषे तेषामेवेन्द्रियग्राह्यतया रूपवत्त्वं प्रतीयते ।

अतीन्द्रिये परमाणुप्रभृतिपुद्गलेऽतीन्द्रिये धर्मास्तिकायादौ चैतावान् विशेषः— धर्मास्तिकायादीनामिन्द्रियविषयत्वाभावाद्दीन्द्रियत्वमरूपित्वं च, परमाणुप्रभृतिपुद्गलानां त्वतीन्द्रियत्वेऽपि रूपित्वमिति ।

पुद्गल का लक्षण—

पुद्गलका लक्षण 'रूपवत्त्व' है । जिस में रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श पाया जाय अर्थात् जो मूर्तिक हो, वह पुद्गल है । यद्यपि परमाणु आदि पुद्गल बहुत सूक्ष्म हैं, और अतीन्द्रिय होने के कारण उनके गुण इन्द्रियों द्वारा नहीं ग्रहण किये जाते, तथापि जब उन पुद्गलों का वादर स्कन्ध के रूपमें परिणमन होता है तब वे इन्द्रियोंद्वारा ग्राह्य हो जाते हैं, और उनका रूपवत्त्व प्रतीत होने लगता है ।

परमाणु आदि अतीन्द्रिय पुद्गलों में और धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय द्रव्यों में इतना अन्तर है कि—धर्मास्तिकाय आदि अरूपी द्रव्य कभी इन्द्रियों के विषय नहीं होते, अतः वे अतीन्द्रिय और अरूपी हैं, किन्तु परमाणु आदि पुद्गल अतीन्द्रिय होने पर भी रूपी हैं ।

पुद्गलानुं लक्षणम्—

पुद्गलानुं लक्षणम् रूपवत्त्व छे; जेभां रूप, रस, गंध अने स्पर्श जेवाभां आवे अर्थात् जे मूर्तिमान होय ते पुद्गल छे. जे के परमाणु आदि पुद्गल पक्षु ज सूक्ष्म छे अने अतीन्द्रिय होवाता कारणे तेना शुष्ण इन्द्रियो द्वारा ग्रहण करी शकता नथी; ते पक्षु न्यारे ते पुद्गलानुं वादर स्कंधना रूपभां परिणमन धाय छे, त्यारे ते इन्द्रियो द्वारा ग्रहण थर्ष जाय छे, अने तेनुं रूपवत्त्व प्रतीत थवा लागे छे.

परमाणु आदि अतीन्द्रिय पुद्गलानुं अने धर्मास्तिकाय वजरे 'अतीन्द्रिय द्रव्योंभां अट्टलुं अंतर-इरक्षार छे के—धर्मास्तिकाय आदि अरूपी द्रव्य क्यारेय पक्षु इन्द्रियोना विषय थवा नथी, तेथी ते अतीन्द्रिय अने अरूपी छे, परन्तु परमाणु आदि पुद्गल अतीन्द्रिय होवा छतांय रूपी छे.

अथ पुद्गलास्तिकायः ।

तत्र-पुद्गलशब्दार्थः ।

पूर्यते=संहन्यते-परस्परं संयुज्य संघीभूय नूतनघनघटावदेकीभवति, गलति च=विच्छिन्नपुक्तावलीमणिवद् चिकीर्णो भवति-इति पुद्गलः । पूरण-गलन-धर्म इत्यर्थः । पुद्गलश्चासावस्तिकायश्चेति पुद्गलास्तिकायः ।

पुद्गलास्तिकायस्य घटादिकार्यान्यथानुपपत्तेः प्रत्यक्षदर्शनाच्च सत्ता सिद्धैव ।

पुद्गलास्तिकाय—

‘पुद्गल’ शब्द का अर्थ—

आपस में मिलकर इकट्ठे होकर नवीन घटघटादि के रूप में जो एकमेक हो जाते हैं, और जो गल जाते हैं अर्थात् टूटी हुई मोतियों की माला की भांति बिखर जाते हैं, वे पुद्गल कहलाते हैं । तात्पर्य यह है कि—जिसमें पूरण और गलन धर्म हो वह पुद्गल है, पुद्गलरूप अस्तिकाय ‘पुद्गलास्तिकाय’ कहलाता है ।

अगर ‘पुद्गलास्तिकाय’ न होता तो घट आदि कार्य नहीं बन सकते थे । इस कारण, तथा प्रत्यक्ष दिखाई देने के कारण भी पुद्गलास्तिकाय की सत्ता भलीभांति सिद्ध है ।

पुद्गलास्तिकाय—

पुद्गल शब्दना अर्थ—

परस्पर भण्णिने ओकत्र यधने नवीन घन-घटादिना रूपमां न्. ओक-मेकं यधं नय छे, अने न् गणी नय छे अर्थात् तुट्टी गञ्जेली मोतीञ्जोनी भाणा प्रमाञ्जे विंभाळं नय छे, ते पुद्गल कहेवाय छे. तात्पर्यं ओ छे हे-जेमां पूरण अने गलन धर्म होय ते पुद्गल छे, पुद्गलरूप अस्तिकाय ते पुद्गलास्तिकाय कहेवाय छे.

अगर पुद्गलास्तिकाय न होता तो घट आदि कार्य नहीं शकत नहि. आ कारव्यथी, तथा प्रत्यक्ष देणी शकय छे ते कारव्यथी यण पुद्गलास्तिकायनी सत्तां इती रीते सिद्ध छे.

गाहते । द्व्यणुकस्कन्धश्च तस्यैकस्मिन् प्रदेशे, द्वयोश्च प्रदेशयोरवगाहते । तथा त्र्यणुकस्कन्धो लोकाकाशस्यैकस्मिन् प्रदेशे, द्वयोः प्रदेशयोस्त्रिषु प्रदेशेषु चावगाहते । एवं चतुरणुकादीनां संख्यातप्रदेशाऽसंख्यातप्रदेशानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामवगाहनं लोकाकाशस्यैकप्रदेशमारभ्य संख्याताऽसंख्यातप्रदेशपर्यन्तेषु भवति ।

नन्वेकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽल्पीयसि कथमनन्तप्रदेशिनः स्कन्धाः स्थानं क्वभन्ते, न हि कलशे सिन्धोः समावेशं पश्यामः ?

अवगाहना होती है । द्व्यणुक अर्थात् दो परमाणु वाला स्कन्ध लोकाकाश के एक प्रदेश में या दो प्रदेशों में अवगाहन करता है । इसी प्रकार तीन परमाणुओं वाला स्कन्ध लोकाकाश के एक प्रदेश में, दो प्रदेशों में अथवा तीन प्रदेशों में अवगाहन करता है । इसी भांति चतुरणुक (चार अणुओं वाले) आदि स्कन्धों की अवगाहना, तथा संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी तक के स्कन्धों की अवगाहना लोकाकाश के एक प्रदेश से लेकर संख्यात तथा असंख्यात प्रदेशों में होती है ।

शंका—आकाश के एक छोटे से प्रदेश में अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का समावेश किस प्रकार हो सकता है, गागर में सागर का समावेश होना तो कहीं दिखाई नहीं देता ।

अवगाहना होय छे द्व्यणुक अर्थात् जे परमाणुवाणा स्कंध लोकाकाशना जेक प्रदेशमां अथवा जे प्रदेशोमां अवगाहन करे छे. जे प्रमाणु त्र्यणु अणुजोवाणा स्कंध लोकाकाशना जेक प्रदेशमां, जे प्रदेशोमां अथवा त्र्यणु प्रदेशोमां अवगाहन करे छे. जे प्रमाणु चार अणुजोवाणा आदि स्कंधोनी अवगाहना, तथा संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी अने अनन्तप्रदेशी सुधीना स्कंधोनी अवगाहना लोकाकाशना जेक प्रदेशथी लघने संख्यात तथा असंख्यात प्रदेशोमां होय छे.

शंका—आकाशना जेक नाना प्रदेशमां अनन्त प्रदेशी स्कंधनो समावेश क्वेवी रीते थर्ध शके, गागरमां सागरनो समावेश थयेवो कोध ठेकले देखातो नथी ?

पुद्गलानां प्रदेशसंख्या—

परमाणुमारभ्याच्चित्तमहास्कन्धपर्यन्ताः पुद्गला विविधपरिणामा भवन्ति ।
तेषां प्रदेशाः संख्याता असंख्याता अनन्ताश्च यथासंभवं भवन्ति ।
तत्र—संख्यातपरमाणुसंयोगसंजातः स्कन्धः संख्यातप्रदेशी, असंख्यातपरमाणु-
घटितः स्कन्धोऽसंख्यातप्रदेशी, अनन्तपरमाणुसंहतिसद्भूतश्च स्कन्धोऽनन्त-
प्रदेशी भवति । परमाणोस्तु निरंशत्वान्नास्ति प्रदेश इति ।

पुद्गलानां क्षेत्रस्थितिः—

परमाणौ विभागाभावादकस्मिन्नेवं प्रदेशे लोकाकाशस्य परमाणुरन-

पुद्गलों की प्रदेशसंख्या—

परमाणुसे लेकर अचित्त महास्कन्ध तक सब पुद्गल विविध परिणमन बाढे होते हैं । उनके प्रदेश यथासंभव संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त होते हैं । संख्यात परमाणुओं के संयोग से बना हुआ स्कन्ध संख्यातप्रदेशी कहलाता है । असंख्यात परमाणुओं से बना हुआ स्कन्ध असंख्यातप्रदेशी और अनन्त परमाणुओं से निष्पन्न स्कन्ध अनन्त प्रदेशी कहलाता है । परमाणु निरंश होता है—उसके अनेक भाग नहीं हो सकते, अत एव वह अप्रदेशी है ।

पुद्गलों की क्षेत्रस्थिति—

परमाणु के विभाग न होने के कारण लोकाकाश के एक ही प्रदेश में उसकी

पुद्गलों की प्रदेशसंख्या—

परमाणुओं से लघने अचित्त महास्कन्ध सुधी सर्व पुद्गल विविध परिणमनवाण्डे डोय-छे. तेना प्रदेशे यथासंभव संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त डोयं छे. संख्यात परमाणुओंना संयोगधी अनेला स्कन्ध संख्यातप्रदेशी कहेवायं छे, असंख्यात परमाणुओंधी अनेला स्कन्ध असंख्यातप्रदेशी अने अनन्त परमाणुओंधी निष्पन्न स्कन्ध अनन्त-प्रदेशी कहेवायं छे. परमाणु निरंश डोय छे, तेना अनेक भाग थई शकता नथी तेधी ते अप्रदेशी छे.

पुद्गलों की क्षेत्रस्थिति—

परमाणुभां विलाग नहि होवाना कारणे लोकाकाशना एक व प्रदेशभां तेना

यथा वा एकप्रदीपप्रभायामनेकप्रदीपप्रभासमावेशः । यथा वा एककर्पपरि-
मितपारदे शतकर्पपरिमितमुवर्णसमावेशो भवति ।

अनन्तप्रदेशरूपोऽचित्तमहास्कन्धः केवलिसमुद्रातवत् सकललोकव्यापी
भवति । स च त्रिस्रसागत्या प्रथमसमयेऽसंख्यातयोजनविस्तरेण दण्डाकारेण
परिणमति । द्वितीयसमये कपाटरूपेण, तृतीयसमये मन्थानरूपेण, चतुर्थसमये
प्रतरमापूर्य सकललोकं व्याप्नोति, पञ्चमसमये प्रतरं संहरति, षष्ठसमये मन्थानं
भनक्ति, सप्तमसमये कपाटं च, अष्टमसमये दण्डाकारं संहृत्य खंडशः प्रविकीर्णो
भवति ।

अथवा—एक दीपक के प्रकाश में अनेक दीपकों का प्रकाश समा जाता है ।

अथवा एक कर्प—मासा (मापविशेष) परिमित पारे में सौ कर्प परिमित सोने का
समावेश हो जाता है ।

अनन्तप्रदेशी अचित्त महास्कन्ध केवलिसमुद्रात के समान समस्तलोक-
व्यापी होता है । वह स्वाभाविक गति से, प्रथम समय में असंख्यातयोजनविस्तृत
दण्ड के आकार में परिणत होता है । दूसरे समय में वह कपाट के रूप में परिणत होता है,
और तीसरे समय में मन्थान के रूप में हो जाता है, चौथे समय में प्रतर पूर्ण करके सम्पूर्ण
लोक में व्याप्त हो जाता है । फिर पांचवें समय में प्रतर को सिकोडता है, छठे
समय में मन्थान को, सातवें समय में कपाट को, और आठवें समय में दण्डाकार को यह
सिकोडता है । उसके अनन्तर वह खण्ड खण्ड होकर विखर जाता है ।

अथवा—एक दीपकना प्रकाशमां अनेक दीपकना प्रकाश समाई नय छे.
अथवा एक कर्प (मापविशेष) परिमित पारमां एकसो कर्प परिमित सोनानो
समावेश थई नय छे.

अनन्तप्रदेशी अचित्त महास्कन्ध, केवलिसमुद्रातनी समान समस्तलोक
व्यापी छेय छे, ते स्वाभाविक गतिथी, प्रथम समयमां असंख्यातयोजनविस्तृत
दंडना आकारमां परिणत थाय छे. णीज समयमां ते कपाटना रूपमां परिणत
थाय छे, अने त्रीज समयमां मन्थान (दही पलोववानो रवैथे) ना रूपमां थाय
छे, चौथा समयमां प्रतर पूर्ण करीने लोकमां व्याप्त थई नय छे. इरी पांचमा
समयमां प्रतरने सिकोडे छे, छठ्ठा समयमां मन्थानने, सातमा समयमां कपाटने
अने आठमा समयमां दंडाकारने अे सिकोडे छे, त्पार पछी ते षंड-षंड थईने
विभेराई नय छे.

અત્ર ઘૂમઃ—પુદ્ગલસ્ય પરિણમનશક્તિરેવ તાદૃશી યતઃ પરમસૂક્ષ્મસ્તાદુશ્ચઃ
 પરિણામો જાયતે, યેનાનન્તપ્રદેશિનઃ સ્કન્ધાઃ પ્રદેશમેકં નભસઃ પ્રવિશન્તિ ।
 અથવા ગગનસ્ય તાદૃશી વિચિત્રાસ્વગાહદાનશક્તિર્યતોઽનન્તપ્રદેશિનાં સ્કંધાનાં
 તસ્યૈકસ્મિન્ પ્રદેશે સમાવેશઃ સિધ્ધયતિ । યથા અતિથનીભૂતલોહગોલકાવગાહ-
 નાન્નિરવકાશે કિલાકાશદેશે ભસ્ત્રાનિલસમુદ્ભૂતાઃ પાવકાવયવાઃ સમાવિશન્તિ ।
 યદિ રન્ધ્રરહિતાઽયોગોલકં શીતલીકર્તું વારિ નિશ્પિપ્તે, તદા તદયોગોલક-
 પરિપૂરિતનિરન્તરાકાશદેશે તસ્મિન્નેવ વારિક્ષણા અન્યાહતં પ્રવિશન્તિ ।

સમાધાન—પુદ્ગલ મેં પરિણમનશક્તિ હી એસી હૈ, જિસસે ઉસકા અત્યન્ત
 સૂક્ષ્મ પરિણમન હોતા હૈ । ઇસી કારણ અનન્તપ્રદેશી સ્કન્ધ મી આકાશ કે ઇક
 પ્રદેશ મેં સમા જાતે હૈં । અથવા આકાશ મેં એસી કુછ વિચિત્ર અવકાશદાન કરને કી શક્તિ
 હૈ કિ ઉસકે કારણ અનન્તપ્રદેશી સ્કન્ધોં કા મી આકાશ કે ઇક હી પ્રદેશ મેં સમાવેશ
 હો જાતા હૈ । જૈસે—અત્યન્ત સઘન લોહે કે ગોલે કે અવગાહન સે નિરવકાશ આકાશ-
 પ્રદેશ મેં ધોંકની કી વાયુ સે વૃદ્ધિ પાયે હુએ અગ્નિ કે અવયવ પ્રવેશ કર જાતે હૈં । તાત્પર્ય
 યહ હૈ કિ—લોહે કા ગોલુ વહુત ઠોસ હોતા હૈ, વહ આકાશ કે જિન પ્રદેશોં મેં મૌજૂદ
 હૈ, વહાં જગહ દિલાઈ નહાં દેતી, ફિર મી ધોંકની કી વાયુ કી પ્રેરણાસે ઉન્હાં
 આકાશ પ્રદેશોં મેં અગ્નિ કા પ્રવેશ હો જાતા હૈ, તત્પશ્વાત્ છિદ્રરહિત ઉસ લોહે કે
 ગોલે કો ઠંડા કરને કે લિયે ઉસ પર પાની ડાલા જાય તો જિન આકાશ પ્રદેશોં મેં
 લોહે કા ગોલુ ઓર પાવક—અગ્નિ હૈ, ઉન્હાં મેં જલ કે કણ મી વેરોકટોક પ્રવેશ કર જાતે હૈં ।

સમાધાન—પુદ્ગલોમાં પરિણમનશક્તિ જ એવી છે જેથી તેનું અત્યન્ત સૂક્ષ્મ
 પરિણમન હોય છે. એ કારણે અનન્તપ્રદેશી સ્કંધ પણ આકાશના એક પ્રદેશમાં
 સમાઈ જાય છે. અથવા આકાશમાં એવી કોઈ વિચિત્ર અવકાશદાન કરવાની શક્તિ
 છે કે—તે કારણથી અનન્તપ્રદેશી સ્કંધોનાં પણ આકાશના એક જ પ્રદેશમાં સમાવેશ
 થઈ જાય છે. જેમકે—અત્યન્ત સઘન લોહના ગોળાના અવગાહનથી નિરવકાશ
 આકાશ પ્રદેશમાં ધમણના વાયુથી વૃદ્ધિ પામેલા અગ્નિના અવયવો પ્રવેશ કરી જાય
 છે. તાત્પર્ય એ છે કે—લોહના ગોળો ખડુ જ ઠોસ (પોલાણુ વિનાનો) હોય છે,
 તે આકાશના જે પ્રદેશોમાં મોજૂદ છે, ત્યાં જગ્યા દેખાતી નથી. તે પણ ધમણના
 વાયુની પ્રેરણાથી તે આકાશ પ્રદેશોમાં અગ્નિનો પ્રવેશ કરી જાય છે. તે પછી
 છિદ્રરહિત તે લોહના ગોળાને ઠંડા કરવા માટે તેના ઉપર પાણી નાખવામાં આવે
 તે જે આકાશ-પ્રદેશોમાં લોહના ગોળો અને અગ્નિ છે, તેમાં પાણીનાં ટીપાં પણ
 શક-ટોક (અટકાવ્યા) વિના પ્રવેશ કરી જાય છે.

पुद्गलानां विशेषगुणाः—

वर्णगन्धरसस्पर्शाः पुद्गलानां विशेषगुणाः सहभाविनः परिणामाः ।
शब्द - बन्ध - सौक्ष्म्य - स्थूल्य - संस्थान - भेद - तम - छाया - ऽऽतपो-द्योतादिभिः
पर्यायैः पुद्गला लक्ष्यन्ते-ज्ञायन्ते, इत्याशयेन भगवता पुद्गलानां लक्षणतया
शब्दादयः प्रोक्ताः । तथाहि—

“सद्व्ययार उज्जोओ, पमा छायाऽऽतवुत्ति वा

वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥१॥” (उत्त० अ० २८)

पुद्गलों के विशेष गुण—

वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श पुद्गलों के विशेष (असाधारण) गुण हैं—सहभावी परिणाम हैं । शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान (आकार), भेद, तम, छाया, आतप, उद्योत आदि पर्यायों के द्वारा पुद्गल लक्षा जाता है—जाना जाता है । इस आशय से भगवान् ने शब्द आदि को पुद्गलों का लक्षण कहा है, वह इस प्रकार—
“सद्व्ययार उज्जोओ, पमा-छाया-ऽऽतवुत्ति वा, वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं” शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रमा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गन्ध, और स्पर्श, ये सब पुद्गलों के लक्षण हैं । गाथा में ‘छायाऽऽतवुत्ति’ यहाँ ‘इति’ शब्द आदि के अर्थ में है । इस आदि शब्द से वर्ण आदि का ग्रहण हो सकता था फिर भी उन्हें अलग कहने का कारण यह है कि—वे नित्य सहभावी गुण हैं ।

पुद्गलानां विशेष गुण—

वर्ण, गंध, रस अने स्पर्श पुद्गलानां विशेष (असाधारण) गुण छे—
सहभावी परिणाम छे शब्द, गंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान (आकार) भेद, तम, छाया, आतप, उद्योत आदि पर्यायेधी लणी शक्य छे—जणी शक्य छे । ते आशयधी भगवाने शब्द आदि पुद्गलानुं लक्ष्य क्खुं छे, ते आ प्रमाछे छे—
“सद्व्ययार उज्जोओ, पमा-छाया-ऽऽतवुत्ति वा, वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं” शब्द, अन्धकार, उद्योत प्रमा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गंध अने स्पर्श, ये पुद्गलानुं लक्ष्य छे । गाथां—‘छायाऽऽतवुत्ति’ अर्हि ‘इति’ शब्द आदिना अर्थमां छे, ये प्रमाछे ‘आदि’ शब्दधी वर्ण वगैरेनुं अल्लु थर्ध शके छे तेो पण तेने अलग क्खेवानुं कारण्ये छे के ते नित्य सहभावी गुण छे ।

પુદ્ગલાનામુપકાર:—

શરીરવાહ્મન:પ્રાણાદય: પુદ્ગલપરિણામા ગમનાઽઽદાન-વચન-ચિન્તન-પ્રાણનાદિભાવેન જીવાનુપકુર્વન્તિ, અતઃ શરીરાઘાકારેણ પુદ્ગલા જીવાનામુપકારં કુર્વન્તિ । તત્ર શરીરં પંચવિધમ્, ઔદારિકં, વૈક્રિયમ્, આહારકં, તૈજસં, કાર્મણં ચેતિ ।

અથ જીવાનાં યે સુખદુઃખજીવિતમરણરૂપાઃ પરિણામા ભવન્તિ તત્ર સુખાદિરૂપેણ જીવપરિણામે નિમિત્તં પુદ્ગલા ઇતિ સિદ્ધં જીવોપકારિત્વં પુદ્ગલાનામ્ ।

પુદ્ગલોં કા ઉપકાર—

શરીર, વચન, મન ઓર પ્રાણ આદિ પુદ્ગલોં કલે પરિણામવિશેષ—ગમન, આદાન, વચન, ચિન્તન ઓર પ્રાણન (સાંસ લેના) આદિરૂપ સે જીવોં કા ઉપકાર કરતે હેં અતઃ શરીર આદિ કલે રૂપ મેં પુદ્ગલ હી જીવોં કા ઉપકાર કરતે હેં । ઇનમેં શરીર પાંચ પ્રકાર કા હૈ— (૧) ઔદારિક (૨) વૈક્રિય (૩) આહારક (૪) તૈજસ ઓર (૫) કાર્મણ ।

પ્રાણિયોં મેં સુખ દુઃખ જીવન ઓર મરણ રૂપ જો પરિણામ હીતે હેં, ડન સવ પરિણામોં મેં પુદ્ગલ કારણ હૈ, અતઃ યહ સિદ્ધ હુઆ કિ પુદ્ગલ જીવોં કા ઉપકાર કરતે હેં ।

પુદ્ગલોના ઉપકાર—

શરીર, વચન, મન અને પ્રાણુ આદિ પુદ્ગલોના પરિણામવિશેષ—ગમન, આદાન, વચન, ચિન્તન અને પ્રાણુન (શ્વાસ લેવો) આદિ રૂપથી જીવોના ઉપકાર કરે છે, એટલે શરીર આદિના રૂપમાં પુદ્ગલ જ જીવોના ઉપકાર કરે છે, તેમાં શરીર પાંચ પ્રકારના છે—(૧) ઔદારિક, (૨) વૈક્રિય, (૩) આહારક, (૪) તૈજસ અને (૫) કાર્મણુ.

પ્રાણીઓમાં સુખ, દુઃખ, જીવત અને મરણરૂપ જે પરિણામન થાય છે, તે સર્વ પરિણામોમાં પુદ્ગલ કારણરૂપ છે. તેથી એ સિદ્ધ થાય છે કે પુદ્ગલ જીવોના ઉપકાર કરે છે.

परमाणुस्वरूपम्—

तत्र परमाणुश्च सकलविभागान्तवर्ती निरंशः परस्परासंयुक्तः, सूक्ष्मत्वादि-
न्द्रियव्यापारातीतः, एकैकवर्ण-गन्ध-रस-द्विस्पर्शयुक्तः, द्वयणुकस्कन्धाद्यचित्तमहा-
स्कन्धपर्यन्तानां स्थूल-सूक्ष्म-स्कन्धकार्याणां कारणरूपो नित्यश्चेति ।

उक्तञ्च भगवता भगवतीसूत्रे-(श. २० उ० ५) —

परमाणु का स्वरूप—

परमाणु, पुद्गल का अन्तिम विभाग है। वह निरंश है। परस्पर असंयुक्त है। सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों की उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्शोंसे युक्त है। द्वयणुक स्कन्धसे लेकर अन्तिम महास्कन्ध पर्यन्त स्थूल एवं सूक्ष्म स्कंधरूप कार्य का कारण है और नित्य है। भगवानने भगवतीसूत्र (श. २०, उ० ५) में कहा है—

प्रश्न-भगवन्! परमाणु पुद्गल कितने वर्णवाला, कितने गंध वाला, कितने रसवाला, और कितने स्पर्शवाला कहा गया है ? ।

उत्तर-गौतम ! एक वर्णवाला, एक गंध वाला, एक रसवाला और दो स्पर्शवाला कहा गया है ।

एक वर्णवाला होता है तो कदाचित् काला, कदाचित् नीला, कदाचित् लाल,

परमाणुत्वं स्वरूपम्—

परमाणु, એ પુદ્ગલનો અંતિમ વિભાગ છે. તે નિરંશ (અંશરહિત) છે. પરસ્પર અસંયુક્ત છે. સૂક્ષ્મ હોવાના કારણે ઇન્દ્રિયોની પ્રવૃત્તિ તેમાં થઈ શકતી નથી. એક વર્ણ, એક ગંધ, એક રસ અને બે સ્પર્શથી યુક્ત છે. દ્વયણુક સ્કંધથી લઈને અચિત્ત મહાસ્કંધ પર્યન્ત સ્થૂલ અને સૂક્ષ્મસ્કંધરૂપ કાર્યતું કારણ છે, અને નિત્ય છે. ભગવાને ભગવતી સૂત્ર (શ. ૨૦ ઉ. ૫.)માં કહ્યું છે:—

પ્રશ્ન-“ ભગવન્ ! પરમાણુ પુદ્ગલ કેટલા વર્ણવાળું, કેટલા ગંધવાળું, કેટલા રસવાળું, અને કેટલા સ્પર્શવાળું કહ્યું છે ?

ઉત્તર-ગૌતમ ! એક વર્ણવાળું, એક ગંધવાળું, એક રસવાળું, અને બે સ્પર્શવાળું કહ્યું છે.”

“ એક વર્ણવાળું હોય છે તો કદાચિત્ કાળું, કદાચિત્ લીલું, કદાચિત્ લાલ, કદાચિત્ પીળું અને કદાચિત્ ચેત હોય છે. એક ગંધવાળું હોય છે તો કદાચિત્

શબ્દોઽન્ધકાર ઉદ્યોતઃ પ્રમા છાયા આતપ ઇતિ વા । વર્ણરસગન્ધસ્પર્શાઃ
પુદ્ગલાનાં તુ લક્ષણમ્ । ઇતિ ચ્છાયા ।

“છાયાઽઽત્યુત્તિ” ઇત્યત્ર ‘ઇતિ’ શબ્દ આયર્થકઃ । તેનૈવ વર્ણાદીનાં ગ્રહણેઽપિ
પુનરુપાદાનં નિત્યસહભાવિત્વબોધનાર્થમ્ ।

તત્ર વર્ણઃ પञ्ચधा, कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्ल-भेदात् । गन्धो
द्विविधः-सुरभिरसुरभिश्च । रसः पञ्चविधः-तिक्त-कटु-कपाया-ऽम्ल-मधुर-भेदात् ।
स्पर्शोऽष्टधा-कठिन-मृदु-गुरु-लघु-शीतो-ष्ण स्निग्ध-रूक्ष-भेदात् । संस्थानं
पञ्चविधम्-वृत्त-त्र्यस्र-चतुरस्र-ऽऽयत-परिमण्डल-भेदात् ।

પુદ્ગલવિભાગઃ-

પુદ્ગલઃ સંક્ષેપતો દ્વિવિધઃ-પરમાણુ-સ્કંધભેદાત્ ।

વર્ણ પાંચ પ્રકાર કા હૈ-કાલા, નીલા, લાલ, પીલા, ઔર સફેદ । :સુગન્ધ દુર્ગન્ધ
કે ભેદ સે ગન્ધ દો પ્રકાર કા હૈ । રસ કે પાંચ ભેદ હૈ-તીસ્વા, કડુઆ, કપૈલા, સ્વદા,
ઔર મીઠા । સ્પર્શ કે આઠ ભેદ હૈ-કઠિન, કોમલ, ભારી, હલ્કા, શીત, ડાખા, ચિકના,
ઔર રૂક્ષા । સંસ્થાન પાંચ પ્રકાર કા હૈ-વૃત્ત (ગોલ), ત્ર્યસ્ર (ત્રિકોના), ચતુરસ્ર
(ચૌકોર), આયત (લમ્બા) ઔર પરિમણ્ડલ-(ગોલ-મટોલ) .

પુદ્ગલ કે ભેદ—

સંક્ષેપ સે પુદ્ગલ કે દો ભેદ હૈ-પરમાણુ ઔર સ્કન્ધ ।

વર્ણ પાંચ પ્રકારના છે-કાળો, લીલો, લાલ, પીળો અને ઘોળો. સુગંધ અને
દુર્ગંધના ભેદથી ગંધ બે પ્રકારના છે. રસના પાંચ ભેદ છે-તીજો, કડવો, કપાયેલો,
ખાટો અને મીઠો, સ્પર્શના આઠ ભેદ છે-કઠણ, કોમલ, ભારી, હલકો, શીત, ઢાણ,
ચિકણો અને રૂક્ષ. સંસ્થાન પાંચ પ્રકારનાં છે-વૃત્ત-ગોળ, ત્રિકોણ, ચતુષ્કોણ,
લાંબુ અને ગોળમટોળ.

પુદ્ગલોના ભેદ

સંક્ષેપથી પુદ્ગલોના બે ભેદ છે-(૧) પરમાણુ અને (૨) સ્કંધ.

असौ शस्त्रादिना लतादिवदच्छेद्यः, सूच्यादिना चर्मवदभेद्यः, अग्निना काष्ठवददाह्यः, हस्तादिना वस्त्रपात्रवदग्राह्यश्च । उक्तञ्च भगवता भगवतीसूत्रे (श०-२० उ० ५)—

“द्व्यपरमाणु णं भंते । कइविहे पण्णत्ते?, गोयमा! चउच्चिहे पण्णत्ते, तंजहा-अच्छेज्जे, अमेज्जे, अहज्जे, अगेज्जे ।” इति । द्रव्यपरमाणुः खलु भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः?, गौतम! चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अच्छेद्यः, अभेद्यः, अदाह्यः, अग्राह्यः । इति च्छाया ।

यद्यपि परमाणुः पुद्गलत्वान्मूर्त्तस्थाऽप्यसौ खण्डशः कर्तुमशक्यः, आकाशप्रदेशवत्परमाणोः पुद्गलपरमजघन्यांशरूपत्वात्, सर्वपरिमाणेभ्योऽपकृष्टं परिमाणं परमाणोरेव तस्मात्सोऽखण्ड एव ।

परमाणु, शस्त्र के द्वारा लता आदि की भंगति छेदा नहीं जा सकता, चमड़े की तरह मुई आदि से भेदा नहीं जा सकता, काष्ठ के समान अग्नि आदि से जल नहीं सकता और वस्त्र पात्र आदि पदार्थों की तरह हाथ आदिसे पकडा नहीं जा सकता । भगवान्ने भगवतीसूत्र (श. २०, उ० ५) में कहा है—

प्रश्न-भगवन् ! द्रव्य परमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर-गौतम ! चार प्रकारका कहा गया हैं-अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य ।

परमाणु, पुद्गल होने के कारण मूर्त्तिक है, फिर भी उस के खण्ड नहीं किये जा सकते । जैसे आकाश का एक प्रदेश जघन्य अंशरूप है और उसका परिमाण सभी

परमाणु, शस्त्र द्वारा लता आदिना प्रमाणु छेदी शक्यतुं नथी, आभङ्गानी नेम सोय वगेरेथी चींथी शक्यतुं नथी, काष्ठनी नेम अग्नि आदिथी णाणी शक्यतुं नथी, अने वस्त्र पात्र आदि पदार्थोनी नेम हाथ वगेरेथी पकडी शक्यतुं नथी ।

भगवाने भगवतीसूत्र-(श. २०-उ. ५) मां कहुं छेः—

प्रश्न-“भगवन् ! द्रव्य परमाणु केटला प्रकारतुं कहुं छे ?

उत्तर-गौतम ! चार प्रकारतुं कहुं छे-“अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य अने अग्राह्य ।” (छेदी शक्य नछि, लेदी शक्य नछि, णणी शके नछि, अने अह्यथ थर्थ शके नछि) ।

परमाणु, पुद्गल होवाना कारणे मूर्त्तिक छे तो पण्ण तेना भंउ-भाग थर्थ शक्यता नथी नेमकेः-आकाशने अके प्रदेशे जघन्य अंशरूप छे, अने तेतुं परिमाणु

“પરમાણુપોગલે ણં મંતે ! કતિવન્ને, કતિગંધે, કતિરસે, કતિફાસે પન્નત્તે ?, ગોયમા । ઇગવન્ને, ઇગગંધે, ઇગરસે, દુપ્પાસે પન્નત્તે, તંજદ્દા-ઝદ્દ ઇગવન્ને-સિય કાલણ, સિય નીલણ, સિય લોહિણ, સિય દાહિદ્દે, સિય મુક્કિલ્લે । જદ્દ ઇગગંધે-સિય સુન્નિમિગંધે, સિય દુન્નિમિગંધે । જદ્દ ઇગરસે-સિય તિત્તે સિય કદ્દુણ સિય કસાણ, સિય અંવિલે, સિય મહુરે । જદ્દ દુપ્પાસે-સિય સીણ ય નિદ્દે ય ૧, સિય સીણ ય લુક્કલે ય ૨, સિય ઉસિણે ય નિદ્દે ય ૩, સિય ઉસિણે ય લુક્કલે ય ૪ ” ઇતિ ।

પરમાણુપુદ્ગલઃ ભદન્ત ! કતિવર્ણઃ, કતિગન્ધઃ, કતિરસઃ, કતિસ્પર્શઃ પ્રજ્ઞસઃ ? ગૌતમ ! એકવર્ણઃ, એકગન્ધઃ, એકરસઃ, દ્વિસ્પર્શઃ પ્રજ્ઞસઃ । તદ્વચા-યદિ એકવર્ણઃ-સ્યાત્ કાલકઃ, સ્યાત્ નીલકઃ, સ્યાત્ લોહિતઃ, સ્યાત્ હારિદ્રઃ, સ્યાત્ શુક્રઃ । યદિ એકગન્ધઃ-સ્યાત્ સુરભિગન્ધઃ, સ્યાત્ દુરભિગન્ધઃ, યદિ એકરસઃ સ્યાત્તિક્તઃ સ્યાત્ કટુકઃ, સ્યાત્ કપાયઃ, સ્યાત્ અમ્લઃ, સ્યાત્ મધુરઃ । યદિ દ્વિસ્પર્શઃ-સ્યાત્ શીતશ્ચ સ્નિગ્ધશ્ચ ૧, સ્યાત્ શીતશ્ચ રુક્ષશ્ચ ૨, સ્યાત્ ઉષ્ણશ્ચ સ્નિગ્ધશ્ચ ૩, સ્યાત્ ઉષ્ણશ્ચ રુક્ષશ્ચ ૪, । ઇતિ ચ્છાયા,

કદાચિત્ પીલા, ઓર કદાચિત્ શુક્ર હોતા હૈ । એક ગન્ધવાલા હોતા હૈ તો કદાચિત્ સુરભિગંધવાલા, કદાચિત્ દુરભિગંધવાલા હોતા હૈ । યદિ એક રસવાલા હોતા હૈ તો કદાચિત્ તિક્ત, કદાચિત્ કટુક, કદાચિત્ કપાયલા, કદાચિત્ સ્વદા, ઓર કદાચિત્ મીઠા હોતા હૈ । યદિ દો સ્પર્શવાલા હોતા હૈ તો કદાચિત્ શીત ઓર સ્નિગ્ધ- (ચિકના) ૧, કદાચિત્ શીત ઓર રુક્ષ ૨, કદાચિત્ ઉષ્ણ ઓર સ્નિગ્ધ ૩, તથા કદાચિત્ ઉષ્ણ ઓર રુક્ષ હોતા હૈ ૪ ।

સુરભિગંધ (સારી ગંધ) વાળું અને કદાચિત્ દુરભિગંધવાળું હોય છે. જો એક રસવાળું હોય છે તો કદાચિત્ તીર્થુ, કદાચિત્ કડવું, કદાચિત્ કષાયલું, કદાચિત્ ખાટું અને કદાચિત્ મધુર-મીઠું-હોય છે. જો બે સ્પર્શવાળું હોય છે તો કદાચિત્ શીત અને સ્નિગ્ધ-(ચિકણા) ૧, કદાચિત્ શીત અને રુક્ષ ૨, કદાચિત્ ઉષ્ણ અને સ્નિગ્ધ ૩, તથા કદાચિત્ ઉષ્ણ અને રુક્ષ હોય છે. ૪”

यद्यपि धर्माधर्माकाशजीवा अपि पुद्गलवत्स्कन्धरूपास्तथापि स्कन्ध-
रूपपुद्गलादयं विशेषः-तेषाम्-धर्मादीनां चतुर्णां प्रदेशाः स्वस्वस्कन्धान्न खण्डशः
पृथग् भवितुमर्हन्ति, तेषाममूर्त्तत्वात् । पुद्गलप्रदेशास्तु खण्डशः पृथग् भवन्ति,
तेषां मूर्त्तत्वात्, आश्लेषविश्लेषाभ्यां मूर्त्तवस्तुनि संमिलन-पृथग्भाव-शक्तेः
सर्वानुभवगोचरत्वात्, अतः स्कन्धपुद्गलानां स्थूलः सूक्ष्मो वा भागोज्ज्वयव-
उच्यते । अवयौति=पृथग्भवतीत्यवयवशब्दव्युत्पत्त्या विभाज्य एवांशोऽवयवशब्दार्थ-
स्तस्मात्पुद्गलप्रदेश एवावयव इत्युच्यते ।

यद्यपि धर्म-द्रव्य अधर्म-द्रव्य आकाश और जीव भी पुद्गलके समान स्कन्धरूप हैं,
फिर भी स्कन्धरूप पुद्गल से उनमें यह भिन्नता है-धर्म आदि चार द्रव्योंके प्रदेश अपने २
स्कन्धसे कभी अलग नहीं हो सकते, क्योंकि धर्म आदि चार द्रव्य अमूर्त हैं । पुद्गल
द्रव्य के प्रदेश खण्डर होकर अलग हो जाते हैं, क्योंकि पुद्गल मूर्त हैं । आश्लेष और
विश्लेष के द्वारा मूर्त वस्तु में मिलने और बिछुड़ने की शक्ति है, यह बात सभी के अनुभव
से सिद्ध है, अतः स्कन्ध-पुद्गलों का स्थूल या सूक्ष्म भाग अवयव कहलाता है,
'अवयौति' इति-अवयवः अर्थात् जो पृथक् हो सके उसे अवयव कहते हैं, इस व्युत्पत्ति
के अनुसार विभक्त हो सकने योग्य अंश को ही अवयव कहा जा सकता है, अतः पुद्गल
का प्रदेश ही अवयव कहलाता है ।

जो है धर्म-द्रव्य, अधर्म-द्रव्य, आकाश अने जीव पण पुद्गलना समान
स्कन्धरूप छे, तो पण स्कन्धरूप पुद्गलथी तेमां ओ भिन्नता छे-धर्म आदि
चार द्रव्येना प्रदेश पोत-पोताना स्कन्धथी क्यारेय पण अलग थई शकता
नथी. केभके धर्म आदि चार द्रव्ये अमूर्त छे. पुद्गल द्रव्यना प्रदेश अंश
अंश थईने अलग थई नय छे, केभके पुद्गल मूर्त छे. आश्लेष (मणुं) अने
विश्लेष (लुटा थुं) द्वारा मूर्त वस्तुमां मणुं अने लुटा थुं ते शक्ति छे, आ
वात सर्वने अनुभवथी सिद्ध छे. ओटला कारणथी स्कन्ध पुद्गलानुं स्थूल अथवा
सूक्ष्म अवयव कडेवाय छे 'अवयौति' इति-अवयवः अर्थात् पृथक् थई शके तेने
अवयव कडे छे, ओ व्युत्पत्ति प्रमाणे विभक्त थवा योग्य अंशने न अवयव कडे
छे. आ कारणथी पुद्गल द्रव्येना प्रदेश न अवयव कडेवाय छे.

સ ચ પ્રત્યક્ષદૃશ્યૈરનેકવિધૈર્વાદરપરિણામરૂપૈઃ સ્કન્ધૈરનુમીયતે । ઉક્તચ-
 “કારણમેવ તદંતં, મુદ્દુમો ણિદ્ધો ય દોઢ પરમાણુ ।
 ઇગરસગંધવર્ણો, દુપ્પાસો કજ્જલિંગો ય ॥૧॥” ઇતિ

છાયા—કારણમેવ તદન્ત્યં, મુદ્દુમો નિત્યથ્થ ભવતિ પરમાણુઃ ।
 ઇગરસગંધવર્ણો, દ્વિસ્પર્શઃ કાર્યલિન્ગથ્થ ॥૧॥” ઇતિ ।

સ્કન્ધસ્વરૂપં તદ્દેદાથ—

પરસ્પરસંમિલિતવદ્ધપરમાણુસમુદાયઃ સ્કન્ધઃ । સ્કન્ધાન્તવર્તી નિરંશોઽવયવઃ
 પ્રદેશ ઇત્યુચ્યતે ।

પરિમાણોસે હીનતમ હૈ, ઇસી પ્રકાર પરમાણુ મી જઘન્ય અંશરૂપ હૈ—ઉસકે અંશ નહી
 હો સકતે, વહ અલ્પહ હૈ ।

પ્રત્યક્ષ સે દિરવાઈ દેનેવાલે અનેક પ્રકાર કે વાદરૂપ પરિણત સ્કન્ધો સે પરમાણુ
 કા અનુમાન હોતા હૈ । કહા મી હૈ—

“પરમાણુ કારણરૂપ હૈ, અન્તિમ અંશરૂપ હૈ, સૂક્મ હૈ ઓર નિલ્પ હૈ । ઇક રસવાલા,
 ઇક ગંધવાલા, ઇક વર્ણવાલા ઓર દો સ્પર્શવાલા હોતા હૈ । સ્કંધરૂપ કાર્ય દેલ્પને સે
 ઉસકા અનુમાન હોતા હૈ ।”

સ્કન્ધ કા સ્વરૂપ ઓર ભેદ—

પરસ્પર મિલે હુઈ—આપસમેં વદ્ધ—પરમાણુ કા સમૂહ સ્કંધ કહલાતા હૈ । સ્કંધમેં
 રહા હુઆ નિરંશ અવયવ પ્રદેશ કહલાતા હૈ ।

સર્વ પરિમાણોધી હીનતમ છે, એ પ્રમાણે પરમાણુ પણ જઘન્ય અંશરૂપ છે, તેનાં
 અંશ-વિભાગ થઈ શકતા નથી, તે અખંડ છે.

પ્રત્યક્ષથી જોવામાં આવતા અનેક પ્રકારના બાદરૂપ પરિણત સ્કંધોથી
 પરમાણુનું અનુમાન થાય છે. કહ્યું પણ છે—

“પરમાણુ કારણરૂપ છે, અન્તિમ અંશરૂપ છે, સૂક્મ છે અને નિત્ય છે,
 એક રસવાળું છે, એક ગંધવાળું, એક વર્ણવાળું અને બે સ્પર્શવાળું હોય છે.
 સ્કંધરૂપ કાર્યના દેખાવથી તેનું અનુમાન થાય છે.

સ્કંધનું સ્વરૂપ અને ભેદ—

પરસ્પર મળેલા—અંદર અંદર બદ્ધ—પરમાણુઓનો સમૂહ તે સ્કંધ કહેવાય છે.
 સ્કંધમાં રહેલો નિરંશ અવયવ તે પ્રદેશ કહેવાય છે.

स्कन्धस्य परमाणोश्च संयोगे सति त्रिप्रदेशी स्कन्धो भवति । संख्यात-
परमाणूनां संघातात् संख्यातप्रदेशी स्कन्धः, असंख्यातपरमाणूनां संयोगाद्
असंख्यातप्रदेशी स्कन्धः, अनन्तपरमाणूनां संघाताज्जातोऽनन्तप्रदेशी स्कन्धः,
अनन्तप्रदेशिनां स्कन्धानां योगे त्वनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्धो जायते । संख्यात-
प्रदेश्यादिषु स्कंधेषु संयोगपरिणामः पूर्वोक्तरीत्या भावनीयः ।

द्व्यणुकादिक्रमेणानन्तानन्तप्रदेशिपर्यन्ता ये स्कन्धाः संयोगपरिणाम-
जास्तेभ्यः परमाणुः पृथग् भवति चेत्तदैकपरमाणुन्यूनः स्कन्धो जायते । एवं
द्वित्रिचतुःपञ्चादिपरमाणुपृथग्भावक्रमेण न्यूनान्यूनो द्विप्रदेशी स्कन्धः समुत्पद्यते ।

और एक परमाणु का संयोग होने पर त्रिप्रदेशी स्कन्ध बनता है, संख्यात परमाणुओं के
संघात से संख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है और असंख्यात परमाणुओं के संयोग
से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है । अनन्त परमाणुओं के मिलने से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध
बनता है, अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का संयोग होने पर अनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता
है । संख्यातप्रदेशी आदि स्कन्धों में संयोगरूप परिणमन पूर्वोक्तप्रकार से समझ लेना चाहिए ।

द्व्यणुक आदि के क्रम से अनन्तानन्तप्रदेशी पर्यन्त जो स्कन्ध संयोगपरिणाम से
बने हैं, उन में से अगर एक परमाणु अलग हो जाता है तो वह एक परमाणुहीन स्कंध रह
जाता है । इसी प्रकार दो तीन चार पांच आदि परमाणुओं के अलग होने पर अन्त में
द्विप्रदेशी स्कंध ही बचता है ।

अने अेक परमाणुने संयोग थवाथी त्रिप्रदेशी स्कंध जने छे, संख्यात परमाणुअेना
संघातथी (भणवाथी) संख्यातप्रदेशी स्कंध जने छे. अने असंख्यात परमाणुअेना
संयोगथी असंख्यातप्रदेशी स्कंध जने छे. अनन्त परमाणुअेना संयोगथी अनन्त
प्रदेशी स्कंध उत्पन्न थाय छे. अनन्तप्रदेशी स्कंधेना संयोग थाय तो अनन्तानन्त-
प्रदेशी स्कंध उत्पन्न थाय छे. संख्यातप्रदेशी आदि स्कंधिमां संयोगरूप परिणमन
पूर्वना प्रकारथी समल्लेखुं लेधअे.

द्व्यणुक आदिना क्रमथी अनन्तानन्तप्रदेशी पर्यन्त जे स्कंध छे, ते संयोग
परिणमनथी जन्या छे. तेमांथी जे अेक परमाणु अलग थध जन्य तो ते अेक
परमाणुहीन स्कंध रही जन्य छे. अे परमाणु जे, त्रि, चार, पांच आदि परमाणुअे
अलग थध जन्य तो अन्तमां द्विप्रदेशी स्कंध जे जन्य छे.

संघाताद्, भेदाद्, संघातभेदाभ्यां च द्विप्रदेशिप्रभृतयः स्कन्धाः समुत्पद्यन्ते । उक्तञ्च भगवता स्थानाङ्गसूत्रे—

“दोहिं ठाणेहि पोग्गला साहण्णंति, तंजहा-सयं वा पोग्गला साहण्णंति, परेण वा पोग्गला साहण्णंति । सयं वा पोग्गला भिज्जंति परेण वा पोग्गला भिज्जंति” इति ।

छाया—“द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः संहन्यन्ते । तद्यथा—स्वयं वा पुद्गलाः संहन्यन्ते, परेण वा पुद्गलाः संहन्यन्ते । स्वयं वा पुद्गला भिद्यन्ते, परेण वा पुद्गला भिद्यन्ते । इति ।

‘स्वयंवे’—ति स्वभावतो वा अभ्रादिष्विव संहन्यन्ते=सम्बन्धयन्ते । (कर्मणः कर्तृत्वविशेषायां प्रयोगोऽयम्) परेण वा=अन्येन वा पुरुषादिना संहन्यन्ते=संहताः क्रियन्ते । (कर्मणि वाच्ये प्रयोगोऽयम्) । एवं भिद्यन्ते=विकीर्यन्ते ।

द्वयोः परमाण्वोः संघाताद् द्विप्रदेशी स्कन्धः समुद्भवति । द्विप्रदेशिनः

संघात (मिलने) से, भेद (बिछुडने) से तथा संघातभेदसे द्विप्रदेशी आदि स्कन्ध उत्पन्न होते हैं ।

भगवानने स्थानाङ्गसूत्रमें कहा है—

“दो स्थानों से पुद्गल आपस में मिलते हैं, वह इस प्रकार—या तो पुद्गल स्वयं बादल आदि की तरह मिल जाते हैं, या दूसरे पुरुष आदि के द्वारा मिलाये जाते हैं, इसी प्रकार पुद्गल स्वयं अलग हो जाते हैं, या दूसरे के द्वारा अलग किये जाते हैं ।

दो परमाणुओं के संघात से द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, द्विप्रदेशी स्कन्ध

संघात (भेदाप)थी लेह (जुहा पडवा)थी तथा संघात-लेहथी द्विप्रदेशी विगरे स्कंध उत्पन्न थाय छे. भगवाने स्थानाङ्गसूत्रंभां कहुं छे—

“जे स्थानाथी पुद्गल परस्पर भजे छे. ते आ प्रमाणु-पुद्गल पोते ज वादण आदि प्रमाणु भणी नथ छे, अथवा थीनं पुरुष आदिना द्वारा भेजवाय छे. जे प्रमाणु पुद्गल पोते ज अगल यध नथ छे, अथवा तो थीनना द्वारा अलग करी शकय छे.

जे परमाणुओंना संघातथी (भेजवाथी) द्विप्रदेशी स्कंध बने छे. द्विप्रदेशी स्कंध

जघन्यगुणस्निग्धयोर्द्वयोः, जघन्यगुणस्निग्धानां वा बहूनां परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवति । तथा जघन्यगुणरूक्षयोः, जघन्यगुणरूक्षणां वा परस्परं बन्धो न भवति । जघन्योऽपकृतमः, गुणशब्दोऽत्र संख्यार्थकः । यथा एकगुणं, द्विगुणमित्यादिपदम्-एकसंख्यकद्विसंख्यकाद्यर्थबोधकम् । स्नेहादिगुणानां प्रकर्षापकर्षौ लोकप्रसिद्धौ । यथा-पानीयादजादुग्धं स्निग्धम्, अजादुग्धाद् गव्यं दुग्धम्, ततश्च महिषोदुग्धमित्युत्तरोत्तरं स्नेहप्रकर्षः ।

एषामेव पूर्वं पूर्वं स्नेहाप्रकर्षः । तथा चैकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन, द्वयोर्वहूनां परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवति । एकगुणरूक्षस्यैकगुणरूक्षेण च

जघन्यगुण स्निग्ध दो परमाणुओं का, अथवा बहुत परमाणुओं का परस्परमें बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार जघन्यगुण रूक्ष दो या बहुत परमाणुओं का भी परस्पर में बन्ध नहीं होता । जघन्य का अर्थ यहाँ हीनतम समझना चाहिए । गुणशब्द यहाँ संख्या (डिगरी) का वाचक है, जैसे-एकगुना, दोगुना आदि पद एकसंख्यक द्विसंख्यक आदि अर्थ के वाचक हैं । स्निग्धता (चिकनाई) आदि गुणों की अधिकता और न्यूनता लोक में प्रसिद्ध है । जैसे पानी की अपेक्षा बकरी का दूध चिकना होता है । बकरी के दूधसे गौ का दूध अधिक चिकना होता है, और गौ के दूध की अपेक्षा भैंस का दूध अधिक चिकना होता है । इस प्रकार पानी आदिमें उत्तरोत्तर चिकनेपन की अधिकता है । इन्ही पानी आदि में पहलेरे वालों में चिकनेपनकी न्यूनता है । इस प्रकार एक गुण स्निग्ध का, एक गुण स्निग्ध के साथ, दो या अधिक परमाणुओं का

जघन्य शुष्ण स्निग्ध जे परमाणुओंने अथवा बहुत परमाणुओंने परस्पर अंध थतो नहीं, जघन्यने अर्थ अर्द्ध हीनतम समजवेने लोभजे. शुष्ण शब्द अर्द्धि संख्या (डिग्री) ने वाचक छे. जेवी रीते जेक गण्ठा जे गण्ठा आदि पद जेक संख्याक, द्विसंख्याक आदि अर्थनु वाचक छे. स्निग्धता (चिकण्ठापण्ठा) आदि शुष्णानी अधिकता अने न्यूनता लोकमां प्रसिद्ध छे. जेभ पाण्ठीनी अपेक्षाजे अकरीनु इध चिकण्ठुं डोय छे. अकरीना इधथी गायनुं इध अने गायना इधनी अपेक्षाजे लेसनुं इध वधारे स्निग्ध (चिकण्ठुं) डोय छे. जे प्रमाण्ठु पाण्ठी आदिमां उत्तरोत्तर चिकण्ठा-पण्ठानी अधिकता छे.

जे पाण्ठी आदिमां पडेला-पडेलानामां चिकण्ठापण्ठानी न्यूनता छे. जे प्रमाण्ठु जेक शुष्ण स्निग्धने, जेक शुष्ण स्निग्धनी साथे, तथा जे अथरा अधिक परमाणुओंने

સ્કન્ધાદ્ વહિર્ગતસ્ય પરમાણોરન્યેન પરમાણુના સંયોગે દ્વયણુકસ્કન્ધ ઉત્પદ્યતે । एवं संयोग-विभागाभ्यामपि विविधाः स्कन्धा भवन्ति ।

પરમાણુનાં વન્ધસ્ય કારણમ્—

પરમાણુદ્વયસ્ય પરમાણુનાં વા પરસ્પરાનુપ્રવેશો ન ભવતિ, છિદ્રાભાવાદ્, કિન્તુ તયોસ્તેષાં વા વિસ્ત્રસાગત્યા પરસ્પરં સંયોગે સતિ સ્નિગ્ધરૂક્ષત્વગુણ-સદ્ભાવે પરસ્પરં વન્ધો ભવતિ । ऐक्यपरिमाणो बन्धः । तत्रायं विशेषः—

સ્કન્ધ સે અલગ હુઆ પરમાણુ જન્ન દૂસરે પરમાણુ કે સાથ મિલતા હૈ તો દોનો કે મેલસે નવીન દ્વયણુક ઉત્પન્ન હો જાતા હૈ । ઇસ પ્રકાર સંયોગ ઓર વિભાગ કે દ્વારા ભૌતિ-ભૌતિ કે સ્કન્ધ ઉત્પન્ન હોતે હી રહતે હૈ ।

પરમાણુઓં કે વન્ધ કા કારણ .

દો યા અધિક પરમાણુ એક દૂસરે મેં પ્રવેશ નહીં કર સકતે, ક્યોંકિ પરમાણુઓં મેં છિદ્ર નહીં હોતા, અલગત સ્વાભાવિક ગતિ સે દો યા દો સે અધિક પરમાણુઓં કા પરસ્પર મેં સંયોગ હોને પર ઉન મેં વિદ્યમાન સ્નિગ્ધતા ઓર રૂક્ષતા ગુણ કે કારણ ઉન કા આપસ મેં વન્ધ હો જાતા હૈ । એકતારૂપ પરિણમન કો વન્ધ કહતે હૈ । વન્ધ કે સમ્બન્ધ મેં ઇતના વિશેષ સમજના યાહિય—

સ્કન્ધથી અલગ થયેલા પરમાણુ બ્યારે બીજા પરમાણુની સાથે મળે છે, તે બંનેના મળવાથી નવીન દ્વયણુક ઉત્પન્ન થાય છે. એ પ્રમાણે સંયોગ અને વિભાગ દ્વારા તરેહ-તરેહના સ્કન્ધ ઉત્પન્ન થયા કરે છે.

પરમાણુઓના બંધનું કારણ—

એ અથવા અધિક પરમાણુ એક બીજામાં પ્રવેશ કરી શકતા નથી, કેમકે પરમાણુઓમાં છિદ્ર નથી. અલગત સ્વાભાવિક ગતિથી એ અથવા બેથી અધિક પરમાણુઓનો પરસ્પર સંયોગ થવાથી તેમાં વિદ્યમાન સ્નિગ્ધતા અને રૂક્ષતાના ગુણના કારણે તેનો આપસમાં બંધ થઈ જાય છે. એકતારૂપ પરિણમનને બંધ કહે છે. બંધના સંબંધમાં એટલું વિશેષ સમજવું જોઈએ કે:—

एवं द्विगुणतः समारभ्य यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य द्विगुणतः समारभ्य यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धेन सर्वेण समगुणेन पुद्गलेन परस्परं बन्धो न भवति । तथा द्विगुणादिरूक्षस्य द्विगुणादिरूक्षेण सर्वेण समगुणेन यावदनन्तगुणरूक्षेण पुद्गलेन सह परस्परं बन्धो न भवति । यथा तुल्यबलगुणमल्लयोरुभयोर्मध्ये परस्परं कोऽपि कञ्चिदभिहन्तुं न प्रभवति ।

इत्थं च तुल्यसंख्यके स्निग्धत्वे सति स्निग्धस्य स्निग्धेन सह बन्धो न भवति, तुल्यसंख्यके रूक्षत्वे सति रूक्षस्य रूक्षेण सह बन्धो न भवतीति सारांशः ।

अथ जघन्यस्निग्धस्य कीदृशेन स्निग्धेन सह परस्परं बन्धो भवति ?

इसी प्रकार द्विगुण से लेकर संख्यात असंख्यात और अनन्तगुण स्निग्ध पुद्गलका द्विगुण से लेकर संख्यात असंख्यात और अनन्तगुण स्निग्धतावाले समगुण पुद्गल के साथ आपस में बन्ध नहीं होता । तथा द्विगुण आदि रूक्ष समगुणवाले किसी भी पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है । जैसे—समान बलवाले दो मल्लों में से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकता ।

इस प्रकार समान स्निग्धता होने पर स्निग्ध पुद्गलका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है, और समान रूक्षता होने पर रूक्षका रूक्षके साथ भी बन्ध नहीं होता है ।

शंका—जघन्य स्निग्ध का किस प्रकार के स्निग्ध पुद्गल के साथ परस्पर बन्ध होता है ? ।

ये प्रभाले द्विशुष्ठी लघने संख्यात, असंख्यात अने अनन्तशुष्ठी स्निग्ध पुद्गलने द्विशुष्ठी लघने संख्यात, असंख्यात, अने अनन्तशुष्ठी स्निग्धतावाणा समशुष्ठी पुद्गलनी साथे आपसमां बंध थतो नथी. तथा द्विशुष्ठी आदि इक्ष पुद्गलने द्विशुष्ठी आदि इक्ष समशुष्ठीवाणा कोर्ध पक्ष पुद्गलनी साथे बंध थतो नथी. जेभ समान गणवाणा जे मल्लोभांथी कोर्ध कोर्धने पराजित करी शकता नथी.

ये प्रभाले समान स्निग्धता होवा छतांथ, स्निग्ध पुद्गलने स्निग्ध पुद्गलनी साथे बंध थतो नथी, अने समान इक्ष होवा छतांथ इक्षने इक्षनी साथे पक्ष बंध थतो नथी.

शंका—जघन्य स्निग्ध पुद्गलने क्या प्रकारना स्निग्ध पुद्गलनी साथे परस्पर बंध थाय छे ?

द्वयोर्बहूनां वा परमाणूनां परस्परं बन्धो न भवतीति फलितम् ।

ननु परमाणूनां सत्यपि संयोगे बन्धकारणीभूतस्निग्धत्वरूक्षत्वयोश्च सद्भावे कथं न जायते परस्परमेकत्वपरिणतिलक्षणो बन्धः ? इति ।

परमाणोस्तादृशपरिणमनशक्तेरभावात् । परिणामशक्तयश्च द्रव्याणां विचित्र-
रूपाः क्षेत्रकालाद्यनुरोधेन प्रयोगविस्रसापेक्षाः प्रभवन्ति । जघन्यगुणत्वेन
दौर्बल्यादेव स्नेहो रूक्षो वा कश्चिद् पुद्गलं परिणामयितुं न समर्थः । यथा-
तुल्यदुर्बलगुणमल्लयोरुभयोर्मध्ये परस्परं कोऽपि कश्चिद्भिद्भन्तुं न प्रभवति, तस्माज्ज-
घन्यगुणानां परस्परं बन्धो न भवतीति सिद्धम् ।

परस्पर बन्ध नहीं होता, और एक गुण रूक्षका एक गुण रूक्ष के साथ दो या अधिक परमाणुओं का परस्पर बन्ध नहीं होता, यह सिद्ध हुआ ।

शंका—परमाणुओं का संयोग मौजूद होने पर भी, और बन्ध के कारणभूत स्निग्धत्व तथा रूक्षत्व के विद्यमान होने पर भी बन्ध—एकतारूप परिणमन क्यों नहीं होता ?

समाधान—परमाणु में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति का अभाव है । द्रव्यों की परिणमन शक्तियाँ क्षेत्र और काल के अनुरोध से प्रयत्न तथा स्वभाव की अपेक्षा रखती हुई नाना प्रकार की होती हैं । जघन्य गुणवाला होने के कारण निर्बल होने से स्निग्ध या रूक्ष परमाणु किसी पुद्गल को परिणत करने में समर्थ नहीं होता; जैसे समान दुर्बलतावाले दो मल्लों में से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकता । अत एव यह सिद्ध हुआ कि जघन्य गुणवालों का परस्पर में बन्ध नहीं होता ।

परस्पर बंध थतो नथी, अने ऐकशुष्प इक्ष्णेो ऐकशुष्प इक्ष्णी साथे जे अथवा अधिक परमाणुओंने परस्पर बंध थतो नथी.

शंका—परमाणुओंने संयोग मौजूद होवा छतांय पण, अने बंधना कारणभूत स्निग्धत्व (चिकष्णापणुं) तथा इक्षत्व (लूणापणुं) विद्यमान होवां छतांय बंध-
ऐकताइप परिणमन केम थतुं नथी ?

समाधान—परमाणुमां जे प्रकारनी परिणमननी शक्तिने अभाव छे, द्रव्यनी परिणमन शक्तिजो क्षेत्र अने कालना अनुरोधधी, प्रयत्न तथा स्वभावनी अपेक्षा राखती थडी नाना प्रकारनी थाय छे. जघन्य शुष्पवाणा होवाना कारणे, निर्बल होवाधी स्नेह अथवा इक्ष परमाणु कोर पुद्गलने परिणत करवामां समर्थ थतुं नथी. लेवी शीते समान दुर्बलतावाणा जे मल्लोमांथी कोर कोरने पराजित करी शकता नथी. ऐटला कारणधी सिद्ध थतुं के-जघन्य शुष्पवाणाओंने परस्पर बंध थतो नथी.

एवमुक्तयुक्त्या द्विगुणादिस्निग्धस्य स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणस्निग्धेन सह वन्धो न भवति । द्विगुणस्निग्धस्यैकाधिकद्विगुणस्निग्धः त्रिगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणस्निग्ध एकाधिकः, इति हेतोर्द्विगुणस्निग्धस्य त्रिगुणस्निग्धेन सह वन्धो न भवति । इत्थं च स्निग्धपुद्गलस्यैकाधिकगुणस्निग्धपुद्गलेन सह वन्धो न भवतीति सारः ।

द्विगुणादिस्निग्धस्य द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन वन्धो भवति । यथा द्विगुणस्निग्धस्य द्व्यधिकश्चतुर्गुणस्निग्धः । त्र्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, चतुरधिकः

पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार द्विगुण आदि स्निग्ध का अपनी अपनी अपेक्षा से एक गुण अधिक स्निग्ध के साथ वन्ध नहीं होता । द्विगुण स्निग्ध से एक अधिक का अर्थ है—त्रिगुण स्निग्ध, त्रिगुण स्निग्ध से एक अधिक चतुर्गुण स्निग्ध समझना चाहिये । इस रीति से अनन्त गुण स्निग्ध भी अपने से एक गुण हीन स्निग्ध की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध है । अतः द्विगुण स्निग्ध का त्रिगुण स्निग्ध के साथ वन्ध नहीं होता । सारांश यह है कि—स्निग्ध पुद्गल का एक गुण अधिक पुद्गल के साथ वन्ध नहीं होता ।

द्विगुण स्निग्ध आदि का दो गुण अधिक अर्थात् चार गुण स्निग्ध के साथ वन्ध हो जाता है, जैसे दो गुण स्निग्ध से दो गुण अधिक स्निग्ध का

पूर्वोक्त युक्ति प्रमाणे द्विशुष्ण आदि स्निग्धने पोत-पोतानी अपेक्षाधी श्रेष्ठ शुष्ण अधिक स्निग्ध साथे बंध यतो नथी । द्विशुष्ण स्निग्धधी श्रेष्ठ अधिकने अर्थ छे—त्रिशुष्ण स्निग्ध, अने त्रिशुष्ण स्निग्धधी श्रेष्ठ अधिक चतुर्गुण स्निग्ध समझवे । जेष्ठजे. जे प्रमाणे अनन्त शुष्ण स्निग्ध पक्ष, पोतानाधी श्रेष्ठ शुष्ण हीन स्निग्धनी अपेक्षाधी श्रेष्ठ शुष्ण अधिक स्निग्ध छे. तेधी द्विशुष्ण स्निग्धने त्रिशुष्ण स्निग्धनी साथे बंध यतो नथी. सारांश जे छे तेः—स्निग्ध पुद्गलने श्रेष्ठ शुष्ण अधिक स्निग्ध पुद्गलनी साथे बंध यतो नथी.

द्विशुष्ण स्निग्ध आदिने जे शुष्ण अधिक अर्थात् चार शुष्ण स्निग्धनी साथे बंध यथे लय छे. जेम-जे शुष्ण स्निग्धधी जे शुष्ण अधिक स्निग्धने अर्थ चार

अत्रोच्यते—जघन्यस्निग्धस्य द्वयधिकत्रयधिकादिना स्निग्धेन बन्धो भवति, यथा एकगुणस्निग्धः । परमाणुपुद्गलस्य त्रिगुणस्निग्धेन परमाणुपुद्गलेन सह संयोगे सति बन्धो भवति । एवं एकगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणपञ्चगुणयावत्संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धेन सह बन्धः ।

एकगुणस्निग्धस्यकाधिकगुणस्निग्धेन (द्विगुणस्निग्धेन) तु न बन्धः, द्वयधिकादिगुणस्निग्धेन च स्निग्धपुद्गलस्य बन्धविधानात् । एकाधिकगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य प्रतिविशिष्टपरिणमनशक्तेरभावात् । एकगुणस्निग्धस्यैकाधिको द्विगुणस्निग्धः ।

समाधान—जघन्य स्निग्ध पुद्गल का दो गुण (डिगरी) या तीन गुण अधिक स्निग्धतावाले पुद्गल के साथ बन्ध होता है । जैसे एक गुण स्निग्धतावाले परमाणु का तीन गुण स्निग्धता वाले परमाणु के साथ संयोग होने पर बन्ध हो जाता है । इसी प्रकार एक गुण (एक अंश) स्निग्धका चार, पांच, यहाँ तक कि संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त गुण स्निग्ध के साथ बन्ध होता है ।

एक गुण स्निग्धका एक अधिक गुण स्निग्ध अर्थात् द्विगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता, क्योंकि दो गुण अधिक स्निग्धका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध बतलाया गया है । एक गुण अधिक स्निग्ध पुद्गल में विशेष प्रकार के परिणमन की शक्ति नहीं है । एक गुण स्निग्धतावाले की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध जहाँ कहा जाय वहाँ दो गुण स्निग्धतावाला पुद्गल समझ लेना चाहिये ।

समाधान—जघन्य स्निग्ध पुद्गलना जे शुष्ण (डिग्री) अधिकवा त्रुष्ण शुष्ण अधिक स्निग्धतावाणा पुद्गलानी साथे अंध थाय छे जेभकेः—अेक शुष्ण (डिग्री) स्निग्धतावाणा परमाणुना त्रुष्ण शुष्ण (डिग्री) स्निग्धतावाणा परमाणुनी साथे संयोग थर्ध बन्ध तो अंध थर्ध बन्ध छे. तेवी रीते अेक शुष्ण (डिग्री) (अंश) स्निग्धताना चार, पांच, त्यां सुधी के संख्यात असंख्यात अे प्रभाळे अनंत शुष्ण स्निग्धनी साथे अंध थाय छे.

अेक शुष्ण स्निग्धताना अेक अधिक शुष्ण स्निग्ध अर्थात् द्विशुष्ण स्निग्धनी साथे अंध थतो नहीं, केभके जे शुष्ण अधिक स्निग्धना स्निग्ध पुद्गलनी साथे अंध अताव्ये छे, अेक शुष्ण अधिक स्निग्ध पुद्गलमां विशेष प्रकारनां परिणमननी शक्ति नहीं. अेक शुष्ण (डिग्री) स्निग्धतावाणाणी अपेक्षा अेक शुष्ण (डिग्री) अधिक स्निग्ध ज्यां कडेवाय त्यां जे शुष्ण (डिग्री) स्निग्धतावाणा पुद्गल समझ लेवा जेधजे.

जघन्यगुण (एकगुण) स्निग्धस्य अजघन्यगुण (द्विगुणाद्यनन्तगुणपर्यन्त)-स्निग्धस्य वा स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणरूपेण, पुनः स्वस्वापेक्षया द्व्यधिक-त्र्यधिक-चतुरधिकादि-गुणरूपेणापि बन्धो भवति । उक्तञ्च भगवता प्रज्ञापनासूत्रे-(१३)-त्रयोदशो परिणामपदे-“बंधणपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?, गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-णिद्धबंधणपरिणामे य लुक्खबंधणपरिणामे य ।”

समणिद्वयाए बन्धो, न होइ समलुक्खयाएवि ण होइ ।

वेमायणिद्धलुक्ख-त्तणेण बंधो उ खंधाणं ॥१॥

छाया—बन्धनपरिणामो भदन्त ! कतिविधः प्रज्ञप्तः?, गौतम !

द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-स्निग्धबन्धनपरिणामश्च, रूक्षबन्धनपरिणामश्च ।

समस्निग्धतायां बन्धो न भवति, समरूक्षतायामपि न भवति ।

विभात्रस्निग्धरूक्षत्वेन, बन्धस्तु स्कन्धानाम् ॥ १ ॥

नहीं होता । जघन्य गुण (एकगुण) स्निग्ध का अथवा अजघन्य गुण (दो से लगाकर अनन्त गुण तक) स्निग्ध का, अपने से एक गुण अधिक रूक्ष के साथ बन्ध होता है । और अपने अपने से दो अधिक, तीन अधिक, चार अधिक आदि रूक्ष पुद्गल के साथ भी बन्ध होता है । भगवान् ने प्रज्ञापना सूत्र के १३ वें परिणाम पदमें कहा है—

प्रश्न—“भगवान् ! बन्ध परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर—गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है—(१) स्निग्धबन्धनपरिणाम और

(२) रूक्षबंधनपरिणाम ।

समान स्निग्धता या समान रूक्षता होने पर बन्ध नहीं होता है, किन्तु विभात्र-अर्थात् अधिक का हीनके साथ, और हीनका अधिक के साथ, चाहे वे स्निग्ध हो या रूक्ष हो बन्ध हो जाता है ॥ १ ॥

नथी. जघन्य शुष्ण (अेक शुष्ण) स्निग्धेनो अथवा अजघन्य, (जेथी लईने अनन्त शुष्ण सुधी) स्निग्धेनो पोतानाथी अेक शुष्ण अधिक इक्षनी साथे णंध थाय छे. अने पोतपोताथी जे अधिक, त्रष्ण अधिक, आर अधिक आदि इक्ष पुद्गलनी साथे यष्ण णंध थाय छे, लगवाने प्रज्ञापना सूत्रना १३मा परिष्णाम पदमां कडेलुं छे—

प्रश्न—“लगवन् ! बन्धन-परिष्णाम केटला प्रकारनां कथां छे ?

उत्तर—गौतम ! जे प्रकारनां कडेलां छे—(१) स्निग्धबंधनपरिष्णाम अने

(१) इक्षबंधनपरिष्णाम. ”

समान स्निग्धता अथवा समान इक्षता होय तो णंध थतो नथी. परंतु विभात्र अर्थात् अधिकने हीननी साथे अने हीनने अधिकनी साथे, लळे ते स्निग्ध होय के रूक्ष होय, णंध थर्थ लय छे ॥ १ ॥

पङ्गुणस्निग्धः, इत्यादि । त्रिगुणस्निग्धस्य द्वयधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, त्र्यधिकः
 पङ्गुणस्निग्धः, चतुरधिकः सप्तगुणस्निग्धः, इत्यादि । चतुर्गुणस्निग्धस्य द्वयधिकः
 पङ्गुणस्निग्धः, त्र्यधिकः सप्तगुणस्निग्धः चतुरधिकः— अष्टगुणस्निग्धः । एवं
 पञ्चगुणस्निग्धादिसंख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धपर्यन्तस्य द्वयधिकादिगुणस्निग्धेन
 सह बन्धो भावनीयः ।

एवं जघन्यगुणरूक्षस्य, अजघन्यगुणरूक्षस्य च बन्धव्यवस्था बोध्या ।

विसदृशपुद्गलबन्धः—

अथ विसदृशपुद्गलयोर्बन्धे कीदृशी व्यवस्था ?

उच्यते—जघन्यगुणस्निग्धस्य, जघन्यगुणरूक्षेण सह बन्धो न भवति ।

अर्थ चार गुण स्निग्ध, तीन गुण अधिक का अर्थ पांच गुण स्निग्ध, चार गुण अधिक
 का अर्थ छह गुण स्निग्ध, इत्यादि समझना चाहिए । चतुर्गुण स्निग्ध से द्वयधिक-
 पङ्गुण स्निग्ध, त्र्यधिक—सप्तगुण स्निग्ध, चतुरधिक—अष्टगुण स्निग्ध समझना चाहिए ।
 इस प्रकार पञ्चगुण स्निग्ध आदि से संख्यात, असंख्यात अनन्त गुण स्निग्ध का दो गुण
 अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध होता है । इस प्रकार जघन्य गुण रूक्ष का अजघन्य गुण रूक्ष
 के साथ बन्ध की व्यवस्था जाननी चाहिए ।

विसदृश पुद्गलों का बन्ध—

प्रश्न—विसदृश अर्थात् परस्पर विरोधी पुद्गलों के बन्ध की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर—जघन्य गुण स्निग्ध का जघन्य गुण वाले रूक्ष पुद्गलके साथ बन्ध

शुष्ण स्निग्ध, त्रयु शुष्ण अधिकेनो अर्थ पांच शुष्ण स्निग्ध, चार शुष्ण अधिकेनो
 अर्थ छ शुष्ण स्निग्ध, ये प्रमाणे समञ्जसुं नोर्धये. चतुर्गुण स्निग्धधी द्वयधिक
 पङ्गुण स्निग्ध, त्र्यधिक सप्तशुष्ण स्निग्ध चतुरधिक अष्टशुष्ण स्निग्ध समञ्जसुं
 नोर्धये, ये प्रमाणे पांच शुष्ण स्निग्ध आदिधी संख्यात, असंख्यात अनन्तशुष्ण
 स्निग्धना ये शुष्ण अधिक स्निग्धनी साथे अंध थाय छे ये प्रमाणे जघन्य शुष्ण
 रूक्षनी अजघन्य शुष्ण रूक्षनी साथे अंधनी व्यवस्था नालुवी नोर्धये

विसदृश पुद्गलोनो अंध—

प्रश्न—विसदृश अर्थात् परस्परविरोधी पुद्गलोनो अंधनी शुं व्यवस्था छे ?

उत्तर—जघन्य शुष्ण स्निग्धनो जघन्य शुष्णवाणा पुद्गलनी साथे अंध थतो

॥ परमाणुबन्धव्यवस्थाकोष्टकम् ॥

जघन्यगुण-(एकगुण)-स्निग्ध-
रुक्षयोर्बन्धव्यवस्था ।

स्निग्धरुक्षसंख्या	सदृशानाम्		विसदृशानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रुक्षस्य + रुक्षेण सह	स्निग्धस्य + रुक्षेण सह
जघन्यस्य (एकगुणस्य) जघन्येन (एकगुणेन) सह	वन्धाभावः	वन्धाभावः	वन्धाभावः
जघन्यस्य (एकगुणेन) + एकाधिकेन (द्विगुणेन) सह	वन्धाभावः	वन्धो भवति	वन्धो भवति
जघन्यस्य (एकगुणस्य) + द्वयधिकादिगुणेन-(त्रिगुण- चतुर्गुणतः समारभ्य यावद् अनन्तगुणेन) सह	वन्धो भवति	वन्धो भवति	वन्धो भवति

अजघन्यगुण-(द्विगुणादि)-स्निग्धरुक्षयोर्बन्धव्यवस्था

स्निग्धरुक्ष-संख्या	सदृशानाम्		विसदृशानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रुक्षस्य + रुक्षेण सह	स्निग्धस्य + रुक्षेण सह
द्विगुणस्य + द्विगुणेन सह	वन्धाभावः	वन्धाभावः	वन्धो भवति
द्विगुणस्य + एकाधिकेन (त्रिगुणेन) सह	वन्धाभावः	वन्धाभावः	वन्धो भवति
द्विगुणस्य + द्वयधिकादिगुणेन (चतुर्गुणपञ्चगुणतः समारभ्य यावद् अनन्तगुणेन) सह	वन्धो भवति	वन्धो भवति	वन्धो भवति

एवम् अजघन्यगुण-(त्रिगुणचतुर्गुणतः समारभ्यानन्तगुणपर्यन्त)-स्निग्धरुक्षयोः

समगुणेन, एकाधिकगुणेन, द्वयधिकादिगुणेन च सह बन्धव्यवस्था भावनीया ॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिण्ण,
 लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिण्ण ।
 णिद्धस्स लुक्खेण उवेइ वन्धो,
 जहण्णवज्जो विसमो समो वा ॥२॥
 (भद्रा० पद-१३)

छाया—स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विकाधिकेन,
 रूक्षस्य रूक्षेण द्विकाधिकेन ।
 स्निग्धस्य रूक्षेण उपैति वन्धो,
 जघन्यवर्जो विपमः समो वा ॥२॥” इति,
 विसदृशस्य बन्धमाह—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि ।

स्निग्धस्य रूक्षेण सह बंध उपैति=उपगतो भवति, जायत इत्यर्थः ।
 यदि परमाणुर्जघन्यवर्जो विपमो समो वा भवेत् । ॥२॥
 परमाणूनां बन्धव्यवस्थाकोष्ठकमग्रेऽवलोकनीयम् ।

दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ स्निग्ध का बन्ध होता है । और दो गुण अधिक रूक्ष के साथ रूक्षका बन्ध होता है । अब विसदृश बन्धको कहते हैं—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि । जघन्य गुणवाले परमाणु को छोड़कर फिर चाहे वह विपम हो या सम हो स्निग्ध का रूक्ष के साथ बन्ध होता है ।

परमाणुओं की बन्धव्यवस्था का कोष्ठक पृष्ठ १२१ देख लें ।

ये शुष्ण अधिक स्निग्ध साथे स्निग्धने अंध थाय छे. अने ये शुष्ण अधिक रूक्षनी साथे रूक्षने अन्ध थाय छे. हवे विसदृश अन्ध छडे छे—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि. जघन्य शुष्णवाणा परमाणुने छोडीने भीन्त गमे ते विपम होय अथवा सम होय ते स्निग्धने रूक्षनी साथे अंध थाय छे.

परमाणुओंकी अंधव्यवस्थाको कोष्ठक पृष्ठ १२१में नोट लेवें.

इन्द्रियपंचकम् ५, मनोवाक्कायबलत्रयम् ३, श्वासोच्छ्वासरूपः १, आयुश्चेति १ । एते दश प्राणाः संसारिणां यथासंभवं भवन्ति । नारकतिर्यग्गादयः संसारिणो द्रव्यप्राणैरपि प्राणिनः । व्यपगतसमस्तकर्मसम्बन्धाः सिद्धास्तु केवलभावप्राणैरेव प्राणिनः सन्ति । भावप्राणाश्चतुर्विधाः—अनन्तज्ञानम् १, अनन्तवीर्यम् २, अनन्तसुखम् ३, अनाद्यनन्तस्थितिश्च ४ । तत्रानन्तज्ञानात् क्षायोपशमिकपञ्चेन्द्रियाणि, अनन्तवीर्यरूपभावप्राणस्यानन्तांशेन मनोवाक्कायबलत्रयम्, अनन्तसुखाच्च—श्वासोच्छ्वासरूपः प्राणः समुद्भवति, तथा अनाद्यनन्तस्थितिरूप—भावप्राणतः सादिसान्तरूप आयुःप्राणो जायते । एवं द्रव्यप्राणानां कारणं भावप्राणा इत्यवधेयम् ।

दशभेद हैं—पांच इन्द्रियाँ ५, तीन बल—मनोबल, वचनबल और कायबल ३, श्वासोच्छ्वास १ तथा आयु १, ये दश द्रव्यप्राण यथासंभव संसारी जीवों के होते हैं । नारकी, तिर्यच आदि संसारी जीवों में भी द्रव्यप्राण पाये जाते हैं, किन्तु सब प्रकार के कर्म—संबंध से रहित सिद्धों में सिर्फ भावप्राण ही होते हैं । सिद्ध जीव भावप्राणों के कारण ही प्राणी कहलाते हैं ।

भाव प्राणके चार भेद हैं—अनन्तज्ञान १, अनन्तवीर्य २, अनन्तसुख ३, और अनादिअनन्तस्थिति ४ । क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली पांच इन्द्रियाँ अनन्त ज्ञान का विकार (वैभाविक परिणमन) है, मन, वचन और काय—बल, अनन्तवीर्यरूप भावप्राणका विकार है, श्वासोच्छ्वास अनन्तसुखरूप भावप्राणका विकार है, और सादिसान्त आयुरूप द्रव्यप्राण अनादि—अनन्तस्थितिरूप भावप्राणका विकार है । इस प्रकार भावप्राण द्रव्यप्राणों के कारण है ।

दस भेद छे—पांच इन्द्रियोप, त्रयु षण अर्थात् मनोबल, वचनबल अने कायबल ३, श्वासोच्छ्वास १, तथा आयु १, आ दस द्रव्यप्राणु साधारणु रीते संसारी लोकोने होय छे । नारकी तिर्यच आदि संसारी लोकोभां पणु द्रव्यप्राणु देखाय छे, परन्तु सर्व प्रकारना कर्म—संबंधधी रहित सिद्धीभां मात्र लावप्राणु न होय छे, सिद्ध लव लावप्राणुना कारणधी न प्राणुी कडेवाय छे ।

लावप्राणुना चार भेद छे—अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्त सुख अने अनादि—अनन्त स्थिति, क्षयोपशमधी उत्पन्न थवा वाणी पांच इन्द्रियो अनन्त ज्ञानको विकार (वैभाविक परिणमन) छे, मन, वचन अने कायबल, अनन्त वीर्यरूप लाव प्राणुको विकार छे, श्वासोच्छ्वास ते अनन्तसुखरूप लावप्राणुको विकार छे; अने सादि—सान्त आयुरूप द्रव्यप्राणु, अनादि अनन्त स्थितिरूप लावप्राणुको विकार छे, ये प्रमाणु लावप्राणु, द्रव्यप्राणुना कारण छे ।

अथ जीवास्तिकायः—

जीवशब्दार्थः—

जीवति प्राणान् धारयतीति जीवः । न च सिद्धानां प्राणसम्बन्धा-
भावादजीवत्वापत्तिरिति वाच्यम्, 'प्राणान् धारयती'—त्यत्र प्राणसामान्यविवक्षया
पञ्चेन्द्रियप्रभृतिदशविधद्रव्यप्राणानामसत्त्वेऽपि सिद्धानां भावप्राणसद्भावेन जीवत्व-
सिद्धेरन्यादत्तत्वात् । प्रतिविशिष्टप्राणसम्बन्धे सति जीवनाज्जीवशब्दः प्रवर्तते ।

प्राणा द्विविधाः—द्रव्यप्राणाः, भावप्राणाश्च । तत्र द्रव्यप्राणा दशविधाः

जीवास्तिकाय—

जीवशब्दका अर्थ—

जो जीता है अर्थात् प्राणों को धारण करता है, वह जीव कहलाता है । 'सिद्धों
में प्राणों का अभाव होने से वे भजीव हो जायेंगे' यह कहना ठीक नहीं है । 'जो
प्राणों को धारण करता है' इस कथन में प्राण—सामान्य की विवक्षा की गई है । सिद्धों
में यद्यपि पांच—इन्द्रिय आदि दस प्रकार के द्रव्यप्राण नहीं हैं, तथापि भाव—प्राण
पाये जाते हैं, और इन भाव—प्राणों के कारण सिद्ध भगवान् का जीवपन सिद्ध हो
जाता है । विशिष्ट प्रकार के प्राणों का सम्बन्ध होने पर जीने वाले को
जीव कहते हैं ।

प्राण दो प्रकार के हैं—(१) द्रव्यप्राण और (२)—भावप्राण । द्रव्यप्राणों के

लवास्तिकाय—

लव शब्दको अर्थ—

जे लवे छे अर्थात् प्राणोने धारण करे छे, ते लव कहेवाय छे. 'सिद्धोमां
प्राणोना अभाव होवाथी ते अलव थछ लवे,' अम कहेवुं ते हीक नथी. 'जे
प्राणोने धारण करे छे' अम कहेवाभां प्राण—सामान्यनी विवक्षा कही छे. सिद्धोमां
जे के पांच धन्द्रियो आदि दस प्रकारना द्रव्य—प्राण नथी, ते पण लाव—प्राण
होय छे, अने ते लाव—प्राणोना कारणे सिद्ध भगवान्तुं लवपणुं सिद्ध थाय छे.
विशिष्ट प्रकारना प्राणोना संबंध होवाना कारणे लववा वाणाने लव कहे छे.

॥ प्राण दो प्रकारना छे—(१) द्रव्य—प्राण अने (२) लाव—प्राण, द्रव्य प्राणोना

भवन्ति, अत एवात्मपर्यायवर्ती भावः पञ्चविधो भवति—(१) औपशमिकः, (२) क्षायिकः, (३) क्षायोपशमिकः, (४) औदयिकः, (५) पारिणामिकश्चेति ।

(१) औपशमिकभावः—

(१) मोहनीयकर्मणो मस्मावच्छन्नवह्निवदनुद्रेकावस्था, प्रदेशतोऽप्यु-
दयाभावश्च उपशमः । उद्रेकरूपेण प्रदेशरूपेण च द्विविधस्याप्युदयस्य यथाशक्ति
निरोधः । इत्थम्भूतश्चोपशमः सर्वोपशम उच्यते । उपशमेन निर्वृत औपशमिकः—
क्रोधादिकापायोदयाभावरूपोपशमस्य फलरूपो जीवस्य परमशान्तावस्थालक्षण-
परिणामविशेषः । स चात्मनः शुद्धिविशेषः । यथा—कतकचूर्णप्रक्षेपेण पङ्कादि-

पांच प्रकारका है—(१)—औपशमिक, (२)—क्षायिक, (३)—क्षायोपशमिक, (४)—औदयिक
और (५)—पारिणामिक ।

(१) औपशमिक भाव—

राख से ढँको हुई अग्नि के समान मोहनीय कर्म की अनुद्रेक अवस्था, एवं
प्रदेश की अपेक्षा भी उदय न होना उपशम कहलाता है । अर्थात् उद्रेकरूप से, तथा
प्रदेशरूप से—दोनों प्रकार के उदय का यथाशक्ति रुकना उपशम है । इस प्रकार का
उपशम सर्वोपशम कहलाता है । जो उपशम से हो उसे औपशमिक कहते हैं ।
अर्थात् क्रोध आदि कपायों के उदयाभावरूप उपशम का फलरूप जीव, उसका परमशान्त
अवस्थारूप परिणाम औपशमिक कहलाता है । यह आत्मा की एक प्रकार की शुद्धि है ।
जैसे कि—कतकचूर्ण (निर्मलीफल का चूरा) तथा फिट्कडो आदि का चूरा डालने से जलका

प्रकारना छे (१) औपशमिक (२) क्षायिक (३) क्षायोपशमिक (४) औदयिक अने
(५) पारिणामिक.

(१) औपशमिक भाव—

राजधी ढाँकेला अग्नि समान मोहनीय कर्मनी अनुद्रेक अवस्था, एवं
प्रदेशनी अपेक्षा पण्य उदय न होय ते उपशम कहेवाय छे. अर्थात् उद्रेकरूपधी
तथा प्रदेशरूपधी—अने प्रकारना उदयतुं यथाशक्ति रोकातुं ते उपशम छे. आ
प्रकारने उपशम सर्वोपशम कहेवाय छे. जे उपशमधी होय तेने औपशमिक कहे
छे. अर्थात् क्रोध आदि कपायाना उदयाभावइय उपशमना इलइय एव, तेना
परम शान्त अवस्थाइय परिणाम औपशमिक कहेवाय छे.

जे आत्मानी अेक प्रकारनी शुद्धि छे; जेभके कतकचूर्ण (निर्मलीफलतुं चूर्ण) तथा

અથ જીવસ્ય સ્વરૂપમ્—

ઔપશમિકાદિભાવવાન્, અસંલ્યાતપ્રદેશી, પરિણામી, લોકાકાશવ્યાપી પ્રદીપવત્ સંકોચવિકાસશીલઃ, વ્યક્તિરૂપેણાનન્તોઽસ્વખંડઃ, ક્રિયાશીલઃ, પ્રદેશ-સમુદાયરૂપો, નિત્યો, રૂપરહિતોઽવસ્થિતોઽમૂર્તઃ સન્નાપિ સંસારાવસ્થાયાં મૂર્ત ઇવ પ્રતીયમાનઃ, ઊર્ધ્વગતિશીલ આત્મા જીવઃ ।

અથ ભાવસ્તદ્વેદાથ—

‘અર્થોપશમિકાદિભાવવાન્ જીવઃ’ ઇત્યુક્તમ્, તત્ર કસ્તાવદ્ભાવઃ ? શ્રુયતામ્— આત્મપર્યાયાણામવસ્થૈવ ભાવાઃ । આત્મપર્યાયાથાવસ્થાભેદેન વિવિધરૂપા

જીવ કા સ્વરૂપ—

ઔપશમિક આદિ ભાવોવાળા, અસંલ્યાતપ્રદેશી, પરિણામી, પ્રદીપપ્રભાકે સમાન સંકોચ-વિકાસ સ્વભાવ વાળા, વ્યક્તિરૂપ સે અનંતસંલયક, ક્રિયાશીલ, પ્રદેશસમુદાયરૂપ, નિત્ય, અરૂપી, અવસ્થિત, અમૂર્ત હોને પર મી સંસારી અવસ્થા મેં મૂર્ત જૈસા પ્રતીત હોને વાળા, ઊર્ધ્વગમનસ્વભાવવાળા આત્મા જીવ કહલાતા હૈ ।

ભાવ ઓર ભાવ કે ભેદ—

પ્રશ્ન—જીવ કા સ્વરૂપ વતલાતે હુવ્ ઉસે ઔપશમિક આદિ ભાવો વાળા કહા હૈ સો ભાવ કયા વસ્તુ હૈ ?

ઉત્તર—સુનિયે, આત્મા કે પર્યાયો કી અવસ્થા હી ભાવ કહલાતી હૈ । આત્મા કે પર્યાય, અવસ્થાઓ કે ભેદ સે નાના પ્રકાર કે હોતે હૈં, અતઃ આત્મપર્યાયવર્તી ભાવ

ભાવનું સ્વરૂપ

ઔપશમિક આદિ ભાવો વાળા, અસંલ્યાતપ્રદેશી, પરિણામી, પ્રદીપપ્રભાકે સમાન સંકોચ-વિકાસ સ્વભાવવાળા, વ્યક્તિરૂપથી અનંતસંલયક, ક્રિયાશીલ, પ્રદેશ સમુદાયરૂપ, નિત્ય, અરૂપી, અવસ્થિત, અમૂર્ત હોવા છતાંય સંસારી અવસ્થામાં મૂર્ત જેવા દેખાવાવાળા, ઊર્ધ્વગમન સ્વભાવવાળા આત્મા ભાવ કહેવાય છે.

ભાવ અને ભાવના ભેદ—

પ્રશ્ન—ભાવનું સ્વરૂપ બતાવતા થકા તેને ઔપશમિક આદિ ભાવોવાળા કહેલ છે; તે ભાવ શું વસ્તુ છે ?

ઉત્તર—સાંભળો, આત્માના પર્યાયોની અવસ્થા જ ભાવ કહેવાય છે. આત્માની પર્યાય, અવસ્થાઓના ભેદથી નાના પ્રકારના હોય છે, તેથી આત્મપર્યાયવર્તી ભાવ પાંચ

(३) क्षायोपशमिक-भावः—

(३) मिथ्यात्वमोहनीयादिकर्मणामुदीर्णस्यांशस्य नाशः-क्षयः, अनुदीर्ण-स्यांशस्य विपाकोन्मुखत्वाभावः-उपशमः, यत्र एतद्वयं स क्षयोपशमः, स एव क्षायोपशमिकः । अस्य भावस्य 'मिश्रः' इति नामान्तरम् । ईषद्विध्यातावच्छन्न-वद्विद् । यद् उदयावलिकाप्रविष्टं कर्म, तत् क्षीणम्, ततोऽवशिष्टं कर्म, उद्रेक-क्षयोभयरहितावस्थम्, इमामुभयीभवस्यामवलम्ब्य क्षायोपशमिको भावः प्रजायते ।

(४) औदयिकभावः—

(४) कर्मविपाकाविभात्र उदयः । तेन निर्वृत्तो भाव औदयिकः । स

(३) क्षायोपशमिक भाव—

मिथ्यात्वमोहनीय आदि कर्मों के उदीर्ण (उदय में आये हुए) अंश का नाश हाना क्षय है । और अनुदीर्ण अंश का फल देने में उन्मुख न होना उपशम है । इन्हीं दोनों अवस्थाओं को क्षायोपशमिक भाव कहते हैं । इस भाव का दूसरा नाम 'मिश्रभाव' भी है । थोड़ीर बुझी हुई और ढंकी हुई अग्नि के समान जो कर्म उदयावलिका में आचुके हैं उनका क्षय होना, तथा शेष कर्मों का उद्रेक और क्षय-दोनों अवस्थाओं से रहित होना, इन दोनों के आधार पर क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न होता है ।

(४) औदयिक भाव—

कर्म का विपाक (फल) देना उदय कहलाता है । उदय से होनेवाला

(३) क्षायोपशमिक भाव—

मिथ्यात्व मोहनीय आदि कर्मोंना उदीर्ण (उदयमें आवेला) अंशने नाश थवे ते क्षय छे, अने अनुदीर्ण अंशनुं इल देवाभां उन्मुख-ते तरक्ष नहि थवुं ते उपशम छे, अने अने अवस्थाअने क्षायोपशमिक भाव कडे छे. आ भावनुं णीलुं नाम 'मिश्रभाव' पणु छे. थोडी थोडी ढंकी थयेली अने ढांडेली अग्नि प्रमाणे ने कर्म उदयावलिमां आवी चूक्यां छे तेने क्षय थवे, तथा शेष कर्मोंना उद्रेक अने क्षय, अने अवस्थाअेधी रहित थवुं, आ अनेनां आधार उपर क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न थाय छे.

(४) औदयिक भाव—

कर्मने विपाक (फल) भणवुं ते उदय कडेवाय छे. उदयधी उत्पन्न थवानाणे भाव ते औदयिक छे. औदयिक भाव आत्मानी मलिनता रूप छे. नेभके कीयड-

મલનિચયસ્યાથોદેશે નિપાતે સતિ જલસ્ય સ્વચ્છતા । મોહનીયકર્મણ ઉપશમાદ્
યદ્ દર્શનં શ્રદ્ધાનરૂપં, ચરણં યા વિરતિરૂપં જાયતે તદ્પ્યૌપશમિકશબ્દેનોચ્યતે ।

(૨) ક્ષાયિકભાવઃ—

(૨) સકલકર્મણામત્યન્તોચ્છેદઃ ક્ષયઃ, ક્ષયેણ નિર્વૃત્તઃ ક્ષાયિકઃ—
અમતિપાતિ-જ્ઞાનદર્શનચારિત્રલક્ષણો જીવસ્ય પરિણતિવિશેષઃ । સ ચાત્મનઃ
પરમવિશુદ્ધિઃ । યથા-સર્વથા નિઃશેષપદ્ધાદિમલજ્યપગમે જલસ્ય પરમસ્વચ્છતા ।

કીચડ આદિ મૈલ નીચે વેંટ જાતા હૈ, ઓર જલ સ્વચ્છ હો જાતા હૈ । મોહનીય કર્મ કે
ઉપશમ સે શ્રદ્ધાનરૂપ જો દર્શન ઉત્પન્ન હોતા હૈ. યા વિરતિરૂપ જો ચારિત્ર ઉત્પન્ન હોતા હૈ,
વહ ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન ઓર ઔપશમિક ચારિત્ર કહલતા હૈ ।

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મ કા અત્યન્ત ઉચ્છેદ હો જાના ક્ષય કહલાતા હૈ । ક્ષય સે હોને વાલા ભાવ
ક્ષાયિક ભાવ હૈ । અર્થાત્ એક વાર ઉત્પન્ન હો કર ફિર નષ્ટ ન હોને વાલે જ્ઞાન, દર્શન
ઓર ચારિત્ર રૂપ જીવ કે પરિણામ કો ક્ષાયિક ભાવ કહતે હૈ । ક્ષાયિક અવસ્થા જીવ કી
પરમ વિશુદ્ધિ હૈ, જૈસે-પૂર્ણ રૂપ સે સમસ્ત કીચડ આદિ મૈલ કે હટ જાને પર જલ કી
પરમ સ્વચ્છતા હોતી હૈ ।

ફટકડી આદિતુ' ચૂર્ણુ' નાખવાથી કચરો અને મેલ નીચે યેસી જાય છે, અને જલ સ્વચ્છ
થાય છે. મોહનીય કર્મના ઉપશમથી શ્રદ્ધારૂપ જે દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે. અથવા
વિરતિરૂપ જે ચારિત્ર ઉત્પન્ન થાય છે, તે ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન અને ઔપશમિક
ચારિત્ર કહેવાય છે.

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મનો અત્યન્ત ઉચ્છેદ થઈ જવો તે ક્ષય કહેવાય છે. ક્ષયથી થવાવાળો ભાવ
ક્ષાયિક ભાવ છે. અર્થાત્ એકવાર ઉત્પન્ન થઈને ફરી નાશ નહિ થવાવાળા જ્ઞાન,
દર્શન અને ચારિત્રરૂપ જીવના પરિણામને ક્ષાયિક ભાવ કહે છે. ક્ષાયિક અવસ્થા
જીવની પરમ વિશુદ્ધિ છે. જેમ-પૂર્ણરૂપથી સમસ્ત કીચડ-કાદવ આદિ મેલના દૂર
થવાથી જલની પરમ સ્વચ્છતા થાય છે.

यामनिर्वृत्तो जीवो निर्वृत्तः स्यात् । एवं चादिमत्त्वसंगः । कथमसन् आकाश-
कुमुदकल्प आत्माऽऽयत्यां संभवे ?-दिति युक्तिविरोधश्च ।

न हि परिणामेन विना कश्चिद्भावो भवतीति भावानां मध्ये परिणामस्यैव
प्राधान्यम् । आत्मनः स्वाभाविकं स्वरूपपरिणमनमेव पारिणामिको भाव उच्यते ।
यश्चात्मनः सत्तया स्वयमेव परिणामो भवति, स एव पारिणामिको भावः । उक्तञ्च-

“यः कर्ता कर्मभेदानां, भोक्ता कर्मफलस्य च ।

संसर्ता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥”

अष्टविधकर्मणां कर्ता, कर्मफलभोक्ता, चतुर्गतिभ्रमणकर्ता, कर्मक्षयकरणेन
मोक्षगन्ता यः, स एवात्मा, अन्यरूपो नेत्यर्थः ।

प्रकार जीवको सादि (आदिवाला) मानना पडेगा, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि-
जो आत्मा भूतकालमें नहीं था तो आकाशपुष्पके समान भविष्यत् कालमें उसका होना
कैसे संभव हो सकता है ! इस प्रकार युक्तिसे भी विरोध आता है ।

विना परिणाम के कोई भाव नहीं हो सकता अतः भावोंमें परिणामकी
प्रधानता है । आत्मा का स्वाभाविक परिणमन ही ‘पारिणामिक’ भाव कहलाता है, अर्थात्
आत्मा का जो अनादिपरिणमनसत्ता का कारण है उसे पारिणामिक भाव समझना
चाहिए । कहा भी है :-

“जो कर्म के भेदों का कर्ता है, जो कर्मफल का भोक्ता है । संसारभ्रमण
करने वाला है, निर्वृत्ति (मोक्ष) प्राप्त करने वाला है वही आत्मा है, आत्मा का अन्य
लक्षण नहीं है ॥१॥

मानवामां आवे तो ‘पूर्वकालमां एव नहि हतो ते हवे यथे छे.’ आ प्रकारे
एवमे सादि (आदिवाणी) मानयो पठथे, परन्तु ऐभ यथं शक्ये नहि, कारणे के-
एव भूतकालमां नही हतो त्पारे तेतुं आकाशपुष्पनी समान भविष्यत् कालमां
यवुं केभ संभवे ? ऐभ युक्तिथी पक्षु विरोध आवे छे.

पगर परिणामे केछि पक्षु लाव नथी यथं शकतो, ऐटला माटे लावोमां
परिणामनी प्रधानता छे. आत्मानुं स्वाभाविक परिणमनञ्च पारिणामिक लाव कहेवाय
छे. अथोत् आत्मानी अनादिपरिणमनसत्तातुं के कारणे छे, तेने पारिणामिक लान
सभलपुं नेछेके कहुं पक्षु छे-

“जे कर्मना लेहोना कर्ता छे, जे कर्मना इणना लोडता छे; संसारभ्रमण
करवावाणी छे, निर्वृत्ति (मोक्ष) प्राप्त करवा वाणी छे ते आत्मा छे. आत्मानुं
नीलुं लक्षण नथी.” ॥१॥

ચાત્મનો માલિન્યમ્, યથા પદ્મસંગાજ્જલસ્ય માલિન્યં । તથા-નરકગત્યાદિનામ-
કર્મણો વિપાકાવિર્ભાવાનરકગત્યાદ્યાસ્ય ઔદયિકો ભાવઃ । કપાયમાહનીયકર્મણો
વિપાકાવિર્ભાવાચ 'ક્રોધી,-માની' -ત્યાદિરૌદયિકો ભાવઃ । એવં સર્વત્રૌદયિકો
ભાવઃ સમાલોચનીયઃ ।

(૫) પરિણામિક-ભાવઃ—

(૫) પરિણમનં-સર્વથા-અપરિત્યક્તપૂર્વાવસ્થસ્ય રૂપાન્તરેણ મયનં-પરિણામઃ,
સ એવ પારિમાણિકઃ । અત્ર સ્વાર્થે ઠક્ પ્રત્યયઃ, ન તુ નિર્વૃત્ત્યર્થે, જીવસ્યાદિમત્ત્વાપત્તેઃ ।
યદિ 'પરિણામેન નિર્વૃત્તઃ' इत्यर्थे पारिणामिको जीव इति मन्यते, तदा प्रागवस्था-

ભાવ ઔદયિક છે । ભાવ આત્મા કા માલિન્યરૂપ છે, જાણે કિ ફીચડ કે સંસર્ગ સે જલ મેં
મલિનતા આ જાતી છે । નરકગતિનામકર્મ આદિ કે ઉદય સે નરક ગતિ આદિ ઔદયિક
ભાવ કહલાતે હેં । કપાયમોહનીય કર્મ કે ઉદય સે ક્રોધ, માન આદિ ઔદયિક ભાવ
હોતે હેં । ઈસી પ્રકાર સમી જગહ ઔદયિક ભાવ કા વિચાર કર લેના ચાહિયે ।

(૫) પારિણામિક ભાવ—

પૂર્વ અવસ્થા કા સર્વથા ત્યાગ ન કર કે રૂપાંતર મેં હોના પરિણામ છે, ઓર વહી
પારિણામિક કહલાતા છે । યહાં સ્વાર્થમે ઠક્ પ્રત્યય હુઆ છે, ન કિ નિર્વૃત્તિ અર્થમે, નિર્વૃત્તિ અર્થ
મેં પ્રત્યય હોનેસે જીવકા આદિમાનુ હોનેકા પ્રસંગ આજાતા છે । યદિ—“પરિણામેન નિર્વૃત્તિઃ
પારિણામિકઃ-જીવઃ” અર્થાત્ પરિણામસે હોનેવાલા પારિણામિક-જીવ કહલાતા છે, એસી
વ્યુત્પત્તિ માનલી જાય તો 'કિસી પૂર્વ કાલમેં જીવ નહીં થા વહ અવ હુઆ છે' ઈસ

કાદવના સંસર્ગથી જલમાં મલિનતા આવી જાય છે. નરકગતિ નામ-કર્મ આદિના
ઉદયથી નરકગતિ આદિ ઔદયિક ભાવ કહેવાય છે. કપાય-મોહનીય કર્મના ઉદયથી
ક્રોધ, માન આદિ તે ઔદયિક ભાવ છે. આ પ્રમાણે તમામ સ્થળે ઔદયિક ભાવનો
વિચાર કરી લેવો.

(૫) પારિણામિક ભાવ—

પૂર્ણ અવસ્થાનેા સર્વથા ત્યાગ નહિ કરતાં રૂપાંતર થવું તે પરિણામ છે, અને
પરિણામ તેજ પારિણામિક કહેવાય છે. અહીં સ્વાર્થમાં ઠક્ પ્રત્યય થયો છે પરન્તુ
નિર્વૃત્તિ અર્થમાં નથી થયો. નિર્વૃત્તિ અર્થમાં પ્રત્યય થવાથી જીવનેા આદિમાનુ
(આદિવાણો) થવાનેા પ્રસંગ આવી જાય છે. જ્ઞે—“પરિણામેન નિર્વૃત્તઃ પરિણામિકઃ-
જીવઃ” અર્થાત્ 'પરિણામથી થવાવાળો પારિણામિક જીવ કહેવાય છે' આવી વ્યુત્પત્તિ

ઈતિ । યદા જીવઃ કેવલિસમુદ્ઘાતાવસ્થાં પ્રાપ્નોતિ, તદા સમસ્તલોકાકાશમેક-
જીવસ્યાધારક્ષેત્રં ભવતિ । સકલજીવરાઢ્યપેક્ષયા તુ જીવાનામાધારક્ષેત્રં સંપૂર્ણમેવ
લોકાકાશમ્ ।

લોકાકાશસ્યાઽસંખ્યાતમાગે જીવસ્ય સ્થતિરિત્યત્રાઽઽગમવચનં યથા—

“સદ્ગણેઁ લોચસ્સ અસંલેજ્જહમાગે”

સ્વસ્થાનેન લોકસ્યાસંખ્યેયમાગે । (પ્રજ્ઞા૦ ૨ પદં જીવસ્થાનાધિકારે)

નનુ પરિમાણસ્ય ન્યૂનાધિકત્વે કિં કારણમ્ ? ઉચ્યતે—જીવસ્થાનાદિકાલતો-
ઽનન્તાનન્તાણુપ્રચયરૂપેઁ કાર્મણ—શરીરેઁ સમ્બન્ધાદેકસ્યૈવ જીવસ્ય પરિમાણં

જીવ કા આધારક્ષેત્ર લોકાકાશ કે અસંખ્યાતવેં માગ સે લેકર સમ્પૂર્ણ લોકતક
હો સકતા હૈ । જવ જીવ કેવલિસમુદ્ઘાત કરતા હૈ ઉસ સમય વહી ઁક જીવ સમ્પૂર્ણ
લોકાકાશ મેં વ્યાપ્ત હો જાતા હૈ । સમસ્ત જીવગણિ કી અપેક્ષાસે સમ્પૂર્ણ લોકાકાશ
જીવો કા આધારક્ષેત્ર હૈ ।

જીવ કા અવગાહ લોકાકાશ કે અસંખ્યાતવેં માગ મેં હોતા હૈ; ઁસ
વિષય મેં આગમ કા પ્રમાણ ઁસ પ્રકાર હૈ—

“સદ્ગણેઁ લોચસ્સ અસંલેજ્જહમાગે” (પ્રજ્ઞાપના ૨ પદ જીવસ્થાનાધિકાર)
સ્વસ્થાન કી અપેક્ષા લોક કે અસંખ્યાતવેં માગ મેં (જીવ કી સ્થિતિ હૈ) ।

શુદ્ધા—જીવો કે પરિમાણ કી ન્યૂનાધિકતા કા ક્યા કારણ હૈ ?

સમાધાન—અનન્તાનન્ત પરમાણુઓ કે પ્રચયરૂપ કાર્મણ શરીર કે સાથ

ન્યારે ઁવ કેવલિસમુદ્ઘાત કરે છે, તે સમય તે ઁક ઁવ સંપૂર્ણ લોકાકાશમાં
વ્યાપ્ત થઈ જાય છે. સમસ્ત ઁવરાશિની અપેક્ષાથી સંપૂર્ણ લોકાકાશ ઁવેતુ
આધારક્ષેત્ર છે.

ઁવનેા અવગાહ લોકાકાશના અસંખ્યાતમા ભાગમાં હોય છે. આ વિષયમાં
આગમતુ પ્રમાણ આ પ્રમાણે છે—

“સદ્ગણેઁ લોચસ્સ અસંલેજ્જહમાગે” સ્વસ્થાનની અપેક્ષા લોકના અસંખ્યાતમા
ભાગમાં (ઁવની સ્થિતિ છે) પ્રજ્ઞાપના, ૨ પદ જીવસ્થાનાધિકાર)

શંકા—ઁવેના પરિણામની ન્યૂનાધિકતાતુ શુ કારણ છે ?

સમાધાન—અનન્તાનન્ત પરમાણુઓના પ્રચય (સમૂહ) રૂપ કાર્મણ શરીર

जीवस्य स्थितिक्षेत्रम्—

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य, समस्तलोककाशे जीवोऽवगारते । जीवप्रदेशानां प्रदीपवत् संकोचविस्तारस्वभावत्वात् । आत्मनः परिमाणं न गगन-
वन्मदत्, नापि परमाणुवदणु, किन्तु मध्यमम् ।

यद्यपि प्रदेशसंख्यापेक्षया समानमेव सर्वेषामात्मनां स्वस्वपरिमाणम्, तथापि दैर्घ्य-विस्तारादि सर्वेषां विसदृशमेव । अतः प्रत्येकजीवस्याऽऽधारक्षेत्रं जघन्यतो लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य समग्रभागपर्यन्तं भवितुम्—

जीव का स्थितिक्षेत्र—

लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकाकाश में जीव का अवगाहन हो सकता है । कारण यह है कि—जीव के प्रदेश दीपक की प्रभा के समान संकोच-विस्तार स्वभाव वाले हैं, अर्थात् कभी सिकुड जाते हैं और कभी फैल जाते हैं । आत्मा का परिमाण न तो आकाश के समान महान् (सर्वव्यापी) है और न परमाणु के बराबर ही है किन्तु आत्मा मध्यम परिमाण वाला है ।

प्रदेशों की संख्या की अपेक्षा समस्त आत्माओं का परिमाण बराबर है, अर्थात् सब आत्मा लोकाकाश के बराबर असंख्यातप्रदेश वाले हैं किन्तु प्रात शरीर के अनुसार उनके विस्तार में (परिमाण में) अन्तर पडजाता है, अतः प्रत्येक

જીવનું સ્થિતિક્ષેત્ર—

લોકાકાશના અસંખ્યાતમા ભાગથી લઇને સંપૂર્ણ લોકાકાશમાં 'જીવનું' અવગાહન થઈ શકે છે. કારણ એ છે કે—જીવના પ્રદેશ દીપકની પ્રભાની સમાન સંકોચ-વિસ્તાર સ્વભાવવાળા છે, અર્થાત્ કોઈ વખત સંકુચાઈ જાય છે અને કોઈ વખત ફેલાઈ જાય છે. આત્માનું પરિમાણ આકાશપ્રમાણે મહાન નથી. અને પરમાણુના બરાબર પણ નથી પરંતુ આત્મા મધ્યમ પરિમાણ વાળો છે.

પ્રદેશોની સંખ્યાની અપેક્ષાએ સમસ્ત આત્માનું પરિમાણ બરાબર છે. અર્થાત્ સર્વ આત્મા લોકાકાશના બરાબર અસંખ્યાત પ્રદેશવાળા છે, પરંતુ પ્રાપ્ત શરીરના અનુસાર તેના વિસ્તારમાં (પરિમાણમાં) અંતર પડી જાય છે. તેટલા કારણથી પ્રત્યેક જીવનો આધાર-ક્ષેત્ર લોકાકાશના અસંખ્યાતમા ભાગથી લઈને સંપૂર્ણ લોક સુધી થઈ શકે છે.

वन्तामणि-टीका अवतरणा जीवास्तिकाय

चे चावस्थितः प्रकाशपुञ्जरूपः प्रदीपः स्वाश्रयमात्रावभासी क्वचित्
तः क्वचित् विततश्च भवति । अतः शरीरपरिमाणानुसारं परिमाणं दधान
मूर्त इव विज्ञायते । उक्तञ्च राजप्रश्रीयसूत्रे—

“पएसी ! जहाणामए—कूडागारसाला सिया जाव गंभीरा, अह णं केई
से जोहं व दीवं व” इत्यारभ्य “एवमेव पएसी ! जीवेवि जं जारिसयं
से जोहं व दीवं व” इत्यारभ्य “एवमेव पएसी ! जीवेवि जं जारिसयं
कम्मनिवद्धं वॉदि णिन्वचेइ तं असंखेज्जेहिं जीवपएसेहिं सच्चित्तं करेइ—खुड्डियं
महालयं वा” इति पर्यन्तम् । सू० ८४ ॥ इति ॥

प्रदेशिन् तद् यथानामकम्—कूटागारसाला स्यात् यावद् गम्भीरा. अथ
खलु कोऽपि पुरुषः ज्योतिर्वा दीपं वा (इत्यारभ्य) एवमेव प्रदेशिन् ! जीवोऽपि यां
यादृशिकां पूर्वकर्मनिवद्धां वॉदि निर्वर्त्तयति तामसंख्येयैर्जीवप्रदेशैः सच्चित्तं करोति
क्षुद्रिकां वा महालयां वा ।” इति च्छाया ।

महल में और खुले आकाश में रक्खा हुआ प्रकाश का पुञ्जरूप दीपक अपनी जगह पर
मादम होता हुआ कहीं संकुचित होता है और कहीं विल्लृत होता है । इसी प्रकार
शरीर के परिमाण के अनुसार परिमाणवाला आत्मा मूर्त जैसा मादम होता है । राजप्रश्रीय
सूत्र में कहा है :—

“हे प्रदेशी राजा ! जैसे कोई कूटागार शाला हो और वह (यावत्)
गंभीर हो और कोई पुरुष जोत या दीपक उस में रक्खे तो वह उसे पूर्णरूप से
प्रकाशित करता है, इसी प्रकार हे प्रदेशी ! आत्मा अपने पूर्वोपाजित कर्मों के अनुसार
जैसा शरीर पाता है, उसे असंख्यात आत्मप्रदेशों से सजीव बना देता है, चाहे
वह शरीर बड़ा हो चाहे क्षुल्ल (छोटा) हो” ।

लेवी रीते घरमां, भडेलमां अने खुल्ला आकाशमां सभेको प्रकाश-पुञ्जरूप दीपक
पोतानी ज्याअे देभातो थको कोर्ष ज्याअे संकुचित होय छे अने कोर्ष ज्याअे
विरल होय छे. अे प्रभाअे शरीरना परिमाण अनुसार परिमाण वापो आत्
मूर्त लेवा देभाय छे. राजप्रश्रीय सूत्रमां कथुं छे —

“हे परदेशी राज ! लेम कोर्ष कूटागार शाला होय ते (यावत्) गंभीर
अने कोर्ष पुत्रुप ज्यात अथवा दीपक तेमां सभे तो ते अने पूरुषरूपधी प्रकाश
करे छे, अे प्रभाअे हे परदेशी ! आत्मा पोताना पूर्वोपाजित कर्मों प्रभाअे
शरीर प्राप्त करे छे, तेने असंख्यात आत्मप्रदेशोर्षां सल्लव जनावी दे छे
शरीर गभे तो मोर्षुं होय अथवा नाहुं होय.”

वहूनां वा जीवानां परिमाणं विविधं जायते । कर्मण-शरीरं हि सर्वदाऽनेक-
रूपेणावतिष्ठते । तत्सम्बन्धादौदारिकाद्यपि शरीरं तदनुसारि न्यूनाधिक-
परिमाणभाग् भवति ।

जीवस्य मूर्तवद् हासवृद्धिः—

वस्तुतो रूपरहितोऽपि जीवः शरीरसम्बन्धान्यूनाधिकपरिमाणं
दधन्मूर्त इवापचयोपचयो मामोति । स हि स्वभावतः प्रदीपवन्निमित्तमासाद्य
संकोचविकाशशीलः स्वाश्रयमात्रेऽवमासने । यथा—कलशे मासादप्रदेशे निरा-

अनादि काल से जीव का सम्बन्ध है । इस सम्बन्ध के कारण एक ही जीव का
अनेक कालों में, और अनेक जीवों का एक ही काल में भिन्न-प्रकार का परिमाण
होता है । कर्मण शरीर सदा विभिन्न रूपों में परिणमन करता रहता है । उसके संयोग से
औदारिक आदि शरीर भी कर्मण शरीर के अनुसार न्यूनाधिकपरिमाणवाले होते हैं ।

जीव की हास-वृद्धि—

जीव वास्तव में अरूपी है, फिर भी शरीर के साथ सम्बन्ध होने के कारण
वह छोटे-मोटे परिमाण को धारण करता है, अतः उस में मूर्त पदार्थ की भाँति अपचय
(हास) और उपचय (वृद्धि) होता है । स्वभाव से संकोच विकासवाला जीव निमित्त
पाकर दीपक की तरह अपने आश्रय (शरीर) में प्रतिभासित होता है । जैसे घट में,

साथे अनादि कालથી જીવનો સંબંધ છે; એ સંબંધના કારણે એકજ જીવના અનેક
કાલોમાં, અને અનેક જીવોના એકજ કાલમાં ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારનું પરિમાણ થાય છે.
કાર્મણ શરીર સદાય વિભિન્ન રૂપોમાં પરિણમન કરી રહે છે, તેના સંયોગથી
ઔદારિક આદિ શરીર પણ કાર્મણ શરીર પ્રમાણે ન્યૂનાધિક પરિમાણવાળા હોય છે.

જીવની હાસ વૃદ્ધિ—

જીવ વાસ્તવમાં અરૂપી છે, તે પણ શરીરની સાથે સંબંધ હોવાના કારણે તે
નાના-મોટા પરિમાણને ધારણ કરે છે, તે કારણથી તેમાં મૂર્ત પદાર્થની જેમ અપચય
(હાસ) અને ઉપચય (વૃદ્ધિ) થાય છે. સ્વભાવથી સંકોચ-વિકાસવાળો જીવ નિમિત્ત
પ્રાપ્ત કરી દીપકની પ્રમાણે પોતાના આશ્રય (શરીર)માં પ્રતિભાસિત થાય છે—(દેખાય છે).

कर्मणामत्यन्तोच्छेदे सति कर्मसङ्गाभावात् कर्मवन्धनोच्छेदाच्च नास्त्येवोर्ध्वगति-
प्रतिबन्धकं तदा स्वस्वभावानुसारेणोर्ध्वगमनावसरः सिद्धानामुपतिष्ठते ।

जीवस्य लक्षणम्—

उपयोगवत्त्वं जीवस्य लक्षणम् । उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते
जीवोऽनेनेत्युपयोगः करणे घञ् । बोधरूपो व्यापार उपयोगः । ज्ञानं, संवेदनं,
प्रत्ययः, इति नामान्तराणि ।

सामान्यविशेषरूपबोधद्वयदर्शनान्निश्चयो भवति-विद्यते खलु जीवः,
यस्यैर्मां सामान्यविशेषावबोधौ, न च तादृशः कश्चिदस्ति जीवो, यस्य साका-
कर्मो का संसर्ग नहीं रहता, कर्मवन्धन का उच्छेद होने से ऊर्ध्वगति का कोई
प्रतिबन्धक नहीं रहता, तब सिद्ध जीवों को ऊर्ध्व गमन का अवसर प्राप्त होता है ।

जीव का लक्षण—

जीव का लक्षण उपयोग है । जो जीव को वस्तु के बोध में व्यापृत करता है
उपयुक्त बनाता है उसे उपयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—बोधरूप व्यापार उपयोग
कहलाता है । ज्ञान संवेदन, प्रत्यय, ये उपयोग के पर्यायवाची शब्द हैं ।

सामान्य बोध (दर्शन) और विशेष बोध (ज्ञान) अनुभवसिद्ध है । इन
दोनों बोधों से यह निश्चय होता है कि जीव अवश्य है; जिस में यह सामान्य और
विशेष बोध पाया जाता है । ऐसा कोई जीव नहीं है जिस में सामान्य-बोध (निराकार
बोध) है, अने उभेनो अंसर्ग रहेतो नथी, त्यारे कर्मबंधनो क्षय थवाथी उर्ध्वगति
थवाभां डोर्ध्व प्रतिबंधक (अंतराय करनार) रहेतुं नथी; त्यारे सिद्ध एवने उर्ध्व-
गमन करवानो अवसर प्राप्त थाय छे.

एवमुं लक्षणम्—

एवमुं लक्षणम् उपयोग छे, ते एवने वस्तुना बोधभां व्यापृत-व्यापारयुक्त
करे छे. तात्पर्यं ए छे डे-बोधरूप व्यापार उपयोग उडेवाय छे. ज्ञान, संवेदन,
प्रत्यय, आ अर्ध उपयोगना पर्यायवाची शब्दो छे,

सामान्य बोध (दर्शन) अने विशेष बोध (ज्ञान) अनुभव सिद्ध छे. ए भंने
बोधाधी ऐभ निश्चय थाय छे डे:-एव अवश्य छे, जेभां आ सामान्य तथा
विशेष बोध जेवाभां आवे छे एवो डोर्ध्व एव नथी डे जेभां सामान्य बोध

जीवस्य-ऊर्ध्वगतिः—

सकलकर्मणां क्षये सति सपदि जीवो मुक्तः सन्नूर्ध्वं गच्छति, न च 'जीवस्यामूर्तत्वाद् गतेरसंभवः' इति वाच्यम्, स्वभावत एव पुद्गलद्रव्यवद् जीवस्य गतिशीलत्वात् ।

इयान् विशेषः पुद्गलेभ्यः—पुद्गलाः स्वभावादधोगतिशीलाः, जीवास्तु स्वभावा-
दूर्ध्वगतिशीलाः । प्रतिबंधकरव्यसद्वाद् ऊर्ध्वगमनस्वभावा जीवा अद्यस्तिर्यग् वा
गच्छन्ति, गन्तुमक्षमा वा भवन्ति । तच्च तद्गतिप्रतिबन्धकं कर्मैव । यदा सकल-

जीव की ऊर्ध्वगति—

सकल कर्मों का क्षय होने पर तत्काल मुक्त हुआ जीव ऊपर की ओर
गमन करता है । 'जीव अमूर्त है और इस कारण वह गति नहीं कर सकता' ऐसा
कहना ठीक नहीं है, क्यों कि पुद्गल-द्रव्य के समान जीव स्वभाव से ही गतिशील है ।

गति के विषय में जीव और पुद्गल में इतना भेद है—पुद्गल अधोगतिशील हैं
और जीव ऊर्ध्वगतिशील हैं, अर्थात् पुद्गलों का स्वभाव नीचे जाने का है और जीव का
स्वभाव उपर की ओर जाने का है मगर रुकावट डालने वाले द्रव्यों के निमित्त से
ऊर्ध्वगतिशील जीव भी नीचे की ओर अथवा तिरछा गमन करता है । या' कभी गमन
करने में असमर्थ हो जाता है । जीव की स्वामाविक गति का प्रतिबन्धक (रुकावट
डालने वाला) कर्म ही है । जब समस्त कर्मों का अत्यन्त उच्छेद हो जाता है और

જીવની ઉર્ધ્વ ગતિ—

સકલ કર્મોનો ક્ષય થયા પછી તત્કાલ મુક્ત થયેલો જીવ ઉપર તરફ ગમન
કરે છે. 'જીવ અમૂર્ત છે, અને એ કારણથી તે ગતિ કરી શકતો નથી'—એમ
કહેવું તે ઠીક નથી; કેમકે પુદ્ગલનો પ્રભાવે જીવ સ્વભાવથી જ ગતિશીલ છે.

ગતિના વિષયમાં જીવ અને પુદ્ગલમાં એટલો ભેદ છે—પુદ્ગલ અધોગતિશીલ
છે, અને જીવ ઉર્ધ્વગતિશીલ છે. અર્થાત્ પુદ્ગલોનો સ્વભાવ નીચે જવાનો છે, અને
જીવનો સ્વભાવ ઉપર તરફ જવાનો છે. પરંતુ તેમાં અંતરાય નાંખવાવાળા દ્રવ્યોના
નિમિત્તથી ઉર્ધ્વગતિશીલ જીવ પણ નીચે તરફ અથવા તિર્છા ગમન કરે છે. અથવા
કોઈ વખત ગમન કરવામાં અસમર્થ થઈ જાય છે. જીવની સ્વાભાવિક ગતિનો
પ્રતિબંધ (અટકાયત) કરનાર કર્મ જ છે. જ્યારે સકલ કર્મોનો અત્યન્ત ક્ષય થઈ

तिरोहितो भवति । तथा पृथिवीकायादिजीवानामुपयोगांशः स्फुरत्येवः सर्वदा । यदि लोकव्यापिनः पुद्गलाः संवीभूयापि कर्मवर्गणारूपेण सर्वतोभावेन ज्ञानं तिरोद्ध्वस्तर्हि निर्जीवतापत्तिरात्मनो दुर्वारा स्यात् । तस्मात् पृथिव्यादिजीवेषु योथांशः स्वभावतोऽनावृतस्तिष्ठत्येवेति सिद्धम् । उक्तं चागमे—

“सर्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतमागो निच्चुग्घाडिओ । जइ पुण सोऽपि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा”

“सुद्धुवि मेहसमुदए, होइ पभा चंद-भूराणं” इति ।

छाया—सर्वजीवानामपि च खलु अक्षरस्यानन्तभागो नित्योद्घाटितः । यदि पुनः सोऽपि आव्रियेत तर्हि खलु जीवः अजीवत्वं प्राप्नुयात् । “सुष्टुपि मेघसमुदये, भवति प्रभा चन्द्रसूरयोः” इति ।

तिरोहित नहीं हो सकता, इसी प्रकार पृथिवीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों के उपयोग का अंश सदा स्फुरायमान रहता ही है । अगर लोकव्यापी पुद्गल इकट्ठे हो कर्मवर्गणारूप परिणत हो कर ज्ञान को पूरी तरह आच्छादित कर डाले तो जीव अजीव बन जाय, मगर ऐसा होना असम्भव है, अत एव यह सिद्ध है कि—पृथिवीकाय आदि एक इन्द्रिय वाले जीवों में भी ज्ञान का किंचित् अंश स्वभाव से अनावृत (आवरण रहित) रहता है । आगम में भी कहा है—“सर्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतमागो निच्चुग्घाडिओ, जइ पुण सोऽपि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा” “सुद्धुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदमूराणं”

प्रकाश द्वारायै पूर्णपक्षे तिरोहित-आच्छादित यतो नथी. अे प्रभाञ्च पृथिवीकांश आदि ऐकेन्द्रिय लोकेना “उपयोग” अंश पञ्च सदा स्फुरायमान रहे छे. अगर लोकव्यापी पुद्गल ऐकक्ष यद्यने कर्मवर्गणारूप परिणत यद्यने ज्ञानने पूरी तरेद्धथी आच्छादित करी नांणे (हांडी ठे) तो एव अएव यनी नय, पञ्च ऐभ यनपु अंशलवित छे. ऐटला कारणथी अे सिद्ध छे के-पृथिवीकाय आदि ऐक इन्द्रियवाणा लोकेमां पञ्च ज्ञानने किंचित् अंश स्वभावथी अनावृत-आवरणरहित रहे छे. आगममां पञ्च कहुं छे—“सर्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतमागो निच्चुग्घाडिओ । जइ पुण सोऽपि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा” “सुद्धुवि मेहसमुदए होइ पभा चंदमूराणं”

રાનાકારોપયોગી ન સ્તઃ । અત ણ્યોક્તં ભગવતા—“જીવો ઉવઓગલક્ષણો” ઇતિ ।

લક્ષ્યતે—જ્ઞાયતેજ્ઞેનેતિ લક્ષણમ્ । ઉપયોગી લક્ષણં યસ્ય સ ઉપયોગલક્ષણઃ ।
જ્ઞાનાવગમ્યો જીવ ઇત્યર્થઃ ।

પૃથિવીકાયાદિસર્વસંસારિજીવાનાં બોધસ્થાનન્તતમો ભાગઃ સર્વદા પ્રકાશમાનોઽનાવૃતસ્તિષ્ઠત્યેવ । નદિ સકલલોકાન્તવર્તિનઃ પુદ્ગલાઃ કર્મરૂપતથા પરિણતા અપિ કસ્યાપિ જીવસ્ય સર્વતોભાવેન જ્ઞાનમાવરીતું પ્રભવન્તિ । યથા-અતિનિવિઢઘનઘટાઽઽચ્છાદિતસ્યાપિ સૂર્યસ્ય પ્રકાશલેશઃ પ્રકાશત ઇવ, નચ સર્વથા ઉપયોગ) ઓર વિશેષ બોધ (સાકાર ઉપયોગ) વિદ્યમાન ન હો, ઇસી કારણ ભગવાન્તે કહા હૈ—“જીવો ઉવઓગલક્ષણો” જીવ ઉપયોગ લક્ષણ વાલા હૈ ।

જિસ કે દ્વારા વસ્તુ લક્ષી જાય—જાની જાય વહ લક્ષણ કહલાતા હૈ । ઉપયોગ જિસ કા લક્ષણ હો ઉસે ઉપયોગલક્ષણ કહતે હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—જ્ઞાન લક્ષણ કે દ્વારા જીવ માલુમ હોતા હૈ ।

પૃથિવીકાય આદિ સમસ્ત સંસારી જીવો કે જ્ઞાન કા અનન્તવાં ભાગ સદૈવ પ્રકાશમાન ઓર આવરણરહિત બના રહતા હૈ । સમ્પૂર્ણ લોકાકાશ કે પુદ્ગલ કદાચિત્ કર્મરૂપ મેં પરિણત હો જાઈ તો મી વહ કિસી ઇક જીવ કે જ્ઞાન કો પૂર્ણરૂપ સે આવૃત નહાં કર સકતે । સૂર્ય યાહે કિતની હી ઘન ઘનઘટા સે આચ્છાદિત ક્યો ન હો જાઈ, ઉસકા થોડા વહુત પ્રકાશ બના હી રહતા હૈ, પ્રકાશ કમી પરી તાહ (નિસાકાર ઉપયોગ) અને વિશેષ બોધ (સાકાર ઉપયોગ) વિદ્યમાન ન હોય, એ કારણથી ભગવાને કહ્યું છે કે:—“જીવો ઉવઓગલક્ષણો” ઇવ ઉપયોગ લક્ષણવાળો છે.

જેના દ્વારા વસ્તુ લખી શકાય—જાણી શકાય—તે લક્ષણ કહેવાય છે. ઉપયોગ જેનું લક્ષણ હોય, તેને “ઉપયોગલક્ષણ” કહે છે. તાત્પર્ય એ છે કે—જ્ઞાનલક્ષણ દ્વારા ઇવ માલુમ પડે છે.

પૃથિવીકાય આદિ તમામ સંસારી જીવોના જ્ઞાનનો અનન્તમો ભાગ હમેશાં પ્રકાશમાન અને આવરણરહિત બની રહે છે. સંપૂર્ણ લોકાકાશના પુદ્ગલો કદાચ કર્મરૂપમાં પરિણત થઈ જાય તો પણ તે કોઈ એક જીવના જ્ઞાનને પૂર્ણરૂપથી આવૃત કરી (ઢાંકી) શકે નહિ. સૂર્ય ગમે તેટલી ઘનઘટા—(મેઘાડંબર)માં આચ્છાદિત થઈ જાય તો પણ સૂર્યનો થોડો—જાણે પ્રકાશ તો બની જ રહે છે,

પ્રાપ્ય, કેવલજ્ઞાનસંજ્ઞાં પ્રાપ્નોતિ ।

જીવા દ્વિવિધાઃ—સિદ્ધા અસિદ્ધાશ્ચ । તત્ર નિર્ઘૂતાશેષકર્માણઃ સિદ્ધાઃ, અસિદ્ધાઃ સંસારિણઃ । દ્રવ્યભાવવન્ધઃ સંસારઃ । કર્માપ્તકસમ્બન્ધો દ્રવ્યવન્ધઃ, રાગદ્વેષાદિપરિણામસંવન્ધો ભાવવન્ધઃ । દ્વિવિધવન્ધરૂપઃ સંસારોઽસ્તિ યેષાં તે સંસારિણઃ । સંસારિણાં દ્વિવિધાઃ ત્રસસ્થાવરભેદાત્ । તત્ર પૃથિવ્યવૃનસ્પતયઃ સ્થાવરાઃ । તેજોવાયુદારાસ્ત્રસાઃ । તેજોવાયુ ગત્યૈવ ત્રસો, ન તુ લઙ્ઘ્યા । તત્તોદારાશ્ચ-તુર્વિધાઃ—દ્વિ-ત્રિ-ચતુઃ—પચ્ચેન્દ્રિયભેદાત્ । તત્ર પચ્ચેન્દ્રિયાઃ પુનર્દ્વિવિધાઃ સમનસ્કા અમનસ્કાશ્ચ ।

કો જાનને યોગ્ય વિશુદ્ધતા પ્રાપ્ત કરકે કેવલ જ્ઞાન સંજ્ઞા કો પાતા હૈ ।

જીવ દો પ્રકાર કૈ હૈં :—સિદ્ધ જીવ ઓર અસિદ્ધ જીવ । સકલ કર્મોં સૈ રહિત જીવ સિદ્ધ કહલ્યતૈ હૈં, ઓર સંસારી જીવ અસિદ્ધ કહલ્યતૈ હૈં । દ્રવ્યવન્ધ ઓર ભાવવન્ધ કો સંસાર કહતૈ હૈં । આઠ કર્મોંકા સમ્બન્ધ દ્રવ્યવન્ધ હૈ, ઓર રાગ દ્વેષ આદિ પરિણામોં કા સમ્બન્ધ હોના ભાવવન્ધ હૈ । યહ દો પ્રકાર કા વન્ધરૂપ સંસાર જિન કૈ હો વૈ સંસારી જીવ કહલ્યતૈ હૈં । સંસારી જીવ ત્રસ ઓર સ્થાવર કૈ ભેદસૈ દો પ્રકાર કૈ હૈં । પૃથ્વી જલ ઓર વનસ્પતિ, યૈ સ્થાવર હૈં, તેજ વાયુ ઓર ઉદાર જીવ ત્રસ હૈં । ઇન મૈં તેજ ઓર વાયુ ગતિત્રસ હૈ, લઘ્નિ સૈ સ્થાવર હૈં ।

ઉદાર કૈ ચાર ભેદ હૈં—દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય ઓર પચ્ચેન્દ્રિય । પચ્ચેન્દ્રિય જીવોં કૈ સંજ્ઞી ઓર અસંજ્ઞી, યૈ દો ભેદ હૈં ।

ક્ષય થવાથી સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થોંને બાહ્યવા યોગ્ય વિશુદ્ધતા પ્રાપ્ત કરીને કેવલજ્ઞાન સંજ્ઞા પામે છે.

જીવ ઝે પ્રકારના છેઃ—સિદ્ધ જીવ અને અસિદ્ધ જીવ, સકલ કર્મોંથી રહિત જીવ સિદ્ધ કહેવાય છે, અને સંસારી જીવ અસિદ્ધ કહેવાય છે. દ્રવ્યબંધ અને ભાવબંધને સંસાર કહે છે. આઠ કર્મોંનો સંબંધ તે દ્રવ્યબંધ છે, અને રાગ-દ્વેષ આદિ પરિણુમોંનો સંબંધ થાય તે ભાવબંધ છે. ઝે ઝે પ્રકારના બંધરૂપ સંસાર નેને હોય છે તે સંસારી જીવ કહેવાય છે. સંસારી જીવ ત્રસ અને સ્થાવરના ભેદથી ઝે પ્રકારના છે. પૃથ્વી, પાણી, અને વનસ્પતિ આ ત્રણ સ્થાવર છે, તેજ, વાયુ, ઉદાર જીવ ત્રસ છે. તેમાં તેજ અને વાયુ ગતિત્રસ છે, લઘ્નિથી સ્થાવર છે. ઉદારના ચાર ભેદ છે. દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પચ્ચેન્દ્રિય. પચ્ચેન્દ્રિય જીવોંના સંજ્ઞી અસંજ્ઞી, ઝે ઝે ભેદ છે.

તસ્માદ્ યથ યાનાનુપયોગાંશઃ સર્વસંસારિત્રીવેપુ યથાસંભવં સ્વભાવતોજનાવૃત્તો વર્તેતે, તત્ત સર્વતો જઘન્ય ઉપયોગાંશઃ પ્રમથતમયે સ્વસ્વપર્યાપ્તાનાં સૂક્ષ્મનિગોદાના-મેવ ભવતિ । તતઃ પરં સ ણ્યોપયોગાંશઃ અવશિષ્ટૈકેન્દ્રિય દ્વિ-ત્રિ-ચતુઃ-પञ્ચેન્દ્રિયભેદાદ્ ભિન્નમાનઃ સંભિન્નસ્રોતસ્ત્વાદિલઙ્ઘિસમૂહેન ચ લઙ્ઘિનિમિત્તકરણશરીરેન્દ્રિયવાહ્મ-નાંસિ સમાશ્રિત્ય પ્રવર્ધમાનો વિવિધક્ષાયોપશમકૃતૈવૈચિત્ર્યવતામવગ્રહાદીનાં ભેદેન તતોડપ્યધિકતરં વર્ધમાનઃ સકલઘાતિકર્મક્ષયં કૃત્વા, સકલજ્ઞેયગ્રાહિકાં પરાં વિશુદ્ધિ

“સર્વ જીવો કે અક્ષર કા અનન્તવાં ભાગ જ્ઞાન સદૈવ ઉઘાડા (નિરાવરણ) બના રહતા હૈ, અગર વહ મી ઢક ત્રાય તો જીવ અજીવ હો જાય । ”

“મેંધો કા સ્વૂ સમુદાય હોને પર મી ચન્દ્રમા ઓર સૂર્યે કો પ્રભા તો બની હી રહતો હૈ । ”

ઉપયોગ કા જો સર્વ જઘન્ય અંશ સમસ્ત સંસારી જીવોમં સર્વદા અનાવૃત બના રહતા હૈ, વહ જઘન્ય અંશ ઉત્પત્તિ કે પ્રથમ સમય મેં વર્તમાન અપર્યાપ્ત સૂક્ષ્મ નિગોદિયા જીવો મેં મી હોતા હૈ । તત્પશ્ચાત્ વહી ઉપયોગ કા અંશ એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય ચતુરિન્દ્રિય ઓર પञ્ચેન્દ્રિય કે ભેદ સે ભિન્ન હોતા હુઆ સંભિન્નસ્રોતસ્ત્વ આદિ લઙ્ઘિયોં કે સમૂહ સે લઙ્ઘિ, નિમિત્ત, કરણ, શરીર, ઇન્દ્રિય વચન ઓર મન કા આશ્રય લેકર વદતા જાતા હૈ । યહાં તક કિ વિવિધ પ્રકાર કે ક્ષયોપશમ કી વિચિત્રતા વાલે જીવોં કે અવગ્રહ આદિ કે ભેદ સે ઓર ઉસ સે મી અધિક વદકર સમસ્ત ઘાતી કર્મોં કા ક્ષય હોને પર સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થોં

“ સર્વં જીવોને અક્ષરનેા અનન્તમે ભાગ જ્ઞાન સદૈવ ઉઘાડુ (નિરાવરણ) રહે છે. અગર તે પશુ જે ઢંકાઈ જાય તો જીવ અજીવ થઈ જાય. ”

“ મેંધનેા ખુબ સમુદાય હોય તો પશુ અન્દ્ર અને-સૂર્યની પ્રભા બની રહે છે. ”

ઉપયોગનેા જે સર્વ જઘન્ય અંશ તમામ સંસારી જીવોમાં સર્વદા અનાવૃત (ઉઘાડો) બની રહે છે. તે સર્વ જઘન્ય અંશ ઉત્પત્તિના પ્રથમ સમયમાં વર્તમાન, અપર્યાપ્ત સૂક્ષ્મ નિગોદના જીવોમાં પશુ હોય છે. તે પછી તે ઉપયોગનેા અંશ એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પञ્ચેન્દ્રિયના લેહથી ભિન્ન થઈને, સંભિન્નસ્રોતસ્ત્વ આદિ લઙ્ઘિઓના સમૂહથી, લઙ્ઘિ, નિમિત્ત, કરણ, શરીર, ઇન્દ્રિય, વચન અને મનનેા આશ્રય લઈને વધતો જાય છે, અહીં સુધી કે વિવિધ પ્રકારના ક્ષયોપશમની વિચિત્રતાવાળા જીવોને અવગ્રહ આદિ લેહથી અને તેનાથી પશુ અધિક વધીને સમસ્ત ઘાતી કર્મોનેા

अथ पद्द्रव्यविचारः—

पट्टु द्रव्येषु वियद् द्रव्यं क्षेत्रम्, इतरे धर्मादयः पञ्च क्षेत्रवर्तित्वात् क्षेत्रिणः । देवकुरुत्तरकुरुक्षेत्रवर्तियौगलिकैककेशस्य खण्डशः करणे पर्यन्ततो यस्य खण्डस्य पुनः खण्डो न भवितुमर्हति, तादृशखण्डपरिमाणं यावदाकाशक्षेत्रं व्याप्नोति; तावति भागे वियतोऽसंख्यातप्रदेशाः, धर्मास्तिकायस्यासंख्यातप्रदेशाः, अधर्मास्तिकायस्य चा संख्यातप्रदेशाः, असंख्याता निगोदानां गोलकाश्च तिष्ठन्ति ।

सूच्यग्रभागपरिमिते निगोदखण्डेऽप्यसंख्याताः श्रेणयः सन्ति । तत्र प्रत्येकश्रेण्यमसंख्याताः प्रतराः, प्रतरे च प्रत्येकमसंख्याताः गोलकाः, गोलके

पद्द्रव्यविचारः—

उह द्रव्यों में से आकाश द्रव्य, क्षेत्र है, और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं। देव कुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों के जुगलियाके एक केश के ऐसे टुकड़े किये जाएँ कि फिर उनका दूसरा टुकड़ा न हो सके। इन में से एक टुकड़ा जितने आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उतने भाग में आकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं। उसी में धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, और निगोद के असंख्यात गोलक विद्यमान हैं।

सुई की नोक बराबर निगोद के खण्ड में भी असंख्यात श्रेणियां विद्यमान हैं। एक २ श्रेणी में असंख्यात-असंख्यात प्रतर हैं, एक २ प्रतर में असंख्यात २ गोलक हैं,

पद्द्रव्य विचारः—

छ द्रव्योंमें आकाश द्रव्य क्षेत्र छे, अने गाडीना धर्म आदि पांचद्रव्ये क्षेत्रवर्ती होवाथी क्षेत्र छे; देवकुरु अने उत्तरकुरु क्षेत्रोना जुगलियाना ओक केश-वाणना ओवा टुकड़ा करवाभां आवे के इरीने तेना पीजे टुकड़ा धर शके नहि, तेभांथी ओक टुकड़ा जेटला आकाशक्षेत्रने व्याप्त करे छे तेटला. लागभां आकाशना असंख्यात प्रदेश कडेवाय छे. तेभां धर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे, अधर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे, अने निगोदना असंख्यात गोलक विद्यमान छे.

सोथनी आणी गरीणर निगोदना भंडभां पणु असंख्यात श्रेणीओ विद्यमान छे. ओक ओक श्रेणीमां असंख्यात-असंख्यात-प्रतर, छे. ओक-ओक-प्रतरभां

जीवास्तिकायस्य (१)-अनन्तज्ञानम्, (२)-अनन्तदर्शनम् (३)-अनन्तसुखम्, (४)-अनन्तवीर्यं चेति गुणाः । (१)-अव्यावाधवत्त्वम्, (२)-अनवगाहवत्त्वम्, (३)-अमूर्तिकत्वम् (४)-अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते-(१)-द्रव्यतः-अनन्ता जीवाः, (२)-क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)-कालत आद्यन्तरहिताः, (४)-भावतः अरूपिणः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)-गुणतश्चेतनालक्षणा इति ।

। इति जीवास्तिकायः सम्पूर्णः-

जीवास्तिकाय के गुण ये हैं-(१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य ।

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय हैं ।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है । (१) द्रव्य से-जीव अनन्त हैं, (२) क्षेत्र से-लोकप्रमाण हैं (३) काल से-आदि-अन्त रहित हैं (४) भाव से-अरूपी हैं-रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित हैं (५) गुण से-चेतनालक्षण हैं ।

। इति जीवास्तिकाय ।

जीवास्तिकायना शुभ्य आ छे-(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख अने (४) अनन्त वीर्यं.

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व अने (४) अगुरुलघुत्व, ये जीवनी पर्याय छे.

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने गुणना लेहथी पांच प्रकारे जीवास्तिकायनुः ज्ञान ज्ञाय छे. (१) द्रव्यधी-जीव अनन्त छे. (२) क्षेत्रधी-लोकप्रमाण. (३) कालधी-आदि अनन्त रहित छे. (४) भावधी-अरूपी छे-रूप-रस-गंध अने स्पर्शधी-रहित छे. (५) गुणधी-चेतनालक्षण छे.

इति जीवास्तिकाय-

परमाणुनां द्वौ भेदौ स्तः-वद्धा अवद्धाश्च । तत्र वद्धाः स्कन्धरूपाः ।
अवद्धाः परस्परासंयुक्ताः । स्कन्धानां पुनर्द्वौ भेदौ-जीवसहिताः, जीवरहिताश्च ।
तत्र घट-पटादिरूपा अजीवस्कन्धाः ।

अथ जीवस्कन्ध-विचारः प्रस्तूयते—

द्वयोः परमाण्वोः संयोगे द्विप्रदेशी स्कन्धः । त्रयाणां परमाणूनां संयोगे
त्रिप्रदेशी स्कन्धः । एवमसंख्यातानां परमाणूनां संयोगादसंख्यातप्रदेशी स्कन्धो
जायते । एतावत्पर्यन्ताः स्कन्धा जीवानां ग्राह्या न भवन्ति ।

परमाणु दो प्रकार के हैं- वद्ध और अवद्ध । स्कन्धरूप परमाणु वद्ध कहलाते हैं,
और आपस में असंयुक्त परमाणु अवद्ध कहलाते हैं ।

स्कन्ध के भी दो भेद हैं-जीवसहित और जीवरहित, इन में घट पट
आदि स्कन्ध अजीवस्कन्ध कहलाते हैं ।

अब जीवस्कन्ध का विचार करते हैं—

दो परमाणुओं का संयोग होने पर द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, और तीन
परमाणुओं के संयोगसे त्रिप्रदेशी स्कन्ध । इसी प्रकार असंख्यात परमाणुओं के संयोग
से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता है । यहाँ तक के स्कन्ध जीवों द्वारा
ग्रहण नहीं किये जा सकते ।

परमाणु जे प्रकारना छे—(१) अण्ड अने (२) अण्ड. स्कंधरूप परमाणु अण्ड
कडेवाय छे, अने आपसमां असंयुक्त परमाणु अण्ड कडेवाय छे.

स्कंधना पणु जे लेद छे—अवसहित अने अवरहित. तेमां घट पट आदि
स्कंध अवस्कंध कडेवाय छे.

हुवे अवस्कंधनो विचार करवामां आवे छे—

जे परमाणुओनो संयोग थवाथी द्विप्रदेशी स्कंध अने छे, अने त्रय परमाणु-
ओना संयोगथी त्रिप्रदेशी स्कंध अने छे, जे प्रमाणु असंख्यात परमाणुओना
संयोगथी असंख्यातप्रदेशी स्कंध उत्पन्न थाय छे. अडिं सुधीना स्कंध, अवे
द्वारा अडणु करी शकतां नथी.

ષ પ્રત્યેકમસંખ્યાતાનિ નિગોદશરીરાણિ સન્તિ । તત્ર ચ પ્રત્યેકશરીરેઽનન્તા નિગોદજીવાઃ સન્તિ ।

અથ કિયન્તોઽનન્તા જોવાસ્ત્ર સન્તી?—ત્યુચ્યતે—અતીતકાલોઽનન્તઃ, તથા મવિપ્યત્કાલોઽપ્યનન્તઃ, વર્તમાનકાલ કસમયમાત્રઃ, કાલત્રયસ્યાપિ યાવન્તઃ સમયાઃ સન્તિ, તે પુનરનન્તેન ગુણિતા યાવન્તો ભવેયુસ્વતોઽપ્યનન્ત-ગુણાધિકા એકસ્મિન્ નિગોદે નિગોદિકા જીવાઃ સન્તિ ।

તત્રૈકજીવસ્યાસંખ્યાતાઃ પ્રદેશાઃ સન્તિ । એકૈકમદેશંઽનન્તાઃ કર્મવર્ગણાઃ સંલગ્નાઃ । તત્રૈકસ્યાં વર્ગણાયામનન્તાઃ પરમાણુપુદ્ગલાઃ સન્તિ ।

એક ૨ ગોલક મેં અસંખ્યાત ૨ નિગોદશરીર હેં, ઓર એક ૨ નિગોદશરીર મેં અનન્ત ૨ નિગોદજીવ હેં ।

શુદ્ધા—અનન્ત કે અનન્ત ભેદ હોતે હેં, એસી સ્થિતિ મેં એક નિગોદશરીર મેં કિતને અનન્ત જીવ હોતે હેં ?

સમાધાન—અતીત કાલ કે અનન્ત સમય હેં, મવિપ્ય કાલકે મી અનન્ત સમય હેં, ઓર વર્તમાન કાલ એક સમય માત્ર હૈ । ઇન તીનોં કાલોં કે જિતને સમય હેં ઊનકા અનન્ત સે ગુણાકાર કર દેને પર જિતને સમય હોં ઊન સે મી અનન્ત ગુણા અધિક નિગોદજીવ એક નિગોદશરીર મેં હોતે હેં ।

એક જીવ કે અસંખ્યાત પ્રદેશ હોતે હેં । એક ૨ પ્રદેશ મેં અનન્ત ૨ કર્મ-વર્ગણાઈ લગી હુઈ હેં, ઓર એક ૨ વર્ગણા મેં અનન્ત ૨ પુદ્ગલપરમાણુ હેં

અસંખ્યાત ગોલક છે. એક એક ગોલકમાં અસંખ્યાત નિગોદ શરીર છે, અને એક એક નિગોદ શરીરમાં અનંત અનંત નિગોદ જીવ છે.

શંકા—અનંતના અનંત ભેદ હોય છે, એવી સ્થિતિમાં એક નિગોદ શરીરમાં કેટલા અનંત જીવ હોય છે ?

સમાધાન—અતીતકાલ (ભૂતકાલ)ના અનન્ત સમય છે, ભવિષ્યકાલના પણ અનંત સમય છે, અને વર્તમાન કાલ એકસમયમાત્ર છે, એ ત્રણ કાલોમાં જે સમય છે, તેનો અનંતથી ગુણાકાર કરવાથી જે ગુણાકાર (સાશિ) થાય તેટલા સમયથી પણ અનંત ગુણા અધિક નિગોદ જીવ એક નિગોદ-શરીરમાં હોય છે.

એક જીવના અસંખ્યાત પ્રદેશ થાય છે. એક-એક પ્રદેશમાં અનંત-અનંત કર્મવર્ગણાઓ લાગી છે, અને એક-એક વર્ગણામાં અનંત અનંત પુદ્ગલપરમણુ છે.

वर्णागतानन्तपुद्गलपरमाणुघटितस्कन्धा जीवानां ग्राह्या भवन्ति ।

रागद्वेषरूपाशुद्धप्रवृत्त्याऽऽत्मनः प्रतिप्रदेशमनन्तानन्तकर्मवर्णा अयोगो-
लकवद्विबल्लोलीभूताः सन्ति, अत एवानन्तज्ञानादयो गुणा जीवस्य तिराहिता
भवन्ति । एवं च जीवोपेक्षयाऽनन्तगुणाधिकाः पुद्गला ज्ञातव्याः । ते च पुद्गला
रूपिणोऽचेतनाः सक्रियाः पूरणगलनस्वभावा वेदितव्याः ।

पइद्रव्येषु सक्रिय-निष्क्रियविचारः—

पइद्रव्येषु निश्चयनयेन सर्वाणि द्रव्याणि सक्रियाणि । व्यवहारनयतो
धर्माधर्माकाशकालाख्यानि चत्वारि द्रव्याणि क्रियारहितानि । जीवपुद्गलौ सक्रियौ
परमाणुओं से बने हुए स्कन्ध जीवों द्वारा ग्रहण करने योग्य होते हैं ।

राग और द्वेषरूप अशुद्ध प्रवृत्ति के कारण आत्मा के एक एक प्रदेश में अनन्तानन्त
कर्मवर्णाएँ इस प्रकार एकमेक हो रही हैं, जैसे लोहे का गोला और अग्नि एकमेक
हो जाते हैं, इसी कारण जीव के अनन्त ज्ञान आदि गुण ढँक जाते हैं । इस प्रकार
जीवों की अपेक्षा पुद्गल अनन्त गुणा अधिक जानने चाहिए । ये पुद्गल—रूपी, अचेतन,
सक्रिय, और पूरणगलनस्वभाववाले हैं ।

छह द्रव्यों में सक्रिय-निष्क्रियका विचार—

निश्चय नय से छहों द्रव्य सक्रिय हैं, किन्तु व्यवहारनयसे धर्मास्तिकाय अधर्मा-
स्तिकाय आकाश और काल नामक चार द्रव्य क्रिया रहित हैं, जीव और पुद्गल द्रव्य सक्रिय

अनन्त पुद्गल परमाणुओंकी बनेका स्कन्ध एवों द्वारा ग्रहण करवा योग्य होय छे.

राग बने द्वेष रूप अशुद्ध प्रवृत्तिना कारणे आत्माना ओके-ओके प्रदेशमां
अनन्तानन्त कर्मवर्णाएवों ओ प्रभावे ओकेमेक थर् रहीं छे के-बेभ लोदाने गोणे
अने अग्नि ओकेमेक थर् नय छे, ओ करण्थी एवना अनन्त ज्ञान आदि शुष्ण
ढंकाँ नय छे. ओ प्रभावे एवोनी अपेक्षा पुद्गल अनन्तशुष्ण अधिक नक्षुवा
नेर्छे. ते पुद्गल, रूपी, अचेतन सक्रिय बने पूरणगलनस्वभाववाणा छे.

छ द्रव्योंमां सक्रिय निष्क्रियता विचार—

निश्चयनय प्रभावे छ द्रव्ये सक्रिय छे, परंतु व्यवहारनयथी धर्मास्तिकाय
अधर्मास्तिकाय आकाश बने काल नामका चार द्रव्ये क्रियारहित छे, एव बने

अथ कीदृशाः स्कन्धा जीवानां ग्राह्या भवन्ती?—त्युच्यते—अमव्य-
राशिश्चतुःसप्ततितमः, तद्गतजीवापेक्षयाऽनन्तगुणाधिकाः परमाणवो यदि
संधीभवन्ति तदादौदरिकशरीरग्राह्यवर्गणा भवति । औदारिकवर्गणापेक्षया-
ऽनन्तगुणाधिका वैक्रियशरीरग्राह्यवर्गणा । ततोऽनन्तगुणाधिकाऽऽहारकवर्गणा ।
आहारकवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका तैजसशरीरग्राह्यवर्गणा । ततोऽनन्तगुणाधिका
एकभाषाग्राह्यवर्गणा । एकभाषाग्राह्यवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका एकश्वासोच्छ्वास-
वर्गणा । ततोऽनन्तगुणाधिका एकमनसो वर्गणा । तदपेक्षयाऽनन्तगुणाधिका कर्मण-
वर्गणा भवति । ततोऽनन्तगुणाधिकाः पुद्गलपरमाणुस्कन्धा ज्ञेयाः । कर्मण

किस प्रकार के स्कन्ध जीवों द्वारा ग्राह्य होते हैं ? यह बतलाते हैं :-अमव्य
राशि चोहतरवीं है । इस अमव्य राशि के जीवों की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक
परमाणु यदि इकट्ठे हों तो औदारिकशरीरग्राह्य वर्गणा होती है । औदारिकवर्गणाकी
अपेक्षा अनन्तगुणी अधिक वैक्रियशरीरग्राह्य वर्गणा होती है, और इस से भी
अनन्त गुणी अधिक आहारकवर्गणा होती है । आहारकवर्गणा से अनन्तगुणी अधिक
तैजसशरीरग्राह्य वर्गणा होती है, और उस से भी अनन्तगुणी अधिक एकभाषाग्राह्य
वर्गणा होती है । एकभाषावर्गण से भी अनन्तगुणी अधिक एक श्वासोच्छ्वासवर्गणा
होती है, और उस से अनन्तगुणी अधिक एकमनोवर्गणा होती है, मनोवर्गणा से
भी अनन्तगुणी अधिक कर्मणवर्गणा होती है । उस से भी अनन्त गुणा अधिक
पुद्गल परमाणु के स्कन्ध समझने चाहिए । इस प्रकार कर्मणवर्गणा के अनन्त पुद्गल

क्या प्रकारना स्कंध ज्ञेयोंद्वारा ग्रहण करी शक्य है ? - ते गतावे छे-अलव्य-
राशि युगोतेर (७४) वीं छे. ये अलव्य राशिना ज्ञेयानी अपेक्षा अनन्त शुष्ण
अधिक परमाणु जे जेकहा थाय तो औदारिक शरीर ग्रहण करी शके तेवी वर्गणा
होय छे, औदारिक वर्गणानी अपेक्षा अनन्त शुष्ण अधिक वैक्रियशरीरग्राह्य वर्गणा
होय छे, अने तेनाथी पण अनन्त शुष्ण अधिक जेक आहारकवर्गणा होय छे.
आहारकवर्गणाथी अनन्त शुष्ण अधिक तैजसशरीरग्राह्य वर्गणा होय, तेनाथी पण
अनन्त शुष्ण अधिक जेक भाषाग्राह्य वर्गणा होय छे, अने तेनाथी अनन्तशुष्ण अधिक
जेक श्वासोच्छ्वासवर्गणा होय छे, अने तेनाथी अनन्तशुष्ण अधिक जेक मनोवर्गणा होय
छे. मनोवर्गणाथी पण अनन्तशुष्ण अधिक कर्मणवर्गणा होय छे. तेनाथी पण अनन्त
शुष्ण अधिक पुद्गलपरमाणुना स्कंध समझवां जेधजे. जे प्रमाणु कर्मणवर्गणानी

वर्गणागतानन्तपुद्गलपरमाणुघटितस्कन्धा जीवानां ग्राह्या भवन्ति ।

रागद्वेपरूपाशुद्धप्रवृत्त्याऽऽत्मनः प्रतिप्रदेशमनन्तानन्तकर्मवर्गणाः अयोगो-
लकवद्विवल्लोलीभूताः सन्ति, अत एवानन्तज्ञानादयो गुणा जीवस्य तिरोहिता
भवन्ति । एवं च जीवोपेक्षयाऽनन्तगुणाधिकाः पुद्गला ज्ञातव्याः । ते च पुद्गला
रूपिणोऽचेतनाः सक्रियाः पूरणगलनस्वभावा वेदितव्याः ।

पद्द्रव्येषु सक्रिय-निष्क्रियविचारः—

पद्द्रव्येषु निश्चयनयेन सर्वाणि द्रव्याणि सक्रियाणि । व्यवहारनयतो
धर्माधर्माकाशकालाख्यानि चत्वारि द्रव्याणि क्रियारहितानि । जीवपुद्गलौ सक्रियौ
परमाणुओं से बने हुए स्कन्ध जीवों द्वारा ग्रहण करने योग्य होते हैं ।

राग और द्वेपरूप अशुद्ध प्रवृत्ति के कारण आत्मा के एक एक प्रदेश में अनन्तानन्त
कर्मवर्गणाएँ इस प्रकार एकमेक हो रही हैं, जैसे लोहे का गोला और अग्नि एकमेक
हो जाते हैं, इसी कारण जीव के अनन्त ज्ञान आदि गुण ढँक जाते हैं । इस प्रकार
जीवों की अपेक्षा पुद्गल अनन्त गुणा अधिक जानने चाहिए । ये पुद्गल-रूपी, अचेतन,
सक्रिय, और पूरणगलनस्वभाववाले हैं ।

छह द्रव्यों में सक्रिय-निष्क्रियका विचार—

निश्चय नय से छहों द्रव्य सक्रिय हैं, किन्तु व्यवहारनयसे धर्मास्तिकाय अधर्मा-
स्तिकाय आकाश और काल नामक चार द्रव्य क्रिया रहित हैं, जीव और पुद्गल द्रव्य सक्रिय

अनन्त पुद्गल परमाणुओंकी अनेका स्क्ध एवों द्वारा ग्रहण करवा योग्य होय छे.

राग अने द्वेष रूप अशुद्ध प्रवृत्तिना कारणे आत्माना ऐक-ऐक प्रदेशमां
अनन्तानन्त कर्मवर्गणायो ए प्रमाणे ऐकमेक थर् रही छे के-नेम दोदानो गोणो
अने अग्नि ऐकमेक थर् नय छे, ए कारणुथी एवना अनन्त ज्ञान आदि शुष्ण
ढंकाथ नय छे. ए प्रमाणे एवोनी अपेक्षा पुद्गल अनन्तशुष्ण अधिक नलुवा
नेथं ए. ते पुद्गल, रूपी, अचेतन सक्रिय अने पूरणगलनस्वभाववाण छे.

छ द्रव्योंमें सक्रिय निष्क्रियता विचार—

निश्चयनय प्रमाणे छ द्रव्यो सक्रिय छे, परंतु व्यवहारनयथी धर्मास्तिकाय
अधर्मास्तिकाय आकाश अने काल नामना चार द्रव्यो क्रियारहित छे, एव अने

સ્તઃ । નિશ્ચયનયાદ્ ધર્માસ્તિકાયો ગતિપરિતાનાં જીવપુદ્ગલાનાં ગતિં પ્રતિ સહાયદાનરૂપાં ક્રિયામ્, અધર્માસ્તિકાયઃ સ્થિતિપરિણતજીવપુદ્ગલાનાં સ્થિતિં પ્રતિ સહાયદાનરૂપાં ક્રિયાં કરોતિ । તથૈવાકાશોઽવગાહદાનરૂપાં ક્રિયાં, કાલઃ વર્તનારૂપક્રિયાં જીવાજીવેષુ વિધત્તે । તથૈવ નિશ્ચયેન જીવઃ સ્વસ્વરૂપરમણરૂપાં ક્રિયાં કરોતિ । યદિ નિશ્ચયનયેન શુભાશુભરૂપવિભાવદશારમણાત્મિકાં ક્રિયાં કુર્યાત્તદાઽઽત્મા ક્ષદાપ્યવિચલપદં નાપ્નુયાત્, અતઃ સ્વસ્વરૂપપરિણતિરૂપામેવ ક્રિયાં કરોતિ । નિશ્ચયનયેન પુદ્ગલોઽપ્યનાદિકાલતઃ સ્વપૂરણગલનરૂપાં ક્રિયાં સમાચરતિ । તસ્માદ્ નિશ્ચયનયેન સર્વાણિ દ્રવ્યાણિ સક્રિયાણીતિ જ્ઞાતવ્યમ્ ।

હૈ । નિશ્ચયનય સે ધર્માસ્તિકાય, ગતિપરિણત જીવો ઓર પુદ્ગલોં કો ગતિ મેં સહાયકતા દેને કો ક્રિયા કરતા હૈ, ઓર અધર્માસ્તિકાય સ્થિતિપરિણત જીવોં પવં પુદ્ગલોંકો સ્થિતિ મેં સહાયતા દેનેકો ક્રિયા કરતા હૈ । ડસી પ્રકાર આકાશ-અવગાહદાનરૂપ ક્રિયા કરતા હૈ, ઓર કાલ વર્તના આદિ મેં સહાયતા પહુંચાતા હૈં । જીવ નિશ્ચયનય સે નિજસ્વરૂપ-રમણરૂપ ક્રિયા કરતા હૈ । અગર નિશ્ચય નય સે જીવ શુભ ઓર અશુભ રૂપ વિભાવદશા મેં રમણ કરને કો ક્રિયા કરે તો ઉસે અવિચલ પદ કો કદાપિ પ્રાપ્તિ નહીં હો સકતી, અત પવ જીવ અપને સ્વભાવ મેં પરિણતિરૂપ ક્રિયા હી કરતા હૈ । નિશ્ચય નય કો અપેક્ષા પુદ્ગલ મો અનાદિ કાલ સે પૂરણ ગલન રૂપ ક્રિયા કર રહા હૈ । ડસ પ્રકાર નિશ્ચય નય સે સમી દ્રવ્ય સક્રિય હૈ ।

પુદ્ગલ દ્રવ્ય સક્રિય છે. નિશ્ચયનયથી ધર્માસ્તિકાય, ગતિમાં પરિણત જીવો અને પુદ્ગલોની ગતિમાં સહાયતા કરવાની ક્રિયા કરે છે, અને અધર્માસ્તિકાય, સ્થિતિમાં પરિણત જીવો અને પુદ્ગલોની સ્થિતિમાં સહાયતા દેવાની ક્રિયા કરે છે. એ પ્રમાણે આકાશ, અવગાહદાનરૂપ ક્રિયા કરે છે, અને કાલ વર્તના આદિમાં સહાયતા પહોંચાડે છે, જીવ નિશ્ચયનયથી નિજસ્વરૂપ-રમણરૂપ ક્રિયા કરે છે. અગર નિશ્ચયનયથી જીવ શુભ અને અશુભરૂપ વિભાવદશામાં રમણ કરવાની ક્રિયા કરે તો તેને અવિચલ પદની પ્રાપ્તિ કદાપિ પણ થઈ શકે નહિ, એટલા કારણથી જીવ પોતાના સ્વભાવમાં પરિણતિરૂપ ક્રિયા જ કરે છે, નિશ્ચયનયની અપેક્ષા એ પુદ્ગલ પણ અનાદિ કાલથી પૂરણ-ગલનરૂપ ક્રિયા કરે છે, એ પ્રમાણે નિશ્ચયનયથી સર્વ દ્રવ્યો સક્રિય છે,

अधुना व्यवहारनयमाश्रित्योच्यते—

व्यवहारतो धर्माधर्माकाशकाला निष्क्रियाः, जीव-पुद्गलाश्च सक्रियाः । व्यवहारनयतो जीवो रागद्वेषरूपाशुद्धपरिणत्या प्रति समयमनन्तपुद्गलपरमाणुस्कन्धा-ऽऽदानक्रियां करोति । परमाणुपुद्गला अपि कर्मवर्गणारूपेण जीवस्य सर्वस्मिन् प्रदेशे संलग्ना भवन्ति, अतस्ते संश्लेषक्रियां पूरणगलनादिक्रियां च कुर्वन्ति, तस्माद् व्यवहारनयतो जीव-पुद्गलावेव सक्रिया ।

पद्धद्वयविषये कर्तृत्वाकर्तृत्वनिरूपणम्—

निश्चयनयेन पद् द्वय्याणि स्वस्वरूपकर्तृणि, तस्मात्तेषां कर्तृत्वमुपपद्यते ।

अब व्यवहार नय की अपेक्षा से कर्तृत्व क्रिया जाता है—व्यवहारनय से धर्म अधर्म आकाश और काल क्रियारहित हैं, तथा जीव और पुद्गल सक्रिय हैं । व्यवहार नय से जीव राग-द्वेषरूप अशुभ परिणति के द्वारा प्रति समय अनन्त पुद्गल परमाणुओं के स्कन्धां को ग्रहण करने की क्रिया करता है । परमाणु पुद्गल भी कर्मवर्गणारूप में परिणत हो कर जीव के समस्त प्रदेशों में बद्ध होते हैं, अतः वह बन्धनरूप क्रिया करते हैं, और पूरण गलन आदि क्रिया भी करते हैं, इस प्रकार व्यवहार नय से जीव और पुद्गल ही सक्रिय हैं ।

छट द्रव्यों का कर्तापन और अकर्तापन—

निश्चय नय से छहों द्रव्य अपने २ स्वरूप के कर्ता हैं, अतः सभी द्रव्या में

छठे व्यवहारनयनी अपेक्षासे छडेवाय छे—व्यवहारनयधी धर्म अधर्म आकाश अने काश क्रियारहित छे, तथा एव अने पुद्गल सक्रिय छे. व्यवहारनयधी एव राग-द्वेषश्च अशुभपरिणतिद्वारा प्रतिसमय अनन्त पुद्गल परमाणुओंना स्कन्धाने अहंत्वं करवानी क्रिया करे छे. परमाणु पुद्गल यद्यु कर्मवर्गणारूपमां परिणत यधने एवना समस्त प्रदेशोमां गद्ध यध नय छे (सर्व प्रदेशोने योटी नय छे) तेदला कारणधी ते अधनश्च क्रिया करे छे, अने पूरण-गलन आदि क्रिया यद्यु करे छे. अने प्रमाणे व्यवहारनयधी एव अने पुद्गल न सक्रिय छे.

द्रव्योनु कर्तापद्युं अने अकर्तापद्युं—

निश्चयनयधी छ द्रव्यो, योतयोताना स्वश्चमां कर्ता छे. तेधी सर्व द्रव्योमां

વ્યવહારનયેન જીવસ્ય કર્તૃત્વં, ધર્માદિદ્રવ્યપશ્ચક્ત્યાકર્તૃત્વમિતિ ।

વ્યવહારનય:—

વ્યવહારનય: પદ્ધિઃ—શુદ્ધાશુદ્ધશુભાશુભોપચરિતાનુપચરિતભેદાત્ । તત્ર—

(૧) શુદ્ધવ્યવહારનય: ।

યદિ જીવઃ કર્મમલરૂપાશુદ્ધતાં વ્યપનીયાઞ્નન્તજ્ઞાનાદિગુણ પશુદ્ધતા મુપાર્જયતિ તર્હિ પ્રથમશુદ્ધવ્યવહારનયેન જીવસ્ય કર્તૃત્વં ભવતિ । તયાદિ-શુદ્ધવ્યવહારનયેન જીવો યદા શુદ્ધસ્વરૂપાર્જનાય પ્રયત્તે, તદા પ્રથમગુણસ્થાને કર્તાપન સિદ્ધ હોતા હૈ । વ્યવહારનયસે જીવ કર્તા હૈ ઓર શેષ ધર્મ આદિ પાંચ દ્રવ્ય અકર્તા હૈ ।

વ્યવહારનય—

વ્યવહાર નય છહ પ્રકાર કા હૈ—(૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય, (૨) અશુદ્ધ વ્યવહારનય, (૩) શુભ વ્યવહારનય, (૪) અશુભ વ્યવહારનય, (૫) ઉપચરિત વ્યવહારનય ઓર (૬) અનુપચરિત વ્યવહારનય ।

(૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય—

અગર જીવ કર્મમલરૂપ અશુદ્ધતા કો હટાકર અનન્તજ્ઞાનાદિગુણરૂપ શુદ્ધતા કા ઉપાર્જન કરતા હૈ તો શુદ્ધ વ્યવહારનય સે જીવ મેં કર્તૃત્વ હોતા હૈ । વહ ઇસ પ્રકાર શુદ્ધ વ્યવહાર નય સે જીવ જરૂર અપના શુદ્ધ સ્વરૂપ પ્રાપ્ત કરને કે લિપ કર્તાપણું સિદ્ધ થાય છે. વ્યવહારનયથી એવ કર્તા છે અને બાકીના ધર્માદિ પાંચ દ્રવ્યો અકર્તા છે.

વ્યવહારનય—

વ્યવહારનય છ પ્રકાર છે. (૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય (૨) અશુદ્ધ વ્યવહારનય, શુભ વ્યવહારનય, (૪) અશુભવ્યવહારનય, (૫) ઉપચરિત વ્યવહારનય, (૬) અનુપચરિત વ્યવહારનય.

(૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય—

એવ કર્મમલરૂપ અશુદ્ધતાને હઠાવીને અનન્તજ્ઞાનાદિગુણરૂપ શુદ્ધતાને ઉપાર્જન કરે છે તો શુદ્ધ વ્યવહારનય પ્રમાણે એવમાં કર્તૃત્વ-કર્તાપણું હોય છે. તે આ પ્રમાણે-શુદ્ધ વ્યવહારનયથી એવ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રયત્ન

अनन्तानुबन्धिकपायचतुष्टयं क्षपयित्वा चतुर्थं गुणस्थानं समासाद्य सम्यक्त्वगुणं लभते । अप्रत्याख्येयकपायचतुष्टयक्षयेण देशविरतिरूपं पञ्चमं गुणस्थानं प्राप्नोति । प्रत्याख्येयकपायचतुष्टयक्षयेण जीवस्य पण्डितमगुणस्थानयोः सर्वविरतिरूपयोरुपलब्धिर्भवति । यद्यष्टमगुणस्थानं लभ्यते तदा तत्र श्रेणिद्वयं समाख्यते, उपशमश्रेणिः क्षपकश्रेणिश्च । तत्रोपशमश्रेण्याऽष्टमगुणस्थानादेकादशगुणस्थानं यावदध्यारोहति । क्षपकश्रेण्या त्वष्टमादारभ्य दशमं यावत् समाख्यते । एकादशं विहाय द्वादशं गुणस्थानं समारोहति । जीवस्तत्र रागद्वेषरूपमोहनीय-

प्रयत्न करता है तब प्रथम गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चार कपायोंका क्षय करके चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त करता है और सम्यक्त्व गुण पा लेता है । चार अप्रत्याख्यानानवरण कपायों का क्षय करके देशविरतिरूप पांचवाँ गुणस्थान प्राप्त करता है, और प्रत्याख्यानानवरण कपाय—चतुष्टय के क्षय से जीव को सर्वविरतिरूप छठे और सातवें गुणस्थान की प्राप्ति होती है । जीव को यदि आठवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है तो वहाँ से दो श्रेणियाँ आरम्भ होती हैं और जीव उन में से किसी एक श्रेणी पर आरूढ़ होता है । दो श्रेणियाँ हैं—उपशमश्रेणी, और क्षपकश्रेणी । उपशमश्रेणीवाला जीव ग्यारहवें गुणस्थान तक चढ़ सकता है । क्षपकश्रेणीवाला जीव आठवें से दशवें गुणस्थान तक पहुँचकर ग्यारहवें को छोड़ कर सीधा बारहवें गुणस्थान पर आरूढ़ हो जाता है । जीव दशवें गुणस्थान के अन्त में रागद्वेषरूप मोहनीय कर्म का समूल नाश करके,

करे छे, त्यारे प्रथम शुषुस्थानमां अनन्तानुबन्धी चार कपायोनो क्षय करीने चतुर्थ (चौथुं) शुषुस्थान प्राप्त करे छे, अने सम्यक्त्व शुषु पायी नय छे. चार अप्रत्याख्यानानवरण कपायोनो क्षय करीने देशविरतिरूप पांचमुं शुषुस्थान प्राप्त करे छे, अने प्रत्याख्यानानवरण कपाय—चतुष्टयना क्षयधी एवने सर्वविरतिरूप छहू अने सातमा शुषुस्थाननी प्राप्ति थाय छे. एवने ले आठमुं शुषुस्थान प्राप्त थाय छे तो त्यांथी जे श्रेणीओनो आरंभ थाय छे, अने एव जे जेमांथी डोस जेक श्रेणी पर आरूढ़ थाय छे. जे श्रेणी आ प्रभाळु छे—(१) उपशमश्रेणी (२) क्षपकश्रेणी. उपशमश्रेणी पाणो एव अगिआरमां शुषुस्थान सुधी चढ़ी शके छे, क्षपकश्रेणीपाणो एव आठमाथी दसमा शुषुस्थान सुधी पहुँचौने अगिआरमा शुषुस्थाकने छोडीने सीधा बारमां शुषुस्थान पर आरूढ़ थई नय छे. एव दसमा शुषुस्थानना अंतमां

કર્મ સમૂહમુન્મૂલ્ય ઘાતિકર્માણિ ક્ષપયિત્વા ત્રયોદશં ગુણસ્થાનમારોહતિ । ત્રયોદશે ગુણસ્થાને નિર્મલકેવલજ્ઞાનં પ્રાપ્નોતિ । તદનન્તરં પદ્મલઘ્વધ્વરોચ્ચારણકાલસ્થિતિકં ચતુર્દશગુણસ્થાનં સંપ્રાપ્ય નિઃશેષકર્મનિચયં ક્ષપયિત્વાઽસૌ શિવપદં સંપ્રાપ્નોતિ ।
। ઇતિ જીવસ્ય શુદ્ધસ્વરૂપનિરૂપકઃ શુદ્ધવ્યવહારનયઃ ।

(૨) અશુદ્ધવ્યવહારનયઃ—

અશુદ્ધવ્યવહારનયેન રાગદ્વેપમિધ્યાત્વાદયોઽનાદિકાલતઃ શત્રુરૂપેણ જીવે સંલગ્નાઃ સન્તિ, તસ્માજ્જીવસ્પાશુદ્ધત્વં જ્ઞેયમ્ । અશુદ્ધત્વેન ચ પ્રતિસમય-

ઔર વારહવેં ગુણસ્થાન મેં શેષ ત્રીન ઘાતિ કર્મોં કા ક્ષય કરકે તેરહવેં ગુણસ્થાન મેં પહુંચતા હૈ । ઇસં ગુણસ્થાન મેં (વારહવેં ગુણસ્થાન કે અન્તિમ સમય મેં) જીવ કો નિર્મલ કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત હોતા હૈ । તેરહવેં ગુણસ્થાન કે વાદ પાંચ હૃસ્વ સ્વર (અ, ડ, ડ, ઋ, લ) ઉચ્ચારણ કરને મેં મિતના સમય લગતા હૈ ઉતને સમય તક ચૌદહવેં ગુણસ્થાન મેં ઠહરકર સમસ્ત કર્મોં કા ક્ષયકર કે મોક્ષ પ્રાપ્ત કર લેતા હૈ ।

જીવકે શુદ્ધ સ્વરૂપ કો પ્રહણ કરને વાલા યહ શુદ્ધ વ્યવહારનય હૈ ।

(૨) અશુદ્ધ વ્યવહારનય—

અશુદ્ધ વ્યવહારનય સે રાગ-દ્વેપ ઔર મિધ્યાત્વ આદિ અનાદિ કાલ સે શત્રુકી સરહ જીવ કે સાથ લગે હુણ હૈં, ઇસી કારણ જીવ મેં અશુદ્ધતા હૈ । ઇસ અશુદ્ધતા કે રાગ-દ્વેષરૂપ મોહનીય કર્મોના સમૂળગો નાશ કરીને અને બારમા શુભસ્થાનમાં શેષ ત્રણ ઘાતીકર્મોના ક્ષય કરીને તેરમા શુભસ્થાનમાં પહોંચે છે. એ શુભસ્થાનમાં (બારમા શુભસ્થાનના અંતિમ સમયમાં) જીવને નિર્મલ કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે. તેરમા શુભસ્થાન પછી પાંચ હસ્વ સ્વર—(અ-ઈ-ઉ-ઋ-ૃ) ઉચ્ચારણ કરતાં નેટલો સમય લાગે છે, તેટલો સમય ચૌદમા શુભસ્થાનમાં થોલીને સમસ્ત કર્મોના ક્ષય કરીને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી લે છે.

જીવના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રહણ કરવા વાળો આ શુદ્ધ વ્યવહાર નય છે.

(૨) અશુદ્ધ વ્યવહારનય—

અશુદ્ધ વ્યવહારનયથી રાગ-દ્વેષ અને મિધ્યાત્વ આદિ અનાદિ-કાલથી શત્રુની માફક જીવની સાથે લાગ્યાં છે, એ કારણથી જીવમાં અશુદ્ધતા છે. એ અશુદ્ધતાના

મનન્તાનન્તકર્મવર્ગણાઃ સત્તારૂપેણાવગુણિતા ભવન્તિ । એવં ચાશુદ્ધવ્યવહારનયેન જીવસ્ય કર્તૃત્વં સિધ્યતિ ।

(૨) શુભવ્યવહારનયઃ—

શુભવ્યવહારનયેનાત્મા શુભપરિણામતો દાનશીલતપોભાવવિનયમક્તિવૈયાવૃત્ત્યં, શ્રમણનિર્ગ્રન્થાનાં પ્રાસુકમેપણીયમશનપાનલાઘ્વાદ્યસ્વાદ્યવસ્ત્રકમ્બલપ્રતિગ્રહપાદપ્રોચ્છન-પ્રાતિહાર્યપીઠફલકશય્યાસંસ્તારકૌપધભૈષજ્યમતિલામરૂપં સુપાત્રદાનં, ત્રિયમાણ-જીવરક્ષણરૂપમભયદાનં, હીનદીનનિઃસત્ત્વજીવાનાં સાહાય્યં, સાધર્મિકવાત્સલ્યં, પરહિત-ચિન્તારૂપાં મૈત્રીં, પરદુઃખનિવારણેચ્છારૂપાં કરુણાં, નિઃસ્વાર્થપરોપકારાદિકાં ચ કારણ પ્રતિસમય અનન્તાનન્ત કર્મવર્ગણે સત્તારૂપ સે વદ્ધ હોતી રહતી હૈ । ઇસ પ્રકાર અશુદ્ધ વ્યવહારનય સે જીવ કો કર્તા સમજના જાહિે ।

(૩) શુભ વ્યવહારનય—

શુભ વ્યવહારનય સે આત્મા શુભપરિણામદ્વારા દાન, શીલ, તપ, ભાવ, વિનય, મક્તિ, વૈયાવૃત્ય રૂપ શુભક્રિયા કરતા હૈ, શ્રમણ નિર્ગ્રન્થો કો પ્રાસુક એપણીય-અશન પાન લાઘ, સ્વાદ્ય, વસ્ત્ર, કમ્બલ, પાત્ર, પાદપ્રોચ્છન, પડિહારી પીઠ, ફલક, શય્યા, સંસ્તારક, કૌપધ, ભેષજ કા સુપાત્રદાન દેતા હૈ । મરતે હુે જીવ કી રક્ષારૂપ અભયદાન દેતા હૈ, હીન દીન ઓર નિર્વલ જીવો કી સહાયતા કરતા હૈ । સાધર્મી કે પ્રતિ વાત્સલ્ય પ્રકટ કરતા હૈ, પરહિતચિન્તનરૂપ મૈત્રી ભાવના, દૂસરો કા દુઃખનિવારણરૂપ કરુણા

કારણે પ્રતિસમય અનન્તાનન્ત કર્મ વર્ગણાએ સત્તારૂપથી બદ્ધ થતી રહી છે. આ પ્રમાણે અશુદ્ધ વ્યવહારનયથી જીવને કર્તા સમજવો જોઈએ.

(૩) શુભ વ્યવહારનય—

શુભ વ્યવહારનયથી આત્મા દાન, શીલ, તપ, ભાવ, વિનય, ભક્તિ વૈયાવૃત્ય રૂપ શુભ ક્રિયા કરે છે. શ્રમણનિર્ગ્રન્થોને પ્રાસુક એપણીય-અશન, પાન, ખાદ્ય, સ્વાદ્ય, વસ્ત્ર, કમ્બલ, પાત્ર, પાદપ્રોચ્છન, પડિહારી-પીઠ, ફલક, શય્યા, સંસ્તારક, કૌપધ, ભેષજનું સુપાત્ર દાન આપે છે, મરતા જીવની રક્ષારૂપ અભયદાન આપે છે, હીન દીન અને નિર્વલ જીવોની સહાયતા કરે છે; સાધર્મીના ઉપર વાત્સલ્ય પ્રગટ કરે છે, પરહિતચિન્તનરૂપ મૈત્રીભાવના, ખીલના દુઃખનિવારણરૂપ કરુણા તથા નિઃસ્વાર્થ

શુભક્રિયાં કરોતિ, તેન શુભવ્યવહારનયેન જીવસ્ય કર્તૃત્વં જાયતે ।

(૪) અશુભવ્યવહારનયઃ—

અશુભવ્યવહારનયેન જીવો હાસ્ય-ભય-શોક-રત્ય-રતિ-નિદ્રા-પ્રાણાતિમાત-મૃષાવાદા-અદત્તાદાન-મૈથુન-પરિપ્રહ-ક્રોધ-માન-માયા-લોભ-રાગ-દ્વેષાદિષુ પ્રવર્તેતે । વિષયસુખારમ્ભાદિરૂપામશુભક્રિયાં ચ કરોતિ તેનાઽશુભવ્યવહારનયતો જીવસ્ય કર્તૃત્વં સિદ્ધયતિ ।

(૫) ઉપચરિતવ્યવહારનયઃ—

ઉપચરિતવ્યવહારનયેન જીવો નિજમજરામરત્વમનન્તજ્ઞાનદર્શનમવ્યાવાધ-

તથા નિઃસ્વાર્થ પરોપકાર આદિરૂપ શુભક્રિયા કરતા હૈ, અતઃ શુભ વ્યવહારનય સે જીવ કા કર્તાપન સિદ્ધ હોતા હૈ ।

(૪) અશુભ વ્યવહારનય—

અશુભ વ્યવહારનય સે જીવ હાસ્ય, ભય, શોક, રતિ, અરતિ, નિદ્રા, પ્રાણાતિ પાત, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, મૈથુન, પરિપ્રહ, ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, રાગ, દ્વેષ, આદિ અશુભ કાર્યોં એવં ભાવોં મેં પ્રવૃત્ત હોતા હૈ, તથા વિષયસુખ એવં આરંભ આદિ રૂપ અશુભ ક્રિયા કરતા હૈ, અતઃ અશુભવ્યવહારનય સે જીવ કર્તા સિદ્ધ હોતા હૈ ।

(૫) ઉપચરિત વ્યવહારનય—

ઉપચરિત વ્યવહાર નય સે જીવ અપને અજરતા અમરતા તથા અનન્ત જ્ઞાન

પરોપકાર આદિરૂપ શુભ ક્રિયા કરે છે, તે કારણથી શુભ વ્યવહારનયથી જીવ કર્તાપણું સિદ્ધ થાય છે.

(૪) અશુભ વ્યવહારનય—

અશુભ વ્યવહારનયથી જીવ હાસ્ય, ભય, શોક, રતિ, અરતિ, નિદ્રા, પ્રાણાતિપાત, મૃષાવાદ, અદત્તાદાન, મૈથુન, પરિપ્રહ, ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, રાગ, દ્વેષ આદિ અશુભ કાર્યોં એવં ભાવોં મેં પ્રવૃત્ત થાય છે, વિષયસુખ એવં આરંભ આદિરૂપ અશુભ ક્રિયા કરે છે, તેથી અશુભ વ્યવહારનયથી જીવ કર્તા સિદ્ધ થાય છે.

(૫) ઉપચરિત વ્યવહારનય—

ઉપચરિત વ્યવહારનયથી જીવ પોતાના અજર અમર તથા અનન્તજ્ઞાન, દર્શન

सुखादिरूपं शुद्धस्वरूपं विस्मृत्य पौद्गलिकविभावपरिणामेऽनन्तदुःखजनकेऽनन्तानन्दमनुभवति, मोहवशेन वाह्यवस्तुषु ममत्वभावं कुरुते । यथा—“इदं मम शुद्धम्, इमे मम पुत्राः, इमा मम दाराः, इमे मम परिवाराः, इदं मम सर्वं धनजनादिकम्” । इत्थं विपरूपं विषयं पीयूषं मन्यमानो विपर्यक्तानो क्षणमात्रसुखजनकान् बहुकालदुःखदान् कामभोगान् भुञ्जानो विषयमृगतृष्णां पुनः पुनर्धाविमानो दीर्घाध्वसंसारे क्षणमपि विश्रान्तिं न लभते । ममेति कुर्वन्नयं जीवः पुत्रदारादीनां सुखेन सुखं, दुःखेन दुःखं मन्यमानस्तदर्थं व्यर्थमेव शोकमनुभवति, तदर्थं प्राणनाशमपि कर्तुं समुद्यतो भवति । अनात्मीयमपि स्वीयं मन्यमानो नानाविधपापकार्यकरणेन

दर्शक तथा अव्यावाधिसुखरूप शुद्ध स्वरूप को मूल कर पौद्गलिक विभाव परिणाम में जो अनन्त दुःखों का जनक है अनन्त आनन्द मानता है । मोह के वशीभूत हो कर वाह्य वस्तुओं में ममत्व धारण करता है, जैसे—“यह मेरा घर है, ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरी पत्नी है, ये मेरे कुटुम्बी हैं, ये सब धन-जन आदि मेरे हैं” । इस प्रकार के विपरूप विषयों को अमृत मानता हुआ, विषयों में तन्मय हो कर, क्षण भर सुख देने वाले और दीर्घकाल तक दुःख देने वाले काम-भोगों को भोगता हुआ, विषयों की मृगतृष्णा की तरफ वारंवार दौडता हुआ, इस दीर्घमार्गवाले संसार में क्षण भर भी विश्राम नहीं पाता है । मेरे मेरे करता हुआ यह जीव, पुत्र और पत्नी वगैरह के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानता हुआ व्यर्थ ही उन के लिये शोक करता है, यहाँ तक की उन के लिए प्राणों का नाश तक करने को उद्यत हो जाता है । यह

तथा अव्यावाधिसुखरूप शुद्ध स्वरूपने भूली जन्मे पौद्गलिक विभाव परिष्णामभां के जे अनन्त दुःखोनेना जनक (उत्पन्न करनार) छे. तेभां अनन्त आनन्द माने छे, मोहने वश यधने पहारनी वस्तुओभां ममत्व धारण करे छे, जेभङ्के—“आ घर भाङ् छे; आ भारा पुत्र छे, आ भारी स्त्री छे, आ भाङ् कुटुम्भ छे, आ सर्व धन-जन वगेरे भाङ् छे” जे प्रभाञ्जे विपरूप-विषयोने अमृतरूप मानीने, विषयोभां तन्मय यधने क्षणमात्र सुख आपवावाणा अने लांभा काल सुधी दुःख आपवावाणा लोकोने लोकावतो थके, विषयोनी मृगतृष्णा तरङ् वारंवार दौडतो थके आ लांभा मार्गवाणा संसारभां क्षण मात्र पणु विश्राम पावतो नथी. भारा-भारा करतो आ एव, पुत्र अने पत्नी वगेरेना सुखभां सुख अने दुःखभां-दुःख मानतो थके तेना भाटे नष्टमे शोक करे छे—त्यां सुधी के तेना भाटे प्राणोना नाश करवा तैयार थर्ष जय छे. आ एव परने पोतानुं समलने नाना प्रकारनां

त्मानमुद्धर्तुं न शक्नोति । अविज्ञाय च स्वकृतकर्मभारं दुस्तसंसारमहागर्तपतनं च मुहुर्मुहुस्तादृशान्येव कर्माणि कुर्वन्ति संसारिणः । एवमात्मनोऽप्यन्तर्भिन्नं शरीरमेव स्वस्वरूपं मत्वा तत्पृष्टिरक्षणार्थं क्रियमाणया क्रियया जीवस्यानुपचरित-
व्यवहारनयेन कर्तृत्वं सिध्यति । उक्तरीत्या षड्विधव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं विज्ञेयम् ।

जीवस्वरूपं सदृशाऽसदृशविचारः—

ननु—सर्वेषां जीवानां स्वरूपं लक्षणं च सदृशमेव, तर्हि संसारिणो दुःखिनः, सिद्धास्तु सुखिन इति कथम् ? उच्यते—निश्चयनयेन तु सर्वे जीवाः

में असमर्थ बन जाता है, मगर संसारी जीव अपने क्रिये कर्मों के भार को न समझ कर, तथा संसाररूपी महागर्त के पतन को न जानकर फिर-फिर वैसे ही कर्म करने लगते हैं । इस प्रकार आत्मा से भिन्न शरीर को ही अपना स्वरूप समझ कर उसके पोषण और रक्षणके लिए की जानेवाली क्रियासे जीव अनुपचरित व्यवहारनयकी अपेक्षा कर्ता सिद्ध होता है । इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से छह तरह के व्यवहारनय से जीवको कर्ता समझना चाहिए ।

जीवके स्वरूप में सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सब जीवोंका स्वरूप और लक्षण समान ही है तो संसारी जीव दुःखी और सिद्ध सुखी क्यों हैं ।

उत्तर—निश्चय नयसे सभी जीव सिद्धोक्ति समान ही हैं । उन में से जो जीव

संसारी एव चोत्तानां कर्त्तृत्वात् कर्मोना भारने समञ्जते नथी, तथा संसाररूपी महागर्तमां पश्ये छे ते तेने ज्ञायुते नथी. तेथी इरी-इरी तेवां कर्मो कर्त्तृत्वा लागे छे. जे प्रभावे आत्माथी भिन्न शरीरने ज चोत्तानुं स्वरूप समञ्जने तेनां चोषण तथा रक्षण भाटे कर्त्तृत्वां आवती क्रियाथी एव अनुपचरित व्यवहार नयनी अपेक्षाजे कर्त्ता सिद्ध थाय छे. जे प्रभावे पूर्वे कहेला प्रकारथी छ प्रकारना व्यवहारनयथी एवने कर्त्ता समञ्जवे जेछे जे.

एवना स्वरूपमां सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सर्व एवोतुं स्वरूपं जने लक्षण समान छे तो पछी संसारी एव दुःखी जने सिद्ध एव सुखी केम छे ?

उत्तर—निश्चयनयथी सर्व एवो सिद्धोनी समान छे. तेमांथी व तमां

सुखादिरूपं शुद्धस्वरूपं विस्मृत्य पौद्गलिकविभावपरिणामेऽनन्तदुःखजनकेऽनन्तानन्दमनुभवति, मोहवशेन बाह्यवस्तुषु ममत्वभावं कुरुते । यथा—“इदं मम गृहम्, इमे मम पुत्राः, इमा मम दाराः, इमे मम परिवागः, इदं मम सर्वं धनजनादिकम्” । इत्थं विपरुषं विषयं पीयूषं मन्यमानो विषयकृतानो क्षणमात्रसुखजनकान् बहुकालदुःखदान् कामभोगान् भुञ्जानो विषयमृगतृष्णां पुनः पुनर्धविमानो दीर्घाध्वसंसारे क्षणमपि विश्रान्तिं न लभते । ममेति कुर्वन्नयं जीवः पुत्रदारादीनां सुखेन सुखं, दुःखेन दुःखं मन्यमानस्तदर्थं व्यर्थमेव शोकमनुभवति, तदर्थं प्राणनाशमपि कर्तुं समुद्यतो भवति । अनात्मीयमपि स्वीयं मन्यमानो नानाविधपापकार्यकरणेन

दर्शक तथा अव्याप्यसुखरूप शुद्ध स्वरूप को मूल कर पौद्गलिक विभाव परिणाम में जो अनन्त दुःखों का जनक है अनन्त आनन्द मानता है । मोह के वशीभूत हो कर बाह्य वस्तुओं में ममत्व धारण करता है, जैसे—“यह मेरा घर है, ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरी पत्नी है, ये मेरे कुटुम्बी हैं, ये सब धन-जन आदि मेरे हैं” । इस प्रकार के विपरुष विषयों को अमृत मानता हुआ, विषयों में तन्मय हो कर, क्षण भर सुख देने वाले और दीर्घकाल तक दुःख देने वाले काम-भोगों को भोगता हुआ, विषयों की मृगतृष्णा की तरफ वारंवार दौड़ता हुआ, इस दीर्घमार्गवाले संसार में क्षण भर भी विश्राम नहीं पाता है । मेरे मेरे करता हुआ यह जीव, पुत्र और पत्नी वगैरह के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानता हुआ व्यर्थ ही उन के लिये शोक करता है, यहाँ तक की उन के लिए प्राणों का नाश तक करने को उद्यत हो जाता है । यह

तथा अव्याप्यसुखरूप शुद्ध स्वरूपने लूझी जधने पौद्गलिक विभाव परिणामभां के जे अनन्त दुःखोने जनक (उत्पन्न करनार) छे । तेभां अनन्त आनन्द माने छे, मोहने वश थधने बाह्यवस्तुओभां ममत्व धारण करे छे, जेभके—“आ घर भाइ छे; आ भारा पुत्र छे, आ भारी स्त्री छे, आ भाइ कुटुम्ब छे, आ सर्व धन-जन वगेरे भाइ छे” जे प्रमाद्ये विपरुष-विषयोने अमृतत्प मानीने, विषयोभां तन्मय थधने क्षणमात्र सुख आपवावाणा अने लांया काल सुधी दुःख आपवावाणा जोगोने जोगवतो थके, विषयोनी मृगतृष्णा तरङ्ग वारंवार होइतो थके आ लांया मार्गवाणा संसारभां क्षण मात्र पणु विश्राम पावतो नथी । भारा-भारा करतो आ लव, पुत्र अने पत्नी वगेरेना सुखभां सुख अने दुःखभां-दुःख मानतो थके तेना भाटे नशमे शोक करे छे—त्यां सुधी के तेना भाटे प्राणोने नाश करवा तैयार थध जय छे । आ लव परने पोतानुं समलने नाना प्रकारनां

स्मानमुद्धर्तुं न शक्नोति । अविज्ञाय च स्वकृतकर्मभारं दुरन्तसंसारमहागर्तपतनं च मुहुर्मुहुस्तादृशान्पेव कर्माणि कुर्वन्ति संसारिणः । एवमात्मनोऽस्त्यन्तमिन्नं शरीरमेव स्वस्वरूपं मत्वा तत्पुष्टिरक्षणार्थं क्रियमाणया क्रियया जीवस्यानुपचरित-व्यवहारनयेन कर्तृत्वं सिध्यति । उक्तरीत्या पद्मिष्यव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं विद्येयम् ।

जीवस्वरूपे सदृशाऽसदृशविचारः—

ननु—सर्वेषां जीवानां स्वरूपं लक्षणं च सदृशमेव, तर्हि संसारिणो दुःखिनः, सिद्धास्तु सुखिन इति कथम् ? उच्यते—निश्चयनयेन तु सर्वे जीवाः

में असमर्थ बन जाता है, मगर संसारी जीव अपने किये कर्मों के भार को न समझ कर, तथा संसाररूपी महागर्त के पतन को न जानकर फिर-फिर वैसे ही कर्म करने लगते हैं । इस प्रकार आत्मा से भिन्न शरीर को ही अपना स्वरूप समझ कर उसके पोषण और रक्षणके लिए की जानेवाली क्रियासे जीव अनुपचरित व्यवहारनयकी अपेक्षा कर्ता सिद्ध होता है । इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से यह तरह के व्यवहारनय से जीवको कर्ता समझना चाहिए ।

जीवके स्वरूप में सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सब जीवोंका स्वरूप और लक्षण समान ही है तो संसारी जीव दुःखी और सिद्ध सुखी क्यों है ।

उत्तर—निश्चय नयसे सभी जीव सिद्धोंके समान ही हैं । उन में से जो जीव संसारी एव पेटानां कहेलां कर्मोना भारने समञ्जतो नथी, तथा संसाररूपी महागर्तमां पश्यो छे ते तेने ज्ञाणतो नथी. तेथी इरी-इरी तेवां कर्मो करवा लागे छे. जे प्रमाणे आत्माथी भिन्न शरीरने ज पेटानुं स्वरूप समञ्जने तेनां पोषण तथा रक्षण भाटे करवाभां आवती क्रियाथी एव अनुपचरित व्यवहार नयनी अपेक्षाजे कर्ता सिद्ध थाय छे. जे प्रमाणे पूर्वे कहेला प्रकारथी छ प्रकारना व्यवहारनयथी एवने कर्ता समञ्जो जेछजे.

एवना स्वरूपमां सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सर्व एवोतुं स्वरूप अने लक्षण समान छे तो पछी संसारी एव दुःखी अने सिद्ध एव सुखी केम छे ?

उत्तर—निश्चयनयथी सर्व एवो सिद्धोनी समान छे. तेमांथी जे एव तमांम

सिद्धसदृशा एव, तत्र ये सकलं कर्म क्षपयन्ति ते सर्वे जीवाः सिद्धा भवन्ति, तस्मात् सर्वेषामेकैव सत्ता विद्यते । यदि सर्वे सिद्धसदृशास्तिर्हि कथमभव्यजीवैः सिद्धगतिभागिर्न भूयते ? इति श्रूयताम्—

अभव्यजीवानामनाद्यनन्तचिक्रणकर्मसंबन्धात्, परावर्तस्वभावाभावाच्च कर्मक्षपणशक्तिर्नास्ति, भव्यानां तु तादृशचिक्रणकर्माभावात्, परावर्तस्वभावसद्भावाच्च देवगुरुधर्मसामग्रीसत्त्वे ज्ञानादिरत्नत्रयसमारोहणेन, गुणश्रेणिसमारोहणेन च सिद्धपदं लब्धुं शक्यम् ।

समस्त कर्मोंका क्षय कर डालते हैं वे सब सिद्ध कहलाते हैं । उनका असली स्वरूप प्रकट हो जाता है । संसारी जीव कर्म के अधीन होने के कारण दुःखी होते हैं । इस प्रकार यद्यपि प्रत्येक जीव की सत्ता पृथक्-पृथक् है, तथापि उन में स्वरूप की समानता है ।

प्रश्न—यदि समस्त जीव सिद्धों के समान हैं तो अभव्य जीव सिद्धिगति क्यों प्राप्त नहीं करते ?

उत्तर—सुनिये, अभव्य जीवों में अनादि अनन्त चिक्रने कर्मों के सम्बन्ध से और अपरिवर्तनशील स्वभाव के कारण कर्मों का क्षय करने की शक्ति नहीं है । भव्य जीवों के जैसे चिक्रने कर्मों के न होने से, और परावर्त स्वभाव से, देव गुरु और धर्मरूप सामग्रीके मिलने पर ज्ञानादिरत्नत्रय की आराधना करने से, तथा गुणश्रेणी पर आरोहण करने से उनको सिद्धपद प्राप्त करना शक्य है ।

कर्मोंना क्षय करी नांणे छे, ते सवे सिद्ध कडेवाय छे. तेतुं असली स्वरूप प्रगट थक जाय छे. संसारी एव कर्मने आधीन होवाना कारणे दुःखी होय छे. ये प्रमाह्ये ने के प्रत्येक एवनी सत्ता पृथक्-पृथक्-जूही जूही छे, तो पण तेनामां स्वरूपनी समानता छे.

प्रश्न—जे सर्व एव सिद्धोनी समान छे तो अलव्य एव सिद्धगतिने केम प्राप्त करी शकता नथी ?

उत्तर—सांलणो, अलव्य एवोमां अनादि-अनंत चिक्रणा कर्मोंना संबंध होवाथी अने अपरिवर्तनशील स्वभावना कारणे कर्मोंना क्षय करवानी शक्ति नथी; लव्य एवोने तेवां चिक्रणं कर्म न होवाथी अने परावर्त-स्वभावथी देव, गुरु अने धर्मरूप सामग्रीना भणवा पर, ज्ञानादि रत्नत्रयनी आराधना करवाथी, तथा शुष्-श्रेणी पर आरोहण करवाथी तेवोने सिद्धपद प्राप्त करवुं शक्य छे.

મૂલમ્—

સુયં મે આઝસં તેણં મગવયા ઇવમવલાયં, (સુ. ૧)

(છાયા)

શુતં મયા આયુષ્મન્ ! તેન મગવતા ઇવમાહ્યાતમ્ (સુ. ૧)

ટીકા—

‘સુયં મે’ ઇત્યાદિ । આયુષ્મન્ ! હે ચિરંજીવિન્ ! જન્મુઃ ! ‘આયુષ્મન્’ ત્રિતિપદં શિષ્યસ્ય જન્મુસ્વામિનઃ કોમલવચનામન્ત્રણં વિનીતતાહ્યાપનાર્થમ્ । કિન્ચ—તસ્યાશોપશ્રુતજ્ઞાનોપદેશ—શ્રવણ—ગ્રહણ—ધારણ—રત્નત્રયારાધન—મોક્ષસાધન-યોગ્યતાપ્રાપ્ત્યર્થમેતદ્વચનમ્ । વિનાઽઽયુયા શ્રુતશ્રવણાદિમોક્ષપર્યન્તસિદ્ધિર્ન કસ્યચિત્સંભવતીતિ ભાવઃ । ઇતદ્વચનપ્રમાવાદેવ જન્મુસ્વામી મોક્ષપદં તસ્મિન્નેવ જન્મનિ પ્રાપ્ ।

મૂલાર્થ—‘સુયં મે’ ઇત્યાદિ, હે આયુષ્મન્ ! મેને સુના હૈ । ઝન મગવાન્ને ઘેસા કહા હૈ (સુ. ૧)

ટીકાર્થ—હે આયુષ્મન્ ! અર્થાત્ હે ચિરંજીવી જન્મુ !, ‘આયુષ્મન્’ પદ અપને શિષ્ય જન્મુ સ્વામીકા કોમલ વચનરૂપ સન્બોધન હૈ, ઓર વિનીતતા પ્રકટ કરને કે લિપ હૈ । અથવા—ઝનકે સમસ્ત શ્રુતજ્ઞાન, ઉપદેશ કા શ્રવણ, ગ્રહણ ધારણ, રત્નત્રયકા આરાધન, તથા મોક્ષસાધન કી યોગ્યતા કી પ્રાપ્તિ કે લિપ ઇસ પદ કા પ્રયોગ ક્રિયા ગયા હૈ । આયુકે અમાવ મેં શ્રુતશ્રવણ સે લેકર મોક્ષ તક કિસીકી મી સિદ્ધિ નહીં હો સકતી । ઇસી વચન કે પ્રમાવ સે જન્મુ સ્વામીને ઝસો ભવ મેં મોક્ષ પ્રાપ્ત કિયા થા ।

‘સુયં મે’ ઇત્યાદિ .

મૂલાર્થ—હે આયુષ્મન્ ! મેં સાંભળ્યું છે, તે લગવાને આણું કહ્યું છે (સુ-૧)

ટીકાર્થ—હે આયુષ્મન્ અર્થાત્ હે ચિરંજીવી જન્મુ !, ‘આયુષ્મન્’ પદ ચોતાના શિષ્ય જન્મુ સ્વામીનું કોમલ-વચનરૂપ સંબોધન છે, અને વિનીતપણું પ્રગટ કરવા માટે છે. અથવા તેમના સમસ્ત શ્રુતજ્ઞાન, ઉપદેશનું શ્રવણ, ગ્રહણ, ધારણ, રત્નત્રયનું આરાધન તથા મોક્ષસાધનની યોગ્યતાની પ્રાપ્તિ માટે આ પદનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે, આયુના અભાવમાં શ્રુતના શ્રવણથી લઈને મોક્ષ સુધી કોઈ પણ સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી આ વચનના પ્રભાવથી જન્મુ સ્વામીએ એ ભવમાં મોક્ષ પ્રાપ્ત કર્યો હતો.

सिद्धसदृशा एव, तत्र ये सकलं कर्म क्षपयन्ति ते सर्वे जीवाः सिद्धा भवन्ति, तस्मात् सर्वेषामेकैव सत्ता विद्यते । यदि सर्वे सिद्धसदृशास्तर्हि कथमभव्यजीवैः सिद्धगतिभागिभर्न भूयते ? इति श्रूयताम्—

अभव्यजीवानामनाशनन्तचिक्रणकर्मसंयन्धात्, परावर्तस्वभावाभावाच्च कर्मक्षपणशक्तिर्नास्ति, भव्यानां तु तादृशचिक्रणकर्माभावात्, परावर्तस्वभावसद्भावाच्च देवगुरुधर्मसामग्रीसत्त्वे ज्ञानादिरत्नत्रयसमाराधनेन, गुणध्रेणिसमारोहणेन च सिद्धपदं लब्धुं शक्यम् ।

समस्त कर्मोंका क्षय कर डालते हैं वे सब सिद्ध कहलाते हैं । उनका असली स्वरूप प्रकट हो जाता है । संसारी जीव कर्म के अधीन होने के कारण दुःखी होते हैं । इस प्रकार यद्यपि प्रत्येक जीव की सत्ता पृथक्-पृथक् है, तथापि उन में स्वरूप की समानता है ।

प्रश्न—यदि समस्त जीव सिद्धों के समान हैं तो अभव्य जीव सिद्धिगति क्यों प्राप्त नहीं करते ?

उत्तर—मुनिये, अभव्य जीवों में अनादि अनन्त चिकने कर्मों के सम्बन्ध से और अपरिवर्तनशील स्वभाव के कारण कर्मों का क्षय करने की शक्ति नहीं है । भव्य जीवों के वैसे चिकने कर्मों के न होने से, और परावर्त स्वभाव से, देव गुरु और धर्मरूप सामग्रीके मिलने पर ज्ञानादिरत्नत्रय की आराधना करने से, तथा गुणध्रेणी पर आरोहण करने से उनको सिद्धपद प्राप्त करना शक्य है ।

कर्मोंने क्षय करी नांछे छे, ते सर्वे सिद्ध कडेवाय छे. तेनुं असली स्वरूप प्रकट थई जाय छे. संसारी एव कर्मने आधीन होवाना कारणे दुःखी होय छे. जे प्रमाद्ये जे के प्रत्येक एवनी सत्ता पृथक्-पृथक्-जूही जूही छे, ते पण तेनामां स्वरूपनी समानता छे.

प्रश्न—जे सर्व एव सिद्धोनी समान छे तो अलव्य एव सिद्धगतिने कर्म प्राप्त करी शकता नथी ?

उत्तर—सांलणो, अलव्य एवोमां अनादि-अनंत चिकणु कर्मोंने संबंध होवाथी अने अपरिवर्तनशील स्वभावना कारणे कर्मोंने क्षय करवानी शक्ति नथी; लव्य एवोने तेवां चिकणुं कर्म न होवाथी अने परावर्त-स्वभावथी देव, गुरु अने धर्मरूप सामग्रीना भजवा पर, ज्ञानादि रत्नत्रयनी आराधना करवाथी, तथा गुण-ध्रेणी पर आरोहण करवाथी तेवोने सिद्धपद प्राप्त करवुं शक्य छे.

મૂલમ્—

સુયં મે આડસં તેણં ભગવયા એનમવ્રવાયં, (સૂ. ૧)

(છાયા)

શ્રુતં મયા આયુષ્મન્ ! તેન ભગવતા એવમાલ્યાતમ્ (સૂ. ૧)

ટીકા—

‘સુયં મે’ इत्यादि । आयुष्मन् ! हे चिरजीविन् ! जम्बू ! ‘आयुष्म-
न्नितिपदं शिष्यस्य जम्बूस्वामिनः कोमलवचनामन्त्रणं विनीतताख्यापनार्थम् ।
किञ्च—तस्याशेषश्रुतज्ञानोपदेश—श्रवण—ग्रहण—धारण—रत्नत्रयाराधन—मोक्षसाधन-
योग्यताप्राप्त्यर्थमेतद्वचनम् । विनाऽऽयुषा श्रुतश्रवणादिमोक्षपर्यन्तसिद्धिर्न कस्यचित्तं-
भवतीति भावः । एतद्वचनमभावादेव जम्बूस्वामी मोक्षपदं तस्मिन्नेव जन्मनि
प्राप ।

મૂલાર્થ—‘સુયં મે’ इत्यादि, हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है । उन भगवान्ने ऐसा
कहा है (सू० १)

ટીકાર્થ—हे आयुष्मन् ! अर्थात् हे चिरंजीवी जम्बू !, ‘आयुष्मन्’ पद अपने शिष्य
जम्बू स्वामीका कोमल वचनरूप सम्बोधन है, और विनीतता प्रकट करने के लिए है ।
अथवा—उनके समस्त श्रुतज्ञान, उपदेश का श्रवण, ग्रहण धारण, रत्नत्रयका आराधन, तथा
मोक्षसाधन की योग्यता की प्राप्ति के लिए इस पद का प्रयोग किया गया है । आयुके
अभाव में श्रुतश्रवण से लेकर मोक्ष तक किसीकी भी सिद्धि नहीं हो सकती । इसी वचन
के प्रभाव से जम्बू स्वामीने उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया था ।

‘सुयं मे’ इत्यादि .

મૂલાર્થ—हे आयुष्मन् ! मे सांल०युं छे, ते लगवाने आयुं कहुं छे (सू-१)

ટીકાર્થ—हे आयुष्मन् अर्थात् हे चिरंजीवी जम्बू !, ‘आयुष्मन्’ पद
प्रेताना शिष्य जम्बू स्वामीनुं कोमल-वचनरूप सम्बोधन छे, अने विनीतपणुं
प्रकट करवा भाटे छे. अथवा तेभना समस्त श्रुतज्ञान, उपदेशनुं श्रवणु, ग्रहणु,
धारणु, रत्नत्रयनुं आराधन तथा मोक्षसाधननी योग्यतानी प्राप्ति भाटे आ पदने
प्रयोग करवामां आय्ये छे, आयुना अभावमां श्रुतना श्रवणुथी लधने मोक्ष सुधी
कोई पणु सिद्धि थई शकती नथी आ वचनना प्रभावथी जम्बू स्वामीके अ
भवमां मोक्ष प्राप्त कथी हुतो.

श्रुतं=श्रवणविषयीकृतं, मया=साक्षाद् भगवन्मुखत्वात्, न तु परम्परया, यतो गणधराणामनन्तरागमो भवति । 'मया श्रुत'—मित्यनेन गुरुकुले निवसता मयेत्यर्थः सुतरां लभ्यते । गुरुकुलनिवासं विना हि गुरुचरणसरोजस्पर्शपूर्वकाभिवादनं, तन्मुखारविन्दविनिःसृतवचनश्रवणं च नोपपद्यते ।

भगवया - भगः=(१) - ज्ञानं=सर्वार्थविषयकम्, (२) - महात्म्यम्=अनुपममहनीयमहिमसंपन्नत्वम्, (३)-यशः=विविधानुकूलप्रतिकूलपरीषदोपसर्गसहनसमुद्भूता कीर्तिः, यद्वा-जगद्रक्षणमज्ञासमुत्था कीर्तिः, (४)-वैराग्यम्=सर्वथा काम-

मैने भगवान् के मुखसे साक्षात् सुना है—परम्परा से नहीं, क्यों कि गणधरो का आगम अनन्तरागम होता है । 'मैने सुना' इस वाक्य का 'मैने गुरुकुल में निवास करते हुए सुना' यह अर्थ स्वतः सिद्ध है । गुरुकुल में निवास किये विना गुरु के चरण-कमलोंका स्पर्श करके अभिवादन तथा उनके मुखारविन्द से निकलने वाले वचनों का श्रवण नहीं हो सकता ।

'भगवान्' शब्द में जो 'भग' शब्द है उसके अनेक अर्थ होते हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान (२) महात्म्य अर्थात् अनुपम और महान् महिमा, (३) यश अर्थात् नाना प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल परीषदों और उपसर्गों को सहन करने से फैली हुई कीर्ति, अथवा जगत् की रक्षा (उद्धार) करने की भावना से उत्पन्न हुई कीर्ति, (४) वैराग्य अर्थात् कामभोग की

में लगवानना सुप्रथी साक्षात् सांलक्ष्यं छे—परम्पराथी नहि, डेभडे गणधरेनां आगम अनन्तरागम-डोय छे. 'मे सांलक्ष्यं' मे शुद्धलभां निवास करता थका सांलक्ष्यं' आ अर्थ स्वतः सिद्ध छे. शुद्धलभां निवास कथो विना गुरुना अरलुडभलोने स्पर्श करीने अलिवाहन नभस्कार तथा तेना सुभार-विदथी निकलवावाणां वचने श्रवण अर्थ शकतां नथी.

'लगवान्' शब्दमां ने 'भग' शब्द छे, तेना अनेक अर्थ थाय छे ते आ प्रभाछे—

(१) सम्पूर्ण पदार्थोंने लक्षुवावाणुं ज्ञान, (२) महात्म्य अर्थात् अनुपम अने महान् महिमाथी युक्त डोयुं, (३) यश-अर्थात् नाना प्रकारना अनुकूल अने प्रतिकूल परीषदो अने उपसर्गोंने सहन करवाथी इलाती कीर्ति, अथवा जगतनी रक्षा (उद्धार) करवाथी लावनाथी उत्पन्न अथेदी कीर्ति, (४) वैराग्य-

મોગામિલાપરાહિત્યમ્, યદ્વા-ક્રોધાદિકપાયનિગ્રહલક્ષણમ્, (૫)-મુક્તિઃ=સકલ-કર્મક્ષયલક્ષણો મોક્ષઃ, (૬)-રૂપમ્=સકલહૃદયદ્વારિસૌન્દર્યમ્, (૭)-વીર્યમ્=અન્તરાયાન્તજન્યમનન્તસામર્થ્યમ્, (૮)-શ્રીઃ=ધાતિકર્મપટલવિચટનજનિતજ્ઞાનદર્શન સુખવીર્યરૂપાનન્તચતુષ્ટયલક્ષ્મીઃ । (૯) - ધર્મઃ-અપવર્ગદ્વારકપાટોદ્ધાટનસાધન શ્રુતચારિત્રલક્ષણઃ (૧૦)-ૐશ્વર્યમ્=લોકત્રયાધિપત્યમ્, ચાસ્યાસ્તીતિ મગવાન્, તેન મગવતા=જ્ઞાનાદિયુક્તેન, તેન તીર્થક્ષરેણ, વક્ષ્યમાણાર્યસ્ય તીર્થક્ષરમાપિતત્વાત્-ચ્છંદેનાત્ર તીર્થક્ષરપરામર્શઃ । ઉક્તચ્છ—

તનિક મી અમિલાપા ન હોના, અથવા ક્રોધ વ્હાદિ કપાયોકા નિગ્રહ કરના, (૫) મુક્તિ સમસ્ત કર્મોકા ક્ષય રૂપ મોક્ષ, (૬) રૂપ-સવ કા હૃદય હરલેનેવાલા અનુપમ સૌન્દર્ય (૭) વીર્ય-અન્તરાય કર્મકે ક્ષય સે ઉત્પન્ન અનન્તશક્તિ, (૮) શ્રી-ધાતિ કર્મો કે ક્ષય સે ઉત્પન્ન અનન્તજ્ઞાન, દર્શન, સુખ ઓર વીર્યરૂપ અનન્તચતુષ્ટય લક્ષ્મી (૯) ધર્મ-મોક્ષરૂપી દ્વાર કે કિવાડ ઉઘાડને કા સાધન શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મ, (૧૦) ૐશ્વર્ય-ત્રીન લોક કા આધિપત્ય । યે દશ ગુણ જિસ મેં વિચમાન હોં ઉસે 'મગવાન્' કહતે હેં । ઈસે મગવાન્ને કહા હૈ । આમે કહા જાને વાલા તત્વ તીર્થકરમાપિત હૈ, અત ઈવ 'તત્' શબ્દ સે યહોં મગવાન્ તીર્થકર સમજના ચાહિઈ । કહામી હૈ—

અર્થાત્ કામલોગની જરા પશુ અભિલાષા નથવી, અથવી ક્રોધ કપાયોના નિગ્રહ કરવો, (૫) મુક્તિ-સમસ્ત કર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષ (૬) રૂપ-સર્વના હૃદયને હરી લેવાવાળું અનુપમ સૌન્દર્ય, (૭) વીર્ય-અન્તરાય કર્મના ક્ષયથી ઉત્પન્ન અનન્ત શક્તિ (૮) શ્રી-ધાતિ કર્મોના ક્ષયથી ઉત્પન્ન અનન્ત જ્ઞાન, દર્શન, સુખ અને વીર્યરૂપ અનન્તચતુષ્ટયલક્ષ્મી (૯) ધર્મ-મોક્ષરૂપી દ્વારનાં કમાડ ઉઘાડવાનું સાધન શ્રુત-ચારિત્રરૂપ ધર્મ (૧૦) ૐશ્વર્ય-ત્રણ લોકનું આધિપતિપણું આ દસ ગુણ જેમાં હોય તેને ભગવાન કહે છે એવા ભગવાને કહ્યું છે.

આગળ કહેવાશે તે તત્ત્વ તીર્થકરભાષિત છે, એટલા માટે 'તત્' શબ્દથી તીર્થકર ભગવાનનો અર્થ અહિં સમજવો જોઈએ. કહ્યું પશુ છે—

“अर्थं भासद् अरिहा, मुक्तं गंधंति गणधरा णिउगा” इत्यादि ।

अर्थं भापतेऽर्हन् सूत्रं ग्रन्थन्ति गणधरा निपुणाः, इति च्छाया ।

भगवत्तीर्थङ्करोपदिष्टमर्थरूपमागममुपादाय मेधाविनी गणधरा मूलरूपमागमं निवध्नन्तीत्यर्थः ।

एवं=वक्ष्यमणरीत्या आख्यातं=कथितं द्वादशविधपरिपत्सु ।

भगवत्तीर्थङ्करकथितार्थजातमेव वानुसृत्य वक्ष्यमाणं वाक्यमनुवदिष्यामीति वाक्यार्थः । आगमोक्तार्थस्य काल्पनिकत्वाभावाद् द्रव्यार्थिकनयेनार्थरूपोऽयमागमोऽनादिरिति भावः ।

एषा परंपरा=परिपाटी वरीवर्ति सर्वेषां गणधराणां, यद् विनीतैः स्वस्वान्ते-वासिभिर्मोक्षमार्गं सविनयं पृष्ट्वा गणधराः “सुयं मे” इतिवाक्यं मथमं वदन्ति । उक्तञ्च—

“अर्हन्त भगवन्त अर्थका निरूपण करते हैं । और गणधर उसे भली-भाँति सूत्र रूप में गूँथते हैं । अर्थात् भगवान् तीर्थंकर के द्वारा उपदिष्ट अर्थरूप आगम के आधार पर कुशल गणधर मूलरूप आगमकी रचना करते हैं ।”

उन भगवानने बारह प्रकारकी परिपद् में इस प्रकार कहा है जो आगे इस सूत्र में निरूपण किया जायगा । आगमोक्त अर्थ काल्पनिक नहीं होता, अतः द्रव्यार्थिकनय से अर्थरूप यह आगम अनादि है ।

सभी गणधरों की यह परंपरा-परिपाटी है कि-अपने २ विनीत शिष्यों द्वारा विनयपूर्वक मोक्षमार्ग पूछे जाने पर गणधर महाराज पहले-पहल ‘सुयं मे’ यह वाक्य बोलते हैं । कहा भी है—

“अर्हन्त लगवन्त अर्थनुं निरूपणु करे छे, अने गणधर तेने रुडी रीते सूत्र रूपमां गुंथे छे, अर्थात् लगवान तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट-उपदेशेलां अर्थरूप आगमना आधार पर कुशल गणधर मूलरूप आगमनी रचना करे छे.”

ते लगवाने बार प्रकारनी परिपद्-सलाभां आ प्रभाणु कछुं छे ने, आगण आ सूत्रमां निरूपणु करवामां आवशे. आगमोक्त-आगममां कछेवा अर्थ काल्पनिक नथी, तेथी द्रव्यार्थिक नयथी अर्थरूप आ आगम अनादि छे.

सर्व गणधरानी अने परंपरा-परिपाटी छे के:-पोत-पोताना विनीत शिष्ये द्वारा विनयपूर्वक मोक्षमार्ग पूछवाथी गणधर महाराज प्रथम ‘सुयं मे’ आ वाक्य बोले छे. कछुं पणु छे:—

(द्रुतविलम्बितं छन्दः)

“ निपुणशिष्यगणैर्धिनपान्वितैः—

विमलभावपुर्वैः परिसेवितैः ।

गणधरस्त्रिलैः प्रथमं वचः,

खलु ‘सुयं मे’ इति प्रतिमापितम् ” ॥१॥ इति ।

भगवता यदाख्यातं तदाह—‘इहमेगैसि’ इत्यादि ।

मूलम्

इहमेगैसि णो सण्णा भवइ, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाट्ठिणाओ वा दिशाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उन्नराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उट्ठुआओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि । अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ॥ सु. २ ॥

“विनय से युक्त निपुण शिष्यों द्वारा सेवित, तथा निर्मल भावों वाले सब गणधरों द्वारा अपने-२ शिष्यों के प्रति सर्व प्रथम सुयं मे’ यह वाक्य कहा गया है ॥ १ ॥

भगवान्ने जो कहा वह कहते हैं—‘इहमेगैसि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्हीं २ (जीवों) को संज्ञा नहीं होती कि-मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ, या मैं पश्चिम दिशा से आया हूँ, अथवा मैं उत्तर दिशा से आया हूँ । अथवा मैं उर्ध्व दिशा से आया हूँ, या अधोदिशासे मैं आया हूँ, अथवा मैं दूसरी किसी दिशा या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूँ । ॥ २ ॥

“ विनयधी युक्त निपुण शिष्येभ्ये सेवित तथा निर्मल भावोवाणा सर्व अणुधरो द्वारा पोतपोताना शिष्ये प्रति सर्व प्रथम ‘सुयं मे’ ये वाक्य उडेवामां आण्युं छे ” ॥ १ ॥

मूलार्थ—‘इहमेगैसि’ इत्यादि. कोर्-कोर् (एवो)ने संज्ञा नहीं होती के हुं पूर्व दिशाभांथी आण्यो हुं, अथवा हुं दक्षिण दिशाभांथी आण्यो हुं, अथवा हुं पश्चिम दिशाभांथी आण्यो हुं, अथवा हुं उत्तर दिशाभांथी आण्यो हुं, अथवा हुं उर्ध्व दिशाभांथी आण्यो हुं, अथवा हुं अधो दिशाभांथी आण्यो हुं, अथवा हुं अन्य-णीउ कोर् दिशाभांथी अथवा अनुदशा (विदिशा)भांथी आण्यो हुं. ॥२॥

छाया—

इह एकेषां नो संज्ञा भवति, तद्यथा—पूर्वस्या वा दिशाया आगतो-
ऽहमस्मि, दक्षिणस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि, पश्चिमाया वा दिशाया
आगतोऽहमस्मि । उत्तरस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि । ऊर्ध्वाया वा दिशाया
आगतोऽहमस्मि, अधोदिशाया वा आगतोऽहमस्मि, अन्यतरस्या वा दिशाया
अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मि ।

‘इदमेगेसि’ इति इह—चतुर्गतिसंसरणरूपे संसारे एकेषां ज्ञानावरणीयकर्मो-
दयवतां संज्ञिनां जीवानां संज्ञा—स्मृतिरूपो मतिविशेषः नो भवति—न जायते ।

अन्यं प्रतिषेधवाचकं शब्दं विहाय ‘नो’ शब्दोपादानं विशिष्टसंज्ञा-
प्रतिषेधबोधनार्थम् । ‘नो’ शब्दः सर्वनिषेधवाची, देशनिषेधवाची च । उक्तञ्च—

“प्रतिषेधयति समस्तं, प्रसक्तमर्थं जगति नो—शब्दः ।

स पुनस्तदवयवो वा, तस्मादर्थान्तरं वा स्यात् ॥ १ ॥”

‘नो’ शब्दः—प्रसंगादागतमर्थं संपूर्णं प्रतिषेधयति, स चार्थः प्रसक्तावयवो
वा स्यात् तस्मादन्यो वाऽर्थः स्यात् तमपि प्रतिषेधयतीत्यर्थः ।

टीकार्थ—चार गति में भ्रमण करनेरूप संसार में ज्ञानावरण कर्म के उदय
वाले कितनेक संज्ञी जीवों को संज्ञा अर्थात् स्मृति नहीं होती ।

निषेधवाचक दूसरे शब्द को छोड़ कर यहाँ ‘नो’ शब्द का प्रयोग किया
गया है सो विशिष्ट संज्ञा का अभाव सूचित करने के लिए समझना चाहिए । ‘नो’
शब्द सर्वनिषेधवाचक भी है और देशनिषेधवाचक भी है । कहा भी है—

“नो’ शब्द प्रसङ्ग में आये हुए संपूर्ण अर्थ का निषेध करता है । यह अर्थ
चाहे उन का एक अवयव हो या उस से भिन्न अर्थान्तर हो—उस का भी
निषेध करता है” ॥ १ ॥

टीकार्थ—चार गतिमां भ्रमण करवा रूप संसारमां ज्ञानावरण कर्मना उदय-
वाणा डेटलाक संज्ञी लोवने संज्ञा अर्थात् स्मृति नहीं रहेती. निषेधक-वाचक
अन्य शब्दो त्यलने अडि ‘नो’ शब्दने प्रयोग कथी छे, ते विशिष्ट संज्ञाने
अभाव सूचववा भाटे समल्लो जेध अने ‘नो’ शब्द सर्वनिषेधवाचक पणु छे अने
देशनिषेधवाचक पणु छे. इहुं पणु छे—

“ ‘नो’ शब्द प्रसंगमां आवेला संपूर्ण अर्थना निषेध करे छे, ते अर्थ
गमे ते तेनुं अेक अवयव होय अथवा तेनाथी विन्न अर्थान्तर होय तेना पणु
निषेध करी हे छे” ॥ १ ॥

यया संज्ञयाऽऽत्मनो गत्यागत्यादिकं जीवो जानाति तस्या एव प्रतिषेधो विवक्षितः ।

અય સંજ્ઞાભેદાઃ—

સંજ્ઞા ચ જીવાનાં વહુવિધા । તત્ર-દશવિધા ભગવતીસૂત્રે (શ્લોક-૭, ઉદ્દેશ ૮) પ્રોક્તા—

“ કઙ્ગં મંતે ! સન્નાઓ પન્નત્તાઓ ? ગોયમા ! દસ સન્નાઓ પન્નતાઓ, તેજહા-(૧) આહારસન્ના, (૨) મયસન્ના, (૩) મૈથુનસન્ના, (૪) પરિગ્રહસન્ના, (૫) ક્રોધસન્ના, (૬) માણસન્ના, (૭) માયાસન્ના, (૮) લોભસન્ના, (૯) લોભસન્ના, (૧૦) ઓહસન્ના ” ઇતિ ।

जिस संज्ञा के द्वारा आत्मा की गति और आगति जीव जानता है, यहाँ उसीका निषेध समझना चाहिए ।

સંજ્ઞા કે ભેદ—

જીવો કી સંજ્ઞા અનેક પ્રકાર કી હોતી હૈ । ભગવતીસૂત્ર (શ્લોક ૬, ૭, ૮, ૯) મંદશ પ્રકાર કી સંજ્ઞા કહી ગઈ હૈ, વદ્દેહુ પ્રકાર હૈ;—

પ્રશ્ન—ભગવાન્ ! સંજ્ઞાઈ કિતની કહી ગઈ હૈં ।

ઉત્તર—ગૌતમ ! દશ સંજ્ઞાઈ કહી ગઈ હૈં । વે હિસ પ્રકાર હૈં—
(૧) આહાર-સંજ્ઞા, (૨) મય-સંજ્ઞા, (૩) મૈથુન-સંજ્ઞા, (૪) પરિગ્રહ-સંજ્ઞા, (૫) ક્રોધ-સંજ્ઞા
(૬) માન-સંજ્ઞા, (૭) માયા-સંજ્ઞા, (૮) લોભ-સંજ્ઞા, (૯) લોક-સંજ્ઞા ઓર (૧૦) ઓધ-સંજ્ઞા ।

જે સંજ્ઞા દ્વારા આત્માની ગતિ અને આગતિ હુવ જાણુ છે. અહિં અનેક નિષેધ સમજવો જોઈએ.

સંજ્ઞાના ભેદ—

જીવોની સંજ્ઞા અનેક પ્રકારની હોય છે. ભગવતી સૂત્ર (શ્લોક ૬, ૭, ૮) માં હસ પ્રકારની સંજ્ઞાઓ કહેવામાં આવી છે. તે આ પ્રમાણે છે:—

પ્રશ્ન—ભગવાન્ ! સંજ્ઞાઓ કેટલી કહી છે ?

ઉત્તર—ગૌતમ ! દસ સંજ્ઞાઓ કહી છે તે આ પ્રમાણે છે:—

(૧) આહાર-સંજ્ઞા (૨) લય-સંજ્ઞા (૩) મૈથુન-સંજ્ઞા, (૪) પરિગ્રહ-સંજ્ઞા.
(૫) ક્રોધ-સંજ્ઞા (૬) માન-સંજ્ઞા (૭) માયા-સંજ્ઞા (૮) લોભ-સંજ્ઞા (૯) લોક-સંજ્ઞા અને (૧૦) ઓધ-સંજ્ઞા.

अथवा—संज्ञानं संज्ञा—चेतना, सा चाशातवेदनीयमोहनीयकर्मोदयजन्य-
विकारयुक्ता आहारादिसंज्ञादित्वेन व्यपदिश्यते । सा द्विधा-अनुभवनसंज्ञा, ज्ञानसंज्ञा
च । तत्रानुभवनसंज्ञा षोडशविधा । तत्र भगवतीसूत्रोक्तदशविधसंज्ञा उपादायाधिकाः
षट् संज्ञाः समिलिताः षोडश भवन्ति । तत्र (१) सुखसंज्ञा, (२) दुःखसंज्ञा,
(३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्सासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा, (६) धर्मसंज्ञा चेति षट्
अधिका विज्ञेयाः ।

(१) आहारसंज्ञा—

(१) क्षुद्रेदनीयोदयात् कवलाद्याहारार्थं तथाविधपुद्गलोपादानक्रिया
सम्पन्ना ज्ञापतेऽनयेत्याहारसंज्ञा । यद्वा—क्षुद्रेदनीयोदयसमुद्भवः आहाराभि-

अथवा—संज्ञानं—संज्ञा—चेतना, अर्थात् संज्ञा चेतना को कहते हैं । यह जब
अशातावेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से जनित विकारों से युक्त होती है तब वह आहार
आदि संज्ञा कहलाने लगती है । वह दो प्रकार की है—(१) अनुभवनसंज्ञा और (२) ज्ञानसंज्ञा ।
इन में से अनुभवनसंज्ञा सोलह प्रकार की है । भगवतीसूत्रोक्त दश संज्ञाओं में
छह संज्ञाएँ मिला देने से सोलह हो जाती है । छह संज्ञाएँ ये हैं—(१) सुखसंज्ञा,
(२) दुःखसंज्ञा, (३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्सासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा, और (६) धर्मसंज्ञा ।

(१) आहारसंज्ञा

क्षुधावेदनीय के उदय से कवलाहार आदि के लिए योग्य पुद्गलों को ग्रहण
करने की क्रिया जिस द्वारा सम्पन्न प्रकार से जानी जाय वह आहारसंज्ञा कहलानी है ।

अथवा—संज्ञानं अष्टौ संज्ञा, ते चेतना, अर्थात् चेतनाने संज्ञा कहे छे ते न्याये
अशातावेदनीय अने मोहनीय कर्मना उदयथी उत्पन्न विकारेण युक्त होय छे,
त्यादे ते आहार आदि संज्ञा कहेवाय छे. ते छे प्रकारनी छे—(१) अनुभवनसंज्ञा
अने (२) ज्ञानसंज्ञा. तेमां अनुभवनसंज्ञा सोण प्रकारनी छे, भगवतीसूत्रोक्त दस
संज्ञाओंमां छ भेणवी देवाथी सोण थाय छे, छ संज्ञाओं आ छे—(१) सुखसंज्ञा,
(२) दुःखसंज्ञा, (३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्सासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा अने
(६) धर्मसंज्ञा.

(१) आहारसंज्ञा—

क्षुधा (बुभु) वेदनीयना उदयथी कवलाहार आदि भाटे योग्य पुद्गलोंने ग्रहण
करवानी क्रिया जेना वडे सम्पन्न प्रकारथी जाणी शकय, ते आहारसंज्ञा कहेवाय छे.

લાપરુપ આત્મનઃ પરિણામવિશેષઃ । અભિલાષશ્રાવ- 'મદર્થમીદૃશં વસ્તુ પુષ્ટિકરં,
 યદીદં લભ્યતે તદા મમ હિતં મવિવ્યતી'—ત્યેવં વિચારાનુવદ્ધઃ સ્વપુષ્ટિતુષ્ટિકારણી-
 ભૂતપ્રતિનિયતવસ્તુમાપ્ત્યર્થમાત્મનઃ પરિણામઃ । રિક્તોદરત્વાદ્ ભોજનીયવસ્તુ-
 શ્રવણ-દર્શન-સંચિન્તનૈશ્ચાહારસંજ્ઞા જાયતે । આહારાદયઃ સંજ્ઞાઃ એકેન્દ્રિયાદિ-
 પશ્ચેન્દ્રિયપર્યન્તાનાં સર્વજીવાનામાસંસારં ભવન્તિ । જલાઘાહારોપજીવનાશ્
 વનસ્પત્યાદીનામાહારસંજ્ઞા વિજ્ઞાયતે ।

અથવા ક્ષુધાવેદનોય કર્મ કે ઉદય સે ઉત્પન્ન હોને વાલી આહાર કી અભિલાષારુપ આત્મા કી પરિણતિ આહારસંજ્ઞા કહલાતી હૈ । યહાં અભિલાષા શબ્દ સે 'ઇસ પ્રકાર કી વસ્તુ મેરે લિગ્ પુષ્ટિકર હૈ, યહ વસ્તુ મિલે તો મેરા હિત હોગા' એસે વિચાર સે યુક્ત અપની પુષ્ટિ ઓર સન્તોષ કે કારણભૂત પદાર્થ કી પ્રાપ્તિ કે લિગ્ હોને વાલા અંમા કા પરિણામ ગ્રહણ કરના યાહિગ્ । યાલી પેટ હોને પર ભોગ્ય વસ્તુ કે શ્રવણ દર્શન ઓર ચિન્તન સે આહારસંજ્ઞા ઉત્પન્ન હોતી હૈ । આહાર આદિ સંજ્ઞાએ એકેન્દ્રિય સે લેકર પન્ચેન્દ્રિયપર્યન્ત સગી જીવાં કો હોતી હૈં, જલ તક સંસાર કા અન્ત નહીં હોતા તલ તક વની રહતી હૈં । જલ આદિ આહાર પર જીવિત રહને કે કારણ વન- સ્પતિ આદિ એકેન્દ્રિય જીવોં મેં મી આહારસંજ્ઞા કા અસ્તિત્વ પ્રતીત હોતા હૈ ।

અથવા ક્ષુધાવેદનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થવા વાળી આહારની અભિલાષા-
 રૂચિ-ઈચ્છા રૂપ આત્માની પરિણતિ તે આહારસંજ્ઞા કહેવાય છે, અહિં અભિલાષા
 શબ્દથી 'આ પ્રકારની વસ્તુ મારા માટે પુષ્ટિ કરનારી છે, આ વસ્તુ મળે તો
 માફ હિત થશે' એવા વિચારથી યુક્ત પોતાની પુષ્ટિ અને સંતોષના કારણભૂત
 પદાર્થની પ્રાપ્તિ માટે વિચાર કરનાર આત્માનું પરિણામ, અહણ કરવું નોઈએ,
 ખાલી પેટ હોવાના કારણે ભોજન (ભોજન કરવા યોગ્ય) વસ્તુના શ્રવણ, દર્શન
 અને ચિન્તનથી આહારસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે. આહાર આદિ સંજ્ઞાઓ એકેન્દ્રિયથી
 આરંભીને પન્ચેન્દ્રિય સુધીના સર્વ ભવોને હોય છે; અને ન્યાં સુધી સંસારનો
 અંત થતો નથી ત્યાં સુધી તે સંજ્ઞાઓ રહે છે. જલ વગેરેના આહાર પર ભવિત
 રહેવાના કારણે વનસ્પતિ આદિ એકેન્દ્રિય ભવોમાં પણ આહારસંજ્ઞાનું અસ્તિત્વ
 હોય છે.

(२) भयसंज्ञा—

(२) सनिमित्तमनिमित्तं वा भयमोहनीयोदयाद् भयोद्भ्रान्तस्य मोहनीयान्तर्गतनोक्तरूपारूपा नयनवदनविकृतरोमाञ्चाविर्भावादिक्रियालक्षणा स्वात्मनः परिणतिर्भयसंज्ञा । हीनबलत्वेन, भयवार्ताश्रवणभीषणदर्शनादिजनितपुङ्ख्या, इहलोकादिभयजनकार्यपर्यालोचनेन वा भयसंज्ञा जायते । हस्तस्पर्शादिभीत्या स्वावयवसंकोचनादिना लज्जालुबल्ल्यादीनां भयसंज्ञा विज्ञायते ।

(३) मैथुनसंज्ञा—

(३) पुरुषवेदोदयान्मैथुनायं यनितालोकनप्रसन्नवदनसंस्तम्भितगात्र-

(२) भयसंज्ञा—

किसी कारण से या विना ही कारण भयमोहनीय कर्म के उदय से भयभीत पुरुषकी मोहके अन्तर्गत नोक्तरूपारूप, नेत्रों में और मुख में विकार होना, रोमाञ्च होना आदि क्रियाएँ जिसका लक्षण है, ऐसी आत्मा की परिणति भयसंज्ञा कहलाती है, दुर्बलता से, भय उत्पन्न करने वाली बात सुनने से, भयङ्कर वस्तु के देखने से, तथा इहलोक आदि में भयजनक वस्तुका विचार करने से भयसंज्ञा उत्पन्न होती है । लज्जन्ती आदि वनस्पतियाँ हाथ के स्पर्श के भय से अपने अवयवों को सिकोड़ लेती हैं, अतः उनमें भयसंज्ञा की विद्यमानता प्रतीत होती है ।

(३) मैथुनसंज्ञा—

पुरुषवेद-मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन के लिए स्त्री को देखना, प्रसन्नवदन

(२) लय संज्ञा—

कौर्षं क्षारण्यथी अथवा विना क्षारण्ये लय थवो, मोहनीय कर्मना उदयथी लयभीत पुरुषनी मोहने अंतर्गत नोक्तरूपारूप, नेत्रोभां अने अडेरभां विकार थवो, रोमाञ्च थयुं (इंवाडां उलां थवां) वगेरे क्रियायो जेतुं लक्षण्ये छे, ज्येवी आत्मानी परिणति ते लयसंज्ञा कडेवाथ छे. दुर्बलताथी, लय उत्पन्न करानारी वात सांलणवाथी, लयंकर वस्तु देणवाथी, तथा आ लोके वगेरेभां लयजनक वस्तुना विचार करवाथी लयसंज्ञा उत्पन्न याथ छे. लज्जन्ती (लज्जन्त्यु) आदि वनस्पतियो हाथने स्पर्श थवाथी लय लाग्ये छे। लय तेम पेताना अवयवोने सकेथे छे तेथी तेभां लयसंज्ञानी विद्यमानता देणाय छे.

(३) मैथुन संज्ञा—

पुरुषवेद—मोहनीकर्मना उदयथी मैथुन माटे स्त्री तरक जेतुं. इसलुं सुभ

શૈથિલ્યોરુક્મ્પનાદિક્રિયારૂપા આત્મનઃ પરિણતિર્મૈથુનસંજ્ઞા । રુધિરમાંસોપચયેન,
સ્ત્રીકથાશ્રવણાદિજનિતમત્યા, મૈથુનચિન્તનેન ચ મૈથુનસંજ્ઞા જાયતે । કુરુ-
કાદિવનસ્પતીનાં કમનીયકામિનીશુજલતાવગૂઢન-ચરણાઘાત-કટાક્ષવિક્ષેપાદિમ્યઃ
પ્રસૂનપલ્લવાદિપ્રસવદર્શનાન્મૈથુનસંજ્ઞા ચિન્નાયતે ।

(૪) પરિગ્રહસંજ્ઞા—

(૪) લોભમોહનીયોદયાદ્ ધર્મસાધનવ્યતિરિક્ત-સચિત્તાઽચિત્તમિશ્ર-
વસ્તુપાદાનાદિમૂર્છારૂપા આત્મનઃ પરિણતિઃ પરિગ્રહસંજ્ઞા । સચિત્તાદિવસ્તુ-

હોના, શરીર કા સ્તમ્ભિત હો જાના, તથા ઉસ મેં શિથિલતા પેદા હોના ઉરુ (ધુટનોકે
નીચેકા ભાગ) આદિ કા કાપના આદિ ક્રિયારૂપ આત્મા કી પરિણતિ કો મૈથુનસંજ્ઞા
કહતે હેં । રક્ત ઓર માંસ કી અધિકતા સે, સ્ત્રીકથા આદિ કે શ્રવણ સે ઉત્પન્ન
હુઈ બુદ્ધિ સે, ઓર મથુન કા વિચાર કરને સે મૈથુનસંજ્ઞા ઉત્પન્ન હોતી હૈ । કુરુવક્ર
આદિ વનસ્પતિયોં મેં સુન્દરી કામિની કો મુજાઓં કે આલિંગન સે, ચરણાઘાત સે,
તથા કટાક્ષપાત આદિ સે ફૂલ, પત્તા આદિ ઉત્પન્ન હોતે હેં, અતઃ વનસ્પતિ મેં
મૈથુનસંજ્ઞા કા અસ્તિત્વ સિદ્ધ હોતા હૈ ।

(૪) પરિગ્રહસંજ્ઞા—

લોભમોહનીય કે ઉદય સે ધર્મ કે ઉપકરણોં કે અતિરિક્ત દૂસરે સચિત્ત અચિત્ત
ઓર મિશ્ર પદાર્થોં કે પ્રહણ આદિ મૂર્છારૂપ આત્મા કી પરિણતિ પરિગ્રહસંજ્ઞા કહલાતી હૈ ।

થવું, શરીરનું સ્તાંભિત થઈ જવું, તથા તેમાં શિથિલતા ઉત્પન્ન થવી, બાંગ
વગેરેનું કંપવું આદિ ક્રિયારૂપ આત્માની પરિણતિને મૈથુનસંજ્ઞા કહે છે. રક્ત
(લોહી) અને માંસની અધિકતાથી, સ્ત્રીકથા વગેરે સાંભળવાથી ઉત્પન્ન થયેલી
બુદ્ધિથી, અને મૈથુનને વિચાર કરવાથી મૈથુનસંજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે. કુરુવક્ર (એક
બાતવું વૃક્ષ) આદિ વનસ્પતિમાં સુંદરી કામિનીના હાથના આલિંગન થતાં,
ચરણાઘાતથી તથા કટાક્ષપાત આદિથી ફૂલ, પત્તાં આદિ ઉત્પન્ન થાય છે, આ
કારણથી વનસ્પતિમાં મૈથુનસંજ્ઞાનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે.

(૪) પરિગ્રહ સંજ્ઞા—

લોભમોહનીયના ઉદયથી ધર્મના ઉપકરણો સિવાય બીજા સચિત્ત, અચિત્ત
અને મિશ્ર પદાર્થોનું અહણ કરવું વગેરે મૂર્છારૂપ આત્માની પરિણતિ તે હસંજ્ઞા

परिग्रहदर्शनेन, परिग्रहचिन्तनेन, परिग्रहसंग्रहेण च परिग्रहसंज्ञा जायते ।
विल्वादिवनस्पतीनां स्वपत्रैः पुष्पफलाच्छादनदर्शनात् परिग्रहसंज्ञा विज्ञायते ।

(५) क्रोधसंज्ञा-

(५) क्रोधमोहनीयोदयाद् जीवस्य जात्यादिमदजनिता कर्तव्याकर्तव्य-
विवेकापहारिका स्वपराप्रीतिरूपप्रज्वलनात्मिका विभावपरिणतिः क्रोधसंज्ञा ।

(६) मानसंज्ञा-

(६) मानमोहनीयोदयाद् अंकाररूपा आत्मनो विभावपरिणतिर्मानसंज्ञा ।
देवगुरुधर्मादीनां महतामनादरणादिना मानसंज्ञा विज्ञायते ।

सचित्त आदि वस्तुओं का परिग्रह देखने से, परिग्रह का विचार करने से, और परिग्रहका संग्रह करने से परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है । विल्व (वेल) आदि वनस्पतियाँ अपने पत्तों से फूल फल वगैरह को ढँक लेती हैं, इस से उनमें परिग्रहसंज्ञा का होना प्रतीत होता है ।

(५) क्रोधसंज्ञा-

क्रोधमोहनीय के उदय से जीव में जातिमद आदि से उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक नष्ट कर देने वाली स्वपर की अप्रीतिरूप, तथा जलनरूप आत्मा की विभावपरिणति क्रोधसंज्ञा कहलाती है ।

(६) मानसंज्ञा-

मानमोहनीय के उदय से अहङ्काररूप आत्मा की विभावपरिणति मानसंज्ञा कहलाती है । देव गुरु धर्म आदि बड़ोंका अनादर आदि करने से मानसंज्ञा माद्धम होती है ।

कडेवाय छे. सचित्त आदि वस्तुओंको परिग्रह देखावाधी, परिग्रहको विचार करवाधी अने परिग्रहको संग्रह करवाधी परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न थाय छे. बिल्व (पीली) आदि वनस्पतियोंको पौतानां पांढाधी कुल-इल वगेरेने ढांकी दे छे, तेधी वनस्पतिमां परिग्रहसंज्ञा देखाय छे.

(५) क्रोधसंज्ञा-

क्रोधमोहनीय कर्मना उदयधी, अपने जातिमद वगेरेधी उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्यको विवेक नाश करवावाणी स्व-परनी अप्रीतिरूप तथा जलनरूप आत्मानी विभावपरिणति ते क्रोधसंज्ञा कडेवाय छे.

(६) मानसंज्ञा-

मानमोहनीय कर्मना उदयधी अहङ्काररूप आत्मानी विभावपरिणति मानसंज्ञा कडेवाय छे. देव, गुरु, धर्म आदि भौटाओंको अनादर वगेरे करवाधी मानसंज्ञा माद्धम पडे छे.

शैथिल्योरुक्म्पनादिक्रियारूपा आत्मनः परिणतिर्मैथुनसंज्ञा । रुधिरमांसोपचयेन, स्त्रीकथाश्रवणादिजनितमत्या, मैथुनचिन्तनेन च मैथुनसंज्ञा जायते । कुरुवकादिवनस्पतीनां कमनीयकामिनीभुजलतावगूहन-चरणाघात-कटाक्षविज्ञेपादिभ्यः प्रसूनपल्लवादिप्रसवदर्शनान्मैथुनसंज्ञा विज्ञायते ।

(४) परिग्रहसंज्ञा—

(४) लोभमोहनीयोदयाद् धर्मसाधनव्यतिरिक्त-सचित्ताऽचित्तमिश्र-वस्तुपादानादिमूर्छारूपा आत्मनः परिणतिः परिग्रहसंज्ञा । सचित्तादिवस्तु-

होना, शरीर का स्तम्भित हो जाना, तथा उसमें शिथिलता पैदा होना उरु (घुटनेके नीचेका भाग) आदि का कापना आदि क्रियारूप आत्मा की परिणति को मैथुनसंज्ञा कहते हैं। रक्त और मांस की अधिकता से, स्त्रीकथा आदि के श्रवण से उत्पन्न हुई बुद्धि से, और मैथुन का विचार करने से मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है। कुरुवक आदि वनस्पतियों में सुन्दरी कामिनी को भुजाओं के आलिङ्गन से, चरणाघात से, तथा कटाक्षपात आदि से फूल, पत्ता आदि उत्पन्न होते हैं, अतः वनस्पति में मैथुनसंज्ञा का अस्तित्व सिद्ध होता है।

(४) परिग्रहसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से धर्म के उपकरणों के अतिरिक्त दूसरे सचित्त अचित्त और मिश्र पदार्थों के ग्रहण आदि मूर्छारूप आत्मा की परिणति परिग्रहसंज्ञा कहलाती है।

थपुं, शरीरनुं स्तम्भित थधं न्युं, तथा तेषां शिथिलता उत्पन्न थवी, नांग वगेरेनुं कंपनुं आदि क्रियाइप आत्मानि परिष्णुतिने मैथुनसंज्ञा कडे छे. रक्त (लोही) अने मांसनी अधिकताथी, स्त्रीकथा वगेरे सांलगवाथी उत्पन्न थथेली पुद्धिथी, अने मैथुनने विचार करवाथी मैथुनसंज्ञा उत्पन्न थाय छे. कुरणक (अक नातनुं वृक्ष) आदि वनस्पतिमां सुंदरी कामिनीना हाथना आलिङ्गन थतां, अरणाघातथी तथा कटाक्षपात आदिथी कुल, पत्तां आदि उत्पन्न थाय छे, आ हास्यथी वनस्पतिमां मैथुनसंज्ञानुं अस्तित्व सिद्ध थाय छे.

(४) परिग्रह संज्ञा—

लोभमोहनीयना उदयथी धर्मना उपकरणे सिवाय पीला सचित्त, अचित्त अने मिश्र पदार्थानुं अहस्य करनुं वगेरे मूर्छाइप आत्मानि परिष्णुति ते परिग्रहसंज्ञा

रूपा आत्मनो विभावपरिणतिर्लोकसंज्ञा । यथा—“अपुत्रस्य गतिर्नास्ती”-त्यादि ।

(१०) ओघसंज्ञा—

(१०) ज्ञानावरणीयाल्पक्षयोपशमसमुद्भूता, अव्यक्तोपयोगरूपा जीवस्य परिणतिः ओघसंज्ञा । सा लतादीनां प्रतानारोहणादिना ज्ञायते ।

(११) सुखसंज्ञा—

(११) संसारिणां सातवेदनीयोदयात् सकलेन्द्रियाणामनुकूलतया ज्ञायमाना आत्मनः परिणतिः सुखसंज्ञा ।

तर्करूप आत्मा की विभावपरिणति लोकसंज्ञा कहलाती है; यथा—“निपूते को सद्गति नहीं मिलती” आदि ।

(१०) ओघसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्म के अल्प क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली तथा अव्यक्त (अप्रकृत) उपयोगरूप जीव का विभावपरिणमन ओघसंज्ञा कहलाती है । लता वगैरह का मंडप पर चढ़ने आदि से उसका ज्ञान होता है

(११) सुखसंज्ञा—

संसारी जीवोंको सातावेदनीय के उदय से सब इन्द्रियों के अनुकूल प्रतीत होने वाली आत्मा की एक विशिष्ट परिणतिको सुखसंज्ञा कहते हैं ।

तर्करूप आत्मान्नी विभावपरिणति लोकसंज्ञा कहेवाय छे, जेभ—“अपुत्रियाने सद्गति भणती नथी.”

(१०) ओघसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना अल्प क्षयोपशमथी उत्पन्न थनारी अने अप्रकृत उपयोग रूप अत्रनुं विभावपरिणमन ते ओघसंज्ञा कहेवाय छे, वेदो वगेरेनुं मंडप उपर चढुं वगेरेथी तेनुं ज्ञान थाय छे.

(११) सुखसंज्ञा—

संसारी अवेने सातावेदनीयना उदयथी सर्व इन्द्रियोभां अनुकूलतानुं लान क्षयवनारी आत्मान्नी ओक विशिष्ट परिणतिने सुखसंज्ञा कहे छे.

(૭) માયાસંજ્ઞા—

(૭) માયામોહનીયોદંયાત્ કપટલક્ષણા પ્રવૃત્તિર્જીવસ્ય વિભાવપરિણતિર્માયાસંજ્ઞા । પરવશ્ચનેચ્છયા વ્યામોહોત્પાદકમનોવાક્યાવ્યાપારેણ સા વિજ્ઞાયતે ।

(૮) લોભસંજ્ઞા—

(૮) લોભમોહનીયોદયેન સચિત્તાદિવસ્તુગૃહ્ણિરૂપા જીવસ્ય વિભાવપરિણતિર્લોભસંજ્ઞા । આરમ્ભપરિગ્રહાદિપ્રવૃત્ત્યા લોભસંજ્ઞા વિજ્ઞાયતે ।

(૯) લોકસંજ્ઞા—

(૯) જ્ઞાનાવરણીયક્ષયોપશમેન મોહનીયકર્મોદયેન ચ કુતુહ્ણિજનિતતર્ક-

(૭) માયાસંજ્ઞા—

માયામોહનીય કે ઉદય સે જીવ કો કપટરૂપ વિભાવપરિણતિ માયાસંજ્ઞા કહલાતી હૈ । દૂસરે કો ઠગને કી ઇચ્છા સે મોહજનક મન, વચન ઓર કાચ કે વ્યાપાર સે ઉસ કી પ્રતીતિ હોતી હૈ ।

(૮) લોભસંજ્ઞા—

લોભમોહનીય કે ઉદય સે સચિત્ત આદિ વસ્તુઓ મેં આસક્તિરૂપ જીવકી વિભાવપરિણતિ લોભસંજ્ઞા કહલાતી હૈ । આરમ્ભ પરિગ્રહ આદિ કી પ્રવૃત્તિ સે લોભસંજ્ઞા કા પતા ચલાતા હૈ ।

(૯) લોકસંજ્ઞા—

જ્ઞાનાવરણ કર્મ કે ક્ષયોપશમ સે ઓર મોહનીય કર્મ કે ઉદય સે કુતુહ્ણિજનિત

(૭) માયાસંજ્ઞા—

માયામોહનીય કર્મના ઉદયથી જીવની કપટરૂપ વિભાવપરિણતિ માયા-સંજ્ઞા કહેવાય છે. ધીબને ઠગવાની ઇચ્છાથી, મોહજનક-મન, વચન અને કાયાના વ્યાપારથી તેની પ્રતીતિ થાય છે.

(૮) લોભસંજ્ઞા—

લોભમોહનીય કર્મના ઉદયથી સચિત્ત આદિ વસ્તુઓમાં આસક્તિરૂપ જીવની વિભાવપરિણતિ તે લોભસંજ્ઞા કહેવાય છે. આરંભ-પરિગ્રહ આદિની પ્રવૃત્તિથી લોભ સંજ્ઞાનો પતો લાગે છે.

(૯) લોકસંજ્ઞા—

જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી અને મોહનીયકર્મના ઉદયથી કુતુહ્ણિજનિત

विचिकित्सासंज्ञा । यथा दानादिधर्मस्य फलं प्रति संशयः । सा द्विधा-देशतः, सर्वतश्च । 'द्वाविंशतिपरिपहसहनब्रह्मचर्यकेशोल्लुञ्चनादिव्लेशसहनस्य फलं भविष्यति न वे'-तिरूपा देशतः । 'परलोकादि सत्यं न वे'-तिरूपा, सर्वज्ञप्ररूपितजीवादितत्त्वं यथार्थं न वे'-त्यादिरूपा वा सर्वतः ।

(१५) शोकसंज्ञा—

(१५) मोहनीयकर्मोदयादिष्टवियोगजनिता विप्रलाप-वैमनस्यरूपा आत्मनः परिणतिः शोकसंज्ञा । सा चाक्रन्दनादिना ज्ञायते ।

(१६) धर्मसंज्ञा—

(१६) मोहनीयक्षयोपशमेन सर्वविरति-देशविरतिलक्षणा कर्मक्षयजनक-संज्ञा कहलाती है । जैसे-दान धर्म आदि के फल में संदेह होना । यह संज्ञा दो प्रकार की है-देश से और सर्व से । 'बाईस परीपहो के सहने का, ब्रह्मचर्य पालने का, केशलोच आदि क्लेश सहने का फल मिलेगा या नहीं ?' इस प्रकार का संशय होना देशतः विचिकित्सासंज्ञा है । 'वास्तव में परलोक है या नहीं, सर्वज्ञ के द्वारा प्ररूपित जीव आदि तत्त्व यथार्थ हैं या नहीं ?' इस प्रकार का संशय सर्वतः विचिकित्सासंज्ञा है ।

(१५) शोकसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से इष्टवियोग से उत्पन्न होनेवाली विलाप और विमनस्कतारूप आत्मा की परिणति शोकसंज्ञा कहलाती है ।

(१६) धर्मसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से कर्मक्षयजनक सर्वविरति, तथा देशविरति विशिक्तिसा संज्ञा कहेवाय छे. जेभके:-दान धर्म आदिना इलभां संदेह थयो. आ संज्ञा जे प्रकारनी होय छे-(१) देशथी, (२) सर्वथी, 'भावीश परिपहोनुं सहन करवुं ते, ब्रह्मचर्य पालन करवुं ते, केशनुं बोचन करवुं वगेरे क्लेश सहन करवानुं इल भणशे के नहि ?' आ प्रकारने संशय ते देशथकी विशिक्तिसासंज्ञा छे. 'वास्तवभां परलोक छे के नहि, सर्वज्ञद्वारा प्ररूपित जीव आदि तत्त्वो यथार्थ छे के नहि' आ प्रकारने संशय ते सर्वथकी विशिक्तिसासंज्ञा छे.

(१५) शोकसंज्ञा—

मोहनीय कर्मना उदयने लीधे, इष्टवियोगथी उत्पन्न थवा वाली, विलाप अने विमनस्कता (व्याकुल चित्त) इय आत्मानी परिणति शोकसंज्ञा कहेवाय छे.

(१६) धर्मसंज्ञा—

मोहनीयकर्मना क्षयोपशमथी कर्मक्षयजनक सर्वविरति तथा देशविरतिरूप

(१२) दुःखसंज्ञा—

(१२) संसारिणामसातवेदनीयोदयात् सकलेन्द्रियाणां प्रतिकूलतया ज्ञायमाना विविधतापानुभवरूपा जीवस्य परिणतिर्दुःखसंज्ञा ।

(१३) मोहसंज्ञा—

(१३) मोहनीयकर्मोदयाद् मिथ्यादर्शनरूपा ज्ञानादिगुणरोधकसकलपापस्थानहेतुरात्मनो विभावपरिणतिर्मोहसंज्ञा । कुदेवकुंगुरुकुधर्मादौ प्रवृत्त्या मोहसंज्ञा विज्ञायते ।

(१४) विचिकित्सासंज्ञा—

(१४) मोहनीयोदयाद् ज्ञानावरणीयोदयाच्च संशयरूपा जीवस्य परिणति-

(१२) दुःखसंज्ञा—

संसारी जीवों को असातावेदनीय के उदय से सब इन्द्रियों के प्रतिकूल प्रतीत होने वाली, विविध प्रकार के संतापों का अनुभवरूप जीव की परिणति दुःखसंज्ञा कहलाती है ।

(१३) मोहसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यादर्शनरूप, तथा ज्ञानादि गुणों का निषेध करने वाली, समस्त पापस्थानकों का कारणरूप आत्मा की विभावपरिणति मोहसंज्ञा है । कुदेव कुगुरु और कुधर्म आदि में प्रवृत्ति होने से मोहसंज्ञा का ज्ञान होता है ।

(१४) विचिकित्सासंज्ञा—

मोहनीय और ज्ञानावरण कर्म के उदय से संशयरूप आत्मा का परिणमन विचिकित्सा-

(१२) दुःखसंज्ञा—

संसारी एवोंने असातावेदनीयना उदयथी सर्व इन्द्रियेभामां प्रतिकूलतानुं लान कशववा वाणी, विविध प्रकारना संतापेना अनुभवरूप एवनी परिणति ते दुःखसंज्ञा कहेवाय छे.

(१३) मोहसंज्ञा—

मोहनीय कर्मना उदयथी मिथ्यादर्शनरूप, तथा ज्ञानादि गुणेना निषेध करवावाणी, समस्त पापस्थानना कारणरूप आत्मानी विभावपरिणति ते मोहसंज्ञा छे. कुदेव, कुगुरु अने कुधर्म आदिमां प्रवृत्ति होवाना कारणे मोहसंज्ञानुं ज्ञान थाय छे.

(१४) विचिकित्सासंज्ञा—

मोहनीय अने ज्ञानावरणीय कर्मना उदयथी संशयरूप आत्मानुं परिणमन ते

(२) श्रुतज्ञानम्—

श्रुतं=श्रुतिः श्रवणं ज्ञानविशेषः । तच्च कीदृशम् ? उच्यते—शब्दस्य श्रवणेन, माषणादिना वा यज्ज्ञानमुत्पद्यते तदेव श्रुतम् ।

अत्र श्रुतशब्देन ज्ञानं गृह्यते, ज्ञानभेदप्रकरणान्तःपातित्वात् । न तु श्रूयते इति व्युत्पत्त्या शब्दार्थकः श्रुतशब्दः । लब्धिरूपे मतिज्ञाने सति पश्चात्-श्रुतज्ञान-मुत्पद्यते, न तु मतिज्ञानाभावे, अतो मतिज्ञानं कारणं श्रुतज्ञानस्य ।

ननु मतिज्ञानमेव श्रुतज्ञानं संपद्यते, यथा-मृत्तिकैव घटः, तन्तुरेव पटः,

(२) श्रुतज्ञान—

श्रुति या श्रवण (सुनना), यह एक प्रकार का ज्ञान कहलाता है । शब्द के श्रवण से या मापण आदि से वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध के अनुसार जो पदार्थ का ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं ।

यहाँ 'श्रुत' शब्द से ज्ञान का ग्रहण किया जाता है, क्यों कि वह ज्ञान के प्रमेदों के अन्तर्गत है, किन्तु 'श्रूयते' इस व्युत्पत्ति से शब्दार्थक श्रुत-शब्द नहीं है । लब्धिरूप मतिज्ञान के होने पर बादमें श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, मतिज्ञान के अभाव में नहीं होता, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का कारण है ।

शङ्का—मतिज्ञान ही श्रुतज्ञानरूप में परिणत हो जाता है, जैसे मिट्टी घटरूप में पलट जाती है, और तन्तु पट (वस्त्र) रूप में बदल जाते हैं, ऐसी स्थिति में भगवान्ने श्रुतज्ञान का पृथक् ग्रहण किम प्रयोजन से किया है ?

(२) श्रुतज्ञान—

श्रुति अथवा श्रवण-सांलणवारूप अेक प्रकारतुं ज्ञान ते श्रुत-ज्ञान कडेवाय छे. श्रुत-ज्ञान केवुं डेय छे ? शब्दना सांलणवाधी अथवा लापणु आदियी, वाच्य-वाचक लाव सांलध प्रमाळु ने पदार्थतुं ज्ञान थाय छे, तेने श्रुतज्ञान कडे छे.

अडिं श्रुत-शब्दधी ज्ञान अडणु करी शकय छे. केभके ते ज्ञानना प्रलेदोनी अंदर छे, परंतु 'श्रूयते' आ व्युत्पत्तिधी शब्दार्थक श्रुत-शब्द नथी. लब्धिरूप मतिज्ञान थया पधी श्रुतज्ञान उत्पन्न थाय छे, मतिज्ञानना अभावमां थतुं नथी ते कारणधी मतिज्ञान ते श्रुतज्ञानतुं कारणु छे.

शंका—मतिज्ञान व श्रुतज्ञानरूपमां परिणत थधुं लय छे, केभके माटी घट रूपमां करी लय छे. अने तन्तु वस्त्ररूपमां बदलाध लय छे. अेवी स्थितिमां भगवाने श्रुतज्ञानतुं लुडु अडणु शुं प्रयोजनधी कथुं ?

સર્વચિરતિદેશચિરતિરૂપાઽઽત્મનઃ સ્વભાવપરિણતિઃ ધર્મસંજ્ઞા । સા જીવરક્ષણાદિ-
વ્યાપારેણ જ્ઞાયતે ।

જ્ઞાનસંજ્ઞાભેદાઃ—

જ્ઞાનસંજ્ઞા તુ મત્તિશ્રુતાદિભેદાત્ પશ્ચથા—(૧) મત્તિજ્ઞાનં, (૨) શ્રુતજ્ઞાનં,
(૩) અવધિજ્ઞાનં, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનં, કેવલજ્ઞાનં, ચૈતિ ।

(૧) મત્તિજ્ઞાનમ્—

મનનં મતિરવબોધઃ । મત્તિશ્વાસૌ જ્ઞાનં ચ મત્તિજ્ઞાનમ્ । અત્ર જ્ઞાનશબ્દઃ
સામાન્યજ્ઞાનવાચકઃ । ઇન્દ્રિય—નોઇન્દ્રિયજન્યં જ્ઞાનં મત્તિર્જ્ઞાનવિશેષઃ, અતઃ સામાન્ય-
વિશેષયોર્જ્ઞાનયોઃ સામાનાધિકરણ્યમ્ ।

રૂપ આત્મા ફી સ્વભાવપરિણતિ ફો ધર્મસંજ્ઞા કહતે હેં । જીવરક્ષા આદિ વ્યાપારો
સે ડસકા જ્ઞાન હોતા હે ।

જ્ઞાનસંજ્ઞા ફે ભેદ

મતિ, શ્રુત આદિકે ભેદ સે જ્ઞાનસંજ્ઞા પાંચ પ્રકાર ફી હે । વહ ઇસ પ્રકાર—
(૧) મત્તિજ્ઞાન, (૨) શ્રુતજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાન, ઓર (૫) કેવલજ્ઞાન ।

(૧) મત્તિજ્ઞાન

મનન કરના મતિ હે, અર્થાત્ બોધ । મતિરૂપ જ્ઞાન મત્તિજ્ઞાન કહલાતા હે । યહોં જ્ઞાન
શબ્દ સામાન્ય જ્ઞાન ફા વાચક હે । 'ઇન્દ્રિય ઓર મનસે હોનેવાલા જ્ઞાન મતિ હે' । ઇસા અર્થ
કરને સે સામાન્ય ઓર વિશેષ જ્ઞાનોં મેં સમાનાધિકરણતા હો જાતી હે ।

આત્માની સ્વભાવપરિણતિને ધર્મસંજ્ઞા કહે છે. જીવરક્ષા આદિ વ્યાપારથી તેનું
જ્ઞાન થાય છે.

જ્ઞાનસંજ્ઞાના ભેદ—

મતિ, શ્રુત આદિ ભેદ વડે—કરી જ્ઞાનસંજ્ઞા પાંચ પ્રકારની કહી છે તે આ
પ્રમાણે છે—(૧) મત્તિજ્ઞાન, (૨) શ્રુતજ્ઞાન, (૩) અવધિજ્ઞાન, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાન, અને
(૫) કેવલજ્ઞાન.

(૧) મત્તિજ્ઞાન—

મનન કરવું તે મતિ છે. અર્થાત્ બોધ છે, મતિરૂપ જ્ઞાન તે મત્તિજ્ઞાન કહેવાય
છે. અહિં જ્ઞાન શબ્દ સામાન્ય જ્ઞાનનો વાચક છે. 'ઇન્દ્રિય અને મનથી ઉત્પન્ન
જ્ઞાન તે મતિ છે' એવો અર્થ કરવાથી સામાન્ય અને વિશેષ જ્ઞાનોમાં સમાના-
ધિકરણતા (સમાનપણું) થઈ જાય છે.

तस्मिन् पक्षे-श्रुतस्य आप्तवचनस्य ज्ञानं, श्रुतज्ञानमिति पठ्यते तत्पुरुषः । आप्तो=रागादि-
रहितः सर्वज्ञस्तस्य वचनम्-आप्तवचनम् । तदर्थोऽध्यवसायरूपं ज्ञानं श्रुतज्ञानमिति ।
अध्यवसायो निर्णयः । श्रुतज्ञानं प्रति शब्दस्य निमित्तकारणतया शब्देऽपि श्रुतव्यपदेशो
भवति । ज्ञानभेदव्यवस्थायां तु श्रुतशब्दः श्रवणार्थवाचीत्यवधेयम् ।

(३) अवधिज्ञानम्-

अवशब्दोऽधःशब्दार्थः, अव=अधः विस्तृतं वस्तु धीयते-ज्ञायतेऽने-
नेत्यवधिः । अवधिश्चासौ तज्ज्ञानं चेति विग्रहः । विस्तृतविषयकं ज्ञानमवधि-

वचन का भी ग्रहण होता है । उस पक्ष में श्रुत का अर्थात् आप्तवचन का ज्ञान
श्रुतज्ञान है, ऐसा पठ्यतेपुरुष समास होगा । आप्त अर्थात् रागादिसे रहित सर्वज्ञ,
उनका वचन आप्तवचन कहलाता है । अध्यवसाय अर्थात् निश्चय । ऐसा अध्यवसायरूप अर्थात्
पदार्थ का निश्चयात्मक ज्ञान श्रुतज्ञान होता है । शब्द, श्रुतज्ञान में निमित्त कारण है, इस
लिये शब्द भी त कहलाता है, किन्तु ज्ञान-भेदकी व्यवस्था में श्रुत-शब्द श्रवण अर्थ का
वाचक है ।

(३) अवधिज्ञान—

‘अव का अर्थ है ‘अधः’ अर्थात् नीचे । तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान
अयोदिशा की वस्तु को विस्तार से जानता है वह अवधिज्ञान कहलाता है । अवधिरूप
ज्ञान अवधिज्ञान है, अर्थात् विस्तृतविषयक ज्ञान । जैसे-अनुत्तरोपपातिक देव अवधिज्ञान

आप्तवचननुं श्रद्धयु थयं शक्ये छे । ते पक्षमां श्रुतनुं अर्थात् आप्तवचननुं ज्ञान ते
श्रुतज्ञान छे । अये प्रमाणे पठ्यतेपुरुष समास थये । आप्त अर्थात् रागादिथी रहित,
सर्वज्ञ, तेनुं वचन ते आप्तवचन कडेवाय छे अध्यवसाय अर्थात् निश्चय, अयेवा
अध्यवसायइय अर्थात् पदार्थनुं निश्चयात्मक ज्ञान ते श्रुतज्ञान कडेवाय छे । शब्द,
श्रुतज्ञानमां कारण छे, अेटला भाटे शब्द पणु श्रुत कडेवाय छे, परंतु ज्ञान-भेदनी
व्यवस्थामां श्रुत-शब्द सांलगनुं अये अर्थनो वाचक छे ।

(३) अवधिज्ञान—

‘अव’नो अर्थ छे ‘अधः’ अर्थात् नीचे, तात्पर्य अये छे के-ने ज्ञान अधो
दिशानी वस्तुअने विस्तारथी नाले छे, ते अर्वाधिज्ञान कडेवाय छे । अवधिइय ज्ञान
अवधिज्ञान छे, अर्थात् विस्तृतविषयक ज्ञान । नेभके:-अनुत्तरोपपातिक देव अवधि-

તર્હિ શ્રુતજ્ઞાનસ્ય પૃથગુપાદાનં ભગવતા 'કિમથં કૃતમ્ ? ઉચ્યતે—દૃષ્ટાન્તદ્વયમિદં વિપમમ્, યથા ઘટપ્રાદુર્ભાવે પિષ્ટાકારા મૃત્તિકા પ્રણશ્યતિ, પટોત્પત્તૌ સત્યાં તન્તુપુન્નશ્ચ, તથા શ્રુતજ્ઞાને સમુપન્ને મતિજ્ઞાનં ન પ્રણશ્યતિ, ઉક્તઞ્ચ ભગવતા—

‘જત્ય મર્દૈ તત્ય સુયં, જત્ય સુયં તત્ય મર્દૈ’ (નન્દી.)

છાયા—યત્ર મતિસ્તત્ર શ્રુતં, યત્ર શ્રુતં તત્ર મતિઃ ।

શ્રુતસ્ય સદ્ભાવે મતેર્વિદ્યમાનતા ભગવતાઽભિહિતા, તસ્માદપેસાકારણમેષ મતિજ્ઞાનં શ્રુતજ્ઞાનસ્યેતિ મન્તવ્યમ્, તથા ચ—મતિજ્ઞાનપૂર્વકમિન્દ્રિયમનોજન્યમાત્ત-વચનાનુસારિ જ્ઞાનં શ્રુતજ્ઞાનમિતિ નિષ્કર્પઃ । ઇતિ ।

‘શ્રુયતે યત્ તદ્દુત’—મિતિવ્યુત્પત્ત્યા શ્રુતશબ્દેનાત્તવચનમપિ શૃણ્વતે

સમાધાન—યે દોનો દૃષ્ટાન્ત વિપમ હૈં, જૈસે—ઘટ પ્રકટ હોને પર પિષ્ટાકાર મિટ્ટી મિટ જાતી હૈ, ઓર જૈસે પટકી ઉત્પત્તિ હોને પર તન્તુઓં કા પુન્ન નષ્ટ હો જાતા હૈ, ઉસ પ્રકાર શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન હોને પર મતિજ્ઞાન નષ્ટ નહીં હોતા । ભગવાને કહા હૈ—

“જહાં મતિજ્ઞાન હૈ વહાં શ્રુતજ્ઞાન હૈ, જહાં શ્રુતજ્ઞાન હૈ વહાં મતિજ્ઞાન હૈ ।”

શ્રુતજ્ઞાન કે સદ્ભાવ મેં મતિજ્ઞાન કા અસ્તિત્વ ભગવાને વતલાયા હૈ, અત ઇવ મતિજ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન કા અપેક્ષાકારણ હી હૈ, ઇસા માનના ચાહિય । તાત્પર્ય યહ નિકલતા હૈ કિ—મતિજ્ઞાનપૂર્વક ઇન્દ્રિય ઓર મનસે ઉત્પન્ન હોને વાલા, તથા આત્મવાક્યકા અનુસરણ કરને વાલા જ્ઞાન શ્રુતજ્ઞાન હૈ ।

‘જો સુનાજાય વહ શ્રુત હૈ’ ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર ‘શ્રુત’ શબ્દ સે આત

સમાધાન—એ બંને દષ્ટાંત વિષમ છે, જેમકે ઘટ પ્રકટ થતાં પિષ્ટાકાર માટી

મટી બન્ય છે, જેમ વચ્ચની ઉત્પત્તિ થતાં તંતુઓનો બચ્ચો નાશ પામે છે, તે પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતાં મતિજ્ઞાન નાશ પામતું નથી. ભગવાને કહ્યું છે કે:—

“ત્યાં મતિજ્ઞાન છે ત્યાં શ્રુતજ્ઞાન છે, ત્યાં શ્રુતજ્ઞાન છે ત્યાં મતિજ્ઞાન છે”

શ્રુતજ્ઞાનના સદ્ભાવમાં મતિજ્ઞાનનું અસ્તિત્વ ભગવાને બતાવ્યું છે. એ કારણથી મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાનનું અપેક્ષાકારણ જ છે. એમ માનવું જોઈએ, તે તાત્પર્ય એ નીકળ્યું કે મતિજ્ઞાનપૂર્વક, ઇન્દ્રિય અને મનથી ઉત્પન્ન થવાવાળું, તથા આત્મવાક્યનું અનુસરણ કરવાવાળું જ્ઞાન તે શ્રુતજ્ઞાન છે.

‘જે સાંભળવામાં આવી શકે તે શ્રુત છે’ આ વ્યુત્પત્તિ પ્રમાણે ‘શ્રુત’ શબ્દથી

(४) मनःपर्ययज्ञानम्—

पर्ययनं—सर्वतः परिच्छेदनम्—अवबोधनं पर्ययः । मनसः पर्ययो मनः—पर्ययः, मनोविषयकः, स चासौ ज्ञानं च मनःपर्ययज्ञानम् । यद्वा मनःपर्ययस्य ज्ञानं मनःपर्ययज्ञानम् ।

मनो द्विविधं द्रव्यभावभेदात् । तत्र द्रव्यमनो मनोवर्गणाः । संज्ञिता मनोवर्गणा गृहीताः सत्यो मन्वमानाश्चिन्त्यमाना भावमनोऽभिधीयते ।

तत्रेह भावमनः परिगृह्यते । भावमनसः पर्ययाश्च परेषां सार्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरवर्तिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां चिन्त्यमानविषयाध्यवसायरूपाः । यथा—अन्यः

(४) मनःपर्ययज्ञान—

पर्यय अर्थात् जानना, मन को सर्वथा जानना मनःपर्ययज्ञान है, अर्थात् मनोविषयक, सम्पूर्ण ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है । अथवा—मनःपर्यय (मनके पर्ययो) का ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है ।

मन दो प्रकार का है—द्रव्य-मन और भाव-मन । मनोवर्गणाओं को द्रव्यमन कहते हैं । संज्ञो जीव द्वारा ग्रहण की हुई मनोवर्गणाएँ जब चिन्तन की जाती हैं वे भावमन कहलाती हैं ।

मनःपर्यय ज्ञान के प्रकरण में भावमन ही लिया जाता है । अर्दाई द्वीप के अन्तर्गत संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के द्वारा चिन्तन किये जाने वाले, विषयाध्यवसायरूप पर्ययो को मनःपर्यय ज्ञान जानता है । जैसे—कोई दूसरा जीव ऐसा विचार करे—आत्मा कैसा

(४) मनःपर्यय ज्ञान—

पर्यय अर्थात् जाननुं, मनने जाननुं ते मनःपर्यय ज्ञान छे. अर्थात्—मन विषयकनुं संपूर्ण ज्ञान मनःपर्यय कहेवाय छे. अथवा मनःपर्ययनुं ज्ञान ते मनः—पर्ययज्ञान कहेवाय छे.

मन छे प्रकारतां छे—(१) द्रव्यमन अने (२) भावमन. मनोवर्गणाओंने द्रव्यमन कहे छे, अने संज्ञी जीव द्वारा अकण्ड करायेदी मनोवर्गणाओंनुं अन्यारे चिन्तन करवाभां आवे छे तेने भावमन कहे छे.

मनःपर्यय ज्ञानना प्रकरणभां भावमन न लेवाभां आवे छे. अदी द्वीपना संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवो द्वारा चिन्तन करवाभां आवता विषयाध्यवसायरूप पर्ययाने मनःपर्यय ज्ञान जानु छे. जेभ देः—कोई जीवो जीवो अन्यारे विचार करे—आत्मा कैसा

ज्ञानम् । यथा-अनुत्तरोपपातिका देवा अवधिज्ञानत्रलेन भगवन्तमापृच्छथ जीवादि-
तत्त्वस्वरूपं निर्धारयन्ति ।

यद्वा-‘अवधिना ज्ञानम्’ इति तृतीयासमासः । अवधिर्मर्यादा-‘रूपिद्रव्याण्येव
विपयीकरोति नेतराणी’-तिव्यवस्थारूपा, तथा चायमर्थः-अरूपिद्रव्यपरिहारेण
रूपिद्रव्यमात्रविषयकं ज्ञानमवधिज्ञानमिति ।

यद्वा-अधोऽधोऽधिकं पश्यति येन तद्रवधिज्ञानम् । तच्च चतुर्गतिवर्तिना
जीवानामिन्द्रियमनोनिरपेक्षं प्रतिविशिष्टक्षयोपशमनिमित्तकं रूपिद्रव्यसाक्षात्कार-
जनकं भवति । एतस्य ज्ञानस्य देव-मनुष्य-तिर्यङ्-नारका अधिकारिणः ।

के बल से भगवान् से प्रश्न पूछ कर जीवादितत्त्वों का स्वरूप निश्चित कर लेते हैं ।

अथवा-अवधि के साथ जो ज्ञान हो वह अवधिज्ञान कहलाता है । अवधिका
अर्थ है मर्यादा । अवधिज्ञान, रूपी द्रव्यों को ही जानता है, अरूपी को नहीं, वह
व्यवस्था ही यहाँ मर्यादा समझनी चाहिए । तात्पर्य यह हुआ कि-अरूपी द्रव्यों को
छोडकर केवल रूपी द्रव्यों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है ।

अथवा-जिस ज्ञान के द्वारा नीचे नीचे अधिक जाना जाय वह अवधिज्ञान है ।
यह ज्ञान चारों गतियों के जीवों को हो सकता है । यह, सिर्फ रूपी पदार्थों को साक्षात्
जानता है, और विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होता है । देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और
नारकी, सभी इस ज्ञान के अधिकारी हैं, अर्थात् यह चारों को हो सकता है ।

ज्ञानना गणथी भगवानने प्रश्न पूछीने एवादि तत्त्वोना निश्चय करी ले छे. अथवा-
अवधिनी साथे ले ज्ञान थाय छे ते अवधिज्ञान कडेवाय छे. अवधिना अर्थ छे
मर्यादा. अवधिज्ञान, रूपी द्रव्योने न नल्ले छे, अरूपी द्रव्योने नल्लुतुं नथी, आ
व्यवस्था न अडिं मर्यादा समन्वी न्नेधये. तात्पर्य अे थयुं के अरूपी-द्रव्योने
छेडीने देवण रूपी द्रव्योने नल्लुवावालुं ज्ञान ते अवधिज्ञान कडेवाय छे. अथवा
ले ज्ञान द्वारा नीचे-नीचे विशेष नल्लुवावां आवे, ते अवधिज्ञान छे. ते ज्ञान चार
गतिओना एवोने थध शके छे, मात्र रूपी पदार्थोने साक्षात् नल्ले छे, अने विशिष्ट
क्षयोपशमथी उत्पन्न थाय छे, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च अने नारकी, आ सर्व ते ज्ञानना
अधिकारी छे, अर्थात् अे आरेथने अवधिज्ञान थध शके छे.

तथा मनःपर्ययज्ञानी कस्यचिद् भावरूपं मनः सर्वतोभावेन प्रत्यक्षी-
कृत्यानुमानेन बाह्यं विषयमवबुध्यते—' इदं वस्त्वनेन चिन्त्यते ' इति । बाह्यपदार्थ-
चिन्तनसमये हि बाह्यपदार्थाकारसदृशाकारं मनो भवति ।

इदं मनःपर्ययज्ञानं रूपिविषयत्व-क्षयोपशमिकत्व-प्रत्यक्षत्वादिसाम्ये-
ऽप्यवधिज्ञानाद् भिन्नं, स्वाम्यादिभेदात् । तथाहि—अवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेरपि
भवति, तद् द्रव्यतोऽशेषरूपिद्रव्यविषयं, क्षेत्रतो लोकविषयम्, कालतोऽतीतानागता-
संख्यातोत्सर्पिण्यवसर्पिणीविषयम्, भावतः सकलरूपिद्रव्येषु प्रतिद्रव्यमसंख्यात-
पर्यायविषयम् ।

मनःपर्ययज्ञानं तु प्रमादरहितस्याऽऽसर्पाद्यन्यतमलब्धिधारिणः संयतस्य
भवति । द्रव्यतः—संज्ञिपञ्चेन्द्रियमनोद्रव्यविषयं, क्षेत्रतः—समयक्षेत्रमात्रविषयम्

मनःपर्ययज्ञान अवधिज्ञान की तरह रूपी पदार्थों को विषय करता है;
क्षयोपशम से उत्पन्न होता है, किन्तु अवधिज्ञान से भिन्न है, क्यों कि स्वामी आदिके
भेद से दोनों में भेद है, वह इस प्रकार—अवधिज्ञान अविरतसम्यग्दृष्टि को भी
होता है, वह द्रव्यतः समस्त रूपी द्रव्यों को जानता है, क्षेत्र से समस्त लोक को जानता है,
काल से असंख्यात भूत और भावी उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी को विषय करता है,
भाव से समस्त रूपी द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य की असंख्यात पर्यायों को जानता है ।

मनःपर्ययज्ञान अप्रमत्त संयत को तथा आमर्ष आदि किसी लब्धि के धारक
को ही होता है । वह द्रव्य से संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के मनोद्रव्य को, क्षेत्र से समयक्षेत्रमात्र को

मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान प्रभावे रूपी पदार्थों ने विषय करे छे—जखे छे
मनःपर्ययज्ञान क्षयोपशमथी उत्पन्न थाय छे, परंतु अवधिज्ञानथी ते भिन्न छे, केभके
स्वामी आदिना लेदथी ते अनेमां लेद छे. ते आ प्रभावे—अवधिज्ञान अविरत
सम्यग्दृष्टिने पणु थाय छे. ते द्रव्यथकी सर्व रूपी एवोने जखे छे, क्षेत्रथकी समस्त
लोकने जखे छे, कालथकी असंख्यात भूत अने भावी उत्सर्पिणी अवसर्पिणीने जखे
शके छे, भावथी समस्त रूपी द्रव्योमांथी प्रत्येक द्रव्यनी असंख्यात पर्यायोने जखे छे.

मनःपर्ययज्ञान अप्रमत्त संयतने (मुनिने) तथा आमर्ष आदि डोळ लब्धिना
धारकने ज थाय छे. ते द्रव्यथी संज्ञी पञ्चेन्द्रियनां मनोद्रव्यने, क्षेत्रथकी समयक्षेत्र-

કથિદેવં ચિન્તયેત્—‘આત્મા કીદશઃ ? અરૂપી, ચેતનાસ્વભાવઃ, કર્મણાં કર્તા, તત્કલમોક્તા ચેત્યાદયો યે જ્ઞાનવિશેષરૂપાસ્તસ્યાત્મનઃ પરિણામાસ્તેષાં યદ્ જ્ઞાનં તન્મનઃપર્યયજ્ઞાનમ્ ।

મનઃપર્યયજ્ઞાની ચ મનઃપર્યયાનેવ પ્રત્યક્ષીકરોતિ ન તુ વાહ્યં વસ્તુ । ન ચ—‘મનઃપર્યયજ્ઞાનિના વાહ્યં વસ્તુ ન જ્ઞાયતે’ इति वाच्यम्, अनुमानतस्तस्य बाह्यवस्तु-ज्ञानसद्भावात् । यथा—विशिष्टक्षायोपशमिक्रमतिभाशाली प्रेक्षावान् प्रशान्तः कस्यचिदाकारेङ्गितादिकं विलोक्य तदीयमनोगतं भावं सामर्थ्यं चानुमानतो विजानाति ।

है ? अरूपी, चेतनास्वरूप, कर्मों का कर्ता, कर्मफलमोक्ता, इत्यादि आत्मा के जो ज्ञान-विशेषरूप परिणाम हैं; उन्हें जानना मनःपर्ययज्ञान है । मनःपर्ययज्ञानी जीव, मन के पर्यायों को ही प्रत्यक्ष करता है, बाह्य वस्तु को नहीं । परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि—मनःपर्ययज्ञानी बाह्य वस्तुओं को जानता ही नहीं है । मनःपर्ययज्ञानी को अनुमान से बाह्य पदार्थों का ज्ञान होता है । जैसे—विशिष्टक्षयोपशम-जन्य प्रतिभा वाला बुद्धिमान् पुरुष किसी के इशारे या चेष्टा को देखकर उसके मनका भाव और उसका सामर्थ्य अनुमान से जान लेता है, इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी दूसरे के भावरूप मन को पूर्णतया प्रत्यक्ष करके अनुमान से बाह्य वस्तु को जान लेता है कि—‘इसने अमुक वस्तु का विचार किया है’ । बाह्य पदार्थों का विचार करते समय उसी पदार्थ के आकार का मन हो जाता है ।

छे ? अरूपी, चेतना-स्वरूप, कर्मोंનો કર્તા, કર્મફલલોકતા, ઇત્યાદિ આત્માના જ્ઞાન વિશેષરૂપ જે પરિણામ છે, તેને બહુવા તે મનઃપર્યય જ્ઞાન છે.

મનઃપર્યય જ્ઞાની જીવ મનના પર્યાયોને જ પ્રત્યક્ષ કરે છે બહારની વસ્તુઓને નહિ. પરંતુ એમ કહેવું ઠીક નથી કે—મનઃપર્યયજ્ઞાની બહારની વસ્તુઓને બહુતા જ નથી, મનઃપર્યયજ્ઞાનીઓને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓનું જ્ઞાન હોય છે. જેમકે:—વિશિષ્ટક્ષયોપશમજન્ય પ્રતિભાવાળા બુદ્ધિમાન પુરુષ કોઈના ઇશારાથી અથવા ચેષ્ટાને બોધને તેના મનને લાવ અને તેનું સામર્થ્ય અનુમાનથી બહુ લે છે, એ પ્રમાણે મનઃપર્યયજ્ઞાની ધીબના લાવરૂપ મનને પૂર્ણ રૂપમાં પ્રત્યક્ષ કરીને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓને બહુ લે છે કે:—“તેણે અમુક વસ્તુનો વિચાર કર્યો છે” બહારના પદાર્થોનો વિચાર કરવાના સમયે તેજ પદાર્થના આકારરૂપ મન થઈ બન્ય છે.

मतिज्ञानं चानेकविधम्, ईहादिभेदात् । उक्तञ्च भगवता—

“ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा ।

सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिवोहियं” ॥ (नन्दी मति-

ज्ञानगाथा २७)

छाया-ईहा, अपोहः विमर्शः मार्गणा च गवेसणा ।

संज्ञा स्मृतिः मतिः प्रज्ञा सर्वम् आभिनिवोधिकम् ॥

‘आभिनिवोधियं’ इत्यनेन त्रिकालविषयकं मतिज्ञानमुच्यते तथा-चोक्तं भगवता-“पंचविहं णाणं पण्णत्तं । तंजहा-(१) आभिणिवोहियणाणं, (२) सुयणाणं, (३) ओहिणाणं (४) मणपज्जवणाणं (५) केवलणाणं । इति (नन्दी, १)

(१) ईहा—

ईहाऽपोहादयो मतिज्ञानमभेदाः । तत्र-ईहनम्-ईहा । नामजात्यादि-

यहाँ मतिज्ञान का ही प्रसङ्ग है । मतिज्ञान, ईहा आदि के भेद से अनेक प्रकार का है । भगवान् ने कहा है :—

“ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, संज्ञा, स्मृति, मति और प्रज्ञा, यह सब आभिनिवोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) है” (नन्दीसूत्र मतिज्ञान गाथा २७)

आभिनिवोधिक ज्ञान का अर्थ है-त्रिकालविषयक मतिज्ञान । भगवान् ने कहा है:-“ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार-(१) आभिनिवोधिकज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान और (५) केवलज्ञान” (नन्दी-सू० १)

(१) ईहा—

इहा अपोह आदि मतिज्ञान के भेद हैं । नाम और जाति आदि की विशेष

मतिज्ञानना न प्रसंग छे, मतिज्ञान छिडा आदि लेहोथी अनेक प्रकारनु छे. लगवाने कहुं छे के:-ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेसणा, संज्ञा, स्मृति, मति, अने प्रज्ञा, ये सर्व आभिनिवोधिक ज्ञान-मतिज्ञान छे (नन्दीसूत्र मतिज्ञानगाथा २७) आभिनिवोधिक ज्ञानना अर्थ छे-त्रिकालविषयक मतिज्ञान, लगवाने कहुं छे के:- “ज्ञान पांच प्रकारनु छे, ते आ प्रभाषे (१) आभिनिवोधिकज्ञान (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान (४) मनःपर्ययज्ञान अने-केवलज्ञान- (नन्दी सू० १)

(१) ईहा—

ईहा तथा अपोह वगैरे मतिज्ञानना लेह छे. नाम अने जाति आदिनी विशेष

कालतोऽतीतानागतपल्योपमासंख्यातभागविषयम्, भावतो मनोद्रव्यगतानन्तपर्याय-
विषयकम् ।

(५) केवलज्ञानम् —

केवलम्—एकमसहायं ज्ञानावरणीयकर्मात्पन्तक्षयसमुद्भूतम्—अतीताना
गतवर्तमानयथावस्थितसकलद्रव्यगुणपर्यायविषयकमप्रतिपाति ज्ञानं केवलज्ञानम् ।
अत्र ग्रन्थविस्तरभिया विरमामः ।

ज्ञानप्रसङ्गेन मत्यादिभेदपञ्चकं प्रदर्शितं, प्रकृते तु मतिज्ञानस्यैवाधिकारः ।

(अर्द्ध द्वीप को), काल से पल्योपमा के असंख्यातवें भाग—मूल—भविष्यत् कालको और
भाव से मनोद्रव्य की अनन्त पर्यायों को विषय करता है ।

(५) केवलज्ञान—

केवलज्ञान, केवल अर्थात् एक ही है । उस के साथ दूसरा ज्ञान नहीं होता ।
वह असहाय है अर्थात् इन्द्रिय मन आदि किसी की सहायता की उसे अपेक्षा नहीं है ।
वह ज्ञानावरण कर्म के आत्यन्तिक क्षय से उत्पन्न होता है । अतीत, अनागत, वर्तमान काल
के समस्त द्रव्यों गुणों और पर्यायों को यथार्थरूप में जानता है, अप्रतिपाती है, अर्थात्
एकवार उत्पन्न हो कर कभी नष्ट नहीं होता । ऐसा ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है ।
ग्रन्थविस्तार के भय से अधिक विस्तार नहीं करते ।

ज्ञान का प्रकरण होने से मतिज्ञान आदि पांच भेद बतलाये जा चुके हैं ।

भात्रने (अर्द्ध द्वीपने) कालधी पल्योपमना असंख्यातमा भागे मूल—भविष्य कालने
अने भावधी मनोद्रव्यनी अनन्त पर्यायाने लक्ष्ये छे.

(५) केवलज्ञान—

केवलज्ञान, केवल अर्थात् अकेल छे. तेनी साथे भीतुं ज्ञान थतुं नथी, ते
असहाय छे, अर्थात् इन्द्रिय, मन आदि कोछनी पक्षु सहायतानी तेने अपेक्षा नथी.
अने ते केवलज्ञान ज्ञानावरणीय कर्मना आत्यन्तिक क्षयथी उत्पन्न थाय छे. केवलज्ञान
मूलकाल, भविष्यकाल अने वर्तमान कालना समस्त द्रव्यो, शुषो अने पर्यायाने
यथार्थरूपथी लक्ष्ये छे. ते अप्रतिपाती छे, अर्थात् अके वार उत्पन्न थधने इरी
कोछ पक्षु वषत नाश भाभतुं नथी, अथुं ते ज्ञान ते केवलज्ञान कडेवाय छे.
अथविस्तारना लयथी अधिक विस्तार अछिं करता नथी.

ज्ञानतुं प्रकरणे लोवाधी मतिज्ञान आदि पांच लोहो भताव्या अछिं

सामान्यज्ञानोत्तरं कालं विशेषनिश्चयार्थं विचारणायां प्रवृत्तायां तदनु-
गुणदोषविचारणाजनितो निश्चयः, यथा-‘किमयं कमलनालस्पर्शः, आहोस्विद्
भुजङ्गमस्पर्शः ?’ इति विचारणायां ‘मृणालस्यैवायं स्पर्शः, अत्यन्तशीतादिगुणवत्त्वा-
दित्यस्यैवायं’-मिति निश्चयोऽन्यं भुजङ्गमस्पर्शमपनुदति, तस्मादयं निश्चयोऽपोहोऽ-
पनोदश्चेति निगद्यते ।

(३) मीमांसा—

मीमांसा-मातुमिच्छा, मातुं-जीवादिस्वरूपं ज्ञातुमिच्छा ।

(४) मार्गणा—

जीवादिपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्वेषणं मार्गणा ।

सामान्य ज्ञान के पश्चात् विशेष का निश्चय करने के लिए विचारणा प्रवृत्त होने पर पश्चात् गुण-दोष की विचारणा से उत्पन्न निश्चय अपोह कहलाता है । यथा-
‘यह कमलनालका स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ?’ इस प्रकार की विचारणा होने पर “यह कमलनाल का ही स्पर्श है, क्यों कि इस में अत्यन्त शीतलता है” इस प्रकार का निश्चय होना, और यह निश्चय अन्य का अर्थात् सर्प के स्पर्श का निराकरण करदेता है, अत एव यह निश्चय अपोह, अपाय और अपनोद भी कहलाता है ।

(३) विमर्श—

जीव आदि के स्वरूप को जानने की इच्छा विमर्श है ।

(४) मार्गणा—

जीव आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का अन्वेषण करना मार्गणा है ।

सामान्य ज्ञान तथा पक्षी विशेषणो निश्चय करवा भाटे विचारणा यथां पक्षी तेना शुषु-दोषनी विचारणाथी उत्पन्न निश्चय तेने अपोह कडे छे, जेम-‘आ कमलना नाणने स्पर्श छे के सर्पने स्पर्श छे ?’ आ प्रकारनी विचारणा यथा पक्षी नकडी करवामां आवे के “आ स्पर्श कमलना नाणने न छे, केमके तेमां अत्यन्त शीतलता छे” अे प्रकारने निश्चय थाय छे अने अे निश्चय जीनने अर्थात् सर्पना स्पर्शने निराकरण करी हे छे. तेथी करी आ निश्चय. ते अपोह, अपाय अने अपनोद पक्षु कडेवाय छे.

(३) विमर्श—

एव आदिना स्वरूपने ज्ञानुवानी इच्छा ते विमर्श छे.

(४) मार्गणा—

एव आदि पदार्थोना यथार्थ स्वरूपनु अन्वेषण करवुं ते मार्गणा छे.

વિશેષકલ્પનારહિતસામાન્યજ્ઞાનોત્તરં - વિશેષનિશ્ચયાર્થં વિચારણા-ઈહા । યથા-સ્પર્શનેન્દ્રિયેણ સ્પર્શસામાન્યે । જ્ઞાતે સત્તિ, તદનુ-ક્રીદશોડ્યં સ્પર્શઃ ? , કસ્યાયં સ્પર્શઃ ? ; કિમયં કમલનાલસ્પર્શઃ ઉતાહો ઘુંજઙ્ગમસ્પર્શઃ? इति गाढान्वकारे चक्षुष्म-तोऽपि विचारणा भवर्तते ।

(૨) અપોહઃ—

અપોહનમ્—અપોહઃ નિશ્ચયઃ । કોડ્યમપોહઃ ? ઉચ્યતે—મતિજ્ઞાનસ્યાવગ્રહાદિ-ભેદચતુષ્ટયે તૃતીયભેદો યોડપાયઃ સ એવાપોહશબ્દેનોચ્યતે । અવગ્રહાદિભેદ-ચતુષ્ટયં ચ નન્દીમૂલે ભગવતૈવ પ્રદર્શિતમસ્તિ ।

કલ્પના સે રહિત સામાન્યજ્ઞાન કે પશ્ચાત્ હોને વાલી વિચારણા ઈહા કહલાતી હૈ । જૈસે—સ્પર્શનેન્દ્રિય કે દ્વારા સ્પર્શકા સામાન્ય જ્ઞાન હોને કે પશ્ચાત્ ગાઢ અન્વકાર હોને પર ચક્ષુવાલે કો 'મી' યહ વિચારણા હોતી 'હૈ' કિ' યહ સ્પર્શ કેસાં 'હૈ' ? કિસકા યહ 'સ્પર્શ' હૈ ? 'યહ કમલ' કે 'નાલ' કા સ્પર્શ હૈ' યા સર્પ' કા સ્પર્શ હૈ ? 'હિસ' પ્રકાર કી વિચારણા કો ઈહા કહતે હૈ । ૧ ।

(૨) અપોહ—

અપોહ કા અર્થ હૈ—નિશ્ચય । અપોહ કયા હૈ ? કહતે 'હૈ'—મતિજ્ઞાન કે અવગ્રહ આદિ ચાર ભેદો મેં તૈસરા ભેદ જો અપાય' હૈ ઊસી કો યહાં 'અપોહ' શબ્દ દ્વારા કહાં હૈ । અવગ્રહ આદિ ચાર ભેદ નન્દીમૂલે મેં ભગવાનને કહેં હૈ ।

કલ્પનાથી રહિત, સામાન્ય જ્ઞાનની પછી થવા વાળી વિચારણાને ઈહા કહે છે, જેમકે:— 'સ્પર્શનેન્દ્રિયા દ્વારા સ્પર્શનું સામાન્ય જ્ઞાન થવા પછી ગાઢો અન્વકાર થાય ત્યારે નેત્રવાળાને પશુ એ વિચાર થાય છે કે—આ સ્પર્શ કેવો છે ? આ કોણે સ્પર્શ કર્યો છે, શેનો સ્પર્શ છે ? આ કમલના નાળાનો સ્પર્શ છે કે સર્પનો સ્પર્શ છે ? આ પ્રકારની વિચારણા તેને ઈહા કહે છે.

(૨) અપોહ—

અપોહનો અર્થ છે 'નિશ્ચય'; અપોહ એ શું છે ? કહે છે કે—મતિજ્ઞાનના અવગ્રહ આદિ ચાર ભેદો પૈકીનો ત્રીજો ભેદ 'એ અપાય છે, તેને અહિં 'અપોહ' શબ્દથી કહેલું છે. અવગ્રહ આદિ ચાર ભેદ નન્દીમૂલમાં ભગવાને કહેલા છે.

चेलणा देवी हेमन्ते भगवत्समवसरणतः प्रत्यागच्छन्ती मार्गे महारण्ये स्वप्रतिज्ञाऽचिनं जिनकल्पिनं कमपि मुनिं ध्यानावस्थमालोक्य भक्त्या तद्दर्शनवन्दनादिकं विधाय स्वप्रासादमागता रात्रौ मुक्ता । निद्रावस्थायां तस्याः पाणिरावरणवस्त्राद् बहिर्भूतः शीतेन शिथिलीवभूत् । अथाऽसौ जागरिता जडीभूतं स्वहस्तं विलोक्य शीतादिपरिपहपरिगतं महारण्यस्थं मुनिं स्मृतवती “कथमहो असौ मुनिरिदानीं बहिर्महावने शीतपरिभूतो भविष्यति” । इति कर्मणां महानिर्जरां महापर्यवसानं चकार ।

चेलना देवी हेमन्त ऋतु में भगवान् के समवसरणसे लौटती हुई, मार्ग में महा-अरण्य में, अपनी प्रतिज्ञा पालने वाड़े किन्ही जिनकल्पो मुनि को ध्यान में स्थित देखकर, भक्तिपूर्वक उन का दर्शन वन्दन आदि कर के अपने महल में आई और रात्रि में सो गई । निद्रावस्था में उस का हाथ ओढने के वल्ल से बाहर निकल गया और ठंड के कारण ठर गया । रानी की नींद खुल गई । उसने अपने हाथ को जडीभूत देख कर शीत परिपहों से आक्रान्त, महा-अरण्यवासी मुनिका स्मरण किया । कहने लगी-अहो ! महावन में, नगर के बाहर वह मुनि इस समय शीत से कैसा कष्ट पा रहे होंगे ?, ऐसा सोच कर उसने कर्म की महानिर्जरा की ।

चेलना देवी हेमन्त ऋतुमां भगवान्ता समवसरणमांधी पाछी दूरे त्यारे भागमां महावनमां, चोतानी प्रतिज्ञा पालनारा, कौध अेक जिनकल्पी मुनिने ध्यानमां स्थित नोधने, भक्तिपूर्वक तेनां दर्शन, वंदन वगेरे करीने चोताना महलमां आवी अने रात्रीअे सुध गध. निद्रावस्थामां तेने अेक हाथ ओढवाना वस्त्रमांधी अडार रही गयो, अने ठंडी होवाना कारणे ते हाथ ठरी गयो, राणीनी निद्रा उठी गध, त्यारे तेहे चोताना हाथने ठरी न्वाथी नउ नेवे नोधने शीत आदि परिपहोथी आक्रान्त, महा-वनवासी मुनि सांभरी आव्या; अने कडेवा लागी के-अडे ! महावनमां नगर अडार ते मुनि आ-समयमां शीतथी डेहुं कष्ट पावता डशे ?, अेवे विचार करीने कर्मांनी महानिर्जरा करी.

(૫) ગવેપણા—

માર્ગાણાનન્તરમનુપલભ્યસ્ય જીવાદિપદાર્થસ્ય સર્વતઃ પરિભાવનં-નિર્ણયાભિ-મુખવિચારપરાયણતા ગવેપણા ।

(૬) સંજ્ઞા—

ઇન્દ્રિયજન્યજ્ઞાનવિષયીભૂતસ્યાર્થસ્ય પુનર્દર્શનેન “સ ઇવાય?”-મિતિ જાયમાનં જ્ઞાનં સંજ્ઞા । યથા—“સ ઇવાયમાહારકલ્બિધિમાન્ મહાત્મા, યો મયા કાનને દૃષ્ટઃ” ।

(૭) સ્મૃતિઃ—

અનુભૂતાર્થવિષયકં જ્ઞાનં સ્મૃતિઃ । इदं જ્ઞાનમતીતવિષયકં ભવતિ । અત્રોદાહારણં યથા—

(૫) ગવેપણા—

માર્ગાણા કે પશ્ચાત્ ઉપલબ્ધ ન હોને વાલા જીવાદિ પદાર્થો કા પૂરી તરહ વિચાર કરના અર્થાત્ નિર્ણય કે અભિમુખ વિચારપરાયણતા ગવેપણા હૈ ।

(૬) સંજ્ઞા—

ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનકે વિષયભૂત પદાર્થ કા પુનઃ-દર્શન હોને પર ‘યહ વહી હૈ’ । ઇસ પ્રકાર સે ઉત્પન્ન હોને વાલા જ્ઞાન સંજ્ઞા કહલાતા હૈ । જૈસે—“યહ વહી આહારકલ્બિધિ વાલે મહાત્મા હૈ જિન્હે મૈને વનમેં દેલા થા” ।

(૭) સ્મૃતિ—

પહેલે અનુભવ ક્રિયે હુએ પદાર્થ લો વિષય કરનેવાલા જ્ઞાન સ્મૃતિ કહલાતા હૈ । સ્મૃતિજ્ઞાન અતીતવિષયક હી હોતા હૈ । યહાં એક ઉદાહરણ હૈ, જૈસે—

(૫) ગવેપણા—

માર્ગાણાની પછી ઉપલબ્ધ નહિ થવા વાળા જીવાદિ પદાર્થોનો પૂરી રીતે વિચાર કરવો અર્થાત્ નિર્ણયને અભિમુખ-વિચાર પરાયણતાને ગવેપણા કહે છે.

(૬) સંજ્ઞા—

ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનના વિષયભૂત પદાર્થોનું ફરી દર્શન થતાં “આ તેજ છે.” એ પ્રકારે ઉત્પન્ન થવા વાળું જ્ઞાન તે સંજ્ઞા કહેવાય છે. જેમ—“આ તેજ આહારકલ્બિધિવાળા મહાત્મા છે જેને મેં વનમાં જોયા હતા.”

(૭) સ્મૃતિ—

પ્રથમ અનુભવ કરેલા પદાર્થોનો વિષય કરનારું જ્ઞાન સ્મૃતિ કહેવાય છે. સ્મૃતિ-જ્ઞાન અતીત વિષયનું જ, (વીતી ગયેલા પ્રસંગનું જ) હોય છે અહીં એક ઉદાહરણ

सा संज्ञा किंस्वरूपा, या न भवत्येकेषाम् ? इत्याकाङ्क्षायामाह-“ तंजहा ” इति । सा यथा—

“पुरत्थिमाओ वा दिसासो” इत्यारभ्य-“अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि” इत्यन्तेनेदमुक्तं भवति-वर्तमानजन्मनः प्राक् कस्यां दिशि ममावस्थान-मांसीदिति स्वगत्यागत्यत्रधिविशिष्टपूर्वादिपङ्क्तिशानं नास्ति संज्ञिनामपि कियतांचित् । यथा-मदिरामदघूर्णितनयनो मूर्छितः पथि पतितः स्वजनादिना समुत्थाप्य गृहमानीयते । अथ मूर्छापगमेऽप्यसौ न जानाति-काहं पतितः ?, कथमुत्थापितः ?, केन कया रीत्याऽत्र समानीतोऽस्मी ?-ति । तद्वद् विशिष्टसंज्ञाया

वह संज्ञा किस प्रकारकी है जो किन्हीं २ जीवों को नहीं होती ? ।.. इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर कहा गया है-तंजहा-अर्थात् वह इस प्रकार-

‘पुरत्थिमाओवा वा दिसाओ’ से लेकर ‘अहोदिसाओवा आगओ अहमंसि’ तक का आशय यह है कि-इस वर्तमान जन्म से पहले मैं कहाँ रहता था ?, इस प्रकारका अपनी गति-आगति से युक्त वह दिशाओं का ज्ञान कितनेक संज्ञी जीवोंको भी नहीं होता ।- जैसे-मदिरा के मद से चूका हुआ, मूर्छित और रास्ते में पड़ा हुआ पुरुष स्वजन आदि के द्वारा उठाकर घर लाया जाता है, किन्तु मूर्छा हट जाने पर भी उसे ज्ञान नहीं होता कि-मैं कहाँ गिरा था ?, किस प्रकार उठाया गया ?, कौन किस प्रकार मुझे यहाँ लाया ?, इसी प्रकार विशिष्ट संज्ञा के अभाव के कारण जीव

ते संज्ञा केवा प्रकारनी छे, जे केध-केध एवोने नथी होती ?, आ प्रभाषे एसासा-थवाथी, कहुं छे के-‘तंजहा’ अर्थात् ते आ प्रकारे—

“पुरत्थिमाओवा दिसाओ” थी लधने “अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि,” सुधीने आशय जे छे के:-आ वर्तमान जन्मथी पडेलीं हुं कथां रहते होतो, आ प्रकारनुं चोतानी गति-आगतिथी युक्त छे दिशाओनुं ज्ञान केटलाक संज्ञी एवोने पक्ष नथी थतु. जेभ मदिराना केइथी छकेला मूर्छित-ओबान रस्ताभां पडेला उपरने स्वजनद्वारा उठावीने चोताना घेर लाववाभां आवे छे; परंतु मूर्छा उतरि गया पछी पक्ष तेने ज्ञान थतुं नथी के-हुं कथां पडी गयो होतो ? केवी रीते भने उठाव्ये ? केधु केवी रीते भने अडिं लाव्या ?, आ प्रकारनी विशिष्ट संज्ञाना

(८) मतिः—

वर्तमानविषयकं ज्ञानं मतिः । यथा—‘ मुनिः संपमार्थं भिक्षामटति ’ ।

(९) प्रज्ञा—

विशिष्टक्षयोपशमजन्यं प्रभूतपदार्थवर्ति यथावस्थितस्वरूपनिर्णयात्मकं ज्ञानं प्रज्ञा ।

आभिनिवोधिकस्वरूपस्य मतिज्ञानस्य प्रभेदा उक्ताः ।

“इदंकेषां नो संज्ञा भवती”—त्यत्र संज्ञाशब्देन मतिज्ञानान्तर्गतं स्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं भगवता नोशब्दनिर्देशेन प्रतिषेधितम्, न तु सर्वविधसंज्ञारूपं सामान्यं ज्ञानम् ।

(८) मतिः—

वर्तमानविषयक ज्ञान मति कहलाता है । जैसे—‘ मुनि संयम पालने के अर्थ भिक्षाके लिए भ्रमण करता है । ’

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला और प्रभूत पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का निर्णयात्मक ज्ञान प्रज्ञा है ।

आभिनिवोधिकरूप मतिज्ञान के प्रभेद कहे गये ।

‘ कितनेक जीवोंको संज्ञा नहीं होती ’ यहाँ संज्ञा शब्द से मतिज्ञान के अन्तर्गत स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञान का भगवान् ने ‘ नो ’ शब्द का निर्देश करके निषेध किया है, किन्तु सब प्रकार की संज्ञारूप सामान्य ज्ञानका निषेध नहीं किया है ।

(८) मतिः—

वर्तमान विषयक ज्ञान ते मति कहेवाय छे; जेभू—‘ मुनि संयम पालन भाटे भिक्षा लेवा भ्रमण करे छे । ’

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशमार्थी उत्पन्न थनाइ प्रभूत पदार्थोंना यथार्थ स्वरूपनिर्णयात्मक ज्ञान ते प्रज्ञा छे ।

आभिनिवोधिकरूप मतिज्ञानना प्रभेद कहेवाया ।

‘ केटलाक लोवेने संज्ञा नहीं थती ’ अडि संज्ञा शब्दथी मतिज्ञानना अंतर्गत स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञानने भगवाने ‘ नो ’ शब्दने निर्देश करीने निषेध कथी छे परंतु सर्व प्रकारनी संज्ञारूप सामान्य ज्ञानने निषेध कथी नथी ।

पूर्वा, दक्षिणा, पश्चिमा, उत्तरा चेति चतस्रोः दिशः, पृथ्वी आग्नेयी, नैऋती, वायवी चेति चतस्रो विदिशः, आसामष्टानामन्तराला अष्टावन्तरदिशः, मिलित्वा षोडश । अधोर्ध्वम्, अधश्चेति द्वे इति, तयोर्योगोऽष्टादश । द्रव्यदिगेव प्रज्ञापकदिक्शब्देनाप्युच्यते ।

तथा-संमूर्च्छिममनुष्याः, गर्भजकर्मभूमिमनुष्याः, गर्भजाकर्मभूमिमनुष्याः, पट्टपञ्चाशदन्तरद्वीपमनुष्याः, इति चतुर्विधा मनुष्याः, द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदेन चतुर्विधास्तिर्यञ्चः,

पृथिव्यप्तेजोवायुकायभेदाच्चतुर्विधाः स्थावराः । अप्रवीज-मूलवीज-पर्ववीज-स्कन्धवीज-भेदाच्चतुर्विधा वनस्पतयः । इति मिलित्वा षोडश । नरकगति-

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर चार दिशाएँ हैं । ईशान, अग्नेय नैऋत्य, वायव्य, ये चार विदिशाएँ हैं । इन आठों के बीच में आठ अवान्तर दिशाएँ हैं । ये सब मिलकर सोलह होती हैं । इन में ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा शामिल कर देने से अठारह द्रव्य-दिशाएँ होती हैं । द्रव्यदिशाको ही प्रज्ञापकदिशा भी कहते हैं ।

तथा—संमूर्च्छिम मनुष्य, गर्भज-कर्मभूमिज मनुष्य, गर्भज-अकर्मजभूमिज मनुष्य, छयन अन्तरद्वीपों के मनुष्य, ये चार प्रकार के मनुष्य । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय के भेद से चार प्रकार के तिर्यञ्च । पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय के भेद से चार प्रकार के स्थावर, और अप्रवीज, मूलवीज, पर्ववीज, तथा

दक्षिण्य अने उत्तर. आ आर दिशाओ छे. अग्नि, ईशान, नैऋत्य, अने वायव्य, आ आर विदिशाओ छे, आ आठनी वञ्चभां आठ अवान्तर दिशाओ छे. आ सर्व भणीने योग दिशाओ थाय छे. तेभ उर्ध्वदिशा अने अधोदिशा शामिल करवाथी अदार द्रव्य दिशाओ थाय छे, द्रव्यदिशाने प्रज्ञापकदिशा पणु कहे छे. तथा-संमूर्च्छिम मनुष्य, गर्भ ज कर्मभूमि ज मनुष्य, गर्भ ज-अकर्मभूमि ज मनुष्य, छयन अन्तरद्वीपाना मनुष्य, आ आर प्रकारना मनुष्य, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, अतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रियना लेहथी आर प्रकारना तिर्यञ्च, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय अने वायुकायना लेहथी आर प्रकारना. स्थावर, अने अप्रवीज, मूलवीज, पर्ववीज

अभावाज्जीवः पूर्वभवं न जानाति ।

“अण्णयरीओ वा दिसाओ” इति । यावत्यो दिशः सन्ति तत्र कस्याश्चिदेकस्या दिशः समागतोऽस्मीति स्वागमनावधिदिशं सामान्यरूपेणापि न जानन्ति कतिचन संज्ञिनः, सर्वदिग्ज्ञानाभावेनान्यतरदिग्ज्ञानासंभवादिति भावः ।

“अणुदिसाओ वा” इति । ईशानादयः कोणरूपा विदिशोऽनुदिशः । तासां मध्ये कस्याश्चिदेकस्या अनुदिशः समागतोऽस्मीति सामान्यरूपेण, तथैशान्या आग्नेय्या इत्यादि विशेषरूपेण च स्वागत्यवधिभूताया अनुदिशो ज्ञानं न भवतीत्यभिप्रायः ।

अथ दिशः कति सन्ति ? उच्यते—संक्षेपतो द्रव्य-भाव-भेदेन दिशा द्विविधा ।

अपना पूर्व भव नहीं जानता ।

‘अण्णयरीओ वा दिसाओ’ अर्थात् जितनी दिशाएँ हैं, उनमें किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, इस प्रकार अपने आगमन की दिशा को सामान्यरूप से भी कितनेक संज्ञी नहीं जानते हैं । क्यों कि सभी दिशाओं के ज्ञानके अभाव में किसी एक दिशा का ज्ञान होना असम्भव ही है । ‘अणुदिशाओ वा’ ईशान वगैरेह कोणरूप विदिशाओं को अनुदिशा कहते हैं । उनमें से सामान्यरूप से किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, या विशेषरूप से ईशान, आग्नेय आदि विदिशा से मैं आया हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं होता ।

प्रश्न—दिशाएँ कितनी हैं ?

उत्तर—संक्षेप से दिशा के दो भेद हैं—द्रव्य-दिशा, और भाव-दिशा । पूर्व,

अभावधी एव पोताना पूर्वभावने न्णुतो नथी.

‘अण्णयरीओ वा दिसाओ’ अर्थात् जितनी दिशाएँ हैं, तेमांथी कोण पण्णु ओक दिशाथी हुं आण्णो छुं. आ प्रमाणे पोताना आगमननी दिशाने सामान्य रूपथी पण्णु केटलांक संज्ञी न्णुता नथी. केमके सर्व दिशाओना ज्ञानना, अभावधी कोण ओक दिशातुं ज्ञानं थवुं ते असंभव छे. ‘अणुदिसाओ वा’ ईशान वगैरे कोण रूप विदिशाओने अनुदिशा कडे छे. तेमांथी सामान्यरूपे कोण पण्णु ओक दिशाथी हुं आण्णो छुं. अथवा विशेषरूपथी ईशान आग्नेय आदि विदिशाओथी हुं आण्णो छुं. ओतुं ज्ञानं थवुं नथी.

प्रश्न—दिशाओ केटली छे ?

उत्तर—संक्षेपथी दिशाना के दो भेद छे:—द्रव्यदिशा अने भावदिशा. पूर्व, पश्चिम,

द्रव्यदिग्विषयकं ज्ञानं न भवत्येकेषामिति विवक्षया—“इहमेगेसि णो सण्णा भवइ” इत्युक्तं भगवता । भावदिशाविषयकं च ज्ञानं न भवत्येकेषामिति वक्ष्यतेऽनन्तरसूत्र एव—“एवमेगेसि णो णायं भवइ” इत्यादिना । ॥ सू. २ ॥

भावदिशाविषयकं च ज्ञानं भवति संज्ञिनां कियतांचिदित्याह—‘एवमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलम् ।

एवमेगेसि णो णायं भवइ—अत्थि मे आया ओववाइए, नत्थि मे आया ओववाइए, के अहं आसी, के वा इओ चुए इह पेच्चा भविस्सामि ॥ सू. ३ ॥

(छाया)

एवमेकेषां नो ज्ञातं भवति—अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, नास्ति मे आत्मा औपपातिकः, कोऽहमासम्, को वा इतश्च्युन इह प्रेत्य भविष्यामि ? ॥ सू० ३ ॥

कितनेक जीवां को द्रव्यदिशासम्बन्धी ज्ञान नहीं होता, इस अपेक्षा से भगवानने कहा है कि—‘इहमेगेसि णो सण्णा भवइ’ । भावदिशाविषयक ज्ञान कितनेको नहीं होता है, यह बात ‘एवमेगेसि णो णायं भवइ’ इत्यादि अगले सूत्र में कही जायगी ॥ सू० २ ॥

कितनेक संज्ञी जीवांको भावदिशाविषयक ज्ञान नहीं होता यह कहते हैं—‘एवमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्ही जीवोंको यह ज्ञान नहीं होता कि—मेरा आत्मा उत्पत्तिशील है या मेरा आत्मा उत्पत्तिशील नहीं है । मैं पहले कौन था और यहाँ से मरकर परलोक में कौन होऊँगा ? ॥ सू० ३ ॥

केटलाक लोवोने द्रव्यदिशासंघंधी ज्ञान नथी थतुं. ओ अपेक्षाथी लगवाने कछुं छे के:—‘इहमेगेसि णो सण्णा भवइ’ लावदिशा विषयनुं ज्ञान केटलाक लोवोने नथी. ओ बात ‘एवमेगेसि णो णायं भवइ’ धत्यादि आगला सूत्रभां कळीशुं. ॥ सू० २ ॥

केटलाक संज्ञी लोवोने लावदिशाविषयनुं ज्ञान नथी ते कळे छे—‘एवमेगेसि’ धत्यादि.

मूलार्थ—कोठ कोठ लोवोने ओ ज्ञान नथी के भारे आत्मा उत्पत्तिशील छे, भारे आत्मा उत्पत्तिशील नथी, हुं प्रथम कोळु हुतो अने अद्धिंथी मृत्युणाह परलवभां हुं कोळु थधश ? (हुं कयां न्धश ?) (सू. ३)

દેવગતિથેતિ દ્વે । સર્વયોગેઽષ્ટાદશ ભાવદિશઃ સન્તિ ।

અથ દિશાં વિદિશાં ચ પ્રવૃત્તિઃ કુતઃ સ્થાનાદ્ભવતિ ? ઉચ્યતે—

તિર્યગ્લોકસ્ય મધ્યભાગે રત્નપ્રમા ભૂમિઃ, તદુપરિ મધ્યભાગે મેરુ-
પર્વતાભ્યન્તરે દ્વૌ લઘુતરી પ્રતરી સ્તઃ । તદુપરિ ગોસ્તનાકારાશ્વત્વારશ્વત્વારઃ
પ્રદેશાઃ સન્તિ । ઈદ્દશાષ્ટપ્રદેશી ચતુષ્કોણો રુચકનામા ભાગોઽસ્તિ । તત્ત એવ દિશાં
વિદિશાં ચ પ્રવૃત્તિર્ભવતિ । ઉક્તઞ્ચ—

“ તિર્યગ્લોકસ્ય મધ્યે યો, રુચકોઽષ્ટપ્રદેશકઃ ।

દિશામનુદિશાં ચૈવ, પ્રવૃત્તિર્જાયતે તતઃ ” ॥૧॥

સ્કન્ધવીજ કે ભેદ સે ચાર પ્રકાર કી વનસ્પતિ, યે સબ મિલકર સોલહ હોતે હૈ ।
તથા નરકગતિ ઓર દેવગતિ મિલકર અઠારહ પ્રકાર કી ભાવ-દિશાઈ હૈ ।

પ્રશ્ન—દિશાઓ ઓર વિદિશાઓની પ્રવૃત્તિ કિસ સ્થાન સે હોતી હૈ ?

ઉત્તર—તિર્યગ્લોક કે મધ્યભાગ મેં રત્નપ્રમા ભૂમિ હૈ । ઉસકે ઉપર મધ્યભાગ
મેં મેરુ પર્વત કે અન્દર દો છોટે પ્રતર હૈ । ઉનકે ઉપર ગાય કે સ્તન કે આકારવાલે
ચાર ચાર પ્રદેશ હૈ । એસા અષ્ટપ્રદેશી ચૌકોના રુચક નામક ભાગ હૈ । વહાં સે દિશાઓ
ઓર વિદિશાઓ કી પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ । કહા મો હૈ—

“ તિર્યે લોક કે મધ્ય મેં આઠ પ્રદેશવાલા રુચક ભાગ હૈ । ઉસી સે સબ દિશાઓ
ઓર અનુદિશાઓ કી પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ ॥ ૧ ॥ ”

તથા સ્કન્ધબીજના લેહથી ચાર પ્રકારની વનસ્પતિ, આ સર્વ મળીને ઝોળ થાય છે,
તથા નરકગતિ અને દેવગતિ મળીને અઠાર પ્રકારની ભાવ-દિશાઓ છે.

પ્રશ્ન—દિશાઓ અને વિદિશાઓની પ્રવૃત્તિ કયા સ્થાનથી હોય છે ?

ઉત્તર—તિર્યગ્લોકના મધ્ય ભાગમાં રત્નપ્રમા ભૂમિ છે, તેના ઉપર મધ્ય
ભાગમાં મેરુ પર્વતની અન્દર નાના બે પ્રતર છે, તેના ઉપર ગાયના સ્તનના આકાર
વાળા ચાર-ચાર પ્રદેશ છે. એવો આઠપ્રદેશી ચાર ખુણાવાળો રુચક નામનો ભાગ છે,
તેનાથી દિશાઓ અને વિદિશાઓની પ્રવૃત્તિ થાય છે. કહ્યું પણ છે:—

“તિર્યાં લોકના મધ્યમાં આઠ પ્રદેશવાળો રુચક ભાગ છે, ત્યાંથી સર્વ દિશાઓ
અને અનુદિશાઓની પ્રવૃત્તિ થાય છે.” ॥ ૧ ॥

“दोहं उववाए पण्णत्ते तंजहा—देवाणां चैव णेरइयाणं चैव”
इति । (स्थानाङ्ग० २ स्था० ३ उ०)

द्वयोरुपपातः प्रसप्तः, तद्यथा—देवानां चैव नैरयिकाणां चैव । इति च्छाया ।
उपपातादागतः औपपातिकः । देवभवाद् नरकभवाद्वा ममायमात्मा
समागतोऽस्तीत्यर्थः । नास्ति मे आत्मा औपपातिक इति, अत्र—नञ्कार्थस्यौपपातिके-
केऽन्वयः । ममात्मा—अनौपपातिकोऽस्तीत्यर्थः । संमूर्च्छनभवाद् गर्भभवाद् वा
ममात्मा समागतोऽस्तीति भावः । इममर्थं स्पष्टीकर्तुमाह—कोऽहमासम् ? इति ।

अत्र प्रसङ्गवशेन जन्मतत्प्रभेदाश्च निरूप्यन्ते—

“दो प्रकार के जीवों के उपपातजन्म कहा गया है । वह इस प्रकार—देवोंके और
नारकोंके ।” (स्था० २, उ. ३)

उपपात से उत्पन्न होनेवाला औपपातिक कहलाता है । तात्पर्य यह हुआ कि—मेरा
आत्मा देवभव या नरकभव से आया है ? इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता ।

‘णत्थि मे आया उववाइए’ यहां निषेध का औपपातिक के साथ अन्वय है
अर्थात् मेरा आत्मा औपपातिक नहीं है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए । तात्पर्य यह है कि—
मेरा आत्मा गर्भभव से या संमूर्च्छनभव से आया है । इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कहा
गया है—मैं कौन था ?

प्रसङ्ग पाकर यहाँ जन्म और जन्मों के भेदों का निरूपण करते हैं—

‘जे प्रकारना एवोने उपपात जन्म कडेवो छे. ते आ प्रभाणु—(१) देवोने
अने (२) नारकीओने. (स्था. २ उ. ३)

उपपातधी उत्पन्न थवा वाणा ते औपपातिक कडेवाय छे, तात्पर्यं जे थयुं
के :—भारे आत्मा देवत्व अथवा नरकत्वधी आये छे ? आ प्रकारनुं ज्ञान थतुं नथी.

“णत्थि मे आया उववाइए” अर्द्धिं निषेधेनो औपपातिकनी साथे अन्वय छे.
अर्थात्—भारे आत्मा औपपातिक नथी. जेवो अर्थ समजवेो जेधजे. तात्पर्यं जे
छे के—भारे आत्मा गर्भत्वधी अथवा संमूर्च्छनत्वधी आये छे ? आ अर्थनी
स्पष्टता करवाने भाटे कडेल छे, के—“हुं कोणु हुतो ?”

प्रसंग प्राप्त थवाधी अर्द्धिं जन्म अने जन्मना भेदोनुं निरूपणु करे छे—

टीका ।

‘एवमेगेसि’ इति, एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण एकेषां संज्ञिनां क्रिय-
तांचित् ज्ञातं-ज्ञानम् आत्मनि विषये वर्तमानातीतानागतजन्मविषयकं नो भवति-नो
संमुत्पद्यते ।

किंस्वरूपं ज्ञानं नोत्पद्यते तेषाम् ? इति दर्शयति-अस्ति मे आत्मा
औपपातिक इत्यादि । औपपातिक इति । उपपत्तनम्-उपपातः, प्रादुर्भावः=
चतुर्गतिषु जन्मतो जन्मान्तरे संक्रमणम् । उपपाते भवः-औपपातिकः । मे मम
आत्मा-औपपातिको जन्मान्तरसंक्रान्तोऽस्तीति । तथा-नास्ति मे आत्मा औप-
पातिक इति, ममात्मा वर्तमानजन्मनि कर्मक्षयसंभवाद् भाविजन्मान्तर-
सम्बन्धरहितोऽस्तीति । इदं ज्ञानद्वयं वर्तमानजन्मविषयकम् ।

यद्वा - उपपातः - गर्भसंमूर्च्छनलक्षणजन्मद्वयविलक्षणो जन्मविशेषः । स च
देवनारकाणां भवति । उक्तञ्च—

टीकार्थ—भागे कहे अनुसार कितनेक संज्ञी जीवोंको अपने विषय में वर्तमान
अतीत और अनागत जन्म सम्बन्धी ज्ञान नहीं होता । उन्हें किस प्रकार का ज्ञान
नहीं होता ? इस विषय में कहा गया कि—मेरा आत्मा औपपातिक है या नहीं ? अर्थात्
चार गतियों में, एक जन्म से दूसरे जन्म में गमन करता है या वर्तमान जन्म
में कर्मों का क्षय होने से भावी जन्म के सम्बन्ध से रहित है ?, ये दोनों ज्ञान वर्तमान
जन्मसम्बन्धी है ।

अथवा—उपपातका अर्थ है—गर्भजन्म और संमूर्च्छनजन्म से विलक्षण एक तीसरे प्रकार
का जन्म । वह देवों और नारकों का होता है । कहा भी है—

टीकार्थ—आगण कडेवा प्रभाळे डेटळाक संज्ञी लुवोने पोताना विषयमां
वर्तमान, भूतकाल, अने लविष्यकालना जन्म संबंधी ज्ञान होतुं नथी. तेने कया
प्रकारनुं ज्ञान नथी होतुं ते विषयमां कडे छे डे:—भाशे आत्मा औपपातिक छे डे नडि ?
अर्थात् चार गतिओमां अेक जन्मधी भोव जन्ममां गमन करे छे, अथवा वर्तमान
जन्ममां कर्मोना क्षय थवाधी लावी जन्मना संबंधथी रडित छे ? ते णने ज्ञान
वर्तमानजन्मसंबंधी छे.

अथवा उपपातना अर्थ छे—गर्भजन्म अने संमूर्च्छन जन्मधी विलक्षण अेक
त्रीण प्रकारना जन्म छे, ते देवो अने नारकीलुवोने थाय छे. कहुं छे डे:—

आध्यात्मिकपुद्गलनिमित्तकं जन्म, यथा - जीवितश्वशृगालादीनां शरीरेषु जायमानाः कीटादयस्तदीयशरीरान्तर्गतपुद्गलान् स्वशरीरतया परिणमयन्तो जायन्ते । पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पति-द्वित्रिचतुरिन्द्रिय-गर्भजव्यतिरिक्त-पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्-मनुष्याणां सम्मूर्छनजन्म भवति ।

(२) गर्भजन्म-

उत्पत्तिस्थानावस्थितानामागन्तुकशुक्रशोणितपुद्गलानां स्वशरीररूपेण परिणतिकरणं मातृशुक्ताहाररसपरिपुष्टिआपेक्षं च गर्भजन्म । जरायुजानामण्डजानां पोतजानां च गर्भजन्म भवति, जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः जरायुजाः ।

जीवित कुत्ते और शृगाल आदि के शरीरों में उत्पन्न होने वाले कीड़े आदि उनके शरीरके अन्तर्गत पुद्गलों को अपने शरीररूप में परिणत करते हैं, वह आध्यात्मिक पुद्गलनिमित्तक जन्म होता है, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के सिवाय पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों और मनुष्यों का जन्म ।

(२) गर्भजन्म-

उत्पत्तिस्थानावस्थित आगन्तुक रज-वीर्य के पुद्गलों को अपने शरीररूप में परिणत करने, और माता द्वारा भोगे हुए आहार के रस से पोषण की अपेक्षा रखनेवाला गर्भजन्म होता है । जरायुज, अण्डज और पोतज जीवों का जन्म गर्भज होता है, गर्भ को लपेट रखनेवाली चमड़े की थैली जरायु कहलाती है, उसमें उत्पन्न होने वाले

एवता कुत्ता अने शियाण आदिनां शरीरेषां उत्पन्न भवा वाणा कीडा आदि तेनां शरीरनी अंदरनां पुद्गलेने पोतानां शरीररूपमां परिणत करे छे ते आध्यात्मिक पुद्गलनिमित्तक जन्म छे. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने गर्भज सिवाय, पञ्चेन्द्रिय, तिर्यञ्चो अने मनुष्येना जन्म सम्मूर्छन होय छे.

(२) गर्भजन्म-

उत्पत्तिस्थानमां स्थित, आगन्तुक रज-वीर्यनां पुद्गलेने पोतानां शरीर रूपमां परिणत करवुं, अने माताअे करेला आहारना रसथी पोषणुनी अपेक्षा राअवा वाणां ते गर्भजन्म कडेवाय छे. जरायुज, अण्डज अने पोतज एवोनु जन्म गर्भज होय छे. गर्भने लपेटी राअनारी आमडानी थैली जरायु कडेवाय छे. तेमां उत्पन्न भवा वाणा एव जरायुज कडेवाय छे. मनुष्य, गाय, बैस, भकरी.

પૂર્વભવસમ્બન્ધિ - સ્થૂલશરીરપરિત્યાગાનન્તરમન્તરાલ્ગત્યા તૈજસ-
કાર્મણશરીરમાત્રેણ સહાગતસ્ય જીવસ્ય નવીનભવયોગ્યસ્થૂલશરીરાર્થ પ્રથમ
યોગ્યપુદ્ગલાનાં ગ્રહણં જન્મ । તચ ત્રિવિધં-સંમૂર્છન-ગર્ભો-પપાતભેદાત્ ।

(૧) સંમૂર્છનજન્મ-

માતાપિત્રોઃ સમ્બન્ધં વિનૈવોત્પત્તિસ્થાનાવસ્થિતાનામાદારિકપુદ્ગલાનાં
વાહ્યાનામાધ્યાત્મિકાનાં વા સ્વશરીરરૂપેણ જીવકર્તૃકં પરિણતિકરણં સંમૂર્છનમ્ ।
વાહ્યપુદ્ગલનિમિત્તકં જન્મ, યથા-કાષ્ટત્વકૃપકફલાદિપૂત્પદ્યમાનાઃ ક્રીટાદયો
જન્તવઃ કાષ્ટફલવર્તિનો વાહ્યપુદ્ગલાન્ સ્વશરીરરૂપેણ પરિણમયન્ત ઉત્પદ્યન્તે ।

પૂર્વભવસમ્બન્ધી સ્થૂલ શરીર કા ત્યાગ કરને કે અનન્તર વિપ્રહગતિસે તૈજસ
ઔર કાર્મણ શરીર કે સાથ આયા હુઆ જીવ નવીન ભવ કે યોગ્ય સ્થૂલ શરીર કે લિપ્
સર્વ પ્રથમ યોગ્ય પુદ્ગલોં કો ગ્રહણ કરતા હૈ, ત્હી જન્મ કહલાતા હૈ ।

જન્મ ત્રીન પ્રકારકા હૈ-સંમૂર્છન, ગર્ભ, ઔર ઉપપાત ।

(૧) સંમૂર્છનજન્મ-

માતા-પિતા કે સમ્બન્ધ વિના હી, ઉત્પત્તિસ્થાન મેં રહે હુપ વાહ્ય યા આધ્યાત્મિક
ઔદારિક પુદ્ગલોંકા અપને શરીરરૂપ સે જીવ દ્વારા પરિણત કર લેના સંમૂર્છન જન્મ કહલાતા
હૈ । કાઠ, ત્વચા ઔર પકે ફલ આદિ મેં ઉત્પન્ન હોને વાલે કાંઢે વગરહ જન્તુ કાઠ યા
ફલ આદિ કે વાહ્ય પુદ્ગલોં કો અપને શરીર કે રૂપ મેં પરિણત કર લેતે હૈ । યહ વાહ્ય
પુદ્ગલનિમિત્તક જન્મ હૈ,

પૂર્વભવસંબંધી સ્થૂલ શરીરને ત્યાગ કરીને પછી વિપ્રહગતિથી તૈજસ અને કાર્મણ
શરીરની સાથે આવેલો જીવ નવા ભવને યોગ્ય સ્થૂલ શરીર માટે સર્વપ્રથમ યોગ્ય
પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, તે જન્મ કહેવાય છે. જન્મ ત્રણ પ્રકારના છે-
(૧) સંમૂર્છન (૨) ગર્ભ, અને (૩) ઉપપાત.

(૧) સંમૂર્છનજન્મ-

માતા-પિતાના સંબંધ વિના જ, ઉત્પત્તિસ્થાનમાં રહેલા બહારના અથવા
આધ્યાત્મિક ઔદારિક પુદ્ગલોને, પોતાના શરીરરૂપથી જીવદ્વારા પરિણત કરી લેવું
તે સંમૂર્છન જન્મ કહેવાય છે. કાષ્ટ ત્વચા (છાલ) અને ક્ષણ આદિમાં ઉત્પન્ન થવા
વાળા કીડા વગેરે જન્તુ કાષ્ટ અથવા ક્ષણ આદિમાં બહારના પુદ્ગલોને પોતાના
શરીરના રૂપમાં પરિણત કરી લે છે. તે બહારનાં પુદ્ગલ નિમિત્તક જન્મ

उपपातजन्म—

उपपातक्षेत्रप्राप्तिमात्रनिमित्तस्थानस्थितवैक्रियपुद्गलानां प्रथमं स्वशरीररूपेण परिणतिकरणम् उपपातजन्म । यथा - देवानां नारकाणां च । तत्र देवसमुद्भावो यथा-प्रच्छदपटस्योपरिष्ठाद् देवदूष्यस्याधस्ताद् उभयोरन्तरालवर्तमानपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् देव उत्पद्यते । नारकोत्पत्तिर्यथा-नरकस्थितात्संकुटमुख-कुम्भीषु स्थितान् वैक्रियशरीरपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् नारक उत्पद्यते ।

तथा—“ अहं कः-चतुर्गतिषु प्राग्जन्मनि नारको वा तिर्यग् वा नरो

उपपातजन्म—

उपपातक्षेत्र में प्राप्तिमात्र निमित्त जिस में है ऐसे उत्पत्तिस्थान में स्थित वैक्रिय पुद्गलों का पहले-पहल अपने शरीररूप में परिणत करना उपपात-जन्म कहलाता है, देव और नारकों को यह जन्म होता है । देव की उत्पत्ति इस प्रकार होती है-प्रच्छद पटके ऊपर और देवदूष्य वक्रके नीचे अर्थात् दोनों के बीचमें वर्तमान पुद्गलों को वैक्रियशरीररूप ग्रहण करता हुआ देव उत्पन्न होता है । नारकों की उत्पत्ति इस प्रकार होती है-नरकवर्ती अत्यन्त संकुट (सकड़े) मुखवाली कुम्भियों में स्थित वैक्रिय शरीरके पुद्गलों को वैक्रियशरीर के रूप में ग्रहण करता हुआ नारकी जीव उत्पन्न होता है ।

तथा—“ मैं कौन था ? चार गतियों में से पूर्वजन्म में मैं नारक था, तिर्यञ्च था,

(३) उपपातजन्म—

उपपात क्षेत्रमां प्राप्तिमात्र जेमां निमित्त छे. जेवा उत्पत्तिस्थानमां स्थित वैक्रिय पुद्गलोंने पडेलां-पडेलां पोताना शरीररूपमां परिष्णुत करवुं ते उपपातजन्म कडेवाय छे. देव जेने नारकीश्वेने आ जन्म डोय छे.

देवनी उत्पत्ति आ प्रभावे थाय छे:—प्रच्छदपट-उत्तरीय वस्त्रना उपर जेने देवदूष्य वस्त्रनी नीचे, जेटले के जेनेनी वस्त्रमां वर्तमान पुद्गलोंने वैक्रियशरीरना रूपमां ग्रहण करता थका देव उत्पन्न थाय छे. नारकीज्योनी उत्पत्ति आ प्रभावे छे दे:—नरकवर्ती अत्यन्त सांकड मुष्वाणी कुंसियोमां स्थित वैक्रिय शरीरनां पुद्गलोंने वैक्रिय शरीरना रूपमां ग्रहण करता थका नारकी श्व उत्पन्न थाय छे.

तथा—“हुं डोय हुतो ? चार गतिज्योमांथी पूर्वजन्ममां हुं नारकी हुतो, तिर्यञ्च

तत्र - मनुष्य - गो - महिष्य - जा - ऽविका - ऽश्व - खरो - पृ - मृग - चमर - वराह -
 गवय - सिंह - व्याघ्र - क्ष - द्वीपि - श्व - शृगाल - मार्जार - दयो जरायुजाः । सर्प - गोधा -
 कृकलास - गृहगोधिका - (पल्ली) - मत्स्य - कूर्म - नक्र - शिशुमारादयः, पक्षिषु यथा -
 लोमपक्षाः, हंस - चाप - शुक - गृध्र - श्येन - पारावत - काक - मयूर - मण्डू - वक्रादयश्चा -
 षड्जाः । पोता - उजाता इति - पोतजाः शुद्धमसवाः, न तु जरायुजवचर्मा -
 दिवेष्टिता इति यावत्, यथा - शल्लक - वृस्ति - श्वाविल्लापक - शश - शारिका - नकुल -
 मूपिकादयः, पक्षिषु च चर्मपक्षाः, जल्लका - वल्गुलि - भारण्डपक्षि - विरालादयश्च -
 पोतजाः ।

जीव जरायुज कहलाते हैं । मनुष्य, गौ, भैंस, बकरी, मेघ, घोडा, गधा, अंट, मृग, चमर
 शूकर, रोझ, सिंह, वाघ, रीछ, द्वीपि, कुत्ता, सियार, विलाव आदि जरायुज हैं । सर्प,
 गोहेरा, कृकलास, छिपकली, मच्छ, कछुवा, नक्र, शिशुमार आदि, तथा पक्षियों में लोमपक्षी,
 हंस, चाप, शुक, गृध्र, वाज, कबूतर, कौवा, मोर, मण्डू (एक जातका पक्षी), बगुला आदि
 षड्ज है । जो जरायुज की भौति चमड़े से छिपटे हुए उत्पन्न न हों, वे पोतज कहलाते हैं,
 जैसे—सेही, हाथी, श्वाविल्लापक, शशक, शारिका, नकुल, मूपिक आदि । पक्षियों में चर्मपक्षी,
 जल्लका (जौक), वल्गुली, भारण्डपक्षी विराल आदि पोतज है ।

घेटां, घोडा, गधेडा, अंट, मृगला, चमर (हिमालयमां यती अेक . गाय विशेष)
 लूंड, शैल, सिंह, वाघ, रीछ, छीपला, कुतरा, शियाण, गिलाडां, वगेरे जरायुज
 छे, सर्प घोयरां, कछुसलां, डेढगरेडी, मच्छ, कायभा, नक्र (भगर) शिशुमार (अेक
 प्रकारनुं जलचर प्राणी) आदि तथा पक्षियोंमां लोमपक्षी, हंस, चाप (अेक
 जातनुं लीली पांजोवाणुं काभरना जेवुं पंजी) शुक - (पोपट), गीध, भाज, कबूतर,
 डागडा, मोर, - मंडू (अेक पक्षी) भगला वगेरे अंडज छे. जे जरायुज प्रभाषे
 आमडीथी विंटाअेलां उत्पन्न न थाय ते पोतज कडेवाय छे. जेभके-सेही-(साहुडी)
 हाथी, श्वाविहत्रापक, शशक, शारिका, नकुल-नोणीआं, मूपिक-उंदर वगेरे पक्षीआंमां
 अर्मपक्ष-(इंवाडां वगरनां आमडानी पांजोवाणा) जल्लका (जणे) वल्गुली
 (वडवांगण) लारंड-पक्षी, विराल आदि पोतज छे.

सोचा, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आंगओ अहमंसि, जाव अण्णयरीओ दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि, एवमेगेसि णायं भवइ-अत्थि मे आया ओववाइए, जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ वा संचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ जो आगओ अणुसंचरइ सोऽहं ॥ सू० ४ ॥

(छाया)

अथ यत् पुनर्जानीयात्-सहसंमत्या, परव्याकरणेन, अन्येषामन्तिके वा श्रुत्वा, तद्यथा-पूर्वस्या दिशाया आगतोऽहमस्मि यावत् अन्यतरस्या दिशाया अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मि । एवमेकेषां ज्ञातं भवति-अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, योऽस्या दिशाया अनुदिशाया वा अनुसंचरति, सर्वस्या दिशायाः सर्वस्या अनुदिशाया य आगतः अनुसंचरति सोऽहम् ॥ सू० ४ ॥

‘से जं पुण’ इति । ‘से’ इत्यव्ययं मागधीभाषायामथशब्दार्थकम् । ‘अथ’ इति, अनेन ‘नो सन्ना भवइ’ इति द्रव्यदिग्ज्ञानाभावं ‘नो णायं भवइ’ इति भावदिग्ज्ञानाभावं च प्रदर्श्य तज्ज्ञानप्रारम्भ इति द्योत्यते ।

से आया हूँ (यावत्) अन्यतर दिशा से अथवा विदिशा से मैं आया हूँ । इस प्रकार कितनेक जीवों को ज्ञान होता है कि-मेरा आत्मा औपपातिक (जन्म लेने वाला) है; जो इस दिशा से अथवा अनुदिशा से संचार करता है, सभी दिशाओं से, सभी अनुदिशाओं से आया हुआ जो आत्मा भ्रमण करता है, वह मैं हूँ । (सू० ४)

टीकार्थ-मागधी भाषा में ‘से’ अव्यय ‘अथ’ शब्द के अर्थ में है । यहाँ ‘अथ’ शब्द से यह प्रकट किया गया है कि-पहले के सूत्रों में ‘नो सन्ना भवइ’ इत्यादि कहकर द्रव्यदिशा के ज्ञानका निषेध करके, और ‘नो णायं भवइ’ इत्यादि कह कर भावदिशासम्बन्धी ज्ञान का निषेध करके अब इस ज्ञान की उत्पत्ति का प्रकार प्रदर्शित करते हैं-

पूर्व दिशाथी आओए छुं, यावत् भील दिशाओथी अथवा विदिशाओथी हुं आओए छुं, आ प्रभाओ डेटलाक लवोने ज्ञान थाय छे डे-भारे आत्मा औपपातिक (जन्म लेवावाणो) छे; ले आ दिशाथी अथवा अनुदिशाथी संचार करे छे. सर्व दिशाओथी, सर्व अनुदिशाओथी, आवेले ले आत्मा भ्रमण करे छे ते हुं छुं (सू. ४)

टीकार्थ-मागधी भाषा में ‘से’ अव्यय ‘अथ,’ शब्दना अर्थ में है । अर्थात् ‘अथ’ शब्दथी से प्रकट कियुं छे डे-प्रथमना सूत्रों में ‘नो सन्ना भवइ’ इत्यादि कहीने द्रव्यदिशाना ज्ञाननो निषेध करीने अने ‘नो णायं भवइ-इत्यादि कहीने भावदिशासंबंधी ज्ञाननो निषेध करीने हुवे ते ज्ञाननी उत्पत्तिनो प्रकार प्रदर्शित करे छे-

वा देवो वा आसम् ?" इति पूर्वजन्मस्मृतिरूपं ज्ञानं, तथा—“इतः=भस्माल्लोकात्
च्युतः=विपुक्तः प्रेत्य=जन्मान्तरे इह चतुर्गतिरूपे संसारे को भविष्यामि ? चतु-
र्गतिषु कीदृशीं गतिं प्राप्स्यामि” इत्यागामिजन्मविषयकं निश्चयात्मकं ज्ञानं
च न भवतीत्यर्थः । भावदिशाविषयकमपि ज्ञानं नास्ति कियतांचित् संज्ञिनाम्,
असंज्ञिनां तु जीवानां नास्त्येव दिशाज्ञानमिति का चार्त्वा तेषामिति भावः
॥ सू. ३ ॥

संसारिणां स्वगत्यागतिज्ञानं न भवतीत्युक्तम्, संप्रति तज्ज्ञानं यथा
भवति तत् प्रदर्शयितुमाह—‘से जं पुण’ इत्यादि ।

मूलम् ।

से जं पुण जाणेज्जा, सहसम्मइयाए, परवागरणेण अण्णेसि अंतिए वा
मनुष्य था या देव था ?” इस प्रकार की पूर्व जन्म की स्मृति, और “इस भव से च्युत होकर
अगले जन्म में चार गतियों में से कौन गति पाऊँगा ?” इस प्रकार का आगामी जन्म
सम्बन्धी निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता । कितने ही संज्ञियों को भी भावदिशा-विषयक ज्ञान
नहीं होता । असंज्ञी जीवों को तो दिशा का ज्ञान होता ही नहीं ॥ सू० ३ ॥

संसारी जीवों को अपनी गति और आगति का ज्ञान नहीं होता, यह बतलाया
जा चुका, अब यह कथन किया जाता है कि—वह ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ?—

—‘से जं पुण’ इत्यादि ।

मूलार्थ—सहसम्मति से (परोपदेश के बिना ही सहज ज्ञानसे) पर
को वागरणा (स्पष्टीकरण) से, दूसरों के समीप से सुनकर जाने कि मैं पूर्व दिशा
हूँ, मनुष्य हूँ, अथवा देव हूँ ?” आ प्रभाण्णु आगला जन्मंती स्मृति अने
“आ लवथी नीकणीने आगला हवेना जन्ममां आर गतिमांथी हुं कथं गतिमां
ज्जश. अथवा हुं कथं गतिं प्राप्सीश ?” आ प्रभाण्णु आगामी-हवे पछी थवावाणा
जन्म संबन्धी निश्चयात्मक ज्ञान थतुं नथी; डेटलाक संज्ञीअने (संज्ञीअनेने)
पण्णु भावदिशा-विषयक ज्ञान थतुं नथी. असंज्ञी अनेने दिशाअने संबन्धीनुं ज्ञान
थतुं न थी. ॥३॥

संसारी अनेने प्रेतानी गति अने आगति विषेनुं ज्ञान नथी थतुं, ते
अतापी गथा छीअे हवे ते कडेवामां आवे, छे डेः-ते ज्ञान केवी रीते थथं थके छे ?—
‘से जं पुण’ इत्यादि.

मूलार्थ—सहसम्मतिथी, (पीअनी उपदेश बिना पण्णु सहज ज्ञानथी), पीअनी
वागरणाथी (स्पष्टीकरणथी), पीअनी-प्राप्सीथी-संज्ञीने अण्णे के हुं

मुग्धीवनगरे बलभद्रनामा नृप आसीत् । तस्याग्रमहिषी मृगानाम्नी बभूव । बलभद्रनृपस्य तस्यां पुत्रो जातः । स च मातापितृभ्यां बलश्री-नाम लब्ध्वाऽपि लोके मृगापुत्र इति नाम्ना प्रसिद्धो बभूव । अथ मातापित्रोः परमप्रियः कृतयौवराज्याभिमेषको मुदितचित्तो मृगापुत्रः प्रासादे दोगुन्दुगदेववत् प्रमदाभिः सह क्रीडतिस्म ।

स चैवं विलसन् मणिरत्नराजितकुट्टिमतले सर्वोपरिवर्तिनि प्रासाददेशे समुपचिष्टः सकुतूहलं चतुष्क-त्रिक-चत्वर-मार्गान् विलोकमानः पथि शीलाढ्यं गुणसागरं तपोनियमसंयमधरं संयतमनिमिषदृशाऽद्राक्षीत् । तमवलोक्य शुभाध्य-

मुग्धीव नगर में बलभद्र नामक राजा था । उसकी पटरानी का नाम मृगा था इस मृगारानी से बलभद्र को पुत्र की प्राप्ति हुई । माता-पिताने उसका नाम बलश्री रक्खा, किन्तु वह लोक में मृगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ, वह माता-पिता का परम प्रिय था । उसका युवराज पद पर अभिमेष किया गया । वह प्रसन्न-चित्त होकर दोगुन्दुग (विलासी एक देवकी जाति) देव के समान अपने महलमें क्रीडा करता था ।

एक वार मृगापुत्र मणियों और रत्नों से सुशोभित फर्शवाले महल के सब से ऊपर के मंजिल पर बैठा था । वह कौतूहल के साथ नगर के चौपड त्रिक तथा चत्वर मार्गों का अवलोकन कर रहा था । तब उसे मार्ग में शील से विभूषित गुणों के सागर तप, नियम और संयम धारण करने वाले एक मुनि दृष्टिगोचर हुए । उसने टकटकी लगाकर

मुग्धीव नगरमां अवलद्र नामनो राज्ज इतो. तेनी पटशष्ठीनुं नाम-मृगा इतुं, ते मृगा शष्ठी थकी अवलद्रने पुत्रनी प्राप्ति थर्ध, माता-पिताये तेनुं नाम अवश्री शष्थुं, परंतु ते दोकने विषे मृगापुत्र नामथी प्रसिद्ध थयो. ते माता-पिताने परमप्रिय इतो, तेना युवराज पद पर अलिषेक कथो. पथी ते प्रसन्नचित्त थधने दोगुन्दुग (विलासी अेक देवनी जाति) देव समान पोताना भडेलमां क्रीडा करतो इतो.

अेक वार मृगापुत्र मणियो अने रत्नोथी-सुशोभित र्श-सुंदर तजियावाणो भडेलनो सौथी उपरनो भंड इतो, तेना उपर अेठो इतो. ते कुतुहलपूर्वक नगरना चौपड त्रिक तथा चत्वर मार्गोनुं अवलोकन करी रह्यो इतो. ते वथते अे मार्गमां शीलथी विभूषित, शुषोना सागर, तप, नियम, संयम धारण करवावाणो अेक मुनि दृष्टिगोचर

ટીકા—

યત્=યદિ પુનર્જાનીયાત્ સ્વસ્વગત્યાગત્યાદિકં કથિત્, તત્ ત્રિવિધેન કારણેન, તદાહ—સહસંમત્યેત્યાદિ । આત્મના સહ વર્તતે યા સમ્યગ્મતિઃ, સા સહસંમતિઃ, પરોદેશમન્તરેણ સમૃત્પન્ના જાતિસ્મરણાવધિમનઃ પર્યયકેવલજ્ઞાનરૂપા, તયા સહસંમત્યા । તત્ર જાતિસ્મરણવાન્નિયમતઃ સંહ્યાતભવાન્ જાનાતિ, અવધિજ્ઞાની સંહ્યાતભવાન્સંહ્યાતભવાન્ વેત્તિ, તથૈવ મનઃપર્યયજ્ઞાની ચ । કેવલજ્ઞાની તુ નિયમત્વોઽનન્તાન્ ભવાન્ વિજાનાતિ । જાતિસ્મરણજ્ઞાનવાનવાન્તરે યદ્યસંશ્રિભવં ન કુર્ષાત્, તર્હિ સ્વકીયસંશ્રિપચ્ચેન્દ્રિયભવસ્પોત્કૃષ્ટતો નવશતભવાન્ વિજ્ઞાતું શક્નુયાત્ । જાતિસ્મરણેન સ્વકીયપૂર્વભવં વિજ્ઞાતુર્દૃષ્ટાન્તઃ પ્રદર્શયતે—

અગર કોઈ અપની—અપની ગતિ ઓર આગતિ કો જાને તો તોન પ્રકાર કે કારણ સે જાન સકતા હૈ, ઉસી કો કહતે હૈ—સહસમ્મતિ આદિ સે, આત્મા કે સાથ રહને વાલી સમ્યગ્મતિ કહલાતી હૈ, અર્થાત્ પરોપદેશ કે વિના હી ઉત્પન્ન હોનેવાલી જાતિસ્મરણ, અવધિ, મનઃપર્યય ઓર કેવલજ્ઞાન રૂપ મતિ સહસમ્મતિ કહલાતી હૈ, ઉનમં જાતિ સ્મરણવાલા નિયમ સે સંહ્યાત ભવોકો જાનતા હૈ, અવધિજ્ઞાની સંહ્યાત યા અસંહ્યાત ભવો કો જાનતા હૈ, ઈસી પ્રકાર મનઃપર્યયજ્ઞાની ભી જાનતા હૈ, કિન્તુ કેવલજ્ઞાની નિયમ સે અનન્ત ભવો કો જાનતા હૈ । જાતિસ્મરણ—જ્ઞાનવાલા બીચ મં યદિ અસંજ્ઞી કા ભવ ન કરે તો અપને સંજ્ઞી—પચ્ચેન્દ્રિય કે ઉત્કૃષ્ટ નૌ સૌ ભવો કો જાન સકતા હૈ । જાતિસ્મરણ સે અપના પૂર્વભવ જાનને વાલે કા દૃષ્ટાન્ત પ્રદર્શિત ક્રિયા જાતા હૈ—

અથવા કોઈ પોતપોતાની ગતિ અને આગતિને જાણે તો ત્રણ પ્રકારના કારણથી જાણી શકે છે, તેને કહે છે—સહસંમતિ આદિથી, આત્માની સાથે રહેવા વાળી સમ્યગ્ મતિ—બુદ્ધિ અર્થાત્ પરોપદેશ વિનાજ ઉત્પન્ન થવા વાળી જાતિસ્મરણ, અવધિ, મનઃપર્યય, અને કેવલ-જ્ઞાનરૂપ મતિ તે સહસંમતિ કહેવાય છે. જાતિસ્મરણ વાળા નિયમથી સંખ્યાત લવોને જાણે છે. અવધિજ્ઞાની સંખ્યાત અથવા અસંખ્યાત લાવોને જાણે છે. એ પ્રમાણે મનઃપર્યાયજ્ઞાની પણ જાણે છે. પરંતુ કેવલજ્ઞાની નિયમથી અનન્ત લવોને જાણે છે. જાતિસ્મરણ જ્ઞાનવાળા જીવ વચમાં જો અસંજ્ઞીને લવ ન કરે તો પોતાના સંજ્ઞી પચ્ચેન્દ્રિયના ઉત્કૃષ્ટ નવસો (૯૦૦) લવોને જાણી શકે છે. જાતિસ્મરણથી પોતાના પૂર્વલવને જાણનાશનું દ્રષ્ટાન્ત ખતાવે છે—

साक्षात्कारेण सम्बोध्य कथनम्, तीर्थङ्करप्रवचनरूप आगमो वा, तेन ।
परव्याकरणोदाहरणं यथा—साक्षात् भगवतो देशनया मेघकुमारादयो जातिस्मरणं
प्राप्तवन्तः ।

तथा—अन्येषामन्तिके वा श्रुत्वेति, अन्येषां समीपे, श्रुत्वा स्वगत्या-
गत्यादिवोधकतद्वचनश्रवणेन । तृतीयोदाहरणं यथा—पद् मित्रभूपाश्चन्द्रस्थावस्यस्य
मल्लिनाथभगवतः समीपे तद्वचनेन जातिस्मरणमंत्राणुः ।

अथात्मनि विषये यादृशं गत्यागत्यादिज्ञानं भवति, तदेव दर्शयति—
तद्यथा—इत्यादि 'पूर्वस्या दिशाया आगतोऽहमस्मि यावद् अन्यतरस्या दिशाया
अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मी'त्यनेन स्वगमनावधि—द्रव्यदिशाज्ञानं, तथा—
परव्याकरणका उदाहरणं जैसे—साक्षात् भगवान् की देशना से मेघकुमार आदिने जातिस्मरण
ज्ञान प्राप्त किया था ।

तथा—दूसरों से सुनकर भी गति अगति का ज्ञान होता है । तापर्य यह है
कि—अपनी गति एवं आगति समझने वाले दूसरे के वचनों से भी जातिस्मरण हो
जाता है । जैसे—उह मित्र—राजाओंने छत्रस्थ—अवस्था वाले भगवान् मल्लिनाथ के वचनों से
जातिस्मरण प्राप्त किया था ।

आत्मा के विषय में गति—आगति आदि का ज्ञान जिस प्रकार होता है,
उसे दिखलते हैं—'मैं पूर्व दिशा से आया हूँ (यावत्) अन्यतर दिशा से अथवा
अनुदिशा से मैं आया हूँ ' इस कथन से अपने गमन तरु की द्रव्य—दिशा का ज्ञान
सूचित किया है । तथा ' मेरा आत्मा औपपतिक ' है यहाँ से लेकर ' भ्रमण करता है,
परव्याकरणुं ढिडाडरषु, लेमडे—साक्षात् लगवाननी देशनाथी मेघकुमार आदिने
जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त क्युं हुं' ।

तथा—भील पासेथी सांलणीने पषु गति—आगतिनुं ज्ञान थाय छे देः—
पोतानी गति अने आगति रुमलववावाणा भीलना वचनेथी पषु जातिस्मरण ज्ञान
थर्ध लथ छे. लेम—छ मित्र—राजयोअये छत्रस्थ—अवस्था वाणा लगवान महिलिनाथना
वचनेथी जाति स्मरण प्राप्त क्युं हुं' ।

आत्माना विषयमां गति—आगतिनुं ज्ञान ले प्रभाषे होय छे तेने देभाडे
छे—'हुं पूर्व दिशाथी आये छुं, (यावत्) अन्यतर दिशाथी अथवा अनुदिशाथी हुं
आये छुं ' आ कथनथी पोतानी गमन सुधीनी द्रव्यदिशानुं ज्ञान सूचित क्युं छे,

वसायेन मृगापुत्रो मूर्छामवाप्य जातिस्मरणं प्राप । 'पूर्वजन्मनि प्रव्रज्यां गृहीत्वा पञ्चमहाव्रतपालनेन स्वर्गसुखं लब्ध्वाऽहमिह राजकुले संजातः' इति । अनेन जातिस्मरणेन पुनरात्मकल्याणाय प्रयतते स्म ।

अवधिज्ञानिना मल्लीनाथेन भगवता संसारावस्थायां पूर्वजन्मवृत्तान्तोऽवलोकितः । मनःपर्यय-केवलज्ञानयोस्तु दृष्टान्तौ सुमतीतौ ।

तथा—परव्याकरणेन-परस्तीर्थद्वारस्तस्य व्याकरणं यथावस्थितार्थस्य-

उनकी ओर देखा । उन्हें देख कर मृगापुत्र को मूर्छा आ गई और जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया । उससे मादम हुआ कि—'पूर्व जन्म में दीक्षा धारण करके, पांचमहाव्रतों का पालन करके, पश्चात् स्वर्ग के सुख भोगकर मैं इस राजकुल में उत्पन्न हुआ हूँ ।' इस जातिस्मरण से वह फिर आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो गया ।

अवधिज्ञानी भगवान् मल्लीनाथने संसार-अवस्थामें अपना पूर्व जन्म का वृत्तान्त देख लिया था । मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान के दृष्टान्त तो प्रसिद्ध ही हैं ।

तथा—परके व्याकरण से भी गति-आगति का ज्ञान होता है । पर का अर्थ है—तीर्थकर । उनका व्याकरण अर्थात् पदार्थ का स्वरूप यथार्थरूप से जानकर समझाकर कहना, अथवा परव्याकरण का अर्थ तीर्थकर का प्रवचनरूप आगम समझना चाहिए ।

यथा, ते वपते मृगापुत्र ओक नजरथी तेमनी सामे जेथुं, अने तेने जेधने मृगापुत्रने मूर्छा आवी गध अने जातिस्मरणे ज्ञान उत्पन्न थयुं, तेनाथी भादूम पडथुं के—'हूं पूर्वं जन्ममां दीक्षा धारण करीने, पांच महाव्रतानुं पालन करी, पछी स्वर्गना सुखो लोगवीने आ राजकुलमां उत्पन्न थयो छुं' आ प्रभावे जातिस्मरणे यथाथी ते करीने आत्मकल्याणमां प्रवृत्त थयि गयो.

अवधिज्ञानी मल्लीनाथेन भगवाने संसार-अवस्थायां पोताना पूर्व जन्मने वृत्तान्त जेध लीधो छतो. मनःपर्ययज्ञान अने केवलज्ञानना द्रष्टान्तौ तो प्रसिद्ध न छे.

तथा—परना व्याकरणेथी पणु गति-आगतिनुं ज्ञान थाय छे. परना अर्थ छे—तीर्थकर, तेनुं व्याकरणे-अर्थात् पदार्थनुं स्वरूप यथार्थरूपथी ज्ञानी-समजने कडेबुं, अथवा परव्याकरणेना अर्थ-तीर्थकरना प्रवचनरूप आगम समजनुं जेध अे.

साक्षात्कारेण सम्बोध्य कथनम्, तीर्थङ्करप्रवचनरूप आगमो वा, तेन ।
परव्याकरणपोदाहरणं यथा—साक्षात् भगवतो देशनया मेघकुमारादयो जातिस्मरणं
प्राप्तवन्तः ।

तथा—अन्येषामन्तिके वा श्रुत्वेति, अन्येषां समीपे, श्रुत्वा स्वगत्या-
गत्यादिवोधकतद्वचनश्रवणेन । तृतीयोदाहरणं यथा—पद् मित्रभूपाश्छद्मस्थावस्थस्य
मल्लीनाथभगवतः समीपे तद्वचनेन जातिस्मरणमवापुः ।

अथात्मनि विषये यादृशं गत्यागत्यादिज्ञानं भवति, तदेव दर्शयति—
तद्यथा—इत्यादि 'पूर्वस्या दिशाया आगतोऽहमस्मि यावद् अन्यतरस्या दिशाया
अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मी'त्यनेन स्वगमनावधि-द्रव्यदिशाज्ञानं, तथा—
परव्याकरणका उदाहरण जैसे—साक्षात् भगवान् की देशना से मेघकुमार आदिने जातिस्मरण
ज्ञान प्राप्त किया था ।

तथा—दूसरों से सुनकर भी गति अगति का ज्ञान होता है । तात्पर्य यह है
कि—अपनी गति एवं आगति समझाने वाले दूसरे के वचनों से भी जातिस्मरण हो जाता
है । जैसे—छह मित्र—राजाओंने छद्मस्थ—अवस्था वाले भगवान् मल्लीनाथ के वचनों से
जातिस्मरण प्राप्त किया था ।

आत्मा के विषय में गति—आगति आदि का ज्ञान जिस प्रकार होता है,
उसे दिखलाते हैं—'मैं पूर्व दिशा से आया हूँ (यावत्) अन्यतर दिशा से अथवा
अनुदिशा से मैं आया हूँ ' इस कथन से अपने गमन तक की द्रव्य—दिशा का ज्ञान
सूचित किया है । तथा ' मेरा आत्मा औपपातिक ' है यहाँ से लेकर ' भ्रमण करता है, ।
परव्याकरणपु उदाहरण, जेमके—साक्षात् भगवान् की देशनाथी मेघकुमार आदिने
जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त कर्तुं छतुं ।

तथा—भील पासेथी सांभणीने पणु गति—आगतिनुं ज्ञान थाय छे केः—
चोतानी गति अने आगति रुमनववावाणा भीलना वचनेथी पणु जातिस्मरण ज्ञान
थर्ष जाय छे. जेम—छ मित्र—राज्योअये छद्मस्थ—अवस्था वाणा भगवान् मल्लीनाथना
वचनेथी जाति स्मरण प्राप्त कर्तुं छतुं ।

आत्माना विषयमां गति—आगतिनुं ज्ञान जे प्रभाणु डोय छे तेने देणाडे
छे—' हुं पूर्व दिशाथी आओये छुं, (यावत्) अन्यतर दिशाथी अथता अनुदिशाथी हुं
आओये छुं ' आ कथनथी चोताना गमन सुधीनी द्रव्यदिशातुं ज्ञान सूचित कर्तुं छे,

‘અસ્તિ મે આત્મા ઔપપાતિકઃ’ इत्यारभ्य ‘अनुसंचरित सोऽहम्’ इत्यन्तेन द्रव्य-
भावोभयदिशाज्ञानं भगवता प्रदर्शितम् ।

સોહમસ્મી’ત્યેનેનેદમાવેદિતં ભવતિ । ત્રિવિધાન્યતમેન કારણેન જ્ઞાનં
માસો જીવઃ સ્વાત્મસ્વરૂપમેવં વિશાનાતિ-ચદયમાત્મા સકલકર્મક્ષયાવધિ ચતુર્ગતિ-
ભ્રમણકર્તા પુનરપિ કસ્પાન્નિદેકસ્પ્યાં દિશાયામનુદિશાયાં વા ગમિપ્યતિ નાસ્ત્યસ્પ
ગતિવિરામસ્તાવદિતિ । એવમયમાત્મા સર્વસ્પ્યા દિશાયા અનુદિશાયા આગતઃપુનરપિ
સ્વકર્મવશગઃ સન્ સર્વસ્પ્યાં દિશાયામનુદિશાટાં વા પરિભ્રમિપ્યતિ । ન કદાચિદસ્પ
વિશ્રાન્તિલેશોઽપિ તાદૃશોહમસ્મીતિ ॥ સૂં ૪ ॥

वह मैं हूँ’ यहाँ तक द्रव्यदिशा और भावदिशा, दोनों का ज्ञान भगवान्ने प्रदर्शित
किया है ।

‘વહી મેં હું’ ઇસ કથન સે યહ પ્રકટ હોતા હૈ—કિ—તીન મેં સે કિસી
એક કારણ કે દ્વારા જ્ઞાન કો પ્રાપ્ત જીવ ઇસ રૂપ મેં અપના આત્મસ્વરૂપ જાનતા હૈ,
કિ—યહ આત્મા જવ તક સમસ્ત કર્મોં કા ક્ષય નહીં કર દેતા તવ તક ચારોં ગતિયોં
મેં ભ્રમણ કરતા હૈ ઓર ફિર કિસી એક દિશા મેં યા અનુદિશામેં ગમન કરેગા
પરન્તુ કર્મોં કા ક્ષય જવ તક ન હો તવ તક ડસકી ગતિ કા અન્ત નહીં આતા હૈ । ઇસ
પ્રકાર યહ આત્મા સવ દિશાઓં સે ઓર અનુદિશાઓં સે આયા હૈ ઓર કર્મોં કે અધીન
હો કર ફિર સવ દિશાઓં અથવા વિદિશાઓં મેં પરિભ્રમણ કરેગા, ઇસે લેશમાત્ર સી કર્મોં
વિશ્રામ નહીં મિલ સકતા, એસા મેં હું ॥ સૂં ૪ ॥

તથા—‘મારે આત્મા ઔપપાતિક છે’ ત્યાંથી લઇને ‘બ્રમણ કરે છે’ તે હું છું,
ત્યાં સુધી દ્રવ્યદિશા અને ભાવદિશા, એ બન્નેનું જ્ઞાન ભગવાને પ્રદર્શિત કર્યું છે.
“તે હું છું” આ કથનથી એમ પ્રગટ થાય છે કે એ ત્રણમાંથી કોઈ કારણ દ્વારા
જ્ઞાનને પ્રાપ્તિ લેવ આ રૂપમાં પોતાના આત્મસ્વરૂપને જાણે છે કે આ આત્મા
જ્યાં સુધી સમસ્ત કર્મોંને ક્ષય કરતો નથી, ત્યાં સુધી આર્ય ગતિઓમાં બ્રમણ
કરતો રહે છે, અને ફરી કોઈ દિશામાં અથવા તે અનુદિશામાં ગમન કરશે. પરંતુ
જ્યાં સુધી કર્મોંને ક્ષય નહિ હોય ત્યાં સુધી તેની ગતિને અંત આવતો નથી. એ
પ્રમાણે આ આત્મા સર્વ દિશાઓથી અને અનુદિશાઓથી આવ્યો છે અને કર્મોંને
આધીન થઇને ફરીથી સર્વ દિશાઓ અથવા વિદિશાઓમાં પરિભ્રમણ કરશે. તેને
લેશમાત્ર પણ વિશ્રામ મળી શકતો નથી એવો હું છું, (સૂં ૪)

आत्मवादिप्रकरणम्—

यस्तु द्रव्यदिक्षु भावदिक्षु चात्मनो गत्यागती अवगत्य स्वमात्मानमेवं विजानाति—‘अयमात्मा असिद्धगतिप्राप्तित्तुर्गतिषु घूर्णमानो जन्मान्तरसंक्रान्त-
त्रिकालवर्ती शरीराद् भिन्नो नित्यपरिणामी ज्ञानसम्यक्त्वचारित्रसुखवीर्यादिगुणवा-
निति, स एवात्मवादीत्याह—‘से आयावादी’ इत्यादि ।

मूलम्—

से आयावादी, लोकावादी, कर्मावादी, किरियावादी ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स आत्मवादी, लोकवादी कर्मवादी, क्रियावादी ॥ सू० ५ ॥

आत्मवादिप्रकरणम्—

जो जीव द्रव्य दिशाओं में और भावदिशाओं में आत्मा का गमन—आगम जान कर अपनी आत्मा के विषय में इस प्रकार जानता है कि—यह आत्मा सिद्धगति को प्राप्तिरहित चार गतियों में भ्रमण करता हुआ एक जन्म से दूसरे जन्म को ग्रहण करता है, त्रिकालवर्ती है, शरीर से भिन्न है, नित्यपरिणामी है, और सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, सुख, वीर्य आदि गुणों वाला है, वही आत्मवादी है । अब इसी विषय का निरूपण किया जाता है :—‘से आयावादी’ इत्यादि ।

मूलार्थ—‘से आयावादी’ इति । वही आत्मवादी है, लोकवादी है, कर्मवादी है, क्रियावादी है (सू० ५)

आत्मवादीप्रकरणम्

जे एव द्रव्यदिशाओमां अने भावदिशाओमां आत्मातुं वपुं—आवपुं लक्ष्मीने चोत्ताना आत्माना विषयमां अये प्रमाणे लक्ष्णे छे केः—आ आत्मा सिद्धगतिनी प्राप्तिपिनां भील्य आर गतिओमां अमल्य करतो करतो अयेक जन्मथी पीले जन्म अडल्य करे छे, त्रिकालवती छे शरीरथी भिन्न छे, नित्यपरिणामी छे अने सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, सुख, वीर्य आदि गुणो वाणो छे, ते आत्मवादी छे. हवे आ विषयतुं निरूपण करवामां आवे छे—‘से आयावादी’ इत्यादि.

मूलार्थ—‘से आयावादी’ इति. ते आत्मवादी छे, लोकवादी छे, कर्मवादी छे अने क्रियावादी छे. (सू. ५)

टीका—

‘से आयावादी’ इति । सः=इत्यमात्मानं ज्ञाता, आत्मवादी= आत्मानं वदितुं शीलमस्येति विग्रहे कर्तरि णिनिः, आत्मस्वरूपकथनस्वभाववान् । अयं भावः—आत्मस्वरूपं वक्तारो जगति बहवः सन्ति, परन्तु स एवात्मवादी वेदितव्यो, यः पूर्वोक्तरीतिमनुष्ठत्यात्मानं विजानातीति ।

आत्मस्वरूपपरिचयं विना बन्धस्वरूपं ज्ञातुमशक्यम् । तद् विना न रोचते कस्मैचिदात्मोत्कर्षकरणम्, तद्बुधिमन्तरेण च कस्यचिन्मोक्षोपाय-भूतनिश्चयव्यवहारलक्षणज्ञानक्रिययोः प्रवृत्तिर्न स्यात्, तस्मादज्ञात्मज्ञानप्रसङ्गेन किञ्चिदुच्यते—

टीकार्थ—जो इस (पूर्वोक्त) प्रकार से आत्मा को जानता है वही आत्मवादी है अर्थात् आत्मा के स्वरूप को कहने वाला है । तात्पर्य यह है कि—आत्मा का स्वरूप कहने वाले संसार में बहुत हैं किन्तु वास्तव में सच्चा आत्मवादी वही है जो पूर्वोक्त प्रकार से आत्मा का ज्ञाता है ।

आत्मा का स्वरूप समझे विना बन्ध का स्वरूप अशक्य है । उसके अभाव में किसीको आत्मा का उत्कर्ष करना रुचिकर नहीं होता, और इस रुचि के अभाव में किसीको निश्चय-व्यवहाररूप ज्ञान और क्रिया में—जो मोक्ष के कारण हैं—प्रवृत्ति नहीं होती, अतः आत्मज्ञान का प्रसङ्ग होने से यहाँ कुछ विवेचन किया जाता है—

टीकार्थ—जे आ (पूर्वोक्त) प्रकारથી आत्माने जाणुं छे, ते आत्मवादी छे, अर्थात्—आत्माना स्वरूपने कळेवा वाणा छे; तात्पर्य अये छे ‘डेः—आत्मानुं’ स्वरूप कळेवा वाणा संसारमां घणुं छे. परंतु वास्तवमां साच्या आत्मवादी ते छे डे जे पूर्वोक्त प्रकारથી आत्माना ज्ञाता छे, अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारे आत्माने जाणुं छे.

आत्माना स्वरूपने संभळ्या विना बंधनुं स्वरूप समळ्युं अशक्य छे, तेना अभावमां कोर्णने आत्मा उत्कर्ष करवुं इच्छिकर थतुं नथी. अने ते इच्छिना अभावमां कोर्णने निश्चय-व्यवहाररूप ज्ञान अने क्रियामां जे मोक्षनुं कारण छे तेमां प्रवृत्ति थती नथी. ते कारणधी आत्मज्ञानने प्रसंग होवाधी अहि थोडुं विवेचन करवामां आवे छे—

આત્મશબ્દાર્થઃ—

અતતિ-નિત્ય જાનાતીતિ આત્મા । ‘અત સાતત્યગમને’ ઇત્યત્રાત-
ધાતોર્ગત્યર્થકત્વાદ્, ગત્યર્થાનાં ચ જ્ઞાનાર્થકતયા સ્વીકારાદયમર્થો લભ્યતે ।
સિદ્ધસંસારિભેદેન દ્વિવિધસ્યાપિ જીવસ્ય સર્વદાઽવવોધસદ્ભાવાદાત્મનઃ કસ્યાં
ચિદવસ્થાયામુપયોગવિયોગો ન જાયતે । કદાચિદપ્યવવોધાભાવે ચ જીવત્વમેવ
વ્યાહન્યેત । અત એવ-‘જીવો ઉવઓગલક્ષણો’ ઇત્યુક્તમ્ (ઉત્તરા.૨૮ અ. ૧૦ શ્લો.)
યદ્વા-અતતિ-સતતં ગચ્છતિ, નિરન્તરં પ્રાપ્નોતિ સ્વકીયાન્ પર્યાયાનિતિ-આત્મા ।

આત્મશબ્દ કા અર્થ-

‘અતતિ’-ઇતિ-આત્મા ‘અર્થાત્ જો નિત્ય જાનતા રહતા હૈ વહ આત્મા કહલાતા
હૈ । ‘અત’ ધાતુ સતત ગમન કરને કે અર્થ મેં હૈ ઓર ગમનાર્થક સમી ધાતુ જ્ઞાનાર્થક હોતે
હૈ, અતઃ ઉપર્યુક્ત અર્થ ક્રિયા ગયા હૈ । ક્યા સિદ્ધ ઓર ક્યા સંસારી, દોનો હી પ્રકાર કે
જીવો મેં સદૈવ જ્ઞાન વિદ્યમાન રહતા હૈ, ઓર કિસી મી અવસ્થા મેં ઉપયોગકા વિયોગ નહીં
હોતા । કિસી સમય જ્ઞાન કા અભાવ હો જાય તો જીવ મેં જીવત્વ હી નહીં રહે । ઇસી કારણ
ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ. ૨૮ શ્લો. ૧૦) મેં કહા હૈ :-“ જીવો ઉવઓગલક્ષણો ”
જીવ ઉપયોગ લક્ષણ વાલા હૈ ।

અથવા—અતતિ અર્થાત્ જો અપને પર્યાયો કો સતત પ્રાપ્ત હોતા રહતા હૈ
વહ આત્મા હૈ ।

આત્મા શબ્દનો અર્થ—

‘અતતિ’ ઇતિ આત્મા અર્થાત્ જે જાણતો રહે છે, તે આત્મા કહેવાય છે.
‘અત’ ધાતુ સતત ગમન કરવાના અર્થમાં છે. અને ગમનાર્થક સર્વ ધાતુ જ્ઞાનાર્થક
પણ હોય છે. (ગમન કરવું એવા અર્થવાળા તમામ ધાતુ જ્ઞાન અર્થવાળા પણ હોય
છે) એ કારણથી ઉપર કહેલો અર્થ કર્યો છે. તે શુ’ સિદ્ધ અને સંસારી અને
પ્રકારના જીવોમાં હમેશાં જ્ઞાન વિદ્યમાન રહે છે અને કોઈ પણ અવસ્થામાં ઉપયોગનો
વિયોગ થતો નથી કોઈ સમય જ્ઞાનનો અભાવ થઈ નય તો જીવમાં જીવત્વ જ ન
રહે. એ કારણથી ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ. ૨૮ શ્લો. ૧૦) માં કહ્યું છે કે:—
“જીવો ઉવઓગલક્ષણો” “જીવ ઉપયોગ લક્ષણવાળો છે.”

અથવા—અતતિ અર્થાત્ જે પોતાના પર્યાયોને સતત પ્રાપ્ત થતો રહે છે, તે
આત્મા છે.

टीका—

‘से आयावादी’ इति । सः=इत्यमात्मानं ज्ञाता, आत्मवादी=आत्मानं वदितुं शीलमस्येति विग्रहे कर्तरि णिनिः, आत्मस्वरूपकथनस्वभाववान् । अयं भावः—आत्मस्वरूपं प्रकृतौ जगति बहवः सन्ति, परन्तु स एवात्मवादी वेदितव्यो, यः पूर्वोक्तरीतिमनुष्ठत्यात्मानं विजानातीति ।

आत्मस्वरूपपरिचयं विना बन्धस्वरूपं ज्ञातुमशक्यम् । तद् विना न रोचते कस्मैचिदात्मोत्कर्षकरणम्, तद्रुचिमन्तरेण च कस्यचिन्मोक्षोपाय-भूतनिश्चयव्यवहारलक्षणज्ञानक्रिययोः प्रवृत्तिर्न स्यात्, तस्मादत्रात्मज्ञानप्रसंगेन किञ्चिदुच्यते—

टीकार्थ—जो इस (पूर्वोक्त) प्रकार से आत्मा को जानता है वही आत्मवादी है अर्थात् आत्मा के स्वरूप को कहने वाला है । तात्पर्य यह है कि—आत्मा का स्वरूप कहने वाले संसार में बहुत हैं किन्तु वास्तव में सच्चा आत्मवादी वही है जो पूर्वोक्त प्रकार से आत्मा का ज्ञाता है ।

आत्मा का स्वरूप समझे विना बन्ध का स्वरूप अशक्य है । उसके अभाव में किसीको आत्मा का उत्कर्ष करना रुचिकर नहीं होता, और इस रुचि के अभाव में किसीकी निश्चय-व्यवहाररूप ज्ञान और क्रिया में—जो मोक्ष के कारण हैं—प्रवृत्ति नहीं होती, अतः आत्मज्ञान का प्रसङ्ग होने से यहाँ कुछ विवेचन किया जाता है—

टीकार्थ—जे आ (पूर्वोक्त) प्रकारची आत्माने लखे छे, ते आत्मवादी छे, अर्थात्—आत्माना स्वरूपने कळेवा वाणा छे; तात्पर्य जे छे ते के—आत्मानुं स्वरूप कळेवा वाणा संसारमां घण्टा छे. परंतु वास्तवमां साच्या आत्मवादी ते छे ते जे पूर्वोक्त प्रकारची आत्माना ज्ञाता छे, अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारे आत्माने लखे छे.

आत्माना स्वरूपने समज्या विना बंधनुं स्वरूप समज्युं अशक्य छे, तेना अभावमां कोर्धने आत्मा उत्कर्ष करवुं इच्छिकर थतुं नथी. अने ते इयिना अभावमां कोर्धने निश्चय-व्यवहाररूप ज्ञान अने क्रियामां जे मोक्षनुं कारण छे तेमां प्रवृत्ति थती नथी. ते कारणची आत्मज्ञानने प्रसंग होवाची अहि थोडु विवेचन करवामां आवे छे—

આત્મનોસ્તિત્વસિદ્ધિ:—

તાવત્ પ્રત્યક્ષપ્રમાણત ઇવાત્મનઃ સિદ્ધિરુચ્યતે—(૧) કિમયમાત્મા-અસ્તિ નાસ્તિ વેતિ સંશયાદિવિજ્ઞાનં સ્વસ્વાત્મનિ સ્વસંવેદનપ્રત્યક્ષેણ સિદ્ધમ્, સ ઇવાત્મા; સંશયાદિજ્ઞાનસ્યૈવ તદનન્યત્વેનાત્મરૂપત્વાત્ ।

(૨) તથા-આત્માનમાશ્રિત્યૈવ સુખદુઃખાદયઃ સ્વસ્વશરીર ઇવ પ્રત્યક્ષેણ સંવેદન્તે ।

(૩) યદ્વા-કૃતવાનર્હં, કરોમ્યહં, કરિષ્યામ્યહમ્, ઇત્યાદિપ્રકારેણ યોડ્યમ્-અહમ્પ્રત્યયઃ, ઇતસ્માદપિ પ્રત્યક્ષ ઇવાયમાત્મા । કથમસત્યાત્મનિ-

આત્માકે અસ્તિત્વકો સિદ્ધિ—

સર્વ પ્રથમ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ સે હી આત્મા કી સિદ્ધિ કહતે હૈં:—

(૧) આત્મા હૈ યા નહી હૈ, ઇસ પ્રકાર કા સંશય આદિ જ્ઞાન અપની અપની આત્મા મેં સ્વસંવેદન પ્રત્યક્ષ સે સિદ્ધ હૈ । વહી જ્ઞાન આત્મા હૈ, અર્થાત્ સંશય આદિ જ્ઞાન આત્માસે અભિન્ન હોને કે કારણ આત્મસ્વરૂપ હો હૈ ।

(૨) આત્મા કો આશ્રિત કરકે હી દુઃખ-સુખ આદિ અપનેર શરીર મેં પ્રત્યક્ષ સે જાને જાતે હૈં ।

(૩) અથવા-મેં કર ચુકા, મેં કરતા હૂં, મેં કરૂંગા, ઇત્યાદિ રૂપ સે જો અહમ્પ્રત્યય હોતા હૈ ઇસસે મી આત્મા કા પ્રત્યક્ષ હોતા હૈ । આત્મા ન હોતા તો આત્મા કે વિષય મેં અહમ્પ્રત્યય (મેં કા જ્ઞાન) કિસ પ્રકાર હો સકતા થા ? આત્મરૂપ વિષય કે

આત્માના અસ્તિત્વની સિદ્ધિ—

સૌથી પ્રથમ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી જ આત્માની સિદ્ધિ કહે છે:—(૧) આત્મા છે કે નહિ, આ પ્રકારનું સંશય આદિ જ્ઞાન પોત પોતાના આત્મામાં સ્વસંવેદન પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે, તે જ્ઞાન આત્મા છે. અર્થાત્ સંશય આદિ જ્ઞાન આત્માથી અભિન્ન હોવાના કારણે આત્મસ્વરૂપ જ છે.

(૨) આત્માના આશ્રિતપણાથી જ દુઃખ-સુખ આદિ પોત-પોતાના શરીરમાં પ્રત્યક્ષ બાહ્યમાં આવે છે.

(૩) અથવા-હું કરી ચૂક્યો, હું કરું છું. હું કરીશ, ઇત્યાદિરૂપથી જ અહમ્પ્રત્યય થાય છે, તેથી પણ આત્માનું પ્રત્યક્ષપણું થાય છે. આત્મા ન હોય તો આત્માના વિષયમાં અહમ્પ્રત્યય (હું પણાનું જ્ઞાન) કેવી રીતે થઈ શકે ? આત્મરૂપ

नन्वेवं गगनादीनामपि सततं स्वपर्यायप्राप्त्या तत्रात्मशब्दमयोगो दुर्वारः, कदापि पर्यायाभावे त्वपरिणामित्वेन तेषां वस्तुत्वमेव न स्यादिति चेन्मैवम्, सततस्वपर्यायप्राप्तिकर्तृत्वमिति व्युत्पत्तिनिमित्तमात्रमात्मशब्दस्य, न तु तत् प्रवृत्तिनिमित्तम् । प्रवृत्तिनिमित्तं चास्योपयोग एवेति गगनादिषु नात्मशब्दः प्रवर्तते ।

यद्वा—सततं गच्छतीत्ययमर्थोऽपि न विरुध्यते संसारदशायां कर्म-वशेन नानागतिषु सततगमनात्, मुक्तावस्थायामपि भूतकालिकसततगमनसद्भावात् ।

शङ्का—आकाश आदि भी अपने अपने पर्यायों को निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं तो उनके लिये भी आत्मा शब्द का प्रयोग करना अनिवार्य होगा । किसी समय उन में पर्याय का अभाव हो तो वे अपरिणामी ठहरेंगे और तब उन में वस्तुत्व ही नहीं रहेगा ।

समाधान—ऐसा मत कहिए । निरन्तर अपने पर्यायों को प्राप्त करना तो आत्मा शब्द का व्युत्पत्तिनिमित्त मात्र है, वह प्रवृत्तिनिमित्त नहीं है, प्रवृत्तिनिमित्त तो उपयोग ही है, अतः आकाश आदि में आत्मा शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता ।

अथवा 'निरन्तर गमन करता है' इस अर्थ का भी विरोध नहीं है; क्यों कि संसार-अवस्था में कर्म के अधीन होकर आत्मा नाना गतियों में सदैव गमन करता रहता है, मुक्त अवस्था में भी भूतकालीन सतत गमन विद्यमान है ।

शङ्का—आकाश आदि पशु पोत पोताना पर्यायाने निरन्तर प्राप्त यथा रहे छे, तो तेने माटे पशु आत्मा शब्दने प्रयोग करवो अनिवार्य थशे. केध सभय तेनामां पर्यायने अलाव डोय तो ते अपरिणामी करशे त्यारे तेनामां वस्तुत्व पशु नहि रहे.

समाधान—जे प्रमाणे न कडे. निरन्तर पोताना पर्यायाने प्राप्त करवुं ते तो आत्म शब्दनी व्युत्पत्तिनिमित्त मात्र छे, परंतु ते प्रवृत्तिनिमित्त नथी; प्रवृत्तिनिमित्त तो उपयोग न छे, तेथी आकाश आदिमां आत्म शब्दने प्रयोग थर्ध शकतो नथी.

अथवा—निरन्तर गमन करे छे, आ अर्थने पशु विरोध-नथी. केभडे-संसार अवस्थामां कर्मने आधीन जनीने आत्मा अनेक गतियोमां उभेशां गमन करतो रहे छे. मुक्त-अवस्थामां पशु भूतकालीन सतत गमन विद्यमान छे.

न च देहात् गुणीति वाच्यम्, देहस्य मूर्तत्वाद् जडत्वाच्च ज्ञानस्य चामूर्तत्वाद् बोधरूपत्वाच्च । अहं नाहं वेतिगदतो 'माता मे वन्ध्या' इत्यादिवत् स्ववचनव्याघातः ।

(४) यद्वा—आत्मा गुणी प्रत्यक्ष एव, स्मृति-जिज्ञासा-चिकीर्षा-जिगमिषा-संशयादिज्ञानविशेषाणां तद्गुणानां स्वात्मनि स्वसंवेदनप्रत्यक्ष-सिद्धत्वात्, इह यस्य गुणाः प्रत्यक्षाः स प्रत्यक्षो घटः, यथा घटः, प्रत्यक्षगुणश्चात्मा, तस्मात्-प्रत्यक्षः । यथा घटोऽपि गुणी रूपादिगुणप्रत्यक्षत्वादेव प्रत्यक्षः, तथा विज्ञानादिगुणप्रत्यक्षत्वादात्मापीति ।

यहाँ यह कहना ठीक नहीं है कि—'देह गुणी है', क्यों कि देह मूर्त है और जड है जब कि ज्ञान अमूर्त है और चेतनरूप है । मूर्त गुणी का अमूर्त गुण नहीं हो सकता और न जड का गुण चेतना हो सकता है । इस कारण 'मैं हूँ या नहीं' इस प्रकार कहने वाले को 'मेरी माता वन्ध्या है' ऐसा कहने वाले के समान स्ववचनव्याघा दोष आता है ।

(४) अथवा आत्मा गुणी प्रत्यक्ष से ही सिद्ध है, क्योंकि स्मृति, जिज्ञासा, करने की इच्छा, गमन की इच्छा, संशय आदि ज्ञान—जो आत्मा के गुण है—अपनी आत्मा में प्रत्यक्ष से सिद्ध हैं, जिस पदार्थ के गुण प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं वह पदार्थ भी प्रत्यक्ष माना जाता है, जैसे घट, आत्माके गुण भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं इस कारण आत्मा प्रत्यक्ष है । घट के रूप आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से ही गुणी घट का प्रत्यक्ष होना देखा जाता है, इसी प्रकार विज्ञान आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा भी प्रत्यक्ष है ।

अही 'देह शुष्ठी छे' अम कडेवुं ते हीक नथी, कारण के देह मूर्त छे अने जड छे. न्यारे ज्ञान अमूर्त छे अने चेतनरूप छे. मूर्त शुष्ठीने अमूर्त शुष्ठी छे। शके नहि. अने जडने शुष्ठी चेतन थई शके नहि. आ कारणथी. "हुं धुं के नहि" अे प्रमाणे कडेवावाणाने "भारी माता वंध्या छे" अे प्रमाणे कडेनारना नेवे स्ववचनव्याघा नाभने दोष आवे छे.

(४) अथवा—आत्मा शुष्ठी प्रत्यक्षथी न सिद्ध छे, केमके—स्मृति, जिज्ञासा, करवानी इच्छा, गमननी इच्छा, संशय आदिज्ञान वगेरे ने आत्माना शुष्ठी छे ते पोताना आत्मानां प्रत्यक्षथी सिद्ध छे. ने पदार्थने शुष्ठी प्रत्यक्षथी प्रतीत थाय छे ते पदार्थ पक्ष प्रत्यक्ष मानवामां आवे छे. नेम-घट, आत्माने शुष्ठी प्रत्यक्षथी प्रतीत थाय छे. ते कारणथी आत्मा प्रत्यक्ष छे. घटना रूप आदि शुष्ठी प्रत्यक्ष होवाथी न शुष्ठी घटने प्रत्यक्ष होवुं नेवामां आवे छे. ते प्रमाणे विज्ञान आदि शुष्ठी प्रत्यक्ष होवाथी आत्मा पक्ष प्रत्यक्ष छे.

अहमिति ज्ञानम् आत्मविषयकं जायते । आत्मरूपविषयामात्रे विषयिणोऽनुत्थानप्रसंगात् । न च देह एवास्य ज्ञानस्य विषय इति वाच्यम् । जीवरहितेऽपि देहे तदुत्पत्तिप्रसंगात् । अस्मिन्नहम्प्रत्यय आत्मविषयके सति तु किमहस्मि नास्मीति संशयो नोपपद्यते, अहम्प्रत्ययविषयस्यात्मनः सद्भावादहमस्मीति निश्चय एव संभवति । आत्मास्तित्वसंशये तु कस्यापमहम्प्रत्ययः स्यात् ?, निर्मूलत्वेन तदनुत्थानप्रसङ्गात् । यदि संशयी जीव एव नास्ति, तर्हि अस्ति नास्तीति संशयः कस्य भवतु । संशयो हि विज्ञानारूपो गुण एव, न च गुणिनमन्तरेण गुणः सिध्यति ।

अभाव में विषयी अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती । शरीर ही इस ज्ञान का विषय है—अर्थात् 'अहम्' (मैं) का अर्थ आत्मा नहीं वरन् शरीर है, ऐसा कहना उचित नहीं, क्यों कि—ऐसा होता तो मृत शरीर में भी अहम्प्रत्यय होने लगता । आत्मा को विषय करनेवाले इस अहम्प्रत्यय की विद्यमानता में 'मैं हूँ या नहीं हूँ', इस प्रकार का संशय ही नहीं होता है, अहम्प्रत्यय के विषयमृत आत्मा का सद्भाव होने से 'मैं हूँ' इस प्रकार का निश्चय ही हो सकता है । आत्मा के अस्तित्व के विषय में संशय किया जाय तो प्रश्न उपस्थित होता है कि यह अहम्प्रत्यय किसे होता है । बिना कारण के ही तो उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । यदि संशय करने वाला जीव ही नहीं है तो 'है या नहीं ?' इस प्रकार का संशय करता कौन है ? संशय एक प्रकार का ज्ञान-गुण है और गुण, गुणी के अभाव में नहीं हो सकता ।

विषयना अभावमां विषयी अर्थात् ज्ञाननी उत्पत्ति नथी थर्ध शकती. शरीर न आ ज्ञाननी विषय छे, अर्थात् 'अहम्,' (हुं) नी अर्थ आत्मा नथी अडके शरीर छे, अेभ डडेधुं ते उचित नथी, डेभके ने अेभ डोय तो मृत शरीरमां अहम्प्रत्यय थर्ध शकथे. आत्माने विषय करवा वाणो आ-अहम्प्रत्ययनी विद्यमानतामां "हुं छुं डे नथी" आ प्रकारने संशय न थतो नथी अहम्प्रत्ययना विषयभूत आत्मानो सद्भाव डोवाथी "हुं छुं" आ प्रकारने निश्चय न थर्ध शके छे. आत्माना अस्तित्वना विषयमां संशय करवांमां आवे तो प्रश्न उपस्थित थाय छे डे आ अहम्प्रत्यय डेने थाय छे? कारणु बिना तो तेनी उत्पत्ति थर्ध शकती नथी ने संशय करवा वाणो एव नथी तो "हुं छुं डे नडि" अे प्रकारने संशय करनार डोयु छे? संशय अेक प्रकारने ज्ञान-गुणु छे, अने गुणु गुणीना अभावमां थर्ध शकतो नथी.

रूपादिगुणमात्रस्यैव प्रत्यक्षत्वात् । अन्यस्मिन् ज्ञातेऽन्यज्ज्ञातं न भवति, यथा घटे ज्ञाते पटो न ज्ञायते । गुणाः कदापि द्रव्याद् भिन्नतया सत्तां न लभन्ते, एवं द्रव्यमपि गुणेभ्यो भिन्नतया न सत्तां लभते । अयं गुणः, अयं गुणीति नाममात्रतो भेदसत्त्वेऽपि न तत्त्वतो भेदः । यथा—अग्निगुणी स्वकीयादृष्णत्वगुणादत्यन्तभिन्नः स्यात्तर्हि दाहकार्यं कर्तुमसौ न शक्नुयात् ।

तथा—यथात्मा ज्ञानगुणादत्यन्तभिन्नो भवेत् तदा तस्य जडत्वापत्तिः स्यात् । तस्माद् द्रव्यगुणयोर्भेदो न कदाचिदासीत्, नाप्यस्ति, न च भविष्यतीति सिद्धम् ।

तुप्यतु दुर्जनन्यायेन तत्र मते गुणेभ्यः भिन्नत्वाङ्गीकारेऽप्यात्मा प्रत्यक्षो मा

अन्य का ज्ञान होने से अन्य का बोध नहीं हो जाता । जैसे—घट के जाननेसे पट माद्वम नहीं होता । गुण द्रव्य से भिन्न कदापि नहीं रह सकते, और द्रव्य भी गुणों से भिन्न कदापि नहीं रह सकता । 'यह गुण है, यह गुणी है' इस प्रकारका भेद नाममात्रका है, वास्तव में गुण-गुणी में भेद नहीं है । अगर अग्नि गुणी अपने उष्णतागुण से अत्यन्त भिन्न होता तो वह दाह-कार्य (जलाने का कार्य) करने में असमर्थ होता ।

दूसरी बात यह है कि—आत्मा यदि अपने ज्ञानगुण से भिन्न होता तो आत्मा में जडता आ जाती । अत एव द्रव्य और गुण का भेद न कभी था, न है, और न होगा ।

दुर्जनसन्तोपन्याय से, तुम्हारे मत के अनुसार कदाचित् यह मान लिया जाय कि आत्मा गुणों से भिन्न है और इस कारण आत्मा का प्रत्यक्ष भले ही न हो

घट क्यारेय प्रत्यक्ष नहीं थतो. अन्यतुं ज्ञान थवार्थी अन्येनो षोध थतो नथी, जेभके घटना ज्ञानथी पट माद्वम थतो नथी (पटतुं ज्ञान थतुं नथीः). शुष्ण, द्रव्यथी लिन्न कदाचि रह्नी शकतो नथी. 'आ शुष्ण छे अने आ शुष्णी छे' अे प्रकारेनो लेह नाममात्रेनो छे वास्तविक रीते शुष्ण-शुष्णीमां लेह नथी. अगर अग्नि शुष्णी पोताना उष्णताशुष्णी अत्यन्त लिन्न थर्ध नथ तो ते दाहकार्य (भाणवातुं कार्यं) करवामां असमर्थ थर्ध नथ छे.

पीछे वात अे छे के—आत्मा जे पोताना ज्ञानशुष्णी लिन्न छेय तो आत्मामां जडता आवी नथ. अेटला माटे द्रव्य अने शुष्णो लेह केध पृष्ण वथते छतो नछि, छे नछि अने थथे पष्ण नछि.

दुर्जनसन्तोप न्यायथी तभारा मत प्रभाषे कदाचित् अेम भाणी लर्ध अे के आत्मा शुष्णी लिन्न छे, अने ते कारणे आत्मा प्रत्यक्ष लदे न थाय तो पष्ण

न चाज्ञैकान्तिकोऽयं हेतुः, यस्मादाकाशगुणः शब्दः प्रत्यक्षोऽस्ति, न पुनराकाशमिति वाच्यम्, शब्दस्याकाशगुणत्वाभावात् । शब्दो हि पुद्गलगुणः ऐन्द्रिय-कत्वाद् रूपादिवदिति ।

अस्तु, गुणाः प्रत्यक्षाः, गुणिनस्तु प्रत्यक्षत्वे किं मानम् ? उच्यते—गुणे-भ्योऽनन्यो गुणीति ज्ञानादिगुणानां प्रत्यक्षत्वादेवात्माऽपि गुणी प्रत्यक्षेण ज्ञायते । यदि गुणेभ्योऽन्यो गुणी स्यात्, तदा घटादयोपि गुणिनः प्रत्यक्षा न भवेयुः,

शङ्का—आप का दिया हुआ हेतु अनैकान्तिक है, क्यों कि आकाश के गुण शब्द का तो प्रत्यक्ष होता है किन्तु आकाश का प्रत्यक्ष नहीं होता ।

समाधान—ऐसा न कहिए, क्यों कि शब्द आकाश का गुण नहीं है । शब्द पुद्गल का गुण है, क्यों कि वह इन्द्रिय (श्रोत्रेन्द्रिय) का विषय है, जो इन्द्रिय का विषय होता है वह पौद्गलिक ही होता है, जैसे—रूप आदि

शङ्का—गुणों को प्रत्यक्ष मान लें किन्तु गुणी के प्रत्यक्ष होने में क्या प्रमाण है ?

समाधान—गुण और गुणी का कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध है—गुणी, गुणों से अभिन्न होता है, अत एव गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा गुणी भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होता है । अगर गुणी, गुणों से भिन्न होता तो गुणी घट आदिका भी प्रत्यक्ष न होता, क्योंकि सिर्फ रूपादि गुणों से भिन्न घट का कभी प्रत्यक्ष नहीं होता ।

शङ्का—आपे ने हेतु अर्हि आश्रये छे ते अनैकान्तिक छे; केमके आकाशने शुष्ण शब्द ते तो प्रत्यक्ष थाय छे, परंतु आकाश प्रत्यक्ष थतुं नथी।

समाधान—अे प्रभाषे न कडो, केमके शब्द ते आकाशने शुष्ण नथी पणु शब्द ते पुद्गलने शुष्ण छे. केमके ते इन्द्रिय (श्रोत्रेन्द्रिय)ने विषय छे. ने इन्द्रियने विषय डोय छे ते पौद्गलिक न डोय छे, नेम—रूप आदि.

शङ्का—शुष्णने प्रत्यक्ष भानी. लथअे. परंतु शुष्णिना प्रत्यक्षपणुभां शुं प्रभाषु छे ?

समाधान—शुष्ण अने शुष्णिना कथंचित् तादात्म्य संबन्ध छे—शुष्णी, शुष्णिथी अलिन्न डोय छे, अेटवे शुष्णिना प्रत्यक्षपणुथी आत्मा शुष्णी पणु प्रत्यक्ष प्रतीत थाय छे. अगर ने शुष्णी, शुष्णिथी लिन्न डोय तो शुष्णी घट आदि पणु प्रत्यक्ष थर्ष शकत नहिं. केमके मात्र रूपादि शुष्ण न प्रत्यक्ष डोय छे, रूपादि शुष्णिथी लिन्न

तस्माद् ज्ञानादिगुणानामनुरूपो यो रूपरहितोऽचाक्षुषश्च गुणी स देहाद् भिन्न आत्माऽस्तीति विज्ञेयः ।

न च ज्ञानादयो गुणा न देहसम्बन्धिन इत्यनुमानं प्रत्यक्षवाधितम्, ज्ञानादिगुणानां देह एव प्रत्यक्षेण ज्ञानसद्भावादिति वाच्यम्, अस्य प्रत्यक्षस्यानुमानवाधितत्वात् । शरीरेन्द्रियभिन्नं ज्ञानादिगुणवत्त्वमनुमानेन सिध्यति । तथाहि—शरीरेन्द्रियभिन्नो ज्ञानादिगुणवान्, तदुपरमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात् । यो हि यदुपरमेऽपि यदुपलब्धमर्थमनुस्मरति, स तस्मादन्यो दृष्टः, यथा—पञ्चवातायनोपलब्धार्थानुस्मर्ता देवदत्तः, इत्यादि । केनचित् कारणेन दृष्टिशक्तिविघातेऽपि पूर्वदृष्टपदार्थानुस्मरणं भवतीत्यतो देहेन्द्रियादिभिन्न आत्मा गुणी सिध्यति ।

ज्ञानादि गुण देहसम्बन्धी नहीं हैं, यह अनुमान, प्रत्यक्ष से वाधित है, क्यों कि—प्रत्यक्षप्रमाण से वे देह में ही प्रतीत होते हैं, यह कथन ठीक नहीं है, क्यों कि यह प्रत्यक्ष ही अनुमान से वाधित है । अनुमान से यह सिद्ध है कि—ज्ञान आदि गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियों से कोई भिन्न पदार्थ (आत्मा) ही है । अनुमान इस प्रकार है—ज्ञानादि गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है । जिसके नष्ट हो जाने पर भी, जिसके द्वारा जाने हुए पदार्थ का जो स्मरण करता है वह उस से भिन्न होता है । जैसे—पांच खिडकियों द्वारा जाने हुए पदार्थों को स्मरण करने वाला देवदत्त है, उसको किसी कारण से देखने की शक्ति नष्ट हो जाने पर भी पहले देखे हुए पदार्थ का स्मरण होता है । इस से भलीभाँति सिद्ध है कि—देह और इन्द्रिय आदि से भिन्न आत्मा ही गुणी है ।

ज्ञानादि शुष्ण देहसंबन्धी नहीं, कारणों के ते अनुमान प्रत्यक्षधी वाधित छे, केमके प्रत्यक्ष प्रमाणधी ते देहमां न प्रतीत थाय छे; ते कथन ठीक नहीं. केमके ते प्रत्यक्ष अनुमानधी वाधित छे. अनुमानधी ये सिद्ध छे के ज्ञान आदि शुष्णाने आधार शरीर अने इन्द्रियोधी कोई लिन्न पदार्थ (आत्मा) न छे. अनुमान आ प्रमाण छे—ज्ञानादि शुष्णाने आधार शरीर अने इन्द्रियोधी लिन्न छे, केमके तेना नष्ट थवा छतांय तेना द्वारा लबेला पदार्थनुं स्मरण छे छे. तेना नष्ट थवा पछी पछे, तेना द्वारा लबेला पदार्थ तेनुं ने स्मरण करे छे ते तेनाधी लिन्न छे छे. केम पांच खडकीयो द्वारा जेवा वाणा पदार्थोनुं स्मरण करवा वाणा देवदत्त छे. तेने कोई कारणधी देवदत्त शक्ति नष्ट थय जवा छतांय प्रथम देवेला पदार्थोनुं

भवतु, अस्तित्वं च तस्य निर्वाधमेव । ज्ञानादिगुणाः सन्ति यस्य स गुणिरूप आत्मा कथमपलप्येत ।

નનુ દેહ એ જ્ઞાનાદિગુણાઃ ઉપલભ્યન્તે તદાશ્રયતયા દેહ એ રૂપાદીનાં ઘટ ઇવ ગુણી સિદ્ધ્યતિ, ન ત્વાત્મા । પ્રયોગશ્ચેત્ત્વમ્—દેહગુણા એ જ્ઞાનાદયઃ, તૈવોપલભ્યમાનત્વાદ્, ગૌરુકૃશસ્થૂલતાદિવદિતિ ચેન્ન, જ્ઞાનાદયો ગુણા ન દેહ-સમ્બન્ધિનઃ, અમૂર્તત્વાદ્, અચાક્ષુપત્વાદ્ વા, ગગનવત્ । દ્રવ્યવિરહિતો ગુણો ન ભવતિ ।

તથાપિ ઉસકે અસ્તિત્વ મેં કોઈ વાધા નહી આતો । જિસ કે જ્ઞાનાદિ ગુણ મૌજુદ હેં ઉસ ગુણીરૂપ આત્મા કા અપલાપ કિસ પ્રકાર કિયા જા સકતા હે ? ।

શુદ્ધા—દેહ મેં હી જ્ઞાનાદિ ગુણ પાચે જાતે હેં, અતઃ ઇન ગુણો કા આધાર ગુણી દેહ હી હૈ, જૈસે—રૂપાદિ ગુણો કા આધાર ઘટ હૈ । આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણો કા આશ્રયભૂત ગુણી નહીં હૈ । અનુમાન ઇસ પ્રકાર હૈ—જ્ઞાન આદિ દેહ કે ગુણ હેં, વયો કિ વે દેહ મેં હી ઉપલબ્ધ હોતે, જૈસે—ગૌરવન, દુબલાપન ઓર સ્થૂલતા આદિ ।

સમાધાન—યહ કહના ઠીક નહી, જ્ઞાન આદિ ગુણ દેહ કે નહીં હેં, વયો કિ વે અમૂર્ત હેં ઓર અચાક્ષુપ (જો આંસે નહીં દોસતા) હેં, જો અમૂર્ત ઓર અચાક્ષુપ હોતે હેં વે દેહકે ગુણ નહીં હોતે, જૈસે આકાશ ।

ગુણ, દ્રવ્ય કે વિના રહ નહીં સકતે અતઃ જ્ઞાન આદિ ગુણોકા આધારભૂત કોઈ દ્રવ્ય અવશ્ય હોના ચાહિયે । જ્ઞાનાદિ ગુણોકે અનુરૂપ જો અરૂપી એવં અચાક્ષુપ ગુણી હેં વહ દેહ સે બિન્ન આત્મા હી હૈ ।

આત્માના અસ્તિત્વમાં કોઈ પ્રકારની હરકત આવતી નથી. જેના જ્ઞાનાદિ ગુણ હોવાત છે, તે ગુણીરૂપ આત્માને અપલાપ (છતી વસ્તુને નથી એમ કહેવું તે) કેમ કરવામાં આવે ?.

શંકા—દેહમાં જ જ્ઞાનાદિ ગુણ દેખાય છે, તે કારણથી એ ગુણોનો—આધાર ગુણી દેહ જ છે, જેમ રૂપાદિ ગુણોનો આધાર ઘટ છે. આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણોનો આશ્રયભૂત ગુણી નથી. અનુમાન આ પ્રમાણે છે—જ્ઞાન આદિ દેહના ગુણ છે, કેમકે તે દેહમાં જ ઉપલબ્ધ જણાય છે, જેમકે ગોરાપણું, દુબલાપણું અને સ્થૂળતા—નકાપણું વગેરે.

સમાધાન—એ પ્રમાણે કહેવું તે યોગ્ય નથી; જ્ઞાન આદિ ગુણ તે દેહના ગુણ નથી, કેમકે તે અમૂર્ત છે, અને અચાક્ષુષ છે. (જે નેત્રથી દેખાતા નથી). જે અમૂર્ત અને અચાક્ષુષ હોય છે તે દેહના ગુણ થઈ શકતા નથી, જેમ આકાશ. ગુણ, દ્રવ્ય વિના રહી શકતા નથી, તે કારણથી જ્ઞાન આદિ ગુણોના આધારભૂત કોઈ દ્રવ્ય હોવું જોઈએ. એટલા માટે જ્ઞાનાદિ ગુણોને અનુરૂપ જે અરૂપી અને અચાક્ષુષ ગુણી છે, તે દેહથી બિન્ન આત્મા જ છે.

तस्माद् ज्ञानादिगुणानामनुरूपो यो रूपरहितोऽचाक्षुषश्च गुणी स देहाद् भिन्न
आत्माऽस्तीति विज्ञेयः ।

न च ज्ञानादयो गुणा न देहसम्बन्धिन इत्यनुमानं प्रत्यक्षवाधितम्,
ज्ञानादिगुणानां देह एव प्रत्यक्षेण ज्ञानसद्भावादिति वाच्यम्, अस्य प्रत्यक्षस्या-
नुमानवाधितत्वात् । शरीरेन्द्रियभिन्नं ज्ञानादिगुणवत्त्वमनुमानेन सिध्यति ।
तथाहि—शरीरेन्द्रियभिन्नो ज्ञानादिगुणवान्, तदुपरमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात् ।
यो हि यदुपरमेऽपि यदुपलब्धमर्थमनुस्मरति, स तस्मादन्यो दृष्टः, यथा—पञ्च-
वातायनोपलब्धार्थानुस्मर्ता देवदत्तः, इत्यादि । केनचित् कारणेन दृष्टिशक्ति-
विघातेऽपि पूर्वदृष्टपदार्थानुस्मरणं भवतीत्यतो देहेन्द्रियादिभिन्न आत्मा
गुणी सिध्यति ।

ज्ञानादि गुण देहसम्बन्धी नहीं हैं, यह अनुमान, प्रत्यक्ष से वाधित है, क्यों
कि—प्रत्यक्षप्रमाण से वे देह में ही प्रतीत होते हैं, यह कथन ठीक नहीं है, क्यों
कि यह प्रत्यक्ष ही अनुमान से वाधित है । अनुमान से यह सिद्ध है कि—ज्ञान आदि
गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियों से कोई भिन्न पदार्थ (आत्मा) ही है । अनुमान
इस प्रकार है—ज्ञानादि गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि
उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है ।
जिसके नष्ट हो जाने पर भी, जिसके द्वारा जाने हुए पदार्थ का जो स्मरण करता है
वह उस से भिन्न होता है । जैसे—पांच खिडकियों द्वारा जाने हुए पदार्थों को स्मरण
करने वाला देवदत्त है, उसको किसी कारण से देखने की शक्ति नष्ट हो जाने पर
भी पहले देखे हुए पदार्थ का स्मरण होता है । इस से भलीभाँति सिद्ध है कि—देह
और इन्द्रिय आदि से भिन्न आत्मा ही गुणी है ।

ज्ञानादि शुष्ण देहसंबन्धी नहीं, कारणों के ते अनुमान प्रत्यक्षથી वाधित છે,
કેમકે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી તે દેહમાં જ પ્રતીત થાય છે; તે કથન ઠીક નથી. કેમકે
તે પ્રત્યક્ષ અનુમાનથી વાધિત છે. અનુમાનથી એ સિદ્ધ છે કે જ્ઞાન આદિ શુષ્ણોના
આધાર શરીર અને ઇન્દ્રિયોથી કોઈ લિન્ન પદાર્થ (આત્મા) જ છે. અનુમાન આ
પ્રમાણે છે—જ્ઞાનાદિ શુષ્ણોના આધાર શરીર અને ઇન્દ્રિયોથી લિન્ન છે, કેમકે તેના
નષ્ટ થવા છતાંય તેના દ્વારા જાણેલા પદાર્થનું સ્મરણ હોય છે. જેના નષ્ટ થવા પછી
પણ, જેના દ્વારા જાણેલા પદાર્થ તેનું જે સ્મરણ કરે છે તે તેનાથી લિન્ન હોય છે.
જેમ પાંચ ખડકીઓ દ્વારા જેવા વાળા પદાર્થોનું સ્મરણ કરવા વાળો દેવદત્ત છે.
તેને કોઈ કારણથી દેખવાની શક્તિ નષ્ટ થઇ જવા છતાંય પ્રથમ દેખેલા પદાર્થોનું

(૩) ઇન્દ્રિયં સાધિષ્ઠાત્કં, કરણત્વાત્, યથા ચક્રચીવરમૃત્મૂત્રદણ્ડાદયઃ, અસ્તિ હિ ચક્રચીવરાદીનામધિષ્ઠાતા કુલાલઃ। યચ નિરધિષ્ઠાત્કં તત્ કરણમપિ ન ભવતિ, યથા-આકાશમ્, યથેન્દ્રિયાણામધિષ્ઠાતા સ આત્મેતિ ।

(૪) યદ્વા-ઇન્દ્રિયવિષયણામાદાતા સંભવતિ, ઇન્દ્રિયવિષયા શબ્દાદય આદાત્સહિતાઃ આદાનાદેયભાવસદ્ભાવાંત્, સંદંશકલોદ્યત્ । યથા લોકે સંદંશકલોદાનામયસ્કાર આદાતાઽસ્તિ । ઇન્દ્રિયવિષયાણાં આદાનાદેયભાવો વિદ્યતે, અતસ્તેપામપ્યાદાતાઽસ્તીત્યનુમીયતે । યત્ર તુ આદાતા નાસ્તિ, તન્નાદાનાદેયભાવોઽપિ ન વિદ્યતે, યથા-આકાશે ।

(૩) ઇન્દ્રિયો કિસી સધિષ્ઠાતા સે યુક્ત હૈં, ક્યોં કિ-વે કરણ હૈં, જૈસે ચક્ર, ચીવર, મૃત્તિકા, સૂત ઓર દણ્ડ આદિ । ચક્ર, ચીવર આદિ કા અધિષ્ઠાતા કુંભાર હૈ, જિસ કા કોઈ અધિષ્ઠાતા નહીં હોતા વહ કરણ મી નહીં હોતા, જૈસે—આકાશ । ઇન્દ્રિયોં કા જો અધિષ્ઠાતા હૈ, વહી આત્મા હૈ ।

(૪) અથવા ઇન્દ્રિયોં કે વિષય શબ્દ આદિ આદાતાયુક્ત (પ્રહણ કરને વાલે સે યુક્ત) હૈ, ક્યોં કિ ડન મેં આદાન આદેયભાવ મૌજૂદ હૈ, જૈસે સંઢાસી ઓર લોહે મેં, તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—લોક મેં સંઢાસી ઓર લોહે મેં આદાન (લેના) આદેયભાવ (જો લિયા જાય) પ્રસિદ્ધ હૈ ઓર ડન કા આદાતા લુહાર હૈ, ડસી પ્રકાર ઇન્દ્રિયોં તથા વિષયોં કા મી આદાન-આદેયભાવ હૈ, અતઃ ડનકા મી કોઈ આદાતા હોના યાહિષ્ । જહોં આદાતા નહીં હોતા વહોં આદાન-આદેયભાવ મી નહીં હોતા, જૈસે-આકાશ મેં ।

(૩) ઇન્દ્રિયો કોઈ પશુ અધિષ્ઠાતાથી યુક્ત છે, કેમકે તે કરણ છે; જેમકે ચક્ર, ચીવર, મૃત્તિકા, સૂત અને દંડ આદિ. ચક્ર, ચીવર વગેરેનો અધિષ્ઠાતા કુંભાર છે, જેનો કોઈ અધિષ્ઠાતા હોય નહિ, તે કરણ પશુ હોય નહિ; જેમકે-આકાશ. ઇન્દ્રિયોનો જે અધિષ્ઠાતા છે, તે આત્મા છે.

(૪) અથવા-ઇન્દ્રિયોના વિષય શબ્દ આદિ આદાનયુક્ત-(પ્રહણ કરવાવાળા-યુક્ત) છે, કેમકે તેમાં આદાન-આદેય ભાવ મોજૂદ છે. જેમ સાણુસી અને લોહમાં તાત્પર્ય એ છે કે લોકમાં સાણુસી અને લોહમાં આદાન-આદેય ભાવ પ્રસિદ્ધ છે. અને તેના આદાતા લુહાર છે; આ પ્રમાણે ઇન્દ્રિયો તથા વિષયોનો પશુ આદાન-આદેય ભાવ છે તેથી તેનો પશુ કોઈ આદાતા હોવો જોઈએ જ્યાં આદાતા નથી, ત્યાં આદાન-આદેય ભાવ પશુ હોય નહિ, જેમ આકાશમાં.

(५) यद्वा-देहादिकं विद्यमानभोक्तृकम् , भोग्यत्वात् , यथा-अन्नवस्त्रादिकम् । अन्नवस्त्रादीनां भोक्ता मनुष्योऽस्ति । यस्य च भोक्ता नास्ति तद् भोग्यमपि न भवति, यथा खरविपाणम् , भोग्यं च शरीरादिकं, तस्माद् विद्यमानभोक्तृकम् ।

(६) यद्वा-अस्ति देहादिकं सस्वामिकं, संघातरूपत्वात् , मूर्तिमत्त्वात् , ऐन्द्रियत्वात् , चाक्षुपत्वात् , यथा-गृहादिकम् । गृहादीनां स्वामिनः देवदत्तादयः सन्ति । यत् पुनरस्वामिकं तत् संघातरूपं न भवति, मूर्तिमन्न भवति, ऐन्द्रियं न भवति, चाक्षुपं च न भवति, यथा-गगनकुसुमम् । देहादिकं, चास्ति संघातादिरूपम् , तस्माद् विद्यमानस्वामिकम् । यश्च देहादीनां स्वामी स चात्मेति ।

(५) अथवा-देह आदि का भोक्ता कोई अवश्य है, क्यों कि वे भोग्य हैं, जो भोग्य होते हैं उन का भोक्ता भी होता है, जैसे—अन्न, वस्त्र आदि का । अन्न-वस्त्र आदिका भोक्ता मनुष्य है । जिसका भोक्ता नहीं होता वह भोग्य भी नहीं होता, जैसे गधे का साँग । शरीर आदि भोग्य हैं अतः उनका भोक्ता अवश्य है ।

(६) अथवा-देह आदि का कोई स्वामी है, क्यों कि वे संघातरूप हैं, मूर्तिमान् हैं, इन्द्रियों के विषय हैं और चाक्षुष हैं, धर आदि के समान । धर आदि के स्वामी देवदत्त आदि हैं । जिसका कोई स्वामी नहीं होता वह संघातरूप नहीं होता, मूर्तिमान् नहीं होता, इन्द्रिय का विषय नहीं होता, और चाक्षुष (आंग से दीखने वाला) भी नहीं होता, जैसे—आकाशपुष्प । देह आदि संघातरूप हैं, अतः उन का स्वामी अवश्य है । देह आदि का जो स्वामी है वही आत्मा है ।

(५) अथवा-देह आदिना भोक्तृता कैध अवश्य छे, केभके ते भोग्य छे, जे भोग्य होय छे, तेना भोक्तृता पणु होय छे. जेभके अन्न, वस्त्र आदिना. अन्न-वस्त्र आदिना भोक्तृता मनुष्य छे. जेना भोक्तृता नथी ते भोग्य पणु नथी, जेभ गधेडाना शींग. शरीर आदि भोग्य छे, तेथी तेना भोक्तृता अवश्य छे.

(६) अथवा देह आदिना कैध स्वामी छे, केभके-ते संघातरूप छे, मूर्तिमान् छे, इन्द्रियोना विषय छे. अने चाक्षुष छे, धर आदि प्रमाणे. धर आदिना स्वामी देवदत्त आदि छे. जेना कैध स्वामी नथी ते संघातरूप पणु नथी, अने ते मूर्तिमान् पणु होय नहि, इन्द्रियोना विषय पणु होय नहि अने चाक्षुष (नेत्रथी जेध शक्य तेना) पणु होय नहि, जेभके आकाशपुष्प. देह आदि संघातरूप छे, तेथी तेना स्वामी अवश्य छे, देह आदिना स्वामी छे, ते आत्मा छे.

(૩) इन्द्रियं साधिष्ठातृकं, करणत्वात्, यथा चक्रचीवरमृत्सूत्रदण्डादयः, अस्ति हि चक्रचीवरादीनामधिष्ठाता कुलालः। यच्च निरधिष्ठातृकं तत् करणमपि न भवति, यथा-आकाशम्, यथेन्द्रियाणामधिष्ठाता स आत्मेति ।

(૪) यद्वा-इन्द्रियविषयाणामादाता संभवति, इन्द्रियविषया शब्दादय आदातृसहिताः आदानादेयभावसद्भावात्, संदंशकलोहवत् । यथा लोके संदं-शकलोहानामयस्कार आदाताऽस्ति । इन्द्रियविषयाणां चादानादेयभावो विद्यते, अतस्तेषामप्यादाताऽस्तीत्यनुमीयते । यत्र तु आदाता नास्ति, तत्रादानादेयभावोऽपि न विद्यते, यथा-आकाशे ।

(૩) इन्द्रियों किसी अधिष्ठाता से युक्त हैं, क्यों कि-वे करण हैं, जैसे चक्र, चीवर, मृत्तिका, सूत और दण्ड आदि । चक्र, चीवर आदि का अधिष्ठाता कुंभार है, जिस का कोई अधिष्ठाता नहीं होता वह करण भी नहीं होता, जैसे—आकाश । इन्द्रियों का जो अधिष्ठाता है, वही आत्मा है ।

(૪) अथवा इन्द्रियों के विषय शब्द आदि आदातायुक्त (ग्रहण करने वाले से युक्त) हैं, क्यों कि उन में आदान आदेयभाव मौजूद है, जैसे संडासी और लोहे में, तात्पर्य यह है कि—लोक में संडासी और लोहे में आदान (लेना) आदेयभाव (जो लिया जाय) प्रसिद्ध है और उन का आदाता लुहार है, इसी प्रकार इन्द्रियों तथा विषयों का भी आदान-आदेयभाव है, अतः उनका भी कोई आदाता होना चाहिए । जहाँ आदाता नहीं होता वहाँ आदान-आदेयभाव भी नहीं होता, जैसे-आकाश में ।

(૩) ઈન્દ્રિયો કોઈ પણ અધિષ્ઠાતાથી યુક્ત છે, કેમકે તે કરણ છે; જેમકે ચક્ર, ચીવર, મૃત્તિકા, સૂત અને દંડ આદિ. ચક્ર, ચીવર વગેરેનો અધિષ્ઠાતા કુંભાર છે, જેનો કોઈ અધિષ્ઠાતા હોય નહિ, તે કરણ પણ હોય નહિ; જેમકે-આકાશ-ઈન્દ્રિયોનો જે અધિષ્ઠાતા છે, તે આત્મા છે.

(૪) અથવા-ઈન્દ્રિયોના વિષય શબ્દ આદિ આદાનયુક્ત-(અહણ કરવાવાળા-યુક્ત) છે, કેમકે તેમાં આદાન-આદેય ભાવ મોબુદ છે. જેમ સાણુસી અને લોહમાં. તાત્પર્ય એ છે કે લોકમાં સાણુસી અને લોહમાં આદાન-આદેય ભાવ પ્રસિદ્ધ છે. અને તેના આદાતા લુહાર છે; આ પ્રમાણે ઈન્દ્રિયો તથા વિષયોનો પણ આદાન-આદેય ભાવ છે તેથી તેનો પણ કોઈ આદાતા હોવો જોઈએ જ્યાં આદાતા નથી, ત્યાં આદાન-આદેય ભાવ પણ હોય નહિ, જેમ આકાશમાં.

पुद्गलसंघातोपगूढत्वात्, सशरीरत्वाच्च कथंचिन्मूर्तत्वादिधर्मयुक्त एवास्तीति ।

(७) यद्वा—‘ जीव ’ इति पदं सार्थकं, व्युत्पत्तिमत्त्वे सति असमासपदत्वाद् एकपदत्वाद् घटादिपदवत् । घटादिपदं व्युत्पत्तिमत् असमासपदमेकपदं लोके दृष्टम्, तथा च जीवपदं, तस्मात् सार्थकम् । यत्तु सार्थकं नास्ति तद् व्युत्पत्तिमत् असमासपदमेकपदं च नास्ति, यथा—स्वरविषाणादिकं, डित्थादिकं च पदम् । जीवपदं च न तथा, तस्मात् सार्थकम् ।

यद् व्युत्पत्तिमन्न भवति तदेकपदमपि सद् न सार्थकम्, यथा डित्थादिपदम्, इति हेतोरनैकान्तिकत्वापत्तिस्तद्धारणाय व्युत्पत्तिमत्त्वविशेषणमुपात्तम् ।

हुए हैं, इस लिए कोई दोष नहीं आता । संसारी आत्मा आठ कर्मों के समूह से युक्त होने के कारण तथा सशरीर होने के कारण मूर्तत्व आदि धर्मों से युक्त ही है ।

(७) अथवा—‘ जीव ’ पद का वाच्य अवश्य है, क्यों कि यह पद व्युत्पत्ति वाला होते हुए समासरहित है, एक पद है, घट आदि पदों के समान । घट बगैरह पद व्युत्पत्तिवाले, असमासपद, एक पद लोक में देखे जाते हैं अतः उनके वाच्य भी अवश्य हैं । ‘ जीव ’ पद भी ऐसा ही है, अतः वह भी सार्थक है । जो पद सार्थक नहीं होता वह व्युत्पत्तिवाला असमासपद, एक पद भी नहीं होता, जैसे—‘ स्वरविषाण ’ पद, अथवा ‘ डित्थ ’ पद, जीव पद ऐसा नहीं है, अतः वह सार्थक है ।

जो व्युत्पत्ति वाला नहीं होता वह एक पद होते हुए भी सार्थक नहीं होता, जैसे ‘ डित्थ ’ आदि पद । इस हेतु में अनैकान्तिकता निवारण करने के लिए ‘ व्युत्पत्ति

धीये, झेटला भाटे कोए होय आवतो नथी, संसारी आत्मा आठ कर्मोंना समूहधी युक्त होवाना कारणे तथा सशरीर होवाना कारणे भूर्त्त्व आदि धर्मोंधी युक्त न छे.

(७) अथवा ‘ जीव ’ पदनेो वाच्य अवश्य छे, कारणे के आ पद व्युत्पत्तिवाणुं होवा छतांय समासरहित छे, एक पद छे, घट आदि पदोंना समान. ‘ घट ’ ओ व्युत्पत्तिवाणुं असमास पद एक पद लोकमां नेवामां आवे छे, ते कारणेधी तेनुं वाच्य पणु अवश्य छे. ‘ जीव ’ पद, पणु ओवुं न छे, तेधी ते पणु सार्थक छे. ने पद सार्थक नथी यतुं ते व्युत्पत्तिवाणा असमास पद एक पद पणु यतुं नथी. नेभके अरविषाणु (गधेडाना शींग) पद, अथवा ‘ डित्थ ’ पद. जीव-पद ओवुं नथी. तेधी ते सार्थक छे.

ने व्युत्पत्तिवाणुं यतुं नथी ते एक पद होवा छतांय पणु सार्थक नथी यतुं, नेभ ‘ डित्थ ’ आदि पद.

आ हेतुमां अनैकान्तिकता निवारण करवा भाटे, ‘ व्युत्पत्तिवाणुं ’ विशेषणुं

ન ચ—આદિમત્પ્રતિનિયતાકારત્વાદિहेतुभिः शरीरादीनां कर्त्राद्य एव सिध्यन्ति, न तु प्रस्तुत आत्मेति वाच्यम्। अन्यस्येश्वरादेर्पुत्रत्यसहत्वेन कर्तृत्वाद्यसंभवाद् देहादीनां कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता, स्वामी चायमात्मैवेति निश्चयात्।

નચુ—घटादीनां कर्त्रादिरूपाः कुलालादयो मूर्तिमन्तः संघातरूपा अनित्यादिस्वभावाश्च दृष्टाः, इत्यतो जीवोऽप्येतादृश एव सिध्यति, एतद्विपरीतश्चास्माकं साधनीयः, इत्येवं साध्यविरुद्धसाधकतया हेतूनां विरुद्धत्वापत्तिरिति चेन्मैवम्, संसारिणमात्मानं साध्ययितुं प्रवृत्तानामस्माकमेतदोपासंभवात्। संसारी चात्माऽष्टविधकर्म-

પૂર્વોક્ત—‘આદિમાન હોતે હુણ નિયત આકાર વાળે હોને સે’ इत्यादि हेतुओं से शरीर आदि के कर्ता आदि ही सिद्ध होते हैं, प्रस्तुत आत्मा सिद्ध नहीं होता, ऐसा नहीं कहना चाहिये क्यों कि—आत्मा से भिन्न ईश्वर आदिका कर्तापन युक्तिसङ्गत नहीं ठहरता, अतः देह आदिका कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता और स्वामी आत्मा ही है ऐसा निश्चय हो जाता है।

શક્કા—घट आदि के कर्ता कुंमार वगैरह मूर्तिक, संघातरूप और अनित्य आदि स्वभाव वાળે દેલે જાતે હૈ, અતઃ જીવ મી પેસા હી સિદ્ધ હોતા હૈ, મગર આપકો. ઇસ સે વિપરીત ધર્મોવાળા આત્મા સિદ્ધ કરને કે કારણ પૂર્વોક્ત હેતુઓ મેં વિરુદ્ધ દોષ આતા હૈ।

સમાધાન—ऐसा मत कहो। हम संसारी आत्मा सिद्ध करने के लिए उच्यत

પૂર્વોક્ત—‘આદિમાન હોવા છતાંય નિયત આકારવાળા હોવાથી’ ઇત્યાદિ હેતુઓથી શરીર આદિના કર્તા આદિ જ સિદ્ધ હોય છે. પ્રસ્તુત આત્મા સિદ્ધ થતો નથી. એમ નહિ કહેવું જોઈએ, કેમકે આત્માથી ભિન્ન ઈશ્વર આદિનું કર્તાપણું યુક્તિ સંગત થતું નથી, તેથી દેહ આદિના કર્તા, અધિષ્ઠાતા, આદાતા, ભોક્તા અને સ્વામી આત્મા જ છે. એમ નિશ્ચય થઈ જાય છે.

શક્કા—घट आदिना कर्ता कुंमार वगैरे मूर्तिक, संघातरूप અને अनित्य आदि स्वभाववाળા એવામાં આવે છે, તેથી જીવ પણ એવો જ સિદ્ધ થાય છે પરંતુ તમને તેનાથી વિપરીત ધર્મોવાળા આત્મા સિદ્ધ કરવો છે, એવી સ્થિતિમાં સાધ્યથી વિરુદ્ધ સિદ્ધ કરવાના કારણે પૂર્વોક્ત હેતુઓમાં વિરુદ્ધતા દોષ આવે છે.

સમાધાન—એ પ્રમાણે ન કહો, અમે સંસારી આત્મા સિદ્ધ કરવા માટે તૈયાર થયા

मिन्नता प्रतीयते । प्रकृतेऽपि प्राणी, भूतः, जीवः, सत्त्वः, इत्यादयो जीवशब्दस्य पर्यायाः, शरीरं वपुः, कायो, देहः, गात्रमित्यादयस्तु शरीरशब्दपर्याया 'अयं जीवस्तस्मान्न हन्तव्यः' इत्यनेनापि देहस्थितस्य प्राणिन एव हिंसा निषिध्यते ।

आज्ञागमस्तु समस्त एवात्मानं बोधयति, आत्मतत्त्वस्यैव सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रार्थं तस्य प्रवृत्तत्वात् । तथापि कानिचिदागमवचनानि प्रमाणतया प्रदर्शयामः-

‘से आयावादी’ इति प्रस्तुतमेवं वचनं तावद् गृहाण । ‘से जं पुण

शब्द अलग हैं, इस लिए घटका अर्थ और आकाश का अर्थ अलग-अलग है । इसी प्रकार जीव के पर्यायवाचक प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व आदि शब्द अलग हैं और देह के पर्यायवाचक शरीर, वपु, काय, गात्र आदि भिन्न हैं, अतः इन दोनों का अर्थ भी अलग होना चाहिए । ‘यह जीव है अतः हनन करने योग्य नहीं है’ इस वाक्य द्वारा देह में स्थित प्राणी की ही हिंसा का निषेध किया जाता है ।

आगम से आत्मा की सिद्धि-

आन्त पुरुष द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण आगम आत्मा का बोधक है । आत्मतत्त्व के सम्यग् दर्शन, ज्ञान, और चरित्र के लिए ही आगम की प्रवृत्ति होती है फिर भी आगम के कतिपय वाक्य प्रमाणरूप में प्रदर्शित करते हैं:-

सब से पहले-‘से आयावादी’, इस प्रस्तुत वाक्य को ही लीजिए

प्रमाणे एवनां पर्यायवाचक-प्राणी, भूत, एव सत्त्व आदि शब्द अलग छे. अने देहना पर्यायवाचक-शरीर, वपु, काय, गात्र आदि भिन्न छे. ते भाटे अये अनेना अर्थ पद्य अलग थये न्नेधये. “आ एव छे तेथी हुनन करवा येअ्य नथी” आ वाक्य द्वारा देहमां रहेला प्राणीनी न हिंसानो निषेध करवाभां आये छे.

आगमधी आत्मानी सिद्धि-

आस पुरुष द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण आगम आत्मानुं बोधक छे. आत्मतत्त्वना सम्यग्दर्शन, ज्ञान अने चरित्र भाटे न आगमनी प्रवृत्ति होय छे. ते पद्य आगमना केटलाक वाक्य प्रमाणरूपमां प्रदर्शित करे छे-

सौधी प्रथम ‘से आयावादी’ आ प्रस्तुत-आहु वाक्यने न लधये ‘से जं पुण

યૈકપદં નાસ્તિ કિન્તુ સામાસિકમ્, તદપિ વ્યુત્પત્તિમત્ત્વે સત્યપિ સાર્થકં નાસ્તિ, યથા સ્વરવિષાણાદિકમિતિ । તન્નાનૈકાન્તિકત્વાપત્તિદોષસ્તત્પરિહારાર્થમેકપદત્વમિતિ ।

નનુ દેહ એવ જીવપદસ્પાર્થોઽસ્તુ કથં પુનરાત્મા વિજ્ઞાયેત । વેદરૂપેષ્યે જીવશબ્દપ્રયોગોઽપિ દૃષ્ટઃ, યથા—‘અયં જીવઃ, તસ્માન્ન હન્તચ્ચઃ’ ઇતિ । અતો દેહ એવ જીવશબ્દાર્થતયા ગ્રહીતચ્ચઃ, ઇતિ ચેન્ન, પર્યાયશબ્દભેદાદ્ દેહજીવ-શબ્દયોરર્થો મિન્ન એવેતિ વોધનાત્, યથા ઘટાકાશયોઃ, તન્ન-ઘટકુમ્મકલશાદયો ઘટશબ્દસ્ય પર્યાયાઃ, આકાશનભોવ્યોમાદયસ્ત્વાકાશશબ્દપર્યાયાઃ, અતસ્તયોરર્થે

વાલા ’વિશેષણ લગાયા હૈ । તથા જો એક પદ નહીં હૈ કિન્તુ સમાસયુક્ત પદ હૈ વહ વ્યુત્પત્તિવાલા હોતે હુએ મો સાર્થક નહીં હોતા । જૈસે સ્વરવિષાણ આદિ પદ । ઇસ મેં અનૈકાન્તિકતા હટાને કે લિખે ‘એકપદ’કા પ્રયોગ કિયા ગયા હૈ ।

શબ્દ—જીવ પદકા અર્થ દેહ હી ક્યો ન માન લિયા જાય ? આત્મા અર્થે કૈસે સમજા જાય ? દેહ કે અર્થે મેં જીવ શબ્દકા પ્રયોગ દેખા મો જાતા હૈ, જૈસે ‘યહ જીવ હૈ, અતઃ હનન કરને યોગ્ય નહીં હૈ’ । ઇસ લિખે જીવ શબ્દ કા અર્થ શરીર હી લેના ચાહિખે ।

સમાધાન—દેહકે ઓર જીવ કે પર્યાયવાચી શબ્દ અલગ અલગ હૈ, અતઃ દાનો કા અર્થ અલગ—અલગ હી માનના ચાહિખે । જૈસે ઘટકે પર્યાયવાચી કુમ્મ, કલશ આદિ શબ્દ અલગ હૈ, ઓર આકાશ કે પર્યાયવાચી શબ્દ નભ, વ્યોમ, ગગન આદિ આખ્યું છે. તથા જે એક પદ નથી. પરંતુ સમાસયુક્ત પદ છે તે વ્યુત્પત્તિવાળું હોવા છતાંય સાર્થક થતું નથી. જેમ ખરવિષાણુ આદિ પદ, તેમાં અનૈકાન્તિકતા હાવવા માટે—એક પદનો પ્રયોગ કરેલો છે.

શંકા—‘જીવ’ પદનો અર્થ દેહ શા માટે માનવામાં નથી આવતો ? આત્મા અર્થ કેમ સમજાય છે ? દેહના અર્થમાં જીવ શબ્દનો પ્રયોગ જોવામાં પણ આવે છે. જેમ—‘આ જીવ છે, તેથી હણવા યોગ્ય નથી’ એટલા માટે જીવ શબ્દનો અર્થ શરીર જ લેવો જોઈએ.

સમાધાન—દેહ અને જીવના પર્યાયવાચી શબ્દ જૂઠા જૂઠા છે તેથી એ બંનેનો ઓધ જૂઠો-જૂઠો માનવો જોઈએ. જેમ ઘટના પર્યાયવાચી કુલ, કલશ આદિ શબ્દ અલગ છે, અને આકાશના પર્યાયવાચી શબ્દ—નભ, વ્યોમ, ગગન આદિ શબ્દ અલગ છે. એ કારણથી ઘટનો અર્થ અને આકાશનો અર્થ અલગ છે. એ

चेतना चात्मद्रव्यादात्मगतान्यसुखादिगुणतश्चानपायिनो । तामेवाश्रित्य ज्ञानदर्शना-
दिविविधोपयोगानां भिन्नभिन्नसमयवर्तिनां त्रैकालिकः प्रवाहो भवति । तस्याश्चेत-
नायाः कार्यरूपः पर्यायप्रवाहः स्वरूपेणोपयोग एव ।

उपयोगात्मकपर्यायप्रवाह इव सुखदुःखवेदनात्मकपर्यायप्रवाहस्तथा प्रवृत्त्या-
त्मकपर्यायप्रवाहादयोऽनन्तपर्यायप्रवाहाः सह-युगपत् प्रवर्तन्ते । अतश्चेतनागुण
इवात्मनि आनन्दवीर्यप्रभृत्येकैकगुणस्वीकरणीयतयाऽनन्तगुणाः सिद्ध्यन्ति ।

आत्मनि चेतनाऽऽनन्दवीर्यादिगुणानां भिन्नभिन्ना विविधपर्याया
एकस्मिन् समये समुपलभ्यन्ते परन्त्वेकस्य चेतनागुणस्य विविधाउपयोगपर्याया

के द्वारा आत्मा नाना प्रकार के उपयोगों के रूप में परिणत होता है किन्तु चेतना,
आत्मद्रव्य के रूप में, तथा आत्मा में रहने वाले सुख आदि गुणों के रूप में
सदा विद्यमान रहती है—कभी नष्ट नहीं होती, उस के आधार पर ज्ञान दर्शन आदि
भिन्न भिन्न समयों में होने वाले अनेक उपयोगों का प्रवाह वहता है । उस चेतना
का कार्यरूप पर्याय-प्रवाह स्वरूपसे उपयोग ही है ।

उपयोगात्मक पर्याय-प्रवाह के समान सुख-दुःखसंवेदनरूप पर्याय का
प्रवाह है; तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्यायप्रवाह आदि अनन्त पर्याय-प्रवाह एक साथ जारी
रहते हैं; अतः चेतनागुण के समान आत्मा में आनन्द, वीर्य आदि एक एक गुण
स्वीकार करने योग्य होने से अनन्त गुण सिद्ध होते हैं ।

आत्मा में चेतना सुख वीर्य आदि गुणों की भिन्नर विविध पर्यायें एक ही
समय में उपलब्ध होती हैं, किन्तु एक ही समय में अकेले चेतनागुण की विविध

तथा आत्मा में रहनेवाला सुख आदि गुणों का रूप में उभेसां विद्यमान रहे छे.
कोई पक्षत पक्ष नाश पावती नहीं. तेना आधार पर ज्ञान, दर्शन आदि लिन्न
लिन्न समयों में थावावाला अनेक उपयोगोंने प्रवाह वडेता रहे छे. ते चेतनाना
कार्यरूप पर्यायप्रवाह स्वरूपथी उपयोग न छे.

उपयोगात्मक पर्याय-प्रवाहना समान सुख-दुःखसंवेदनरूप पर्यायने प्रवाह
छे. तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्याय-प्रवाह आदि अनन्त पर्यायप्रवाह एक साथे नदरी रहे
छे. तेथी चेतनागुण समान आत्मा में आनन्द वीर्य आदि. एक-एक गुण स्वीकार
करवा योग्य होवाथी अनन्त गुण सिद्ध थाय छे.

आत्मा में चेतना, सुख, वीर्य, आदि गुणोंनी लिन्न-लिन्न विविध पर्यायें
एक-एक समय में उपलब्ध थाय छे, परन्तु एक-एक समय में अकेला चेतनागुणनी

જાણેજ્ઞા' ઇત્યાદિ—'સોડહં' ઇત્યન્તં પ્રાગુચ્યાલ્યાતં ચ (આચા૦ ૧ અ૦ ૧ ૩૦) ।
 'અત્યિ આયા' (અત્યાત્મા) ઇતિ । 'અત્યિ જીવા' (સન્તિ જીવાઃ) ઇતિ ।
 'એ આયા' (એક આત્મા) (સ્થા૦ ૧ સ્થા૦ ૧ ૩૦) ઇતિ ।

“કઙ્ઘિહા ણં મંતે ! દ્વવા પ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા પ્ણત્તા, તંજહા-
 જીવદ્વવા ય, અજીવદ્વવા ય” (અનુ. સૂ. ૧૪૧)

ઇત્યાદીન્યનુસન્ધેયાનિ । અન્યેઽપિ સાંખ્યાદયઃ પ્રાયશઃ સ્વીકુર્વન્ત્યેવ
 શરીરાન્નિન્નતયાઽઞ્મનોઽસ્તિત્વમિતિ ।

આત્મનો દ્રવ્યત્વનિરૂપણમ્—

અયમાત્મા દ્રવ્યમસ્તિ, ચેતનાઘનન્તગુણવચ્ચાત્, જ્ઞાનદર્શનલક્ષણવિવિ-
 ધોપયોગાઘનન્તપર્યાયવચ્ચાચ્ચ । ચેતનાદ્વારેણાત્મા નાનારૂપોપયોગરૂપેણ પરિણમતે ।

'સે જં પુણ જાણેજ્ઞા' સે લેકર 'સોડહં' તક પહેલે વ્યાલ્યાન ક્રિયા જા ચુકા
 હૈ । (આચા. ૧ અ. ૧ ૩.) તથા 'અત્યિ આયા' 'અત્યિ જીવા' 'એ આયા'
 (સ્થા. ૧ સ્થા. ૧ ૩.) તથા 'કઙ્ઘિહા ણં મંતે દ્વવા :પ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા
 પ્ણત્તા, તંજહા-જીવદ્વવા ય અજીવદ્વવા ય, (અનુ. સૂ. ૧૪૧) ઇત્યાદિ અનેક
 આગમવાક્ય સમક્ષ લેને યાહિણ । દૂસરે સાંખ્ય વગેરહ મી પ્રાયઃ શરીર સે મિન્ન આત્મા
 કા અસ્તિત્વ સ્વીકાર કરતે હૈં ।

આત્માકા દ્રવ્યત્વનિરૂપણ—

આત્મા દ્રવ્ય હૈ, ક્યો કિ વહ ચેતના આદિ અનન્ત ગુણો સે યુક્ત હૈ
 ઓર વહ જ્ઞાનોપયોગ તથા દર્શનોપયોગ આદિ અનન્ત પર્યાયો વાલા મી હૈ । ચેતના
 જાણેજ્ઞા' થી લઈને 'સોડહં' સુધી પહેલા વ્યાખ્યાન કરી દીધું છે (આચા. ૧-અ.
 ૧-૭) તથા 'અત્યિ આયા' 'અત્યિ જીવા' 'એ આયા' (સ્થા. ૧ સ્થા. ૧ ૩.) 'કઙ્ઘિહા ણં
 મંતે ! દ્વવા પ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા પ્ણત્તા, તંજહા-જીવદ્વવા ય અજીવદ્વવા ય'
 (અનુ. સૂ. ૧૪૧) ઇત્યાદિ અનેક આગમ-વાક્ય સમક્ષ લેવાં બોધયે. ખીલા સાંખ્ય
 શાસ્ત્ર વગેરે પણ પ્રાયઃ શરીરથી મિન્ન આત્માના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરે છે.

આત્માનું દ્રવ્યત્વનિરૂપણ—

આત્મા દ્રવ્ય છે, કેમકે તે ચેતના આદિ અનન્ત ગુણોથી યુક્ત છે, અને તે
 જ્ઞાનોપયોગ તથા દર્શનોપયોગ આદિ અનન્ત પર્યાયો વાળો પણ છે. ચેતનાદ્વારા
 આત્માના નાના પ્રકારના રૂપમાં પરિણત થાય છે. પરંતુ ચેતના આત્મદ્રવ્યના રૂપમાં

चेतना चात्मद्रव्यादात्मगतान्यसुरादिगुणतश्चानपायिनो । तामेवाश्रित्य ज्ञानदर्शना-
दिविविधोपयोगानां भिन्नभिन्नसमयवर्तिनां त्रैकालिकः प्रवाहो भवति । तस्याश्चेत-
नायाः कार्यरूपः पर्यायप्रवाहः स्वरूपेणोपयोग एव ।

उपयोगात्मकपर्यायप्रवाह इव सुखदुःखवेदनात्मकपर्यायप्रवाहस्तथा प्रवृत्त्या-
त्मकपर्यायप्रवाहादयोऽनन्तपर्यायप्रवाहाः सह-युगपत् प्रवर्तन्ते । अतश्चेतनागुण
इवात्मनि आनन्दवीर्यप्रभृत्येकैकगुणस्वीकरणीयतयाऽनन्तगुणाः सिध्यन्ति ।

आत्मनि चेतनाऽऽनन्दवीर्यादिगुणानां भिन्नभिन्ना विविधपर्याया
एकस्मिन् समये सम्पुलभ्यन्ते परन्तुवेकस्य चेतनागुणस्य विविधाउपयोगपर्याया

के द्वारा आत्मा नाना प्रकार के उपयोगों के रूप में परिणत होता है किन्तु चेतना,
आत्मद्रव्य के रूप में, तथा आत्मा में रहने वाले सुख आदि गुणों के रूप में
सदा विद्यमान रहती है—कभी नष्ट नहीं होती, उस के आधार पर ज्ञान दर्शन आदि
भिन्न भिन्न समयों में होने वाले अनेक उपयोगों का प्रवाह वहता है । उस चेतना
का कार्यरूप पर्याय-प्रवाह स्वरूपसे उपयोग ही है ।

उपयोगात्मक पर्याय-प्रवाह के समान सुख-दुःखसंवेदनरूप पर्याय का
प्रवाह है; तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्यायप्रवाह आदि अनन्त पर्याय-प्रवाह एक साथ जारी
रहते हैं; अतः चेतनागुण के समान आत्मा में आनन्द, वीर्य आदि एक एक गुण
स्वीकार करने योग्य होने से अनन्त गुण सिद्ध होते हैं ।

आत्मा में चेतना सुख वीर्य आदि गुणों की भिन्नर विविध पर्यायें एक ही
समय में उपलब्ध होती हैं, किन्तु एक ही समय में अकेले चेतनागुण की विविध
तथा आत्माभां रडेववाणा सुभ आदि शुद्धोना रूपभां लुभेशां विद्यमान रडे छे.
कैड वणत पणु नाश पामती नथी. तेना आधार पर ज्ञान, दर्शन आदि लिन्न
लिन्न समयोभां थवावाणा अनेक उपयोगोना प्रवाह वडेतो रडे छे. ते चेतनाना
कार्यरूप पर्यायप्रवाह स्वरूपथी उपयोग न छे.

उपयोगात्मक पर्याय-प्रवाहना समान सुख-दुःखसंवेदनरूप पर्याययो प्रवाह
छे. तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्याय-प्रवाह आदि अनंत पर्यायप्रवाह अेक साथे नरी रडे
छे. तेथी चेतनाशुद्ध समान आत्माभां आनंद वीर्य आदि. अेक-अेक शुद्ध स्वीकार
करवा योग्य डेवाथी अनंत शुद्ध सिद्ध थाय छे.

आत्माभां चेतना, सुभ, वीर्य, आदि शुद्धोनी लिन्न-लिन्न विविध पर्यायो
अेकन समयभां उपलब्ध थाय छे, परंतु अेकन समयभां अेकला चेतनाशुद्धनी

एकस्मिन् समये न समुपलभ्यन्ते, तथैकस्यानन्दगुणस्य वा त्रिविधा वेदनपर्यायां एकस्मिन् समये नोपलभ्यन्ते ।

प्रत्येकगुणस्यैकस्मिन् समये एक एव पर्यायः प्रकटीभवति । यथा—जलावस्थितस्यापि नरस्य शीतोष्णोपयोगौ न युगपद् भवतः । उष्णोपयोगसमये शीतोपयोगो नोपलभ्यते, शीतोपयोगसमये चोष्णोपयोगोपि नैवेति ।

आत्मा नित्यः । तस्य चेतनादिगुणा अपि नित्याः । परन्तु चेतनाजन्य उपयोगपर्यायो न नित्यः, सतु सदैवोत्पादविनाशालितया व्यक्तिरूपेणानित्यः । उपयोगपर्यायप्रवाहस्तु त्रैकालिकतया नित्य इति ।

उपयोगरूप पर्यायिं उपलब्ध नहीं होती । उसी प्रकार एक ही समयमें अकेले आनन्दगुणकी भी विविध वेदनरूप पर्यायिं उपलब्ध नहीं होती ।

प्रत्येक गुण की एक समय में एक ही पर्याय प्रकट होती है, परन्तु जैसे—जल में स्थित पुरुष के शीत और उष्ण, दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते । उष्णोपयोग के समय शीतोपयोग नहीं पाया जाता, और शीतोपयोग के समय उष्णोपयोग नहीं पाया जाता ।

आत्मा नित्य है, उसके चेतना आदि गुण भी नित्य हैं, परन्तु चेतनाजन्य उपयोग—पर्याय नित्य नहीं है, वह सदैव उत्पन्न और विनष्ट होती रहती है, अतः व्यक्तिरूपसे अनित्य है, उपयोग—पर्याय का प्रवाह त्रिकालवर्ती होनेके कारण नित्य है ।

विविध उपयोगरूप पर्यायो उपलब्ध नहीं होती । जैसे प्रमाणे एक ही समयमें एकला आनन्द शुष्णनी पक्ष विविध वेदनरूप पर्यायो उपलब्ध नहीं होती ।

प्रत्येक शुष्णनी एक समयमें एक ही पर्याय प्रकट थाय है, जैसे जलमें ठंडा रड़ेला पुरुषने शीत अने उष्ण, ये अने उपयोग एक साथे थशे नहीं, उष्णोपयोगना समये शीतोपयोग थशे नहीं अने शीतोपयोगना समये उष्णोपयोग जथाशे नहीं ।

आत्मा नित्य है, तेना चेतना आदि शुष्ण पक्ष नित्य है, परन्तु चेतनाजन्य उपयोग—पर्याय नित्य नहीं, ते उभेशां उत्पन्न अने नाश थती रड़े है, तेथी व्यक्तिरूपथी अनित्य है, तो पक्ष उपयोग—पर्यायने प्रवाह त्रिकालवर्ती होवाथी नित्य है ।

अनन्तगुणानामखण्डसमुदाय एव द्रव्यम्, तथाप्यात्मनश्चेतनाऽऽनन्द-
चारित्रवीर्यादयो गुणाः परिमिता एव साधारणधियां छद्मस्थानां ज्ञेया भवन्ति,
न तु सर्वे गुणाः । इदमत्र कारणम्—विशिष्टज्ञानमन्तरेणात्मनः सर्वे पर्यायप्रवाहा
विज्ञातुमशक्याः भवन्ति । यो यः पर्यायप्रवाहः साधारणबुद्ध्या ज्ञातुं शक्यते
तत्कारणीभूतानां गुणानां व्यवहारः क्रियते, अतस्ते गुणा व्यवहार्या भवन्ति ।
यथा—आत्मनश्चेतनाऽऽनन्दचारित्रवीर्यादयो गुणा व्यवहार्याः सन्ति । शेषास्तु
सर्वे केवलिगम्या इति ।

त्रैकालिकानामनन्तपर्यायाणामेकैकप्रवाहस्य कारणीभूतकैस्यैकगुणोऽस्ति,
तादृशानन्तगुणानां समुदायो द्रव्यम् । एतदपि कथञ्चिद् भेदविवक्षया । अभेद-

अनन्त गुणों का अखण्ड समुदाय ही द्रव्य है फिर भी आत्मा के चेतना
सुख, चारित्र, वीर्य आदि गुण साधारणबुद्धि वाले छद्मस्थों के द्वारा परिमित ही जाने
जाते हैं, सब गुण नहीं जाने जाते । इस का कारण यह है कि—विशिष्ट ज्ञान के बिना
आत्मा के समस्त पर्याय—प्रवाहों को जानना अशक्य है । जो जो पर्याय—प्रवाह
साधारण बुद्धि के द्वारा जाना जा सकता है, उसके कारणभूत गुणों का व्यवहार किया
जाता है, अत एव वे गुण व्यवहार्य होते हैं, जैसे—आत्मा के चेतना, सुख, चारित्र, और
वीर्य आदि गुण व्यवहार्य होते हैं । शेष सब केवलिगम्य हैं ।

तीन काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों के एक—एक प्रवाह का कारण एक—एक
गुण है, और ऐसे अनन्त गुणों का समुदाय द्रव्य है । यह कथन क्वचित् भेद-

अनन्त शुद्धोक्तो अखण्ड समुदाय एव द्रव्यं, तो षष्ठ आत्माना चेतना, सुख
आरित्र, वीर्य आदि शुद्ध साधारण बुद्धिवाणा छद्मस्थोद्वारा परिमित—पर्यायित एव
लक्ष्यवामां आवे, परंतु सर्वं शुद्ध लक्ष्यवामां आवता नथी. तेनुं कारणं अथ
के—विशिष्ट ज्ञान विना आत्माना समस्त पर्याय—प्रवाहोने लक्ष्यवा अशक्यं अथ. ए
पर्याय—प्रवाह साधारण बुद्धिवाणा द्वारा लक्ष्यी शक्यं अथ, तेना कारणभूत शुद्धोक्तो
व्यवहार करवामां आवे, अथ कारणथी ते शुद्ध व्यवहार्यं थाय अथ, एव आत्मानो
चेतना, सुख, आरित्र अने वीर्य आदि शुद्ध व्यवहार्यं थाय अथ, एकी सर्वं
केवलिगम्य अथ.

त्रय काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों का एक—एक प्रवाहनुं कारण एक—एक
गुण अथ. अने एवा अनन्त शुद्धोक्तो समुदाय, ते द्रव्य अथ. आ कथन कथञ्चित्

દૃષ્ટયા તુ પર્યાયાઃ સ્વસ્વકારણીભૂતસ્ય ગુણસ્ય સ્વરૂપાઃ, ગુણા અપિ દ્રવ્યસ્વરૂપા ઇતિ ગુણપર્યાયાત્મકમેવ દ્રવ્યમિત્યુચ્યતે ।

દ્રવ્યેષુ સર્વે ગુણા એકરૂપા ન સન્તિ । તત્ર કતિચન સાધારણાઃ અનેક-દ્રવ્યવર્તિનઃ સર્વદ્રવ્યવર્તિનશ્ચ । યથા-અસ્તિત્વ-પ્રદેશવત્ત્વ-જ્ઞેયત્વાદયઃ સર્વદ્રવ્યવર્તિનઃ, નિષ્ક્રિયત્વાઽચેતનત્વાઽરૂપિત્વાદયોઽનેકદ્રવ્યવર્તિનઃ । કતિચિદસાધારણા ગુણા એકદ્રવ્યમાત્રવર્તિનઃ સન્તિ । યથા-આત્મનશ્ચેતનાઽઽનન્દચારિત્રવીર્યાદયઃ । સ્વસ્વાઽસાધારણગુણાનાં તજ્જન્યપર્યાયાણાં ચાપેક્ષયા પ્રત્યેકદ્રવ્યમન્યદ્રવ્યાદ્ મિન્નમસ્તીતિ વોઘ્યમ્ ।

વિવિક્ષા સે હી હૈ । અમેદ-વિવક્ષા સે તો પર્યાયે અપને કારણભૂત ગુણ સે અમિન્ન હૈ ઓર ગુણ, દ્રવ્ય સે અમિન્ન હૈ, ઇતઃ ગુણપર્યાયરૂપ હી દ્રવ્ય કહલ્યાતા હૈ ।

દ્રવ્ય મેં સમી ગુણ એકરૂપ નહીં હૈં । કોઈ-કોઈ ગુણ સાધારણ હૈં, અર્થાત્ સામાન્ય રૂપ સે અનેક દ્રવ્યોં મેં પાચે જાતે હૈ, યા સમસ્ત દ્રવ્યોં મેં પાચે જાતે હૈં । જૈસે-અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ, ઓર જ્ઞેયત્વ, યે ગુણ સમસ્ત દ્રવ્યોં મેં પાચે જાતે હૈં ।

નિષ્ક્રિયત્વ, અચેતનત્વ, ઓર અરૂપિત્વ આદિ ગુણ અનેક દ્રવ્યવર્તી હૈં । કોઈ-કોઈ ગુણ અસાધારણ હૈં-સિર્ફ એક દ્રવ્ય મેં રહતે હૈં, જૈસે-આત્મા કે ચૈતન્ય, સુખ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ ગુણ । અપને-અપને અસાધારણ ગુણોં ઓર ગુણોં સે ઉત્પન્ન પયાયોં કી અપેક્ષા પ્રત્યેક દ્રવ્ય દૂસરે દ્રવ્ય સે મિન્ન હૈ, ઇસા જાનના ચાહિષ્ ।

લોહવિવક્ષાથી જ છે. અલોહવિવક્ષાથી તો પર્યાયો પોતાના કારણભૂત શુદ્ધથી અલિન્ન છે, અને શુદ્ધ દ્રવ્યથી અલિન્ન છે તેથી શુદ્ધપર્યાયરૂપ દ્રવ્ય કહેવાય છે.

દ્રવ્યમાં સર્વ શુદ્ધ એકરૂપ નથી, કોઈ કોઈ શુદ્ધ સાધારણ છે, અર્થાત્-સામાન્ય રૂપથી અનેક દ્રવ્યોમાં જોવામાં આવે છે. અથવા સમસ્ત દ્રવ્યોમાં જોવામાં આવે છે. જેમ-અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ અને જ્ઞેયત્વ, એ શુદ્ધ સમસ્ત દ્રવ્યોમાં જોવામાં આવે છે. નિષ્ક્રિયત્વ, અચેતનત્વ, અને અરૂપિત્વ આદિ શુદ્ધ અનેક દ્રવ્યવર્તી છે. કોઈ કોઈ શુદ્ધ અસાધારણ છે-માત્ર એક દ્રવ્યમાં રહે છે. જેવી રીતે આત્માના ચૈતન્ય, સુખ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ શુદ્ધ પોત-પોતાના સાધારણ શુદ્ધ અને શુદ્ધથી ઉત્પન્ન પર્યાયોની અપેક્ષા પ્રત્યેક દ્રવ્ય ધીજ દ્રવ્યથી લિન્ન છે, જેમ સમજવું જોઈએ.

आत्मनः स्वरूपम्—
आत्मनः स्वरूपं तावदुच्यते—

आत्मा—(१)-जीवः (२)-नित्यः (३)-चेतनावान्, (४)-उपयोगवान्,
(५)-परिणामी, (६)-प्रभुः, (७)-कर्ता, (८)-साक्षाद्भोक्ता, (९)-स्वशरीर-
परिमाणः, (१०)-अमूर्तः, (११)-प्रतिशरीरं भिन्नः, (१२)-पौद्गलिककर्मसंयुक्तः,
(१३)-ऊर्ध्वगतिशीलश्च ।

तत्राऽऽत्मनो जीवत्वादिस्वरूपं निरूप्यते—

(१) जीवत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन सत्ता-चेतन्य-ज्ञानादिरूपैः शुद्धप्राणैः, तथा

आत्मा का स्वरूप—

अब आत्मा का स्वरूप कहते हैं—

आत्मा—(१)-जीव है, (२)-नित्य है, (३)-चेतनावान् है, (४)-उपयोगवान् है,
(५)-परिणामी है, (६)-प्रभु है, (७)-कर्ता है, (८)-साक्षात् भोक्ता है, (९)-अपने
शरीर के बराबर है, (१०)-अमूर्त है, (११)-प्रत्येक शरीर से भिन्न है, (१२)-पौद्गलिक
कर्मों से युक्त है, और (१३)-ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला है ।

उन में अब आत्मा के जीवत्वादि स्वरूप का निरूपण करते हैं—

(१) जीवत्व का निरूपण—

आत्मा निश्चयनय से सत्ता चेतन्य और ज्ञान आदिरूप शुद्ध प्राणों से, तथा

आत्मानुं स्वरूप—

इसे आत्मानुं स्वरूप कहे थे—

आत्मा—(१) एव है, (२) नित्य है, (३) चेतनावन्त है, (४) उपयोगवन्त है,
(५) परिणामी है, (६) प्रभु है, (७) कर्ता है, (८) साक्षात् भोक्ता है, (९)
चेताना शरीर परापर है, (१०) अमूर्त है, (११) प्रत्येक शरीरमां भिन्न भिन्न
है, (१२) पौद्गलिक कर्मोर्था युक्त है, अने (१३) ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला है.

तेमां आत्माना एवत्वादि स्वइपनुं निरूपणुं कश्वामां आवे थे—

(१) एवत्वुं निरूपणुं—

आत्मा निश्चयनयधी सत्ता, चेतन्य अने ज्ञान आदिरूप शुद्ध प्राणोधी, तथा

दृष्ट्या तु पर्यायाः स्वस्वकारणीभूतस्य गुणस्य स्वरूपाः, गुणा अपि द्रव्यस्वरूपा इति गुणपर्यायात्मकमेव द्रव्यमित्युच्यते ।

द्रव्येषु सर्वे गुणा एकरूपा न सन्ति । तत्र कतिचन साधारणाः अनेक-द्रव्यवर्तिनः सर्वद्रव्यवर्तिनश्च । यथा—अस्तित्व-प्रदेशवत्त्व-ज्ञेयत्वादयः सर्वद्रव्यवर्तिनः, निष्क्रियत्वाऽचेतनत्वाऽरूपित्वादयोऽनेकद्रव्यवर्तिनः । कतिचिदसाधारणा गुणा एकद्रव्यमात्रवर्तिनः सन्ति । यथा—आत्मनश्चेतनाऽऽनन्दचारित्रवीर्यादयः । स्वस्वाऽसाधारणगुणानां तज्जन्यपर्यायाणां चापेक्षया प्रत्येकद्रव्यमन्यद्रव्याद् भिन्नमस्तीति बोध्यम् ।

विविधा से ही है । अनेक-विविधा से तो पर्यायों अपने कारणभूत गुण से अभिन्न हैं और गुण, द्रव्य से अभिन्न हैं, अतः गुणपर्यायरूप ही द्रव्य कहलाता है ।

द्रव्य में सभी गुण एकरूप नहीं हैं । कोई-कोई गुण साधारण हैं, अर्थात् सामान्य रूप से अनेक द्रव्यों में पाये जाते हैं, या समस्त द्रव्यों में पाये जाते हैं । जैसे—अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रदेशवत्त्व, और ज्ञेयत्व, ये गुण समस्त द्रव्यों में पाये जाते हैं ।

निष्क्रियत्व, अचेतनत्व, और अरूपित्व आदि गुण अनेक द्रव्यवर्ती हैं । कोई-कोई गुण असाधारण हैं—सिर्फ एक द्रव्य में रहते हैं, जैसे—आत्मा के चैतन्य, सुख, चारित्र, वीर्य आदि गुण । अपने-अपने असाधारण गुणों और गुणों से उत्पन्न पर्यायों की अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य दूसरे द्रव्य से भिन्न है, ऐसा जानना चाहिए ।

बोद्धविविधाधी ७ छे. अनेकविविधाधी तो पर्यायो पोताना कारणभूत शुषुधी अभिन्न छे, अने शुषु द्रव्यधी अभिन्न छे तेधी शुषुपर्यायरूप ७ द्रव्य कडेवाय छे.

द्रव्यमां सर्वं शुषु ऐकरूप नहीं, कौं कौं शुषु साधारण छे, अर्थात्—सामान्य रूपधी अनेक द्रव्योमां जेवामां आवे छे. अथवा समस्त द्रव्योमां जेवामां आवे छे. जेम—अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रदेशवत्त्व अने ज्ञेयत्व, ओ शुषु समस्त द्रव्योमां जेवामां आवे छे. निष्क्रियत्व, अचेतनत्व, अने अरूपित्व आदि शुषु अनेक द्रव्यवर्ती छे. कौं कौं शुषु असाधारण छे—मात्र ऐक द्रव्यमां रडे छे. जेवी रीते आत्माना चैतन्य, सुख, चारित्र, वीर्य आदि शुषु. पोत-पोताना साधारण शुषु अने शुषुधी उत्पन्न पर्यायोनी अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य भीज द्रव्यधी भिन्न छे, ऐम समस्तुं जेधजे.

दहन-पवन-गगनरूपपञ्चभूतेषु चुल्लुपरि मिलितेषु चेतनालक्षण आत्मा कथं नोपलभ्यते ? ।

यद्वा-मृतशरीरे पञ्चभूतसद्भावेऽपि चेतनालक्षण आत्मा नोपलभ्यते । अतोऽयमात्मा जडरूपपाञ्चभौतिकदेहाद् भिन्नो निश्चयते ।

अपरञ्च-आत्मनो देहरूपत्वस्वीकारे कृतनाशोऽकृताभ्यागमश्चापद्यत । कृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिं विनैव नाशः स्यात्, अकृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिश्च । अकर्तुः फलप्राप्तिः, कर्तुश्च नेति द्वयमयुक्तम् । तस्मात्-आत्मा देहाद् भिन्नो जन्मान्तरसंक्रान्तोऽपीति निश्चयम् ।

होता है तो चेतनारूप आत्मा क्यों नहीं पैदा हो जाता ?, वही पांचों भूतों का संयोग विद्यमान है और उसीसे आत्मा की उत्पत्ति मानते हो ?

अथवा-मृत शरीर में पांचों भूतों का सद्भाव होने पर भी चेतनस्वरूप आत्मा क्यों उपलब्ध नहीं होता ?, इस से निश्चित होता है कि आत्मा जडरूप पांच भूतों से भिन्न है और नित्य है ।

और भी आत्मा को देहरूप स्वीकार करने से कृतनाश और अकृताभ्यागम दोष की प्राप्ति होगी । किए हुए कर्म, फल दिए बिना ही नाश हो जायगा, और अकृत कर्म के फल को भोगना पड़ेगा । कर्म न करने वाला फल भोगे और करने वाला फल से बच जाय, यह दोनों बातें अनुचित हैं, अतः अब यह निश्चय कर लेना चाहिए कि-आत्मा शरीर से भिन्न है और जन्मान्तर में गमन करता है ।

चेतनारूप आत्मा કેમ પેદા થતો નથી ?, અહિં પાંચ ભૂતોનો સંયોગ વિદ્યમાન છે અને તેમાંથી તમે (નાસ્તિકો) આત્માની ઉત્પત્તિ માનો છો ?

અથવા-મૃત્યુ પામેલા શરીરમાં પાંચ ભૂતોનો સહભાવ હોવા છતાંય ચેતનસ્વરૂપ આત્મા કેમ ઉપલબ્ધ થતો નથી ?, એ કારણથી નિશ્ચય થાય છે કે:-આત્મા જડ સ્વરૂપ પાંચભૂતોથી ભિન્ન છે અને નિત્ય છે.

અને ખીનું એ પણ છે કે-આત્માને દેહરૂપ સ્વીકાર કરવાથી કૃતનાશ અને અકૃતાભ્યાગમ દોષની પ્રાપ્તિ થશે, કરેલા કર્મ, કૃણ આપ્યા વિના જ નાશ થઈ જશે. અને અકૃત-નહિ કરેલા કર્મનું કૃણ ભોગવવું પડશે. કર્મ નહિ કરવાવાળાને કર્મનું કૃણ ભોગવવું પડે, અને કર્મ કરનાર કૃણ ભોગવવામાંથી બચી નથી. આ બંને વાત અનુચિત છે. એ કારણે એ નિશ્ચય કરી લેવો જોઈ એ કે આત્મા શરીરથી ભિન્ન છે, અને જન્માન્તર ગમન કરે છે.

વ્યવહારનયતો યથાસંભવં ક્ષાયોપશમિકૈરિન્દ્રિયાદિદ્રવ્યપ્રાણૈશ્ચ જીવતિ, જીવિષ્યતિ, જીવિતવાંશ્ચેત્યતોઽપ્યમાત્મા 'જીવઃ' ઇત્યુચ્યતે ।

“અયમાત્મા ન દેહાદન્યઃ, નાપિ જન્માન્તરસંક્રાન્તઃ” ઇતિ નાસ્તિકમતં નિરાકર્તુમુક્તમ્-‘અયમાત્મા જીવઃ’ ઇતિ । પૂર્વભવસંસ્કારં વિના કથમિદં પ્રમૃત એવ ચાલો માતુઃ સ્તન્યપાને પ્રવર્તતે । પ્રવૃત્તિ પ્રતિ સ્વકૃતિસાધ્યત્વસ્યેષ્ટસાધનતાજ્ઞાનસ્ય ચ કારણતયા ચાલસ્ય તજ્ઞાનજનકપૂર્વભવીયસંસ્કારોઽસ્તીતિ વિજ્ઞાયતે । તસ્માદાત્મનઃ પૂર્વભવસમ્બન્ધોઽવધાર્યતે । તેન ચ દેહમિન્નત્વમપિ જ્ઞાયતે ।

અયમાત્મા યદિ પાશ્ચમૌતિકદેહરૂપઃ સ્યાત્, તર્હિ મૃન્મયમાણ્ડ-સલિલ-

વ્યવહારનય સે યથાસંભવ ક્ષયોપશમ-જન્ય ઇન્દ્રિયાદિ દ્રવ્યપ્રાણો સે જીવિત હૈ, જીવિત રહેગા ઓર જીવિત થા, હસ કારણ આત્મા 'જીવ' કહલાતા હૈ ।

“આત્મા શરીર સે ભિન્ન નહીં હૈ ઓર ન એક જન્મ સે દૂસરે જન્મ મેં જાતા હૈ” નાસ્તિકોં કે હસ મત કા નિરાકરણ કરને કે લિંપ કહા ગયા હૈ કિ- “આત્મા જીવ હૈ” । પૂર્વભવ કે સંસ્કાર કે વિના હસ ભવ મેં તત્કાલ જન્મા હુઆ શિશુ માતા કે સ્તન-પાન મેં કૈસે પ્રવૃત્ત હો સકતા હૈ ?, શિશુ કી હસ પ્રવૃત્તિ સે સિદ્ધ હોતા હૈ કિ ઉસ મેં પૂર્વ ભવ કા સંસ્કાર વિદ્યમાન હૈ । હસ સે નિશ્ચિત હો જાતા હૈ કિ-આત્મા પૂર્વ ભવ મેં મી થા, ઓર હસ કારણ વહ શરીર સે ભિન્ન મી માલૂમ હોતા હૈ ।

પાંચ મૂતોં સે બના હુઆ શરીર હો યદિ આત્મા હૈ તો મિટ્ટી કા પાત્ર, પાની, પાવક-(અગ્નિ), પવન ઓર આકાશ રૂપ પાંચોં મૂતોં કા ચૂલે કે ઉપર જવ સંયોગ

વ્યવહારનયથી યથાસંભવ ક્ષયોપશમજન્ય ઇન્દ્રિયાદિ દ્રવ્યપ્રાણોથી જીવિત છે, જીવિત રહેશે અને જીવિત હતો, તેથી આત્મા 'જીવ' કહેવાય છે. “આત્મા શરીરથી ભિન્ન નથી, અને એક જન્મથી બીજા જન્મમાં જતો નથી” નાસ્તિકોનો એ પ્રમાણ જે મત છે, તેનું નિરાકરણ કરવા માટે કહ્યું છે કે “આત્મા જીવ છે.” પૂર્વ ભવના સંસ્કાર વિના આ ભવમાં તત્કાલ જન્મ પામેલું બાળક માતાના સ્તનપાનમાં (ધાવવામાં) પ્રવૃત્તિ કેવી રીતે કરી શકે છે ?, બાળકની આ પ્રવૃત્તિથી સિદ્ધ થાય છે કે:-તેનામાં પૂર્વ ભવના સંસ્કાર વિદ્યમાન છે. આ કારણથી નિશ્ચય થાય છે કે આત્મા પૂર્વભવમાં પણ હતો, અને તે કારણથી આત્મા શરીરથી ભિન્ન માલૂમ પડે છે.

પાંચ મૂતોથી બનેલું શરીર જે જે આત્મા છે તો માટીનું પાત્ર, પાણી, અગ્નિ, આકાશ, પવન વગેરે પાંચ મૂતોનો ચુલા ઉપર ન્યારે સંયોગ થાય છે, તો તે વખતે

યથા-જાતિસ્મરણશક્ત્યા મૃગાપુત્રવત્ સંયમી પૂર્વભવં સ્મરતિ, ઘ્યાધ્યાદિકારણેન નષ્ટદષ્ટિઃ પૂર્વાનુભૂતં રક્તપીતાદિવર્ણં, નષ્ટશ્રવણશ્ચ શબ્દં સ્મરતિ । યથા ગેહગવાક્ષૈઃ પૂર્વદૃષ્ટસ્ય પૂર્વશ્રુતસ્યાન્યત્રાનુસ્મર્તા દેવદત્તઃ ।

(૨) નિત્યત્વનિરૂપણમ્—

અયમાત્મા નિત્યત્વાદમૂર્ત્ત્વં ઇતિ વિજ્ઞાયતે । અમૂર્ત્ત્વાચ્ચ દેહાદન્ય ઇતિ નિશ્ચીયતે । તથાહિ-આત્માઽનુત્પત્તૌ સત્યામવિનાશી, તથા સર્વકાલાવસ્થાયી । તથા-આત્મા ક્ષણાપેક્ષયાપિ ન નિરન્વયનાશવાન્ ; વસ્તુત્વે સતિ ઉત્પત્તેરભાવાત્ , જ્ઞાન સે મૃગાપુત્ર કો પૂર્વ ભવ કા સ્મરણ હુઆ થા । કોઈ-કોઈ સંયમી અપને પૂર્વભવ કા સ્મરણ કરતા હૈ । રોગ આદિ કિસી કારણ સે જિસ કી દૃષ્ટિ નષ્ટ હો ગઈ હૈ, વહ પુરુષ પહેલે અનુભવ કિણ હુણ લાલ પીણે આદિ રંગોં કો સ્મરણ કરતા હૈ, ઓર જિસકે કાન નષ્ટ હો ગયે હૈં વહ શબ્દ કા સ્મરણ કરતા હૈ । કિસી ઘર કી સ્વિક્રિયાં કે દ્વારા પહેલે દેલે હુણ પદાર્થોં કા યા સુને હુણ શબ્દોં કા દેવદત્ત કો અન્યત્ર સ્મરણ હોતા હૈ, અત ઇવ દેવદત્ત સ્વિક્રિયાં સે ભિન્ન હૈ । ડસી પ્રકાર આત્મા, ઇન્દ્રિયાં સે ભિન્ન હૈ ।

(૨) આત્માકી નિત્યતા—

આત્મા નિત્ય હોને કે કારણ અમૂર્ત પ્રતીત હાતા હૈ ઓર અમૂર્ત હોને કે કારણ દેહ સે ભિન્ન હૈ । વહ ઇસ પ્રકાર-આત્મા ઉત્પત્તિરહિત ઓર અવિનાશી હૈ, તથા સર્વકાલ મં સ્થાયી હૈ, તથા આત્મા ક્ષણ ની અપેક્ષા મી નિરન્વય (સમૂલ) નાશવાન્ નહીં હૈ, ક્યોં કિ વસ્તુ હોને પર મી ડસ કી ઉત્પત્તિ નહીં હોતી; જૈસે આકાશ । જ્ઞાનથી મૃગાપુત્રને પૂર્વભવનું સ્મરણ થયું હતું. કોઈ કોઈ સંયમીને પોતાના પૂર્વ ભવનું સ્મરણ થાય છે. રોગ આદિ કોઈ કારણથી જેની દૃષ્ટિ (નેત્રથી જોવાની શક્તિ) નાશ પામી ગઈ છે તે પુરુષ પ્રથમ અનુભવેલા લાલ, પીળા આદિ રંગોનું સ્મરણ કરે છે. અને જેના કાન નષ્ટ થઈ ગયા હોય- (સાંભળવાની શક્તિ નાશ પામી હોય) તે શબ્દનું સ્મરણ કરે છે. કોઈ ઘરની ખડકીઓ દ્વારા પ્રથમ જોયેલા પદાર્થોનું અથવા તે સાંભળેલા શબ્દનું દેવદત્તને અન્યત્ર-ળીળ સ્થળે સ્મરણ થાય છે. એ કારણથી દેવદત્ત ખડકીઓથી ભિન્ન છે. તે પ્રમાણે આત્મા ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન છે.

(૨) આત્માની નિત્યતા—

આત્મા નિત્ય હોવાના કારણે અમૂર્ત જણાય છે અને અમૂર્ત હોવાના કારણે, દેહથી ભિન્ન છે. તે આ પ્રમાણે-આત્મા ઉત્પત્તિરહિત અને અવિનાશી છે, તથા સર્વ કાલમાં સ્થાયી છે, અને ક્ષણની અપેક્ષા પણ નિરન્વય (સમૂળ) નાશવાન્ નથી,

આત્મા દેહે કદાચિત્તિષ્ઠતિ, કદાચિન્ન તિષ્ઠતિ, અતઃ તસ્યામાવસ્તુ
નિયતો નાસ્તિ । તસ્માદ્ દેહાદન્ય ઇતિ મન્તવ્યમ્ । ણ્વમનુમાનપયોગઃ—

આત્મા—દેહાદન્યઃ, તદ્ભાવેઽપિ તન્ તસ્યાનિયમેનામાવાત્, ઉપાશ્રયગતસાધુ-
શ્રાવકવત્ । નતુ દેહે જીવસ્ય ગમનાગમનં ન દૃશ્યતે, તથા ચ જીવસ્ય દેહે શ્દા
સન્દ્ભાવસત્ત્વેનામાવરૂપો દેહુરપ્રસિદ્ધ ઇતિ ચેન્ન, મૃતશરીરે તસ્યાદર્શનાત્ ।

યદ્વા—આત્મા દેહેન્દ્રિયભિન્નઃ. તદ્વિગમેઽપિ તદુપરુધાર્યાનુસ્મરણાત્ ।

આત્મા શરીર મેં કમી રહતા હૈ, કમી નહીં રહતા, અતઃ ડસકા અમાવ વહીં નિયત
નહીં હૈ । અત ઇવ માનના ચાહિળ કિ—આત્મા દેહ સે ભિન્ન હૈ । અનુમાન કા પ્રયોગ
ઇસ પ્રકાર કરના ચાહિળ :—

આત્મા શરીર સે ભિન્ન હૈ, ક્યોં કિ દેહ કે હોને પર મી આત્મા વહીં નિયમ સે નહીં
રહતા, ઉપાશ્રય મેં સ્થિત સાધુ શ્રાવક કે સમાન ।

શંકા—શરીર મેં જીવ કા ગમન ઓર આગમન દિલ્લાઈ નહીં દેતા અતઃ વહ
દેહ મેં સદૈવ વિદ્યમાન રહતા હૈ । ઇસી અવસ્થા મેં આપ કા યહ અમાવ સિદ્ધ કરને વાલ
હેતુ અસિદ્ધ હૈ ।

સમાધાન—ઇસા કહના સમીચીન નહીં હૈ, ક્યોં કિ મૃત શરીર મેં આત્મા માલૂમ
નહીં હોતા ।

અથવા—આત્મા દેહ ઓર ઇન્દ્રિયોં સે ભિન્ન હૈ, ક્યોં કિ ડનકે નષ્ટ હો
જાને પર મી ડનકે દ્વારા જાને હુઘ પદાર્થ કા સ્મરણ હોતા હૈ । જૈસે જાતિસ્મરણ

આત્મા શરીરમાં કોઈ વખત રહે છે, કોઈ વખત નથી રહેતો તેથી તેનો
અભાવ ત્યાં ચોક્કસ રૂપથી નથી. તેથી માનવું જોઈએ કે:—આત્મા દેહથી ભિન્ન છે.
અનુમાનનો પ્રયોગ આ પ્રમાણે કરવો જોઈએ:—

આત્મા શરીરથી ભિન્ન છે, કેમકે દેહ હોવા છતાં આત્મા ત્યાં નિયમથી
રહેતો નથી, ઉપાશ્રયમાં રહેલા સાધુ શ્રાવક પ્રમાણે.

શંકા—શરીરમાં જીવન-જીવન, અને આગમન-આવવું તે નજરે જોવામાં
આવતું નથી, તેથી તે દેહમાં સદૈવ વિદ્યમાન રહે છે. એવી અવસ્થામાં આપનો એ
અભાવ સિદ્ધ કરવાનો હેતુ અસિદ્ધ છે. એમ કહેવું તે બરાબર નથી, કેમકે મૃત
શરીરમાં આત્મા માલૂમ પડતો નથી.

અથવા—આત્મા દેહ અને ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન છે, કારણ કે—તેનો નાશ થયા
પછી પણ તેના દ્વારા જાણવામાં આવેલા પદાર્થનું સ્મરણ થાય છે. જેમ જાતિસ્મરણ

ત્વામૂર્ત્વયોરાત્મન્યેકાન્તતોઽનન્વીકારાત્ ।

યદ્વા-આત્મા નિત્યઃ સંસારાત્, ત્રિકાલવિપયકક્રિયાપર્યાલોચકત્વાત્, 'સ એપ્' ઇતિ પ્રત્યભિજ્ઞાવત્ત્વાત્ । અનેન હેતુત્રયેણ ક્ષણિકવાદો નિરસ્તઃ ।

યત્તુ-આત્મા-એકાન્તનિત્યઃ 'નૈનં છિન્દન્તિ શત્ત્વાણિ' ઇત્યાદિવચનપ્રામાણ્યાત્, 'સ એપ્ અક્ષયોઽજઃ' ઇત્યાદિશ્રુતિપ્રામાણ્યાચ, ઇતિ, તન્ન યુક્તમ્, આત્મન એકસ્વભાવત્વે સંસરણાદિવ્યવહારોચ્છેદાપત્તિઃ સ્યાત્ તસ્માત્ કથચ્ચિન્નિત્યઃ કથચ્ચિદનિત્ય ઇતિ ।

મં વ્યભિચાર ક્વી આશંકા નહીં કરના, ક્યો કિ આત્મા મં નિત્યત્વ ઓર અમૂર્ત્વ એકાન્ત રૂપ સે નહીં માના ગયા હૈ ।

અથવા-આત્મા નિત્ય હૈ, ક્યો કિ વહ એક ગતિ સે દૂસરી ગતિ મં જાતા હૈ, ક્યો કિ વહ ત્રિકાલવિપયક ક્રિયાકા અલોચક હૈ, ઓર વહ પ્રત્યભિજ્ઞાન (યહ વહી હૈ ઇસ પ્રકાર કા જોડરૂપ જ્ઞાન) વાળા હૈ । ઇન ત્રીન હેતુઓ સે ક્ષણિકવાદકા નિરાકરણ હો ગયા ।

' નૈનં છિન્દન્તિ શત્ત્વાણિ ' ઇત્યાદિ વચન સે ઓર 'સ એપ્ઃ અક્ષયોઽજઃ' ઇત્યાદિ શ્રુતિ કે પ્રમાણ સે આત્મા એકાન્ત નિત્ય સિદ્ધ હોતા હૈ । એસા કહના મી યુક્ત નહીં હૈ, ક્યો કિ આત્મા કો એકાન્ત નિત્ય સ્વભાવ વાળા માનને સે સંસરણ (એક જન્મ સે દૂસરે જન્મ મં જાના) આદિ વ્યવહારો કા નાશ હો જાયગા । અત એવ કથચ્ચિત્ નિત્ય ઓર કથચ્ચિત્ અનિત્ય આત્મા સ્વીકાર કરના ચાહિં ।

વ્યભિચારની આશંકા કરવી નહિ. કારણ કે આત્મામાં નિત્યત્વ અને અમૂર્ત્વ એકાન્તરૂપથી માનવામાં આંચું નથી.

અથવા-આત્મા નિત્ય છે, કારણ કે તે એક ગતિથી બીજી ગતિમાં જાય છે, કારણ કે-તે ત્રિકાલવિપયક ક્રિયાનો આલોચક (વિચાર કરનાર) છે, અને તે પ્રત્યભિજ્ઞાન ('આ તેજ છે' એ પ્રકારનું જોડરૂપ જ્ઞાન) વાળો છે. આ ત્રણ હેતુઓ વડે કરી ક્ષણિકવાદનું નિરાકરણ થઈ ગયું છે.

" નૈનં છિન્દન્તિ શત્ત્વાણિ " ઇત્યાદિ વચનથી અને 'સ એપ્ અક્ષયોઽજઃ' ઇત્યાદિ શ્રુતિના પ્રમાણથી આત્મા એકાન્ત નિત્ય સિદ્ધ થાય છે. એમ કહેવું તે પણ યુક્ત નથી, કારણ કે આત્માને એકાન્ત નિત્ય સ્વભાવ વાળો માનવાથી સંસરણ (એક જન્મથી બીજા જન્મમાં જવું તે) આદિ વ્યવહારોનો નાશ થઈ જશે, એ કારણથી કથચિત્ નિત્ય અને કથચિત્ અનિત્ય આત્મા છે. એ પ્રમાણે સ્વીકાર કરવો જોઈએ.

यथा गगनम् । अनुत्पत्तौ सत्यामविनाशित्वेन, तथा सर्वकालावस्थायित्वेन, तथा क्षणापेक्षयाऽपि निरन्वयनाशाभाववच्चेन चात्मनो नित्यत्वं सिध्यति । देहात्म-वादिना परिमितकालावस्थायित्वमात्मनो मन्यते, तथा क्षणिकवादिनापि निरन्वय-क्षणिकपरिणामप्रवाहस्य नित्यत्वं स्वीक्रियते । तौ चैवंविधनित्यत्वसाधनेन निराकृतौ । शशशङ्कादावपि जन्माभावसच्चेन हेतौ साध्यव्याप्तिर्न स्यादतो वस्तुत्वे सतीत्युक्तम् ।

न चामूर्तत्वस्य परमाणौ व्यभिचार आशङ्कनीयः, आर्हतमते नित्य-

उत्पत्तिरहित और अविनाशी होने के कारण, तथा सर्वकाल में विद्यमान रहने के कारण और क्षण की अपेक्षा भी समूल नाशवान् न होने के कारण आत्मा की नित्यता सिद्ध होती है । देह को ही आत्मा मानने वाला कहता है कि—आत्मा परिमित काल तक ठहरता है । तथा क्षणिकवादी भी निरन्वय क्षणिक परिणाम—प्रवाह को नित्य मानता है । इस प्रकार आत्मा की नित्यता सिद्ध करके इन दोनों के मत का निराकरण किया गया है । प्रस्तुत हेतु में 'वस्तु होते हुए भी' यह विशेषण इस लिये लगाया है कि शश—विषाण आदि से व्यभिचार (हेतु हो और साध्य न हो) न हो, क्योंकि उत्पत्ति का अभाव तो उन में भी है किन्तु वस्तुत्व उन में नहीं है ।

अमूर्तत्व, परमाणु में नहीं है और वहाँ नित्यत्व हेतु है, इस लिये परमाणु

केमके वस्तु छतांय तेनी उत्पत्ति नथी होती, जेमके आकाश. उत्पत्तिरहित अने अविनाशी होवाना कारण, तथा सर्वकालमां विद्यमान रहेवाना कारण, अने क्षणिकी अपेक्षाये पणु समूणयो नाशवान नहि होवाना कारण आत्माणी नित्यता सिद्ध थाय छे. देहने जे आत्मा मानवावाणा कडे छे के:-आत्मा परिमित काल सुधी थाले छे, तथा क्षणिकवादी पणु निरन्वय क्षणिक-परिणामप्रवाहने नित्य माने छे. आ प्रमाणे आत्माणी नित्यता सिद्ध करीने अने अने (देहवादी अने क्षणिकवादी)ना मतनुं निराकरण कथुं छे. प्रस्तुत हेतुमां "वस्तु होवा छतांय पणु" अने विशेषण अने कारणथी आप्युं छे के:-शश-विषाणु-(ससलानां शिंकां) आदिथी व्यभिचार (हेतु होय अने साध्य न होय) न थाय, कारण के उत्पत्तिने अलाव तो तेमां पणु छे, परंतु वस्तुत्व तेमां नथी.

अमूर्तत्व, परमाणुमां नथी, अने त्यां नित्यत्व हेतु छे, अने कारणथी परमाणुमां

यद्वा—आत्मा नित्यः स्वकारणविभागाभावाद् आकाशवत् । आकाशस्य कारणाभावादेव कारणविभागो नास्ति । यस्तु न नित्यः, स न स्वकारणविभागाभाववान्, यथा पटः । दृश्यते हि पटस्तन्तूनां विभागो भवतीति ।

किञ्च—आत्मा नित्यः कारणविनाशाभावाद् आकाशवदेव । कारणाभावादेव हि कारणस्य विनाशाभावः, यथा गगनमेव । यो न नित्यः, स न कारणविनाशाभाववान् अर्थात् कारणविनाशवानेव, यथा पटः । दृश्यते हि पटकारणीभूतस्य तन्तोर्विनाशो भवतीति । अयं चात्मा स्वकारणाभावेन कारणविनाशाभाववान्, तस्मान्नित्य इति । नित्यत्वादयममूर्तः, अमूर्तत्वाच्च शरीराद् भिन्न इति निश्चीयते ।

अथवा—आत्मा नित्य है, क्यों कि उस के कारणों का विभाग नहीं है, जैसे आकाश । आकाश के कारणों का अभाव है, इसी कारण उसके कारणों का विभाग भी नहीं है । जो नित्य नहीं है, वह अपने कारणों के विभाग का अभाव वाला भी नहीं होता जैसे—पट । पट से तन्तुओं का विभाग होता दिखाई देता है ।

और भी—आत्मा नित्य है, क्यों कि उसके कारणों के विनाश का अभाव है, जैसे—आकाश । कारणों का अभाव होने से ही कारणों के विनाश का अभाव है जैसे आकाश । जो नित्य नहीं होता वह कारण—विनाशभाव वाला भी नहीं होता, जैसे पट, देखा जाता है कि—पट के कारणभूत तन्तुओं का नाश हो जाता है । आत्मा के जनक कारणों का अभाव है अतः वह कारणों के विनाशका अभाव वाला है, अर्थात् आत्मा के कारण ही नहीं हैं तो उसके कारणों का अभाव क्या होगा ?

अथवा—आत्मा नित्य છે, કેમકે તેના કારણોનો વિભાગ નથી, જેમ આકાશ. આકાશને કારણોનો અભાવ છે તેથી જ તેના કારણોનો વિભાગ પણ નથી. જે નિત્ય નથી તે પોતાના કારણોના વિભાગના અભાવવાળો પણ નહિ થાય, જેમ પટ. પટથી તંતુઓનો વિભાગ થતાં જોવામાં આવે છે.

ફરી પણ—આત્મા નિત્ય છે. કારણ કે તેના કારણોના વિનાશનો અભાવ છે, જેમ આકાશ. કારણોનો અભાવ હોવાથી જ કારણોના વિનાશનો અભાવ છે. જેમ આકાશ જે નિત્ય નથી તે કારણવિનાશભાવવાળું પણ નથી, જેમ પટ. જોવામાં આવે છે કે—પટના કારણભૂત તંતુઓનો નાશ થાય છે. પણ આત્માના જનક કારણોનો અભાવ છે, તેથી તે કારણોના વિનાશનો અભાવવાળો છે, અર્થાત્ આત્માને

स्वीकर्तव्यम् । द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः, पर्यायार्थिकनयेन-अनित्य इति । एवमनङ्गीकारे हि 'संसार'—दित्याद्युक्तहेतूनामसंगतिः स्यात् । आत्मन एकत्वभावतस्वीकारे स्वभावान्तरानापत्त्या वर्तमानकालिकभावातिरिक्तं भावान्तरं न लब्धुमर्हत् । एवमनित्यत्वामूर्तत्वयोरपि स्याद्वाद आलम्बनीयः, अन्यथा व्यवहारोच्छेद-प्रसंगः स्यात्, एकान्तामूर्तस्य, तथैकान्ततो देहभिन्नस्य चातिपाठादिप्रसंगाभावे सति हिंसादिनिवृत्तिदेशनादिपरकचरणकरणादिवोधकसकलशास्त्रानर्थक्यं, तथाऽऽत्मनः संसारगतादिनुद्धारश्च स्यात् ।

आत्मा द्रव्यार्थिकनय से नित्य है और पर्यायार्थिकनय से अनित्य है । ऐसा स्वीकार न करने पर 'संसरण करने से' इत्यादि पूर्वोक्त हेतु असङ्गत हो जायेंगे । एक स्वभाव वाला आत्मा स्वीकार किया जाय तो उस में दूसरे स्वभाव की उत्पत्ति नहीं होगी, और वर्तमानकालीन भाव के अतिरिक्त दूसरे भाव कभी प्राप्त नहीं होगा । इसी प्रकार अनित्यत्व और अमूर्तत्व के विषय में भी स्याद्वादका ही आश्रय लेना चाहिए, अन्यथा व्यवहार के अभाव का प्रसङ्ग भाएगा । आत्मा को एकान्त अमूर्त मानने से, तथा देह से एकान्त भिन्न मानने से उस का घात होना असंभव है, और इस दिशा में हिंसा आदि से निवृत्त होने का उपदेश देने वाले चरण-करण आदि के बोधक सब शास्त्र व्यर्थ हो जाएँगे । इस के अतिरिक्त आत्मा का संसाररूपी सङ्घे से कभी उद्धार भी नहीं होगा ।

आत्मा द्रव्यार्थिक नयधी नित्य छे, अने पर्यायार्थिक नयधी अनित्य छे, ओ प्रभाण्णु स्वीकार नहिं करवाथी 'संसारणु करवाथी' इत्यादि पूर्वोक्त हेतु असंगत थध-जशे. ओक स्वभाववाणो आत्मा स्वीकार करवाभां आवशे तो तेभां गीज स्वभावनी उत्पत्ति नहिं थाय, अने वर्तमानकालीन भाव विना गीजे लाव केध पणु वपत प्राप्त नहिं थाय, ओ प्रभाण्णु अनित्यत्व अभूर्तत्वना विषयभां पणु स्याद्वादने ज आश्रय लेवो जेधजे. अन्यथा व्यवहारना अभावना प्रसंग आवशे. आत्माने ओकान्त अभूर्त मानवाथी तथा देहथी ओकान्त भिन्न मानवाथी तेना घात थवो असंभव छे, अने ओ दशभां हिंसा आदिथी निवृत्त थवानो उपदेश देवावाणा अरणु-करणु आदिना बोधक तभाभ शास्त्रो व्यर्थ थध जशे. ते सिवाय आत्मानो संसाररूपी आडाथी केध वपत पणु. उद्धार नहिं थाय.

સમાલમ્બને તુ મુલ્લદુઃસ્વાદયઃ સર્વે આત્મનોઽપ્રચ્યુતાનુત્પન્નસ્થિરૈકસ્વમાવતયાઽ-
ન્યયાત્વરૂપપરિણામાસંભવાન્નોપપદેરન્, નારકત્વાદિભાવો યસ્ય યાદૃશો વિદ્યતે,
તદન્યરૂપતાં નાસીં પ્રપદેત ।

માવતોઽપ્રસન્નસ્યાત્મનઃ પૂર્વરૂપાપરિત્યાગે સતિ પુનઃ પ્રસન્નરૂપતાયા
અસંભવઃ સ્યાત્ । દૃશ્યતે પુનરપસન્નસ્ય કદાચિત્ પ્રસન્નતાઽપિ, સા નોપપદેત ।
તસ્માદેકાન્તવાદં પરિત્યજ્યાનેકાન્તવાદઃ સમાલમ્બનીયઃ ।

(૩) ચેતનાવચ્ચનિરૂપણમ્—

અયમાત્મા નિશ્ચયનયેન શુદ્ધચેતનાસદ્ધિઃ, વ્યવહારનયેન ચ કર્માદિ

સ્વીકાર કરને પર આત્મા અપ્રચ્યુત, અનુત્પન્ન ઓર સ્થિર એકરૂપ તથા એક સ્વભાવ
વાળા હોને કે કારણ, ઓર ડસમં રૂપાન્તર હોના અસંભવ હોને સે મુલ્લ દુઃસ્વાદિ નહીં
હોંગે, અતઃ ત્રિભિન્ન અવસ્થાએં મી નહીં હો સર્કેંગી, ફિર જો આત્મા નારકત્વાદિ
ત્રિસ રૂપ મેં હૈ વહ સર્વદા ડસી રૂપ મેં રહેગી—એક મવ સે દૂસરે મવ મેં નહીં જા
સકેગી । જો આત્મા અપ્રસન્ન હૈ, મગર અપ્રસન્ન કા મી કમી પ્રસન્ન હોના દિસ્વાઈ દેતા હૈ,
ફિર એસા ન હો સકેગા । અત ઇવ એકાન્તવાદ કા ત્યાગ કરકે અનેકાન્તવાદ કા આશ્રય
લેના ચાહિળ ।

(૩) ચેતનાવચ્ચ—

યહ આત્મા નિશ્ચયનય સે શુદ્ધ ચેતના સે યુક્ત હૈ ઓર વ્યવહારનય સે

સ્વીકાર કરવાથી આત્મા અપ્રચ્યુત, અનુત્પન્ન અને સ્થિર એકરૂપ તથા એક સ્વભાવ
વાળા હોવાના કારણે તેમાં રૂપાન્તર થવું અસંભવિત હોવાથી મુખ્ય—દુઃખાદિ નહિ
હોય. તે કારણથી વિભિન્ન અવસ્થાઓ પણ થઈ શકશે નહિ. ફરી જે આત્મા
નારકત્વાદિ જે રૂપમાં છે, તે સર્વદા તે રૂપમાં જ રહેશે. એટલે એક ભવમાંથી
બીજા ભવમાં જઈ શકશે નહિ. વળી જે આત્મા અપ્રસન્ન છે તે પોતાના પૂર્વરૂપનો
પરિત્યાગ ન કરે તે તેને ફરી પ્રસન્નતામાં આવવું તે અસંભવ છે, પરંતુ અપ્રસન્ન
પણ કોઈ વખત પ્રસન્ન હોય એમ દેખાય છે; ફરી એમ નહિ થઈ શકશે. એ
કારણથી અનેકાન્તવાદનો ત્યાગ કરીને અનેકાન્તવાદનો આશ્રય લેવો જોઈએ.

(૩) ચેતનાવચ્ચ—

આ આત્મા નિશ્ચયનયથી શુદ્ધ ચેતનાથી યુક્ત છે અને વ્યવહારનયથી ‘આત્માને

પરન્ત્વેકાન્તનિત્યત્વે, એકસ્વાત્મનો નારકતિર્યક્મનુષ્યદેવગતિપરિણામ
નોપપદેરન્ । એકાન્તક્ષણિકત્વેઽપિ સ્વાધ્યાયાધ્યયનધ્યાનાદિપરિશ્રમમત્યમિજ્ઞાનં
નોપપદેત । તસ્માદાત્મા કથન્ચિન્નિત્યઃ, કથન્ચિદનિત્યઃ, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम् ।

ચતુ—“ દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવૈરેકાન્તેનૈવ નિત્યઃ, અવિચલિતસ્વભાવ આત્મે”-તિ
વદન્તિ તત્સર્વમયુક્તમ્ । તથા સતિ સુખદુઃખસંસારમોક્ષાણામનુપપત્તિરાપદેત ।
તત્ર હિ આહાદાનુભવરૂપં ક્ષણં મુખં, તાપાનુભવરૂપં દુઃખમ્, તિર્યક્મનુષ્યનારક-
દેવભવસંસારરૂપઃ સંસારઃ, અષ્ટવિધકર્મવન્ધવિયોગો મોક્ષઃ । એકાન્તવાદ-

इस लिए आत्मा नित्य है । आत्मा नित्य होने के कारण अमूर्त है, और अमूर्त होने के
कारण शरीर से भिन्न है ।

किन्तु आत्मा को एकान्त नित्य मानने पर एक ही आत्मा नरक तिर्यक्, मनुष्य
और देवगतिरूप नाना पर्यायों को प्राप्त नहीं होगा । और एकान्त क्षणिक मानने पर भी
स्वाध्याय, अध्ययन, ध्यान आदि का परिश्रम वृथा हो जायगा, और प्रत्यभिज्ञान का
अभाव हो जायगा । अत एव आत्मा कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है, ऐसा अवश्य
स्वीकार करना चाहिए ।

જો લોગ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ઓર ભાવ સે આત્મા કો એકાન્ત નિત્ય
અવિચલ સ્વભાવ વાલા માનતે હૈં, વહ સવ અયુક્ત હૈ । પેસા માનને સે સુખ, દુઃખ,
સંસાર ઓર મોક્ષ નહૈં બન સકતે । આહાદ કા અનુભવ કરનારૂપ ક્ષણ મુખ કહલોતા
હૈ । સંતાપ કા અનુભવ કરના દુઃખ હૈ । તિર્યક્, મનુષ્ય, નારક ઓર દેવ ભવ મેં
જાના સંસાર હૈ । આઠ પ્રકાર કૈ કર્મવન્ધ કા વિયોગ હોનાં મોક્ષ હૈ । એકાન્તવાદ

કારણ જ નથી તે પછી તેના કારણોનો અભાવ શું થશે ? એ કારણથી આત્મા
નિત્ય છે; આત્મા નિત્ય હોવાના કારણે અમૂર્ત છે. અને અમૂર્ત હોવાના કારણે
શરીરથી ભિન્ન છે.

પરંતુ આત્માને એકાન્ત નિત્ય માનવાથી એક જ આત્મા નરક, તિર્યક,
મનુષ્ય અને દેવગતિરૂપ નાનાં પર્યાયે ને પ્રાપ્ત નહિ થાય, અને એકાન્ત ક્ષણિક
માનવાથી પણ સ્વાધ્યાય, અધ્યયન, ધ્યાન આદિને પરિશ્રમ વૃથા થઈ
જશે, અને પ્રત્યભિજ્ઞાનનો અભાવ થઈ જશે, એ કારણથી આત્મા કંથચિત્ નિત્ય
અને કંથચિત્ અનિત્ય છે. એ પ્રમાણે જરૂર સ્વીકારવું જોઈએ.

જે પ્રમાણે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ અને ભાવથી આત્માને એકાન્ત નિત્ય, અવિચલ
સ્વભાવ વાળો માને છે, તે સર્વ અયુક્ત છે. એ પ્રમાણે માનવાથી સુખ, દુઃખ સંસાર
અને મોક્ષ બની શકશે નહિ. આહાદાનો અનુભવ કરવારૂપ ક્ષણ મુખ કહેવાય
છે. સંતાપનો અનુભવ કરવો તે દુઃખ છે. તિર્યક, મનુષ્ય, નારકી અને દેવભવમાં
જવું તે સંસાર છે. આઠ પ્રકારના કર્મ બંધનો વિયોગ થવો તે મોક્ષ છે. એકાન્તવાદ

अयमात्मा ज्ञानदर्शनोपयोग्यां न भिन्न इति बोधयित्पुपयोगवानिति, इदं च ज्ञानात्मनोरेकान्तभेद इति नैयायिकमतं निराकर्तुमुक्तम् । सर्वज्ञ-सिद्धान्ते तु द्रव्यं वस्तुतो गुणपर्यायेभ्यो न भिन्नम्, अतः कथञ्चिदभेद-विवक्षयाऽऽश्रयिभावं परिकल्प्य-उपयोगवानिति निगदितम् ।

उपयोगो द्विधा—ज्ञानदर्शनभेदात् । सविकल्प उपयोग एव ज्ञानोपयोगः, । निर्विकल्प उपयोगो दर्शनोपयोगः । तत्र ज्ञानोपयोगोऽष्टविधः—मतिश्रुतावधिमनःपर्यय-केवलानि पञ्च सम्यग्ज्ञानानि, मति-श्रुत-विभंग-भेदेन त्रीण्यज्ञानानि चेति । अज्ञानान्यपि ज्ञानरूपतया ज्ञानधर्मे निक्षिप्तानि । अत्रैकमेव केवलज्ञानं क्षायिकं सर्वा-

‘आत्मा ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग से भिन्न नहीं है’ यह बतलाने के लिए उसे उपयोगवान् कहा है । ‘ज्ञान और आत्मा का एकान्त भेद है’ ऐसा नैयायिकों का मत है । इस मत का निराकरण करने के लिए यह कथन किया गया है । सर्वज्ञ के सिद्धान्त में द्रव्य वास्तव में गुण और पर्यायों से भिन्न नहीं है, अतः कथञ्चित् भेद की विवक्षा करके आधारधेय भाव की कल्पना से उपयोगवान् कहा है ।

उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । सविकल्प उपयोग को ज्ञानोपयोग कहते हैं और निर्विकल्प उपयोग दर्शनोपयोग कहलाता है । इनमें से ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान और (८) विभङ्गज्ञान, अन्तके तीन अज्ञान कहलाते हैं । ये विपरीतज्ञानरूप होने के कारण इन्हें ज्ञान की कोटि में रखा है । इनमें

आत्मा ज्ञानोपयोग अने दर्शनोपयोगही भिन्न नहीं, अने अताववा भाटे अने उपयोगवान् कही छे. ‘ज्ञान अने आत्मानो अकान्त लेह छे’ अने नैयायिकोको मत छे, अने मतनुं निराकरण करवा भाटे अने कथन करवाभां आब्युं छे. सर्वज्ञान सिद्धान्तभां द्रव्य अने वास्तवभां शुणु अने पर्यायोधी भिन्न नहीं, तेही कथञ्चित् लेहनी विवक्षा करीने आधारधेय भावनी कल्पनाधी उपयोगवान् कही छे.

उपयोगना अने लेह छे—(१) ज्ञानोपयोग अने (२) दर्शनोपयोग, सविकल्प उपयोगने ज्ञानोपयोग कहे छे, अने निर्विकल्प उपयोग ते दर्शनोपयोग कहेवाय छे. तेभां ज्ञानोपयोग आठ प्रकारनो छे. (१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, तथा (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान अने (८) विभङ्गज्ञान. तेभां छेवटना त्रणु अज्ञान कहेवाय छे. परंतु विपरीतज्ञानरूप होवाना कारणे तेने ज्ञाननी कोटिभां राभ्या छे. अनेभां अने

પીઠયત્યાત્માનમિતિ જ્ઞાનરૂપાશુદ્ધચેતનયા સહિતશ્ચેતનાવાનિત્યુચ્યતે । ચેતનાવાનિતિ કથન્નિદુચ્યતે; આત્મા વસ્તુતથેતનાસ્વરૂપ ઇયાસ્તિ । આત્મનો ગુણશ્ચેતનેતિ સર્વેષાં મતં, તદભિપ્રાયેણ ચેતનાવાનિત્યુક્તમ્ । ચેતના દ્વિવિધા-શુદ્ધા, અશુદ્ધા ચેતિ । જ્ઞાનચેતનૈવ શુદ્ધચેતના । કર્મચેતના, તથા કર્મફલચેતના ચાશુદ્ધચેતનોચ્યતે ।

(૪) ઉપયોગવત્ત્વનિરૂપણમ્—

અયમાત્મા નિશ્ચયનયેન કેવલજ્ઞાનકેવલદર્શનરૂપાભ્યાં શુદ્ધોપયોગાભ્યાં સહિતો વ્યવહારનયેન મતિજ્ઞાનાધુપયોગયુક્તશ્ચેત્યતોડયમુપયોગવાનિત્યુચ્યતે ।

‘આત્મા કો કર્મ પીઠિત કરતે હૈ’ ઇસ પ્રકાર કે જ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધ ચેતના સે યુક્ત હૈ અત ઇવ આત્મા ચેતનાવાન્ કહલાતા હૈ । આત્મા કો કિસી અપેક્ષા સે હી ચેતનાવાન્ કહતે હૈ, વાસ્તવ મેં તો આત્મા ચેતનારૂપ હી હૈ । ‘ચેતના આત્મા કા ગુણ હૈ’ ઇસા સવકા મત હૈ, ઇસી અભિપ્રાય સે ડસે ચેતનાવાન્ કહ દિયા હૈ । ચેતના ડાં પ્રકાર કી હૈ-શુદ્ધ ચેતના ઓર અશુદ્ધ ચેતના । જ્ઞાન ચેતના હી શુદ્ધ હૈ । કર્મચેતના ઓર કર્મ-ફલચેતના અશુદ્ધ ચેતના હૈ ।

(૪) ઉપયોગવત્ત્વ-

યહ આત્મા નિશ્ચયનય સે કેવલજ્ઞાન ઓર કેવલદર્શનરૂપ શુદ્ધ ઉપયોગો સે યુક્ત હૈ । વ્યવહારનય સે મતિજ્ઞાન આદિ ઉપયોગો સે યુક્ત હૈ, અત ઇવ આત્મા ઉપયોગવાન્ કહલાતા હૈ ।

કર્મો પીઠિત કરે છે’ એ પ્રકારના જ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધ ચેતનાથી યુક્ત છે એટલા માટે આત્મા ચેતનવાન્ કહેવાય છે. આત્માને કોઈ અપેક્ષાથી જ ચેતનવાન્ કહે છે, વાસ્તવમાં તો આત્મા ચેતનારૂપ જ છે. ‘ચેતના આત્માનો ગુણ છે’ એ પ્રમાણે સર્વનો મત છે. એ અભિપ્રાયથી તેને ચેતનાવાન્ કહી દીધો છે. ચેતના બે પ્રકારની છે. (૧) શુદ્ધ-ચેતના અને (૨) અશુદ્ધ-ચેતના. જ્ઞાનચેતના જ શુદ્ધ છે, કર્મચેતના અને કર્મફલચેતના તે અશુદ્ધ-ચેતના છે.

(૪) ઉપયોગવત્ત્વ-

આ આત્મા નિશ્ચયનયથી કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનરૂપ શુદ્ધ ઉપયોગોથી યુક્ત છે. વ્યવહારનયથી મતિજ્ઞાન આદિ ઉપયોગોથી યુક્ત છે. એ કારણે આત્મા ઉપયોગવાન્ કહેવાય છે.

अयमात्मा ज्ञानदर्शनोपयोगाम्यां न भिन्न इति बोधयित्तुमुपयोगवानिति, इदं च ज्ञानात्मनोरेकान्तभेद इति नैयायिकमतं निराकर्तुमुक्तम् । सर्वज्ञ-सिद्धान्ते तु द्रव्यं वस्तुतो गुणपर्यायेभ्यो न भिन्नम्, अतः कथञ्चिदभेद-विवक्षयाऽऽश्रयिभावं परिकल्प्य—उपयोगवानिति निगदितम् ।

उपयोगो द्विधा—ज्ञानदर्शनभेदात् । सविकल्प उपयोग एव ज्ञानोपयोगः, । निर्विकल्प उपयोगो दर्शनोपयोगः । तत्र ज्ञानोपयोगोऽष्टविधः—मतिश्रुतावधिमनःपर्यय-केवलानि पञ्च सम्यग्ज्ञानानि, मति-श्रुत-विभंग-भेदेन त्रीण्यज्ञानानि चेति । अज्ञानान्यपि ज्ञानरूपतया ज्ञानवर्गे निक्षिप्तानि । अत्रैकमेव केवलज्ञानं क्षायिकं सर्वा-

‘आत्मा ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग से भिन्न नहीं है’ यह बतलाने के लिए उसे उपयोगवान् कहा है । ‘ज्ञान और आत्मा का एकान्त भेद है’ ऐसा नैयायिकों का मत है । इस मत का निराकरण करने के लिए यह कथन किया गया है । सर्वज्ञ के सिद्धान्त में द्रव्य वास्तव में गुण और पर्यायों से भिन्न नहीं है, अतः कथञ्चित् भेद की विवक्षा करके आधाराधेय भाव की कल्पना से उपयोगवान् कहा है ।

उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । सविकल्प उपयोग को ज्ञानोपयोग कहते हैं और निर्विकल्प उपयोग दर्शनोपयोग कहलाता है । इनमें से ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान और (८) विभङ्गज्ञान, अन्तके तीन अज्ञान कहलाते हैं । ये विपरीतज्ञानरूप होने के कारण इन्हें ज्ञान की कोटि में रक्खा है । इनमें

आत्मा ज्ञानोपयोग अने दर्शनोपयोगधी लिन्न नधी, अये अताववा भाटे व तेने उपयोगवान् कही छे. ‘ज्ञान अने आत्मानो अेकान्त लेद छे’ अयेवो नैयायिकेनो मत छे, अये मतनुं निराकरणु करवा भाटे अये कथन करवाभां आब्युं छे. सर्वज्ञना सिद्धान्तभां द्रव्य अये वास्तवभां गुणु अने पर्यायेधी लिन्न नधी, तेधी कथञ्चित् लेदनी विवक्षा करीने आधाराधेय भावनी कल्पनाधी उपयोगवान् कही छे.

उपयोगना ये लेद छे—(१) ज्ञानोपयोग अने (२) दर्शनोपयोग, सविकल्प उपयोगने ज्ञानोपयोग कहे छे, अने निर्विकल्प उपयोग ते दर्शनोपयोग कहेवाय छे. तेभां ज्ञानोपयोग आठ प्रकारने छे. (१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, तथा (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान अने (८) विभङ्गज्ञान. तेभां छेवटना त्रणु अज्ञान कहेवाय छे. परंतु विपरीतज्ञानरूप होवाना कारणे तेने ज्ञाननी कोटिभां राख्या छे. अेभां अेक

वरणरहितं सर्वतः शुद्धमस्ति । अन्यानि मतिज्ञानादिकानि चत्वारि ज्ञानानि क्षायो-
पशमिकानि देशत आवरणरहितानि देशतः शुद्धानि । त्रीण्यज्ञानान्यशुद्धानि ।
दर्शनोपयोगस्य चत्वारो भेदाः— (१) चक्षुर्दर्शनम्, (२) अचक्षुर्दर्शनम्, (३)
अवधिदर्शनम्, (४) केवलदर्शनं च । तत्रैकं केवलदर्शनं क्षायिकं सर्वतोऽनावरणं
सर्वतः शुद्धं च । चक्षुर्दर्शनादीनि त्रीणि क्षायोपशमिकानि देशतोऽनावरणानि
देशतः शुद्धानि च सन्ति ।

‘ज्ञानादिगुणतः सर्वथा भिन्न आत्मे’ ति नैयायिकाद्यभिमतं तु न युक्तम्,
ज्ञानादिगुणसम्बन्धात् प्राक् कदाचिद् ज्ञानादिगुणहीनोऽप्यासीदिति तस्य मते
एक मात्र केवलज्ञान क्षायिक है, सम्पूर्ण आवरण से रहित और पूर्ण शुद्ध है । शेष मतिज्ञान
आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक हैं, देशतः आवरणरहित हैं और देशतः शुद्ध हैं । तीनों
कुज्ञान अशुद्ध हैं ।

दर्शनोपयोग के चार भेद हैं—(१) चक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधिदर्शन
और (४) केवलदर्शन । इनमें से अकेला केवलदर्शन क्षायिक है, पूर्ण रूप से आवरणरहित है
और पूर्णरूप से शुद्ध है । चक्षुर्दर्शन आदि तीन क्षायोपशमिक हैं, देशतः निरावरण
हैं, और देशतः शुद्ध हैं ।

‘आत्मा ज्ञानादि गुणों से सर्वथा भिन्न है’ ऐसा नैयायिक आदि का मत युक्त
नहीं है, क्यों कि ज्ञानादि गुणों का सम्बन्ध होने से पहले किसी समय आत्मा को
ज्ञानादि गुणों से रहित भी मानना पड़ेगा और इस प्रकार उन के मत में आत्मा जड़
मात्र केवलज्ञान क्षायिक है, सम्पूर्ण आवरणरहित रहित अने पूर्ण शुद्ध है, आत्मीनां
मतिज्ञान आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक है, देश तकी आवरणरहित है, अने देश
तकी शुद्ध है, त्रय कुज्ञान अशुद्ध है.

दर्शनोपयोगना चार भेद है—(१) चक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधि-
दर्शन अने (४) केवलदर्शन. नेमांशी अेक केवलदर्शन क्षायिक है. पूर्णरूपथी आवरण-
रहित है, अने पूर्णरूपथी शुद्ध है. चक्षुर्दर्शन आदि त्रय क्षायोपशमिक है, देश
तकी निरावरण है अने देश तकी शुद्ध है.

“आत्मा ज्ञानादि शुद्धाधी सर्वथा भिन्न है.” अेवो नैयायिक आदिना मत
युक्त नथी-उचित नथी, कारण के ज्ञानादि शुद्धानो संबध तथा पडेवां डोई समय
आत्माने ज्ञानादि शुद्धाधी रहित पञ्च मानवो पश्ये, अने अे प्रभावे तेना मतमां

जडरूपत्वापत्तिः । आत्मनि ज्ञानस्य नित्यानादिसम्बन्धस्वीकारेऽपि पदार्थद्वय-
कल्पनायां पुनस्तत्सम्बन्धरूपसमवायस्य कल्पनायां महद् गौरवम्, तस्माद्
गुणगुणिनोर्वस्तुतस्तादात्म्यस्वीकार एवोचित्यमर्हति । यदि गुणगुणिनोरभेद
एव समवायोऽपीत्युच्येत तर्हि नास्ति काऽपि क्षतिः । उक्तञ्च—

“ गुणपर्यायतादात्म्यः—विशिष्टं द्रव्यमुच्यते ।

उत्पत्तिव्ययनैयत्वं,—पर्यायास्तस्य शाश्वताः ॥ १ ॥ ” इति ।

(५) परिणामित्वनिरूपणम्—

अयमात्मा परिणामी । प्रतिसमयमपरापरपर्यायेषु गमनं परिणामः,

हो जायगा । आत्मा में ज्ञान का नित्य—अनादि सम्बन्ध स्वीकार किया जाय तो दो
पदार्थ मानने पड़ेंगे, और उन दोनों अर्थात् आत्मा और ज्ञान को सम्बद्ध करने के लिए
तीसरा समवाय सम्बन्ध मानना होगा, यह बड़ा गौरव होगा । अत एव गुण और गुणीका
वास्तव में तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार करना ही उचित है । अगर गुण और गुणी के
अभेद को ही समवाय सम्बन्ध कहते हो तो उसे स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है ।
कहा भी है :—

“ जो गुण और पर्याय के तादात्म्य से युक्त हो वह द्रव्य कहलाता है । उस द्रव्य
की पर्यायें सदा उत्पत्ति और विनाशवाली हैं, और वे अनादिप्रवाहरूप हैं ” ॥ १ ॥

(५) आत्मा का परिणामीपन—

आत्मा परिणामी है । प्रत्येक समय एक पर्याय को छोड़कर दूसरा पर्याय

आत्मा जड थोड़ा जशे. आत्मने विचे ज्ञानने नित्य—अनादि संबंध स्वीकार करवांमां
आवे तो जे पदार्थ मानवा पडशे, अने ते भंने अर्थात् आत्मा अने ज्ञान ते
भंने ने सम्बद्ध करवा भाटे तीजे कोर समवाय संबंध मानवे पडशे. जे लारे
गौरव थशे. ते कारखुथी शुषु अने शुषुनीना वास्तवमां तादात्म्य संबंध स्वीकार
करवे जेन उचित छे. अथवा शुषु—शुषुनीना अलेहने ज समवाय संबंध कडे तो
तेने स्वीकार करवांमां कोर प्रकारे छानि नथी. कहुं पखु छे:—

“ जे शुषु अने पर्यायना तादात्म्यथी युक्त होय ते द्रव्य कडेवाय छे ते द्रव्यनी
पर्यायि सदाय उत्पत्ति अने विनाश वाणी छे, अने ते अनादिप्रवाहरूप छे. ” ॥१॥

(५) आत्मानुं परिणामीपणुं—

आत्मा परिणामी छे. प्रत्येक समय जेक पर्यायने छोडी जीजे पर्याय धारण
करवे ते परिणाम कडेवाय छे. ते परिणाम जेमां होय ते परिणामी कडेवाय छे.

सोऽस्यास्तीति परिणामी । अनेन 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति मतं निराकृतम् । 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति स्वीकारे पूर्वदशायां यथाविध आत्मा, तथाविध एव ज्ञानोत्पत्तिसमयेऽपि भवेत्, तदा पूर्वमविज्ञातात्मा कथं पदार्थविज्ञाता स्यात्, प्रतिनियतस्वरूपस्याप्रच्युतिरूपता कौटस्थ्यमिति स्वीकारात् । यदि तदा पदार्थ-विज्ञातृत्वं स्वीक्रियते तदा पूर्वमविज्ञातृविज्ञातृरूपत्वे परिणामापत्त्या तन्मते कौटस्थ्य-भङ्गः । तस्मादात्मनः परिणामित्वमवश्यं स्वीकरणीयम् ।

(६) प्रभुत्वनिरूपणम्—

अपमात्मा निश्चयनयेन मोक्षतत्कारणरूपशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-

धारण करना परिणाम कहलाता है । यह परिणाम जिस में हो वह परिणामी । इस विशेषण से आत्मा की कूटस्थनित्यता का निराकरण किया गया है । आत्मा कूटस्थ नित्य है, ऐसा स्वीकार करने पर आत्मा जैसा पहले अज्ञाता था वैसा ही ज्ञान की उत्पत्ति के समय भी रहेगा । ऐसी दशा में आत्मा पहले अज्ञाता था तो बाद में पदार्थों का ज्ञाता कैसे होगा ?, क्यों कि आप के मत के अनुसार प्रतिनियत स्वरूप से च्युत न होना—जैसा का तैसा ही बना रहना—कूटस्थता है । अगर बाद में आत्मा को पदार्थों का ज्ञाता स्वीकार करते हो तो पहले जो अज्ञाता था, उस का ज्ञाता के रूप में परिणमन हो गया अतः कूटस्थनित्यता नष्ट हो गई । अत एव आत्मा को परिणामी अवश्य मानना चाहिए । आत्मा कूटस्थ नित्य नहीं वरन् परिणामी नित्य है ।

(६) आत्मा का प्रभुत्व—

निश्चयनय से आत्मा मोक्ष और मोक्ष के कारणरूप शुद्ध परिणामों के लिए

आ विशेषणार्थी आत्मान्नी कूटस्थनित्यतानुं निराकरणं कथुं छे. "आत्मा कूटस्थ नित्य छे" जेवो स्वीकार करवाथी आत्मा जेवो पडेलो हतो तेवो न ज्ञाननी उत्पत्तिना समयमां पणु रडेथे, जेवी दशाभां आत्मा पडेलो अज्ञाता हतो तो पछी पदार्थोना ज्ञाता केवी रीते थरो ?, डेभडे—आपना मत प्रमाणे प्रतिनियत स्वर्णार्थी च्युत नहि थतां जेवो छे तेवो न भनी रहे ते कूटस्थता छे. अगर तो पछीथी आत्माने पदार्थोना ज्ञाता स्वीकार करे छे तो प्रथम जे अज्ञाता हतो तेनुं ज्ञाताना रूपमां परिणमन थर् गथुं, तेथी कूटस्थर्ण नित्यता नाश पानी गध, आ कारणार्थी आत्माने परिणामी अवश्य मानवे जेधजे. आत्मा कूटस्थ नित्य नथी परंतु परिणामी नित्य छे.

(६) आत्मानुं प्रभुत्व—

निश्चय नय प्रमाणे आत्मा मोक्ष अने मोक्षना कारणरूप शु. . .

सामर्थ्यात्, तथा व्यवहारनयतः संसारतत्कारणरूपाशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-
शक्तिमत्त्वाच्च प्रभुरित्युच्यते ।

अयमात्मा मोक्षमार्गोपदेशकतया, रत्नत्रयेण मोक्षसाधकतया, सर्वज्ञत्वप्राप्ति-
शक्तिमत्तया च प्रभुरित्युच्यते । “सर्वज्ञो नास्ति कश्चि”-दिति नास्तिकमतं
निराकर्तुं सर्वज्ञतयाऽप्यात्मनः प्रभुत्वमस्तीति संवेद्यते । यथा-अन्नपटलमलाच्छन्नं
रविचन्द्र-ज्योतिः, सुवर्णं रजतं वा क्रमशो नैर्मल्यं प्राप्नुवत्, सर्वथाऽन्नपटलमलादि-
व्यपगमे सर्वतो भावेनापि शुद्धिं प्राप्नोति, तथा रागद्वेषादिभिरशुद्ध आत्मा क्रमशः
शुद्धिं लभमानः पूर्णशुद्धिमपि प्राप्नोति स एवात्मा ‘सर्वज्ञः’ इत्युच्यते ।

परिणमन-सामर्थ्यवाला है, तथा व्यवहार नय से संसार और संसार के कारणरूप अशुद्ध
परिणामों के लिए परिणत होने की शक्ति से युक्त है । इस कारण आत्मा प्रभु कहलाता है ।

यह आत्मा मोक्षमार्ग का उपदेश देने की, रत्नत्रय के द्वारा मोक्षसाधन की
और सर्वज्ञताप्राप्ति की शक्ति से युक्त होने के कारण प्रभु है, ‘कोई सर्वज्ञ नहीं है’
ऐसे नास्तिकमत का निराकरण करने के लिए सर्वज्ञरूप में भी आत्मा का प्रभुत्व सूचित
किया गया है । जैसे-मेघपटल तथा मल से आच्छादित सूर्य, चन्द्रमा की ज्योति, सुवर्ण या
चांदी, क्रम से निर्मल होते-होते, अन्नपटल या मल के सर्वथा हट जाने पर पूर्णरूप से शुद्ध
हो जाने हैं, उसी प्रकार रागद्वेष आदि से अशुद्ध आत्मा धीरे-धीरे शुद्ध होता हुआ पूर्ण
शुद्धता प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार पूर्ण शुद्ध आत्मा ही सर्वज्ञ कहलाता है ।

भाटे परिष्कृत-सामर्थ्य वाणो छे. तथा व्यवहार नयथी संसार अने संसारना
कारणरूप अशुद्ध परिष्कृतो भाटे परिष्कृत थवानी शक्तिथी युक्त छे. आ कारणथी
आत्मा प्रभु कहेवाय छे.

आ आत्मा मोक्षमार्गोपदेश देवानी, रत्नत्रयना द्वारा मोक्षसाधननी अने
सर्वज्ञताप्राप्तिनी शक्तिथी युक्त होवानी कारणे प्रभु छे. “कोई सर्वज्ञ नहीं है”
ऐसे नास्तिकमत छे तेनुं निराकरण करवा भाटे सर्वज्ञरूपमां पणु आत्मामुं प्रभुत्व
सूचित करुं छे. जेम-मेघसमूह तथा मलथी आच्छादित सूर्य, चंद्रमानी ज्योति,
सुवर्ण अथवा चांदी वगैरे क्रमथी निर्मल थतां थतां मेघसमूह अथवा मलना
भसी जवाथी पूर्ण शुद्ध रूपमां आवी नय छे-शुद्ध थथ नय छे, ते प्रमाणे राग-द्वेष
आदिथी अशुद्ध आत्मा धीरे धीरे शुद्ध थथने पूर्ण शुद्धता प्राप्त करी ले छे. अ
प्रमाणे पूर्ण शुद्ध आत्मा ज सर्वज्ञ कहेवाय छे.

सोऽस्यास्तीति परिणामी । अनेन 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति मतं निराकृतम् । 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति स्वीकारे पूर्वदशायां यथाविध आत्मा, तथाविध एव ज्ञानोत्पत्तिसमयेऽपि भवेत्, तदा पूर्वमविज्ञातात्मा कथं पदार्थविज्ञाता स्यात्, प्रतिनियतस्वरूपस्यामच्युतिरूपता कौटस्थ्यमिति स्वीकारात् । यदि तदा पदार्थ-विज्ञातृत्वं स्वीक्रियते तदा पूर्वमविज्ञातृविज्ञातृरूपत्वे परिणामापत्त्या तन्मते कौटस्थ्य-भङ्गः । तस्मादात्मनः परिणामित्वमवश्यं स्वीकरणीयम् ।

(६) प्रभुत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन मोक्षतत्कारणरूपशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-

धारण करना परिणाम कहलाता है । यह परिणाम जिस में हो वह परिणामी । इस विशेषण से आत्मा को कूटस्थनित्यता का निराकरण किया गया है । आत्मा कूटस्थ नित्य है, ऐसा स्वीकार करने पर आत्मा जैसा पहले अज्ञाता था वैसा ही ज्ञान की उत्पत्ति के समय भी रहेगा । ऐसी दशा में आत्मा पहले अज्ञाता था तो बाद में पदार्थों का ज्ञाता कैसे होगा ?, क्यों कि आप के मत के अनुसार प्रतिनियत स्वरूप से च्युत न होना—जैसा का तैसा ही बना रहना—कूटस्थता है । अगर बाद में आत्मा को पदार्थों का ज्ञाता स्वीकार करते हो तो पहले जो अज्ञाता था, उस का ज्ञाता के रूप में परिणमन हो गया अतः कूटस्थनित्यता नष्ट हो गई । अत एव आत्मा को परिणामी अवश्य मानना चाहिए । आत्मा कूटस्थ नित्य नहीं वरन् परिणामी नित्य है ।

(६) आत्मा का प्रभुत्व—

निश्चयनय से आत्मा मोक्ष और मोक्ष के कारणरूप शुद्ध परिणामों के लिए

आ विशेषणार्थी आत्मान्नी कूटस्थनित्यतानुं निराकश्ये कथुं छे. "आत्मा कूटस्थ नित्य छे" जेवे स्वीकार करवाथी आत्मा जेवे पड़ेलां हुतो तेवे ज्ञाननी उत्पत्तिना समयमां पणु रहेथे, जेवी दशाभां आत्मा पड़ेलां अज्ञाता हुतो तो पछी पदार्थोंने क्षाता केवी रीते थरो ?, केभके—आपना मत प्रभावे प्रतिनियत स्वर्ूपार्थी च्युत नहि थतां जेवे छे तेवे ज्ञानी रहे ते कूटस्थता छे. अगर तो पछीथी आत्माने पदार्थोंने ज्ञाता स्वीकार करे छे तो प्रथम जे अज्ञाता हुतो तेनुं ज्ञाताना रूपमां परिणमन थर्छ गथुं, तेथी कूटस्थत्वं नित्यता नाश पागी गछ, आ कारणार्थी आत्माने परिणामी अवश्य मानवे जेर्छजे. आत्मा कूटस्थ नित्य नथी परंतु परिणामी नित्य छे.

(६) आत्मानुं प्रभुत्व—

निश्चय नय प्रभावे आत्मा मोक्ष अने मोक्षना कारणरूप ज्ञानी

औदारिकादिशरीरस्य कर्त्ताऽस्ति, आदिमत्प्रतिनियताकारित्वात्, कुम्भस्य यथा कुलालः । यत्पुनरकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति, यथाऽभ्रविकारः । यत्र शरीरस्य कर्त्ता स आत्मा, इत्येवमात्मनः कर्तृत्वं सिध्यति । अत्रादि-मत्त्वविशेषणं मेवादीनुपादाय हेतोरनैकान्तिकत्ववारणाय ।

यद्वा-आत्मा कर्ता, स्वकर्मफलभोक्तृत्वात् वणिक्कृषीवलादिवत् । आत्मा स्वकृतकर्मफलभोक्ता तस्मात् कर्ता, यथा वणिक्कृषीवलादयोऽकृतकर्मणः फलं न प्राप्नुवन्ति ।

इस औदारिकादि शरीर का कोई कर्ता है, क्यों कि औदारिकादि शरीर आदिमान् और प्रतिनियत आकारवाला है, जैसे-घड़ेका कर्ता कुंभार। जो वस्तु विना कर्ता की होती है वह आदिमान् और नियत आकार वाली नहीं होती, जैसे-बादल का विकार। जो शरीर का कर्ता है, वह आत्मा है। इस प्रकार आत्मा का कर्तृत्व सिद्ध होता है। यहाँ 'आदिमत्' विशेषण से मेरु आदि से होने वाले अनेकान्तिक दोषका निवारण किया गया है, क्यों कि वे आदिमान् नहीं है।

अथवा आत्मा कर्ता है, क्यों कि वह अपने कर्मों का भोक्ता है, जैसे वणिक् या किसान। आत्मा अपने कर्मों के फलका भोक्ता है इस कारण कर्ता है। जैसे-वणिक् या किसान आदि विना किये कर्म का फल नहीं भोगते, इसी प्रकार आत्मा विना किये कर्म का फल नहीं भोगता।

आ औदारिकादि शरीरनेो डोय कर्ता छे, कारणु के औदारिकादि शरीर, आदिमान् अने प्रतिनियत आकार वाणुं छे, नेम घडानेो कर्ता कुंभार. ने वस्तु कर्ता विनान्नी डोय छे, ते आदिमान् अने नियत आकार वाणी डोय नडि, नेम वाहणनेो विकार. ने शरीरनेो कर्ता छे ते आत्मा छे. ये प्रकारे आत्मानुं कर्तृत्व सिद्ध थाय छे. अही 'आदिमत्' विशेषणुथी मेरु आदिथी थवा वाणा अनेकान्तिक दोषनुं निवारणु कथुं छे, कारणु के ते 'आदिमान्' नथी.

अथवा-आत्मा कर्ता छे, कारणु के-ते पोताना कर्मनेो लोकता छे. नेम वणिक् अथवा जेडुत. आत्मा पोतानां कर्मनेां इलनेो लोकता छे, ते कारणुथी कर्ता छे, नेम वणिक् अथवा जेडुत आदि, कर्म कर्था विना कर्मनुं इण लोगवता नथी. ते प्रमाणे आत्मा कर्म कर्था विना तेनुं इण लोगवता नथी.

કિન્ચ-આત્મા સ્વસ્ય હિતં કર્તુમન્યં નાપેક્ષતે; સ્વયમેવ સ્વહિતસાધને સમઃ, અતઃ એવાત્મનઃ પ્રમુત્ત્વં સિધ્યતિ, તસ્માત્ સ્વહિતમિચ્છુના મોક્ષપ્રાપ્તિકારણી-ભૂતે તપઃસંયમારાધને પ્રવર્તિતત્ત્વમ્ ।

(૭) કર્તૃત્વનિરૂપણમ્—

અયમાત્મા-અદૃષ્ટાદિકર્મકરણાત્, નિશ્ચયનયેન શુદ્ધભાવકર્તૃત્વાત્, વ્યવહાર-નયતો દ્રવ્યભાવકર્મણાં નોકર્મવાહ્યશરીરાદીનાં કર્તૃત્વાન્ચ, કર્તૈત્યુચ્યતે । આત્મે-કાન્તરૂપેનાઽકર્તૈતિ સાંખ્યમતમપાકર્તૃમુક્તમ્—'આત્મા કર્તૈતિ' ।

દૂસરી વાત યહ હૈ કિ-આત્મા અપના કલ્યાણ કરને મેં અન્ય કી અપેક્ષા નહીં રાખતા । વહ સ્વકીય કલ્યાણ-સાધન મેં સ્વયં સમર્થ હૈ । હસી સે આત્મા કા પ્રમુત્ત સિદ્ધ હોતા હૈ । અતઃ આત્મહિત કે અમિલાપી પુરુષ કો મોક્ષકારણમૂલ તપ ઓર સંયમ કી આરાધના મેં પ્રવૃત્ત હોના યાહિય ।

(૭) આત્માકા કર્તૃત્વ-

યહ આત્મા અદૃષ્ટ આદિ કર્મ કરને સે, નિશ્ચયનય કી અપેક્ષા શુદ્ધ ભાવો કા કર્તા હોને સે; તથા વ્યવહારનય સે દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મ તથા નોકર્મ-વાહ્યશરીર આદિકા કર્તા હોને સે કર્તા કહલાતા હૈ,

'આત્મા એકાન્તરૂપ સે અકર્તા હૈ' સાંખ્ય કે હસ મત કા નિરાકરણ કરને કે લિપ આત્મા કો કર્તા વિશેષણ લગાયા હૈ ।

ખીજી વાત એ છે કે:-આત્મા પોતાનું કલ્યાણ કરવામાં ધીનની અપેક્ષા રાખતો નથી, તે પોતાના કલ્યાણસાધનમાં પોતે જ સમર્થ છે. તે કારણથી આત્માનું પ્રમુત્ત્વ સિદ્ધ થાય છે. એ કારણથી આત્મહિતના અભિલાષી પુરુષોએ મોક્ષના કારણભૂત તપ અને સંયમની આરાધનામાં પ્રવૃત્ત થવું જોઈએ.

(૬) આત્માનું કર્તૃત્વ—

આ આત્મા અદૃષ્ટ આદિ કર્મો કરવાથી, નિશ્ચયનયની અપેક્ષાએ શુદ્ધ ભાવોનો કર્તા હોવાથી તથા વ્યવહારનયથી દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મ તથા નોકર્મ-વાહ્યશરીર આદિનો કર્તા હોવાથી કર્તા કહેવાય છે.

"આત્મા એકાન્તરૂપથી અકર્તા છે." સાંખ્યના આ મતનું નિરાકરણ કરવા માટે આત્માને કર્તા વિશેષણ આપ્યું છે.

अकर्तृत्वाच्च तस्य सांसारिकविषयसुखानामभोक्तृत्वं च सिध्यति । प्रकृते हि कर्तृशब्देनादृष्टादिजनककर्मण एव कर्तृत्वं विवक्षितम्, तेन मुक्तात्मनि नातिप्रसंगः । तथा च यः सांसारिकसुखदुःखाद्यनुभविता स एव तत्कारणीभूतकर्मणः कर्ता, अकर्तुर्भोक्तृत्वानुपपत्तेः ।

(८) भोक्तृत्वसिद्धिः—

अयमेवात्मा मोहोदयेन शुद्धमात्मस्वभावं विस्मृत्य परवस्तुनि मोहितः सन् रागद्वेषं करोति, रागद्वेषवशोऽङ्गनिर्देशं नवनवविषयसंग्रहार्थं प्रयतमानस्तद्वियोगे सति चिन्ताव्याकुलितचेता आर्त्तरींद्रध्यानमुपगतः स्वात्मनि कर्मरजः

विषयसुख आदि के जनक कर्मों के कर्ता नहीं हैं, इस कारण वे अकर्ता हैं । और अकर्ता होने के कारण वे सांसारिक विषयसुखों के भोक्ता भी नहीं हैं । यहाँ 'कर्ता' शब्द से अदृष्ट आदि के जनक कर्मों का कर्ता ही विवक्षित है, अतः मुक्त आत्मा में अति-प्रसङ्ग नहीं आता, अत एव सिद्ध हुआ कि जो सांसारिक सुख-दुःख आदि का भोक्ता होता है, वही उन के कारणभूत कर्म का कर्ता भी होता है । जो कर्ता नहीं है वह भोक्ता भी नहीं है ।

(८) आत्मा का भोक्तृत्व

आत्मा मोह के उदय से शुद्ध आत्मस्वरूप को भूलकर पर-पदाथों में मोहित होता हुआ राग-द्वेष करता है । राग-द्वेष के वश हो कर रात-दिन नवीन नवीन विषयों का संग्रह करने के लिए प्रयत्नशील होता हुआ, और उनका वियोग होने पर चिन्ता से व्याकुलचित हो कर आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को प्राप्त होता है, और इस

संसारना विषय-सुख वगैरेने उत्पन्न करनार कर्मोना कर्ता नथी. ओ कारणुथी ते आत्मा अकर्ता छे, अने अकर्ता होवाना कारणे ते संसारना विषयसुखोना लोकता पणु नथी. अहि 'कर्ता' शब्दथी अदृष्ट आदिना जनक कर्मोना कर्ता न विवक्षित छे. तेथी मुक्त आत्माभां अतिप्रसंग आवतो नथी. ओ कारणुथी ओम सिद्ध थयुं छे ओ संसारना सुख-दुःख वगैरेना लोकता छे, ते अना कारणभूत कर्मोना कर्ता पणु होय छे, ओ कर्ता नथी ते लोकता पणु नथी.

(८) आत्मातुं भोक्तृत्व—

आत्मा मोहना उदयथी शुद्ध आत्मस्वरूपने भूली न्धने पर-पदाथोभां मोहित थधने राग-द्वेष करे छे, राग-द्वेषने वश थधने रागी अने द्विष नवा-नवा विषयोने संग्रह करवा माटे प्रयत्नशील रहतेो थके, अने तेना वियोग थतां चिन्ताथी व्याकुल-चित्त थधने आर्त्तध्यान अने रौद्रध्यान ने प्राप्त थाय छे, अने ते कारणुथी पोताना

यद्वा—आत्मा सुकृतदुष्कृतकर्मणामकर्ता न भवति, सुकृतदुष्कृतकर्म-फलरूपसुखदुःखानुभवात् । अकर्तुरात्मनः सुखदुःखानुभवो न युज्यते, तथा सति अविभसंगात् । मुक्तानामपि सांसारिकसुखदुःखानुभवापत्तेः, अकर्तृत्वाऽ-विशेषात् ।

अनुभवित्वेन भोक्तृत्वसिद्धिः, भोक्तृत्वेन च कर्तृत्वसिद्धिः । यद्यपि-मात्मा कर्ता न भवेत्तदाऽनुभविताऽपि न भवेत् । न चानुभवितुः कर्तृत्वस्वीकारे मुक्तस्यापि कर्तृत्वप्रसङ्गः, इति वाच्यम्, मुक्तात्मनः साक्षिरूपेणानुभवसत्त्वेऽपि द्रव्यभावकर्मरहितत्वादेव सांसारिकविषयमृखादिजनककर्मकर्तृत्वासंभवेनाकर्तृत्वात्,

अथवा—आत्मा सुकृत और दुष्कृतरूप कर्मों का अकर्ता नहीं है, क्यों कि वह अपने सुकृत और दुष्कृत कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख का अनुभव करता है । आत्मा अकर्ता होता तो उसे सुख-दुःख का अनुभव नहीं होना चाहिए था । कर्ता न होने पर भी फल का भोक्ता मानने से गड़बड़ी मच जायगी । फिर तो मुक्त जीवों को भी सांसारिक सुख और दुःख भोगना पड़ेगा, क्यों कि वे भी अकर्ता हैं ।

आत्मा अनुभव करने वाला होने के कारण भोक्ता सिद्ध होता है और भोक्ता होने के कारण कर्ता सिद्ध होता है । आत्मा कर्ता न होता तो अनुभविता (अनुभव करनेवाला) भी न होता । ' अनुभव करनेवाले को कर्ता मानने पर मुक्तात्मा को भी कर्तापन का प्रसङ्ग आयागा ' ऐसा कहना उचित नहीं है, क्यों कि मुक्तात्माओं को साक्षीरूपसे अनुभव होने पर भी, द्रव्य-भाव को से रहित होने के कारण वे सांसारिक

अथवा आत्मा सुकृत अने दुष्कृत-रूप कर्मोंना अकर्ता नहीं, कारण के ते पोटाना सुकृत अने दुष्कृत रूप कर्मोंना इलस्वरूप सुख-दुःखने अनुभव करे छे. आत्मा अकर्ता छोट तो तेने सुख-दुःखने अनुभव नहि थयो जेधजे. कर्ता न छोवा छतांय पण इलने लोकता छोवाथी गउणउ थर् नथे. इरी तो सुकृत छोवने पण संसारतुं सुख अने दुःख लोणववुं पडथे; कारण के ते पण अकर्ता छे.

आत्मा अनुभव करवा वाणो छोवाथी लोकता सिद्ध थाय छे, अने लोकता छोवाना कारणे कर्ता सिद्ध थाय छे. आत्मा कर्ता न छोय तो अनुभविता (अनुभव करवा वाणो) न छोय. ' अनुभव करवा वाणाने कर्ता मानवाथी मुक्तात्माने पण कर्तापणाने प्रसंग आवथे, ' जेभ कडेवुं ते छित नथी. कारण के मुक्तात्मांजने साक्षीरूप अनुभवथी छोवा छतांय द्रव्य, भाव कर्मथी रहित छोवाना कारणे ते

प्रतिबिम्बोदयासंभवात् । स्फटिकदर्पणादावपि परिणामेनैव प्रतिबिम्बोदय-
समर्थनात् । तादृशपरिणामाङ्गीकारे च जीवस्य कर्तृत्वं, स्वत एव भोक्तृत्वं
च सिद्धम् ।

(९) आत्मनः स्वशरीरपरिमाणत्वम्—

अयमात्मा स्वशरीरपरिमाणः । निश्चयनयेन लोकाकाशपरिमाणोऽ-
संख्यातप्रदेशी च । व्यवहारनयतः शरीरनामकर्मोदयाज्जातेन सूक्ष्मशरीरेण
स्थूलशरीरेण वा समानपरिमाणो भवति, तस्मादयं स्वशरीरपरिमाण इत्युच्यते ।

नहीं पड सकता । स्फटिक तथा दर्पण आदि में जो प्रतिबिम्ब पडता है सो परिणामी
होने के कारण ही पडता है । स्फटिक आदि एकान्त अपरिणामी होते तो उन में
किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पड सकता था । इस प्रकार का परिणाम स्वीकार
कर लेने पर जीव में कर्तापन सिद्ध हो जायगा और फिर भोक्तापन भी स्वतः सिद्ध
हो जायगा ।

(९) आत्माका शरीरपरिमाण—

आत्मा प्राप्त शरीर के बराबर है, अर्थात् शरीर का जो परिमाण है । वही
आत्मा का भी परिमाण है । आत्मा निश्चयनय से लोकाकाश के बराबर असंख्यात
प्रदेशी है । व्यवहारनय से शरीरनामकर्म के उदय से प्राप्त हुए सूक्ष्म या स्थूल शरीर
का जो परिमाण है उसी परिमाणवाला आत्मा है, अत एव आत्मा शरीर परिमाण
कहलाता है ।

तथा दर्पण आदिमां न प्रतिबिम्ब पडे छे, ते परिष्ठाभी होवाना कारणे पडे छे.
स्फटिक आदि न्ने एकान्त अपरिष्ठाभी होत तो तेमां कोष पणु वस्तुनुं प्रतिबिम्ब
पंडी शकत नही. आ प्रभाणु परिष्ठाभ स्वीकार करी देवाथी एवमां कर्तापणुं सिद्ध
थर्ष न्शे, अने लोकतापणुं पणु स्वतः सिद्ध थर्ष न्शे.

(९) आत्मानुं शरीरप्रभाणु—

आत्मा प्राप्त शरीरनी बराबर छे, अर्थात् शरीरनुं न्ने परिभाणु छे ते
आत्मानुं पणु परिभाणु छे. आत्मा निश्चयनयथी लोकाकाशनी बराबर असंख्यातप्रदेशी
छे. व्यवहारनयथी शरीर-नामकर्मना उदयथी प्राप्त थणेल सूक्ष्म अथवा स्थूल
शरीरनुं न्ने परिभाणु छे. ते परिभाणु वाणी आत्मा छे, अणेतला भाटे आत्मा
शरीरपरिभाणु कहेवाथ छे.

સમુપાદત્તે । યથા કોઽપ્યજ્ઞાની વ્યાધિનિદાનમ્ભૂતમપચ્યમશ્નુઅવાઠ્ઠિતમપિ જ્વરાદિકં સ્વયમુત્પાદયતિ, તથાઽયમાત્મા કર્મવન્ધનમવાઠ્ઠન્નપ્યાર્તરોદ્રધ્યાનવશેન કર્મવન્ધનં પ્રાપ્નોતિ । યથા કર્મવન્ધનં સ્વયમેવાદત્તે, તથા તત્ફલમપિ ચાથં કિઞ્ચિન્નિમિત્તમપેક્ષ્ય સ્વયમેવોપશુદ્ધયતે । એવં ચાત્મનો મોક્તૃત્વં સિધ્યતિ । મોક્તૃત્વાન્ચ કર્તૃત્વમપિ તસ્ય નિર્વાઘમ્ ।

સાંખ્યસિદ્ધાન્તે પ્રકૃતેઃ કર્તૃત્વં, ન તુ જીવસ્ય, મોક્તૃત્વં ચાપિ જીવસ્યોપચરિતમેવ । દર્પણાકારાયાં બુદ્ધૌ સંક્રાન્તાનાં સુખદુઃખાદીનાં સ્વાત્મનિ

કારણ અપની આત્મા મેં કર્મ-રજ ઇકદ્વી કર લેતા હૈ । જૈસે અજ્ઞાની મનુષ્ય રોગ કે કારણમૂત અપચ્ય કા સેવન કરતા હુઆ ન ચાહતે હુए મી જ્વર આદિ કો ઉત્પન્ન કર લેતા હૈ, ઁસી પ્રકાર આત્મા કર્મવન્ધન કી ઇચ્છા ન કર કે મી આર્ત-રૌદ્રધ્યાન કે અધીન હોકર કર્મવન્ધ કો પ્રાપ્ત હોતા હૈ । જૈસે કર્મવન્ધ કો આત્મા સ્વયં ગ્રહણ કરતા હૈ, ઁસી પ્રકાર કિસી વાઘ નિમિત્ત કી અપેક્ષા સે ઁસકા ફલ મી સ્વયં હી મોગતા હૈ । ઁસી પ્રકાર આત્મા મેં મોક્તાપન સિદ્ધ હોતા હૈ, ઁર મોક્તા હોને સે ઁસ મેં કર્તાપન મી વિના કિસી વાઘા કે સિદ્ધ હો જાતા હૈ ।

સાંખ્યમત સે પ્રકૃતિ કર્તા હૈ, જીવ નહીં, ઁર મોક્તાપન જીવ મેં ઉપચાર સે હૈ । દર્પણાકાર બુદ્ધિ મેં પ્રતિવિમ્બિત હોને વાલે સુખ-દુઃખ આદિ કા આત્મા મેં પ્રતિવિમ્બ

આત્માને વિષે કર્મ-રજ (કર્મના રજકણો) એકઠી કરી લે છે, જેમ અજ્ઞાની મનુષ્ય રોગના કારણમૂત અપચ્યનું (રોગ ઉત્પન્ન કરે તેવું) સેવન કરીને, પોતે ઇચ્છતો નથી તો પણ જ્વર (તાવ) આદિને ઉત્પન્ન કરી લે છે. તે પ્રમાણે આત્મા કર્મવન્ધનની ઇચ્છા નહિ કરવા છતાંય પણ આર્ત-રૌદ્ર ધ્યાનને આધીન થઈને કર્મ વન્ધનને પ્રાપ્ત થાય છે. જેવી રીતે કર્મવન્ધનને આત્મા પોતે જ શકણુ કરે છે, તે પ્રમાણે કોઈ વાઘ નિમિત્તની અપેક્ષાથી તેનું ફલ પણ પોતે જ ભોગવે છે. એ પ્રમાણે આત્મામાં ભોક્તાપણું સિદ્ધ થાય છે. અને ભોક્તા હોવાથી તેમાં કોઈ પ્રકારની વાઘા વિના કર્તાપણું પણ સિદ્ધ થઈ જાય છે.

સાંખ્યમત પ્રમાણે પ્રકૃતિ કર્તા છે, જીવ કર્તા નથી. ભોક્તાપણું તે પણ જીવમાં ઉપચારથી છે. દર્પણાકાર બુદ્ધિમાં પ્રતિબિમ્બિત (પ્રતિબિંબરૂપે) થવાવાળા (દેખાવાવાળા) સુખ-દુઃખ આદિનું પ્રતિબિંબ આત્મામાં પડી શકતું નથી સ્કૃતિક

પ્રતિવિમ્વોદયાસંભવાત્ । સ્ફટિકદર્પણાદાવપિ પરિણામેનૈવ પ્રતિવિમ્વોદય-
સમર્થનાત્ । તાદૃશપરિણામાઙ્ગીકારે ચ જીવસ્ય કર્તૃત્વં, સ્વત એવ મોકૃતૃત્વં
ચ સિદ્ધમ્ ।

(૯) આત્મનઃ સ્વશરીરપરિમાણત્વમ્—

અયમાત્મા સ્વશરીરપરિમાણઃ । નિશ્ચયનયેન લોકાકાશપરિમાણોઽ-
સંસ્થ્યાતપ્રદેશી ચ । વ્યહારનયતઃ શરીરનામકર્મોદયાજ્જાતેન સૂક્ષ્મશરીરેણ
સ્થૂલશરીરેણ વા સમાનપરિમાણો ભવતિ, તસ્માદયં સ્વશરીરપરિમાણ ઇત્યુચ્યતે ।

નહીં પડ સકતા । સ્ફટિક તથા દર્પણ આદિ મેં જો પ્રતિવિમ્વ પડતા હૈ સો પરિણામો
હોને કે કારણ હી પડતા હૈ । સ્ફટિક આદિ એકાન્ત અપરિણામી હોતે તો उन મેં
કિસી મી વસ્તુ કા પ્રતિવિમ્વ નહીં પડ સકતા થા । હસ પ્રકાર કા પરિણામ સ્વીકાર
કર હેને પર જીવ મેં કર્તાપન સિદ્ધ હો જાયગા ઓર ફિર મોક્તાપન મી સ્વતઃ સિદ્ધ
હો જાયગા ।

(૯) આત્માકા શરીરપરિમાણ—

આત્મા પ્રાપ્ત શરીર કે વરાવર હૈ, અર્થાત્ શરીર કા જો પરિમાણ હૈ । વહી
આત્મા કા મો પરિમાણ હૈ । આત્મા નિશ્ચયનય સે લોકાકાશ કે વરાવર અસંસ્થ્યાત
પ્રદેશી હૈ । વ્યવહારનય સે શરીરનામકર્મ કે ઉદય સે પ્રાપ્ત હુએ સૂક્ષ્મ યા સ્થૂલ શરીર
કા જો પરિમાણ હૈ ઁસી પરિમાણવાલા આત્મા હૈ, અત એવ આત્મા શરીર પરિમાણ
કહલાતા હૈ ।

તથા દર્પણ આદિમાં જે પ્રતિબિમ્બ પડે છે, તે પરિણામી હોવાના કારણે પડે છે.
સ્ફટિક આદિ જે એકાન્ત અપરિણામી હોત તો તેમાં કોઈ પણ વસ્તુનું પ્રતિબિંબ
પડી શકત નહી. આ પ્રમાણે પરિણામ સ્વીકાર કરી લેવાથી જીવમાં કર્તાપણું સિદ્ધ
થઈ જશે, અને લોકતાપણું પણ સ્વતઃ સિદ્ધ થઈ જશે.

(૯) આત્માનું શરીરપ્રમાણ—

આત્મા પ્રાપ્ત શરીરની ધરાવર છે, અર્થાત્ શરીરનું જે પરિમાણ છે તે
આત્માનું પણ પરિમાણ છે. આત્મા નિશ્ચયનયથી લોકાકાશની ધરાવર અસંસ્થ્યાતપ્રદેશી
છે. વ્યવહારનયથી શરીર-નામકર્મના ઉદયથી પ્રાપ્ત થએલ સૂક્ષ્મ અથવા સ્થૂલ
શરીરનું જે પરિમાણ છે. તે પરિમાણ વાળો આત્મા છે. એટલા માટે આત્મા
શરીરપરિમાણ કહેવાય છે.

समुपादत्ते। यथा कोऽप्यज्ञानी व्याधिनिदानभूतमपध्यमश्नन्वाच्छित्तमपि ज्वरादिकं स्वयमुत्पादयति, तथाऽयमात्मा कर्मबन्धनमवाच्छन्नप्यार्तरीन्द्रध्यानवशेन कर्मबन्धनं प्राप्नोति। यथा कर्मबन्धनं स्वयमेवादत्ते, तथा तत्फलमपि चायं किञ्चिन्निमित्त-मपेक्ष्य स्वयमेवोपशुद्धयते। एवं चात्मनो भोक्तृत्वं सिध्यति। भोक्तृत्वाच्च कर्तृ-त्वमपि तस्य निर्वाधम्।

सांख्यसिद्धान्ते प्रकृतेः कर्तृत्वं, न तु जीवस्य, भोक्तृत्वं चापि जीवस्योपचरितमेव। दर्पणाकारायां बुद्धौ संक्रान्तानां सुखदुःखादीनां स्वात्मनि

कारण अपनी आत्मा में कर्म-रज इकट्ठी कर लेता है। जैसे अज्ञानी मनुष्य रोग के कारणभूत अपध्य का सेवन करता हुआ न चाहते हुए भी ज्वर आदि को उत्पन्न कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा कर्मबन्धन की इच्छा न कर के भी आर्त-रौद्रध्यान के अधीन होकर कर्मबन्ध को प्राप्त होता है। जैसे कर्मबन्ध को आत्मा स्वयं ग्रहण करता है, उसी प्रकार किसी बाह्य निमित्त की अपेक्षा से उसका फल भी स्वयं ही भोगता है। इसी प्रकार आत्मा में भोक्तापन सिद्ध होता है, और भोक्ता होने से उस में कर्तापन भी बिना किसी बाधा के सिद्ध हो जाता है।

सांख्यमत से प्रकृति कर्ता है, जीव नहीं, और भोक्तापन जीव में उपचार से है। दर्पणाकार बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने वाले सुख-दुःख आदि का आत्मा में प्रतिबिम्ब

आत्माने विषे कर्म-रज (कर्मना रजकण्डो) ओकही करी ले छे, जेभ अज्ञानी मनुष्य रोगना कारणभूत अपध्यनुं (रोग उत्पन्न करे तेपुं) सेवन करीने, पोते धिच्छितो नथी तो पणु ज्वर (ताप) आदिने उत्पन्न करी ले छे. ते प्रभाणु आत्मा कर्मबंधननी इच्छा नहि करवा छतांय पणु आर्त-रौद्र ध्यानने आधीन थधने कर्म बंधनने प्राप्त थाय छे. जेवी रीते कर्मबंधनने आत्मा पोते ज अडणु करे छे, ते प्रभाणु कोठ भाह्य निमित्तनी अपेक्षाथी तेनुं इल पणु पोते ज भोगवे छे. जे प्रभाणु आत्माभां लोकतापणुं सिद्ध थाय छे. अने लोकता होवाथी तेभां कोठ प्रकारनी बाधा बिना कर्तापणुं पणु सिद्ध थधं जाय छे.

सांख्यमत प्रभाणु प्रकृति कर्ता छे, एव कर्ता नथी. लोकतापणुं ते पणु एवभां उपचारथी छे. दर्पणाकार बुद्धिभां प्रतिबिम्बित (प्रतिबिंबरूपे) थवावाणा (हेभाववावाणा) सुख-दुःख आदिनुं प्रतिबिंब आत्माभां पडी थक थी, इति

व्यापित्वं, तत् कादाचित्कमिति न तेन व्यभिचारः ।

आत्मा श्यामाकतण्डुलमात्रो न भवति, अङ्गुष्ठपर्वमात्रो वा न भवति, मात्रस्योपात्तशरीरव्यापित्वात्, तिले तैलवत् त्वक्पर्यन्तशरीरव्यापित्वेन भ्यमानगुणत्वात्, तस्मादुपात्तशरीरे त्वक्पर्यन्तशरीरव्यापीति सिद्धम् ।

(१०) अमूर्तत्वनिरूपणम्—

आत्मा अमूर्तः, इन्द्रियैरग्राह्यत्वात्, खड्गादिभिरच्छेद्यत्वात्, शूलदिभिरभेद्य-
रहितत्वात्, अनाद्यमूर्तपरिणामत्वात्, नित्यत्वात् ।

(कमी-कमी होनेवाला) है, उस से व्यभिचार नहीं आता ।

श्यामाक धान्यकण बराबर नहीं है, न अंगूठे के पर्व (पोर) के बराबर ही है, एक साथ समस्त शरीर में व्यापक नहीं हो सकता, मगर आत्मा के शरीर में उपलब्ध होते हैं, जैसे तिलों में तेल सर्वत्र पाया जाता है, अत एव प्राप्ता शरीर में त्वचापर्यन्तव्यापी है ।

(१०) आत्मा का अमूर्तत्व—

है, क्यों कि वह इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता, वह खड्ग
सकता, शूल आदि से भेदा नहीं जा सकता, वह अरूपी है,
परिणामवाला है और वह नित्य है ।

तेषां व्यभिचार आवतो नथी ।

अन्यथा कणु भराभर नथी; तेभ्य अंगूठाना पर्व (पोर)
आत्मा अेक साथे समस्त शरीरमां व्यापक थछ शकते
तो संपूर्ण शरीरमां उपलब्ध थाय छे, तेभ तलमां
पुथी अे सिद्ध थयुं के आत्मा आ प्राप्ता शरीरमां
बो छे ।

१) आत्मातुं अमूर्तत्व

के ते इन्द्रियो द्वारा अडणु करी शकथी,
तो नथी, शूल आदिथी लेदी शकते ।

आत्
छे. व्य.
शरीरतुं अं
शरीरपरिभाष

समुपादत्ते। यथा कोऽप्यज्ञानी व्याधिनिदानभूतमपध्यमधन्रश्वाच्छित्तमपि ज्वरादिकं स्वयमुत्पादयति, तथाऽयमात्मा कर्मबन्धनमयाच्छन्नप्यार्तरीन्द्रध्यानयज्ञेन कर्मबन्धनं प्राप्नोति। यथा कर्मबन्धनं स्वयमेवादत्ते, तथा तत्फलमपि चाद्यं किञ्चिन्निमित्तमपेक्ष्य स्वयमेवोपशुद्धयते। एवं चात्मनो भोक्तृत्वं सिध्यति। भोक्तृत्वाच्च कर्तृत्वमपि तस्य निर्वाधम्।

सांख्यसिद्धान्ते प्रकृतेः कर्तृत्वं, न तु जीवस्य, भोक्तृत्वं चापि जीवस्योपचरितमेव। दर्पणाकारायां बुद्धौ संक्रान्तानां सुखदुःखादीनां स्वात्मनि

कारण अपनी आत्मा में कर्म-रज इकट्ठी कर लेता है। जैसे अज्ञानी मनुष्य रोग के कारणभूत अपध्य का सेवन करता हुआ न चाहते हुए भी ज्वर आदि को उत्पन्न कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा कर्मबन्धन की इच्छा न कर के भी आर्त-रौद्रध्यान के अधीन होकर कर्मबन्ध को प्राप्त होता है। जैसे कर्मबन्ध को आत्मा स्वयं ग्रहण करता है, उसी प्रकार किसी बाह्य निमित्त की अपेक्षा से उसका फल भी स्वयं ही भोगता है। इसी प्रकार आत्मा में भोक्तापन सिद्ध होता है, और भोक्ता होने से उस में कर्तापन भी बिना किसी बाधा के सिद्ध हो जाता है।

सांख्यमत से प्रकृति कर्ता है, जीव नहीं, और भोक्तापन जीव में उपचार से है। दर्पणाकार बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने वाले सुख-दुःख आदि का आत्मा में प्रतिबिम्ब

आत्माने विधे कर्म-रज (कर्मना रजश्छेत्) अेकडी करी ले छे, जेभ अज्ञानी मनुष्य रोगना कारणभूत अपध्यनुं (रोग उत्पन्न करे तेनुं) सेवन करीने, पोते ध्विछते। नथी तो पणु ज्वर (ताप) आदिने उत्पन्न करी ले छे। ते प्रभाळु आत्मा कर्मबन्धननी ध्विछ नखि करवा छतांय पणु आर्त-रौद्र ध्यानने आधीन यधने कर्म बन्धनने प्राप्त थाय छे। जेवी रीते कर्मबन्धनने आत्मा पोते ज अकळु करे छे, ते प्रभाळु कोछि बाह्य निमित्तनी अपेक्षाथी तेनुं इल पणु पोते ज भोगवे छे। अे प्रभाळु आत्माभां लोकतापणुं सिद्ध थाय छे। अने लोकता छोवाथी तेभां कोछि प्रकारनी बाधा विना कर्तापणुं पणु सिद्ध थछि नय छे।

सांख्यमत प्रभाळु प्रकृति कर्ता छे, एव कर्ता नथी। लोकतापणुं ते पणु एवभां उपचारथी छे। दर्पणाकार बुद्धिभां प्रतिबिम्बित (प्रतिबिम्बइपे) थवावाणा (हेभाववावाणा) सुख-दुःख आदिनुं प्रतिबिम्ब आत्माभां पडी थकतुं नथी, रक्षितिक

सर्वव्यापित्वं, तत् कादाचित्कमिति न तेन व्यभिचारः ।

आत्मा श्यामाकतण्डुलमात्रो न भवति, अङ्गुष्ठपर्वमात्रो वा न भवति, तावन्मात्रस्योपात्तशरीरव्यापित्वात्, तिले तैलवत् त्वक्पर्यन्तशरीरव्यापित्वेन चोपलभ्यमानगुणत्वात्, तस्मादुपात्तशरीरे त्वक्पर्यन्तशरीरव्यापीति सिद्धम् ।

(१०) अमूर्तत्वनिरूपणम्—

आत्मा अमूर्तः, इन्द्रियैरग्राह्यत्वात्, खड्गादिभिरच्छेद्यत्वात्, शूलादिभिरभेद्यत्वात्, रूपरहितत्वात्, अनाद्यमूर्तपरिणामत्वात्, नित्यत्वात् ।

कादाचित्क (कभी-कभी होनेवाला) है, उस से व्यभिचार नहीं आता ।

आत्मा श्यामाक धान्यकण बराबर नहीं है, न अंगूठे के पर्व (पोर) के बराबर ही है, इतना सा आत्मा एक साथ समस्त शरीर में व्यापक नहीं हो सकता, मगर आत्मा के गुण तो संपूर्ण शरीर में उपलब्ध होते हैं, जैसे तिलों में तेल सर्वत्र पाया जाता है, अत एव सिद्ध हुआ कि आत्मा प्राप्त शरीर में त्वक्पर्यन्तव्यापी है ।

(१०) आत्मा का अमूर्तत्व—

आत्मा अमूर्त है, क्यों कि वह इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता, वह खड्ग आदि से छेदा नहीं जा सकता, शूल आदि से भेदा नहीं जा सकता, वह अरूपी है, अनादि काल से अमूर्त परिणामवाला है और वह नित्य है ।

(कदाचित्क थवावाणुं) छे, तेमां व्यभिचार आवतो नथी.

आत्मा श्यामाक धान्यना कणु भराभर नथी; तेमञ्च अंगूठाना पर्व (पोर) भराभर पणु नथी. अष्टलो आत्मा अेक साथे समस्त शरीरमां व्यापक थथ शकतो नथी, परंतु आत्माना शुषु तो संपूर्ण शरीरमां उपलब्ध थाथ छे, अेभ तलमां तेल सर्वत्र छोथ छे. अे कारणुथी अे सिद्ध थथुं के आत्मा आ प्राप्त शरीरमां त्वक्-व्यामडी सुधी व्यापी रहेलो छे.

(१०) आत्माचुं अमूर्तत्व

आत्मा अमूर्त छे. कारणु के ते इन्द्रियो द्वारा ग्रहणु करी शकतो नथी, अडग (तलवार) आदिथी छेडी शकतो नथी, शूल आदिथी लेडी शकतो नथी, अरूपी छे, अनादि कालथी अमूर्त परिणामवाणो छे. अने ते नित्य छे.

गुणानामसद्भाव इति सर्वैः स्वीकारात् । शरीरे तद्गुणसत्त्वे हेतोर्नामसिद्धता, इत्थं च देहाद् वहिर्देशेऽपि आत्माऽस्तीति वादं परित्यज्य स्वदेह एवात्माऽस्तीति मन्तव्यम् ।

यद्वा—आत्मा व्यापको न भवति चेतनत्वात्, यत्तु व्यापकं तन्न चेतनम्, यथा गगनम् । चेतनं चात्मा, तस्मान्न व्यापकः । इत्यमव्यापकत्वे सिद्धे तस्य तत्रैवोपलभ्यमानगुणत्वे कायप्रमाणताऽपि सिद्धा । यत् पुनरष्टसमयसाध्य-केवलिसमुद्घातावस्थायामार्हतानामपि चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकव्यापित्वेनात्मनः

रिक्त देश में बुद्धि आदि गुणों का सद्भाव नहीं है, ऐसा सभी ने स्वीकार किया है । शरीर में आत्मा के गुणों का अस्तित्व है ही, अत एव हेतु असिद्ध नहीं है । इस प्रकार शरीर से बाहर आत्मा का अस्तित्व मानना छोड़ कर स्वदेह में ही अस्तित्व मानना चाहिए ।

अथवा—आत्मा व्यापक नहीं है, क्या कि वह चेतन है । जो व्यापक होता है वह चेतन नहीं होता, जैसे आकाश । आत्मा चेतन है; अतः व्यापक नहीं है ।

इस से आत्मा की अव्यापकता सिद्ध हो जाने पर पूर्वोक्त हेतु से (क्यों कि शरीर में ही उस के गुण पाये जाते हैं, इस हेतु से) आत्मा की शरीरप्रमाणता भी सिद्ध हो जाती है । आठ समय में सम्पन्न होने वाले केवलिसमुद्घात की अवस्था में चौदहराजू लोक में आत्मा का व्याप्त हो जाना जो यहाँ माना है, वह

नहि. कारण के देहधी अतिरिक्त (देह सिवाय) देशमां बुद्धि आदि शुष्मानो सद्भाव नथी. ये प्रभाषे सौख्ये स्वीकारेणुं छे. शरीरमां आत्माना शुष्मानुं अस्तित्व छे न, ये कारणधी हेतु असिद्ध नथी. आ प्रभाषे शरीरनी अकार आत्मानुं अस्तित्व माननुं त्यजने पीताना देहमां न अस्तित्व माननुं जेधये.

अथवा—आत्मा व्यापक नथी, कारण के ते चेतन छे. जे व्यापक होय छे ते चेतन होय नहि, जेम आकाश. आत्मा चेतन छे ते कारणधी व्यापक नथी.

आ हेतुधी आत्मानी अव्यापकता सिद्ध थवाधी पूर्वोक्त हेतुधी (केमके शरीरमां न तेना शुष्म जेवामां आवे छे ये हेतुधी) आत्मानी शरीरप्रमाणता पक्ष सिद्ध थछ जाय छे. आठ समयमां सम्पन्न थवा वाणा केवलिसमुद्घातनी अवस्थामां यौद्ध राजलोकमां आत्मानुं व्याप्त थछ जवानुं अहि जे मान्युं कादाचित्क

इयं च पुत्तलिका न किञ्चिदिच्छति, पुनरयं बालः सकलेन्द्रियैर्विषय-
मुपभुज्य सुखी भवितुमिच्छति । यदि कोऽपि खड्गमुत्थाप्येमावभिधावेत् तदा
पुत्तलिका पूर्ववदेवावस्थिता भविष्यति, बालस्तु खड्गाभिधातजनितदुःखादुद्विज्य
पलायिष्यते । असौ बालः कमपि बुभुक्षितं बालमुपकरिष्यति भोजनीयवस्तु-
प्रदानेन, कमपि चान्यं बालं चपेटादिप्रहारेण क्रन्दयिष्यति । पुत्तलिका तु
हितमहितं वाऽपि किञ्चिन्नैव कर्तुं प्रभविष्यति । यदि मिष्टाशनाय बाल आहूतो
भवेत् तदानां सत्वरमागतो बालो भोक्तुं प्रवर्तेत, तज्जन्यसुखानुभवोऽपि तस्य
जायेत । पुत्तलिका तु नागमिष्यति न किञ्चिद् भोक्ष्यते, का वार्ता सुखानुभवस्य ? ।

यह पुतली कुछ भी इच्छा नहीं करती मगर बालक सभी इन्द्रियों के विषयों का
भोग करके सुखी होने को इच्छा करता है । अगर कोई तलवार उठाकर इन्हें मारने
दाड़े तो पुतली ज्यों की त्यों खड़ी रहेगी मगर बालक तलवार के आघात के दुःख
से उद्विग्न हो कर या आघात की आशङ्का से भाग जायगा । वह बालक किसी
भूखे बालक को भोजन देकर उसका उपकार भी करेगा और किसी बालक को थपपड
आदि मारकर रुलाएगा, मगर पुतली किसीका हित या अहित करने में समर्थ नहीं
है । अगर बालक को मिठाई खाने के लिए बुलाया जाय तो उसी समय आकर वह
मिठाई पर दृष्ट पड़ेगा और उसे मिठाई खाने के सुख का अनुभव भी होगा ।
पुतली न मिठाई के लिए आएगी न खाएगी, सुख का अनुभव करने की तो बात
ही अलग रही । अत एव यह निश्चय होता है कि बालक में जीव का लक्षण ज्ञान

आ पुतली कांठ पशु धिच्छा करती नथी. परंतु आणक सर्व धन्द्रियोना
विषयोना लोग करीने सुभी थवानी धिच्छा करे छे. अथवा कोर्ध तलवार उठावीने
तेने मारवा होडे तो पुतली तो नेम छे तेम त्यां उली रहेसे. परंतु आणक
तलवार मारवाना दुःभधी उद्विग्न-स्थितातुर जनीने अथवा तो मारवानी आशंकाथी
लागी नशे.

अे आणक कोर्ध लूष्या आणकने लोअन आपीने तेना उपकारं पशु करशे अने
कोर्ध आणकने थपड आदि मारीने तेने शवशवशे, परंतु पुतली कोर्धनुं छित के
अथवा अहित करवा समर्थ नथी. अथवा आणकने मिठाई आवा माटे जेलाववाभां
आवे तो तेन समथे आवीने मिठाई पर तूटी पडशे अने तेने मिठाई आवाने
सुअने अनुभव पशु थशे. पुतली मिठाई माटे आवशे नडी. अने आशे पशु नडी.
तो सुअना अनुभवनी तो वात न नूदी रही. अे कारवुथी निश्चय थाय छे के

અનેન—“આત્મા નાતીન્દ્રિયો નાપિ જડાદ્ ભિન્નઃ” ઇતિ નાસ્તિકમતં નિરસ્તમ્ ।

નન્વમૂર્તોઽયમાત્મા નેત્રાદિમિરિન્દ્રિયૈસ્તુ ન વિદ્યેયસ્તદિં કથમિમં જનો જાનીયાત્—‘અસ્ત્યત્રાત્મે’—તિ ।

શ્રૂયતામ્—કસ્યચિત્ સમક્ષમષ્ટવર્ષીયો વાલસ્તિષ્ઠતિ; તત્સમાનાકૃતિ-મૃન્મયી પુત્તલિકાઽપિ તિષ્ઠતિ । તત્રાસૌ દ્રષ્ટા પશ્યતિ—દ્યં પુત્તલિકા ચક્ષુર્ગ્રાણ-કર્ણયુક્તાઽપિ દ્રષ્ટું ગ્રાહું શ્રોતું વા ન શક્નોતિ, પુનરયં વાલશ્ચક્ષુર્મ્યાં પશ્યતિ, પુષ્પમાઘાતિ, કસ્યચિદ્ભાપિતં શૃણોતિ ચ ।

इस कथन से नास्तिक के इस मत का निराकरण हो गया कि—‘आत्मा न अतीन्द्रिय है और न जड से भिन्न है’ ।

શક્ત્વા—આત્મા અમૂર્ત છે, નેત્ર આદિ ઇન્દ્રિયોં સે જાના નહીં જા સકતા તો મનુષ્ય કૈસે સમજે કિ આત્મા કા અસ્તિત્વ છે ? ।

સમાધાન—સુનિયે । માન લીજિણ કિસી કે સામને આઠ વર્ષ કા વાલક સ્વડા છે, ડસી કે સમાન આકૃતિવાલી મિટ્ટી કી ઇક પુતલી મી રક્લો છે । ડોનોં કો ડેરખને વાલ ડેરખતા છે કિ—યહ પુતલી નેત્ર, નાક ઓર કાન સે યુક્ત તો છે કિન્તુ ડેરખને મેં સૂંઘને મેં ઓર સુનને મેં સમર્થ નહીં છે, ઓર યહ વાલક ઓંઘોં સે ડેરખતા છે, ફૂલ સૂંઘતા છે, ઓર કિસી કા ભાષણ સુનતા છે ।

આ કથનથી નાસ્તિકના એ મતનું નિરાકરણ થઈ ગયું કે “આત્મા અતીન્દ્રિય નથી, અને જડથી ભિન્ન નથી.”

શંકા—આત્મા અમૂર્ત છે, નેત્ર આદિ ઇન્દ્રિયોંથી જાણી શકાતો નથી; તે પછી ભાણસો કેવી રીતે સમજી શકશે કે આત્માનું અસ્તિત્વ છે.

સમાધાન—સાંભળો ? માની લો કે કોઈ (માણસ)ના સામે એક આઠ વર્ષનો બાળક ઉભો છે. તેની બાજુમાં તેના જેવી સમાન આકૃતિવાલી માટીની એક પુતળી પણ રાખી છે. આ બન્નેને જોવાવાળાં જુવે છે કે—આ પુતળી નેત્ર, નાક, કાનથી યુક્ત તો છે; પરંતુ જોવામાં, સૂંઘવામાં અને સાંભળવામાં સમર્થ નથી. અને આ બાળક નેત્રથી જુવે છે, ફૂલ સૂંઘે છે અને કોઈનું ભાષણ સાંભળે છે.

इयं च पुचलिका न किञ्चिदिच्छति, पुनरयं वाचः सकलेन्द्रियैर्विषय
 सुसमुच्च मुक्तीभवितुमिच्छति । यदि कोऽपि स्वसृष्ट्याप्येमावमिवावेत्
 पुचलिका पूर्ववदेवावस्थिता भविष्यति, बालस्तु तदा मियापगनिवदुत्वादि
 पलायिष्यते । अतो वाचः कमपि वुमुक्षितं बालमुपकरिष्यति मोक्षनाय
 प्रदानेन, कमपि चान्यं बालं चपेटादिप्रहारेण क्रन्दयिष्यति । पुचलिका
 हितमहितं वाऽपि किञ्चिन्नेव कर्तुं प्रमदयिष्यति । यदि मिष्टान्ननाय बाल
 मवेत् तदानीं सत्तरभागतो बालो भोक्तुं प्रवर्तेत, तज्जन्यमुत्रानुभवोऽपि त
 वायेत् । पुचलिका तु नागमिष्यति न किञ्चिद् भोक्ष्यते, का वातां सुत्रानुभवस्य ?

यह पुतली कुछ भी इच्छा नहीं करती नगर बाज़र सभी इन्द्रियों के विषयों
 में न करके मुक्ती होने की इच्छा करता है । अगर कोई तख्तार उठाकर इन्हें
 दाँव तो पुतली ध्यो की त्यो खड़ी रहेगा नगर बाज़र तख्तार के आकार के दुः
 से उद्वेग हो कर या आकार की आसक्त से नाग जायगा । वह बाज़र
 मूखे बाज़र को मोहन देकर उलका उलकार भी करेगा और किसी बाज़र को
 आदि नारकर उलका, नगर पुतली किसीका हित या अहित करने में समर्थ
 है । अगर बाज़र को मिठाई खाने के लिए बुझाया जाय तो उसी समय बाज़र
 मिठाई पर दूट पड़ेगा और उसे मिठाई खाने के मुक्त का अनुभव भी होगा ।
 पुतली न मिठाई के लिए आएगी न खाएगी, मुक्त का अनुभव करने की तो बात
 ही क्या रही । अब एव यह निश्चय होता है कि बाज़र में खेत का उद्वेग नाग

आ पुतली शंभु पलु छिछा इरती नथी, परंतु आणक स्वर्ण छिद्रिये
 विषयाने खोज इरतीने सुषी धरनी छिछा इरे छे. अथवा ऐर्ष तख्तार उठावीने
 तेने भारवा डोटे तो पुतली तो नेम छे तेम त्यां उली रहेये परंतु
 तख्तार भरवाना दुःषयी उद्विज-खितातुर अनीने अथवा तो भारवानी आशुंशानी
 लानी अये.

ये आणक ऐर्ष बूझा आणकने खोजन आपीने तेने उपकर पलु इरये अने
 ऐर्ष आणकने थपड आदि भारीने तेने देवरावये, परंतु पुतली ऐर्षतु हित छे
 अथवा अहित इरवा समर्थ नथी. अथवा आणकने मिशर्ष भावा भाटे ऐर्षाववासां
 आवे तो तेन समये आवीने मिशर्ष पर त्थी पछे अने तेने मिशर्ष भावने
 सुषने अनुभव पलु थये. पुतली मिशर्ष भाटे आवये नही अने आये पलु नही.
 तो सुषना अनुभवनी तो वत न रही. रही. ये डारवुथी निश्चय थाय छे छे

તથા ચાંચં નિશ્ચયઃ—ચાલે જીવલક્ષણસ્ય જ્ઞાનંસ્ય સદ્ભાવાદ્ ચાલશરીરે જીવોઽસ્તીતિ ।
 એવમન્યત્રાપિ સજીવશરીરે જીવસ્ય સત્તા નિથેતું શક્યતે । વસ્તુતોઽપ્યમાત્મૈવ કર્તા
 ભોક્તા નાનાવિધશુભપરિણતિકર્તા ચેતિ । અયમાત્મા સંસારાવસ્થાયાં સ્વજ્ઞાનવશેન
 દુઃખમર્જયતિ । ઉક્તઞ્ચ—

“સંસારે પર્યટન્ બન્તુ, —વૃહુયોનિસમાકુલે,
 શારીરં માનસં દુઃખં, પ્રાપ્નોતિ વત દારુણમ્ ॥૧॥
 આર્તઘ્યાનરતો મૂઢો, ન કરોત્યાત્મનો હિતમ્,
 તેનાસૌ સુમહત્ કલેશં, પરત્રેહ ચ ગચ્છતિ” ॥૨॥

વિદ્યમાન છે, હાલે ઉસ મેં જીવ છે । હાલે પ્રકાર અન્યત્ર મી સજીવ શરીર મેં
 જીવ કી સત્તા કા નિશ્ચય ક્રિયા જા સકતા છે । વાસ્તવ મેં યહી આત્મા કર્તા, ભોક્તા
 ઓર નાના પ્રકાર કી શુભ ઓર અશુભ પરિણતિયોં કા કર્તા છે । આત્મા સંસાર—
 અવસ્થા મેં અપને અજ્ઞાન કે આધીન હો કર દુઃખ ઉપાર્જન કરતા છે, કહા મી છે :—

“નાના પ્રકાર કી યોનિયોં સે યુક્ત હાલે સંસાર મેં ભ્રમણ કરતા હુઆ જીવ
 અનેક ઓર ભયાનક શારીરિક એવં માનસિક દુઃખ પ્રાપ્ત કરતા છે ॥ ૧ ॥

આર્તઘ્યાન ઓર રોદ્રધ્યાન મેં લીન રહેને વાલ મૂઢ જીવ આત્મા કા હિત
 નહીં કરતા । હાલે કારણ વહ હાલે લોક ઓર પર લોક મેં મહાન્ કલેશ પાતા છે” ॥૨॥

બાલકમાં હવનું લક્ષણ—જે જ્ઞાન તે વિદ્યમાન છે, તે કારણથી તેમાં હવ છે. એ
 પ્રમાણે અન્યત્ર પણ સહુ શરીરમાં હવની સત્તાનો નિશ્ચય કરી શકાય છે.
 વાસ્તવમાં આ આત્મા કર્તા, ભોક્તા અને નાના પ્રકારની શુભ અને અશુભ
 પરિણતિઓનો કર્તા છે. આત્મા સંસાર અવસ્થામાં પોતાના અજ્ઞાનને આધીન થઈને
 દુઃખ ઉપાર્જન કરે છે. કહ્યું પણ છે કે:—

“નાના પ્રકારની યોનિયોથી યુક્ત આ સંસારમાં ભ્રમણ કરતો થકો હવ
 અનેક ભયાનક શારીરિક અને માનસિક દુઃખ પ્રાપ્ત કરે છે. ॥૧॥

આર્તધ્યાન અને રોદ્રધ્યાનમાં લીન રહેવા વાળો મૂઢ હવ આત્માનું હિત
 કરતો નથી. આ કારણથી તે આ લોક અને પરલોકમાં મહાન્ કલેશ પામે છે. ॥૨॥

(११) आत्मनः प्रतिशरीरं भिन्नत्वम्—

आत्मा-प्रतिशरीरं भिन्नः । एकस्यैवात्मनः प्रतिशरीरसत्त्वे तु जन्ममरणबन्ध-
मोक्षव्यवस्था नोपपद्येरन् । अन्यो जातः, अन्यो मृतः । अन्यो बद्धः, अन्यस्तु मुक्त
इति व्यवस्था कथमुपपद्येत, तस्मात् प्रतिशरीरं भिन्न इति सिद्धम् । तथा चानन्ता
आत्मान इति मन्तव्यम् । अनेनाऽद्वैतवादो निराकृतः ।

(१२) आत्मनः पौद्गलिककर्मसंयुक्तत्वम्—

अयमात्मा—पौद्गलिककर्मसंयुक्तः । निश्चयनयेन कर्मरहितोऽपि व्यवहार-
नयतोऽनादिकालतः पौद्गलिककर्मसंबद्धोऽस्ति, तस्मादयं पौद्गलिककर्मसंयुक्त
इति कथ्यते ।

(११) आत्मा का प्रतिशरीरभिन्नत्व-

आत्मा अलग-अलग शरीरों में अलग-अलग है । समस्त शरीरों में
एक ही आत्मा का अस्तित्व माना जाय तो जन्म, मरण, बन्ध और मोक्ष
की व्यवस्था नहीं हो सकेगी । अर्थात् कोई जन्मा, कोई मरा, कोई बद्ध हुआ
और कोई मुक्त हुआ, ऐसी व्यवस्था कैसे बन सकेगी ? अतः आत्मा प्रत्येक
शरीर में अलग ही सिद्ध होता है । आत्माएँ अनन्त हैं; ऐसा मानना चाहिए ।
इस से अद्वैतवाद का निराकरण हो गया ।

(१२) आत्मा का पौद्गलिक कर्मसंयोग-

यह आत्मा पौद्गलिक कर्मों से संयुक्त है । निश्चयनय से कर्मरहित होने पर
भी व्यवहारनयकी अपेक्षा अनादिकाल से पौद्गलिक कर्मों के साथ आत्मा

(११) आत्मानुं प्रतिशरीरभिन्नत्व

आत्मा जूड़ा-जूड़ा शरीरोंमें जूड़ा-जूड़ा छे. समस्त शरीरोंमें अेक व आत्मानुं
अस्तित्व मानवामां आवे तो जन्म, मरण, अंध अने मोक्षनी व्यवस्था थर्ध शकशे
नडी. अर्थात्, कोधनुं जन्म, कोधनुं मरण, कोध अद्ध थाय अने कोध मुक्त थाय
अेवी व्यवस्था केवी रीते अनी शकशे ? आ डारणुथी 'आत्मा प्रत्येक शरीरमां अलग
छे.' अेम सिद्ध थाय छे आत्मा अनंत छे अेम माननुं जेध अे, आथी अद्वैतवादनुं
निराकरण थर्ध गयुं.

(१२) आत्मानो पौद्गलिक कर्मसंयोग

आ आत्मा पौद्गलिक कर्मोथी संयुक्त (कर्मो साथे जेडाअेले) छे निश्चय-
नयथी कर्मरहित होवा छतांय पण व्यवहारनयनी अपेक्षा अनादिकालथी पौद्गलिक

આત્મનો મિથ્યાત્વેન સહાનાદિઃ સમ્બન્ધઃ । અનાદિમિથ્યાત્વજનિત-
ત્રિભાવપરિણામરૂપરાગદ્વેપરિણત્યાઽઽત્મા સંતપ્તાયોગોલકઃ ઇવ સલિલં સર્વતોભાવેન
જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મદલં સમાકૃપ્ય સ્વસ્મિન્ સંયોજયતિ । તતોઽસૌ વહ્નિનાઽયોગોલક
ઇવ, નીરેણ ક્ષીરમિવ તેન કર્મદલેનૈક્યભાવં પ્રાપ્ય મૂર્ત ઇવ ભવતિ, અત એવ
નિશ્ચયનયેનાઽમૂર્તોઽપિ વ્યવહારનયેનાત્મા મૂર્ત ઇત્યુચ્યતે । કર્મસમ્બન્ધોઽયમાત્મનો
વ્યવહારનયત એવ ।

કા સંયોગ હૈ । અત એવ ઉસે પૌદ્ગલિક કર્મો સે સંયુક્ત કહતે હૈ । મિથ્યાત્વ
કે સાથ આત્મા કા અનાદિ સમ્બન્ધ હૈ । અનાદિકાલીનમિથ્યાત્વજનિત
વિભાવ-પરિણતિરૂપ રાગ-દ્વેપ સે આત્મા અપને સમસ્ત પ્રદેશો સે જ્ઞાનાવરણ આદિ
કે કર્મદલિકો કો ઉસી પ્રકાર ગ્રહણ કરતા હૈ, જૈસે ઝૂંચ તપા હુઆ લોહૈ કા
ગોળા જલ કો ગ્રહણ કરતા હૈ । અતઃ જૈસે અગ્નિ ઓર લોહગોલક એકમેક
સે હો જાને હૈ, ઓર દૂધ-પાણી એક-મેક હોયા હુઆ પ્રતીત હોતા હૈ, ઇસી
પ્રકાર કર્મદલિકો કે સાથ આત્મા એકમેક હોકર મૂર્ત-સા હો જાતા હૈ । ઇસ
પ્રકાર નિશ્ચયનય સે અમૂર્ત હોને પર મી વ્યવહારનય સે આત્મા મૂર્ત હૈ । આત્મા
ઓર કર્મ કા વહ સમ્બન્ધ વ્યવહારનય સે હી સમજના ચાહિપ ।

કર્મોની સાથે આત્માનો સંયોગ છે. એ કારણથી તેને પૌદ્ગલિક કર્મોથી સંયુક્ત
કહે છે.

મિથ્યાત્વની સાથે આત્માનો અનાદિ સંબંધ છે. અનાદિકાલીન મિથ્યાત્વથી
ઉત્પન્ન વિભાવ-પરિણતિરૂપ રાગ-દ્વેષથી આત્મા પોતાના સમસ્ત પ્રદેશોથી જ્ઞાનાવરણ
આદિના કર્મદળોને એવી રીતે ગ્રહણ કરે છે કે જેવી રીતે ખૂબ તપેલા લોહનો
ગોળો જલનું ગ્રહણ કરે છે. એટલે કે જેમ અગ્નિ અને લોહનો ગોળો એકમેક
થઈ બંધ છે, અને દૂધ-પાણી એકમેક થયેલા પ્રતીત થાય છે. તે પ્રમાણે કર્મ-
દલિકોની સાથે આત્મા એક-મેક થઈને મૂર્ત જેવો થઈ બંધ છે. આ પ્રમાણે
નિશ્ચયનયથી અમૂર્ત હોવા છતાંય પણ વ્યવહારનયથી આત્મા મૂર્ત છે. આત્મા
અને કર્મનો આ સંબંધ વ્યવહારનયથી જ સમજવો બોધ્યો.

कर्मबन्धापेक्षयाऽऽत्मना सह पुद्गलस्यैक्यरूपः संबन्धः, परन्तु लक्षणा-
पेक्षया द्वयोर्मिन्नता प्रतीयते । तस्मादात्मन एकान्तेनाऽमूर्तत्वं नास्ति । इदमत्र
तच्चम्-बन्धस्तु वस्तुतः पुद्गलस्य पुद्गलेन सह भवति; यथा पृथक् पृथक् पुद्गला
रूक्षस्निग्धगुणाभ्यां परस्परं बन्धं प्राप्नुवन्ति तद्वत्-आत्मना सह पूर्ववद्देः कर्मपुद्गलैः
सह नूतनकर्मपुद्गला निवध्यन्ते । आत्मनोऽसंख्यातप्रदेशेष्वेपां कर्मपुद्गलानामवगाहनं
भवति । आत्मन एकैकप्रदेशेऽनन्तकर्मपुद्गलास्तिष्ठन्ति । आत्मप्रदेशानां कर्मपुद्गलानां
चैकक्षेत्रेऽवगाहनस्य एव बन्धः । ईदृशोऽयं बन्धो नास्ति ।

कर्मबन्ध की अपेक्षा आत्मा के साथ पुद्गल का एकत्व-रूप-सम्बन्ध है, किन्तु लक्षणों
से दोनों भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, इस लिए आत्मा में एकान्त अमूर्तता नहीं है । तात्पर्य
यह है कि-वास्तव में पुद्गलका बन्ध तो पुद्गल के साथ ही होता है, जैसे पृथक् पृथक् पुद्गल
रूक्षता और स्निग्धता गुणों के कारण परस्पर बद्ध हो जाते हैं, इस प्रकार आत्मा के साथ
पहले से बँधे हुए कर्मपुद्गल के साथ नवीन कर्मपुद्गलों का बन्ध होता है, इन पुद्गलों
की अवगाहना आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में होती है । आत्मा के एक-एक प्रदेश में
अनन्त पुद्गल रहते हैं । आत्मप्रदेशों का और कर्म-पुद्गलों का बन्ध एकक्षेत्रावगाहन
रूप ही है, जैसे एक पुद्गल दूसरे पुद्गल के साथ स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण
मिल कर रून्ध बन जाता है, वैसा आत्मा और पुद्गल का बन्ध नहीं होता । कर्म-

कर्म बंधनी अपेक्षा आत्मानि साथे पुद्गलानो ऐक्यरूप संबन्धे, परन्तु
लक्षणेऽपि अने लिन्न लिन्न प्रतीत थाय छे. अे क्षरषुथी ऐकान्त भूर्त्ता नथी.
तात्पर्य अे छे केः—वास्तवमां पुद्गलानो बंध तो पुद्गलनी साथे न थाय छे.
पृथक्-पृथक् पुद्गल रूक्षता अने स्निग्धता शुद्धाना क्षरषु परस्पर बद्ध थथ नथ
छे. अे प्रभाहे आत्मानि साथे प्रथमथी बद्ध थथेला (आत्माने प्रथम थोटेला)
कर्मपुद्गलानी साथे नवीन कर्मपुद्गलानो बंध थाय छे. ते पुद्गलानी अवगाहना
आत्माना असंख्यात प्रदेशोमां थाय छे. आत्माना अेक अेक प्रदेशमां अनन्त पुद्गल
रहे छे. आत्माना प्रदेशो अने कर्मपुद्गलानो बंध अेकक्षेत्रावगाहनरूप न छे. लेवी
रीते अेक पुद्गल भील पुद्गलनी साथे स्निग्धता अने रूक्षता शुद्धना क्षरषु
भणीने रूद्ध अनी नथ छे, लेवी रीते आत्मा अने पुद्गलानो बंध थतो नथी.
कर्मपुद्गलानी अवगाहना आत्मानि साथे आ प्रकारे अनादिक्षरषु आली आवे छे

यथा—पुद्गलस्य पुद्गलेन सह स्निग्धरूक्षगुणसद्भावे सति स्कन्धभावरूपो घन्धो भवति । कर्मपुद्गलानामवगाहनाऽऽत्मना सहेत्यमनादिकालतः प्रवृत्ता, यत्-एकपिण्डरूपं कर्मणशरीरमेव संजायते । तच्च शरीरमात्मनः प्रदेशमेकमपि न मुञ्चति । आत्मनः सर्वप्रदेशमभिव्याप्य तिले तैलमिव कर्मणशरीरं तिष्ठति, किन्तु-अक्षर-स्यानन्ततमो भागो वर्त्तत एव, मेघपटलाच्छादितमूर्यरश्मिवत् । इदं कर्मणं शरीरं तैजसं चेति द्वयं शरीरमतिसूक्ष्मं सदाऽऽत्मना सह वर्त्तते । यत्र सूक्ष्मशरीरे स्थूलशरीरे वाऽयमात्मा गच्छति तत्प्रमाणो भवन् संकुचितो विस्तृतो वा भवति । तदानोमिदं द्वयं शरीरमपि सूक्ष्मस्थूलशरीरानुसारेण संकुचितं विस्तृतं वा भवति ।

यथा—अकृत्रिमपर्वतादौ स्कन्धरचना विद्यमानैव, तथापि तस्मात्

पुद्गलो क्री अवगाहना आत्मा के साथ इस प्रकार अनादिकाल से चली आती है कि एक पिण्डरूप कर्मण शरीर ही उत्पन्न होता है । यह कर्मण शरीर आत्मा के एक भी प्रदेशको नहीं छोड़ता । आत्मा के समस्त प्रदेशों को व्याप्त करके, तिल में तेल की तरह कर्मण शरीर रहता है, किन्तु ज्ञान का अनन्तवाँ भाग बादलों से आच्छादित सूर्य की प्रभा के समान खुला रहता ही है ।

यह कर्मण शरीर और तैजस शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है और आत्मा के साथ सदैव रहते हैं । जिस सूक्ष्म या स्थूल शरीर में आत्मा जाता है उसी शरीरप्रमाण संकुचित या विस्तृत हो जाता है, और उस समय ये दोनों शरीर भी सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीर के अनुसार संकुचित अथवा विस्तृत हो जाते हैं ।

जैसे अकृत्रिम पर्वत आदि में स्कन्ध की रचना तो ज्यों की त्यों विद्यमान रहती है

के अकृत्रिमरूप धार्मण्य शरीर न उत्पन्न थाय छे ते धार्मण्य शरीर आत्माना अकृत्रिम प्रवेशने छोडतो नथी. आत्माना तयाम प्रदेशाने व्याप्त (आरिध तरङ्ग प्रवेशेत्) करीने तलमां तेल रडे छे ते प्रभाण्ये धार्मण्य शरीर रडे छे.

परंतु ज्ञानने अनंतमे लाग, वाहणाओधी ढंकाओली सूर्यनी प्रभा प्रभाण्ये अकृत्रिम रडे न छे ? ते धार्मण्य शरीर अने तैजस शरीर अत्यन्त सूक्ष्म छे. अने आत्माना साथे ते लभेशां रडे छे. नै सूक्ष्म के स्थूल शरीरमां आत्मा नय छे ते शरीर प्रभाण्ये संकुचित अथवा विस्तृत थय नय छे. अने ते समय आत्माने शरीर पण्य सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीरना अनुसार संकुचित अथवा विस्तृत थय नय छे.

जैवी शीते अकृत्रिम पर्वत आदिना स्कंधनी रचना तो जैवी छे तेवी न

स्कन्धात् पुरातनाः पुद्गलाः क्षरन्ति नूतनास्तु तत्रागत्य मिलन्ति, तथाऽनयो-
स्तैजस-कर्मण-शरीरयोः स्वरूपं न कदाचिद् विनश्यति, परन्तु तत्रत्याः
पुरातनाः कर्मपुद्गलाः स्वस्वफलप्रदानपुरस्सरं स्वावस्थितिसमयं समाप्याप-
गच्छन्ति, नूतनाः पुनः कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशेषु मिलित्वा संवद्धा भवन्ति ।
एवामात्मप्रदेशैः सहानादिकालतः प्रवाहरूपोऽयं समायातः कर्मणां सम्बन्धः ।

अयं च कर्मसम्बन्धस्तदैव विनश्यति, यदाऽयमात्मा मुक्तिं लभेत । आभ्यां
तैजसकर्मणशरीराभ्यां वियोग एव मुक्तिरुच्यते । यद्यनादिकालतः कर्मण-
शरीरं संसारिणो न स्यात् तदा कदाचिदपि नवीनकर्मणवर्गणाभिर्वन्धो न
भवेत् । कर्मणशरीराभावादेव सिद्धानां कर्मणवर्गणापरिपूर्णेऽपि सिद्धक्षेत्रे
कर्मवन्धो न भवति ।

फिर भी उस स्कन्ध से पुराने पुद्गल खिरते रहते हैं और नवीन पुद्गल आकर उसमें मिल जाते
हैं, इसी प्रकार तैजस और कर्मण शरीर का स्वरूप कभी नष्ट नहीं होता, किन्तु उसमें के
पुराने कर्म-पुद्गल अपना-अपना फल देकर, अपनी स्थिति का काल समाप्त करके हट जाते
हैं और नवीन पुद्गल आत्मप्रदेशों में मिलकर बद्ध हो जाते हैं । इस प्रकार आत्मप्रदेशों के साथ
कर्मों का सम्बन्ध अनादिकाल से प्रवाहरूप में चला आता है ।

यह कर्म-सम्बन्ध उसी समय नष्ट होगा, जब आत्मा मुक्त हो जायगा । तैजस और
कर्मण शरीर से सर्वथा वियोग हो जाना ही आत्मा की मुक्ति है । संसारी जीव के साथ
अनादि काल से कर्मण शरीर का सम्बन्ध न होता तो नवीन कर्मवर्गणाओं का सम्बन्ध
कभी न होता । यद्यपि सिद्धक्षेत्र कर्मणवर्गणा से भरा हुआ है, फिर भी सिद्धों में कर्मण
शरीर न होने से उन्हें कर्मवन्ध नहीं होता ।

विद्यमान रहे છે, તે પણ તે સ્કંધમાંથી પુરાણા પુદ્ગલ ખરતાં રહે છે. અને
નવીન પુદ્ગલ આવીને તેમાં મળી બંધ છે. એ પ્રમાણે તૈજસ અને કાર્મણ
શરીરનું સ્વરૂપ કોઈ વખત પણ નાશ થતું નથી, પરંતુ તેમાં પુરાણા કર્મપુદ્ગલ
પોતા-પોતાનું ફળ આપીને પોતાની સ્થિતિનો સમય સમાપ્ત કરીને હટી બંધ છે,
અને નવીન પુદ્ગલ આત્મપ્રદેશોમાં મળીને બદ્ધ થઈ બંધ છે. આ પ્રમાણે આત્મ-
પ્રદેશોની સાથે કર્મોનો સંબંધ અનાદિ કાળથી પ્રવાહરૂપમાં ચાલ્યો આવે છે.

આ કર્મ-સંબંધ તે સમયે નાશ થશે કે જ્યારે આત્મા મુક્ત થઈ જશે
તૈજસ અને કાર્મણ શરીરની સર્વથા વિયોગ થઈ જવો તેજ આત્માની મુક્તિ છે.
સંસારી જીવની સાથે અનાદિ કાલથી કાર્મણ શરીરનો સંબંધ બંધ ન હોત તો
નવીન કર્મવર્ગણાઓનો સંબંધ પણ કોઈ વખત નહીં થતો, બંધ કે સિદ્ધક્ષેત્ર

(૧૩) આત્મન ઋર્ધ્વગતિસ્વભાવત્વમ્—

અપમાત્મા—ઋર્ધ્વગતિશીલઃ, અગુરુલઘુત્વાત્ । યદ્યેવં તર્હિ કયમંથો ગચ્છતિ ? । અભાવુર્યયા સ્વભાવત ઋર્ધ્વગમનશીલોપિ મુદ્દેપાજ્જલેઽથો ગચ્છતિ; તદપગમાદ્ઋર્ધ્વ-માજલાન્તાદ્ ગચ્છતિ, એવમાત્માપિ કર્મલેપાદ્યો ગચ્છતિ તદપગમાદ્ઋર્ધ્વમાલો-કાન્તાદ્ ગચ્છતિ । યથા વા-અરુણદીપમપિ વન્ધનમુક્તં સદ્ઋર્ધ્વ ગચ્છતિ ।

(૧૩) આત્માકા ઋર્ધ્વગતિસ્વભાવ—

યહ આત્મા ઋર્ધ્વગમન સ્વભાવ વાલા હૈ; ક્યોં કિ વહ અગુરુલઘુ હૈ । પ્રશ્ન કિયા જા સકતા હૈ કિ અગર એસી વાત હૈ તો આત્મા અધોગમન ક્યોં કરતા હૈ ? ઇસ પ્રશ્ન કા ઉત્તર યહ હૈ કિ જૈસે પાની મેં ઊપર કી ઓર ગમન કરને કા તૂંવેકા સ્વભાવ હૈ, ફિર મી મિટ્ટી કા લેપ કર દેને સે વહ અધોગમન કરતા હૈ ઓર લેપ હટ જાને પર જલ કી સતહ તક ઊપર કી ઓર ઉઠતા હૈ । ઇસી પ્રકાર આત્મા કર્મલેપ કે કારણ નીચે જાતા હૈ ઓર કર્મલેપ હટ જાને સે લોક કે અપ્રમાગ તક ઊપર કી ઓર જાતા હૈ । અથવા જૈસે-અરુણ કા વીજ વન્ધન સે મુક્ત હોકર ઊપર જાતા હૈ ઊસી પ્રકાર આત્મા મી કર્મવન્ધન કા નાશ હોને પર ઊપર જાતા હૈ ।

કાર્મણુવર્ગણુઓથી ભરેલો છે, તો પણ સિદ્ધોમાં કાર્મણુ શરીર નહિ હોવાથી તેને કર્મબંધ થતો નથી.

(૧૩) આત્માનો ઋર્ધ્વગતિસ્વભાવ—

આ આત્મા ઋર્ધ્વ-ગતિ-ગમન-સ્વભાવ વાળો છે, કારણ કે તે અગુરુ-લઘુ છે. તો પ્રશ્ન કરી શકાય છે કે અગર જો એ પ્રમાણે છે તો આત્મા અધોગમન કેમ કરે છે ? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે:—તુંબડાનો સ્વભાવ જેમ પાણીમાં ઉપરની તરફ આવવાનો છે તો પણ તેને માટીનો લેપ કરી દેવાથી તે પાણીમાં નીચે જાય છે. અને માટીનો લેપ દૂર થતાં જલની સપાટી સુધી ઉપરના ભાગમાં આવે છે. એ પ્રમાણે આત્મા કર્મલેપના કારણે નીચે જાય છે, અને કર્મલેપ દૂર થવાથી લોકના અપ્રમાગ સુધી ઉપરના ભાગમાં જાય છે. અથવા જેવી રીતે અરુણાનું વીજ બંધનથી મુક્ત થતાં ઉપર જાય છે. તે પ્રમાણે આત્મા પણ કર્મબંધન નાશ થતાં ઉપર જાય છે.

लोकवादिप्रकरणम्-

यः पुनरेवंरूपमात्मानं सर्वथा विज्ञायात्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव वस्तुतो लोकवादीत्याह-‘लोकवादी’ इति । लोकयते सर्वज्ञैरिति लोकः-पद्जीवनिकायरूपः । अत्र लोकशब्देन पद्जीवनिकायो गृह्यते, भगवताऽऽत्मज्ञानमेव पुरस्कृत्य लोकवादिप्रतिबोधनात् । यः पद्जीवनिकायरूपं लोकं विजानाति स एव लोकवादी=लोकस्वरूपकथनस्वभाववान्, न तु पद्जीवनिकायानभिज्ञ इत्यर्थः ।

पद्जीवनिकायरक्षणैवात्मस्वरूपं प्रकटीभवति । तच्च पद्जीव-

लोकवादिप्रकरण—

जो इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को जान कर आत्मा के निरूपण में तत्पर होता है वही वास्तव में लोकवादी है ।

सर्वज्ञों द्वारा जो लोका जाय-अवलोकन किया जाय वह लोक है, अर्थात् पद्जीवनिकाय को लोक कहते हैं । ‘लोक’ शब्द से यहाँ पद्जीवनिकाय का ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि भगवान् ने आत्मज्ञान को ही आगे रखकर लोकवादी का कथन किया है । जो पद्जीवनिकायरूप लोक को जानता है वही लोकवादी है, अर्थात् लोक के स्वरूप का कथन करने वाला है, किन्तु पद्जीवनिकाय से अनभिज्ञ नहीं ।

पद्जीवनिकाय की रक्षा करने से ही आत्मा का स्वरूप प्रकट होता है । पद्जीव-

लोकवादीप्रकरण

जो आ प्रमाणे आत्माना स्वरूपने नाल्थी करीने आत्माना निरूपणमां तत्पर थाय छे ते वास्तविक रीते लोकवादी छे ।

सर्वज्ञों द्वारा जो लोकजाय-अवलोकन किया, अर्थात् सर्वज्ञों ने जो कुछ शब्द छे ते लोक छे, अर्थात् पद्जीवनिकायने लोक कहे छे, ‘लोक’ शब्दधी पद्जीवनिकायतुं न अहण्य कथुं छे, कारण के लगवाने आत्मज्ञानने न आगण राधीने लोकवादीतुं कथन कथुं छे, जो पद्जीवनिकायइय लोकने नाल्थे छे, ते लोकवादी छे, अर्थात् लोकना स्वरूपतुं कथन करवा वाणा छे पद्जीवनिकायधी अनभिज्ञ थाय ते नहि ।

पद्जीवनिकायनी रक्षा करवाधी न आत्मातुं स्वरूप प्रकट थाय छे, पद्जीव-

નિકાયજ્ઞાનં વિના તદ્વક્ષણં ન સંભવતિ । અતઃ પદ્જીવનિકાયસ્વરૂપં નિરૂપ્યતે—

જીવાસ્તાવત્ સંક્ષેપતો દ્વિવિધાઃ—સિદ્ધા અસિદ્ધાશ્ચેતિ । તત્ર મુક્તિ પ્રાપ્તાઃ સિદ્ધાઃ, સંસારિણોઽસિદ્ધાઃ । સંસારિણઃ પુનર્દ્વિવિધાઃ—ત્રસ—સ્થાવરભેદાત્ । તત્ર પૃથિગ્વ્યપ્તેજોનાયુવનસ્પતયઃ સ્થાવરાઃ । ત્રસાશ્વતુર્વિધાઃ—દ્વીન્દ્રિય—ત્રીન્દ્રિય—ચતુરિન્દ્રિય—પચ્ચેન્દ્રિયભેદાત્ । તત્રેન્દ્રિયાણિ પચ્ચ શ્રોત્ર—ચક્ષુ—ઘ્રાણ—રસન—સ્પર્શનાભ્યાનિ । પૃથિવીકાયોઽપ્કાયસ્તેજસ્કાયો વાયુકાયો વનસ્પતિકાયશ્ચેતિ પચ્ચવિધા જીવા એકેન્દ્રિયાઃ । કૃમ્યાદયો દ્વીન્દ્રિયાઃ, પિપીલિકાદયહ્વીન્દ્રિયાઃ, ભ્રમરાદયશ્વતુરિન્દ્રિયાઃ । મનુષ્યાદયઃપચ્ચેન્દ્રિયાઃ ।

નિકાય કો રક્ષા ડસકે જ્ઞાન કે અમાવ મેં નહીં હો સકતી, અતઃ પદ્જીવનિકાય કે સ્વરૂપ કા નિરૂપણ ક્રિયા જાતા હૈ—

સંક્ષેપ મેં જીવોં કે ડો ભેદ હૈ—સિદ્ધ જીવ ઓર અસિદ્ધ જીવ । મુક્ત જીવ સિદ્ધ કહલાતે હૈ ઓર સંસારી જીવ અસિદ્ધ કહલાતે હૈ । સંસારી જીવ ડો પ્રકાર કે હૈ—ત્રસ ઓર સ્થાવર । પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, ઓર વનસ્પતિકાય સ્થાવર હૈ । ત્રસ જીવ ચાર પ્રકાર કે હૈ—દ્વિન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય ઓર પચ્ચેન્દ્રિય । શ્રોત્ર, ચક્ષુ, ઘ્રાણ (નાક), રસના ઓર સ્પર્શન, યે પાંચ ઇન્દ્રિયોં હૈ । પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય ઓર વનસ્પતિકાય, યે પાંચ સ્થાવર જીવ-એકેન્દ્રિય હૈ । કૃમિ આદિ દ્વીન્દ્રિય હૈ । પિપીલિકા (ચિંટો) આદિ ત્રીન્દ્રિય હૈ । મૈરા આદિ ચૌશ્ચિન્દ્રિય હૈ । મનુષ્ય આદિ પચ્ચેન્દ્રિય હૈ ।

જીવનિકાયની રક્ષા તેના જ્ઞાનના અભાવમાં થઈ શકતી નથી, તે કારણથી પદ્જીવનિકાયનાં સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે:—

સંક્ષેપમાં જીવના ડે ભેદ છે.—(૧) સિદ્ધજીવ અને (૨) અસિદ્ધજીવ. મુક્તજીવ તે સિદ્ધ કહેવાય છે અને અસિદ્ધ તે સંસારી જીવ કહેવાય છે. સંસારી જીવ પશુ ડે પ્રકારના છે. (૧) ત્રસ અને (૨) સ્થાવર. પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, અને વનસ્પતિકાય તે સ્થાવર છે. ત્રસ જીવ ચાર પ્રકારના છે. દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પચ્ચેન્દ્રિય. શ્રોત્ર (કાન) ચક્ષુ (નેત્ર), ઘ્રાણ (નાક), રસના (જીભ), અને સ્પર્શન (ચામડી), આ પાંચ ઇન્દ્રિયો છે. પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય અને વનસ્પતિકાય, આ પાંચ સ્થાવરજીવ એકેન્દ્રિય છે, કૃમિ આદિ દ્વીન્દ્રિય છે. ઠીંડી આદિ ત્રીન્દ્રિય છે, ભમરા વગેરે ચૌશ્ચિન્દ્રિય

અત્ર પશ્ચ સ્થાવરા એકસૂત્રશ્ચેતિ મિલિત્વા પૃઙ્જીવનિકાયા ભવન્તિ
 ઇપાં પ્રત્યેકં ભેદાન્ મદર્શયામઃ—

(૧) પૃથિવીકાયભેદાઃ—

પૃથિવીકાયસ્તાવદુચ્યતે—પૃથિવ્યેવ કાયો યસ્ય સ પૃથિવીકાયઃ ।
 પૃથિવીકાયાદયઃ પશ્ચ સ્થાવરનામકર્મોદયાત્ સમુત્પન્નાસ્તસ્માદિમે સ્થાવરા ઇતિ
 કથ્યન્તે । પૃથિવીકાયોઽનેકવિધઃ, શુદ્ધપૃથિવીશર્કરા—વાલુકાદિભેદાત્ । તત્ર
 શર્કરાદિભેદરહિતા મૃત્તિકારૂપા, તથા ગોમયકચવરાદિરહિતા વા પૃથિવી—

પાંચ સ્થાવર ઓર એક ત્રસ મિલકર પૃજીવનિકાય હૈં । ઇન સબકે
 ભેદ દિસ્વલાતે હૈં—

(૧) પૃથિવીકાય કે ભેદ—

પૃથિવી હી જિસ કા શરીર હો, વહ પૃથ્વીકાય કહલાતા હૈ । પૃથ્વીકાય આદિ પાંચો
 સ્થાવરનાકર્મ કે ઉદય સે ઉત્પન્ન હોને કે કારણ સ્થાવર કહલાતે હૈં । પૃથિવીકાય
 અનેક પ્રકાર કા હૈં—શુદ્ધ પૃથિવી, શર્કરા, વાલુ આદિ । ડનમૈં શર્કરા આદિ
 ભેદો સે રહિત મૃત્તિકારૂપ, તથા ગોવર યા કચરા આદિ સે રહિત પૃથિવી શુદ્ધપૃથિવી
 કહલાતી હૈ । પથર કે છોટે—છોટે સ્વપ્ડો સે મિલી હુઈ મૃત્તિકા શર્કરા પૃથિવી હૈ ।

છે, મનુષ્ય આદિ પાંચેન્દ્રિય છે

પાંચ સ્થાવર અને એક ત્રસ મળીને પૃજીવનિકાય છે. એ તમામના ભેદો
 ખતાવે છે:—

(૧) પૃથિવીકાયના ભેદ—

પૃથિવી જેતું શરીર હોય, તે પૃથિવીકાય કહેવાય છે. પૃથ્વીકાય આદિ પાંચેય
 સ્થાવરનામકર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન હોવાના કારણે સ્થાવર કહેવાય છે. પૃથ્વીકાય અનેક
 પ્રકારે છે, શુદ્ધપૃથ્વી, શર્કરા, વાલુ (રેતી) આદિ. તેમાં શર્કરા આદિ ભેદોથી રહિત
 મૃત્તિકારૂપ, અને છાણ અગર કચરા આદિથી રહિત પૃથ્વી શુદ્ધપૃથ્વી કહેવાય છે.
 પથરના નાના—નાના કકડાઓથી મળેલી માટી તે શર્કરા પૃથિવી છે. વાલુ (રેતી)

शुद्धपृथिवी । अश्मलघुखण्डमिश्रिता मृत्तिका-शर्करापृथिवी । बालुकाव्यतिमिश्रा मृत्तिका-बालुकापृथिवी । एवं बहुविधाः पृथिवीकायाः, तथाहि-

उपल - शिला - लवणो-पर - लोह - त्रपु - ताम्र - सीसक - रजत-सुवर्ण-हरिताल-
द्विङ्गुलक-मनःशिला-सस्यकाञ्जन-प्रवाला-भ्रकपटला-भ्रवालुका-गोमेद-रुचका-ङ्क-
स्फटिक - लोहिताक्ष - मरकत-मसारगल्ल-भुजगे-न्द्रनील-गोपीचन्दन-गैरिक - हंसगर्भ-
पुलक-सौगन्धिक-चन्द्रकान्त-सूर्यकान्त-वैडूर्य-जलकान्तादयः सर्वे वादरपृथिवीकाय-
भेदाः । एते च शुद्धपृथिव्यादयः स्वस्वनिस्थिता एव चेतनावन्तः । गोमय-
कचवरादिरूपशस्त्रोपहता रविवह्नितापरूपशस्त्रोपहताश्च गतचेतना भवन्ति ।

वाद्द मिली मृत्तिका बालुका पृथिवी कहलाती है । इस प्रकार पृथिवीकाय के अनेक भेद हैं, वे इस प्रकार :—

पत्थर, शिला, नमक, उपर, लोहा, रांगा, तांबा, शीशा, चांदी, सोना, हडताल, हिंगल, मैनसिल, सस्यकांजन, मूंगा, अभ्रक अभ्रवालुका गोमेद, रुचक, अङ्क, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजग, इन्द्रनील, गोपीचन्दन, गेरू, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रकान्त सूर्यकान्त, वैडूर्य, जलकान्त, आदि वादर पृथिवीकाय के भेद हैं । वे शुद्ध पृथिवी आदि जब अपनी खान में स्थित होते हैं तभी सचेतन होते हैं । गोवर, कचरा आदि शस्त्रों से उपहत होकर या सूर्य की घूप और अग्नि के तापरूप शस्त्र से अचेतन हो जाते हैं ।

भजेदी माटी बालुकापृथिवी कडेवाय छे. जे प्रमाळु पृथिवी कायना अनेक भेद छे.

पत्थर, शिला, गीहुं, उपर-भारे, बोहुं, रांगे, (कलध), त्रांभुं, सीसुं, चांटी, सोसुं, हडताल, हिंगलो, मनशिल, सुरमे, मूंगा-परवाणां, अब्रक, अब्रवालुका, गोमेद, रुचक, अंक, स्फटिक, बोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजंग, इन्द्रनील, गोपीचन्दन, गेरू, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, वैडूर्य, जलकान्त आदि वादरपृथिवीकायना भेद छे (आ पर वादर पृथ्वीकाय छे). जे शुद्ध पृथिवी आदि न्यारे चोतानी भाषुमां स्थित होय छे, त्यारे ते सचेतन होय छे. छाषु-कचरे आदि शस्त्रोधी उपहत (हषुआलेवा) थधने, अथवा ते सूर्य अने अग्निना तापरूप शस्त्रोधी अचेतन थधं नथ छे.

उक्तवादरपृथिवीकायानां यत्रैको जीवस्तत्र नियमतोऽसंख्याताः पृथिवीकाया जीवाः सन्ति । स्थानमध्येषां पृथिवी-पाताल-भवन-नरक-प्रस्तर-विमानादिकं ज्ञेयम् । सूक्ष्मपृथिवीकायजीवास्तु सर्वलोकव्यापिनः । उभयेषां भेदप्रभेदाः सर्वज्ञप्रणीतादागमादवगन्तव्याः ।

(२) अप्कायभेदाः—

अप्कायाऽनेकविधः—अवश्याय - मिहिका - करक-हरतनु - शुद्ध-शीतो-प्य-क्षारा-ऽम्ल-लवण-क्षीरोदक-घृतोदकादिभेदात् । एको यत्रापक्कायस्तत्रासंख्याता अप्कायाः सन्ति । वादराप्कायानां समुद्र-हृद्-नदी-वापी-कूप्यादिः स्थानम् । सूक्ष्माप्कायस्तु सर्वलोकव्यापकः । अस्यापि भेदप्रभेदा आगतो विज्ञेयाः ।

उक्त वादर पृथिवीकाय आदि का जहाँ एक जीव है वहाँ नियम से असंख्यात पृथिवीकाय के जीव हैं । पृथिवी, पाताल, भवन, नरक-प्रस्तर, विमान आदि इनके स्थान हैं । सूक्ष्म पृथिवीकाय के जीव समस्त लोक में व्याप्त हैं । दोनों के भेद-प्रभेद सर्वज्ञोक्त आगम से समझ लेने चाहिए ।

(२) अप्काय के भेद—

अप्काय अनेक प्रकार का है—ओस, मिहिका, ओले, हरतनु, शुद्धजल, शीतजल, उप्यजल, क्षार, अम्ल लवणजल (खारा पानी) क्षीरोदक, और घृतोदक आदि । जहाँ एक अप्काय है वहाँ असंख्यात अप्काय हैं । वादर अप्कायका स्थान, समुद्र, तलाव, नदी, वावडी, कूप आदि हैं, और सूक्ष्म अप्काय समस्त लोक में व्याप्त है । इसके भी भेद-प्रभेद आगम से समझना चाहिए ।

उपर कहेला भादर पृथिवीकाय आदिने न्यां अेक एव छे. त्यां नियमथी असंख्यात पृथिवीकाय एव छे. पृथिवी, पाताल, भवन, नरक-प्रस्तर, विमान आदि तेना स्थान छे. सूक्ष्म पृथिवी कायना एव समस्त लोकमां व्याप्त छे. अे अनेना भेद-प्रभेद सर्वज्ञाना आगमथी समल लेवा जेधजे.

(२) अप्कायना भेद—

अप्कायना अनेक प्रकार छे—ओस, मिहिका (निहार), ओणो, हरतनु- (पृथ्वीने लेहीने तृणना अत्रभाग वगेरे उपर रहेनाइं पाणी) शुद्ध जल (अंतरिक्षथी पडेलुं अथवा नदीतुं पाणी) शीतलजल, उष्णजल (स्वाभावथी गरम पाणीना कुंडोतुं पाणी), भाटुं जल, भाइं जल, क्षीरोदक अने घृतोदक आदि, (लवण, वाइण, क्षीर, धक्षुरस अने पुष्करवर समुद्रनां पाणी) न्यां अेक अप्काय छे, त्यां असंख्यात अप्काय छे. भादर अप्कायना स्थान समुद्र, तलाव, नदी, वावडी, कूवा आदि छे, अने सूक्ष्म अप्काय समस्त लोकमां व्याप्त छे. तेना भेद-प्रभेद पण आगमथी समजवा जेधजे.

(३) तेजस्कायभेदाः—

तेजस्कायोऽनेकविधः—अङ्गाराचिरलातशुद्धाग्न्यादिभेदात् । इमे तेजस्काया जीवा वादराः । यत्रैकस्तेजस्कायस्तत्राऽसंख्यातास्तेजस्कायाः सन्ति । तेषां स्थानं सार्धतृतीयद्वीपरूपसमयक्षेत्रमेव, न ततो बहिः । सूक्ष्मास्तु सर्वलोकव्यापिनः । एषां भेद-प्रभेदाः पूर्ववद् विज्ञेयाः

(४) वायुकायभेदाः—

वायुकायः पौरस्त्य-पाश्चात्याद्युत्कल्लिमण्डलिकादिभेदादनेकविधः । वादर-वायुकायानां स्थानं घनवात-तनुवात-तद्वलयाधोलोकपातालभवननादिकम् । सूक्ष्मा वायुकाया सर्वलोकव्यापिनः । एषां भेदप्रभेदाः पूर्ववद् वेदितव्याः ।

(३) तेजस्काय के भेद—

तेजस्काय अनेक प्रकार का है, जैसे—अंगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध-अग्नि आदि । जहाँ एक वादर तेजस्काय का जीव होता है वहाँ असंख्यात तेजस्काय होते हैं । इन का स्थान अर्धतृतीयपरूप समय क्षेत्र ही है, उस से बाहर ये नहीं होते । सूक्ष्म तेजस्काय के जीव लोकव्यापी हैं । इन के भी भेद-प्रभेद आगम से समझने चाहिए ।

(४) वायुकाय के भेद—

वायु के भी पूर्वा और पश्चिमी आदि के भेद से और उत्कल्लिक मण्डलिक आदि के भेद से अनेक प्रकार हैं । घनवात, तनुवात, वलय, अधोलोक और पाताल, भवन आदि वादर वायुकाय के स्थान हैं । सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी है ।

(३) तेजस्कायना भेद—

तेजस्काय अनेक प्रकारना छे; जेम-के अंगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध अग्नि, आदि, ज्वां अेक बाहर तेजस्कायना छव होय छे त्वां असंख्यात तेजस्काय होय छे. तेनुं स्थान अर्धतृतीयपरूप समयक्षेत्र न छे, तेनाथी अडार ते नथी. सूक्ष्म तेजस्कायना छव लोकव्यापी छे. तेना पञ्च भेद-प्रभेद आगमथी लक्ष्णी लेवा जेछे अे.

(४) वायुकायना भेद—

वायुकाय पञ्च पूर्वं अने पश्चिम आदिना भेदथी, अने उत्कल्लिक (जेम समुद्रमां कडलोला) मंडलिक, (भूजमांथी जे गोंज इरतो वातो होय ते वायु) आदि भेदथी अनेक प्रकारना छे, घनवात, तनुवात, वलय, अधोलोक, अने पाताल, भवन आदि बाहर वायुकायना स्थान छे, अने सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी छे.

इमौ तेजस्काय-वायुकायौ गतिस्वभावतया त्रसावपि निगद्येते ।

(૫) વનસ્પતિકાયભેદાઃ—

वनस्पतिकायोऽनेकविधः—शैवाल - पनक - हरिद्रा - स्रृङ्क-मूलका - लूक-सूरण-पलाण्डु-लशुन-कन्दादिभेदात् । इमे वनस्पतिकायाः साधारणा उच्यन्ते । वृक्षगुच्छगुल्मलतादयः प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते । साधारणवनस्पतिकायस्यैकस्मिन्

इनके भेद-प्रभेद पूर्ववत् आगम से जानने चाहिए । तेजस्काय और वायुकाय गतिशील होने के कारण त्रस भी कहे जाते हैं ।

(૫) વનસ્પતિકાય કે મેદ-

वनस्पतिकाय अनेक प्रकार का है । जैसे-शैवाल, पनक, हरिद्रा, (हल्दी), आर्द्रक (अदरक) मूलक, अट्क (आढ), सूरण, प्याज, लहसुन, और कन्दः आदि । ये वनस्पतियाँ साधारण कहलाती हैं । तथा वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि प्रत्येकशरीर कहलाती हैं । साधारण वनस्पतिकाय के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं । इनका

तेना ભેદ-પ્રભેદ પૂર્વ પ્રમાણે આગમથી સમજી લેવા નેઈએ. તેજસ્કાય અને વાયુકાય ગતિશીલ હોવાના કારણે ત્રસ પણ કહેવામાં આવે છે.

(૫) વનસ્પતિકાયના ભેદ—

वनस्पति काय अनेक प्रकारे છે, જેમકે-શૈવાલ, પનક, હરિદ્રા, આડ, મૂલક, આલૂ, સૂરણ, ડુંગળી, લસણ અને કન્દ આદિ. આ વનસ્પતિઓ સાધારણ કહેવાય છે, (જેમાં અનંત જીવો હોય તેને સાધારણ કહે છે) તથા વૃક્ષ, (ભગવતી સૂત્રમાં વૃક્ષોના ત્રણ ભેદો પાડેલા છે. (૧) શૃંગબેર (આડ)ની પેઠે અનંત જીવોવાળાં ઝાડો, (૨) આંખાની માફક અસંખ્ય જીવોવાળાં ઝાડો, (૩) અને તાર-તમાલ વગેરે પ્રમાણે સંખ્યાત જીવોવાળાં ઝાડો). ગુચ્છ, ગુલ્મ (નવમાલિકા બઈ વગેરે) લતા આદિ પ્રત્યેક શરીર કહેવાય છે. સાધારણ વનસ્પતિ કાયનાં એક શરીરમાં અનંત જીવ હોય છે. તેનું સ્થાન ઘનોદધિ આદિ છે. સૂક્ષ્મ વનસ્પતિકાય સર્વ લોકવ્યાપી છે.

(३) तेजस्कायभेदाः—

तेजस्कायोऽनेकविधः—अङ्गारार्चिरत्वातशुद्धाग्न्यादिभेदात् । इमे तेजस्काया जीवा वादराः । यत्रैकस्तेजस्कायस्तत्राऽसंख्यातास्तेजस्कायाः सन्ति । तेषां स्थानं सार्धतृतीयद्वीपरूपसमयक्षेत्रमेव, न ततो बहिः । सूक्ष्मास्तु सर्वलोकव्यापिनः । एषां भेद-प्रभेदाः पूर्ववद् विज्ञेयाः

(४) वायुकायभेदाः—

वायुकायः पौरस्त्य-पाथात्याद्युत्कलिमण्डलिकादिभेदादनेकविधः । वादर-वायुकायानां स्थानं घनवात-तनुवात-तद्वलयाधोलोकपातालभवनादिकम् । सूक्ष्मा वायुकाया सर्वलोकव्यापिनः । एषां भेदप्रभेदाः पूर्ववद् वेदितव्याः ।

(३) तेजस्काय के भेद—

तेजस्काय अनेक प्रकार का है, जैसे—अंगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध-अग्नि आदि । जहाँ एक वादर तेजस्काय का जीव होता है वहाँ असंख्यात तेजस्काय होते हैं । इन का स्थान अर्द्धद्वीपरूप समय क्षेत्र ही है, उस से बाहर ये नहीं होते । सूक्ष्म तेजस्काय के जीव लोकव्यापी हैं । इन के भी भेद-प्रभेद आगम से समझने चाहिए ।

(४) वायुकाय के भेद—

वायु के भी पूर्वा और पश्चिमी आदि के भेद से और उत्कलिक मण्डलिक आदि के भेद से अनेक प्रकार हैं । घनवात, तनुवात, बलय, अधोलोक और पाताल, भवन आदि वादर वायुकाय के स्थान हैं । सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी है ।

(३) तेजस्कायना भेद—

तेजस्काय अनेक प्रकारना छे; जेभ-के अंगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध अग्नि, आदि, ज्वां अेक भादर तेजस्कायना एव होय छे त्यां असंख्यात तेजस्काय होय छे. तेनुं स्थान अर्द्धद्वीपरूप समयक्षेत्र न छे, तेनाथी अद्वार ते नथी. सूक्ष्म तेजस्कायना एव लोकव्यापी छे. तेना पणु भेद-प्रभेद आगमथी न्दर्या देवा न्दथिअे.

(४) वायुकायना भेद—

वायुकाय पणु पूर्व अने पश्चिम आदिना भेदथी, अने उत्कलिक (जेभ समुद्रमां कट्ठीलो) भंडालक, (भूणमांथी जे गोण इरतो वातो होय ते वायु) आदि भेदथी अनेक प्रकारना छे, घनवात, तनुवात, बलय, अधोलोक, अने पाताल, भवन आदि भादर वायुकायना स्थान छे, अने सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी छे.

इमौ तेजस्काय-वायुकायौ गतिस्वभावतया त्रसावपि निगद्येते ।

(५) वनस्पतिकायभेदाः—

वनस्पतिकायोऽनेकविधः—शैवाल - पनक - हरिद्रा - ऽऽर्द्रक-मूलका - लूक-सूरण-पलाण्डु-लघुन-कन्दादिभेदात् । इमे वनस्पतिकायाः साधारणा उच्यन्ते । वृक्षगुच्छगुल्मलतादयः प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते । साधारणवनस्पतिकायस्थैकस्मिन्

इनके भेद-प्रभेद पूर्ववत् आगम से जानने चाहिए । तेजस्काय और वायुकाय गतिशील होने के कारण त्रस भी कहे जाते हैं ।

(५) वनस्पतिकाय के भेद-

वनस्पतिकाय अनेक प्रकार का है । जैसे-शैवाल, पनक, हरिद्रा, (हल्दी), आर्द्रक (अदरक) मूलक, अलक (आलू), सूरण, प्याज, लहसुन, और कन्द आदि । ये वनस्पतियाँ साधारण कहलाती हैं । तथा वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि प्रत्येकशरीर कहलाती हैं । साधारण वनस्पतिकाय के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं । इनका

तेना लेह-प्रलेह पूर्व प्रभाण्डे आगमथी समलु लेवा जेधये. तेजस्काय अने वायुकाय गतिशील होवाना कारणे त्रस पण्डु कडेवाभां आवे छे.

(५) वनस्पतिकायना भेद—

वनस्पति काय अनेक प्रकारे छे, जेभडे-शैवाल, पनक, हरिद्रा, आहु, मूलक, आलू, सूरण, दुर्गणी, लसणु अने कन्द आदि. आ वनस्पतियो साधारण कडेवाय छे, (जेभां अनन्त लुवा होय तेने साधारण कडे छे) तथा वृक्ष, (भगवती सूत्रभां वृक्षोना त्रणु लेहो पाडेवा छे. (१) शृंगेरे (आहु) नी पेठे अनन्त लुवावाणां अडो, (२) आंभानी भाक्षक असंज्य लुवावाणां अडो, (३) अने ताड-तमाल वगेरे प्रभाण्डे संज्यात लुवावाणां अडो). गुच्छ, गुल्म (नवमालिका नदं वगेरे) लता आदि प्रत्येक-शरीर कडेवाय छे. साधारण वनस्पति कायनां जेके शरीरभां अनन्त लुवा होय छे. तेनु स्थान धनोदधि आदि छे. सूक्ष्म वनस्पतिकाय सर्व लोकव्यापी छे.

शरीरेऽनन्ता जीवाः सन्ति । एषां स्थानं घनोदध्यादि । घृत्मास्तु वनस्पतिकाया
सर्वलोकन्यापिनः । एषां भेदप्रभेदाश्च शास्त्रतोऽवसेयाः । एते पञ्च स्थावराः स्पर्शन-
रूपकैन्द्रियाः ।

पञ्च जीवनिकाया उक्ताः, इदानीं पष्टसप्ताधिकारः कथ्यते—
(६) प्रसकायभेदाः—

त्रसत्त्वं द्विविधं, क्रियातो लब्धितश्च । तत्र क्रिया = कर्म-चलनं-देशान्तर-
माप्तिः । अतः क्रिययैव तेजस्कायो वायुकायश्च त्रसो भवति । लब्ध्या तृप्तौ
स्थावरौ । द्वीन्द्रियादयस्तु क्रियया लब्ध्यापि त्रसा भवन्ति । लब्धिर्हि त्रसनामकर्मो-
दयः, देशान्तरप्राप्तिलक्षणा क्रियाऽपि द्वीन्द्रियादीनाम् । स्थावरनामकर्मोदयरूपया
स्थान घनोदधि आदि है । सूक्ष्म वनस्पतिकाय सर्वलोकन्यापी है । इनके भेद-प्रभेद
शास्त्र से समझ लेने चाहिए । इन पांच स्थावरों को एकमात्र स्पर्शनइन्द्रिय होती है ।
पांच जीवनिकायों का कथन किया जा चुका है । अब छोटे त्रसकाय का प्ररूपग
किया जाता है—

(६) त्रसकाय—

त्रसपन दो प्रकार का है—क्रिया से और लब्धि से । कार्य करना, चलना, एक
जगह से दूसरी जगह जाना क्रिया है । इस क्रिया से ही तेजस्काय और वायुकाय त्रस
कहलाते हैं । लब्धिकी अपेक्षा ये दोनों स्थावर ही हैं । द्वीन्द्रिय आदि, क्रिया से भी
त्रस हैं और लब्धि से भी । यहाँ त्रसनामकर्म का उदय लब्धि है, और देशान्तर में
तेना भेद-प्रभेद शास्त्रधी सभल्लेखे वा न्नेध्मे, या पांच स्थावराने ओक मात्र
स्पर्शन इन्द्रिय डोय छे ।
आ पांच ल्वनिकायों कथन करी चुक्या छीये । हुंवे छ्छ्मा त्रस कायतुं
प्ररूपण करवाभां आवे छे—

(६) त्रसकाय—

त्रसपल्लुं जे प्रकारतुं छे-क्रियाधी अने लब्धिधी. कार्य करतुं, याततुं, ओक
न्याधी गील न्याये न्तुं ते क्रिया छे. या क्रियाधी न तेजस्काय अने वायुकाय
त्रस कडेवाय छे, लब्धिनी अपेक्षाये आ न्ने स्थावर न छे. द्वीन्द्रिय आदि क्रियाधी
पल्लु त्रस छे अने लब्धिधी पल्लु त्रस छे. आदि त्रसनामकर्मने उदय ते लब्धि
छे, अने देशान्तरभां गभन करतुं ते क्रिया छे. द्वीन्द्रिय आदिभां जे न्ने न्नेवाभां

लब्ध्या पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः सर्वे स्थावरा एव । एवं च त्रसः पञ्चविधः
तेजस्काय-वायुकाय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रिय-भेदात् । तत्र
तेजस्कायो वायुकायश्च प्रागुक्तः ।

द्वीन्द्रियादिषु चतुर्विधेषु त्रसजीवेषु द्वीन्द्रियास्तावदुच्यन्ते—

(१) द्वीन्द्रियः—

शरीरकाष्ठादिजाः—कृमयः, फलादिजाः—नीलङ्गुप्रभृतयः, गोमया-
दिजाः—गन्दोलकादयः, जलजाः—शङ्खशुक्तिशम्बूकजलौकामभृतयो द्वीन्द्रियाः ।

गमन करना क्रिया है, द्वीन्द्रिय आदि में ये दोनो पाई जाती हैं । स्थावरनामकर्मो-
दयरूप लब्धि की अपेक्षा पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, और वनस्पति, ये सब स्थावर हैं ।
इस प्रकार त्रसजीव छह प्रकार के हैं—तेजस्काय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय,
और पञ्चेन्द्रिय । इन में से तेजस्काय और वायुकाय का वर्णन पहले किया जा चुका है ।

द्वीन्द्रिय आदि चार प्रकार के त्रसजीवों में से प्रथम द्वीन्द्रिय का स्वरूप बतलाते हैं—

(१) द्वीन्द्रिय—

शरीर और काठ आदि में उत्पन्न होने वाली कृमि, फल आदि में उत्पन्न
होने वाले नीलङ्गु वगैरह, गोबर में उत्पन्न होने वाले गिंडोला वगैरह, जल में पैदा
होने वाले शङ्ख, सीप, जांफ आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं । इन के स्पर्शन और रसना, ये दो
आवे छे. स्थावरनामकर्मोदय लब्धिनी अपेक्षा-पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति,
आ सर्व स्थावर छे. आ प्रभाषे त्रस एव छ प्रकारना छे—तेजस्काय, वायुकाय,
द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रिय. आभांथी तेजस्काय अने वायुकायतुं
पृथुंन पडेलीं करवाभां आन्थुं छे.

द्वीन्द्रिय आदि चार प्रकारना त्रस एवोभांथी द्वीन्द्रिय आदिनुं स्वरूप
बतावे छे.

(१) द्वीन्द्रिय—

शरीर अने काष्ठ आदिभां उत्पन्न थवा वाणा कृमि, इण आदिभां उत्पन्न
थवा वाणा नीलङ्गु वगेरे. छाषुभां उत्पन्न थवा वाणा गिंडोला वगेरे. जलभां
उत्पन्न थवा वाणा शंभ, शीप, जणो वगेरे द्वीन्द्रिय एव छे. तेने स्पर्शन अने

शरीरेऽनन्ता जीवाः सन्ति । एषां स्थानं घनोद्घ्यादि । मृदमास्तु वनस्पतिकाया
सर्वलोकव्यापिनः । एषां भेदमभेदाश्च शास्त्रतोऽवसेयाः । एते पञ्च स्थावराः स्पर्शन-
रूपैकेन्द्रियाः ।

पञ्च जीवनिकाया उक्ताः, इदानीं पञ्चसप्ताधिकारः कथ्यते—

(६) त्रसकायभेदाः—

त्रसत्त्वं द्विविधं, क्रियातो लब्धितश्च । तत्र क्रिया = कर्म-चलनं-देशान्तर-
माप्तिः । अतः क्रिययैव तेजस्कायो वायुकायश्च त्रसो भवति । लब्ध्या तुर्भा
स्थावरौ । द्वीन्द्रियादयस्तु क्रियया लब्ध्यापि त्रसा भवन्ति । लब्धिर्हि त्रसनामकर्मो-
दयः, देशान्तरप्राप्तिलक्षणा क्रियाऽपि द्वीन्द्रियादीनाम् । स्थावरनामकर्मोदयरूपया
स्थान घनोदधि आदि है । सूक्ष्म वनस्पतिकाय सर्वलोकव्यापी है । इनके भेद-प्रभेद
शास्त्र से समझ लेने चाहिए । इन पांच स्थावरों को एकमात्र स्पर्शनइन्द्रिय होती है ।
पांच जीवनिकायों का कथन किया जा चुका है । अब छोटे त्रसकाय का प्ररूपण
किया जाता है—

(६) त्रसकाय—

त्रसपन दो प्रकार का है—क्रिया से और लब्धि से । कार्य करना, चलना, एक
जगह से दूसरी जगह जाना क्रिया है । इस क्रिया से ही तेजस्काय और वायुकाय त्रस
फहलते हैं । लब्धिकी अपेक्षा ये दोनों स्थावर ही हैं । द्वीन्द्रिय आदि, क्रिया से भी
त्रस हैं और लब्धि से भी । यहाँ त्रसनामकर्म का उदय लब्धि है, और देशान्तर में
तेना लेद-प्रलेद शास्त्रधी समलु लेवा नोऽऽये. आ पांच्य स्थावराने जेक मात्र
स्पर्शन इन्द्रिय होय छे.

आ पांच्य ल्वनिकायानुं कथन करी चूक्या छीजे. हुंवे छुका त्रस कायतुं
अत्रपण्य उरवाभां आवे छे—

(६) त्रसकाय—

त्रसपण्युं जे प्रकारनुं छे-क्रियाधी अने लब्धिधी. कार्य करतुं. यादपुं, जेक
न्याधी भील न्याये ननुं ते क्रिया छे. आ क्रियाधी न तेजस्काय अने वायुकाय
त्रस कडेवाय छे, लब्धिनी अपेक्षाये आ गन्ने स्थावर न छे. द्वीन्द्रिय आदि क्रियाधी
पण्य त्रस छे अने लब्धिधी पण्य त्रस छे. आदि त्रसनामकर्मना उदय ते लब्धि
छे, अने देशान्तरमां गमन करतुं ते क्रिया छे. द्वीन्द्रिय आदिमां जे गने जेवाभां

(४). पञ्चेन्द्रियजीवाः—

पञ्चेन्द्रियजीवाश्चतुर्धा—नारक-तिर्यङ्-मनुष्य-देव-भेदात्, नारकाः सप्त-विधाः, सप्तनरकेषु समुद्भवात् । रत्न(१)-शर्करा(२)-वालुका(३)-पङ्क(४)-धूम(५)-तमो(६)-महातमो(७)-नामन्यः सप्त पृथिव्यस्तत्र सप्त नरकभूमयः, तत्र ये निवसन्ति ते नारकाः सप्तविधा इति । नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति ।

पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चो द्विविधाः— गर्भज-संमूर्च्छिमभेदात् । तत्र-गर्भजाः पञ्चधा-जलचर-स्थलचर-खेचरो-रःपरिसर्प-भुजपरिसर्पभेदात् । संमूर्च्छिमा अपि

(४) पञ्चेन्द्रियजीव-

पञ्चेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं—(१) नारक, (२) तिर्यञ्च, (३) मनुष्य, और (४) देव ।

नारक सात प्रकार के हैं, क्यों कि सात नरकों में उनकी उत्पत्ति होती है । (१) रत्नप्रभा (२) शर्कराप्रभा (३) वालुकाप्रभा, (४) पङ्कप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तमःप्रभा और (७) तमस्तमःप्रभा नामक सात पृथिवी हैं । वहाँ सात नरकभूमियाँ हैं । इन भूमियों में निवास करने वाले नारकी भी सात-प्रकार के कहलाते हैं । नारक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, और श्रोत्र, ये पांच इन्द्रियाँ होती हैं ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च दो प्रकार के हैं—गर्भज और संमूर्च्छिम । इन में गर्भज के पांच भेद हैं—(१) जलचर, (२) स्थलचर, (६) खेचर, (४) उरःपरिसर्प और (५) भुजपरिसर्प ।

(४) पञ्चेन्द्रिय—

पांच धन्द्रियो वाणा एव चार प्रकारना छे—(१) नारकी, (२) तिर्यञ्च, (३) मनुष्य, अने (४) देव. नारकीना सात प्रकार छे, कंठुं के सात नरकोमां तेनी उत्पत्ति होय छे. (१) रत्नप्रभा, (२) शर्कराप्रभा, (३) वालुकाप्रभा, (४) पङ्कप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तमःप्रभा अने (७) तमस्तमः-प्रभा नामनी सात पृथिवी छे. त्यां सात नरकभूमियो छे. ते नरकभूमियोमां निवास करवा वाणा नारकी पञ्च सात प्रकारना कहेवाय छे. नारकी, पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च, मनुष्य, अने देवाने स्पर्शन, रसना घ्राण, चक्षु अने श्रोत्र, आ पांच धन्द्रियो होय छे.

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च के प्रकारना छे—(१) गर्भज, (२) संमूर्च्छिम. तेमां गर्भजना पांच भेद छे—(१) जलचर, (२) स्थलचर, (३) खेचर, (४) उरःपरिसर्प, अने

इमे स्पर्शन-रसनोभयेन्द्रियाः द्वीन्द्रिया जीवा असंख्याताः ।

(२) त्रीन्द्रियाः—

त्रीन्द्रियाः पिपीलिकादयः—पिपीलिका—रोहिणिका—कुन्धु—यूक—लिख—मत्कुण-
मत्कोटक—शुलशुल—गोपदिका—खजूरा—कर्णशूलादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन-रसन-
घ्राणेन्द्रियाः । त्रीन्द्रिया असंख्याताः ।

(३) चतुरिन्द्रियाः—

चतुरिन्द्रियाः भ्रमरादयः—भ्रमर—वटर—मक्षिका—दंश—मशक—वृश्चिक—कीट-
कंसारी—पतङ्गादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-रिन्द्रियाः । चतुरि-
न्द्रिया अपि असंख्याताः ।

इन्द्रियां होती हैं । द्वीन्द्रिय जीव असंख्यात है ।

(२) त्रीन्द्रिय—

पिपीलिका (कीडी), रोहिणिका, कुन्धुवा, जूं, लीख, खटमल, मकोडा, शुलशुल, गोपदिका, खजूरा, कर्णशूल, आदि त्रीन्द्रिय जीव प्रसिद्ध हैं । इनके स्पर्शन रसना और घ्राण, ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं । त्रीन्द्रिय जीव असंख्यात हैं ।

(३) चतुरिन्द्रिय—

भ्रमर, वटर, मक्खी, डांस, मच्छर, बिच्छू, कीट, पतङ्ग, कंसारी, आदि चौइन्द्रिय जीव प्रसिद्ध हैं । इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, और चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ होती हैं । ये जीव असंख्यात हैं ।

रसना अे जे धन्द्रियो वाणा एवो असंख्यात छे.

(२) त्रीन्द्रिय—

कीडी, रोहिणिका, कुन्धुवा, जूं, लीख, मांकड, मकोडा, शुलशुल, गोपदिका, खजूरा, कर्णशूल आदि त्रीन्द्रिय एव प्रसिद्ध छे. तेने स्पर्शन, रसना, अने घ्राण. आ त्रय धन्द्रियो होय छे. त्रीन्द्रिय एव असंख्यात छे.

(३) चतुरिन्द्रिय—

भ्रमर, वटर, मांछी, डांस, मच्छर, वींछी, कीट, पतंग, कंसारी आदि चार धन्द्रियवाणा एव प्रसिद्ध छे. तेमने स्पर्शन रसना, घ्राण. अने नेत्र आ चार धन्द्रियो होय छे. अे एव असंख्यात छे.

भरतानि, पञ्चैखतानि, पञ्च महाविदेहाः । तत्र पञ्चसु महाविदेहेषु पञ्च देव-
कुरुक्षेत्राणि पञ्चोत्तरकुरुक्षेत्राणि अन्तर्गतानि; तानि विहाय पञ्च महाविदेहा
कर्मभूमयो भवन्ति । एषु पञ्चदशसु क्षेत्रेषु जाता एव ज्ञानावरणीयादिसकल-
कर्मतस्करेभ्यः संसारमहारण्ये परिमुक्ता मोक्षधामाभिधावन्ति । एतत्पञ्चदश-
व्यतिरिक्तेषु क्षेत्रेषु जन्म प्राप्ताः पुनः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणमोक्षमार्गं
लब्धुं न प्रभवन्ति ।

अहो भव्यप्राणिनः ! स्वनिः यसाय शीघ्रं प्रयतन्ताम्, अनन्तकालतः
पड्जीवनिकायानां भवस्थिति-कायस्थितिपु-अनन्तजन्म-जरा-मरणाद्यनन्तदुःखमनु-
भूय पूर्वपुण्योदयेन दुर्लभमिदं मनुष्यजन्म कर्मभूमौ लब्धम् । देशविरति-सर्वविरति-
महाविदेहो में पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु क्षेत्र भी अन्तर्गत हैं, उन्हें छोड़कर
पांच महाविदेह कर्मभूमि हैं । इन पन्द्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य ही
ज्ञानावरणीय आदि समस्त कर्मरूपी चोरो से संसाररूपी महा अरण्यो में छूटकर मोक्षधाम
जाते हैं । इन पन्द्रह क्षेत्रों से भिन्न क्षेत्रों में जन्म लेने वाले, सम्यग्, दर्शन, ज्ञान, चारित्र
स्वरूप मोक्षमार्ग प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते ।

अहो भव्य जीवो ! अपने श्रेय (कल्याण) के लिए शीघ्र प्रयत्न करो । अनादि
काल से पड्जीवनिकाय की भवस्थिति और कायस्थिति में अनन्त जन्म, जरा, मरण
आदि का दुःख भोगकर पूर्वपुण्य के उदय से कर्मभूमि में दुर्लभ मनुष्य भव मिला है ।
देशविरति और सर्वविरतिके रूप सुधा से परिपूर्ण मनुष्यायु रूप कटोरको

पांच भडाविदेहोमां पांच देवकुड्, अने उत्तरकुड् क्षेत्र पञ्च अन्तर्गत
छे. तेने छोडीने पांच भडाविदेह कर्मभूमि छे. आ पंढर कर्मभूमिमां उत्पन्न थवा
वाणा मनुष्य न ज्ञानावरणीय आदि तमाभ कर्मरूपी चोरोधी संसाररूपी भडा-
अरण्यमांथी छुटीने मोक्षधाम जाय छे. आ पंढर क्षेत्रोधी भिन्न क्षेत्रोमां जन्म
लेवावाणा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वरूप मोक्षमार्गने प्राप्त करवा समर्थ थता नथी.

अहो लव्य लवो ! चोताना कल्याण भाटे शीघ्र-जल्दी प्रयत्न करे ।
अनादि कालधी पड्जीवनिकायनी भवस्थिति अने कायस्थितिमां अनन्त जन्म, जरा,
मरण आदिनु दुःख भोगवीने पूर्वपुण्यना उदयधी कर्मभूमिमां दुर्लभ मनुष्य
भव भज्ये छे. देशविरति अने सर्वविरतिरूप अभ्युत्थी परिपूर्णा मनुष्यायुड्प आ
प्र. आ-३६.

पञ्चधा-जलचर(१)-स्थलचर(२)-खेचरो(३)-रःपरिसर्प(४)-भुजपरिसर्पमेदात् । तत्र
जलचरा मत्स्यमकरादयः, स्थलचरा गोमहिष्यादयः, खेचराः मयूरादयः,
उरःपरिसर्पाः सर्पादयः, भुजपरिसर्पाः गोधादयः ।

मनुष्या द्विविधाः—कर्मभूमिजाः, अकर्मभूमिजाः । यत्र जाता मनुष्याः
सिध्यन्ति; बुध्यन्ते, परिनिर्वाणन्ति; सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति सा कर्मभूमिः । अत्रैव
संसारान्तमाप्तिकारकस्य रत्नत्रयरूपमोक्षमार्गस्य विज्ञातारः कर्तार उपदेष्टारश्च
भगवन्तस्तीर्थङ्करा अवतरन्ति । ते च स्वयं संसारार्णवं तरन्ति, परान् भव्यानपि
तारयन्ति । अर्धवृत्तीयद्वीपाभ्यन्तरे कर्मभूमयः पञ्चदशक्षेत्ररूपा भवन्ति-पञ्च

संमूर्च्छिम के भी पांच भेद हैं—(१) जलचर, (२) स्थलचर, (३) खेचर, (४) उरः-
परिसर्प और (५) भुजारिसर्प । मच्छ, मकर, आदि जल के जीव जलचर कहलाते हैं । गारु-
मेंस आदि स्थलचर कहलाते हैं । मयूर आदि खेचर कहलाते हैं । सर्प आदि उरःपरिसर्प,
और गुहेरा (गोह) आदि भुजपरिसर्प कहलाते हैं ।

मनुष्य दो प्रकार के हैं—कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज । जहाँ उत्पन्न होकर
जीव सिद्ध बुद्ध होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं और सब दुःखों का अन्त करते हैं,
उसे कर्मभूमि कहते हैं । संसार का अन्त करने वाले, रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग के ज्ञाता,
कर्ता और उपदेशक तीर्थङ्कर भगवान् कर्मभूमि में ही उत्पन्न होते हैं । वे स्वयं संसार
समुद्र तरते हैं और दूसरे भव्य जीवों को भी तारते हैं । अर्द्ध द्वीप में पन्द्रह कर्म-
भूमियाँ हैं—पांच भरत क्षेत्र में, पांच पेरवत क्षेत्र में, और पांच महाविदेह में । पांच
(५) भुजपरिसर्प, मच्छ, मकर (भगर) आदि जलना एव जलचर कहेवाय छे.
गाय, लेंस आदि स्थलचर कहेवाय छे भयूर (भिर) आदि जेचर कहेवाय छे.
सर्प आदि उरपरिसर्प, अने घोचरा आदि भुजपरिसर्प छे.

मनुष्य छे प्रकारना छे—(१) कर्मभूमिज, (२) अकर्मभूमिज, अर्थात् उत्पन्न
थछेने एव सिद्ध बुद्ध होय छे, निर्वाण प्राप्त करे छे, अने सर्प दुःखोना अन्त
करे छे तेने कर्मभूमि कहे छे. संसारना अन्त करवावाणा, रत्नत्रयत्रय मोक्षमार्गना
ज्ञाता कर्ता, अने उपदेशक तीर्थङ्कर भगवान् कर्मभूमिमां ए उत्पन्न थाय छे. ते
स्वयं संसार समुद्रने तरे छे अने जीव भव्य एवोने पछु तारे छे. अर्द्ध
द्वीपमां पंद्रह कर्मभूमियो छे—पांच भरतक्षेत्रमां, पांच पेरवत क्षेत्रमां, अने

भरतानि, पञ्चैरवतानि, पञ्च महाविदेहाः । तत्र पञ्चसु महाविदेहेषु पञ्च देव-
कुक्षेत्राणि पञ्चोत्तरकुरुक्षेत्राणि अन्तर्गतानि; तानि विहाय पञ्च महाविदेहा
कर्मभूमयो भवन्ति । एषु पञ्चदशसु क्षेत्रेषु जाता एव ज्ञानावरणीयादिसकल-
कर्मतस्करेभ्यः संसारमहारण्ये परिमुक्ता मोक्षधामाभिधावन्ति । एतत्पञ्चदश-
व्यतिरिक्तेषु क्षेत्रेषु जन्म प्राप्ताः पुनः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणमोक्षमार्गं
लब्धुं न प्रभवन्ति ।

अहो भव्यप्राणिनः ! स्वनिः यसाय शीघ्रं प्रयतन्ताम्, अनन्तकालतः
पड्जीवनिकायानां भवस्थिति-कायस्थितिपु-अनन्तजन्म-जरा-मरणाद्यनन्तदुःखमनु-
भूय पूर्वपुण्योदयेन दुर्लभमिदं मनुष्यजन्म कर्मभूमौ लब्धम् । देशविरति-सर्वविरति-

महाविदेहों में पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु क्षेत्र भी अन्तर्गत हैं, उन्हें छोड़कर
पांच महाविदेह कर्मभूमि हैं । इन पन्द्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य ही
ज्ञानावरणीय आदि समस्त कर्मरूपी चोरो से संसाररूपी महा अरण्यो में छूटकर मोक्षधाम
जाते हैं । इन पन्द्रह क्षेत्रों से भिन्न क्षेत्रों में जन्म लेने वाले, सम्यग्, दर्शन, ज्ञान, चारित्र
स्वरूप मोक्षमार्ग प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते ।

अहो भव्य जीवो ! अपने श्रेय (कल्याण) के लिए शीघ्र प्रयत्न करो । अनादि
काल से पड्जीवनिकाय की भवस्थिति और कायस्थिति में अनन्त जन्म, जरा, मरण
आदि का दुःख भोगकर पूर्वपुण्य के उदय से कर्मभूमि में दुर्लभ मनुष्य भव मिला है ।
देशविरति और सर्वविरतिके रूप सुधा से परिपूर्ण मनुष्यायु रूप कटोरको

पांच महाविदेहोमां पांच देवकुड्, अने उत्तरकुड् क्षेत्र पण्य अन्तर्गत
छे. तेने छोडीने पांच महाविदेह कर्मभूमि छे. आ पंढर कर्मभूमिमां उत्पन्न थवा
वाणा मनुष्य न ज्ञानावरणीय आदि तमाभ कर्मरूपी चोरोधी संसाररूपी महा-
अरण्यमांथी छुटीने मोक्षधाम नय छे. आ पंढर क्षेत्रोथी भिन्न क्षेत्रोमां जन्म
लेवावाणा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, आरित्र स्वरूप मोक्षमार्गने प्राप्त करवा समर्थ थवा नथी.

अहो लव्य लवो ! पोताना कल्याण माटे शीघ्र-जलदी प्रयत्न करे !
अनादि कालधी पड्जीवनिकायनी भवस्थिति-अने कायस्थितिमां अनन्त जन्म, जरा,
मरण आदितु-दुःख भोगवीने पूर्वपुण्यना उदयधी कर्मभूमिमां दुर्लभ मनुष्य
भव मलये छे. देशविरति अने सर्वविरतिरूप अभूतधी परिपूर्ण मनुष्यायुष्य आ

પૌર્ણમીએ સમગ્ર ગાળા પૂર્ણ કરીને કાલ પૂર્ણ કરી દુર્ગે સ્થિતિ કરે છે. તદ્વ સિદ્ધિ પામે છે. ગુણાભિમા મરત્તો મા મરત્તુ ।

પશ દેવરાણિ, પશ દરિવર્ણિ, પશ રમ્યસ્વાણિ, પશોત્તરણિ । ક્ષત્રીય
પશ દેવરાણ: પશોત્તરણ: ર્ણિ વિન્દા, પટ્ટપદ્મામદ્વિત્તોત્ત: । ક્ષત્રીય
કર્ણિ યુગપ્ત્યેવગ્ગાદસમંયમયો મરન્નિ । ણ્ણા: સર્વા અર્ચસ્ક
મીર્ષદ્રાનન્માદિદિગત્તાન્ ।
જમ્પૂરીયે માગથે પ્રમર્ષાદિસાગવદિમરત્તવર્ગમ્ય પૂર્વદશિમાન્તમાશ્વજ
પક્ષાકારં કં કં કં નિઃશૂં સ્ત: । પ્વમ્ પેરવત્તસંપ્રમર્ષાદિસાગવદિમરત્તવર્ગમ્ય
કીર્ણને કે કિય પૂર્ણ માગને મદ્દાદે, શ્વા: શ્વત્ત સિદ્ધિસ્તી યુગા કે ગાન્વાદ કે કુલ્લ કે
પશ્ચિન્ન માગ મ્દો ।

અર્ધભૂમિકા વગન—
પાંચ દેવવત, પાંચ દરિવર્ષ, પાંચ રમ્યસ્વર્ષ, પાંચ પેરવત, પાંચ દેવજ
ઘૌર પાંચ ઉત્તરકુર, પે પીમ, ઘૌર ઉત્તર ક્ષત્રીય, પે સપ ક્ષત્રીયમ્નિ હૈ । ક્ષત્રીય
મી યુગપ્તિયાદેવ હોને કે કારણ શર્કામ્નિ દી હૈ । ઇન મેં કમી મી તૌર્ષક્ર જ
વગ આદિ મદી હોમા ।
જમ્પૂરીય મેં મગા શેવ પી મર્ષાદા કરને પાલે દિમવત્તવર્વત કે પૂર્વમાગ ઘૌ
પશ્ચિમમાગ સે વગ આકાર પી પો-પો તાટાપેં નિકલો હૈ । ઇતી પ્રકાર પેરવત ક્ષેત્ર જી
મર્ષાદા કરને વાલે શિશ્વરિપર્વત કે પૂર્વ ઘૌર પશ્ચિમ માગો સે દો દો વગાકાર વાગર્ષ
કટોરાને છીનવી લેવા માટે મુશ્ય સાધેજ ઉલેલો છે. એ કારણથી તમે વિરતિરૂપી
અમૃતના સ્વાદના સુખથી વચિત રહેશે નહિ.

અકર્મભૂમિત્વં કથન—
પાંચ હેમવત, પાંચ હરિવર્ષ, પાંચ રમ્યક વર્ષ, પાંચ ઐરણ્યવત, પાંચ
દેવશુર, અને પાંચ ઉત્તરકુર, આ ત્રીસ, અને છપન અન્તરદીપ, આ સર્વ અકર્મ-
ભૂમિ છે. અન્તર દીપ પશુ ભુગળીયા જન્મ આદિ થતો નથી.
કેલ પશુ સ્થળે તીર્થ કરને જન્મ આદિ કરવાવાળા હિમવત પર્વતના પૂર્વભાગ અને
જમ્પૂરીયમાં ભરત ક્ષેત્રની મર્ષાદા કરવાવાળા હિમવત પર્વતના પૂર્વભાગ અને
જમ્પૂરી વક આકારની બે-બે હાલો નીકળી છે. એ પ્રકારે ઐરવત ક્ષેત્રની
શિપૂરી પર્વતના પૂર્વ અને પશ્ચિમ ભાગથી બે-બે વકાકાર

पर्वतस्य, पूर्व-पश्चिमान्तभागद्वयाद् वक्राकारे द्वे द्वे दंष्ट्रे निःसृते स्तः । अप्तासु दंष्ट्रामूर्ध्वभागे सप्त सप्तान्तरद्वीपाः सन्ति । एवं पट्टपञ्चाशदन्तरद्वीपा भवन्ति । अन्तरद्वीपजा अप्यकर्मभूमिजाः । तत्रोभयेषां मनुष्याणामुच्चारदिषु संमूर्च्छिमा मनुष्या उभयविधासु भूमिषु जायन्ते ।

तत्र गर्भजा मनुष्या एकोत्तरशतम् (१०१), पर्याप्तापर्याप्तभेदाद् द्वयधिकशतद्वयम् (२०२), संमूर्च्छिममनुष्या अपर्याप्तमात्रतया-एकोत्तरशतमेव (१०१), सर्वेषु संमिलितेषु त्र्युत्तरशतत्रयं (३०३) मनुष्याणां भेदाः भवन्ति ।

देवनिकायः-

देवाश्चतुर्विधाः-भवनपति१-व्यन्तर२-ज्योतिष्क३-वैमानिक४-भेदात् ।

निकली हैं । इन आठ दाढ़ों पर सात-सात अन्तरद्वीप हैं । इस प्रकार छप्पन अन्तरद्वीप हैं । अन्तरद्वीपज (अन्तरद्वीप में उत्पन्न हुए) जीव भी अकर्मभूमिज (अकर्मभूमि में उत्पन्न हुए) कहलाते हैं । इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के मूल आदि में, दोनों भूमियों में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं ।

गर्भज मनुष्य एक सौ एक (१०१) प्रकार के हैं । इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद करने से दो सौ दो (२०२) भेद होते हैं । संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त ही होते हैं, अतः उनके एक सौ एक (१०१) भेद मिला देने से मनुष्यों के कुल भेद तीन सौ तीन (३०३) हो जाते हैं ।

देवनिकाय-

देव चार प्रकार के हैं-(१)भवनपति, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक ।

आ आठ दाढ़ों पर सात-सात अन्तरद्वीप थे, आ प्रभाण्डे छप्पन अन्तरद्वीप थे, अन्तरद्वीपज (अन्तरद्वीपमां उत्पन्न थनारा) एव पण्ड अकर्मभूमिज (अकर्मभूमिमां उत्पन्न थनारा) कडेवाय थे, आ अने प्रकारना मनुष्येनां भण आदिमां अे अने भूमिओमां संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न थाय थे,

गर्भज मनुष्य ओकसे ओक (१०१) प्रकारना थे, तेना पर्याप्त अने अपर्याप्त लेह करवाथी असे अे (२०२) लेह थाय थे, संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त एव होय थे ते कारणथी तेना ओकसे ओक (१०१) लेह तेमां भेजवाथी मनुष्येना कुल त्रणुसे त्रणु (३०३) लेह थाय थे,

देवनिकाय-

देव चार प्रकारना थे-(१) भवनपति, (२) व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क अने (४) वैमानिक,

पीयूषपूर्णमेतन्मनुष्यायुःकटोरकं मृत्युरपहर्तुं पुरोज्वतिष्ठते । तदत्र विरतिमुधास्वाद-
सुखवञ्चिता भवन्तो मा भवन्तु ।

अकर्मभूमयः कथ्यन्ते—

पञ्च हैमवतानि, पञ्च हरिवर्षाणि, पञ्च रम्यकवर्षाणि, पञ्चैरण्यवत्वर्षाणि,
पञ्च देवकुरवः पञ्चोत्तरकुरवः, इति त्रिंशत्, पट्टपञ्चाशदन्तरद्वीपाः । अन्तरद्वीपा
अपि युगलक्षेत्रत्वादकर्मभूमयो भवन्ति । एताः सर्वा अकर्मभूमयः,
तीर्थङ्करजन्मादिरहितत्वात् ।

जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रमर्यादाकारकहिमवत्पर्वतस्य पूर्वपश्चिमान्तभागद्वयात्
वक्राकारे द्वे द्वे दंष्ट्रे निःसृते स्तः । एवम् ऐरवतक्षेत्रमर्यादाकारकशिखरि-
छीनने के लिए मृत्यु सामने खड़ा है, अतः आप विरतिरूपी सुधा के आस्वाद के सुख से
वञ्चित मत रहो ।

अकर्मभूमिका कथन—

पांच हैमवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच ऐरण्यवत्, पांच देवकुरु
और पांच उत्तरकुरु, ये तीस, और छप्पन अन्तर द्वीप, ये सब अकर्मभूमि हैं । अन्तरद्वीप
भी युगलियाक्षेत्र होने के कारण अकर्मभूमि ही हैं । इन में कभी भी तीर्थंकर का
जन्म आदि नहीं होता ।

जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाले हिमवत्पर्वत के पूर्वभाग और
पश्चिमभाग से वक्र आकार की दो-दो दाढाएँ निकली हैं । इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र की
मर्यादा करने वाले शिखरिपर्वत के पूर्व और पश्चिम भागों से दो दो वक्राकार दाढाएँ
कटोराने छीनची ढोचा भाटे मृत्यु सामने लखेला छे. जे कुरखुथी तमे विरतिरूपी
अमृतना स्वादना सुभधी वञ्चित रहेशे नहि.

अकर्मभूमितुं कथन—

पांच हैमवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यक वर्ष, पांच ऐरण्यवत्, पांच
देवकुरु, अने पांच उत्तरकुरु, आ तीस, अने छप्पन अन्तरद्वीप, आ सर्वा अकर्म-
भूमि छे. अन्तर द्वीप पण्य लुगणीया क्षेत्र होवाना कुरखेला अकर्मभूमि जे छे, तेमां
कौण्ड पण्य स्थणे तीर्थंकरने जन्म आदि थते नथी.

जम्बूद्वीपमां भरत क्षेत्रनी मर्यादा करवावाणा हिमवत पर्वतना पूर्वभाग अने
पश्चिम लागधी वक्र आकारनी जे-जे दाढे नीकणी छे. जे प्रकारे ऐरवत क्षेत्रनी
मर्यादा करवावाणा शिखरी पर्वतना पूर्व अने पश्चिम लागधी जे-जे वक्राकार
दाढे निकणी छे.

તત્ર વહ્વોઽસુરકુમારા આવાસેષુ, તથા કદાચિદ્ ભવનેષુ ચ નિવસન્તિ । તથા નાગકુમારાદયઃ સર્વે પ્રાયશો ભવનેષ્વેવ પ્રતિવસન્તિ । રત્નપ્રભાપૃથ્વી-પિણ્ડાદૂર્ધ્વમધ્યશ્ચકૈકસહસ્રયોજનં વિદ્યાયૈકલક્ષાપ્તસપ્તતિસહસ્રયોજનાનિ તુ રત્ન-પ્રભાતોઽથસ્તાન્નવતિસહસ્રયોજનપરિમાણભાગ એવ ભવન્તિ, તત્ર ભવનાનિ દક્ષિણ-ાર્ધાધિપતીનાં ચમરેન્દ્રાદીનામ્, ઉત્તરાર્ધાધિપતીનાં વલીન્દ્રાદીનામ્ । મહામણ્ડપ-વદાવાસાઃ, ભવનાનિ નગરસદૃશાનિ ભવન્તિ, પરન્તુ તાનિ ભવનાનિ વઠિર્વૃત્તાનિ, અભ્યન્તરે સમચતુષ્કોણાનિ, તલભાગે તુ પુષ્કરકર્ણિકાવદ્ ભવન્તિ । અમ્બાદયઃ પરમાધાર્મિકા અપિ અસુરકુમારજાતીયાઃ પશ્ચદશ સન્તિ-૧અમ્બા૨મ્બરીપ-

વહોં વહુત સે અસુરકુમાર આવાસોં મેં ઓર કમી-કમી ભવનોં મેં નિવાસ કરતે હેં । નાગકુમાર સવ પ્રાયઃ ભવનોં મેં હો રહતે હેં । રત્નપ્રભા પૃથ્વી કે પિણ્ડ સે ઊપર ઓર નીચે એક-એક હજાર યોજન ઓડકર એક લાસ અઠહત્તર હજાર યોજન પરિમાણ મેં મધ્ય ભાગ મેં સમી જગહ અસુરકુમાર દેવોં કે આવાસ હેં, કિન્તુ ભવન રત્નપ્રભા પૃથ્વી કે નીચે નવ્વે હજાર યોજન પરિમિત ભાગ મેં હી હેં । વહોં દક્ષિણાર્ધાધિપતિ ચમરેન્દ્ર આદિ કે ઓર ઉત્તરાર્ધાધિપતિ વલીન્દ્ર આદિ કે ભવન હેં । મહામણ્ડપ કે સમાન આવાસ હેં । નગર કે સમાન ભવન હેં, કિન્તુ વે વાહર ગોલાકાર ઓર મીતર સમચતુષ્કોણ હેં । ડનકા તલભાગ કમલ કી કર્ણિકા કે સમાન હોતા હૈ । અમ્બ આદિ પન્દર પરમાધાર્મિક મી અસુરકુમાર જાતિ કે હેં । ડનકે નામ-(૧) અમ્બ, (૨) અમ્બરીપ, (૩) શ્યામ, (૪) શવલ,

ત્યાં ઘણા અસુર કુમારો, આવાસોમાં અને કોઈ કોઈ વખત ભવનોમાં નિવાસ કરે છે. નાગકુમાર સર્વ પ્રાયઃ ભવનોમાંજ નિવાસ કરે છે. રત્નપ્રભા પૃથ્વીના પિંડથી ઉપર અને નીચે એક-એક હજાર યોજન છોડીને, એક લાખ અઠ્યોતેર હજાર યોજન પરિમાણમાં મધ્યભાગમાં સર્વ જગ્યાએ અસુરકુમાર દેવોના આવાસ છે. પરન્તુ ભવન; રત્નપ્રભા પૃથ્વીની નીચે (૬૦૦૦૦) નેવું હજાર યોજન પરિમિત ભાગમાં જ છે. ત્યાં દક્ષિણાર્ધાધિપતિ ચમરેન્દ્ર આદિના અને ઉત્તરાર્ધાધિપતિ વલીન્દ્ર આદિના ભવન છે. મહામંડપની સમાન આવાસ છે. નગરના સમાન ભવન છે. પરંતુ તે ભવનો બહારથી ગોળાકાર અને અંદરથી સમચતુષ્કોણ છે. તેનો તળીઆનો ભાગ કમલની કર્ણિકાસમાન હોય છે. અમ્બ આદિ પંદર પરમાધાર્મિક પણ અસુરકુમાર જાતિના છે. તેઓના નામ જેમકે-(૧) અમ્બ, (૨) અમ્બરીપ, (૩) શ્યામ, (૪)

(१) भवनपतिदेवमेदाः—

तत्र भवनपतयो दशविंशः—(१) असुरकुमाराः, (२) नागकुमाराः, (३) सुवर्णकुमाराः, (४) विद्युत्कुमाराः, (५) अग्निकुमाराः, (६) द्वीपकुमाराः, (७) उदधिकुमाराः, (८) दिशाकुमाराः, (९) वायुकुमाराः, (१०) स्तनितकुमाराश्च । कुमार इव सुकुमारा मनोहरा मृदुमधुरललितगतयः कुमारवदभिव्यक्तरागाः कैलिविलोलितचेतसः कुमारवच्चोद्धतरूपवेपभाषाभरणप्रहरणावरणयानवाहनाथेत्यतः 'कुमारा' इत्युच्यन्ते । जम्बूद्वीपे सुमेरुपर्वतस्याधस्तादक्षिणोत्तरभागयोस्तिर्यग्-भागेऽनेककोटिकोटिलक्षणयोजनं यावद् भवनपतयो निवसन्ति ।

(१) भवनपतिदेव—

भवनपति देव दश प्रकार के हैं—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) वायुकुमार और (१०) स्तनितकुमार ।

कुमार के समान सुकुमार, मनोहर, मृदु, मधुर, ललित गतिवाले, कुमार के समान राग व्यक्त करने वाले, क्रीडा में चित्त लगाने वाले, कुमार के समान ही उद्धत रूप, वेप, भाषा, आभूषण, आयुध, यान, वाहन आदि धारण करने वाले होने से ये देव, कुमार कहलाते हैं । जम्बू द्वीप में सुमेरु पर्वत के नीचे दक्षिण भाग और उत्तर भाग के तिरछे भाग में अनेक कोडा—कोडी लाख योजन तक भवनपति देव निवास करते हैं ।

(१) लवनपतिदेव—

लवनपति देव दस प्रकारका छे—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार (९) वायुकुमार, अने (१०) स्तनितकुमार.

कुमार प्रभाषे, सुकुमार, मनोहर, मृदु, मधुर, ललितगतिवाणा, कुमारना समान राग व्यक्त करवा वाणा, क्रीडाभां चित्त लगाववा वाणा, कुमारना प्रभाषे उद्धत-रूप, वेप, भाषा आभूषण, आयुध, यान, वाहन आदि धारण करवा वाणा होवाथी ते देव, कुमार कहेवाय छे. जम्बूद्वीपभां सुमेरु पर्वतनी नीचे दक्षिणभाग अने उत्तर भागना तिरछा भागभां अनेक कोडा—कोडी लाख योजन सुधी लवनपति देव निवास करे छे.

व्यन्तराः षोडशविधाः— १ पिशाच—२ भूत—३ यक्ष—४ राक्षस—५ किन्नर
६ किंपुरुष—७ महोरग—८ गन्धर्वा—९ प्रज्ञप्तिक—१० पञ्चप्रज्ञप्तिक—११ ऋषिवादिक् १२ भूत-
वादिक्—१३ क्रन्दित—१४ महाक्रन्दित १५ कूष्माण्ड—१६ पतंग भेदात् । (स्था.
स्था. २ उ ३)

जृम्भका अपि व्यन्तरदेवा दश सन्ति । यथा—(१) अन्नजृम्भकाः
(२) पानजृम्भकाः, (३) वस्त्रजृम्भकाः, (४) लयनजृम्भकाः, (५) शयनजृम्भकाः,
(६) पुष्पजृम्भकाः, (७) फलजृम्भकाः, (८) पुष्पफलजृम्भकाः, (९) विद्याजृम्भकाः,
(१०) अव्यक्तजृम्भकाः ।

(६) ज्योतिष्कदेवाः—

ज्योतींषि-प्रभापुञ्जस्वरूपाणि समुज्ज्वलानि विमानानि, तत्र भवाः

व्यन्तर देव सोलह हैं—(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर,
(६) किंपुरुष, (७) महोरग, (८) गन्धर्व, (९) अप्रज्ञप्तिक, (१०) पञ्चप्रज्ञप्तिक, (११)
ऋषिवादिक्, (१२) भूतवादिक्, (१३) क्रन्दित, (१४) महाक्रन्दित, (१५) कूष्माण्ड, और
(१६) पतङ्ग (स्था. स्था. २ उ. ३)

जृम्भक व्यन्तर देव भी दश प्रकार के हैं । जैसे—

(१) अन्नजृम्भक, (२) पानजृम्भक, (३) वस्त्रजृम्भक, (४) लयनजृम्भक, (५) शयनजृम्भक,
(६) पुष्पजृम्भक, (७) फलजृम्भक, (८) पुष्पफलजृम्भक, (९) विद्याजृम्भक और (१०) अव्यक्त-
जृम्भक ।

(३) ज्योतिष्क देव

प्रभा के पुञ्ज के समान अत्यन्त उज्ज्वल विमानों में उत्पन्न होने वाले

व्यन्तर देव सोलह छे (१) पिशाच, (२) भूत (३) यक्ष, (४) राक्षस (५)
किन्नर, (६) किंपुरुष, (७) महोरग, (८) गन्धर्व, (९) अप्रज्ञप्तिक, (१०) पञ्चप्रज्ञप्तिक,
(११) ऋषिवादिक्, (१२) भूतवादिक्, (१३) क्रन्दित, (१४) महाक्रन्दित, (१५)
कूष्माण्ड अने (१६) पतंग, (स्था. स्था. २ उ. ३)

नृलोक व्यन्तर देव पञ्च इस प्रकारना छे, जेभ—(१) अन्ननृलोक, (२)
पान नृलोक, (३) वस्त्रनृलोक, (४) लयननृलोक, (५) शयननृलोक, (६) पुष्प नृलोक,
(७) फलनृलोक (८) पुष्पफलनृलोक, (९) विद्यानृलोक, अने (१०) अव्यक्तनृलोक.

(३) ज्योतिष्कदेवा—

प्रधाना पुंज समान अत्यन्त उज्ज्वल विमानोंमें उत्पन्न तथा पाणा देव

३श्याम४शयल५रुद्र६वैरुद्र७काल८महाकाल९असिपत्र१०धनुः११कुम्भ१२वालुक१३
वैतरगी१४खरस्वर१५महाधोप-भेदात् ।

(२) व्यन्तरदेवाः—

रत्नप्रभाकाण्डस्य सहस्रयोजनपरिमाणयुक्तस्याधस्तादेकशतयोजनमूर्ध्वं च
तथैकशतयोजनं विहायाष्टशतयोजनपरिमाणयुक्तरत्नप्रभाकाण्डे व्यन्तरदेवाना-
मसंख्यातानि नगराणि सन्ति । तथैवं भवनानि तेषामावासाश्च सन्ति । तत्र
बालवत् स्वेच्छया शक्रादिदेवेन्द्राज्ञया वा चक्रवर्त्यादिपुरुषाज्ञया वा प्रायेणा-
नियतगतिप्रचारा भवन्ति । मनुष्यानपि केचिद् भृत्यवदुपचरन्ति । विविधेषु च
शैलकन्दरान्तरवनविचारादिषु प्रतिवसन्ति; अतो व्यन्तरा इत्युच्यन्ते ।

(५) रुद्र, (६) वैरुद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०) धनुष, (११) कुम्भ,
(१२) वालुक, (१३) वैतरगी, (१४) खरस्वर, (१५) महाधोप ।

(२) व्यन्तर देव—

एक हजार योजन परिमाण वाले रत्नप्रभाकाण्ड के नीचे और एक सौ योजन
ऊपर तथा एक सौ योजन छोड़कर आठ सौ योजन परिमाण युक्त रत्नप्रभाकाण्ड में
व्यन्तर देवों के असंख्यात नगर हैं । उसी प्रकार भवन और उनके आवास हैं ।
बालकों के समान अपनी इच्छासे, शक्र आदि देवों की आज्ञा से, या चक्रवर्ती आदि की आज्ञासे
प्रायः अनियतगति वाले होते हैं । ये देव किन्हीं-किन्हीं मनुष्यों की दास के समान सेवा
करते हैं । ये विविध प्रकार के पर्वतों की गुफाओं में और वनविवर आदि में निवास करते
हैं अतः इन्हें व्यन्तर कहते हैं ।

शण्ड, (५) रुद्र, (६) वैरुद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०)
धनुष, (११) कुम्भ, (१२) वालुक, (१३) वैतरगी, (१४) खरस्वर, (१५) महाधोप ।

(२) व्यन्तरदेव—

एक हजार योजन परिमाणवाला रत्नप्रभाकाण्डनी नीचे अने अने देवों के योजन
ऊपर तथा अने देवों के योजन छोड़कर आठ सौ योजन परिमाणयुक्त रत्नप्रभाकाण्डमें
व्यन्तर देवों के असंख्यात नगर हैं । ये प्रभाण्ड लवन अने तेना आवासे हैं ।
आण्डोनी जेभ योतानी ध्विधधी, धद्र आदि देवों की आज्ञासे, अथवा चक्रवर्ती
आदि की आज्ञासे प्रायः अनियत गतिवाला होय है । ये देव कौं कौं मनुष्यनी
दासनी समान सेवा करे है । ये विविध प्रकारनी पर्वतोंनी गुफाओंमें अने वन-
गुफाओं आदिमें निवास करे है ।

વૈમાનિકદેવાનાં દ્વા મેદૌ-કલ્પોપપન્નાઃ કલ્પાતીતાશ્ચ । કલ્પઃ=આચારઃ
 સંચેહેન્દ્રસામાનિકત્રાયસ્ત્રિંશદિવ્યવહારૂપસ્તમુપગતાઃ કલ્પોપપન્નાઃ=સૌધર્માદિ-
 દેવલોકનિવાસિનો વૈમાનિકા દેવાઃ । યદ્વા-કલ્પેપુ સૌધર્માદિપુ ઉપપન્નાઃ સૌધર્માદિ-
 દેવલોકોત્પન્ના વૈમાનિકદેવાઃ કલ્પોપપન્નાઃ । યદ્વા-કલ્પેન=નિયમેન ઇન્દ્રસામા-
 નિકાદિસ્વામિસેવકાદિભાવરૂપમર્યાદયોપપન્નાઃ=યુક્તાઃ=કલ્પોપપન્નાઃ ।

∴ ૧ઇન્દ્ર- ૨સામાનિક - ૩ત્રાયસ્ત્રિંશ - ૪લોકપાલ - ૫પારિપદ્યા - ૬નીકા -
 ૭આત્મરક્ષકા - ૮સામિયોગિક - ૯પ્રકીર્ણાઃ, કિલ્વિષિકાશ્ચ ૧૦. સ્વસ્વમર્યાદાપાલકતયા
 કલ્પોપપન્ના ઇત્યુચ્યન્તે । તન્નેન્દ્રાઃ - સામાનિકાદિદેવાનામધિપતયઃ ।
 ઇન્દ્રસમાનાઃ-સામાનિકાઃ । મન્ત્રિપુરોહિતસ્થાનીયાસ્ત્રાયસ્ત્રિંશાઃ । સીમારક્ષકા

વૈમાનિક દેવ દ્વા પ્રકાર કે હૈ-કલ્પોપપન ઓર કલ્પાતીત । કલ્પ કા અર્થ
 હૈ-આચાર । યહાં ઇન્દ્ર, સામાનિક, ત્રાયસ્ત્રિંશ આદિ કા વ્યવહાર કલ્પ માના ગયા હૈ,
 ઓર યહ કલ્પ જિન મેં પાયા જાય વે કલ્પોપપન કહલાતે હૈં । સૌધર્મ આદિ દેવલોકો
 મે નિવાસ કરને વાલે વૈમાનિક દેવ કલ્પોપપન હૈં । અથવા કલ્પ સે અર્થાત્ નિયમ સે
 અર્થાત્ ઇન્દ્ર, સામાનિક આદિ, યા સ્વામી-સેવક આદિભાવરૂપ મર્યાદા સે યુક્ત દેવ
 કલ્પોપપન કહલાતે હૈં ।

ઇન્દ્ર, સામાનિક, ત્રાયસ્ત્રિંશ, લોકપાલ, પારિપદ્ય, આનીક, આત્મરક્ષક,
 આમિયોગ્ય, પ્રકીર્ણક ઓર કિલ્વિષિક, યે દશ અપની-અપની મર્યાદા કા પાલન
 કરતે હુણ કલ્પોપપન કહલાતે હૈ ।

સામાનિક આદિ દેવો કે અધિપતિ ઇન્દ્ર કહલાતે હૈં । ઇન્દ્ર કે સમાન

વૈમાનિક દેવ યે પ્રકારના છે-(૧) કલ્પોપપન અને (૨) કલ્પાતીત. કલ્પને
 અર્થ છે-આચાર. અહિં ઇન્દ્ર, સામાનિક, ત્રાયસ્ત્રિંશ આદિનો વ્યવહાર કલ્પ માન્યો
 છે, અને આ કલ્પ જેનામાં જોવામાં આવે છે તે કલ્પોપપન કહેવાય છે. સૌધર્મ
 આદિ દેવલોકોમાં નિવાસ કરવાવાળા વૈમાનિક દેવ કલ્પોપપન છે. અથવા કલ્પથી
 અર્થાત્, નિયમથી અર્થાત્ ઇન્દ્ર સામાનિક આદિ, અથવા સ્વામી-સેવક આદિ
 ભાવરૂપ મર્યાદાથી યુક્ત દેવ કલ્પોપપન કહેવાય છે.

ઇન્દ્ર, સામાનિક, ત્રાયસ્ત્રિંશ, લોકપાલ, પારિપદ્ય, આનીક, આત્મરક્ષક, આમિયોગ્ય,
 પ્રકીર્ણક અને કિલ્વિષિક, પોત-પોતાની મર્યાદાનું પાલન કરતા થકા કલ્પોપપન
 કહેવાય છે.

∴ સામાનિક આદિ દેવોના અધિપતિ ઇન્દ્ર કહેવાય છે. ઇન્દ્રનાં સમાન સામાનિક

જ્યોતિષ્કાઃ । જ્યોતિષ્કદેવાસ્તિર્યગ્લોકે જ્યોતિઃપ્રકાશં કુર્વન્તિ । જ્યોતિષ્કદેવાઃ પञ्ચવિદ્યાઃ—(૧) ચન્દ્ર—(૨) સૂર્ય—(૩) ગ્રહ—(૪) નક્ષત્ર—(૫) તારા—ભેદાત્ । इमे पञ्च समयक्षेत्रान्तर्वर्तिनेश्वरस्वभावाः सन्ति । अपरे पञ्च चन्द्रादयः समयक्षेत्राद् बहिः स्थिरा एव तिष्ठन्ति ।

(૪) વૈમાનિકદેવાઃ—

ऊर्ध्वलोके विमानेषु वसन्तीति वैमानिकाः । यद्वा-विशेषेण मानयन्ति=विशति यत्र विशिष्टसुकृतिन इति विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः । यद्वा-वि=विशिष्टं मानं=ज्ञानं यत्र, समदर्शितया, अन्यदेवापेक्षया च हेयोपादेयज्ञान-विशिष्टा भवन्ति यत्र तानि विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः ।

દેવ જ્યોતિષ્ક કહલાતે હૈં । જ્યોતિષ્ક દેવ મધ્યમ લોક મેં પ્રકાશ કરતે હૈં । જ્યોતિષ્ક દેવ પાંચ પ્રકાર કે હૈં—

૧ ચન્દ્ર, ૨ સૂર્ય, ૩ ગ્રહ, ૪ નક્ષત્ર, ઓર ૫ તારાગણ । યે પાંચો સમયક્ષેત્ર (અઢાઈ દ્વીપ) મેં ચલતે હૈં ઓર સમયક્ષેત્ર સે વાહર સ્થિર સ્વભાવ વાલે હૈં ।

(૪) વૈમાનિક દેવ—

ऊर्ध्व लोके विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं । अथवा जहां विशिष्ट पुण्यात्मा प्रवेश करते हैं उन्हें विमान कहते हैं, और विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं । अथवा समदर्शा होने के कारण-जहां विशिष्ट ज्ञान हो, या अन्य देवों की अपेक्षा जहां हेय उपादेय का विशिष्ट ज्ञान हो, वे विमान हैं और उन में होने वाले वैमानिक हैं ।

જ્યોતિષ્ક કહેવાય છે. જ્યોતિષ્ક દેવ મધ્ય લોકમાં પ્રકાશ કરે છે. જ્યોતિષ્ક દેવ પાંચ પ્રકારના છે. (૧) ચન્દ્ર, (૨) સૂર્ય, (૩) ગ્રહ, (૪) નક્ષત્ર અને (૫) તારાગણ. આ પાંચ સમયક્ષેત્ર (અઢીદ્વીપ)માં ચાલે છે અને સમયક્ષેત્રની બહાર સ્થિર સ્વભાવવાળા છે.

(૪) વૈમાનિક દેવ—

ऊर्ध्वलोकમાં विमानोंમાં वास કરવા वाળા वैमानिक કહેવાય છે, અથવા જ્યાં વિશિષ્ટ પુણ્યાત્મા પ્રવેશ કરે છે તેને વિમાન કહે છે. અને વિમાનોમાં વાસ કરવા વાળા વૈમાનિક કહેવાય છે, અથવા—સમદર્શી હોવાના કારણે જ્યાં વિશિષ્ટ જ્ઞાન હોય, અથવા અન્ય દેવોની અપેક્ષાએ, જ્યાં હેય-ઉપાદેયનું વિશિષ્ટ જ્ઞાન હોય તે વિમાન છે, અને તેમાં થવા વાળા વૈમાનિક છે.

कल्पस्य समानदेशे ऐशानः कल्पः । ११ शानस्योपरि सनत्कुमारः कल्पः । सनत्कुमार-
स्योपरि माहेन्द्रः कल्पः । एवमुपर्युपरि सर्वे कल्पाः सन्ति ।

तत्र ज्योतिष्कलोकादूर्ध्वं संख्यातयोजनकोटिकोटिपुमार्गमारुह्य रूपलक्षितद-
क्षिणभागे गगनप्रदेशे सौधर्मकल्पस्तथैशानकल्पश्चाऽस्ति । सौधर्मकल्पः पूर्व
पश्चिमदीर्घः, उत्तरदक्षिणविस्तीर्णोऽर्धचन्द्राकारः सूर्यचन्द्रास्वरः, आयामविष्कम्भाभ्यां-
परिक्षेपतथाऽसंख्येययोजनकोटिकोट्यः, सर्वरत्नमयः लोकान्तविस्तारोऽस्ति ।
तत्र मध्यभागे सर्वरत्नमयाशोक-सप्तपर्ण-चम्पका-ऽऽम्र - सौधर्मावतंसकमुशोभितः
शक्रावासः । तत्र सुधर्मा नाम शक्रस्य देवेन्द्रस्य सभा तस्मिन् कल्पेऽस्तीति
सौधर्मः कल्पः ।

के ऊपर सनत्कुमार कल्प है । सनत्कुमार के ऊपर माहेन्द्र कल्प है । इसीप्रकार ऊपर-ऊपर
सभी कल्प समझने चाहिए ।

ज्योतिष्क मण्डल से ऊपर असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर जाकर मेरु से उपलक्षित
दक्षिण भाग में आकाश-प्रदेश में सौधर्मकल्प और ऐशान कल्प हैं । सौधर्मकल्प पूर्व पश्चिम
में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण और अर्धचन्द्र के आकार का है । सूर्य के समान चमक-
दार, लम्बाई, चौड़ाई और परिधि से असंख्यात कोडाकोडी योजन, सर्वरत्नमय और लोक के
अन्ततक विस्तृत है । उसके मध्य भाग में सर्वरत्नमय अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक, आम्र, एवं
सौधर्मावतंसक से शोभित शक्र का आवास है । शक्र देवेन्द्र की सुधर्मानामक सभा जिस
कल्प में हो, वह सौधर्मकल्प कहलाता है ।

ऐशानना ऊपर सनत्कुमार कल्प छे, सनत्कुमारना ऊपर माहेन्द्र कल्प छे. ये
प्रमाणे ऊपर ऊपर तमाम कल्प समजवा जेई जे.

ज्योतिष्कमंडलनी ऊपर, असंख्यात कोडा-कोडी योजन ऊपर जेईने मेरुथी
उपलक्षित दक्षिण भागमें आकाश-प्रदेशमें सौधर्मकल्प अने ऐशान कल्प छे. सौधर्मकल्प
पूर्व पश्चिममें लांबो, उत्तर-दक्षिणमें विस्तीर्ण अने अर्धचन्द्रकारे छे. सूर्यना समान
चमकदार लांबाई, चौड़ाई अने परिधिथी असंख्यात कोडाकोडी योजन, सर्वरत्नमय
छे, अने लोकना अंत सुधी विस्तृत छे. तेना मध्य भागमें सर्व रत्नमय अशोक,
सप्तपर्ण, चम्पक, आम्र, एवं सौधर्मावतंसथी शोभित धंद्रना आवास छे. शक्र
देवेन्द्रनी सुधर्मा नामनी सभा जे कल्पमें होय, ते सौधर्मकल्प कहेवाय छे.

लोकपालाः । मित्रस्थानीयाः पारिपथाः । सैनिकाः सेनाधिपतिरूपाश्च-आनीकाः ।
 इन्द्रशरीररक्षाकारका आत्मरक्षकाः । दासस्थानीयाः सेवका आभियोग्याः ।
 नागरिक-पौरजनसमानाः प्रकीर्णकाः । अन्त्यजसमानाः कल्विपिकाः । सौधर्मादि-
 द्वादशकल्पेषु दशविधा इन्द्रसामानिकादयो देवाः भवन्ति । व्यन्तरज्योतिष्कदेवेषु
 त्रायस्त्रिंश लोकपालाश्च न भवन्ति ।

कल्पोपपन्नदेवानां निवासस्थानानि द्वादश सन्ति-१सौधर्म-२शान-३सन-
 त्कुमार-४माहेन्द्र-५ब्रह्मलोक-६लान्तक-७महाशुक्र-८सहस्रार-९ऽऽनत-१०प्राणता-
 ११ऽऽरणा-१२ऽऽच्युताः । इमे द्वादश देवलोकः कल्पविमानानि । तत्र सौधर्मस्य

सामानिक होते हैं । मन्त्री और पुरोहित जैसे त्रायस्त्रिंश देव हैं । सीमा की रक्षा करने वाले
 लोकपाल हैं । मित्र के समान पारिपथ हैं । सैनिक और सेनाधिपतिरूप आनीक हैं । इन्द्र
 के शरीर की रक्षा करने वाले आत्मरक्षक कहलाते हैं । नागरिक-पौरजनके समान प्रकीर्णक
 देव हैं । दास के समान देव आभियोगिक कहलाते हैं, और अन्त्यजों के समान किल्विपिक
 हैं । ये इन्द्र सामानिक आदि दशप्रकारके देव सौधर्म आदि सभी कल्पों में होते हैं । व्यन्तरो
 और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते ।

कल्पोपपन्न देवों के निवासस्थान बारह हैं—

१ सौधर्म, २ ऐशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक,
 ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ आनत, १० प्राणत, ११ आरण, १२ अच्युत । ये
 बारह देवलोक कल्पविमान हैं । सौधर्म कल्प की बराबरी पर ऐशान कल्प है । ऐशान
 डोय छे. मन्त्री अने पुरोहित लेवा त्रायस्त्रिंश देव छे. सीमानी रक्षा करनारा ते लोकपाल छे
 मित्रनी समान पारिपथ छे, सैनिक अने सेनाधिपतिरूप आनीक छे. इन्द्रना शरीरनी
 रक्षा करवावाणा आत्मरक्षक कहेवाय छे. नागरिक-पौरजननी समान प्रकीर्णक देव छे.
 दासना समान सेवक देव आभियोगिक कहेवाय छे, अन्त्यजनेनी समान किल्विपिक छे.
 आ इन्द्र, सामानिक आदि देव साधर्म आदि सर्व कल्पोभां डोय छे. व्यन्तरो
 अने ज्योतिष्क देवोभां त्रायस्त्रिंश अने लोकपाल डोया नथी.

कल्पोपपन्न देवाना निवासस्थान बार छे. (१) सौधर्म, (२) ऐशान (३)
 सनत्कुमार (४) माहेन्द्र (५) ब्रह्मलोक (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार,
 (९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण, (१२) अच्युत.

आ. बार: देवलोक कल्प विमान छे. सौधर्म कल्पनी बराबरी पर ऐशान कल्प छे.

द्वादशकल्पनिवासिनामिन्द्राणां नामानि यथा-सौधर्मकल्पस्य शक्रः १, ऐशानस्येशानः २, सनत्कुमारस्य सनत्कुमारः ३, माहेन्द्रस्य महेन्द्रः ४, ब्रह्मलोकस्य ब्रह्मेन्द्रः ५, लान्तकस्य-लन्तकः ६, महाशुकस्य महाशुकः ७, सहस्रारस्य सहस्रारः ८, आनत-प्राणतयोः कल्पयोः एक-एव प्राणतनामा सुरपतिः ९, आरणाच्युतयोरपि तथैवैकोऽच्युतनामा देवराजोऽस्ति १० ।

एषु नव लोकांतिकाः-सारस्वता १-ऽऽदित्य २-वह्नि ३-वरुण ४-गर्दतोय ५-तुपिता ६-ऽअव्यावाधा ७-ऽऽग्नेय ८-रिष्ट ९-नामानः सन्ति । ब्रह्मलोके लोकान्तिका निवसन्ति । ईशानकोणे सारस्वताः १, पूर्वस्यामादित्याः २, आग्नेयकोणे वह्नयः ३, दक्षिणस्यां वरुणाः ४, नैऋत्ये गर्दतोयाः ५, पश्चिमायां तुपिताः ६, वायव्यकोणे-अव्यावाधाः ७, उत्तरस्याम् अग्निच्चा (आग्नेयाः) ८, मध्ये रिष्टाः ९ निवसन्ति ।

वारह कल्पवासी इन्द्रो के नाम इस प्रकार हैं-सौधर्म कल्प का शक्र १, ऐशान का ईशान २, सनत्कुमार का सनत्कुमार ३, माहेन्द्र का महेन्द्र ४, महालोकका ब्रह्मेन्द्र ५, लान्तक का लन्तक ६, महाशुक का महाशुक ७, सहस्रार का सहस्रार ८ और आनत-प्राणत कल्पों का एक प्राणतनामक इन्द्र है ९ । आरण और अच्युत कल्पों का अच्युत नामक एक ही इन्द्र है १० ।

इन में नौ लोकान्तिक देव हैं-(१) सारस्वत, (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण, (५) गर्दतोय, (६) तुपित, (७) अव्यावाध, (८) आग्नेय और, (९) रिष्ट । ये लोकान्तिक देव ब्रह्मलोक में निवास करते हैं । ईशान कोण में सारस्वत, पूर्व में आदित्य, आग्नेय कोण में वह्नि, दक्षिण में वरुण, नैऋत्य में गर्दतोय, पश्चिम में तुपित, वायव्य में अव्यावाध, उत्तर में अग्निच्चा (आग्नेय) और मध्य में रिष्ट निवास करते हैं ।

षारह कल्पवासी इन्द्रोनां नामो आ प्रभाञ्जि छे-सौधर्मकल्पना शक्र; (१) ऐशानना धशान (२) सनत्कुमारना सनत्कुमार (३) माहेन्द्रना महेन्द्र, (४) ब्रह्मलोकना ब्रह्मेन्द्र, (५) लान्तकना लन्तक, (६) महाशुकना महाशुक, (७) सहस्रारना सहस्रार अने आनत-प्राणत कल्पोना ओक प्राणत नामना इन्द्र छे, आरण अने अच्युत कल्पोना अच्युत नामना ओक इन्द्र छे. (१०) तेमां नव लोकान्तिक देव छे—(१) सारस्वत, (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण, (५) गर्दतोय, (६) तुपित, (७) अव्यावाध, (८) आग्नेय, अने (९) रिष्ट आ लोकान्तिक देव ब्रह्मलोकमां निवास करे छे. धशानकोणमां सारस्वत, पूर्वमां आदित्य, आग्नेयकोणमां वह्नि, दक्षिणमां वरुण, नैऋत्यमां गर्दतोय पश्चिममां तुपित, वायव्यमां अव्यावाध, उत्तरमां अग्निच्चा (आग्नेय) अने मध्यमां रिष्ट निवास करे छे.

तथैशानकल्पोऽर्धचन्द्राकारोऽस्ति । उभौ मिलितौ पूर्णचन्द्रकारेणावस्थितौ स्तः ततोऽसंख्यातयोजनकोटिकोटिद्वयपरि समानप्रदेशे सनत्कुमार-माहेन्द्रौ कल्पौ वर्तेते । अर्धचन्द्राकार इव सनत्कुमारस्तथैव माहेन्द्रोऽपि । उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्रसदृशाकारेण स्तः । ततोऽसंख्यातयोजनकोटिकोटियुपरि ब्रह्मलोकः पूर्णचन्द्राकारोऽस्ति । एवमेव लान्तक-महाशुक-सहस्रास्तावत्ताव-द्योजनोर्ध्वमुपर्युपरि प्रत्येकं पूर्णचन्द्राकाराः सन्ति ततोऽप्यसंख्यातयोजनकोटिकोटियुपरि समानगगनप्रदेशे आनत-प्राणतलोकी प्रत्येकमर्धचन्द्राकारौ स्तः । उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्राकारेण भवतः । ततोऽप्यसंख्यातयोजनकोटिकोटियुपरि-आरणाच्युतलोकी प्रत्येकमर्धचन्द्राकारौ स्तः । उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्राकारं भवतः ।

ऐशानकल्प भी अर्धचन्द्राकार है । दोनों कल्प मिलकर पूर्ण चन्द्रमा के समान हैं । इन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर समान देश में सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प हैं । सनत्कुमार कल्प अर्धचन्द्राकार है और माहेन्द्र कल्प भी इसी प्रकार का है । दोनों मिलकर पूर्णचन्द्रमा के सदृश आकार वाले हैं । इन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर ब्रह्मलोक पूर्णचन्द्राकार है । इसी प्रकार लान्तक, महाशुक, और सहस्रार उतने-उतने योजन ऊपर-ऊपर प्रत्येक पूर्णचन्द्रमा के समान अवस्थित हैं । उन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर आकाश प्रदेश में आनत और प्राणत बराबरी पर प्रत्येक अर्धचन्द्राकार है । ये दोनों मिलकर पूर्णचन्द्रके आकार के हो जाते हैं । उन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर आरण और अच्युत लोक प्रत्येक अर्धचन्द्राकार है । ये दोनों मिलकर पूर्णचन्द्र के आकार के जैसे हो जाते हैं ।

ऐशान कल्प पञ्च अर्धचन्द्राकार छे । जन्ने कल्पे भणीने पूर्ण चन्द्रमानी समान छे । तेनाथी असंख्यात कोडा-कोडी योजन ऊपर समान देशमा सनत्कुमार जन्ने माहेन्द्र कल्प छे । सनत्कुमार कल्प अर्धचन्द्राकार छे जन्ने माहेन्द्र कल्प पञ्च ज्ये प्रकारने छे । जन्ने भणीने पूर्णचन्द्रमानी बराबर आकारवाजा छे । तेनाथी असंख्यात कोडा-कोडी योजन ऊपर ब्रह्मलोक पूर्णचन्द्राकार छे । ज्ये प्रमाणे लान्तक, महाशुक जन्ने सहस्रार तेटला-तेटला योजन ऊपर-ऊपर प्रत्येक, पूर्णचन्द्रमासमान अवस्थित छे । तेथी असंख्यात कोडा-कोडी योजन ऊपर आकाशप्रदेशमा आनत जन्ने प्राणत बराबरी पर प्रत्येक अर्धचन्द्राकार छे । ज्ये जन्ने कल्पे भणीने पूर्ण चन्द्रमानी आकारना थर्ध ज्ञाय छे । तेथी असंख्यात कोडा-कोडी योजन ऊपर आरण जन्ने अच्युत लोक प्रत्येक अर्धचन्द्राकार छे । ज्ये जन्ने भणीने पञ्च पूर्णचन्द्राकार जेवां थर्ध ज्ञाय छे ।

नवप्रैवेयकनामानि यथा - १ भद्र - २ सुभद्र - ३ सुजात - ४ सुमानस - ५ सुदर्शन - ६ प्रियदर्शना - ७ अमोघ - ८ सुप्रतिभद्र - ९ यशोधराणि ।

पञ्चानुत्तरविमानानि यथा - १ विजय - २ वैजयन्त - ३ जयन्ता - ४ अपराजित - ५ सर्वार्थसिद्धाख्यानि । अविद्यमानमुत्तर-मुत्कृष्टं विमानादि येभ्यस्तान्यनुत्तराणि । तानि च विमानानि-अनुत्तरविमानानि ।

तीर्थङ्करादीनां समवसरणादौ कल्पोपपन्नदेवा गमनागमनं कुर्वन्ति । कल्पातीतदेवास्तु स्वस्थानादन्यत्र न गच्छन्ति ।

५ जीविकायभेद-संकलनम्

पञ्चजीविकायानां त्रिपण्युत्तरपञ्चशतानि (५६३) भेदाः । तथाहि- पृथिव्यन्तेजोवायुकायानां प्रत्येकं वादर-सूक्ष्म-भेदाद् द्वैविध्येऽष्टधा । तेषां

नौ प्रैवेयकों के नाम-(१) भद्र, (२) सुभद्र, (३) सुजात, (४) सुमानस, (५) सुदर्शन, (६) प्रियदर्शन, (७) अमोघ, (८) सुप्रतिभद्र, और (९) यशोधर हैं ।

पांच अनुत्तर विमान-(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध । जिन से ऊपर अर्थात् उत्कृष्ट और कोई विमान नहीं वे अनुत्तर विमान कहलाते हैं । तीर्थंकर आदि के समवसरण आदि में कल्पोपपन्न देव गमनागमन करते हैं । कल्पातीत देव अपने स्थान से अन्य जगह नहीं जाते ।

पञ्चजीविकाय के भेदों का संकलन-

पञ्चजीविकायों के कुल पांचसौ त्रैसठ (५६३) भेद हैं । वे इस प्रकार हैं- पृथिवी, अप, तेज, और वायुकाय के वादर और सूक्ष्म के भेद से आठ भेद हुए ।

नवप्रैवेयकना नाम-(१) भद्र, (२) सुभद्र, (३) सुजात, (४) सुमानस, (५) सुदर्शन, (६) प्रियदर्शन, (७) अमोघ, (८) सुप्रतिभद्र અને (९) यशोधर छे.

पांच अनुत्तर विमान-(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित અને (५) सर्वार्थसिद्ध. जेनाथी उत्तर अर्थात् उत्कृष्ट ठोई विमान न होय ते अनुत्तर विमान कहेवाय छे. तीर्थंकर आदिना समवसरण आदिमां कल्पोपपन्न देव गमनागमन करे छे. कल्पातीत देव पोताना स्थानथी अन्य जग्याये जाता नथी.

पञ्चजीविकायना खेदोना योग

पञ्चजीविकायाना कुल पांचसौ त्रैसठ (५६३) खेद छे. ते आ प्रकारे छे- पृथ्वी, अप, तेज અને वायुकाय, तेना वादर અને सूक्ष्मना खेदथी आठ खेद थया.

कल्पातीताः—

कल्पमतीताः—अतिक्रान्ताः कल्पातीताः । सौधर्मादिद्वादशकल्पवर्हिर्भूताः स्वामिसेवकाद्याचारवर्जिताः, स्वातन्त्र्यादहमिन्द्रनाम्ना प्रसिद्धाः, भद्रादिनवग्रैवेयक-विमान-विजयादिपञ्चानुत्तरविमानाधिवासिनो देवाः कल्पातीताः ।

सौधर्मादिद्वादशकल्पतथोर्ध्वमसंख्यातयोजनकोटिकोटिपूपरि नवग्रैवेय-कानि विमानान्युपर्युपरि सन्ति । पुरुषाकारलोकस्य ग्रीवास्थानीयतया विमानानि ग्रैवेयकान्युच्यन्ते । तद्वासिनो देवा अपि ग्रैवेयका उच्यन्ते । सर्वोपरितनवग्रैवेयक-विमानादूर्ध्वमसंख्यातयोजनकोटिकोट्युपरि पञ्चानुत्तरविमानानि सन्ति । तत्रैकं मध्यभागे, चतुर्दिक्षु चत्वारि । अनुत्तरविमानवासिनो देवा अनुत्तरा उच्यन्ते ।

कल्पातीत—

जो देव कल्प से परे हैं वे कल्पातीत कहलाते हैं, अर्थात् सौधर्म आदि कल्पों से बाहर, स्वामी, सेवक आदि मर्यादा से रहित—स्वतंत्र होने के कारण अहमिन्द्र नाम से प्रसिद्ध भद्र आदि नौ ग्रैवेयकों में तथा विजय आदि पांच अनुत्तर विमानों में निवास करने वाले देव कल्पातीत कहलाते हैं ।

सौधर्म आदि बारह कल्पों से ऊपर असंख्यात कोडाकोडी योजन जाकर नौ ग्रैवेयक विमान एक दूसरे के ऊपर अवस्थित हैं । पुरुषाकार लोक की ग्रीवा के स्थान पर जो विमान हैं, वे ग्रैवेयक विमान कहलाते हैं । सब से ऊपर के ग्रैवेयक विमान से ऊपर असंख्यात कोडाकोडी योजन जाकर पांच अनुत्तर विमान हैं । उन में से एक मध्य भाग में है और चार चारों दिशाओं में हैं । अनुत्तरविमानवासी देव अनुत्तर कहलाते हैं ।

कल्पातीत—

ये देवो कल्पेथी षडार छे ते कल्पातीत कहेवाय छे. अर्थात् सौधर्म आदि कल्पेथी षडार स्वामी—सेवक आदि मर्यादाथी रहित, स्वतंत्र होवाना कारणे अहमिन्द्र नामथी प्रसिद्ध छे. भद्र आदि नवग्रैवेयकमां, तथा विजय आदि पांच अनुत्तर विमानोमां निवास करवा वाणा देव ते कल्पातीत कहेवाय छे.

सौधर्म आदि बारह कल्पेथी उपर असंख्यात कोडा—कोडी योजन जधने नव ग्रैवेयक विमान एक भीळनी उपर अवस्थित छे. पुरुषाकार लोकनी ग्रीवा (ओक) ना स्थान पर ये विमान छे. ते ग्रैवेयक विमान कहेवाय छे.

सौथी उपरना ग्रैवेयक विमान उपर असंख्यात कोडा—कोडी योजन जधने पांच अनुत्तर विमान छे. तेमांथी एक मध्य भागमां छे, चार चारैय दिशाओमां छे. अनुत्तरविमानवासी देव अनुत्तर कहेवाय छे.

रत्नप्रभादयः सप्त नरकभूमयः । तत्र भवा नारकाः सप्तविधाः, तेषां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वैविध्ये चतुर्दश भेदाः

मनुष्याणां त्र्युत्तरशतत्रयं (३०३) भेदाः पूर्वमेव तत्प्रकरणे स्पष्टं कथिताः ।

देवानामष्टनवत्युत्तरशत (१९८) भेदाः । तत्र भवनपतीनां दश भेदाः असुरकुमारादयः । परमाधार्मिकाः पञ्चदश । एवं (२५) पञ्चविंशतिर्भेदाः । व्यन्तराणां पञ्चविंशतिर्भेदाः । तत्र पिशाचादयः षोडश, अन्नजृम्भकादयो दश (२६) । ज्योतिष्कानां दश भेदाः । तत्र चन्द्रादयः पञ्च । तेषां पञ्चानां चर-स्थिरभेदेन द्वैविध्ये दश भेदाः (१०) सन्ति । वैमानिकानामष्टत्रिंशद् भेदाः । तत्र सुधर्मादयो द्वादश, सारस्वतादयो नव, किल्बिषिकास्त्रयः, ग्रैवेयकाः—भद्रादयो

रत्नप्रभा आदि सात नरकभूमियों में सात प्रकार के नारकी हैं । उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करने से चौदह भेद होते हैं ।

मनुष्यों के तीससौ तीन (३०३) भेद पहले स्पष्ट कहे जा चुके हैं ।

देवों के एकसौ अठानवे (१९८) भेद हैं । वे इस प्रकार—भवनपतियों के असुर-कुमार आदि दस, परमाधार्मिक पन्द्रह, सब पच्चीस (२५) भेद हुए । व्यन्तरी के छवीस भेद हैं—सोलह पिशाच आदि और दस अन्नजृम्भक आदि (२६) । चन्द्रमा आदि पांच के चर और अचर भेद होने से ज्योतिष्क देवों के दश (१०) भेद हैं । वैमानिकों के अडतीस भेद हैं—सुधर्म आदि बारह, सारस्वत आदि नौ, किल्बिषिक आदि तीन, भद्र आदि ग्रैवेयक नौ, विजय आदि पांच अनुत्तर विमान (३८) । इन सब का योग करने से

रत्नप्रभा आदि सात नरकभूमिओं में सात प्रकारना नारकी छे. तेना पर्याप्त अने अपर्याप्त लेह करवाथी चौह लेह थाय छे.

मनुष्याणां त्र्युत्तरशत (३०३) लेह प्रथम स्पष्ट कही चूक्या छीअे. देवाना अेकसौ अाठानव (१९८) लेह छे. भवनपतियोना असुरकुमार आदि दस, परमाधार्मी पंहर, सर्व पच्चीस लेह थया. व्यन्तराना छवीस लेह छे—सोण पिशाच आदि, अने दस अन्नजृम्भक—आदि. चंद्रमा आदि पांचना चर अने अचर लेह होवाथी ज्योतिष्क देवाना दश (१०) लेह छे. वैमानिक देवाना अाठतीस (३८) लेह छे—सुधर्म आदि बार, सारस्वत आदि नव, किल्बिषिक आदि त्रय, भद्र आदि ग्रैवेयक नव, विजय आदि पांच अनुत्तर विमान, आ सर्वने अेक प्र. आ.—३८

પર્યાપ્તાપર્યાપ્તભેદાદ્ દ્વૈવિધ્યે પોડશ (૧૬) ભેદાઃ । વનસ્પતિકાયસ્ય સૂક્ષ્મ-
સાધારણપ્રત્યેકભેદાત્ ત્રૈવિધ્યમ્, ત્રિવિધસ્ય વનસ્પતિકાયસ્ય પર્યાપ્તાપર્યાપ્ત-
ભેદેન પ્રત્યેકં દ્વૈવિધ્યે તસ્ય પદ્મ ભેદાઃ, इत्यं (૨૨) દ્વાવિંશતિર્ભેદાઃ સ્થાવર-
પશ્ચકસ્યૈકેન્દ્રિયજીવસ્ય ભવન્તિ ।

દ્વીન્દ્રિય-ત્રીન્દ્રિય-ચતુરિન્દ્રિયાણાં પર્યાપ્તાપર્યાપ્તભેદેન પ્રત્યેકં દ્વૈવિધ્યે
પદ્મ ભેદાઃ । સર્વસંકલનયાઽપ્તાવિંશતિ (૨૮) ભેદાઃ ।

તિર્યકપશ્ચેન્દ્રિયાઃ-જલચર-સ્થલચર-શેચરો-રઃપરિસર્પભુજપરિસર્પ-ભેદાત્-
પશ્ચવિધાઃ । તેપાં પશ્ચાનાં સંશ્યસંક્ષિભેદેન દ્વૈવિધ્યે દશ ભેદાઃ । તેપાં પર્યાપ્તા-
પર્યાપ્તભેદેન વિંશતિ(૨૦)ભેદાઃ । પૂર્વોક્તાપ્તાવિંશતિસંકલનતોઽષ્ટત્વારિંશદ્
(૪૮) ભેદાસ્તિરશ્ચામ્ ।

इन आठों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से सोलह भेद होते हैं । वनस्पतिकाय-सूक्ष्म,
साधारण और प्रत्येक के भेद से-तीन प्रकार का है । इन तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद
करने से छह भेद हुए । इस प्रकार पांच एकेन्द्रिय स्थावर जीवों के बाईस (२२)भेद हैं ।

દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય ઓર ચતુરિન્દ્રિય કે પર્યાપ્ત અપર્યાપ્ત ભેદ સે છહ ભેદ । સત્રકો
જોડ દેને પર અઠ્ઠાઈસ (૨૮) ભેદ હુણ ।

તિર્યક પશ્ચેન્દ્રિય-જલચર, સ્થલચર, શેચર, ઊરઃપરિસર્પ ઓર ભુજપરિસર્પ કે ભેદ સે
પાંચ પ્રકાર કે હૈં । પાંચો કે સંજ્ઞી, અસંજ્ઞી કે ભેદ સે દશ હુણ, इन के पर्याप्त, अपर्याप्त भेद
करने से बीस (२०) भेद हुए । इन बीस में पूर्वोक्त अष्टाईस और मिलाने से तिर्यक्यों के
अड़तालीस (४८) भेद होते हैं ।

તે આઠના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી સોળ ભેદ થાય છે. વનસ્પતિકાય સૂક્ષ્મ,
સાધારણ અને પ્રત્યેકના ભેદથી ત્રણ પ્રકારના છે. એ ત્રણેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત
ભેદ કરવાથી છ ભેદ થયા. આ પ્રમાણે પાંચ એકેન્દ્રિય સ્થાવર જીવોના આવીસ ભેદ છે.

બેઘન્દ્રિય, ત્રણ-ઘન્દ્રિય અને ચૌઘન્દ્રિયના પર્યાપ્ત અપર્યાપ્તના ભેદથી છ ભેદ
થયા તે સર્વને એક કરવાથી અઠાવીસ (૨૮) ભેદ થયા.

તિર્યક પશ્ચેન્દ્રિય-જલચર, સ્થલચર, શેચર, ઊરઃપરિસર્પ અને ભુજપરિસર્પના
ભેદથી પાંચ પ્રકારના છે. તે પાંચના સંજ્ઞી અને અસંજ્ઞીના ભેદથી દસ થયા, તેના
પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી વીસ (૨૦) ભેદ થયા, તે વીસમાં પૂર્વોક્ત અઠાવીસ
એકવચાથી તિર્યકોના અઠતાલીસ (૪૮) ભેદ થાય છે.

- (९) पृथिवीकाया असंख्याताः । (१०) अपूकाया असंख्याताः ।
 (११) तेजस्काया असंख्याताः । (१२) वायुकाया असंख्याताः ।
 (१३) प्रत्येकवनस्पतिकाया असंख्याताः । (१४) तदपेक्षया सिद्धजीवा अनन्ताः ।
 (१५) तेभ्योऽपि कन्दमूलादिरूपा (१६) सूक्ष्मनिगोदजीवाः
 वादरनिगोदजीवा अनन्तगुणाः । सर्वतोऽनन्तगुणाः ।

कर्मवादिप्रकरणम्—

यः पुनरेवं पञ्चजीवनिकायस्वरूपनिरूपणपरः स एव लोकवादी-वस्तुतः कर्मवादीत्याह—‘कर्मवादी’ इति । कर्म=ज्ञानावरणीयादि, तद् वदितुं शीलमस्येति कर्मवादी—कर्मस्वरूपकथनशीलः । पञ्चजीवनिकायतत्त्वज्ञः खलु लोकवादी ज्ञाना-

- (९) पृथ्वीकाय असंख्यात । (१०) अपूकाय असंख्यात ।
 (११) तेजस्काय असंख्यात । (१२) वायुकाय असंख्यात ।
 (१३) प्रत्येकवनस्पतिकाय असंख्यात । (१४) इस से सिद्ध जीव अनन्त ।
 (१५) वादरनिगोदजीव कन्दमूल आदि सिद्धों से (१६) सूक्ष्म निगोदजीव सब से भी अनन्तगुणा । अनन्त गुणा ।

कर्मवादिप्रकरण—

जो इस प्रकार पञ्चजीवनिकाय का स्वरूप निरूपण करने वाला है, वही लोकवादी वास्तव में कर्मवादी है । ज्ञानावरण आदि कर्मों का कथन करना जिस का स्वभाव हो, वह कर्मवादी है । पञ्चजीवनिकाय का तत्त्व समझने वाला लोकवादी ज्ञानावरण

- (९) पृथ्वीकाय असंख्यात छे. (१०) अपूकाय असंख्यात छे.
 (११) तेजस्काय असंख्यात छे. (१२) वायुकाय असंख्यात छे.
 (१३) प्रत्येकवनस्पतिकाय असंख्यात छे. (१४) तेनाथी सिद्धजीव अनन्त छे.
 (१५) वादर निगोद जीव कन्दमूल आदि सिद्धीथी पणु अनन्त छे. (१६) सूक्ष्म निगोद जीव सौथी अनन्तगुणा छे.

कर्मवादीप्रकरण—

जे आ प्रमाणे पञ्चजीवनिकायना स्वरूपतुं निरूपण करवावाणा छे ते लोकवादी वास्तविक रीते कर्मवादी छे. ज्ञानावरण आदि कर्मोंतुं कथन करवुं ते जेना स्वभाव होय, ते कर्मवादी छे. पञ्चजीवनिकायना तत्त्वने समझवावाणा लोकवादी ज्ञानावरण

नव, विजयादयः पञ्चानुत्तरविमानाः (३८) । सर्वेषां संकलनेन (९९) नव-
नवतिभेदाः । तेषां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वैविध्ये सत्यष्टनवत्युत्तरशतं (१९८) भेदाः
देवानां भवन्ति । इत्थं सकलभेदसंकलनया षड्जीवनिकायानां त्रिपष्टशुत्तर-
पञ्चशतानि (५६३) भेदाः सन्ति ।

जीवानां संख्या—

जीवा अनन्ताः सन्ति । तथाहि—

- | | |
|--|----------------------------------|
| (१) संज्ञिनो मनुष्याः संख्याताः । | (२) असंज्ञिनो मनुष्या असंख्याताः |
| (३) नारकिणोऽप्यसंख्याताः । | (४) देवाः संख्याताः । |
| (५) तिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रिया असंख्याताः । | (६) द्वीन्द्रिया असंख्याताः । |
| (७) त्रीन्द्रिया असंख्याताः । | (८) चतुरिन्द्रिया असंख्याताः । |

निन्यानवे (९९) भेद होते हैं, और इन के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से एकसौ अट्टानवे
(१९८) भेद देवों के हैं । इस प्रकार सब भेदों का जोड़ करने से पांचसौ त्रेसठ (५६३)
षड्जीवनिकाय के भेद होते हैं ।

जीवों की संख्या—

जीव अनन्त हैं । वे इस प्रकार—

- | | |
|--------------------------------------|-------------------------------|
| (१) संज्ञी मनुष्य संख्यात । | (२) असंज्ञी मनुष्य असंख्यात । |
| (३) नारकी असंख्यात । | (४) देव असंख्यात । |
| (५) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय असंख्यात । | (६) द्वीन्द्रिय असंख्यात । |
| (७) त्रीन्द्रिय असंख्यात । | (८) चतुरिन्द्रिय असंख्यात । |

करवाथी नवाष्टुं (६६) लेह थाय छे. अने तेना पर्याप्त अपर्याप्त लेह करवाथी अकसे
अष्टाष्टुं (१६८) लेह देवोना छे. आ प्रभाष्टुं उपर कहेला सर्व लेहोने अकडा करवाथी
पांचसौ त्रेसठ (५६३) षड्जीवनिकायना लेह-थाय छे.

लवानी संख्या—

लव अनन्त छे, ते आ प्रकारे छेः—

- | | |
|--|---------------------------------|
| (१) संज्ञी मनुष्य संख्यात छे. | (२) असंज्ञी मनुष्य असंख्यात छे. |
| (३) नारकी असंख्यात छे. | (४) देव असंख्यात छे. |
| (५) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय असंख्यात छे. | (६) द्विन्द्रिय असंख्यात छे. |
| (७) त्रीन्द्रिय असंख्यात छे. | (८) चतुरिन्द्रिय असंख्यात छे. |

दिहेतुभिर्निरन्तरमयमात्मा रागद्वेषपरिणत्या स्वस्मिन् सकलप्रदेशेषु कर्मवर्गणा-
रूपं पुद्गलं समाकर्षन् क्षीरनीरन्यायेन तादात्म्यसमापन्नं करोति तदेव कर्मोच्यते ।

(२) कर्मणः सिद्धिः—

आत्मत्वधर्मेण सर्वेषामात्मनामेकरूपत्वेऽपि देवनारकमनुष्यतिर्यगादि-
रूपं सुखि-दुःखि-सधन-निर्धन-सुरूप-कुरूप-सबल-ज्वल-नीरोग-सरोगादिरूपं वा
यद् वैचित्र्यं तन्न निर्हेतुकं भवितुमर्हति, सदा मवाऽभावदोषप्रसंगात् ।
निर्हेतुकत्वे देवनारकादिभवः शाश्वतिकः स्यात्, तथा देवनारकादिभवा

रागद्वेषरूप परिणामों से अपने समस्त आत्मप्रदेशों में कर्मवर्गणा के पुद्गलों को खींचता है
और क्षीर-नीर की तरह तद्रूप बना लेता है उन्हीं को कर्म कहते हैं ।

(२) कर्मकी सिद्धि—

सब आत्माओं में आत्मत्व समान होने पर भी कोई देव है, कोई नारक
कोई मनुष्य है, कोई तिर्यक्ष, कोई सुखी है, कोई दुःखी, कोई सधन, कोई निर्धन,
कोई सुरूप, कोई कुरूप, कोई सबल, कोई निर्बल, कोई रोगी है, कोई नीरोगी है,
यह सब विचित्रता निष्कारण नहीं हो सकती, अगर इसका कोई कारण न होता तो
या तो यह विचित्रता होती ही नहीं, अगर होती भी तो सदैव के लिए होती । निष्कारण
ही देवगति या नरकगति होती तो वह नित्य होती । तथा देव नरक आदि भवका

निरन्तर रागद्वेषरूप परिष्णामेधी पोताना समस्त आत्मप्रदेशोभां कर्मवर्गणाना पुद्-
गलाने भेद्ये छे, अने क्षीर-नीर प्रमाणे तद्गुरूप अनावी वे छे, तेने कर्म कडे छे.

(२) कर्मनी सिद्धि—

सर्व आत्माओं में आत्मत्व समान होना छतांय पणु कोर्ध देव छे, कोर्ध नारकी;
कोर्ध मनुष्य छे; कोर्ध तिर्यक्ष, कोर्ध सुणी छे, कोर्ध दुःणी छे. कोर्ध धनवान् छे, कोर्ध
निर्धन छे; कोर्ध स्वर्गपवान् छे, कोर्ध कुरूप छे, कोर्ध सबल छे, कोर्ध निर्बल छे. कोर्ध
रोगी छे, कोर्ध निरोगी छे. आ सर्व विचित्रता कोर्ध कारण विना कोर्ध शक्ये नडी. तेनुं
कोर्ध कारण न होय तो आवी विचित्रता पणु होय नडी. अने होय तो पथी ते दुभेशां
भाटे रडी शकते. कोर्ध पणु कारण विना देवगति अथवा नरकगति होय तो ते नित्य
होय, तथा देव अने नारक आदि भवने अभाव पणु नित्य होत. अे प्रमाणे

वरणीयाद्यष्टविधकर्मैव नरकादिचतुर्गतिभ्रमणकारणतया विजानाति । ज्ञाना-
वरणीयादिकर्मबन्धादेव हि जीवाश्चतुर्विधासु गतिषु परिभ्रमन्तः सम्यग्ज्ञानचारित्र-
प्राप्तिमन्तरेण संसारदावाग्निपतितमात्मानं समुद्धर्तुं न प्रभवन्ति । एवं कर्मबन्धवेदी-
भ्रम्यः कर्मवादी बोद्धव्य इत्यर्थः ।

(१) कर्मस्वरूपम्—

अत्र कर्मप्रसङ्गेन तत्स्वरूपं निरूप्यते—

जीवेन मिथ्यात्वादिहेतुभिः क्रियते यत्, तत् कर्म । यथा तप्तयो-
गोलकः सलिले निक्षिप्तः सन् सर्वतः सलिलमाकर्षति तथाऽनादिमिथ्यात्वा-

आदि आठ कर्मों को ही नरक आदि चार गतियों में भ्रमण का कारण जानता है ।
ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बन्ध के कारण ही जीव चार गतियों में परिभ्रमण करते
हुए सम्यग्ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति के बिना संसाररूपी दावानल में पड़े हुए आत्मा
का उद्धार करने में समर्थ नहीं होते । इस प्रकार कर्मबन्ध के वेत्ता (जाननेवाले) भ्रम्यजीव
कर्मवादी कहलाते हैं ।

(१) कर्मका स्वरूप—

कर्म का प्रसङ्ग होने से उसके स्वरूप का निरूपण करते हैं—

जीव के द्वारा मिथ्यात्व आदि कारणों से जो क्रियाजाय वह कर्म हैं । जैसे-
तपा हुआ लोहे का गोल जल में डाल दिया जाय तो वह सभी तरफ से जल को
खींचता है, उसी प्रकार अनादिकालीन मिथ्यात्व आदि कारणों से आत्मा निरन्तर

आदि आठ कर्मों के नरक आदि चार गतियों में भ्रमण का कारण है । ज्ञानावरणीय आदि
कर्मों के बन्धना कारणों से ही जीव चार गतियों में परिभ्रमण करते हैं । सम्यग्ज्ञान और
चारित्र की प्राप्ति के बिना संसाररूपी दावानल में पड़े हुए आत्माने उद्धार करवाने
में समर्थ नहीं है । इस प्रकार कर्मबन्धने वाले नरक भ्रम्यजीव कर्मवादी कहलाते हैं ।

(१) कर्म का स्वरूप—

कर्म का प्रसङ्ग होना से उसके स्वरूप का निरूपण करते हैं—

जीव के द्वारा मिथ्यात्व आदि कारणों से जो क्रियाजाय वह कर्म हैं । जैसे-
तपा हुआ लोहे का गोल जल में डाल दिया जाय तो वह सभी तरफ से जल को
खींचता है, उसी प्रकार अनादिकालीन मिथ्यात्व आदि कारणों से आत्मा निरन्तर

एतत् कर्म पुद्गलस्वरूपं, नामूर्तमस्ति, अमूर्तत्वे हि कर्मणः सकाशा-
दात्मनामनुग्रहोपघातासंभवात्, गगनादिवत् । उक्तञ्च—

“तुल्यप्रतापोधमसाहसानां,
केचिल्लभन्ते निजकार्यसिद्धिम् ।
परे न तां मित्र ! निगद्यतां मे,
कर्मास्ति हित्वा यदि कोऽपि हेतुः ? ॥१॥”

अपरञ्च—

“निवध्य मासात्रव गर्भमध्ये,
बहुप्रकारैः कललादिभावैः ।
उद्वर्त्य निष्काशयते सवित्र्याः,
को गर्भतः कर्म विहाय पूर्वम् ?” इति ।

यह कर्म, पुद्गलस्वरूप है, अमूर्त नहीं। अगर कर्म अमूर्त माना जाय तो उस से आत्मा का अनुग्रह और उपघात होना असंभव है, जैसे आकाश से नहीं होता। कहा भी है :—

“समान प्रताप, उद्यम और साहस वालों में से कोई कोई अपना कार्य सिद्ध करलेते हैं और दूसरे नहीं करपाते। मित्र ! कर्म के सिवाय इस का और कोई कारण हो तो कहो ? अर्थात् कर्म ही इस का एकमात्र कारण है” ॥ १ ॥
और भी कहा है :—

“गर्भ में नौ महीने तक कलल आदि अनेक रूपों में बढ़ाकर माता के गर्भ से पूर्वकर्म के सिवाय और कोन बाहर निकालता है ?” ॥ १ ॥

ये कर्म, पुद्गलस्वरूप छे, अमूर्त नथी, अथवा कर्मने अमूर्त मानवाभां आवे तो तेनाथी आत्मानो अनुग्रह अने उपघात थयो असंभव छे, नेम आकाशथी थतो नथी. कहुं पखु छे:—

“समान पराक्रम, उद्यम, अने साहसवाणी व्यक्तिओभां कोई-कोई पोतानुं कार्य सिद्ध करी ले छे; अने कोई कोई नथी करी शकती. मित्र ! आ आणतभां कर्म बिना भीणुं कोई कारण डोय तो कडो ? अर्थात् कर्मन ओनुं ओक मात्र कारण छे.” ॥१॥
भीणुं पखु कहुं छे—“गर्भभां नव मास सुधी कलल (गर्भनुं प्रथम स्वरूप) आदि अनेक रूपेभां वृद्धि पावने माताना गर्भभांथी पूर्वकर्म सिवाय भीणुं कोषु पधार कडे छे ?” ॥१॥

भावोऽपि शाश्वतिकः स्यात्, एवं यः सुखी, तस्य सर्वदा सुखमेव स्यात्, यश्च दुःखी, तस्य सर्वदा दुःखमेव स्यात्—सर्वदा सुखाभावस्तस्य स्यात् ।

अत एव—“नित्यं सत्त्वं वा हेतोरन्यानपेक्षणात्” इत्याहुः । सहेतुकत्वस्वीकारे च य एवास्य हेतुः स एवास्माकं कर्मेति । उक्तञ्च—

“आत्मत्वेन विशिष्टस्य, वैचित्र्यं तस्य यद्वशात् ।
नरादिरूपं तच्चित्रमदृष्टं कर्मसंज्ञितम् ” ॥ १ ॥

अभाव ही शाश्वतिक होता । इसी प्रकार जो सुखी है वह सदा के लिए सुखी होता । जो दुःखी है उसे सदैव दुःख ही होता—उस के लिए सदैव सुख का अभाव होता । इसी लिए कहा गया है कि—“जो वस्तु किसी कारणकी अपेक्षा नहीं रखती वह, या तो आकाश की भाँति सदैव विद्यमान रहती अथवा खरविमाण की तरह कदापि नहीं होती ।” अगर इस विचित्रता का जो कारण है उसी कारण को हम कर्म कहते हैं । कहा भी है—

“आत्मत्व की समानता होने पर भी जिस कारण से मनुष्यादिरूप विचित्रता होती है वही अदृष्ट है । उसी को कर्म कहते हैं, वह नाना प्रकार का है ॥ १ ॥”

જે સુખી છે તે હંમેશાં માટે સુખીજ હોત. અને જે દુઃખી છે તે હંમેશાં દુઃખીજ રહેત, તેને હંમેશાં માટે સુખનો અભાવ રહેત. એ કારણથી કહ્યું છે કે—“જે વસ્તુ કોઈ કારણની અપેક્ષા રાખતી નથી તે આકાશ પ્રમાણે સદૈવ વિદ્યમાન રહે છે, અથવા ખર-વિષાણ (ગધેડાના શિંગડા)ની પ્રમાણે કદાપિ હોય નહીં” અગર આ વિચિત્રતાનું કોઈ કારણ માનવામાં આવે તો તે કારણને અમે કર્મ કહીએ છીએ, કહ્યું છે—

“આત્મત્વ-(આત્માપણ)ની સમાનતા હોવા છતાં પણ જે કારણથી મનુષ્યાદિરૂપ વિચિત્રતા હોય છે-દેખાય છે. તે અદ્રષ્ટ છે. તેને કર્મ કહે છે. અને તે નાના પ્રકારના છે-અર્થાત્ ઘણા પ્રકારના છે.” ॥ ૧ ॥

ननु अभ्रादिवत् कर्मपुद्गलानां विचित्रपरिणतिस्वीकारे बाह्यमिदं शरीर-
मेव सुखदुःखादिनानारूपतया विचित्रपरिणामं करोतीत्येव मन्यतां, किं पुनस्तद्-
वैचित्र्यहेतुभूतस्य कर्मणः परिकल्पनया, स्वभावात् एव सर्वस्यापि पुद्गलपरिणाम-
वैचित्र्यस्य सिद्धत्वादिति चेत्, अवधेहि—

अभ्रादेरिव शरीरस्य सुखदुःखादिविचित्रपरिणामाङ्गीकारे यदि परितोप-
मेपि, तर्हि कर्मापि ननु तनुरेव, सेयं कर्मतनुरतनुते विचित्रपरिणाममित्यवेहि ।
जीवेन सहातिसंश्लिष्टत्वादतीन्द्रियत्वाच्चाभ्यन्तरं सूक्ष्मं च कर्मणं शरीरम्,
औदारिकं तु बाह्यं स्थूलमित्येतावानेव द्वयोः शरीरयोर्विशेषो दृश्यते ।

शंका—अन्न-मेघ आदि के समान कर्मपुद्गलों का विचित्र परिणमन स्वीकार करते
हो तो यह क्यों नहीं मान लेते कि बाह्य शरीर ही सुख-दुःख आदि नाना रूपों में विचित्र
परिणमन करता है, कर्म को इस विचित्रता का कारण मानने से क्या लाभ है ?, पुद्गलों की
सारी विचित्रता स्वभाव से ही सिद्ध है ।

समाधान—अन्न आदि के समान शरीर का ही सुख-दुःख आदि विचित्र
परिणमन अङ्गीकार करने में आप को सन्तोष मिलता है तो कर्म भी तो शरीर ही है,
और वही कर्मशरीर विचित्र परिणमन करता है, ऐसा समझ लीजिए । जीव के साथ
घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण और अतीन्द्रिय होने के कारण कर्मशरीर आभ्यन्तर
और सूक्ष्म कहलाता है, तथा औदारिक शरीर बाह्य और स्थूल है । वस इतना ही दानों
शरीरों में अन्तर है ।

शंका—अन्न (मेघ) आदिना समान कर्मपुद्गलानुं विचित्र परिणमन स्वीकार
करे छे तो पछी, 'बाह्य शरीर न सुख-दुःख आदि नाना रूपोभां विचित्र परिणमन
करे छे' ऐम शा भाटे मानता नथी ? कर्मने ये विचित्रतानुं कारण मानवाथी शु
लाभ छे ?, पुद्गलानुं परिणमननी तमाम विचित्रता स्वभावथी न सिद्ध छे.

समाधान—मेघ आदिना समान शरीरनुं पणु सुख दुःख आदि विचित्र परिणमन
अङ्गीकार करवाभां आपने सन्तोष भणे छे तो कर्म ते शरीर न छे, अने ते कर्म-शरीर
विचित्र परिणमन करे छे, ये प्रमाणे समष्टि थ्ये. एवनी साथे घनिष्ठ संबंध होवाना
कारण अने अतीन्द्रिय होवाना कारण कर्म-शरीर आभ्यन्तर अने सूक्ष्म कहेवाथ छे,
तथा औदारिक शरीर बाह्य अने-स्थूल छे. अटलुं न ये छे शरीरभां अन्तर छे.

નનુ યથા કર્મ વિનાઽપિ વિચિત્રા અમ્રાદિવિકારા દૃશ્યન્તે તથા સંસારિણાં સુખદુઃખાદિભાષેન વૈચિત્ર્યં યદિ વિનાઽપિ કર્મં ભવેત્, તર્હિ કા હાનિઃ ? હિતિ ચેત્, ઉચ્યતે—

અમ્રવિકારા ગન્ધર્વનગરશક્રધનુરાદયો ગૃહમાકારવૃક્ષરક્તનીલપીતાદિ-
ભાવેન વૈચિત્ર્યં વિમ્ભતિ તત્ર વિસ્રસાપરિણતેન્દ્રધનુરાદિપુદ્રલપરિણામવૈચિત્ર્યં
દૃશ્યતે, તદપેક્ષયા વિશિષ્ટં પરિણામવૈચિત્ર્યં પ્રાયેણ ચિત્રન્યસ્તાનાં ચિત્રકારાદિ-
શિલ્પપરિગૃહીતાનાં લેપ્યકાષ્ટકર્માનુગતપુદ્ગલાનામુપલબ્યતે, તર્હિ જીવપરિ-
ગૃહીતાનામાન્તરકર્મપુદ્ગલાનાં સુખદુઃખાદિનાનારૂપતયા કથં ન વિશિષ્ટતરં
પરિણામવૈચિત્ર્યં સંભવેત્ ? ।

શક્કા—જૈસે કર્મ કે વિના મી ઝાંતિ-ઝાંતિકે મેઘ આદિ કે વિકાર દેલે જાતે હૈં, ડસી પ્રકાર કર્મ કે અમાવ મેં મી સંસારી જીવો મેં સુખ-દુઃખ આદિ કી વિચિત્રતા હો તો વયા હાનિ હૈ ? ।

સમાધાન—મેઘવિકાર-ગન્ધર્વનગર, ઇન્દ્રધનુષ આદિ, ગૃહ, પ્રાકાર, વૃક્ષ, રક્ત, નીલ, પીત, આદિ રૂપ મેં વિચિત્રતા ધારણ કરતે હૈં વહાં સ્વભાવ સે પરિણત ઇન્દ્રધનુષ આદિ, પુદ્રલ કે પરિણામો કી વિચિત્રતા દેલી જાતી હૈ, લેકિન ચિત્રકાર આદિ કિસી શિલ્પી કે દ્વારા ગૃહીત ચિત્ર મેં અઢકિત, લેપ્ય કાષ્ટ આદિ પુદ્રલો મેં ડસ સે મી અધિક વિશિષ્ટતા દિલાઈ દેતી હૈ તો ફિર જીવદ્વારા ગ્રહણ કિયે હુષ આન્તરિક કર્મપુદ્રલો કી સુખ-દુઃખ આદિ નાના રૂપો મેં પરિણમન કી વિશિષ્ટતર વિચિત્રતા ક્યોં ન હોગી ? ।

શંકા—જેવી રીતે કર્મ વિના પણ ભાત-ભાતના મેઘ આદિના વિકારો જોવામાં આવે છે, તે પ્રમાણે કર્મના અભાવમાં પણ સંસારી જીવોમાં સુખ-દુઃખ આદિની વિચિત્રતા હોય છે. એમ માનવામાં શું હાનિ છે ?

સમાધાન—મેઘવિકાર-ગન્ધર્વનગર, ઇન્દ્રધનુષ આદિ, ગૃહ, પ્રાકાર, વૃક્ષ, રક્ત નીલ, પીત આદિ રૂપમાં વિચિત્રતા ધારણ કરે છે. ત્યાં સ્વભાવથી પરિણત ઇન્દ્રધનુષ આદિ-પુદ્ગલના પરિણામોની વિચિત્રતા જોવામાં આવે છે. પરન્તુ ચિત્રકાર આદિ કોઈ શિલ્પીદ્વારા ગૃહીત ચિત્રમાં અઢકિત, લેપ્ય, કાષ્ટ આદિ પુદ્ગલો માં તેનાથી પણ અધિક વિશિષ્ટતા જોવામાં આવે છે તો પછી જીવદ્વારા ગ્રહણ કરેલા આન્તરિક કર્મપુદ્ગલોની સુખ-દુઃખ આદિ નાના (જૂઠા-જૂઠા) રૂપોમાં પરિણમનની વિશિષ્ટતર વિચિત્રતા કેમ ન હોય ?

शरीरान्तरग्रहणं च निष्कारणं न संभवति । तस्मात् । स्थूलशरीकारणभूतं सूक्ष्म-
कार्मणशरीरमस्तीत्यवश्यमङ्गीकर्तव्यम् ।

ननु कर्मरहितः शुद्धजीवो नानाविधशरीरादीनां कर्ताऽस्तु, तयेश्वरः,
स्वभावो यदृच्छा वा विविधशरीरादिकं करोतीत्येव मन्यते, किं कर्मकल्पनेन ?
अत्रोच्यते—

अयं जीवेश्वरादिरकर्मा न शरीरसुखदुःखादीनां कर्ता, उपकरणाभावात्,
दण्डाद्युपकरणरहितकुम्भकारवत् । कर्म विनाऽन्यदुपकरणं शरीराधारम्भकं
जीवेश्वरादीनां न संभवति, गर्भाद्यवस्थास्वन्योपकरणासंभवात्, कर्म विना
शुक्रशोणितादिग्रहणस्याप्यनुपपत्ते ।

संसार मिट जायगा, मगर संसार का मिटना दिखाई नहीं देता, और विना कारण के
शरीर का ग्रहण नहीं हो सकता, अत एव स्थूल शरीर का कारण सूक्ष्म कार्मणशरीर का
अस्तित्व अङ्गीकार करना चाहिए ।

शंका—कर्मरहित शुद्ध जीव को नाना प्रकार के शरीरों का कर्ता मान लिया जाय,
या ईश्वर; स्वभाव अथवा यदृच्छा को कर्ता स्वीकार कर लिया जाय, कर्म की कल्पना
से क्या लाभ है ? ।

समाधान—कर्मरहित जीव या ईश्वर आदि, शरीर, सुख—दुःख आदि का कर्ता
नहीं है, क्यों कि उसके पास उपकरण नहीं हैं, दण्ड आदि उपकरणों से रहित कुम्भार
के समान । कर्म के सिवाय, शरीर आदि रचने में ईश्वर आदि को और कोई भी उपकरण
नहीं हो सकता । कर्म के अतिरिक्त और कोई उपकरण न होने के कारण गर्भ आदि अवस्थाओं
में शुक्र शोणित आदिका ग्रहण भी नहीं हो सकता ।

परन्तु संसार बंध थये तेवुं जेवामां आवतुं नथी. अने कारणे विना शरीरनुं अडधु
डोई शके नईई जे कारणेथी स्थूल शरीरनुं कारणे सूक्ष्म-कार्मणु शरीरना अस्तित्वने।
अंगीकार करवे जेई जे.

शंका—कर्मरहित शुद्ध जीवने नाना प्रकारना शरीराना कर्ता भानी लई जे, अथवा
ईश्वर स्वभाव या यदृच्छाने कर्ता भानी लई जे तो पछी कर्मनी कल्पना करवाथी शुं लाल ? ।

समाधान—कर्मरहित जीव अथवा तो ईश्वर आदि, शरीर, सुख, दुःखना कर्ता नथी.
कारणे के तेनी पासे उपकरणे—(सुख साधन) नथी, इंड आदि प्रधान साधने विनाने
जेम कुंभार, ते प्रभाजे, कर्म विना शरीर आदि रचवामां ईश्वर वगेरेने भीलुं डोई
पणु उपकरणे डोई शके नई. कर्मना विना भीलुं डोई प्रधान साधन नईं होवने
कारणे जेई आदि अवस्थाजोमां शुक्र शोणित वगेरेनुं अडधु पणु थई शके नई.

ननु बाह्यशरीरस्य स्थूलत्वात् प्रत्यक्षदृष्टत्वाच्चाभ्रादिसादृश्येन बाह्य-
शरीरस्यैव सुखदुःखादिविचित्रपरिणामोऽस्तु किं पुनरप्रत्यक्षभूतस्य कर्मरू-
पातीन्द्रियशरीरस्य कल्पनेन, कर्मणशरीरानङ्गीकारे यदि कोऽपि दोष आप-
तति, ततोऽर्थापत्तेरेव कर्मवैचित्र्यमङ्गीकरिष्यामः ? इति । अत्रोच्यते—

मरणसमये प्रत्यक्षदृष्टत्वाद्यस्थूलशरीराद् विमुक्तस्य जीवस्य भवान्त-
रीयबाह्यस्थूलशरीरग्रहणे कारणभूतं सूक्ष्मं कर्मणशरीरं विनाऽग्रिमदेहग्रहणा-
भावरूपो दोषः समापद्यते, ततश्च देहान्तरग्रहणानुपपत्तेर्मरणानन्तरं सर्वस्यापि
जीवस्य शरीराभावात् संसारोच्छेदः स्यात् । न च दृश्यते संसारसमुच्छेदः ।

शङ्का—बाह्य शरीर स्थूल है और प्रत्यक्ष दिखाई देता है, अत एव बाह्य
शरीर के साथ ही अन्न आदि की समानता है, ऐसी स्थिति में बाह्य शरीर का ही सुख
दुःख आदिरूप परिणामन मानना चाहिए । कभी प्रत्यक्ष दिखाई न देने वाले कर्मरूप
अतीन्द्रिय शरीर को कल्पना करने का कष्ट क्यों उठाते हैं ? हाँ !, कर्मणशरीर को स्वीकार
न करने से अगर कोई दोष आया तो फिर अर्थापत्ति प्रमाण से ही कर्म की विचित्रता
स्वीकार कर लेंगे ? ।

समाधान—मृत्यु के समय प्रत्यक्ष दीखने वाले बाह्य स्थूल शरीर को ग्रहण
करने का कारणभूत सूक्ष्म शरीर न हो तो जीव आगामी शरीर को ग्रहण ही नहीं कर
सकेगा । सूक्ष्म शरीर न मानने से यह दोष आता है । जीव अगर अगले शरीर को ग्रहण
न करे तो मृत्यु के पश्चात् अशरीर होने के कारण सभी जीव मुक्त हो जाएँगे, और

शंका—बाह्य शरीर स्थूल छे अने प्रत्यक्ष देखाय छे, अे कारण्णुधी बाह्य शरीरनी
साथेण भेध आदिनी समानता छे अेवी स्थितिमां बाह्य शरीरतुंण सुख-दुःख
आदि इण परिणुभन मानी वेतुं न्नेध अे. केअ वणत प्रत्यक्ष नहि देखाता अेवा
कर्मरूप अतीन्द्रिय शरीरनी कल्पना करवानुं कष्ट शा माटे उठावेा छे ? हा ! कर्मण्णु
शरीरनेा स्वीकार नहि करवायी ने केअ दोष आवशे तो पछी अर्थापत्ति प्रमाण्णुधीण
कर्मनी विचित्रता स्वीकारी लक्ष्णु.

समाधान—मृत्युना समये प्रत्यक्ष देखातां बाह्य स्थूल शरीरथी एव अलग थध
नय छे. आगता लवमां बाह्य स्थूल शरीरने अहणु करवाना कारण्णुभूत सूक्ष्म शरीर
नहि होय तो एव आगामी शरीरने अहणु करी थकथे नहि. सूक्ष्म शरीर नहि
मानवाधी आ दोष आवे छे. एव ने मृत्यु पछी पान्ण शरीरने अहणु न करे तो मृत्यु
पछी अशरीर होवाने कारण्णु सर्व एवेा मुक्त थध नथे अने संसार भंघ थध नथे.

तच्छरीरारम्भेऽपि तुल्यता प्रश्नस्य । सोऽप्यकर्मा निजशरीरं नारभते निरूपकण-
त्वात् । यदि तच्छरीरकर्ताऽन्यः कोऽपि, तर्हि सोऽपि शरीरवान् अशरीरो वा ?
इत्थं चानवस्था । अनिष्टं च सर्वमेतत् । तस्मान्नेश्वरो देहादीनां कर्ता, किन्तु
कर्मसहितो जीव एव स्वकीयं देहादिकं करोति ।

किञ्च-ईश्वरस्य देहादिकरणं निष्प्रयोजनमिति तदोन्मत्ततुल्यता स्यात् ।
सप्रयोजनकर्तृत्वे तु तस्यानीश्वरत्वप्रसङ्गः । किञ्चानादिशुद्धस्य तस्येश्वरस्य
देहादिकरणेच्छा नोपपद्यते, इच्छाया रागरूपत्वात् ।

नहीं हो सकता । अगर सशरीर है तो उसका शरीर बनाने वाला कोई तीसरा ईश्वर मानना
पड़ेगा । वह तीसरा ईश्वर भी अशरीर है या सशरीर है ?, इत्यादि विकल्प फिर उपस्थित
होनेके कारण अनवस्था दोष आता है ।

यह सब अमीष्ट नहीं है । अतः देह आदिका कर्ता ईश्वर नहीं हो सकता, वरन्
कर्मसहित जीव ही अपने शरीर आदि का कर्ता है ।

दूसरी बात यह है कि ईश्वर, विना किसी प्रयोजन के ही अगर शरीर आदि की
रचना करता है तो वह उन्मत्त के समान होगा । अगर उसका कोई प्रयोजन है तो वह
ईश्वर नहीं रहेगा ।

एक बात और-अनादि काल से शुद्ध ईश्वर की देह आदि रचने में इच्छा
ही नहीं हो सकती, क्यों कि इच्छा एक प्रकार का राग है और रागी ईश्वर नहीं हो सकता ।

डोवाना डारणु शरीरकर्ता थर्ध शकतो नथी. अगर सशरीर छे तो तेनुं शरीर अना-
ववावाणो डेर्ध त्रीणे धश्चर भानवो पडशे. ते त्रीण धश्चर पणु सशरीर छे अथवा
सशरीर छे ?, धत्यादि विकल्प कुरीने उपस्थित डोवाना डारणु अनवस्था डोष आवे
छे, ते सर्व अलीष्ट नथी, ते डारणुथी देह आदिना कर्ता धश्चर थर्ध शकता नथी.
परन्तु कर्मसहित एवञ्च चोताना शरीर आदिने कर्ता छे.

भील वात अे छे डे-धश्चर डेर्ध प्रयोजन विना जे शरीर आदिनी रचना
करे छे तो ते उन्मत्तनी समान गणुशे. अथवा तो तेने डार्ध प्रयोजन छे, तो ते
धश्चर नर्ही रहे. अेक भील वात अे छे डे-अनादि डारणुथी शुद्ध धश्चरनी, देह
आदि रचनामां धश्चर रहेती नथी, डारणु डे धश्चर अेक प्रकारने राग छे, अने
रागी धश्चर थर्ध शकता नथी.

यद्वा—अकर्मा शरीरादिकं नारभते, निश्चेष्टत्वात्, अमूर्तत्वात्, आकाशवत् । तथा—एकत्वात् एकपरमाणुवत् ।

यदि शरीरस्वामीश्वरः करोति विविधशरीरादिकमित्युच्यते तदाऽनवस्था-
दोषः समापद्यते । तथाहि—शरीरस्येश्वरस्य जगद्वैचित्र्यकर्तृत्वस्वीकारे स्वशरीर-
कर्तृत्वमकर्मणस्तस्येश्वरस्य न संभवति, निरुपकरणत्वात्, दण्डादिरहितकुम्भकारवत् ।
अथान्यः कोऽपीश्वरस्तदीयशरीरकरणाय प्रवर्तते ततः सोऽपि शरीरवान् अशरीरो
वा ? यद्यशरीरस्तर्हि नासीं शरीरकर्ता निरुपकरणत्वात् । शरीरवांश्चेत्—तर्हि

अथवा—जो कर्मरहित है वह शरीर आदि का उत्पादक नहीं हो सकता, क्यों कि वह चेष्टारहित है, अथवा अमूर्त है । जो चेष्टाहीन या अमूर्त होता है वह शरीर आदि का जनक नहीं होता, जैसे आकाश । तथा वह एक होने के कारण भी शरीर आदिका जनक नहीं हो सकता, जैसे एक परमाणु ।

कदाचित् यह कहा जाय कि सशरीर ईश्वर विविध शरीर आदिका कर्ता है तो अनवस्था दोष आता है । वह इस प्रकार—अब सशरीर ईश्वर जगत् की विचित्रता का कारण है तो वह बिना शरीर के अपना शरीर भी नहीं बना सकेगा, क्यों कि वह उपकरणहीन है, दण्डआदि से रहित कुम्भार के समान । अब यह कहा जाय कि कोई दूसरा ईश्वर, पहले ईश्वर का शरीर बनाने के लिए प्रवृत्त होता है तो उसके विषय में भी वही प्रश्न उपस्थित होता है कि—वह सशरीर है अथवा अशरीर है ? , अगर वह अशरीर है तो उपकरणहीन होने के कारण शरीर का कर्ता

अथवा—जे कर्मरहित छे ते शरीर आदिना उत्पादक यध शकै नछि, क्षरणु के ते चेष्टारहित छे. अथवा अमूर्त छे. जे चेष्टाहीन अथवा अमूर्त होय छे, ते शरीर आदिना उपकरण करनार होय नछि. जेवी रीते—आकाश, तथा ते ऐक होवाना क्षरणु पणु शरीर आदिना उपकरण करनार होय नछि. जेवी रीते ऐक परमाणु.

कदाचित् ऐम कडेवाभां आवे के—सशरीर ईश्वर विविध शरीर आदिना कर्ता छे. तो अनवस्था दोष आवे छे. ते आ प्रमाणु के—अथवा सशरीर ईश्वर जगत् की विचित्रता का कारण छे तो ते, शरीर बिना पोतानुं शरीर पणु बनावी शक्ये नछी; क्षरणु के ते उपकरणहीन छे, जेम दंड आदिही रहित कुम्भार. हुवे जे ऐम कडेवाभां आवे के कर्ता हीने ईश्वर प्रथमना ईश्वरनुं शरीर बनाववाभां प्रवृत्त थाय छे, तो ते विषयभां पणु जे प्रश्न होय थाय छे के—ते सशरीर छे अथवा अशरीर छे ? अगर जे अशरीर छे तो उपकरणहीन

मूर्तस्य शरीरादिकार्यस्यानुरूपं कारणं मूर्तमेव संभवति, यथा मृत्पिण्डो घटस्य ।

अकारणत्वरूपः स्वभावः ? इति चेत्, एवं सति शरीरादिकमकारण-
मेवोत्पद्यते, इत्ययमर्थः स्यात्, तथा सति कारणाभावस्य समानत्वादेकस्मिन्नेव
समये सकलशरीरोत्पत्तिप्रसंगः ।

यदि स्वभावो वस्तुधर्म इत्युच्यते, तथापि यदि विज्ञानादिवदात्मनो
धर्मस्तर्हि नासौ स्वभावः शरीरकारणं भवितुमर्हति, अमूर्तत्वात्, आकाशवदित्युक्तं
प्रागेव । यदि स स्वभावो मूर्तवस्तुधर्मस्तर्हि सिद्धसाधनम्, कर्मापि पुद्गलरूप-
मेवेति वयं ब्रूमः । तस्मात् कर्मैव जगद्वैचित्र्यकारणमिति सिद्धम् ।

जैसे घट का कारण मिट्टी का पिण्ड है ।

अगर कोई भी कारण न होना ही स्वभाव है तो इसका अर्थ यह हुआ कि शरीर
आदि निष्कारण ही उत्पन्न हो जाते हैं । अगर निष्कारण ही शरीर की उत्पत्ति होती है तो
फिर संसार के समस्त शरीर एक साथ क्यों नहीं हो जाते ? ।

स्वभाव किसी वस्तु का धर्म है, यह कहना भी युक्तिसंगत नहीं है ।
अगर वह ज्ञान आदि के समान आत्मा का धर्म हैं तो आकाश की तरह अमूर्त होने के
कारण शरीर का कर्ता नहीं हो सकता, यह पहले ही कहा जा चुका है । स्वभाव
अगर किसी मूर्त वस्तु का धर्म है तो यह हमें भी इष्ट है, क्योंकि हमारे कथनानुसार
कर्म भी पुद्गल का क्रममावी धर्म है, अत एव यह सिद्ध हुआ कि कर्म ही जगत् की
विचित्रता का कारण है ।

मूर्त शरीरतुं अनुरूप कारणं मूर्तं च ढोपुं जेधये, जेम घटतुं कारणं भाटीने। पिंड छे.

अथवा डेधं च कारणं न ढोपुं जेधये च स्वभाव छे तो तेने अर्थ जे थये
डे शरीर आदि निष्कारणं च उत्पन्न थर्थ जय छे, अने निष्कारणं च शरीरनी उत्पत्ति
थाय छे तो पछी संसारना समस्त शरीर जेक साथे डेम थर्थ नथी जतां ?

‘स्वभाव डेधं वस्तुने धर्म छे’ जे प्रभाणे डडेपुं ते पणु युक्तिसंगत नथी.
अथवा तो ते ज्ञान आदिना समान आत्मानो धर्म छे. तो आकाशनी माइक अमूर्त
ढोपुं वाना कारणे शरीरना कर्ता थर्थ शक्ये नही, आ ढकीकत प्रथमथी च डही आपी
छे. स्वभाव जे डेधं मूर्त वस्तुने धर्म छे, तो ते वात अमारे पणु मान्य छे,
कारणु डे अमारा डडेवा प्रभाणे कर्म पणु पुद्गलरूपं छे, जे भाटे जेम सिद्ध थयुं
डे कर्म च जगतनी विचित्रातुं कारणु छे.

नापि स्वभावो देहादीनां कर्ता भवितुमर्हति । स स्वभावः किं वस्तु-
विशेषो वा ? अकारणता वा ? वस्तुधर्मो वा ?, तत्र न तावद् वस्तुविशेषः, तस्य
वस्तुविशेषरूपत्वे प्रमाणाभावात् । प्रमाणरहितस्यापि वस्तुत्वस्वीकारे कर्मापि
कथं नाङ्गीकरोपि ?, त्वन्मते कर्मणोऽपि प्रमाणरहितत्वात् ।

किञ्च—वस्तुविशेषरूपः स स्वभावो मूर्त्तौ वा स्यादमूर्त्तौ वा ?, यदि
मूर्त्तस्तर्हि स्वभाव इति नामान्तरेण कर्मैव सिध्यति । यदि पुनरमूर्त्तस्तर्हि नासौ
स्वभावो देहादीनां कर्ता भवितुमर्हति, अमूर्त्तत्वात् निरुपकरणत्वाच्च, गगनवत् ।

स्वभाव भी देह आदि का कर्ता नहीं हो सकता । बाकिर स्वभाव का अर्थ
क्या है ? स्वभाव कोई वस्तु है ? अथवा कोई भी कारण न होना स्वभाव है ? या
किसी वस्तु का धर्म है ? । स्वभाव कोई वस्तु तो है नहीं, क्यों कि उसे वस्तु मानने में
कोई प्रमाण नहीं है । प्रमाण के अभावमें भी स्वभाव को वस्तु मान लिया जाय
तो कर्म मानने में क्या आपत्ति है ? तुम्हारे मत के अनुसार कर्म मानने में भी कोई
प्रमाण नहीं है ।

स्वभाव अगर कोई वस्तु है तो वह मूर्त्त है या अमूर्त्त ?, अगर मूर्त्त है
तो स्वभाव और कर्म एक ही वस्तु है । आप कर्म को ही स्वभाव—शब्द
से कहते हैं तो कह लीजिये । स्वभाव को अमूर्त्त मानते हैं तो वह देह
आदिका कर्ता नहीं हो सकता, क्यों कि वह अमूर्त्त है और उपकरणरहित
है, जैसे आकाश । मूर्त्त शरीर का अनुरूप कारण मूर्त्त ही होना चाहिए,

स्वभाव पण्य देह आदिने कर्ता थर्ध शकतो नथी, छेवट स्वभावने अर्थ शुं छे ?
स्वभाव कोर्ध वस्तु छे ? अथवा कोर्धपण्य कारण्य नर्ही छोवुं ते स्वभाव छे ? अथवा कोर्ध
वस्तुने धर्म छे ? स्वभाव कोर्ध वस्तु तो छे नर्ही, कारण्य के तेने वस्तु मानवामां कोर्ध
प्रमाण्य नथी, प्रमाण्यना अभावमां पण्य स्वभावने वस्तु मानी लेवामां आवे तो कर्म
मानवामां शुं आपत्ति छे ? तभारा मत प्रमाण्ये कर्म मानवामां पण्य कोर्ध प्रमाण्य नथी.

स्वभाव अगर कोर्ध पण्य वस्तु छे तो ते मूर्त्त छे अथवा अमूर्त्त छे ? ले मूर्त्त
छे तो स्वभाव अने कर्म ओकण्य वस्तु छे, तमे कर्मने स्वभाव—शब्दथी कछो छे । तो
अुशीथी कछो. ले स्वभावने अमूर्त्त मानथो तो ते देह आदिने कर्ता थर्ध शकथे नर्ही,
कारण्य के ते अमूर्त्त छे. अने उपकरण्य (प्रधान साधने) रहित छे लेनी दीते आकाश.

नाप्येकस्यैव कर्मणो मूर्तत्वममूर्तत्वं च युज्यते, विरुद्धत्वादिति चेत्? उच्यते—

अत्र कारणशब्देनोपादानकारणं परिगृह्यते; न तु निमित्तकारणम्, सुखदुःखादीनां निमित्तकारणमेव कर्म, यथाऽन्नपानादयो विपादया वा सुखदुःखादीनां निमित्तकारणमस्ति । उपादानकारणं तु तेषामात्मैव सुखदुःखादीनां-मात्मधर्मत्वादिति नास्ति दोषलेशोऽपि ।

(४) जीवकर्मणोः सम्बन्धः ।

ननु कर्म मूर्तमस्तीत्युक्तं परन्तु मूर्तस्य कर्मणोऽमूर्तेन जीवेन सह कथं संयोगलक्षणः सम्बन्धः? इति चेन्नैवम्, यथा मूर्तस्य घटस्यामूर्तेन गगनेन संयोगलक्षणः सम्बन्धस्तथाऽत्रापि जीवकर्मणोः सम्बन्धोऽस्तीति । उक्तञ्च—

सकती । और एक ही कर्म मूर्त भी हो और अमूर्त भी हो, यह कैसे हो सकता है? ये दोनों धर्म विरोधी हैं, एक जगह नहीं रह सकते ।

समाधान—यहाँ कारण-शब्द से उपादान कारण ग्रहण किया गया है, निमित्त कारण नहीं । कर्म सुख-दुःख के प्रति निमित्त कारण ही है, जैसे अन्न, पान, विष आदि सुख-दुःख के निमित्त कारण हैं । सुख दुःख का उपादान कारण तो आत्मा ही है, क्यों कि वे आत्मा के धर्म हैं, अतः यहाँ दोष का लेश भी नहीं है ।

(४) जीव और कर्म का सम्बन्ध—

शङ्का—आपने कर्म को मूर्त सिद्ध किया, मगर मूर्त कर्म का अमूर्त जीव के साथ सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता है? ।

समाधान—ऐसा न कहिए । जैसे मूर्त घट का अमूर्त आकाश के साथ संयोग-सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव और कर्म का भी सम्बन्ध है । कहा भी है :—

कर्म मूर्तं पणुं होय अने अमूर्तं पणुं होय, ये देवी रीते होई शके? आ अन्ने धर्म विशेषी छे तेथी ओक लग्याये रही शकता नथी.

समाधान—अर्हि कारण—शुद्धी उपादान कारण अर्हणुं करवाभां आवे छे, निमित्त कारण नहि. कर्म, सुख-दुःख यवाभां निमित्त कारणल छे, जेवी रीते अन्न, पान, विष आदि सुख-दुःखना निमित्त कारण छे, परन्तु सुख-दुःखनुं उपादान कारण तो आत्मानं छे, कारण छे ते आत्मानो धर्म छे तेथी तेभां लेश पणुं होय नथी.

(४) एव अने कर्मनो सम्बन्ध—

शंका—आपे कर्मने 'मूर्त' छे ओम सिद्ध कथुं तो पछी मूर्त कर्मनो अमूर्त एवनी साथे सम्बन्ध केवी रीते होई शके छे?

समाधान—आ प्रभाणुं नहि कछो? जेम मूर्त घटनो अमूर्त आकाशनी साथे संयोगसम्बन्ध छे, ते प्रभाणुं एव अने कर्मनो पणुं सम्बन्ध छे. कछुं पणुं छे:—

(૩) કર્મણો મૂર્તત્વમ્—

નન્વતીન્દ્રિયસ્ય કાર્મણશરીરસ્ય મૂર્તત્વે કિં માનમ્ ? અત્રોચ્યતે—

શરીરાદિકાર્યદર્શનાત્ત્ત્કારણમૂત્તં કર્મ સિઘ્યતિ ચેત્ તર્હિં કાર્યાનુરૂપમેવ કારણં ભવિતુમર્હતીતિ શરીરાદિકાર્યાણાં મૂર્તત્વાત્ત્ત્કારણં કર્માપિ મૂર્તમેવ । યથા મૂર્તસ્ય ઘટાદિકાર્યસ્ય કારણં પરમાણુપુદ્ગલાસ્તે મૂર્તા એવ સન્તિ । યચ્ચ પુનરમૂર્ત કાર્યં તસ્ય કારણમપિ—અમૂર્તમ્ , યથા જ્ઞાનસ્યાત્મેતિ ।

નન્તુ સુખદુઃસ્વાદયોઽપિ કર્મણઃ કાર્યં તર્હિં તેપામમૂર્તત્વાત્ કર્મણોઽ મૂર્તત્વમપિ પ્રાપ્નોતિ, નહિ મૂર્તાદમૂર્તોત્પત્તિઃ સંભવતિ, યથા પુદ્ગલાત્ જ્ઞાનપર્યાયઃ,

(૩) કર્મ કા મૂર્તપન—

શઙ્કા—અતીન્દ્રિય કાર્મણ શરીર કે મૂર્ત હોને મેં કયા પ્રમાણ હૈ ?

સમાધાન—શરીર આદિ કાર્યોં કે દેખને સે અનેકે કારણમૂત્ત કર્મ કી સિદ્ધિ હોતી હૈ, ઓર કારણ, કાર્ય કે અનુરૂપ હી હોતા હૈ, અત્ એવ જવ શરીર આદિ કાર્ય મૂર્ત હૈં તેો અનેકા કારણ કર્મ મી મૂર્ત હી હોના ચાહિયૈ । જૈસે મૂર્ત ઘટ આદિ કાર્યોં કે કારણમૂત્ત પુદ્ગલ પરમાણુ મી મૂર્ત હી હૈં, જો કાર્ય અમૂર્ત હોતા હૈ, ઉસકા કારણ મી અમૂર્ત હી હોતા હૈ; જૈસે જ્ઞાન કા કારણ આત્મા ।

શઙ્કા—સુખ ઓર દુઃખ આદિ કા કારણ મી કર્મ હૈ, ઓર સુખ દુઃખ આદિ અમૂર્ત હૈં; અત્: અનેકા કારણ કર્મ અમૂર્ત મી હોના ચાહિયૈ । મૂર્ત સે અમૂર્ત કી ઉત્પત્તિ નહીં હો સકતી, જૈસે પુદ્ગલ સે જ્ઞાનપર્યાય કી ઉત્પત્તિ નહીં હો

(૩) કર્મણું મૂર્તપણું—

શઙ્કા—અતીન્દ્રિય કાર્મણ શરીરમાં મૂર્તપણું હોવામાં શું પ્રમાણ છે ?

સમાધાન—શરીર આદિ કાર્યોના દેખવાથી તેના કારણમૂત્ત કર્મની સિદ્ધિ થાય છે, અને કારણ, કાર્યના અનુરૂપજ હોય છે. એ કારણથી ન્યાયે શરીર આદિ કાર્ય મૂર્ત છે, તેા તેનું કારણ કર્મ પણ મૂર્તજ હોવું જોઈએ. જેવી રીતે મૂર્ત ઘટ આદિ કાર્યોના કારણમૂત્ત પુદ્ગલપરમાણુ પણ મૂર્ત છે. જે કાર્ય અમૂર્ત હોય છે તેનું કારણ પણ અમૂર્ત જ હોય છે, જેમકે જ્ઞાનનું કારણ આત્મા.

શઙ્કા—સુખ અને દુઃખ આદિનું કારણ કર્મ છે, અને સુખ દુઃખ આદિ અમૂર્ત છે, તેથી તેનું કારણ કર્મ પણ અમૂર્તજ હોવું જોઈએ. મૂર્તથી અમૂર્તની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી; જેવી રીતે પુદ્ગલથી જ્ઞાનપર્યાયની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી. અને એવજ

तयोरप्यमूर्तेन जीवेन कथं सम्बन्धः ? , यदि कथञ्चित् सम्बन्धस्तर्हि कर्मणोऽपि जीवेन सह सम्बन्धः कुतो न स्यात् । यद्यमूर्त्तौ धर्माधर्मौ तर्हि बाह्येन स्थूल-शरीरेण मूर्तेन सह तयोः कथं सम्बन्धः ? तवमते मुर्तामूर्तयोः सम्बन्धासंभवात् । यद्यमूर्तयोरपि धर्माधर्मयोर्बाह्यशरीरेण मूर्तेन सह सम्बन्धोऽङ्गीक्रियते तर्हि जीवेन सह कर्मणः सम्बन्धे कथं दोषः ? ।

नन्वमूर्तस्य जीवस्य मूर्तेन कर्मणा कथं सुखदुःखाद्यनुग्रहोपघातौ स्याताम्, न ह्यमूर्तस्याकाशस्य मूर्तैःस्लकचन्दनाग्निज्वालादिभिरनुग्रहोपघातौ जायेते ? ।

अगर वे मूर्त हैं तो अमूर्त जीव के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हुआ ?, अगर किसी प्रकार उनका सम्बन्ध हो गया तो कर्म का सम्बन्ध क्यों नहीं हो सकता ? । अगर धर्म अधर्म अमूर्त हैं तो बाह्य स्थूल और मूर्त शरीर के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हो गया ?, आपके मत से मूर्त और अमूर्त का तो सम्बन्ध हो नहीं सकता । अगर अमूर्त धर्म अधर्म का मूर्त शरीर के साथ सम्बन्ध होना स्वीकार करते हो तो जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध मानने में क्या दोष है ? ।

शङ्का—अमूर्त जीव का मूर्त कर्म के द्वारा सुख दुःख आदिरूप अनुग्रह और उपघात कैसे हो सकता है, मूर्त माला, चन्दन, अग्नि, ज्वाला आदि से अमूर्त आकाश का अनुग्रह और उपघात नहीं होता ?

अथवा डोर्ध प्रकाशे तेनो सम्बन्ध थर्ध गथे तो कर्मनो सम्बन्ध शा भाटे नडि थर्ध शके ? अगर धर्म अधर्म अमूर्त छे तो बाह्य स्थूल अने मूर्त शरीरनी साथे तेनो सम्बन्ध केवी रीते थर्ध गथे ? आपना मत प्रभाण्णे तो मूर्त अने अमूर्तनो सम्बन्ध-न डोर्ध शके नडी. परन्तु जे अमूर्त धर्म-अधर्मनो मूर्त शरीरनी साथे सम्बन्ध थवे ते स्वीकार करता छे तो एवनी साथे कर्मनो सम्बन्ध मानवामां दोष शु छे ?

शङ्का—अमूर्त एवने, मूर्त कर्मद्वारा सुख-दुःख आदिद्वय अनुग्रह अने उपघात कर्ध रीते थर्ध शके ? मूर्त भाणा चन्दन, अग्नि, न्वाणा आदिथी अमूर्त आकाशनो अनुग्रह अने उपघात थर्ध शकते नथी.

“યથા હરૂપમાકાશં, રુપિદ્રવ્યાદિભાજનમ્ ।

તથા હરૂપ આત્માપિ, રુપિકર્માદિભાજનમ્ ॥૧૧॥”

યથા વા - અમૂર્તયાઽઽકુચ્ચનાદિક્રિયયા સહ મૂર્તદ્રવ્યસ્યાઽઽગુલ્યાદેઃ
સમ્બન્ધસ્તથાઽત્રાપિ જીવકર્મણોઃ સમ્બન્ધ ઇતિ ચોધ્યમ્ ।

યદ્વા-યથા વાહ્યશરીરમિદં જીવેન સહ સમ્બન્ધં પ્રત્યક્ષદૃષ્ટમેવાસ્તિ,
એવં ભવાન્તરં ગચ્છતા જીવેન સહ કાર્મણશરીરં સમ્બન્ધમેવેતિ ।

યદિ વાહ્યશરીરસ્ય જીવેન સહ સમ્બન્ધે ધર્માધર્મયોઃ કારણતાઽસ્તી-
ત્યુચ્યતે તર્હિ તાવપિ ધર્માધર્મો મૂર્તૌ સ્યાતામમૂર્તૌ વા ? । યદિ મૂર્તૌ તર્હિ

“જેસે અરૂપી આકાશ રૂપી દ્રવ્ય આદિ કા આધાર હૈ, ઉસી પ્રકાર અરૂપી આત્મા
કર્મો કા આધાર હૈ” ॥ ૧ ॥

અથવા જેસે-આકુચ્ચન (સિકોડના) આદિ અમૂર્ત ક્રિયા કે સાથ અંગુલી આદિ
મૂર્ત દ્રવ્ય કા સમ્બન્ધ હોતા હૈ, ઉસી પ્રકાર યહાં જીવ ઓર કર્મ કા સમ્બન્ધ સમજ
લેના ચાહિયે ।

અથવા જેસે વાહ્ય શરીરકા જીવ કે સાથ સમ્બન્ધ હૈ, વહ પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ હૈ, ઉસી
પ્રકાર ભવાન્તર મેં જાતે જીવ કે સાથ કાર્મણ શરીર કા સમ્બન્ધ હૈ ।

અગર કહા જાય કિ જીવ કે સાથ વાહ્ય શરીર કા સમ્બન્ધ હોને મેં ધર્મ
ઓર અધર્મ કારણ હૈ તો પ્રશ્ન સ્વડા હોતા હૈ કિ-ધર્મ અધર્મ મૂર્ત હૈં યા અમૂર્ત હૈ ?

“જેવી રીતે અરૂપી આકાશ, રૂપી દ્રવ્ય આદિનો આધાર છે. તે પ્રમાણે અરૂપી
આત્મા, રૂપી કર્મોનો આધાર છે.” ॥૧૧॥

અથવા-જેવી રીતે-સંકેતચક્ર આદિ અમૂર્ત ક્રિયાની સાથે આંગલી આદિ મૂર્ત
દ્રવ્યનો સમ્બન્ધ હોય છે તે પ્રમાણે જીવ અને કર્મનો સમ્બન્ધ સમજ લેવો જોઈએ.

અથવા જેવી રીતે આ બાહ્ય શરીર જીવની સાથે સંબંધ છે. તે પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ
છે. તે પ્રમાણે ભાવાન્તરમાં જતા જીવની સાથે કાર્મણ શરીરનો સંબંધ છે.

અથવા તો એમ કહેવામાં આવે કે જીવની સાથે બાહ્ય શરીરનો સમ્બન્ધ હોવામાં
ધર્મ અને અધર્મ કારણ છે. તો પ્રશ્ન ઉભો થાય છે. કે-ધર્મ અધર્મ મૂર્ત છે કે અમૂર્ત
છે ? જો તે મૂર્ત છે એમ કહેા તો અમૂર્ત જીવની સાથે તેનો સંબંધ કેવી રીતે થયો ?

(५) कर्मणोऽनादित्वम्—

अनादिः कर्मणः प्रवाहः । शरीरकर्मणोः परस्परं कार्यकारण भावात्, बीजाङ्कुरवत् । यथा बीजादङ्कुरो जायते, अङ्कुरादपि क्रमेण बीजमुपजायते । एवं शरीरात् कर्म जायते कर्मतस्तु शरीरमित्येवं पुनः पुनरपि परस्परमनादिकालतः कार्यकारणभावसद्भावोऽस्ति । इह ययोः परस्परं कार्यकारणभावस्तयोरनादि प्रवाहो दृश्यते यथा बीजाङ्कुरयोः, यथा वा कुकुटाण्डयोः, तथा शरीरकर्मणो- रनादिप्रवाह इति ।

(५) कर्मों का अनादिपन-

कर्मों की परस्परा अनादिकालीन है, क्योंकि शरीर और कर्म का परस्पर कार्य- कारणभाव है, जैसे बीज और अंकुर का । तात्पर्य है कि जैसे बीज से अंकुर उत्पन्न होता है, और अंकुर से क्रमशः बीज की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार शरीर से कर्म और कर्म से शरीर उत्पन्न होता है । यह पारस्परिक कार्यकारणभाव अनादि काल से चञ्च आता है । जिन दो पदार्थों में परस्पर कार्य-कारणभाव होता है उनका प्रवाह अनादिकालीन देखा जाता है, जैसे पूर्वोक्त बीज और अंकुर का, अथवा मुर्गी और अण्डे का । इस प्रकार शरीर और कर्म का प्रवाह अनादिकालीन है ।

(५) કર્મોનું અનાદિપણું—

કર્મોની પરંપરા અનાદિકાલીન છે. કારણ કે-શરીર અને કર્મોનો પરસ્પર કાર્ય- કારણભાવ છે, જેવી રીતે બીજ અને અંકુરનો. તાત્પર્ય એ છે કે-જેવી રીતે બીજથી અંકુર ઉત્પન્ન થાય છે, અને અંકુરથી ક્રમશઃ (કર્મે-કર્મે) બીજની ઉત્પત્તિ થાય છે. તે પ્રમાણે શરીરથી કર્મ અને કર્મથી શરીર ઉત્પન્ન થાય છે. આ પરસ્પરનો કાર્ય- કારણ ભાવ અનાદિ કાલથી આવ્યો આવે છે. જે બે પદાર્થોમાં પરસ્પર કાર્ય-કારણભાવ હોય છે તેનો પ્રવાહ અનાદિકાલીન બેવામાં આવે છે. જેવી રીતે પૂર્વ કહેલ બીજ અને અંકુરનો, અથવા મરઘી અને ઈંડાનો, એ પ્રમાણે શરીર અને કર્મનો પ્રવાહ અનાદિકાલીન છે.

શૃણુ-યથામદિરાપાનૈર્વિપપિપીલિકાદિર્મિર્મક્ષિતૈરમૂર્તાનામપિષ્ટૃતિસ્મૃતિ-મેઘા-
 દીનામાત્મગુણાનામુપઘાતો જાયતે, “મેઘાં પિપીલિકા હન્તિ” ઇત્યાદિ-
 વચનાત્, તથા પયઃશર્કરાધૃતાદિમિથ્યાનુગ્રહઃ ક્રિયતે તથૈવામૂર્તસ્યાત્મનો મૃત્તેન
 કર્મણાન્નુગ્રહોપઘાતો જાયતે । ઇદં ચ જીવસ્યામૂર્તત્વમદ્ગીકૃત્ય સમાહિતમ્,
 ન હ્યેકાન્તરૂપેણામૂર્તેવાત્મા કિન્તુ વહ્નયયોગોલકચત્ ક્ષીરનીરચચ કર્મણશરીરા-
 મેદરૂપતાં પ્રાપ્તઃ કથચ્ચિન્મૂર્તોઽપીતિ । તસ્ય મૃત્તેન કર્મણાન્નુગ્રહોપઘાતો ભવત
 એવ । આકાશસ્ય તુ તૌ ન ભવતઃ, તસ્યેકાન્તરૂપેણામૂર્તત્વાદચેતનત્વાચ ।

સમાધાન-સુનિયે ઐસે-મદિરા કા પાન કરને સે, વિપમક્ષણ સે ઓર કોડી
 આદિ કે સ્વાયે જાને સે અમૂર્ત ધૈર્ય, સ્મૃતિ ઓર બુદ્ધિ આદિ આત્મિક ગુણો કા ઉપઘાત
 હોતાં હૈ, “મેઘાં પિપીલિકા હન્તિ” ઇત્યાદિ વચન સે, તથા દૂધ, શર્કર ઓર ઘૃત
 આદિ સે અનુગ્રહ હોતા હૈ, ડસી પ્રકાર અમૂર્ત આત્મા કા મૂર્ત કર્મ દ્વારા અનુગ્રહ ઓર
 ઉપઘાત હોતા હૈ । જીવ કો અમૂર્ત અહ્નોકાર કરકે યહ સમાધાન ક્રિયા હૈ, કિન્તુ જીવ
 એકાન્તરૂપ સે અમૂર્ત નહીં હૈ । ક્ષીર-નીર કો તરહ અથવા અગ્નિ ઓર લોહે કે ગોળે કો
 તરહ આત્મા કર્મણશરીર સે કથચ્ચિત્ અમિન્ન હૈ, એત એવ મૂર્ત મી હૈ । કર્મ-
 લિપ્ત આત્મા મૂર્ત હોને કે કારણ મૂર્તે કર્મો સે ડસકા અનુગ્રહ ઓર ઉપઘાત હોતા હી હૈ ।
 હાં ! આકાશ કા અનુગ્રહ ઓર ઉપઘાત નહીં હોતા, કયોં ક્રિ વહ એકાન્તતઃ અમૂર્ત ઓર
 અચેતન હૈ ।

સમાધાન-સાંભળો ! જેમ મદિરાનું પાન કરવાથી, વિપમક્ષણથી, અથવા કોડી
 આદિ પેટમાં ખાઈ જવામાં આવવાથી અમૂર્ત ધૈર્ય, અને બુદ્ધિ આદિ આધ્યાત્મિક
 ગુણોનો ઉપઘાત થાય છે. “મેઘાં પિપીલિકા હન્તિ” ઇત્યાદિ વચનોથી, તથા દૂધ,
 શર્કર અને ઘી આદિથી અનુગ્રહ થાય છે, તે પ્રમાણે અમૂર્ત આત્માનો મૂર્ત કર્મ
 અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાય છે.

જીવને અમૂર્ત અંગીકાર કરીને આ સમાધાન કર્યું છે, પરંતુ જીવ એકાન્તથી
 અમૂર્ત નથી. ક્ષીર-નીરની પ્રમાણે અથવા અગ્નિ અને લોહના ગોળાની પ્રાકૃક
 આત્મા કર્મણશરીરથી કથચ્ચિત્ અમિન્ન છે. આ કારણથી મૂર્ત પણ છે. કર્મલિપ્ત
 આત્મા મૂર્ત હોવાના કારણે મૂર્ત કર્મોથી તેનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાયજ છે.
 હાં ! આકાશનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થતો નથી, કારણ કે તે એકાન્તથી અમૂર્ત
 અને અચેતન છે.

अथ सर्वप्रमातॄणां यदप्रत्यक्षं तन्नास्तीत्यपि न संभवति । यतः सर्व-
मतीन्द्रियं वस्तु सर्वप्रमातॄणां प्रत्यक्षं न भवति, तादृशज्ञानशक्तेरभावात् । अस्मा-
मिस्तु समस्तभावावभासनभास्करः सर्वज्ञः स्वीक्रियते ।

विचाराऽक्षमत्वमपि न युक्तं, कर्कश(दुर्धर्ष)वर्कैस्तर्क्यमाणस्य कर्मणः
सद्भावसंभवात् ।

साधकाभावादपि नादृष्टाभावः, पूर्वोक्तागमानुमानयोस्तत्साधकयोः
सत्त्वात् । यथा च-शुभः पुण्यस्य, अशुभः पापस्येत्यागमः । शुभयोगः पुण्यस्य,
अशुभयोगः पापस्य कारणमित्यर्थः ।

अगर कहा जाय कि एक-दो के अप्रत्यक्ष होने से किसीका अभाव नहीं होता वरन्
जो वस्तु सभी के अप्रत्यक्ष है, उसका अभाव होता है । यह कथन भी ठीक नहीं है,
क्यों कि सब अतीन्द्रिय वस्तुएँ सब प्रमाताओं के प्रत्यक्ष नहीं होती, इसका कारण विशिष्ट
ज्ञानशक्ति का अभाव है । मगर हम लोग तो समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने में सूर्य के
समान सर्वज्ञ स्वीकार करते हैं ।

अदृष्ट, विचार को सहन नहीं करता अर्थात् विचारने के योग्य नहीं है, यह कथन भी
युक्त नहीं, कठोर तर्कों द्वारा विचार करने से कर्म का अस्तित्व सिद्ध हो ही जाता है ।

साधक प्रमाणों का अभाव होने से कर्म का अभाव बतलाना भी ठीक नहीं,
क्यों कि पूर्वोक्त आगम और अनुमान प्रमाण उसका सद्भाव सिद्ध करते हैं ।
'शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य' यह आगमप्रमाण है । अर्थात् शुभयोग पुण्य का
और अशुभ योग पाप का कारण होता है ।

अथवा कहेगें कि अज्ञेय-अप्रत्यक्ष होवाथी कौनो अभाव थतो नथी.
परन्तु जे वस्तु सर्वने अप्रत्यक्ष छे तेनो अभाव होय छे. जेभ कहेवुं ते पणु डीक
नथी, कारणु के सर्व अतीन्द्रिय वस्तुजो प्रमाताजोने प्रत्यक्ष थती नथी. तेनुं कारणु
विशिष्ट ज्ञानशक्तिनो अभाव छे. अथवा अजे तो समस्त पदार्थोने प्रकाशित करवाभां
सूर्यना समान सर्वज्ञनो स्वीकार करीजे छीजे.

अदृष्ट, विचारने सहन करता नथी अर्थात् विचारवा योग्य नथी, जेभ कहेवुं
ते पणु युक्त नथी, कठिन तर्को द्वारा विचार करवाथी कर्मनुं अस्तित्व सिद्ध थर्थ
न जाय छे.

साधक प्रमाणोने अभाव होवाथी कर्मोने अभाव बताववो ते पणु डीक नथी;
कारणु के पूर्वोक्त आगम अने अनुमान प्रमाण तेनो सद्भाव (अस्तित्व-होवापणु)
सिद्ध करे छे. शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य' जे आगमप्राणु छे, अर्थात् शुभ योग
पुण्यनुं अशुभ योग पापनुं कारणु होय छे.

(६) अकर्मवादमतनिराकरणम्—

यः पुनरदृष्टं कर्म नोस्तीति मन्यते स च नास्तिकः प्रष्टव्यः—अयम-
दृष्टामावः किम् अप्रत्यक्षत्वात्, विचाराक्षमत्वात्, साधकामावाद् वा मन्यसे ?

अप्रत्यक्षत्वान्नादृष्टामावः सिध्यति, यतस्तत्र यदप्रत्यक्षं तन्नास्तीति
स्वीकारे त्वदीयपितामहादेरप्यभावः स्यात्, तस्य त्वज्जन्मतः पूर्वमेवातीतत्वेन
तवाप्रत्यक्षत्वात्। तथा च भवन्मते पितामहादेरतीतकालिकसत्ताया अभावेन
भवतोऽपि सत्ता कथमुपपद्येत ?।

(६) अकर्मवादी के मत का निराकरण—

जो नास्तिक यह मानता है कि—अदृष्ट कर्म का सद्भाव नहीं है,
उससे पूछना चाहिए कि—तुम अदृष्ट के अभाव को क्यों मानते हो ? प्रत्यक्ष न होने से,
विचार को सहन न करने से अर्थात् विचारके योग्य नहीं होने से, या साधक प्रमाणों
का अभाव होने से अदृष्ट का अभाव कहते हो ?

प्रत्यक्ष न होने मात्र से अदृष्ट का अभाव सिद्ध नहीं हो सकता। जो
तुम्हें प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता वह होता ही नहीं है, ऐसा मान लिया जाय तो
तुम्हारे पितामह आदि का भी अभाव हो जायगा। वह तुम्हारे जन्म से पहले
ही गुजर चुके हैं, अतः तुम्हें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दे सकते। ऐसी अवस्था में
तुम्हारे पितामह आदि की भूतकालीन सत्ता का अभाव होजाने के कारण तुम्हारी सत्ता भी
खतरे में पड़ जायगी।

(६) अकर्मवादीना मततुः निराकरणम्—

जे नास्तिक जेवुं माने छे के—अदृष्ट कर्मना सद्भाव (अस्तित्व) नथी, तेमने
पूछवुं जेधं जे के—तेमने अदृष्टनो अभाव शा भाटे मानो छो ? प्रत्यक्ष नही होवाथी, विचारने
सहन नही करवाथी अर्थात्—विचारवायोग्य नहि होवाथी, अथवा साधक प्रमाणोना
अभाव होवाथी अदृष्टनो अभाव कडो छो ?

प्रत्यक्ष नही होवा मात्रथी अदृष्टनो अभाव सिद्ध थर्द शकतो नथी, जे वस्तु
तमने प्रत्यक्ष जेवामां न आवे ते वस्तु होयल नही, जे प्रमाणे जे भानी देखी
तो तमारा पितामह (आयने आय) आदिनो अभाव थर्द जये, कारणे के ते तमारा
जन्मता पडोवाय गुजरी गया छे तेथी तमने ते प्रत्यक्ष जेवामां आवता नथी,
जेवी अवस्थां तमारा पितामह आदिनी भूतकालीन सत्तानो अभाव थर्द जवाथी
तमारी सत्ता पछु भतरामां (भयमां) पडी जये.

નીરવત્ સમ્બન્ધો વન્ધઃ । યદ્વા-વધ્યતે=અસ્વાતન્વ્યમાપદ્યતે આત્મા યેન, સંવન્ધઃ । જ્ઞાનાવરણીયાદ્યષ્ટવિધકર્મપુદ્ગલાનામવસ્થાનં હિ જીવસ્યાઽનન્તજ્ઞાનદર્શનસુખવીર્ય-રૂપસામર્થ્યપ્રતિવન્ધકતયા સ્વાતન્વ્યવિઘાતકં ભવતિ ।

યદ્યપિ નિશ્ચયનયેન રાગદ્વેપરહિતોઽયમાત્મા, તથાપ્યસૌ વ્યવહારનયેન રાગદ્વેપરૂપભાવકર્મણાં જ્ઞાનાવરણીયાદિદ્રવ્યકર્મણાં ચ કર્તા ભવતિ । આત્મસંલગ્ન-શરીરાવગાહનક્ષેત્રાવસ્થિતકર્મવર્ગણાયોગ્યપુદ્ગલસ્કન્ધાઃ સ્વકીયોપાદાનકારણશક્ત્યૈવ કર્મરૂપામવસ્થાં પ્રાપ્નુવન્તિ । તે ચ કર્મપુદ્ગલા આત્મપ્રદેશૈઃ સહ પરસ્પર-મેકક્ષેત્રાવગાહરૂપં વન્ધં ક્ષીરનીરવત્ પ્રાપ્નોતિ । યથા સમુદ્દીયમાનાનિ રજાંસિ

ઔર પાની કી तरह સમ્બન્ધ હો જાના વન્ધ હૈ । આત્મા-જીવ જિસ કે દ્વારા બાંધા જાય=પરાધીન ક્રિયા જાય, વહ વન્ધ હૈ । જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મો કી સ્થિતિ, જીવ કે અનન્ત જ્ઞાન, દર્શન, સુખ ઔર વીર્યરૂપ સામર્થ્ય મેં વાધક હોને કે કારણ સ્વતન્ત્રતા કા ઘાત કરને વાલી હૈ ।

યદ્યપિ નિશ્ચયનય સે આત્મા રાગ-દ્વેપ સે રહિત હૈ, ફિન્તુ વ્યવહારનય સે રાગ-દ્વેપરૂપ ભાવકર્મો કા, તથા જ્ઞાનાવરણ આદિ દ્રવ્યકર્મો કા કર્તા હૈ । જિસ આકાશ-ક્ષેત્ર મેં આત્મા સે સંબદ્ધ શરીર હૈ, ઇસી આકાશક્ષેત્ર મેં સ્થિત કર્મવર્ગણા કે યોગ્ય પુદ્ગલસ્કન્ધ, અપની ઉપાદાનકારણ-શક્તિ સે હી કર્મરૂપ અવસ્થા કો પ્રાપ્ત કરતે હૈં । વે કર્મપુદ્ગલ આત્મપ્રદેશો કે સાથ પરસ્પર એકક્ષેત્રાવગાહરૂપ વન્ધ કો ક્ષીર-નીર કી નાઈ પ્રાપ્ત હોતે હૈં । જૈસે-ઉડતી હુઈ રજ, તેલ સે ચિકને ઘડે આદિ પર ચિપક જાતી હૈ,

પાણીની પ્રમાણે સમ્બન્ધ થઈ જવો તે બંધ છે. આત્મા-જીવ જેના દ્વારા બંધાઈ જાય-પરાધીન થઈ જાય. તે બંધ છે. જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોની સ્થિતિ, જીવના અનન્ત જ્ઞાન, દર્શન સુખ અને વીર્યરૂપ સામર્થ્યમાં વાધક હોવાના કારણે સ્વતન્ત્રતાનો ઘાત કરવા વાળી છે.

જે કે નિશ્ચયનયથી આત્મા રાગ-દ્વેપથી રહિત છે, પરન્તુ વ્યવહારનયથી રાગ-દ્વેપરૂપ ભાવકર્મોનો, તથા જ્ઞાનાવરણ આદિ દ્રવ્યકર્મોનો કર્તા છે. જે આકાશક્ષેત્રમાં આત્માથી સંબદ્ધ શરીર છે, તે આકાશક્ષેત્રમાં સ્થિત (રહેલા) કર્મ-વર્ગણાના યોગ્ય પુદ્ગલસ્કન્ધ, પોતાની ઉપાદાન કારણ-શક્તિથી જ કર્મરૂપ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે, તે કર્મપુદ્ગલ આત્મપ્રદેશોની સાથે પરસ્પર એકક્ષેત્રાવગાહરૂપ બંધને ક્ષીર-નીરના ન્યાય પ્રમાણે પ્રાપ્ત થાય છે; જેવી રીતે ઉડતી રજ. તેલના ચિકણા ઘડા આદિને

कार्यविशेषेण कारणस्यानुमानं भवति यथा कार्यविशेषः सकारणकः, कार्यत्वात्, कुम्भवत् । उक्तञ्च—

“तुल्याकृत्योश्च यमयो,—दृश्यते महदन्तरम् ।

चारित्र-वीर्य-विज्ञान,—वैराग्या-रोग्य-संपदाम्” ॥१॥ इति ।

अदृष्टरूपकारणमन्तरेणेदं महदन्तरं न संभवति, तस्मादवश्यं स्वी-
करणीयं कर्म ।

(७) बन्धस्वरूपनिरूपणम्—

अत्र बन्धशब्देन भावबन्धो गृह्यते, न तु निगडादिबन्धरूपो द्रव्यबन्धः ।
बन्धनं बन्धः । कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धानामात्मप्रदेशानां च परस्परं क्षीर-

कार्यविशेषे से कारण का अनुमान होता है । जैसे—इस कार्य का कोई कारण है,
क्यों कि कार्य है, जैसे—घट, कहा भी है—

“समान आकृति वाले यमल (जोड़ली सन्तान) में चारित्र, वीर्य, विज्ञान, वैराग्य,
और सम्पत्ति का महान् अन्तर दिखाई देता है” ॥ १ ॥

अदृष्टरूप कारण के बिना यह महान् अन्तर नहीं हो सकता, अत एव कर्म अवश्य
स्वीकार करना चाहिए ।

(७) बन्ध के स्वरूपका निरूपणम्—

बन्ध-शब्द से यहाँ भावबन्ध का ग्रहण करना चाहिए । वेडी आदि द्रव्यबन्धका
नहीं । कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्धों का और आत्मप्रदेशों का आपस में दूध

कार्य-विशेषशी कारणतुं अनुमान थाय छे जेवी रीते आ कार्यतुं केअं कारणु
छे, कारणु के कार्य छे, जेवी रीते घट. कहुं पणु छे—

‘समान आकृति वाणां यमल-जोड़ली सन्तानमां चारित्र, वीर्य, विज्ञान, वैराग्य,
आरोग्य अने सम्पत्तिनुं महान् अन्तर जेवामां आवे छे” ॥१॥

अदृष्टरूप कारण बिना आ महान् अन्त डोअं शके नहि, जे कारणुशी कर्मना
अवश्य स्वीकार करी लेवे जेअं जे.

(७) बंधस्वरूपतुं निरूपणम्—

बंध-शब्दशी अहि लाव-बंधतुं ग्रहण करतुं जेअं जे, वेडी आदि द्रव्यबंधतुं
नहि, कर्मवर्गणाने योग्य पुद्गलस्कन्धाने अने आत्म-प्रदेशाने परस्पर दूध अने

वीर्यगुणपरिणामात्मिका शुभाशुभक्रियां भवति । इयं क्रिया चात्मनः प्रदेशानां परिस्पन्दः, कम्पनं, व्यापारो, योग इति चोच्यते । इयमेव मनोवाक्काययोग इति च कथ्यते । इयमात्मनो ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मसम्बन्धरूपे बन्धे हेतुश्च ।

आत्मनः शुभाशुभक्रियायां सत्यामात्मसंलग्नानादिकार्षणशरीरेणात्माऽनन्तानन्तप्रदेशिस्कन्धरूपांश्चतुःस्पशन्ति कर्मयोग्यपुद्गलानादाय कार्षणशरीरितया परिणमयति । आत्मसंलग्नं यदनादि कार्षणशरीरं, तद्धि आत्मैक्यात् कर्मयोग्यपुद्गलानां ग्रहणे स्वाधीनकरणे स्वस्मिन्नेकत्वपरिणामकरणे च समर्थं भवति । अनादिकार्षणशरीरसम्बन्धादेव संसारी जीवो मूर्तोऽस्ति । मूर्तत्वादेव च तस्य पौद्गलिककर्मसम्बन्धो भवति ।

वीर्यगुण के परिणमनरूप शुभा-शुभ क्रिया होती है । इस क्रिया को आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन, कम्पन, व्यापार या योग कहते हैं । यही मन, वचन और काय का योग कहलाता है । यही क्रिया ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के बन्ध का कारण है ।

आत्मा की जब शुभ या अशुभ क्रिया होती है तो आत्मा के साथ पहले से बंधे हुए कार्षणशरीर के द्वारा आत्मा, अनन्तानन्तप्रदेशी-स्कन्धरूप; चौस्पर्शी कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण कर के कार्षणशरीर के रूप में परिणत करता है । आत्मा से सम्बद्ध अनादिकालीन कार्षणशरीर आत्मा के साथ एकमेक होने के कारण कर्मयोग्यपुद्गलों को ग्रहण करने में, अपने अधीन करने में और अपने साथ एकमेक कालेने में समर्थ होता है । अनादिकालीन कार्षणशरीर के सम्बन्ध से ही संसारी जीव मूर्त है, और मूर्त होने के कारण ही उसका पौद्गलिक कर्मों के साथ सम्बन्ध होता है ।

वीर्यगुण परिणमनरूप शुभाशुभ क्रिया थाय छे. ते क्रियाने आत्माना प्रदेशानां परिस्पन्दन, कम्पन, व्यापार अथवा योग कडे छे. आत्म मन वचन अने कायाने योग कडेवाय छे. आ क्रिया ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोना बंधन कारण छे.

आत्माना न्यारे शुभ अथवा अशुभ क्रिया थाय छे तो आत्माना साथे पडेबाथी बांधेबा कार्षणशरीरद्वारा आत्मा अनन्तानन्तप्रदेशी-स्कन्धरूप, चौस्पर्शी कर्मयोग्य पुद्गलाने ग्रहण करीने कार्षणशरीरना रूपमां परिणत करे छे. आत्माथी संबद्ध अनादिकालीन कार्षणशरीर आत्माना साथे एकमेक होवाना कारणे कर्मयोग्य पुद्गलाने ग्रहण करवाना, पोताना आधीन करवाना अने पोतानी साथे एकमेक करी लेवानां समर्थ थाय छे. अनादिकालीन कार्षणशरीरना संबंधी न संसारी एव मूर्त होवाना कारणे न तेना पौद्गलिक कर्मोनी साथे सम्बन्ध थाय छे.

તૈલસ્નિગ્ધે ઘટાદૌ સંશ્લિષ્ટાનિ ભવન્તિ, તથા રાગદ્વેપરૂપતૈલસ્નિગ્ધમલિનાત્મ-
પ્રદેશેષુ કર્મવર્ગણાયોગ્યપુદ્ગલાઃ સ્વકીયોપાદાનશક્ત્યા જ્ઞાનાવરણોપાદિકર્મરૂપા-
મવસ્થાં પ્રાપ્ય સંશ્લિષ્ટા ભવન્તિ ।

પરમાણુરૂપા દ્વિપ્રદેશપ્રભૃતિસ્કન્ધરૂપાથ પુદ્ગલા ઔદારિક-વૈક્રિયા-
-હારક-તૈજસ-ભાષા-શ્વાસોચ્ચ્વાસ-મનઃ-કાર્મણ-ભેદાદૃષ્ટિધ્યાઃ । તત્ર કર્મ-
વર્ગણાપુદ્ગલા અપિ સમસ્તલોકં વ્યાપ્ય વર્તન્તે, યત્ર સંસારિણાં શરીરાણિ
સન્તિ, તત્રાપિ તદ્વહિશ્ચાપિ સર્વત્ર તે વર્તન્તે, તત્ર કર્મયોગ્યપુદ્ગલા આત્મના પરિ-
ગૃહીતાઃ કર્મરૂપેણ પરિણતા ભવન્તિ ।

રાગદ્વેપરિણત્યાઽઽર્ચીકૃતસ્યાત્મનો

મનોવાક્કાયરૂપકરણસાહાય્યેન

ઉસીપ્રકાર રાગ-દ્વેપરૂપી તેલ સે ચિકને મલિન આત્મપ્રદેશો મેં, કર્મવર્ગણા કે યોગ્ય
પુદ્ગલ, અપની-અપની ઉપાદાનશક્તિ સે જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ-રૂપ અવસ્થા કો પ્રાપ્ત કર કે
ચિપક જાતે હૈં ।

પરમાણુરૂપ ઔર દ્વિપ્રદેશી ગૌરહ સ્કન્ધરૂપ પુદ્ગલ ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક,
તૈજસ, ભાષા, શ્વાસોચ્ચ્વાસ, મન ઔર કાર્મણ કે ભેદ સે આઠ પ્રકાર કે હોતે હૈં । ઇન મેં
સે કાર્મણવર્ગણા કે પુદ્ગલ મી સમ્પૂર્ણ લોક મેં વ્યાપ્ત હૈં । જહાં સંસારી જીવોં કે શરીર હૈં,
વહાં મી હૈં, ઔર વાહર મી સર્વત્ર હૈં । યે કર્મયોગ્ય પુદ્ગલ આત્માદ્વારા જબ પ્રહણ ક્રિયે જાતે
હૈં તબ કર્મરૂપ મેં પરિણત હો જાતે હૈં ।

રાગ-દ્વેપરૂપ પરિણતિ સે યુક્ત આત્મા ક્રા, મન, વચન, કાય, કી સહાયતા સે

ચોંટી નય છે, તે પ્રમાણે રાગ-દ્વેષ રૂપી તેલથી ચિકણા અને મલિન આત્મપ્રદેશોમાં
કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલ પોત-પોતાની ઉપાદાનશક્તિથી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ-રૂપ
અવસ્થા પ્રાપ્ત કરીને ચોંટી નય છે.

પરમાણુરૂપ અને દ્વિપ્રદેશી વગેરે સ્કન્ધરૂપ પુદ્ગલ ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક,
તૈજસ, ભાષા, શ્વાસોચ્ચ્વાસ, મન અને કાર્મણના લેટથી આઠ પ્રકારના હોય છે. તેમાંથી
કાર્મણવર્ગણાના પુદ્ગલ પણ સમ્પૂર્ણ લોકમાં વ્યાપ્ત છે. ત્યાં સંસારી જીવોનાં શરીર
છે ત્યાં પણ છે અને બહાર સર્વત્ર પણ છે. તે કર્મયોગ્ય પુદ્ગલ આત્માદ્વારા
ન્યારે શ્રદ્ધણ કરવામાં આવે છે ત્યારે તે કર્મરૂપમાં પરિણત થઈ નય છે.

રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણતિયુક્ત આત્માની મન, વચન અને કાયની સહાયતાથી

रागादिरूपतैलाभ्यक्तस्यात्मनः कार्मणशरीरपरिणामो नवीनकर्मग्रहणे योग्यतां संपादयति । आत्मशरीरयोरैक्ये सति सम्यग्ज्ञानाभावरूपानामोगवीर्यतः कर्मबन्धो भवति । इत्थं कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां ज्ञानावरणीयादिकर्मतया परिणतानां सकपायस्यात्मनः सकलप्रदेशेषु लोलीभावो बन्ध इति बोध्यम् ।

(८) बन्धकारणनिरूपणम्—

बन्धस्य पञ्च साधारणकारणानि मिथ्यात्वाऽविरति-प्रमाद-कपाय-योग-मेदात् ।

तत्रातत्त्वे तच्चाध्यवसायरूपो विपरीतावबोधो मोहकर्मोदयजनित आत्मपरिणामो मिथ्यात्वम् । यद्वा—कुदेव—कुगुरु—कुधर्मेष्वभिरुचिरूपमतत्त्वार्थश्रद्धानं

उसी प्रकार राग—द्वेषरूपी तेल से युक्त आत्मा का कार्मणशरीररूप परिणाम नवीन कर्मों को ग्रहण करने में योग्य हो जाता है । आत्मा और शरीर के एकमेक होने पर सम्यग्ज्ञान के अभावरूप अनामोग वीर्य से कर्मबन्ध होता है । इस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मरूप में परिणत कार्मणवर्गणाओं के योग्य पुद्गलों का कपाययुक्त-आत्मा के समस्त प्रदेशों में एकमेक हो जाना बन्ध है ।

(९) बन्धके कारण—

बन्ध के साधारण कारण पांच हैं—(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कपाय, और (५) योग ।

अतत्त्व को तत्त्व समझनेरूप मोहनीयकर्मजन्य विपरीतज्ञानरूप आत्मपरिणाम को मिथ्यात्व कहते हैं, अथवा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म में रुचिरूप अतत्त्व का

परिष्णाम नवीन कर्मों अरुणु करवाभां येज्य थर्ध न्य छे. आत्मा अने शरीरना अेकमेक थवाथी सम्यग्ज्ञानता अलावइप अनालोग वीर्यथी कर्मबंध थाय छे.

अे प्रभावे ज्ञानावरण आदि कर्मरूपभां परिष्णत कार्मणवर्गणाना येज्य पुद्गलौतुं कपाययुक्त आत्माना समस्त प्रदेशोभां अेकमेक थर्ध न्युं ते बंध छे.

(८) बंधतुं कारण—

बंधना साधारण कारण पांच छे.—(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कपाय अने (५) योग.

अतत्त्वने तत्त्व समझना रूप मोहनीयकर्मजन्य, विपरीतज्ञानरूप आत्मपरिष्णामने मिथ्यात्व कहे छे. अथवा कुदेव कुगुरु, अने कुधर्मभां रुचिरूप अतत्त्वनी

यथा दीपक ऊष्मगुणयोगाद् वर्तिद्वारा तैलमादाय ज्वालारूपेण परिणम-
यति तथा रागद्वेषोष्मगुणसम्बन्धान्मनोवागादियोगवर्त्याऽऽत्मदीपः कर्मयोग्यपुद्गल-
स्कन्धतैलमादाय कर्मज्वालारूपेण परिणतं करोति । मनोवागादिरूपकरणसंयोगादा-
त्मनो वीर्यपरिणामो भवति, अतो मनोवागादिव्यापारो योगशब्देनोच्यते । यथा मृन्मय-
घटस्याग्निसंयोगाद् रक्तत्वादिपरिणतिर्घटस्यैव भवति तथा मनोवागादिसंयोगाद्
शुभाशुभक्रियारूपा वीर्यपरिणतिरात्मन एव भवति, न तु पुद्गलरूपमनोवागादेः ।

यथा च तैलाभ्यक्ते शरीरे जलादेँ वस्त्रे वा धूलिराश्लिष्टा भवति, तथा

जैसे—दीपक उष्मागुण के कारण बत्तीद्वारा तैल ग्रहण कर के ज्वाला के रूप में
परिणत करता है, उसी प्रकार राग—द्वेष रूप उष्मागुणके सम्बन्ध से मन, वचन आदि योगों
की बत्ती द्वारा आत्मरूपी दीपक कर्मयोग्यपुद्गलस्कन्धरूप तैल को ग्रहण कर के कर्मरूप
ज्वाला में परिणत कर लेता है । मन, वचन और कायरूप करण के द्वारा आत्मा का वीर्य-
रूप परिणमन होता है । इसीलिए मन, वचन, आदि का व्यापार योग कहलाता है । जैसे
—अग्नि के संयोग से मिट्टी के घड़े की ललाई आदिरूप परिणति होती है, और वह घड़े की
ही कहलाती है, उसीप्रकार मन, वचन आदि के संयोग से शुभा—शुभक्रियारूप वीर्य की
परिणति आत्मा की ही होती है, पुद्गलरूप मन, वचन आदि की नहीं ।

जैसे तेल से लिप्त शरीर पर या भीगे हुए वस्त्र पर धूल लग जाती है,

जैसी रीते दीपक उष्माशुष्कता कारणे बत्तीद्वारा तैलने अक्षुष्क करीने नवाणाना
रूपमां परिष्कृत करे छे ते प्रभाषे राग—द्वेषरूप उष्माशुष्कता सम्बन्धथी मन
वचन आदि योगोनी बत्ती द्वारा आत्माइपी दीपक कर्मयोग्य—पुद्गलस्कन्धरूप
तेलने अक्षुष्क करीने कर्मरूप नवाणानां परिष्कृत करी ले छे. मन, वचन अने
कायारूप कारणद्वारा आत्मानुं वीर्यरूप परिष्कृतन थाय छे; अने कारणथी मन, वचन
आदिना व्यापार योग कडेवाय छे. जैसी रीते अग्निना संयोगथी माटीना घडानी न
लासी (साताशपछुं) रूप परिष्कृति थाय छे, अने ते घडानी न कडेवाय छे. ते प्रभाषे
मन, वचन आदिना संयोगथी शुभा—शुभक्रियारूप वीर्यनी परिष्कृति आत्मानी न
थाय छे. पुद्गलरूप मन, वचन आदिनी नहि.

जैसी रीते तेलथी लिप्त शरीर पर, अथवा लिज्जतेला वस्त्र पर
धूल लागी जाय छे. ते प्रभाषे राग—द्वेषरूपी तेलथी युक्त आत्माना अक्षुष्कगी जाय

एषु पञ्चसु कारणेषु कषायः प्रधानम् । स च क्रोधमानमायालोभ-
भेदाद्यतुर्विधः । चतुर्विधोऽप्ययं कषायो रागद्वेषान्तर्गत एवास्ति । उक्तञ्च—

“दोहिं ठाणेहिं पावकम्मा बंधति, तंजहा-रागेण य, दोसेण य । रागे
दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-माया य लोभे य । दोसे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा-कोहे य
माणे य” (स्था० स्थान २ उ०)

बन्धश्चतुर्विधः—प्रकृति-स्थित्य-नुभाव-प्रदेशभेदात् । उक्तञ्च—

“चउत्विहे बंधे पण्णत्ते, तंजहा-पगइबंधे१, ठिइबंधे२, अणुभावबंधे३,
पएसबंधे४ ।” (समवायाङ्ग. समवाय४)

इन पांच कारणों में कषाय प्रधान है । क्रोध, मान, माया और लोभ के
भेदसे वह चार प्रकार का है । कषाय के ये चारों भेद राग और द्वेष में ही अन्तर्गत हो
जाते हैं । कहा भी है—

“दो स्थानों से पाप कर्मों का बन्ध होता है । वह इस प्रकार—राग से
और द्वेष से । राग दो प्रकार का है—माया और लोभ । द्वेष भी दो प्रकार का है—क्रोध
और मान” । (स्था० स्थान २ उ. २)

बन्ध चार प्रकार का है—(१) प्रकृति-बन्ध, (२) स्थिति बन्ध, (३) अनुभाव-बन्ध;
और (४) प्रदेश-बन्ध । कहा भी है—

“बन्ध चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) प्रकृतिबन्ध, (२)
स्थितिबन्ध, (३) अनुभावबन्ध, (४) प्रदेशबन्ध” । (सम. स. ४)

आ पांच कारणोंमें कषाय प्रधान छे— मुख्य छे. क्रोध, मान, माया अने
लोभना लोहथी ते आर प्रकारना छे. कषायना ते आरे य लेह राग-अने द्वेषमां
समाई जाय छे. कहुं छे के:-

“जे स्थानोथी पापकर्मोना अंध थाय छे. ते आ प्रभाए छे—रागथी अने
द्वेषथी. राग जे प्रकारना छे—माया अने लोभ. द्वेष पणु जे प्रकारना छे—क्रोध अने
मान” (स्था. स्थान २-उ. २).

अंध आर प्रकारना छे—(१) प्रकृतिअंध, (२) स्थितिअंध, (३) अनुभावअंध
(४) प्रदेशअंध. कहुं पणु छे—

“अंध आर प्रकारना छे. (१) प्रकृतिअंध, (२) स्थितिअंध, (३) अनुभावअंध,
(४) प्रदेशअंध,” (सम० स. ४)

मिथ्यात्वम् १ । सावधयोगेषु प्रवृत्तिरविरतिः २ । सदुपयोगाभावः प्रमादः, मोक्षमार्गं प्रति शैथिल्यं वा प्रमादः ३ । कल्पते=पुनःपुनर्मर्जन्ममरणादिक्लेशोऽनुभूयते येन स कपायः, मोहनीयकर्मोदयजनित आत्मपरिणतिविशेषः, यद्वा-कल्पते यत्र शारीरिकमानसिकदुःखैः, स कपः-संसारः, तस्य आयः-प्राप्तिकारणं कपायः=क्रोधादिः ४ । युज्यते-आत्माऽनेनेति योगः=मनोवाकायव्यापाररूपः ५ । उक्तञ्च-

“पंच आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-मिच्छत्तं १, अविर्ई २, पमाया ३, कसाया ४, जोगा ५” । (समवा० समवाय ५) ‘आसवदारा’ इति-आश्रवो बन्ध-कारणम् ।

श्रद्धान मिथ्यात्व कहलता है ? । सावध योगों में प्रवृत्ति करना अविरति है २ । सम्यक् उपयोग (यतना) का अभाव प्रमाद कहलता है, या मोक्षमार्ग के विषय में शिथिलता होना प्रमाद है ३ । जिस के द्वारा आत्मा कपा जाय अर्थात् वारंवार जन्म-मरण का क्लेश भोगा जाय उसे कपाय कहते हैं । कपाय, मोहकर्म से उत्पन्न आत्मा की एक परिणति है । अथवा - जहाँ शारीरिक एवं मानसिक दुःखों से जीव कपा जाय (युक्त हों) उसे कप अर्थात् संसार कहते हैं और उस कप (संसार) की आय-प्राप्ति जिस से हो वह कपाय कहलता है ४ । जिस से आत्मा व्याप्त हो, ऐसा मन, वचन और काय का व्यापार योग कहलता है ५ । कहा है—

“पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा-मिच्छत्तं, अविर्ई, पमाया, कसाया, जोगा” । (समवायाङ्ग, समवाय ५) यहाँ ‘आसवदारा’ का अर्थ है-आश्रव के द्वार अर्थात् बन्धके कारण ।

श्रद्धा तेने मिथ्यात्व कडे छे (१). सावध योगांमां प्रवृत्ति करवी ते अविरति छे (२). सम्यक् उपयोगने अभाव ते प्रमाद कडेवाय छे, अथवा मोक्षमार्गना विषयमां शिथिलता थवी ते प्रमाद छे (३). जेना द्वारा आत्मा कपाय अर्थात् वारंवार जन्म भरखुने क्लेश भोगववाय तेने कपाय कडे छे. कपाय, मोह कर्मथी उत्पन्न आत्मानी अेक परिणति छे, अथवा—ज्यां शारीरिक अने मानसिक दुःखेथी लव कपाय अर्थात् पीडाय तेने कप अर्थात् संसार कडे छे, अने ते संसारनी आय-प्राप्ति जेनाथी डेय ते कपाय कडेवाय छे (४). जेनाथी आत्मा व्याप्त डेय जेवा मन, वचन अने कायाना व्यापार ते योग कडेवाय छे. (५), कहुं छे के :—

“पंच आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-मिच्छत्तं, अविर्ई, पमाया, कसाया जोगा.” (समवायाङ्ग, समवाय ५,) अर्हि “आसवदारा” ने अर्थ जे छे ‘के:-आश्रवना द्वार, अर्थात् बंधना कारण.

ज्ञानावरणीयं कर्म, जीवस्य ज्ञानगुणमावृणोति१ । दर्शनावरणीयं कर्म दर्शनगुणमृ२ । वेदनीयकर्म जीवस्याव्यावाधगुणं संरुणद्धि३ । मोहनीयकर्म जीवस्याविरतिं तच्चानभिरुचिं च जनयति४ । आयुष्यकर्म जीवस्यामरत्वं प्रतिदन्ति५ । नामकर्म जीवस्याऽमूर्तत्वं प्रतिवध्नाति६ । गोत्रकर्म तस्यागुरुलघुगुणं व्याहन्ति७ । अन्तरायकर्म जीवस्यानन्तवीर्यगुणं रुणद्धि८ ।

यथा-गवादिभक्षिततृणादयो दुग्धरूपेण परिणता भवन्ति, माधुर्य-स्वभावः सहैव जायते, स चैतावत्कालपर्यन्तस्थायीत स्थितिसमयमर्यादाऽपि जायते माधुर्ये तीव्रमन्दभावादिविशेषोऽपि भवति, तस्य दुग्धस्य पौद्गलिक-

(१) ज्ञानावरणीय कर्म जीव के ज्ञानगुणको ढाँकता है, (२) दर्शनावरणीयकर्म दर्शनगुणको । (३) वेदनीयकर्म जीव के अव्यावाधगुण को रोकता है और (४) मोहनीय-कर्म जीव में अविरति और तत्त्व के प्रति अरुचि उत्पन्न करता है । (५) आयुर्कर्म जीव की अमरता को रोकता है और (६) नामकर्म जीव के अमूर्तत्व गुण को रोकता है । (७) गोत्रकर्म अगुरु-लघुत्व गुण को नष्ट करता है और (८) अन्तरायकर्म जीव के अनन्त वीर्य का घात करता है ।

जैसे गायद्वारा खाये हुए तृण आदि दूध रूप में परिणत होते हैं, और उन में मधुरता का स्वभाव भी साथ ही उत्पन्न हो जाता है । उस में अमुक कालपर्यन्त ठहरने की स्थिति-मर्यादा भी उत्पन्न हो जाती है, और मधुरता में तीव्रता या मन्दता की विशेषता भी आजाती है । उस दूध का पौद्गलिक परिणाम भी साथ ही उत्पन्न होता है ।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान-गुणने ढाँकी दे छे; (२) दर्शनावरणीय कर्म दर्शनगुणने ढाँके छे. (३) वेदनीय कर्म ज्ञानाव्यावाध गुणने, रोकती दे छे (४) मोहनीय कर्म ज्ञानां अविरति अने तत्त्वप्रति अरुचि उत्पन्न करावे छे. (५) आयु कर्म ज्ञानां अमरताने रोकते छे. (६) नाम-कर्म ज्ञानां अमूर्तत्व गुणने रोकते छे. (७) गोत्र-कर्म अगुरुलघुत्व गुणने नाश करे छे अने (८) अन्तराय कर्म ज्ञानां अनन्तवीर्यने घात करे छे.

जेवी शीते गाये जायेतुं घास आदि दूध रूपमां परिष्कृत थाय छे अने तेमां मधुरतानो स्वभाव पणु साथे न उत्पन्न थाय छे. तेमां अमुककालपर्यन्त स्थिर रहेवानी स्थिति-मर्यादा. पणु उत्पन्न थई नथ छे. अने मधुरतामां तीव्रता अथवा मन्दतानी विशेषता पणु आवी नथ छे. ते दूधतुं पौद्गलिक परिष्कृत पणु साथे न

તત્ર પ્રકૃતિઃ-સ્વભાવઃ । આત્મપરિગૃહીતકર્મપુદ્ગલાનાં તચ્ચક્તિરુપેણ પરિણ-
મનમ્ । યથા નિમ્બસ્ય તિક્તલમ્, ગુહસ્ય મધુરત્વમ્ । પ્રકૃતિર્દ્વિવિધા-મૂલપ્રકૃતિઃ,
ઉત્તરપ્રકૃતિશ્ચ । મૂલરૂપઃ કર્મણઃ સ્વભાવો મૂલપ્રકૃતિઃ । મૂલપ્રકૃતિરપ્ટઠા-જ્ઞાના-
વરણીય ૧ - દર્શનાવરણીય ૨ - વેદનીય ૩ - મોહનીયા ૪ - ડ્યુપ્ય ૫ - નામ ૬ - ગોત્રા ૭ -
ન્તરાય ૮ - ભેદાત્ । ઉક્તશ્ચ—

“ અદ્ કમ્મપગહીઓ પ્પણત્તાઓ, તંજહા-ળાળાવરણિજ્જં ૧, દંસળાવરણિજ્જં ૨,
વેયણિલ્લં ૩ મોહણિલ્લં ૪, આણં ૫, નામં ૬, ગોચં ૭, અંતરાણં ૮ ” । (પ્રજ્ઞાપના ૦
પદ-૨૧ ઉ. ૧ સૂ. ૨૮૮)

પ્રકૃતિ અર્થાત્ સ્વભાવ । આત્મા કે દ્વારા પ્રહણ કિપ્ હુપ્, કર્મપુદ્ગલો મેં અમુક-
અમુક પ્રકાર કી શક્તિ (સ્વભાવ) ઉત્પન્ન હો જાના પ્રકૃતિવન્ધ હૈ । જૈસે-નીમ મેં કટુકતા
ઔર ગુહ મેં મધુરતા હોતી હૈ ।

પ્રકૃતિ દો પ્રકાર કી હૈ-મૂલપ્રકૃતિ ઔર ઉત્તરપ્રકૃતિ । કર્મ કા મૂલ સ્વભાવ
મૂલપ્રકૃતિ કહલાતી હૈ । મૂલપ્રકૃતિ કે આઠ ભેદ હૈં-(૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય,
(૩) વેદનીય, (૪) મોહનીય, (૫) આયુ, (૬) નામ, (૭) ગોત્ર, ઔર (૮) અન્તરાય ।
કહા મી હૈ:—

“ આઠ કર્મપ્રકૃતિયાં હૈં, વે હિસ પ્રકાર-(૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય,
(૩) વેદનીય, (૪) મોહનીય, (૫) આયુષ્ય, (૬) નામ, (૭) ગોત્ર, (૮) અન્તરાય । ”
(પ્રજ્ઞા. પદ ૨૧ ઉ. ૧ સૂ. ૨૮૮)

પ્રકૃતિ અર્થાત્ સ્વભાવ, -આત્માદ્વારા પ્રહણ કરેલા કર્મપુદ્ગલોમાં અમુક-
અમુક પ્રકારની શક્તિ (સ્વભાવ) નું ઉત્પન્ન થઈ જવું તે પ્રકૃતિવન્ધ છે. જેવી રીતે
લીંબડામાં કડવાશ અને ગોળામાં મધુરતા હોય છે.

પ્રકૃતિ બે પ્રકારની છે- (૧) મૂલપ્રકૃતિ અને (૨) ઉત્તરપ્રકૃતિ. કર્મનો મૂલ
સ્વભાવ તે મૂલપ્રકૃતિ કહેવાય છે. તે મૂલ પ્રકૃતિના આઠ ભેદ છે- (૧) જ્ઞાનાવરણીય,
(૨) દર્શનાવરણીય, (૩) વેદનીય, (૪) મોહનીય, (૫) આયુ, (૬) નામ, (૭) ગોત્ર
અને (૮) અન્તરાય. કહું છે કે:-

“ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓ છે, તે આ પ્રમાણે-જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય,
મોહનીય, આયુષ્ય, નામ, ગોત્ર, અન્તરાય. ” (પ્રજ્ઞા. પદ ૨૧ ઉ. ૧ સૂ. ૨૮૮)

यथा वा-वातहारिद्रव्यनिर्मितो मोदकः प्रकृत्या वातं हरति, पित्तोपशम-
कद्रव्यनिर्मितो मोदकः प्रकृत्या पित्तं नाशयति, कफापहारकद्रव्यनिर्मितः कफं
हरति । इत्येवं मोदकस्य नानाविधा प्रकृतिः । तस्यैव मोदकस्य स्थितिस्तु
कस्यचिदेकदिनव्यापिनी, अपरस्य दिनद्वयस्थापिनी, अन्यस्य कस्यचिन्मासादि-
कालं व्याप्य स्थितिर्भवति, ततः परं तत्तन्मोदकस्य विनाशात् । एवं मोदकस्यानु-
भावो मधुरकटुकपायादिरूपः । रसस्तीव्रमन्दभावेन कस्यचिन्मोदकस्यैकगुणः,
कस्यचिद् द्विगुणः, कस्यचित् त्रिगुणो भवति । प्रदेशोऽपि मोदकस्य कस्यचिदेक-
कर्षमितः, कस्यचिद् द्विकर्षपरिमितः, कस्यचित्त्रिकर्षपरिमितो भवति ।

अथवा जैसे-वातहारक द्रव्यों से बना मोदक स्वभाव से वात का नाश करता है,
पित्तका नाश करने वाले द्रव्यों से बना मोदक पित्तका नाश करता है, कफहारी द्रव्यों से बना
मोदक कफको दूर करता है, इस प्रकार मोदक की प्रकृति नाना प्रकार की है । कोई मोदक
एकदिन तक ही ठहर सकता है, कोई दो दिन तक और कोई महीने भरतक ठहर सकता है,
उसके पश्चात् मोदक में वह शक्ति नहीं रहती है । इसी प्रकार किसी मोदक का मधुर या
कटुक रस तीव्र होता है किसी का मन्द होता है, किसी मोदक में एकगुण रस होता है,
किसी में द्विगुण और किसी में तीन गुणा, किसी मोदक का प्रदेशसमूह एक कर्ष
परिमित होता है, किसीका दो कर्ष परिमित होता है, और किसीका तीन कर्ष परिमित
होता है ।

अथवा-जेम वायुनाशक द्रव्योथी अनेला लाडु स्वभावथी वायुनो नाश करे छे;
पित्तने शान्त करवा पाणा द्रव्योथी अनेला लाडु पित्तनो नाश करे छे. कफ नाश करनाश
द्रव्योथी अनेला लाडु कफने हर करे छे, जे प्रभाछे लाडुनी प्रकृति बूदा-बूदा प्रकारनी
छे. कोर्छ लाडु जेक दिवस सुधी रही शके छे, कोर्छ जे दिवस अने कोर्छ महिना सुधी
रही शके छे. ते यथी लाडुमां ते प्रथमना जेवी शक्ति रहेती नथी. जे प्रभाछे कोर्छ
लाडुनो मधुर अथवा कटुक रस तीव्र होय छे. कोर्छनो मंद होय छे, कोर्छ लाडुमां जेक
शुषु रस होय छे, कोर्छमां द्विशुषु अने कोर्छमां त्रशु शुषु रस होय छे. कोर्छ लाडुना
प्रदेशसमूह जेक कर्ष (जे तोला) परिमित होय छे. कोर्छना जे कर्ष (चार तोला)
परिमित होय छे, अने कोर्छना त्रशु कर्ष (छ तोला) परिमित होय छे.

પરિણામશ્ચાપિ સહૈવ પ્રાદુર્ભવતિ તથા જીવેન પરિગૃહીતાનાં કર્મવર્ગણાયોગ્ય-પુદ્ગલાનાં કર્મરૂપેણ પરિણમને ચતુર્વિધા અંશાઃ સહૈવ ભવન્તિ । ત એવાંશાઃ ચન્ધમેદાઃ પ્રકૃત્યાદયઃ સન્તિ ।

કણિકાગુહઘૃતકટુકાદિદ્રવ્યાણામૌપધમોદકરૂપેણ પરિણમને સહૈવા-નેકાકારપરિણામૌ ભવતિ । યથા મોદકો દ્વિ કશ્ચિદ્ વાતપિત્તહરણશીલઃ, કશ્ચિદ્ બુદ્ધિવર્ધનઃ, કશ્ચિત્ સંમોહકારી, કશ્ચિન્મારકઃ, इत्यनेकाकारेण परिणमते जीवसंयोगात्, तथा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानामात्मसम्बन्धात्કर्मरૂપેણ પરિણામે કશ્ચિત્કર્મપુદ્ગલઃ જ્ઞાનમાવૃણોતિ, કશ્ચિદર્શનમાવૃણોતિ ; અપરઃ સુખદુઃસ્વાનુભવં જનયતી ત્યાદિ યોજનીયમ્ ।

इस प्रकार जीव द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मवर्गणा के योग्यपुद्गोका कर्मरूप परिणमन होने पर चार प्रकार के अंश उन में साथ ही उत्पन्न होते हैं । वही अंश चन्ध के प्रकृति आदि भेद कहलाते हैं ।

આટા, ગુહ, ઘી ઓર કટુક આદિ દ્રવ્યોં સે બને હુણ લંડૂ મેં ઇક સાથ અનેક પ્રકાર કે પરિણમન હોતે હેં । કોઈ લાડૂ વાત-પિત્ત કા નાશક હોતા હે, કોઈ બુદ્ધિવર્ધક હોતા હે, કોઈ સમ્મોહજનક હોતા હે, ઓર કોઈ ઘાતક હોતા હે, ઇસ પ્રકાર જીવ કે સંયોગ સે લડૂ અનેક આકારોં મેં પરિણત હોતા હે । ઇસી પ્રકાર કર્મવર્ગણા-યોગ્ય પુદ્ગલોં કા આત્મા કે નિમિત્ત સે કર્મરૂપ પરિણમન હોને પર કોઈ કર્મ, જ્ઞાન કો આચ્છાદિત કરતા હે, કોઈ દર્શનકો કોઈ કર્મ, સુખ-દુઃસ્વ કા અનુભવ કરાતા હે । ઇત્યાદિ સવ ઘટા લેના ચાહિણ ।

ઉત્પન્ન થાય છે એ પ્રમાણે જીવદ્વારા શ્રુણુ કરેલા કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલોનું કર્મરૂપ પરિણમન થવાની સાથે ચાર પ્રકારના અંશ તેમાં સાથે જ ઉત્પન્ન થાય છે તે અંશ, અંધના પ્રકૃતિ આદિ ભેદ કહેવાય છે.

લોટ, ગોળ, ઘી અને કટુક આદિ દ્રવ્યોં નાંખીને બનાવેલા લાડુમાં એક સાથે અનેક પ્રકારનું પરિણમન થાય છે, કોઈ લાડુ વાત-પિત્તનો નાશ કરનાર હોય છે. કોઈ બુદ્ધિવર્ધક હોય છે. કોઈ સંમોહ ઉત્પન્ન કરનાર હોય છે. અને કોઈ ઘાતક હોય છે. એ પ્રમાણે જીવના સંયોગથી લાડુ અનેક આકારોમાં પરિણત થાય છે. તે પ્રમાણે કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલોનું આત્માના નિમિત્તથી કર્મરૂપ પરિણમન થાય ત્યારે કોઈ કર્મ જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરે છે કોઈ દર્શનને, કોઈ કર્મ સુખ-દુઃખનો અનુભવ કરાવે છે. એ પ્રમાણે સર્વ બાબતમાં ઘટાવી લેવું જોઈએ.

- (२) दर्शनस्य (सामान्यबोधस्य) आवरणं कर्म दर्शनावरणीयम् ।
- (३) सुखदुःखानुभवजनकं कर्म वेदनीयम् ।
- (४) मदिरावन्मोहजनकं कर्म मोहनीयम् ।
- (५) भवधारणकारणं कर्म आयुष्कम् ।
- (६) विशिष्टगतिजात्यादिप्राप्तिकारणं कर्म नाम ।
- (७) उत्कर्षापकर्षप्राप्तिकारणं कर्म गोत्रम् ।
- (८) दानलाभादिविघातकं कर्म अन्तरायः ।

मूलरूपः कर्मणः स्वभावोऽष्टविध इति मूलप्रकृतिरष्टविधा संक्षेपतः कथिता । अष्टानां मूलप्रकृतीनां प्रत्येकमवान्तरभेद एवोत्तरप्रकृतिः । सा च

(२) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधको आच्छादित करने वाला कर्म दर्शनावरण है ।

(३) सुख-दुःखका वेदन कराने वाला कर्म वेदनीय कहलाता है ।

(४) मदिरा के समान मोह उत्पन्न करने वाला कर्म मोहनीय कहलाता है ।

(५) भवधारणा का कारण कर्म आयुष्क कहलाता है ।

(६) विशेष प्रकार की गति, जाति आदि की प्राप्ति का कारण नामकर्म है ।

(७) उत्कर्ष और अपकर्ष की प्राप्ति का कारण गोत्रकर्म कहलाता है ।

(८) दान लाभ आदि में विघ्न डालने वाला अन्तराय कर्म कहलाता है ।

कर्म का मूल स्वभाव आठ प्रकार का ही है, अतः आठ प्रकृतियों का संक्षिप्त कथन किया गया है, इन आठ प्रकृतियों के अवान्तर भेदों को उत्तर-प्रकृति कहते हैं ।

(२) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधने से आच्छादित करवावाणुं कर्म ते दर्शनावरणम् ।

(३) सुख-दुःखानुं वेदन करवावावाणुं कर्म ते वेदनीयकर्मं कडेवायम् ।

(४) मदिरानां समान मोह उत्पन्न करवावावाणुं कर्म ते मोहनीयं कडेवायम् ।

(५) भव-धारणुं करवाणुं ते कारणं कर्म ते आयुष्कं कडेवायम् ।

(६) विशेष प्रकारनी गति-जाति आदिनी प्राप्तिं कारणुं ते नामकर्मं कडेवायम् ।

(७) उत्कर्षं अने अपकर्षं प्राप्तिं कारणुं ते गोत्रकर्मं कडेवायम् ।

(८) दान-लाभ आदिनां विघ्न नाशवावाणुं ते अन्तरायं कर्मं कडेवायम् ।

कर्मना मूल स्वभाव आठ प्रकारना छे, तेथी आठ प्रकृतिओनुं संक्षिप्तमां कथन क्युं छे, अे आठ प्रकृतिओना अवांतर भेदोने उत्तरप्रकृति कडे छे, एसासु पुत्रोने

एवं कर्मणोऽपि कस्यचिद् ज्ञानावरणस्वभावा प्रकृतिः, अपरस्य दर्शना-
वरणरूपा, कस्यचित् सम्यग्दर्शनादिविघातस्वभावा ।

कर्मणः स्थितिश्च कस्यचित् त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीरूपा, अपरस्य
कस्यचित् कर्मणः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीरूपेत्यादि । रसस्तु कस्यचित्
कर्मणस्तीव्रः, कस्यचिच्चीव्रतरः, कस्यचिच्चीव्रतमः, कस्यचिन्मन्दः, कस्यचिन्म-
न्दतर इत्यादि बोध्यम् ।

(१) प्रकृतिबन्धः—

॥ अष्टविध-मूलप्रकृतिबन्ध-लक्षणम्—

(१) ज्ञानस्य (विशेषबोधस्य) आवरणं कर्म ज्ञानावरणीयम् ।

इसी प्रकार किसी कर्म को ज्ञानको आच्छादित करने की प्रकृति है, किसीका दर्शन
को ढँकने की है, किसी की सुख-दुःख का अनुभव कराने की प्रकृति है, और किसी की
सम्यग्दर्शन का घात करने की है । किसी कर्म को तीस कोडाकोडी सागरोपमकी स्थिति है,
किसी की सत्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है ।

इसी प्रकार किसी कर्म का रस तीव्र है, किसी का तीव्रतर है, किसी का तीव्रतम है ।
किसी का रस मन्द है, किसी का मन्दतर है । इत्यादि समझ लेना चाहिए ।

(१) प्रकृतिबन्ध

(१) ज्ञान अर्थात् विशेष धर्मों के बाधको आच्छादित करने वाला कर्म ज्ञानावरण
कहलाता है ।

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મની જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરવાની પ્રકૃતિ છે, કોઈની દર્શનને
ઢાંકી દેવાની છે, કોઈની સુખ-દુઃખનો અનુભવ કરાવવાની પ્રકૃતિ છે, અને કોઈની
સમ્યક્દર્શનનો ઘાત કરવાની પ્રકૃતિ છે.

કોઈ કર્મની ત્રીશ કોડાકોડી સાગરોપમની સ્થિતિ છે. કોઈની સત્તર (૭૦)
કોડાકોડી સાગરોપમની છે.

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મનો રસ તીવ્ર છે. કોઈનો તીવ્રતર છે, અને કોઈનો
તીવ્રતમ છે. કોઈનો રસ મંદ છે, કોઈનો મંદતર છે. ઇત્યાદિ સમજ લેવું જોઈએ.

(૧) પ્રકૃતિબંધ

(૧) જ્ઞાન અર્થાત્ વિશેષ ધર્મોના બાધને આચ્છાદિત કરવાવાળું કર્મ તે જ્ઞાના-
વરણીય કહેવાય છે.

- (२) दर्शनस्य (सामान्यबोधस्य) आवरणं कर्म दर्शनावरणीयम् ।
- (३) सुखदुःखानुभवजनकं कर्म वेदनीयम् ।
- (४) मदिरावन्मोहजनकं कर्म मोहनीयम् ।
- (५) भवधारणकारणं कर्म आयुष्कम् ।
- (६) विशिष्टगतिजात्यादिप्राप्तिकारणं कर्म नाम ।
- (७) उत्कर्षापकर्षप्राप्तिकारणं कर्म गोत्रम् ।
- (८) दानलाभादिविघातकं कर्म अन्तरायः ।

मूलरूपः कर्मणः स्वभावोऽष्टविध इति मूलप्रकृतिरष्टविधा संक्षेपतः कथिता । अष्टानां मूलप्रकृतीनां प्रत्येकमवान्तरभेद एवोत्तरप्रकृतिः । सा च

(२) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधको आच्छादित करने वाला कर्म दर्शनावरण है ।

(३) सुख-दुःखका वेदन कराने वाला कर्म वेदनीय कहलाता है ।

(४) मदिरा के समान मोह उत्पन्न करने वाला कर्म मोहनीय कहलाता है ।

(५) भवधारणा का कारण कर्म आयुष्क कहलाता है ।

(६) विशेष प्रकार की गति, जाति आदि की प्राप्ति का कारण नामकर्म है ।

(७) उत्कर्ष और अपकर्ष की प्राप्ति का कारण गोत्रकर्म कहलाता है ।

(८) दान लाभ आदि में विघ्न डालने वाला अन्तराय कर्म कहलाता है ।

कर्म का मूल स्वभाव आठ प्रकार का ही है, अतः आठ प्रकृतियों का संक्षिप्त कथन किया गया है, इन आठ प्रकृतियों के अवान्तर भेदों को उत्तर-प्रकृति कहते हैं ।

(२) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधने के आच्छादित करवावाणुं कर्म ते दर्शनावरण्युं छे.

(३) सुख-दुःखतुं वेदन करवावावाणुं कर्म ते वेदनीयकर्मं कडेवाय छे.

(४) मदिराना समान मोह उत्पन्न करवावावाणुं कर्म ते मोहनीय कडेवाय छे.

(५) भव-धारण्युं करवातुं के कारण्युं कर्म ते आयुष्य कडेवाय छे.

(६) विशेष प्रकारनी गति-जाति आदिनी प्राप्तितुं कारण्युं ते नामकर्मं कडेवाय छे.

(७) उत्कर्षं अने अपकर्षनी प्राप्तितुं कारण्युं ते गोत्रकर्मं कडेवाय छे.

(८) दान-लाभ आदिमां विघ्न नाभवावाणुं ते अन्तराय कर्मं कडेवाय छे.

कर्मना मूल स्वभाव आठ प्रकारने छे. तेथी आठ प्रकृतिओतुं. संक्षिप्तमां कथन छे. अे आठ प्रकृतिओना अवांतर भेदने उत्तरप्रकृति कडे छे. अशासु पडथेने

एवं कर्मणोऽपि कस्यचिद् ज्ञानावरणस्वभावा प्रकृतिः, अपरस्य दर्शनावरणरूपा, कस्यचित् सम्यग्दर्शनादिविघातस्वभावा ।

કર્મણઃ સ્થિતિશ્ચ કસ્યચિત્ ત્રિંશત્સાગરોપમકોટીકોટીરૂપા, અપરસ્ય કસ્યચિત્ કર્મણઃ સમ્પત્તિસાગરોપમકોટીકોટીરૂપેત્યાદિ । રસસ્તુ કસ્યચિત્ કર્મણસ્તીવ્રઃ, કસ્યચિત્તીવ્રતરઃ, કસ્યચિત્તીવ્રતમઃ, કસ્યચિન્મન્દઃ, કસ્યચિન્મન્દતર ઇત્યાદિ ચોખ્યમ્ ।

(૧) પ્રકૃતિવન્ધઃ—

॥ અષ્ટવિધ-મૂળપ્રકૃતિવન્ધ-લક્ષણમ્—

(૧) જ્ઞાનસ્ય (વિશેષવોધસ્ય) આવરકં કર્મ જ્ઞાનાવરણીયમ્ ।

इसी प्रकार किसी कर्म की ज्ञानको आच्छादित करने की प्रकृति है, किसीका दर्शनको ढँकने की है, किसी की सुख-दुःख का अनुभव कराने की प्रकृति है, और किसी की सम्यग्दर्शन का घात करने की है । किसी कर्म की तीस कोडाकोडी सागरोपमकी स्थिति है, किसी की सत्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है ।

इसी प्रकार किसी कर्म का रस तीव्र है, किसी का तीव्रतर है, किसी का तीव्रतम है । किसी का रस मन्द है, किसी का मन्दतर है । इत्यादि समझ लेना चाहिए ।

(૧) પ્રકૃતિવન્ધ

(૧) જ્ઞાન અર્થાત્ વિશેષ ધર્મો કે બાધકો આચ્છાદિત કરને વાલા કર્મ જ્ઞાનાવરણ કહલાતા હૈ ।

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મની જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરવાની પ્રકૃતિ છે, કોઈની દર્શનને ઢાંકી દેવાની છે, કોઈની સુખ-દુઃખનો અનુભવ કરાવવાની પ્રકૃતિ છે, અને કોઈની સમ્યગ્દર્શનનો ઘાત કરવાની પ્રકૃતિ છે.

કોઈ કર્મની ત્રીશ કોડાકોડી સાગરોપમની સ્થિતિ છે. કોઈની સત્તર (૭૦) કોડાકોડી સાગરોપમની છે.

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મનો રસ તીવ્ર છે, કોઈનો તીવ્રતર છે, અને કોઈનો તીવ્રતમ છે. કોઈનો રસ મંદ છે, કોઈનો મંદતર છે. ઇત્યાદિ સમજ લેવું જોઈએ.

(૧) પ્રકૃતિવન્ધ

(૧) જ્ઞાન અર્થાત્ વિશેષ ધર્મોના બાધને જે આચ્છાદિત કરવાવાળું કર્મ તે જ્ઞાનાવરણીય કહેવાય છે.

जघन्य-स्थितिरष्टमुहूर्तप्रमाणा । ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीया-ऽऽयुष्या-
ऽन्तरायकर्मणां जघन्यस्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणा ।

ज्ञानावरणीय - दर्शनावरणीय - वेदनीयाऽ - न्तरायकर्मणामुत्कृष्टस्थितिः
त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः, मोहनीयकर्मणः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटयः
स्थितिरुत्कृष्टा । नाम-गोत्र-कर्मणोर्विंशत्सागरोपमकोटीकोटयः स्थितिरुत्कृष्टा ।
आयुष्यकर्मणस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा स्थितिरुत्कृष्टा । मध्यमा स्थितिस्त्व-
संख्यातप्रकारा, कपायपरिणामतारतम्येन तस्या असंख्यातमेदात् ।

आठ मुहूर्त की है, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय कर्म की
जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त की है ।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, और अन्तराय कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस
कोडा-कोडी सागरोपम की मोहनीय कर्म की सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम की, नाम और
गोत्र कर्म की बीस कोडा-कोडी सागरोपम की है । आयुष्य कर्म की तेतीस सागरोपम की
है । मध्यम स्थिति असंख्यात प्रकार की है, कपायरूप परिणामों की हीनता और अधिकता
के कारण उसके असंख्य प्रकार होते हैं ।

स्थितिबन्धका कोष्ठक टीका के अनुसार पृष्ठ ३३६ से समझ लेना चाहिए ।

आठ मुहूर्तनी छे. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु अने अन्तराय
कर्मनी जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्तनी छे.

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, अने अन्तराय कर्मोंनी उत्कृष्ट स्थिति त्रीश
कोडा-कोडी सागरोपमनी, मोहनीय कर्मनी सीतेर (७०) कोडा-कोडी सागरोपमनी,
नाम अने गोत्र कर्मनी बीस कोडा-कोडी सागरोपमनी, आयुष्य कर्मनी तेतीस
सागरोपमनी छे. मध्यम स्थिति असंख्यात प्रकारनी छे. कपायरूप परिष्ठाभेनी
हीनता अने अधिकताना कारणे तेना असंख्य प्रकार थाय छे.

स्थितिबंधुं कोष्ठक टीकाना अनुसार पृष्ठ ३३६थी समझ लेवुं लेछे अ.

વિસ્તરતો જિજ્ઞાસુનાં વૌધાય શાસ્ત્રે નિર્દિષ્ટા । જ્ઞાનાવરણીયાદિમૂલપ્રકૃતી-
નામપ્ટાનામવાન્તરભેદા યથાક્રમમ્—(૧) પચ્ચ, (૨) ત્રય, (૩) દ્વૌ, (૪) અષ્ટાવિંશતિઃ,
(૫) ચત્વારઃ, (૬) દ્વિચત્વારિંશત્, (૭) દ્વૌ, (૮) પચ્ચ સન્તિ । એત્સર્વમાગમતોઽવ
વગન્તન્યમ્ ।

(૨) સ્થિતિબન્ધઃ—

આત્મસંલગ્નાનાં કર્મપુદ્ગલાનાં યથા જઘન્યમધ્યમોત્કૃષ્ટકાલમર્યા-
દયાઽઽત્મપ્રદેશોષ્વવસ્થાનાં સા કાલમર્યાદા સ્થિતિબન્ધઃ । કિંચ્ચ—અધ્યસાયવિશેષ-
ગૃહીતસ્ય કર્મદલિકસ્ય સ્થિતિકાલનિયમનં સ્થિતિબન્ધઃ ।

વેદનીયકર્મણો જઘન્યસ્થિતિદ્વાદશમુહૂર્તપ્રમાણા । નામ—ગોત્રકર્મણો-

વિસ્તાર સે જિજ્ઞાસુ પરુષો કો જ્ઞાનકારો કે લિપે શાસ્ત્ર મેં વર્ણન કિયા ગયા હૈ । જ્ઞાનાવરણીય
આદિ મૂલ પ્રકૃતિયો કે અવાન્તર ભેદો કો સંલ્યા ક્રમ સે પાંચ, ત્રૌ, દ્વૌ, અષ્ટાદેસ, ચાર,
ચાલીસ, દ્વૌ ઓર પાંચ હૈ । ઇન સવકો આગમ સે સમજ્ઞ લેના ચાહિયે ।

(૨) સ્થિતિબન્ધ

આત્મા કે સાથ લગે હુણે કર્મપુદ્ગલ જિસ જઘન્ય મધ્યમ યા ઉત્કૃષ્ટ કાલમર્યાદા સે
આત્મપ્રદેશો મેં સ્થિર હૈ, ઉસ કાલમર્યાદાકો સ્થિતિબન્ધ કહતે હૈ । અથવા યો કહિયે કિ-
અધ્યવસાયવિશેષ દ્વારા પ્રહણ કિયે હુણે કર્મદલિયો કે આત્મા મેં ઠહરને કે કાલસમ્બન્ધી નિયમન
કો સ્થિતિબન્ધ કહતે હૈ ।

વેદનીય કર્મ કી જઘન્ય સ્થિતિ ચારહ મુહૂર્ત કી, તથા નામ ઓર ગોત્રકર્મ કી

બાલુવા માટે શાસ્ત્રમાં વિસ્તારથી વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. જ્ઞાનાવરણીય આદિ મૂલ
પ્રકૃતિના અવાન્તર ભેદોની સંખ્યા ક્રમથી—પાંચ, ત્રૌ, બે, અષ્ટાદેસ, ચાર, બેતાલીસ,
બે, અને પાંચ છે, આ સર્વને આગમથી સમજી લેવું જોઈએ.

(૨) સ્થિતિબન્ધ

આત્માની સાથે લાગેલા કર્મપુદ્ગલ જે જઘન્ય, મધ્યમ, અને ઉત્કૃષ્ટ કાલ
મર્યાદાથી આત્મપ્રદેશોમાં સ્થિતિ છે, તે કાલમર્યાદાને સ્થિતિબન્ધ કહે છે. અથવા એમ
કહીએ કે—અધ્યવસાયવિશેષદ્વારા ગ્રહણ કરેલા કર્મદલિકોને આત્મામાં ટકી રાકવાના
કાલસંબન્ધી નિયમનને સ્થિતિબન્ધ કહે છે.

વેદનીય કર્મની જઘન્ય સ્થિતિ ચાર મુહૂર્તની, તથા નામ અને ગોત્ર કર્મની

कर्मणां नाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अवाधा- कालः	जघन्यः अवाधा- कालः	उत्कृष्टः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)	जघन्यः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)
(६) नाम- कर्मणः	२० विंशति- सागरोपम- कोटीकोटयः	अष्टौ मूर्हर्त्ताः	२००० द्विसहस्र- वर्षाणि	"	२००० द्विसहस्रवर्षेण विंशतिसाग- रोपमकोटी- कोटयः	अन्तर्मुहूर्त्त- न्यूनाः सप्त मुहूर्त्ताः
(७) गोत्र- कर्मणः	"	"	"	"	"	"
(८) आयुष्य- कर्मणः	पूर्वकोटि त्रि- भागाधिका- नि ३३ त्रय- स्त्रिंशत्साग- रोपमाणि ।	अन्त- र्मुहूर्त्तः	पूर्वकोटि- त्रिभागः	"	पूर्वकोटि- त्रिभागोन- त्रयस्त्रिंशत्- सागरोपमाणि	अन्तर्मुहूर्त्त- न्यूनोऽन्त- र्मुहूर्त्तः

पूर्वकोटित्रिभागः-३३ लक्षाणि, ३३ सहस्राणि; ३ शतानि, ३३ पूर्वाणि,
२३ लक्षाणि, ५२ सहस्रकोटिवर्षाणि । अन्तर्मुहूर्त्तस्यासंख्यभेदाः सन्ति, तेनान्त-
र्मुहूर्त्तरूपाया जघन्यस्थितेरन्तर्मुहूर्त्त एवावाधाकालः, तथाऽन्तर्मुहूर्त्तन्यूनोऽन्तर्मु-
हूर्त्तश्च वाधाकाल इति विज्ञेयम् ।

स्थितिवन्ध-कोष्टकम् ।

कर्मणां नामः	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अवाधा- कालः	जघन्यः अवाधा- कालः	उत्कृष्टः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)	जघन्यः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)
(१) ज्ञाना- वरणीय- कर्मणः	३० त्रिंशत्साग- रोपमकोटी- कोटयः	अन्तर्मुहूर्तः	३००० त्रिसहस्र- वर्षाणि	अन्तर्मुहूर्तः	३००० त्रिसहस्रवर्षो- न- त्रिंशत्साग- रोपमकोटी- कोटयः	अन्तर्मुहूर्त- न्यूनोऽन्त- र्मुहूर्तः
(२) दर्शना- वरणीय- कर्मणः	"	"	"	"	"	"
(३) वेदनीय- कर्मणः	"	द्वादश १२ मुहूर्ताः	"	"	"	अन्तर्मुहूर्त- न्यूनः एकादश ११ मुहूर्ताः
(४) अन्तराय- कर्मणः	"	अन्तर्मुहूर्तः	"	"	"	अन्तर्मुहूर्त- न्यूनोऽन्त- र्मुहूर्तः
(५) मोहनीय- कर्मणः	७० सप्ततिसाग- रोपमकोटी- कोटयः	"	७००० सप्तसहस्र- वर्षाणि	"	सप्तसहस्र- वर्षोऽसप्तति- सागरोपम- कोटीकोटयः ।	"

कर्मणः फलप्रदानशक्तिरूपोऽयमनुभावो यत्कर्मनिष्ठस्तत्कर्मस्वभावानुसारं फलं प्रयच्छति, न त्वन्यकर्मस्वभावानुसारम् । यथा-ज्ञानावरणीयकर्मणोऽनुभाव-स्तत्कर्मस्वभावानुरूपं ज्ञानावरणमेव तीव्रं मन्दं वा फलं समुत्पादयति, न तु दर्शनावरणीय-वेदनीयादि-कर्मप्रकृत्यनुसारं दर्शनावरणं सुखदुःखानुभवदिरूपं फलम् । एवं दर्शनावरणीयकर्मणोऽनुभावस्तीव्रमन्दादिरूपेण दर्शनावरणमेव फलं ददाति, न तु ज्ञानावरणादिरूपमन्यकर्मप्रकृत्यनुसारम् ।

अनुभावबन्धस्य चायं कर्मप्रकृत्यनुरूपेणैव फलदाननियमोऽपि ज्ञाना-

कर्म का फलदान-शक्तिरूप अनुभाव जिस कर्म में रहता है वह कर्म अपने स्वभाव के अनुसार ही फल देता है-दूसरे कर्म के स्वभाव के अनुसार नहीं । जैसे ज्ञानावरणीय कर्म का अनुभाव ज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार ही होता है अर्थात् वह तीव्र या मन्द रूप में ज्ञान का आच्छादन ही करता है । उस से दर्शनावरणीय या वेदनीय कर्म की प्रकृति के अनुसार दर्शन का आवरण अथवा सुख-दुःख का वेदन नहीं होता । इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का अनुभाव तीव्र या मन्द रूप में दर्शन का आवरण करना ही है, ज्ञान का आवरण करना या अन्य कर्मप्रकृति के अनुसार फल देना नहीं ।

अनुभावबन्ध का अपनी कर्मप्रकृति के अनुसार फल देने का यह नियम ज्ञानावरणीय आदि आठ मूलप्रकृतियों में ही लागू होता है; उत्तरप्रकृतियों के लिए

कर्मना इल्लदानशक्तिरूप अनुभाव जे कर्ममां रडे छे, ते कर्म पोताना स्वभाव प्रमाहेण इल आपे छे, भीण कर्मना स्वभाव प्रमाहे नहि. जेवी रीते के-ज्ञानावरणीय कर्मना अनुभाव ज्ञानावरणीयना स्वभावना प्रमाहेण डाय छे, अर्थात्-ते तीव्र अथवा मंदरूपमां ज्ञानतुं अच्छादन करे छे, तेनाथी दर्शनावरणीय अथवा वेदनीय कर्मनी प्रकृति अनुसार दर्शनतुं आवरण अथवा सुख-दुःखतुं वेदन थतुं नथी. जे प्रमाहे दर्शनावरणीय कर्मना अनुभाव तीव्र अथवा मंदरूपमां दर्शनतुं आवरण करतुं तेण छे, परन्तु ज्ञानतुं आवरण करतुं अथवा अन्य कर्मप्रकृति अनुसार इण आपतुं ते नथी.

अनुभाव बन्धना पोतानी कर्मप्रकृतिना अनुसार इण आपवानो आ नियम ज्ञानावरणीय आदि आठ मूलप्रकृतिओमांण लागु थाय छे, परन्तु उत्तर प्रकृतिओ भाटे

(३) अनुभावबन्धः ।

कर्मपुद्गलानामेव शुभोऽशुभो वा घात्यघाती वा यो रसो विपाकः सोऽनुभावबन्धः । कर्मणां विशिष्टो विविधो वा पाको विपाकः । कर्मबन्धस्य फलं विपाकस्तस्योदयोऽनुभाव इति बोध्यम् । किञ्च—कर्मणां विविधफलदानशक्तिर्विपाकः सोऽनुभावः ।

बन्धकारणस्य कपायपरिणामस्य तीव्रमन्दभावानुसारेण प्रत्येककर्मणि तीव्रमन्दफलदानशक्तिः प्रादुर्भवति । इदं च फलोत्पादनसामर्थ्यम्—अनुभवः, तत्तत्फलानुभवनं चेति ।

(३) अनुभावबन्ध—

कर्मपुद्गलों का शुभ या अशुभ अथवा घातो या अघाती रूप जो रस है वही अनुभाव कहलता है । गृहीत कर्मपुद्गलों में यह रस उत्पन्न हो जाना अनुभाव या अनुभाग बन्ध है । कर्मों का विशिष्ट या विविध प्रकार का पाक विपाक कहलता है । तात्पर्य यह है कि—कर्म का फल विपाक है, और उसका उदय अनुभाव कहा जाता है । अथवा कर्मों की भौतिक-भौतिकी फल देने की शक्ति को विपाक कहते हैं, और वही अनुभाव है, और तत्तत्फल का अनुभव भी अनुभाव है ।

बन्ध के कारण कपायरूप परिणाम की तीव्रता और मन्दता के अनुसार प्रत्येक कर्म में तीव्र या मन्द फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, इस फल को उत्पन्न करने का सामर्थ्य अनुभाव है ।

(३) अनुभावावध—

कर्मपुद्गलानामेव शुभ अथवा अशुभ, अथवा-घाती के अघातीरूप के रस छे ते अनुभाव कडेवाय छे गृहीत कर्मपुद्गलानामेव रसनु उत्पन्न थवुं ते अनुभाव, अथवा अनुभाग अध छे. कर्मोना विशिष्ट अथवा विविध प्रकारना पाक ते विपाक कडेवाय छे. तात्पर्य अ छे के:—कर्मनु इल ते विपाक छे, अने तेना उदय ते अनुभाव कडेवाय छे. अथवा कर्मोनी तरेड-तरेडनी क्षण देवानी शक्ति तेने विपाक कडे छे अने तेनु अनुभाव छे अने ते ते क्षणो अनुभाव पशु अनुभाव छे. *

अधनां कारण कथायरूप परिणामनी तीव्रता अने मन्दताना प्रमाणे प्रत्येक कर्मोना तीव्र अथवा मन्द इल देवानी शक्ति उत्पन्न थवुं नथ छे, ते क्षणो उत्पन्न करवावुं सामर्थ्य ते अनुभाव छे.

* “अणुभागे, अणुभावे, विवागे, रसे-त्ति एगट्ठा” अनुभागोऽनुभावो, विपाको रसः, इत्येकार्यकाः । अनुभाग, अनुभाव, विपाक अने रस अने अधा अर्थक छे.

दर्शनमोहरूपेण, एवं यथा नारकायुष्यं तिर्यगायुष्यरूपेण न परिणमति तथा तदायुष्यमपि न पुनरन्यायुष्यरूपेण ।

एतत्सर्वं प्रकृतिबन्धविषये परिवर्तनं यथा भवति तथाऽध्यवसायसामर्थ्यात् स्थितिरसयोरपि परिवर्तनं भवति । तीव्रादिर्मन्दादिभावेन परिणमति, मन्दादिरपि तीव्रादिभावेन परिणमति । एवमुत्कृष्टा स्थितिर्जघन्यरूपेण परिणमति, जघन्या चोत्कृष्टरूपेण ।

अनुभावानुसारं तीव्रं मन्दं वा यस्य कर्मणः फलमनुभूतं भवति चेत् तदा तत्कर्मप्रदेशा आत्मप्रदेशेभ्योऽपगता भवन्ति, न पुनस्ते कर्मपुद्गलाः संलग्ना भवन्ति ।

बदलता, और चारित्रमोहनीय दर्शनमोहनीय के रूप में नहीं पलटता । उसी प्रकार नरकायु कभी तिर्यंचायु के रूप में नहीं पलटती और तिर्यंचायु किसी अन्य आयुके रूप में नहीं बदलती ।

यह सब परिवर्तन जैसे प्रकृतिबन्ध के विषय में होता है उसी प्रकार अध्यवसाय की शक्ति से स्थिति और रस में भी होता है । कभी तीव्र रस, मंद रस के रूप में बदल जाता है, और कभी मन्द रस, तीव्र रस के रूप में परिवर्तित हो जाता है । इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति जघन्यरूप में और जघन्य स्थिति उत्कृष्टरूप में बदल जाती है ।

अनुभाव के अनुसार जिस कर्म का तीव्र या मन्द फल भोग लिया जाता है, उस कर्म के प्रदेश आत्मप्रदेशों से हट जाते हैं—फिर वे आत्मा के साथ नहीं लगे रहते हैं ।

इपमां षडलाती नथी, अने आश्रितमोहनीय दर्शनमोहनीयना इपमां षडलाती नथी. अे प्रभाषे नरकायु डेअर्वणत पषु तिर्यंच आयुना इपमां पलटातुं नथी, अने तीर्थंचायु णीन डेअर्व आयुना इपमां पलटातुं नथी.

आ तमाभ परिवर्तन जेथी रीते प्रकृतिबंधना विषयमां थाय छे, ते प्रभाषे अध्यवसायनी शक्तिथी स्थिति अने रसमां पषु थाय छे—क्यारेक तीव्ररस, मंदरसना इपमां षडलाअं नथ छे, अने क्यारेक मंदरस, तीव्ररसना इपमां परिवर्तित थअं नथ छे. अे प्रभाषे उत्कृष्ट स्थिति जघन्य इपमां अने जघन्य स्थिति उत्कृष्ट इपमां षडलाअं नथ छे.

अनुभावप्रभाषे डेअर्व कर्मनु तीव्र अथवा मंद इल भोगवी लेवाय तो ते कर्मना प्रदेश आत्मप्रदेशोथी डटी नथ छे—पछी ते आत्मानी साथे लागेला रहेता नथी.

वरणीयाद्यष्टविधमूलप्रकृतिष्वेव प्रवर्तते, नतूत्तरप्रकृतिषु । कस्यापि मूल-
प्रकृतिरूपकर्मवन्धस्य काचिदुत्तरप्रकृतिस्तदीयेतरोत्तरप्रकृतिरूपेण विपरिणता
भवति, कर्मपुद्गलस्य तादृशपरिणमनसामर्थ्यात् । तत्र प्राक्तनोत्तरप्रकृतिगतानु-
भावः परिवर्तितोत्तरप्रकृतिस्वभावानुरूपं तीव्रं मन्दं वा फलं प्रदत्ते ।

यथा—मतिज्ञानावरणीयं यदा श्रुतज्ञानावरणीयादिसजातीयोत्तर-
प्रकृतिरूपं प्राप्नोति तदा मतिज्ञानावरणीयानुभावोऽपि श्रुतज्ञानावरणीयादिस्वभा-
वानुरूपमेव श्रुतज्ञानादीनामावरणं विधत्ते ।

उत्तरप्रकृतिषु कतिचित् सजातीया अपि प्रकृतयो नान्यरूपेण परिणता
भवन्ति । यथा-दर्शनमोहश्चारित्रमोहरूपेण न परिणमति; तथा चारित्रमोहोऽपि न
यह नियम नहीं है । किसी भी मूलप्रकृति की कोई उत्तरप्रकृति उसी मूलप्रकृति
की किसी दूसरी उत्तरप्रकृति के रूप में भी परिणत हो सकती है, क्यों कि कर्मपुद्गल
में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति विद्यमान है । वहाँ पहले वाली उत्तरप्रकृति में
रहा हुआ अनुभाव बदली हुई उत्तरप्रकृति के स्वभाव के अनुसार तीव्र या मन्द फल
देता है ।

जैसे—मतिज्ञानावरणीय जब श्रुतज्ञानावरणीयसजातीय उत्तरप्रकृति के रूप में पलटता
है तब मतिज्ञानावरणीय का अनुभाव भी श्रुतज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार श्रुतज्ञान
का आवरण करता है ।

उत्तरप्रकृतियों में कुछ ऐसी भी प्रकृतियाँ हैं जो सजातीय होते हुए भी
अन्यरूप में पलटती नहीं हैं, जैसे—दर्शनमोहनीय, कभी चारित्रमोहनीय के रूप में नहीं

आ नियम नहीं। केवल पक्ष मूलप्रकृतिनी केवल उत्तरप्रकृति ते मूलप्रकृतिनी केवल
पीछे उत्तर प्रकृतिना रूपमां पक्ष परिशुद्ध यथं शक्ये छे, कारणके कर्मपुद्गलमां ओ प्रभावे
परिशुभननी शक्ति विद्यमान छे। त्यां प्रथम वाणी उत्तरप्रकृतिमां रखेला अनुभाव
अद्वैती गथेला उत्तर प्रकृतिना स्वभाव अनुसार तीव्र अथवा मंद इल. आपे छे.

जैसे—मतिज्ञानावरणीय न्याये श्रुतज्ञानावरणीय—सजातीय उत्तर प्रकृतिना
रूपमां पलटाय छे, त्यारे मतिज्ञानावरणीयना अनुभाव पक्ष श्रुतज्ञानावरणीयना स्वभाव
प्रभावे श्रुतज्ञानं आवरण करे छे.

उत्तरप्रकृतिओमां केद्वैतीक ओवी पक्ष प्रकृतिओ छे के जे सजातीय होवा छतांय
पक्ष अन्यरूपमां पलटती नहीं. जेवी रीते—दर्शनमोहनीय केवल वप्रत चारित्रमोहनीयना

(१) ज्ञानावरणीयादिकर्मणां कारणीभूताः, (२) सर्वदिक्ष्वस्थिताः, (३) तीव्रमन्दादिभेदाद् मनोवाक्कायक्रियाविशेषसंयोगात् कर्मवर्गणायोग्याः पुद्गलाः सर्वात्मप्रदेशेषु वद्धा भवन्ति । (४) औदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारक-तैजस-भाषा-श्वासोच्छ्वास-मनोवर्गणाऽपेक्षयाऽपि सूक्ष्मपरिणतिरूपा एव कर्मवर्गणा-योग्याः वद्धाः भवन्ति, न तु वादराः । (५) तत्रापि त एव पुद्गला वद्धा भवन्ति, ये खलु यत्राकाशे जीवोऽवगाढस्तत्रैव वर्तमानाः, न तु तद्बहिःक्षेत्रवर्तिनः ।

(६) तथाविधा अपि पुद्गलाःस्थिता एव वद्धा भवन्ति, न तु गतिपरिणताः, प्रचलितस्वभावत्वेन बन्धानर्हत्वात् । (७) असंख्यातप्रदेशिनो जीवस्यैकैकः

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के कारणभूत, (२) समस्त दिशाओं में स्थित, (३) तीव्र मन्द आदि के भेद से मन, वचन और काय की क्रियाविशेष के संयोग से कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशों में वद्ध हो जाते हैं । (४) औदारिक वैक्रिय, आहारक, तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, और मनोवर्गणा की अपेक्षा भी सूक्ष्म परिणतिरूप कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल ही बंधते हैं, वादर नहीं बंधते । (५) उन में भी वही पुद्गल बंधते हैं जो एकक्षेत्रावगाढ हों, अर्थात् जिन आकाशप्रदेशों में जीव है उन्हीं आकाशप्रदेशों में विद्यमान हों, बाहर के क्षेत्र में अगवाहन करने वाले नहीं बंधते । (६) ऐसे पुद्गल भी स्थित ही बंधते हैं चलते-फिरते हुए पुद्गल नहीं बंधते, चलित स्वभाव वाले होने के कारण वे बन्ध के योग्य नहीं हैं, (७) असंख्यातप्रदेशी जीव का

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंना कारणभूत, (२) समस्त दिशाओंमें स्थित, (३) तीव्र, मन्द आदिना भेदधी मन, वचन अने कायानी क्रिया-विशेषना संयोगधी कर्मवर्गणाना योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशोंमें बद्ध थरु न्यथे छे, (४) औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, भाषा, श्वासोच्छ्वास, अने मनोवर्गणानी अपेक्षाअये पणु सूक्ष्मपरिणतिरूप कर्मवर्गणाना योग्य पुद्गलन बंधे छे; आहर बंधता नथी, (५) अंभं पणु ते पुद्गल बंधे छे केने अेक क्षेत्रावगाढ होय, अर्थात्-ने आकाशप्रदेशोंमें एव छे तेन आकाशप्रदेशोंमें विद्यमान होय. बंधारना क्षेत्रमें अवगाढन करवावाणा बंधता नथी. (६) अेवा पुद्गल पणु ने स्थिर होय तो बंधाय छे, पणु चालता इरतां पुद्गलो बंधता नथी, कारण के चलिित स्वभाववाणा होवाना कारणे ते बंधने योग्य नथी. (७) असंख्यात प्रदेशी एवने

इदमत्र तत्त्वम्-कर्मणां फलं विविधं भवति । कर्मैव मूलप्रकृतिः । सर्वासां-
मूलप्रकृतीनां फलविविधत्वं तथाऽन्यथा चेति प्रकारद्वयेन भवति ।

येनाध्यवसायप्रकारेण यादृक्स्वभावं कर्म वद्धं, तत् तथा=तेनैव प्रकारेण
अन्यथा च=प्रकारान्तरेणापि विपच्यते=तस्य विपाको भवति । स च तीव्र-
मन्दाद्यवस्थाभेदेन शुभस्तथाऽशुभोऽपि । तत्र कदाचिच्छुभमप्यशुभरसतयाऽनु-
भूतये कर्म, अशुभं च शुभरसतयेति बोध्यम् ।

सकपायजीवेन मनोवागादिद्वारेण क्रियाविशेषस्य कर्ता भिन्नभिन्नस्वभा-
वानां कर्मपुद्गलानां स्वभावानुसारं तत्तत्परिमाणविभागेन सम्बन्धः प्रदेशबन्धः ।

તાત્પર્યે યહ હૈ કિ કર્મોં કા ફલ વિવિધ પ્રકાર-કા હોતા હૈ । કર્મ હી મૂલ
પ્રકૃતિ હૈ । સમસ્ત મૂલપ્રકૃતિયોં કા ફલ ડસી રૂપ મેં યા અન્યથા રૂપ મેં ડો પ્રકાર
સે હોતા હૈ ।

જિસ પ્રકાર કે અધ્યવસાય સે જિસ સ્વભાવ વાલા કર્મ વેંધા હૈ વહ ડસી રૂપ મેં
યા અન્યથા રૂપ મેં ફલ ડેતા હૈ । વહ ફલ તીવ્ર યા મન્દ અવસ્થા-ભેદ સે શુભ મી હોતા હૈ
ઔર અશુભ મી હોતા હૈ । કમી શુભ મી અશુભ રસ કે રૂપ મેં ઔર કમી અશુભ શુભ રસ કે
રૂપ મેં મોગા જાતા હૈ ।

(૪) પ્રદેશબન્ધ—

મન વચન આદિ કે દ્વારા ક્રિયાવિશેષ કરને વાલે કપાયયુક્ત જીવ કે સાથ ભિન્ન-ભિન્ન
સ્વભાવ વાલે કર્મપુદ્ગલોં કા સ્વભાવ કે અનુસાર અમુક-અમુક પરિમાણ વિભાગ કે સાથ
સમ્બન્ધ હોના પ્રદેશબન્ધ હૈ ।

તાત્પર્ય એ છે કે:- કર્મોંનાં ફલ વિવિધ પ્રકારનાં હોય છે. કર્મજ મૂલપ્રકૃતિ
છે. તમામ મૂળપ્રકૃતિઓનું ફલ તે રૂપમાં અથવા ખીલરૂપમાં, એમ બે પ્રકારથી હોય છે.

બે પ્રકારના અધ્યવસાયથી બે સ્વભાવવાળાં કર્મ બાંધ્યાં છે તે એજ રૂપમાં
અથવા ખીલ રૂપમાં ફલ આવે છે. તે ફલ તીવ્ર અથવા મંદ અવસ્થા-લેહથી શુભ
પણ હોય છે, અને અશુભ પણ હોય છે, કોઈ વખત શુભ પણ અશુભ રસના રૂપમાં
અને કોઈ વખત અશુભ તે શુભ રસના રૂપમાં લોગવવામાં આવે છે.

(૪) પ્રદેશબન્ધ—

મન, વચન આદિ દ્વારા ક્રિયા-વિશેષ કરવા વાળા કપાયયુક્ત જીવની સાથે ભિન્ન-
ભિન્ન સ્વભાવ વાળા કર્મપુદ્ગલોના સ્વભાવ અનુસાર અમુક-અમુક પરિમાણવિભાગની
સાથે સમ્બન્ધ થવો તે પ્રદેશબન્ધ છે.

वा स्वभावः ? अथवा (३) स्वभावः कोऽपि वस्तुधर्मः ? । इति विकल्पत्रयगत-
दोषाणां कथनं पूर्वं कृतमासीदतो विरम्यते, तस्मात् पुण्यपापे कर्मणी पौद्गलिके
विद्येते, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम् ।

पुण्यपापसद्भावे युक्तीस्तावत् प्रदर्शयामः—

पुण्यपापे द्वे अपि भिन्ने स्वतन्त्रे स्तः, तत्कार्यभूतयोः सुखदुःखयो-
र्यागपद्येनानुभवाभावात्, अतोऽनेनैव भिन्नकार्यदर्शनेन तत्कारणभूतयोः
पुण्यपापयोर्भिन्नताऽनुमीयते । जीवकर्मणोः परिणामरूपे पुण्यपापे कारणतः
कार्यतश्चानुमीयते ।

दानादिक्रियाणां हिंसादिक्रियाणां च कारणरूपत्वात् तत्कार्यरूपपुण्य-

वस्तु का धर्म है ? इन तीनों विकल्पों में आने वाले दोषों का कथन पहंले किया जा चुका
है, अत एव यहाँ पुनरुक्ति नहीं की जाती । अत एव पुण्य और पाप को पौद्गलिक कर्म ही
स्वीकार करना चाहिए ।

पुण्य और पाप के सद्भाव में युक्तियाँ दिखलाते हैं—

पुण्य और पाप दोनों भिन्न और स्वतन्त्र हैं, क्यों कि उनका फल सुख और दुःख
एक साथ नहीं मोगा जाता । कार्य की यह भिन्नता देखने से उनके कारणभूत पुण्य और
पाप की भिन्नता का अनुमान होता है । जीव और कर्म के परिणामरूप पुण्य और पाप का
अनुमान कारण से और कार्य से होता है ।

दानादि क्रियाएँ और हिंसा आदि क्रियाएँ कारण हैं, अत एव उनका कार्य

वस्तुनेो धर्म छे ? आ त्रण्येय विकल्पोभां आववावाणा दोपोनुं कथन प्रथम कही सूकथा
छीये, ओटला कारणुथी अहिं पुनइदित करता नथी. ओ भाटे पुएथ अने पापने
पौद्गलिक कर्मो स्वीकार करवे. जेथंये.

पुण्य अने पापना सद्भावमां युक्तिओ पतावे छेः—

पुण्य अने पाप अन्ने जूहा अने स्वतंत्र छे, कारणु छे तेनुं द्रण सुण अने
इःअ ओक साथे लोगववामां आवतुं नथी. कार्यनी आ भिन्नता जेवाथी तेना कारणभूत
पुण्य अने पापनी भिन्नतानुं अनुमान थाय छे. एव अने कर्मना परिणामरूप पुण्य
अने पापनुं अनुमान कारणुथी अने कार्यथी थाय छे.

दान आदि क्रियाओ अने हिंसा आदि क्रियाओ कारणु छे, ते भाटे तेनुं कार्य

प्रदेशोऽनन्तैर्ज्ञानावरणीयकर्मस्कन्धैर्वद्धः । एवमनन्तैर्दर्शनावरणीयादिकर्मस्कन्धैर्वद्धः ।
(८) तत्र ते स्कन्धा अपि प्रत्येकमनन्तानन्तप्रदेशिनः सन्ति । इति प्रदेशबन्धेऽष्ट
हेतवः ।

पुण्यपापकर्मनिरूपणम्—

ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं पौद्गलिकं कर्म प्रत्येकं द्विविधम्—पुण्यपापभेदात् ।
शुभकर्म—पुण्यम् । अशुभं कर्म—पापम् । ननु विनाऽपि पुण्यपापाभ्यां स्वभावत
एव जगद्वैचित्र्यं जायते किं पुनस्तत्कल्पनया ? उच्यते—शृणु—स्वभावादेव हि
त्रयो विकल्पाः समुत्पद्यन्ते यथा—(१) स्वभावः किं वस्तुरूपः ? (२) कारणाभावो

एक—एक प्रदेश अनन्त ज्ञानावरणीय आदि कर्मस्कन्धों के साथ बंधता है, उसी प्रकार
अनन्तदर्शनावरणीय आदि कर्मस्कन्धों के साथ भी बंधता है । (८) कर्म के वे स्कन्ध भी
अनन्तानन्तप्रदेशी होते हैं । प्रदेशबन्ध में ये आठ हेतु हैं ।

पुण्यकर्म और पापकर्म—

ज्ञानवरणीय आदि प्रत्येक पौद्गलिक कर्म दो-दो प्रकार का है, पुण्यरूप और
पापरूप । शुभ कर्म पुण्य और अशुभ पाप कहलाता है ।

शङ्का—पुण्य और पाप के विना ही स्वभावसे जगत् की विचित्रता हो सकती है, फिर
पुण्य पाप की कल्पना करने से क्या लाभ है ? ।

समाधान—स्वभाववाद में तीन विकल्प हो सकते हैं, जैसे स्वभाव कोई
वस्तु है ?, या कारण का अभाव ही स्वभाव कहलाता है ?, अथवा स्वभाव किसी

એક એક પ્રદેશ અનન્ત જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મસ્કન્ધોની સાથે પણ બંધાય છે. એ
પ્રમાણે દર્શનાવરણીય આદિ કર્મસ્કન્ધોની સાથે પણ બંધાય છે. (૮) કર્મના તે સ્કન્ધ
પણ અનન્તાનન્તપ્રદેશી હોય છે. પ્રદેશ બંધમાં આ આઠ હેતુ છે.

પુણ્યકર્મ અને પાપકર્મ—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રત્યેક પૌદ્ગલિક કર્મ બે-બે પ્રકારના છે—(૧) પુણ્યરૂપ અને
(૨) પાપરૂપ શુભ કર્મ—પુણ્ય અને અશુભ કર્મ—પાપ કહેવાય છે.

શંકા—પુણ્ય અને પાપ વિનાજ, સ્વભાવથી જગતની વિચિત્રતા કોઈ શકે છે,
તો પછી પુણ્ય પાપની કલ્પના કરવાથી શું લાભ છે ?

સમાધાન—સ્વભાવવાદમાં ત્રણ વિકલ્પ (તર્ક—વિતર્ક) થઈ શકે છે; જેમકે સ્વભાવ
શું કોઈ વસ્તુ છે ? અથવા; કારણનો અભાવજ સ્વભાવ કહેવાય છે ? અથવા સ્વભાવ કોઈ

तत्कारणत्वासिद्धेः । तद्वैचित्र्यस्य चादृष्टकर्मारव्यहेतुं विनाऽभावात् । शुभ-
शरीरादीनां पुण्यकार्यत्वात्, अशुभशरीरादीनां पापकार्यत्वाच्च पुण्यपापभेदेन
तस्य कर्मणो द्वैविध्यं सिद्धम् ।

पुण्यं पापं चेति द्वे कर्मणी भिन्ने स्वतन्त्ररूपे स्तः, इत्यत्रागमोऽपि
प्रमाणम् । उक्तञ्च स्थानाङ्गसूत्रे—“एणे पुण्णे । एणे पावे” इति । एवमेव
समवायाङ्गेऽपि ।

सर्वघातिप्रकृतयः—

(१) केवलज्ञानावरणीयम् । (२) केवलदर्शनावरणीयम् । (३) निद्रा,
(४) निद्रानिद्रा, (५) प्रचला, (६) प्रचलाप्रचला, (७) स्त्यानर्द्धिः,
(८-११) अनन्तानुबन्धिकपायचतुष्टयम्, (१२-१५) अप्रत्याख्यानकपायचतुष्टयम्,

यह विचित्रता अदृष्ट कारण-कर्म के विना नहीं हो सकती, शुभ शरीर आदि पुण्य का
कार्य है और अशुभ शरीर आदि पाप का कार्य है । अतः पुण्य और पाप के भेद से
कर्म दो प्रकार का सिद्ध होता है ।

पुण्यकर्म और पापकर्म दोनों स्वतन्त्र-भिन्न हैं, इस विषय में आगम भी प्रमाण है ।
स्थानाङ्ग सूत्र में कहा है—‘पुण्य एक है पाप एक है’ । इसी प्रकार समवायाङ्गसूत्र में
भी कहा है ।

सर्वघाती प्रकृतियाँ—

(१) केवलज्ञानावरणीय, (२) केवलदर्शनावरणीय, (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा,
(५) प्रचला, (६) प्रचलाप्रचला, (७) स्त्यानर्द्धिः, (८-११) अनन्तानुबन्धी-क्रोध, मान,
माया, लोभ, (१२-१५) अप्रत्याख्यानारण-क्रोध, मान, माया, लोभ, (१६-१९) प्रत्याख्यान-

आ विचित्रता अदृष्ट कारण-कर्मना विना होई शक्ये नहि । शुभ शरीर आदि पुण्यनुं
कार्य्ये छे । अने अशुभ शरीर आदि पापनुं कार्य्ये छे । ते कारणधी पुण्य अने पापना
बेदधी कर्म के प्रकारनां सिद्ध थाय छे ।

पुण्यकर्म अने पापकर्म अने स्वतन्त्र-भिन्न छे । आ विषयमां आगम पणु
प्रमाणु छे, स्थानांग सूत्रमां कहुं छे—“पुण्य ओक छे, पाप ओक छे.” ओ न
प्रमाणु समवायाङ्ग-सूत्रमां पणु कहुं छे ।

सर्वघाती प्रकृतियों—

(१) केवलज्ञानावरणीय, (२) केवलदर्शनावरणीय, (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा
(५) प्रचला, (६) प्रचलाप्रचला, (७) स्त्यानर्द्धिः, (८-११) अनन्तानुबन्धी-क्रोध, मान,
माया, लोभ, (१२-१५) अप्रत्याख्यानारण-क्रोध, मान, माया, लोभ, (१६-१९) प्रत्याख्यानारण-

પાપાત્મકો જીવકર્મપરિણામોઽસ્તિ । યથા-કૃપ્યાદિક્રિયાણાં શાલિ-યવ-ગોધૂમા-
દિકં નિયમેન ફલં ભવતિ । इदमनुमानं कारणतो भवति ।

एवं कार्यतोऽपि कारणस्यानुमानं भवति । यथा-अस्ति शरीरादीनां
कारणं, तेषां कार्यरूपत्वात् । यथा-घटस्य मृदण्डचक्रादिसामग्रीसहितः
कुम्भकारः कारणम् ।

न च, दृष्ट एव मातापितादिकः शरीरादीनां कारणमस्तु, इति वाच्यम्,
दृष्टकारणस्य समानत्वेऽपि सुरूपकुरुपादिभावेन शरीरादीनां वैचित्र्यदर्शनात्तस्य

भी અવશ્ય હોના ચાહિય, ઔર વહી કાર્ય જીવ ઔર કર્મ કા પરિણામરૂપ પુણ્ય ઔર પાપ
હૈ । जैसे कृषि आदि क्रियाओं का शालि, जौ, गेहूँ आदि फल नियम से होता है । यह
कारण से अनुमान है ।

इसी प्रकार कार्य से भी कारण का अनुमान होता है, जैसे शरीर आदि का कारण
अवश्य है, क्यों कि वह कार्य है, जैसे घटका कारण मिट्टी; दण्ड, चक्र आदि सामग्री से युक्त
कुंभार होता है ।

શક્તિ-શરીર આદિ કા કારણ પ્રત્યક્ષ સે પ્રતીત હોને વાલે માતા-પિતા આદિ હી
માનના ચાહિય ।

समाधान-दिखाई देने वाले कारण की समानता होने पर भी शरीर में सुरूपता
कुरुपता आदि की विचित्रता देखी जाती है, अतः उन्हें कारण नहीं माना जा सकता,

પણ અવશ્ય હોવું જોઈએ, અને તે કાર્ય જીવ અને કર્મના પરિણામરૂપ પુણ્ય અને
પાપ છે; જેવી રીતે ખેતી આદિ ક્રિયાઓમાં શાલિ-ડાંગર, જવ, ઘઉં આદિ ફલ
નિયમથી થાય છે. આ કારણથી અનુમાન છે.

આ પ્રમાણે કાર્યથી પણ કારણનું અનુમાન થાય છે. જેમ શરીર આદિનું કારણ
જરૂર છે; કારણ કે તે કાર્ય છે, જેવી રીતે ઘટનું કારણ માટી, ટાંક, ચક્ર-આકળો,
આદિ સામગ્રીથી યુક્ત કુંભાર હોય છે.

શક્તિ-શરીર આદિનું કારણ પ્રત્યક્ષથી જણાતા માતા-પિતા આદિ માનવા જોઈએ.

સમાધાન:-દેખાવાવાળા કારણની સમાનતા હોવા છતાંય પણ શરીરમાં સુરૂપતા
કુરૂપતા આદિની વિચિત્રતા જોવામાં આવે છે, તેથી તેમને કારણ માની શકાશે નહિ.

तयोरावृतेति लोकव्यवहारवत् जीवस्य सर्वज्ञानावरणं केवलज्ञानावरणीयप्रकृत्या क्रियते, इति व्यपदिश्यते ।

मतिज्ञानादिविषयान् अर्थान् न जानाति जीवस्तत्र मतिज्ञानावरणीयादि-
प्रकृत्युदय एव मतिज्ञानादिकमावृणोति, न तु केवलज्ञानावरणीयोदयस्तत्र
कारणं भवतीति बोध्यम् । एवं केवलदर्शनस्यानन्तभागोऽप्यनावृत एव, तत्रापि
मेघदृष्टान्तानुसारेणावरणव्यवहारमादाय केवलदर्शनावरणीयस्य सर्वधातित्वमुपपद्यते ।
तत्रापि चक्षुर्दर्शनावरणीयादिप्रकृत्युदयादेव जीवश्चक्षुर्दर्शनादिविषयानर्थान् ज्ञातुं न
शक्नोति, न तु केवलदर्शनावरणीयोदयस्तत्र कारणमिति बोध्यम् ।

गई । इसी प्रकार 'केवलज्ञानावरण प्रकृति जीव के समस्त ज्ञानका आवरण करती है' ऐसा कहा जाता है ।

जीव मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों को नहीं जानता, इस में मतिज्ञानावरणीय प्रकृति का उदय ही कारण है, वही मतिज्ञान को रोकता है । इस में केवलज्ञानावरणीय का उदय कारण नहीं है । इसी प्रकार केवलदर्शन का अनन्तवाँ भाग उधाडा रहता है । वहाँ भी मेघ के दृष्टान्त के अनुसार आवरण का व्यवहार समझ कर केवलदर्शनावरणीय को सर्वधाती प्रकृति समझना चाहिए । यहाँ भी चक्षुर्दर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों को जीव चक्षुर्दर्शनावरणीय आदि के उदय से ही नहीं जानता । वहाँ केवलदर्शनावरणीय कारण नहीं समझना चाहिए ।

तमाम कांति-प्रकाश ढंकाई गई. એ પ્રમાણે કેવલજ્ઞાનવરણ પ્રકૃતિ જીવના સમસ્ત જ્ઞાનનું આવરણ કરે છે, એમ કહેવાય છે.

જીવ મતિજ્ઞાનના વિષયભૂત પદાર્થોને જાણતો નથી; તેમાં મતિજ્ઞાનાવરણીય પ્રકૃતિ-કર્મને ઉદયજ કારણરૂપ છે. તેજ મતિજ્ઞાનને રોકે છે એમાં કેવલજ્ઞાનાવરણીયને ઉદય કારણ રૂપ નથી. એ પ્રમાણે કેવલદર્શનને અનન્તમે ભાગ ઉધાડો રહે છે. ત્યાં પણ મેઘના દૃષ્ટાન્ત પ્રમાણે આવરણને વ્યવહાર સમજી લઈને કેવલદર્શનાવરણીયને સર્વધાતી પ્રકૃતિ સમજવું જોઈએ, અહીં પણ ચક્ષુર્દર્શન આદિના વિષયભૂત પદાર્થોને જીવ ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય આદિના ઉદયથી જાણતો નથી, ત્યાં કેવલદર્શનાવરણીય કારણ નહિ સમજવું જોઈએ.

(१६-१९) प्रत्याख्यानकपायचतुष्टयम्, (२०) मिथ्यात्वं च, एता विंशतिः प्रकृतयः सर्वघातिन्यः ।

समस्तावरणक्षयादाविर्भूतं सकलद्रव्यपर्यायग्राहि केवलज्ञानं, तदाच्छादनकृत् केवलज्ञानावरणीयम् । इदं हि केवलज्ञानोपघातेन सर्वमेव द्रव्यपर्यायज्ञानं प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्यच्यते ।

ननु-सर्वजीवानां केवलज्ञानस्यानन्तभागोऽनादृत एवावतिष्ठते, तस्याप्यावरणे तु जीवस्याजीवत्वमापद्येत तर्हि कथं केवलज्ञानावरणीयस्य सर्वघातित्वसंभवः ? इति चेत्, उच्यते—

यथा घनीभूतघनपटलेन सूर्यचन्द्रमसोर्वहुतरप्रभासमावरणे सर्वाऽपि प्रभा

वरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व । ये वीस प्रकृतियाँ सर्वघाती हैं ।

केवलज्ञान समस्त आवरणों के क्षय से प्रकट होने वाला तथा समस्त द्रव्यों और पर्यायों को ग्रहण करने वाला है । इसे आच्छादित करने वाला कर्म केवलज्ञानावरणीय कहलाता है । यह कर्म केवलज्ञान का घात करके समस्त द्रव्य पर्यायों के ज्ञान का घात करता है, अत एव यह सर्वघाती कहलाता है ।

शङ्का—सब जीवों के केवलज्ञान का अनन्तवाँ भाग प्रकट रहता है, अगर उतना भी प्रकट न रहे तो जीव अजीव हो जायगा । ऐसी स्थिति में केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती कैसे हो सकता है ?

समाधान—जैसे अत्यन्त सघन मेघपटल के द्वारा सूर्य या चन्द्रमा की बहुत सी प्रभा छिप जाने के कारण लोक में कहा जाता है कि सूर्य-चन्द्र की सारी प्रभा छिप-हो, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व, आ वीस प्रकृतियों सर्वघाती छे.

केवलज्ञान समस्त आवरणों के क्षयशील प्रकट थावावाणुं, तथा समस्त द्रव्यों अने पर्यायों के ग्रहण करवा वाणुं छे, तेने आच्छादित करवावाणुं कर्म केवलज्ञानावरणीय कडेवाय छे. ओ कर्म केवल ज्ञानने घात करीने समस्त द्रव्य-पर्यायोंना ज्ञानने घात करे छे. ओटला भाटे ते सर्वघाती कडेवाय छे.

शङ्का—सर्व ज्ञानने केवलज्ञानने अनन्तमे भाग प्रकट रहे छे. पणु जे ओटला पणु प्रकट न रहे तो ज्ञान; अज्ञान थरुं जशे. आवी स्थितिमां केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती केवी रीते थरुं शके छे ?

समाधानः—जेवी रीते अत्यन्त, सघन मेघपटल (घनघोर वादल) द्वारा सूर्य अथवा चन्द्रमानी घणीअरी प्रभा-कांति दंकाथं नवाथी लोकमां कडेवाय छे के सूर्य-चन्द्रनी

તયોરાટ્ટેતિ લોકવ્યવહારવત્ જીવસ્ય સર્વજ્ઞાનાવરણં કેવલજ્ઞાનાવરણીયપ્રકૃત્યા ક્રિયતે, ઇતિ વ્યપદિશ્યતે ।

મતિજ્ઞાનાદિવિપયાન્ અર્થાન્ ન જાનાતિ જીવસ્ત્ર મતિજ્ઞાનાવરણીયાદિ- પ્રકૃત્યુદય એવ મતિજ્ઞાનાદિકમાટ્ટણોતિ, ન તુ કેવલજ્ઞાનાવરણીયોદયસ્ત્ર કારણં ભવતીતિ વોધ્યમ્ । એવં કેવલદર્શનસ્યાનન્તભાગોઽપ્યનાટ્ટ એવ, તત્રાપિ મેઘદૃષ્ટાન્તાનુસારેણાવરણવ્યવહારમાદાય કેવલદર્શનાવરણીયસ્ય સર્વઘાતિત્વમુપપદ્યતે । તત્રાપિ ચક્ષુર્દર્શનાવરણીયાદિપ્રકૃત્યુદયાદેવ જીવશ્ચક્ષુર્દર્શનાદિવિપયાનર્થાન્ જ્ઞાતું ન શક્નોતિ, ન તુ કેવલદર્શનાવરણીયોદયસ્ત્ર કારણમિતિ વોધ્યમ્ ।

ગર્હ । ઇસી પ્રકાર ‘કેવલજ્ઞાનાવરણ પ્રકૃતિ જીવ કે સમસ્ત જ્ઞાનકા આવરણ કરતી હૈ’ એસા કહા જાતા હૈ ।

જીવ મતિજ્ઞાન કે વિપયમૂત પદાર્થોં કો નહીં જાનતા, ઇસ મેં મતિજ્ઞાનાવરણીય પ્રકૃતિ કા ઉદય હી કારણ હૈ, વહી મતિજ્ઞાન કો રોકતા હૈ । ઇસ મેં કેવલજ્ઞાનાવરણીય કા ઉદય કારણ નહીં હૈ । ઇસી પ્રકાર કેવલદર્શન કા અનન્તવાં ભાગ ઉઘાડા રહતા હૈ । વહોં મી મેઘ કે દૃષ્ટાન્ત કે અનુસાર આવરણ કા વ્યવહાર સમજ કર કેવલદર્શનાવરણીય કો સર્વઘાતી પ્રકૃતિ સમજના ચાહિણ । યહાં મી ચક્ષુર્દર્શન આદિ કે વિપયમૂત પદાર્થોં કો જીવ ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય આદિ કે ઉદય સે હી નહીં જાનતા । વહોં કેવલદર્શનાવરણીય કારણ નહીં સમજના ચાહિણ ।

તમામ કાંતિ-પ્રકાશ ઠંકાઈ ગઈ. એ પ્રમાણે કેવલજ્ઞાનાવરણ પ્રકૃતિ જીવના સમસ્ત જ્ઞાનનું આવરણ કરે છે, એમ કહેવાય છે.

જીવ મતિજ્ઞાનના વિષયમૂત પદાર્થોને જાણતો નથી; તેમાં મતિજ્ઞાનાવરણીય પ્રકૃતિ-કર્મને ઉદય કરણરૂપ છે. તેજ મતિજ્ઞાનને રોકે છે એમાં કેવલજ્ઞાનાવરણીયને ઉદય કરણ રૂપ નથી. એ પ્રમાણે કેવલદર્શનને અનન્તમે લાગ ઉઘાડો રહે છે. ત્યાં પણ મેઘના દૃષ્ટાન્ત પ્રમાણે આવરણને વ્યવહાર સમજ લઈને કેવલદર્શનાવરણીયને સર્વઘાતી પ્રકૃતિ સમજવું જોઈએ, અહીં પણ ચક્ષુર્દર્શન આદિના વિષયમૂત પદાર્થોને જીવ ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય આદિના ઉદયથી જાણતો નથી, ત્યાં કેવલદર્શનાવરણીય કરણ નહિ સમજવું જોઈએ.

નનુ કેવલજ્ઞાનાવરણીયસ્ય કેવલદર્શનાવરણીયસ્ય ચ ક્ષયે સત્યપિ મતિજ્ઞાનાદીનાં ચક્ષુર્દર્શનાદીનાં ચ વિપયા જ્ઞાતમશકયાઃ સ્યુઃ, તેપાં કેવલજ્ઞાનાવરણીય-કેવલદર્શનાવરણીય-પ્રકૃત્યોર્વિપયાભાવાત્, મતિજ્ઞાનાવરણીયાદીનાં ચ ક્ષયાભાવાત્તાર્ભિર્મતિજ્ઞાનાદીનાં સમાવૃતત્વાદિતિ ચેત્ ? ઉચ્યતે—

કેવલજ્ઞાનલાભે શેપાવવોધલાભસ્ય તદન્તર્ગતત્વાત્ । યથા-ગ્રામલાભે ક્ષેત્રલાભો ગ્રામલામાન્તર્ભૂત एव भवति ।

નિદ્રાદિપશ્ચકમપિ સકલપદાર્થાવવોધં પ્રતિહન્તીતિ સર્વઘાતિ ભવતિ । યદિ પુનઃ સ્વાપદશાયામપિ કિંચિદ્ જ્ઞાનમસ્તીતિ સંભાવ્યતે, તર્હિ તત્રાપિ જલધરદૃષ્ટાન્તમાશ્રિત્ય સમાધેયમ્ ।

શઙ્કા—કેવલજ્ઞાનાવરણીય ઓર કેવલદર્શનાવરણીય કા ક્ષય હોને પર મી મતિજ્ઞાન આદિ ઓર ચક્ષુર્દર્શન આદિ કે વિપયમૂત પદાર્થો કા જાનના અશક્ય હોના ઑહિએ, ક્યો કિ વે કેવલજ્ઞાનાવરણીય, ઓર કેવલદર્શનાવરણીય પ્રકૃતિયો કે વિપય નહીં હૈં, ઓર મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિયો કા ક્ષય નહોં હુઆ હૈ, ડન્હીં સે મતિજ્ઞાન આદિ આવૃત હોતે હૈં ।

સમાધાન—કેવલજ્ઞાન કી પ્રાપ્તિ હોને પર શેપ જ્ઞાનો કી પ્રાપ્તિ ડસી મેં અન્તર્ગત હો જાતી હૈ । જૈસે ગ્રામ મિલને પર ક્ષેત્ર આપ હી મિલ જાતા હૈ ।

નિદ્રા આદિ પાંચ પ્રકૃતિયો મી સકલ પદાર્થો કે જ્ઞાન કા ઘાત કરતી હૈં, અત एव સર્વઘાતી હૈં । અગર નિદ્રા—અવસ્થા મેં મી કિન્ચિત્ જ્ઞાન કી સંભાવના કી જા સકતી હૈ તો વહોં મી મેઘ કા દૃષ્ટાન્ત લેકર સમાધાન કરના ઑહિએ ।

શંકા—કેવલજ્ઞાનાવરણીય અને કેવલદર્શનાવરણીયનો ક્ષય થવા છતાંય પણ મતિજ્ઞાન આદિ અને ચક્ષુર્દર્શન આદિના વિષયભૂત પદાર્થોને જાણવું તે અશક્ય હોવું જોઈએ; કારણ કે તે કેવલજ્ઞાનાવરણીય અને કેવલદર્શનાવરણીય પ્રકૃતિઓનો વિષય નથી. અને મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિઓનો ક્ષય થયો નથી, તેનાથી મતિજ્ઞાન આદિ આવૃત થાય છે.

સમાધાન—કેવલ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થવાથી શેપ જ્ઞાનોની પ્રાપ્તિ તેમાં અન્તર્ગત થઈ જાય છે. જેવી રીતે ગામ મળવાથી ખેતર પોતેજ મલી જાય છે.

નિદ્રા આદિ પાંચ પ્રકૃતિઓ પણ તમામ પદાર્થોના જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે, એ માટે તે સર્વઘાતી છે. અથવા નિદ્રા અવસ્થામાં પણ કિંચિત્ જ્ઞાનની સંભાવના ઠરાય છે. તે ત્યાં પણ મેઘનું દૃષ્ટાંત લઈને સમાધાન કરી લેવું જોઈએ.

अनन्तानुबन्ध्यादयो द्वादश कपायाः प्रत्येकं यथाक्रमं सम्यक्त्वं देशविरति-
चारित्रं सर्वविरतिचारित्रं च सर्वमेव व्रन्ति, तस्मादेते द्वादश कपायाः सर्वघातिन
इत्युच्यन्ते । तेषां प्रबलोदयेऽपि कुलाचारप्रभृतिकारणवशादशुद्धाहारादिविरमण-
दर्शनात् सर्वघातित्वं न संभवतीति नाशङ्कनीयम्, नवीनघनघटादृष्टान्ता-
श्रयणेन तस्यापि समाधेयत्वात् । मिथ्यात्वं तु सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं
सर्वमपि प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्युच्यते । यदि मिथ्यात्वस्य प्रबलोदयेऽपि
मनुष्यपश्वादिद्यस्तुविपयकं सम्यक्त्वमस्ति, कथं तर्हि सर्वघातित्वं मिथ्यात्वस्येति
संभाव्यते, तदाऽत्राप्युक्तजलदावलीदृष्टान्तः शरणीकरणीयः ।

अनन्तानुबन्धी आदि वारह कपाय क्रमशः सम्यक्त्व का देशविरति का, और
सर्वविरतिका पूर्णरूप से घात करते हैं, अतः ये वारह कपाय भी सर्वघाती कहलाते हैं । यह
शङ्का नहीं करनी चाहिए कि—इन कपायों का प्रबल उदय होने पर भी कुलाचार आदि
कारणों से अशुद्ध आहार आदि का त्याग देखा जाता है अत एव इन्हें सर्वघाती नहीं कहा
जा सकता, क्यों कि नवीन मेघघटाका दृष्टान्त लेकर इस शङ्का का भी समाधान किया जा
सकता है ।

मिथ्यात्व प्रकृति तो तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व का पूर्णरूप से घात करती
ही है, अतः वह सर्वघाती है । यदि मिथ्यात्व का प्रबल उदय होने पर भी मनुष्य
पशु आदि वस्तुओं सम्बन्धी सम्यक्त्व रहता है तो मिथ्यात्व को सर्वघाती कैसे कहा
जा सकता है ? इस शङ्का के समाधान के लिए भी उक्त मेघघटल के ही दृष्टान्त का आश्रय
लेना चाहिए ।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कपाय क्रमशः सम्यक्त्वने देशविरतिने अने सर्व
विरतिने पूर्णरूपी घात करे छे, तेथी अने बारह कपाय पणु सर्वघाती कहेवाय छे. अनेवी
शंका नहि करवी जेधजे के:-जे कपायेना प्रबल उदय वपते पणु कुलाचार आदि
कारणुथी अशुद्ध आहार आदिने त्याग जेवामां आवे छे. ते भाटे तेने सर्वघाती कही
शकशे नहि; कारणु के नवीन मेघ घटानु द्रष्टांत लधने आ शंकानु समाधान करी शकय छे.

मिथ्यात्व प्रकृति तो तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्वने पूर्णरूपी घात करे छे, तेथी ते सर्वघाती छे. जे मिथ्यात्वने प्रबल उदय होय ते वपते पणु-मनुष्य, पशु आदि
वस्तुओंसंबन्धी सम्यक्त्व रहे छे तो मिथ्यात्वने सर्वघाती देवी रीते कही शकशे ? अने
शंकाना समाधान भाटे पणु आगण कहेल मेघघटलनां द्रष्टांतने आश्रय लेवे जेधजे.

દેશઘાતિપ્રકૃતયઃ—

અથ દેશઘાતિપ્રકૃતયઃ કઃચ્યન્તે— (૧) મતિજ્ઞાનાવરણીયમ્, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીયમ્, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીયમ્, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીયમ્, एतानि चत्वारि ज्ञानावरणीयानि ४ । (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીયમ્, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીયમ્, (૩) અવધિદર્શનાવરણીયમ્, इति त्रीणि दर्शनावरणीयानि ७ । સંજ્વલનરૂપાઃ ક્રોધમાનમાયાલોભાશ્ચત્વારઃ કપાયાઃ ૧૧ । હાસ્ય-રત્ય-રતિ-મય-શોક-જુગુપ્સા-હ્રીવેદ-પુંવેદ-નપુંસકવેદમેદતો નવસંલ્યકા નોકપાયાઃ ૨૦ । તથા દાન-લાભ-ભોગો-પમોગ-વીર્યપ્રભેદાત્ પચ્ચવિંશતિઃ ૨૫ પ્રકૃતયો દેશઘાતિન્યઃ સન્તિ । મતિજ્ઞાનાવરણીયાદિચતુષ્ટયી પ્રકૃતિઃ કેવલજ્ઞાનાવરણીયાદૃતં દૈશિકં જ્ઞાનં હન્તિ, તસ્માદ્દેશઘાતિનીયમુચ્યતે ।

દેશઘાતી પ્રકૃતિયૌ—

અથ દેશઘાતી પ્રકૃતિયૌ કા કથન કિયા જાતા હૈઃ—(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, ये चार ज्ञानावरणीय ४ । તથા (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, ये तीन दर्शनावरणीय ७ । તથા સંજ્વલન-ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, ये चार कपाय ११ । હાસ્ય, રતિ, અરતિ, મય, શોક, જુગુપ્સા, હ્રીવેદ, પુરુષવેદ, નપુંસકવેદ કે મેદ સે નૌ નોકપાય ૨૦ । તથા દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપમાગાન્તરાય ઓર વીર્યાન્તરાય, ये पांच अन्तराय २५ । સવ મિલકર પચ્ચીસ દેશઘાતી પ્રકૃતિયૌ હૈ ।

મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર પ્રકૃતિયૌ કેવલજ્ઞાનાવરણીયદ્વારા આવૃત્ત એક દેશ જ્ઞાનકા ઘાત કરતી હૈ; અત એવ ઉન્હે દેશઘાતી પ્રકૃતિયૌ કહતે હૈ,

દેશઘાતી પ્રકૃતિઓ—

હવે દેશઘાતી પ્રકૃતિઓનું કથન-નિરૂપણ-કરવામાં આવે છે—(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, આ ચાર જ્ઞાનાવરણીય છે ૪, તથા (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, આ ત્રણ દર્શનાવરણીય, ૭, તથા સંજ્વલન-ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, એ ચાર કપાય, ૧૧, હાસ્ય, રતિ, અરતિ, મય, શોક, જુગુપ્સા, હ્રીવેદ, પુરુષવેદ, નપુંસકવેદ ના એકથી નવ નોકપાય, ૨૦, તથા દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપભોગાન્તરાય, અને વીર્યાન્તરાય આ પાંચ અન્તરાય ૨૫, બધી મળીને પચીસ દેશઘાતી પ્રકૃતિઓ છે. મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર પ્રકૃતિઓ કેવલજ્ઞાનાવરણીયદ્વારા આવૃત્ત એક દેશ જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે, તેટલા માટે તેને દેશઘાતી પ્રકૃતિ કહે છે.

મતિજ્ઞાનાદિવિષયાણામર્થાનામવગ્નોયો યન્ન ભવતિ, તન્ન મતિજ્ઞાનાવર-
ણીયાદિચતુષ્ટયપ્રકૃત્યુદયાદેવ । યન્નુ મતિજ્ઞાનાદિવિષયાણામનન્તપદાર્થાનાં જ્ઞાનં
ન ભવતિ તત્ કેવલજ્ઞાનાવરણીયપ્રકૃત્યુદયાદેવ ।

ચક્ષુર્દર્શનાવરણીયાદિત્રયી પ્રકૃતિઃ કેવલદર્શનાવરણીયાનાવૃતં કેવલ-
દર્શનૈકદેશં જ્ઞાનં હન્તીતિ દેશઘાતિત્વં સિદ્ધમ્ । ચક્ષુરાદિદર્શનવિષયભૂતાનામ-
ર્થાનાં દર્શનં યન્ન ભવતિ, તત્ ચક્ષુરાદિદર્શનાવરણીયપ્રકૃત્યુદયાદેવ; યન્ન
તદ્વિષયભૂતાનઅનન્તગુણાન્ ન પશ્યતિ, તત્ કેવલદર્શનાવરણીયોદયાદેવ ।

તથા-સંજ્વલનાશ્વત્વારઃ કપાયાસ્તથા નવ નોકપાયાશ્ચ લઘ્વસ્ય

મતિજ્ઞાન આદિ કે વિષયભૂત પદાર્થોં કા જો જ્ઞાન નહીં હોતા સો મતિજ્ઞાના-
વરણીય આદિ પ્રકૃતિયોં કે ઉદય સે હી સમજના ચાહિષ । ઓર જો પદાર્થ મતિજ્ઞાન
આદિ કે વિષય નહીં હૈં, ઉનેકે જ્ઞાનકા અભાવ કેવલજ્ઞાનાવરણીય પ્રકૃતિ કે ઉદય સે
હોતા હૈ ।

ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય આદિ તીન પ્રકૃતિયોં કેવલદર્શનાવરણીયદ્વારા અનાવૃત કેવલદર્શન
કે ઇકદેશ જ્ઞાનકા ઘાત કરતી હૈં, અતઃ વે દેશઘાતી હૈં । ચક્ષુર્દર્શન આદિ કે વિષયભૂત
પદાર્થોં કા જો જ્ઞાન નહીં હોતા સો ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિયોં કે ઉદય સે સમજના
ચાહિષ ઓર કેવલદર્શન કે વિષયભૂત અનન્ત ગુણોં કં જ્ઞાનકા જો અભાવ હોતા હૈ સો
કેવલદર્શનાવરણીય કે ઉદય સે હી સમજના ચાહિષ ।

ચાર સંજ્વલન કપાય ઓર નૌ નોકપાય પ્રાપ્ત હુષ ચારિત્ર કે ઇક દેશ કા

મતિજ્ઞાન આદિના વિષયભૂત પદાર્થોંનું જે જ્ઞાન થતું નથી તે મતિજ્ઞાનાવરણીય
આદિ પ્રકૃતિઓના ઉદયથીજ સમજી લેવું જોઈએ. અને જે પદાર્થ મતિજ્ઞાનાદિના
વિષય નથી તેના જ્ઞાનનો અભાવ કેવલજ્ઞાનાવરણીય પ્રકૃતિના ઉદયથી હોય છે.

ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય આદિ ત્રણ પ્રકૃતિઓ કેવલદર્શનાવરણીય દ્વારા અનાવૃત
કેવલદર્શનના એકદેશ જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે. એ કારણથી તે દેશઘાતી છે ચક્ષુર્દર્શન
આદિના વિષયભૂત પદાર્થોંનું જે જ્ઞાન થતું નથી તે ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય આદિ પ્રકૃતિઓના
ઉદયથી સમજવું જોઈએ, અને કેવલદર્શનના વિષયભૂત અનન્ત શુભોના જ્ઞાનનો જે
અભાવ થાય છે તે કેવલદર્શનાવરણીયના ઉદયથીજ સમજવું જોઈએ.

ચાર સંજ્વલન કપાય અને નવ નોકપાય પ્રાપ્ત થયેલા ચારિત્રના એક દેશનોજ

દેશઘાતિપ્રકૃતયઃ—

અથ દેશઘાતિપ્રકૃતયઃ કથ્યન્તે— (૧) મતિજ્ઞાનાવરણીયમ્, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીયમ્, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીયમ્, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીયમ્, એતાનિ ચત્વારિ જ્ઞાનાવરણીયાનિ ૪ । (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીયમ્, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીયમ્, (૩) અવધિદર્શનાવરણીયમ્, ઇતિ ત્રીણિ દર્શનાવરણીયાનિ ૭ । સંજ્વલનરૂપાઃ ક્રોધમાનમાયાલોભાશ્ચત્વારઃ કપાયાઃ ૧૧ । હાસ્ય-રત્ય-રતિ-ભય-શોક-જુગુપ્સા-સ્ત્રીવેદ-પુંવેદ-નપુંસકવેદભેદતો નવસંખ્યકા નોકપાયાઃ ૨૦ । તથા દાનાલાભ-ભોગો-પમોગ-વીર્યાભેદાત્ પચ્ચવિંશતિઃ ૨૫ પ્રકૃતયો દેશઘાતિન્યઃ સન્તિ । મતિજ્ઞાનાવરણીયાદિચતુષ્ટયી પ્રકૃતિઃ કેવલજ્ઞાનાવરણીયાદૃતં દૈશિકં જ્ઞાનં હન્તિ, તસ્માદ્દેશઘાતિનીયમુચ્યતે ।

દેશઘાતી પ્રકૃતિયૌ—

અવ દેશઘાતી પ્રકૃતિયૌ કા કથન ક્રિયા જાતા હૈઃ—(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, એ ચાર જ્ઞાનાવરણીય ૪ । તથા (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, એ ત્રીણ દર્શનાવરણીય ૭ । તથા સંજ્વલન-ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, એ ચાર કપાય ૧૧ । હાસ્ય, રતિ, અરતિ, ભય, શોક, જુગુપ્સા, સ્ત્રીવેદ, પુરુષવેદ, નપુંસકવેદ કે ભેદ સે નૌ નોકપાય ૨૦ । તથા દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપભોગાન્તરાય ઓર વીર્યાન્તરાય, એ પાંચ અન્તરાય ૨૫ । સવ મિલકર પચ્ચીસ દેશઘાતી પ્રકૃતિયૌ હૈં ।

મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર પ્રકૃતિયૌ કેવલજ્ઞાનાવરણીયદ્વારા આવૃત્ત એક દેશ જ્ઞાનકા ઘાત કરતી હૈં; અત એવ ઁન્હેં દેશઘાતી પ્રકૃતિયૌ કહતે હૈં,

દેશઘાતી પ્રકૃતિઓ—

હવે દેશઘાતી પ્રકૃતિઓનું કથન-નિરૂપણ-કરવામાં આવે છે—(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, આ ચાર જ્ઞાનાવરણીય છે ૪, તથા (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, આ ત્રણ દર્શનાવરણીય, ૭, તથા સંજ્વલન-ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, એ ચાર કપાય, ૧૧, હાસ્ય, રતિ, અરતિ, ભય, શોક, જુગુપ્સા, સ્ત્રીવેદ, પુરુષવેદ, નપુંસકવેદ ના ભેદથી નવ નોકપાય, ૨૦, તથા દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપભોગાન્તરાય, અને વીર્યાન્તરાય. આ પાંચ અન્તરાય ૨૫, બધી મળીને પચ્ચીસ દેશઘાતી પ્રકૃતિઓ છે. મતિજ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર પ્રકૃતિઓ કેવલજ્ઞાનાવરણીયદ્વારા આવૃત્ત એક દેશ જ્ઞાનનો ઘાત કરે છે, તેટલા માટે તેને દેશઘાતી પ્રકૃતિ કહે છે.

नानि६ । पञ्च जातयः५ । चतस्रो गतयः४ । द्वे खगती२ । चतस्रः आनु-
 पूर्ण्यः४ । आयुंवि चत्वारि४ । त्रसदशकम्१० । स्थावरदशकम्१० । उच्चैर्गोत्रम्१ ।
 नीचैर्गोत्रम्१ । सातवेदनीयम्१ । असातवेदनीयम्१ । वर्ग-गन्ध-रस-स्पर्शाख्या-
 श्रतस्रः प्रकृतयः४ । ७५ ॥

एताः प्रकृतयः कमपि ज्ञानादिगुणं न हन्तीत्यघातिन्य उच्यन्ते ।
 ∴ सर्वघातिप्रकृतिभिः सह वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि सर्वघातिफलं
 यन्ति । देशघातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि देशघातिरसं
 न्ति । यथा—स्वयमचौरश्चौरैः सह वर्तमानश्चौर इवावभासते तद्वत् ।

नन२८, पांच जातियाँ३३, चार गतियाँ३७, दो विहायोगतियाँ३९, चार
 ३, चार आयु४७, त्रसदशक५७, स्थावरदशक६७; उच्चगोत्र६८, नीचगोत्र६९,
 ७०, असातावेदनीय७१, तथा वर्ण, रस, गन्ध, और स्पर्शनामक चार

तियाँ ज्ञान आदि किसी गुणका घात नहीं करती हैं । इसी लिये ये अघाती
 । इनका सर्वघाती प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब ये स्वयं अघाती
 सर्वघाती रसको प्रकट करती हैं, और देशघाती प्रकृतियों
 न हो तो स्वयं अघाती होने पर भी देशघाती रस को प्रकट करती हैं ।
 न हो किन्तु चोरों के साथ हो तो वह भी चोर जैसा ही प्रतीत होता है ।
 प्रकृतियों का है ।

। पूर्वी, (४३) आर आयु, (४७) त्रसदशक, (५७) स्थावरदशक,
 । नीचगोत्र, (६६) सातावेदनीय, (७०) असातावेदनीय, (७१)
 अने स्पर्श नामनी आर प्रकृतिओ (७५)।

आदि कोरु शुष्मो घात करती नथो. अटला भाटे तेने
 रन्तु सर्वघाती प्रकृतिओनी साथे न्यारे तेतुं वेदन थाय छे
 नांय पणु अे सर्वघातीनुं क्षण प्रदर्शित करे छे. अथवा
 तेतुं वेदन छाय तो पोते अघाती छोए छतांय पणु
 शी शीते कोरु पुरुष चोर न छाय परन्तु ते शी साथे छाय
 अे प्रभावेअ आ अघाती प्रकृतिं समञ्जु.

अप
 आर

ચારિત્રસ્ય દેશમેવ ઘ્નન્તિ, તેપાં મૂલોત્તરગુણાતીચારજનકત્વાત્ । તસ્માદેવા-
હ્યયોદશ પ્રકૃતયો દેશઘાતિન્ય ઈતિ ઘોધ્યમ્ ।

તથા—દાનાન્તરાયાદિપચ્ચાન્તરાયરૂપાઃ પ્રકૃતયોઽપિ દેશઘાતિન્ય એવ ।
દાનલાભમોગોપમોગાનાં ચતુર્ણાં વિપયસ્તાવદ્ ગ્રહણધારણયોગ્યાન્યેવ દ્રવ્યાણિ
સન્તિ । તાનિ ચ સફલપુદ્ગલાસ્તિકાયસ્યાનન્તમાગરૂપે દેશ એવ વર્તન્તે, અતો
યાસાં પ્રકૃતીનામુદયાત્ પુદ્ગલાસ્તિકાયદેશવર્તીનિ દ્રવ્યાણિ દાતું લઘું મોક્તુમ્પમોક્તું
ચ ન શક્નોતિ તાઃ પ્રકૃતયો દાનલાભમોગોપમોગાન્તરાયરૂપાસ્તાવદેશઘાતિન્ય એવ ।

યત્તુ—સમસ્તલોકાન્તર્ગતાનિ દ્રવ્યાણિ દાતું લઘું મોક્તુમ્પમોક્તું ચ ન
પ્રભવતિ તદાનાન્તરાયાદિપ્રકૃત્યુદયતો ન ભવતિ, કિન્તુ તેપામેવ ગ્રહણધારણ-

હો ઘાત કરતે હૈં, ક્યોં કિં વે મૂલગુણોં ઓર ઉત્તરગુણોં મેં અતિચાર ઉત્પન્ન કરતે હૈં, ઈસ
કારણ યે તેરહ પ્રકૃતિયોં દેશઘાતી હૈં, એસા સમજના ચાહિયે ।

અન્તરાય કર્મ કી પાંચ પ્રકૃતિયોં મી દેશઘાતી હી હૈં । દાન, લાભ, મોગ ઓર
ઉપમોગ, ઈન ચાર કે વિપય પ્રહણ ઓર ધારણ કરને યોગ્ય દ્રવ્ય હી હૈં, ઓર એસે દ્રવ્ય
સમસ્ત પુદ્ગલાસ્તિકાય કે અનન્તવેં માગ હૈં, અતઃ જિન પ્રકૃતિયોં કે ઉદય સે પુદ્ગલાસ્તિકાય
કે એકદેશવર્તી દ્રવ્યોં કા દાન, લાભ, મોગ યા ઉપમોગ ન હો સકે વે દાનાન્તરાય આદિ
પ્રકૃતિયોં મી દેશઘાતી હી હૈં ।

સમસ્ત લોક કે અન્તર્ગત દ્રવ્યોં કા દાન, લાભ, મોગ ઓર ઉપમોગ નહીં
હો સકતા, સો યહ દાનાન્તરાય આદિ પ્રકૃતિયોં કે ઉદય સે નહીં, પરન્તુ ઈન દ્રવ્યોં કો

ઘાત કરે છે કારણ કે તે મૂલગુણો અને ઉત્તરગુણોમાં અતિચાર ઉત્પન્ન કરે છે, આ
કારણથી તે તેર પ્રકૃતિઓ દેશઘાતી છે. એ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ.

અન્તરાય કર્મની પાંચ પ્રકૃતિઓ પણ દેશઘાતીજ છે. દાન, લાભ, લોગ અને
ઉપલોગ, એ ચારના વિષય શ્રદ્ધા અને ધારણ કરવા યોગ્ય દ્રવ્યજ છે, અને એવા
દ્રવ્ય સમસ્ત પુદ્ગલાસ્તિકાયના અનન્તમે ભાગ છે, તેથી જે પ્રકૃતિઓના ઉદયથી
પુદ્ગલાસ્તિકાયના એકદેશવર્તી દ્રવ્યોને દાન, લાભ, લોગ અને ઉપલોગ ન થઈ
શકે, તે દાનાન્તરાય આદિ પ્રકૃતિઓ પણ દેશઘાતી છે.

સમસ્ત લોકના અન્તર્ગત દ્રવ્યોને દાન, લાભ, લોગ અને ઉપલોગ થઈ શકતો
નથી. તે આ દાનાન્તરાય આદિ પ્રકૃતિઓના ઉદયથી નહિ; પરન્તુ તે દ્રવ્યોને શ્રદ્ધા અને

योग्यताया अभावाद्दशक्यानुष्ठानत्वादिति मन्तव्यम् ।

वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि सर्वं वीर्यं न हन्तीति देशघातिन्येव । तथाहि-
सूक्ष्मनिगोदजीवात् प्रभृति आक्षीणमोहनीयजीवं वीर्यान्तरायस्य क्षयोपशमं-
विशेषाद् वीर्यं कस्यचिदल्पं, कस्यचिद् बहु, कस्यचिद् बहुतरं, कस्यचिद् बहुतरं
भवति, वीर्यान्तरायकर्मणोऽभ्युदये सूक्ष्मनिगोदस्यापि आहारपरिणमनकर्मदलिक-
ग्रहणगत्यन्तरगमनादिकं विद्यते । एतच्च वीर्यं विना न संभवति । तस्माद्देशत
एव वीर्यं वीर्यान्तरायप्रकृत्या हन्यते, न तु सर्वतः । यदि पुनरियं सर्वघातिनी

ग्रहण और धारण करने की योग्यता न होने के कारण अशक्यानुष्ठान से समझना चाहिए ।

वीर्यान्तराय प्रकृति भी समस्त वीर्य का घात नहीं करती अतः देशघाती है ।
सूक्ष्म निगोदिया जीव से लेकर क्षीणमोह-गुणस्थान पर्यन्त के जीवों में वीर्यान्तराय के
क्षयोपशम से किसी जीव में अल्प वीर्य (शक्ति) होता है, किसी में बहुत वीर्य होता
है, किसी में बहुत अधिक वीर्य होता है और किसी में अत्यन्त अधिक वीर्य होता
है । वीर्यान्तराय कर्मका उदय होने पर भी सूक्ष्म निगोद का जीव आहार का परिणमन
करता है, कर्मदलियों को ग्रहण करता है और दूसरी गति में जाता है । ये सब
कार्य वीर्य के बिना नहीं हो सकते । इस से यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय कर्म वीर्य
को एकदेश से ही घात करता है, सर्वदेश से नहीं । अगर यह प्रकृति सर्वघाती मानी जायं
तो जैसे सर्वघाती मिथ्यात्व के उदय में सम्यग्दर्शन लेशमात्र नहीं होता, और

धारण और धारण करने की योग्यता नहीं होवाना कारण अशक्यानुष्ठानही समझनु जेधये.

वीर्यान्तराय प्रकृति पणु समस्त वीर्यना घात करती नहीं, तेथी ते देशघाती छे.
सूक्ष्मनिगोदना एवथी लधने क्षीणमोहगुणस्थान सुधीना एवोमां वीर्यान्तरायना क्षयोप-
शमथी कोर एवमां अल्पवीर्य (थोडी शक्ति) होय छे, कोर एवमां बहु वीर्य होय छे;
कोर एवमां बहु अधिक वीर्य होय छे, अने कोरमां अत्यन्त अधिक वीर्य होय छे.
वीर्यान्तराय कर्मना उदय होय त्यारे पणु सूक्ष्म निगोदना एव आहारतुं परिणमन करे
छे, कर्मदलिकोने ग्रहण करे छे, अने भी ए गतिमां जाय छे. आ तमां कार्य वीर्य विना
थर शक नही, तेथी ये सिद्ध थयुं के:- वीर्यान्तराय कर्म वीर्यना अके देशने एव घात
करे छे, सर्वदेशना नही. अथवा तो आ प्रकृतिने सर्वघाती मानवामां आवे तो एवी रीते
सर्वघाती मिथ्यात्वना उदयमां सम्यग्दर्शन लेशमात्र पणु होय नही, अने एम

સ્યાત્ તદા સર્વઘાતિનો મિથ્યાત્વસ્ય કપાયદ્વાદશકસ્ય ચામ્યુદયે યથા જઘન્યમપિ સમ્યક્ત્વં દેશસંયમઃ સર્વસંયમશ્ચ નોપલભ્યતે, તથા વીર્યાન્તરાયસ્યોદયેઽપિ જઘન્યમપિ વીર્યગુણં નોપલભ્યેત, ન ચૈવં ભવતિ, તસ્માત્ વીર્યાન્તરાયમકૃતિરપિ દેશઘાતિનીતિ સિદ્ધમ્ ।

અઘાતિપ્રકૃતયઃ—

અઘાતિન્યઃ પ્રકૃતયઃ પચ્ચસન્તિઃ સન્તિ । તથાહિ—પ્રત્યેકં પ્રકૃતયઃ પરાઘાતો૧-ઉદ્ઘાસ૨-ઝસતપો૩-ઘોતા૪-અગુરુલઘુ૫-તીર્થકર૬-નિર્માણો૭-પઘાત૮-રૂપા અટ્ટૌ સન્તિ । (૧) ઔદારિકં, (૨) વૈક્રિયમ્, (૩) આહારકં, (૪) તૈજસં, (૫) કાર્મણં ચેતિ પચ્ચ શરીરાણિ ૫ । ત્રીણ્યુપાહ્વાનિ૩ । પટ્ સંસ્થાનાનિ૬ । પટ્ સંહન-

જૈસે વારહ કપાયો કા ઉદય હોને પર દેશવિરતિ ઓર સર્વવિરતિ, ઇક દેશ સે મી નહીં હોતી ડસી પ્રકાર વીર્યાન્તરાય કર્મ કા ઉદય હોને પર લેશમાત્ર મી વીર્યગુણ પ્રકટ નહીં હોને ઇાહિઇ, મગર ઇેસા નહીં હોતા, અતઃ યહ સિદ્ધ હુઆ કિ વીર્યાન્તરાય પ્રકૃતિ મી દેશઘાતી હી હૈ ।

અઘાતી પ્રકૃતિયાં—

અઘાતિ પ્રકૃતિયાં પચ્ચહત્તર ૭૫ હૈં, વે ઇસ પ્રકાર—(૧) પરાઘાત, (૨) ઉદ્ઘાસ, (૩) આતપ, (૪) ઉઘોત, (૫) અગુરુલઘુ, (૬) તીર્થકર, (૭) નિર્માણ, (૮) ઉપઘાત, યે આઠ પ્રત્યેક પ્રકૃતિયાં અઘાતી હૈં ૮ । ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક, તૈજસ, ઓર કાર્મણ શરીર, યે પાંચ શરીર અઘાતી પ્રકૃતિયાં હૈં ૧૩ । ત્રીણ ઉપાહ્વા ૧૬, છહ સંસ્થાન ૨૨,

બાર કપાયોનો ઉદય થવા સમયે દેવવિરતિ અને સર્વવિરતિ એકદેશથી પણ હોય નહીં; તે પ્રમાણે વીર્યાન્તરાય કર્મનો ઉદય થતાં લેશમાત્ર પણ વીર્યગુણ પ્રગટ થવો નહીં જોઈએ, પરંતુ એ પ્રમાણે થતું નથી, એ કારણથી સિદ્ધ થયું કે—વીર્યાન્તરાય પ્રકૃતિ પણ દેશઘાતીજ છે.

અઘાતી પ્રકૃતિઓ—

અઘાતી પ્રકૃતિઓ પંચોતેર (૭૫) છે. તે આ પ્રમાણે છે:—(૧) પરાઘાત, (૨) ઉદ્ઘાસ, (૩) આતપ, (૪) ઉઘોત, (૫) અગુરુલઘુ, (૬) તીર્થકર, (૭) નિર્માણ, (૮) ઉપઘાત, આ આઠ પ્રત્યેક પ્રકૃતિઓ અઘાતી છે. (૧) ઔદારિક, (૨) વૈક્રિય, (૩) આહારક, (૪) તૈજસ અને (૫) કાર્મણ શરીર, આ પાંચ શરીર અઘાતી પ્રકૃતિઓ છે; (૧૩) ત્રણ ઉપાંગ, (૧૬) છહ સંસ્થાન, (૨૨) છહ સંહનન, (૨૮) પાંચ ભૂતિઓ, (૩૩) ચાર ગતિ, ૩૭ જે વિહાયો-

नानि६ । पञ्च जातयः५ । चतस्रो गतयः४ । द्वे खगती२ । चतस्रः आनु-
पूर्व्यः४ । आयूपि चत्वारि४ । त्रसदशकम्१० । स्थावरदशकम्१० । उच्चैर्गोत्रम्१ ।
नीचैर्गोत्रम्१ । सातवेदनीयम्१ । असातवेदनीयम्१ । वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शाख्या-
श्रतस्रः प्रकृतयः४ । ७५ ॥

एताः प्रकृतयः कमपि ज्ञानादिगुणं न इन्तीत्यघातिन्य उच्यन्ते ।
इमाः सर्वघातिप्रकृतिभिः सह वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि सर्वघातिफलं
प्रदर्शयन्ति । देशघातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि देशघातिरसं
दर्शयन्ति । यथा-स्वयमचौरश्चौरैः सह वर्तमानश्चौर इवावभासते तद्वत् ।

छह संहनन२८, पांच जातियाँ३३, चार गतियाँ३७, दो विहायोगतियाँ३९, चार
आनुपूर्वी४३, चार आयु४७, त्रसदशक५७, स्थावरदशक६७; उच्चगोत्र६८, नीचगोत्र६९,
सातावेदनीय७०, असातावेदनीय७१, तथा वर्ण, रस, गन्ध, और स्पर्शनामक चार
प्रकृतियाँ७५ ।

ये प्रकृतियाँ ज्ञान आदि किसी गुणका घात नहीं करती हैं । इसी लिये ये अघाती
कहलाती हैं । जब इनका सर्वघातो प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब ये स्वयं अघाती
होते हुए भी सर्वघातो रसको प्रकट करती हैं, और देशघाती प्रकृतियों
के साथ इनका वेदन हो तो स्वयं अघाती होने पर भी देशघाती रस को प्रकट करती हैं ।
जैसे कोई पुरुष चोर न हो किन्तु चोरों के साथ हो तो वह भी चोर जैसा ही प्रतीत होता है ।
यही हाल इन अघाती प्रकृतियों का है ।

गति, (३६) आर अनुपूर्वी, (४३) आर आयु, (४७) त्रसदशक, (५७) स्थावरदशक,
(६७) उच्चगोत्र, (६८) नीचगोत्र, (६९) सातावेदनीय, (७०) असातावेदनीय, (७१)
तथा वर्ण, रस, गन्ध, अने स्पर्श नामनी आर प्रकृतिओ (७५)।

आ प्रकृतिओ ज्ञान आदि कोई शुष्मना घात करती नथो. ओटला भाटे तेने
अघाती प्रकृति कडे छे, परन्तु सर्वघाती प्रकृतिओनी साथे न्यारे तेनु वेदन थाय छे
तो पोते अघाती होवा छतांय पषु ओ सर्वघातीनुं इण प्रदर्शित करे छे. अथवा
देशघाती प्रकृतिओनी साथे तेनु वेदन होय तो पोते अघाती होवा छतांय पषु
देशघाती रसने प्रकट करे छे. जेवी रीते कोई पुरुष चोर न होय परन्तु चोरानी साथे होय
तो ते पषु चोर जेवा न हेभाय छे. ओ प्रभावेन आ अघाती प्रकृतिओ विषे समजवुं.

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कपायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसंयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुणं नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायमकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम् ।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति । तथाहि—प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१-उर्ध्वासार-ऽऽतपो३-घोता४-ऽगुरुलघु५-तीर्थकर६-निर्माणो७-पघात८-रूपा अष्टौ सन्ति । (१) औदारिकं, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कर्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३ । षट् संस्थानानि६ । षट् संहन-

जैसे चारह कपायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर लेशमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अतः यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है ।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ हैं, वे इस प्रकार—(१) पराघात, (२) उर्ध्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियां अघाती हैं। औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कर्मण शरीर, ये पांच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३ । तीन उपाङ्ग १६, छह संस्थान २२,

चार कपायोनो उदय तथा सभये देवविरति अने सर्वविरति अेकदेशधी पषु डोय नही; ते प्रभाषे वीर्यान्तराय कर्मनो उदय यतां लेशमात्र पषु वीर्यशुषु प्रगट शवो नही जेधये, परन्तु अे प्रभाषे थनुं नधी, अे कारणधी सिद्ध थयुं डे-वीर्यान्तराय प्रकृति पषु देशघातीञ्छे ।

अघाती प्रकृतिओ—

अघाती प्रकृतिओ पंचोत्तर (७५) छे. ते आ प्रभाषे छे:—(१) पराघात, (२) उर्ध्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, आ आठ प्रत्येक प्रकृतिओ अघाती छे. (१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस अने (५) कर्मण शरीर, आ पांच शरीर अघाती प्रकृतिओ छे; (१३) त्रय उपाङ्ग, (१६) छह संस्थान, (२२) छह संहनन, (२८) पांच नतिओ, (३३) चार गति, ३७ जे विहायो-

नानि६ । पञ्च जातयः५ । चतस्रो गतयः४ । द्वे स्वगती२ । चतस्रः आनु-
पूर्व्यः४ । आयुषि चत्वारि४ । त्रसदशकम्१० । स्यावरदशकम्१० । उच्चैर्गोत्रम्१ ।
नीचैर्गोत्रम्१ । सातावेदनीयम्१ । असातावेदनीयम्१ । वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शाख्या-
श्रतस्रः प्रकृतयः४ । ७५ ॥

एताः प्रकृतयः कमपि ज्ञानादिगुणं न हन्तीत्यघातिन्य उच्यन्ते ।
इमाः सर्वघातिप्रकृतिभिः सह वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि सर्वघातिफलं
प्रदर्शयन्ति । देशघातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि देशघातिरसं
दर्शयन्ति । यथा-स्वयमचौरश्चौरैः सह वर्तमानश्चौर इवावभासते तद्वत् ।

छह संहनन२८, पांच जातियाँ३३, चार गतियाँ३७, दो विहायोगतियाँ३९, चार
आनुपूर्वाँ४३, चार आयु४७, त्रसदशक५७, स्यावरदशक६७; उच्चगोत्र६८, नीचगोत्र६९,
सातावेदनीय७०, असातावेदनीय७१, तथा वर्ण, रस, गन्ध, और स्पर्शनामक चार
प्रकृतियाँ७५ ।

ये प्रकृतियाँ ज्ञान आदि किसी गुणका घात नहीं करती हैं । इसी लिये ये अघाती
कहलाती हैं । जब इनका सर्वघातो प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब ये स्वयं अघाती
होते हुए भी सर्वघातो रसको प्रकट करती हैं, और देशघाती प्रकृतियों
के साथ इनका वेदन हो तो स्वयं अघाती होने पर भी देशघाती रस को प्रकट करती हैं ।
जैसे कोई पुरुष चोर न हो किन्तु चोरों के साथ हो तो वह भी चोर जैसा ही प्रतीत होता है ।
यही हाल इन अघाती प्रकृतियों का है ।

गति, (३६) आर अनुपूर्वी, (४३) आर आयु, (४७) त्रसदशक, (५७) स्यावरदशक,
(६७) उच्चगोत्र, (६८) नीचगोत्र, (६९) सातावेदनीय, (७०) असातावेदनीय, (७१)
तथा वर्ण, रस, गंध, अने स्पर्श नामनी आर प्रकृतियों (७५)।

आ प्रकृतियों ज्ञान आदि कोश शुष्मना घात करती नथो. अटला भाटे तेने
अघाती प्रकृति कडे छे, परन्तु सर्वघाती प्रकृतियोंनी साथे न्यारे तेनुं वेदन थाय छे
तो पोते अघाती होवा छतांय पक्ष अे सर्वघातीनुं क्षण प्रदर्शित करे छे. अथवा
देशघाती प्रकृतियोंनी साथे तेनुं वेदन होय तो पोते अघाती होवा छतांय पक्ष
देशघाती रसने प्रगट करे छे. नेवी रीते कोश पुरुष आर न होय परन्तु येशनी साथे होय
तो ते पक्ष आर नेवा न देखाय छे. अे प्रभाषेन आ अघाती प्रकृतियों विषे समजवुं.

उत्तरप्रकृतिसंख्या—

જ્ઞાનાવરણીયાઘટ્ટવિધકર્મણામુત્તરપ્રકૃતિસંખ્યા અષ્ટચત્વારિંશદ્વિકશતં ૧૪૮
ભવન્તિ । તથાહિ—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયસ્ય-મતિ-શ્રુતા-ઙ્વધિ-મનઃપર્યય-કેવલજ્ઞાનાવરણીય-
મેદાત્ પચ્ચ ।

(૨) દર્શનાવરણીયસ્ય-ચક્ષુર્દર્શના-ઙ્વચક્ષુર્દર્શના-ઙ્વધિદર્શન-કેવલદર્શનાવર-
ણીયાનિ ચત્વારિ, તથા-નિદ્રા-નિદ્રાનિદ્રા-પ્રચલા-પ્રચલાપ્રચલા-સ્ત્યાનર્દિમેદાત્
પચ્ચ મિલિત્વા નવ ભવન્તિ ।

(૩) વેદનીયસ્ય શાતાશાતમેદેન દ્વૌ મેદૌ સ્તઃ ।

उत्तरप्रकृतियोंकी संख्या—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોં કી ઉત્તર પ્રકૃતિયોં કી સંખ્યાઈ (મધ્યમવિવેક્ષાં સે)
૧૪૮ હૈં । વે ઇસ પ્રકાર—

(૧) જ્ઞાનાવરણીય કી પાંચ—(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩)
અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય ।

(૨) દર્શનાવરણીય કી નૌ—(૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય,
(૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રાનિદ્રા,
(૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા-પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનર્દિ, યે પાંચ નિદ્રાઈ મિલકર કુલ નૌ
પ્રકૃતિયોં હૈં ।

(૩) વેદનીય કી દો—સાતાવેદનીય ઓર અસાતાવેદનીય ।

उत्तरप्रकृतिओंकी संख्या—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોંની ઉત્તરપ્રકૃતિઓંની સંખ્યા (મધ્યમ વિવેક્ષાર્થી)
એકસોને અઠતાલીસ (૧૪૮) છે. તે આ પ્રમાણે—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયની પાંચ — (૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય,
(૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મનઃપર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય.

(૨) દર્શનાવરણીયની નવ છે. (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય,
(૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રા-નિદ્રાં
(૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા-પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનર્દિ, આ પાંચ નિદ્રાઓ મળીને કુલ
નવ પ્રકૃતિઓ થાય છે.

(૩) વેદનીયની બે (૧) સાતાવેદનીય અને અસાતાવેદનીય.

(४) मोहनीयस्य-आष्टाविंशतिर्भेदा भवन्ति । तथाहि-सम्यक्त्वमोहनीय-मिध्यात्वमोहनीय-मिश्रमोहनीय-भेदेन त्रीणि दर्शनमोहनीयानि । पञ्चविंशति-चारित्रमोहनीयानि मिलित्वाऽष्टाविंशतिः । चारित्रमोहनीयस्य पञ्चविंशति-भेदाः, यथा - कषायमोहनीय१ - नोकषायमोहनीय२-भेदेन चारित्रमोहनीयं द्विविधम् । तत्र कषायमोहनीयस्य षोडश भेदा भवन्ति, यथा-अनन्तानुबन्धी क्रोधो मानो, माया, लोभः ४, अनन्तः=संसारो नारक-तिर्यग्-मनुष्य-देव-जन्म-जरा-मरण-परम्परालक्षणः, तदनुबन्धादनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभा-श्रत्वारः कषायाः४ । तत्र क्रोधः-कृत्याकृत्यविवेकोऽमूलकाऽक्षमारूप आत्म-परिणामः । मानो-गर्वः, माया-शाठ्यम्, लोभो-गृध्नुता । अनन्तानुबन्धि-

(४) मोहनीय की अट्ठाईस-सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिध्यात्वमोहनीय, ये तीन दर्शनमोहनीय की, तथा पच्चीस चारित्रमोहनीय की कुल अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं । चारित्रमोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं-कषायचारित्र-मोहनीय, और नोकषायचारित्रमोहनीय । कषायचारित्रमोहनीय के सोलह भेद हैं, जैसे-अनन्तानुबन्धी क्रोध मान, माया, लोभ, जो कषाय, नारक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति में जन्म जरा-मरण-रूप अनन्त संसार का अनुबंध करे, वह अनन्तानुबन्धी है । उस के चार भेद हैं-क्रोध, मान, माया और लोभ । कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट कर देने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम क्रोध कहलाता है । गर्वको मान कहते हैं । माया का अर्थ कपट है । गृद्धिभाव (लालच) लोभ कहलाता है । अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क में क्रोध को पर्वत की राजि

(४) मोहनीयकर्मनी अष्टावीस छे. (१) सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, अने मिध्यात्वमोहनीय, आ त्रयु दर्शनमोहनीयनी, तथा पच्चीस चारित्रमोहनीयनी, अने प्रभावे कुल अष्टावीस प्रकृतियाँ छे. चारित्रमोहनीयनी पच्चीस प्रकृतियाँ आ प्रभावे छे:- चारित्रमोहनीयना छे वेद छे. (१) कषायचारित्रमोहनीय अने (२) नोकषायचारित्रमोहनीय, कषायचारित्रमोहनीयना सोण वेद छे. वेभके-अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ. वे कषाय नारक, तिर्यच, मनुष्य, अने देवगतिमां जन्म, जरा, मरणरूप अनन्त संसारना अनुबंध करे ते अनन्तानुबन्धी छे. तेना चार वेद छे, क्रोध, मान, माया अने लोभ, कर्तव्य-अकर्तव्यनां विवेकना नाश करवावाणा अक्षमारूप आत्माना परिणाम ते क्रोध कहेवाय छे. गर्वने मान कहे छे. मायाना अर्थ कपट छे. लालच ते लोभ कहेवाय छे. अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कमां क्रोधने पर्वतनी राजिनुं (पर्वत कषायाधी

કપાયચતુષ્ટયે ક્રોધસ્ય પર્વતરાજિઃ, માનસ્ય શૈલસ્તમ્મઃ, માયાયાઃ-વંશમૂલં, લોભસ્ય-કૃમિજરાગઃ, ઉદાહરણમ્ ।

પ્રથમપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયકપાયાઃ ક્રોધાદયશ્ચત્વારઃ૪ । તત્ર પ્રત્યાખ્યાનં દ્વિવિધમ્ - દેશવિત્તિ-સર્વવિરત્તિ-મેદાત્ । પ્રત્યાખ્યાનમિત્યત્ર પ્રતિશબ્દઃ । પ્રતિ-પેધવાચી, પ્રતિપેધસ્યાખ્યાનં=પ્રકાશનમ્-પ્રત્યાખ્યાનમ્ । 'સર્વાન્ પ્રાણિનો ન હન્મિ યાવજ્જીવમ્' ઇત્યાદિ ભાવતઃ સ્વાચાર્યાદિ સમીપે પ્રકાશનમિત્યર્થઃ । પ્રત્યાખ્યાનસ્યાવરણીયમ્ પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમ્, ન પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમ્ = અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયમ્ । અત્રોપમાર્યો 'નજ્' - શબ્દઃ ।

(પર્વત ફટને સે ઉત્પન્ન હુઈ દરાર,) કા, માન કો શૈલસ્તંમકા, માયાકો વાંસકી જડકા ઓર લોભકો કિરમિચી રંગકા ઉદાહરણ દિયા ગયા હૈ ।

इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण के क्रोध आदि चार भेद हैं । प्रत्याख्यान दो प्रकारका है-देशविरति और सर्वविरति । 'प्रत्याख्यान' शब्द में 'प्रति' उपसर्ग निषेध-वाचक है, अर्थात् प्रतिषेध का प्रकाश करना प्रत्याख्यान है, अर्थात् "मैं जीवनपर्यन्त किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करूँगा" इत्यादि प्रकार से भावपूर्वक अपने आचार्य आदि के समक्ष प्रकाशित करना प्रत्याख्यान है । प्रत्याख्यान का आवरणीय प्रत्याख्यानावरणीय कहलाता है । जो प्रत्याख्यानावरणीय न हो वह अप्रत्याख्यानावरणीय है । यहाँ 'नज्' शब्द उपमा के अर्थ में है, अर्थात् जो कपय प्रत्याख्यानावरणीय के समान हो वह अप्रत्याख्यानावरणीय

ઉત્પન્ન થયેલી કાટ-ચીર) માનને શૈલસ્તંભનું, માયાને વાંસની જડનું અને લોભને કિરમીચ રંગનું ઉદાહરણ આપ્યું છે.

આ પ્રમાણે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણના ક્રોધ આદિ ચાર ભેદ છે. પ્રત્યાખ્યાન બે પ્રકારના છે-દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિ 'પ્રત્યાખ્યાન' શબ્દમાં 'પ્રતિ' ઉપસર્ગ નિષેધ-વાચક છે. અર્થાત્ પ્રતિષેધનો પ્રકાશ કરવો તે પ્રત્યાખ્યાન છે. અર્થાત્ "હું જીવન સુધી કોઈ પણ પ્રાણીની હિંસા કરીશ નહીં." ઇત્યાદિ પ્રકારે ભાવપૂર્વક પોતાના આચાર્ય આદિના સમક્ષ પ્રકાશિત કરવું તે પ્રત્યાખ્યાન છે. પ્રત્યાખ્યાન નો આવરણીય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે. જે પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય ન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે. અર્થે 'નજ્' શબ્દ ઉપમાના અર્થમાં છે. અર્થાત્-જે કપાય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયની સમાન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે. અથવા 'નજ્' અટપ-શૈલું-એવા અર્થ - થાત્

प्रत्याख्यानावरणीयवत् = अप्रत्याख्यानावरणीयम् । यद्वा-अल्पार्थो नञ्, अल्पं प्रत्याख्यानम्=अप्रत्याख्यानम्, तस्यावरणीयमिति । अल्पं=देशविरतिरूपं प्रत्याख्यानं समावृणोति कपायचतुष्टयम्, तस्मादप्रत्याख्यानावरणीयमित्युच्यते । यः कपायः स्वल्पं देशविरतिरूपमावृणोति स सर्वविरतिरूपं प्रत्याख्यानमावृणोति । त्येवेति नात्र चित्रम् । यत्कर्मोदयादाविर्भूताः कपायाः केवलं विरतिमात्रमावृण्वन्ति ते त्वप्रत्याख्यानावरणीयाः कपायाः ।

एवं प्रत्याख्यानावरणीयकपायाः क्रोधादयश्चत्वारः । अत्र प्रत्याख्यानशब्देन सर्वविरतिपरिग्रहः । ये पुनः कपायाः सर्वविरतिमेवं प्रतिवृण्वन्ति, न तु देशविरतिं ते प्रत्याख्यानावरणीया इति ।

कहलाता है । अथवा 'नञ्' अल्प-अर्थ में है, अर्थात् अल्प प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कहलाता है, उसका आवरणीय अप्रत्याख्यानावरणीय है । यह कपायचतुष्टय अल्प अर्थात् देशविरतिरूप प्रत्याख्यान को आवृत करता है, इस कारण यह अप्रत्याख्यानावरणीय कहलाता है । जो कपाय स्वल्प देशविरति को भी नहीं होने देता वह सर्वविरति को न होने दे, इस में आश्चर्य ही क्या है ? । जिस कर्म के उदय से आविर्भूत कपाय केवल विरतिमात्र को रोकते हैं, वे अप्रत्याख्यानावरणीय कहलाते हैं ।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार प्रत्याख्यानावरणीय हैं । यहा प्रत्याख्यान शब्द से सर्वविरति का ग्रहण किया गया है । जो कपाय, सिर्फ सर्वविरति का ही घात करते हैं, देशविरति का नहीं वे प्रत्याख्यानावरणीय कहलाते हैं ।

अल्प प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कहेवाय छे. तेनुं आवरणीय अप्रत्याख्यानावरणीय छे. आ कपायचतुष्टय अल्प अर्थात् देशविरतिरूप प्रत्याख्यानने आवृत करे छे (हांकी दे छे). ओ कारणुथी ओ अप्रत्याख्यानावरणीय कहेवाय छे. ओ कपाय स्वल्प देश-विरतिने पणु थवा देता नथी. ते सर्वविरतिने नहि थवादे. ओमां आश्चर्यं नुं छे ? ओ कर्मना उदयथी आविर्भूत (उत्पन्न थयेला) कपाय केवल विरतिमात्रने रोकै छे, ते अप्रत्याख्यानावरणीय कहेवाय छे.

आ प्रमाणे क्रोध आदि चार प्रत्याख्यानावरणीय छे, अहि प्रत्याख्यान शब्दथी सर्वविरतिनुं अहणु कयुं छे. ओ कपाय, मात्र सर्वविरतिने घात करे छे, देशविरतिने नही, ते प्रत्याख्यानावरणीय कहेवाय छे.

કપાયચતુષ્ટયે ક્રોધસ્ય પર્વતરાજિઃ, માનસ્ય શૈલસ્તમ્ભઃ, માયાયાઃ-વંશમૂલં,
લોભસ્ય-કૃમિજરાગઃ, ઉદાહરણમ્ ।

एवमप्रत्याख्यानानावरणीयकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः४ । तत्र प्रत्याख्यानं
द्विविधम् - देशविरति-सर्वविरति-भेदात् । प्रत्याख्यानमित्यत्र प्रतिशब्दः । प्रति-
पेधवाची, प्रतिपेधस्याख्यानं=प्रकाशनम्-प्रत्याख्यानम् । 'सर्वान् प्राणिनो
न हन्मि यावज्जीवम्' इत्यादि भावतः स्वाचार्यादि समीपे
प्रकाशनमित्यर्थः । प्रत्याख्यानस्यावरणीयम् प्रत्याख्यानानावरणीयम्, न
प्रत्याख्यानानावरणीयम् = अप्रत्याख्यानानावरणीयम् । अत्रोपमार्थो 'नञ्' - शब्दः ।

(પર્વત ફટને સે ઉત્પન્ન હુઈ દરા,) કા, માન કો શૈલસ્તંભકા, માયાકો વાંસકી જડકા
ઔર લોભકો કિરમિચી રંગકા ઉદાહરણ દિયા ગયા હૈ ।

इसी प्रकार अप्रत्याख्यानानावरण के क्रोध आदि चार भेद हैं । प्रत्याख्यान दो
प्रकारका है-देशविरति और सर्वविरति । 'प्रत्याख्यान' शब्द में 'प्रति' उपसर्ग निषेध-
वाचक है, अर्थात् प्रतिपेध का प्रकाश करना प्रत्याख्यान है, अर्थात् " मैं जीवनपर्यन्त किसी भी
प्राणीकी हिंसा नहीं करूँगा " इत्यादि प्रकार से भावपूर्वक अपने आचार्य आदि के समक्ष प्रकाशित
करना प्रत्याख्यान है । प्रत्याख्यान का आवरणीय प्रत्याख्यानानावरणीय कहलाता है । जो
प्रत्याख्यानानावरणीय न हो वह अप्रत्याख्यानानावरणीय है । यहाँ 'नञ्' शब्द उपमा के अर्थ
में है, अर्थात् जो कषाय प्रत्याख्यानानावरणीय के समान हो वह अप्रत्याख्यानानावरणीय

ઉત્પન્ન થયેલી કાટ-ચીર) માનને શૈલસ્તંભનું, માયાને વાંસની જડનું અને લોભને
કિરમીચી રંગનું ઉદાહરણ આપ્યું છે.

આ પ્રમાણે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણના ક્રોધ આદી ચાર ભેદ છે. પ્રત્યાખ્યાન બે
પ્રકારના છે-દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિ 'પ્રત્યાખ્યાન' શબ્દમાં 'પ્રતિ' ઉપસર્ગ નિષેધ-
વાચક છે. અર્થાત્ પ્રતિપેધનો પ્રકાશ કરવો તે પ્રત્યાખ્યાન છે. અર્થાત્ "હું જીવન સુધી
કોઈ પણ પ્રાણીની હિંસા કરીશ નહીં." ઇત્યાદિ પ્રકારે ભાવપૂર્વક પોતાના આચાર્ય આદિના
સમક્ષ પ્રકાશિત કરવું તે પ્રત્યાખ્યાન છે. પ્રત્યાખ્યાન નો આવરણીય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય
કહેવાય છે. જે પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય ન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે. અર્થે 'નજ્'
શબ્દ ઉપમાના અર્થમાં છે. અર્થાત્—જે કષાય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયની સમાન હોય તે
અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે. અથવા 'નજ્' અદપ-થોડું-એવા અર્થમાં છે. અર્થાત્

प्रत्याख्यानावरणीयकपायचतुष्टये क्रोधस्य-वालुकाराजिः, मानस्य-काष्ठस्तम्भः, मायाया-गच्छद्बलीवर्दमूत्रिका, लोभस्य-खञ्जनरागः ।

संज्वलनकपायचतुष्टये क्रोधस्य-सलिलराजिः, मानस्य-तृणस्तम्भः, मायाया-रथकारतक्षितकाष्ठसंवलितस्त्रक्, लोभस्य-हरिद्राराग इति ।

नोकपायमोहनीयस्य नव भेदाः सन्ति-हास्यं, रतिः, अरति, शोकः, भयं, जुगुप्सा, पुरुषवेदः, स्त्रीवेदः, नपुंसकवेद इति २५ ।

(५) आयुष्यकर्म चतुर्विधम्-नारक-तैर्यग्-मानुष-देवायुर्भेदात् । यस्योदयात् प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायीभूत आत्मा नारकादिभावेन जीवति, यस्य च

प्रत्याख्यानावरणीय कपाय की चौकडी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण वालु में खींची हुई लकड़ी है । मान का उदाहरण काठका खंभा है । माया का उदाहरण चलते हुए वैल के मूत्र की टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ी है और लोभ का उदाहरण खंजन-राग है ।

संज्वलन कपाय की चौकडी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण जल में बनाई हुई लकड़ी है । मानका उदाहरण तिनके का स्तम्भ है । माया का उदाहरण बढई द्वारा छीले हुए काठका छिलका है, और लोभ का उदाहरण हलदी का रंग है ।

नोकपाय मोहनीय के नौ भेद हैं-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद २५ ।

(५) आयुष्य कर्म के चार भेद हैं-नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु । जिस कर्म के उदय से प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायी अर्थात् जिस कर्म के उदय से उस-उस गतियोग्य प्रकृतिविशेष में स्थित आत्मा नारक आदि के रूप में जीता है

प्रत्याख्यानावरणीय कपायनी चौकडीतुं उदाहरण-क्रोधतुं उदाहरण-रेतीमां करेदी लीटी छे. मानतुं उदाहरण-काष्ठनो थांलवो छे. मायातुं उदाहरण-यालता भणदीआना भूत्रनी वांडी-खूंडी लींटी छे, अने लोभतुं उदाहरण-खंजन-राग छे.

संज्वलन कपायनी चौकडीना उदाहरण-क्रोधतुं उदाहरण-पाणीमां करेदी लीटी छे. मानतुं उदाहरण तणुभलानो थांलवो छे. मायातुं उदाहरण भट्ट द्वारा (सुतार द्वारा) छेलेला लाकडानी छाल छे अने लोभतुं उदाहरण-हलदरनो रंग छे.

नोकपायमोहनीयना नव भेद छे-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, अने नपुंसकवेद. २५.

(५) आयुष्य-कर्मना चार भेद छे-नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, अने देवायु. जे कर्मना प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायी, अर्थात् जे कर्मना उदयथी ते-ते गतियोग्य प्रकृतिविशेषमां स्थित आत्मा नारकी आदिना रूपमां लवे छे, अने जेना क्षयथी भरषु

પ્રત્યાખ્યાનસ્ય દેશવિરતિસર્વવિરતિરૂપસ્ય પરિણામદ્વયસ્યોત્પત્તેર્વિચા-
તકત્વાત્ પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયા ઉચ્યન્તે, ન તુ વિધમાનસ્ય પ્રત્યાખ્યાનસ્ય
વિઘાતકતયેતિ તત્ત્વમ્ ।

एवं संज्वलनकपायाः क्रोधादयश्चत्वारः ४ । समस्तसावधयोगविरतं
संयमरतर्माप यतिं दुःसहपरिपहसंपाते संज्वलयन्ति=मालिन्यमापादयन्ति - इति
संज्वलनाः । (१६) ।

અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયકપાયચતુષ્ટયે દષ્ટાન્તા ઉચ્યન્તે-ક્રોધસ્ય-
તડાગભૂમિરાજિઃ, માનસ્યાસ્થિરત્ત્મ્બઃ, માયાયાઃ મેપશૂઙ્ગઃ, લોભસ્ય કર્દમરાગઃ ।

देशविरति और सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान की उत्पत्ति का घातक होने से इसे प्रत्या-
ख्यानवरणीय कहते हैं, पहले से विद्यमान प्रत्याख्यान का घातक होने से नहीं ।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार संज्वलन कपाय हैं । सब प्रकार के सावध योग से
निवृत्त संयम में लीन मुनि को दुःसह परीपह उपस्थित होने पर जलाने वाला अर्थात् मलिनता
उत्पन्न करने वाला कपाय संज्वलन कहलाता है ।

અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીયકપાયચૌકડી કે દષ્ટાન્ત વતલાતે હૈ-ક્રોધ કા દષ્ટાન્ત તડાગ-
ભૂમિરાજિ હૈ, અર્થાત્ તાલાવ કી ભૂમિ ફટને સે ઉત્પન્ન હોનેવાલી દરાર કે સમાન યહ ક્રોધ
હોતા હૈ । માન કા ઉદાહરણ હઢ્ડીકા સ્તંભ હૈ । માયાકા ઉદાહરણ મેઢાકા સીંગ હૈ ઓર
લોભ કા દષ્ટાન્ત ગાઢી કા ઓંગન (ગાઢી કે પૈયે મેં દિયે હુપ તેલ કા કીટા) હૈ ।

देशविरति અને सर्वविरतिइप प्रत्याख्याननी उत्पत्तिनुं घातक डोवाथी तेने
प्रत्याख्यानवरणीय कहे छे, पहलेवाथी विद्यमान प्रत्याख्याननुं घातक डोवाथी नहिं.

એ પ્રમાણે ક્રોધ આદિ ચાર સંજ્વલન કપાય છે, સર્વ પ્રકારના સાવધ યોગથી
નિવૃત્ત, સંયમમાં લીન મુનિને દુસ્સહ પરીપહ આવી પ્રાપ્ત થતાં જલાવવાવાળા અર્થાત્
મલિનતા ઉત્પન્ન કરવાવાળા કપાય સંજ્વલન કહેવાય છે.

અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય-કપાય-ચૌકડીનું દષ્ટાન્ત બતાવે છે-ક્રોધનું દષ્ટાન્ત તલાવની
ભૂમિરાજિ છે. અર્થાત્ તલાવની ભૂમિ ફાટવાથી ઉત્પન્ન થયેલી ફાટ-ચીરના સમાન
એ ક્રોધ હોય છે. માનનું ઉદાહરણ હાડકાંને સ્તંભ છે. માયાનું ઉદાહરણ ઘેટાનાં સીંગ
છે, અને લોભનું દષ્ટાન્ત ગાડીની મળી (ગાડીનાં પૈડાંમાં અપાયેલા તેલનું કીટું) છે.

नाम, (१४) आनुपूर्वीनाम, (१५) अगुरुलघुनाम, (१६) उपघातनाम, (१७) पराघातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) त्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुभगनाम, (२७) दुर्भगनाम, (२८) सुस्वरनाम, (२९) दुस्स्वरनाम, (३०) शुभनाम, (३१) अशुभनाम, (३२) सूक्ष्मनाम, (३३) वादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम, (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यशोनाम, (४१) अयशोनाम, (४२) तीर्थङ्करनाम ।

एते मूलभेदाः पिण्डप्रकृतिनाम्नापि कथ्यन्ते । अत्र गत्यादिचतुर्दशपिण्ड-
प्रकृतीनामुत्तरप्रकृतयः- पञ्चपष्टिः (६५) ।

(१५) अगुरुलघुनाम, (१६) उपघातनाम, (१७) पराघातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) त्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुभगनाम, (२७) दुर्भगनाम, (२८) सुस्वरनाम, (२९) दुस्वरनाम, (३०) शुभनाम, (३१) अशुभनाम, (३२) सूक्ष्मनाम, (३३) वादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम, (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यशःकीर्तिनाम, (४१) अयशःकीर्तिनाम, और (४२) तीर्थंकरनाम-कर्म ।

इन बयालीस प्रकृतियों में जिन प्रकृतियों के अवान्तर भेद हैं, उन्हें पिण्ड-
प्रकृति कहते हैं । गति आदि चौदह पिण्डप्रकृतियाँ हैं और उनके पैंसठ (६५) भेद होते हैं ।

अशुल्लघुनाम, (१६) उपघातनाम, (१७) पराघातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारण-
शरीरनाम, (२४) त्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुभगनाम, (२७) दुर्भगनाम, (२८) सुस्वरनाम, (२९) दुस्वरनाम, (३०) शुभनाम, (३१) अशुभनाम, (३२) सूक्ष्मनाम, (३३) वादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम, (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यशःकीर्तिनाम, (४१) अयशःकीर्तिनाम, (४२) तीर्थंकरनाम-कर्म ।

आ वेतालीस प्रकृतिओमां ने प्रकृतिओना अवान्तर भेद छे, तेने पिंडप्रकृति
कहे छे. गति आदि चौदह पिंडप्रकृतिओ छे. अने पैंसठ (६५) तेना भेद छे.

ક્ષયાન્મૃત ઉચ્ચતે, તદાયુઃ । યદ્વા-આનીયન્તે શેષપ્રકૃતયઃ ઉપમોગાય જીવેન યસ્મિન્, તદાયુઃ । યથા-કાંસ્યાદિપાત્રે શાલ્પોદનવ્યઞ્જનાદયો મોક્ત્રા મોક્તુ-માનીયન્તે, તદ્વત્ ।

(૬) નમયતિ=પ્રાપયતિ નારકાદિસંજ્ઞાં જીવમિતિ નામ । નામકર્મ-ળક્ષિનવર્તિભેદાઃ ભવન્તિ ।

તત્ર મૂલભેદાઃ દ્વિચત્વારિંશત્ । તથાહિ—

(૧) ગતિનામ, (૨) જાતિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અક્ષોપાક્ષનામ, (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સંઘાતનામ, (૮) સંસ્થાનનામ, (૯) સંહનનામ, (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શ-

ઔર જિસ કે ક્ષય સે મર જાતા હૈ, ઉસે આયુકર્મ કહતે હૈં । અથવા જિસ મેં જીવ મોગને કે લિષે અન્ય પ્રકૃતિયોં કો લાતા હૈ વહ આયુ હૈ, જૈસે કાંસે આદિ કે માજન મેં ચાવલ, ઓદન, વ્યંજન આદિ વસ્તુઈ મોગને વાલા પુરુષ લાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર શેષ પ્રકૃતિયોં આયુ મેં મોગી જાતી હૈં ।

(૬) નામ-કર્મ કે તેરાનવે (૧૩) ભેદ-જો કર્મ જીવ કો નારક આદિ સંજ્ઞાઓં કા પાત્ર બનાતા હૈ, વહ નામકર્મ કહલાતા હૈ । ઉસકે તેરાનવે ભેદ હૈં । ઉન મેં મી મૂલ ભેદ બચાલીસ હૈં, વે હસ પ્રકાર-(૧) ગતિનામ, (૨) જાતિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અક્ષોપાક્ષ-નામ; (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સંઘાતનામ, (૮) સંસ્થાનનામ, (૯) સંહનનામ (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શનામ, (૧૪) આનુપૂર્વાનામ,

પામે છે, તેને આયુકર્મ કહે છે અથવા જેમાં જીવ અન્ય પ્રકૃતિઓને લોગવવા માટે લાવે છે તે આયુ છે. જેમ કે કાંસા આદિના વાસણમાં ચોખા, ભાત, વ્યંજન (શાક) આદિ વસ્તુઓ લોગવવાવાળા પુરુષ લાવે છે તે પ્રમાણે શેષ-પ્રકૃતિઓ આયુમાં લોગવાય છે.

(૬) નામકર્મના ત્રણ (૯૩) ભેદ છે. જે કર્મ જીવને નારકી આદિ સંજ્ઞાઓતુ પાત્ર બનાવે છે, તે નામકર્મ કહેવાય છે, તેના ત્રણ (૯૩) ભેદ છે. તેમાં પછુ મૂલ ભેદ બેતાલીસ છે. તે આ પ્રમાણે-(૧) ગતિનામ, (૨) જાતિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અક્ષોપાક્ષ-નામ, (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સંઘાતનામ, (૮) સંસ્થાનનામ, (૯) સંહનનામ, (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શનામ, (૧૪) આનુપૂર્વાનામ, (૧૫)

पृष्टम्, उदरं, करी, पादी च । वन्दने तु पञ्चाङ्गान्येव प्रशस्तानि— द्वौ चरणौ, द्वौ करौ, शिरश्चेति । तत्र चरणावित्यनेन जानुनी गृह्येते । एतानि पञ्चाङ्गानि भ्रुमा-
वारोप्य वन्दनं पञ्चाङ्गवन्दनम् । अष्टानामङ्गानामेकैकस्योपाङ्गमनेकप्रकारम्,
तत्र शिरोऽङ्गस्योपाङ्गनामानि— यथा— मस्तिष्क— कपाल— कृकाटिका— शङ्ख— ललाट—
तालु— कपोल— हनु— चिबुक— दशनौ— ष्ठ— भ्रू— नयन— कर्ण— नासादीनि । तत्र मस्तिष्कं
शिरोऽङ्गस्यारम्भकोऽवयवः ।

ननु मस्तिष्कं धातुविशेषो न त्वङ्गं नाप्युपाङ्गम् ? इति चेत्, उच्यते— कपाला-
दिषु शिरोऽङ्गस्यारम्भकत्वान्मस्तिष्कमप्युपाङ्गं शिरसोऽवगन्तव्यम् ।

स्थावरपञ्चके तूरःप्रमृतीन्यङ्गानि न सन्ति ।

पैरो का अभिप्राय घुटना समझना चाहिए । इन पांचों अङ्गों को भूमि पर टिका कर वन्दना
करना पञ्चाङ्गवन्दना है । इन आठों अङ्गों में से प्रत्येक अङ्ग के अनेक उपाङ्ग हैं । उन में से
सिरअङ्ग के उपाङ्ग इस प्रकार हैं— मस्तिष्क, कपाल, कृकाटिका, शंख, ललाट, तालु, कपोल,
हनु, दाढी, चिबुक (ठोड़ी) दांत, ओठ भौंह, नेत्र, कान, नाक, आदि । मस्तिष्क, शिररूप अङ्ग
का आरम्भक अवयव है ।

‘मस्तिष्क एक प्रकार की धातु है, अङ्ग नहीं है और न उपाङ्ग ही है’ इसका
समाधान यह है कि— कपाल आदि के समान सिररूप अङ्गका आरम्भक होने के कारण
मस्तिष्क शिर का उपाङ्ग, ही है ।

पांच स्थावरों में छाती आदि अङ्ग नहीं होते ।

पगनो अलिप्राय धुंठपु समन्तुं ल्नेधये. आ पांच अंगोने भूमिपर अडाडीने वंदना
करवी ते पंचांग वंदना छे. आ आठे अंगोभांथी प्रत्येक अंगनां अनेक उपांग छे.
तेभांथी शिर-अंगना उपांग आ प्रभाछे छे— मस्तिष्क, कपाल, कृकाटिका (अंघानो
उन्नत देश) शंभ (कर्णुसमीपतु अस्थि) ललाट, तालु, गाल, दाढी, चिबुक (हडपंची
वच्चनेना छाछर भाडो) दांत, ओठ, भौंह, नेत्र, कान, नाक आदि. मस्तिष्क शिररूप
अंगनु आरंभक अवयव छे.

‘मस्तिष्क अेक प्रकारनी धातु छे, अंग नथी अने प्रत्यंग पषु नथी’ तेनु
समाधान अे छे छे— कपाल आदि प्रभाछे शिररूप अंगनु आरंभक होवानी कारणे
मस्तिष्क, शिरनु उपांगन छे.

पांच स्थावरोंमां छाती आदि अंग नथी.

[૧] ગતિનામ્નઃ પિષ્ઠમકૃતેશ્ચત્યારો ભેદાઃ— નરકગતિનામ, તિર્યગ્ગતિનામ, મનુષ્યગતિનામ, દેવગતિનામ ચ ।

[૨] જાતિનામ્નો ભેદાઃ પञ्च—એકેન્દ્રિયજાતિનામ, દ્વીન્દ્રિયજાતિનામ, ત્રીન્દ્રિયજાતિનામ, ચતુરિન્દ્રિયજાતિનામ, પञ્ચેન્દ્રિયજાતિનામ ।

[૩] શરીરનામ પञ્ચવિધમ્—ઔદારિકશરીરનામ, વૈક્રિયશરીરનામ, આહારકશરીરનામ, તૈજસશરીરનામ, કાર્મણશરીરનામ ।

[૪] અહ્નાન્યુપાહ્નિ ચ यस્ય કર્મણ ઉદયાદ્યવન્તિ, તદ્ગ્નોપાહ્નનામકર્મ । તત્ત્રિવિધમ્—ઔદારિક—વૈક્રિયકા—આહારક—ભેદાત્ । તત્ત્રાહ્નાન્યપૃષ્ઠૌ—ઉરઃ, શિરઃ,

[૧] ગતિનામકર્મ કે ચાર ભેદ—નરકગતિનામકર્મ, તિર્યગ્ગતિનામકર્મ, મનુષ્યગતિનામકર્મ ઓર દેવગતિનામકર્મ ।

[૨] જાતિનામકર્મ કે પાંચ ભેદ હૈં—એકેન્દ્રિયજાતિનામ, દ્વીન્દ્રિયજાતિનામ, ત્રીન્દ્રિયજાતિનામ, ચતુરિન્દ્રિયજાતિનામ ઓર પञ્ચેન્દ્રિયજાતિનામ—કર્મ ।

[૩] શરીરનામકર્મ કે પાંચ ભેદ હૈં—ઔદારિકશરીરનામ, વૈક્રિયશરીરનામ; આહારકશરીરનામ, તૈજસશરીરનામ ઓર કાર્મણશરીરનામ—કર્મ ।

[૪] જિસ કર્મ કે ઉદય સે અહ્ન ઓર ઉપાહ્ન હોતે હૈં વહ અહ્નોપાહ્નશરીરનામકર્મ, કહલાતા હૈ । ઉસકે તોન ભેદ હૈં ઔદારિક—અહ્નોપાહ્ન, વૈક્રિય—અહ્નોપાહ્ન ઓર આહારક અહ્નોપાહ્ન । ઇન મૈં અહ્ન આઠ હોતે હૈં—છાતી, સિર, પીઠ, પેટ, દો હાથ ઓર દો પૈર । વન્દના કરને મૈં પાંચ અહ્ન પ્રશસ્ત માને જાતે હૈં—દો પૈર, દો હાથ, ઓર સિર । યહૌ

(૧) ગતિનામકર્મના ચાર ભેદ—નરકગતિનામકર્મ, તિર્યગ્ગતિનામકર્મ, મનુષ્યગતિનામકર્મ અને દેવગતિનામકર્મ.

(૨) જાતિનામકર્મના પાંચ ભેદ છે—એકેન્દ્રિયજાતિનામ, દ્વીન્દ્રિયજાતિનામ, ત્રીન્દ્રિયજાતિનામ, ચતુરિન્દ્રિયજાતિનામ, અને પञ્ચેન્દ્રિયજાતિનામ—કર્મ.

(૩) શરીરનામકર્મના પાંચ ભેદ છે—ઔદારિકશરીરનામ, વૈક્રિયશરીરનામ, આહારકશરીરનામ, તૈજસશરીરનામ, અને કાર્મણશરીરનામ—કર્મ.

જે કર્મના ઉદયથી અંગ અને ઉપાંગ થાય છે તે અંગોપાંગશરીરનામકર્મ કહેવાય છે. તેના ત્રણ ભેદ છે. ઔદારિકઅંગોપાંગ, વૈક્રિયઅંગોપાંગ અને આહારકઅંગોપાંગ. તેમાં અંગ આઠ હોય છે—છાતી, શિર, પીઠ, પેટ બે હાથ અને બે પગ. વન્દના કરવામાં પાંચ અંગ પ્રશસ્ત માન્યાં છે. બે પગ, બે હાથ અને શિર—માથું. અહિં

कारणानुरूपं हि कार्यं दृष्टम् । संघातविशेषादेव हि विभागेन पुरुपादिशरीरव्यपदेशी भवति । संघातनाम पञ्चधा-औदारिकादिभेदात् ।

[७] वध्यमानेषु शरीरयोग्यपुद्गलेषु यस्य कर्मण उदयात् आकार-विशेषो भवति तत् संस्थाननाम । एतच्च षड्विधम्-(१) समचतुरस्रनाम-(२) न्यग्रोधपरिमण्डलनाम-(३) सादिनाम-(४) कुञ्जनाम-(५) वामननाम-(६) हुण्डनामभेदात् ।

[८] संहनननाम-अस्त्रां वन्धविशेषः । तच्च षड्विधम्-(१) वज्रर्षभनाराचनाम, (२) अर्धवज्रर्षभनाराचनाम, (३) नाराचनाम, (४) अर्धनाराचनाम, (५) क्रीलिकानाम, (६) सेवार्तनाम च ।

ही होता है । संघात-की भिन्नता के कारण ही शरीरों में स्त्री, पुरुष आदिका भेद-व्यवहार होता है । औदारिक आदि के भेद से संघात भी पांच प्रकार का है ।

[७] बाँधे जाते हुए शरीरयोग्य पुद्गलों में जिस कर्म के उदय से आकृति-विशेष बनता है उसे संस्थाननामकर्म कहते हैं । संस्थान छह प्रकारका है—

(१) समचतुरस्र-संस्थान, (२) न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान, (३) सादि-संस्थान, (४) कुञ्जक-संस्थान, (५) वामन-संस्थान, (६) हुण्डक-संस्थान ।

[८] अस्थियों के बन्धविशेष को संहनननामकर्म कहते हैं । उसके छह भेद हैं—(१) वज्रर्षभनाराच-संहनन, (२) अर्धवज्रर्षभनाराच-संहनन, (३) नाराच-संहनन, (४) अर्धनाराच-संहनन, (५) क्रीलिका-संहनन और (६) सेवार्त-संहनन ।

कार्य, कारणों के कारण से । संघात-की भिन्नता के कारण ही शरीरों में स्त्री, पुरुष आदिना भेद-व्यवहार होता है । औदारिक आदिना भेदही संघात-पञ्च पांच प्रकारना है ।

(७) संघात-शरीरयोग्य पुद्गलों में जो कर्मना उदयही आकृतिविशेष बने है । तेने संस्थाननामकर्म कहते हैं । संस्थान छ प्रकारना है—(१) समचतुरस्र-संस्थान, (२) न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थान, (३) सादि-संस्थान, (४) कुञ्जक-संस्थान, (५) वामन-संस्थान, (६) हुण्डक-संस्थान ।

(८) अस्थियोंना बन्धविशेषने संहनननामकर्म कहते हैं । तेना छ भेद है—(१) वज्रर्षभनाराचसंहनन, (२) अर्धवज्रर्षभनाराचसंहनन, (३) नाराचसंहनन, (४) अर्धनाराचसंहनन, (५) क्रीलिकासंहनन अने (६) सेवार्तसंहनन ।

(५) शरीरनामकर्मोदयाद् गृहीतेषु गृहमाणेषु वा तद्योग्यपुद्गलेष्वात्म-
प्रदेशस्थितेषु शरीराकारेण परिणामितेष्वपि जतुकापृष्ठत् परस्परमवियोगलक्षणं
बन्धननाम । यदीदं न स्यात् ततो बालुकापुरुषवद् विघटितानि शरीराणि स्युः ।
बन्धननाम पञ्चधा-औदारिकादिभेदात् ।

(६) काष्ठपिण्डमृत्पिण्डायःपिण्डवत् यद्दानामपि पुद्गलानां संघातविशेष-
जनकं संघातनाम । यदि संघातनामरूपः कर्मभेदो न स्यात्तर्हि पुरुषयोषिद्-
गवादिरूपनानाशरीरभेदो न स्यात् । संघातविशेषजनकाऽन्यकर्मविशेषाभावात् ।

[५] शरीरनामकर्म के उदय से ग्रहण किये हुए या ग्रहण किये जाते हुए आत्म-
प्रदेशों में स्थित और शरीर के आकार परिणत किये हुए शरीर के योग्य पुद्गलों में लख
और लकड़ी के समान परस्पर अवियोग होना बन्धननामकर्म है, अगर बन्धननामकर्म न
होता तो बालू से बनाये हुए पुरुष के समान विस्तर जाता । औदारिक आदि के भेद से
बन्धन के भी पांच भेद हैं ।

[६] काष्ठपिण्ड, मृत्पिण्ड या लोह के पिण्ड के समान बद्ध पुद्गलों में भी एक
विशेष प्रकार का संघात (घनिष्ठता) उत्पन्न करने वाला कर्म संघातनामकर्म कहलाता
है, और संघातनामकर्म न होता तो पुरुष स्त्री गो आदिरूप भेद शरीर में न होता,
क्यों कि संघातविशेष उत्पन्न करने वाला अन्य कर्म ही नहीं हैं । कार्य, कारण जैसा

(५) शरीरनामकर्मना उदयधी अद्भुषु करेला अथवा अद्भुषु करेवाभां आवता
आत्मप्रदेशोभां स्थित अने शरीरना आकारे परिणत करेला शरीरना योग्य पुद्गलोभां
लाभ अने लाकडीना समान अवियोग होवुं ते बंधननामकर्म छे. अथवा बंधननाम
कर्म न होत तो रैतीधी अनावेला पुश्यनी समान विभेराधंनत. औदारिक आदिना
वेदधी बंधनना पञ्च पांच वेद छे.

(६) काष्ठपिण्ड, मृत्पिण्ड, अथवा लोढाना पिण्ड समान बद्ध पुद्गलोभां पञ्च
अेक विशेष प्रकारना संघात (घनिष्ठता) उत्पन्न करवावाणा कर्म ते संघात-
नामकर्म कहेवाय छे अथवा संघातनामकर्म न होय तो पुश्य, स्त्री, गाय आदि
इपलेद शरीरभां होय नछि. कारखुके संघात-विशेष उत्पन्न करवावाणा अन्य कर्मन नथी.

(१३) नारकादिगतिं गन्तुरन्तर्गतौ वर्तमानस्य तदभिमुखमानुपूर्व्या [तत्तद्देशक्रमेण] तत्तत्प्रापणसमर्थमानुपूर्वीनाम । गत्यन्तरं गच्छतो जीवस्य यत्कर्मोदयाद-
विशयेन तद्गमनानुगुण्यं स्यात्, तदपि-आनुपूर्वीशब्दवाच्यं भवति । यथा-वारिवेगो
वलीवर्दादिः, यथा वा नस्योत्तस्य वलीवर्दस्य नासारज्ज्वां प्रतिवद्धा रज्जुः, तथाऽऽनु-
पूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकतपोपग्रहस्वरूपम् ।

अन्तर्गतिश्च यावन्मनुष्यो नरकादिवाच्यमुत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति ताव-
त्कालिकी गतिः । सा द्विविधा-ऋज्वी, वक्रा च । तत्र यदा ऋज्व्या समय-

(१३) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (विग्रहगति) में
वर्तमान है, उसको उन नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करके आनुपूर्वी से अर्थात्
उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुँचाने में जो कर्म समर्थ होता है, उस कर्म को
आनुपूर्वीकर्म कहते हैं । यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि-
गत्यन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उदय होने पर उस गति में उस उस स्थान
के क्रम से जाना होता है, इस लिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं । जैसे जलका
प्रवाह बैलको अपनी ओर खींच लेता है । अथवा जैसे गाडीवान बैलको नाथ पकड कर
अपनी ओर मोड लेता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जीवने जिस गतिका कर्म बाँधा है उस
गति में उसको पहुँचा देता है, इस लिये वह गति में पहुँचाने के लिये सहायक है ।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोडकर नरक आदि किसी गति में
नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् बीचकी गतिको अन्तर्गति-विग्रहगति-कहते हैं ।
वह दो प्रकार की है-सरल और वक्र । जीव जब एकसमयप्रमाणवाली सरल (सीधी)

(१३) नरक आदि गतिमां जवावाणा एव जे के-अन्तर्गति (विग्रहगति)मां
वर्तमान छे तेने ते नरक आदि गतिओनी तरङ्ग अलिमुष करीने आनुपूर्वींथी अर्थात्
ते ते स्थानना क्रमथी ते ते गतिओमां पडोंयाडवामां जे कर्म समर्थ होय छे ते कर्मने आनु-
पूर्वीं कर्म कडे छे. जे के आनुपूर्वीं शब्दने अर्थ ते ते स्थानने क्रम, ओयो छे ते
पणु गत्यन्तरमां जते एवने जे कर्मने उदय थवाथी ते गतिमां ते ते स्थानना
क्रमथी जवुं होय छे, आटला भाटे ते कर्मने आनुपूर्वीं कडे छे. जेम पाणीने प्रवाह
जणहीयाने पोतानी तरङ्ग जेची दे छे, अथवा जेम गाडीवाणे जणहीयाने तेनी नाथ पकडीने
पोतानी आलु मोडी दे छे तेज प्रमाणे आनुपूर्वीं कर्म-एव जे गतिनुं कर्म बांध्युं
छे ते गतिमां तेने पडोंयाडी दे छे भाटे ते गतिमां पडोंयाडवाने भाटे सहायक छे.

त्यां सुधी मनुष्य पोतानी मनुष्यगतिये भूडीने नरक आदि भील गतिमां नथी
पडोंयेथी त्यां सुधीनी अर्थात् वचली गतिने अन्तर्गति-विग्रहगति कडे छे. ते जे
प्रकारनी होय छे:-सरल अने वक्र. एव न्यारे जेकसमयप्रमाणवाणी सरल (सीधी) गतिथी

(૯) ઔદારિકાદિપુ શરીરેપુ યસ્ય કર્મણ ઉદયાત્ કર્કશ્યાદિઃ સ્પર્શ-વિશેષો જાયતે, તત્ સ્પર્શનામ । સ્પર્શનામાષ્ટયા-કર્કશ્ય-મૃદુ-ગુરુ-લઘુ-સ્નિગ્ધ-રુક્ષ-શીતો-ષ્ણનામભેદાત્ ।

(૧૦) રસનામ પશ્ચવિધમ્-તિક્ત-કટુ-કપાયા-ઽમ્લ-મધુરભેદાત્ । લવણો મધુરાન્તર્ગત્ इति કેચિત્ ।

(૧૧) શરીરવિપયં સૌરમં દુર્ગન્ધિત્વં ચ યસ્ય કર્મણો વિપાકાભિર્વર્તતે, તદ્ ગન્ધનામ । ગન્ધનામ દ્વિવિધમ્-સુગન્ધ-દુર્ગન્ધભેદાત્ ।

(૧૨) યસ્યોદયાચ્છરીરેપુ કૃષ્ણાદિપશ્ચવિધવર્ણનિષ્પત્તિર્ભવતિ તદ્ વર્ણનામ, તત્ પશ્ચવિધમ્-કૃષ્ણ-નાલ-લોહિત-પીત-શુક્લભેદાત્ । સર્વાણિ ચૈતાનિ સ્પર્શના-માદીનિ વર્ણનામાન્તાનિ શરીરવર્તિપુ પુદ્ગલેપુ પરિણતાનિ ભવન્તિ ।

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરો મેં જિસ કર્મ કે ઉદય સે કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન હોતા હૈ ઉસે સ્પર્શનામકર્મ કહતે હૈં । સ્પર્શનામકર્મ આઠ પ્રકાર કા હૈ-કઠોર, કોમલ, ભારી, હલકા, ચિકના, રુસ્વા, શીત, ઓર ઊષ્ણ ।

(૧૦) રસનામકર્મ પાંચ પ્રકાર કા હૈ-તીસ્લા, કડુવા, કસૈલા, સ્વદા ઓર મીઠા । કિસી કે મત સે લવણ મધુર રસ કે અન્તર્ગત હૈ ।

(૧૧) જિસ કર્મ કે ઉદય સે શરીર મેં સુગન્ધ યા દુર્ગન્ધ ઉત્પન્ન હોતી હૈ ઉસે ગન્ધ-નામકર્મ કહતે હૈં । ઉસકે દો ભેદ હૈ-સુગન્ધનામ ઓર દુર્ગન્ધનામ ।

(૧૨) જિસ કર્મ કે ઉદય સે શરીરો મેં કૃષ્ણ આદિ પાંચ વર્ણો કી ઉત્પત્તિ હોતી હૈ, વહ વર્ણનામકર્મ હૈ । ઇસ કે પાંચ ભેદ હૈ-કૃષ્ણ, નીલ, રક્ત, પીત ઓર શુક્લ, સ્પર્શ સે લેકર વર્ણ તક યે સબ, શરીરવર્તી પુદ્ગલો મેં હી પરિણત હોતે હૈં ।

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોમાં જે કર્મના ઉદયથી કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન થાય છે તેને સ્પર્શનામકર્મ કહે છે. સ્પર્શનામકર્મના આઠ પ્રકારના છે-કઠોર, કોમલ, ભારી, હલકો, ચિકણો રૂખો, શીત અને ઊષ્ણ.

(૧૦) રસનામકર્મ પાંચ પ્રકારે છે-તીષ્ણ, કટુ, કસાએલો, ખાટો અને મીઠો. કેટલાકના મતથી લવણ મધુર રસની અન્તર્ગત છે.

(૧૧) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમાં સુગંધ અથવા દુર્ગંધ ઉત્પન્ન થાય છે. તેને ગંધનામકર્મ કહે છે. તેના બે ભેદ છે-સુગંધનામ અને દુર્ગંધનામ.

(૧૨) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમાં કૃષ્ણ આદિ પાંચ વર્ણોની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વર્ણનામકર્મ કહેવાય છે. તેના પાંચ ભેદ છે-કૃષ્ણ, નીલો, રક્તો, પીળો અને ઘોળો. સ્પર્શથી લઇને વર્ણ સુધી એ અધાય શરીરવર્તી પુદ્ગલોમાંજ પરિણત થાય છે.

(१३) नारकादिगतिं गन्तुस्तर्गतौ वर्तमानस्य तदभिमुखमानुपूर्व्या [तत्तद्देशक्रमेण] तत्तत्प्रापणसमर्थमानुपूर्वीनाम । गत्यन्तरं गच्छतो जीवस्य यत्कर्मोदयाद-
विशयेन तद्गमनानुगुण्यं स्यात्, तदपि-आनुपूर्वीशब्दवाच्यं भवति । यथा-वारिवेगो
वलीवर्दादेः, यथा वा नस्योतस्य वलीवर्दस्य नासारज्ज्वां प्रतिवद्धा रज्जुः, तथाऽऽनु-
पूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकतयोपग्रहस्वरूपम् ।

अन्तर्गतिश्च यावन्मनुष्यो नरकादिवाच्यमुत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति ताव-
त्कालिकी गतिः । सा द्विविधा-ऋज्वी, वक्रा च । तत्र यदा ऋज्व्या समय-

(१३) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (विग्रहगति) में
वर्तमान है, उसको उन नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करके आनुपूर्वी से अर्थात्
उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुँचाने में जो कर्म समर्थ होता है, उस कर्म को
आनुपूर्वीकर्म कहते हैं । यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि-
गत्यन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उदय होने पर उस गति में उस उस स्थान
के क्रम से जाना होता है, इस लिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं । जैसे जलका
प्रवाह बैलको अपनी ओर खींच लेता है । अथवा जैसे गाडीवान बैलको नाथ पकड कर
अपनी ओर मोड लेता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जीवने जिस गतिका कर्म बाँधा है उस
गति में उसको पहुँचा देता है, इस लिये वह गति में पहुँचाने के लिये सहायक है ।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोडकर नरक आदि किसी गति में
नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् वीचकी गतिको अन्तर्गति-विग्रहगति-कहते हैं ।
वह दो प्रकार की है-सरल और वक्र । जीव जब एकसमयप्रमाणवाली सरल (सीधी)

(१३) नरक आदि गतिमां जवावाणा एव जे के-अन्तर्गति (विग्रहगति)मां
वर्तमान छे तेने ते नरक आदि गतिओनी तरङ्ग अबिमुख करीने आनुपूर्वीथी अर्थात्
ते ते स्थानना कर्मथी ते ते गतिओमां पडोंआडवांमां जे कर्म समर्थ होय छे ते कर्मने आनु-
पूर्वी कर्म कहे छे. जे के आनुपूर्वी शब्दने अर्थ ते ते स्थानना कर्म, जेयो छे तो
पणु गत्यन्तरमां जते एवने जे कर्मने उदय थवाथी ते गतिमां ते ते स्थानना
कर्मथी जवुं होय छे, आटला भाटे ते कर्मने आनुपूर्वी कहे छे. जेभ पाणीने प्रवाह
जणहीयाने पोतानी तरङ्ग जेथी दे छे, अथवा जेभ गाडीवाणे जणहीयाने तेनी नाथ पकडीने
पोतानी जालु मोडी दे छे तेज प्रमाणे आनुपूर्वीकर्म-एव जे गतिनुं कर्म बांध्युं
छे ते गतिमां तेने पडोंआडी दे छे भाटे ते गतिमां पडोंआडवाने भाटे सहायक छे.

न्यां सुधी मनुष्य पोतानी मनुष्यगतिने मूडीने नरक आदि जीव गतिमां नथी
पडोंआये। त्यां सुधीनी अर्थात् वयसी गतिने अन्तर्गति-विग्रहगति कहे छे. ते जे
प्रकारनी होय छे:-सरल अने वक्र. एव न्यादे जेकसमयप्रमाणवाणी सरल (सीधी) गतिथी

પ્રમાણયા ગચ્છતિ, તદાઽઽપ્યુપ્યકર્મણૈવાત્પત્તિસ્થાનં પ્રાપ્નોતિ । તત્રાનુપૂર્વીનામ્નઃ
કશ્ચિદુપયોગો ન ભવતિ । વક્રગત્યા પુનઃ પ્રવૃત્તઃ કૂર્પર- (વક્રાકારરયાત્રયવ)-
લાઙ્ગલ-ગોમૂત્રિકાલક્ષણયા દ્વિત્રિચતુઃસમયમાનયા વક્રારમ્ભકાલે પુરસ્કૃત-
માયુરાદત્તે, તદૈવ ચાનુપૂર્વીનામાપ્યુદેતિ ।

નનુ ચ યથૈવ ઋજ્વ્યાં ગતૌ વિનાઽઽનુપૂર્વીનામકર્મણા ગતિં પ્રાપ્નોતિ,
તદ્વદ્ વક્રગત્યામપિ કસ્માન્ ? इति चेत्, उच्यते-ऋज्व्यां-पूर्वायुष्कर्मव्यापारेणैव
गच्छति, यत्र तत् पूर्वायुष्कर्म क्षीणं, तत्र तस्याध्वयष्टिस्थानीयस्यानુपूर्वीनामकर्मण
उदयो भवति ।

ગતિ સે જાતા હૈ તવ આયુ કર્મ કે દ્વારા હી ઉત્પત્તિસ્થાન કો પ્રાપ્ત કર હેતા હૈ, વહાં
આનુપૂર્વાનામકર્મ કા કોઈ ઉપયોગ નહીં હોતા । જવ જીવ કૂર્પર (રથ કા ટેઢા અવયવ)
હલ યા ગોમૂત્રિકા સરીલી ઓર દો તોન યા ચાર સમયવાલી વક્ર ગતિ સે જાતા હૈ
તવ મોઢકે આરમ્ભ-સમય મેં આગે કી આયુ પ્રહણ કરતા હૈ, ઉસી સમય આનુપૂર્વી
કર્મકા ઉદય હોતા હૈ ।

શક્લાં-જૈસે સરલગતિ મેં આનુપૂર્વીકર્મ કે વિના હી ગતિ પ્રાપ્ત કરતા હૈ, ઉસી
પ્રકાર વક્ર ગતિ મેં મી ક્યોં નહીં ગતિ કરતા ? ।

સમાધાન-સરલ ગતિ મેં પહેલે કે આયુકર્મ કે વ્યાપાર સે હી જીવ ગતિ
કરતા હૈ । જહાં વહ આયુ ક્ષીણ હો જાતી હૈ વહાં માર્ગયષ્ટિ કે સમાન આનુપૂર્વાનામકર્મ કા
ઉદય હોતા હૈ ।

નય છે, ત્યારે આયુકર્મદ્વારાજ ઉત્પત્તિ સ્થાનને પ્રાપ્ત કરી લે છે. ત્યાં આનુપૂર્વી
નામકર્મને કાંઈ ઉપયોગ થતો નથી. ત્યારે જીવ કૂર્પર (રથને વાંકો એક ભાગ) હલ
અથવા ગોમૂત્રિકા સરખી અને જો, ત્રણ અથવા ચાર સમયવાળી વક્રગતિથી નય છે
ત્યારે વળવાના આરંભ સમયમાં આગળની આયુ શહેણ કરે છે તે સમય આનુપૂર્વી
કર્મને ઉદય થાય છે.

શક્લા-જેમ સરલગતિમાં આનુપૂર્વીકર્મ વિનાજ ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. તે
પ્રમાણે વક્રગતિમાં ગતિ શા માટે કરતા નથી ?

સમાધાન-સરલગતિમાં પ્રથમના આયુકર્મના વ્યાપારથીજ જીવ ગતિ કરે છે.
ત્યાં તે આયુ ક્ષીણ થઈ નય છે ત્યાં માર્ગયષ્ટિ-માર્ગની લાકડી-ના સમાન આનુપૂર્વી
નામકર્મને ઉદય થાય છે.

आनुपूर्वीनाम चतुर्विधम्-नरकागत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, देवगत्यानुपूर्वीनाम च ।

(१४) लब्धि-शिक्षद्धि-प्रत्ययस्याकाशगमनस्य जनकं नाम विहायोगतिः सामान्य गमनरूपा गतिरपि विहायोगति तित्युच्यतेन तु केवलमाकाशगमनरूपेति । सा द्विधा-शुभा-शुभमेदात् । तत्र-हंस गज-वृषादीनां शुभा । उष्ट्रशृगालादीनाम् अशुभा । तत्र-लब्धिर्देवादीनां देवत्वोत्पत्त्यविनाभाविनी । शिक्षया ऋद्धिः, शिक्षद्धिः, लब्ध्या शिक्षद्ध्या च तपस्विनां, शिक्षद्ध्या प्रवचनमधीयानानां विद्याधावर्तनप्रभावाद् वा आकाशगमनस्य जनकं विहायोगतिनामकर्म ।

आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकार का है-नरकागत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, और देवगत्यानुपूर्वीनाम ।

(१४) लब्धि एवं शिक्षाऋद्धिकारणक; आकाशगमन उत्पन्न करने वाला कर्म विहायोगतिनामकर्म कहलाता है । वह सामान्य गमनरूप गति भी विहायोगति कहलाती है, नहीं कि मात्र आकाशगमनरूप । इस के दो भेद हैं-शुभ और अशुभ । हंस, गज, वृषभ आदि की गति के समान शुभविहायोगति है और ऊंट सियार आदि की गतिके अनुसार अशुभविहायोगति है । देव के रूप में उत्पन्न होने के साथ ही उत्पन्न होने वाली लब्धि देवों को प्राप्त होती है । शिक्षा से प्राप्त होने वाली ऋद्धि शिक्षा-ऋद्धि कहलाती है । लब्धि एवं शिक्षा-ऋद्धि से तपस्वियों का आकाशगमन होता है । प्रवचन का अध्ययन करने वालों का विद्या आदि के आवर्तन के प्रभाव से या शिक्षाऋद्धि से जो आकाशगमन होता है वह विहायोगति है ।

आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकारनां छे-नरकागत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, अने देवगत्यानुपूर्वीनाम.

(१४) लब्धि एवं शिक्षा-ऋद्धिकारणक आकाशगमन उत्पन्न करवावाणुं कर्म विहायोगतिनामकर्म कहलाय छे. सामान्य गमनरूप गति पणु विहायोगति कहलाय छे इत्त आकाशगमनरूप गति नहीं. तेना जे भेद छे-शुभ अने अशुभ. हंस, हाथी, भयल वीगेरेनी गति समान शुभविहायोगति छे. अने ऊंट, शियाल वगेरेनी गति अनुसार अशुभविहायोगति छे. देवना रूपमां उत्पन्न होवाना साथे उत्पन्न होवावाणी लब्धि देवाने प्राप्त थाय छे. शिक्षार्थी प्राप्त होवावाणी ऋद्धि शिक्षाऋद्धि कहलाय छे. लब्धि एवं शिक्षाऋद्धि तपस्विओ आकाशगमन करे छे. प्रवचननुं अध्ययन करवावाणाना विद्या आदिना आवर्तनना प्रभावधी अथवा शिक्षाऋद्धिधी जे आकाशगमन थाय छे ते विहायोगति छे.

(७) गोत्रकर्म द्विविधम्—उच्चनीचभेदात् । तत्र उच्चगोत्रं—देश—जाति—कुल—स्थान—मान—सत्कारै—भयार्थिद्युत्कर्षजनकम् । तद्विपरीतं नीचगोत्रम्—अनार्यदेश—चाण्डालादिजातिदास्य—निर्वर्तकम् ।

(८) अन्तरायकर्म—पञ्चविधम्—दान—लाम—भोगो—पभोग—वीर्यान्तरायभेदात् ।

एवं च सर्वसंकलनेनाष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टत्वारिंशदधिकैकशतं (१४८) भवन्ति ।

कर्मक्षयविचारः—

ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मक्षयो भवति । उक्तपद्मजीवनिकायानां यथार्थ—

(७) गोत्रकर्म दो प्रकार का है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र से देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न होता है । नीचगोत्र इस से विपरीत है । इस से अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता उत्पन्न होती है ।

(८) अन्तराय कर्म के पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय ।

इस प्रकार सबका योग करने पर आठों कर्मों की उत्तरप्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस (१४८) होती हैं ।

कर्मक्षय का विचार

ज्ञान और क्रिया से कर्मों का क्षय होता है । पूर्वोक्त पद्मजीवनिकाय के वास्तविक

(७) गोत्रकर्म के प्रकार—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र से देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न था है । नीच गोत्र से अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता उत्पन्न थी है ।

अन्तरायकर्म के पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

आ प्रमाणों से सर्वों का योग करने पर आठ कर्मों की उत्तरप्रकृतियों के एक सौ अड़तालीस (१४८) था है ।

कर्मक्षय का विचार—

ज्ञान और क्रिया से कर्मों का क्षय था है । पूर्वोक्त पद्मजीवनिकाय के वास्तविक

स्वरूपस्य विस्तरेण संक्षेपेण वा अवबोधो ज्ञानम् । गुप्तिसमितिसमाराधनपूर्वकं शास्त्रविधिना तपःसंयमाचरणं क्रिया ।

अष्टकर्मणां भस्मसात्कारकं तपः । तस्यानशनादयो द्वादश भेदाः । सावध क्रियाः सम्यक् परित्यज्य निरवधक्रियासु प्रवृत्तिः संयमः । तस्य पृथ्वीकाय-संयमादयः सप्तदश भेदाः ।

उक्तपट्टजीवनिकायस्वरूपं सम्यग् विज्ञाय संयमपूर्वकतपश्चरणेनाभिनवकर्म-प्रवेशाभावः, पूर्वोपचितकर्मपरिक्षयश्च भवति । तत्रैवं क्रमः—

अष्टमगुणस्थानादात्मा क्षपकश्रेणिं समारोहति । असौ क्षपको नवमं दशमं गुणस्थानं समारूढ्य द्वादशं गुणस्थानमारोहति । तत्र शूद्रध्यानस्य द्वितीय-

स्वरूप का विस्तारपूर्वक या संक्षिप्त बोध-ज्ञान कहलाता है । गुप्ति समिति का आराधन करते हुए शास्त्रोक्त विधि के साथ तप और संयम का आराधन करना क्रिया है ।

आठ कर्मों का भस्म करना तप है । तप के अनशन आदि वारह भेद हैं । सावध क्रियाओं का सम्यक् प्रकार से परित्याग करके निरवध क्रियाओं में प्रवृत्ति करना संयम है । पृथ्वीकायसंयम आदि के भेद से वह सत्तर (१७) प्रकार का है ।

उक्त पट्टजीवनिकाय का स्वरूप समीचीन प्रकार से जानकर, संयमपूर्वक तप का आचरण करने से नवीन कर्मों का धाना रुक जाता है और पहले के संचित कर्मों का क्षय होता है । कर्मक्षय का क्रम यह है—

आत्मा आठवें गुणस्थान से क्षपकश्रेणी पर आरूढ होता है । यह क्षपक आत्मा नौवें दशवें गुणस्थानों पर आरूढ हो कर बाहरवें गुणस्थान पर पहुंचता है ।

स्वप्नो विस्तारपूर्वक अथवा संक्षिप्त बोध ते ज्ञान कडेवाय छे. गुप्ति, समितिनी आराधना करतां शास्त्रोक्त विधि प्रमाणे तप अने संयमनु आराधन करतुं ते क्रिया छे. आठ कर्मोने जाणी नांभवा ते तप छे. तपना अनशन आदि आर लेह छे. सावध क्रियाओनो सम्यक् प्रकारे परित्याग करीने निरवध क्रियाओमां प्रवृत्ति करवी ते संयम छे. पृथ्वीकायसंयम आदिना लेहधी ते सत्तर (१७) प्रकारनो छे. आगण कडेला पट्टजीवनिकायना स्वप्नो सारी रीते जाणीने संयमपूर्वक तपनु आचरण करवाधी नवीन कर्मोनु आवतुं शेकाई नाथ छे, अने पडेलांना संचित कर्मोना क्षय थाय छे. कर्मक्षयनो क्रम अछे— आत्मा आठमां शुष्कस्थानधी क्षपकश्रेणीपर आरूढ थाय छे. आ क्षपक आत्मा नवमां, दसमां शुष्कस्थानो पर आरूढ थईने आरमा शुष्कस्थान पर लई पडेअं छे.

પાદે પ્રથમં મોહનીયં કર્મ ક્ષપયતિ । તદનુ જ્ઞાનાવરણીય-દર્શનાવરણીયા-અંતરાય-કર્માણિ યુગપદેવ ક્ષપયિત્વા દ્વાદશગુણસ્થાનાન્તે ત્રયોદશગુણસ્થાનાદૌ સર્વદ્રવ્ય-પર્યાયવિપયં પારમૈશ્વર્યમનન્તં કેવલં. જ્ઞાનદર્શનિં પ્રાપ્ય શુદ્ધો બુદ્ધઃ સર્વજ્ઞઃ સર્વદર્શી જિનઃ કેવલી ભવતિ । તતઃ સયોગિકેવલી પ્રતનુ-શુભ-ચતુષ્કર્માવશેષઃ, આયુઃ-કર્મસંસ્કારવશાદ્ ભવ્યજનવોધનાય ભૂમણ્ડલે વિહરતિ, વિવિધં કર્મરજો ભવ્યાનાં હરતિ ચ ।

અસૌ તત્પથાદ્ અયોગિકેવલી ભૂત્વા ચતુર્દશગુણસ્થાને-આયુષ્યકર્મપરિસમાપ્તૌ સત્યાં, વેદનીય-નામ-ગોત્રકર્માણિ ક્ષપયતિ । एवं મૂલપ્રકૃતિવાચ્યમષ્ટવિધં જ્ઞાનાવરણીયાદિસકલકર્મ ક્ષીયતે ।

વહોં શુક્લ ધ્યાન કે દ્વિતીય પાત્રે મેં સર્વ પ્રથમ મોહનીય કર્મ કા ક્ષય કરતા હૈ । તત્પથાત્ જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ ઓર અન્તરાય કર્મો કો એક હી સાથ ક્ષય કરકે ત્રારહવેં ગુણસ્થાન કે અન્ત મેં ઓર તેરહવેં ગુણસ્થાન કી આદિ મેં સમસ્ત દ્રવ્ય પર્યાય કો વિપય કરને વાલ્લ પરમ એશ્વર્ય કો પ્રાપ્ત હોને યોગ્ય અનન્ત કેવલજ્ઞાન ઓર કેવલદર્શન પ્રાપ્ત કરકે શુદ્ધ, બુદ્ધ, સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી, જિન ઓર કેવલી હો જાતા હૈ । ફિર વહ સયોગી કેવલી ચાર હલ્કે અઘાતિયા કર્મ શેષ રહને પર આયુકર્મ કે સંસ્કાર વશ હો કર ભવ્ય જીવો કો વોધ દેને કે લિષ્ મૂમણ્ડલ મેં વિહાર કરતે હેં ।

તત્પથાત્ અયોગી કેવલી હો કર ચૌદહવેં ગુણસ્થાન મેં આયુકર્મ કી સમાપ્તિ હોને પર વેદનીય નામ આયુ ગોત્ર કર્મો કા ક્ષય કરતે હેં । ઇસ પ્રકાર મૂલપ્રકૃતિ કહલાને વાલે આઠો હી કર્મો કા ક્ષય હો જાતા હૈ ।

ત્યાં શુક્લ ધ્યાનના ખીલ પાયામાં સર્વપ્રથમ મોહનીય કર્મનો ક્ષય કરે છે. તે પછી જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ અને અંતરાય કર્મોનો એકી સાથે ક્ષય કરીને, આરમા શુભ-સ્થાનના અંતમાં અને તેરમા શુભસ્થાનની આદિમાં સમસ્ત દ્રવ્ય-પર્યાયને વિષય કરવાવાળા પરમ એશ્વર્યને પ્રાપ્ત થવા યોગ્ય અનન્ત કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શન પ્રાપ્ત કરીને શુદ્ધ, બુદ્ધ, સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી, જિન અને કેવલી થઈ જાય છે. પછી તે સયોગી કેવલી ચાર હલકાં અઘાતિયાં કર્મ ઝાકી રહેવા પર આયુકર્મના સંસ્કારવશ થઈને ભવ્યજીવોને વોધ આપવા માટે પૃથ્વીમાં વિહાર કરે છે.

તે પછી અયોગી કેવલી થઈને ચૌદમાં શુભસ્થાનમાં આયુકર્મની સમાપ્તિ થયા પછી વેદનીય, નામ અને ગોત્રકર્મનો ક્ષય કરે છે. આ પ્રમાણે મૂળપ્રકૃતિ કહેવાતા આઠ કર્મોનો ક્ષય થઈ જાય છે.

एवमात्मप्रदेशेभ्यः सकलकर्मणामपगमे सत्यूर्ध्वगमनस्वभावतयाऽऽत्मा साधन-
न्तमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेयं स्थानं प्राप्नोति । ज्ञानक्रियाभ्यामेवं सकलकर्मक्षय-
लक्षणो मोक्षो भवतीति सिद्धम् ।

केचित्तु-सम्यग्ज्ञानं यथार्थविषयकतया बलवत्तरत्वेन मिथ्याज्ञानं
निर्वर्तयति । मिथ्याज्ञाने निवृत्ते सति मिथ्याज्ञानमूला रागादयो न समुत्पद्यन्ते ।
कारणाभावे कार्यस्यानुत्पादात् । रागाद्यभावे च तत्कलभूता मनोवाक्काय-
प्रवृत्तिर्न भवति । प्रवृत्त्यभावे च पुण्यपापयोरनुत्पत्तिः । आरब्धकार्ययोश्च

आत्मप्रदेशो से समस्त कर्मों के हटजाने पर ऊर्ध्वगतिशील होने के कारण आत्मा
सादि-अनन्त पुनरागमनरहित सिद्धिगतिनामक स्थान को प्राप्त करता है । अत एव सिद्ध
हुआ कि ज्ञान और क्रिया से सफल कर्मोंका क्षयरूप मोक्ष प्राप्त होता है ।

कुछ लोगों का कथन यह है कि-सम्यग्ज्ञान यथार्थ पदार्थ को विषय करता
है, अतः वह बलवान् है, और बलवान् होने के कारण मिथ्याज्ञान को दूर करता है ।
मिथ्याज्ञान जब हट जाता है तो उसके कारण उत्पन्न होने वाले रागादि की उत्पत्ति नहीं
होती; क्योंकि कारण के अभाव में कार्य उत्पन्न नहीं होता । इस प्रकार रागादि
का अभाव होने पर उस से होने वाली मन, वचन और काय की प्रवृत्ति रुक जाती है ।
प्रवृत्ति के रुक जाने से पुण्यकर्म और पापकर्म की उत्पत्ति नहीं होती । जिन का कार्य

आत्मप्रदेशोऽथी समस्त कर्मों हट गया पछी उर्ध्वगतिशील होवाना कारण
आत्मा सादि-अनन्त, पुनरागमनरहित सिद्धिगति नामना स्थानने प्राप्त करे
छे. अतएव अे सिद्ध थयुं के ज्ञान अने क्रियाथी सकल कर्मोंना क्षयरूप मोक्षने
प्राप्त थाय छे.

हेतुलाभ भावसेतु कहेतुं अे छे हे:-सम्यग्ज्ञान यथार्थ पदार्थने विषय करे
छे, अे कारणथी ते अणवान छे. अने अणवान होवाना कारण मिथ्याज्ञानने हट करे छे.
मिथ्याज्ञान न्यारे हट थर्छ जाय छे, तो तेना कारणे उत्पन्न थवावाणा राग-आदिनी
उत्पत्ति थती नथी; केभके कारणुना अभावमां कार्य उत्पन्न थतुं नथी. आ प्रकारे-रागादिने
अभाव थवाथी तेनाथी थवा वाणी मन, वचन अने कायानी प्रवृत्ति अटकी जाय छे.
प्रवृत्तिना अटकावथी पुण्यकर्म अने पाप कर्मनी उत्पत्ति थती नथी. तेतुं कार्य आरंभ

પાદે પ્રથમ મોહનીયં કર્મ ક્ષપયતિ । તદનુ જ્ઞાનાવરણીય-દર્શનાવરણીયા-અન્તરાય-કર્માણિ યુગપદેત્ર ક્ષપયિત્વા દ્વાદશગુણસ્થાનાન્તે ત્રયોદશગુણસ્થાનાદૌ સર્વદ્રવ્ય-પર્યાયવિપયં પારમૈશ્વર્યમનન્તં કેવલં જ્ઞાનદર્શનં પ્રાપ્ય શુદ્ધો બુદ્ધઃ સર્વજ્ઞઃ સર્વદર્શી જિનઃ કેવલી ભવતિ । તતઃ સયોગિકેવલી પ્રતનુ-શુભ-ચતુષ્કર્માવશેષઃ, આયુઃ-કર્મસંસ્કારવશાદ્ ભવ્યજનવોધનાય ભૂમણ્ડલે વિહરતિ, વિવિધં કર્મરજો ભવ્યાનાં હરતિ ચ ।

અસૌ તત્પશ્ચાદ્ અયોગિકેવલી ભૂત્વા ત્રતુર્દશગુણસ્થાને-આયુષ્યકર્મપરિસમાપ્તૌ સત્યાં, વેદનીય-નામ-ગોત્રકર્માણિ ક્ષપયતિ । एवं મૂલપ્રકૃતિવાચ્યમષ્ટવિધં જ્ઞાના-વરણીયાદિસકલકર્મ ક્ષીયતે ।

વહોં શુકલ ધ્યાન કે દ્વિતીય પાત્રે મેં સર્વ પ્રથમ મોહનીય કર્મ કા ક્ષય કરતા હૈ ! તત્પશ્ચાત્ જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ ઓર અન્તરાય કર્મો કો એક હી સાથ ક્ષય કરકે ચારહવેં ગુણસ્થાન કે અન્ત મેં ઓર તેરહવેં ગુણસ્થાન કી આદિ મેં સમસ્ત દ્રવ્ય પર્યાય કો વિપય કરને વાલા પરમ ઐશ્વર્ય કો પ્રાપ્ત હોને યોગ્ય અનન્ત કેવલજ્ઞાન ઓર કેવલદર્શન પ્રાપ્ત કરકે શુદ્ધ, બુદ્ધ, સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી, જિન ઓર કેવલી હો જાતા હૈ । ફિર વહ સયોગી કેવલી ચાર હલકે અઘાતિયા કર્મ શેષ રહને પર આયુકર્મ કે સંસ્કાર વશ હો કર ભવ્ય જીવો કો વોધ દેને કે લિષ્ મૂમણ્ડલ મેં વિહાર કરતે હેં ।

તત્પશ્ચાત્ અયોગી કેવલી હો કર ચૌદહવેં ગુણસ્થાન મેં આયુકર્મ કી સમાપ્તિ હોને પર વેદનીય નામ આયુ ગોત્ર કર્મો કા ક્ષય કરતે હેં । ઇસ પ્રકાર મૂલપ્રકૃતિ કહલાને વાલે આઠોં હી કર્મો કા ક્ષય હો જાતા હૈ ।

ત્યાં શુકલ ધ્યાનના ખીન્ન પાયામાં સર્વપ્રથમ મોહનીય કર્મનો ક્ષય કરે છે. તે પછી જ્ઞાનાવરણ, દર્શનાવરણ અને અન્તરાય કર્મોનો એકી સાથે ક્ષય કરીને, બારમાં શુભ-સ્થાનના અન્તમાં અને તેરમાં શુભસ્થાનની આદિમાં સમસ્ત દ્રવ્ય-પર્યાયને વિષય કરવાવાળા પરમ ઐશ્વર્યને પ્રાપ્ત થવા યોગ્ય અનન્ત કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શન પ્રાપ્ત કરીને શુદ્ધ, બુદ્ધ, સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી, જિન અને કેવલી થઈ જાય છે. પછી તે સયોગી કેવલી ચાર હલકાં અઘાતિયાં કર્મ બાકી રહેવા પર આયુકર્મના સંસ્કારવશ થઈને ભવ્યજીવોને વોધ આપવા માટે પૃથ્વીમાં વિહાર કરે છે.

તે પછી અયોગી કેવલી થઈને ચૌદમાં શુભસ્થાનમાં આયુકર્મની સમાપ્તિ થયા પછી વેદનીય, નામ અને ગોત્રકર્મનો ક્ષય કરે છે. આ પ્રમાણે મૂળપ્રકૃતિ કહેવાતા આઠ કર્મોનો ક્ષય થઈ જાય છે.

समाधिवलेनोत्पन्नतत्त्वज्ञानस्य जनस्य कर्मज्ञानसामर्थ्यात्तदुपभोगार्थमशेष-
शरीरसुत्पाद्याशेषभोगादेव पूर्वकर्मक्षयः, पुनस्तस्य तत्त्वज्ञानिनो मिथ्याज्ञानाभावा-
त्तज्जनितसंस्कारस्याप्यभावेन कर्मान्तरानुत्पत्तिश्च । तथा चोपभोगादेव
सकलकर्मक्षयस्वीकारेऽपि नास्ति कोऽपि दोषलेश इति ।

न च पुण्यपापकर्मणोर्जन्मान्तरशरीरोत्पादने सहकारि कारणं मिथ्या-
ज्ञानजनितसंस्कारोऽस्ति; तस्याभावादेव तत्त्वज्ञानिनां विद्यमाने अपि कर्मणी न
जन्मान्तरशरीराण्युत्पादयतः, अतस्तेषां कर्मसत्त्वेऽपि न काऽपि हानिरिति
वाच्यम् ।

समाधि के वल से उत्पन्न तत्त्वज्ञान वाले पुरुष के कर्मज्ञान के सामर्थ्य से कर्म का
उपभोग करने के लिए अशेष शरीर उत्पन्न करके अशेष भोग से ही पूर्वकर्म का क्षय हो
जाता है । उस तत्त्वज्ञानी पुरुष में मिथ्याज्ञान नहीं होता और मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने
वाला संस्कार भी नहीं होता । इस कारण नवीन कर्म की उत्पत्ति भी नहीं होती । ऐसी
स्थिति में उपभोग से ही समस्त कर्मों का क्षय मान लेने में लेशमात्र भी दोष नहीं है ।

मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने वाला संस्कार जन्मान्तर के शरीर की उत्पत्ति में
सहकारी कारण होता है । वह संस्कार तत्त्वज्ञानी में नहीं रहता । उस का अभाव हो
जाने पर, पुण्य-पाप कर्म भले ही विद्यमान रहें मगर वे शरीर उत्पन्न नहीं कर सकते ।
अत एव उन में कर्म का सद्भाव होने पर भी कोई हानि नहीं होती । यह सब कथन
सत्य नहीं है ।

समाधिना गणथी उत्पन्न तत्त्वज्ञान वाणा पुरुषनां कर्मज्ञाननां सामर्थ्यथी
कर्मना उपभोग करवा भाटे अशेष शरीर उत्पन्न करीने अशेष भोगथीनः पूर्वकर्मना
क्षय थर्त्तय छे. ते तत्त्वज्ञानी पुरुषनां मिथ्याज्ञान नथी अने मिथ्याज्ञानथी उत्पन्न
थवावाणा संस्कार पणु नथी. आ डारणुथी नवीन कर्मनी उत्पत्ति पणु थती नथी. अेवी
स्थितिनां उपभोगथीनः समस्त कर्मना क्षय भानी लेवाभां लेश मात्र पणु टोप नथी.

मिथ्याज्ञानथी उत्पन्न थवावाणा संस्कार जन्मान्तरना शरीरनी उत्पत्तिनां
सहकारी डारणु थाय छे. ते संस्कार तत्त्वज्ञानीनां रडेता नथी. तेना अभाव थर्त्त
नवाथी, पुण्य-पापकर्म लडेने विद्यमान रडे. परन्तु ते शरीर उत्पन्न करी शकतां
नथी, अेटला भाटे तेनां कर्मना सद्भाव डोवा छतांय पणु डोई प्रकारे हानि थती
नथी. आ सर्व कथन सायां नथी.

પુણ્યપાપકર્મણોરૂપભોગાદેવ પ્રક્ષયો ભવતિ; સંચિતરૂપયોરત્વ પુણ્યપાપકર્મણોરતત્ત્વ-
જ્ઞાનાદેવ પ્રક્ષયઃ । एवं कर्मक्षयो भवति । उक्तञ्च—

“ જ્ઞાનાગ્નિઃ સર્વકર્માગ્નિ, મસ્મસાત્ કુસ્તે તથા ” । इति । तथा “नाशुक्तं
ક્ષીયતે કર્મ, ફલપકોટિશતૈરપિ” इति च ।

કેચિચ્—સંચિતકર્મણામપિ પ્રક્ષયો ભોગાદેવ ભાવતીત્યુક્તં તપ્રાનુમાનં
પ્રમાણં ચ પ્રદર્શિતમ્ । तथा हि—पूर्वकर्माण्युपभोगादेव क्षीयन्ते, कर्मत्वात् । यत् यत्
કર્મ તત્ તત્ ઉપભોગાદેવ ક્ષીયતે, યથા—આરબ્ધશરીરં કર્મ, તથા ચૈતત્ કર્મ, તસ્મા-
દુપભોગાદેવ ક્ષીયતે ।

ન ચોપભોગાત્ કર્મપ્રક્ષયસ્વીકારે કર્માન્તરસ્યાવશ્યમ્ભાવાત્ સંસારાનુલ્લેદઃ
इति वाच्यम्,

આરમ્ભ હો ચુકા હૈ, એસે પાપ-પુણ્ય કા, ઉપભોગ સે ક્ષય હોતા હૈ ઓર સંચિત પુણ્ય-પાપ
કા, તત્ત્વજ્ઞાન સે । इस प्रकार समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है । कहा भी है—

“ જ્ઞાનરૂપી અગ્નિ સમસ્ત કર્મો કો મસ્મ કર ઢાલતી હૈ ” । तथा—“ करोड़ों सैकड़ों
કલ્પો મેં મો કર્મ કા ભોગે વિના ક્ષય નહીં હોતા ” ।

કિસી કા કહના હૈ કિ—સંચિત કર્મો કા ક્ષય મો ભોગ સે હી હો જાતા હૈ । इस
વિષય મેં અનુમાન પ્રમાણ મો દિયા ગયા હૈ । वह इस प्रकार है—पूर्वसंचित कर्म उपभोग
સે હી ક્ષીણ હોતા હૈ, ક્યો કિ વહ કર્મ હૈ । जो जो कर्म होता है वह वह उपभोग से ही
ક્ષીણ હોતા હૈ, જેસે આરબ્ધ શરીરકર્મ । संचितकर्म भी कर्म हैं अतः वे भी उपभोग से ही
ક્ષીણ હોતે હૈ ।

ઉપભોગ સે કર્મો કા ક્ષય સ્વીકાર ક્રિયા જાય તો નવીન કર્મો કી ઉત્પત્તિ અવશ્ય
હોમી ઓર ફલ્લતઃ જન્મ-મરણ કા કર્મો નાશ નહીં હોગા । ऐसी आशङ्का करना
उचित नहीं है ।

થઈ ચૂકયું છે, એવા પાપ-પુણ્યનો ઉપભોગથી ક્ષય છે, અને સંચિત પુણ્ય-પાપનો
તત્ત્વજ્ઞાનથી ક્ષય થાય છે. આ પ્રકારે સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય થઈ જાય છે. કહ્યું પણ
છે કે:—“ જ્ઞાનરૂપી અગ્નિ સમસ્ત કર્મોને બાળી નાંખે છે. ” तथा “ करोड़ों सैकड़ों
કલ્પોમાં પણ કર્મ ભોગવ્યા વિના ક્ષય થતા નથી. ”

કેટલાક કહે છે કે—સંચિત કર્મોનો ક્ષય પણ ભોગથી જ થઈ જાય છે. આ
વિષયમાં અનુમાન પ્રમાણ પણ આપવામાં આવ્યું છે તે આ પ્રમાણે છે—પૂર્વસં-
ચિતકર્મ ઉપભોગથી જ ક્ષીણ થાય છે, કારણ કે તે કર્મ છે, જે જે કર્મ હોય છે તે
તે ઉપભોગથી જ ક્ષીણ થાય છે, જેવી રીતે આરબ્ધ શરીરકર્મ સંચિત કર્મ પણ કર્મ
છે, એ કારણથી તે પણ ઉપભોગથી જ ક્ષીણ થાય છે.

ઉપભોગથી કર્મોનો ક્ષય સ્વીકાર કરવામાં આવે તો, નવીન કર્મોની ઉત્પત્તિ અવશ્ય
થશે અને કલ્લતઃ જન્મ મરણનો ક્યારેય નાશ નહિ થાય, આવી શંકા કરવી તે ઉચિત નથી.

संभवात् पुनः प्रचुरतरपुण्यपापकर्मसद्भावे कथमात्यन्तिकः कर्मक्षयः स्यात् ।

नहि केवलस्य सम्यग्ज्ञानस्य आगामिकर्मानुत्पत्तिसामर्थ्यं विद्यते, किन्तु चारित्रसहितस्यैव सम्यग्ज्ञानस्य संचितकर्मक्षये आगामिकर्मानुत्पत्तौ च सामर्थ्यं संभाव्यते । सम्यग्ज्ञानेन हि मिथ्याज्ञानस्य निवृत्तिः । ततश्च रागद्वेषाद्यभावेन हिंसादिपापक्रियानिवृत्तिरूपचारित्रसहयोगाद् नवीनकर्मानुत्पत्तिर्भवति । तद्वत् संचित-कर्मक्षयोऽपि चारित्रसहकृतसम्यग्ज्ञानादेव भवति । यथोपधं ज्ञानमात्रेण नाममात्रेण वा न व्याधिं निवर्तयति, किन्तु तत्सेवनादिक्रियापरिणत्यैव, तद्वत् चारित्रसहितसम्यग्ज्ञानेनैव कर्मक्षयः ।

होगा, और यह व्यापार नवीन कर्मवन्ध का कारण है, इस लिए फिर बहुत से पुण्यकर्म और पापकर्म संचित हो जाएँगे । ऐसी दशा में आत्यन्तिक कर्मक्षय किस प्रकार होगा ?

अकेला सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ नहीं है । हाँ, चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संचित कर्मों के क्षय में और आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ हो सकता है । सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होती है । फिर राग-द्वेष आदि का अभाव हो जाने से हिंसादि पाप क्रिया की निवृत्तिरूप चारित्र की सहायता से नवीन कर्मों की उत्पत्ति रुकती है । इसी प्रकार संचित कर्मों का क्षय भी चारित्र से युक्त सम्यग्ज्ञान से ही होता है । जैसे—औपधि ज्ञानमात्र से या नाम लेने मात्रसे व्याधि को दूर नहीं करती किन्तु सेवन करने से ही दूर करती है, उसी प्रकार चारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञान से ही कर्मों का क्षय होता है ।

थये, अने ते व्यापार नवीन कर्मबंधनुं कारणुं छे, अये भाटे इरी धर्षांन पुण्य-पाप कर्म संचित थर्ष जये. अयेवी दशाभां आत्यन्तिक कर्मक्षय डेवी रीते थये ?

अकेलुं सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मोनी उत्पत्तिने रोकवाभां समर्थ नथी. हा. चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संचित कर्मोना क्षयभां अने आगामी कर्मोनी उत्पत्ति रोकवाभां समर्थ थर्ष शकें छे. सम्यग्ज्ञानथी मिथ्याज्ञाननी निवृत्ति थाय छे. पछी राग-द्वेष वगेरेने अभाव थर्ष जवाथी हिंसादि पापक्रियानी निवृत्तिरूप चारित्रनी सहायताथी नवीन कर्मोनी उत्पत्ति अटके छे. अये प्रभाळु संचित कर्मोना क्षय पणु चारित्रथी युक्त सम्यग्ज्ञानथीन थाय छे. जेवी रीते औपधना ज्ञानमात्रथी अथवा औपधनुं नाम लेवाथी व्याधि इर थती नथी, परन्तु सेवन करवाथी न इर थाय छे. ते प्रभाळु चारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञानथीन कर्मोना क्षय थाय छे.

जन्यपदार्थस्य नित्यत्वापत्तिः स्यादित्येव महान् दोषः समापद्येत । तथाहि—पुण्यपापरूपकर्मणोः स्वफलानुत्पादनेन तत्सत्तास्वीकारे कार्यरूपयोरपि तयोर्नित्यत्वप्रसङ्गः । किञ्च—भविष्यत्काले पुण्यपापकर्मणोरनुत्पत्तिस्वीकारे तत्त्वज्ञानिनां प्रत्यवायपरिहारार्थं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं कथमुपपद्येत ? इति वदन्ति । अत्रोच्यते—

यत्तु—उक्तम्—आरब्धकार्ययोः पुण्यापुण्यकर्मणोरुपभोगात् प्रक्षयः संचित-योश्च तयोः प्रक्षयस्तत्त्वज्ञानादित्यादि, तदपि न संगतम् । तथाहि—उपभोगात् कर्मप्रक्षये तदुपभोगकालेऽभिलाषपूर्वकमनोवाक्कायव्यापारस्यापरकर्मकारणस्य

सब से पहले महान् हानि तो यही है कि जन्य पदार्थ (काय) भी नित्य हो जायगा । वह इस प्रकार—पुण्य—पाप रूप कर्मों के फल को उत्पन्न न कर के सत्ता स्वीकार की गई है, सो कार्यरूप होने पर भी उन में नित्यता का प्रसङ्ग आता है । दूसरी बात यह है कि—आगामी काल में पुण्य—पाप की उत्पत्ति न स्वीकार करने पर तत्त्वज्ञानियों के लिए, प्रत्यवाय (दोष) का परिहार करने के लिए नित्य—नैमित्तिक अनुष्ठान करना किस प्रकार संगत होगा । ऐसा इन का कथन है,

इस पर विचार किया जाता है—

कार्यरूप में परिणत पुण्य और पाप कर्मों का उपभोग से क्षय होता है और संचित कर्मों का तत्त्वज्ञान से, इत्यादि कथन भी संगत नहीं है । उपभोग से कर्मों का क्षय मानने पर कर्मों का उपभोग करते समय इच्छापूर्वक मन वचन और कायाका व्यापार

सौधी प्रथम महान् हानि तो ऐव छे के जन्य पदार्थ (काय) पक्षु नित्य थंथं जशे. ते आ प्रमाद्ये—पुण्यपापरूप कर्मोना इणने उत्पन्न न करतां नित्यतानो स्वीकार करवाभां आये छे. ते कार्यरूप होवा छतांय पक्षु तेभां नित्यतानो प्रसंग आवे छे. पीछ वात ऐ छे के—आगामी काजभां पुण्यपापनी उत्पत्ति नहि स्वीकारवाथी तत्त्वज्ञानीये भाटे प्रत्यवाय (दोष) नो परिहार करवा भाटे नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान करवुं ते केवी रीते संगत थशे आ प्रमाद्ये तेमनुं कथन छे.

तेना पर विचार करवाभां आवे छे:—

कार्यरूपभां परिष्कृत पुण्य अने पाप कर्मोना उपभोगथी क्षय थाय छे. अने संचित कर्मोना तत्त्वज्ञानथी. धत्याहि कथन पक्षु संगत नथी. उपभोगथी कर्मोना क्षय मानवाथी, कर्मोना उपभोग करवा समये इच्छापूर्वक मन, वचन अने कायानो व्यापार

संभवात् पुनः प्रचुरतरपुण्यपापकर्मसद्भावे कथमात्यन्तिकः कर्मक्षयः स्यात् ।

नहि केवलस्य सम्यग्ज्ञानस्य आगामिकर्मानुत्पत्तिसामर्थ्यं विद्यते, किन्तु चारित्रसहितस्यैव सम्यग्ज्ञानस्य संचितकर्मक्षये आगामिकर्मानुत्पत्तौ च सामर्थ्यं संभाव्यते । सम्यग्ज्ञानेन हि मिथ्याज्ञानस्य निवृत्तिः । ततश्च रागद्वेषाद्यभावेन हिंसादिपापक्रियानिवृत्तिरूपचारित्रसहयोगाद् नवीनकर्मानुत्पत्तिर्भवति । तद्वत् संचित-कर्मक्षयोऽपि चारित्रसहकृतसम्यग्ज्ञानादेव भवति । यथोपधं ज्ञानमात्रेण नाममात्रेण वा न व्याधिं निवर्तयति, किन्तु तत्सेवनादिक्रियापरिणत्यैव, तद्वत् चारित्रसहि-तसम्यग्ज्ञानेनैव कर्मक्षयः ।

होगा, और यह व्यापार नवीन कर्मबन्ध का कारण है, इस लिए फिर बहुत से पुण्यकर्म और पापकर्म संचित हो जाएँगे । ऐसी दशा में आत्यन्तिक कर्मक्षय किस प्रकार होगा ?

अकेला सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ नहीं है । हाँ, चारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संचित कर्मों के क्षय में और आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ हो सकता है । सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होती है । फिर राग-द्वेष आदि का अभाव हो जाने से हिंसादि पाप क्रिया की निवृत्तिरूप चारित्र की सहायता से नवीन कर्मों की उत्पत्ति रुकती है । इसी प्रकार संचित कर्मों का क्षय भी चारित्र से युक्त सम्यग्ज्ञान से ही होता है । जैसे-औषधि ज्ञानमात्र से या नाम लेने मात्रसे व्याधि को दूर नहीं करती किन्तु सेवन करने से ही दूर करती है, उसी प्रकार चारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञान से ही कर्मों का क्षय होता है ।

थशे, अने ते व्यापार नवीन कर्मबंधनुं कारणु छे, अे माटे इरी घणुंण पुण्य-पाप कर्म संचित थर्धुं जशे. अेवी दशाभां आत्यन्तिक कर्मक्षय केवी रीते थशे ?

अेकतुं सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मोनी उत्पत्तिने रोकवाभां समर्थ नथी. डा. आरित्रसहित सम्यग्ज्ञान संचित कर्मोना क्षयभां अने आगामी कर्मोनी उत्पत्ति रोकवाभां समर्थ थर्धुं शके छे. सम्यग्ज्ञानथी मिथ्याज्ञानथी निवृत्ति थाय छे. पछी राग-द्वेष वगेरेना अभाव थर्धुं जवाथी हिंसादि पापक्रियानी निवृत्तिरूप आरित्रनी सहायताथी नवीन कर्मोनी उत्पत्ति अटके छे. अे प्रभाणु संचित कर्मोना क्षय पणु आरित्रथी युक्त सम्यग्ज्ञानथीण थाय छे. जेवी रीते औषधना ज्ञानमात्रथी अथवा औषधनुं नाम लेवाथी व्याधि हर थती नथी, परन्तु सेवन करवाथी ज हर थाय छे. ते प्रभाणु आरित्रयुक्त सम्यग्ज्ञानथीण कर्मोना क्षय थाय छे.

વાયોગઃ । વીર્યાન્તરાયક્ષયોપશમજનિતં કાયયુક્તાત્મપ્રદેશગતવીર્યપરિણમનં
 કાયયોગઃ । સા ચ ક્રિયા સકલકર્મવન્ધસ્ય કારણમ્, અતઃ કર્મવાદી મન્યઃ
 ક્રિયાં સકલકર્મકારણસ્વરૂપતયાઽઽત્મપરિણતિરૂપત્વેન ચ ધિજાનાતિ, તસ્માત્
 સકલકર્મવન્ધકારણમાત્મપરિણતિરૂપા ચ ક્રિયેતિ વેદિતા, ક્રિયાવાદી-ક્રિયાસ્વરૂપ-
 કથનસ્વભાવો વેદિતવ્ય इत्यर्थः ।

ક્રિયા કર્મણઃ કારણમિતિ ભગવતા ભગવતીસૂત્રે નિગદિતમ્, તથાહિ—

“મંડિઅપુત્તા ! જાવં ચ ણં સે જીવે સયા સમિયં ઇયઙ્, વેયઙ્, ચલઙ્, ફંદહ, ઘટ્ટઙ્, સુન્નઙ્, ઉદીરઙ્, તં તં ભાવં પરિણમઙ્, તાવં ચ ણં સે જીવે આરંભઙ્
 સારંભઙ્ સમારંભઙ્, આરંભે વટ્ટઙ્ સારંભે વટ્ટઙ્, સમારંભે વટ્ટઙ્, આરંભમાણે સારંભમાણે
 સમારંભમાણે આરંભે વટ્ટમાણે સારંભે વટ્ટમાણે સમારંભે વટ્ટમાણે વહૂણં પાણાણં
 ભૂયાણં જીવાણં સત્તાણં દુક્કવાવણયાણ, સોયાવણયાણ, ધૂરાવણયાણ, તિપ્પાવણયાણ,
 પરિયાવણયાણ વટ્ટઙ્, સે તેણદ્દેણં મંડિઅપુત્તા ! એવં વુચ્છઙ્—જાવં ચ ણં સે જીવે
 સયા સમિયં ઇયઙ્ જાવ પરિણમઙ્, તાવં ચ ણં તસ્સ જીવસ્સ અંતે અંતકિરિયા ન
 ભવઙ્” (ભગવતી. ૩. શત. ૩૭.)

કહલાતા હૈ । વીર્યાન્તરાય કે ક્ષયોપશમ સે જનિત, કાયયુક્ત આત્મપ્રદેશોં મેં રહે હુએ વીર્ય
 કા પરિણમન કાયયોગ કહલાતા હૈ । યહ ક્રિયા સકલ કર્મવન્ધ કા કારણ હૈ, ઇસ લિએ
 મન્ય પુરુષ ક્રિયા કો સવ કર્મોં કા કારણ ઓર આત્મા કી પરિણતિરૂપ સમજતા હૈ, અતઃ
 “ક્રિયા, સમસ્ત કર્મોં કા કારણ ઓર આત્મા કી પરિણતિરૂપ હૈ” ઇસ પ્રકાર જાનને વાલેકો
 ક્રિયાવાદિક્રિયા કે સ્વરૂપ કા કથન કરને વાલા સમજના ચાહિએ ।

ક્રિયા, કર્મ કા કારણ હૈ, યહ વાત ભગવાન્ ને ભગવતીસૂત્ર મેં કહી હૈ, વહ
 ઇસ પ્રકારઃ—

ઉત્પન્ન, વચન—યુક્ત આત્મપ્રદેશોભાં રહેલા વીર્યના પરિણમન કાયયોગ કહેવાય છે.
 આ ક્રિયા સકલ કર્મવન્ધનું કારણ છે. એટલા માટે લબ્ય પુરુષ ક્રિયાને સર્વ કર્મોનું
 કારણ અને આત્માની પરિણતિરૂપ સમજે છે. તે કારણથી “ક્રિયા સમસ્ત કર્મોનું
 કારણ અને આત્માની પરિણતિરૂપ છે.” આ પ્રમાણે બાણવાવાળાને ક્રિયાવાદી-ક્રિયાના
 સ્વરૂપનું કથન કરવા વાળા સમજવા જોઈએ.

ક્રિયા એ કર્મનું કારણ છે, એ વાત લગવાને ભગવતીસૂત્રમાં કહી છે, તે આ
 પ્રમાણે છે—

छाया-मण्डितपुत्र ! यावच्च खलु स जीवः सदा समितं एजते व्यजते चलति स्पन्दते घट्टते क्षुभ्यति उदीरयते तं तं भावं परिणमति, तावच्च खलु स जीव आरभते संरभते समारभते, आरम्भे वर्तते संरम्भे वर्तते समारम्भे वर्तते, आरभमाणः, संरभमाणः समारभमाणः । आरम्भे वर्तमानः, संरम्भे वर्तमानः समारम्भे वर्तमानो बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां, दुःखापनतया शोचापनतया श्रूपापनतया तेषापनतया पिष्टापनतया परितापनतया वर्तते तत् तेनार्थेन मण्डितपुत्र ! एवम् उच्यते-यावच्च खलु स जीवः सदा समितं एजते यावत् परिणमति, तावच्च खलु तस्य जीवस्य अन्ते अन्तक्रिया न भवति ।

भावार्थः—

मनोवाक्काययोगसहितस्य जीवस्य सर्वदा क्रियापरिणत्या कम्पन-स्थानान्तरगमन-किञ्चिच्चलन-सर्वदिग्गमन-पृथिव्यादिक्षोभण-बलात्कारपूर्वकप्रेरणो-त्क्षेपणा-पक्षेपणा-ऽऽकुञ्चन-प्रसारणादिपरिणामं प्राप्तस्य पृथिव्यादिजीवानामुप-द्रवकरणेन वा, विनाशसंकल्पनेन वा, परितापनेन वा, मरणलक्षणदुःख-प्रापणया वा, प्रियवियोगादिदुःखप्रापणया वा, शोकप्रापणया वा, शोकाधिक्यजन्य-

“मन वचन और काययोग से सहित जीव सदा क्रियारूप परिणति से कम्पन, विविध कम्पन; एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन, किञ्चित् चलना, सब दिशाओं में गमन करना, पृथ्वी आदि को क्षुब्ध करना, बलात्कार से प्रेरित करना, ऊपर उठाना, नीचे करना, सिकोडना, फैलाना, इत्यादि परिणामों को प्राप्त होता है । इस परिणाम के कारण जीव को पृथिवीकाय आदि के जीवों को उपद्रव करने से, घातका संकल्प करने से, परिताप पहुँचाने से, मृत्युरूप दुःख पहुँचाने से, इष्टवियोग आदि का कष्ट पहुँचाने से, शोक

मन, वचन अने काययोगથી सहित एव सहाय क्रियारूप परिणतिथी कम्पन, विविध कम्पन, अेक स्थानथी धीन स्थानपर गमन, किञ्चित् आलवुं, सर्व दिशाओभां गमन करवुं, पृथ्वी आदिने क्षुब्ध करवुं, बलात्कारथी प्रेरित करवुं, उपर उठावुं, नीचे करवुं, सिकोड्यावुं, फैलावुं, इत्यादि परिणामेने प्राप्त थाय छे. आ परिणामना कारणे एवने पृथ्वीकाय आदिना एवने उपद्रव करवाथी, घातने संकल्प करवाथी, परिताप पहुँचाववाथी, मृत्युरूप दुःख पहुँचाववाथी, शोकनी अधिकताथी थवावाणी शरीरनी

શરીરજીર્ણતાપ્રાપ્તયા વા, અશ્રુપાતાદિપ્રાપ્તયા વા, શરીરપીઠોત્પાદનયા વા, ગ્લાનિજનનેન વા સકલકર્મક્ષયાત્મિકા મુક્તિર્ન મયતીત્યર્થઃ । एवम्भूतस्य जीवस्य चतुर्गतिकदुःखमयसंसारदुस्तरमहारण्यपरिभ्रमणाद् विरामो न संभवतीति भावः ।

ક્રિયાયાઃ પञ્ચવિંશતિર્મેદા इति स्थानाङ्गसूत्रे (स्था. ૨ ઉ. ૧ । સ્વા. ૩ ઉ. ૩)

કતિમિઃ ક્રિયામિઃ પ્રાણાતિપાતઃ —

પ્રાણાતિપાતં કુર્વન્ जीवः समाप्तौ वा ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि बध्नाति ।
ત્રાયુર્વન્ધે સત્યપ્તૌ કર્માણિ, આયુર્વન્ધાભાવે સપ્ત કર્માણિ વધ્નાતિ ।

તત્ર जीवः कतिमिः क्रियाभिः प्राणातिपातं निष्पादयति ? उच्यते— कदाचित्
तिसृभिः क्रियाभिः, कदाचिच्चतसृभिः क्रियाभिः, कदाचित्, पञ्चभिः क्रियाभिः ।

પહુંચાને સે શોક ક્ષી અધિકતા સે, હોને વાલી શરીર ક્ષી જીર્ણતા પહુંચાને સે, અશ્રુપાત આદિ કરવાને સે, શરીર મેં પીડા ઉત્પન્ન કરને સે, ગ્લાનિ ઉત્પન્ન કરને સે સમસ્ત કર્મોં કા ક્ષયરૂપ મોક્ષ પ્રાપ્ત નહીં હોતા । તાત્પર્યે યહ હૈ કિ—इस प्रकार के जीव के चार गति के दुःखों से परिपूर्ण संसाररूपी विकट अटवी में भ्रमण करने का अन्त नहीं आता । ”

ક્રિયા કે પચ્ચૌસ મેદ સ્થાનાંગ્ગસૂત્ર મેં કહે હૈં । (સ્થા. ૨ ઉ. ૧, સ્થા. ૩ ઉ. ૩)

પ્રાણાતિપાત કિતની ક્રિયાઓં સે હોતા હૈં ? ।

પ્રાણાતિપાત કરતા હુઆ જીવ જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત યા આઠ કર્મોં કા વન્ધ કરતા હૈં । આયુ કા વન્ધ હો તો આઠ કર્મોં કા અન્યથા સાત કર્મોં કા વન્ધ કરતા હૈં ।

જીવ કિતની ક્રિયાઓં સે પ્રાણાતિપાત કરતા હૈં । હસ કા ઉત્તર યહ હૈ—कदाचित् तीन क्रियाओं से, कदाचित् चार क्रियाओं से, कदाचित् पांच क्रियाओं से ।

છર્ણૌતા પહોંચાડવાથી, આંસુ પ્રકાવવાથી, શરીરમાં પીડા ઉત્પન્ન કરવાથી, ગ્લાનિ ઉત્પન્ન કરવાથી સમસ્તકર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી. તાત્પર્યં એ છે કે:— આ પ્રમાણે જીવને આરગતિના દુઃખોથી પરિપૂર્ણ સંસારરૂપી વિકટ અટવી (વન)માં ભ્રમણ કરવાનો અંત આવતો નથી.

ક્રિયાના પચ્ચૌસ ભેદ સ્થાનાંગ સૂત્રમાં કહ્યા છે. (સ્થા. ૨-ઉ-૧. સ્થા. ૩-૩)

પ્રાણાતિપાત કેટલી ક્રિયાઓથી થાય છે ?

પ્રાણાતિપાત કરનાર જીવ જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત અથવા આઠ કર્મોના અંધ કરે છે. આયુનો અંધ હોય તો આઠ કર્મોના—અન્યથા સાત કર્મોના અંધ કરે છે.

જીવ કેટલી ક્રિયાઓથી પ્રાણાતિપાત કરી શકે છે ? તેનો ઉત્તર એ છે

કે—કદાચિત્ ત્રણ ક્રિયાઓથી, કદાચિત્ ચાર ક્રિયાઓથી; કદાચિત્ ક્રિયાઓથી.

તત્ર-કાયિક્યાધિકરણિકીપ્રાદ્વેપિકીભિઃ ક્રિયાભિસ્ત્રિક્રિયો જીવઃ કર્માણિ વદ્ધાતિ । કાયિકીનામ-હસ્તપાદાદિવ્યાપારણમ્ । અધિકરણિકી-સ્વદ્ગતીક્ષ્ણીકરણા-દિકમ્ । પ્રાદ્વેપિકી-‘એનં મારયમી’-ત્યશુભમનઃસંપ્રધારણમિતિ ।

પ્રાણાતિપાતં કર્તુર્જીવસ્ય ચતુષ્ક્રિયતા-કાયિક્યાધિકરણિકીપ્રાદ્વેપિકી પારિતાપનિકીભિશ્ચતસૃભિઃ ક્રિયાભિર્ભવતિ । તત્ર-પારિતાપનિકીનામ-સ્વદ્ગાદિઘાતેન પીડાકરણમ્ । પશ્ચક્રિયતા તદા ભવતિ યદા પ્રાણાતિપાતક્રિયાઽપિ પશ્ચમી ભવતિ । પ્રાણાતિપાતક્રિયાનામ-જીવિતાદ્ વ્યપરોપણમ્ । ઉક્તરીત્યા જ્ઞાનાવરણી-

કાયિકી, આધિકરણિકી ઓર પ્રાદ્વેપિકી, ઇન ત્રીન ક્રિયાઓં વાલા હોકર જીવ કર્મવન્ધ કરતા હૈ । હાથ-પૈર આદિ કા હિલાના ડુલાના વૌરહ ‘કાયિકિ’ ક્રિયા હૈ । તલવાર કો તોક્ષ કરના વૌરહ ‘આધિકરણિકી’ ક્રિયા હૈ । ‘ઇસે માહંગા’ ઇસ પ્રકાર મન મેં અશુભ વિચાર કરના ‘પ્રાદ્વેપિકી’ ક્રિયા હૈ ।

પ્રાણાતિપાત કરને વાલા જીવ ચાર ક્રિયા વાલા હોતા હૈ-કાયિકી, આધિકરણિકી, પ્રાદ્વેપિકી ઓર પારિતાપનિકી, યે ચાર ક્રિયાએં ઉસે લગતી હૈ । તલવાર આદિકા આઘાત કર કે પોડા પહ્ચાના ‘પારિતાપનિકી’ ક્રિયા હૈ । જવ પ્રાણાતિપાત ક્રિયા મી જીવ કર ઢાલતા હૈ તવ ઉસે પાંચો ક્રિયાએં લગતી હૈ । કિસી પ્રાણી કો જીવન સે વિયુક્ત કર દેના ‘પ્રાણાતિપાતિકી’ ક્રિયા હૈ । ઇસ પ્રકાર જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોં કે કારણમૂત

કાયિકી, આધિકરણિકી અને પ્રાદ્વેપિકી, આ ત્રણ ક્રિયાઓવાળા થઈને જીવ કર્મબંધ કરે છે, હાથ-પગ આદિને હલાવવું-ફેરવવું વગેરે કાયિકી ક્રિયા છે. તલવાર વગેરેને તોક્ષ કરવી વગેરે આધિકરણિકી ક્રિયા છે ‘એને મારીશ’ આ પ્રકારને મનમાં અશુભ વિચાર કરવો તે પ્રાદ્વેપિકી ક્રિયા છે.

પ્રાણાતિપાત કરવાવાળા જીવ ચાર ક્રિયાવાળા હોય છે-કાયિકી, આધિકરણિકી, પ્રાદ્વેપિકી અને પારિતાપનિકી, આ ચાર ક્રિયાઓ તેને લાગે છે. તલવાર આદિને આઘાત કરીને પીડા પહોંચાડવી તે પારિતાપનિકી ક્રિયા છે. બ્યારે પ્રાણાતિપાત ક્રિયા પણ જીવ કરી નાંખે છે ત્યારે તેને પાંચ ક્રિયાઓ લાગે છે. કોઈ પ્રાણીને જીવનથી વિયુક્ત (બંધ) કરી દેવું તે પ્રાણાતિપાતિકી ક્રિયા છે. આ પ્રમાણે જ્ઞાનાવરણીય આદિ

શરીરજીર્ણતાપ્રાપ્તિયા યા, અશ્રુપાતાદિપ્રાપ્તિયા યા, શરીરપીડોત્પાદનયા યા, ગ્લાનિજનનેન યા સકલકર્મક્ષયાત્મિકા મુક્તિર્ન મવતીત્યર્થઃ । एवम्भूतस्य जीवस्य चतुर्गतिकदुःखमयसंसारदुस्तरमहारण्यपरिभ्रमणाद् विरामो न संभवतीति भावः ।

ક્રિયાયાઃ પચ્ચવિંશતિર્ભેદા इति स्थानाङ्गसूत्रे (स्था. ૨ ઉ. ૧ । સ્થા. ૩ ઉ. ૩)

કતિમિઃ ક્રિયામિઃ પ્રાણાતિપાતઃ—

પ્રાણાતિપાતં કુર્વન્ જીવઃ સપ્તાષ્ટૌ વા જ્ઞાનાવરણીયાદીનિ કર્મોણિ યદ્ભાતિ । તન્નાયુર્વન્ધે સત્યષ્ટૌ કર્મોણિ, આયુર્વન્ધામાવે સપ્ત કર્મોણિ યદ્ભાતિ ।

તત્ર જીવઃ કતિમિઃ ક્રિયામિઃ પ્રાણાતિપાતં નિષ્પાદયતિ ? ઉચ્યતે— કદાચિત્ તિસૃમિઃ ક્રિયામિઃ, કદાચિચ્ચતસૃમિઃ ક્રિયામિઃ, કદાચિત્, પચ્ચમિઃ ક્રિયામિઃ ।

પહુંચાને સે શોક કી અધિકતા સે, હોને વાલી શરીર કી જીર્ણતા પહુંચાને સે, અશ્રુપાત આદિ કરવાને સે, શરીર મેં પીડા ઉત્પન્ન કરને સે, ગ્લાનિ ઉત્પન્ન કરને સે સમસ્ત કર્મોં કા ક્ષયરૂપ મોક્ષ પ્રાપ્ત નહીં હોતા । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—ઇસ પ્રકાર કે જીવ કે ચાર ગતિ કે દુઃખોં સે પરિપૂર્ણ સંસારરૂપી વિકટ અટવી મેં ભ્રમણ કરને કા અન્ત નહીં આતા । ”

ક્રિયા કે પચ્ચીસ ભેદ સ્થાનાંગસૂત્ર મેં કહે હૈં । (સ્થા. ૨ ઉ. ૧, સ્થા. ૩ ઉ. ૩)

પ્રાણાતિપાત કિતની ક્રિયાઓં સે હોતા હૈં ? ।

પ્રાણાતિપાત કરતા હુઆ જીવ જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત યા આઠ કર્મોં કા બન્ધ કરતા હૈં । આયુ કા બન્ધ હો તો આઠ કર્મોં કા અન્યથા સાત કર્મોં કા બન્ધ કરતા હૈ ।

જીવ કિતની ક્રિયાઓં સે પ્રાણાતિપાત કરતા હૈ । ઇસ કા ઉત્તર યહ હૈ—કદાચિત્ ત્રીન ક્રિયાઓં સે, કદાચિત્ ચાર ક્રિયાઓં સે, કદાચિત્ પાંચ ક્રિયાઓં સે ।

છલ્બૃતા પહેંચાડવાથી, આંસુ પડાવવાથી, શરીરમાં પીડા ઉત્પન્ન કરવાથી, ગ્લાનિ ઉત્પન્ન કરવાથી સમસ્તકર્મોના ક્ષયરૂપ મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી. તાત્પર્ય એ છે કે:— આ પ્રમાણે છલવનો ચારગતિના દુઃખોથી પરિપૂર્ણ સંસારરૂપી વિકટ અટવી (વન)માં ભ્રમણ કરવાનો અંત આવતો નથી.

ક્રિયાના પચ્ચીસ ભેદ સ્થાનાંગ સૂત્રમાં કહ્યા છે. (સ્થા. ૨-ઉ-૧. સ્થા. ૩-૩)

પ્રાણાતિપાત કેટલી ક્રિયાઓથી થાય છે ?

પ્રાણાતિપાત કરનાર છવ જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત અથવા આઠ કર્મોના બંધ કરે છે. આયુનો બંધ હોય તો આઠ કર્મોના—અન્યથા સાત કર્મોના બંધ કરે છે.

છવ કેટલી ક્રિયાઓથી પ્રાણાતિપાત કરી શકે છે ? તેનો ઉત્તર એ છે કે:—કદાચિત્ ત્રણ ક્રિયાઓથી, કદાચિત્ ચાર ક્રિયાઓથી; કદાચિત્ પાંચ ક્રિયાઓથી.

वदे सति तु मृगे तस्य लुब्धकस्य पारितापनिकी, पारितापनप्रयोजना क्रिया भवति ।
यातिषे च सति मारणरूपा प्राणातिपातक्रिया ।

पूर्व क्रियया ज्ञानावरणीयादिकं कर्म जन्यते । तत्तत्कर्मफलानुभवनरूपा वेदना
च तत्पश्चादेव भवति । उक्तञ्च—

“पुञ्चं भंते ! किरिया पच्छा वेयणा ? पुञ्चं वेयणा तच्छा किरिया ?
मंढिअपुत्ता ! पुञ्चं किरिया पच्छा वेयणा, णो पुञ्चं वेयणा, पच्छा किरिया ” ।

(भग. ३ श. ३. उ.)

छाया—पूर्व भदन्त ! क्रिया पश्चाद् वेदना ? पूर्व वेदना पश्चात् क्रिया ?
मोमण्डितपुत्र ! पूर्व क्रिया पश्चाद् वेदना, नो पूर्व वेदना पश्चात् क्रिया ॥

कुशूलादाँ लोहमुत्सिपतः क्रिया—

लोहं लोहप्रतापनार्थे कुशूले. लोहमयेन संदंशनेनोत्सिपन् प्रक्षिपन् वा
प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है । मृग के बंध जाने पर शिकारी को पारितापनिकी क्रिया
लगती है । मृग का घात करने पर हिंसारूप प्राणातिपातिकी क्रिया होती है ।

पहले क्रिया से ज्ञानावरण आदि कर्मों का बंध होता है और उस का फल
भोगनारूप वेदना बाद में ही होती है । कहा भी है—

“हे भगवन् ! पहले क्रिया और फिर वेदना होती है ? अथवा पहले वेदना और
पश्चात् क्रिया होती है ? हे मण्डितपुत्र ! पहले क्रिया, पश्चात् वेदना होती है । पहले वेदना
और पश्चात् क्रिया नहीं होती ” (भगवती. श. ३. उ. ३.)

कुशूल आदि में लोहा डालने वाले को क्रिया—

तपाने के लिए कुशूल (मृष) में लोहे की संडासी से लोहा डालने वाले को

क्रिया थाय छे. मृग उपर थवावाणा द्वेषथी प्राद्वेषिकी क्रिया लागे छे. मृगना अर्थात्
बन्धथी शिकारीने पारितापनिकी क्रिया लागे छे. मृगने घात करवाथी हिंसारूप
प्राणातिपातिकी क्रिया थाय छे.

प्रथम क्रियाथी ज्ञानावरण आदि कर्मोना अर्थात् थाय छे, अने तेनुं इण लोकाववा
इय वेदना पछीथीय थाय छे. कहुं छे केः—

“हे लोकावन् ! पछेलां क्रिया अने पछी वेदना थाय छे ? केपछेलां वेदना अने
पछीथी क्रिया थाय छे ? हे मंडितपुत्र ! पछेलां क्रिया, अने पछीथी वेदना थाय छे,
पछेलां वेदना अने पछीथी क्रिया यती नथी. ” (लो. श. ३. उ. ३.)

भूष आदिमां लोहं नाभनारने क्रिया—

तथाववा भाटे भूषमां, लोहानी साधुसीथी लोहं नाभवावाणाने कायिकीथी लधने

યાદિકર્મણાં कारणीभूतस्य प्राणातिपातस्य निष्पत्तिस्त्रिक्रियतया, चतुष्क्रियतया पञ्चक्रियतया वा त्रिधा भवति । एवं चतुर्विंशतिदण्डकेषु विज्ञेयम् ।

મૃગવધોદતસ્ય ક્રિયા—

મૃગવધોદતો લુબ્ધકઃ સ્વલુ વનપર્વતજલાશયાદિષુ મૃગવધાર્થં ગત્વા મૃગગ્રહણાય ગર્તાદિકં તવન્વનાર્થં ચ પાશં રચયતિ, તદા મૃગવધાર્થં ગમનગર્ત-પાશાદિકરણાત્ તસ્ય કાયિક્યાદિકાઃ ક્રિયા ભવન્તિ । તત્ર ગમનધાવન-ગ્રહણાદિના ગમનાદિકાયચેષ્ટારૂપા કાયિકી, ગર્તપાશાદિરૂપેણાધિકરણેન નિર્વૃત્તા ક્રિયા આધિકરણિકી, યથ્ચ મૃગેષુ પ્રદ્વેપસ્તેન નિર્વૃત્તા પ્રાદ્વેષિકી ક્રિયા ભવતિ ।

પ્રાણાતિપાત કી નિષ્પત્તિ કહીં તીન, ચાર તથા કહીં પાંચ ક્રિયાઓં સે, ંસે તીન પ્રકાર સે હોતી હૈ । ચૌવીસોં દણ્ડકોં મેં હસો પ્રકાર સમજના ચાહિષ ।

મૃગવધ મેં ઉદતકો ક્રિયા—

મૃગ મારને કે લિષ ઉદત હુઆ શિકારી વન પર્વત ઔર જલાશય આદિ મેં મૃગકા વધ કરને કે લિષ જાકર મૃગ પકડને કે લિષ સ્વલુ બનાતા હૈ ઔર ઉસે બાંધને કે લિષ જાલ રચતા હૈ । ઉસ સમય મૃગવધ કે લિષ ગમન કરને સે, તથા સ્વલુ ંવં પાશ તૈયાર કરને સે, ઉસે કાયિકી આદિ ક્રિયાં લગતી હૈં । જાના ડૌડના, પકડના આદિ સે કાયિકચેષ્ટારૂપ કાયિકી ક્રિયા લગતી હૈ । સ્વલુ ઔર જાલરૂપ અધિકરણોં કે કારણ આધિકરણિકી ક્રિયા હોતી હૈ, મૃગ પર હોને વાલે દ્વેષ કે કારણ

કમોના કારણુભૂત પ્રાણાતિપાતની ઉત્પત્તિ કોઈ સ્થળે ત્રણ, કોઈ ઠેકાણે ચાર તથા કોઈ ઠેકાણે પાંચ ક્રિયાઓથી ંવેવા ત્રણ પ્રકારથી હોય છે. ચૌવીસેય ઠંડકોમાં આ પ્રમાણે સમજવું જોઈ ંવે.

મૃગવધમાં તૈયાર થનારને ક્રિયા—

મૃગને મારવા માટે તૈયાર થયેલો શિકારી વન, પર્વત ંને જલાશય આદિમાં મૃગનો વધ કરવા માટે જંધને મૃગ પકડવા માટે ખાડો ખનાવે છે, ંને તેને બાંધવા માટે જાલ રચે છે તે સમયે મૃગના વધ માટે ગમન કરવાથી, તથા ખાડો ંને પાશ તૈયાર કરવાથી તેને કાયિકી આદિ ક્રિયાઓ લાગે છે. જવું, ઢોડવું, પકડવું આદિથી કાયિક ચેષ્ટારૂપ કાયિકી ક્રિયા લાગે છે. ખાડો ંને જાલરૂપ અધિકરણોના કારણે આધિકરણિકી

पयति, स्थानतः स्थानान्तरं नयति, जीविताद् व्यपरोययति । तत्र कायिक्यादि-
प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

दृष्टिज्ञानाय हस्तादिकं प्रसारयतः क्रिया—

रात्रौ निविडान्धकारे चक्षुदर्शनाभावे सति दृष्टि विव्रातुमाकाशे यः
खलु हस्तं पादं वा बाहुं वा ऊरुं वा यावत्कालं प्रसारयेत् संकोचयेत् तावत्कालत
एवासौ कायिक्यादिप्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

करता है, पूरी तरह परित्यापना करता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेजाता है,
जीवन से प्युत करता है, ऐसा करने में वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचों
क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । अर्थात् पांचों ही क्रियाएँ उसे लगती हैं ।

दृष्टिज्ञान के लिए हाथ आदि फैलाने वाले क्रियाएँ—

रात्रि के समय घोर अन्धकार में—चक्षुदर्शन का अभाव होने पर, वहाँ जानने के
लिए आकाश में जो हाथ, पैर, बाहु, या ऊरु, जब तक प्रसारता है, सिकोडता है,
तब तक ही वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचक्रियाओं से स्पृष्ट होता है ।

पूरी रीते परित्यापना करे छे, ओक स्थानधी धीन स्थानमां लई नय छे, एवनधी
प्युत (विद्युक्त) करे छे. ओवी रीते करवामां ते कायिकी आदि प्राणातिपातिकी सुधीनी
पांचिय क्रियाओधी स्पृष्ट थाय छे, अर्थात् तेने पांचिय क्रियाओ लागे छे.

दृष्टिज्ञान भाटे हाथ आदि फैलाववा पाणाने क्रियाओ—

रात्रिना घोर अंधकारमां, चक्षुदर्शनना अभाव होवाधी, वरसाह आवे छे के
नहि ? ओ लक्ष्मवा भाटे, आकाशमां ले हाथ, पैर, बाहु अथवा ऊरु न्यां सुधी प्रसारे छे,
सिकोडि छे, त्यां सुधी ते कायिकी आदि प्राणातिपातिकी सुधीनी पांच क्रियाओ तेने स्पृष्टे छे.

कायिक्यादि-प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति । एवं लोहेन फालपरशुकुठारकुडालदात्रादिनिर्माणे लोहकारादीनां पञ्चक्रियत्वं भवति, अविरतिसद्भावात् । एवं घनोपरि स्थापनेन कुट्टनेन भस्त्रया ध्मापनेन विध्यापनेन प्रज्वालितेन शैत्यकरणार्थं जले तप्तलोहप्रक्षेपेण प्रत्येकतत्तद्व्यापारे पञ्चभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

धनुषा विध्यतः क्रिया-

धनुर्धरः शरैर्व्यापादयन् यावत् धनुर्गृह्णाति, धनुः प्रसारयति, कर्ण-पर्यन्तमाकर्षति, वर्तुलीकरोति, बाणं संयोजयति, ऊर्ध्वं प्रक्षिपति, स्वाभिमुख-मागच्छतो हन्ति, अन्योन्यगात्रं संहतीकरोति, मनाक् स्पृशति, समन्ततः परिता-

कायिकी से प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांच क्रियाओं का स्पर्श होता है । इसी प्रकार लोहे से फाल, फरसा, कुल्हाडा, कुदाल, दांतला आदि के बनाने में लुहार वगैरह को पांच क्रियाएँ लगती हैं, क्यों कि उस में अविरति मौजूद है । इसी प्रकार घन के ऊपर रखने में, कुट्टने में, घोंकने में, आग बुझाने में, प्रज्वलित करने में, ठंडा करनेके लिए जल में लोहा डालने में, इस प्रत्येक में पांच २ क्रियाएँ लगती हैं ।

धनुष से वेधने में क्रिया-

धनुर्धारी पुरुष बाण से मारता हुआ जब तक धनुष ग्रहण करता है, धनुष फैलाता है, कानपर्यन्त खींचता है, गोल करता है, उस में बाण जोड़ता है, ऊपर फेंकता है, अपने सामने आते को मारता है, शरीर को सिकोड़ता है, जरा-सा स्पर्श

प्राणुतिपात सुधीनी पांच क्रियाओंको स्पर्श थाय छे. ओ प्रभाणु लोढाना इल-हणनी डोस, इरसी, कुवाडा, डोदाली, दांतला आदि अनाववाभां लुहार वगेरेने पांच क्रियाओ लागे छे, डारणु डे तेभां अविरति डालर छे. आ प्रकारे धणुने उपर राअवाभां, इटवाभां धोडनीथी धोडवाभां, अग्नि धुआवाभां; प्रज्वलित करवाभां अने डोडुं डंडुं करवा भाटे पाणुीभां नाअवाभां. आ प्रत्येक कार्यंभां पांच क्रियाओ लागे छे.

धनुषधी विंशवाभां क्रिया-

धनुष धारणु करनार पुश्च पाणुधी भारतो न्यांसुधी धनुष अहणु करे छे, धनुष इलावे छे, डान सुधी भेञ्चे छे, गोण करे छे, तेभां पाणु नेडे छे, उपर डेके छे, पोताना सामे आवनारने भादे छे, शरीरने सङ्कोचे छे, बोडा ओवे स्पर्श करे छे,

इयं च प्राणातिपातक्रिया पट्टजीवनिकायविषये भवति । यथा-रज्जादौ सर्पादिबुद्ध्या मारणाध्यवसायोऽपि जीवविषयक एव । तत्र हि-‘सर्पोऽय-मितिबुद्ध्या मारणाध्यवसायो जायते, तस्मात् रज्जुं प्रति सर्पवधभावयुक्तः सर्पवधजन्यया प्राणातिपातक्रियया स्पृष्टो भवति । अजीवविषयको मारणाध्यवसायस्तु नैव संभवति, यथा रज्जुं रज्जुत्वेन विज्ञाय न कश्चिद्रज्जुविषये मारणाध्यवसायं करोति तस्मात् पट्सु जीवनिकायेष्वेव प्राणातिपातक्रिया प्रवर्तते, न त्वजीवविषय इति । उक्तञ्च—

“कम्हि णं भंते ! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ ! । गोयमा छसु जीवणिकाएसु” इति

यह प्राणातिपात क्रिया पट्टजीवनिकाय के विषय में होती है । रस्सी आदि में सांप आदि की भावना से मारने का अध्यवसाय होना भी जीवविषयक ही अध्यवसाय है । वहाँ ‘यह सर्प है’ इस प्रकार की भावना से मारने का अध्यवसाय होता है, अत एव वहाँ रस्सी में सर्प के वधके भाव से युक्त पुरुष सर्पवधजन्य प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट होता है । अजीवविषयक मारने का अध्यवसाय तो हो ही नहीं सकता है—रस्सी को रस्सी समझ कर कोई रस्सी में मारने की भावना नहीं करता, अतः पट्टजीवनिकायों में ही प्राणातिपातिकी क्रिया प्रवृत्त होती है, अजीव में नहीं । कहा भी है—

“भगवन् ! किन् में जीवो को प्राणातिपातिकी क्रिया होती है ? गौतम ! छह जीवनिकायों में” ।

आ प्राणातिपात क्रिया पट्टजीवनिकायना विषयमां थाय छे. दोरडां आदिमां सर्पआदिनी लावनाथी भारवानो अध्यवसाय थयो ते पथु लवविषयञ्च अध्यवसाय छे, त्यां ‘आ सर्पे छे’ आ प्रकारनी लावनाथी भारवानो अध्यवसाय थाय छे. ज्येठला कारणथी त्यां रस्सी-दोरडांमां-सर्पना वधनी लावनायुक्त पुरुष सर्पवधजन्य प्राणातिपात क्रियाने स्पृष्टे छे. अलवविषयक भारवाना अध्यवसाय तो थर्ध शकता नथी-रस्सीने रस्सी (दोरडी) समलने केध रस्सी-दोरडांमां भारवानी लावना करता नथी, ते माटे पट्टजीवनी-कायोमांञ्च प्राणातिपातनी क्रिया प्रवृत्त होय छे. अलवमां नहि. कहुं पथु छे—

“भगवन् ! शेमां लवेने प्राणातिपातिकी क्रिया थाय छे ? गौतम ! छे लवनिकायोमां.”

॥ તાલમારુદ્ધ તત્કલં પાતયતઃ ક્રિયા ॥

તાલવૃક્ષમારુદ્ધ તત્કલં પાતયન્નપિ તાવત્કાલત એવ પશ્ચમિઃ કાયિક્યાદિક્રિયામિઃ સ્પૃષ્ટો ભવતિ ।

અષ્ટાદશ પાપસ્થાનાનિ—

(૧) પ્રાણાતિપાતઃ—

જીવાનાં પ્રાણાતિપાતાધ્યવસાયેન પ્રાણાતિપાતક્રિયા ભવતિ । હિંસાપરિણામકાલ એવ પ્રાણાતિપાતક્રિયા ભવતિ । પ્રાણાતિપાતાદીનામધ્યવસાયમાત્રાદપિ જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મ જન્યતે । ઉક્તશ્ચ—

“ પરિણામિયં પમાણં ણિચ્છયમવલંબમાણાણં ” ઈતિ ।

તાલવૃક્ષ પર ચઢ કર ફલ ગિરાનેવાળે કો ક્રિયાઈ—

તાલ વૃક્ષ પર ચઢ કર ઉસ કે ફલ ગિરાતા હુમા તવ તક કાયિકી આદિ પાંચ ક્રિયાઓં સે સ્પૃષ્ટ હોતા હૈ ।

અઠારહ પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોં કા પ્રાણાતિપાત કરને કે અધ્યવસાય સે પ્રાણાતિપાતક્રિયા હોતી હૈ । હિંસારૂપ પરિણામ કે સમય હી પ્રાણાતિપાતક્રિયા હોતી હૈ । પ્રાણાતિપાત કા અધ્યવસાય હોને માત્ર સે મી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન હોતે હૈ । કહા મી હૈ—

“ પરિણામિયં પમાણં ણિચ્છયમવલંબમાણાણં ”

અર્થાત્ પ્રાણાતિપાત કરને કા નિશ્ચય કરને વાલે કા પરિણામ હી કર્મબન્ધ કા કારણ હૈ

તાલવૃક્ષપર ચઢીને ફલ પાડનારની ક્રિયાઓ—

તાલવૃક્ષ પર ચઢીને તેના ફળ પાડે છે ત્યાં સુધી કાયિકી આદિ પાંચ ક્રિયાઓને સ્પર્શ કરે છે.

અઠાર પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોના પ્રાણાતિપાત કરવાના અધ્યવસાયથી પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે. હિંસારૂપ પરિણામના સમયેજ પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે. પ્રાણાતિપાતને અધ્યવસાય થવા માવથી પણ જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે કહ્યું છે. ડેઃ—

“ પરિણામિયં પમાણં ણિચ્છયમવલંબમાણાણં. ”

અર્થાત્—પ્રાણાતિપાત કરવાને નિશ્ચય કરવાવાળાનાં પરિણામજ કર્મબંધનું કારણ છે.

गतरूपेषु रूपसहगतेषु स्त्रमादिषु विषयेषु भवति, न तु सकलवस्तुविषये ।
उक्तञ्च—

“कम्हि णं भंते ! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जइ ? । गोयमा ! रुवेसु
वा रुवसहगपसु वा दव्वेसु” इति (भग. १ श. ६ उ.)

(५) परिग्रहः—

परिग्रहः=स्वस्वामिभावेन मूर्च्छा । स च प्राणिनामधिकलोभात् समस्त-
वस्तुविषये प्रादुर्भवति ।

कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकोऽक्षमारूप आत्मपरिणामः क्रोधः ६ । मानो=
गर्वः ७ । माया=शाठ्यम् ८ । लोभो=गृध्नुता ९ । रागः=प्रीतिरासक्तिर्वा १० ।

भी सब वस्तुओं में नहीं होता । चित्र, लेप्य, या फाँट आदि में अङ्कित किये जाने वाले
रूपों में या स्त्री आदि में ही मैथुन का अध्यवसाय होता है । कहा भी है—

“भगवन् ! किस विषय में जीव मैथुन किया करते हैं ? गौतम ! रूपों में और
रूप-युक्त विषयों (स्त्रियों आदि) में । (भग. श. १, उ. ६)

(५) परिग्रह—

“यह वस्तु मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ” इस प्रकार की मूर्च्छा को परिग्रह
कहते हैं । प्राणियों में लोभ की अधिकता होने के कारण सभी वस्तुओं में मूर्च्छा हो
सकती है ।

कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम
(६) क्रोध कहलाता है । गर्व को (७) मान और कपट को (८) माया कहते हैं ।

पशु सर्व वस्तुओं में नहीं, चित्र लेप्य अथवा फाँट आदि में चितरवा में आवेला
रूपों में अथवा स्त्री आदि में मैथुन का अध्यवसाय थाय छे, कहुं पशु छे :—

“भगवन् ! क्या विषय में एव मैथुन किया करे छे ?
गौतम ! रूपों में अने रूपयुक्त विषयों (स्त्रियों आदि) में” (भग० १ श-६-७)

(५) परिग्रह—

“आ वस्तु भारी छे-हुं तेना मालिक छुं” आ प्रकारनी भूछोने परिग्रह
कहे छे, प्राणीओं में लोभनी अधिकता होवानी कारणे सर्व वस्तुओं में मूर्च्छा होय छे,
कर्तव्य-अकर्तव्यना विवेकने नाश करवावाणा, अक्षमारूप आत्मानुं परिष्णाम ते
क्रोध कहेवाय छे, (६), गर्व ने मान (७), अने कपटने माया कहे छे (८), यदि ते

(૨) મૃપાવાદ:-

સતોઽપલાપોઽસતશ્ચ પ્રરૂપણં મૃપાવાદઃ । સ સર્વદ્રવ્યપર્યાયવિશેષયે ભવતિ ।

(૩) અદત્તાદાનમ્-

અદત્તસ્ય=દેવગુર્વાદિભિરનનુજ્ઞાતસ્યાદાનં=ગ્રહણમ્=અદત્તાદાનમ્, યદ્ વસ્તુ ગ્રહીતું ધારયિતું વા શક્યયતે, તદ્વસ્તુમાત્રત્રિપયકમાદાનં ભવતિ, ન તુ તદન્યવસ્તુ-વિપયકમ્, ઉક્તઞ્ચ—

“કમ્હિ ણં મંતે ! જીવાણં અદિન્નાદાણેણં કિરિયા કજ્જઈ ? । ગોપમા ગહણધારણિજ્જસુ દબ્બેસુ” । ઇતિ (ભગ. ૧ શ. ૬ ડ.)

(૪) મૈથુનમ્-

સ્ત્રીપુંસયોઃ કર્મ-મૈથુનમ્ । મૈથુનાધ્યવસાયોઽપિ ચિત્રલેપ્યકાષ્ટાદિકર્મ-

(૨) મૃપાવાદ-

સત્ કા અપલાપ કરના ઓર અસત્ કા પ્રરૂપણ કરના મૃપાવાદ હૈ । મૃપાવાદ સમસ્ત દ્રવ્યો ઓર પર્યાયો કે વિષય મેં હોતા હૈ ।

(૩) અદત્તાદાન-

અદત્ત અર્થાત્ દેવ એવં ગુરુ આદિ દ્વારા જિસ કી આજ્ઞા પ્રાપ્ત ન હુઈ હો ડસકો પ્રહ્ણ કરના અદત્તાદાન હૈ । જો વસ્તુ પ્રહ્ણ કી જા સકતી હૈ યા ધારણ કી જા સકતી હૈ ડસી વસ્તુ કા આદાન હો સકતા હૈ, અન્ય વસ્તુ કા નહીં । કહા મી હૈ:—

“ભગવન્ ! કિસ વસ્તુ મેં અદત્તાદાન કે દ્વારા ક્રિયા કી જાતી હૈ ? ગૌતમ ! પ્રહ્ણ કરને ઓર ધારણ કરને યોગ્ય દ્રવ્યો મેં (ભગ., શ. ૧, ડ. ૬)

(૪) મૈથુન-

મિથુન અર્થાત્ સ્ત્રી ઓર પુરુષ કા કાર્ય મૈથુન કહલાતા હૈ । મૈથુન કા અધ્યવસાય

મૃપાવાદ-

સત્-ને ખોટું કહેવું અને અસતને સાચું કહી તેનું પ્રરૂપણ કરવું તે મૃપાવાદ-સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોના વિષયોમાં થાય છે.

(૩) અદત્તાદાન-

અદત્ત અર્થાત્ દેવ-શુદ્ધ આદિદ્વારા જેની આજ્ઞા મળી ન હોય, તેવી વસ્તુને ગ્રહણ કરવી તે અદત્તાદાન છે. જે વસ્તુ ગ્રહણ કરી શકાય છે, અથવા ધારણ કરી શકાય છે તે વસ્તુનું આદાન થઈ શકે છે. ખીણ વસ્તુનું નહિ. કહ્યું પણ છે:—

ભગવન્ ! કઈ વસ્તુમાં અદત્તાદાન દ્વારા ક્રિયા થઈ શકે છે ? ગૌતમ ! ગ્રહણ કરવા અને ધારણ કરવા યોગ્ય દ્રવ્યોમાં.” (ભાગ. શ. ૧ ડ. ૬)

(૪) મૈથુન-

મૈથુન અર્થાત્ સ્ત્રી અને પુરુષનું કાર્ય મૈથુન કહેવાય છે, મૈથુનના અધ્યવસાય

गतरूपेषु रूपसहगतेषु स्यादपि विषयेषु भवति, न तु सकलवस्तुविषये ।
उक्तञ्च—

“कम्हि णं भंते ! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जइ ? । गोयमा ! ख्वेसु
वा ख्वसहगएसु वा दव्वेसु” इति (भग. १ श. ६ उ.)

(५) परिग्रहः—

परिग्रहः=स्वस्वामिभावेन मूर्च्छा । स च प्राणिनामधिकलोभात् समस्त-
वस्तुविषये प्रादुर्भवति ।

कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकोऽक्षमारूप आत्मपरिणामः क्रोधः ६ । मानो=
गर्वः ७ । माया=शाठ्यम् ८ । लोभो=गृध्नुता ९ ? । रागः=भीतिरासक्तिर्वा १० ।

भी सब वस्तुओं में नहीं होता । चित्र, लेप्य, या फाद्य आदि में अङ्कित किये जाने वाले
रूपों में या स्त्री आदि में ही मैथुन का अव्यवसाय होता है । कहा भी है—

“भगवन् ! किस विषय में जीव मैथुन क्रिया करते हैं ? गौतम ! रूपों में और
रूप-युक्त विषयों (स्त्रियों आदि) में । (भग. श. १, उ. ६)

(५) परिग्रहः—

“यह वस्तु मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ” इस प्रकार की मूर्च्छा को परिग्रह
कहते हैं । प्राणियों में लोभ की अधिकता होने के कारण सभी वस्तुओं में मूर्च्छा हो
सकती है ।

कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाला अक्षमारूप आत्मा का परिणाम
(६) क्रोध कहलाता है । गर्व को (७) मान और कपट को (८) माया कहते हैं ।

पशु सर्व वस्तुओं में नहीं, चित्र लेप्य अथवा काष्ठ आदि में चित्तवशात् आवेष्टा
रूपों में अथवा स्त्री आदि में मैथुनना अव्यवसाय थाय छे, कहुं पशु छे :—

“भगवन् ! क्या विषयों में एव मैथुन क्रिया करे छे ?
गौतम ! रूपों में अने इष्युक्त विषयों (स्त्रियों आदि) में” (भग० १ श-६-७)

(५) परिग्रहः—

“आ वस्तु भारी छे-हुं तेना भानिक छुं” आ प्रकारनी भूछोने परिग्रह
कहे छे, प्राणीओं में लोभनी अधिकता होवानी कारणे सर्व वस्तुओं में भूछो होय छे,
कर्तव्य-अकर्तव्यना विवेकने नाश करवावानी, अक्षमारूप आत्मानुं परिग्रह ते
क्रोध कहेवाय छे, (६), गर्व ने मान (७), अने कपटने माया कहे छे (८), बुद्धि ते

द्वेष=अप्रीतिः ११ । कलहो=विरोधः १२ । अभ्याख्यानम्=असद्योपारोपणम् १३ ।
 पैशुन्यं=कर्णान्तिकादौ परोक्षे विद्यमानस्याविद्यमानस्य वा दोषस्योद्घाटनम् १४ ।
 परपरिवादः=प्रभूतजनसमक्षं परदोषप्रकाशनम् १५ । रत्यरतिः=विषयेऽनुरागो
 रतिः, धर्मेऽनभिरुचिररतिः, रतिसहिता-अरतिः रत्यरतिः, इदमेकं पापस्थानम् १६ ।
 मायामृषा=मायासहितो मृषावादः, इदमप्येकं पापस्थानम् १७ । मिथ्यादर्शन-
 शल्यम्=मिथ्यादर्शनं मिथ्यात्वं तदेव शल्यमिव विविधव्यथाजनकत्वात् मिथ्या-

गृहि-(९) लोभ है, प्रीति या आसक्ति (१०) राग हैं, और अप्रीति को (११) द्वेष
 कहते हैं, (१२) कलह अर्थात् विरोध । (१३) अभ्याख्यान अर्थात् किसी को झूठा
 दोष लगाना । चुगली वगैरह को (१४) पैशुन्य कहते हैं, अर्थात् विद्यमान या अविद्य-
 मान दोष को पीठ पीछे प्रकाशित करना । बहुत से लोगों के समक्ष दूसरे के दोष
 प्रकाशित करना (१५) परपरिवाद है । विषयों में अनुराग होना रति और धर्म में
 अनुराग न होना अरति है, रतिसहित अरति को (१६) रत्यरति कहते हैं । यह एक
 पापस्थानक है । माया से युक्त मृषावाद (१७) मायामृषा कहलाता है, यह भी
 एक पापस्थानक है । शल्य के समान विविध प्रकार की व्यथाएँ उत्पन्न करने वाला
 मिथ्यात्व (१८) मिथ्यादर्शनशल्य कहलाता है, अर्थात् कुदेव कुगुरु और कुधर्म को

बोला छे (९). प्रीति अथवा आसक्ति ते राग छे (१०). अने अप्रीतिने द्वेष छडे छे
 (११). कलह अर्थात् विरोध (१२). अभ्याख्यान अर्थात् झोठना पर लुठो आरोप भूकेवे
 ते (१३). चुगली वगैरने पैशुन्य छडे छे, अर्थात् विद्यमान अथवा अविद्यमान दोषोने
 पाछणथी प्रकाशित करवा (१४). धल्ला बोडोना समक्ष पीठना दोषो प्रकाशित करवा
 ते परपरिवाद छे (१५). विषयोभां अनुराग थवे ते रति छे, अने धर्मभां अनुराग
 नहि थवे ते अरति छे, रतिसहित अरतिने रत्यरति छडे छे. आ पल्लु अेक पाप-
 स्थानक छे (१६). मायाथी युक्त मृषावाद ते मायामृषा छडेवाय छे. ते पल्लु अेक
 पापस्थानक छे (१७). शल्यनी प्रभाछे विविध प्रकारनी पीडाओ उरपन्न करवावाणा
 मिथ्यात्व मिथ्यादर्शनशल्य छडेवाय छे. अर्थात् कुदेव कुगुरु अने कुधर्मने सुदेव

दर्शनशल्यम्—कुदेव—कुगुरु—कुधर्मेषु सुदेवादिवुद्धिः १८ । एतान्यष्टादश पापस्थानानि ।
एताभिः क्रियाभिर्जीवः कर्म बन्धाति ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियावादिप्रकरणम् ॥

क्रिया किलात्मनः परिणामः । तेन क्रियावत्त्वं कर्तृत्वं चात्मनः सिध्यति ।
तत्कालिकक्रियासम्बन्धादात्मनस्त्रिकालवर्तित्वं च सिध्यतीत्याशयेनाह—“अकरिस्सं”
इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

अकरिस्सं चऽहं, कारवेसुं चऽहं, करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि । एयावंति
सच्चावंति लोगंसि कम्मसमारंमा परिजाणियन्वा भवंति ॥ सू. ६ ॥

सुदेव सुगुरु और सुधर्म समझना मिथ्यादर्शनशल्य है । ये अठारह पापस्थानक हैं ।
इन अठारह प्राणतिपात आदि क्रियाओं से जीव को कर्मों का बन्ध होता है । ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियावादिप्रकरणम् ॥

क्रिया आत्मा का एक परिणाम है । उस से आत्मा का क्रियावत्त्व या कर्तृत्व
सिद्ध होता है, और अमुक—अमुक—कालीन क्रियाओं के सम्बन्ध से यह भी सिद्ध होता है
कि—“आत्मा त्रिकालवर्ती है” यह बात अब बतलाई जाती है—“अकरिस्सं चऽहं”
इत्यादि ।

मूलार्थ—मैंने किया था, मैं कराता हूँ और करने वाले की मैं अनुमोदना करूंगा ।
यह सब लोक में कर्मसमारम्भ जानने चाहिए । सू. ६ ॥

सुथरं अने सुधर्मं समञ्जवा ते मिथ्यादर्शनशल्यं छे (१८). आ अदार पाप स्थानक
छे. आ अदार प्राणतिपात आदि क्रियाओथी लवने कर्मोना अंध थाय छे. (सू. ५)
इति क्रियावादिप्रकरणम्.

क्रिया आत्मानुं अेक परिणाम छे, तेनाथी आत्मानुं क्रियावत्त्व अथवा कर्तृत्व
सिद्ध थाय छे, अने अमुक—अमुक—कालीन क्रियाओना संबंधथी अे पणु सिद्ध थाय छे
के—आत्मा त्रिकालवर्ती छे. ते वात इवे अताववाभां आवे छे—“अकरिस्सं चऽहं” इत्यादि.

मूलार्थः—मैंं कथुं, मैंं करवाथुं अने करवावाणाने मैंं अनुमोदन आथुं.
आ सर्वं लोकभां कर्म—समारंभ लणुवा लोछे. (सू. ६)

॥ छाया ॥

अकार्षं चाहं, कारयामि चाहं, कुर्वन्तश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि । एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारंभाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥सं. ६॥

॥ टीका ॥

‘अकार्षं चाहम्’ इति । अत्र ‘च’-शब्दोपादानेन भूतकालिककारितानु-
मोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, तेन-(१) अहमकार्षम् (२) अहमचीकरम् (३) अहं
कुर्वन्तमन्यमन्त्रमूसुदम्, इति भेदत्रयं भवति । ‘कारयामि चाहम्’ इति, अत्र
‘च’-शब्देन वर्तमानकालिककृतानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, । तेन-(१)
अहं कारयामि, (२) अहं करोमि, (२) अहमनुमोदयामि, इति भेदत्रयं भवति ।

टीकार्थ-‘अकरिस्सं चऽहं’ यहाँ जो ‘च’ का प्रयोग किया है; उस से यह अर्थ
समझना चाहिए कि-“मैंने अनुमोदन किया था ।” इस प्रकार मैंने किया, करवाया और
अनुमोदन किया, तीन भेदों का कथन हुआ है ।

‘कारवेसुं चऽहं’ यहाँ भी ‘च’ पद से दो क्रियाओं का ग्रहण होता है, अतः
मैं कराता हूँ, मैं करता हूँ, और मैं अनुमोदन करता हूँ; इन तीन भेदों का कथन
समझना चाहिए ।

“करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि” यहाँ भी ‘च’ पद से भविष्यकालीन
करने और कराने का अर्थ लेना चाहिए, अतः करने वाले का मैं अनुमोदन कहूंगा, मैं
स्वयं कहूंगा और मैं कराऊंगा । ये क्रिया के तीन भेद समझ लेने चाहिए ।

टीकार्थ-‘अकरिस्सं चऽहं’ अर्हि जे ‘च’ ने प्रयोग कर्था छे, तेथी जे
अर्थ समज्जेवे नेछे जे-‘मैं करावुं छतुं’ आ प्रभावे ‘मैं’ कथुं, करावुं,
अने मैं अनुमोदन आभ्युं, आ त्रषु वेदोनुं कथन समज्जुं नेछे जे.

‘कारवेसुं चऽहं’ अर्हि पषु ‘च’ पदथी जे क्रियाओनुं ग्रहणु थाय छे. तेथी ‘मैं’
कथुं, मैं करावुं, अने मैं अनुमोदन आभ्युं, आ त्रषु वेदोनुं कथन समज्जुं नेछे जे.

‘करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि’ अर्हि पषु ‘च’ पदथी भविष्यकालीन करीश
अने करावीश. ते अर्थ लेवे नेछे जे जे करणुथी ‘करवावाणाने हुं अनुमोदन
करीश, हुं स्वयं करीश अने हुं करावीश’ जे क्रियाना त्रषु वेद समज्जुं लेवा नेछे जे.

कुर्वतश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि, इति । अत्रापि 'च'-शब्दोपादानेन भविष्य-
त्कालिककृतकारितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम् । 'समनुज्ञः' इत्यस्य समनुज्ञाता अनुमो-
दयितेत्यर्थः । तथा च-(१) अहमन्यस्य कुर्वतोऽनुमोदयिता भविष्यामि, (२)
स्वयमहं करिष्यामि, (३) अहं कारयिष्यामि, इति भेदत्रयं क्रियायाः भवति ।
कुर्वतश्चापीत्यत्र 'अपि'-शब्दोपादानेन तासां नवानां क्रियाणां मनोवाक्यायभेदेन
सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्ति ।

आत्मवाचकमहमिति पदं पुरस्कृत्य 'अकार्षम्' इत्यादिक्रियापदोपादानात्
"सर्वाः क्रिया आत्मपरिणामरूपाः" इति चोचितम् । एतेन "आत्मा निष्क्रियः"
इति सांख्याद्यभिमतं निराकृतम् ।

'यावि' शब्द में जो 'अपि' पद है, उस से यह समझना चाहिए कि-इन नौ क्रियाओं
के मन वचन और कायके भेद से सत्ताईस भेद हो जाते हैं । अर्थात् पूर्वोक्त नौ क्रियाएं
मन से की जाती हैं, वचन से की जाती हैं, और काय से भी की जाती हैं, अतः उनके
सत्ताईस भेद हो जाते हैं ।

आत्मा के वाचक अहम् (मैं) पदको प्रधान करके 'अकार्षम्' इत्यादि क्रियापदों
का ग्रहण करने से यह सूचित किया गया है कि-ये सब क्रियाएँ आत्मा का ही परिणाम
हैं । इस सूचना से आत्माको निष्क्रिय मानने वाले सांख्य आदि मतों का निराकरण हो
गया है ।

'यावि' शब्दमें जो 'अपि' पद छे तेथी ओ सभज्जुं लेईओ के ओ नव
क्रियाओना मन, वचन अने कायाना लेईथी सत्तावीश अंग थाय छे. अर्थात् पूर्वोक्त
नव क्रियाओ मनथी करी शक्य छे. वचनथी अने कायथी पण करी शक्य छे.
तेथी तेना सत्तावीश लेई थई लय छे.

आत्मानो वाचक 'अहम्' हुं-पदने प्रधान राणीने 'अकार्षम्' आदि क्रिया-
पदोना अहं करवाथी ओ सूचन करवाभां आयुं छे के-ओ सर्व क्रियाओ आत्मानुं
परिणाम छे. आ सूचनथी आत्माने निष्क्रिय मानवावाणा सांख्य आदिना मतनुं
निराकरण थई गयुं छे.

॥ छाया ॥

अकार्यं चाहं, कारयामि चाहं, कुर्वतश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि । एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारंभाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥सं. ६॥

॥ टीका ॥

‘अकार्यं चाहम्’ इति । अत्र ‘च’-शब्दोपादानेन भूतकालिककारितानु-
मोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, तेन-(१) अहमकार्यम् (२) अहमचीकरम् (३) अहं
कुर्वन्तमन्यमन्वमूमुदम्, इति भेदत्रयं भवति । ‘कारयामि चाहम्’ इति, अत्र
‘च’-शब्देन वर्तमानकालिककृतानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, । तेन-(१)
अहं कारयामि, (२) अहं करोमि, (२) अहमनुमोदयामि, इति भेदत्रयं भवति ।

टीकार्थ-‘अकरिस्सं चऽहं’ यहाँ जो ‘च’ का प्रयोग क्रिया है; उस से यह अर्थ
समझना चाहिए कि-“मैंने अनुमोदन किया था।” इस प्रकार मैंने किया, करवाया और
अनुमोदन किया, तीन भेदों का कथन हुआ है ।

‘कारवेसुं चऽहं’ यहाँ भी ‘च’ पद से दो क्रियाओं का ग्रहण होता है, अतः
मैं कराता हूँ, मैं करता हूँ, और मैं अनुमोदन करता हूँ; इन तीन भेदों का कथन
समझना चाहिए ।

“करओ याचि समणुन्ने भविस्सामि” यहाँ भी ‘च’ पद से भविष्यकालीन
करने और कराने का अर्थ लेना चाहिए, अतः करने वाले का मैं अनुमोदन करूँगा, मैं
स्वयं करूँगा और मैं कराऊँगा । ये क्रिया के तीन भेद समझ लेने चाहिए ।

टीकार्थ-‘अकरिस्सं चऽहं’ अर्हि जे ‘च’ ने प्रयोग कर्था छे, तेथी अजे
अर्थ समजवो जेधजे के-‘मैंं करायुं हुतुं’ आ प्रभाषे ‘मैंं’ कथुं, करायुं,
अने मैंं अनुमोदन आयुं, आ त्रषु सेटोनुं कथन समजवुं जेधजे.

‘कारवेसुं चऽहं’ अर्हि पषु ‘च’ पदथी जे क्रियाओनुं ग्रहण थाय छे. तेथी ‘मैंं’
कथुं, मैंं करायुं, अने मैंं अनुमोदन आयुं, आ त्रषु सेटोनुं कथन समजवुं जेधजे.

‘करओ याचि समणुन्ने भविस्सामि’ अर्हि पषु ‘च’ पदथी भविष्यकालीन करीश
अने करायीश ते अर्थ लेवो जेधजे अजे करणथी ‘करवावाणाने हुं अनुमोदन
करीश, हुं स्वयं करीश अने हुं करायीश’ अजे कियाना त्रषु सेट समज लेवा जेधजे.

भविष्यामीति चिन्तानलेन कोटरस्थवह्निना जरदूम इव संतप्तोऽस्मीति भावः ।

लोके=जिनशासने, सर्वे कर्मसमारम्भाः=कर्माणि ज्ञानावरणीयादीनि समारम्भन्ते
=जनयन्ति ये क्रियाविशेषास्ते कर्मसमारम्भाः । एतावन्त एव, नातोऽधिका इत्यर्थः,
परिज्ञातव्या भवन्ति-परिज्ञाविषयीकृत्य ज्ञेया हेयाश्च भवन्तीत्यर्थः । परिज्ञा हि
द्विविधा-ज्ञपरिज्ञा, प्रत्याख्यानपरिज्ञा च । तत्र ज्ञपरिज्ञया सप्तविंशतिभङ्गरूपाः
कर्मसमारम्भाः क्रियाविशेषाः विज्ञेयाः । प्रत्याख्यानपरिज्ञया च सर्वे कर्मसमारम्भाः
क्रियाविशेषाः कर्मबन्धहेतवः प्रत्याख्यातव्या इति भावः ॥ सू० ६ ॥

आपी से जर्जरित हो जाता है । अब मैं दुःसमय संसार से किस प्रकार छुटकारा पाऊँगा ?
इस तरह की चिन्तारूपी अग्नि से मैं ऐसा संतप्त हूँ जैसे कोटरस्थ अग्नि से जीर्ण वृक्ष
भीतर ही भीतर भस्म हो जाता है ।

“लोक में अर्थात् जिनशासन में इतने ही ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को उत्पन्न करने
वाले कर्मसमारम्भ हैं, इन से न्यून या अधिक नहीं” । यह परिज्ञा विषय करने योग्य है,
अर्थात् परिज्ञा से ही ये सब ज्ञेय और हेय होते हैं । परिज्ञा दो प्रकारकी है- ज्ञ-परिज्ञा
और प्रत्याख्यान-परिज्ञा । इन में से सत्ताईस भंग रूप कर्मसमारम्भ (क्रियाविशेष)
ज्ञपरिज्ञा से जानने चाहिए, और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से कर्म के कारण समस्त कर्मसमारम्भों
का त्याग करना चाहिए ॥ सू. ६ ॥

वावाजोडाधी जर्जरित यथं ज्ञयंते । ‘दरे हं दुःखमय संसारधी छुटकारे देवी रीते
यामीश ? आ प्रभाषे चिन्ताधी अग्निधी हं ज्येवो संतप्तं हं के जेभ-कोटरस्थ
(आठनी जजोडभां रडेहं) अग्निधी लुण्ठं वृक्ष अंदरने अंदरनं बरभ यथं ज्ञयंते ।

लोकमां अर्थात् जिनशासनमां ज्ञानावरणीय आदि कर्मोने उत्पन्न करवावाणा
आटलां कर्मसमारंभं छे, तेनाधी ज्योडा के वधारे नथी. आ परिज्ञा विषय करवा
योग्य छे, अर्थात् परिज्ञाधी आ जधां ज्ञेय अने हेय थाय छे. परिज्ञा जे प्रकारनी
छे. (१) ज्ञ-परिज्ञा अने (२) प्रत्याख्यान-परिज्ञा, तेमांधी सत्तावीस भंगरूप कर्म-
समारंभं (क्रिया-विशेष) ज्ञ-परिज्ञाधी लुण्ठं जेधं ज्ये, अने प्रत्याख्यान-परिज्ञाधी
कर्मोनुं कारण समस्त कर्मसमारंभोने त्याग करवा जेधं ज्ये. (सू० ६)

एकस्य चात्मनश्चिकालवर्तितत्त्विक्रियासम्बन्धेन क्षणिकवादोऽपि निरस्तः । किञ्च-
आत्मपरिणतिरूपां क्रियां कुर्वन्नात्मा स्वस्य त्रिकालस्थायित्वं मतिज्ञानमात्रेण
जानातीति भगवता बोधितम् । तेनात्मनि विषये प्रत्यभिज्ञाऽप्येवं प्रादुर्भूयति-

येन मया मृगतृष्णाम्भसा मृगवद् विविधविषयैराकृष्टेन गर्ते मृग-
मृगवन्मोहगर्ते निपतितेन सुखलिप्सयाऽऽरम्भपरिग्रहरूपसावद्यक्रियापरायणतया
वृथायुः क्षपितम्,

स एवाहं संमति वातैर्गिरिशिखरद्रुम इव जन्मजरामरणाधिव्याधि-
विविधदुःखसंपृक्ततुच्छसुखमोगैर्जर्जरीकृतः कथमस्माद् दुःखजालसंसारान्मुक्तो

एक ही आत्माका त्रिकालवर्ती अमुक-अमुक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध दिखलानेसे
क्षणिकवाद का भी खण्डन किया गया है । भगवान्ने यह भी प्रकट कर दिया है
कि-अपनी परिणतिरूप क्रियाएँ करता हुआ आत्मा मतिज्ञान से ही यह जान लेता है कि-
यह (आत्मा) त्रिकालवर्ती है । इससे आत्मा के विषयमें इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान
उत्पन्न होता है—

“जैसे मृगतृष्णा में फँसकर मूढ मृग कष्ट पाता है उसी प्रकार भ्रंति-भ्रंति
के विषयों से आकृष्ट हो कर मोहरूपी गड्ढे में गिर कर सुख की लालसा से जिसने
आरम्भ-परिग्रह-रूप सावद्य क्रियामें उद्यत हो कर वृथा आयु गँवाई थी वही मैं आज
जन्म, जरा, मरण, आधि, व्याधि वगैरह विविध प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण और तुच्छ
इन्द्रिय-भोगोंद्वारा ऐसा जर्जरित कर दिया गया हूँ, जैसे पर्वत के उपर का पेड़

એકજ આત્માનું ત્રિકાલવર્તી અમુક-અમુક ક્રિયાઓની સાથે સંબંધ દેખાક-
વાથી ક્ષણિકવાદનું પણ ખંડન કરવામાં આન્યું છે. ભગવાને એ પણ પ્રગટ કરી
દીધું છે કે-પોતાની પરિણતિરૂપ ક્રિયાઓ કરતો આત્મા મતિજ્ઞાનથીજ એ બાણી લે
છે કે-તે ત્રિકાલવર્તી છે. એ કારણથી આત્માના વિષયમાં આ પ્રકારનું પ્રત્યભિજ્ઞાન
ઉત્પન્ન થાય છે.

જેમ મૃગતૃષ્ણામાં ફસાઈને મૂઢ મૃગ કષ્ટ પામે છે તે પ્રમાણે જાત-જાતના
વિષયોથી આકૃષ્ટ થઈને-એવાઈને મોહરૂપી ખાડામાં પડી જઈને સુખની લાલસાથી જે
આરંભ પરિગ્રહરૂપ સાવધ ક્રિયામાં ઉદ્યમી થઈને વૃથા આયુ શુભાન્યું હતું, તે હું આજે
જન્મ-જરા-મરણ-આધિ-વ્યાધિ વગેરે વિવિધ પ્રકારનાં દુઃખોથી પરિપૂર્ણ અને તુચ્છ
ઇન્દ્રિયલોભો દ્વારા એવો જર્જરિત કરવામાં આન્યો છું કે જેમ-પર્વત ઉપરનું ઝાડ

भविष्यामीति चिन्तानलेन कोटरस्थयद्भिना जरदुम इव संतप्तोऽस्मीति भावः ।

लोके=जिनशासने, सर्वे कर्मसमारंभाः=कर्माणि ज्ञानावरणीयादीनि समारभन्ते
 =जनयन्ति ये क्रियाविशेषास्ते कर्मसमारंभाः । एतावन्त एव, नातोऽधिका इत्यर्थः,
 परिज्ञातव्या भवन्ति-परिज्ञाविषयीकृत्य ज्ञेया हेयाश्च भवन्तीत्यर्थः । परिज्ञा हि
 द्विविधा-ज्ञपरिज्ञा, प्रत्याख्यानपरिज्ञा च । तत्र ज्ञपरिज्ञया सप्तविंशतिभङ्गरूपाः
 कर्मसमारंभाः क्रियाविशेषाः विज्ञेयाः । प्रत्याख्यानपरिज्ञया च सर्वे कर्मसमारम्भाः
 क्रियाविशेषाः कर्मबन्धहेतवः प्रत्याख्यातव्या इति भावः ॥ सू० ६ ॥

आपि से जर्जरित हो जाता है । ध्व मँ दुःस्वमय संसार से किस प्रकार छुटकारा पाऊँगा ?
 इस तरह की चिन्तारूपी अग्नि से मैं ऐसा संतप्त हूँ जैसे कोटरस्थ अग्नि से जीर्ण वृक्ष
 भीतर ही भीतर भस्म हो जाता है ।

“लोक में अर्थात् जिनशासन में इतने ही ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को उत्पन्न करने
 वाले कर्मसमारम्भ हैं, इन से न्यून या अधिक नहीं” । यह परिज्ञा विषय करने योग्य है,
 अर्थात् परिज्ञा से ही ये सब ज्ञेय और हेय होते हैं । परिज्ञा दो प्रकारकी है- ज्ञ-परिज्ञा
 और प्रत्याख्यान-परिज्ञा । इन में से सत्ताईस भंग रूप कर्मसमारम्भ (क्रियाविशेष)
 ज्ञपरिज्ञा से जानने चाहिए, और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से कर्म के कारण समस्त कर्मसमारम्भों
 का त्याग करना चाहिए ॥ सू. ६ ॥

वापोजोडाधी जर्जरित यथ नय छे. 'द्वे ह्ये दुःस्वमय संसारथी छुटकारे देवी रीते
 आभीश ? आ प्रभाञ्जे चिन्ताइपी अग्निथी ह्येवे संतप्त छु' के नेम-कोटरस्थ
 (आडनी अजोडभां रडेडु) अग्निथी एषु वृक्ष अंकरने अंकरञ्ज बरभ यथ नय छे.

लोकेमां अर्थात् जिनशासनमां ज्ञानावरणीय आदि कर्मोने उत्पन्न करवावाणा
 आटलांज कर्मसमारंभ छे, तेनाथी जोछा के वधादे नथी. आ परिज्ञा विषय करवा
 योग्य छे, अर्थात् परिज्ञाथीञ्च आ अर्थां ज्ञेय अने हेय थाय छे. परिज्ञा जे प्रकारनी
 छे. (१) ज्ञ-परिज्ञा अने (२) प्रत्याख्यान-परिज्ञा, तेमांथी सत्तावीश भंगरूप कर्म-
 समारंभ (क्रिया-विशेष) ज्ञ-परिज्ञाथी नष्टवुं नोर्धजे, अने प्रत्याख्यान-परिज्ञाथी
 कर्मोनुं कारञ्च समस्त कर्मसमारंभोने त्याग करवा नोर्धजे. (सू० ६)

॥ મૂલમ્ ॥

અપરિણાયકમ્મા સ્વલુ અયં પુરિસે જો દ્વાઓ દિસાઓ અણુદિસાઓ
અણુસંચરહ, સન્વાઓ દિસાઓ સન્વાઓ અણુદિસાઓ સાહેદ ॥ સૂ. ૭ ॥

છાયા—

અપરિજ્ઞાતકર્મા સ્વલુ અયં પુરુષઃ યઃ દ્વા દિશા અનુદિશા વા અનુસંચરતિ,
સર્વા દિશાઃ સર્વા અનુદિશાઃ સહૈતિ ॥ સૂ. ૭ ॥

ટીકા—

‘અપરિણાયકમ્મા’ इत्यादि । यः इमा दिशा अनुदिशा अनुसंचरति-
कर्मपरतन्त्रः संश्रुतुर्गतिकसंसारं प्राप्य दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमति । तथा-सर्वा-
दिशा अनुदिशाः सहैति । इह सर्वशब्देन द्रव्यभावोभयविधदिशो ग्रहणम् ।
द्रव्यभावदिशः सह=ज्ञानावरणीयादिकर्मभिः साकम् एति=गच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः ।
यत्तच्छब्दयोर्निश्चयसाक्षात्सतयाञ्च यच्छब्देन स इति परामृश्यते । सः अयं पुरुषः=
जीवः स्वलु=निश्चयेन अपरिज्ञातकर्मा अस्तीति शेषः । न परिज्ञातं=परिज्ञाविषयी-

મૂલાર્થ—અપરિજ્ઞાતકર્મા યદ્ પુરુષ્ ઇન દિશાઓ ઓર વિદિશાઓ મેં પરિભ્રમણ કરતા
હૈ ઓર સર્વ દિશાઓ ઇવં અનુદિશાઓ કો પ્રાપ્ત હોતા હૈ ॥ સૂ. ૭ ॥

ટીકાર્થ—કર્મ સે પરતન્ત્ર જીવ ચાર ગતિરૂપ સંસાર કો પ્રાપ્ત હોકર દિશાઓ
મેં ઓર વિદિશાઓ મેં પરિભ્રમણ કરતા હૈ । તથા સમસ્ત દિશાઓ ઓર અનુદિશાઓ કો
પ્રાપ્ત હોતા હૈ, અર્થાત્ દ્રવ્ય-દિશાઓ ઇવં ભાવ-દિશાઓ (જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મો) કે
સાથ પ્રાપ્ત હોતા હૈ । વહ જીવ નિશ્ચયપૂર્વક અપરિજ્ઞાતકર્મા હૈ । કર્મ કો કારણભૂત
ક્રિયાઓ કા સ્વરૂપ જિસને ન જાના હો વહ અપરિજ્ઞાતકર્મા કહલાતા હૈ । અથવા જિસને
જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મો કો કારણભૂત ક્રિયાઓ કા ત્યાગ ન ક્રિયા હો ઉસેં મી

મૂલાર્થ—અપરિજ્ઞાત કર્મા આ પુરુષ આ દિશાઓ અને વિદિશાઓમાં પરિ-
ભ્રમણ કરે છે, અને સર્વ દિશાઓ એવં અનુદિશાઓને પ્રાપ્ત થાય છે. (૭)

ટીકાર્થ—કર્મથી પરતન્ત્ર જીવ ચાર ગતિરૂપ સંસારને પ્રાપ્ત થઈને દિશાઓમાં
અને વિદિશાઓમાં પરિભ્રમણ કરે છે, તથા સમસ્ત દિશાઓ અને અનુદિશાઓને
પ્રાપ્ત થાય છે. અર્થાત્ દ્રવ્યદિશાઓ અને ભાવદિશાઓની સાથે પ્રાપ્ત થાય છે. તે
જીવ નિશ્ચયપૂર્વક અપરિજ્ઞાતકર્મી છે; કર્મની કારણભૂત ક્રિયાઓના સ્વરૂપને જે બાધતા
નથી તે અપરિજ્ઞાતકર્મા કહેવાય છે. અથવા જેને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોની
કારણભૂત ક્રિયાઓના ત્યાગ ન કર્યો હોય તેને પણ અપરિજ્ઞાતકર્મા કહે છે. આશય

कृतं कर्म=कर्मकारीभूतक्रियास्वरूपं येन, सोऽपरिज्ञातकर्मा । अज्ञातापरित्यक्त-
ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धकारणभूतक्रियास्वरूप इत्यर्थः । यावदयं जीवः क्रिया-
स्वरूपं न जानाति; नापि यावत् कर्मबन्धनिबन्धनक्रियाः परित्यजति, तावद् द्रव्य-
भावोभयविधां दिशं परिभ्रमतीति भावः ॥ सू० ७ ॥

उक्तार्थमेव स्पष्टयति-‘अणेगरूचाओ.’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

अणेगरूचाओ जोणीओ संघेइ, विरूपरूवे फासे पडिसंवेएइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—

अनेकरूपा योनीः संघयति, विरूपरूपान् स्पर्शान् प्रतिसंवेदयति ॥ सू० ८ ॥

॥ टीका ॥

अपरिज्ञातकर्मा जीवः अनेकरूपा=विविधाः योनीः=प्राणिनामुत्पत्ति-
स्थानानि, संघयति=प्राप्नोति । अयमात्मा पूर्वभव नाशानन्तरं शरीरान्तरग्रहणाय

अपरिज्ञातकर्मा कहते हैं । आशय यह है कि-संसारि जीव जबतक कर्मबन्ध की कारणभूत
क्रियाओं को जान नहीं लेता और त्याग नहीं देता, तबतक वह द्रव्यभावरूप दोनों प्रकार
की दिशाओं में परिभ्रमण करता रहता है । ॥ सू. ७ ॥

इसी अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हैं-‘अणेगरूचाओ.’ इत्यादि ।

मूलार्थ-(अपरिज्ञातकर्मा जीव) अनेकरूप योनियों को प्राप्त होता है और नाना
प्रकार की यातनाओं को भोगता है ॥ ८ ॥

टीकार्थ-अपरिज्ञातकर्मा जीव विविध प्रकार की योनियों को अर्थात् जीवों के
उत्पत्तिस्थानों को प्राप्त करता है । पूर्वभव का अन्त होने के अनन्तर जीव नवीन शरीर

में छे डे:-संसारि एव न्यां सुधी कर्मबन्धनी कारणभूत क्रियाओंने जाणी लेतो नथी
अने त्यज्जु हेतो नथी त्यां सुधी ते द्रव्य-भावरूप अन्ने प्रकारनी दिशाओंमां परि-
भ्रमणु करतो रहे छे. (सू० ७).

ये अर्थने इरी अधिक स्पष्ट करे छे-“अणेगरूचाओ.” इत्यादि.

मूलार्थ:- (अपरिज्ञातकर्मा एव) अनेकरूप योनियोंने प्राप्त थाय छे अने
नाना प्रकारनी यातनाओंने भोगवे छे. (८)

टीकार्थ:-अपरिज्ञातकर्मा एव विविध प्रकारनी योनियोंने अर्थात्-एवोना
उत्पत्तिस्थानोंने प्राप्त करे छे. पूर्वभवने अंत थवा अनन्तर एव नवीन शरीर अडणु

શરીરાન્તરપ્રાપ્તિસ્થાને યાન્ પુદ્ગલાન્ ગૃહ્ણાતિ તાન્. વાદ્યપુદ્ગલાન્ કાર્મણેન સઘ
 તપ્તાયઃપિન્ડજલગ્રહણવન્ મિથ્રયતિ યસ્મિન્ સ્થાને, તન્ સ્થાનં યોનિઃ । પ્રાદુર્ભાવ
 વમાત્રં શરીરિણાં જન્મં, ઇતિ યોનિ-જન્મનોર્ભેદઃ । સા નવવિધા । (૧) સચિત્તા,
 (૨) અચિત્તા, (૩) સચિત્તાચિત્તા, (૪) શીતા, (૫) ઉષ્ણા, (૬) શીતોષ્ણા,
 (૭) સંવૃતા, (૮) વિવૃતા, (૯) સંવૃતવિવૃતા । ઉક્તશ્ચ—

“કશ્ચિદ્દાણં મંતં ! જોળી પ્ષ્ણત્તા ? ગોયમા ! તિવિદ્ધા જોળી
 પ્ષ્ણત્તા, તંજદ્દા-સીયા જોળી, ડસિણા જોળી, સીઆસિણા જોળી । તિવિદ્ધા
 જોળી પ્ષ્ણત્તા, તંજદ્દા-સચિત્તા જોળી, અચિત્તા જોળી, મીસિયા જોળી ।

ગ્રહણ કરને કે લિપ્ત નવીન શરીર કી પ્રાપ્તિ કે સ્થાન પર જિન વાદ્ય પુદ્ગલો કો ગ્રહણ
 કરતા હૈ, ઉન્હેં જિસ જગહ પર કાર્મણશરીર કે સાથ તપે છોદે કે ગોઠે ઓર જલકે
 સમાન ઇકમેક કરતા હૈ, વહ સ્થાન યોનિ કહલાતા હૈ । જીવોં કા પ્રાદુર્ભાવ હોના
 જન્મ હૈ । યહ યોનિ ઓર જન્મ મેં અન્તર હૈ । જન્મ કા આધાર યોનિ હૈ, અતઃ
 યોનિ ઓર જન્મ મેં આધારાધેયમાવ-સમ્બન્ધ હૈ । યોનિ કે નૌ પ્રેદ હૈઃ—(૧) સચિત્ત,
 (૨) અચિત્ત, (૩) સચિત્તાચિત્ત, (૪) શીત, (૫) ઉષ્ણ, (૬) શીતોષ્ણ, (૭) સંવૃત,
 (૮) વિવૃત ઓર (૯) સંવૃત-વિવૃત । કહા મી હૈ—

“ભગવન્ ! યોનિ કિત્તને પ્રકાર કી કહી ગઈ હૈ ? ગૌતમ ! ત્રીન પ્રકાર કી
 યોનિ કહી ગઈ હૈ । યહ ઇસ પ્રકાર—શીતયોનિ, ઉષ્ણયોનિ ઓર શીતોષ્ણયોનિ । તથા
 ત્રીન પ્રકાર કી યોનિ કહી હૈ । વહ ઇસ પ્રકાર—સચિત્તયોનિ, અચિત્તયોની ઓર મિથ્રયોનિ ।

કરવા માટે નવીન શરીરની પ્રાપ્તિના સ્થાન પર જે વાદ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે.
 તેને જે જન્મના પર કાર્મણશરીરની સાથે તપેલા લોહાનો ગોળો અને જલની સમાન
 એકએક કરે છે તે સ્થાન યોનિ કહેવાય છે. છવેનો પ્રાદુર્ભાવ થવો તે જન્મ છે.
 યોનિ અને જન્મમાં એજ અન્તર છે, જન્મનો આધાર યોનિ છે, તેથી યોનિ અને
 જન્મમાં આધાર-આધેય ભાવ સંબંધ છે. યોનિના નવ લેહ છેઃ—(૧) સચિત્ત (૨)
 અચિત્ત (૩) સચિત્તાચિત્ત (૪) શીત. (૫) ઉષ્ણ (૬) શીતોષ્ણ (૭) સંવૃત (૮)
 વિવૃત અને (૯) સંવૃત-વિવૃત. કહું પણ છે—

“ભગવન્ ! યોનિ કેટલા પ્રકારની કહી છે ? ગૌતમ ! ત્રણ પ્રકારની યોનિ કહી છે.
 તે આ પ્રમાણે છે—શીતયોનિ, ઉષ્ણયોનિ, અને શીતોષ્ણયોનિ. તથા ત્રણ પ્રકારની યોનિ
 કહી છે. તે આ પ્રમાણે છે—સચિત્તયોનિ, અચિત્તયોનિ અને મિથ્રયોનિ. કરી પણ ત્રણ

તિવિદ્યા જોગી પળ્ળતા, તંજહાં-સંવુઢા જોગી, વિચઢા જોગી, સંવુઢવિચઢા જોગી ” । (પ્રજ્ઞા. યોનિપદ ૯)

જીવપ્રદેશૈરધિષ્ટિતા યોનિઃ સચિત્તા, જીવપ્રદેશૈરનવધિષ્ટિતા યોનિરચિત્તા । ક્વચિદંશે જીવપ્રદેશૈરધિષ્ટિતા, ક્વચિદનધિષ્ટિતા સાં સચિત્તાંચિત્તા । યત્ર શીતસ્પર્શઃ સા શીતા । યત્રોષ્ણસ્પર્શઃ સા યોનિરુષ્ણા । યત્ર ક્વચિદંશે શીતસ્પર્શઃ, ક્વચિદુષ્ણસ્પર્શઃ સા શીતોષ્ણા । અપ્રકટિતા સંવૃતા । પ્રકટિતા વિવૃતા । યત્ર ક્વચિદંશે પ્રકટિતા, ક્વચિદપ્રકટિતાઃ સા સંવૃતવિવૃતા યોનિઃ ।

કસ્ય જીવસ્ય કા યોનિર્ભવતી ?-ત્યુચ્યતે-દેવનારકાણામચિત્તા યોનિઃ । દેવાનાં પ્રચ્છદપટદેવદૂષ્યાન્તરાલં યોનિઃ, તત્ત્વ જીવપ્રદેશવર્જિતમ્ । નારાકાણાં તુ

ફિર મી ત્રીન તરહ કી યોનિ કહી હૈ । વહ ઇસ પ્રકાર-સંવૃતયોનિ વિવૃતયોનિ ઓર સંવૃતવિવૃતયોનિ ” । (પ્રજ્ઞા. યોનિપદ ૯)

જીવપ્રદેશો સં અધિષ્ટિત યોનિ સચિત્ત કહલાતી હૈ ઓર જો જીવપ્રદેશો સં અધિષ્ટિત ન હો વહ અચિત્ત કહલાતી હૈ । જો યોનિ કહી જીવપ્રદેશો સં અધિષ્ટિત હો ઓર કહી અધિષ્ટિત ન હો વહ મિશ્ર યોનિ હૈ । જહાં શીત સ્પર્શ હો વહ શીતયોનિ, જહાં ઉષ્ણ સ્પર્શ હો વહ ઉષ્ણયોનિ ઓર જિસ મેં કહી શીત ઓર કહી ઉષ્ણ સ્પર્શ હો વહ શીતોષ્ણયોનિ હૈ । અપ્રકટ યોનિ સંવૃત કહલાતી હૈ । પ્રકટ કો વિવૃત કહને હૈ ઓર જો કહી અપ્રકટ ઓર કહી પ્રકટ હો વહ સંવૃતવિવૃતયોનિ હૈ ।

કિસ જીવ કી કૌન-સી યોનિ હોતી હૈ ? વહ વતાતે હૈ-દેવ ઓર નારકી જીવો કી અચિત્ત યોનિ હોતી હૈ । દેવો કી યોનિ પ્રચ્છદપટ ઓર દેવદૂષ્ય કં વીચ મેં હોતી હૈ,

પ્રકારની યોનિ કહી છે તે આ પ્રમાણે છે:—સંવૃતયોનિ, વિવૃતયોનિ અને સંવૃતવિવૃતયોનિ ” (પ્રજ્ઞા. યોનિપદ ૯).

જીવપ્રદેશોથી અધિષ્ટિત યોનિ અચિત્ત કહેવાય છે. અને જે જીવપ્રદેશોથી અધિષ્ટિત ન હોય તે અચિત્ત કહેવાય છે. જે યોનિ કોઈ સ્થળે જીવપ્રદેશોથી અધિષ્ટિત હોય અને કોઈ સ્થળે અધિષ્ટિત ન હોય તે મિશ્રયોનિ કહેવાય છે. જ્યાં શીત સ્પર્શ હોય તે શીતયોનિ, જ્યાં ઉષ્ણસ્પર્શ હોય તે ઉષ્ણયોનિ, અને જેમાં કયાંક શીત અને કયાંક ઉષ્ણ સ્પર્શ હોય તે શીતોષ્ણ યોનિ છે. અપ્રકટ યોનિ સંવૃત કહેવાય છે, અને પ્રકટ યોનિને વિવૃત કહે છે, અને જે કયાંક પ્રકટ અને કયાંક અપ્રકટ હોય તે સંવૃત-વિવૃત યોનિ છે.

કયા જીવની કઈ યોનિ છે ? તે બતાવે છે—દેવ-નારકી જીવોની અચિત્તયોનિ હોય છે. દેવોની યોનિ પ્રચ્છદપટ અને દેવદૂષ્યના વચમાં હોય છે અને તે જીવ

વજ્રમયવાતાયનકલ્પાઃ કુમ્ભયો યોનયઃ, - તા અપિ જીવમદેશરહિતાઃ । યે ગર્ભ-
જાસ્તિર્યંચો મનુષ્યાસ્તેપાં મિશ્રાસચિત્તાચિત્તરૂપા યોનિઃ । સ્થાવરપૃ-
થ્વસ્ય વિકલેન્દ્રિયત્રયસ્ય અગર્ભજપૃથ્વેન્દ્રિયતિરથાં સંમૂર્છિમમનુષ્યાણાં ચ ત્રિવિધા
સચિત્તા ૫અચિત્તા, સચિત્તાચિત્તા ચ ।

ગર્ભજમનુષ્યતિરથાં દેવાનાં ચ શીતોષ્ણા યોનિઃ । તેજસ્કાયસ્ય ઉષ્ણા ।
સ્થાવરચતુષ્ટયસ્ય વિકલેન્દ્રિયત્રયસ્ય અગર્ભજપૃથ્વેન્દ્રિયતિરથાં સંમૂર્છિમમનુષ્યાણાં
નારકાણાં ચ ત્રિવિધા શીતા, ઉષ્ણા, શીતોષ્ણા ચ યોનિઃ ।

નારકાણાં દેવાનામેકેન્દ્રિયાણાં ચ સંવૃતા યોનિઃ । ગર્ભજાનાં
પૃથ્વેન્દ્રિયતિરથાં મનુષ્યાણાં ચ સંવૃતવિવૃતા યોનિઃ । વિકલેન્દ્રિયત્રયસ્ય

ઔર વહ જીવપ્રદેશો સે રહિત હૈ । નારકો કી યોનિ વજ્રમય વાતાયન કે સમાન કુંભિયાં હૈ ।
વે મી જીવપ્રદેશો સે રહિત હૈ । ગર્ભજ તિર્યંચો ઔર મનુષ્યો કી મિશ્ર (સચિત્તાચિત્ત) યોનિ
હોતી હૈ । પાંચ સ્થવરો કી, ત્રીન વિકલેન્દ્રિયો કી, અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચો કી તથા
સંમૂર્છિમ મનુષ્યો કી યોનિ ત્રીનો પ્રકાર કી (સચિત્ત, અચિત્ત ઔર મિશ્ર) હોતી હૈ ।

ગર્ભજ-મનુષ્યો, તિર્યંચો ઔર દેવો કી શીતોષ્ણ યોનિ હોતી હૈ । તેજસ્કાય કી
ઉષ્ણ યોનિ હૈ । ચાર સ્થાવરો કી, ત્રીન વિકલેન્દ્રિયો કી, અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચો કી
સંમૂર્છિમ મનુષ્યો કી ઔર નારકો કી ત્રીનો પ્રકાર કી (શીત ઉષ્ણ ઔર મિશ્ર) યોનિ
હોતી હૈ ।

નારકો દેવો ઔર એકેન્દ્રિયો કી સંવૃત યોનિ હૈ । ગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચો
ઔર મનુષ્યો કી સંવૃતવિવૃત યોનિ હોતી હૈ । ત્રીન વિકલેન્દ્રિયો કી, અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય

પ્રદેશોથી રહિત છે. નારકીઓની યોનિ વજ્રમય વાતાયન (ખારી)ની સમાન કુંભીઓ
છે. તે પૃથ્વ સ્થવપ્રદેશોથી રહિત છે.

ગર્ભજ તિર્યંચો અને મનુષ્યોની મિશ્ર (સચિત્તાચિત્ત) યોનિ હોય છે. પાંચ
સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચોની તથા સંમૂર્છિમ
મનુષ્યોની યોનિ ત્રણ પ્રકારની (સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર) હોય છે.

ગર્ભજ મનુષ્યો, તિર્યંચો અને દેવોની શીતોષ્ણ યોનિ હોય છે. તેજસ્કાયની
ઉષ્ણ યોનિ છે. ચાર સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચોની
સંમૂર્છિમ મનુષ્યોની અને નારકોની ત્રણ પ્રકારની (શીત, ઉષ્ણ અને મિશ્ર) યોનિ હોય છે.

નારકી, દેવો, અને એકેન્દ્રિયોની સંવૃત યોનિ છે. ગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચો
અને મનુષ્યોની સંવૃત-વિવૃત યોનિ હોય છે. ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય

अर्भजपञ्चेन्द्रियतिरथां संमूर्च्छिममनुष्याणां च विवृता योनिः ।

यद्वा—चतुरशीतिलक्षणभेदेनानेकरूपा योनयः सन्ति, तथा हि—पृथिव्यप्तेजो-
वायूनां प्रत्येकं सप्त सप्त लक्षाणि २८, प्रत्येकवनस्पतीनां दश लक्षाणि ३८,
साधारणवनस्पतीनां चतुर्दश लक्षाणि, ५२, विकलेन्द्रियत्रयस्य प्रत्येकं द्वे द्वे लक्षे,
इति तेषां षड् लक्षाणि ५८, देव-नारक-पञ्चेन्द्रियतिरथां प्रत्येकं चत्वारि लक्षाणीति
तेषां द्वादश लक्षाणि ७०, मनुष्याणां चतुर्दश लक्षाणि ८४ । एवं सर्वसंकलने
चतुरशीतिलक्षाणि जीवानां योनयो भवन्ति ।

अनेकविधयोनिप्राप्ती सत्यामपरिज्ञातकर्मा जीवः कर्मफलं ययाऽनु-
भवति तत् प्रदर्शयति—'विरूपरूपान् प्रति संवेदयति' इति, विरूपं=दुःख-

तिर्यचो की और संमूर्च्छिम मनुष्यो की विवृतयोनि होती है ।

अथवा—योनियों के चौरासी लाख भेद भी हैं । वे इस प्रकार हैं—पृथ्वीकाय,
अपृथ्वीकाय, तेजस्काय, और वायुकाय, की सात-सात लाख योनियाँ हैं २८, प्रत्येक वनस्पति
की दश लाख ३८, साधारण वनस्पति की चौद लाख ५२, तीन विकलेन्द्रि की प्रत्येक
की दो-दो लाख अर्थात् विकलेन्द्रिय की कुल छह लाख ५८, देवों नारकों और पञ्चेन्द्रिय
तिर्यचों में प्रत्येक की चार-चार लाख, कुल बारह लाख ७०, मनुष्यों की चौदह लाख ८४,
इस प्रकार कुल चौरासी लाख जीवयोनियाँ हैं ।

अनेक प्रकार की योनियाँ प्राप्त होने पर अपरिज्ञातकर्मा जीव किस प्रकार
कर्मफल भोगता है, सो बतलाते हैं—दुःखजनक होने के कारण इन्द्रियों के अनिष्ट विषयो

तिर्यचोनी अने संमूर्च्छिम मनुष्योनी विवृत योनि होय छे.

अथवा—योनियोंना चौरासी लाख भेद यद्यु छे, ते आ प्रमाद्यु छे—पृथ्वीकाय,
अपृथ्वीकाय, तेजस्काय, अने वायुकायनी. सात-सात लाख योनियो छे (२८), प्रत्येक
वनस्पतिनी इसलाख (३८), साधारण वनस्पतिनी चौदलाख (५२), तद्यु विकलेन्द्रियनी
प्रत्येकनी दोदो लाख, अर्थात् विकलेन्द्रियनी कुल छे लाख (५८), देवो नारकीयो,
अने पञ्चेन्द्रिय तिर्यचोनां प्रत्येकनी चार-चार लाख, तमाभ भणी चार लाख
(७०), मनुष्योनी चौदह लाख (८४), आ प्रमाद्यु कुल चौरासी लाख एवयोनि छे.

अनेक प्रकारनी योनियो प्राप्त थयां छतांय अपरिज्ञातकर्मा एवं देवी रीते
कर्मफल भोगवे छे ? ते अतावे छे—दुःख उत्पन्न करनार होवाना कारणे इन्द्रियोनां अनिष्ट-

हेतुत्वादशोमनं रूपं=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः=अनिष्टाः, तान्, स्पर्शान्=
इन्द्रियाणां विषयैः सह सम्बन्धाः स्पर्शाः, तान् प्रतिसंवेदयति=पुनः पुनरनुभवति ।
अनिष्टविषयसंयोगैः पुनः पुनर्दुःखमेव प्राप्नोतीत्यर्थः ।

यद्वा—विरूपं=विभिन्नरूपं विभिन्नात्मकं रूपं=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः
=नानाविधस्वरूपाः, तान् स्पर्शान्=दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयति । लक्षणया कार्य-
कारणयोरभेदाद्वा स्पर्शजन्या अपि दुःखसंपाताः स्पर्शा इति व्यपदिश्यन्ते । अत्र
स्पर्शानित्युपलक्षणं, तेन मानसानामपीष्टवियोगादिजन्यदुःखसंपातानां संग्रहः ।

यद्वा—स्पर्शान्=स्पर्शनेन्द्रियवेद्यान् दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयतीत्यर्थः ।

को भोगता है । इस प्रकार अनिष्ट विषयो का संयोग होने के कारण वह जीव पुनः-पुनः
दुःख ही अनुभव करता है ।

अथवा—विरूप अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वरूपवाले—नानाप्रकार के दुःखजनक स्पर्शों
का संवेदन करता है । लक्षणावृत्ति से, अथवा कार्य-कारण के अभेद की विवक्षा से स्पर्शजन्य
दुःख भी स्पर्श ही कहलाते हैं । यहाँ स्पर्श उपलक्षण मात्र है, उस से इष्टवियोग आदि
मानसिक दुःखों का भी ग्रहण समझना चाहिए ।

अथवा—स्पर्श का अर्थ है—स्पर्शनेन्द्रियविषयभूत दुःख । जीव उन्हें भोगता
है । तात्पर्य यह है कि — जीव अपरिज्ञातपापकर्मा होकर निर्गोद आदि जाना

दुःखकारक विषयेने भोगवे छे, जे प्रभावे अनिष्ट विषयेना संयोग होवना कारणे
ते एव कुरी-कुरी दुःखनेन अनुभव करे छे.

अथवा—विरूप अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वरूपवाला नाना प्रकारना दुःखजनक,
स्पर्शानुं संवेदन करे छे. लक्षणावृत्तिथी, अथवा कार्यकारणना अभेदनी विवक्षाथी
स्पर्शजन्य दुःख पण स्पर्श कहेवाय छे. अदि स्पर्श उपलक्षण मात्र छे, तेमां
इष्टवियोग आदि मानसिक दुःखानुं ग्रहण पण सबल देवुं जेठे छे.

अथवा—स्पर्शना अर्थ छे—स्पर्शनेन्द्रियविषयभूत दुःख, एव तेने भोगवे छे.
तात्पर्य जे छे—एव अपरिज्ञात-पापकर्मा यधने नरक-निर्गोद आदि अनेक योनिओमां

अपरिज्ञातकर्मतया नरकनिगोदाद्यनेकविधयोनीः संप्राप्य सर्वे जीवाः विचित्रकर्मो-
दयात् स्वकर्मफलं नानाविधं दुःखमेवानुभवन्तीति भावः ॥ ८ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगद-‘तत्ये’-इत्यादि ।

मूलम्—

तत्य खलु भगवया परिष्णा पवेइया ॥ सू० ९ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता ॥ सू० ९ ॥

टीका—

हे जम्बू ! अपरिज्ञातकर्मा जीवो विभावपरिणामं कुर्वन् नानाविध-
योनिषु पुनः पुनर्दुःखमेव लभते । तत्र-अपरिज्ञातकर्मणो जीवस्य कृतकारि-
तानुमोदितादिभेदेनोक्तसप्तविंशतिभङ्गरूपसावद्यक्रियानुष्ठानान्नरकनिगोदादिनानावि-
धयानिषु पुनः पुनर्दुःखानुभवविषये भगवता श्रीमहावीरस्वामिना परिज्ञा

योनियों में उत्पन्न होकर विचित्र कर्मों के उदय से अपने-अपने कर्मों का नानाविध दुःख-
रूप फल अनुभव करते हैं ॥ सू. ८ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं-‘तत्य खलु.’ इत्यादि ।

मूलार्थ-भगवान् ने परिज्ञा का उपदेश दिया है ॥ सू. ९ ॥

टीकार्थ- हे जम्बू ! अपरिज्ञातपापकर्मा जीव विभाव परिणाम धारण करता
हुया नाना प्रकार की योनियों में वारंवार दुःख पाता है । अपरिज्ञातपापकर्मा जीव के
कृत कारित अनुमोदना आदि के भेद से सत्ताईस भंगरूप सावद्यक्रिया के अनुष्ठान से
नरक निगोद आदि नाना प्रकार की योनियों में पुनः पुनः दुःखानुभव करने के विषयमें

उत्पन्न यद्यपि विचित्रकर्मोना उदयशी पोत-पोताना कर्मोना अनेक प्रकारना दुःखरूप
श्लेषे अनुभव करे छे. (सू० ८)

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे-‘तत्य खलु.’ इत्यादि.

मूलार्थ-भगवाने परिज्ञाने उपदेश आये छे. (९)

टीकार्थ-हे जम्बू ! अपरिज्ञातपापकर्मा एव विभाव परिष्णाम धारण करता
यको नाना प्रकारनी योनियोमां वारंवार दुःख पाये छे. अपरिज्ञात-पापकर्मा एवना
कृत कारित अने अनुमोदना आदिना लेहथी सत्तावीस भंगरूप सावद्य क्रियाना अनुष्ठानथी
नरक-निगोद आदि नाना प्रकारना योनियोमां पुनः पुनः दुःख अनुभव करवाना विषयमां

સંલુ પ્રવેદિતા । તત્તદુઃસ્વકારણકર્મવન્ધસમુચ્છેદાર્થં જીવેન પરિજ્ઞાઞ્વરૂપં શરણી-
 કરણીયેતિ ભગવતા પ્રવોધિતમિતિ ભાવઃ પરિજ્ઞા=સમ્યગવચોધઃ । પરિજ્ઞા
 દ્વિવિધા જ્ઞ-પ્રત્યાખ્યાન-મેદાત્ । 'સાવધવ્યાપારેણ કર્મવન્ધો ભવતીતિ જ્ઞાનં
 જ્ઞ-પરિજ્ઞા । કર્મવન્ધકારણસ્ય સાવધવ્યાપારસ્ય પરિત્યાગઃ પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા ।
 ઐત્રેદમવગન્તવ્યમ્-અતીતકાલે મનસા વાચા કાયેન ચ મયા સાવધ-
 ક્રિયા કૃતા, કારિતા, અનુમોદિતા ચ, તથા વર્તમાનકાલે સાવધક્રિયાં કરોમિ,
 કારયામિ, કુર્વન્તમપ્યન્યમનુમોદયામિ । एवं यदि भविष्यत्कालेऽपि सावधक्रियां
 करिष्यामि, कारयिष्यामि करिष्यमाणमन्यमनुमोदयिष्यामि । इत्थमनेकविधसा-
 वधव्यापारं कुर्वन् जीवः संसारे परिभ्रमति, नरकनिगोदाद्यनेकविधदुस्सहयातनां

ભગવાન્ મહાવીરં સ્વામીને પરિજ્ઞાં કી પ્રરૂપણા કી હૈ । દુઃસ્વોં કે કારણમૂત કર્મોં કે
 વન્ધ કો નાશ કરને કે લિંગ જીવં કો પરિજ્ઞા વા શરણ અવસ્ય પ્રહણ કરના ચાહિં;
 ઈસાં ભગવાન્ નં કહૈા હૈ । પરિજ્ઞાં કા અર્થ હૈ-સમ્યગ્જ્ઞાનં । પરિજ્ઞાં દો પ્રકાર કો હૈ-
 જ્ઞ-પરિજ્ઞા ઓર પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞા । સાવધ વ્યાપાર સે કર્મવન્ધ હોતા હૈ ' ઈસાં જ્ઞાનના
 જ્ઞ-પરિજ્ઞા હૈ । ઓર કર્મ વન્ધ કે કારણ સાવધ વ્યાપારોં કા પરિત્યાગ કર દેના પ્રત્યાખ્યાન
 પરિજ્ઞા હૈ । યહાં યહ સમજના ચાહિં કિ-મૂતકાલ મેં મૈને મન, વચન, કાય સે સાવધ ક્રિયા
 કી, કરાઈ ઓર ઉસ કી અનુમોદનાં કી, તથા વર્તમાન કાલ મેં સાવધ ક્રિયા કરતા હૂં, કરાતા
 હૂં ઓર દૂસરે કરને વાલેં કા અનુમોદન કરતા હૂં, । ઈસાં પ્રકાર ભવિષ્યકાલ મેં મી સાવધ
 ક્રિયા કરુંગા, કરાડુંગા, ઓર દૂસરે કા અનુમોદન કરુંગા । ઈસ પ્રકાર મૈત્તિ-મૈત્તિ કા
 સાવધ વ્યાપાર કરતા હુઆ જીવ સંસાર મેં પરિભ્રમણ કરતાં હૈ ઓર નરક નિગોદ આદિ કી

ભગવાન મહાવીર સ્વામીએ પરિજ્ઞાની પ્રરૂપણા કરી છે. દુઃખોના કારણમૂત કર્મોના
 બંધનો નાશ કરવા માટે જીવને પરિજ્ઞાનું શરણ અવસ્ય ગ્રહણ કરવું જોઈએ, એ
 પ્રવચ્છે ભગવાને કહ્યું છે. પરિજ્ઞાનો અર્થ છે સમ્યગ્જ્ઞાન. પરિજ્ઞા બે પ્રકારની છે-
 (૧) જ્ઞ-પરિજ્ઞા અને (૨) પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા 'સાવધ વ્યાપારથી કર્મવન્ધ થાય છે.'
 આ પ્રકારે સમજવું તે જ્ઞ-પરિજ્ઞા છે, અને કર્મવન્ધનો કારણથી સાવધ વ્યાપારનો
 ત્યાગ કરી દેવો તે પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા છે. અહિં આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ કે:-
 જૂતકાળમાં મેં મન, વચન, કાયાથી સાવધ ક્રિયા કરી છે; કરાવી છે. અને તેને
 અનુમોદન આપ્યું છે તથા વર્તમાન કાલમાં સાવધ ક્રિયા કરું છું, કરાવું છું, અને
 ધીન કરવાવાળાને અનુમોદન આપું છું. આ પ્રમાણે ભવિષ્યકાલમાં પણ સાવધ ક્રિયા
 કરીશ, કરાવીશ અને ધીનને અનુમોદન આપીશ. આ પ્રમાણે અનેક તરેહના બુદ્ધા-બુદ્ધા

ચાતુમયતિ । एवं त्रपरिज्ञया त्रिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया सावद्यक्रिया परित्याज्येति भगवता बोधितमिति । इदं च ज्ञानं सहसम्मत्या (अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानैर्जाति-स्मृत्या वा) मतिज्ञानेन वा भवति, तस्मान्निश्चयव्यवहारस्वरूपसंयममार्गं प्रवृत्तिरेव-जीवस्य हितकारिणी, अनयैव हि परमपदं मोक्षो लभ्यते ॥ सू० ९ ॥

નવુ તર્હિ દુઃસ્વખલેષુ તેપુ ક્રિયાવિશેષેષુ કિમર્થં પ્રવર્તેતે જીવઃ ? इत्याशङ्का-यामाह—'इमस्स चेव.' इत्यादि ।

મૂલમ્—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाइमरणभोयणाए दुक्खपडिघायहेउं ॥ सू० १० ॥

છાયા—अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय-जातिमरणमोच-नाय दुःखमतिघातहेतुम् ॥ सू० १० ॥

એક પ્રકાર કો દુઃસહ યાતનાર્થં ભોગતા હૈ, इस प्रकार ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से सावद्य क्रिया त्यागने योग्य है । इस प्रकार भगवान्ने उपदेश दिया है । यह बोध-अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान और जातिस्मरण से होता है, या, मतिज्ञान से होता है । इस लिये निश्चयव्यवहाररूप संयममार्ग में प्रवृत्ति करना ही जीव के लिए हितकर है और इसी से परमपद-मोक्ष प्राप्त होता है ॥ सू० ९ ॥

अगर सावद्य क्रियाएँ दुःख का कारण हैं तो उन में जीव प्रवृत्ति क्यों करता है ? इस आशंका का समाधान करते हैं—'इमस्स चेव.' इत्यादि ।

मूलार्थ—इस जीवन के लिए, परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख दूर करने के लिए, (जीव पापक्रिया में प्रवृत्त होता है) ॥ सू. १० ॥

सावद्य व्यापार કરતો એવ ત્રંસારમાં પરિજ્ઞમણુ કરે છે, અને નરક, નિર્ગોદ આદિની અનેક પ્રકારની કઠિન યાતનાઓ ભોગવે છે. આ પ્રમાણે ત્ર-પરિજ્ઞાથી બાણીને પ્રત્યા-ખ્યાન-પરિજ્ઞાથી સાવધ ક્રિયા ત્યાગવા યોગ્ય છે, આ પ્રમાણે ભગવાને ઉપદેશ આપ્યો છે. આ બોધ-અવધિ, મનઃપર્યય, કેવલજ્ઞાન અથવા જાતિસ્મરણથી ધાય છે, અથવા તો મતિજ્ઞાનથી ધાય છે. એ માટે નિશ્ચય-વ્યવહારરૂપ સંયમમાર્ગમાં પ્રવૃત્તિ કરવી એજ એવને માટે હિતકર છે, અને એનાથી પરમપદ મોક્ષ ધાય છે (સૂ. ૯)

એ કે સાવધ ક્રિયાઓ દુઃખનું કારણ છે, તો તેમાં એવ પ્રવૃત્તિ શા માટે કરે છે ? એ શંકાનું સમાધાન કરે છે—'इमस्स चेव.' इत्यादि.

મૂલાર્થ—આ એવને માટે, પરિવંદન, માનન, અને પૂજન માટે, જન્મ મરણથી સુક્રા ધવા માટે, દુઃખ દૂર કરવા માટે (એવ પાપક્રિયામાં પ્રવૃત્ત ધાય છે). (૧૦)

સંલુ પ્રવેદિતા । તત્તદુઃસ્વકારણકર્મવન્ધસમુચ્છેદાર્થં જીવેન પરિજ્ઞાઽવસયં શરણી-
 કરણીયેતિ ભગવતા પ્રવોધિતમિતિ માવઃ પરિજ્ઞા=સમ્યગવચોધઃ । પરિજ્ઞા
 દ્વિવિધા જ્ઞ-પ્રત્યાહ્યાન-મેદાત્ । 'સાવઘવ્યાપારેણ કર્મવન્ધો ભવતી'તિ જ્ઞાનં
 જ્ઞ-પરિજ્ઞા । કર્મવન્ધકારણસ્ય સાવઘવ્યાપારસ્ય પરિત્યાગઃ પ્રત્યાહ્યાન-પરિજ્ઞા ।
 અત્રેદમવગન્તવ્યમ્-અતીતકાલે મનસા વાચા ક્રાયેન ચ મયા સાવઘ-
 ક્રિયા કૃતા, કારિતા, અનુમોદિતા ચ, તથા વર્તમાનકાલે સાવઘક્રિયાં કરોમિ,
 કારયામિ, કુર્વન્તમપ્યન્યમનુમોદયામિ । एवं यदि भविष्यत्कालेऽपि सावधक્રियां
 કરિષ્યામિ, કારયિષ્યામિ કરિષ્યમાણમન્યમનુમોદયિષ્યામિ । इत्थंमनेकंविधसा-
 વઘવ્યાપારં કુર્વન્ જીવઃ સંસારે પરિભ્રમતિ, નરકનિગોદાઘનેકવિધદુસ્સહયાતનાં

મંગવાંન્ મહાવીરં સ્વામીને પરિજ્ઞાં ક્રી પ્રરૂપણા કી હૈ । દુઃસ્વો કે કારણમૂલ કર્મો કે
 વન્ધ કો નાશ કરને કે લિંગ જીવે કો પરિજ્ઞા કા શરણ અવસય ગ્રહણ કરના ચાહિયે;
 ऐसां भगवान् ने कहा है । परिज्ञा का अर्थ है-सम्यग्ज्ञानं । परिज्ञा दो प्रकार की है-
 જ્ઞ-પરિજ્ઞા ઓર પ્રત્યાહ્યાન પરિજ્ઞા । સાવઘ વ્યાપાર .સે કર્મવન્ધ હોતા હૈ 'ऐसा जानना
 જ્ઞ-પરિજ્ઞા હૈ । ઓર કર્મ વન્ધ કે કારણ સાવઘ વ્યાપારો કા પરિત્યાગ કર દેના પ્રત્યાહ્યાન
 પરિજ્ઞા હૈ । यहाँ यह समझना चाहिए कि-भूतकाल में मैंने मन, वचन, काय से सावध क्रिया
 કી, કરાઈ ઓર ડસ કી અનુમોદનાં કી, તથા વર્તમાન કાલ મેં સાવઘ ક્રિયા કરતા હૂં, કરાતા
 હૂં ઓર દૂસરે કરને વાલેં કા અનુમોદન કરતા હૂં, । इसी प्रकार भविष्यकाल में भी सावध
 ક્રિયા કરુંગા, કરાડુંગા, ઓર દૂસરે કા અનુમોદન કરુંગા । इस प्रकार भौति-भौति का
 સાવઘ વ્યાપાર કરતા હુઆ જીવ સંસાર મેં પરિભ્રમણ કરતા હૈ ઓર નરક નિગોદ આદિ કી

ભગવાન મહાવીર સ્વામીએ પરિજ્ઞાની પ્રરૂપણા કરી છે. દુઃખોના કારણમૂલ કર્મોના
 બંધનો નાશ કરવા માટે જીવને પરિજ્ઞાનું શરણ અવસય ગ્રહણ કરવું જોઈએ, એ
 પ્રમાણે ભગવાને કહ્યું છે. પરિજ્ઞાનો અર્થ છે સમ્યક્જ્ઞાન. પરિજ્ઞા બે પ્રકારની છે-
 (૧) જ્ઞ-પરિજ્ઞા અને (૨) પ્રત્યાહ્યાન-પરિજ્ઞા 'સાવઘ વ્યાપારથી કર્મબંધન યાદ્ય છે.'
 આ પ્રકારે સમજવું તે જ્ઞ-પરિજ્ઞા છે, અને કર્મબંધનોના કારણથી સાવઘ વ્યાપારોનો
 ત્યાગ કરી દેવો તે પ્રત્યાહ્યાન-પરિજ્ઞા છે. અહિં આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ કે:-
 ભૂતકાળમાં મેં મન, વચન, કાયાથી સાવઘ ક્રિયા કરી છે; કરાવી છે; અને તેને
 અનુમોદન આપ્યું છે તથા વર્તમાન કાલમાં સાવઘ ક્રિયા કરું છું, કરાવું છું, અને
 ધીબા કરવાવાળાને અનુમોદન આપું છું. આ પ્રમાણે ભવિષ્યકાલમાં પણ સાવઘ ક્રિયા
 કરીશ, કરાવીશ અને ધીબાને અનુમોદન આપીશ. આ પ્રમાણે અનેક તરેહના બુદ્ધા-બુદ્ધા

क्रियां करोति । जातिमरणमोचनाय=जातिर्जन्म, तदर्थं भवान्तरसुखमाप्त्यर्थं
 शम्पापातादिकं समाचरति । मरणार्थम्=मरणं येषां पित्रादीनां संजातं, तदर्थं
 पिण्डदानादिक्रियामु प्रवर्तते । यद्वा मरणं=वधस्तदर्थं, वधं निमित्तीकृत्य वैरनि-
 योपनार्थम् । यद्वा-मरणार्थं=मृत्युनिवृत्त्यर्थं मिथ्यात्वबुद्ध्या देवीपूजादौ
 बलिदानादिकरणम् । मोचनम्=आत्मनः कर्मबन्धापगमस्तदर्थं विपरीतमत्या
 पश्चात्प्रितापादौ प्राण्युपमर्दनकर्मणि प्रवर्तते । तथा दुःखप्रतिघातहेतुं=दुःखानां
 प्रतिघातो=विधंस्तस्य हेतुं क्रियाविशेषं हिंसादिकं करोति, यथा-व्याधि-

प्रतिश्र वगैरह मां 'पूजन' हे, उसके लिए भी मनुष्य प्राणियों का उपमर्दनरूप हिंसा वगैरह
 सावध क्रियाएँ करता है ।

जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए सावध क्रियाएँ की जाती हैं ।
 'जाति'-जन्म के लिए जैसे आगामी भव में सुख प्राप्त करने के उद्देश से जीव
 शम्पापात-(अग्नि तथा पाणीमें पडकर अथवा ऊपरसे गिरकर मरना) आदि का
 आचरण करता है । 'मरण'-पिता आदि का मरण होने पर उनके लिए पिण्डदान आदि
 क्रियाओं में प्रवृत्त होता है । अथवा-मृत्यु को निमित्त बनाकर वैर का प्रतिशोध (बदला) लेने
 के लिए पाप करता है । अथवा मृत्यु टालने की मिथ्याबुद्धि से देवी वगैरह के लिए बलिदान
 आदि करता है । तथा 'मोचन' के लिए अर्थात् अपना कर्मबन्ध हटाने के लिए विपरीतमति हो
 कर पंचाम्रिताप आदिरूप प्राणि हिंसा में प्रवृत्त होता है । तथा 'दुःखप्रतिघातहेतुं' दुःखों
 को निवारण करने के लिए हिंसा आदि पाप करता है । जैसे रोग मिटाने की बुद्धि से मांस

(मूर्ति) आदिनी पूज्-प्रतिष्ठा वगैरे पक्ष 'पूजन' छे. तेना भाटे पक्ष लव, प्राण्युभोतुं
 उपमर्दनरूप हिंसा वगैरे सावध क्रियाओ करे छे.

जन्म अने मरणथी छुटवा भाटे पक्ष सावध क्रियाओ करवाभां आवे छे. जाति-जन्म
 भाटे, जेभ आगामी लवभां सुख प्राप्त करवाना उद्देशथी लव अंपापात (अग्नि के पाणीभां
 पडीने मरवुं. वगैरे पडतुं भूकषुं) आदिनुं आचरण करे छे. 'मरण' पिता आदिना मरण
 प्रसंगे तेना भाटे पिण्डदान आदि क्रियाओभां प्रवृत्त थाय छे, अथवा मृत्यु निवारण भाटे
 मिथ्याबुद्धिथी देवी वगैरेने बलिदान आदि आपवां. तथा 'मोचन' भाटे अर्थात् पीताना
 कर्मबन्धने हर करवा भाटे विपरीत मतिथी पंचाम्रिताप आदिरूप हिंसाभां प्रवृत्त थाय छे.
 तथा 'दुःखप्रतिघातहेतुं'-दुःखोतुं निवारण करवा भाटे हिंसाआदि पाप करे छे. जेभ रोग

ટીકા—‘અસ્ય’ ઇતિ-અસ્ય=પ્રત્યક્ષમનુભૂયમાનસ્ય ચારિતરૂપન્ચચ્ચલત્તરસ્ય, સન્ધ્યારાગવન્ચરિત્તમહુગુરસ્ય જીવિતસ્ય=જીવનસ્ય ચિરસુખાર્થમપરિજ્ઞાતકર્મા જીવઃ કર્મવન્ધહેતુભૂતેષુ ક્રિયાવિશેષેષુ પ્રવર્તેતે । યથા-જીવનાર્થ લાવકતિત્તિરાદિપક્ષિ-
ણામ્, અજમેપમૃગમૃગરાજાદિપશુનાં વધરૂપઘોરકર્મસમાચરણમ્ । તથા-પરિવન્દન-
માનન-પૂજનાય, તત્ર-પરિવન્દનં=પ્રશંસા, તદર્થં, યથા-સ્વરૂયાતિપ્રાપ્ત્યર્થં સાપરાધ-
નિરપરાધ-પ્રાણિનાં હિસનમ્ । માનનમ્=અભ્યુત્થાનાસનદાનાદિરૂપઃ સત્કારઃ, સ્વાહ્નાઃ
સ્વીકારો વા, તદર્થમ્, યથા-માનનાર્થં પરેપાં હિસનાદિકરણમ્ । પૂજનમ્-રત્નવત્તાદિ-
પુરસ્કારઃ, પ્રતિમાદીનાં પૂજાપતિષ્ટાદિ ચ, તદર્થં, પ્રાણ્યુપમર્દનરૂપહિસાદિસાવધ-

ટીકાર્થ—પ્રત્યક્ષ અનુભવ ક્રિયે જાને વાલં, જલકી તરફ કે સમાન અતિશય ચંચલ, સન્ધ્યા કી લાલિમા કે સમાન મહુગુર-જીવન કે ચિરકાલીન સુખ કે લિપે અપરિજ્ઞાતકર્મા જીવ કર્મવન્ધ કી કારણભૂત ક્રિયાઓ મેં પ્રવૃત્ત હોતા હૈ । જેસે-જીવિત્ત રહને કે લિપે; લાવા, તોતર વ્વાદિ પક્ષિયોં કા ઓર વકરા, મેઢા, હિરન એવં સિંહ વ્વાદિ પશુઓં કા વધરૂપ ઘોર પાપકર્મ કા આચરણ કરના ।

તથા પરિવન્દન, માનન ઓર પૂજન કે લિપે જીવ પાપકર્મ કરતા હૈ । ‘પરિવન્દન’ કા અર્થ હૈ પ્રશંસા । પ્રશંસા કે લિપે સાપરાધ ઓર નિરપરાધ પ્રાણિયોં કા ઘાત ક્રિયા જાતા હૈ । ડઠકર રહ્યા હોના, આસન દેના વ્વાદિ સત્કાર, અથવા અપની આજ્ઞા સ્વીકાર કરાના ‘માનન’ કહલાતા હૈ, ઇસ કે લિપે મી દૂસરોં કી હિંસા કી જાતી હૈ । રત્નો ઓર વત્તો વ્વાદિ કા પુરસ્કાર ‘પૂજન’ કહલાતા હૈ, ઓર પ્રતિમા વ્વાદિ કી પૂજા-

ટીકાર્થ—પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરવામાં આવેલા જલના તરંગોની સમાન અતિશય ચંચલ, સંધ્યાની લાલાશ (સાતાપણ)ની સમાન ભંગુર ભવનના ભાંગા સમયના સુખ માટે અપરિજ્ઞાતકર્મા ભવ કર્મવન્ધની કારણભૂત ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્ત થાય છે. જેવી રીતે ભવિત રહેવા માટે લાવા તેતર, વ્વાદિ પક્ષીઓના અને બકરા, ઘેટા, હરણ એ પ્રમાણે સિંહ વ્વાદિ પશુઓના વધરૂપ ઘોર પાપકર્મનું આચરણ કરવું.

તથા પરિવન્દન, માનન અને પૂજન માટે પણ ભવ પાપ કર્મ કરે છે. ‘પરિવન્દન’નો અર્થ છે:-પ્રશંસા, પ્રશંસા માટે અપરાધવાળા અને અપરાધ વિનાના પ્રાણીઓનો ઘાત કરવામાં આવે છે. ઉઠીને ઉમા ધર્મ જવું. આસન આપવું વ્વાદિ સત્કાર અથવા પોતાની આજ્ઞા સ્વીકાર કરાવવી તે ‘માનન’ કહેવાય છે, તે માટે પણ પીળાની હિંસા કરવામાં આવે છે. રત્ન અને વત્તો વ્વાદિને પુરસ્કાર તે પૂજન કહેવાય છે, અને પ્રતિમા

मूलम्—एवावन्ति सव्यावन्ति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति ॥ सू. ११ ॥

छांयां—एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारम्भाः परिज्ञातव्या भवंति ॥ सू. ११ ॥

टीका—‘एतावन्तः’ इति—लोके=जिनशासने कर्मसमारम्भाः=कर्मबन्धहेतवः क्रियाविशेषाः सर्वे एतावन्तः । कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधानां कर्मसमारम्भाणां प्रत्येकमतीतवर्तमानानागतत्रयभेदेन नवविधानां पुनर्मनोवाक्कायभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सति सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्तीति रीत्या पूर्वकथितसप्तविंशति-भङ्गन्तः; न तु तेभ्योऽधिका इत्यर्थः । एते च कर्मसमारम्भाः परिज्ञातव्या भवन्ति, एतत्परिज्ञानार्थं यत्नो विधेय इत्यर्थः । ज्ञाते सति पुनः पुनरस्यानुस्मरणं करणीयं, न त्वत्र प्रमादः कार्य इति भावः ॥ सू. ११ ॥

कर्मसमारम्भपरिज्ञानस्य फलमाह—‘जस्सेते.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जिनशासन में इतने कर्मसमारम्भ जानने योग्य हैं ॥ सू. ११ ॥

टीकार्थ—जिनशासन में कर्मबन्ध के कारण इतने ही हैं । कृत, कारित, और अनुमोदित के भेद से तीन प्रकार के कर्मसमारम्भोंका अतीत वर्तमान और भविष्य काल के साथ गुणाकार करने पर नौ भेद होते हैं । ये नौ भेद मन, वचन, काय के भेदसे सत्ताईस भङ्गरूप हो जाते हैं । इस प्रकार सत्ताईस तरह के कर्मसमारम्भ जानने चाहिए, इनसे न कम है और न अधिक हैं । उन्हें जानने के लिए यत्न करना चाहिए । जान लेने के पश्चात् उनका बार-बार स्मरण करना चाहिए । इस विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

कर्मसमारम्भ के ज्ञानका फल बतलाते हैं—‘जस्सेते’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जिनशासनमें आठला कर्मसमारंभ जाणुवा योग्य छे (११)।

टीकार्थ—जिनशासनमें कर्मबंधनां कारण आठलां छे. करवुं. कराववुं अने अनुमोदन आपवुं आ लेदथी त्रषु प्रकारना कर्मसमारंभोने भूतकाल, वर्तमान अने भविष्य कालनी साथे गुणाकार करवाधी नव लेद थाय छे. आ नव लेद मन, वचन, कायाना लेदथी सत्तावीस लंकरूप थधंनय छे. अे प्रमाणे सत्तावीस तरेडना कर्मसमारंभोने जाणुवा लेधंनये. अेनाधी अोछा नथी अने अधिक पणु नथी. तेने जाणुवा भाटे यत्न करवो लेधंनये. जइया पंथी तेनु बारंवार स्मरणु करवुं लेधंनये. आ विषयमां प्रमाद नडि करवो लेधंनये. (११)

कर्मसमारंभना ज्ञानमुं क्षण अताये छे—‘जस्सेते’ इत्यादि.

વિધ્વંસનવુદ્ધયા માંસં ભક્ષયતિ, મદિરાદિકં પિવતિ, વનસ્પતિમૂલત્વકૃપત્રનિર્યાસાદિ-
શતપાકસહસ્રપાકાદિવૈલાર્થં વહ્નિવનસ્પત્યાધારમ્ભં કરોતિ । અત્ર કારિતાનુમોદિત્વ-
ભૂતભવિવ્યત્કાલાદિભેદેન કર્મસમારમ્ભરૂપાઃ ક્રિયાવિશેષા અન્યેઽપ્યવગન્તવ્યાઃ ।

एवमपरिज्ञातकर्मतया संसारिणो जीवाः कर्मसमारम्भरूपैः क्रियाविशेषैः
संसारे सर्वदिक्षु परिभ्रमन्तो विविधयोनिषु दुःखमेव प्राप्नुवन्तीति त्रिज्ञाय भव्यैः
कर्मसमारम्भरूपा सकलसावधक्रियाविशेषास्त्याज्या इति भावः ॥ सू. १० ॥

કર્મસમારમ્ભરૂપાન્ ક્રિયાવિશેષાન્ અનુસ્મારયિતું પ્રાગુક્તમપિ પુનઃ કથયતિ-
' ઇયાવંતિ ' ઇત્યાદિ ।

खाता है, मदिरा आदि का पान करता है, वनस्पति की जड़, छाल, पत्ता, रस वगैरह
निकालता है, शतपाक एवं सहस्रपाक आदि तैलों के लिए अग्नि और वनस्पति आदि का
आरम्भ करता है । यहाँ कराना और अनुमोदन करना तथा भूत, भविष्य काल आदि के
भेद से कर्मसमारम्भरूप अन्य क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिए ।

इस प्रकार अपरिज्ञातपापकर्मा होने के कारण संसारी जीव कर्मसमारम्भरूप क्रियाओं
द्वारा संसार में समस्त दिशाओं में भ्रमण करते हुए नाना योनियों में दुःख का ही अनुभव
करते हैं । ऐसा समझकर भव्य जीवों को पापकर्मजनक सावध क्रियाओं का त्याग करना
चाहिए ॥ सू० १० ॥

કર્મસમારમ્ભરૂપ ક્રિયાવિશેષોં કા સ્મરણ કરાને કે લિષ્ટ પૂર્વોક્ત અર્થ કો ફિર કહતે
હૈ—“ ઇયાવંતિ. ” ઇત્યાદિ ।

મટાડવાની બુદ્ધિથી માંસ ખાય છે, મદિરા વગેરેનું પાન કરે છે, વનસ્પતિનાં મૂળ, છાલ,
પાંદડાં રસ વગેરે કાઢે છે. શતપાક, સહસ્રપાક આદિ તેલો માટે અગ્નિ અને વનસ્પતિ
આદિનો આરંભ કરે છે. આદિ કરાવવું અને અનુમોદન આપવું, તથા ભૂત ભવિષ્ય-
કાલ આદિ ના ભેદથી કર્મસમારંભરૂપ અન્ય ક્રિયાઓ પણ સમજા લેવી જોઈએ.

આ પ્રમાણે અપરિજ્ઞાતપાપકર્મા હોવાના કારણે, સંસારી જીવ કર્મસમારંભરૂપ
ક્રિયાઓદ્વારા સંસારમાં, સમસ્ત દિશાઓમાં ભ્રમણ કરતો અનેક યોનિઓમાં દુઃખ-
નોજ અનુભવ કરે છે. આ પ્રમાણે સમજીને ભવ્ય જીવોએ પાપકર્મજનક સાવધ
ક્રિયાઓનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. (સૂ૦ ૧૦)

કર્મસમારંભરૂપ ક્રિયાવિશેષોં સ્મરણ કરાવવા માટે પૂર્વોક્ત અર્થને ફરી
કહે છે—‘ ઇયાવંતિ ’ ઇત્યાદિ.

सकाशान्मया साक्षात् श्रुतं तद् ब्रवीमि=कथयामि न तु स्वयुद्धिपरिकल्पितम् । यतः स्वयुद्धया कथने श्रुतज्ञानस्याविनयो भवति, किञ्च-उन्नस्थानां दृष्टयोप्यपूर्णा भवन्ति तस्माद् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः । अत्र सद्ग्रहगाथा-

“मुअणाणस्स अविणओ, परिहरणिज्जो मुहाहिलासीहिं ।

उउमत्त्याणं दिट्ठी, पुण्णा णत्थि-त्त म्इयं इइणा ॥ १ ॥ ” इति ।

सावद्यक्रियायाः पट्टजीवनिकायं प्रति शस्त्रवदुपघातकतया सावद्यक्रिया-स्वरूपबोधकस्य प्रथमाध्ययनस्य शस्त्रपरिज्ञया व्यपदेशः । ॥ सू. १२ ॥

प्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-१ ॥

मुनिका विचरणा जो तीर्थंकर भगवान् महावीर के सन्निकट मैने साक्षात् सुना है वही 'ब्रवीमि' = मैं कहता हूँ, अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं कहता । अपनी बुद्धिसे-तीर्थंकरकी वाणी की अपेक्षा न रखते हुए कथन करने से श्रुतज्ञान का अविनय होता है । दूसरी बात यह है कि उन्नस्थ की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ही मैं तुम से कहता हूँ । यहाँ यह सद्ग्रहगाथा है:—

“मुख के अभिलाषी भयों को श्रुतज्ञान के अविनय का त्याग करना चाहिए उन्नस्थों की दृष्टि पूर्ण नहीं होती, ऐसा यहाँ 'इति' शब्द से सूचित किया गया है ” ॥ १ ॥

सावद्य क्रिया पट्टजीवनिकाय के लिए शस्त्र के समान घातक है, अतः सावद्य क्रियाके स्वरूपके बोधक इस प्रथम अध्ययन का शस्त्रपरिज्ञा नाम हुआ है ॥ सू. १२ ॥

प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

विचरवु. ने तीर्थंकर भगवान् महावीर यासे मे' साक्षात् सांलणुं छे, तेज 'ब्रवीमि' = हुं कहुं छुं, पोतानी बुद्धिथी कल्पित कहेतो नथी. पोतानी बुद्धिथी— तीर्थंकरनी वाणीनी अपेक्षा नही राधीने. कहीअे तो श्रुतज्ञाननो अविनय थाय छे. पीछे बात अे छे के:—उन्नस्थनी दृष्टि पणु अपूर्णुं होय छे, ते कारणुथी भगवान् द्वारा प्रतिपादन कराअेवुं तत्त्व हुं तमने कहुं छुं. अहिं आ संग्रहगाथा छे.—

“सुअना अभिलाषी लण्येअे श्रुतज्ञानना अविनयनो त्याग करवो जेधंअे. उन्नस्थानी दृष्टि पूणुं होय नही. अे प्रमाणु 'इति' शब्दथी सूअना करवामां आवी छे.” (७)

सावद्य क्रिया पट्टजीवनिकाय भाटे शस्त्र (इथीआर) समान घातक छे. अे कारणुथी सावद्य क्रियाना स्वरूपनो बोध करवनां आ प्रथम-अध्ययन छे, तेनुं शस्त्रपरिज्ञानाम पणुं छे.

नामक प्रथम अध्ययननो प्रथम उद्देश

संपूर्ण (१-१)

मूलम्—जसोते लोगंसि कम्मसमारम्भा परिण्णाया भवंति से इ मुणी
परिण्णायकम्मै—त्तिवेमि ॥ सू० १२ ॥

छाया—यस्य एते लोके कर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः
परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

टीका—‘यस्य’ इति—लोके यस्य=भग्यजीवस्य एते=मायुक्ताः कर्मसमारम्भाः=
ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणः समुत्पादकाः, सावद्यक्रियाविशेषा इत्यर्थः परिज्ञाता
भवन्ति=‘ एते हिंसादयः सप्तविंशतिभङ्गवन्तः सावद्यक्रियाविशेषा आत्मनः कर्मबन्धे
हेतवो भवन्ति ’ इत्येवं ज्ञपरिज्ञया ज्ञाता भवन्ति स परिज्ञातकर्मा=ज्ञपरिज्ञया
कर्मबन्धनियन्धनत्वेन विज्ञाय, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्तसकलसावद्यक्रियाविशेषो
निश्चयेन मुनिः=सर्वसावद्यक्रियोपरतिप्रतिज्ञावान् भवतीत्यर्थः ।

इति=आत्मतत्त्वस्वरूपनिरूपणं, कर्मबन्धहेतुभूतसकलसावद्यक्रियास्वरूपप्रदर्शनं,
सावद्यक्रियानिश्चितिपुरस्सर मुनेर्विहरणं चेति यत् तीर्थङ्करस्य भगवतो महावीरस्य

मूलार्थ—लोक में जो कर्मसमारम्भ जान लेता है, वह मुनि निश्चय से परिज्ञातकर्मा
है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू. १२ ॥

टीकार्थ—लोक में जिस भग्य को पूर्वोक्त कर्मसमारम्भ अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि
आठ कर्मों के उत्पादक सावद्यव्यापार ज्ञात हो जाते हैं, अर्थात् जो पूर्वोक्त सत्ताईस भंगों
वाले हिंसादिक क्रियाविशेषों को अपने कर्मबन्धों का कारण समझ लेता है, वह परिज्ञात—कर्मा
है । जो ज्ञ-परिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण समझ कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से सम्पूर्ण सावद्य क्रिया-
ओंका त्याग करता है वह निश्चय से परिज्ञातकर्मा मुनि है ।

‘त्ति वेमि’ इति=इस प्रकार का आत्मा के स्वरूप का निरूपण, कर्मबन्ध के
कारणभूत समस्त सावद्य व्यापारों के स्वरूप का प्रदर्शन, और सावद्य क्रिया की निश्चितिपूर्वक

मूलार्थ—लोकमें जो कर्मसमारम्भने जाणी ले छे, ते मुनि निश्चयथी परिज्ञात-
कर्मा छे. जे प्रभाळ्हुं हुं कहुं छुं. (सू० १२)

टीकार्थ—लोकमें जो लब्ध छवने पूर्वोक्त कर्मसमारम्भ अर्थात् ज्ञानावरणीय
आदि आठ कर्मोंने उत्पादक सावद्य व्यापार जाणुवामा आवी लय छे. अर्थात् जो पूर्व
कहेला सतावीस लंगोवाणा हिंसादिक्रियाविशेषोंने पोताना कर्मबन्धनुं कारण समझ ले छे
ते परिज्ञातकर्मा छे. जो ज्ञ-परिज्ञाथी कर्मबन्धनुं कारण समझने प्रत्याख्यान-परि-
ज्ञाथी सम्पूर्ण सावद्य क्रियाओंने त्याग करे छे. ते निश्चयथी परिज्ञातकर्मा मुनि छे.

त्ति वेमि—इति=आ प्रभाळ्हुं आत्माना स्वरूपनुं निश्चय, कर्मबन्धना कारणभूत
समस्त सावद्य व्यापारोंना स्वरूपनुं प्रदर्शन, अने सावद्य क्रियांनी निश्चि ननुं

सकाशान्मया साक्षात् श्रुतं तद् ब्रवीमि=कथयामि न तु स्वबुद्धिपरिकल्पितम् । यतः स्वबुद्ध्या कथने श्रुतज्ञानस्याविनयो भवति, किञ्च-छद्मस्थानां दृष्टयोप्यपूर्णा भवन्ति तस्माद् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः । अत्र सद्ग्रहगाथा-

“ सुअणाणस्स अविणओ, परिहरणिज्जो सुहाहिलासीहिं ।

छउमत्थाणं दिट्ठी, पुण्णा णत्थि-त्त मूइयं इइणा ॥ १ ॥ ” इति ।

सावधक्रियायाः पद्मजीवनिकायं प्रति शस्त्रवदुपघातकतया सावधक्रिया-स्वरूपबोधकस्य प्रथमाध्ययनस्य शस्त्रपरिज्ञया व्यपदेशः । ॥ सू. १२ ॥

प्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-१ ॥

मुनिका विचरणा जो तीर्थंकर भगवान् महावीर के सज्जिकट मैं साक्षात् सुना है वही 'ब्रवीमि' = मैं कहता हूँ, अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं कहता । अपनी बुद्धिसे-तीर्थंकरकी वाणी की अपेक्षा न रखते हुए कथन करने से श्रुतज्ञान का अविनय होता है । दूसरी बात यह है कि छद्मस्थ की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ही मैं तुम से कहता हूँ । यहाँ यह सद्ग्रहगाथा है:—

“ मुख के अभिलाषी भव्यों को श्रुतज्ञान के अविनय का त्याग करना चाहिए छद्मस्थों की दृष्टि पूर्ण नहीं होती, ऐसा यहाँ 'इति' शब्द से सूचित किया गया है ” ॥ १ ॥

सावध क्रिया पद्मजीवनिकाय के लिए शस्त्र के समान घातक है, अतः सावध क्रियाके स्वरूपके बोधक इस प्रथम अध्ययन का शस्त्रपरिज्ञा नाम हुआ है ॥ सू. १२ ॥

प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

विचरवुं. जे तीर्थंकर लगवान महावीर पासे मे' साक्षात् सांलण्युं छे, तेज 'ब्रवीमि' = हुं कहुं छुं, पोतानी बुद्धिथी कल्पित कडेतो नथी. पोतानी बुद्धिथी— तीर्थंकरनी वाणीनी अपेक्षा नही राषीने. कहीअे तो श्रुतज्ञानने अविनय थाय छे. पीए वात अे छे के:—छद्मस्थनी दृष्टि पणु अपूर्णुं छाय छे, ते कारवुथी लगवान द्वारा प्रतिपादन कराअेहुं तत्त्व हुं तभने कहुं छुं. अहिं आ संअडगाथा छे.—

“ सुअना अलिदापी लण्येअे श्रुतज्ञानना अविनयने त्याग करवे जेधंअे. छद्मस्थानी दृष्टि पूर्णुं छाय नही. अे प्रभाळु 'इति' शब्दथी सूचना करवाभां आवी छे.” (७)

सावध क्रिया पद्मजीवनिकाय भाटे शस्त्र (इथीआर) समान घातक छे. अे कारवुथी सावध क्रियाना स्वरूपने बोध करावनाइं आ प्रथम-अध्ययन छे, तेनुं शस्त्रपरिज्ञानांम पड्युं छे.

नामके प्रथम अध्ययनने प्रथम उद्देश

संपूर्ण (१-१)

अथ प्रथमाध्ययनस्य

द्वितीयोद्देशः ।

प्रथमोद्देशे सामान्यरूपेणात्मनः स्वरूपं निरूपितम्, तस्यैव विशेषरूपेण बोधनाय द्वितीयोद्देशः प्रारभ्यते, तस्येदमादिसूत्रम्—‘अद्वै’ इत्यादि ।

तथा—इह ‘पूर्वभवस्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं न भवति केषाञ्चि’—दिति प्रथमोद्देशे निगदितम्, अथ तत् कथं न भवतीति जिज्ञासायामुच्यते—‘अद्वै’ इत्यादि ।

प्रथम अध्ययनका

द्वितीय उद्देश ॥

पहले उद्देश में सामान्यरूपसे आत्मा के स्वरूप का निरूपण किया गया है । अब विशेषरूप से आत्मा का स्वरूप समझाने के उद्देश्य से दूसरा उद्देश आरम्भ किया जाता है, उसका यह आदिसूत्र है—‘अद्वै’ इत्यादि ।

तथा—पहले उद्देशमें बतलाया गया था कि—किन्हीं—किन्हीं जीवों को पूर्व भव का स्मरणरूप विशिष्ट ज्ञान नहीं होता । वह ज्ञान क्यों नहीं होता ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—‘अद्वै’ इत्यादि ।

पहिला अध्ययनना - भीजे उद्देश.

पहिला उद्देशमां सामान्यरूपथी आत्माना स्वरूपतुं निरूपणु करवाभां आव्युं छे. हुवे विशेषरूपथी आत्मानुं स्वरूप समनववाना उद्देशथी भीजे उद्देशना आरंभ करवाभां आवे छे, तेतुं आ आदिसूत्र छे—‘अद्वै’ इत्यादि.

तथा—पहिला उद्देशमां बतलवामां आव्युं छे के-केअ-केअ एवने पूर्व-भवना स्मरणरूप विशिष्ट-उत्तम असाधारणु ज्ञान थतुं नथी. ते ज्ञान केम थतुं नथी ? अेवी जिज्ञासा थवाथी कळे छे:—‘अद्वै’ इत्यादि.

तथा—अयमात्मा परिज्ञातकर्मतया सकलसांख्यक्रियानिवृत्तः सन् मुनि-
र्भवतीत्युपदिष्टम्, अथ यः पुनरपरिज्ञातकर्मा स खलु कीदृशो भवतीत्याकाङ्क्षा-
यामाह—‘अद्वे’ इत्यादि ।

अद्वे लोए परिजुण्णे दुस्संवोहे अविजाणए, अस्सि लोए पच्चहिए तत्थ तत्थ
पुदो पास, आतुरा अस्सिं परित्तावेत्ति ॥ सू. १ ॥

छाया—

आर्तः लोकः परिधूनः (परिजीर्णः) दुःसंवोधः अविज्ञानकः अस्मिन् लोके
व्यथिते तत्र तत्र पृथक् पश्य, आतुरा अस्मिन् परितापयन्ति ॥ सू. १ ॥

तथा—यह कहा जा चुका है कि आत्मा कर्मों का स्वरूप समझ कर, और समस्त
सावध व्यापारों से विरत हो कर मुनि हो जाता है, मगर जिसने कर्मों का स्वरूप नहीं
समझा है उस आत्मा की कैसी स्थिति होती है ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—
‘अद्वे’ इत्यादि ।

मूलार्थ—(कर्मवन्ध का स्वरूप न समझने वाला) आर्त लोक परिजीर्ण है—असमर्थ
है बोध पाने में अशक्त है, अज्ञान है, इस लोक में व्यथित है, पृथक्-पृथक् जीवों को
देखो । वे आतुर-अज्ञानी—होकर जीवोंको परिताप पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

तथा—अे प्रभाणे कही च्छक्या छीअे के आत्मा कर्मोना स्वरूपने समझने अने
समस्त सावध व्यापारोधी विरत (इर) थर्छने मुनि थर्छ लय छे, पछु अेअो कर्मोना
स्वरूपने समझ्या नथी ते आत्मानी स्थिति केवी थाय छे ? अेवी अज्ञासा थवाधी
कहे छे:—‘अद्वे’ इत्यादि.

मूलार्थ—(कर्मबंधना स्वरूपने नहीं समझवावाणा) आर्तलोक परिच्छुर्छ छे.
असमर्थ छे. बोध पाववामां अशक्त छे. अज्ञान छे. आ लोकां दुःखी छे. लुदा-लुदा
अवेने अुअो ते आतुर-अज्ञानी थधने अवेने परिताप पछोंथाडे छे. (१)

टीका-

लोकः=पृथिव्यादिपद्मजीवनिकायः खलु ज्ञानावरणीपाद्यएविधकर्मबन्ध-
हेतुभूतसावद्यक्रियाविशेषस्वरूपानवबोधेन आर्तः=विषयसुखतृष्णाव्याकुलो भवति ।
अत एव परिदूयनः=शारीरमानसादिदुःखानलसंतप्तः । यद्वा-परिजीर्णः=क्षायोपशमिक-
भावाभावेन मोक्षमार्गप्रवृत्तावक्षमः, अत एव-दुःसंबोधः=ब्रह्मदत्तचरणकरण-
शिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः, अत एव अविज्ञानकः=सम्यग्ज्ञानरहितो भवति, अत एव
पूर्वभवस्मृतिरूपमपि विशिष्टं ज्ञानं न भवतीति भावः । 'पश्य' इति पदेन शिष्येति
संबोधनपदस्याध्याहारः—हे शिष्य ! प्रव्यथिते=पूर्वोपार्जितकर्मोदयेन क्षुधा-

टीकार्थ—लोक अर्थात् पृथिवीकाय आदि छह प्रकार के जीव, ज्ञाना-
वरण आदि आठ प्रकार के कर्मों के बन्धके कारणभूत सावद्य व्यापारों का स्वरूप न
समझकर आर्त होते हैं—विषयसुख की तृष्णा से व्याकुल होते हैं । अतएव वे शारीरिक और
मानसिक दुःखों की आग से संतप्त हैं । अथवा क्षायोपशमिक भावों के अभाव के कारण
मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं कर सकते । इसी कारण वे ब्रह्मदत्त की तरह चरण और
कारण की शिक्षा लेने में भी असमर्थ हैं । ऐसे जीव अविज्ञानक अर्थात् सम्यग्ज्ञान
से रहित होते हैं, इसी कारण उन्हें पूर्व भव की स्मृतिरूप विशिष्ट (जातिस्मरण) ज्ञान
भी नहीं होता ।

'पश्य' (देखो) इस पद के द्वारा शिष्य के संबोधन का अध्याहार किया
गया है । हे शिष्य ! पूर्वोपार्जित कर्मों के उदय से भूख, प्यास, त्रास, इष्टवियोग,

टीकार्थ—लोक अर्थात् पृथिवीकाय आदि छ प्रकारना लवसभूड ज्ञानावरण
आदि आठ प्रकारना कर्मोना बंधना कारणे सावद्य व्यापारोना स्वरूपने नहि समलने
आर्त थाय छे. विषय सुखनी तृष्णाथी व्याकुल थाय छे. ते कारणथी ते शारीरिक
अने मानसिक दुःखोनी आगथी संतप्त-भूतपेला छे. अथवा क्षायोपशमिक भावोना
अभावना कारणे मोक्षमार्गमां प्रवृत्ति करी शकता नथी. ये कारणथी ते ब्रह्मदत्तनी
पेठे अरण्य अने करणनी शिक्षा लेवामां पण्य असमर्थ छे, जेवा लव अविज्ञानक
अर्थात् सम्यग्ज्ञानथी रहित होय छे. आ कारणथी तेने पूर्वभवनी स्मृतिरूप विशिष्ट
(जातिस्मरण) ज्ञान पण्य यतुं नथी.

'पश्य' (देखो-लुवो) आ पदथी शिष्यना संबोधननुं अध्याहार करवामां
आण्युं छे; हे शिष्य ! पूर्वोपार्जित कर्मोना उदयथी भूख, त्रास, प्यास, इष्टवियोग,

पिपासा-त्रास-प्रियवियोगा-ऽऽधि-व्याधि-परिपीडिते, अस्मिन् लोके तत्र-तत्र=सर्व प्राणिषु पृथक्=प्रत्येकं पश्य । आतुराः=विषयसुखतृष्णाव्याकुला अज्ञानिनः अस्मिन् लोके परितापयन्ति=पृथिव्यादिजीवान् परिपीडयन्ति, इति पश्येत्यर्थः ।

यद्वा-लोकः-पृथ्वीवनिकायः, आर्तः=परिपीडितः अस्तीति शेषः । कुतः कारणाद् आर्तः ? इत्यत आह-'परिजृण्णे' इति । यतः परिजीर्णः=मोक्ष मार्गप्रवृत्तावक्षमः । कथं परिजीर्णः ? इत्यत आह-'दुःसंबोधे' इति, यतो दुःसंबोधः ब्रह्मदत्तवचरणकरणशिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः । दुःसंबोधः कुतोऽस्ती ?- इत्यत आह-यतः-अविज्ञानकः=विज्ञानरहितः, पूर्वभवार्जितघोरतरहिंसादिदुरितकर्म-

मानसिक पीडा, शारीरिक पीडा आदि से पीडित इस लोक में जहाँ पृथक्-पृथक् प्राणियों को देखो । वे विषयसुख के लिए व्याकुल एवं ज्ञानहीन हो कर संसार में संताप भोग रहे हैं । वे पृथिवीकाय आदि जीवों को पीडा पहुंचाते हैं (यह देखो) ।

अथवा-पृथ्वीवनिकायरूप यह लोक आर्त है-पीडा भुगत रहा है । यह किस कारण से आर्त है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि-वह परिजीर्ण अर्थात् मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने में असमर्थ है । यह परिजीर्ण क्यों है ? इस का समाधान यह है कि-वह दुःसंबोध है अर्थात् ब्रह्मदत्त की भाँति चरण-करण की शिक्षा ग्रहण करने में अशक्त है । वह दुःसंबोध क्यों है ? इस का कारण यह है कि-वह ज्ञानहीन है अर्थात् पूर्वभव में उपाजन किये हुए घोरतर हिंसा आदि पापकर्मोंके वश हो कर एवं अयन्त

मानसिक पीडा, शारीरिक पीडा, आदिथी पीडित आ लोकमां न्यां-त्यां जूडा-जूडा प्राणीज्जोने ज्जो, ते विषयसुख भाटे व्याकुल ज्जेवं ज्ञानहीन यधने संसारमां संताप लोगवी रखा छे. ते पृथिवीकाय आदि लोवोने पीडा पहुँचाये छे. ते ज्जो.

अथवा पृथ्वीवनिकायरूप आ लोक आर्त छे-पीडा लोगवी रखा छे. ते शु कारणथी आर्त छे ? आ प्रश्नो उत्तर ज्जे छे के:-ते परिजृण्णुं अर्थात् मोक्ष मार्गमां प्रवृत्ति करवाने असमर्थ छे. ते परिजृण्णुं शा भाटे छे ? तेनुं समाधान ज्जे छे के-ते दुःसंबोध छे, अर्थात् ब्रह्मदत्तनी प्रभाञ्जे चरण-करणथी शिक्षा ग्रहण करवामां अशक्त छे. ते दुःसंबोध शा भाटे छे ? तेनुं कारण ज्जे छे के:- ते ज्ञानहीन छे. अर्थात् पूर्व-भवमां उपाजन करेला घोरतर हिंसा आदि पापकर्मोने वश यधने, ज्जेम-ज्जे प्रभाञ्जे

लोकः=पृथिव्यादिपद्मजीवनिकायः खलु ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मवन्ध-
हेतुभूतसावधक्रियाविशेषस्वरूपानवबोधेन आर्तः=विषयसुखतृष्णाव्याकुलो भवति ।
अत एव परिधूनः=शारीरमानसाविदुःखानलसंतप्तः । यद्वा-परिजीर्णः=क्षायोपशमिक-
भावाभावेन मोक्षमार्गप्रवृत्तावक्षमः, अत एव-दुःसंबोधः=ब्रह्मदत्तचरणकरण-
शिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः, अत एव अविज्ञानकः=सम्यग्ज्ञानरहितो भवति, अत एव
पूर्वभवस्मृतिरूपमपि विशिष्टं ज्ञानं न भवतीति भावः । 'पश्य' इति पदेन शिष्येति
संबोधनपदस्याध्याहारः—हे शिष्य ! प्रव्यथिते=पूर्वोपार्जितकर्मादयेन क्षुधा-

टीकार्थ-लोक अर्थात् पृथिवीकाय आदि छह प्रकार के जीव, ज्ञाना-
वरण आदि आठ प्रकार के कर्मों के बन्धके कारणभूत सावध व्यापारों का स्वरूप न
समझकर आर्त होते हैं—विषयसुख की तृष्णा से व्याकुल होते हैं । अतएव वे शारीरिक और
मानसिक दुःखों की आग से संतप्त हैं । अथवा क्षायोपशमिक भावों के अभाव के कारण
मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं कर सकते । इसी कारण वे ब्रह्मदत्त की तरह चरण और
कारण की शिक्षा लेने में भी असमर्थ हैं । ऐसे जीव अविज्ञानक अर्थात् सम्यग्ज्ञान
से रहित होते हैं, इसी कारण उन्हें पूर्व भव का स्मृतिरूप विशिष्ट (जातिस्मरण) ज्ञान
भी नहीं होता ।

'पश्य' (देखो) इस पद के द्वारा शिष्य के संबोधन का अध्याहार किया
गया है । हे शिष्य ! पूर्वोपार्जित कर्मों के उदय से भूख, व्यास, त्रास, इष्टविद्योग,

टीकार्थ-लोक अर्थात् पृथ्वीकाय आदि छ प्रकारना लवसभूड ज्ञानावरण
आदि आठ प्रकारना कर्मोना अधना कारणे सावध व्यापारोना स्वइपने नडि समलने
आर्त थाय छे. विषय सुखनी तृष्णाथी व्याकुल थाय छे. ते कारणथी ते शारीरिक
अने मानसिक दुःखोनी आगथी संतप्त-भूतपेला छे. अथवा क्षायोपशमिक लावोना
अभावना कारणे मोक्षमार्गमां प्रवृत्ति करी शकता नथी. अे कारणथी ते ब्रह्मदत्तनी
पेठे अरथु अने करणनी शिक्षा लेवामां पथु असमर्थ छे, अेवा लव अविज्ञानक
अर्थात् सम्यग्ज्ञानथी रहित होय छे. आ कारणथी तेने पूर्वलवनी स्मृतिइप विशिष्ट
(जातिस्मरण) ज्ञान पथु यतुं नथी.

'पश्य' (देखो-लुवो) आ पदथी 'शिष्यना सम्बोधननुं अध्याहार करवामां
आन्धुं छे; हे शिष्य ! पूर्वोपार्जित कर्मोना उदयथी लूण, त्रास, इष्टविद्योग,

मातुराणां हृदयं मनागपि न द्रवति; प्रत्युत मृगान् क्षुधितव्याघ्र इव ते पृथिव्यादि-
प्राणिगणं प्रणिघ्नन्ति, इति संसूचयति ॥ सू. १ ॥

तत्र पद्भजीवनिकायरूपे लोके प्राथम्यात् पृथिवीकायस्याधिकारमाह—‘संति
पाणा’ इत्यादि ।

मूलम्—

संति पाणा पुढो सिया लज्जमाणा पुढो पास । अनगारासो—त्ति एगे
पवयमाणा जमिणं विरूक्खवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणा
अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू. २ ॥

छाया—

सन्ति प्राणाः पृथक् श्रिताः लज्जमानाः पृथक् पश्य । अनगाराः स्म इति एके
प्रवदमानाः, यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीशस्त्रं समारम्भमाणा
अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ २ ॥

मन में दया नहीं आती, प्रत्युत भूखा वाघ जैसे मृगों को मारता है उसी प्रकार विषय-
लोलुप लोग उन जीवों की हिंसा करते हैं ॥ सू. १ ॥

पद्भजीवनिकायरूप लोक में पृथ्वीकाय पहला है, अतः पृथ्वीकाय का अधिकार
कहते हैं—‘संति पाणा’ इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथ्वी में अलग-अलग प्राणी हैं । पृथ्वीकाय के आरंभ की निवृत्ति करने
वालों (मुनियों) को पृथक् समझो । ‘हम अनगार हैं’ इस प्रकार कहनेवाले द्रव्यलिङ्गी नाना
प्रकार के पृथ्वीशस्त्रों से पृथ्वीकर्म का समारम्भ करके पृथ्वीशस्त्र का समारम्भ करते हुए
अनेक प्रकार के अन्य प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ॥ सू. २ ॥

तेना मनमां दया आवती नथी, परन्तु भूखे वाघ जेभ मृगेने भारे छे, ते प्रभाणे
विषय-लाडुप लोक ते लोवोनी हिंसा करे छे. (१)

पद्भजीवनिकायरूप लोकमां पृथ्वीकाय प्रथम छे, ते कारण्णथी पृथ्वीकायने
अधिकार करे छे—‘संति पाणा’ इत्यादि.

मूलार्थ—पृथ्वीमां अलग-अलग प्राणी छे. पृथ्वीकायना आरंभनी निवृत्ति
करवावाणा (मुनियो)ने जूदा नलो. परन्तु ‘अभे अनगार-साधु मुनि छीजे.’ आ
प्रकारतुं कहेवावाणा द्रव्यलिङ्गी (वेध धारण करनारा) नाना-प्रकारना शस्त्रोधी पृथ्वी
कर्मने समारंभ करीने पृथ्वीशस्त्रने आरंभ करता यका अनेक प्रकारना अन्य
प्राणीओनी पणु हिंसा करे छे. (२)

वशतः प्रगाढमिथ्यात्वमोहनीयोदयात् प्रगाढमोहाक्रान्त इत्यर्थः । एवं स्वकर्मवशतः परिपीडितमपि नितान्तदयनीयमपि रागद्वेषमोहान्धाः परितापयन्तीत्याह-अस्मिन् लोके' इत्यादि । अस्य व्याख्या पूर्ववत् बोध्या ।

'पश्य' इति पदेन भागवता मां संवोधय यथोपदिष्टं तथा कथयामीति जम्बूस्वामिनं श्रीसुधर्मा स्वामी प्रतिबोधयति ।

'प्रव्यथिते' इति विशेषणपदं च स्वस्वकर्मणैव नानाविधवेदना-समन्वितानामपि पृथिव्यादिपृथ्वीनिकायानां परिपीडने विषयसुखदृष्ट्याक्रान्ताना-

गाढे मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से मोहयुक्त है । इस प्रकार अपने कर्मों से पीडित और अत्यन्त दयनीय पृथ्वीकाय आदि जीवों को राग-द्वेष और मोह से अन्धे पुरुष पीडा पहुंचाते हैं । 'अस्मिन् लोके'—(इस लोक में) इत्यादि की व्याख्या पहले के समान समझ लेना चाहिए ।

'पश्य' (देखो) इस पद से श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि—मुझे संवोधन करके भगवान् ने जैसा उपदेश दिया है वैसा ही मैं कहता हूँ ।

'प्रव्यथिते' पद से यह सूचित किया गया है कि—वेचारे पदकाय के जीव अपने-अपने कर्मों के कारण नाना प्रकार की वेदनाएँ भोग ही रहे हैं, इस पर भी विषय-सुख के लोलुप लोग उन्हें और सताते हैं । उन्हें दुःखी देख कर भी इनके

अत्यन्त गाढा मिथ्यात्वमोहनीयता उदयथी मोहयुक्त छे, अरे प्रकारे पोताना कर्मोधी पीडित अने अत्यन्त दयापात्र पृथ्वीकाय आदि लोकोने राग-द्वेष अने मोहधरी अंध धरैल पुरुष पीडा पहुंचावे छे 'अस्मिन् लोके' (आ. लो. क. म.) धृत्यादिनी व्याख्या प्रथम प्रभाष्ये सभल लेवी नेछे अरे ।

'पश्य' (लुञ्जो) आ पदथी श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीने कहे छे हे:- अने संवोधन करीने भगवाने जेवो उपदेश आये छे तेवो लुं कहुं लुं ।

'प्रव्यथिते' पदथी अरे सूचित करवामां आवे छे हे:- अिचारा पदकायना लुप पोत-पोताना कर्मोना कारणे नाना प्रकारनी वेदनाओ लोगवीर रखा छे, ते उपरांत पषु विषय-सुखना लोलुप भावुसो, तेने चधारे सतावे छे, तेने दुःखी नेछेने पण

मातुराणां हृदयं मनागपि न द्रवति; प्रत्युत मृगान् क्षुधितव्याघ्र इव ते पृथिव्यादि-
प्राणिगणं प्रणिघ्नन्ति, इति समूचयति ॥ सू. १ ॥

तत्र पदजीवनिकायरूपे लोके प्राथम्यात् पृथिवीकायस्याधिकारमाह—' संति
पाणा ' इत्यादि ।

मूलम्—

संति पाणा पुढो सिया लज्जमाणा पुढो पास । अणगारामो—त्ति एगे
पत्रयमाणा जमिणं विरूक्खवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणा
अण्णे अण्णेरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू. २ ॥

छाया—

सन्ति प्राणाः पृथक् त्रिताः लज्जमानाः पृथक् पश्य । अनगाराः स्म इति एके
प्रवदमानाः, यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीशस्त्रं समारम्भमाणा
अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ २ ॥

मन में दया नहीं आती, प्रत्युत भूखा वाघ जैसे मृगों को मारता है उसी प्रकार विषय-
लोहप लोग उन जीवों की हिंसा करते हैं ॥ सू. १ ॥

पदजीवनिकायरूप लोक में पृथ्वीकाय पहला है, अतः पृथ्वीकाय का अधिकार
कहते हैं—' संति पाणा ' इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथ्वी में अलग-अलग प्राणी हैं । पृथ्वीकाय के आरंभ की निवृत्ति करने
वालों (मुनियों) को पृथक् समझो । ' हम अनगार हैं ' इस प्रकार कहनेवाले द्रव्यलिङ्गी नाना
प्रकार के पृथ्वीशस्त्रों से पृथ्वीकर्म का समारम्भ करके पृथ्वीशस्त्र का समारम्भ करते हुए
अनेक प्रकार के अन्य प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ॥ सू. २ ॥

तेना मनमां दया आवती नधी, परंतु लूण्ये वाघ नेम भृगेने भारे छे, ते प्रभाण्ये
विषय-लाहुरप दोक ते एवेनी हिंसा करे छे. (१)

परएवनिशायरूप दोकमां पृथ्वीकाय प्रथम छे, ते कारण्यधी पृथ्वीकायने
अधिकार करे छे—' संति पाणा ' इत्यादि.

मूलार्थ—पृथ्वीमां अलग-अलग प्राणी छे. पृथ्वीकायना आरंभनी निवृत्ति
करवावाणा (मुनियो) ने लूढा लल्लो. परंतु ' अमे अनगार-साधु मुनि छीओ. ' आ
प्रकारनुं करेवावाणा द्रव्यलिङ्गी (वेध धारण्य करनार) नाना-प्रकारना शस्त्रोधी पृथ्वी
कर्मने समारंभ करीने पृथ्वीशस्त्रने आरंभ करता थका अनेक प्रकारना अन्य
प्राणीओनी पण्य हिंसा करे छे. (२)

ટીકા—

પ્રાણાઃ=પ્રાણાઃ સન્તિ ચેપામિત્યર્થઽચ્ચત્યયઃ, પ્રાણિનિ ઇત્યર્થઃ । પૃથક્=ભિન્નભિન્નતયા શ્રિતાઃ=સ્વસ્વશરીરાધિષ્ઠિતાઃ સન્તિ । યદ્વા-શ્રિતાઃ-પૃથિવ્યાશ્રિતાઃ=અઙ્ગુલાસંખ્યાતભાગપ્રમાણસ્વશરીરાવગાહિનઃ પૃથિવ્યામવસ્થિતાઃ પૃથિવીકાયિકાઃ, પ્રાણાઃ=જીવાઃ, પૃથક્=પૃથક્ગ્રમાવેન સન્તિ, ઇતિ પઞ્ચ । ઇદમુક્તં ભવતિ-પૃથિવ્યા એકદેવતારૂપત્વં મન્યમાના ખ્રાન્તાઃ, વસ્તુતસ્તુ પ્રત્યેકશરીરરૂપાણામસંખ્યાત-પૃથિવીકાયિકજીવાનાં સમુદાયઃ પૃથિવી । એવં ચ પૃથિવી સચિત્તાઽનેકજીવાધિષ્ઠિતા ચેતિ ।

અથ દ્વારપ્રદર્શનેન વસ્તુસ્વરૂપં સમ્યગ્ નિર્ણયતે તસ્માદ્ દ્વારણિ

ટીકાર્થ—પ્રાણ કા અર્થ હૈ પ્રાણી । પ્રાણી પૃથક્-પૃથક્ આશ્રિત હૈં અર્થાત્ અલગ-અલગ પ્રાણી અપને-અપને શરીર મૈં રહતે હૈં । અથવા 'શ્રિત' કા અર્થ હૈ-પૃથ્વી મૈં આશ્રિત । અંગુલ કૈ અસંખ્યાતવૈં ભાગ અવગાહના વાલૈ જીવ પૃથ્વી-આશ્રિત હૈં, ંસૈ પૃથ્વીકાય કૈ જીવ પૃથક્-પૃથક્ હૈં । યહ દૈસ્વો । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ પૃથ્વી કો એક હી દૈવતા માનને વાલૈ લોગ ખ્રમ મૈં હૈં । વાસ્તવ મૈં પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીર વાલૈ અસંખ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવો કા પિંડ હૈ । ંસી પ્રકાર પૃથ્વી સચિત્ત હૈ ંર ંનેક જીવો સૈ અધિષ્ઠિત હૈ ।

દ્વારોં કૈ પ્રદર્શન સૈ વસ્તુ કા સ્વરૂપ સ્પષ્ટ હો જાતા હૈ, અતઃ યહોં દ્વાર

ટીકાર્થ—પ્રાણીનો અર્થ પ્રાણી છે. પ્રાણી પૃથક્-પૃથક્ આશ્રિત છે, અર્થાત્ અલગ-અલગ પ્રાણી પોતા-પોતાના શરીરમાં રહે છે. અથવા 'શ્રિત'નો અર્થ છે. 'પૃથ્વીમાં આશ્રિત' આંગણના અસંખ્યાતમાં લાગની અવગાહનાવાળા એ એવ પૃથ્વી-આશ્રિત છે. એવા પૃથ્વીકાયના એવ બૃહા-બૃહા છે તે જુઓ.

તાત્પર્ય એ છે કે:—પૃથ્વીને એકજ દેવતા માનવાવાળા લોક ખ્રમમાં છે. વાસ્તવિક રીતે તો પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીરવાળા અસંખ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવોનો પિંડ છે. આ પ્રમાણે પૃથ્વી સચિત્ત છે, અને અનેક જીવોથી અધિષ્ઠિત છે.

દ્વારોના પ્રદર્શનથી વસ્તુનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ થઈ જાય છે; એટલે અહિં દ્વારબતા-

પ્રદર્શ્યન્તે-(૧) લક્ષણ, (૨) પ્રરૂપણા, (૩) પરિમાણ, (૪) વધઃ, (૫) શાસ્ત્રમ્, (૬) ઉપભોગઃ, (૭) વેદના, (૮) નિવૃત્તિશ્ચેત્યઘ્નૌ । ઉક્તઞ્ચ—

“લક્ષણ ૧ પ્રરૂપણા ૨ સ્વલુ, પરિમાણ ૩ વહ ૪ તદેવ સત્યં ૫ ચ । ઉપભોગ ૬ વેયણાવિ ૭ ય, નિવૃત્તી ૮ અદ્દ દારાઈ ॥ ૧ ॥”

(૧) લક્ષણદ્વારમ્—

નનુ પૃથિવી સચેતનાઽસ્તીત્યત્ર કિં પ્રમાણમ્ ? ઉચ્યતે—અનુમાનમેવ તાવત્પ્રથમં ગૃહાણ । પૃથિવી સચેતના તદધિષ્ટિતશરીરોપલઞ્ચિઃ, ગવાશ્વાદિવત્ ।

વતલાયે જાતે હૈં—(૧) લક્ષણ, (૨) પ્રરૂપણા, (૩) પરિમાણ, (૪) વધ, (૫) શાસ્ત્ર, (૬) ઉપભોગ, (૭) વેદના, ઓર (૮) નિવૃત્તિ । યે આઠ દ્વાર હૈં । કહા મી હૈ—

“લક્ષણ ૧ પ્રરૂપણા ૨ સ્વલુ. પરિમાણ ૩ વહ ૪ તદેવ સત્યં ચ ૫ । ઉપભોગ ૬ વેયણાવિ ૭ ય, નિવૃત્તી ૮ અદ્દ દારાઈ ॥ ૧ ॥” ઇતિ ।

લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, વધ, શાસ્ત્ર, ઉપભોગ, વેદના ઓર નિવૃત્તિ, યે આઠ દ્વાર કહે ગયે હૈ । ॥ ૧ ॥

શંકા—પૃથ્વી સર્જીવ હૈ ઇસ વિષયમ્ કયા પ્રમાણ હૈ ?

સમાધાન—પહેલે અનુમાન પ્રમાણ હી લીજિઈ—પૃથ્વી સચેતન હૈ, કયો કિ ઉસમ્ ચેતના સે અધિષ્ટિત શરીર કી ઉપલઞ્ચિ હોતી હૈ, ગાય ઓર અશ્વ કે સમાન ।

પવામાં આવે છે કે—(૧) લક્ષણ, (૨) પ્રરૂપણા, (૩) પરિમાણ, (૪) વધ, (૫) શાસ્ત્ર, (૬) ઉપભોગ, (૭) વેદના અને (૮) નિવૃત્તિ, આ આઠ દ્વાર છે. કહ્યું પણ છે કે—

“લક્ષણ ૧ પ્રરૂપણા ૨ સ્વલુ, પરિમાણ ૩ વહ ૪ તદેવ સત્યં ચ ૫ । ઉપભોગ ૬ વેયણાવિ ૭ ય, નિવૃત્તી ૮ અદ્દ દારાઈ ॥ ૧ ॥” ઇતિ ।

“લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, વધ, શાસ્ત્ર, ઉપભોગ વેદના અને નિવૃત્તિ. આ આઠ દ્વાર કહ્યા છે.” (૧)

(૧) લક્ષણદ્વાર—

શંકા:—પૃથ્વી સર્જીવ છે, એ વિષયમાં શું પ્રમાણ છે ?

સમાધાન:—પ્રથમ અનુમાન પ્રમાણને લઈએ—પૃથ્વી સચેતન છે. કારણ કે તેમાં ચેતનાથી અધિષ્ટિત શરીરની ઉપલઞ્ચિ થાય છે. ગાય અને અશ્વની સમાન.

કિન્ચ-જીવસ્ય યાનિ લક્ષણાનિ તાનિ પૃથ્વીકાયસ્ય સન્તિ, કેવલમત્રસ્ત્યાનર્દિના-
મદર્શનાવરણકર્મોદયાદુપયોગશક્તિર્જ્ઞાનદર્શનરૂપા નાસ્તિ વ્યક્તા દૃત્યન્યક્તરૂપેણોપયોગો
વર્ત્તે । તથૌદારિક-તન્મિથ્ર-કાર્મણશરીરાત્મકઃ કાયયોગો ઘૃદ્વયદ્વિવ્ત્ તસ્યાલમ્બનાય
વર્ત્તે । તથા માનસિકચિન્તાવિશેષવત્સુક્ષ્મા આત્મપરિણામવિશેષરૂપા અધ્યવસાય-
સ્ત્ર સન્તિ । તથા સાકારોપયોગાન્તર્ગતમતિશ્રુતરૂપમજ્ઞાનદ્વયં ચ તત્રાસ્તિ ।
તથા સ્પર્શનેન્દ્રિયમાત્રસ્ય સદ્ભાવાદચક્ષુર્દર્શનં ચ । તથા સેવાર્ત્તસંહનનં, ચન્દ્રમસૂર-
સંસ્થાનં વાસ્તિ । તથા-મિથ્યાત્વાદિસદ્ભાવાદદૃઢવિધકર્મવન્ધોઽપિ । કૃષ્ણનીલ-

દૂસરી વાત યહ હૈ કિ-જીવ કે જો લક્ષણ હૈં વે સબ પૃથ્વી મેં પાવે જાતે હૈં । હાં,
પૃથ્વીકાય મેં સ્ત્યાનર્દિનામક દર્શનાવરણ કર્મ કે ઉદય સે જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપયોગશક્તિ
પ્રકટરૂપ મેં નહીં હૈ । પૃથ્વી મેં અન્યક્તરૂપ સે ઉપયોગ રહતા હૈ ।

તથા ઔદારિક ઔદારિકમિથ્ર ઔર કાર્મણ શરીરરૂપ કાયયોગ ઘૃદ્વપુરુષ કો લકડીકે
સમાન ઉસ કે આલમ્બન કે લિષ્ વિઘમાન હૈ । પૃથ્વી મેં આત્મા કે પરિણામ માનસિકચિન્તા-
રૂપ અવ્યવસાય મી મૌજૂદ હૈ ।

પૃથ્વી મેં સાકાર-ઉપયોગ કે અન્તર્ગત મતિ ઔર ંત-અજ્ઞાન મી પાવે
જાતે હૈં । અકેલી સ્પર્શનેન્દ્રિય હોને સે અચક્ષુદર્શન મી હૈ । ઔર સેવાર્ત્ત સંહનન,
ઇયં ચન્દ્રમસૂર સંસ્થાન મી હૈ । મિથ્યાત્વ આદિ કારણ વિઘમાન હોને સે આઠ પ્રકારકા
કર્મવન્ધ હોતા હૈ । કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત ઔર તેજસ યે ચાર લેસ્યાઈ મી પૃથ્વીકાય મેં હૈં ।

ખીલ વાત આ છે કે-જીવના જે લક્ષણ છે તે સર્વ પૃથ્વીમાં જોવામાં આવે છે.
હા. પૃથ્વીકાયમાં સ્ત્યાનર્દિનામક દર્શનાવરણીય કર્મના ઉદયથી જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપ-
યોગશક્તિ પ્રકટ રૂપમાં નથી. પૃથ્વીમાં અન્યક્ત રૂપમાં ઉપયોગ રહે છે.

તથા-ઔદારિક ઔદારિકમિથ્ર અને કાર્મણ શરીરરૂપ કાયયોગ ઘૃદ્વપુરુષની
લાકડી સમાન તેના આલમ્બન માટે વિઘમાન છે. પૃથ્વીમાં આત્માના પરિણામ,
માનસિકચિન્તારૂપ અધ્યવસાય પણ મોજૂદ છે.

પૃથ્વીમાં સાકાર ઉપયોગના અન્તર્ગત મતિ અને શ્રુત અજ્ઞાન પણ જોવામાં
આવે છે. એકલી સ્પર્શનેન્દ્રિય હોવાથી અચક્ષુદર્શન પણ છે. અને સેવાર્ત્ત સંહનન,
એ પ્રમાણે ચન્દ્ર-મસૂર સંસ્થાન પણ છે.

મિથ્યાત્વ આદિ કારણ વિઘમાન હોવાથી આઠ પ્રકારનાં કર્મવન્ધ પણ થાય છે.
કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, અને તેજસ. આ ચાર લેસ્યાઓ પણ પૃથ્વીકાયમાં છે.

કાપોતૈતૈજસલેશ્યાચતુષ્ટયં, મૃક્ષમપૃથિવીકાયસ્યાચલેશ્યાત્રયમ્ । તથા-આહારાદિ-
સબ્દા અપિ । તથા-વેદનાક્રપાયમારણાન્તિકસમુદ્દાતાઽસઙ્ચિત્ત્વં, નપુંસકવેદઃ । પર્યાપ્તિ-
ચતુષ્ટયમ્ । તથા પૃથિવીકાયજીવા નિરન્તરં સતતમુચ્છૈસન્તિ નિઃશ્વસન્તિ ચ ।
પવનુપયોગાદિશ્વાસોચ્છ્વાસાન્તજીવલક્ષણ સમન્વિત્ત્વાન્મનુપ્યવત્પૃથિવીસચિત્તાઽસ્તીતિ
સિદ્ધમ્ ।

નનુ-ઉપયોગાર્થાનિ જીવલક્ષણાનિ પૃથિવીકાયજીવેષુ કચિન્નોપલભ્યન્તે, તથા
સતિ-અસિદ્ધેનૈવ ઉપયોગાદિજીવલક્ષણેન કથં પૃથિવ્યાઃ સચિત્ત્વં સાધ્યતે ? ।

ઉચ્યતે-પૃથિવીકાયજીવેષુમાસન્તુમુવ્યક્તાન્યુપયોગલક્ષણાનિ, અવ્યક્તાનિ

સૂક્ષ્મ પૃથ્વીકાય મેં આદિ ક્ષી તોન લેશ્યાઈ હેં । આહાર આદિ સંજ્ઞાઈ મી ઉસમેં હેં ।

પૃથ્વી મેં વેદના ક્રપાય ઓર મારણાન્તિક સમુદ્દાત હેં, અસંજીવન હૈ, નપુંસક વેદ હૈ
ઓર ચાર પર્યાપ્તિયાં મી હેં, પૃથ્વીકાય કે જીવ નિરન્તર શ્વાસોચ્છ્વાસ લેતે રહતે હેં । ઇસ પ્રકાર
ઉપયોગ સે લગાકર શ્વાસોચ્છ્વાસ પર્યન્ત જીવ કે લક્ષણો સે યુક્ત હોને કે કારણ પૃથ્વી મનુષ્ય
કે સમાન સચિત્ત હૈ, યહ વાત સિદ્ધ હુઈ ।

શઙ્કા-જીવ કે લક્ષણ ઉપયોગ વગેરહ પૃથ્વીકાય કે જીવો મેં કહીં મી ઉપલબ્ધ નહીં
હોતે । ઈસી સ્થિતિ મેં વહીં ઉપયોગ આદિ જીવ કે લક્ષણો કા હોના અસિદ્ધ હૈ । અસિદ્ધ
કથન સે પૃથ્વી ક્ષી સચિત્તતા કિસ પ્રકાર સિદ્ધ હો સકતી હૈ ?

સમાધાન-પૃથ્વીકાય કે જીવો મેં મલીમૌતિ વ્યક્ત ઉપયોગ આદિ લક્ષણ મહે

સૂક્ષ્મપૃથ્વીકાયમાં આદિની ત્રણ લેશ્યાઓ છે. આહાર આદિ સંજ્ઞાઓ પણ તેમાં છે.

પૃથ્વીમાં વેદના, ક્રપાય અને મારણાન્તિકસમુદ્દાત છે. અસંજીવણું છે. નપુંસક
વેદ છે અને ચાર પર્યાપ્તિઓ પણ છે. પૃથ્વીકાયના છવ નિરંતર શ્વાસોચ્છ્વાસ લેતા
રહે છે. આ પ્રમાણે ઉપયોગથી લઈને શ્વાસોચ્છ્વાસ પર્યંત છવના લક્ષણોથી યુક્ત
હોવાથી પૃથ્વી મનુષ્ય પ્રમાણે સચિત્ત છે. તે વાત સિદ્ધ થઈ.

શંકા-છવનું લક્ષણ ઉપયોગ વગેરે પૃથિવીકાયના છવોમાં કોઈ સ્થળે ઉપ-
લબ્ધ થતાં નથી. એવી સ્થિતિમાં બધાં ઉપયોગ આદિ છવના લક્ષણોનું હોવું તે
નહીં નથી. એ અસિદ્ધ કથનથી પૃથ્વીની સચિત્તતા કેવી રીતે સિદ્ધ થઈ શકે છે ?

સમાધાન-પૃથિવીકાયના છવોમાં સારી રીતે (સ્પષ્ટ) વ્યક્ત ઉપયોગ આદિ

કિञ્ચ-જીવસ્ય યાનિ લક્ષણાનિ તાનિ પૃથિવીકાયસ્ય સન્તિ, કેવલમત્રસ્થાનર્દિના-મદર્શનાવરણકર્મોદયાદ્રુપયોગશક્તિર્જ્ઞાનદર્શનરૂપા નાસ્તિ વ્યક્તા દ્વ્યવ્યક્તરૂપેણોપયોગો વર્તતે । તથૌદારિક-તન્મિશ્ર-કાર્મણશરીરાત્મકઃ કાયયોગો વૃદ્ધયદિવત્ તસ્યાલમ્બનાય વર્તતે । તથા માનસિકચિન્તાવિશેષવત્સ્ફુમા આત્મપરિણામવિશેષરૂપા અધ્યવસાય-સ્તત્ર સન્તિ । તથા સાકારોપયોગાન્તર્ગતમતિશ્રુતરૂપમજ્ઞાનદ્વયં ચ તન્નાસ્તિ । તથા સ્પર્શનેન્દ્રિયમાત્રસ્ય સદ્ભાવાદચક્ષુર્દર્શનં ચ । તથા સેવાર્તસંહનનં, ચન્દ્રમસૂર-સંસ્થાનં વાસ્તિ । તથા-મિથ્યાત્વાદિસદ્ભાવાદવિધકર્મવન્ધોઽપિ । કૃષ્ણનીલ-

દૂસરી વાત યહ હૈ કિ-જીવ કે જો લક્ષણ હૈં વે સવ પૃથ્વી મેં પાયે જાતે હૈં । હોં, પૃથ્વીકાય મેં સ્થાનર્દિનામક દર્શનાવરણ કર્મ કે ઉદય સે જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપયોગશક્તિ પ્રકટરૂપ મેં નહીં હૈ । પૃથ્વી મેં અવ્યક્તરૂપ સે ઉપયોગ રહતા હૈ ।

તથા ઔદારિક ઔદારિકમિશ્ર ઓર કાર્મણ શરીરરૂપ કાયયોગ વૃદ્ધપુરુષ કો લકડીકે સમાન ઉસ કે આલમ્બન કે લિષ્ટ વિદ્યમાન હૈ । પૃથ્વી મેં આત્મા કે પરિણામ માનસિકચિન્તા-રૂપ અધ્યવસાય મો જૂદ હૈ ।

પૃથ્વી મેં સાકાર-ઉપયોગ કે અન્તર્ગત મતિ ઓર શ્રુત-અજ્ઞાન મો પાયે જાતે હૈં । અકેલી સ્પર્શનેન્દ્રિય હોને સે અચક્ષુદર્શન મો હૈ । ઓર સેવાર્ત સંહનન, ઉવં ચન્દ્રમસૂર સંસ્થાન મો હૈ । મિથ્યાત્વ આદિ કારણ વિદ્યમાન હોને સે આઠ પ્રકારકા કર્મવન્ધ હોતા હૈ । કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત ઓર તૈજસ યે ચાર લેશ્યાઈ મો પૃથ્વીકાય મેં હૈં ।

પીછ વાત આ છે કે-જીવના જે લક્ષણ છે તે સર્વ પૃથ્વીમાં જોવામાં આવે છે. હા. પૃથ્વીકાયમાં સ્થાનર્દિનામક દર્શનાવરણીય કર્મના ઉદયથી જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપ-યોગશક્તિ પ્રકટ રૂપમાં નથી. પૃથ્વીમાં અવ્યક્ત રૂપમાં ઉપયોગ રહે છે.

તથા-ઔદારિક ઔદારિકમિશ્ર અને કાર્મણ શરીરરૂપ કાયયોગ વૃદ્ધપુરુષની લાકડી સમાન તેના આલમ્બન માટે વિદ્યમાન છે. પૃથ્વીમાં આત્માના પરિણામ, માનસિકચિન્તારૂપ અધ્યવસાય પણ મો જૂદ છે.

પૃથ્વીમાં સાકાર ઉપયોગના અન્તર્ગત મતિ અને શ્રુત અજ્ઞાન પણ જોવામાં આવે છે. એકલી સ્પર્શનેન્દ્રિય હોવાથી અચક્ષુદર્શન પણ છે. અને સેવાર્ત સંહનન, એ પ્રમાણે ચન્દ્ર-મસૂર સંસ્થાન પણ છે.

મિથ્યાત્વ આદિ કારણ વિદ્યમાન હોવાથી આઠ પ્રકારનાં કર્મવન્ધ પણ થાય છે. કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, અને તૈજસ. આ ચાર લેશ્યાઓ પણ પૃથ્વીકાયમાં છે.

एवं च मनुष्यवद् व्रणस्थानभरणरूपस्य चेतनालक्षणस्य पृथिवीकायेऽपि सत्त्वात् ।

यद्वा-पृथिवी सजीवा, दैनिकवर्षणोपचयसंदर्शनात्, चरणतलवत्, तद्यथा-चरणतलं घृष्यते पुष्यति च, तद्वत् पृथिव्यापि प्रत्यहं घृष्यते, उपचीयते च; तस्मात्तस्याः सजीवत्वम् ।

अथवा-विद्रुमपापाणिरूपा पृथिवी सचेतना, काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादि-दर्शनात्, शरीरस्थिताभ्यादिवत् । तद्यथा-शरीरस्थितमस्यादिकं कमठपृष्ठकठिनं सदापि चित्तवदनुभूयमानमुपचयं च गच्छत् संदृश्यते । एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः

इस प्रकार मनुष्य के समान घाव का भरना भी चेतना का एक लक्षण है, और वह पृथ्वी कायमें विद्यमान है ।

अथवा-पृथ्वी सजीव है, क्यों कि उस में प्रतिदिन घिसना और उपचय होना देखा जाता है, पैर के तल की तरह । तात्पर्य यह है कि-जैसे पैर का तलभाग घिसता है और फिर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पृथिवी भी प्रतिदिन घिसती है और भरजाती है । अतः पृथिवी भी सजीव है ।

अथवा-मृगा, पापाण आदि रूप पृथ्वी सजीव है, क्यों कि उसमें कठिनता होने पर भी वृद्धि आदि देखी जाती है; जैसे शरीर को हड्डी आदि । तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर की हड्डी आदि कछुवे की पीठ की भाँति कठोर होने पर भी सचित्त मादम होती है और उपचय को प्राप्त होती हुई दिखाई देती है, इसी प्रकार मृगा-शिला

તે પ્રમાણે મનુષ્યના સમાન ઘાવનું ભરાઈ જવું તે પણ એક ચેતનાનું લક્ષણ છે, અને તે પૃથ્વીકાયમાં વિદ્યમાન છે.

અથવા-પૃથિવી સજીવ છે, કારણ કે તેમાં પ્રતિદિન ઘસાવું અને વધવું તે જોવામાં આવે છે, પગના તળીઆની પ્રમાણે. તાત્પર્ય એ છે કે-જેમ પગના તળીઆનો ભાગ ઘસાય છે અને ફરી પાછા પુષ્ટ થઈ જાય છે તે પ્રમાણે પૃથિવી પણ પ્રતિદિન ઘસાય છે અને ફરી પાછી ભરાઈ જાય છે, તેથી પૃથિવી પણ સજીવ છે.

અથવા-મુંગા (પરવાળા) પાપાણ આદિરૂપ પૃથ્વી સજીવ છે કમઠે-તેમાં કઠિનતા હોવા છતાંય પણ વૃદ્ધિ વગેરે જોવામાં આવે છે, જેવી રીતે શરીરના હાડકાં આદિ. તાત્પર્ય એ છે કે-જેવી રીતે શરીરના હાડકાં આદિ કાચળાની પીઠ જેવા કઠોર હોવા છતાંય પણ સચિત્ત માલૂમ પડે છે, અને વૃદ્ધિને પ્રાપ્ત થતાં હોય તેમ દેખાય છે, તે

तु तत्र सन्त्येव, यथा—अव्यक्तमनुष्यस्य अस्युत्कटमदिरातिपानजनित-
पित्तोदयमूर्च्छितस्य चेतनाया अव्यक्तत्वेऽपि न तस्याचित्तरूपता त्रिज्ञायते, एवं
पृथिवीकायजीवेष्वव्यक्तचेतना संभवति ।

न चाव्यक्तचेतनाऽभिव्यञ्जकमुच्छ्रवासादिकं मद्यमूर्च्छितमनुष्यस्य सचित्त-
त्वमावेदयति, इह तु न किञ्चित्चेतनालक्षणं लक्ष्यत इति वाच्यम् ।

यथा मनुष्यशरीरे क्षतस्थानं मांसादिरिक्तमपि पश्चात्क्षतादिनिवृत्तौ स्वयं
भ्रियते, तथैव खनितं खनिभूम्यादिकं सजातीयवयवैर्भ्रियमाणं दृश्यते ।

ही न हों, मगर अव्यक्तरूप में तो विद्यमान हैं ही । जैसे कोई मनुष्य खूब नसैली मदिराका
डॉटकर पान कर ले और पित्त के प्रकोप से मूर्च्छित हो जाय तो उसको भी चेतना अव्यक्त
हो जाती है, फिर भी उसे अचित्त (अचेतन) नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार पृथ्वीकाय
के जीवों में अव्यक्त चेतना है ।

शङ्का—अव्यक्त चेतना के बोधक उर्ध्वीस वगैरह मद्यमूर्च्छित मनुष्य की सचित्तता
को प्रकट करते हैं; मगर यहाँ (पृथ्वीमें) तो चेतना का कोई भी लक्षण नहीं दिखाई देता ।
ऐसी स्थिति में पृथ्वी की सचेतनता किस प्रकार मानी जाय ?

समाधान—जैसे—मनुष्य के शरीर में घाव हो जाता है तो उस स्थान
में मांस आदि नहीं रहता । पश्चात् घाव मिट जाने पर वह भर जाता है । इसी प्रकार
खोदी हुई खान आदि की भूमि अपने सजातीय अवयवों से भरजाती दिखाई देती है ।

लक्षणे लवे न डोय, परन्तु अव्यक्त रूपमां तो विद्यमान छेव. जेभ केअ मनुष्य
पूण घेटलरीने धणु नीसावाणी मदिरानुं पान करी ले अने पित्तना प्रकोपथी
मूर्च्छित थध लय तो तेनी पणु चेतना अव्यक्त थध लय छे, ज्येटले तेने
अचित्त कही शकता नथी. ज्ये प्रभाणु पृथ्वीकायना ज्येवामां अव्यक्त चेतना छे.

शङ्का—अव्यक्त चेतनाना बोधक तरीके उर्ध्वीस वगैरे मनुष्यनी सचित्तताने
प्रकट करे छे परन्तु अहिं (पृथ्वीमां) तो चेतनानुं केअ पणु लक्षणे ज्येवामां आवतुं
नथी. ज्येवी स्थितिमां पृथ्वीनी सचेतनता केवी रीते मानी शकय ?

समाधान—जेवी रीते मनुष्यना शरीरमां घाव-डंडा ज्यभम थध लय छे तो
ते स्थानमां मांस आदि रहेतुं नथी. पाछणथी घाव इअध जतां ते मांसथी लराध लय
छे. ज्ये प्रभाणु जोहेवी भाणुनी भूमि पोताना सजातीय अवयवोथी लराध लय छे.

एवं च मनुष्यवद् व्रणस्थानभरणरूपस्य चेतनालक्षणस्य पृथिवीकायेऽपि सत्त्वात् ।

यद्वा-पृथिवी सजीवा, दैनिकघर्षणोपचयसंदर्शनात्, चरणतलवत्, तद्यथा-चरणतलं घृष्यते पुष्यति च, तद्वत् पृथिव्यपि प्रत्यहं घृष्यते, उपचीयते च; तस्मात्तस्याः सजीवत्वम् ।

अथवा-विद्रुमपापाणिरूपा पृथिवी सचेतना, काठिन्ये सत्यापि वृद्ध्यादि-दर्शनात्, शरीरस्थितास्थ्यादिवत् । तद्यथा-शरीरस्थितमस्थ्यादिकं कमठपृष्ठकठिनं सदापि चित्तवदनुभूयमानमुपचयं च गच्छत् संदृश्यते । एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः

इस प्रकार मनुष्य के समान घाव का भरना भी चेतना का एक लक्षण है, और वह पृथ्वी कायमें विद्यमान है ।

अथवा-पृथ्वी सजीव है, क्योंकि उस में प्रतिदिन घिसना और उपचय होना देखा जाता है, पैर के तल की तरह । तात्पर्य यह है कि-जैसे पैर का तलमाग घिसता है और फिर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पृथिवी भी प्रतिदिन घिसती है और भरजाती है । अतः पृथिवी भी सजीव है ।

अथवा-मूंगा, पापाण आदि रूप पृथ्वी सजीव है, क्योंकि उसमें कठिनता होने पर भी वृद्धि आदि देखी जाती है; जैसे शरीर को हड्डी आदि । तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर की हड्डी आदि कल्लुवे का पीठ की माँति कठोर होने पर भी सचित्त माद्वम होती है और उपचय को प्राप्त होती हुई दिखाई देती है, इसी प्रकार मूंगा-शिला

ते प्रभाञ्छे मनुष्यना समान घावनुं लराधं ननुं ते पञ्च अ्येक चेतनानुं लक्षणुं छे, अने ते पृथ्वीकायमां विद्यमान छे.

अथवा-पृथिवी सञ्च छे, कारणुं के तेमां प्रतिदिन घसायुं अने वधयुं ते जेवामां आवे छे, पगना तणीआनी प्रभाञ्छे. तात्पर्यं अ्ये छे के-अेम पगना तणी-आनेा भाग घसाय छे अने इरी पाछा पुष्ट थर्धं न्य छे ते प्रभाञ्छे पृथिवी पञ्च प्रतिदिन घसाय छे अने इरी पाछी लराधं न्य छे, तेथी पृथिवी पञ्च सञ्च छे.

अथवा-मुंगा (परवाणा) पापाणु आदिश्य पृथ्वी सञ्च छे केमके-तेमां कठिनता छेवा छतांय पञ्च वृद्धि वगेरे जेवामां आवे छे, जेवी रीते शरीरना छाडकां आदि. तात्पर्यं अ्ये छे के-जेवी रीते शरीरना छाडकां आदि कायणानी पीठ जेवा कठोर छेवा छतांय पञ्च सचित्त माद्वम पडे छे, अने वृद्धिने प्राप्त थतां छेय तेम देप्राय छे, ते

पृथिव्याः काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिकं प्रत्यक्षं दृश्यते तस्मात्तस्याः सचेतनत्वम् ।

अथ च—विद्रुमद्यात्मिका पृथिवी सचित्ता, छेदादौ तत्सजातीयधातुत्पत्ति-दर्शनात्, अर्शोऽङ्कुरवत् । तथाथा—अर्शसोऽङ्कुरे छिन्नेऽपि पुनस्तत्समान एवाङ्कुरः प्रादुर्भवति, एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः खन्यादौ छेदेऽपि तत्सजातीय-धातुभिस्तद्रिक्तभागः परिपूर्यते, तस्मात् सिद्धं पृथिव्याः सचित्तत्वम् ।

किञ्च — यथा सास्नात्रिपाणाद्यवयवसंघातानां गोमहिष्यादिशरीराणां छिन्न-भिन्नो—त्क्षिप्त—स्पृष्ट—दृष्ट—द्रव्यत्वेन जीवशरीरत्वं, तथैव पृथिव्यादीनां प्रत्यक्षदृष्टं

आदिरूप पृथ्वी में, कठिनता होने पर वृद्धि आदि प्रत्यक्ष दिखाई देता है । इस कारण पृथिवी सचित्त है ।

अथवा—मूंगा आदि पृथ्वी सचित्त है, क्यों कि उसका छेदन होने पर वहाँ उसी की सजातीय धातु उत्पन्न होती है, अर्श (मस्ता) के अंकुर के समान, जैसे अर्श के अंकुर एकवार काट देने पर भी फिर वहाँ उसी जाति के अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मूंगा—शिला आदि रूप पृथिवी का खान आदि में छेदन कर देने पर भी उसी की सजातीय धातुओं से यह खाली स्थान भर जाता है, अतः पृथिवी की सचित्तता सिद्ध हुई ।

और भी लीजिए—जैसे सास्ना (गायके गले में लटकने वाली चमडी) सींग आदि अवयवों का समुदायरूप गाय, भैंस आदि के शरीर छिन्न, भिन्न, उत्क्षिप्त, स्पृष्ट, दृष्ट और द्रव्यत्व के कारण जीव के शरीर है, इसी प्रकार पृथिवी आदि में प्रत्यक्ष से

प्रमाणे मूंगा (परवाणी) शिला आदि इय पृथ्वीमां कठिनता होवा छतांय पणु वृद्धि आदि प्रत्यक्ष जेवामां आवे छे, आ कारणुथी पृथ्वी सचित्त छे.

अथवा—मूंगा (परवाणी) आदि पृथ्वी सचित्त छे. केभके—तेनुं छेदन थवाथी त्यां तेनी सजातीय धातु, उत्पन्न थाय छे, अर्श (मस्ता)ना अंकुर प्रमाणे, जेभ अर्शना अंकुर अेकवार कापी नांभवा छतांय पणु इरीथी त्यां ते नतिने अंकुर उत्पन्न थाय छे, ते प्रमाणे मूंगा—शिला आदिइय पृथिवतुं भाणु आदिमां छेदन इरी देवा छतांय पणु तेनी सजातीय धातुओथी ते भाली स्थान भरार्थ नय छे, ते कारणुथी पृथ्वीनी सचित्तता सिद्ध थछ.

भीनुं पणु प्रमाणे लछ्छे, जेभ सास्ना (गायना गणांमां लटकवावाणी आभडी) सींग आदि अवयवोना समुदायइय—गाय, भेंस आदिना शरीर छिन्न, भिन्न, उत्क्षिप्त, स्पृष्ट, दृष्ट, अने द्रव्यत्वना कारणुथी अचनुं शरीर छे, ते प्रमाणे पृथ्वी आदिमां प्रत्यक्ष

छिन्नत्वादिकमपलपितुं न शक्यते, तस्मात्पृथिव्यादीनामपि जीवशरीरत्वं सिद्धयति । जीवशरीरत्वेन निरूपितत्वाच्च पृथिव्यादीनामपि करचरणसंघातानामिव कदाचिच्चैतन्यं सिद्धयति, नतु सर्वथा शाश्वतिकनिर्जीवत्वं तेषां संभवति, कदाचिदचित्तत्वमपि शस्रोपहतत्वादेव भवति करचरणादिवदिति ।

पृथिव्याः सचित्तत्वेऽनेकजीवाधिष्ठितत्वे चागमोऽपि प्रमाणम् । तथाहि—
“पृथ्वी चित्तमंतमक्त्वाया अणेगजीवा पुदोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणणं” (दश. ४ अ.)

पृथिवी चित्तवती=सजीवा-आख्याता=भगवता कथिता अनेकजीवा=

दिखाई देने वाली छिन्नता आदि का अपलाप नहीं किया जा सकता, अतः पृथिवी आदि जीव के शरीर हैं, इस प्रकारका निरूपण करने से हाथ पैर की तरह उन में भी किसी समय चैतन्य का अस्तित्व सिद्ध होता है, उनकी सदैव और सर्वथा निर्जीवता सिद्ध नहीं हो सकती । पृथिवी आदि कदाचित् निर्जीव होती है सो उसका कारण शस्त्र का उपघात है । शस्त्र के प्रयोग से जैसे हाथ-पैर आदि अवयव निर्जीव हो जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी भी निर्जीव हो जाती है ।

पृथ्वी सचित्त है और अनेक जीवों से अधिष्ठित है, इस विषय में आगमप्रमाण भी है वह इस प्रकार—“पृथ्वी सचित्त कही गई है उसमें अनेक जीव हैं और उन सब की सत्ता पृथक्-पृथक् है,—शस्त्रपरिणत पृथ्वी को छोड़कर ” (दश. ४. अ.)

अर्थात्—पृथ्वी सजीव है, ऐसा भगवानने कहा है । उस में अनेक एकेन्द्रिय जीव हैं ।

हेभाळ आवे तेवी छिन्नता आदिने अपलाप (छती वस्तु हेभाय ते ना कडेवी के नथी हेभाती) करी शकाशे नहि, जे भाटे पृथ्वी आदि पणु लवतुं शरीर सिद्ध थाय छे. पृथ्वी आदि लवनां शरीर छे. जे प्रकारतुं निरूपणु करवाथी हाथ-पगनी प्रमाणे तेभां पणु केळी समय चैतन्यतुं अस्तित्व सिद्ध थाय छे. तेनी कुमेशां अने सर्वथा निर्जीवता सिद्ध थर् शकती नथी. पृथ्वी आदि कदाचित् निर्जीव होय छे, तो तेतुं करणु शस्त्रने उपघात छे. (इधिआरथी कपालुं-पोदातुं ते छे) शस्त्रना प्रयोगथी जेभ हाथ-पग अवयव निर्जीव थर् जाय छे, ते प्रमाणे पृथ्वी पणु निर्जीव थर् जाय छे.

पृथ्वी सचित्त छे. अने अनेक लवोथी अधिष्ठित छे. आ विषयभां आगम प्रमाणु पणु छे. ते आ प्रमाणुः—

“पृथ्वी सचित्त कडेवाभां आवी छे, तेभां अनेक लव छे, अने ते सर्वनी सत्ता पृथक्-पृथक् छे; शस्त्रपरिणत पृथ्वीने ललने.” (दशवैकालिक, ४-अ)

अर्थात्—पृथ्वी सलव छे; जेकुं भगवाने कहुं छे. तेभां अनेक एकेन्द्रिय लव छे.

अनेके=बहवो जीवा एकेन्द्रिया यस्यां सा तथोक्ता, पृथक् सत्त्वा=पृथक् पृथग्भूता अङ्गलासंख्येयभागमात्रशरीरावगाहनामाश्रित्य विभिन्नरूपेण स्थिताः सत्त्वाः=स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा यस्यां सा तथोक्ता 'आख्याता' इति पूर्वोक्तिन संबन्धः ।

ननु तर्हि तथाभूतायां सचित्तायां पृथिव्यां गमनागमनादिक्रियां कुर्वतां संयतानामर्हिसाव्रतस्य संरक्षणं कथं भवति प्रत्युतावश्यकरणीयोच्चार-प्रस्रवणादिक्रियया हिंसव भवति, तस्मादर्हिसाव्रतपालनं वन्ध्यापुत्रपालनवद-संभवम् ?—इत्यत आह—'अन्नत्थ सत्यपरिणएणं' इति, शस्त्रपरिणताया अन्यत्र, शस्त्रपरिणतां पृथिवीं वर्जयित्वाऽन्या पृथिवी सजीवा । शस्यते=र्हिस्यते प्राणिगणोऽनेनेति शस्त्रं । यद् यस्य विनाशकारणं तत्तस्य शस्त्रमित्यर्थः । तत् द्विविधं द्रव्यभाव-वे सब जीव अंगुल के असंख्यातवें भागकी शरीर—अवगाहनावाले भिन्न-भिन्न रूप में स्थित हैं । यहाँ सत्त्व का अर्थ एकेन्द्रिय जीव समझना चाहिए ।

शङ्का—पृथ्वी अगर सचित्त है तो सचित्त पृथ्वी पर गमन—आगमन आदि क्रिया करने वाले साधुओं का अर्हिसाव्रत कैसे स्थिर रह सकता है ? प्रत्युत मल—मूत्र आदि का त्याग अनिवार्य है और इस से हिंसा होना भी अनिवार्य है । एसी स्थिति में अर्हिसा का पालन करना वन्ध्या—पुत्र का पालन करने के समान असंभव है ।

समाधान—शास्त्र में कहा है—'अन्नत्थ सत्यपरिणएणं' अर्थात् शस्त्र-परिणत पृथ्वी को छोड़कर दूसरी पृथ्वी सचित्त है । जिस के द्वारा प्राणिगण का हनन हो उसे शस्त्र कहते हैं । तात्पर्य यह है कि जो जिस के विनाश का कारण है, वह उस

ते सर्व एव अंगुलना असंख्यातभा लागनी शरीर—अवगाहनावाणा भिन्न-भिन्न रूपमां स्थित छे. अर्हि सत्त्वनेो अर्थ एकेन्द्रिय एव समज्वेो जेधं जे.

शङ्का—पृथिवी अगर सचित्त छे तो सचित्त पृथ्वी पर जवा आववानी क्रिया करवावाणा साधुज्जेनुं अर्हिसाव्रत स्थिर डेवी रीते रही सके छे ? उलटुं मल-मूत्र आदिनेो त्याग अनिवार्यं छे, तेथी हिंसा थवी पण्य अनिवार्यं छे. जेवी स्थितिमां अर्हिसानुं पालन करवुं ते वन्ध्यापुत्रना पालन करवा समान असंभव छे.

समाधान—शास्त्रमां कथुं छे डे:- 'अन्नत्थ सत्यपरिणएणं' अर्थात् शस्त्र-परिणत पृथ्वीने त्यल जील पृथ्वी सचित्त छे. जेना द्वारा प्राणिगणनुं हनन (नाश) थाय तेने शस्त्र कडे छे. तात्पर्यं जे छे डे-जे जेना विनाशनुं करवु छे ते तेना भाटे शस्त्र छे.

भेदात् । तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकायपरकायतदुभयलक्षणम् । तत्र स्वकायशस्त्रं पृथिव्याः पृथिव्येव यथा—कृष्णामृत्तिकायाः शुक्रमृत्तिकेत्यादि । परकायशस्त्रं जलाग्निगोमय-चरणशकटचक्रादि । उभयकायशस्त्रं जलादिमिश्रमृत्तिका । एवं च शस्त्रपरिणतायाः पृथिव्या अचित्ततया न तत्रोच्चारप्रवृत्त्यादिक्रियया मुनीनामर्हिसात्रतत्सतिः ।

(२) प्ररूपणाद्वारम्—

पृथिवीजीवा द्विविधाः सूक्ष्मवादरभेदात् । सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्माः, वादरनामकर्मोदयाद् वादराः, न तु वादरामलकवादापेक्षिकं सूक्ष्मत्वं वादरत्वं च ।

के लिए शस्त्र है । शस्त्र के दो भेद हैं—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र । स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप द्रव्य-शस्त्र है । पृथ्वी का शस्त्र पृथ्वी-स्वकायशस्त्र है जैसे काली मिट्टी का शस्त्र सफेद मिट्टी है । परकायशस्त्र जैसे—जल, अग्नि, गोबर, चरण (पग), शकट (गाड़ी) का पैया आदि । जल आदि से मिली हुई मृत्तिका उभयकायशस्त्र है । इस प्रकार शस्त्र से परिणत पृथ्वी अचित्त हो जाती है, अत एव उस पर मल-मूत्र आदि त्यागने वाले मुनियों के अर्हिसात्र में कोई क्षति नहीं पहुँचती ।

(२) प्ररूपणा-द्वार-

पृथ्वी के सूक्ष्म और वादर के भेदसे दो प्रकार हैं । सूक्ष्मनामकर्म के उदय से सूक्ष्म और वादरनामकर्म के उदय से वादर होते हैं । यहाँ सूक्ष्मता और वादरता वेर और आवळे की तरह सापेक्ष नहीं समझनी चाहिए ।

शस्त्रना जे लेह छे. द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्र, स्वकाय, परकाय अने उलयकायरूप द्रव्यशस्त्र छे. पृथ्वीनु शस्त्र पृथ्वी स्वकाय-शस्त्र छे, जेभ काली माटीनु शस्त्र सफेद माटी छे. परकाय-शस्त्र जेभके जल, अग्नि, छाण, पग, गाडीनु आठ आदि. जल-पाणी आदिथी भजेली माटी उलयकाय-शस्त्र छे. आ प्रभाणु शस्त्रथी परिणत पृथ्वी अचित्त थर्ध जय छे. जेटला माटे तेना पर भण-भूतादि त्याग करवावाणा मुनि-जोना अर्हिसात्रमां केरि डानि पडोच्यती नथी.

(२) प्ररूपणाद्वार-

पृथ्वीकायना एव सूक्ष्म अने वादरना लेहथी जे प्रकारना छे. सूक्ष्मनामकर्मना उदयथी सूक्ष्म अने वादरनामकर्मना उदयथी वादर थाय छे. अर्हि सूक्ष्मता अने वादरता. जेअर अने आंभजानी प्रभाणु सापेक्ष समजवी नहि जेठअ.

तत्र सूक्ष्माः द्विविधाः—पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, ते कज्जलकूपिकावत् सर्वलोक-
व्यापिनः ।

वादरा अपि द्विधा-पर्याप्तापर्याप्तभेदात् । तत्र वादराः पर्याप्ता
अपर्याप्ताश्च लोकस्यैकदेशे पृथिव्यपृष्ठाधोऽधःपाताल-भवन-नकरमस्तरादौ
सन्ति । ते विद्विधाः श्लक्ष्ण-स्वरभेदात् । तत्र श्लक्ष्णा वादरपृथिवी सप्तधाकृष्ण-
नील-लोहित-पीत-शुक्ल-पाण्डु-पनकभेदात् । स्वरवादरपृथिव्यास्तु चत्वारिंशद् (४०)
भेदाः, तथाहि—

(१) शुद्धपृथिवी, (२) शर्करापृथिवी, (३) बालुकापृथिवी, (४) उपलः, (५) शिला,
(६) लवणः, (७) ऊपः (८) अयः, (९) ताम्रः, (१०) त्रपुः, (११) सीसकम्, (१२) रूप्यम्,
(१३) सुवर्णम्, (१४) वज्रः, (१५) हरितालः (१६) हिङ्गुलकः, (१७) मनःशिला,

सूक्ष्म जीव भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । ये जीव काजल की कुप्पी के समान
सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं ।

वादर भी पर्याप्त और अपर्याप्त—दो प्रकार के हैं । ये जीव लोक के एक देश में
हैं । इन के दो भेद हैं—श्लक्ष्ण और स्वर । श्लक्ष्णवादरपृथिवी के सात भेद हैं—कृष्ण नील
लोहित (लाल) पीत शुक्ल पाण्डु और पनक स्वरवादर पृथिवी के चालीस भेद हैं, वे इस
प्रकार—

(१) शुद्ध-पृथिवी, (२) शर्करा-पृथिवी, (३) बालुका-पृथिवी, (४) उपल,
(५) शिला, (६) लवण-नमक, (७) ऊप-क्षार, (८) लोहा, (९) ताम्र, (१०) रागा,
(११) सीसा, (१२) चांदी, (१३) सोना, (१४) वज्र, (१५) हरिताल, (१६) हींगल,

सूक्ष्म जीव पक्षु के प्रकारना छे. पर्याप्त अने अपर्याप्त-जीव के लोकजानी कुप्पीना
समान सम्पूर्ण लोकमां भरला छे.

भादर पक्षु पर्याप्त अने अपर्याप्त जीव के प्रकारना छे. जे जीव लोकना
ज्येक देशमां छे. तेना जे जेह छे. श्लक्ष्ण अने अर, स्वक्ष्ण भादर पृथ्वीना सात
जेह छे. कृष्ण, नील, लोहित (लाल) पीत, शुक्ल, पांडु अने पनक. अर-भादर
पृथ्वीना चालीस जेह छे-ते आ प्रमाणे छे:—

(१) शुद्ध पृथिवी; (२) शर्करा पृथिवी, (३) बालुका पृथिवी, (४) उपल, (५)
शिला, (६) लवण-नमक, (७) ऊप-क्षार, (८) लोहा, (९) ताम्र, (१०) रागा-कलाह,
(११) सीसा, (१२) चांदी, (१३) सोना, (१४) वज्र, (१५) हरिताल, (१६) हींगुल,

(१८) शस्यकः—पारदः, स्वनामख्यातो रत्नविशेषश्च, (१९) अञ्जनं, (२०) प्रवालम्, (२१) अभ्रपटलम्, (२२) अभ्रवालुका (अभ्रकचूर्णम्), (२३) गोमेदकः, (२४) रुचकः, (२५) अङ्कः, (२६) स्फटिकः, (२७) लोहिताक्षः, (२८) मरकतः, (२९) मसारगडः, (३०) भुजमोचकः, (३१) इन्द्रनीलः, (३२) चन्दनम्, (३३) गैरिकम्, (३४) हंसगर्भः, (३५) पुलकः, (३६) सौगन्धिकः, (३७) चन्द्रप्रभः, (३८) वैडूर्यम्, (३९) जलकान्तः, (४०) सूर्यकान्तः। एते च शुद्धपृथिव्यादयः पृथिवीकायिकाः स्वाकरादौ सचित्ता भवन्ति।

गोमय—कचवर—सत्रितृतापादिसंपर्कालु गतचेतना अपि भवन्ति। वादरपृथिव्या यत्रैको जीवस्तत्राऽसंख्यातैर्नियमतो भाव्यम्।

एवमपूतेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिष्वपि विज्ञेयम्। निगोदे तु यत्रैको

(१७) मैनसिल, (१८) शस्यक—पारा, मथवा रत्नविशेष, (१९) अञ्जन, (२०) प्रवाल, (२१) अभ्रपटल, (२२) अभ्रवालुका (अभ्रकचूर्ण), (२३) गोमेद, (२४) रुचक, (२५) अंकरत्न, (२६) स्फटिक, (२७) लोहिताक्ष, (२८) मरकत, (२९) मसारगड, (३०) भुजमोचक, (३१) इन्द्रनील, (३२) चंदन, (३३) गेरू, (३४) हंसगर्भ, (३५) पुलक, (३६) सौगंधिक, (३७) चन्द्रप्रभ—चन्द्रकान्त, (३८) वैडूर्य, (३९) जलकान्त, (४०) सूर्यकान्त। ये शुद्ध पृथिवी आदि चालीस जब अपने आकर (स्नान) में रहते हैं तो सचित होते हैं। गोवर कचरा सूरज की धूप आदि के संपर्क से अचेतन हो जाते हैं। जहाँ वादरपृथ्वीकाय का एक जीव होता है वहाँ असंख्यात जीव नियम से होते हैं।

इसी प्रकार अप, तेज, वायु, और प्रत्येकवनस्पति में भी समझना चाहिए।

(१७) मनशील, (१८) पारे, (१९) सुरभा, (२४) शस्यक, (२५) अंकरत्न, (२६) स्फटिक, (२७) लोहिताक्ष, (२८) मरकत, (२९) मसारगड, (३०) भुजमोचक, (३१) इन्द्रनील, (३२) चन्दन, (३३) गेरू, (३४) हंसगर्भ, (३५) पुलक, (३६) सौगंधिक, (३७) चन्द्रप्रभ—चन्द्रकान्त, (३८) वैडूर्य, (३९) जलकान्त, (४०) सूर्यकान्त। आ शुद्ध पृथ्वी आदि चालीस न्यारे पोतानां आकर-आधुमां रडे छे तो सचित होय छे। छालु, कयरा, सुरजनो तडके वगेरेना संपर्कधी ते अचेतन थर्छ लाय छे। न्यां पादर पृथ्वीकायनो ओक एव होय छे, त्यां असंख्यात एव नियमधी होय छे।

ओ प्रकारे अप, तेज, वायु अने प्रत्येकवनस्पतिमां पणु समजवुं न्छे ओ

નિગોદજીવંસ્ત્ર નિયમતોઽનન્તાઃ ।

વાદરાણાં સૂક્ષ્માણાં ચ પૃથિવીકાયાનાભેતે વક્ષ્યમાણા મેદાઃ સન્તિ,
તત્રોભયોઃ પર્યાપ્તાપર્યાપ્તમેદઃ પ્રાગુક્તઃ, અન્યે મેદા ઉચ્યન્તે-શરીરત્રયા-ઽઙ્ગુલા-
સંસ્થેયભાગશરીર-સેવાર્ત્તસંહનન-મસૂરચન્દ્રસંસ્થાન-કપાયચતુષ્ક-સઞ્જાચતુષ્કા-
ઽઽઘલેશ્યાત્રય-સ્પર્શનેન્દ્રિય-વેદનાકપાયમારણાન્તિકસમુદ્ધાતા-ઽસઞ્જિત્વ-નપુંસક-
વેદ-પર્યાપ્તિચતુષ્ટય-મિથ્યાદર્શના-ઽચક્ષુદર્શના-ઽજ્ઞાન-કાયયોગ-સાકારાનાકારો-
પયોગાઽઽહારાદિપ્રભૃતયઃ । તત્ર વિશેષસ્તુ વાદરપૃથિવીકાયાનાં લેશ્યા આઘાશ્વતસઃ,
શેષં સર્વં સમાનમ્ । અસંસ્થેયાશ્ચ પ્રત્યેકમુખયે ।

નિગોદ મેં જહાં એક જીવ હોતા હૈ વહાં નિયમ સે અનન્ત જીવ હોતે હૈં ।

વાદર ઓર સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોં કે મેદ ઇસ પ્રકાર હૈં-દોનોં કે પર્યાપ્ત ઓર અપર્યાપ્ત મેદ પહેલે કહે જા ચુકે હૈં । અવ અન્ય મેદ કહતે હૈં-ત્રીન શરીર, અંગુલકા અસંસ્થાતવાં ભાગ શરીર, સેવાર્ત્ત સંહનન, મસૂરચન્દ્રસંસ્થાન, ચાર કપાય, ચાર સંજાઈ, પ્રારંભ કી ત્રીન લેશ્યાઈ, સ્પર્શનેન્દ્રિય, વેદના કપાય ઓર મારણાન્તિક સમુદ્ધાત, અસંજીપન, નપુંસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિયોં, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન ત્રીન અજ્ઞાન; કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ । ઇન મેં વિશેષતા ઇતની હી હૈ કિ વાદરપૃથિવી-કાય મેં પહેલે કી ચાર લેશ્યાઈ હોતી હૈં । શેષ સવ બોલ સમાન હૈં । દોનોં હી અસંસ્થાત-અસંસ્થાત હૈં ।

નિગોદમાં ત્યાં એક જીવ હોય છે ત્યાં નિયમથી અનન્ત જીવ હોય છે.

વાદર અને સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોના ભેદ આ પ્રમાણે છે:—બન્નેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત બેઉ ભેદ પ્રથમ કહેવામાં આવ્યા છે. હવે બીજા ભેદ કહે છે-ત્રણ શરીર, અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગ શરીર, સેવાર્ત્ત સંહનન, મસૂર-ચન્દ્ર સંસ્થાન, ચાર કપાય, ચાર સંજાઓ, પ્રારંભની ત્રણ લેશ્યાઓ, સ્પર્શ ઇન્દ્રિય, વેદના કપાય, અને મારણાન્તિક સમુદ્ધાત, અસંજીપણું, નપુંસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિઓ, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન, ત્રણ અજ્ઞાન, કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ. તેમાં વિશેષતા એટલી જ છે કે:-વાદર પૃથિવીકાયમાં પ્રથમની ચાર લેશ્યાઓ હોય છે, બાકી તમામ બોલ સમાન છે. બન્ને જ અસંખ્યાત-અસંખ્યાત છે.

(३) परिमाणद्वारम्—

वादरपर्याप्ताः पृथिवीकायजीवाः सर्वतः स्तोकाः । तदपेक्षया वादराऽपर्याप्ताः असंख्येयगुणाः । तदपेक्षया सूक्ष्माऽपर्याप्ता असंख्येयगुणाः । तदपेक्षया सूक्ष्मपर्याप्ता असंख्येयगुणाः । यदि जवारीधान्यकणममाणपृथिव्यंशाश्रया जीवा एकैकं बहिर्निगत्य पृथक्-पृथक् कपोतमितं कायं कुर्युस्तर्हि तेषां लक्षयोजनममाणजम्बूद्वीपे समावेशोऽपि न संभवति ।

ननु जवारीधान्यकणमात्रे पृथिव्यंशे कथमियन्तो जीवास्तिष्ठन्ति ? इति चेत् उच्यते—यथा सहस्रौषधिसंमिश्रणनिष्पन्नसहस्रपाकतैलस्याल्पीयसि

(३) परिमाणद्वारम्—

पर्याप्त वादर पृथ्वीकाय के जीव सब से थोड़े हैं । उन की अपेक्षा वादर अपर्याप्त असंख्यात गुना अधिक है । उन से सूक्ष्म अपर्याप्त अपंख्येय गुना है । उन से सूक्ष्म पर्याप्त असंख्यात गुना है । अगर जवार नामक धान्य के कण के बराबर ध्वी के अंश में रहने वाले जीव एक-एक करके बाहर निकल जाएँ और वे सब अपना शरीर कवूतर के शरीर के बराबर बनालें तो एक लाख योजन विस्तार वाले जम्बूद्वीप में उनका समावेश नहीं हो सकता ।

शङ्का—जवार के एक दाने के बराबर पृथिवी के अंश में इतने अधिक जीव किस प्रकार रह सकते हैं ?

समाधान—जैसे हजार औषधों के सम्मिश्रण से बने हुए सहस्र-पाक तैल के

(३) परिमाणद्वारम्—

पर्याप्त वादर पृथ्वीकायना एव सौथी श्रेयाः छे; तेनी अपेक्षा वादर अपर्याप्त असंख्यात गण्ठा अधिक छे. तेनाथी सूक्ष्म अपर्याप्त असंख्यात गण्ठा छे, तेनाथी सूक्ष्म पर्याप्त असंख्यात गण्ठा छे. अगर लुवार नामना धान्यना कण्ठनी अराअर पृथ्वीमां रडेवावाणा एव ओक-ओक थर्धने अहार निकणे अने ते सर्वं पोतानुं शरीर कवूतर-पारेवानां शरीर अराअर अनावी लीओ तो ओक लाभ योजनना विस्तारवाणा जम्बू द्वीपमां तेना समावेश थर्ध शके नहि.

शङ्का—लुवारना ओक हाण्ठानी अराअर पृथिवीमां ओटला अधिक एव डेवी रीते रही शके छे ?

समाधान—जेवी रीते हजार औषधाना सम्मिश्रण्ठी अनेला सहस्र-पाक तैलना

સૂચ્યપ્રલગ્નવિન્દુમાત્રેઽપિ સહસ્રૌપધિસમાવેશસ્તથૈવ પૃથિવીકાયજીવાસ્તાવન્માત્રે
પૃથિવ્યંશે તિષ્ઠન્તીતિ । યથા વા સહસ્રૌપધિસંમિશ્રણે કૃતે ચૂર્ણીકૃત્ય પરિપિપ્ય
સ્વસ્વસ્વકણપ્રમાણગુટિકા ક્રિયતે, તત્ર પ્રત્યેકગુટિકાયાં સહસ્રૌપધિસમાવેશો
દ્રશ્યતે, તદ્વજ્જવારીધાન્યકણમાત્રેઽલ્પીયસિ પૃથિવ્યંશે પૃથિવીકાયજીવાસ્તિષ્ઠન્તીતિ
નૈતચિત્રમ્ ।

યદિ લોકાકાશસ્ય પ્રત્યેકપ્રદેશે, એકૈકઃ પૃથિવીકાયજીવઃ સ્થાપ્યતે તદા
અસંખ્યાતા લોકા પૂરિતા ભવેયુઃ । પૃથિવીકાયજીવાનાં પરિમાણં તાવદસ્તિ, યદિ
લોકા અસંખ્યાતા ભવેયુઃ, તેપામસંખ્યાતલોકાનાં યાવન્તઃ પ્રદેશાઃ ભવેયુસ્તાવન્તઃ
પૃથિવીકાયજીવાઃ સન્તીતિ વોધ્યમ્ ।

छोटे से, सूई को नोक पर लगे हुए एक बूंद में भी हजार औषधों का समावेश हो जाता है, इसी प्रकार जवार के एक दाने के बराबर पृथ्वी के अंश में इतने जीव रहते हैं। अथवा जैसे एक हजार औषधों को मिला दिया जाय और उनका चूर्ण बना लिया जाय, खूब पीसा जाय और उससे खसखस के दाने के बराबर गोली बना ली जाय तो उस प्रत्येक गोली में हजार औषधियों का समावेश जान पड़ता है। इस प्रकार जवार बराबर पृथ्वी के अंश में अगर इतने जीव रहते हैं तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ?

अगर लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में, एक-एक जीव स्थापित किया जाय तो असंख्यात लोक भरजाएँ। पृथिवीकाय के जीवों का परिमाण इतना है कि-यदि लोक असंख्यात हों और उन असंख्यात लोकों के जितने प्रदेश हों, उतने ही पृथिवीकाय जीव हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए।

નાના એવા સોઠની અણી પર લાગેલા એક ટીપામાં પણ હજાર ઔષધોનો સમાવેશ થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે જુવારના એક દાણાની બરાબર પૃથ્વીમાં એટલા જીવ રહે છે. અથવા જેવી રીતે-એક હજાર ઔષધોને મેળવવામાં આવે અને તેનું ચૂર્ણ બનાવી લેવાય, અને તેને ખૂબ વાટવામાં આવે અને તેમાંથી ખસ-ખસના દાણા બરાબર ગોળી બનાવવામાં આવે તો પ્રત્યેક ગોળીમાં હજાર ઔષધીઓનો સમાવેશ થયેલો છે, એમ જાણી શકાય છે. એ પ્રમાણે જુવાર બરાબર પૃથ્વીમાં એટલા જીવ રહે છે તો તેમાં આશ્ચર્યની વાત શું હોઈ શકે ?

અથવા લોકાકાશના એક એક પ્રદેશમાં, એક-એક જીવ સ્થાપિત કરવામાં આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ જાય. પૃથિવીકાયના જીવોનું પરિમાણ એટલું છે-જે લોક અસંખ્યાત હોય અને તે અસંખ્યાત લોકના જેટલા પ્રદેશો હોય એટલા જ પૃથિવીકાય જીવ છે. એમ સમજ લેવું જોઈએ.

ये पृथिवीकायहिंसायां लज्जमानास्ते—अनगाराः, ये तु तत्र प्रवृत्तास्ते द्रव्यलिङ्गिनः, इति बोधयितुमाह—‘लज्जमाणाः’ इत्यादि ।

एके=अन्ये, लज्जमानाः=पृथिवीकायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितहृदयतया संकोचमापद्यमानाः पृथक्=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधि-मनःपर्यय-केवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति, पृथक्-पश्य ।

इमे सूक्ष्मवादरपृथिवीकायारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैः पृथिवीकायारम्भपस्तियागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनः=अन्ये तु—‘वयमगाराः साधवः स्मः’ इति साभिमानं मयदमानाः ‘वयमेव पृथिवीकायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः’ इति व्यर्थ

जो पुरुष पृथिवीकाय की हिंसा से विरत होते हैं, वेही अनगार हैं । जो उस हिंसा में प्रवृत्त हैं, वे द्रव्यलिङ्गी हैं । यह बतलाने के लिए कहते हैं—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

कोई—कोई पुरुष पृथिवीकाय के आरम्भ में अत्यन्त करुणाशील होने के कारण, द्रवित हृदय वाले होने से, संकोच—वृत्ति करते हैं, उन में से कोई—कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी, तथा कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अनगार हैं, इस प्रकार पृथक्—पृथक्भाव से देखो । अर्थात् उन पुरुषों को देखो जो सूक्ष्म और वादर पृथिवीकाय का आरम्भ करने में लज्जा करते हैं, व्रस्त होते हैं, और तीनकरण, तीनयोग से पृथिवीकाय के आरम्भ के त्यागी हैं ।

और कोई—कोई ‘हम साधु हैं । ऐसा अभिमान के साथ कहते हुए ‘हम ही पृथिवीकाय की रक्षा में तत्पर हैं और महाव्रतधारी हैं’ । इस प्रकार वृथा प्रलाप

वे पुरुष पृथिवीकायनी हिंसाधी विरत—निवृत्त थाय छे तेन्य अणुगार छे. मुनि छे. वे हिंसाभां प्रवृत्त छे ते द्रव्यलिङ्गी छे. ते अताववा भाटे कडे छे—‘लज्जमाणा’ इत्यादि. डोर्-डोर् पुरुष पृथिवीकायना आरंभभां अत्यन्त कर्षुणाशील होवाना करखे द्रवित हृदयवाणा होवाधी संकोच—वृत्ति करे छे. तेभांथी डोर्-डोर् प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी अने केवलज्ञानी अने डोर् परोक्षज्ञानी भावितात्मा अणुगार छे. पृथक्=पृथक्भावधी लुब्धे, अर्थात् ते पुरुषेने लुब्धे के वे सूक्ष्म अने वादर पृथिवीकायने आरंभ करवाभां लज्जा करे छे—शरमाय छे—त्रास पाये छे. अने तणु करणु तणु योगधी पृथिवीकायना आरंभना त्यागी छे. अने डोर्-डोर् ‘अमे साधु छीये’ जेवा अलिमाननी साथे कडे छे के—‘अमे पणु पृथिवीकायनी रक्षाभां तत्पर छीये, अने महाव्रतधारी छीये.’ आ प्रमाणे वृथा—

યગ્નલગ્નવિન્દુમાત્રેઽપિ સહસ્રૌપધિસમાવેશસ્તથૈવ પૃથિવીકાયજીવાસ્તાવન્માત્રે
વ્યંશે તિષ્ઠન્તીતિ । યથા વા સહસ્રૌપધિસંમિશ્રણે કૃતે ચૂર્ણીકૃત્ય પરિપિષ્ય
ખસકળમમાણગુટિકા ક્રિયતે, તત્ર પ્રત્યેકગુટિકાયાં સહસ્રૌપધિસમાવેશો
યતે, તદ્વજ્જવારીધાન્યકળમાત્રેઽલ્પીયસિ પૃથિવ્યંશે પૃથિવીકાયજીવાસ્તિષ્ઠન્તીતિ
ચિત્રમ્ ।

યદિ લોકાકાશસ્ય પ્રત્યેકપ્રદેશે, એકૈકઃ પૃથિવીકાયજીવઃ સ્થાપ્યતે તદા
સંખ્યાતા લોકા પૂરિતા ભવેયુઃ । પૃથિવીકાયજીવાનાં પરિમાણં તાવદસ્તિ, યદિ
કા અસંખ્યાતા ભવેયુઃ, તેપામસંખ્યાતલોકાનાં યાવન્તઃ પ્રદેશાઃ ભવેયુસ્તાવન્તઃ
થેવીકાયજીવાઃ સન્તીતિ વોધ્યમ્ ।

ટે સે, સૂઈ કો નોક પર લગે હુએ એક વૂંદ મેં મો હજાર ઔપધોં કા સમાવેશ હો જાતા
હસી પ્રકાર જવાર કે એક દાને કે વરાવર પૃથ્વી કે અંશ મેં હતને જીવ રહતે હૈં । અથવા
એ એક હજાર ઔપધોં કો મિલા દિયા જાય ઔર ઁનકા ચૂર્ણ વના ઝિયા જાય, ઁવૂ વ પીસા
ય ઔર ઁસસે ઁસઁસઁસ કે દાને કે વરાવર ગોલી વના લી જાય તો ઁસ પ્રત્યેક ગોલી મેં
જાર ઔપધિયોં કા સમાવેશ જાન પડતા હૈ । હસ પ્રકાર જવાર વરાવર પૃથ્વી કે અશ મેં
ગર હતને જીવ રહતે હૈં તો હસમેં આશ્ચર્ય કી કૌન સી વાત હૈ ?

અગર લોકાકાશ કે એક-એક પ્રદેશ મેં, એક-એક જીવ સ્થાપિત કિયા જાય તો
સંખ્યાત લોક ભરજાઈ । પૃથિવીકાય કે જીવોં કા પરિમાણ હતના હૈ કિ-યદિ લોક
સંખ્યાત હોં ઔર ઁન અસંખ્યાત લોકોં કે જિતને પ્રદેશ હોં, ઁતને હી પૃથિવીકાય જીવ હૈં,
ઁસા સમજ લેના ચાહિપ્ ।

ાના એવા સોઈની અણી પર લાગેલા એક ટીપાંમાં પણ હબર ઔપધોનો સમાવેશ
ઈ નય છે. એ પ્રમાણે જુવારના એક દાણાની બરાબર પૃથ્વીમાં એટલા ઔવ રહે
છે. અથવા જેવી રીતે-એક હબર ઔપધોને મેળવવામાં આવે અને તેનું ચૂર્ણ બનાવી
વેવાય, અને તેને ખૂણ વાટવામાં આવે અને તેમાંથી ખસ-ખસના દાણા બરાબર
ગોળી બનાવવામાં આવે તો પ્રત્યેક ગોળીમાં હબર ઔપધીઓનો સમાવેશ થયેલા છે,
એમ જાણી શકાય છે. એ પ્રમાણે જુવાર બરાબર પૃથ્વીમાં એટલા ઔવ રહે છે તો
તેમાં આશ્ચર્યની વાત શું હોઈ શકે ?

અથવા લોકાકાશના એક એક પ્રદેશમાં, એક-એક ઔવ સ્થાપિત કરવામાં
આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ નય. પૃથિવીકાયના ઔવોનું પરિણામ એટલું છે-
જે લોક અસંખ્યાત હોય અને તે અસંખ્યાત લોકના જેટલા પ્રદેશો હોય એટલા જ
પૃથિવીકાય ઔવ છે. એમ સમજી લેવું એઈએ.

ये पृथिवीकायहिंसायां लज्जमानास्ते-अनगाराः, ये तु तत्र प्रवृत्तास्ते
द्रव्यलिङ्गिनः, इति बोधयितुमाह- 'लज्जमाणाः' इत्यादि ।

एके=अन्ये, लज्जमानाः=पृथिवीकायस्वारम्भे परमकरुणया 'द्रवितहृदयतया
संकोचमापद्यमानाः पृथक्=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽप्यधि-मनःपर्यय-केवलिनः, केचित्
परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति, पृथक्-पश्य ।

इमे सूक्ष्मवादरपृथिवीकायारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैः
पृथिवीकायारम्भपस्तियागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनः=अन्ये तु- 'वयमगाराः साधवः स्मः' इति साभिमानं
भवदमानाः 'वयमेव पृथिवीकायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति व्यर्थ

जो पुरुष पृथिवीकाय की हिंसा से विरत होते हैं, वेही अनगार हैं । जो उस हिंसा में
प्रवृत्त हैं, वे द्रव्यलिङ्गी हैं । यह बतलाने के लिए कहते हैं- 'लज्जमाणा' इत्यादि ।

कोई-कोई पुरुष पृथिवीकाय के आरम्भ में अत्यन्त करुणाशील होने के कारण, द्रवित
हृदय वाले होने से, संकोच-वृत्ति करते हैं, उन में से कोई-कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात्
अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी, तथा कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अनगार हैं, इस
प्रकार पृथक्-पृथक्भाव से देखो । अर्थात् उन पुरुषों को देखो जो सूक्ष्म और वादर पृथ्वीकाय
का आरम्भ करने में लज्जा करते हैं, व्रस्त होते हैं, और तीनकरण, तीनयोग से पृथिवीकाय
के आरम्भ के त्यागी हैं ।

और कोई-कोई 'हम साधु हैं । ऐसा अभिमान के साथ कहते हुए 'हम ही
पृथिवीकाय की रक्षा में तत्पर हैं और महाव्रतधारी हैं' । इस प्रकार बृथा प्रलाप

वे पुरुष पृथिवीकायनी हिंसाधी विरत-निवृत्त थाय छे तेज् अणुगार छे. मुनि
छे. वे हिंसामां प्रवृत्त छे ते द्रव्यलिङ्गी छे. ते अताववा भाटे कडे छे- 'लज्जमाणा' इत्यादि.
कोई-कोई पुरुष पृथिवीकायना आरंभमां अत्यन्त करुणाशील होवाना कारणे
द्रवित हृदयवाणा होवाथी संकोच-वृत्ति करे छे. तेमांथी कोई-कोई प्रत्यक्षज्ञानी
अर्थात् अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी अने केवलज्ञानी अने कोई परोक्षज्ञानी भावि-
तात्मा अणुगार छे. पृथक्=पृथक्भावथी अणुयो, अर्थात् ते पुरुषोने अणुयो के वे सूक्ष्म
अने वादर पृथ्वीकायना आरंभ करवामां लज्जा करे छे-शरभाय छे-नास पाये छे.
अने त्रषु करण त्रषु योगथी पृथ्वीकायना आरंभना त्यागी छे.

अने कोई-कोई 'अमे साधु छीये' अथवा अभिमाननी साथे कडे छे के- 'अमे
पणु पृथ्वीकायनी रक्षामां तत्पर छीये, अने महाव्रतधारी छीये.' आ प्रभाणु वृथा-

મૂચ્ચપ્રલગ્નવિન્દુમાત્રેऽપિ સહસ્રોપધિસમાવેશસ્તથૈવ પૃથિવીકાયજીવાસ્તાવન્માત્રે
 પૃથિવ્યંશે તિષ્ઠન્તીતિ । યથા વા સહસ્રોપધિસંમિશ્રણે કૃતે ચૂર્ણીકૃત્ય પરિપિપ્ય
 સ્વસ્વસ્વકણપ્રમાણગુટિકા ક્રિયતે, તત્ર પ્રત્યેકગુટિકાયાં સહસ્રોપધિસમાવેશો
 દૃશ્યતે, તદ્વજ્રવારીધાન્યકણમાત્રેऽલ્પીયસિ પૃથિવ્યંશે પૃથિવીકાયજીવાસ્તિષ્ઠન્તીતિ
 નૈતચિત્રમ્ ।

યદિ લોકાકાશસ્ય પ્રત્યેકપ્રદેશે, એકૈકઃ પૃથિવીકાયજીવઃ સ્થાપ્યતે તદા
 અસંખ્યાતા લોકા પૂરિતા ભવેયુઃ । પૃથિવીકાયજીવાનાં પરિમાણં તાવદસ્તિ, યદિ
 લોકા અસંખ્યાતા ભવેયુઃ, તેપામસંખ્યાતલોકાનાં યાવન્તઃ પ્રદેશાઃ ભવેયુસ્તાવન્તઃ
 પૃથિવીકાયજીવાઃ સન્તીતિ વોધ્યમ્ ।

છોટે સે, સૂઈ કો નોક પર લગે હુએ એક વૂંદ મેં મી હજાર ઔપધોં કા સમાવેશ હો જાતા
 હૈ, ઇસી પ્રકાર જવાર કે એક દાને કે બરાવર પૃથ્વી કે અંશ મેં ઇતને જીવ રહતે હૈં । અથવા
 જૈસે એક હજાર ઔપધોં કો મિલા દિયા જાય ઔર ઉનકા ચૂર્ણ બના ઝિયા જાય, સ્વૂં પીસા
 જાય ઔર ઉસસે સ્વસ્વસ્વ કે દાને કે બરાવર ગોલી બના લી જાય તો ઉસ પ્રત્યેક ગોલી મેં
 હજાર ઔપધિયોં કા સમાવેશ જાન પડતા હૈ । ઇસ પ્રકાર જવાર બરાવર પૃથ્વી કે અંશ મેં
 અગર ઇતને જીવ રહતે હૈં તો ઇસમેં આશ્ચર્ય કી કૌન સી વાત હૈ ?

અગર લોકાકાશ કે એક-એક પ્રદેશ મેં, એક-એક જીવ સ્થાપિત ક્રિયા જાય તો
 અસંખ્યાત લોક ભરજાઈં । પૃથિવીકાય કે જીવોં કા પરિમાણ ઇતના હૈ કિ-યદિ લોક
 અસંખ્યાત હોં ઔર ઉન અસંખ્યાત લોકોં કે જિતને પ્રદેશ હોં, ઉતને હી પૃથિવીકાય જીવ હૈં,
 એસા સમજ લેના યાહિય ।

નાના એવા સોઈની અણી પર લાગેલા એક ટીપામાં પણ હબ્લર ઔપધોના સમાવેશ
 થઈ જાય છે. એ પ્રમાણે જુવારના એક દાણાની બરાબર પૃથ્વીમાં એટલા જીવ રહે
 છે. અથવા જેવી રીતે-એક હબ્લર ઔપધોને ત્રણવવામાં આવે અને તેનું ચૂર્ણ બનાવી
 લેવાય, અને તેને ખૂબ વાટવામાં આવે અને તેમાંથી ખસ-ખસના દાણા બરાબર
 ગોળી બનાવવામાં આવે તો પ્રત્યેક ગોળીમાં હબ્લર ઔપધીઓનો સમાવેશ થયેલો છે,
 એમ જાણી શકાય છે. એ પ્રમાણે જુવાર બરાબર પૃથ્વીમાં એટલા જીવ રહે છે તો
 તેમાં આશ્ચર્યની વાત શું હોઈ શકે ?

અથવા લોકાકાશના એક એક પ્રદેશમાં, એક-એક જીવ સ્થાપિત કરવામાં
 આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ જાય. પૃથિવીકાયના જીવોનું પરિમાણ એટલું છે-
 જે લોક અસંખ્યાત હોય અને તે અસંખ્યાત લોકના જેટલા પ્રદેશો હોય એટલા જ
 પૃથિવીકાય જીવ છે. એમ સમજ લેવું જોઈ એ.

रूपं लोकं सर्वमेव विद्दिसन्तीत्याह—'पृथ्वीसत्यं'—इत्यादि ।

पृथिवीशस्त्रम्=पृथिव्युपमर्दकं शस्त्रम्, शस्यते=हिंस्यते अनेनेति शस्त्रम्,
तद् द्विविधं—द्रव्य-भाव-भेदात् । तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकायपरकायतदुभयरूपम् ।
भावशस्त्रं=दुष्प्रयुक्तमनोवाक्यायलक्षणम्, समारम्भाणाः=पृथिवीकायं प्रति
व्यापारयन्तः, अन्यान पृथिवीकायभिन्नान् अनेकरूपान् अप्रकायादीन् स्थावरान्,
द्वीन्द्रियादीन् प्रसांश्च विद्दिसन्ति ।

(६) उपभोगद्वारम्—

जगति खलु बहवो द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा—' वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः

की हिंसा करता है, यह बतलाने के लिए कहते हैं—'पृथ्वीसत्यं' इत्यादि ।

पृथिवीशस्त्रका अर्थ है—पृथिवीकाय की हिंसा करनेवाला शस्त्र । जिस से हिंसा हो वह शस्त्र कहलाता है । शस्त्र दो प्रकार का है—(१) द्रव्यशस्त्र और (२) भावशस्त्र । स्वकाय, परकाय और उभय-स्वपर-कायरूपसे द्रव्यशस्त्र तीन प्रकार का है । मन वचन और कायका दुष्प्रयोग करना भावशस्त्र है ।

पृथ्वीकाय का आरंभ करनेवाले, पृथ्वीकाय से भिन्न अनेक अप्रकाय आदि स्थावर जीवों की, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की भी हिंसा करते हैं ।

(६) उपभोगद्वार—

संसार में बहुत से द्रव्यलिङ्गी हैं । जैसे—' हम पंचमहाव्रतधारी हैं, सब आरंभ

ये भताववा भाटे कडे छे :—'पृथ्वीसत्यं' इत्यादि.

पृथ्वीशस्त्रने अर्थ छे—पृथ्वीकायनी हिंसा करवावाणां शस्त्रो जेनाथी हिंसा थर्छ शके ते शस्त्र कडेवाय छे. शस्त्र जे प्रकारना छे. (१) द्रव्य शस्त्र अने (२) भाव-शस्त्र-स्वकाय, परकाय, अने उलय-स्व-परकायरूप द्रव्यशस्त्र त्रषु प्रकारना छे. मन, वचन अने कायना दुष्प्रयोग करवा ते भावशस्त्र छे.

पृथ्वीकायने आरंभ करवावाणा, पृथ्वीकायथी भिन्न अनेक अप्रकाय आदि स्थावर जीवोनी तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवोनी पषु हिंसा करे छे.

(६) उपभोग-द्वार-

संसारमां धणुअ द्रव्यलिङ्गी साधु छे. जेवी रीते " अमे पंचमहाव्रतधारी
प्र. भा.-५६

મલપન્તો દ્રવ્યલિંગિનઃ સન્તિ તાન્ પૃથક=પૃથગ્ભાવેન પઘ્ય ।

(૪) વધદ્વારં, (૫) શસ્ત્રદ્વારં ચ ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते,
नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति—

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः शस्त्रैः=लोष्टपाषाणा-
दिभिः स्वकायरूपैः, अग्न्यादिभिः=परकायरूपै इलकुदालखनित्रादिभिस्तदुभयरूपैः
पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्याः कर्मसमारम्भः-पृथिवीकर्मसमारम्भः पृथिवी-
माश्रित्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावधव्यापारः, तेन इमं=
पृथिवीकायं विहंसन्ति । पृथिवीकायर्हिंसायां प्रवृत्ताः खलु पद्जीवनिकाय-

करते हुए द्रव्यलिंगो हैं उन्हें पृथक् देखो ।

(૪) વધ ઓર (૫) શસ્ત્રદ્વાર

अपने आप को अनगार समझने वाले ये द्रव्यलिङ्गी साधु के गुणों में तनिकभी
प्रवृत्त नहीं होते, और न गृहस्थों के किसी कार्य का त्याग करते हैं, यह बात बतलाते हैं—

ये द्रव्यलिङ्गी लोग विभिन्न प्रकार के मिट्टी, पत्थर आदि स्वकाय-शस्त्रों से
अग्नि आदि परकाय-शस्त्रों से, हल, कुदाल आदि खोदने के साधनरूप उभयरूप
शस्त्रों से पृथिवीकर्मसमारम्भ करते हैं, अर्थात् पृथिवी के निमित्त से ज्ञानावरणीय आदि
आठ प्रकार के कर्मबन्ध का कारण सावध व्यापार करते हैं, और उस से पृथिवीकाय
की हिंसा करते हैं । पृथिवीकाय की हिंसा में प्रवृत्त होने वाला पुरुष छहों जीवनिकायों

મિથ્યા પ્રલાપ કરનારા દ્રવ્યલિંગી છે. તેને જૂદા જૂદા ભાવથી જુઓ.

(૪) વધ અને (૫) શસ્ત્ર દ્વાર—

પોતેજ પોતાને અજાગાર-સાધુ સમજવાવાળા એ દ્રવ્યલિંગી, સાધુના જીવોમાં
જરા પણ પ્રવૃત્ત થતા નથી. અને ગૃહસ્થોના કોઈ કાર્યનો ત્યાગ કરતા નથી. એ
વાત બતાવે છે:—

એ દ્રવ્યલિંગી લોક જૂદા-જૂદા પ્રકારની માટી, પથ્થર આદિ સ્વકાય શસ્ત્રોથી
અગ્નિ આદિ પરકાય શસ્ત્રોથી હજા, કોદાળી આદિ ખોદવાના સાધનરૂપ ઉભયકાય
શસ્ત્રોથી પૃથ્વીકર્મસમારંભ કરે છે. અર્થાત્ પૃથ્વીના નિમિત્તથી જ્ઞાનાવરણીય આદિ
આઠ પ્રકારના કર્મબંધના કારણ સાવધ વ્યાપાર કરે છે, અને તેથી પૃથ્વીકાયની હિંસા
કરે છે. પૃથ્વીકાયની હિંસામાં પ્રવૃત્ત થવાવાળા પુરુષ છજીવનિકાયોની િ છે.

ચિત્તં મુદ્ધાણુવંધં, નિવ્વાણં તં જિણિદેહિ ॥ ૪૪ ॥ (પચ્ચાશક ટીકા ૭. વિ.)

“ જિણમવણાં જે ઉદ્ધરંતિ મત્તીઙ્ઠ સહિયપહિયાં ।

તે ઉદ્ધરંતિ અપ્પં, મીમાઓ મવસમુદ્ધાઓ ॥ ” (ધર્મસંગ્રહટીકા ૨અધિ.)

છાયા—“ જિનમવનકારણવિધિઃ—શુધ્ધા ભૂમિર્દલં ચ કાપ્ષાદિ ।

ભૃતકાનતિસન્ધાનં, સ્વાશયશૃદ્ધિશ્ચ (શોભનાશયશૃદ્ધિઃ) યતના ચ ॥

....એતસ્ય ફલં મણિતં, ઇત્યાજ્ઞાકારિણસ્તુ શ્રાદ્ધસ્ય ।

ચિત્રં મુદ્ધાણુવંધં, નિર્વાણાન્તં જિનેન્દ્રૈઃ (મણિતમ્) ॥ ૪૪ ॥

જિનમવનાનિ યે ઉદ્ધરન્તિ મત્તયા શટિતપત્તિતાનિ ।

તે ઉદ્ધરન્ત્યાત્માનં મીમાઙ્ઠ મવસમુદ્ધાન્તુ ” ઇતિ ચ ॥

તથૈવ શાસ્ત્રનિષિદ્ધે પૂજાપ્રતિષ્ઠાદિસાવયકાર્યે પ્રવૃત્તયા દ્રવ્યલિદ્ધિનોઽપિ
સ્વાત્માનં મુનિમેવ મન્યન્તે । યે પૃથિવીશસ્ત્રં પ્રયુજ્ઞાનાઃ પદ્મજીવનિકાય-

આરાધક શ્રાવક કો ભગવાન્ ને ઇસ કા ફલ ઇસ પ્રકાર વતાયા હૈ—“ઉસકો અનેકાનેક
મુલો કા અનુવન્ધ હોતા હૈ ઓર પરમ્પરા સે મોક્ષ કો પ્રાપ્તિ હોતી હૈ ” ।
(પચ્ચાશકટીકા ૭ વિ.)

“ જો પુરુષ જીર્ણ જિનમવનો કા મક્તિસે ઉદ્ધાર કરાતે હૈં યે મીમ મવસાગર સે અપની
આત્મા કો તારતે હૈં ” । (ધર્મસંગ્રહટીકા ૨ અધિ.)

હસી પ્રકાર શાસ્ત્રનિષિદ્ધ પૂજા પ્રતિષ્ઠા આદિ સાવય કાર્યો મેં પ્રવૃત્તિ કરકે
દ્રવ્યલિંગી મી અપને આપ કો મુનિ માનતે હૈં । આશય હૈ કિ—જો લોક પૃથિવી-
શસ્ત્ર કા પ્રયોગ કરકે પદ્મજીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોક કી હિંસા કરતે હૈં,
ઓર ભગવાનકા નામ લેકર સ્વયં સ્ત્રોટી પ્રરૂપણા કરતે હૈં અતઃ યે દ્રવ્ય

ભગવાને તેનું ફલ આ પ્રમાણે ખતાવ્યું છે—તેને અનેકાનેક સુખોને અનુબંધ થાય
છે; અને પરમ્પરાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે. ” (પચ્ચાશકટીકા ૭ વિ.)

“ જે પુરુષ છૉર્ણ થયેલું જિનમંદિર, તેનો ભક્તિથી ઉદ્ધાર કરાવે છે તે મહાન
ભવસાગરથી પોતાના આત્માને તારે છે. ” (ધર્મસંગ્રહટીકા ૨ અધિ.)

આજ પ્રમાણે શાસ્ત્રનિષિદ્ધ પૂજા, પ્રતિષ્ઠા આદિ સાવય કાર્યોમાં પ્રવૃત્તિ કરીને
દ્રવ્યલિંગી પણ પોતે પોતાને મુનિ માને છે. આશય એ છે કે—જે લોક પૃથ્વીશસ્ત્રનો
પ્રયોગ કરીને પદ્મજીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે અને ભગવાનનું
નામ લઈને પોતે ખોટી પ્રરૂપણા કરે છે માટે તે દ્રવ્યલિંગી છે, સાચા

સર્વાસ્મપરિત્યાગિનઃ પટ્કાયરક્ષકા અનગારાઃ (સાધવઃ) સ્મઃ' इति वदन्तो दण्डि-
 શાક્યાદયઃ સન્તિ । તત્ર કેચિદ્દેહશુદ્ધયર્થં મૃત્તિકાસ્નાયિનો ભવન્તિ । કેચિત્સ્વનિવાસાર્થં
 ગૃહાદિનિર્માણકરણં કુદાલખનિત્રાદિભિઃ પૃથિવીકાયમુપમર્દયન્તિ । કેચિત્ સ્વોદર-
 પૂર્ત્યર્થં કૃપ્યાદિકર્મ કુર્વન્તિ । કેચિન્ચ દેવકુલાઘર્થં સાવઘમુપદિશન્તિ । પાર્થિવી-
 દેવ-ગુર્વાદિ-પ્રતિમાનિર્માણે જીર્ણોદ્ધારકરણે ચ મહાભીમભવસમુદ્રાદાત્મનઃ સમુદ્રારો
 ભવતીતિ મન્યન્તે, વદન્તિ ચ—

“ જિળભવણકારણવિદી, સુદ્ધા ભૂમી દલં ચ કદ્વાઈ । મિયગાણહસંધાણં,
 સાસયવુઢ્ઢી ય જયણાય । ૧૧ । એયસ્સ ફલં મણિયં, ઇય આણાકારિણો ઉ સહુસ્સ ।

और परिग्रह के त्यागी हैं, पट्काय के रक्षक साधु हैं' । इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य
 आदि हैं । इन में कोई-कोई तो शरीर की शुद्धि के लिए मिट्टी से स्नान करते हैं । कोई
 अपने रहने के लिए मकान आदि बनाने में कुदाल खनित्र (कुस) आदि खोदने के साधनों
 द्वारा पृथ्वीकाय का उपमर्दन करते हैं । कोई-कोई अपना पेट भरने के उद्देश्य से खेती आदि
 करते हैं । कोई देवकुल आदि के लिए सावध उपदेश देते हैं—देव गुरु आदि की पार्थिव
 प्रतिमा निर्माण कराने से और जीर्णोद्धार कराने से भवसागर से आत्मा का तरना होता है,
 ऐसा मानते हैं और कहते हैं कि—

“ जिनभवन बनाने की विधि इस प्रकार है—“ शुद्ध भूमि, शुद्ध ईंटें,
 पथर, काष्ठ आदि होना, कार्य करने वाले कारीगरों को प्रसन्न रखना, अपने परिणाम
 उत्तरोत्तर चढते हुए रखकर यतनापूर्वक कार्य कराना ” इत्यादि । भगवान की आज्ञाके

છીએ. સર્વ આરંભ અને પરિગ્રહના ત્યાગી છીએ, પટ્કાયના રક્ષક સાધુ છીએ.' આ
 પ્રમાણે કહેવાવાળા ઠંડી શાક્ય આદિ છે તેમાં કોઈ-કોઈ તો શરીરની શુદ્ધિ માટે
 માટીથી સ્નાન કરે છે. કોઈ પોતાને રહેવા માટે મકાન આદિ બનાવવામાં કોદાળી,
 કોસ આદિ ખોદવાનાં સાધનો દ્વારા પૃથ્વીકાયનું ઉપમર્દન કરે છે, કોઈ-કોઈ પોતાનું
 પેટ ભરવાના ઉદ્દેશથી ખેતી કરે છે; કોઈ દેવકુળ આદિને માટે સાવધ ઉપદેશ
 કરે છે—દેવ, શુદ્ધ આદિની પાર્થિવ પ્રતિમા નિર્માણ કરાવવામાં અને જીર્ણોદ્ધાર કરા-
 વામાં ભવસાગરથી આત્મા તરી શકે છે, એવું માન છે અને કહે છે કે:—

“ जिनभदिर बनाववानी विधि आ प्रमाणे छे :-शुद्ध भूमि, शुद्ध छटो, पथर,
 કાષ્ટ આદિ જોઈએ. કામ કરવાવાળા કારીગરોને પ્રસન્ન રાખવા, પોતાનાં પરિણામ ઉત્તરોત્તર
 ચઢતાં રાખીને યતનાપૂર્વક કાર્ય કરવું.” ઇત્યાદિ.... ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક શ્રાવકને

समारंभते समणुजाणः । तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय, जाति-मरण-मोचनाय दुःखप्रतियातहेतुं, स स्वयमेव पृथिवीशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा पृथिवीशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति । तत् तस्य अहिताय, तत् तस्य अबोधये ॥ सू० ३ ॥

टीका—

तत्र=पृथिवीकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यग्बोधः खलु प्रवेदिता=प्रबोधिता । कर्मबन्धसमुच्छेदार्यै जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणी-येति भगवता प्रबोधितमिति भावः । परिज्ञा द्विविधा, ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदात् । 'सावधव्यापार एव कर्मबन्धस्य कारण'-मिति ज्ञानं-ज्ञपरिज्ञा, तद्व्यापारपरित्यागः-प्रत्याख्यानपरिज्ञा ।

वह आरंभ उसके अहित के लिए और उसके अबोध के लिए है ॥ सू. ३ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय के समारंभ के विषय में भगवान् श्री महावीर स्वामीने सम्यग्बोधरूप परिज्ञा का सदुपदेश दिया है । तात्पर्य यह है कि-कर्मबन्ध को नष्ट करने के लिए जीव को वह परिज्ञा अवश्य ही स्वीकार करनी चाहिए, ऐसा भगवान्ने कहा है । परिज्ञा दो प्रकार की है—ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा । 'सावध व्यापार से ही कर्मबन्ध का कारण होता है' ऐसा जानना ज्ञ-परिज्ञा है, और सावधव्यापार का त्याग करना प्रत्याख्यान-परिज्ञा है ।

अहित भाटे अने ते तेनी अबोधि भाटे छे. (३)

टीकार्थ—पृथ्वीकायना समारंभना विषयमां लगवान श्री महावीर स्वामीजे सम्यग्बोधरूप परिज्ञाने सदुपदेशे आये छे. तात्पर्य अजे छे के:-कर्मबंधने नाश करवा भाटे एवे ते परिज्ञा अवश्यव स्वीकार करवा लेई अजे, अजे प्रभाहे लगवाने कहुं छे. परिज्ञा जे प्रकारनी छे. ज्ञपरिज्ञा, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञा, 'सावध व्यापारव कर्मबंधनं कारणं वाच्यं छे.' अजे प्रभाहे लखुं ते ज्ञ-परिज्ञा छे, अने सावध व्यापारने त्याग करवा ते प्रत्याख्यान-परिज्ञा छे.

રૂપં લોકં સર્વમેવ વિહિંસન્તિ તે દ્રવ્યલિહ્નિનો નાનગારા इति भावः, उक्तञ्च--

“ સાવજ્ઞા કિરિયા જેસિં, સાવજ્ઞા દેસણા તહા ।

મમંતિ દીહસંસારે, તે સવ્વે દવ્વલિંગિણો ॥ ૧ इति ॥ सू. २ ॥

एवं शाक्यादीनां पृथिवीकायोपमर्दकत्वेन द्रव्यलिह्नित्वं प्रतिबोधितं भगवतेति जम्बूस्वामिनं सुधर्मा स्वामी कथयति—‘ तत्थे ’-त्यादि ।

॥ मूलम् ॥

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइआ, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-
माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए, दुक्खपडिघायहेउं, से सयमेव पुढवि-
सत्थं समारंभइ, अण्णेहि वा पुढविसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा पुढविसत्थं

લિંગો હૈં—સવ્વે અનગાર નહોં હૈં । કહા મી હૈં—

“ જિન કી ક્રિયા સાવધ હૈ ઓર જિનકા ઉપદેશ સાવધ હૈ, વે દીર્ઘ સંસારમેં પરિશ્રમણ કરતે હૈ । ઊન સવકો દ્રવ્યલિંગી જાનના ચાહિય ” ॥ સૂ. ૨ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय का उपमर्दन करने वाले होने से शाक्य आदि को भगवान् ने द्रव्यलिंगी कहा है । यह बात सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘ तत्थ खलु ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने परिज्ञा का उपदेश दिया है । इसी जीवन के लिए—
वन्दना, मान और पूजन के लिए, जन्म और मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख का नाश
करने के लिए वह स्वयं ही पृथिवीकाय का आरंभ करता है, दूसरों से पृथिवीकायका
आरम्भ कराता है, और पृथिवीकायका आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

અણુગાર—સાધુ નથી. કહ્યું છે કે:—

“ જેની ક્રિયા સાવધ છે, અને જેનો ઉપદેશ સાવધ છે, તે દીર્ઘ સંસારમાં પરિશ્રમણ કરે છે. તે સર્વને દ્રવ્યલિંગી જાણવા જોઈએ. ” (સૂ. ૨)

એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયનું ઉપમર્દન—નાશ કરવાવાળા હોવાથી શાક્ય આદિને ભગવાને દ્રવ્યલિંગી કહ્યા છે. આ વાત સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—‘તત્થ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાને ઉપદેશ આપ્યો છે, આ જીવનને માટે, વંદના, માન અને પૂજન માટે, જન્મ અને મરણથી મુક્ત હોવાના માટે, દુઃખનો નાશ કરવા માટે તે પોતે જ પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરે છે, બીજાથી પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરાવે છે, અને પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરનાર બીજાને અનુમોદન આપે છે. તે આરંભ તેના

સમારંભંતે સમણુજાણઙ્ । તં સે અહિયાપ્, તં સે અવોહીપ્ ॥ સૂં ૩ ॥

છાયા—

તત્ર સ્વલુ ભગવતા પરિજ્ઞા પ્રવેદિતા । અસ્ય ચૈવ જીવિતસ્ય પરિવન્દન-માનન-પૂજનાય, જાતિ-મરણ-મોચનાય દુઃસ્વપ્રતિયાતહેતું, સ સ્વયમેવ પૃથિવીશસ્ત્રં સમારમ્ભતે, અન્યૈર્વા પૃથિવીશસ્ત્રં સમારમ્ભયતિ, અન્યાન્ વા પૃથિવીશસ્ત્રં સમારમ્ભાણાન્ સમનુજાનાતિ । તત્ તસ્ય અહિતાય, તત્ તસ્ય અબોધયે ॥ સૂં ૩ ॥

ટીકા—

તત્ર=પૃથિવીકાયસમારમ્ભે ભગવતા=શ્રીમહાવીરેણ પરિજ્ઞા=સમ્યગ્વોધઃ સ્વલુ પ્રવેદિતા=પ્રવોધિતા । કર્મવન્ધસમુચ્છેદાર્થં જીવેન પરિજ્ઞાઽવશ્યં શરણીકરણી-યેતિ ભગવતા પ્રવોધિતમિતિ ભાવઃ । પરિજ્ઞા દ્વિવિધા, જ્ઞ-પ્રત્યાખ્યાન-ભેદાત્ । ‘સાવધવ્યાપાર એવ કર્મવન્ધસ્ય કારણ’-મિતિ જ્ઞાનં-જ્ઞપરિજ્ઞા, તદ્વ્યાપારપરિત્યાગઃ -પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા ।

વહ આરંભ ઉસકે અહિત કે લિપ્ ઓર ઉસકો અવોધિ કે લિપ્ હૈ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકાર્થ—પૃથિવીકાય કે સમારંભ કે વિષય મેં ભગવાન્ શ્રી મહાવીર સ્વામીને સમ્યગ્વોધરૂપ પરિજ્ઞાં કા સદુપદેશ દિયા હૈ । તાત્પર્યં યહ હૈ કિ-કર્મવન્ધ કો નષ્ટ કરને કે લિપ્ જીવ કો વહ પરિજ્ઞા અવરય હી સ્વીકાર કરની ઝાહિપ્, એસા ભગવાન્ને કહા હૈ । પરિજ્ઞાં ઢો પ્રકાર કો હૈ—જ્ઞપરિજ્ઞાં ઓર પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાં । ‘સાવધ વ્યાપાર સે હી કર્મવન્ધ કા કારણ હોતા હૈ’ એસા જાનના જ્ઞ-પરિજ્ઞાં હૈ, ઓર સાવધવ્યાપાર કા ત્યાગ કરના પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાં હૈ ।

અહિત માટે અને તે તેની અબોધિ માટે છે. (૩)

ટીકાર્થ—પૃથિવીકાયના સમારંભના વિષયમાં લગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ સમ્યગ્વોધરૂપ પરિજ્ઞાનેા સદુપદેશ આપ્યેા છે. તાત્પર્યં એ છે કે:-કર્મબંધને નાશ કરવા માટે જીવે તે પરિજ્ઞા અવશ્યજ્ સ્વીકાર કરવી જોઈએ, એ પ્રમાણે લગવાને કહ્યું છે. પરિજ્ઞા એ પ્રકારની છે. જ્ઞપરિજ્ઞા, અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા, ‘સાવધ વ્યાપારજ્ કર્મબંધનું કારણ થાય છે.’ એ પ્રમાણે જાણવું તે જ્ઞ-પરિજ્ઞા છે, અને સાવધ વ્યાપારનેા ત્યાગ કરવે તે પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા છે.

રૂપં લોકં સર્વમેવ વિદ્ધિસન્તિ તે દ્રવ્યલિંગિનો નાનગારા इति भावः, उक्तञ्च—

“ सावज्जा किरिया जेसिं, सावज्जा देसणा तहा ।

भमंति दीहसंसारे, ते सच्चे दच्चलिंणिणो ॥ १ इति ॥ सू. २ ॥

एवं शाक्यादीनां पृथिवीकायोपमर्दकत्वेन द्रव्यलिङ्गित्वं प्रतिबोधितं भगवतेति जम्बूस्वामिनं सुधर्मा स्वामी कथयति—‘ तत्त्वे ’-त्यादि ।

॥ मूलम् ॥

તત્થ સ્વહુ ભગવયા પરિણ્ણા પવેહ્આ, ઇમસ્સ ચેવ જીવિયસ્સ પરિવંદણ-
માણ્ણ-પૂય્ણાપ્પ જાહમરણમોયણાપ્પ, દુક્કલપહિઠ્ઠાયહેહં, સે સયમેવ પુઠ્ઠવિ-
સત્થં સમારંભહ્, અણ્ણોહિં વા પુઠ્ઠવિસત્થં સમારંભાવેહ્, અણ્ણે વા પુઠ્ઠવિસત્થં

લિંગી हैं—सच्चे अनगार नहीं हैं । कहा भी है—

“ जिन की क्रिया सावध है और जिनका उपदेश सावध है, वे दीर्घ संसारमें परिभ्रमण करते हैं । उन सबको द्रव्यलिङ्गी जानना चाहिए ” ॥ सू. २ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय का उपमर्दन करने वाले होने से शाक्य आदि को भगवान् ने द्रव्यलिङ्गी कहा है । यह बात सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘ तत्थ स्वहू ’ इत्यादि ।

મૂલાર્થ—ભગવાન્ ને પરિજ્ઞા કા ઉપદેશ દિયા છે । ઇસી જીવન કે લિપ્-
વન્દના, માન ઓર પૂજન કે લિપ્, જન્મ ઓર મરણ સે મુક્ત હોને કે લિપ્, દુઃસ્વ કા નાશ
કરને કે લિપ્ વહ સ્વયં હી પૃથિવીકાય કા આરંભ કરતા છે, દૂસરો સે પૃથિવીકાયકા
આરંભ કરાતા છે, ઓર પૃથિવીકાયકા આરંભ કરને વાલે દૂસરો કા અનુમોદન કરતા છે ।

અણુગાર—સાધુ નથી. કહ્યું છે કે:—

“ જેની ક્રિયા સાવધ છે, અને જેનો ઉપદેશ સાવધ છે, તે દીર્ઘ સંસારમાં પરિભ્રમણ કરે છે. તે સર્વને દ્રવ્યલિંગી જાણવા જોઈએ. ” (સૂ. ૨)

એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયનું ઉપમર્દન—નાશ કરવાવાળા હોવાથી શાક્ય આદિને ભગવાને દ્રવ્યલિંગી કહ્યા છે. આ વાત સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—‘તત્થ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાને ઉપદેશ આપ્યો છે, આ જીવનને માટે, વંદના, માન અને પૂજન માટે, જન્મ અને મરણથી મુક્ત હોવાના માટે, દુઃખને નાશ કરવા માટે તે પોતે જ પૃથ્વીકાયને આરંભ કરે છે, બીજાથી પૃથ્વીકાયને આરંભ કરાવે છે, અને પૃથ્વીકાયને આરંભ કરનાર બીજાને અનુમોદન આપે છે. તે આરંભ તેના

करणे, माननं=जनसत्कारः, तदर्थं, यथा-कीर्तिस्तम्भादिकरणे पूजनं=वत्सरत्नादि-
पुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-शिलिपनां राजदेवप्रतिमादिरचने । जातिमरणमोच-
नाय-जातिः=जन्म, तदर्थं भवान्तरमुखमाप्स्यर्थं देवकुलादिकरणे, मरणं=
मरणं येषां जातं तदर्थं मृतपित्रादिस्मरणार्थमित्यर्थः, यथा स्तूपचैत्यादि-
करणे, मोचनं=मुक्तिस्तदर्थं, यथा-देवभवनप्रतिमादिकरणे । यद्वा जातिमरण-
मोचनाय=जन्ममरणविमुक्तये । तथा दुःखप्रतिघातहेतुं=दुःखविघ्नंसार्थं, यथा-

आदि वनवानेसे प्रशंसा होती है । मानन अर्थात् जनताद्वारा मिलने वाला सत्कार । उस सत्कार
के लिए कर्तिस्तम्भ (मेमोरियल) आदि बनवाकर समारम्भ करते हैं । पूजन का अर्थ है-
वत्स या रत्न आदि का पुरस्कार पाना । जैसे शिल्पी लोग पुरस्कार पाने के उद्देश्य से राजा
या देवता की प्रतिमा बनाते हैं ।

जन्म, मरण और मुक्ति के लिए भी पृथिवीकायका समारम्भ किया जाता है । जन्म
के लिए जैसे भवान्तर में मुख पाने के लिए देवकुल आदि का निर्माण कराने में और मृत्यु
के लिए जैसे मृत पिता आदि का स्मारक (स्तूप-चैत्य) बनवाने में, और मोचन के अर्थात्
मुक्ति के लिए देवभवन एवं उनकी प्रतिमा बनवाने में, अथवा जन्म-मरण-
मोचन का अर्थ है-जन्म और मरणसे मुक्त होना, उस के लिए पृथ्वीकाय का
समारम्भ करते हैं ।

तथा दुःखका नाश करने के लिए भी पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं, जैसे

आरंभ करे छे. मानन अर्थात् जनता द्वारा भगवावाणो सत्कार, ते सत्कार भाटे-
कीर्तिस्तम्भ (मेमोरियल) आदि बनावीने समारंभ करे छे. पूजनो अर्थ छे-वत्स
अथवा रत्न आदिने पुरस्कार प्राप्त करवे. ते भाटे शिल्पीलोग राजनी के देवतानी
प्रतिमा बनाववाभां समारंभ करे छे.

जन्म भरण मोचन (मूकाववा) भाटे पणु पृथ्वीकायने समारंभ करवामां आवे
छे. जन्मना भाटे जेम लवान्तरमां सुख प्राप्त करवा भाटे देवकुल आदिना निर्माण
करववामां, अने मृत्यु भाटे जेम मृत पिता आदिनुं स्मारक स्तूप-चैत्य बनाववामां,
मोचन अर्थात् मुक्तिने भाटे देवभवन अथवा तेनी प्रतिमा बनाववामां, अथवा जन्म-
मरण-मोचनो अर्थ छे-जन्म अने मरणधी मुक्त थवुं, ते भाटे पृथ्वीकायने समारंभ करे छे.

तथा दुःखो नाश करवा भाटे पणु पृथ्वीकायने समारंभ करे छे, जेम-जीभना

जीवः कस्मै प्रयोजनाय पृथिवीकायं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?-स्याह-
 'इमस्स चेवे'-त्यादि । अस्यैव विद्युलताविलासवत्क्षणभङ्गस्य जीवितस्य जीवन-
 स्वार्थे चिरसुखार्थे, प्रासादसदनादिरचनार्थे, गमना-गमना-वस्थानो-पवेशन-पार्श्व-
 परिवर्तन-पुतलिकाप्रतिमादिकरणो-धारप्रसवणादिकरणो-पकरणादिग्रहणनिक्षेपणा-
 ऽऽलेपन-प्रहरण-भूषण-क्रय-विक्रय-कृपिकरण-भाण्डादिनिर्माणाद्यर्थमित्यर्थः । तथा
 परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं यथा *आश्चर्यगृहादि-

जीव किस प्रयोजनके लिये पृथिवीकाय के विषय में सावद्य व्यापार करता है ? सो
 बतलाते हैं—

विजली की चमक के समान इस क्षणविनश्वर जीवन के चिरकालीन सुख के उद्देश
 से महल, मकान आदि का निर्माण कराने के लिए, अथवा गमन, आगमन, अवस्थान
 (स्थित रहना), उपवेशन (बैठना), पार्श्व-परिवर्तन (पसवाडा बदलना), पुतली बनाना,
 प्रतिमा बनाना, मल-मूत्र त्यागना, उपकरण आदि ग्रहण करना, रखना, लेपकरना, प्रहण
 करना, सजाना, खरीदना, बेचना, खेती करना, तथा वर्तन आदि बनाना, इत्यादि
 कार्यों के लिए सावद्य व्यापार किया जाता है ।

इस के अतिरिक्त परिवन्दन मानन और पूजन के लिए भी सावद्य व्यापार
 किया जाता है । परिवन्दन अर्थात् प्रशंसा के लिए, जैसे आश्चर्यगृह (आजायव घर)

एव कथा प्रयोजन माटे पृथ्वीकायना विषयमां सावद्य व्यापार करे छे ? ते
 बतावे छे:—

विजलीना चमकाना समान आ क्षणलंशुर जीवनना चिरकालीन (लांभा
 समय सुधी) सुभना उद्देशधी, महल मकान आदि बनाववाने माटे, अथवा गमन,
 आगमन, अवस्थान, (स्थित रहवुं) उपवेशन, (बैसवुं) पार्श्व-परिवर्तन, (पडभां-
 पहलवां) पुतली बनाववी, प्रतिमा बनाववी, मल-मूत्र त्याग करवो; उपकरण
 आदिनुं अडलु करवुं, राभवुं, लेप करवो, प्रहरण करवुं, सजववुं, खरीदवुं, बेचवुं, खेती
 करवी तथा वासणु बनाववां, इत्यादि कार्योंने माटे सावद्य व्यापार करवाभां आवे छे.

ते सिवाय परिवन्दन मानन पूजन माटे यणु सावद्य व्यापार करवाभां आवे छे.
 परिवन्दन अर्थात् प्रशंसा माटे जेम आश्चर्यगृह-अजायव घर आदि बनाववाभां

* आश्चर्यगृहम्-‘म्युझियम’ ‘अजायवघर’ इति भाषामसिद्धम् ।

तत्-पृथिवीकायसमारम्भणं तस्य=पृथिवीशस्त्र समारभमाणस्य अहि-
 ताय=अकल्याणाय भवतीति श्लेषः । तत्-तदेव च पृथिवीकायसमारम्भणमेव च
 तस्य पृथिवीशस्त्र समारभमाणस्य अवोधये=सम्यक्त्वाभावाय, जिनधर्मप्राप्त्यभावाय
 च भवति । पृथिवीकायसमारम्भणं हि कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधं,
 तस्यातीतवर्तमानानागतभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये नवधा भवति, नवविधस्यापि
 पृथिवीकायसमारम्भणस्य मनोवाकाययोगभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सप्तविंशति-
 र्भङ्गा भवन्ति । एवंविधपृथिवीकायसमारम्भप्रवृत्तः खलु पट्कायारम्भसंपातजन्य-
 योरतरदुरितार्जनेन दुरन्तसंसारदावानलज्वालान्तःपातं प्राप्यानन्तरनरकनिगोदादि-
 दुःखमनुभवन् न कदाचित्कल्याणं शाश्वतसुखप्रदं मोक्षमार्गं प्राप्नोतीति भावः ॥३॥

वह पृथिवीकाय का आरंभ, आरंभ करने वाले के अहित के लिए और अवोधि के
 लिए होता है । अर्थात् आरंभ करने से सम्यक्त्व और जिनधर्म की प्राप्ति नहीं होती है ।

पृथिवीकाय का आरंभ-करना, कराना, और अनुमोदन के भेद से तीन प्रकार का
 है । इन तीनों भेदों के अतीत वर्तमान और अनागत के भेद से तीन-तीन भेद करने पर
 आरम्भ नौ प्रकार होता है । इन नौ भेदों का मन, वचन, और काय से गुणाकार कर देने
 पर सत्ताईस भेद हो जाते हैं ।

इस प्रकार के पृथिवीकाय के समारम्भ में प्रवृत्त पुरुष छहों कायों का आरम्भ करता
 है और अत्यन्त घोर पाप उपार्जन करके दुरन्त संसाररूपी दावानलकी ज्वालाओं में पडकर
 नरक निगोद आदि के दुःख भोगता हुआ न कभी कल्याण की प्राप्ति करता है और न
 शाश्वत सुख देनेवाले मोक्षमार्ग को पाता है ॥ ३ ॥

ते पृथ्वीकायने आरंभ करवावाणाना अहित माटे अने अवोधिने माटे होय
 छे. अर्थात्-आरंभ करवाथी सम्यक्त्व अने जिनधर्मनी प्राप्ति थती नथी.

पृथ्वीकायने आरंभ-करवे, करवावे अने करवावाणाने अनुमोदन आपवे।
 वगेरेना लेदथी त्रष्टु प्रकारने छे, अे त्रष्टुय लेहोना भूतकाण, लविध्यकाण अने वर्त्त-
 मानकाणना लेदथी त्रष्टु त्रष्टु लेद करवाथी आरंभ नव प्रकारने छे. अे नव लेहोने
 मन, वचन अने काया, आ त्रष्टुथी शुष्टुवा वटे करी सत्तावीश लेद थर्छ जय छे.

आ प्रभाष्टे पृथ्वीकायना समारंभमां प्रवृत्त पुरुष छ कायेने आरंभ करे छे,
 अने अत्यन्त घोर पाप उपार्जन करीने दुरन्तसंसाररूपी दावानलनी ज्वालाओमां
 पडीने, नरक-निगोद आदिनां दुःख भोगवतां कौर्छ वधत पष्टु कल्याणनी प्राप्ति करी
 शकता नथी, अने शाश्वत सुख देवावाणा मोक्षमार्गने पष्टु प्राप्ति थता नथी. (३)

ગ્રીષ્મતાપાદિનિવારણાર્થ, સ્વચક્રપરચક્રમયનિવૃત્ત્યે ચ ભૂમિગૃહમાકારાદિરચને ।
 સઃ=જીવનપરિવન્દનમાનનપૂજનાદ્યર્થે જનઃ સ્વયમેવ પૃથિવીશસ્ત્રં
 સમારમ્ભતે=પૃથિવ્યુપમર્દકં દ્રવ્યભાવશસ્ત્રં વ્યાપારયતિ । અન્યૈર્વા પૃથિવીશસ્ત્રં
 સમારમ્ભયતિ=ઉઘોજયતિ પૃથિવીશસ્ત્રં સમારમ્ભાણાન્ અન્યાન્ સમનુજાનાતિ=
 અનુમોદયતિ ।

एममतीतानागताभ्यां, तथा मनोवाक्यैश्च पृथिवीशस्त्रसमारम्भ-
 भेदा अवगन्तव्याः ।

(૭) वेदनाद्वारम्—

पृथिवीशस्त्रं समारममाणः किं फलं प्राप्नोतीत्याह—‘तं से अहियाए’ इत्यादि ।

ગ્રીષ્મ કે તાપ સે બચને કે લિે, અથવા સ્વચક્ર ઓર પરચક્ર કે. મયકી નિવૃત્તિ, કે લિે,
 મોહશા યા ચહારદીવારી (પ્રકોટા) ઘનવાના । ઇસ પ્રકાર જીવન પરિવન્દન માનન ઓર પૂજન
 આદિ કે લિે મનુષ્ય સ્વયં હી પૃથ્વીશસ્ત્રકા સમારમ્ભ કરતા હૈ અર્થાત્ પૃથિવી કા ઘાત કરને
 વાલે દ્રવ્ય ઓર ભાવશસ્ત્ર કા વ્યાપાર કરતા હૈ ઓર પૃથિવીશસ્ત્ર કા પ્રયોગ કરને કરાનેવાલે
 દૂસરો કા અનુમોદન કરતા હૈ ।

इस प्रकार अतीत और अनागत से तथा मन, वचन और कायसे पृथिवीशस्त्र के
 आरम्भ के भेद समझलेने चाहिए.

(૭) वेदनाद्वार—

पृथिवीशस्त्र का आरम्भ करनेवाला क्या फल पाता है ? सो कहते हैं—‘ तं से
 अहियाए ’ इत्यादि ।

તાપથી બચવા માટે અથવા સ્વચક્ર અને પરચક્રના બચની નિવૃત્તિ માટે લોહશા
 અથવા કોટ બનાવવા.

આ પ્રમાણે જીવન, પરિવંદન, માનન, અને પૂજન આદિ માટે મનુષ્ય પોતેજ
 પૃથ્વી-શસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે. અર્થાત્ પૃથ્વીનો ઘાત કરવાવાળા દ્રવ્ય અને ભાવ
 શસ્ત્રના વ્યાપાર કરે છે. તથા બીજા પાસે પૃથ્વીશસ્ત્રનો વ્યાપાર કરાવે છે. અને
 પૃથ્વીશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે.

આ પ્રમાણે અતીત અને અનાગત (ભૂત-ભવિષ્ય)થી તથા મન, વચન અને
 કાયાથી પૃથ્વીશસ્ત્રના આરંભના ભેદોને સમજી લેવા ભેદિએ.

(૭) वेदनाद्वार—

पृथिवीशस्त्रનો આરંભ કરવાવાળા શું ફળ પામે છે ? તે કહે છે—‘તં સે અહિયાए’
 ઈત્યાદિ.

॥ टीका ॥

यः खलु भगवतः=तीर्थंकरस्य, अनगारागाम्=उदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्, अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य, आदानीयम्, उपादेयं सर्वसावद्ययोग-परित्यागरूपं चारित्रं समुत्पाय=भङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=पृथिवीकायसमारम्भणम् संसृज्यमानः=अहितावोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवतीति ।

स हि एवं विचारयति—इह मनुष्यलोके एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञात-सम्यग्बोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?—त्याकाङ्क्षायामाह—‘एस खलु गंधे’ इत्यादि ।

एषः पृथिवीसमरम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=ग्रन्थते=व्यथतेऽनेनेति ग्रन्थः=अष्टविधकर्मग्रन्थः । कारणे कार्योपचारात् पृथिवीसमरम्भस्य

टीकार्थ—जो भगवान् तीर्थंकर के या उनके निर्ग्रन्थ श्रमणों के समीप उपदेश सुनकर उपादेय को अर्थात् सर्वसावद्ययोग के त्यागरूप चारित्र को अङ्गीकार करके विचरता है वह पृथ्वीकायके समारंभ को अहितकर और अवोधिजनक समझता है ।

वह इस प्रकार विचार करता है—इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य हो गया है उन आत्माथी पुरुषों को ही ज्ञात होता है । उन्हें क्या ज्ञात होता है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं—‘एस खलु गंधे’ इत्यादि ।

यह पृथ्वीकाय का समारम्भ निश्चय ही ग्रंथ है अर्थात् आठ प्रकार के कर्मोंका बंध है । कारण में कार्यका उपचार करके पृथिवीकाय के समारम्भ को यहाँ ग्रन्थ कहा है ।

टीकार्थ—जो भगवान् तीर्थंकरनी अथवा तेना निर्ग्रन्थ श्रमणोंने समीप उपदेश सांभली उपादेयने अर्थात् सर्वसावद्ययोगना त्यागरूप चारित्रने अङ्गीकार करीने विचरे छे, ते पृथ्वीकायना समारंभने अहितकर अने अवोधिजनक समझे छे.

ते आ प्रमाणे विचार करे छे के—आ मनुष्य लोकमां श्रमण निर्ग्रन्थेना उपदेशथी जेने सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य थई गयो छे ते आत्माथी पुरुषेने जे ललुषांमां छाय छे.

ते शुं ललुषांमां छाय छे ? अथी शंका थतां कहे छे—‘एस खलु गंधे’ इत्यादि आ पृथ्वीकायने समारंभ निश्चयज् ग्रंथ छे. अर्थात् आठ प्रकारना कर्मोने बंध छे. कारणमां कार्यने उपचार करीने पृथ्वीकायना समारंभने अहित ग्रंथ कह्यो छे. आशय अे छे के—

(૮) નિવૃત્તિદ્વારમ્

येन तु तीर्थंकरादीनां समीपे पृथिवीकायजीवस्वरूपं ज्ञातं स एवं विजानाती-
त्याह—‘से तं संबुद्धमाणे’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से तं संबुद्धमाणे आयाणीयं समुद्राय सोद्या खलु भगवओ अणगाराणं
अंतिए । इहमेगे सिणायं भवइ—एस खलु ग्रंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस
खलु णरए, इच्चत्थं, गदिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेण
पुढविसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू. ४ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणा-
मन्तिके इहैकेषां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः,
एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण
पृथिवीशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्रणान् विहिंसति ॥ सू. ४ ॥

(૮) નિવૃત્તિદ્વાર-

जिसने तीर्थंकर आदिके समीप में पृथिवीकाय के जीवों का स्वरूप जान लिया है,
वह इस प्रकार जानता है—‘से तं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर भगवान् के अथवा अनगारों के निकट उपदेश सुनकर
समझता है और उपादेय (चारित्र) को अङ्गीकार करके विचरता है उसे ज्ञात हो जाता है कि
पृथिवीकायका यह आरंभ ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । इस में आसक्त
पृथ्वीशस्त्र का आरंभ, करने वाला लोक तरह-तरह के शस्त्रों से पृथ्वीकायका आरंभ करके
अन्य अनेक प्रकार के प्राणीकी हिंसा करता है ॥ सू. ४ ॥

(૯) નિવૃત્તિદ્વાર

જેણે તીર્થંકર આદિના સમીપમાં પૃથ્વીકાયના જીવોનું સ્વરૂપ જાણી લીધું છે,
તે આ પ્રમાણે જાણે છે—‘સે તં.’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—જે પુરૂષ તીર્થંકર ભગવાનની અથવા અણગારોની સમીપ ઉપદેશ
સંભળીને સમજે છે, અને ઉપાદેય (ચારિત્ર)ને અંગીકાર કરીને વિચરે છે; તેને માલુમ
પડે છે કે:—પૃથ્વીકાયનો આરંભ એ ગ્રંથ છે, એ મોહ છે, એ માર છે, એ નરક છે,
એમાં આસક્ત પૃથ્વીશસ્ત્રનો આરંભ કરવાવાળા જાત-જાતના શસ્ત્રથી પૃથ્વીકાયનો
આરંભ કરીને અન્ય અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે (૪)

॥ टीका ॥

यः खलु भगवतः=तीर्थकरस्य, अनगारागाम्=उदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्,
अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य, आदानीयम्, उपादेयं सर्वसावधयोग-
परित्यागरूपं चारित्रं समुत्पाद्य=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=पृथिवीकायसमारम्भणम्
संबुध्यमानः=अहितावोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवतीति ।

स हि एवं विचारयति—इह मनुष्यलोके एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञात-
सम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?—
त्याकाङ्क्षायामाह—‘ एष खलु गंधे ’ इत्यादि ।

एषः पृथिवीशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=ग्रन्थते=बुध्यतेऽनेनेति
ग्रन्थः=अष्टविधकर्मग्रन्थः । कारणे कार्योपचारात् पृथिवीशस्त्रसमारम्भस्य

टीकार्थ—जो भगवान् तीर्थकर के या उनके निर्ग्रन्थ श्रमणों के समीप उपदेश
सुनकर उपादेय को अर्थात् सर्वसावधयोग के त्यागरूप चारित्र को अङ्गीकार करके विचरता
है वह पृथ्वीकायके समारंभ को अहितकर और अवोधिजनक समझता है ।

वह इस प्रकार विचार करता है—इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश
से जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य हो गया है उन आत्मार्थी पुरुषों को ही ज्ञात होता है ।
उन्हें क्या ज्ञात होता है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं—‘ एष खलु गंधे ’
इत्यादि ।

यह पृथ्वीकाय का समारम्भ निश्चय ही ग्रंथ है अर्थात् आठ प्रकार के कर्मोंका बंध
है । कारण में कार्यका उपचार करके पृथिवीकाय के समारम्भ को यहाँ ग्रन्थ कहा है ।

टीकार्थ—जो लगवान तीर्थकरनी अथवा तेना निर्ग्रन्थ श्रमणोंने समीप
उपदेश सांलणी उपादेयने अर्थात् सर्वसावधयोगना त्यागरूप चारित्रने अङ्गीकार
करीने विचरे छे, ते पृथ्वीकायना समारंभने अहितकर अने अवोधिजनक समझे छे.

ते आ प्रमात्ते विचार करे छे के—आ मनुष्य लोकमां श्रमण निर्ग्रन्थाना उपदेशथी
जने सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य थर्छ गये छे ते आत्मार्थी पुरुषोंने जे लक्षणमां डोय छे.

ते शुं लक्षणमां डोय छे ? जेवी शंका थतां कडे छे—‘ एष खलु गंधे ’ इत्यादि
आ पृथ्वीकायने समारंभ निश्चय अर्थ छे. अर्थात् आठ प्रकारना कर्मोंने बंध छे. कारणमां
कार्थने उपचार करीने पृथ्वीकायना समारंभने अहि अर्थ कह्यो छे. आशय जे छे के—

ગ્રન્થરૂપત્વમ્, એવમગ્રેડપિ ચોપ્યમ્ । તથા-એવ એવ પૃથિવીસમારમ્ભઃ મોહઃ=વિપર્યાસઃ,
વિપરીતજ્ઞાનરૂપઃ । તથા-એવ એવ મારઃ=મરણમ્ નિગોદાદિમરણરૂપઃ । તથા-એવ
સ્વલ્લ નરકઃ=નારકજીવાનાં દશવિધયાતનાસ્થાનમ્ । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह
-मरण-नरकरूपं घोरं दुःस्वफलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती
जीवः शृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा शृद्धः=विषयभोगासक्तः लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थ
=एतदर्थमेव-कर्मबन्धमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तते ।

यद्यपि-विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमानन-
पूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःस्वप्रतिघातार्थं च पृथिवीशस्त्रसमारम्भं करोति

આશય યહ હૈ કિ આરંભ-ગ્રન્થ (બંધ) કા કારણ હોને સે ગ્રન્થ કહા ગયા હૈ । ઇસી પ્રકાર
કા ઉપચાર આગે કે કથન મેં મી સમજ્ઞ લેના ચાહિય્ ।

યહ પૃથિવીકાયસમારંભ મોહ અર્થાત્ વિપર્યાસ હૈ-વિપરીત જ્ઞાનરૂપ હૈ, તથા યહી
આરમ્ભ, નિગોદ આદિ મરણરૂપ હૈ । તથા યહી આરંભ નરક હૈ અર્થાત્ નારકી જીવોં કે
લિય્ દશ પ્રકાર કી ક્ષેત્ર વેદનાઓં કા સ્થાન હૈ । ઇસ સમારંભ કે કારણ કર્મબંધ, મોહ, મરણ
પૂર્વ નરકરૂપ ઘોર દુઃસ્વમય ફલ પ્રાપ્તકર કે મી અજ્ઞાની લોગ વાર-વાર ઇસી કી ઇચ્છા કરતે
હૈં । અથવા સંસારી જીવ વિષયભોગોં મેં આસક્ત હોતા હૈ અર્થાત્ કર્મબંધ, મોહ, મરણ ઓર નરક
કે લિય્ હી અજ્ઞાની જીવ પ્રવૃત્તિ કરતે હૈં ।

વિષયભોગોં મેં આસક્ત જીવ યદ્યપિ શરીર આદિ કો પુષ્ટ કરને કે લિય્
પરિવન્દન, માનન ઓર પૂજન કે લિય્, જન્મ મરણ સે મુક્ત હોને કે લિય્, દુઃસ્વ કા

આરંભ-ગ્રન્થ (બંધ)નું કારણ હોવાથી ગ્રન્થ કહ્યો છે, આ પ્રમાણેનો ઉપચાર આગળના
કથનમાં પણ સમજ લેવો જોઈએ.

આ પૃથ્વીકાય-સમારંભ મોહ અર્થાત્ વિપર્યાસ છે, વિપરીતજ્ઞાનરૂપ છે, તથા
એ આરંભ નિગોદ આદિ મરણરૂપ છે. તથા એ આરંભ નરક છે અર્થાત્ નારકીના
જીવો માટે દસ પ્રકારની ક્ષેત્ર વેદનાઓનું સ્થાન છે. આ સમારંભના કારણે, કર્મબંધ,
મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની લોક
વારંવાર તેની ઇચ્છા કરે છે. અથવા સંસારી જીવ વિષયભોગોમાં આસક્ત થાય છે,
અર્થાત્ કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરકના માટેજ અજ્ઞાની જીવ તેમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે.

વિષયભોગોમાં આસક્ત જીવ હજી પણ શરીર આદિને પુષ્ટ કરવા માટે પરિવન્દન,
માનન, અને પૂજનને માટે, જન્મ મરણથી મુક્ત થવા માટે દુઃખનો નાશ કરવા માટે,

તથાપિ તત્ફલં કર્મવન્ધમોહમરણનરકરૂપમેવ લમન્તે, અતઃ પૃથ્વીકર્મસમારમ્બસ્ય તદેવ ફલં ભવતીતિ ભાવઃ । ઇત્યર્થમિતિ પ્રયોગસ્તુ યથા-અયં સંસારી લોકો જાયતે મરણાયૈવ, મ્રિયતે ચ જનનાયૈવ, ઇતિ, તદ્વત્ ।

લોકઃ પુનઃ પુનઃ કર્મવન્ધાર્થમેવ લિપ્મુરસ્તિ, તદર્થમેવ પ્રવર્તતે વા, ઇતિ પ્રતિજ્ઞાયાં હેતુમાહ-‘જમિણં’ । ઇત્યાદિ ।

યદ્-યસ્માત્-વિરૂપરૂપૈઃ = નાનાવિધૈઃ શાસ્ત્રઃ=સ્વકાયપરકાયતદુર્ભયરૂપૈઃ પૃથ્વીકર્મસમારમ્બેણ=પૃથ્વીવ્યુપમર્દકસાવધવ્યાપારકરણેન, યદ્વા-પૃથ્વીકાયમુદ્દિ-શ્યાપૃથ્વીકર્મસમુત્પાદકસાવધવ્યાપારેણ, ઇમં = પૃથ્વીકાયં વિહિનસ્તિ,

વિનાશ કરને કે લિપ્, પૃથ્વીશસ્ત્ર કા આરંભ કરતા હૈ તથાપિ ઇસ આરંભ કા ફલ ઉસે કર્મવન્ધ, મોહ, મરણ ઓર નરક કે રૂપ મેં હી મિલતા હૈ । અત એવ આશય યહ હૈ કિ-કોઈ કિસી મી અભિલાષા સે પૃથ્વીકાયકા આરંભ કરે મગર ફલ તો વહી કર્મ-બંધ આદિ હી હોગા । (ઇચ્છત્યં) ઇસ કા પ્રયોગ યહ વતલાને કે લિપ્ ક્રિયા ગયા હૈ-યહ સંસારી જીવ ઉત્પન્ન હોતા હૈ મરને કે લિપ્ ઓર મરતા હૈ જનમને કે લિપ્, ઇસી પ્રકાર યહ પ્રયોગ હૈ ।

લોક વારંવાર કર્મબંધ આદિ કે લિપ્ હી અભિલાષી હૈ, અથવા-કર્મબંધ કે લિપ્ હી પ્રવૃત્તિ કરતા હૈ । ઇસ પ્રતિજ્ઞા મેં હેતુ કહતે હૈ-‘જમિણં’ । ઇત્યાદિ ।

જિસ કારણ સે ગૃહ (આસક્ત) લોક નાના પ્રકાર કે શસ્ત્રો સે-સ્વકાય, પરકાય ઓર ઉભયકાયરૂપ શસ્ત્રો સે-પૃથ્વીકાય કા સમારંભ કરકે અર્થાત્ પૃથ્વીકાય કી હિંસા કરને વાલા સાવધ વ્યાપાર કરકે, અથવા પૃથ્વીકાય કે નિમિત્ત સે આઠો કર્મ-જનક સાવધ

પૃથ્વીશસ્ત્રનો આરંભ કરે છે તો પણ તે આરંભનું ફળ તેને કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરકના રૂપમાં જ મળે છે. એ માટે આશય એ છે કે-કોઈ કોઈ પણ અભિલાષાથી પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરે પરંતુ ફળ તો તે કર્મબંધ આદિ જ થશે.

‘ઇચ્છત્યં’ એનો પ્રયોગ એ બતાવવા માટે, કર્યો છે કે આ સંસારી એવ ઉત્પન્ન થાય છે મરવાને માટે, અને મરે છે તે જન્મ લેવા માટે, આ પ્રમાણે એ પ્રયોગ છે.

લોક વારંવાર કર્મબંધ આદિ માટે જ અભિલાષી છે. અથવા કર્મબંધ માટે જ પ્રવૃત્તિ કરે છે. આ પ્રતિજ્ઞામાં હેતુ કહે છે-‘જમિણં’ । ઇત્યાદિ.

જે કારણથી ગૃહ-આસક્ત લોકો નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી-સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય રૂપ શસ્ત્રોથી-પૃથ્વીકાયનો સમારંભ કરીને અર્થાત્ પૃથ્વીકાયની હિંસા કરવાવાળા સાવધ વ્યાપાર કરીને અથવા પૃથ્વીકાયના નિમિત્તથી આઠ કર્મોને ઉત્પન્ન કરનાર સાવધ વ્યાપારથી

છિનત્તિ, મિનત્તિ, પ્રાણરહિતં કરોતિ ગૃહો લોક ઇત્યાદિ । તથા પૃથિવીશક્ત્વ= પૃથિવ્યુપમર્દકં શક્ત્વ સ્વકાયપરકાયતદુભયરૂપં સમારમમાણઃ=વ્યાપારયન્ અન્યાન્= અપ્કાયાદીન્ અનેકરૂપાન્=ત્રસાન્ સ્થાવરાંશ્ચ, પ્રાણાન્=પ્રાણિનો વિહિનસ્તિ । પૃથિવીકાયર્હિસયા પૃજીવનિકાયરૂપં લોકં સર્વમેવ પ્રણિહન્તીતિ ઘોરતરં દુરિતં કુર્વન્ પુનઃ પુનઃ કર્મવન્ધાદિનરકાન્તં પ્રાપ્યાપિ તદર્થમેવ પ્રવર્ત્તે ન પુનર્મોક્ષાયેતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૪ ॥

નતુ પૃથિવીકાયજીવાનાં શ્રોત્રનેત્રપ્રાણરસનેન્દ્રિયાણિ ન સન્તિ, નાપિ મનસ્તેપાં, કથં તર્હિ દુઃખવેદના સંભવતિ ? તતથ્ચ પૃથિવીકાયસમારમ્ભિખાં

વ્યાપાર સે ઇસ પૃથિવીકાય કા હનન કરતા હૈ, છેદન કરતા હૈ, મેદન કરતા હૈ, ઉસે પ્રાણહીન બનાતા હૈ । તથા પૃથિવીકાય કે સ્વકાય, પરકાય, ઔર ઉભયકાયરૂપ શક્તો કા ઉપયોગ કરતા હુઆ અપ્કાય આદિ અનેક ત્રસ સ્થાવર પ્રાણિયો કી હિંસા કરતા હૈ ।

તાત્પર્ય યહ હૈ કિ-પૃથિવીકાય કી હિંસા કે દ્વારા સમસ્ત પૃજીવનિકાયરૂપ લોક કી હિંસા કરતા હૈ । ઇસ પ્રકાર અત્યન્ત ઘોર પાપ કરતા હુઆ ચારવાર કર્મબંધ કરતા હૈ ઔર યહોં તક કિ નરક કો પ્રાપ્ત કરકે મી નરક કે લિપ્ હી પ્રવૃત્તિ કરતા હૈ, મોક્ષ કે લિપ્ નહીં ॥ સૂ. ૪ ॥

પૃથિવીકાય કે જીવોં મેં શ્રોત્રેન્દ્રિય, ચક્ષુરિન્દ્રિય, ઘ્રાણેન્દ્રિય, રસના-ઇન્દ્રિય ઔર મન નહીં હૈ, ફિર ઉહેં દુઃખ કા અનુભવ કૈસે હો સકતા હૈ ? ઔર ઈસી અવસ્થા મેં પૃથિવીકાય કા આરંભ કરનેવાલોં કો કર્મબંધ ક્યોં હોતા હૈ ? ઇસ શંકા કા સમાધાન

આ પૃથ્વીકાયનો ઘાત કરે છે. છેદન કરે છે. ભેદન કરે છે, તેને પ્રાણહીન બનાવે છે. તથા પૃથ્વીકાયના સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાયરૂપ શક્તિનો ઉપયોગ કરતા થકા અપ્કાય આદિ અનેક ત્રસ-સ્થાવર પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-પૃથ્વીકાયની હિંસા દ્વારા સમસ્ત પૃજીવનિકાયરૂપ લોકની હિંસા કરે છે. આ પ્રમાણે અત્યન્ત ઘોર પાપ કરીને વારંવાર કર્મબંધ કરે છે. અને ત્યાં સુધી કે નરકને પ્રાપ્ત કરીને પણ નરક માટે જ પ્રવૃત્તિ કરે છે, મોક્ષ માટે કરતા નથી. (૪)

પૃથ્વીકાયના જીવોમાં શ્રોત્રેન્દ્રિય, ચક્ષુરિન્દ્રિય, ઘ્રાણેન્દ્રિય, રસના-ઇન્દ્રિય અને મન નથી, તો પણ તેને દુઃખનો અનુભવ કેવી રીતે થઈ શકશે ? અને એવી અવસ્થામાં પૃથ્વીકાયનો આરંભ કરવાવાળાને કર્મબંધ કેમ થઈ શકશે ? આ 'કાય'

कथं कर्मबन्धः ? इति जिज्ञासायामाह—' से वेमि. ' इत्यादि ।

(मूलम्)

से वेमि—अप्येगे अंधमब्धे, अप्येगे अंधमच्छे, अप्येगे पायमब्धे, अप्येगे पायमच्छे. अप्येगे गुंफमब्धे, अप्येगे जंघमब्धे, अप्येगे जाणुमब्धे, अप्येगे उकमब्धे, अप्येगे कटिमब्धे, अप्येगे णामिमब्धे, अप्येगे उयरमब्धे, अप्येगे पासमब्धे, अप्येगे पिट्टिमब्धे, अप्येगे उरमब्धे, अप्येगे हिययमब्धे, अप्येगे यणमब्धे, अप्येगे खंधमब्धे, अप्येगे वाहुमब्धे, अप्येगे हत्यमब्धे, अप्येगे अंगुलिमब्धे, अप्येगे णहमब्धे, अप्येगे गीवामब्धे, अप्येगे हणुयमब्धे, अप्येगे होट्टमब्धे, अप्येगे दंतमब्धे, अप्येगे जीहमब्धे, अप्येगे तालुमब्धे, अप्येगे गलमब्धे, अप्येगे गंडमब्धे, अप्येगे कन्नमब्धे, अप्येगे णासमब्धे, अप्येगे अच्छिमब्धे, अप्येगे भसुहमब्धे, अप्येगे णिडालमब्धे, अप्येगे सीसमब्धे, अप्येगे संपमारण अप्येगे उद्वण ॥ सू. ५ ॥

(छाया)

अथ व्रीचीमि—अप्येकः अन्धमाभिन्ध्यात् अप्येकः अन्धमाच्छिन्ध्यात् । अप्येकः पादमाभिन्ध्यात्, अप्येकः पादमाच्छिन्ध्यात् । अप्येकः गुल्फमाभिन्ध्यात्, अप्येकः जङ्गामाभिन्ध्यात्, अप्येकः जानु आभिन्ध्यात्, अप्येकः उरु आभिन्ध्यात्, अप्येकः कटिमाभिन्ध्यात्, अप्येकः नामिमाभिन्ध्यात्, अप्येकः उदरमाभिन्ध्यात्, अप्येकः पार्श्वमाभिन्ध्यात्, अप्येकः पृष्टिमाभिन्ध्यात्, अप्येकः उर आभिन्ध्यात्, अप्येकः

करने के लिए सूत्र कहते हैं—' से वेमि. ' इत्यादि ।

मूलार्थ—मैं कहता हूँ—कोई अन्धे को भेदे, कोई अंधे को छेदे, कोई पैर को भेदे कोई पैर को छेदे, कोई गुल्फ को भेदे छेदे, कोई पिण्डों को भेदे छेदे, कोई घुटने को भेदे, छेदे, कोई जांघ को भेदे छेदे, कोई कमर को भेदे छेदे, कोई नाभि को भेदे छेदे, कोई पेट को भेदे छेदे, कोई, पसवाडे को भेदे छेदे, कोई पीठ को भेदे छेदे, कोई छाती

समाधान करवा भाटे सूत्र छोड़े छे—' से वेमि. ' इत्यादि.

मूलार्थ—हुं कहुं छुं कोई आंधजाने लेहन करे, कोई आंधजाने छेहन करे, कोई पगने कोई, कोई पगने छेहे कोई गुल्फ—(घुंटी)ने लेहे, छेहे, कोई पार्श्वने लेहे, छेहे, कोई घुंटीने लेहे छेहे, कोई अंधने लेहे छेहे, कोई कमरने लेहे छेहे कोई नाभि(हुंटी)ने लेहे-छेहे; कोई पेटने लेहे छेहे, कोई पार्श्वजाने लेहे-छेहे कोई पीठने लेहे-छेहे, कोई छातीने लेहे-छेहे कोई

छिनत्ति, भिनत्ति, माणरहितं करोति गृद्धो लोक इत्यादि । तथा पृथिवीशस्त्र= पृथिव्युपमर्दकं शस्त्र स्वकायपरकायतदुभयरूपं समारममाणः=व्यापारयन् अन्यान्= अपकायादीन् अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावरान्ध, प्राणान्=प्राणिनो विहितस्ति । पृथिवीकायर्हिंसया पृथिवीविकाररूपं लोकं सर्वमेव प्रणिहन्तीति घोरतरं दुरितं कुर्वन् पुनः पुनः कर्मबन्धादिनरकान्तं प्राप्यापि तदर्थमेव प्रवर्तते न पुनर्मोक्षायेति भावः ॥ सू. ४ ॥

ननु पृथिवीकायजीवानां श्रोत्रनेत्रघ्राणरसनेन्द्रियाणि न सन्ति, नापि मनस्तेषां, कथं तर्हि दुःखवेदना संभवति ? ततश्च पृथिवीकायसमारम्भणां

व्यापार से इस पृथिवीकाय का हनन करता है, छेदन करता है, भेदन करता है, उसे प्राणहीन बनाता है । तथा पृथिवीकाय के स्वकाय, परकाय, और उभयकायरूप शस्त्रों का उपयोग करता हुआ अपकाय आदि अनेक त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है ।

तात्पर्य यह है कि—पृथिवीकाय की हिंसा के द्वारा समस्त पृथिवीविकाररूप लोक की हिंसा करता है । इस प्रकार अत्यन्त घोर पाप करता हुआ बारबार कर्मबंध करता है और यहाँ तक कि नरक को प्राप्त करके भी नरक के लिए ही प्रवृत्ति करता है, मोक्ष के लिए नहीं ॥ सू. ४ ॥

पृथिवीकाय के जीवों में श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना—इन्द्रिय और मन नहीं है, फिर उन्हें दुःख का अनुभव कैसे हो सकता है ? और ऐसी अवस्था में पृथिवीकाय का आरंभ करनेवालों को कर्मबंध क्यों होता है ? इस शंका का समाधान

आ पृथ्वीकायनो घात करे छे. छेदन करे छे. वेदन करे छे, तेने प्राणहीन बनावे छे. तथा पृथ्वीकायना स्वकाय, परकाय अने उभयकायरूप शस्त्रोने उपयोग करता थका अपकाय आदि अनेक त्रस-स्थावर प्राणीजोनी हिंसा करे छे.

तात्पर्य ये छे के—पृथ्वीकायनी हिंसा द्वारा समस्त पृथिवीविकाररूप लोकनी हिंसा करे छे. आ प्रमाणे अत्यन्त घोर पाप करीने बारबार कर्मबंध करे छे. अने त्यां सुधी के नरकने प्राप्त करीने पणु नरक भाटे न प्रवृत्ति करे छे, मोक्ष भाटे करता नथी. (४)

पृथ्वीकायना लोकां श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना—इन्द्रिय अने मन नथी, तो पछी तेने दुःखने अनुभव केवी रीते थर्ध शकथे ? अने जेवी अवस्थां पृथ्वीकायनो आरंभ करवावाणाने कर्मबंध केम थर्ध शकथे ? आ शंकातुं

॥ टीका ॥

‘से वेमि’ इत्यादि । अथेति प्रतिवाक्यप्रारम्भद्योतनाय । ब्रवीमि=पृथिवी-
कायस्य वेदनाविषये कथयामि । यथा-एकः=कश्चित् अन्ध-जन्मान्ध आभिन्द्यात्,
तथा एकः=अपरः कश्चित् अन्धमपि आछिन्द्यात् ।

अत्र अन्धमित्युपलक्षणं, बधिरमूकपद्गुमभृतीनाम् । यः खलु जन्मान्धो जन्मबधिरो
जन्ममूको जन्मपद्गुमृगापुत्रवत्करचरणाद्यवयवविभागरहितः पूर्वभवार्जिताशुभकर्मो-
दयात् स्वहितप्राप्त्यहितपरिहाराक्षमोऽतिदयनीयदशाशुभगतः ।

एवंविधजन्मान्धादिकं कश्चित् कठोरहृदयो निर्दयतयाऽतिनिशितमल्लादिना भिनत्तिचेत्,
सुतीक्ष्णपरशुकुठारादिना छिनत्ति चेत्तदाऽसौ स्वाङ्ग भेदनच्छेदनसमयेभेदकं छेदकं न

टीकार्थ-‘अथ’ शब्द नया वाक्य आरंभ करने को प्रकट करता है-‘कहता हूँ’
अर्थात् पृथिवीकाय की वेदना के विषय में कहता हूँ । जैसे-कोई पुरुष अंधे अर्थात् जन्म से
अंधे को भेदे छेदे । यहाँ ‘अंध’ पद उपलक्षण है, उस से बहिरा, मूंगा, लंगडा, आदि भी
ग्रहण कर लेना चाहिए ।

जो जीव मृगालोटक की तरह जन्मान्ध है, जन्म से बहिरा है, जन्म से
मूंगा है, जन्म से लंगडा है, हाथ-और आदि विभिन्न अवयवों का जिस के शरीर में
भेद नहीं है, और जो पूर्वभव के अशुभ कर्मों के उदय से अपने हित की प्राप्ति तथा
अहित के परिहार में असमर्थ है, अत्यन्त दयनीय दशा को प्राप्त है, इस प्रकार के
जन्मान्ध वगैरह को कोई कठोर हृदयवाला पुरुष निर्दय हो कर आवेश के साथ, बहुत
तीखे माले वगैरह से भेदता है, अत्यन्त तीखे फरसी कुठार आदि से छेदता है,

टीकार्थ-‘अथ’ शब्द नवुं वाक्य आरंभ करने को प्रकट करे छे ‘कहुं छुं’ अर्थात्
पृथ्वीकायणी वेदनाया विषयमां कहुं छुं-नेम कोर्ध मनुष्य अन्ध अर्थात्-जन्मभी
अंधने (आंधणो छे तेने) लेहे छेहे. अछि ‘अंध’पद ते उपलक्षण छे, तेनाथी
भडेरा मूंगा, लंगडा आदि पक्ष अडुछु करी लेवा नेध अे.

जे एव मृगलोहानी भाइके जन्मांध छे. (जन्मथी आंधणो छे) जन्मथी;
भडेरो छे. जन्मथीज मूंगा छे जन्मथी लंगडा छे. हाथ-पग आदि विभिन्न अवयवोना
नेना शरीरमां लेह नथी, अने ते पूर्वलवना अशुभ कर्मोना उदयथी पोताना हितनी प्राप्ति
तथा अहितना परिहारमां असमर्थ छे, अत्यन्त दयापात्र-दशाने प्राप्त छे, या प्रकारना
जन्मांध वगेरेने कोर्ध कठोर हृदयवाणा पुरुष निर्दय थर्धने आवेशनी साथे अहुंज तीक्ष्ण
मादा वगेरेथी लेहे छे (निधे छे), अत्यन्त तीखी धारवाणी इरसी, कुठार आदिथी

हृदयमाभिन्धात्, अप्येकः स्तनमाभिन्धात्, अप्येकः स्कन्धमाभिन्धात्, अप्येकः
 बाहुमाभिन्धात्, अप्येकः हस्तमाभिन्धात्, अप्येकः अङ्गुलिमाभिन्धात्, अप्येकः
 नखमाभिन्धात्, अप्येकः ग्रीवामाभिन्धात्, अप्येकः हनु आभिन्धात्, अप्येकः
 ओष्ठमाभिन्धात्, अप्येकः दन्तमाभिन्धात्, अप्येकः जिह्वामाभिन्धात्, अप्येकः
 तालु आभिन्धात्, अप्येकः गलमाभिन्धात्, अप्येकः गण्डमाभिन्धात्, अप्येकः
 कर्णमाभिन्धात्; अप्येकः नासामाभिन्धात्, अप्येकः अक्षि आभिन्धात्, अप्येकः
 भ्रुवमाभिन्धात्, अप्येकः ललाटमाभिन्धात्, अप्येकः शीर्षमाभिन्धात्, अप्येकः
 संप्रसारयेत्, अप्येकः उपद्राचयेत् ॥ सू. ५ ॥

को भेदे छेदे, कोई हृदय को भेदे छेदे, कोई स्तन को भेदे छेदे, कोई कन्धे को
 भेदे छेदे, कोई बाहु को भेदे छेदे, कोई हाथ को भेदे छेदे, कोई उंगली को भेदे
 छेदे, कोई नख को भेदे छेदे, कोई गर्दन को भेदे छेदे, कोई हनु (डाढी-ठोडी) को
 भेदे छेदे, कोई होठ को भेदे छेदे, कोई दांत को भेदे छेदे, कोई जीभ को भेदे,
 छेदे, कोई तालु को भेदे छेदे, कोई गले को भेदे छेदे, कोई गंडस्थल (कनपटी) को
 भेदे छेदे, कोई कान को भेदे छेदे, कोई नाकको भेदे छेदे, कोई आंख को भेदे छेदे,
 कोई भौंह को भेदे छेदे, कोई ललाट को भेदे छेदे, कोई सिरको भेदे छेदे, कोई मारकर
 वेहोश कर दे; या कोई मार ही डाले, इस प्रकार इन्द्रियबलहीन होने पर भी उसे वेदना का
 अनुभव होता ही है ॥ सू. ५ ॥

हृदयने लेहे छेदे, केधस्तनने लेहे छेदे, केधकांधने लेहे-छेदे, केधआधूने लेहे छेदे, केध
 हाथने लेहे-छेदे, केध आंगलीने लेहे-छेदे, केध नथने लेहे-छेदे, केध गर्दनने लेहे छेदे,
 केध डाढीने लेहे-छेदे, केध छोकने छेदे-लेहे, केध दांतने लेहे छेदे, केध जीभने लेहे छेदे,
 केध तालु-(ताणवा)ने लेहे-छेदे, केध गलने लेहे-छेदे, केध गंडस्थल (लभणु)
 कानपटीने लेहे-छेदे, केध कानने लेहे-छेदे, केध नाकने लेहे-छेदे, केध आंखने
 लेहे-छेदे, केध आंभरने लेहे-छेदे, केध ललाटने लेहे-छेदे, केध शिरने लेहे-छेदे,
 केध मारीने जेहोश करी दे, अथवा केध मारीन नांभे, आ प्रभावे इन्द्रियबलहीन
 होवा छतां पण तेने वेदनाने अनुभव थाय छे. (५)

॥ टीका ॥

‘से वेमि’ इत्यादि । अथेति प्रतिवाक्यप्रारम्भघोतनाय । ब्रवीमि=पृथिवी-
कायस्य वेदनाविषये कथयामि । यथा-एकः=कश्चित् अन्धं-जन्मान्धं आभिन्धात्,
तथा एकः=अपरः कश्चित् अन्धमपि आच्छिन्धात् ।

अत्र अन्यमित्युपलक्षणं, यधिरमूकपद्गुमभृतीनाम् । यः खलु जन्मान्धो जन्मवधिरौ
जन्ममूको जन्मपद्गुमृगापुत्रवत्करचरणाद्यवयवविभागरहितः पूर्वभवार्जिताशुभकर्मो-
दयात् स्वहितप्राप्त्यहितपरिहाराक्षमोऽतिदयनीयदशामुपगतः ।

एवंविधजन्मान्धादिकं कश्चित् कठोरहृदयो निर्दयतयाऽतिनिश्चितमल्लादिना भिनत्तिचेत्,
सुतीक्ष्णपरशुकुठारादिना छिनत्ति चेत्तदाऽसौ स्वाङ्ग भेदनच्छेदनसमयेभेदकं छेदकं न

टीकार्थ-‘अथ’ शब्द नया वाक्य आरंभ करने को प्रकट करता है-‘कहता हूँ’
अर्थात् पृथिवीकाय की वेदना के विषय में कहता हूँ । जैसे-कोई पुरुष अंधे अर्थात् जन्म से
अंधे को भेदे छेदे । यहाँ ‘अंध’ पद उपलक्षण है, उस से बहिरा, मूंगा, लंगडा, आदि भी
ग्रहण कर लेना चाहिए ।

जो जीव मृगालोढक की तरह जन्मान्ध है, जन्म से बहिरा है, जन्म से
मूंगा है, जन्म से लंगडा है, हाथ-और आदि विभिन्न अवयवों का जिस के शरीर में
भेद नहीं है, और जो पूर्वभव के अशुभ कर्मों के उदय से अपने हित की प्राप्ति तथा
अहित के परिहार में असमर्थ है, अत्यन्त दयनीय दशा को प्राप्त है, इस प्रकार के
जन्मान्ध वगैरह को कोई कठोर हृदयवाला पुरुष निर्दय हो कर आवेश के साथ, बहुत
तीखे भाँसे वगैरह से भेदता है, अत्यन्त तीखे फरसी कुठार आदि से छेदता है,

टीकार्थ-‘अथ’ शब्द नवुं वाक्य आरंभ करवानुं प्रकट करे छे ‘कहुं छुं’ अर्थात्
पृथिवीकायनी वेदनाना विषयमां कहुं छुं-जेम कोर्ध मनुष्य अन्ध अर्थात्-जन्मथी
अंधने (आंधणो छे तेने) लेटे छेदे. अर्द्धि ‘अंध’पद ते उपलक्षण छे, तेनाथी
अंधेरा मूंगा, लंगडा आदि पक्ष अक्षु करी लेवा जेठिये.

जे एव मृगलोढानी भाइक जन्मांध छे. (जन्मथी आंधणो छे) जन्मथी;
अंधेरो छे. जन्मथीज मूंगो छे जन्मथी लंगडा छे. हाथ-पग आदि विभिन्न अवयवोना
जेना शरीरमां लेटे नथी, अने ते पूर्वलवना अशुभ कर्मोना उदयथी पोताना छितनी प्राप्ति
तथा अहितना परिहारमां असमर्थ छे, अत्यन्त दयापात्र-दशाने प्राप्त छे, आ प्रकारना
जन्मांध वगेरेने कोर्ध कठोर हृदयवाणा पुरुष निर्दय धर्मे आवेशनी साथे अहुंज तीक्ष्ण
भावा वगेरेथी लेटे छे (विधे छे), अत्यन्त तीखी धारवाणी इरसी, कुठार आदिथी

पश्यति न, शृणोति, नाप्युच्चैः क्रन्दति; तावता तस्याऽजीवत्वं वेदनाया अभावो वा निश्चेतुं वक्तुं वा न शक्यते, एवं पृथिवी सचेतना वेदनासहिता चेति निश्चीयते । जात्यन्धवधिरमूकपङ्ग्वादिगुणयुक्तपुरुषवत्, मृगापुत्रवत्, इत्यर्थः ।

यद्वा पञ्चेन्द्रियाणां सुव्यक्तचेतनानां पादगुल्फजङ्घाजानूल्कटि-
नाभ्युदरपार्श्वपृष्ठोरोहृदयस्तनस्कन्धबाहुहस्ताङ्गुलिनखग्रीवाहन्वोष्ठदन्तजिह्वातालु-
गलगण्डकर्णनासाक्षिभ्रूललाटमस्तकादिषु मिथ्यमानेषु छिद्यमानेषु वा यथा घोरतर-
वेदना जायते तथा प्रगाढमोहाज्ञानवतां स्त्यानद्धर्षादिकर्मोदयाद् अव्यक्तचेतनानां

भेदन-छेदन के समय, अपने अंग के भेदने-छेदने वाले को न देखता है, न सुनता है, न उंची आवाज से चिन्ताता है; इतने मात्र से उस में अजीवपना या वेदना का अभाव निश्चित नहीं किया जा सकता, और नहीं कहा जाता । इसी प्रकार पृथिवी सचेतन है और उसे वेदना भी होती है, यह बात निश्चित हो जाती है । अर्थात् जैसे मृगालोढक की तरह बहिर, मृगे, लंगडे आदि पुरुष को वेदना होती है, उसी प्रकार पृथिवीकाय को भी वेदना होती है ।

अथवा स्पष्ट चेतना वाले पञ्चेन्द्रिय जीवों के पैर, गुल्फ, जांघ, जानु, उरु, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु, हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा, दाढी, होठ, दांत, जीभ, तालु, गला, कनपटी, कान नाक आँख, भौंह, ललाट, मस्तक आदि के भिदने-छिदने पर जैसे अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न होती है

छेदे छे, तो भेदन-छेदनना समये पोताना अंगनुं भेदन-छेदन करनारने ते दृश्यतो नथी, सांलणतो नथी, उ'था अवाजथी शोर-अडोर करी शकतो नथी. अटलाभात्रथी तेमां अशुवपणुं अथवा वेदनानो अलाव निश्चित करी शकतो नथी, तेम छेवतुं पणु नथी. अे प्रभाळु पृथ्वी सचेतन छे अने तेने वेदना पणु थाय छे. अे वात निश्चित थर्ष नथ छे. अर्थात् जेवी रीते मृगालोढीआ प्रभाळु-अडेर, मृंगा, लंगडा आदि पुरुषने वेदना थाय छे, ते प्रभाळु पृथ्वीकायने पणु वेदना थाय छे.

अथवा-स्पष्ट चेतनावाणा जन्मान्ध आदि पञ्चेन्द्रिय श्रवणा पग, र्दीयाणु, नांघ, नानू, उरु कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा दाढी, होठ, दांत, आँख, तालु, गणु, लभणु, कान, नाक, आँख, कमर, ललाट, मस्तक आदिनां भेदना-छेदनाथी जेम अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न थाय छे, तेम प्रगाढ

पृथिव्यादीनामव्यक्तैव घोरतरवेदना भवतीति भगवता केवलालोकेन साक्षात्कृत्य मवेदितम् ।

अत्रैवान्यमपि दृष्टान्तमाह—“अप्येगे संपमारण अप्येगे उद्भवण” इति । एकः कश्चित् यथा सर्वावयवयुक्तं कश्चित्प्राणिनं संपमारयेत्=तीव्रद्वेषावेशेन शस्त्रादिप्रहारेण चेष्टाराहित्यरूपां मूर्च्छामापादयेत् तथा एकः कश्चित् मूर्च्छापन्नं उद्भावयेत्=प्राणेश्चो व्यपरोपयेत्, तस्य मूर्च्छावशेन व्यक्त-वेदनाया अभावेऽपि अव्यक्ता घोरतरवेदना जायत एव, तथा पृथिवीजीवानामव्यक्ता घोरतरवेदना भवत्येव ॥ सू. ५ ॥

इत्थं पृथिवीकायस्य जीवत्वं शस्त्राद्धाघातेन वेदनां च प्रदर्श्य, अधुना

उसी प्रकार प्रगाढ मोह अज्ञान वाले स्त्यानर्द्धि आदि कर्म के उदय से अप्रकट चेतना वाले पृथ्वीकाय आदि जीवों को अप्रकट किन्तु अत्यन्त दारुण वेदना होती है । यह बात भगवान् ने केवलज्ञान से साक्षात् जानकर प्रकट की है ।

इसी विषय में एक दृष्टान्त और कहते हैं—‘अप्येगे’ इत्यादि । जैसे—कोई पुरुष, सभी अवयवों से युक्त किसी प्राणी को तीव्र द्वेष के आवेश के वश हो कर शस्त्र आदि का प्रहार कर के चेष्टारहित—मूर्च्छित कर देता है, तथा कोई उस मूर्च्छित पुरुष को प्राणहीन करता है तो यद्यपि उस मूर्च्छित में व्यक्त वेदना नहीं है फिर भी अव्यक्त अत्यन्त घोर वेदना होती ही है, इसी प्रकार पृथिवीकाय में घोर अव्यक्त वेदना होती है ॥ सू. ६ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय की सचित्तता और शस्त्र आदि के आघात से होने वाली

(६६) मोह अज्ञानवाणा स्त्यानर्द्धि आदि कर्मना उदयशी अप्रकट चेतनावाना पृथ्वी-काय आदि जीवोंने अप्रकट परन्तु अत्यन्त दारुण वेदना थाय छे, आ बात लगवाने केवल ज्ञानशी साक्षात् ज्ञाणीने प्रकट करी छे.

आ विषयमां अेक जीवुं दृष्टान्त कहे छे—‘अप्येगे’ इत्यादि, जेभ कौछ पुरुष, सर्व अवयवशी युक्त कौछ प्राणीने तीव्र द्वेषशी आवेशने वश थर्छ शस्त्र आदिना प्रहार करीने चेष्टारहित—मूर्च्छित करी नाथे छे, तथा कौछ ते मूर्च्छित पुरुषने प्राणहीन करे छे. ते मूर्च्छितमां व्यक्त वेदना नथी. तो पणु अव्यक्त (ज्ञाणी-जेछ शकाय नहि तेवी रीते) अत्यन्त घोर वेदना थाय छे. अे प्रमाणे पृथ्वीकायमां पणु घोर वेदना थाय छे. ॥पा॥

आ प्रमाणे पृथ्वीकायनी सचित्तता अने शस्त्र आदिना आघातशी थवावाणी

तत्समारम्भे कर्मबन्धो भवतीत्याह—'एत्य' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्य सत्यं समारंभमाणस्य इच्छेते आरंभा अपरिणया भवन्ति ॥ सू. ६ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शस्त्र समारंभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति ॥ सू. ६ ॥

॥ टीका ॥

अत्र=पृथिवीकाये. शस्त्र=स्वकायपरकायतदुभयरूपं द्रव्यशस्त्र,
दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपं भावशस्त्रं वा समारंभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते=
मागुक्ताः सप्तविंशतिभङ्गरूपाः, आरम्भाः=स्वननकृप्यादिरूपाः सावधव्यापाराः,
अपरिज्ञाता भवन्ति=कर्मबन्धहेतुत्वेन परिज्ञाता न भवन्ति, पृथिवीशस्त्र
समारंभमाणः स्वननादिसावधव्यापारस्य कर्मबन्धकारणतामविज्ञाय चारित्ररूप-

वेदना प्रदर्शित कर के यह बताते हैं कि—पृथिवीकाय का आरंभ करने में कर्म का बंध होता है—'एत्य' इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथिवीकाय का आरंभ करने वाले को यह (पूर्वोक्त) आरंभ ज्ञात नहीं होता है ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्यशस्त्र का, तथा मन वचन कायका दुष्प्रणिधानरूप भावशस्त्र का व्यापार करने वाले को ज्ञात नहीं होता कि—पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकार का स्वनन एवं कृपि आदिरूप सावध व्यापार कर्मबंध के कारण हैं । तात्पर्य यह है कि—जो पुरुष पृथिवीकाय का आरंभ करता है, उसे यह माद्वय नहीं होता कि—यह सावध व्यापार कर्मबंध का कारण है, यह माद्वय न होने के कारण

वेदना अताचीने डवे अे अतावे छे डेः—पृथ्वीकायने आरंभ करवाभां कर्मने अंध थाय छे—'एत्य' इत्यादि.

मूलार्थ—पृथ्वीकायने आरंभ करवावाणाने आ (पूर्वोक्त) आरंभ ज्ञान डोटुं नथी. (६)

टीकार्थ—पृथ्वीकायभां स्वकाय, परकाय अने उभयकायइय द्रव्यशस्त्रने तथा मन, वचन, कायानां दुष्प्रणिधान (अराण लाव)रूप लावशस्त्रने व्यापार करवावाणाने अण्णर नथी डोती डे—पूर्वोक्त (पूर्वे कडेला) सत्तावीस प्रकारना अणन (आडवु) अे प्रभाणु कृपि—अेती आद्विइय सावध—व्यापार कर्मबंधनुं कारणु छे. तात्पर्य अे छे डेः—अे पुरुष पृथ्वीकायने आरंभ करे छे, तेने अे भावुं नथी डेः—आ सावध व्यापार कर्म

मोक्षमार्गतो दूरमपगतो भवतीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

(८) विवृत्तिद्वारम्-

पृथिवीकायसमारम्भपरिज्ञाने हि परिज्ञातकर्मा मुनिर्भवतीत्याह-‘एत्य’ इत्यादि ।
॥ मूलम् ॥

एत्य सत्यं असमारंभमाणस्स इच्छेते आरंभा परिष्णाया भवंति । तं परिष्णाय मेधावी नैव सयं पुढविसत्यं समारंभेज्जा, जेवण्णेहि पुढविसत्यं समारंभावेज्जा, जेष्ण्णे पुढविसत्यं समारंभेते समणुजाणेज्जा । जस्सेते पुढविकम्मसमारंभा परिष्णाया भवंति से हु मुणी परिष्णायकम्मे-त्तिवेमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इय सत्यपरिष्णाए वीओ उद्देशो समत्तो ॥ १-२ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शत्रुं असमारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं पृथिवीशत्रुं समारंभेत, नैवान्यैः पृथिवीशत्रुं समारंभयेत्, नैवान्यान् पृथिवीशत्रुं समारंभतः समनुजानीयात्, यस्यैते पृथिवीकर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स एव मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इति शत्रुपरिज्ञायां द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १ । २ ॥

यह चारित्ररूप मोक्षमार्ग से दूर ही रहता है ॥ सू. ६ ॥

पृथिवीकाय के समारम्भ का परिज्ञान होने पर ही परिज्ञातकर्मा मुनि होता है, इस बात को कहते हैं-‘एत्य’ इत्यादि ।

मूलार्थ- पृथिवीकाय में शत्रु का आरंभ न करने वाले को यह आरंभ ज्ञात होता है । उन्हें जान कर बुद्धिमान् पुरुष न स्वयं पृथिवीकाय के शत्रु का आरंभ करे, न दूसरों से पृथ्वीकाय के शत्रुका आरंभ करावे और न पृथ्वीकाय का आरंभ करने वाले दूसरों की अनुमोदना करे । इन पृथिवीकर्मसमारम्भों को जानने वाला ही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू. ७ ॥

अधुनुं कश्चि ए. आ माळूम नडि होवाथी ते आरिद्रूप मोक्षमार्गथी इरळ रडे छे. ॥६॥

पृथिवीकायना समारंभंलुं परिज्ञान होवाथीळ परिज्ञातकर्मा मुनि होय छे, आ वात अतावे छे-‘एत्य’ इत्यादि.

मूलार्थ- पृथ्वीकायमां शत्रुने आरंभ नडि करवावाणाने आ आरंभनी अणर होय छे. तेने जण्णीने बुद्धिमान् पुरुष पोते पृथ्वीकायना शत्रुने आरंभ करता नथी; धीळ पासे पणु पृथ्वीकायना शत्रुने आरंभ करवाता नथी. अने पृथ्वीकायने आरंभ करवावाणा धीळने अनुमोहन आपता नथी. अे पृथ्वीकर्म-समारंभाने जणुवावाणान् मुनि छे, ते परिज्ञातकर्मा छे; अे प्रमाणे हुं ठहुं छुं. (७)

तत्समारम्भे कर्मबन्धो भवतीत्याह—'एत्य' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्य सत्यं समारंभमाणस्त इच्छेते आरंभा अपरिण्णाया भवन्ति ॥ सू. ६ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शस्त्र समारंभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति ॥ सू. ६ ॥

॥ टीका ॥

अत्र=पृथिवीकाये. शस्त्र=स्वकायपरकायतदुभयरूपं द्रव्यशस्त्र,

दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपं भावशस्त्रं वा समारंभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते=
प्रागुक्ताः सप्तविंशतिभङ्गरूपाः, आरम्भाः=खननकृष्यादिरूपाः सावधव्यापाराः,
अपरिज्ञाता भवन्ति=कर्मबन्धहेतुत्वेन परिज्ञाता न भवन्ति, पृथिवीशस्त्र
समारंभमाणः खननादिसावधव्यापारस्य कर्मबन्धकारणतामचिज्ञाय चारित्ररूप-

वेदना प्रदर्शित कर के यह बताते हैं कि—पृथिवीकाय का आरंभ करने में कर्म का बंध होता है—'एत्य' इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथिवीकाय का आरंभ करने वाले को यह (पूर्वोक्त) आरंभ ज्ञात नहीं होता है ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्यशस्त्र का, तथा मन वचन कायका दुष्प्रणिधानरूप भावशस्त्र का व्यापार करने वाले को ज्ञात नहीं होता कि—पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकार का खनन एवं कृषि आदिरूप सावध व्यापार कर्मबंध के कारण हैं । तात्पर्य यह है कि—जो पुरुष पृथिवीकाय का आरंभ करता है, उसे यह मादम नहीं होता कि—यह सावध व्यापार कर्मबंध का कारण है, यह मादम न होने के कारण

वेदना अतावीने छवे अतावे छे केः—पृथ्वीकायने आरंभ करवाभां कर्मने अंध थाय छे—'एत्य' इत्यादि.

मूलार्थ—पृथ्वीकायने आरंभ करवावाणाने आ (पूर्वोक्त) आरंभ ज्ञान डोटुं नथी. (६)

टीकार्थ—पृथ्वीकायभां स्वकाय, परकाय अने उभयकायरूप द्रव्यशस्त्रने तथा मन, वचन, कायानां दुष्प्रणिधान (अराज लाव)रूप लावशस्त्रने व्यापार करवावाणाने अजर नथी डोती के—पूर्वोक्त (पूर्व) कडेला) सत्तावीस प्रकारना अनन (जोदबु) अने प्रमाखे कृषि—जेती आदिइय सावध-व्यापार कर्मबंधनू कारखे छे. तात्पर्य अने छे केः—जे पुइय पृथ्वीकायने आरंभ करे छे, तेने अने मादम नथी केः—आ सावध व्यापार कर्म

समारंभान् विज्ञाय सर्वान् परित्यजेत् ।

एवं यस्य एते पृथिवीकर्मसमारम्भाः पृथिवीविषयाः खननकृष्यादिस्थाः सावधक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धहेतुत्वेन विज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा=विदितपरित्यक्त-सकलसावधक्रियाविशेषः मुनिर्भवति, न त्वपरो द्रव्यलिङ्गीत्यर्थः । इति ब्रवीमि= यथा भगवता कथितं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ७ ॥

॥ इति शस्त्रपरिज्ञाध्ययने द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १-२ ॥

पृथ्वीकायसमारंभ को जानकर सबका त्याग करना चाहिए ।

इस प्रकार जो पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी खोदना जोतना आदि सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण समझता है, और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है वही परिज्ञातकर्मा और सकल सावध क्रियाओं को जानने वाला पुरुष मुनि कहलाता है, सिर्फ द्रव्यलिङ्गी मुनि नहीं कहलाता । 'चित्तेमि' भगवान् ने जैसा कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ ॥ ७ ॥

आचाराङ्ग-सूत्र की आचारचिन्तामणि-टीका के हिन्दी-अनुवादमें
शस्त्रपरिज्ञानामक प्रथम अध्ययनका द्वितीय उद्देश
समाप्त ॥ १-२ ॥

वेदधी सत्तावीस प्रकारना पृथ्वीकायना समारंभने लक्ष्मी करीने सर्वना त्याग करवेने ज्ञेय्ये.

आ प्रभावे ने पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी ज्ञेय्ये, ज्ञेय्ये आदि सावध व्यापारने ज्ञपरिज्ञाधी कर्मबंधनुं कारण समने छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाधी तेना त्याग करी हे छे, ते परिज्ञातकर्मा अने सकलसावधक्रियाज्जेने लक्ष्मवावाणा पुरुष मुनि कहेवाय छे, मात्र द्रव्यलिङ्गी मुनि कहेवाता नथी. लगवाने जेवुं कहुं छे, जेवुं जे हुं कहुं छुं ॥७॥

आचाराङ्ग सूत्रनी आचारचिन्तामणि टीकाना अनुवादात्तम्
शस्त्रपरिज्ञानामक प्रथम अध्ययनना धीजे उद्देश
समाप्त थये ॥१-२॥

टीका—

अन्न=पृथिवीकाये शस्त्रं=स्वकायपरकायादिकम् असमारभमाणस्य=अव्या-
पारयतः इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति ।
ज्ञपरिज्ञया सर्वान् पृथिवीकायसमारम्भान् कर्मबन्धहेतुत्वेन अनन्तरकनिगोदादि-
दुःखजनकत्वेन च परिज्ञाय चारित्ररूपमोक्षमार्गं प्रवर्तत इति भावः ।
उपसंहारमाह—

सत्=पृथिवीकायसमारम्भं परिज्ञाय=बन्धहेतुत्वेनावबुध्य मेधावी=
सदसद्विवेकी पृथिवीशस्त्रं द्रव्यभावरूपं स्वयं नैव समारभते अपि च=अन्यैरपि
पृथिवीशस्त्रं नैत्र समारम्भयति, पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् नैव समनु-
जानाति । एवं मनोवाक्यायभेदेनातीतानागतवर्तमानकालभेदेन च पृथिवीकाय-

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय आदि शस्त्रों का आरंभ न करने
वाले को यह पूर्वोक्त सावधव्यापाररूप आरंभ ज्ञात होता है । इन आरंभों को जानने वाला
अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से पृथिवीकायसंबंधी आरंभों को कर्मबंध का कारण तथा अनन्त नरक
निगोद के दुःखों का कारण जानकर चारित्ररूप मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होता है । उपसंहार
करते हैं—

पृथ्वीकाय के आरंभ को बंधका कारण जानकर बुद्धिमान् सत् असत् का भेद
समझने वाला, द्रव्य-भावरूप पृथ्वीशस्त्रका स्वयं व्यापार नहीं करता, दूसरे से व्यापार
नहीं कराता और व्यापार करने वाले को अनुमोदना भी नहीं करता । इसी प्रकार मन,
वचन, काय के भेद से और अतीत, अनागत, वर्तमान काल के भेद से सत्ताईस प्रकार के

टीकार्थ—पृथ्वीकायमां स्वकाय परकाय आदि शस्त्रानो आरंभ नहि करवावाणाने
अपे पूर्वोक्त सावध व्यापाररूप आरंभानी अभर डोय छे, ते आरंभोने लक्ष्णवावाणो अर्थात्
ज्ञपरिज्ञाधी पृथ्वीकायसम्बन्धी आरंभोने कर्मबंधनुं कारण, तथा अनन्त नरक निगोदना
दुःखोनुं कारण लक्ष्णोने आदित्रय मोक्षमार्गमां प्रवृत्त थाय छे । इवे उपसंहार करे छे—

पृथ्वीकायना आरंभने बंधनुं कारण लक्ष्णोने बुद्धिमान् सत्-असत्ना भेदने
लक्ष्णवा-समञ्जवावाणो, द्रव्यभावरूप पृथ्वीशस्त्रना पोते व्यापार करता नथी, भील
पासे व्यापार करावता नथी, अने व्यापार करवावाणाने अनुमोदन पणु करता नथी।
आ प्रभाषे मन, वचन, कायना भेदथी, अने लूतकाण, लविध्यकाण, वर्तमानकाणना

समारंभान् चिज्ञाय सर्वान् परित्यजेत् ।

एवं यस्य एते पृथिवीकर्मसमारम्भाः पृथिवीविषयाः खननंकृप्यादिस्थाः सावधक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धहेतुत्वेन विज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा=चिदितपरित्यक्त-सकलसावधक्रियाविशेषः मुनिर्भवति, न त्वपरो द्रव्यलिङ्गीत्यर्थः । इति ब्रवीमि= यथा भगवता कथितं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ७ ॥

॥ इति शस्त्रपरिज्ञाध्ययने द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १-२ ॥

पृथ्वीकायसमारंभ को जानकर सबका त्याग करना चाहिए ।

इस प्रकार जो पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी खोदना जोतना आदि सावध व्यापारो को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण समझता है, और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उन का त्याग कर देता है वही परिज्ञातकर्मा और सकल सावध क्रियाओं को जानने वाला पुरुष मुनि कहलाता है, सिर्फ द्रव्यलिङ्गी मुनि नहीं कहलाता । 'चित्त्वैमि' भगवान् ने जैसा कहा है वैसे ही मैं कहता हूँ ॥ ७ ॥

आचाराङ्ग-सूत्र की आचारचिन्तामणि-टीका के हिन्दी-अनुवादमें
शस्त्रपरिज्ञानामक प्रथम अध्ययनका द्वितीय उद्देश

समाप्त ॥ १-२ ॥

वेदधी सत्तावीस प्रकारना पृथ्वीकायना समारंभने नष्टी करीने सर्वना त्याग करवे जेधअ.

आ प्रभाणे ने पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी जोडवुं, जेडवुं आदि सावध व्यापारोने ज्ञपरिज्ञाधी कर्मबंधुं कारण समने छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाधी तेना त्याग करी दे छे, ते परिज्ञातकर्मा अने सकलसावधक्रियाओने नष्टवावाणा पुरुष मुनि कहेवाय छे, मात्र द्रव्यलिङ्गी मुनि कहेवाता नथी. लगवाने जेवुं कहुं छे, जेवुं न हुं कहुं छुं ॥७॥

आचाराङ्ग सूत्रनी आचारचिन्तामणि टीकाना शुभशती अनुवादमां
शस्त्रपरिज्ञानामक प्रथम अध्ययनना थीजे उद्देश
समाप्त थयो ॥ १-२ ॥

टीका—

अत्र=पृथिवीकाये शस्त्रं=स्वकायपरकायादिकम् असमारभमाणस्य=अव्या-
पारयतः इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति ।
ज्ञपरिज्ञया सर्वान् पृथिवीकायसमारम्भान् कर्मबन्धहेतुत्वेन अनन्तनरकनिगोदादि-
दुःखजनकत्वेन च परिज्ञाय चारित्ररूपमोक्षमार्गं प्रवर्तत इति भावः ।
उपसंहारमाह—

तत्=पृथिवीकायसमारम्भं परिज्ञाय=बन्धहेतुत्वेनावबुध्य मेधावी=
सदसद्विवेकी पृथिवीशस्त्रं द्रव्यभावरूपं स्वयं नैव समारभते अपि च—अन्यैरपि
पृथिवीशस्त्रं नैव समारम्भयति, पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् नैव समनु-
जानाति । एवं मनोवाक्यायभेदेनातीतानागतवर्तमानकालभेदेन च पृथिवीकाय-

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय आदि शस्त्रों का आरंभ न करने
वाले को यह पूर्वोक्त सावद्यव्यापाररूप आरंभ ज्ञात होता है । इन आरंभों को जानने वाला
अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से पृथिवीकायसंबंधी आरंभों को कर्मबंध का कारण तथा अनन्त नरक
निगोद के दुःखों का कारण जानकर चारित्ररूप मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होता है । उपसंहार
करते हैं—

पृथ्वीकाय के आरंभ को बंधका कारण जानकर बुद्धिमान् सत् असत् का भेद
समझने वाला, द्रव्य-भावरूप पृथ्वीशस्त्रका स्वयं व्यापार नहीं करता, दूसरे से व्यापार
नहीं कराता और व्यापार करने वाले की अनुमोदना भी नहीं करता । इसी प्रकार मन,
वचन, काय के भेद से और अतीत, अनागत, वर्तमान काल के भेद से सत्ताईस प्रकार के

टीकार्थ—पृथ्वीकायमां स्वकाय परकाय आदि शस्त्रेणो आरंभ नहि करवावाणो
ओ पूर्वोक्त सावद्य व्यापाररूप आरंभनी अमर होय छे, ते आरंभोने लब्धवावाणो अर्थात्
ज्ञपरिज्ञाथी पृथ्वीकायसम्बन्धी आरंभोने कर्मबंधनुं कारण्य, तथा अनन्त नरक निगोदना
दुःखोनुं कारण्य लक्ष्णीने चारित्ररूप मोक्षमार्गमां प्रवृत्त थाय छे. हवे उपसंहार करे छे—

पृथ्वीकायना आरंभने बंधनुं कारण्य लक्ष्णीने बुद्धिमान् सत्-असत्ना भेदने
लब्धवा-समजवावाणो, द्रव्यभावरूप पृथ्वीशस्त्रेणो पोते व्यापार करता नथी, भील
पासे व्यापार करावता नथी, अने व्यापार करवावाणोने अनुमोदन पक्ष करता नथी.
आ प्रभाक्षे मन, वचन, कायना भेदथी, अने भूतकाण, भविष्यकाण, वर्तमानकाणना

सर्वविरतिरूपं पदं प्राप्तो मुनिः पृथिवीकायादिसृक्ष्मजीवसमारम्भनिवृत्त्यादि-
कर्तव्यतायामल्पीयोऽपि प्रमादजातं स्वलनं समुपेक्षते चेत् तर्हि पुनस्तत्राधिकतरं
स्वलनं कर्तुं न लज्जते, तथाविधनियमानुसारिणी हि मनोवृत्तिः, अतः
स्वल्पमपि संयमतः स्वलनं यथा न भवेत् तथा प्रयतितव्यं मुनिभिः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

केनचिद् बाल्यावस्थायामन्यस्य कपर्दिकामात्रं स्तेयवृत्त्याऽपहृत्य
स्वमातुरग्रे निहितम् । माता तदवलोक्य हृष्टा सती तस्मै मधुरं वस्तु ददौ ।
अथ पुनः पुनः स्तेयकर्मणि प्रवृत्तः स्वमावृहस्तात् पारितोषिकं प्राप्तः क्रमेण

योग्यता दिखलाते हैं—सर्वविरतिरूप पदको प्राप्त मुनि पृथिवीकाय आदि छोटे-छोटे जीवों
के आरंभ का त्याग करने में यदि प्रमाद के कारण थोड़े से भी स्वलन की उपेक्षा करता है
तो फिर और अधिक स्वलन करने में भी संकोच नहीं करता । मनोवृत्ति का ऐसा ही
नियम है कि—गिरी सो गिरती ही जाती है, अत एव मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए
कि, जिस से संयम में तनिक भी स्वलन न हो ।

इस विषय में दृष्टान्त कहते हैं—

किसी बालकने अपनी बाल्यावस्था में एक कौड़ी चुराकर अपनी माता के
पास रख दी । माता उसे देखकर हर्षित हुई और उसने इनाम के तौर पर बालक को
मीठी चीज दी । इस के बाद वह बारबार चोरी करने लगा और अपनी माता के हाथ से
पारितोषिक प्राप्त करने लगा । धीरे-धीरे वह ताम्रपण (ताँवे का सिक्का) कार्पाण

भतावे छे—सर्वविरतिरूप पदने पावेला मुनि पृथ्वीकाय आदि नाना-नाना लोकोना
आरंभना त्याग करवाभां जे प्रमादना कारणे थोडां पक्ष स्वलन (चुरी)नी उपेक्षा करे
छे, तो इरीने वधारे स्वलन करवाभां पक्ष संकोच करता नथी. मनोवृत्तिना योग्य
नियम छे छे—नीचे पडवा पछी वधारे नीचे पडी जाय छे, जे कारणेथी मुनिज्यो
ज्यो प्रयत्न करवे जेधजे छे—जेनाथी संयमभां थोडुं पक्ष स्वलन नही होय.

आ विषयभां दृष्टान्त कहे छे—

ठोडं भाणके पोतानी बाल्यावस्थाभां जेक ठोडी चोरीने पोतानी मातानी पास
रखी थीधी; माता तेने जेधने सल थर्ध अने तेने इनाम आपवाना दंगथी भाणकने
मीठी वस्तु आपी. बार पछी ते भाणक बारबार चोरी करवा लाग्यो. अने पोतानी
माता पासोथी (माताना हाथथी) इनाम भेजववा लाग्यो. धीरे धीरे ते ताम्रपण—ताँवाना

अथ तृतीयो देशः ।

द्वितीयोद्देशे पृथिव्याः सच्चित्तत्वं तत्र पृथक्पृथगनेकपृथिवीकायजीवाश्रितत्वं च प्रसाधितम्, तस्य हिंसया कर्मबन्धो भवतीत्युक्तम्, अन्ततश्च पृथिवीकायजीव-हिंसानिवृत्त्या मुनिर्भवतीति सिद्धान्तितम् । इदानीमपां सच्चित्तत्वमनेकापकायजीवा-श्रितत्वं बोधयता भगवताऽपकायहिंसया षट्कायजीवहिंसासंपातात् कर्मबन्धो भवति, तथाऽपकायहिंसानिवृत्त्या च मुनित्वं लभ्यत इति बोधयितुं तृतीयोद्देशः प्रारभ्यते- 'से वेमि' इत्यादि ।

अपकायजीवस्वरूपविचारणायां प्रथममनगरस्य योग्यता दर्शयति-

तीसरा उद्देश

द्वितीय उद्देशक में पृथिवी की सच्चित्ता सिद्ध की और पृथिवी में पृथक्-पृथक् अनेक पृथिवीकाय के जीवों का रहना सिद्ध किया । यह भी बतलाया जा चुका है कि-उन जीवों की हिंसा करने से कर्म का बंध होता है । अन्त में यह भी प्रमाणित किया है कि-पृथ्वीकाय के जीवों की हिंसा का त्याग करने से मुनि होता है । अब यह बतलाते हैं कि-अपकाय सच्चित्त है, अनेक अपकाय के जीवों से आश्रित है और अपकाय की हिंसा से षट्काय के जीवों की हिंसा होती है और अपकाय की हिंसा का त्याग करने वाला मुनिपन पाता है । यह सब बतलाने के लिए तीसरा उद्देश आरंभ किया जाता है- 'से वेमि' इत्यादि ।

अपकाय के जीवों के स्वरूप का विचार करते हुए सर्व प्रथम अनगर की

त्रीणि उद्देशक-

शील उद्देशकमां पृथ्वीनी सच्चित्ता सिद्ध करी छे. अने पृथ्वीमां नृदा-नृदा अनेक पृथ्वीकायना लुवे रडे छे ते सिद्ध कथुं छे. अे पणु अताववामां आल्युं छे के ते लुवोनी हिंसा करवाथी कर्मना अंध थाय छे. अन्तमां अे पणु प्रमाश्रित कथुं के पृथ्वीकायना लुवोनी हिंसानो त्याग करवाथी मुनि थाय छे. डवे ते अतावे छे के-अपकाय सच्चित्त छे, अनेक अपकायना लुवोथी आश्रित छे, अने अपकायनी हिंसाथी षट्कायना लुवोनी हिंसा थाय छे, अने अपकायनी हिंसानो त्याग करवावाणा मुनिपणुने पात्रे छे. अे सर्व अताववा माटे त्रीणि उद्देशकनो आरंभ करवामां आवे छे- 'सेवेमि' इत्यादि. अपकायना लुवोना स्वइधनो विचार करता थका सौथी प्रथम अणुगारनी शोअ्यता

सर्वविरतिरूपं पदं प्राप्तो मुनिः पृथिवीकायादिभूस्मजीवसमारम्भनिवृत्त्यादि-
कर्तव्यतायामल्पीयोऽपि प्रमादजातं स्वलनं समुपेक्षते चेत् तर्हि पुनस्तत्राधिकतरं
स्वलनं कर्तुं न लज्जते, तथाविधनियमानुसारिणी हि मनोवृत्तिः, अतः
स्वल्पमपि संयमतः स्वलनं यथा न भवेत् तथा प्रयत्नितव्यं मुनिभिः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

केनचिद् बाल्यावस्थायामन्यस्य कपर्दिकामात्रं स्तेयवृत्त्याऽपहृत्य
स्वमातुरग्रे निहितम् । माता तदवलोक्य हृष्टा सती तस्मै मधुरं वस्तु ददाति ।
अथ पुनः पुनः स्तेयकर्मणि प्रवृत्तः स्वमातृहस्तात् पारितोषिकं प्राप्तः क्रमेण

योग्यता दिखलाते हैं—सर्वविरतिरूप पदको प्राप्त मुनि पृथिवीकाय आदि छोटे-छोटे जीवों
के आरंभ का त्याग करने में यदि प्रमाद के कारण थोड़े से भी स्वलन की उपेक्षा करता है
तो फिर और अधिक स्वलन करने में भी संकोच नहीं करता । मनोवृत्ति का ऐसा ही
नियम है कि—गिरी सो गिरती ही जाती है, अत एव मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए
कि, जिस से संयम में तनिक भी स्वलन न हो ।

इस विषय में दृष्टान्त कहते हैं—

किसी बालकने अपनी बाल्यावस्था में एक कौड़ी चुराकर अपनी माता के
पास रख दी । माता उसे देखकर हर्षित हुई और उसने इनाम के तौर पर बालक को
मीठी चीज दी । इस के बाद वह बारबार चोरी करने लगा और अपनी माता के हाथ से
पारितोषिक प्राप्त करने लगा । धीरे-धीरे वह ताम्रपण (तांबे का सिक्का) कार्पाण

भवात्वे छे—सर्वविरतिरूप पदने पावेला मुनि पृथ्वीकाय आदि नाना-नाना जिवाना
आरंभाने त्याग करवाभां जे प्रमादना कारहे थोडां पक्ष स्वलन (चुटी)नी उपेक्षा करे
छे, तो इरीने वधारे स्वलन करवाभां पक्ष संकोच करता नथी, मनोवृत्तिने अवेवा
नियम छे के—नीचे पडवा पछी वधारे नीचे पडी जथ छे, अे कारणुथी मुनिअेअे
अेवे प्रयत्न करवे जेअेअे के—जेनाथी संयमभां थोडुं पक्ष स्वलन नही छेअे ।

आ विषयभां दृष्टान्त कहे छे—

कौडि भाणके पोतानी बाल्यावस्थाभां अेक कौडी चोरीने पोतानी भातानी पास
राखी थीधी; माता तेने जेअेने राख थर्ध अने तेने इनाम आपवाना ठंगथी भाणकेने
मीठी वस्तु आपी, त्थार पछी ते भाणक बारंवार चोरी करवा लाग्ये, अने पोतानी
माता पासैथी (माताना हाथथी) इनाम भेजववा लाग्ये, धीरे धीरे ने ताम्रपण—तांबाना

ताम्रपण-कार्पापण-रूप्यक - दीनार-रत्न - स्वर्ण-मणि- माणिक्यादिहरणप्रवीणः
 कस्यचिन्मृगस्य कोशागारं प्रविष्टः । ततः प्रचण्डभुजदण्डकैस्तद्रक्षकैः सघोषणं धृतो
 राजान्तिकं समानीतः । तदपराधं विज्ञाय क्रोधाविष्टेन राज्ञा समादिष्टम्-अयं चौरः
 शूले समारोप्यताम्, इति ।

असौ पृष्टश्च राज्ञा-तव काचिदिच्छा वर्तते? चेद् ब्रूहि । चौरणोक्तम्-
 राजन् ! स्वमातुर्मिलनं प्रार्थयेः । अथ नृपाज्ञया तज्जननी तत्रागत्य मिलिता ।
 स चौरस्तत्र राज्ञः समक्षमेव सवेगमुत्थाय सत्वरं मातुर्नासिकां दन्तैश्चिच्छेत् ।
 ततोऽसौ राज्ञा पृष्टः-त्वया कथमेवं दुश्चरितमाचरितम् ? चौरोज्वदत्-इयमेव ममै-

(चौमन्नी) रुपया, दीनार (सुवर्ण-मुहर), रत्न, सुवर्ण, मणि, माणिक आदि चुराने में भी
 प्रवीण हो गया । वह किसी राजा के खजाने में घुसा । खजाने के बलवान् पहरेदारों ने उसे
 पकड़ लिया और राजा के सामने पेश किया । राजा उसका अपराध सुनकर क्रोधित हुआ,
 उसने आज्ञा दी-‘इस चोर को शूली पर चढ़ा दो’ ।

राजाने उस से पूछा-अगर तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो ।

चौरने कहा-‘महाराज ! मैं अपनी माता से मिलने की प्रार्थना करता हूँ ।

राजा की आज्ञा से चोर की माता वहाँ आकर मिली । चौरने राजा के सामने ही वेग
 के साथ उठ कर जल्दी से अपनी माता की नाक दांतों से काटली । यह देखकर राजाने
 पूछा-अरे ! तूने यह दुष्कर्म क्यों किया ?

सिद्धा, आर आनी, इपिया, सोना भंडार, रत्न, सोनुं, मणि, भाण्डुक आदि चौरवाभं
 प्रबु प्रवीण धर्ष गयो. (डेटदोड सभय जता) ते कोड रानना भलनाभां धुसी
 गयो. भलनाना अलवान् पहरेदारो रक्षकोअे तेने पकडी लीधो अने राननी सामे-
 डावर कथी. रान तेने अपराध सांभलीने कोधायमान थया, अने आशा आपी के
 अे चौरने शूली पर चढावी धी ।

रानअे तेने पूछ्युं के तारी कांछं छच्छा होय तो कडो.

चारे कछुं-‘महाराज ! हुं भारी माताने भगवानी प्रार्थना करूं छुं.’

राननी आशाथी चौरनी माता त्यां आगण आवी. अने चौरने भणी, चारे
 रानना सामेअ वेगशी अेकडभ उडीने ज्दहीथी चेतानी मातानुं नाक चेतानुं
 हांतथी कापी लीधुं. ते जेधने रानअे पूछ्युं-अरे ! ते आनुं दुष्कर्मं या आटे क्युं ?

तद्योरोत्तरदुःखमदशूलारोपणफलप्रदात्री प्राणापहर्त्री, न तु भवान् । इत्युक्त्वा सर्वं पूर्ववृत्तं राज्ञे विज्ञापयामास । ततः स्वकृतस्वैयकर्मणो विपाकं शूलारोपेण घोरतरवेदनां प्राप्नुवन्मृतः । तस्मात् स्वल्पोऽपि दोषो महाऽनर्थाय भवतीति विज्ञायात्मार्यिभिर्मुनिभिः संयमतः स्वल्पमपि स्वलनं यथा न भवेत् तथा वर्तितव्यम् ।

तपःसंयमे कदाचिदाकस्मिकस्वलनसंपातस्त्वन्य एव, स्वलनोपेक्षण-मप्यन्यदेव, यतः स्वलनोपेक्षया पुनरुत्तरोत्तरस्वलनवृद्ध्या साधुत्वमेव नश्यतीति विचिन्त्य जागरूकाः साधवो नवनवागन्तुकस्वलनपरंपराविरहिताः पूर्वजातस्वलन-

चोर—महाराज ! इसी के कारण मुझे घोर दुःख देने वाली शूली पर चढ़ना पड़ रहा है; यहाँ मेरे प्राण लेने वाली है, आप नहीं । यह कह कर चोरने अपना सम्पूर्ण पूर्व-वृत्तांत राजा को सुना दिया ।

तपश्चात् अपने किये चौर्य कर्म का घोरवेदनारूप फल—शूली पर चढ़नेरूप—को भोगता हुआ वह चोर मर गया ।

अत एव थोड़ा—सा भी दोष महान् अनर्थ का कारण बन जाता है, ऐसा समझकर आत्मकल्याण के अभिलाषी मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिस से संयम में तनिक भी स्वलन न हो ।

तप और संयम में कदाचित् अकस्मात् स्वलना की बात दूसरी है किन्तु स्वलना की उपेक्षा करना और बात है, उस का कारण यह है कि स्वलना की उपेक्षा करने से उत्तरोत्तर स्वलना बढ़ती ही चली जाती है, ऐसा विचार करके सदैव सावधान

चोर कहे—महाराज ! मे भाताना कारणे न भारे घोर दुःख आपवावाणी शूली उपर चढ़वानुं थाय छे, मे भारे प्राणु लेवावाणी छे, आप नहिं. आ प्रभाणे कहीने चारे पोतानी आगणी संपूर्णु हकीकत राजने संभगावी. ते पछी पोतानुं करेव चारीनुं कर्मनुं घोरवेदनाइप इव—शूली पर चढ़वानुं, ते लोगवतो थके ते चोर भरषु पाभ्ये.

अटले के—थोड़ा पक्ष दोष महान् अनर्थनुं कारणु पनी नथ छे. मे प्रभाणे समणे आत्मकल्याणना अभिलाषी मुनिओअे अेवो प्रयत्न करवो जेठअे के, जेनाथी संयममां थोडुंके पक्षु स्वलन न थाय.

तप अने संयममां केठ वप्रत अकस्मात् स्वलननी वात नुही छे. पक्षु स्वलननी उपेक्षा करवी ते भीण वात छे. तेनुं कारणु अे छे के—स्वलननी उपेक्षा करवाथी उत्तरोत्तर स्वलन (बल) वधनुं न नथ छे. अेवो विचार करीने सदैव—ह भेशां सावधान रहेवावाणा

ताम्रपण-कार्पाण-रूप्यक - दीनार-रत्न - स्पर्ण-मणि- माणिक्यादिहरणप्रवीणः
 कस्यचिन्वृत्तस्य कोशागारं प्रविष्टः । ततः प्रचण्डभुजदण्डकैस्तद्रक्षकैः सयोषणं धृतो
 राजान्तिकं समानीतः । तदपरार्थं विज्ञाय क्रोधाविष्टेन राज्ञा समादिष्टम्-अयं चौरः
 शूले समारोप्यताम्, इति ।

असौ पृष्टश्च राज्ञा-तव काचिदिच्छा वर्तते? चेद् ब्रूहि । चौरैर्णोक्तम्-
 राजन् ! स्वमातुर्मिलनं प्रार्थयेः । अथ नृपाज्ञया तज्जननी तत्रागत्य मिलिता ।
 स चौरस्तत्र राज्ञः समक्षमेव सवेगमुत्थाय सत्वरं मातुर्नासिकां दन्तैश्चिच्छेद ।
 ततोऽसौ राज्ञा पृष्टः-त्वया कथमेवं दुश्चरितमाचरितम् ? । चौरौऽवदत्-इयमेव ममै-

(चौअन्नी) रुपया, दीनार (सुवर्ण-मुहर), रत्न, सुवर्ण, मणि, माणिक्य आदि चुराने में भी
 प्रवीण हो गया । वह किसी राजा के खजाने में घुसा । खजाने के बलवान् पहरेदारों ने उसे
 पकड़ लिया और राजा के सामने पेश किया । राजा उसका अपराध सुनकर क्रोधित हुआ,
 उसने आज्ञा दी-'इस चोर को शूली पर चढ़ा दो' ।

राजाने उस से पूछा-अगर तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो ।

चोरने कहा-'महाराज ! मैं अपनी माता से मिलने की प्रार्थना करता हूँ ।

राजा की आज्ञा से चोर की माता वहाँ आकर मिली । चौरने राजा के सामने ही वेग
 के साथ उठ कर जल्दी से अपनी माता की नाक दांतों से काटली । यह देखकर राजाने
 पूछा-अरे ! तूने यह दुष्कर्म क्यों किया ?

सिद्धा, चार आनी, इमिआ, सोना भंडार, रत्न, सोतुं, भुषि, भाष्टुक आदि चोरवाभं
 पद्य प्रवीण थर्ध गयो. (डेटडोक सभय जता) ते कोथ रानना भननाभं धुसी
 गयो. भननाना भलवान् पडरेदारो रक्षकैः तेने पकडी लीधो अने राननी सामे-
 डाजर कर्यो. रान तेना अपराध सालणीने कोधायमान थया, अने आशा आपी डे
 अे चोरने शूली पर चढावी घो ।

रानअे तेने पूछ्युं डे तारी कांथं छच्छा डोय तो कडो.

चोरे कड्युं-'महाराज ! हुं भारी माताने भणवानी प्रार्थना करूं छुं.'

राननी आशाथी चोरनी माता त्यां आगण आवी. अने चोरने भणी, चोरे
 रानना सामेज वेगथी अेकडभ उडीने जदहीथी चोतानी मातानुं नाक चोतान्य
 दांतथी कापी लीधुं. ते नेधने रानअे पूछ्युं-अरे ! ते आवुं दुष्कर्म आ आटे कथुं ?

श्रुतं तत् कथयामि । स पृथिवीकायशस्त्रमसमारभमाणः परिज्ञातपृथिवीकर्म-
समारम्भो यथा संपूर्णोऽनगारो भवति, अपिच-यथाऽनगारो न भवति,
तद् द्वयमपि ब्रवीमि, वक्ष्यति च-‘अणगारामोत्ति एगे पवयमाणा’ इत्यादि ।
सावधकियाया गृहाश्रयत्वाद् गृहपरित्याग एव मुनित्वे प्रधानकारणमिति बोधनाय
साध्वादिशब्दं परित्यज्य ‘अनगार’-शब्दोपादानम् । कथं सर्वथाऽनगारो भवति ?
इत्याकाङ्क्षायामाह—

‘उज्जुकडे’ इति, ऋजुकृतः, अर्जयति क्षान्त्यादिगुणानिति ऋजुः ।
यद्वा-अर्जयति-सकलप्राणिगणहितं दयास्वभावमिति ऋजुः । यदिवा-अर्जयति=
यथावस्थितात्मस्वरूपं प्रापयतीति ऋजुः । यद्वा-अर्जयति=प्रापयति शाश्वतिकं

प्रकार पूर्ण अनगार होता है, और जिस प्रकार पूर्ण अनगार नहीं होता, ये दोनों बातें मैं
कहता हूँ-‘अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा’ इत्यादि सूत्र में आगे कहा जायगा ।

गृह में सावधकिया अवश्य होती है, अत एव गृह का त्याग करना ही मुनिपन
का प्रधान कारण है । यह बात प्रकट करने के लिए साधुवाचक अन्य शब्द छोड़कर
यहाँ अनगार शब्द का प्रयोग किया है । पूरा अनगार किस प्रकार बनता है, एसी आकांक्षा
होने पर कहने हैं-‘उज्जुकडे’ इति ।

उज्जुकडे का संस्कृत रूप है ‘ऋजुकृतः’ । क्षमा आदि गुणों को उपार्जन
करने वाला ऋजु कहलाता है । अथवा समस्त प्राणियों के हितरूप दया को उपार्जन
करने वाला ऋजु कहलाता है । अथवा आत्मा को अपने असली स्वरूप पर पहुंचाने

अणुवावाणा पुइध, ले प्रभाणे पूर्णं अणुगार थाय छे अने ले प्रभाणे पूर्णं अणु-
गार नथी थता, ते अन्ने वातो हुं कहुं छुं-‘अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा’ इत्यादि
सूत्रमां आगण कडेवामां आवशे.

घरमां सावधकिया अवश्य थाय छे अेटला भाटे घरनेा त्याग करवाे तेज मुनि-
पणुांनुं प्रधान कारण छे अे वात प्रगट-करवा भाटे साधुवाचक अन्य सण्ठ ल्यणने
अडिं ‘अनगार’ शब्दनेा प्रयोग करीं छे. पूरा अणुगार केवी रीते अने छे, अेवी
धच्छा थवाथी कडे छे—‘उज्जुकडे’ धति.

‘उज्जुकडे’नुं संस्कृत इप ‘ऋजुकृत’ थाय छे. क्षमा आदि गुणुांनुं उपार्जन
करवावाणा ऋजु (सरल-सिधा) कडेवाय छे अथवा समस्त प्राणीअेना हितरूप दयाने
उपार्जन करवावाणा ऋजु कडेवाय छे. अथवा आत्माने असल स्वरूप सुधी पडोअंयवा-

દોષમપનેતું શકતુવન્તિ । તદેવ વિશદયન્ સુધર્મા સ્વામી પ્રાહ-‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ ।

દ્વિતીયોદેશસમાપ્તો “જસેતે પુઠવિકમ્પસમારંભા પરિણાયા ભવંતિ સે હુ મુની પરિણાયકમ્મા” ઇત્યુક્તમ્ । અધુના તુ-ન ચ તાવતૈવ સર્વયા મુનિર્ભવિતુમર્હતિ । યથા ભવતિ તથા દર્શયિતું શ્રીસુધર્મા સ્વામી પ્રાહ-‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

સે વેમિ-સે જહાત્તિ અળગારે ઉજ્જુકઠે નિયાગપહિવળ્ણે અમાયં કુલ્લમાણે વિચાહિણ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ છાયા ॥

તદ્ બ્રવીમિ સ યથાપિ અનગાર ઋજુકૃતઃ નિયાગપતિપત્નઃ અમાયાં કુર્વાણો વ્યાખ્યાતઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ ટીકા ॥

‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ । તદ્ બ્રવીમિ યદન્યચ્ચ ભગવદન્તિકે મયા

રહને વાલે સાધુ નયી-નયી હોને વાલી સ્વલના કે દોષોં સે બચ સકતે હૈં । યહી વાત સ્પષ્ટ કરતે હુણ સુધર્મા સ્વામી આગે કહતે હૈં-‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ (ભગવાન્ કે મુખારવિન્દ સે જો સુના હૈ) સો કહતા હૈં-ઋજુકૃતઃ મોક્ષમાર્ગે મેં પ્રાપ્ત ઓર માયા ન કરને વાલ અનગાર કહા ગયા હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકાર્થ-ભગવાન્ કે સમીપ ઓર મોં જો સુના હૈ વહ કહતા હૈં । પૃથ્વીકાય કે વિષય મેં શસ્ત્ર કા આરંભ ન કરને વાલ પૃથ્વીકાય કે આરંભ કો જાનને વાલ પુરુષ જિસ સાધુ-નવી નવી થવાવાળી સ્ખલના દોષેથી બચી શકે છે, એ વાત સ્પષ્ટ કરીને સુધર્મા સ્વામી આગળ કહે છે-‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ.

બીજા ઉદ્દેશકની સમાપ્તિમાં કહ્યું હતું કે:-જે પુરુષ પૃથ્વીકાયના આરંભને જાણીને તેનો ત્યજી કરી આપે છે, તે મુનિ છે. આહિં એ બતાવવામાં આવે છે કે:-આટલું કરવા માત્રથી જ કોઈ પૂરી રીતે મુનિ થઈ શકતા નથી, મુનિ થવાને માટે બીજું -જે જે વાતોની (જાણવાની) આવશ્યકતા છે, તેને સુધર્મા સ્વામિ કહે છે-‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ-(ભગવાનના મુખારવિદ્યથી જે સાંભળ્યું છે) તે કહું છું.- ઋજુકૃત, મોક્ષમાર્ગમાં પ્રાપ્ત અને માયા નહિ કરવાવાળા અણગાર કહ્યા છે (૧)

ટીકાર્થ-ભગવાનની પાસેથી બીજું પણ જે સાંભળ્યું છે, તે કહું છું.- પૃથ્વીકાયના વિષયમાં શસ્ત્રનો આરંભ નહિ કરવાવાળા, પૃથ્વીકાયના આરંભને

તથા નિયાગપ્રતિપન્નઃ, નિ=નિશ્ચયેન યજતિ=સમ્યગ્ગમનં કુર્વન્તિ યત્ર સ નિયાગઃ=મોક્ષમાર્ગઃ જ્ઞાનક્રિયાલક્ષણઃ । યદ્વા-નિ=નિશ્ચયેન યજતિ=દદાતિ સિદ્ધિ- ગતિમિતિ નિયાગઃ=જ્ઞાનન્યાદિદશવિધો યતિધર્મઃ, તં પ્રતિપન્નઃ=પ્રાપ્તઃ ।

તથા 'અમાયાં કુર્વાણઃ' માયા=વીર્યાચારસંગોપનં પરવચ્ચનં વા, ન માયા અમાયા, તાં કુર્વાણઃ અનગારો વ્યાખ્યાતઃ=મગવતા કથિતઃ ।

અયં ભાવઃ--ન કેવલં પૃથ્વીશસ્ત્રસમારમ્ભમાત્રનિવૃત્ત્યાનગારો ભવતિ કિન્તુ યઃ સ્વલુ પૃથ્વીશસ્ત્રસમારમ્ભનિવૃત્તઃ પરિજ્ઞાતસકલસાવધકર્મા નિરવ-

અવ 'નિયાગપ્રતિપન્ન' શબ્દકા અર્થ કરતે હૈં । 'નિ' અર્થાત્ નિશ્ચય સે 'યાગ' અર્થાત્ સમ્યક્ ગમન જહૈં ક્રિયા જાતા હૈ ઉસે 'નિયાગ' યા મોક્ષમાર્ગ કહતે હૈ । જ્ઞાન ઓર ક્રિયા મોક્ષ કા માર્ગ હૈ ।

અથવા 'નિ' અર્થાત્ નિશ્ચય સે 'યાગ' અર્થાત્ સિદ્ધિગતિ દેને વાલા ક્ષમા આદિ દશ પ્રકાર કા યતિધર્મ 'નિયાગ' કહલાતા હૈ, એસે નિયાગ કો જો પ્રાપ્ત હો ચુકા હો વહ નિયાગપ્રતિપન્ન હૈ ।

તથા માયા અર્થાત્ વીર્યાચર કા ગોપન કરના યા દૂસરે કો ગોસ્વા દેના માયા હૈ । ઇસ માયા કા સેવન ન કરને વાલા જો વહી અનગાર હૈ, એસા મગવાન્ ને કહા હૈ ।

તાત્પર્ય યહ હૈ કિ--કેવલ પૃથ્વીશસ્ત્ર કે આરંભ કા ત્યાગ કર દેને માત્ર સે હી કોઈ અનગાર નહીં હો જાતા, ઘરન્ જો પૃથ્વીશસ્ત્ર કે આરંભ કા ત્યાગ કર કે સકલ

હવે 'નિયાગપ્રતિપન્ન' શબ્દનો અર્થ કરે છે. 'નિ' અર્થાત્ નિશ્ચયથી 'યાગ' અર્થાત્ સમ્યક્ગમન ન્યાં કરવામાં આવે છે. તેને નિયાગ અથવા મોક્ષમાર્ગ કહે છે. જ્ઞાન અને ક્રિયા મોક્ષનો માર્ગ છે. અથવા 'નિ' અર્થાત્ નિશ્ચયથી 'યાગ' અર્થાત્ સિદ્ધિગતિ આપવાવાળો ક્ષમા આદિ ઇસ પ્રકારનો યતિધર્મ 'નિયાગ' કહેવાય છે. એવા નિયાગને જે પ્રાપ્ત થઈ ચૂકયા છે, તે નિયાગપ્રતિપન્ન છે. તથા માયા અર્થાત્ વીર્યાચરનું ગોપન કરવું અથવા બીજાને ધોષો દેવો તે માયા છે. તે માયાનું સેવન નહિ કરવાવાળા જે હોય તે અણુગાર છે. એ પ્રમાણે લગવાને કહ્યું છે.

તાત્પર્ય એ છે કે--કેવલ પૃથ્વીશસ્ત્રના આરંભનો ત્યાગ કરી દેવા માત્રથીજ કોઈ અણુગાર થતા નથી. ધરન્તુ જે પૃથ્વીશસ્ત્રના આરંભનો ત્યાગ કરીને, સકલ સાવધ કરીને

શિવસ્થાનમિતિ - ઋજુઃ = વિપમમાવરહિતત્વાદ્ દુષ્પ્રણિહિતમનોવાકાયનિરોધરૂપઃ
સંયમઃ, સ કૃતઃ=અનુષ્ઠિતો યેન સ ઋજુકૃતઃ-મનોવાકાયજન્યસકલસાવધ-
ક્રિયાનિવૃત્ત ઇત્યર્થઃ ।

યદ્વા-સંપૂર્ણસંવરસ્વરૂપસંયમેન સંયમિના મોક્ષસ્થાનગમનાર્થે ઋજુગતિઃ
પ્રાપ્યતે, તત્ર ઋજુગતેઃ કારણં સંયમ ઇતિ કારણે કાર્યોપચારાત્સમદશ્ચવિધ-
સંયમોઽપિ ઋજુરિત્યુચ્યતે, સ કૃતઃ=સમાચરિતો યેનાસી ઋજુકૃતઃ કૃતસંપૂર્ણ-
સંયમાનુષ્ઠાન ઇત્યર્થઃ ।

વાલા ઋજુ કહલાતા હૈ । અથવા આત્મા કો શાશ્વત મોક્ષસ્થાન પર પહુંચાને વાલા ઋજુ
કહલાતા હૈ । અથવા ઋજુ કા અર્થ હૈ-સંયમ । મન, વચન, કાય કે સ્લોટે વ્યાપાર કો
રોકનારૂપ સંયમ હૈ । જિહ્ન ને ઇસા વ્યાપાર રોક દિયા હૈ વહ ઋજુકૃત કહલાતા હૈ ।
અર્થાત્ જો મન, વચન ઓર કાય સે હોને વાલી સમસ્ત સાવધ ક્રિયાઓ સે નિવૃત્ત હો ગયા
હો વહ 'ઋજુકૃત' હૈ ।

અથવા-સંપૂર્ણસંવરરૂપ સંયમ કે દ્વારા સંયમી મોક્ષ મેં ગમન કરને કે ળિષ્ટ
ઋજુગતિ પ્રાપ્તિ કરતા હૈ । ઇસ ઋજુગતિ કા કારણ સંયમ હૈ । અતઃ કારણ મેં કાર્ય કા
ઉપચાર કરને સે સત્રહ પ્રકાર કા સંયમ મી 'ઋજુ' કહલાતા હૈ । ડસ 'ઋજુ' અર્થાત્
સંયમ'કા જિસને આચરણ ક્રિયા હો વહ 'ઋજુકૃત' કહલાતા હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ પૂર્ણ
સંયમ કા અનુષ્ઠાન કરને વાલા ઋજુકૃત હૈ ।

વાળા ઋજુ કહેવાય છે. અથવા આત્માને શાશ્વત મોક્ષસ્થાન પર પહોંચાડવાવાળા
ઋજુ કહેવાય છે. અથવા ઋજુનો અર્થ છે સંયમ-મન, વચન અને કાયના ખોટા
વ્યાપારને રોકવા રૂપ સંયમ છે. જેણે એવો વ્યાપાર રોકી આપ્યો છે તે 'ઋજુકૃત'
કહેવાય છે. અર્થાત્ જે મન, વચન અને કાયથી થવાવાળી સમસ્ત સાવધ ક્રિયા-
ઓથી નિવૃત્ત થઈ ગયા હોય તે ઋજુકૃત છે.

અથવા-સંપૂર્ણસંવરરૂપ સંયમદ્વારા સંયમી મોક્ષમાં ગમન કરવા માટે
ઋજુગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. તે ઋજુગતિનું કારણ સંયમ છે. તેથી કારણમાં કાર્યનો
ઉપચાર કરવાથી સત્તર (૧૭) પ્રકારનો સંયમ પણ 'ઋજુ' કહેવાય છે તે ઋજુ
અર્થાત્ સંયમનું જેણે આચરણ કર્યું છે તે 'ઋજુકૃત' કહેવાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે
પૂર્ણ-સંયમનું અનુષ્ઠાન કરવાવાળા ઋજુકૃત છે.

તથા નિયાગપ્રતિપન્નઃ, નિ=નિશ્ચયેન યજતિ=સમ્યગ્ગમનં કુર્વન્તિ યત્ર સ નિયાગઃ=મોક્ષમાર્ગઃ જ્ઞાનક્રિયાલક્ષણઃ । યદ્વા-નિ=નિશ્ચયેન યજતિ=દદાતિ સિદ્ધિ-ગતિમિતિ નિયાગઃ=જ્ઞાન્ત્યાદિદશત્રિધો યતિધર્મઃ, તં પ્રતિપન્નઃ=પ્રાપ્તઃ ।

તથા 'અમાયાં કુર્વાણઃ' માયા=વીર્યાચારસંગોપનં પરવચ્ચનં વા, ન માયા અમાયા, તાં કુર્વાણઃ અનગારો વ્યાખ્યાતઃ=મગવતા ક્ષયિતઃ ।

અયં માવઃ-ન કેવલં પૃથિવીશસ્ત્રસમારમ્મમાત્રનિવૃત્ત્યાનગારો ભવતિ કિન્તુ યઃ સ્વલુ પૃથિવીશસ્ત્રસમારમ્મનિવૃત્તઃ પરિજ્ઞાતસકલસાવધકર્મા નિરવ-

અથ 'નિયાગપ્રતિપન્ન' શબ્દકા અર્થ કરતે હૈં । 'નિ' અર્થાત્ નિશ્ચય સે 'યાગ' અર્થાત્ સમ્યક્ ગમન જહૌ ક્રિયા જાતા હૈ ઉસે 'નિયાગ' યા મોક્ષમાર્ગ કહતે હૈ । જ્ઞાન ઓર ક્રિયા મોક્ષ કા માર્ગ હૈ ।

અથવા 'નિ' અર્થાત્ નિશ્ચય સે 'યાગ' અર્થાત્ સિદ્ધિગતિ દેને વાલા ક્ષમા આદિ દશ પ્રકાર કા યતિધર્મ 'નિયાગ' કહલાતા હૈ, એસે નિયાગ કો જો પ્રાપ્ત હો ચુકા હો વહ નિયાગપ્રતિપન્ન હૈ ।

તથા માયા અર્થાત્ વીર્યાચર કા ગોપન કરના યા દૂસરે કો ગોસ્વા દેના માયા હૈ । ઇસ માયા કા સેવન ન કરને વાલા જો વહી અનગાર હૈ, એસા મગવાન્ ને કહા હૈ ।

તાત્પર્ય યહ હૈ કિ-કેવલ પૃથ્વીશસ્ત્ર કે આરંભ કા ત્યાગ કર દેને માત્ર સે હી કોઈ અનગાર નહીં હો જાતા, વરન્ જો પૃથ્વીશસ્ત્ર કે આરંભ કા ત્યાગ કર કે સકલ

હવે 'નિયાગપ્રતિપન્ન' શબ્દનો અર્થ કરે છે. 'નિ' અર્થાત્ નિશ્ચયથી 'યાગ' અર્થાત્ સમ્યક્ગમન ત્યાં કરવામાં આવે છે. તેને નિયાગ અથવા મોક્ષમાર્ગ કહે છે. જ્ઞાન અને ક્રિયા મોક્ષનો માર્ગ છે. અથવા 'નિ' અર્થાત્ નિશ્ચયથી 'યાગ' અર્થાત્ સિદ્ધિગતિ આપવાવાળો ક્ષમા આદિ દસ પ્રકારનો યતિધર્મ 'નિયાગ' કહેવાય છે. એવા નિયાગને જે પ્રાપ્ત થઈ ચૂક્યા છે, તે નિયાગપ્રતિપન્ન છે. તથા માયા અર્થાત્ વીર્યાચરનું ગોપન કરવું અથવા ઓળખને ધોખો દેવો તે માયા છે. તે માયાનું સેવન નહિ કરવાવાળા જે હોય તે અણુગાર છે. એ પ્રમાણે સમજવાને કહ્યું છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-કેવલ પૃથ્વીશસ્ત્રના આરંભનો ત્યાગ કરી દેવા માત્રથી જ કોઈ અણુગાર થતા નથી. પરન્તુ જે પૃથ્વીશસ્ત્રના આરંભનો ત્યાગ કરીને, સકલ સાવધ કરીને

શેપસંયમાનુષ્ઠાનપટ્ટંતઃ સમાશ્રિતમોક્ષમાર્ગઃ કપૂરસ્વપ્ણવદન્તર્ચહિરેકરૂપતયા
સ્વવીર્યસંગોપન-પરવચ્ચનલક્ષણમાયાચારરહિતો ભવતિ સ एव वस्तुतोऽनगारो
વોદ્યવ્ય ઇતિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ઉક્તરૂપસ્થાનગારસ્ય કર્તવ્યમાદ—‘જાણ’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

જાણ સદ્ગણ નિક્ષંતો તમેવ અણુપાલિજ્ઞા વિજહિત્તા વિસોત્તિયં
પુન્વસંજોગં ॥ સૂ૦ ૨ ॥

॥ છાયા ॥

યયા શ્રદ્ધયા નિષ્ક્રાન્તસ્તામેવાનુપાલયેત્ વિશ્વોતસિકાં પૂર્વ-
સંયોગમ્ ॥ ૨ ॥

॥ ટીકા ॥

યયા શ્રદ્ધયા વિશ્વોતસિકાં=શક્તાં, સર્વશક્તાં દેશશક્તાં ચેત્યર્થઃ ।

સાવધ કાર્યો કા જ્ઞાતા હોતા હૈ ઓર પૂર્ણ સંયમ કે અનુષ્ઠાન મેં પ્રવૃત્ત હો. તથા મોક્ષમાર્ગ કા
આશ્રય લેતા હૈ । કપૂર કે ટુકડે કી મૈતિ મીતર-ચાહર ઇકસા ‘ઉગ્ગ્વલ હોને કે કારણ
અપની શક્તિ કા ગોપન નહીં કરતા ઓર દૂસરો કો ધોંસા નહીં દેતા અર્થાત્ માયાચાર સે
રહિત હોતા હૈ, ડસી કો વાસ્તવ મેં અનગાર સમજના ચાહિણ ॥ સૂ. ૧ ॥

ઉક્ત પ્રકાર કે અનગાર કા કર્તવ્ય બતલાતે હૈ—‘જાણ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ-શક્તા કાઠક્ષા આદિ કા ત્યાગ કર કે ઓર પૂર્વકાલીક સંયોગો કા ત્યાગ
કર કે જિસ શ્રદ્ધા કે સાથ નિકલા હૈ, ડસી શ્રદ્ધા કા નિરન્તર પાલન કરે ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકાર્થ—‘વિશ્વોતસિકા’ કા અર્થ હૈ શક્તા, શક્તા ડો પ્રકાર કી હૈ (૧) સર્વશક્તા

જ્ઞાતા-લાઘુનાર થાય છે. અને પૂર્ણ સંયમનાં અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્ત થાય છે, તથા મોક્ષ
માર્ગને આશ્રય લે છે. કપૂરના ટુકડાની માફક અંદર અને બહાર એકબી પ્રકારે ઉગ્ગ્વલ
હોવાના કારણે પોતાની શક્તિનું ગોપન કરતો નથી. અને બીજાને દગો દેતો નથી. અર્થાત્
માયાચારથી રહિત હોય છે, તેને વાસ્તવિક રીતે અણુગાર સમજવો જોઈએ. (સૂ. ૧)

ઉપર કહ્યા તેવા અણુગારનું કર્તવ્ય બતાવે છે—‘જાણ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—શંકા, કાંક્ષા વગેરેના ત્યાગ કરીને અને પૂર્વ કાલના સંયોગોના
ત્યાગ કરીને જે શ્રદ્ધાથી નિકળ્યા છે, તે શ્રદ્ધાનું નિરન્તર પાલન કરવું. (સૂ. ૨)

ટીકાર્થ—‘વિશ્વોતસિકા’નો અર્થ છે. શંકા, શંકા બે પ્રકારની છે—(૧) સર્વશંકા

“किमर्हतो मार्गोऽस्ति न वा” इति सर्वांगमविषयिका शङ्का सर्वशङ्का, तथा-
 “किमपकायादयो जीवाः सन्ति न वा” इति देशशङ्का ।

केवलालोकेन विलोक्य भगवता विशिष्य प्रवचने कथितत्वात् अपकायादयः
 सन्ति जीवाः, इति पूर्वा कोटिः, चेतनारूपात्मलक्षणस्य सुस्पष्टमनुपलब्धेर्न सन्ति
 अपकायादयो जीवाः, इत्युत्तरा कोटिः प्रादुर्भवति । पूर्वसंयोगं=मातापित्रादिसम्बन्धं,
 धनधान्यस्वजनादिसम्बन्धं वा ।

इदमुपलक्षणम्-तेन पश्चात्संयोगमपि श्वशुरादिकृतं विहाय=परित्यज्य
 निष्क्रान्तः=अनगारो जातः, तां श्रद्धाम् अनुपालयेदेव निरतिचारं रक्षेदित्यर्थः ।

और (२) देशशङ्का । अर्हन्त भगवान् द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तव में मोक्षमार्ग है
 या नहीं? ऐसी-शंका सर्वशङ्का है । अपकाय आदि के जाव हैं या नहीं? यह देश
 शङ्का है ।

भगवान् ने केवल ज्ञान से देखकर प्रवचन में अपकाय आदि के जीवों का
 अस्तित्व प्रगट किया है, यह शङ्का की पूर्वकोटि है । आत्मा का चेतनालक्षण स्पष्ट
 रूप से नहीं पाया जाता, अत एव अपकाय आदि अजीव हैं, वह शङ्का की दूसरी कोटि है ।

माता, पिता आदि का संबंध तथा धन; धान्य; स्वजन आदि का संबंध पूर्वसंयोग ।
 कदलता है । उपलक्षण से सास-ससुर आदि का संबंध पश्चात्संयोग कहलाता है । इन दोनों
 संयोगों की त्याग कर के जिस श्रद्धा के साथ अनगार हुआ है उसी श्रद्धा का पालन करे
 अर्थात् उस की निरतिचार रक्षा करे ।

अने (२) देशशंका ‘अर्हन्त भगवान् द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तविक रीति मोक्ष
 मार्ग छे के नहीं?’ आ प्रकारनी शंका ते सर्वशंका छे. अपकाय आदिना एव
 छे के नहीं?’ आ देशशंका छे.

भगवान् ने केवलज्ञान वडे जेधने प्रवचनमां अपकाय आदिना एवोनुं अस्तित्व
 प्रगट क्युं छे; आ शंकानी पूर्वकोटि छे. आत्मानुं चेतनालक्षण स्पष्टरूपथी जेवामां
 आवर्तु नथी तेथी अपकाय आदि अलव छे, आ शंकानी जील कोटि छे.

माता-पिता आदिना संबंध तथा धन, धान्य स्वजन आदिना संबंध पूर्व-
 संयोग छेवाय छे, उपलक्षणथी सासु, सासरा आदिना संबंध पश्चात्संयोग
 छेवाय छे. आ जन्ने संयोगना त्याग करीने जे श्रद्धाथी अलुगार थया छे, ते
 श्रद्धानुं पालन करे, अर्थात् तेनी निरतिचार (विना अतिचार) रक्षा करे.

शेषसंयमानुष्ठानप्रवृत्तः समाश्रितमोक्षमार्गः कर्पूरखण्डवदन्तर्बहिरेकरूपतया
स्ववीर्यसंगोपन-परवञ्चनलक्षणमायाचाररहितो भवति स एव वस्तुतोऽनगारो
बोद्धव्य इति ॥ सू० १ ॥

उक्तरूपस्यानगारस्य कर्तव्यमाह—‘जाए’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

जाए सद्भाए निक्खंतो तमेव अणुपालिज्जा विजहिता विसोत्तिथं
पुव्वसंजोगं ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

यया श्रद्धया निष्क्रान्तस्तामेवानुपालयेत् विस्त्रोतसिकां पूर्व-
संयोगम् ॥ २ ॥

॥ टीका ॥

यया श्रद्धया विस्त्रोतसिकां=शङ्कां, सर्वशङ्कां देशशङ्कां चेत्यर्थः ।

सावध कार्यों का ज्ञाता होता है और पूर्ण संयम के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो तथा मोक्षमार्ग का
आश्रय लेता है । कर्पूर के टुकड़े की भाँति भीतर-बाहर एकसा ‘उज्ज्वल होने के कारण
अपनी शक्ति का गोपन नहीं करता और दूसरों को धोखा नहीं देता अर्थात् मायाचार से
रहित होता है, उसी को वास्तव में अनगार समझना चाहिए ॥ सू. १ ॥

उक्त प्रकार के अनगार का कर्तव्य बतलाते हैं—‘जाए’ इत्यादि ।

मूलार्थ—शङ्का काङ्क्षा आदि का त्याग कर के और पूर्वकालीक संयोगों का त्याग
कर के जिस श्रद्धा के साथ निकला है, उसी श्रद्धा का निरन्तर पालन करे ॥ सू. २ ॥

टीकार्थ—‘विस्त्रोतसिका’ का अर्थ है शङ्का, शङ्का दो प्रकार की हैं (१) सर्वशङ्का

ज्ञाता-अणुनार थाय छे. अने पूछुं संयमनां अनुष्ठानमां प्रवृत्त थाय छे, तथा मोक्ष
मार्गना आश्रय ले छे. कर्पूरना टुकडानी भाक्क अंदर अने अहंर अेकल प्रकारे उज्ज्वल
डोवाना करछे पीतानी शक्तिंतुं गोपन करतो नथी. अने भीलने इगो देतो नथी. अर्थात्
मायाचारथी रहित डोय छे, तेने वास्तविके रीते अणुगार समभवो न्नेछे. (सू. १)

उपर कथा तेवा अणुगारनुं कर्तव्य अतावे छे—‘जाए’ इत्यादि.

मूलार्थ—शङ्का, कांक्षा वगैरेने त्याग करीने अने पूर्व कालना संयोगोना
त्याग करीने ले श्रद्धायी निष्कथा छे, ते श्रद्धानुं निरन्तर पालन करवुं. (सू. २)

टीकार्थ—‘विस्त्रोतसिका’नो अर्थ छे. शङ्का, शङ्का छे प्रकारनी छे—(१) सर्वशङ्का

“किमार्हतो मार्गोऽस्ति न वा” इति सर्वांगमविषयिका शङ्का सर्वशङ्का, तथा-
“किमपकायादयो जीवाः सन्ति न वा” इति देशशङ्का।

केवलालोकेन विलोक्य भगवता विशिष्य प्रवचने कथितत्वात् अपकायादयः
सन्ति जीवाः, इति पूर्वा कोटिः, चेतनारूपात्मलक्षणस्य सुस्पष्टमनुपलब्धेर्न सन्ति
अपकायादयो जीवाः, इत्युचरा कोटिः प्रादुर्भवति। पूर्वसंयोगं=मातापित्रादिसम्बन्धं,
धनधान्यस्वजनादिसम्बन्धं वा।

इदमुपलक्षणम्-तेन पश्चात्संयोगमपि श्वशुरादिकृतं विहाय=परित्यज्य
निष्क्रान्तः=अनगारो जातः, तां श्रद्धाम् अनुपालयेदेव निरतिचारं रक्षेदित्यर्थः।

और (२) देशशङ्का। अर्हन्त भगवान् द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तव में मोक्षमार्ग है
या नहीं? पेसी-शंका सर्वशङ्का है। अपकाय आदि के जाव हैं या नहीं? यह देश
शङ्का है।

भगवान्ने केवल ज्ञान से देखकर प्रवचन में अपकाय आदि के जीवों का
अस्तित्व प्रगट किया है, यह शङ्का की पूर्वकोटि है। आत्मा का चेतनालक्षण स्पष्ट
रूप से नहीं पाया जाता, अत एव अपकाय आदि अजीव हैं, वह शङ्का की दूसरी कोटि है।

माता, पिता आदि का संबंध तथा धन; धान्य; स्वजन आदि का संबंध पूर्वसंयोग।
कदलता है। उपलक्षण से सास-समुर आदि का संबंध पश्चात्संयोग कहलाता है। इन दोनों
संयोगों की त्याग कर के जिस श्रद्धा के साथ अनगार हुआ है उसी श्रद्धा का पालन करे
अर्थात् उस की निरतिचार रक्षा करे।

अने (२) देशशंका ‘अर्हन्त’ भगवान् द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तविक रीति मोक्ष
मार्ग छे के नहीं?’ आ प्रकारनी शंका ते सर्वशंका छे. अपकाय आदिना एव
छे के नहीं? आ देशशंका छे.

भगवान्ने केवलज्ञान वडे लोभने प्रवचनमां अपकाय आदिना एवोनुं अस्तित्व
प्रगट कथुं छे; आ शंकांनी पूर्वकोटि छे. आत्मानुं चेतनालक्षण स्पष्टरूपधी लेवामां
आवर्तुं नधी तेथी अपकाय आदि अएव छे, आ शंकांनी भील कोटि छे.

माता-पिता आदिना संबंध तथा धन, धान्य स्वजन आदिना संबंध पूर्व-
संयोग छेदेवाय छे, उपलक्षणधी सासु, सासरा आदिना संबंध पश्चात्संयोग
छेदेवाय छे. आ अन्ने संयोगना त्याग करीने ले श्रद्धाधी अणुगार तथा छे, ते
श्रद्धानुं पालन करे, अर्थात् तेनी निरतिचार (विना अतिचार) रक्षा करे.

“किमार्हतो मार्गोऽस्ति न वा” इति सर्वांगमविषयिका शङ्का सर्वशङ्का, तथा—
“किमपूकायादयो जीवाः सन्ति न वा” इति देशशङ्का ।

केवलालोकेन विलोक्य भगवता विशिष्य प्रवचने कथितत्वात् अपूकायादयः
सन्ति जीवाः, इति पूर्वा कोटिः, चेतनारूपात्मलक्षणस्य सुस्पष्टमनुपलब्धेर्न सन्ति
अपूकायादयो जीवाः, इत्युत्तरा कोटिः प्रादुर्भवति । पूर्वसंयोगं=मातापित्रादिसम्बन्धं,
धनधान्यस्वजनादिसम्बन्धं वा ।

इदमनुपलक्षणम्—तेन पश्चात्संयोगमपि श्वशुरादिकृतं विहाय=परित्यज्य
निष्क्रान्तः=अनगारो जातः, तां श्रद्धाम् अनुपालयेदेव निरतिचारं रक्षेदित्यर्थः ।

और (२) देशशङ्का । अर्हन्त भगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तव में मोक्षमार्ग है
या नहीं? ऐसी-शंका सर्वशङ्का है । अपूकाय आदि के जाव हैं या नहीं? यह देश
शङ्का है ।

भगवान्ने केवल ज्ञान से देखकर प्रवचन में अपूकाय आदि के जीवों का
अस्तित्व प्रगट किया है, यह शङ्का की पूर्वकोटि है । आत्मा का चेतनालक्षण स्पष्ट
रूप से नहीं पाया जाता, अत एव अपूकाय आदि अजीव हैं, वह शङ्का की दूसरी कोटि है ।

माता, पिता आदि का संबंध तथा धन; धान्य; स्वजन आदि का संबंध पूर्वसंयोग ।
कदलाता है । उपलक्षण से सास—ससुर आदि का संबंध पश्चात्संयोग कहलाता है । इन दोनों
संयोगों की त्याग कर के जिस श्रद्धा के साथ अनगार हुआ है उसी श्रद्धा का पालन करे
अर्थात् उस की निरतिचार रक्षा करे ।

अने (२) देशशंका ‘अर्हन्त भगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तविक रीते मोक्ष
मार्ग छे के नहीं?’ आ प्रकारनी शंका ते सर्वशंका छे. अपूकाय आदिना एव
छे के नहीं? आ देशशंका छे.

भगवान्ने केवलज्ञान वडे लोछने प्रवचनमां अपूकाय आदिना एवेतुं अस्तित्व
प्रगट कथुं छे; आ शंकानी पूर्वकोटि छे. आत्मानुं चेतनालक्षणु स्पष्टरूपधी जेवामां
आवतुं नधी तेधी अपूकाय आदि अशुव छे, आ शंकानी भील कोटि छे.

माता—पिता आदिना संबंध तथा धन, धान्य स्वजन आदिना संबंध पूर्व-
संयोग कडेवाय छे, उपलक्षणधी सासु, सासुरा आदिना संबंध पश्चात्संयोग
कडेवाय छे. आ अन्ने संयोगने त्याग करीने ले श्रद्धाधी अशुगार थया छे, ते
श्रद्धानुं पालन करे, अर्थात् तेनी निरतिचार (विना अतिचार) रक्षा करे.

शेषसंयमानुष्ठानमवृत्तः समाश्रितमोक्षमार्गः कर्पूरखण्डवदन्तर्बहिरैकरूपतया स्ववीर्यसंगोपन-परवञ्चनलक्षणमायाचाररहितो भवति स एव वस्तुतोऽनगारो बोद्धव्य इति ॥ सू० १ ॥

उक्तरूपस्यानगारस्य कर्तव्यमाह—'जाए' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

जाए सद्भाए निखंतो तमेव अणुपालिज्जा विजहिता विसोचियं पुव्वसंजोगं ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

यया श्रद्धया निष्क्रान्तस्तामेवानुपालयेत् विस्त्रोतसिकां पूर्व-संयोगम् ॥ २ ॥

॥ टीका ॥

यया श्रद्धया विस्त्रोतसिकां=शङ्कां, सर्वशङ्कां देशशङ्कां चेत्यर्थः ।

सावध कार्यों का ज्ञाता होता है और पूर्ण संयम के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो तथा मोक्षमार्ग का आश्रय लेता है । कर्पूर के टुकड़े की भाँति भीतर-बाहर एकसा उज्ज्वल होने के कारण अपनी शक्ति का गोपन नहीं करता और दूसरों को धोखा नहीं देता अर्थात् मायाचार से रहित होता है, उसी को वास्तव में अनगार समझना चाहिए ॥ सू. १ ॥

उक्त प्रकार के अनगार का कर्तव्य बतलाते हैं—'जाए' इत्यादि ।

मूलार्थ—शङ्का काङ्क्षा आदि का त्याग कर के और पूर्वकालीक संयोगों का त्याग कर के जिस श्रद्धा के साथ निकला है, उसी श्रद्धा का निरन्तर पालन करे ॥ सू. २ ॥

टीकार्थ—'विस्त्रोतसिका' का अर्थ है शङ्का, शङ्का दो प्रकार की हैं (१) सर्वशङ्का

ज्ञाता-अणुनार थाय छे. अने पूछुं संयमनां अनुष्ठानभां प्रवृत्त थाय छे, तथा मोक्ष मार्गना आश्रय ले छे. कर्पूरना टुकडोनी भाङ्क अंदर अने पडार ओकण प्रकारे उज्ज्वल होवना कारणे पोतानी शक्तिनु गोपन करतो नथी. अने भीजने दगो देतो नथी. अर्थात् मायाचारथी रहित होय छे, तेने वास्तविक रीते अणुगार समज्जेने छे. (सू. १)

उपर द्धया तेवा अणुगारनु कर्तव्य भतावे छे—'जाए' इत्यादि.

मूलार्थ—शंका, काङ्क्षा वगैरेना त्याग करीने अने पूर्व कालना संयोगाना त्याग करीने जे श्रद्धाथी निकल्या छे, ते श्रद्धानु निरन्तर पालन करवुं. (सू. २)

टीकार्थ—'विस्त्रोतसिका'ना अर्थ छे. शंका, शंका जे प्रकारनी छे—(१) सर्वशंका

अस्या लक्षणं तु शमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाऽऽस्तिक्यानां प्रादुर्भावः । तत्र वीतरागप्रणीतप्रवचनतत्त्वाभिनिवेशवशेनाऽनन्तानुबन्धिकपायाणामनुदयः शम इत्युच्यते । यद्वा विषयासक्तिनिवृत्तिः शमः ।

तथा संवेगः=जिनप्रवचनानुसारेण नरकादिगतिषु ननाविधदुःखावलो-
कनाद्भयम्, यथा स्वकृतकर्मोदयान्नरकेषु-क्षेत्रजन्यशीतोष्णादिदशविधवेदनासहनं,
परमाधार्मिकदेवकृतं, परस्पोदीरितं चेति त्रिविधं दुःखं, तथा तिर्यक्षु-ताडन-
तर्जन-क्षुत्पिपासा-पारवश्य-भारारोपणाद्यनेकविधं दुःखं, मनुष्येषु-दारिद्र्य-

शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य का प्रकट हो जाना श्रद्धा का चिह्न है ।

वीतरागद्वारा प्ररूपित प्रवचन के तत्त्व में गाढ़ी प्रीति होने से अनन्तानुबंधी कपायों का (क्रोध, मान, माया, लोभ, का) उदय न होना शम कहलाता है । अथवा विषयों के प्रति आसक्ति हट जाना 'शम' है ।

जिन भगवान् के वचन के अनुसार नरक आदि गतियों में नाना प्रकार के दुःखों को जानकर उन से भयभीत होना 'संवेग' है । जैसे—"अपने किये कर्मों के उदय से नरकों में क्षेत्रजन्य शीत-उष्ण (सर्दी-गर्मी) आदि दश प्रकार की वेदना, परमाधामी देवों द्वारा दीजाने वाली वेदना और परस्पर नारकी जीवों द्वारा होने वाली वेदना, नरक में यह तीन तरह की वेदना है । तिर्यचों में ताडना, तर्जना, भूख, प्यास, पराधीनता, बोझा ढोना आदि अनेक प्रकार की वेदना है । मनुष्यों में दरिद्रता,

शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा अने आस्तिक्य वगैरे प्रकट थछ जय ते श्रद्धासुं चिह्न छे.

वीतरागद्वारा प्ररूपित प्रवचननां तरवोभां सञ्जड प्रीति यथाधी अनन्तानु-
बन्धी कपायोऽनो (क्रोध, मान, माया, लोभानो) उदय थाय नछि ते शम कडेवाय
छे. अथवा विषयो प्रति आसक्ति छडी जय ते शम छे.

जिन भगवानना वचन-अनुसार नरक आदि गतिओभां नाना प्रकारना दुःखोने
जण्णी ने तेनाधी लयलीत थछु ते 'संवेग' छे. जेभके-"पोताना कशेलां कर्मोना उदयथी
नरकोभां क्षेत्रजन्य शीत-उष्ण (सर्दी-गर्मी) आदि दस प्रकारनी वेदना, परमाधामी देवो
द्वारा जे थाय छे ते वेदना, अने परस्पर नारकी जीवो द्वारा थनारी वेदना, नरकभां आ
भ्रमां जे त्रय प्रकारनी वेदना छे. तिर्यचोभां ताडना, तर्जना (भारसुं-तरछोडसुं) भूख, तरस,
पराधीनता, जेज्ज उपाडवा आदि अनेक प्रकारनी वेदना छे. मनुष्योभां दरिद्रता, दुर्लाज्य,

નનુ કા નામ શ્રદ્ધા, યયા ત્રિનાજ્નગારત્વં નોપલભ્યતે ? ઉચ્યતે—જીવાદિતત્ત્વેષુ શ્રદ્ધાનં, રુચિઃ, અભિપ્રીતિઃ, સમ્યગ્દર્શનં શ્રદ્ધા, 'एतत्तत्त्वमेवमेवे'—ત્યવધારણમ્, "તમેવ સચ્ચં નીસંકં જં જિણેહિં પવેહયં" ઇતિ વચનાનુસ્મરણેન જગદેકવન્ધુના વીતરાગેણ ભગવતા યથા કથિતં તથૈવેદં જીવાદિતત્ત્વં સત્યમિતિ નિશ્ચય ઇતિ યાવત્ ।

યદા મિથ્યાત્વમોહનીયકર્મણ ઉપશમાત્ ક્ષયોપશમાત્ ક્ષયાદા આત્મનોઽપૂર્વા જ્ઞાનાવસ્થા જાયતે, આવિલસલિલસ્ય કતકફલચૂર્ણસંયોગાત્સ્વચ્છતાવત્ સૈવ શ્રદ્ધા ।

શંકા—યદ શ્રદ્ધા કૌન—સી હૈ જિસ કે વિના સાધુપન નહી રહ સકતા !

સમાધાન—જીવાદિ તત્ત્વો પર શ્રદ્ધા કરના, રુચિ હોના, અભિપ્રીતિ હોના, યદ સમ્ય-દર્શન—શ્રદ્ધા હૈ । 'यह तत्त्व ऐसा ही है' ઇસ પ્રકાર પક્કા નિશ્ચય કરના શ્રદ્ધા હૈ । 'जिन भगवान् ने जो कहा है वही सत्य और संदेह-रहित है' ઇસ વચન કે અનુસાર યદ નિશ્ચય કરના કિં જગત કે અદ્વિતીય વન્ધુ વીતરાગ ભગવાન્ ને જૈસા નિરૂપણ ક્રિયા હૈ, ઊસી પ્રકાર જીવાદિતત્ત્વ સત્ય હૈ । યદ શ્રદ્ધા કા સ્વરૂપ હૈ ।

અથવા—મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મ કે ઉપશમ સે, ક્ષયોપશમ સે અથવા ક્ષય સે આત્મા કી એક અપૂર્વ જ્ઞાનાવસ્થા ઉત્પન્ન હોતી હૈ । જૈસે—મલિન જલ મેં કતકફલ કા ચૂર્ણ ઢાલને સે જલ સ્વચ્છ હો જાતા હૈ । એસી સ્વચ્છ—નિર્મલ આરમદશા શ્રદ્ધા કહલાતી હૈ ।

શંકા—તે શ્રદ્ધા કેવી છે, કે જેના વિના સાધુપણું રહી શકે નહિ ?

સમાધાન—જીવાદિ તત્ત્વો પર શ્રદ્ધા કરવી, રૂચિ થવી, અભિપ્રીતિ થવી, તે સમ્યગ્દર્શન શ્રદ્ધા છે, "આ તત્ત્વ આપુંજ છે" એ પ્રમાણે પાકો નિશ્ચય કરવો તે શ્રદ્ધા છે. "जिन भगवान् ने जो कथुं छे ते सत्य अने संदेह-रहित छे" એ વચન પ્રમાણે એ નિશ્ચય કરવો કે જગતના અજ્ઞેડ વન્ધુ વીતરાગ ભગવાને જેવું નિરૂપણું કથું છે, તે પ્રમાણે જીવાદિ તત્ત્વ સત્ય છે. આ શ્રદ્ધાતું સ્વરૂપ છે

અથવા—મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના ઉપશમથી, ક્ષયોપશમથી, અથવા ક્ષયથી આત્માની એક અપૂર્વ જ્ઞાનાવસ્થા ઉત્પન્ન થાય છે. જેમ મલીન પાણીમાં કતકફળ-નિર્મળીકણતું ચૂર્ણ નાંખવાથી જલ સ્વચ્છ થઈ જાય છે. એવી સ્વચ્છ—નિર્મલ આરમદશા શ્રદ્ધા કહેવાય છે.

“संवेगेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ । अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ । अणंताणुबंधिकोहमाणमायालोभे खवेइ । नवं च कम्मं न बंधइ । तप्पच्चइयं ष णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ । दंसणविसोहीए य णं विमुद्धाए अत्थेगइए तैणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ । विसोहीए य णं विमुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं नाहकमइ ॥ ” (उत्तरा० अ० २९)

छाया—“संवेगेन भदन्त ! जीवः किं जनयति ? संवेगेन अनुत्तरां धर्मश्रद्धां जनयति । अनुत्तरया धर्मश्रद्धया संवेगो हव्यमागच्छति, अनन्तानुबन्धि-क्रोधमान-मायालोभान् क्षपयति, नवं च कर्म न बध्नाति, तत्प्रत्ययिकां च खलु मिथ्यात्वविशोधिं कृत्वा दर्शनाराधको भवति, दर्शनविशोध्या च खलु विशुद्धया अप्येककस्तेनैव भव-ग्रहणेन सिद्धयति । विशोध्या च खलु विशुद्धया तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति ॥ ”

सुदेव-सुगुरु-सुधर्मेषु निश्चलानुरागरूपेण संवेगेन उत्कृष्टतमां धर्मश्रद्धां

“भगवान् ! संवेग से जीव को क्या लाभ होता है ?

संवेग से सर्वश्रेष्ठ धर्मश्रद्धा उत्पन्न होती है, और धर्मश्रद्धा से संवेग शीघ्र उत्पन्न हो जाता है । अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का वह क्षय करता है । नवीन कर्मों का बंध नहीं करता, और इन कारणों से मिथ्यात्व की विशुद्धि कर के जीव दर्शन का अराधक होता है । दर्शनविशुद्धता बढ़जाने से कोई-कोई जीव उसी भव में सिद्ध हो जाता है, अगर कोई उसी भव में मोक्ष न जावे तो तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता, अर्थात् तीसरे भव में वह अवश्य मोक्ष जाता है ” । —(उत्तराध्ययन अ. २९)

“सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में निश्चल अनुरागरूप संवेग से जीव को सर्वोत्कृष्ट

“लगवन् संवेगथी एवने शुं लाभ थाय छे ?” संवेगथी सर्वश्रेष्ठ धर्मश्रद्धा उत्पन्न थाय छे, अने धर्मश्रद्धाथी संवेग शीघ्र उत्पन्न थाय छे. अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया अने दोलनो ते क्षय करे छे. नवीन कर्मोना बंध करतो नथी, अने अने कारणोथी मिथ्यात्वनी विशुद्धि करीने एव दर्शनोना आराधक थाय छे. दर्शनविशुद्धता वधी जवाथी कोह-कोह अने लवमां सिद्ध थथ नथ छे; कोह अने लवमां मोक्षे न जाय तो तीसरे लवन् उल्लंघन करता नथी, अर्थात् तीसरे लवमां ते अपश्य मोक्षे नथ छे.” (उत्तरा० अ. २९)

सुदेव, सुगुरु अने सुधर्ममां निश्चल अनुरागरूप संवेगथी एवने सर्वोत्कृष्ट

દૌર્ભાગ્ય-જન્મ-જરા-મરણ-રોગ-શોક-સન્તાપાદિ, દેવેષુ-ઈર્ષ્યા-વિપાદ-પરમેષ્ય-ત્વાદિદુઃખં જીવા અનુભવન્તિ, તસ્માદ્-‘યયા મમેદ્યં દુઃખં ન સ્યાત્ તથા યત્નં કરોમિ’ ઇત્યાકારક આત્મિકપરિણામઃ સંવેગઃ ।

યદ્વા-સુદેવ-સુગુરુ-સુધર્મેષુ નિશ્ચલોઽનુરાગઃ સંવેગઃ । ઉક્તञ्च—

“તથ્યે ધર્મે ઘ્વસ્તર્હિસાપવન્થ્યે, દેવે રાગદ્વેષમોહાદિમુક્તે ।

સાધૌ સર્વગ્રન્થસન્દર્ભહીને, સંવેગોઽસૌ નિશ્ચલો યોઽનુરાગઃ ॥ ૧ ॥” ઇતિ ।

આગમોઽપ્યત્રાર્થે પ્રમાણમ્—

જન્મ, જરા, મરણ, રોગ, શોક, સન્તાપ આદિ ક્ષી વેદના હે । દેવોં મેં-ઈર્ષ્યા, વિપાદ, આજ્ઞા-પાલન આદિ કે દુઃખ હેં । જીવ ઇન દુઃખોં કા અનુભવ કરતે હેં, અત ઇવ મેં ઇસા પ્રયત્ન કરૂં કિ-જિસ સે મુક્તે ઇસ પ્રકાર કે દુઃખ ન મુગતને પડે ” । ઇસ પ્રકાર કા આત્મા કા પરિણામ ‘સંવેગ’ કહલતા હે ।

અથવા સુદેવ, સુગુરુ ઓર સુધર્મ મેં અચલ અનુરાગ હોના ‘સંવેગ’ કહલતા હે । કહા મી હે—

“હિંસા આદિ ક્ષી પરમ્પરા સે રહિત સન્થે ધર્મ મેં, રાગ દ્વેષ ઓર મોહ આદિ સે રહિત દેવ મેં, તથા સવ પ્રકાર કે પરિગ્રહ સે રહિત ગુરુ-સાધુ મેં નિશ્ચલ અનુરાગ હોના સંવેગ હે” ॥ ૧ ॥

ઇસ વિષય મેં આગમ પ્રમાણ મી હે—

જન્મ, જરા, મરણ, રોગ, શોક, સન્તાપ આદિની વેદના છે. દેવોંમાં ઈર્ષ્યા, વિપાદ, (શોક) આજ્ઞાપાલન આદિનાં દુઃખોં છે. જીવ આ દુઃખોંનો અનુભવ કરે છે. તે કારણથી હું ઓવો પ્રયત્ન કરું કે-જેથી મને આ પ્રકારનું દુઃખ લોગવવું પડે નહિ.” આ પ્રકારનું આત્માનું પરિણામ તે સંવેગ કહેવાય છે.

અથવા સુદેવ, સુગુરુ અને સુધર્મમાં અચલ અનુરાગ-પ્રીતિ થવો તે સંવેગ કહેવાય છે. કહું પણ છે કે:-

“હિંસા આદિની પરમ્પરાથી રહિત સાચા ધર્મમાં, રાગ દ્વેષ અને મોહ આદિથી રહિત દેવમાં, તથા સર્વ પ્રકારના પરિગ્રહથી રહિત ગુરુ-સાધુમાં નિશ્ચલ અનુરાગ થવો તે સંવેગ છે.” ॥ ૧ ॥

આ વિષયમાં આગમ પ્રમાણ પણ છે:-

कामभोगाध्यवसायः खलु दुरन्तोऽनन्तदुःखफलदश्च, परलोकेऽप्यतिकटुको नरकादि-
जन्मफलप्रदः, इत्यतो न किञ्चित्प्रयोजनमनेन कामभोगाध्यवसायेन, परित्याज्य
एवायमतिप्रयत्नेन' इत्येवंरूप आत्मकपरिणामो निर्वेदः ।

उक्तं च निर्वेदस्वरूपं तत्फलं च, तथाहि—

“ निव्वेएणं भंते! जीवे किं जणयइ? निव्वेएणं दिव्यमाणुसतेरिच्छिएसु
कामभोगेसु निव्वेयं इव्वमागच्छइ । सव्वविसएसु विरज्जइ । सव्वविसएसु विरज्जमाणे
आरंभपरिच्चायं करेइ । आरंभपरिच्चायं करेमाणे संसारमगं चोच्छिइइ, सिद्धिमगं
पडिवन्ने य इवइ । ” (उत्तरा० अ. २९)

आसक्ति न होना 'निर्वेद' है । 'कामभोगसम्बन्धी अध्यवसाय' इस लोक में अत्यन्त दुःख-
दायक है, और परलोक में भी अत्यन्त कटुक नरक आदिरूप फल देने वाला है, अत एव
कामभोगसंबन्धी अध्यवसाय से मुझे क्या लेन-देन है । इसे खूब परिश्रम कर के त्याग ही
देना चाहिए । इस प्रकार का आत्मिक परिणाम 'निर्वेद' कहलाता है । निर्वेद का स्वरूप
और फल इस प्रकार कहा गया है:—

“ भगवन् ! निर्वेद से जीव को क्या लाभ होता है ? निर्वेद से जीव को देवता मनुष्य
और तिर्यच संबन्धी काम भोगों में शीघ्र ही विरक्ति उत्पन्न होती है । सब विषयों से जीव
विरक्त होकर आरम्भ का परित्याग करता है । आरम्भ का परित्याग करता हुआ संसारमार्ग
को त्यागता है और मोक्षमार्ग को अंगीकार करता है ” ।—(उत्तरा. अ. २९)

विषयोभां आसक्तिं धाय नहि ते निर्वेदो छे. ' कामभोगसम्बन्धी अध्यवसाय आ लोकोभां
अत्यन्त दुःखदायक छे, अने परलोकोभां पणु अत्यन्त कटुक नरकगति आदि इप इण
देवावाणा छे, ओठला भाटे कामभोगसम्बन्धी अध्यवसायधी भारे शुं लेवा देवा छे.
तेने भूष परिश्रम करीने त्यल देवा जेधंजे.' आ प्रकारनुं आत्मिक परिणाम ते
निर्वेद कडेवाय छे. निर्वेदनुं स्वइप अने इल आ प्रकारे कहुं छे—

“ भगवन् ! निर्वेदधी एवने शुं लाल थाय छे ?

निर्वेदधी एवने देवता, मनुष्य अने तिर्यचसम्बन्धी कामभोगोभां शीघ्र
विरक्ति उत्पन्न थाय छे. सर्वविषयोधी एव विरक्त थधं जय छे. सर्व विषयोधी
विरक्त थधंने आरंभने परित्याग करतो थडे। संसारमार्गने त्यल दे छे. अने
मोक्षमार्गने अंगीकार करे छे. ” (उत्तरा० अ० २९)

जीवो जनयति । तथा च नरकादिभवेषु घोरतरबहुतराशातवेदनामवलोक्य तद्भयान्मोक्षमार्गं शरणीकृत्य मोक्षाभिलाषरूपं संवेगं शीघ्रं प्राप्नोति । अनन्तानुबन्धिकृपायान् क्षपयति, नवीनं कर्म न वध्नाति, तेन मिथ्यात्वं क्षपयित्वा क्षायिकशुद्धसम्यक्त्वं निरतिचारेण पालयति । एवमतिनिर्मलया सम्यक्त्वविशुद्ध्या कश्चिद्भव्यजीवस्तेनैव भवग्रहणेन सिद्धिं प्राप्नोति । एकः पुनः सम्यक्त्वस्य निर्मलया विशुद्ध्या तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति । मिथ्यात्वमोहनीयकर्मणो निरवशेषक्षयात् शुद्धक्षायिकसम्यक्त्ववान् भवत्रयमध्ये मोक्षं प्राप्नोत्येवेत्यर्थः ।

तथा निर्वेदः—आर्हतवचनाभिनिवेशात्सर्वविषयेषु—अनासक्तिः, 'इह—अलोके

श्रद्धा उत्पन्न होती है । उस श्रद्धा से नरक आदि गतियों में घोर और बहु असाता की वेदना देखकर तथा उस वेदना के भय से मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर मोक्षाभिलाषा—रूपी संवेग को शीघ्र ही स्वीकार कर लेता है । वह अनन्तानुबंधी कपायों का क्षय करता है और नवीन कर्म के बंध को रोक देता है । मिथ्यात्व का क्षय कर के शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करता है । इस प्रकार अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धि के कारण कोई—कोई भव्य जीव उसी भव में मुक्त हो जाता है, और कोई—कोई तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करता अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से शुद्धक्षायिकसम्यक्त्वी जीव तीन भवों में अवश्य मोक्ष पाता है ।

अर्हन्त भगवान् के प्रवचन में प्रगाढ प्रीति होने के कारण सब इन्द्रिय-विषयों में

श्रद्धा उत्पन्न थाय छे, अे श्रद्धाथी नरक आदि गतिओमां घोर अने बहुअ असातानी वेदना जेधने. तथा अे वेदनाना अथथी मोक्षमार्गने आश्रय लधने मोक्षाभिलाषारूपी संवेगने शीघ्रज स्वीकार करी ले छे. ते अनन्तानुबंधी कपायने क्षय करे छे. अने नवीन कर्मना अंधने रोडी-हे छे. मिथ्यात्वने क्षय करीने शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वनुं निरतिचार पालन करे छे. आ प्रभाजे अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धिना कारणे कोई-कोई अण्य एव अेअ अवमां मुक्त थध जाय छे, अने कोई-कोई त्रीज अवनुं उल्लंघन करता नथी. अथोत् मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना संपूर्णक्षयथी शुद्धक्षायिकसम्यक्त्वी एव त्रषु अवमां अवश्य मोक्षने प्राप्त करे छे.

अर्हन्त भगवान् के प्रवचनमां प्रगाढ-संलग्न प्रीति होवना कारणे सर्व इन्द्रियेना

मार्यमाणप्राणिनां प्राणसंकटान्मोचनं च ।

आस्तिक्यम्—जिनप्रणीतागमानुसारेण 'अस्ति जीवादिपदार्थसार्थः' इति मतिर्यस्य स आस्तिकः, तस्य भावः आस्तिक्यम् । 'जिनेन्द्रप्रवचनोपदिष्टा जीवपरल्लोकादयः सर्वेऽतीन्द्रियाः पदार्थाः सन्ति' इत्येवंरूप आत्मपरिणामः ।

एभिः श्रमसंवेगादिभिर्भग्यानां श्रद्धाऽवबुध्यते ।

। मिथ्यादृष्टेरपि श्रद्धामाप्तिः—

श्रद्धा निसर्गादधिगमाद्वा जायते । उक्तञ्च—

“सम्मदंसणे दुविहे पणत्ते तंजहा—निसग्गसम्मदंसणे चैव अधिगम-

संकट से छुड़ाना—अनुकम्पा है ।

'आस्तिक्य'—“जिनप्रणीत आगम के अनुसार जीवादि पदार्थों का अस्तित्व है ” । एसी “जिस की मति हो वह 'आस्तिक' है । आस्तिकपन को 'आस्तिक्य' कहते हैं । जिनप्रवचन में उपदिष्ट जीव, परलोक आदि सभी अतीन्द्रिय पदार्थ हैं ” इस प्रकार का आत्म-परिणाम 'आस्तिक्य' है ।

इन श्रम संवेग आदि से भग्यों के सम्यक्त्व का पता लगता है ।

मिथ्यादृष्टि को श्रद्धामाप्ति

जिस ? (स्वभाव) से अथवा अधिगम (किसी के द्वारा सुनने आदि) से श्रद्धा उत्पन्न होती है । कहा भी है—

“सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है—निसर्ग—सम्यग्दर्शन और अधिगम-

संकटधी छोड़ाववा ते अनुकम्पा छे.

आस्तिक्य—“ जिनप्रणीत आगम अनुसार एवादि पदार्थोंनु अस्तित्व छे.” जेवी जेनी भति छे. ते आस्तिक छे. आस्तिकपणुने 'आस्तिक्य' कहे छे. 'जिन प्रवचनमां उपदिष्ट एव, परलोक आदि सर्व अतीन्द्रिय पदार्थ' छे. आ प्रकारनां आत्मपरिणाम ते आस्तिक्य छे.

आ श्रम, संवेग, आदिधी लब्धेना सम्यक्त्वनेो पतो लागे छे.

मिथ्यादृष्टिने श्रद्धानी प्राप्ति

निसर्ग (स्वभाव)धी अथवा अधिगम (कोईना द्वारा सांलगवुं आदि)धी श्रद्धा उत्पन्न थाय छे. कहुं पणु छे के—

“सम्यग्दर्शन जे प्रकारनुं कहुं छे—निसर्ग—सम्यग्दर्शन अने (२) अधिगम-
प्र. भा.-६१

‘કદાઽહં સંસારં પરિત્યજેયમ્ ?’ इत्येवंरूपेण निर्वेदेन दिव्यमानुषतैरशेषु कामभोगेषु निर्वेदम्=अनासक्तिं जीवः शीघ्रं प्राप्नोति । इममेवार्थं स्पष्टयति-सर्वविषयेषु विरज्यते-‘अलमैतैरनर्थहेतुभूतैर्विषयैः’ इत्येवंरूपं वैराग्यं प्राप्नोति । वैराग्यं प्राप्तश्च सावधव्यापारं परित्यजति । तत्परित्यागं कुर्वन् संसारमार्गं=मिथ्यात्वाविरतिप्रभृतिरूपं व्यवच्छिनत्ति, संसारमार्गव्यवच्छेदे च जीवः सिद्धिमार्गं=सम्यग्दर्शनादिरूपं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

अनुकम्पा-अनु=अनुकूलं कम्पनं=रक्षणचेष्टाकरणमनुकम्पा=जिनप्रवचनानुसारेणजीवानामुपरि कारुण्यं, प्राणातिपाताकरणं, परदुःखनिवारणं, त्रियमाण-

‘कच मैं संसार का त्याग करूँ ?’ इस प्रकार के निर्वेद से जीव को देव मनुष्य और तिर्यच संबंधी काम भोगों में अनासक्ति प्राप्त होती है । इसी विषय को स्पष्ट करते हैं कि-जीव सब विषयों से विरक्त हो जाता है, अर्थात् ‘इन अनर्थ के कारणभूत विषयों से बस करो !’ इस प्रकार का वैराग्य पाता है । वैराग्य पाकर जीव सावध व्यापार का त्याग कर देता है । सावध व्यापारका त्याग करता हुआ मिथ्यात्व अविरति आदि संसारमार्ग को छोड़ता है और संसारमार्ग का त्याग कर के सम्यग्दर्शन आदिरूप मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लेता है ।

‘अनु’ अर्थात् अनुकूल ‘कम्पन’ अर्थात् रक्षा करने की चेष्टा करना-अनुकम्पा है । अर्थात् जिन भगवान् के उपदेश के अनुसार जीवों पर करुणाभाव होना, किसी के प्राणों का वियोग न करना, दूसरों का दुःख दूर करना, मरते हुए और मारे जाते हुए प्राणियों को प्राण-

‘હું કયારે સંસારને ત્યાગ કરું ?’ આ પ્રકારના નિર્વેદથી જીવને દેવ, મનુષ્ય અને તિર્યચ સમ્બન્ધી કામભોગોમાં અનાસક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે, તે વિષયને સ્પષ્ટ કરે છે કે:-જીવ સર્વ વિષયોથી વિરક્ત થઈ બંધ છે. અર્થાત્ આ અનર્થના કારણભૂત વિષયોથી બસ કરો ?’ આ પ્રકારનો વૈરાગ્ય પામે છે. વૈરાગ્ય પામીને જીવ સાવધ વ્યાપારનો ત્યાગ કરી દે છે. સાવધ વ્યાપારનો ત્યાગ કરતો થકો મિથ્યાત્વ, અવિરતિ આદિ સંસારમાર્ગને છોડે છે, અને સંસારમાર્ગનો ત્યાગ કરીને સમ્યગ્દર્શન આદિરૂપ મોક્ષમાર્ગને પ્રાપ્ત કરી લે છે.

અનુ અર્થાત્ અનુકૂલ, કમ્પન અર્થાત્ રક્ષા કરવાની ચેષ્ટા કરવી તે અનુકમ્પા છે. અર્થાત્-જિન ભગવાનના ઉપદેશ પ્રમાણે જીવો પર કરુણાભાવ થવો, કોઈના પ્રાણોનો વિયોગ કરવો નહિ, બીજાના દુઃખ દૂર કરવાં, મરતાં અને મરાતાં પ્રાણીઓને પ્રાણ-

तथाऽत्रापि अनिवृत्तिकरणरूपः परिणामो निसर्गः सम्यक्त्वाकारेण वर्तते पूर्वावस्थामपनुद्यावस्थान्तरप्राप्तिः परिणामः, परिणामि जीवद्रव्यं तु ध्रुवमेव । परिणामोऽप्यत्र वैज्ञानिक एव, अत्रेन्द्रधनुरादिवदिति परिणामः स्वभाव इति वाच्यम् ।

ननु श्रद्धा निसर्गतः कथमुत्पद्यते ? उच्यते-कर्मणोऽनादित्वात्पूर्वकर्मोदयेन यद्यदन्यत्कर्म ज्ञानावरणोपादिकं स्वेनैव कृतं तदपि कार्मणशरीरेण सहैव वक्ष्यते कर्मत्वादिदानात्तनकर्मवत् । एवंविधपूर्वगृहीतकर्मणः फलमुपभुञ्जानस्य भव्यजीवस्य ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावतयाऽनादिमिथ्यादृष्टेरपि तादृशभवस्थिति-

भेद नहीं देखा जाता । जैसे परिणामन, अनेक प्रकार का होने पर भी परिणामी-अन्वयिद्रव्य एक होने से उस में सर्वथा भेद नहीं होता । उसी प्रकार यहाँ अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम निसर्गसम्यक्त्व के रूप में परिणत हो जाता है-उसकी पूर्व-अवस्था मिटकर नवीन अवस्था उत्पन्न हो जाती है, फिर भी परिणामी-जीवद्रव्य-ज्यों का लो ध्रुव बना रहता है । परिणाम भी यहाँ वैज्ञानिक (स्वामाविक) लेना चाहिए, मेघ तथा इन्द्रधनुष की तरह, अत एव परिणाम का अर्थ-स्वभाव है ।

शङ्का—श्रद्धा, स्वभाव (निसर्ग) से किस प्रकार उत्पन्न होती हैं ? ।

समाधान—अनादि काल से लगे हुए पूर्वकर्मों के उदय से ज्ञानावरणीय आदि जो-जो कर्म जीवने किये हैं, वे सब कार्मण शरीर के साथ ही पँधते हैं, क्योंकि वे कर्म हैं, वर्तमानकालीन कर्मों के समान । इस प्रकार के पहले प्रहण किये हुए कर्मों का फल भोगते हुए भव्य जीव ज्ञानदर्शनरूप उपयोगस्वभाववाला होने के कारण

पाण्डुमां केशं सर्वथा लेह जेवामां आपतो नथी जेम-परिष्कृत अनेक प्रकारनां होवा छतांय पणु परिष्कृती-अन्वयिद्रव्य अेक होवाथी तेमां सर्वथा लेह थतो नथी, ते प्रमाणे आदि अनिवृत्तिकरणरूप परिष्कृत निसर्गसम्यक्त्वना रूपमां परिष्कृत थर्ध नथ छे-तेनी पूर्वा अवस्था मटीने नवीन अवस्था उत्पन्न थर्ध नथ छे, पणु परिष्कृती-एवद्रव्य-जेम छे तेम ध्रुव जनी रहे छे. परिष्कृत पणु आदि वैज्ञानिक (स्वामाविक) लेवु नेधजे, मेघ तथा इन्द्रधनुषनी माइक. जे प्रमाणे परिष्कृतने अर्थ स्वभाव छे.

शङ्का—श्रद्धा स्वभाव (निसर्ग)थी क्या प्रकारे उत्पन्न थाय छे ?

समाधान—अनादि कालीन लागेलां पूर्वा कर्मोना उदयथी ज्ञानावरणीय आदि जे-जे कर्म एवे कर्थां छे, ते सर्व कार्मण शरीरनी साथे अंधाय छे; केभके ते कर्म छे, वर्तमानकालीन कर्मोनी समान. आ प्रकारनां पड़ेलां अहणु करेला कर्मोनु इल लोगवतो

સમ્મદ્સણે ચેય" (સ્થાનાઢ્ગ૦ સ્થા. ૨ ડ. : ૧)

તત્ર નિસર્ગઃ, પરિણામઃ, સ્વભાવઃ, ઇત્યેકાર્થકાઃ ।

અપૂર્વકરણાનન્તરં યદ્ ભવત્યનિવૃત્તિકરણં તન્નિસર્ગ ઇતિ કથ્યતે ।
નિસૃજ્યતે કાર્યોત્પત્તૌ સત્યામિતિ નિસર્ગઃ, કાર્યે સમુત્પન્ને સતિ કારણસ્ય ન
ક્ષિત્તિ પ્રયોજનં ભવતિ, ઉત્પન્ને સમ્યક્ત્વે પ્રયોજનાભાવાદનિવૃત્તિકરણં
પરિત્યજ્યતે । ન ચાત્યન્તં પરિત્યાગસ્તસ્યેપ્યતે યતસ્તદેવ કારણં તેનાકારેણ
પરિણતમ્, યથા—ઉત્થિતોડપિ પુરુષઃ પુરુષ ઇવ, આસીનો શયિતો વા પુરુષઃ
પુરુષ ઇવ, અવસ્થામાત્રભેદાદવસ્થાવતો ભેદઃ ક્ષાપિ ન દૃશ્યતે । તત્ર—
પરિણામસ્યાનેકરૂપત્વેડપિ પરિણામિનોડન્કયિદ્રવ્યસ્ય ન તત્ત્વાત્ સર્વથા ભેદઃ,

સમ્યન્દર્શન" । (સ્થાનાંગ. સ્થા. ૨ ડ. ૧)

નિસર્ગ, પરિણામ, યા સ્વભાવ, ચે સવ પર્યાયવાચક હૈ ।

અપૂર્વકરણ કે પશ્ચાત્ હોને વાલા અનિવૃત્તિકરણ 'નિસર્ગ' કહલાતા હૈ ।
કાર્ય કી ઉત્પત્તિ હો જાને પર જો ત્યાગ દિયા જાતા હૈ વહ 'નિસર્ગ' હૈ । કાર્ય કી
ઉત્પત્તિ હો જાને કે વાદ કારણ કા કોઈ પ્રયોજન નહીં રહતા, ક્યોં કિ સમ્યક્ત્વ ઉત્પન્ન
હોને પર પ્રયોજન નહીં રહને સે અનિવૃત્તિકરણ ત્યાગ દિયા જાતા હૈ, મગર ડસ કા
અત્યન્ત પરિત્યાગ નહીં કિયા જાતા, ક્યોં કિ વહી કારણ ડસ આકાર મેં—કાર્યરૂપ મેં—
પરિણત હો જાતા હૈ । જૈસે—સ્રડા હુઆ પુરુષ—પુરુષ હી હૈ । બૈઠા હુઆ યા સોયા હુઆ
પુરુષ મી પુરુષ હી હૈ । અવસ્થાઓ મેં ભેદ હોનેમાત્ર સે અવસ્થાવાલે મેં કહીં સર્વથા

સમ્યન્દર્શન" (સ્થાનાંગ૦ સ્થા. ૨ ડ. ૧)

નિસર્ગ, પરિણામ અથવા તો સ્વભાવ, આ સર્વ પર્યાયવાચક શબ્દો છે. અપૂર્વ-
કરણની પછી થવાવાળાં અનિવૃત્તિકરણ નિસર્ગ કહેવાય છે. કાર્યની ઉત્પત્તિ થઈ જવા પછી
જે ત્યજ દેવામાં આવે છે. તે નિસર્ગ છે. કાર્યની ઉત્પત્તિ થઈ ગયા પછી કારણનું કોઈ
પ્રયોજન રહેતું નથી. કેમકે—સમ્યક્ત્વ ઉત્પન્ન હોવા છતાંય પણ પ્રયોજન નહિ રહેવાથી
અનિવૃત્તિકરણ ત્યાગી દેવામાં આવે છે. અર્થાત્ પ્રયોજન નહિ રહેવાથી અનિવૃત્તિકરણને
ત્યાગ કરવામાં આવે છે. પરન્તુ તેને અત્યન્ત પરિત્યાગ કરવામાં આવતો નથી; કારણ કે તે
કારણ તેવા આકારમાં—કાર્યરૂપમાં—પરિણત થઈ જાય છે. જેમ ઉભો રહેલો પુરુષ, પુરુષ
છે, બેઠેલો અથવા સુતેલો પુરુષ પણ પુરુષ છે, અવસ્થાઓમાં ભેદ થવા માત્રથી અવસ્થા-

જયન્યતોઽન્તર્મુહૂર્તમ્, સ ઉત્કર્ષતો દેશોનાર્દ્ધપુદ્ગલપરાવર્ત સ્થિત્વા પુનઃ સમ્યક્ત્વં પ્રાપ્સ્યતિ, સ સાદિમિથ્યાદષ્ટિર્ભવતિ ।

યથાપ્રવૃત્તિકરણમ્-

એવમુભયવિધસ્ય મિથ્યાદષ્ટેર્જીવસ્ય પરિણામરૂપાધ્યવસાયઃ પૂર્વ જયન્ય-શુભપરિણામમઙ્ગીકૃત્ય પરઃ પરઃ શુભપરિણામઃ પરિણામવિશેષ ઇત્યુચ્યતે । સ એવ પરિણામવિશેષો 'યથાપ્રવૃત્તિકરણ' -મિત્યુચ્યતે ।

યથાપ્રવૃત્તિકરણ-મિત્યસ્ય શબ્દાર્થસ્ત્વેવમ્-યથા=યેન અનાદિસંસિદ્ધ-પ્રકારેણ પ્રવૃત્તિર્યસ્ય તત્ યથાપ્રવૃત્તિ, ક્રિયતે કર્મક્ષપણમનેનેતિ કરણં=જીવસ્ય શુભપરિણામઃ, યથાપ્રવૃત્તિ ચ તત્કરણં ચ યથાપ્રવૃત્તિકરણં કર્મક્ષપણકારણસ્યા-

વાદ મેં અનન્તાનુબંધી કપાય કે ઉદય સે ફિર મિથ્યાત્વ આ ગયા કિન્તુ વહ મિથ્યાત્વ જયન્ય અન્તર્મુહૂર્ત તક ઓર ઉત્કૃષ્ટ દેશોન અર્દ્ધપુદ્ગલપરાવર્તન તક રહતા હૈ વહ જીવ સાદિમિથ્યાદષ્ટિ હૈ ।

યથાપ્રવૃત્તિકરણ-

ઇસ પ્રકાર દોનો પ્રકાર કે મિથ્યાદષ્ટિ જીવોં કા અધ્યવસાય પહેલે કે જયન્ય શુભ પરિણામ સે લેકર ઉત્તરોત્તર વઢતે હુય શુભ પરિણામ, પરિણામવિશેષ કહલાતા હૈ । ડસી પરિણામવિશેષ કો 'યથાપ્રવૃત્તિકરણ' કહતે હૈં ।

'યથાપ્રવૃત્તિકરણ' કા શબ્દાર્થ ઇસ પ્રકાર હૈ-'યથા' અર્થાત્ અનાદિ-કાલીનરૂપ સે જિસ કી પ્રવૃત્તિ હો વહ યથાપ્રવૃત્તિ કહલાતા હૈ । જિસ સે કર્મોં કા ક્ષય ક્રિયા જાતા હૈ, જીવ કે ડસ શુભ પરિણામ કો 'કરણ' કહતે હૈં । યથાપ્રવૃત્તિ-

અનન્તાનુબંધી કપાયના ઉદયથી ડરીથી મિથ્યાત્વ આવી ગયું. પણ તે મિથ્યાત્વ જયન્ય અન્તર્મુહૂર્ત સુધી અને ઉત્કૃષ્ટ દેશોન અર્દ્ધ પુદ્ગલપરાવર્તન સુધી રહે છે. તે એવ સાદિમિથ્યાદષ્ટિ છે.

યથાપ્રવૃત્તિકરણ-

આ પ્રકારના અને મિથ્યાદષ્ટિ એવેના અધ્યવસાય પહેલાના જયન્ય શુભ પરિણામથી લઈને ઉત્તરોત્તર વધતા શુભ પરિણામ, પરિણામવિશેષ કહેવાય છે. તે પરિણામવિશેષને યથાપ્રવૃત્તિકરણ કહે છે. "યથાપ્રવૃત્તિકરણ" નો શબ્દાર્થ આ પ્રકારે છે-'યથા' અર્થાત્ અનાદિ કાલીનરૂપથી જેની 'પ્રવૃત્તિ' હોય તે 'યથાપ્રવૃત્તિ' કહેવાય છે. જેનાથી કર્મોના ક્ષય કરવામાં આવે છે, એવના તે શુભ પરિણામને "કરણ" કહે છે.

परिपाकवशेन शुभपरिणामरूपाऽध्यवसाया भवन्ति, तेषां स्थानानि मन्द-मध्य-तीव्राणि भवन्ति । तत्र जघन्यशुभपरिणामस्य स्थानं विशुद्धं, तस्मादुत्कृष्टस्य विशुद्धतरं, ततोऽप्युत्कृष्टशुभपरिणामस्य विशुद्धतमं स्थानं प्राप्नुवतो जीवस्य वर्धमानशुभपरिणत्या तादृक्परिणामविशेषो जायते, येन तीर्थङ्कराद्युपदेश-मन्तरेण स्वत एव जीवस्य कर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धोत्पद्यते । तत्रायं क्रमः—

श्रद्धामाप्तयेऽधिकारी द्विविधो भवति, अनादिमिथ्यादृष्टिः, सादि-मिथ्यादृष्टिश्च । यः पूर्वं कदापि सम्यक्तवं न लब्धवान् सोऽनादिमिथ्यादृष्टिः । यश्च भव्यः पूर्वं सम्यक्तवं प्राप्य पश्चादनन्तानुबन्धिकपायोदयादुपजातमिथ्यास्वः

अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने पर भी अमुक प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से उसके शुभपरिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं । उन अध्यवसायों के स्थान मन्द, मध्यम और तीव्र होते हैं । इन में जघन्य शुभ परिणाम का स्थान विशुद्ध है, उस से उत्कृष्ट विशुद्धतर है । और उससे भी उत्कृष्ट शुभपरिणाम विशुद्धतम है । इन स्थानों को प्राप्त जीव के बढ़ते हुए शुभ परिणामों से एक ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है, जिस के द्वारा तीर्थंकर आदि के उपदेश के बिना ही स्वयमेव जीव को कर्मों का उपशम आदि होने से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है ।

क्रम इस प्रकार है—

दो प्रकार के जीव श्रद्धा पाने के अधिकारी हैं—(१) अनादिमिथ्यादृष्टि और (२) सादिमिथ्यादृष्टि । जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्व नहीं पाया वह अनादिमिथ्यादृष्टि कहलाता है । जिस भव्य जीवने पहले सम्यक्त्व पाया किन्तु

थका लब्ध एव ज्ञान-दर्शनरूप उपयोगस्वभाववाणा होवाना कारणे. अनादि काली मिथ्यादृष्टि होवा छतांय पद्य अमुक प्रकारनी लवस्थितिने परिपाक होवाथी तेने शुभ परिष्णामरूप अध्यवसाय उत्पन्न थाय छे. ते अध्यवसायोनां स्थान मंढ, मध्यम अन्ने तीव्र होय छे. तेमां जघन्य शुभ परिष्णामनुं स्थान विशुद्ध छे, तेनाथी उत्कृष्ट विशुद्धतर छे, अने अनाथी पद्य उत्कृष्ट शुभ परिष्णाम विशुद्धतम छे. आ स्थानोने प्राप्त एवना वधता गयेला शुभ परिष्णामोमांथी अक अयुं परिष्णाम उत्पन्न थाय छे के अना द्वारा तीर्थंकर आदिना उपदेश विनाज स्वयमेव, एवने कर्मोना उपशम आदि थवाथी श्रद्धा उत्पन्न थयं लय छे.

क्रम आ प्रकारे छे—

ये प्रकारना एव श्रद्धा प्राप्त करवानी अधिकारी छे. (१) अनादिमिथ्यादृष्टि अने (२) सादिमिथ्यादृष्टि. जे एवे पड़ेला कथादेय सम्यक्त्व प्राप्त कथुं. नथी ते अनादि मिथ्यादृष्टि कडेपाय छे. जे लब्ध एवे पड़ेलां सम्यक्त्व प्राप्त कथुं छतुं परन्तु पछीथी

જયન્યતોઽન્તર્મુહૂર્તમ્, સ ઉત્કર્ષતો દેશોનાર્દ્ધપુદ્ગલપરાવર્ત સ્થિત્વા પુનઃ સમ્યક્ત્વં પ્રાપ્સ્યતિ, સ સાદિમિથ્યાદષ્ટિર્ભવતિ ।

યથાપ્રવૃત્તિકરણમ્-

એવમુભયવિધસ્ય મિથ્યાદષ્ટેર્જીવસ્ય પરિણામરૂપાધ્યવસાયઃ પૂર્વ જયન્ય-શુભપરિણામમદ્વીકૃત્ય પરઃ પરઃ શુભપરિણામઃ પરિણામવિશેષ इत्यુચ્યતે । સ એવ પરિણામવિશેષો 'યથાપ્રવૃત્તિકરણ'—મિત્યુચ્યતે ।

યથાપ્રવૃત્તિકરણ—મિત્યસ્ય શબ્દાર્થસ્ત્વેવમ્—યથા=યેન અનાદિસંસિદ્ધ-પ્રકારેણ પ્રવૃત્તિર્યસ્ય તત્ યથાપ્રવૃત્તિ, ક્રિયતે કર્મક્ષણમનેનેતિ કરણં=જીવસ્ય શુભપરિણામઃ, યથાપ્રવૃત્તિ ચ તત્કરણં ચ યથાપ્રવૃત્તિકરણં કર્મક્ષણકારણસ્યા-

વાદ મેં અનન્તાનુવન્ધી કપાય કે ઉદય સે ફિર મિથ્યાસ્વ આ ગયા કિન્તુ વહ મિથ્યાસ્વ જયન્ય અન્તર્મુહૂર્ત તક ઓર ઉત્કૃષ્ટ દેશોન અર્દ્ધપુદ્ગલપરાવર્તન તક રહતા હૈ વહ જીવ સાદિમિથ્યાદષ્ટિ હૈ ।

યથાપ્રવૃત્તિકરણ-

इस प्रकार दोनों प्रकार के मिथ्यादष्टि जीवों का अध्यवसाय पहले के जयन्य शुभ परिणाम से लेकर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलाता है । उसी परिणामविशेष को 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहते हैं ।

'यथाप्रवृत्तिकरण' का शब्दार्थ इस प्रकार है—'यथा' अर्थात् अनादि-कालीनरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलाता है । जिस से कर्मों का क्षय किया जाता है, जीव के उस शुभ परिणाम को 'करण' कहते हैं । यथाप्रवृत्ति-

અનન્તાનુબંધી કપાયના ઉદયથી ફરીથી મિથ્યાસ્વ આવી ગયું. પણ તે મિથ્યાસ્વ જયન્ય અન્તર્મુહૂર્ત સુધી અને ઉત્કૃષ્ટ દેશોન અર્દ્ધ પુદ્ગલપરાવર્તન સુધી રહે છે. તે એવ સાદિમિથ્યાદષ્ટિ છે.

યથાપ્રવૃત્તિકરણ-

આ પ્રકારના બંને મિથ્યાદષ્ટિ જીવોના અધ્યવસાય પહેલાના જયન્ય શુભ પરિણામથી લઈને ઉત્તરોત્તર વધતા શુભ પરિણામ, પરિણામવિશેષ કહેવાય છે. તે પરિણામવિશેષને યથાપ્રવૃત્તિકરણ કહે છે. "યથાપ્રવૃત્તિકરણ" નો શબ્દાર્થ આ પ્રકારે છે—'યથા' અર્થાત અનાદિ કાલીનરૂપથી જેની 'પ્રવૃત્તિ' હોય તે 'યથાપ્રવૃત્તિ' કહેવાય છે. જેનાથી કર્મોનો ક્ષય કરવામાં આવે છે, જીવના તે શુભ પરિણામને 'કરણ' કહે છે.

ધ્યવસાયમાત્રસ્ય સર્વદૈવ ભાવાદુદયાવલિકામચિષ્ટાનાં કર્મણાં સર્વદૈવ ક્ષપણાત્ ।

યથાપ્રવૃત્તિકરણં ભવ્યસ્યાભવ્યસ્ય ચ ભવતિ । વ્રક્ષ્યમાણમપૂર્વકરણમનિવૃત્તિકરણં
ચ ભવ્યસ્યૈવ ભવતિ, ન ત્વમભવ્યસ્ય ।

મિથ્યાત્વવશાદનન્તાન્ પુદ્ગલપરાવર્તાન્ અનન્તદુઃસ્વાન્યનુભૂય કથમપિ
તાદૃશભવસ્થિતિપરિપાકવશાદ્ ગિરિણદીપ્રવહદુદ્વર્તિતાપવર્તિતપાપાણવર્તુલા-
વસ્થાવદનાભોગનિર્વર્તિતેન યથાપ્રવૃત્તિકરણેન વિશુદ્ધપરિણામવિશેષરૂપેણાયુષ્ય-
કર્મ વર્ગયિત્વા જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્માણિ સર્વાણ્યપિ પલ્યોપમાસંખ્યેયભાગન્યૂનૈક-

રૂપ કરણ યથાપ્રવૃત્તિકરણ કહલાતા છે । કર્મક્ષય કા કારણમૂત અધ્યવસાય
સદૈવ વના રહતા છે, વ્યો કિં ઉદયાવલિકા મેં આપ હુપ કર્મોં કા સદા ક્ષય હોતા
રહતા છે ।

યથાપ્રવૃત્તિકરણ મન્ય જીવ કો મી હોતા હેં ઓર અમન્ય જીવ કો મી
હોતા છે, કિન્તુ આગે કહે જાને વાલે અપૂર્વકરણ ઓર અનિવૃત્તિકરણ મન્ય જીવ કો હી હોતે
હેં; અમન્ય જીવ કો નહીં ।

મિથ્યાત્વ કે વશ હોકર અનન્ત પુદ્ગલપરાવર્તનોં તક અનન્ત દુઃસ્વોં કો મોગને
કે પથાત્ કિસી મી તરહ ઉસ પ્રકાર કી ભવસ્થિતિ કા પરિપાક હોને સે પહાડી નદી કે
પ્રવાહ મેં વહેને વાલા; લુદક (ગુડક)ને વાલા, ઘિસને વાલા પાપાણ જૈસે ગોલમટોલ વન
જાતા છે, ઉસી પ્રકાર અનજાન મેં હી યથાપ્રવૃત્તિકરણરૂપ વિશુદ્ધ પરિણામ કે કારણ
આયુકર્મ કો છોડકર જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત કર્મ પલ્યોપમ કે અસંખ્યાતવેં ભાગ કમ

યથાપ્રવૃત્તિરૂપ કરણ તે 'યથાપ્રવૃત્તિકરણ' કહેવાય છે. કર્મક્ષયના કારણમૂત અધ્યવસાય
હમેશાં ખની રહે છે, કેમકે-ઉદયાવલિકામાં આવેલાં કર્મોનાં હમેશાં ક્ષય થયા કરે છે.

યથાપ્રવૃત્તિકરણ ભવ્ય જીવને પણ થાય છે, અને અભવ્ય જીવને પણ થાય
છે, પરન્તુ આગળ કહેવામાં આવશે તે અપૂર્વકરણ અને અનિવૃત્તિકરણ ભવ્ય
જીવને જ થાય છે, અભવ્ય જીવને થતાં નથી.

મિથ્યાત્વને વશ થઈને અનન્ત પુદ્ગલપરાવર્તનોં સુધી અનન્ત દુઃખોને લોગવ્યા
પછી કોઈ પણ પ્રકારે આ પ્રકારની ભવસ્થિતિને પરિપાક થવાથી પહાડી નદીના પ્રવાહમાં
વહેવાવાળો-ગાખડવાવાળો, ઘસાતો જતો પથ્થર જેવી રીતે ગોળ-મટોળ ખની વાય છે,
એ પ્રમાણે અભવ્યજીવને પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણરૂપ વિશુદ્ધ પરિણામના કારણે આયુકર્મને
ત્યજીને ખીલ જ્ઞાનાવરણીય આદિ સાત કર્મ પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગ-આર્થ

सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानि करोति । उक्तञ्च—

“अंतिमकोटाकोडीए होइ सव्यासिं कम्मपगडीणं ।

पल्लियामसंखभागे, खीणे सेसे इवइ गंठी ॥ १ ॥”

तत्राप्यं क्रमो विज्ञेयः—ज्ञानावरणीय—दर्शनावरणीय—वेदनीया—अन्तरायकर्म-
चतुष्टयस्य त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटय उल्कृष्टा स्थितिः । नामगोत्रयोर्विंशति-
सागरोपमकोटीकोटयः, मोहनीयस्य सप्ततिसागरोपमकोटीकोटय उल्कृष्टा स्थितिः ।
तत्र यथाप्रवृत्तिकरणेन जीव उल्कृष्टां स्थितिं ह्रासयन् तावतीं स्थितिं प्रापयति, येन
समानरूपेण सप्तानां कर्मणां पल्योपमासंख्येयभागन्यूनैकसागरोपमकोटीकोटीस्थिति-

एक कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति में लाये जाते हैं । कहा भी है—

“समस्त कर्म प्रकृतियाँ जब पत्य के असंख्यातवें भाग कम कोडाकोडी की
स्थितिवाली होती हैं, तब ग्रन्थि होती है” ॥ १ ॥

कम इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय, इन
चार कर्मों की उल्कृष्ट स्थिति तीस—तीसकोडा-कोडी सागरोपम की है । नाम और
गोत्रकी बीस—बीस कोडाकोडी सागरोपम की है, और मोहनीय कर्म की उल्कृष्ट स्थिति
सित्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है । यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा जीव
इस सारी उल्कृष्ट स्थिति को घटाकर इतनी कम कर डालता है कि सातों
कर्मों की स्थिति समानरूप से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम कोडाकोडी

એક કોડા-કોડી સાગરોપમની સ્થિતિમાં લાવવામાં આવે છે. કહ્યું પણ છે.

“સમસ્ત કર્મ પ્રકૃતિઓ વ્યાપ્તિ પત્યના અસંખ્યાતમાં—ભાગ એાછા—એક
કોડા-કોડીની સ્થિતિવાળી હોય છે, ત્યારે ગ્રંથિ થાય છે.” ॥૧॥

કમ આ પ્રમાણે છે—જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય અને અન્તરાય આ
ચાર કર્મોની ઉલ્કૃષ્ટ સ્થિતિ ત્રીસ—ત્રીસ કોડા-કોડી સાગરોપમની છે. નામ અને ગોત્રની
વીસ વીસ કોડા-કોડી સાગરોપમની છે. અને મોહનીય કર્મની ઉલ્કૃષ્ટ સ્થિતિ સીત્તર (૭૦)
કોડા-કોડી સાગરોપમની છે. યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા જીવ તમામ ઉલ્કૃષ્ટ સ્થિતિને એાછી
કરીને—એટલી એાછી કરી નાંખે છે કે—સાતે કર્મોની સ્થિતિ સમાનરૂપથી પલ્યોપમના
અસંખ્યાતમાં ભાગ એાછા એક સાગરોપમ કોડા-કોડીની બાકી રહી જાય છે એના

સ્વશિષ્ટા ભવતિ । અત્રાન્તરે ચ યથામૃત્તિકરણેન કર્મનિર્જરાં કુર્વતો જીવસ્ય યાન્ત
પૂર્વકર્મણો નિર્જરા ન ભવતિ તાન્ત સ્વીયમાનં તીવ્રરાગદ્વેષપરિણામરૂપં કર્મ, ગ્રન્થિ-
સાદૃશ્યાદ્ ગ્રન્થિરિત્યુચ્યતે ॥

યથા કાઠવિશેષસ્ય અતિકઠોરનિચિહાતિશુષ્કઘનગૂઢગ્રન્થિર્દુર્ભેદસ્વથા
તીવ્રરાગદ્વેષપરિણામરૂપઃ કર્મવિશેષોઽપિ દુર્ભેદો ભવતિ તસ્માદ્ ગ્રન્થિશબ્દેન
વ્યવહ્રિયતે ।

અભવ્યા અપિ યથામૃત્તિકરણવલેન કર્મ ક્ષયયિત્વાઽનન્તવારમેતદ્ગ્રન્થિ-
પર્યન્તમાગચ્છન્તિ । કશ્ચિદ્ ગ્રન્થિસ્થાનં પ્રાપ્ય તસ્માદધઃ પતતિ । કશ્ચિત્તત્ર
ગ્રન્થિસ્થાને સ્થિતસ્તિષ્ઠતિ, ન તસ્માદગ્રે પ્રવર્તતે ।

કી વાકી રહ જાતી હૈ । ઈસી વીચ—યથામૃત્તિકરણદ્વારા કર્મો કી નિર્જરા કરતે હુવ જીવ કે
જિતને કર્મો કી નિર્જરા નહીં હોતી અર્થાત્ જો કર્મ શેષ રહ જાતે હૈં, વેતીવ્ર રાગ દ્વેષપરિણામરૂપ
કર્મ, ગ્રન્થિ કે સમાન હોને કે કારણ ગ્રન્થિ (ગાંઠ) કહલાતી હૈં ।

જૈસે—કાઠવિશેષ કી અત્યન્ત કઠિન ઘની ઓર ઇકદમ સૂઝી મીતરી ગાંઠ દુર્ભેદ હોતી
હૈ, ઊસી પ્રકાર રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મવિશેષ મી દુર્ભેદ હોતા હૈ, અત ઇવ વહ કર્મ,
ગ્રન્થિ કહલાતી હૈ ।

અભવ્ય જીવ મી યથામૃત્તિકરણદ્વારા કર્મ કા ક્ષય કર કે અનન્ત વાર ગ્રન્થિ પર્યન્ત
આ પહુંચતે હૈં, કોઈ-કોઈ ગ્રન્થિસ્થાન કો પ્રાપ્ત કર કે ફિર નીચે ઘિર જાતા હૈ । કોઈ-કોઈ
ગ્રન્થિસ્થાન પર હી ઠહર જાતા હૈ, આગે નહીં વઢતા હૈ ।

વચમાં—યથામૃત્તિકરણદ્વારા કર્મોની નિર્જરા કરતા થકા છવનાં બેટલાં કર્મોની
નિર્જરા નથી થતી અર્થાત્ જે કર્મ શેષ રહી જાય છે તે તીવ્ર રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ
કર્મ, ગ્રન્થિના સમાન હોવાના કારણે ગ્રન્થિ (ગાંઠ) કહેવાય છે.

જેવી રીતે કાષ્ઠ (લાકડા) વિશેષની અત્યન્ત કઠિન, મજબુત અને એકદમ સૂઝી
અંદરની ગાંઠ દુર્ભેદ હોય છે, એ પ્રમાણે રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મવિશેષ પણ
દુર્ભેદ હોય છે. એટલા માટે તે કર્મ, ગ્રન્થિ કહેવાય છે.

અભવ્ય છવ પણ યથામૃત્તિકરણદ્વારા કર્મનો ક્ષય કરીને અનન્તવાર ગ્રન્થિ
સુધી પહોંચે છે. કોઈ કોઈ ગ્રન્થિ સ્થાનને પ્રાપ્ત થઈને પાછા નીચે પડી જાય છે.
કોઈ-કોઈ ગ્રન્થિ સ્થાન ઉપરજ રહી જાય છે. આગળ વધી શકતા નથી.

अमव्योऽपि कश्चिद् यथाप्रवृत्तिकरणेन ग्रन्थिपर्यन्तं समागत्य तीर्थङ्करातिशय-
दर्शनेन लब्धिधारिभावितात्ममहात्मनो महिमावलोकनेन, प्रयोजनान्तरेण वा
प्रवर्तमानः मृत्तार्यतदुभयश्रवणपठनरूपं श्रुतसामायिकं लभते, न त्वन्यदपूर्व-
करणादिकम् ।

॥ अपूर्वकरणम्—

तदनन्तरं कश्चिदेव भव्यजीव आसन्नसिद्धिसुखत्वादुदितप्रचुरदुर्निवारवीर्य-
प्रसरोजतिनिश्चितकृठारेणैव यथाप्रवृत्तिकरणापेक्षया विशुद्धतरणाभूतपूर्वशुभा-
प्यवसायविशेषरूपेणापूर्वकरणेन प्रागुक्तं दुर्भेद्यं कर्मग्रन्थि भिनत्ति ।

कोई अमव्य भी यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा ग्रन्थि तक आकर तीर्थंकर भगवान्
का अतिशय देखकर, लब्धिधारी भावितात्मा महात्मा की महिमा देखकर, अथवा किसी
अन्य प्रयोजन से प्रवृत्ति करता हुआ सूत्र, अर्थ और तदुभय आगम का श्रवण या
पठनरूप श्रुतसामायिक को प्राप्त कर लेता है, मगर वह अपूर्वकरण आदि को नहीं
पा सकता ।

अपूर्वकरण—

तदनन्तर मोक्षमुख समीप होने के कारण जिस में प्रचुर और दुर्निवार शक्ति उत्पन्न
हो गई है ऐसा कोई मव्य जीव ही बहुत तीखे कुल्हाड़े के समान यथाप्रवृत्ति-करण की
अपेक्षा अधिक विशुद्ध, और पहले कभी भी प्राप्त न होने वाले शुभअव्यवसायरूप
अपूर्वकरण के द्वारा उस दुर्भेद्य कर्मग्रन्थि को भेदता है ।

कोई अमव्य पक्ष यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा अर्धी सुधी आवीने तीर्थंकर भगवान्ना
अतिशयने लेधने, लब्धिधारी भावितात्मा महात्मानो महिमा लेधने, अथवा कोई
अन्य प्रयोजनधी प्रवृत्ति करते थके, सूत्र, अर्थ अने तदुभय आगमना श्रवण
अथवा पठनरूप श्रुत-सामायिकने प्राप्त करी ले छे, परन्तु ते अपूर्वकरण आदिने
प्राप्त करी शकते नथी.

अपूर्वकरण—

त्यार पछी मोक्षमुख समीप होवाना कारणे जेनामां महान अने कोधी
निवारी शकथ नहि तेवी शक्ति उत्पन्न यर्ध गर्ध छे. जेयो कोही मव्य एवज पदुज
तीया कुडाडा समान यथाप्रवृत्तिकरणनी अपेक्षा अधिक विशुद्ध, अने पडेवां कोही वपत
पक्ष प्राप्त नहि थयेवा शुभ-अव्यवसायरूप अपूर्वकरण द्वारा जे दुर्भेद्य कर्मअधिने लेहे छे.
प्र. मा.-६२

અસ્મિન્ ગ્રન્થિભેદે મનઃક્ષોભપરિશ્રમાદિવિષ્ણાઃ ભવન્તિ । યથા વિદ્યાસાધકસ્ય વિદ્યાધિષ્ઠાતૃદેવતાકૃતોપસર્ગેર્મનઃક્ષોભો ભવતિ, યથા ઘોરમહાસમુદ્રગતમૃમટસ્ય દુર્ધર્ષ-વહુતરશત્રુગણપરાજયકરણાત્પરિશ્રમો ભવતિ, યથા ચ મહાસમુદ્રાદિભ્યો નૌકાદિતારણે નાવિકસ્ય પરિશ્રમો ભવતિ તથા મચુરદુર્જયકર્મશત્રુસંઘાતપરાજયે પરિશ્રમોડતિશયેન જાયતે । વજ્રાશ્મવદ્દુર્ભેદોઽયં કર્મગ્રન્થિઃ । અપૂર્વકરણવજ્રમૂચ્યાશ્રયમન્તરેણાસ્ય ભેદો દુષ્કરઃ ।

અપૂર્વકરણવજ્રમૂચ્યા સકૃદ્ ગ્રન્થિભેદે કૃતે સતિ લઘ્વવિશુદ્ધતમશ્રદ્ધા-

ગ્રન્થિભેદન કરને મેં માનસિક ક્ષોભ તથા પરિશ્રમ આદિ અનેક વિગ્ન ઉપરિથત હોતે હૈં । જૈસે વિદ્યા કી સાધના કરને વાલે કો વિદ્યા કી અધિષ્ઠાત્રી દેવતા કે દ્વારા કિચે જાને વાલે વિગ્નો સે મન મેં ક્ષોભ હોતા હૈ, ઓર ઘનઘોર મહાયુદ્ધ મેં ગયે હુપ યોદ્ધા કો બહુ-સંલ્પક ઓર દુર્જય શત્રુઓ કે દલ પર વિજય પ્રાપ્ત કરને મેં પરિશ્રમ કરના પડતા હૈ, અથવા જૈસે કિસી મહાસમુદ્ર સે જહાજ વગૈરહ કો પાર લગાને મેં નાવિક કો પરિશ્રમ કરના પડતા હૈ, ઉસી પ્રકાર બહુત-સે દુર્જય કર્મશત્રુઓ કે દલ કો પરાજિત કરને મેં અત્યન્ત પરિશ્રમ કરના પડતા હૈ । યહ કર્મગ્રન્થિ વજ્ર કી તરહ વડી કઠિનાઈ સે ભેદી જાતી હૈ । અપૂર્વકરણરૂપી વજ્ર કી સુઈ કા સહારા લિયે વિના ઉસ કા ભેદન હોના અશક્ય હૈ ।

અપૂર્વકરણ કી વજ્રમય સુઈ સે ઇક વાર કર્મગ્રન્થિ કા ભેદન હો જાને પર

અધિભેદન કરવામાં માનસિક ક્ષોભ તથા પરિશ્રમ આદિ અનેક વિગ્ન ઉપ-રિથત થાય છે. જેમ વિદ્યાની સાધના કરવાવાળાને વિદ્યાની અધિષ્ઠાત્રી દેવતાદ્વારા થવાવાળા વિઘ્નોથી મનમાં ક્ષોભ થાય છે, અને ઘનઘોર મહાયુદ્ધમાં ગયેલા યોધાને ઘણીજ સંખ્યાવાળા અને દુર્જય શત્રુઓના દળ ઉપર વિજય મેળવવામાં જેમ પરિશ્રમ કરવો પડે છે. અથવા—જેવી રીતે કોઈ મહાસમુદ્રમાંથી વહાણ વગેરેને પાર લઈ જવામાં નાવિકોને પરિશ્રમ કરવો પડે છે, એ પ્રમાણે બહુજ દુર્જય કર્મશત્રુઓના દળનો પરાજય કરવામાં અત્યન્ત પરિશ્રમ કરવો પડે છે.

આ કર્મગ્રન્થિ વળના જેવી મહાકઠિનતાથી ભેદી શકાય છે. અપૂર્વકરણ રૂપી વળની સોયની સહાય લીધા વિના તેનું ભેદન થવું અશક્ય છે.

અપૂર્વકરણની વળમય સોયથી એકવાર કર્મગ્રન્થિનું ભેદન થઈ જવા પછી

सामर्थ्यान्नि पुनर्ग्रन्थिवन्धनं भवति, यथा जातवेधो मणिः कथञ्चिद्रजसा परिपूरितेऽपि रन्ध्रे न पूर्वावस्थां प्राप्नोति, तथैव सम्पृष्टसम्यक्तवो जीवः कथञ्चित्सम्यक्तवापगमे पश्चात्तीव्ररागद्वेषपरिणाममाप्तावपि न पुनर्ग्रन्थिरूपेण कर्म वध्नाति ।

यथा जन्मान्धस्य कथञ्चिच्चक्षुःप्राप्तौ सत्यां यथावस्थितपदार्थसार्थावलोकनेन, यथा च महाव्याधिजनितदुरन्तघोरवेदनासमाक्रान्तस्य तद्व्याध्यपगमे महान् प्रमोदो जायते तथा भव्यस्यानिवृत्तिकरणवलेन वीतरागोपदिष्ट-

जीव को श्रद्धा की अत्यन्त विशुद्ध शक्ति प्राप्त हो जाती है, अत एव फिर कभी ग्रन्थिवन्ध नहीं होता । किसी मणि में एक बार छेद कर दिया जाय और कालान्तर में उस में धूल भर जाय तो भी वह छेद पहले की भाँति नहीं होता । इसी प्रकार एकवार सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने वाला जीव सम्यक्त्व के नष्ट हो जाने पर भी बाद में तीव्र राग-द्वेषरूप परिणामों की प्राप्ति होने पर भी ग्रन्थि के रूप में कर्मों का बंध नहीं करता ।

जैसे जन्म से अंधे को किसी उपाय से आँख मिलने पर पदार्थों का असली स्वरूप देखकर अत्यन्त हर्ष होता है, अथवा जैसे किसी महान् रोग से होने वाली घोर वेदना से पीड़ित पुरुष के रोग हट जाने पर महान् हर्ष होता है, उसी प्रकार भव्य-जीव को अनिवृत्तिकरण-के बल से भगवान् वीतराग द्वारा कथित यथार्थ

श्रद्धा की अत्यन्त विशुद्ध शक्ति प्राप्त થઈ બન્ય છે, એટલા માટે ફરી કોઈ વખત ગ્રંથિબંધ થતો નથી. કોઈ મણિમાં એક વખત છિદ્ર-કાણું પાડ્યાં પછી કાલાન્તરમાં તે છિદ્રમાં કદાચ ધૂળ ભરાઈ બન્ય તો પણ તે છેદ પ્રથમ પ્રમાણે થતો નથી. આ પ્રકારે એકવાર સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરી લેવાવાળા જીવ, સમ્યક્ત્વનો નાશ થવા છતાં પણ પછીથી તીવ્ર રાગ-દ્વેષ રૂપ પરિણામોની પ્રાપ્તિ થવા છતાંય પણ ગ્રંથિના રૂપમાં કર્મોનો બંધ કરતા નથી.

જેવી રીતે જન્મથી આંધળાને કોઈપણ ઉપાયથી નેત્ર મળી જતાં પદાર્થોના અસલી સ્વરૂપને જોઈને અત્યંત હર્ષ થાય છે, અથવા જેમ કોઈ મહાન્ રોગથી થવા વાળી મહાઘોર વેદનાથી પીડિત પુરૂષનો રોગ નિવારણ થઈ જતાં તેને મહાન્ હર્ષ થાય છે. એ પ્રમાણે ભવ્ય જીવને અનિવૃત્તિકરણના બળથી, ભગવાન વીતરાગદ્વારા કથિત

યથાવસ્થિતવસ્તુતત્ત્વાઽમિરુચ્યા શ્રદ્ધયાઽભૂતપૂર્વો વિપયવૈરસ્યપુરસ્કૃતઃ પ્રમોદઃ
પ્રાદુર્ભવતિ ।

॥ અનિવૃત્તિકરણમ્—

તતશ્ચ ગ્રંથિભેદોત્તરકાલમેવ તતો વિશુદ્ધતમં શુભાઘ્યવસાયવિશેષમનિ-
વૃત્તિકરણં પ્રાપ્નોતિ, યેન તાવન્ન નિવર્ત્તેતે જીવઃ સમ્યક્ત્વં ન લભતે યાવદિત્યનિ-
વૃત્તિકરણમુચ્યતે । અનિવૃત્તિકરણવલેન જીવઃ સમ્યગ્દર્શનં લભતે । તદેવ નૈસર્ગિકી
શ્રદ્ધોચ્યતે ।

નનુ પ્રાગુક્તં 'મિથ્યાત્વમોહનીયકર્મોપશમાદિભ્યઃ શ્રદ્ધા જાયતે' પુનરુચ્યતે
'નિસર્ગાદિધિગમાદ્વા શ્રદ્ધા જાયતે' તદસંગતમ્ ।

વસ્તુસ્વરૂપ કે પ્રતિ રૂચિરૂપ શ્રદ્ધા સે વિપયવૈરાગ્યપૂર્વક એક એસા આનન્દ ઉત્પન્ન હોતા હૈ,
જિસ કા પહેલે કમી અનુભવ નહીં હુઆ થા ।

અનિવૃત્તિકરણ—

ગ્રંથિભેદ કે અનન્તર કાલ મેં અત્યન્ત વિશુદ્ધ પરિણામ ઉત્પન્ન હોતા હૈ । વહી
અનિવૃત્તિકરણ કહલાતા હૈ । યહ પરિણામ પ્રાપ્ત હોને પર જીવ સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કિયે વિના નહીં
હોટતા, હસી કારણ હસે 'અનિવૃત્તિકરણ' કહતે હૈ । અનિવૃત્તિકરણ કે દ્વારા જીવ સમ્ય-
દર્શન પ્રાપ્ત કરતા હૈ । ઁસી કો નૈસર્ગિક શ્રદ્ધા કહતે હૈ ।

શુદ્ધા—પહેલે કહા થા કિ—'મિથ્યાત્વમોહનીયકર્મ કે ઉપશમ આદિ સે શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન
હોતી હૈ' ઁર બાદ મેં કહતે હૈ કિ—'નિસર્ગ સે, અથવા અધિગમ સે શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન હોતી હૈ' ।
યહ કથન પરસ્પર અસંગત હૈ ?

યથાર્થવસ્તુસ્વરૂપની રૂચિરૂપ શ્રદ્ધાથી વિષયવૈરાગ્યપૂર્વક એક એવો આનન્દ ઉત્પન્ન
થાય છે કે-એને પહેલા કોઈ વખત અનુભવ થયો નથી.

અનિવૃત્તિકરણ—

ગ્રંથિભેદના અનન્તર (તરતના) કાળમાં અત્યન્ત વિશુદ્ધ પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે
તે 'અનિવૃત્તિકરણ' કહેવાય છે. આ પરિણામ પ્રાપ્ત થયાં પછી જીવ સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત
કયાં વિના પાછો નથી ફરતો તેથીજ એને અનિવૃત્તિકરણ કહે છે. અનિવૃત્તિકરણ જીવ
દ્વારા સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરે છે. તેનેજ નૈસર્ગિક (સ્વાભાવિક) શ્રદ્ધા કહે છે.

શંકા—પહેલાં કહ્યું હતું કે—'મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના ઉપશમ આદિથી શ્રદ્ધા
ઉત્પન્ન થાય છે.' અને પછી કહે છે કે—'નિસર્ગ અથવા અધિગમથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન
થાય છે, એ કથન પરસ્પર અસંગત છે.

अत्रोच्यते—स एव क्षयोपशमादिर्निसर्गाधिगमाद्वा जायते, तथा च श्रद्धाया अपि तद्द्वयं कारणं सिद्ध्यतीति न दोषः ।

ननु सम्यक्त्वगुणरहितेनैव जीवेन द्राघीयसी कर्मस्थितिर्ग्रन्थिभेदात्पूर्वं यथाप्रवृत्तिकरणेन यथा क्षपिता तथा तद्वशिष्टमपि कर्मग्रन्थि यथा-प्रवृत्तिकरणेनैव भिनत्तु, ततो मोक्षमप्येवमेव प्राप्नोतु किं पुनरपूर्वकरणालम्बनेन ? अत्रोच्यते—महाविद्यासाधनवदेतद् द्रष्टव्यम् । यथा महाविद्यायाः साधने पूर्वं स्वल्प एव परिश्रमो भवति, तत्सिद्धिमाप्तिसमये तु सा विद्या तद्विद्याधिष्ठातृदेवताकृत-

समाधान—मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का क्षयोपशम आदि, निसर्ग से अथवा अधिगम से होता है, ऐसी स्थिति में यह दोनों कारण श्रद्धा के ही हैं, अतः कोई दोष नहीं है ।

शङ्का—जीव ने सम्यक्त्व नहोने पर भी जैसे उतनी बड़ी भारी कर्मस्थितिको ग्रन्थिभेद से पहले ही यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा खपा डाली इसी प्रकार शेष स्थिति भी यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा ही खपा ले और मोक्ष भी इसी प्रकार प्राप्त करले फिर अपूर्वकरण का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता है ?

समाधान—महाविद्या की साधना की तरह ही यहाँ समझना चाहिए । जैसे महाविद्या की साधना में पहले थोड़ा—सा श्रम होता है किन्तु जब उस को सिद्धि का समय नजदीक आता है तो वह विद्याधिष्ठात्री देवताद्वारा किये जानेवाले नाना प्रकार के उपसर्गों द्वारा विघ्नयुक्त हो जाती है और प्रायः अत्यन्त कष्टसाध्य बन जाती है,

समाधान—मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना क्षयोपशम आदि, निसर्गाधी अथवा अधिगमधी थाय छे, जेवी स्थितिमां आ जन्ने कारणे श्रद्धानाज छे तेथी डोछ द्रोप नथी.

शङ्का—ज्वने सम्यक्त्व न होय तो पक्ष जेवी रीते जेवडी मडाभारी कर्म स्थितिने ग्रन्थिभेदना पहिलेलाज यथाप्रवृत्तिकरणना द्वारा जपावी नांजे छे ते प्रभाजे शेष स्थिति पक्ष यथाप्रवृत्तिकरणद्वाराज जपावी नांजे अने मोक्ष पक्ष आ प्रभाजे प्राप्त करी लीजे तो पछी अपूर्वकरणने आश्रय देवानी शुं आवश्यकता छे ?

समाधान—महाविद्यानी साधना प्रभाजेज अर्द्धि समज लेवुं जेधजे. जेभ महाविद्यानी साधनामां पहिलेलां थोडा जेवे श्रम थाय छे, परन्तु ज्यारे तेनी सिद्धिने समय नजिक आवे छे त्यारे ते विद्यानी अधिष्ठात्रीदेवताद्वारा करवामां आवता नाना प्रकारना उपसर्गों द्वारा विघ्नयुक्त थछे जय छे. अने घलुं करीने अत्यन्त कष्टसाध्य

यथावस्थितवस्तुतत्त्वाऽभिरुच्या श्रद्धयाऽभूतपूर्वो विषयवैरस्यपुरस्कृतः प्रमोदः
प्रादुर्भवति ।

॥ अनिवृत्तिकरणम्—

ततश्च ग्रन्थिभेदोत्तरकालमेव ततो विशुद्धतमं शुभाध्यवसायविशेषमनि-
वृत्तिकरणं प्राप्नोति, येन तावन्न निवर्तते जीवः सम्यक्त्वं न लभते यावदित्यनि-
वृत्तिकरणमुच्यते । अनिवृत्तिकरणबलेन जीवः सम्यग्दर्शनं लभते । तदेव नैसर्गिकी
श्रद्धोच्यते ।

ननु प्रागुक्तं 'मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धा जायते' पुनरुच्यते
'निसर्गादधिगमाद्वा श्रद्धा जायते' तदसंगतम् ।

वस्तुस्वरूप के प्रति रूचिरूप श्रद्धा से विषयवैराग्यपूर्वक एक ऐसा आनन्द उत्पन्न होता है,
जिस का पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था ।

अनिवृत्तिकरण—

ग्रन्थिभेद के अनन्तर काल में अत्यन्त विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है । वही
अनिवृत्तिकरण कहलाता है । यह परिणाम प्राप्त होने पर जीव सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना नहीं
लौटता, इसी कारण इसे 'अनिवृत्तिकरण' कहते हैं । अनिवृत्तिकरण के द्वारा जीव सम्य-
ग्दर्शन प्राप्त करता है । उसी को नैसर्गिक श्रद्धा कहते हैं ।

शङ्का—पहले कहा था कि—'मिथ्यात्वमोहनीयकर्म के उपशम आदि से श्रद्धा उत्पन्न
होती है' और बाद में कहते हैं कि—'निसर्ग से, अथवा अधिगम से श्रद्धा उत्पन्न होती है' ।
यह कथन परस्पर असंगत है ?

यथार्थवस्तुस्वरूपानी इच्छिश्य श्रद्धाथी विषयवैराग्यपूर्वक एक एवे। आनन्द उत्पन्न
थाय छे के-जेने। पडेला डोर्ध वभत अनुभव थयो नथी.

अनिवृत्तिकरण—

ग्रन्थिभेदना अनन्तर (तरतना) काणमां अत्यन्त विशुद्ध परिष्णाम उत्पन्न थाय छे
ते 'अनिवृत्तिकरण' कडेवाय छे. आ परिष्णाम प्राप्त थयां पछी एवं सम्यक्त्व प्राप्त
कथां विना पाछे नथी करतो तेथीं एने अनिवृत्तिकरण कडे छे. अनिवृत्तिकरण एवं
द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त करे छे. तेनें नैसर्गिक (स्वाभाविक) श्रद्धा कडे छे.

शंका—पडेलां कहुं इतुं के—'मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना उपशम आदिथी श्रद्धा
उत्पन्न थाय छे.' एने पछी कडे। छे के—'निसर्ग अथवा अधिगमथी श्रद्धा उत्पन्न
थाय छे, एे कथन परस्पर असंगत छे.

स्थितपदार्थनिर्णयो जायते सोऽधिगमः, तस्मादुपशमादिद्वारेण तच्चार्याभिरुचिर्जायते सा-अधिगमश्रद्धा ।

श्रद्धया शमसंवेगादयः प्रादुर्भवन्ति, ततश्च राज्यादिविभ्रं पुत्रदारादिकं स्वजनं सर्वं परिणामदुःखप्रदं विपवत्परित्यज्य सर्वसुखसारभूतं नित्यं ध्रुवं शाश्वतिकं मोक्षमुखं प्राप्तुकामः प्रव्रजितो भवति ।

संयमश्रेणिप्राप्तिकाले या श्रद्धापरिणामधारा वर्तते तां सर्वथा रक्षेत्तु ह्रासयेदिति भावः । श्रद्धायाः परमदुर्लभत्वात्, ज्ञानचारित्रकारणतया मोक्षस्यादि-

अथवा वीतराग द्वारा निरूपित आगम के अर्थ का विचार करने से पदार्थों का यथार्थ निर्णय होता है । उस निर्णय को अधिगम कहते हैं । उस अधिगम से मिथ्यात्व-मोहनीय का क्षय, उपशम आदि होने पर तत्त्वार्थ की जो रुचि होती है, वह अधिगम-श्रद्धा है ।

श्रद्धा से शम, संवेग आदि उत्पन्न होते हैं, अत एव “राज्य आदि वैभव तथा पुत्र, पत्नी आदि समस्त आत्मीयजन अन्त में दुःखदायक हैं” ऐसा ज्ञान कर, और विप के समान उन का परित्याग कर के सब सुखों में उत्तम, नित्य, ध्रुव, शाश्वतिक मोक्ष-सुख की इच्छावाला वह सम्यग्दृष्टि पुरुष दीक्षित हो जाता है ।

तात्पर्य यह है कि-संयमप्राप्ति के समय परिणामों की जो बड़ी हुई धारा थी उस की सब प्रकार से रक्षा करना चाहिए, उसे घटने नहीं देना चाहिए । श्रद्धा परम दुर्लभ है, और ज्ञान एवं चारित्र का कारण होने से मोक्ष का आय कारण है, अत एव

वीतरागद्वारा निरूपित आगमना अर्थानां विचार करवाथी पदार्थानां यथार्थं निरूप्यथाय छे ते निरूप्यथेने अधिगम कडे छे. ते अधिगमथी मिथ्यात्वमोहनीयानां क्षय-उपशम आदि तथा पथी तत्त्वार्थानी ने रुचि थाय छे, ते अधिगमश्रद्धा छे.

श्रद्धाथी शम, संवेग आदि उत्पन्न थाय छे. अतएव भाटे “राज्य आदि वैभव तथा पुत्र, पत्नी वगेरे समस्त आत्मीयजन अन्तमां दुःखदायक छे.” अथ प्रभाष्ये लक्ष्मीने विपनी समान तेना त्याग करीने सर्वसुखोभां उत्तम, नित्य, ध्रुव, शाश्वतिक मोक्ष सुखनी इच्छावाणा सम्यग्दृष्टि पुरुष दीक्षित थथ जय छे.

तात्पर्य अथ छे हे-संयमनी प्राप्तिना समये परिष्कृतमानी ने वधती जती धारा छती तेनुं सर्व प्रक्षारथी रक्षय्य करवुं जेधअ. तेने घटवा देवी जेधअ नहि. श्रद्धा परम दुर्लभ छे अने ज्ञान, अथी रीते चारित्रनुं क्षरय्य होवाथी मोक्षनुं सुख्य क्षरय्य छे. अतएव भाटे

વિવિધોપસર્ગેઃ સવિઘ્ના કષ્ટતરસાધ્યા ચ પ્રાયશો ભવતિ, તદ્વદ્ ગ્રન્થિભેદો મનઃ-
ક્ષોમાદિવિવિધોપસર્ગેઃ, પરમવીર્યાવિષ્કારપૂર્વકકષ્ટતરસાધ્યત્વેન ચ સવિઘ્નોઽતિદુષ્કરશ્ચ,
તસ્માત્ કેવલં યથાપ્રવૃત્તિકરણેન ગ્રન્થિભેદો ન ભવિતુમર્હતિ, અત એવા પૂર્વકરણમાવ-
શ્યકમિતિ । इत्थं चापूर्वकरणेन ग्रन्थिभेदं विधायाऽनिवृत्ति-करणेन श्रद्धा लभ्यते ।

॥ અધિગમશ્રદ્ધા—

येन प्रकारेण निसर्गतः श्रद्धा जायते स कथितः, अधुना-अधिगमश्रद्धा
व्याख्यायते-अधि=अधिकृत्य तीर्थङ्कराद्युपदेशं निमित्तीकृत्य गमः=ज्ञानं यद्भवति
सोऽधिगमः, वीतरागोपदेशश्रवणाद् वीतरागप्राणीतागमार्थपर्यालोचनाद्वा यथाव-

इसी प्रकार ग्रन्थिभेद भी मनःक्षाम आदि अनेक उपसर्गों के कारण विघ्नयुक्त हो जाता
है और ग्रन्थिभेद के करने में बड़ी शक्ति की आवश्यकता होती है, अत एव अकेले
यथाप्रवृत्तिकरण से ग्रन्थिभेद नहीं हो सकता, उस के लिए अपूर्वकरण को आवश्यकता
होती है । इस प्रकार अपूर्वकरण-द्वारा ग्रन्थिभेद करने पर अनिवृत्तिकरण-द्वारा श्रद्धा प्राप्त
की जाती है ।

अधिगमश्रद्धा—

जिस प्रकार निसर्ग से श्रद्धा उत्पन्न होती है वह प्रकार कहा जा चुका ।
अब अधिगमश्रद्धा की व्याख्या की जाती है-तीर्थङ्कर आदि के उपदेश के निमित्त से
होने वाला ज्ञान अधिगम कहलाता है । वीतराग भगवान् का उपदेश सुनने से

બની બાય છે; એ પ્રમાણે અંથિભેદ પણ મનઃક્ષોભ, આદિ અનેક ઉપસર્ગોના કારણે
વિઘ્નયુક્ત થઈ બાય છે, અને તે ગ્રન્થિભેદના કરવામાં ભારે શક્તિની આવશ્યકતા
હાય છે, એટલા માટે એકલા યથાપ્રવૃત્તિકરણથી અંથિભેદ થતો નથી, તેને માટે
અપૂર્વકરણની આવશ્યકતા રહે છે, એ પ્રમાણે અપૂર્વકરણ-દ્વારા અંથિભેદ કરવાથી
અનિવૃત્તિકરણ-દ્વારા શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવામાં આવે છે

અધિગમશ્રદ્ધા—

તે પ્રમાણે નિસર્ગથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે તે પ્રકાર કહેવામાં આવી ગયો છે.
હવે અધિગમશ્રદ્ધાની વ્યાખ્યા કરવામાં આવે છે-તીર્થંકર આદિના ઉપદેશના નિમિત્તથી
થવાવાળું જ્ઞાન તે અધિગમ કહેવાય છે. વીતરાગ ભગવાનનો ઉપદેશ સાંભળવા. અથવા

॥ ટીકા ॥

વીરાઃ=પરીપદોપસર્ગકપાયાદિરૂપશત્રુવિજયિનો ભાવવીરાઃ સંયમાનુષ્ઠાને કીર્ય-
વન્તઃ સર્વોત્કૃષ્ટા इति यावत्,

મહતી ચામૌ વૌથિઃ મહાવૌથિઃ=સમ્યગ્જ્ઞાનાદિલક્ષણો મહામાર્ગઃ, મહા-
પુરુષસેવિતત્વાત્, તાં મહાવૌથિમ્ પ્રણતાઃ=માત્તાઃ કઠિનતરતપઃસંયમારાધનેન
પ્રાપ્તવન્ત ઇત્યર્યઃ, અયમેવ માર્ગો મોક્ષાવાપ્તિકરોઽશ્વેપસંયમિસેવિતત્વાત્ ।
તીર્થઙ્કરાદિમહાપુરુષા અપિ માર્ગમિમમનુશીલિતવન્ત इति વિશ્વસનીયતયા શિષ્યાણાં
શ્રદ્ધાપૂર્વકમપ્રવૃત્તિર્યથા સ્યાદિતિ ભાવઃ ।

यथा राजानो त्रिपक्षपक्षदलनाद् वीरत्वेन प्रसिद्धा भवन्ति, एवमेव

ટીકાર્થ—પરીપદ, ઉપસર્ગ, કપાય આદિરૂપ શત્રુઓ કો જીતનેવાલે, સંયમ કે
આચરણ મેં પરાક્રમ કરનેવાલે સર્વોત્કૃષ્ટ ભાવવીર યહાં 'વીર' શબ્દ સે પ્રહણ કિયે ગયે હેં ।

સમ્યગ્જ્ઞાન આદિ મોક્ષ કા મહામાર્ગ 'મહાવૌથિ' કહલાતા હૈ, ક્યોં કિ મહાપુરુષોને
ત્સ કા સેવન કિયા હૈ । ભાવવીર ઇસ મહામાર્ગ કો પ્રાપ્ત હુણ હેં । અત્યન્ત કઠોર તપ
ઔર સંયમ કા આરાધન કરના હી ઇસ માર્ગ કો પ્રાપ્ત કરના હૈ । યહી માર્ગ મોક્ષ કી પ્રાપ્તિ
કરારને વાલા હૈ, ક્યોં કિ સમસ્ત મુનિઓને ઇસી કા સેવન કિયા હૈ । તીર્થંકર આદિ મહાપુરુષોને
મી ઇસી માર્ગ કા આશ્રય લિયા હૈ, અત ઇવ વિશ્વસનીય સમજ કર શિષ્યગણ કી મી ઇસી
મેં પ્રવૃત્તિ હોની ચાહિણ ।

'વીર' પદ સે યહ પ્રકટ કિયા ગયા હૈ કિ—જૈસે રાજા લોગ અપને શત્રુઓ કા

ટીકાર્થ—પરીપદ, ઉપસર્ગ કપાય વગેરે શત્રુઓને છતવાવાળા, સંયમના
આચરણમાં પરાક્રમ કરવાવાળા સર્વોત્કૃષ્ટ ભાવવીર અર્થે 'વીર' શબ્દ વડે ગ્રહણ
કરવામાં આવ્યા છે.

સમ્યગ્જ્ઞાન આદિ મોક્ષનો માર્ગ તે "મહાવૌથિ" કહેવાય છે, કારણ કે મહા-
પુરુષોએ તેનું સેવન કર્યું છે. ભાવવીર આ મહામાર્ગને પ્રાપ્ત થયા છે. અત્યન્ત કઠોર
તપ અને સંયમનું આરાધન કરવું એ જ આ માર્ગને પ્રાપ્ત કરવો તે છે. આ માર્ગજ
મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવવાવાળો છે, કારણ કે સમસ્ત મુનિઓએ એ માર્ગનો સેવન કર્યું
છે. તીર્થંકર આદિ મહાપુરુષોએ પણ આ માર્ગનો આશ્રય લીધો છે, એટલા માટે આ
માર્ગને વિશ્વાસપાત્ર સમજીને શિષ્યગણની પણ આ માર્ગમાં પ્રવૃત્તિ થવી જોઈએ.

'વીર' પદથી એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે:—જેમ રાજા લોક પોતાના શત્રુઓને

कारणत्वाच्च श्रद्धां न परित्यजेत् । यथा—कथञ्चित्माप्तस्यापि संयमस्य श्रद्धापूर्वकरक्षणे यावज्जीवं सावधानो भवेदिति सूत्राशयः ॥ सू० २ ॥

शिष्यश्रद्धादृढीकरणाय 'परिशीलितमार्गोऽनुगम्यते' इति लोकरीत्या 'पूर्व-महापुरुषाचरितोऽयं मार्गः' इत्याशयेन कथयति—

यद्वा 'पूर्वमहापुरुषतीर्थङ्कर-गणधरादिभिरप्याचरितोऽयं मार्गः' इति प्रदर्शनाय शिष्यचेतसि श्रद्धातिरेको यथा स्यात्तथा सूत्रकारः स्वयमाह—'पणया' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

पणया वीरा महावीहि ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

प्रणता वीरा महावीथिम् ॥ सू० ३ ॥

श्रद्धा का त्याग नहीं करना चाहिए, आशय यह है कि—बड़ी कठिनाई से प्राप्त होने वाले संयम की श्रद्धापूर्वक रक्षा करने में जीवनभर सावधान रहना चाहिए ॥सू. २॥

'चले मार्ग पर चला जाता है' इस लोकव्यवहार के अनुसार शिष्य की श्रद्धा मजबूत करनेके लिए 'यह मार्ग पूर्वकालीन महापुरुषों द्वारा आचरित है' इस आशयसे कहते हैं—

अथवा—'पूर्वकाल के तीर्थङ्कर गणधर आदिने भी इसी मार्ग का अवलम्बन किया है' यह बतलाने हुए शिष्य के चित्त की श्रद्धा बढ़ाने के लिए कहते हैं—'पणया' इत्यादि ।

मूलार्थ—वीर पुरुष महामार्ग को प्राप्त हुए ॥ सू. ३ ॥

श्रद्धानो त्याग करवो नोछो नहि; आशय ओ छे के:-महान कठिनाईथी प्राप्त थवावाणा संयमनी श्रद्धापूर्वक रक्षा करवाभां जीवनना छेवला रक्षण सुधी सावधान रहैवुं नोछो. (सू. २)

"आलता मार्ग पर अलावाय छे." आ लोकव्यवहार प्रमाणे शिष्यनी श्रद्धा मजबूत करवा भाटे—'आ मार्ग पूर्वकालीन महापुरुषोअे आचरण करैल छे.' आ आशयथी कहे छे—

अथवा पूर्व कालना तीर्थंकर गणधर आदि सौअे आ मार्गनुं अवलम्बन (आश्रय) कथुं. ओ गताववा भाटे शिष्यना चित्तनी श्रद्धाने वधारवा भाटे कहे छे—'पणया' इत्यादि.

मूलार्थ—वीर पुरुष महामार्गने प्राप्त थया—(वीर पुरुषे महामार्गने प्राप्त कथो) (सू. ३)

॥ टीका ॥

वीराः=परीपदोपसर्गकपायादिरूपशत्रुचिजयिनो भाववीराः संयमानुष्ठाने कीर्य-
वन्तः सर्वोत्कृष्टा इति यावत्,

महती चाप्तौ वीथिः महावीथिः=सम्यग्ज्ञानादिलक्षणो महामार्गः, महा-
पुरुषसेवितत्वात्, तां महावीथिम् प्रणताः=प्राप्ताः कठिनतरतपःसंयमाराधनेन
प्राप्तवन्त इत्यर्थः, अयमेव मार्गो मोक्षावाप्तिकरोऽश्लेषसंयमिसेवितत्वात् ।
तीर्थङ्करादिमहापुरुषा अपि मार्गभिममनुशीलितवन्त इति विश्वसनीयतया शिष्याणां
श्रद्धापूर्वकमश्रुत्तिर्यथा स्यादिति भावः ।

यथा राजानो विपक्षपक्षदलनाद् वीरत्वेन प्रसिद्धा भवन्ति, एवमेव

टीकार्थ—परीपद, उपसर्ग, कपाय आदिरूप शत्रुओं को जीतनेवाले, संयम के
आचरण में पराक्रम करनेवाले सर्वोत्कृष्ट भाववीर यहाँ 'वीर' शब्द से ग्रहण किये गये हैं ।

सम्यग्ज्ञान आदि मोक्ष का महामार्ग 'महावीथि' कहलता है, क्यों कि महापुरुषोंने
उस का सेवन किया है । भाववीर इस महामार्ग को प्राप्त हुए हैं । अत्यन्त कठोर तप
और संयम का आराधन करना ही इस मार्ग को प्राप्त करना है । यही मार्ग मोक्ष की प्राप्ति
कराने वाला है, क्यों कि समस्त मुनियोंने इसी का सेवन किया है । तीर्थंकर आदि महापुरुषोंने
भी इसी मार्ग का आश्रय लिया है, अत एव विश्वसनीय समझ कर शिष्यगण की भी इसी
में प्रवृत्ति होनी चाहिए ।

'वीर' पद से यह प्रकट किया गया है कि—जैसे राजा लोग अपने शत्रुओं का

टीकार्थ—परीपद, उपसर्ग कपाय वगैरे शत्रुओंने शतवावाणा, संयमना
आचरणमां पराक्रम करवावाणा सर्वोत्कृष्ट भाववीर आदि 'वीर' शब्द वडे अहलु
करवामां आल्या छे.

सम्यग्ज्ञान आदि मोक्षने मार्ग ते "महावीथि" उडेवाय छे, कारण के महा-
पुरुषोअे तेनुं सेवन कथुं छे. भाववीर आ महामार्गने प्राप्त थया छे. अत्यन्त कठोर
तप आने संयमनुं आशधन करवुं अे न आ मार्गने प्राप्त करवेा ते छे. आ मार्गन
मोक्षनी प्राप्त करवावावाणा छे, कारण के समस्त मुनियोअे अे मार्गने सेवन कथुं
छे. तीर्थंकर आदि महापुरुषोअे पलु आ मार्गने आश्रय लीथे छे, अेटला माटे आ
मार्गने विश्वासयात्र समलने शिष्यगणनी पलु आ मार्गमां प्रवृत्ति थवी नेछेअे.

'वीर' पदधी अे प्रकट करवामां आल्युं छे केः—जेभ राजा लोक पोताना शत्रुओंने।

इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं' इति वचनात् । तमपकायलोकं समनुपालयेदिति सम्बन्धः । संयमी सर्वप्राणिगणपरिपालक एव सन् नान्यस्मै भयमुत्पादयति, 'मिच्छी मे सन्वभूएसु' इति वचनेन तस्य सर्वैः सह मैत्रीसद्भावात्, अतोऽसौ संयमी न तेभ्यो भयं जनयति, कस्मैचिदपि भयं केनापि नोत्पादयति, प्रत्युत सर्वप्राणिगणं परिरक्षतीति भावः ।

यद्यपि छद्मस्थैः प्राणिभिः सर्वद्रव्यपर्यायज्ञानाभावाद्बुद्धिसंस्कारराहित्येनापकायजीवस्याव्यक्तचेतनया च 'आपो जीवाः सन्ती'—त्यपरोक्षत्वेन कदाचिदपि ज्ञातुं न शक्यते, तथापि सकलतीर्थोद्धारधुरीण—तीर्थङ्कर—वचनप्रामाण्यादवश्यं

आगम में कहा है—'सभी जीव जीवित रहना चाहते हैं मरना नहीं चाहते ।' उस अपकायलोक का पालन करे अर्थात् रक्षण करे । संयमी पुरुष समस्त प्राणियों का रक्षक होता है । वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न नहीं करता । " मेरा सब प्राणियों पर मैत्रीभाव है " इस वचन के अनुसार उस की प्राणीमात्र पर मित्रता की भावना होती है । इस कारण संयमी उन्हें भय उत्पन्न नहीं करता, किसी को भी किसी द्वारा भय उत्पन्न नहीं कराता, बल्कि वह सब प्राणियों की रक्षा करता है ।

यद्यपि छद्मस्थ जीवों को समस्त द्रव्यों का ज्ञान नहीं होता इस कारण, तथा बुद्धि, संस्कार से रहित होने के कारण अपकाय के जीवों में अव्यक्त चेतना होने से, तथा 'जल जीव है' यह बात प्रत्यक्ष न होने से कभी इन्द्रियों द्वारा जानी नहीं जा सकती, फिर भी सम्पूर्ण तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ तीर्थङ्कर के वचनों को प्रमाण

आगममां पशु कष्टुं छे केः—'सर्वं एव एवता रडेवानी धन्धा करे छे, भरवानी धन्धा करता नथी.' ते अपकायलोकाडनुं पालन करे अर्थात् रक्षा करे. संयमी पुरुष समस्त प्राणीयोना रक्षक थाय छे. ते कोर्ध पशु प्राणीने लय उत्पन्न करता नथी. 'सर्वं प्राणीयो पर भारे मैत्रीभाव छे.' आ वचन प्रभाषे तेनी सर्वं प्राणीमात्र पर मित्रतानी लावना होय छे, ते कारषुथी संयमी ते एवोने लय उत्पन्न करता नथी, कोर्धने पशु कोर्धथी लय उत्पन्न करावता नथी, परंतु ते सर्वं प्राणीयोनी रक्षा करे छे.

जे के छद्मस्थ एवोने समस्त द्रव्यो अने पर्यायोनुं ज्ञान नथी; ते कारषुथी तथा बुद्धि, संस्कारथी रहित होवाथी अपकायना एवोमां अव्यक्त चेतना होवाथी, तथा 'जल एव छे' जे वात प्रत्यक्ष नहि होवाथी धन्दिरोद्वारा कोर्ध वषत लघुवामां आवती नथी तो पशु संपूर्ण तीर्थोना उद्धार करवामां समर्थ तीर्थंकरना वचनोने प्रभाष

विश्वासो विधेयः । अवध्यादिप्रत्यक्षज्ञानिनोऽपि पूर्वं भगवदाज्ञायां श्रद्धावन्तः सन्त एवाऽप्कायजीवान् विज्ञाय प्रत्यक्षज्ञानिनः संजाताः, अतः संयमिभिरवश्यमप्कायादि-जीवरक्षायां सावधानैर्भवितव्यमिति परमार्थः ॥ सू० ४ ॥

अप्कायलोकं भगवदाज्ञया विज्ञाय संयमिना यत् कर्तव्यं, तत् कथयति—‘ से वेमि ’ इत्यादि ।

मूलम्—

से वेमि—णैव संयं लोणं अब्माइक्खिज्जा, णैव ;अत्ताणं अब्माइक्खिज्जा, जे लोयं अब्माइक्खइ से अत्ताणं अब्माइक्खइ, जे अत्ताणं अब्माइक्खइ, से लोयं अब्माइक्खइ ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स व्रवीमि नैव स्वयं लोकमभ्याख्यात्, नैवात्माननमभ्याख्यात्, यो लोक-मभ्याख्याति, स आत्मानमभ्याख्याति, य आत्मानमभ्याख्याति, स लोकमभ्या-ख्याति ॥ सू० ५ ॥

मानुकर अवश्य विश्वास करना चाहिए । अवधिज्ञानो आदि प्रत्यक्षज्ञानी भी पहले भगवान् की आज्ञा पर श्रद्धा रखते हुए अप्काय के जीवों को जान कर प्रत्यक्षज्ञानी हुए, अतः संयमी जनों को अप्काय आदि के जीवों की रक्षा में सावधान होना चाहिए ॥ सू. ४ ॥

भगवान् की आज्ञा से अप्कायलोक को जान कर संयमी को जो करना चाहिये वह प्रगट करते हैं—‘ से वेमि ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ—स्वयं अप्कायलोक का अपलाप न करे, आत्मा का अपलाप न करे, जो लोक का अपलाप करता है वह आत्मा का अपलाप करता है, और जो आत्मा का अपलाप करता है वह लोक का अपलाप करता है ॥ सू. ५ ॥

मानीने अवश्य विश्वास करवो जेधये. अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञानी पणु प्रथम भगवाननी आज्ञा पर श्रद्धा राणीने अप्कायना लोवोने जणुी करीने प्रत्यक्षज्ञानी थया, जे माटे संयमी पुऱ्योव्ये अप्काय आदिना लोवोनी रक्षायां सावधान रडेवुं जेधये. (सू. ४) भगवाननी आज्ञाधी अप्कायलोकने जणुीने संयमीनुं जे कर्त्तव्य छे ते प्रगट करे छे—‘ से वेमि ’ इत्यादि.

मूलार्थ—ते हुं कहुं छुं—पोते अप्काय लोकने अपलाप—(डोवा छतां नधी कडेवुं ते) न करे. आत्मानो अपलाप करे नडि. जे लोकने अपलाप करे छे ते आत्मानो अपलाप करे छे. अने जे आत्मानो अपलाप करे छे ते लोकने अपलाप करे छे. (सू. ५)

इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं' इति वचनात् । तमपक्कायलोकं समनुपालयेदिति सम्बन्धः । संयमी सर्वप्राणिगणपरिपालक एव सन् नान्यस्मै भयमुत्पादयति, 'मिती मे सञ्चभूएसु' इति वचनेन तस्य सर्वैः सह मैत्रीसद्भावात्, अतोऽसौ संयमी न तेभ्यो भयं जनयति, कस्मैचिदपि भयं केनापि नोत्पादयति, प्रत्युत सर्वप्राणिगणं परिरक्षतीति भावः ।

यद्यपि छद्मस्थैः प्राणिभिः सर्वद्रव्यपर्यायज्ञानाभावाद्बुद्धिसंस्कारराहित्येनाफ्कायजीवस्याव्यक्तचेतनया च 'आपो जीवाः सन्ती'—त्यपरोक्षत्वेन कदाचिदपि ज्ञातुं न शक्यते, तथापि सकलतीर्थोद्धारधुरीण—तीर्थङ्कर—वचनप्रामाण्यादवश्यं

आगम में कहा है—'सभी जीव जीवित रहना चाहते हैं मरना नहीं चाहते ।' उस अपक्कायलोक का पालन करे अर्थात् रक्षण करे । संयमी पुरुष समस्त प्राणियों का रक्षक होता है । वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न नहीं करता । " मेरा सब प्राणियों पर मैत्रीभाव है " इस वचन के अनुसार उस की प्राणीमात्र पर मित्रता की भावना होती है । इस कारण संयमी उन्हे भय उत्पन्न नहीं करता, किसी को भी किसी द्वारा भय उत्पन्न नहीं कराता, बल्कि वह सब प्राणियों की रक्षा करता है ।

यद्यपि छद्मस्थ जीवों को समस्त द्रव्यों का ज्ञान नहीं होता इस कारण, तथा बुद्धि, संस्कार से रहित होने के कारण अपक्काय के जीवों में अव्यक्त चेतना होने से, तथा 'जल जीव है' यह बात प्रत्यक्ष न होने से कभी इन्द्रियों द्वारा जानी नहीं जा सकती, फिर भी सम्पूर्ण तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ तीर्थङ्कर के वचनों को प्रमाण

આગમમાં પણ કહ્યું છે કે:—“સર્વ જીવ જીવતા રહેવાની ઇચ્છા કરે છે, મરવાની ઇચ્છા કરતા નથી.” તે અપ્કાયલોકનું પાલન કરે અર્થાત્ રક્ષા કરે. સંયમી પુરુષ સમસ્ત પ્રાણીઓના રક્ષક થાય છે. તે કોઈ પણ પ્રાણીને ભય ઉત્પન્ન કરતા નથી. ‘સર્વ પ્રાણીઓ પર મારો મૈત્રીભાવ છે.’ આ વચન પ્રમાણે તેની સર્વ પ્રાણીમાત્ર પર મિત્રતાની ભાવના હોય છે, તે કારણથી સંયમી તે જીવોને ભય ઉત્પન્ન કરતા નથી, કોઈને પણ કોઈથી ભય ઉત્પન્ન કરાવતા નથી, પરંતુ તે સર્વ પ્રાણીઓની રક્ષા કરે છે.

એ કે છદ્મસ્થ જીવોને સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોનું જ્ઞાન નથી; તે કારણથી તથા બુદ્ધિ, સંસ્કારથી રહિત હોવાથી અપ્કાયના જીવોમાં અવ્યક્ત ચેતના હોવાથી, તથા 'જલ જીવ છે' એ વાત પ્રત્યક્ષ નહિ હોવાથી ઇન્દ્રિયોદ્ધાર કોઈ વખત બહુવામાં આવતી નથી તે પણ સંપૂર્ણ તીર્થોને ઉદ્ધાર કરવામાં સમર્થ તીર્થંકરના વચનોને પ્રમાણ

અનુમાનાગમાભ્યાં જીવલક્ષણવલાપસમ્બંધાદ્યાપાં જીવત્વનિરૂપણાત્ ।

યદ્યપ્કાયલોકસ્યામ્યાહ્યાનં કુર્યાત્, તર્હ્યાત્મનોઽપિ શરીરાધિષ્ટાતુરમ્યાહ્યાનં તેન કર્તવ્યં સ્યાત્, ન ચ તત્ સંભવતીત્યત આહ—નૈવમાત્માનમમ્યાહ્યાદિતિ । આત્માદિ શરીરાધિષ્ટાતા પ્રત્યક્ષભૂતથંતનાવાનિતિ નાપહ્નોતુંઃશક્યઃ, તરમાદાત્મા નાસ્તીત્યેવમાત્માનં નાપલપેદિત્યર્થઃ ।

યઃ સ્વલુ મન્દધીઃ લોકમ્=અપ્કાયલોકમ્ અમ્યાહ્યાતિ=અપલપતિ, સ પ્રત્યક્ષાદિપ્રમાણૈનિરૂપિતમાત્માનમમ્યાહ્યાતિ । યથાત્માનમમ્યાહ્યાતિ—‘આત્મા નાસ્તી’તિ યદ્વા—‘અહં નારમી’તિ, સ મહામૂઢઃ લોકમ્=અપ્કાયલોક

સમાધાન—એસા મત કહો । અનુમાન ઓર આગમપ્રમાણ સે તથા જીવ કે લક્ષણો કે સંબંધ સે જલ કો જીવ નિરૂપણ ક્રિયા ગયા હૈ ।

યદિ અપ્કાય લોક ફા અમ્યાહ્યાન ક્રિયા જાય તો શરીર કે અધિષ્ટાતા આત્મા ફા મી અમ્યાહ્યાન કરના હોના મગર વહ સંભવ નહીં હૈ, યહી વાત કહતે હૈ—આત્મા ફા અમ્યાહ્યાન ન કરે । આત્મા શરીર ફા અધિષ્ટાતા હૈ ઓર પ્રત્યક્ષ ચેતના વાલા હૈ, અતઃ ડસ ફા અપલાપ નહીં ક્રિયા જા સકતા । અત ઈવ ‘આત્મા નહીં હૈ’ ઇસ પ્રકાર આત્મા ફા અપલાપ ન કરે ।

જો ‘મન્દબુદ્ધિ અપ્કાયલોક ફા નિષેધ કરતા હૈ વહ પ્રત્યક્ષ જાદિ પ્રમાણો સે સિદ્ધ આત્મા ફા અપલાપ કરતા હૈ । ઓર જો ‘આત્મા નહીં હૈ, અથવા ‘મૈં નહીં હૈ’ ઇસ તરહ આત્મા ફા અપલાપ કરતા હૈ વહ મહામૂઢ મનુષ્ય અપને અજ્ઞાન કે વલ સે

સમાધાન—આ પ્રમાણે કહેા નહિ, અનુમાન અને આગમ પ્રમાણથી તથા જીવના લક્ષણોના સંબંધથી જલનું જીવપણું નિરૂપણ કયું છે. જો અપ્કાય-લોકનું અમ્યાહ્યાન કરવામાં આવે તો શરીરના અધિષ્ટાતા આત્માનું પણ અમ્યાહ્યાન કરવું પડશે. પરંતુ તે સંભવ નથી. એ વાત કહે છે—

આત્માનું અમ્યાહ્યાન કરશે નહિ. આત્મા શરીરને અધિષ્ટાતા છે, અને પ્રત્યક્ષ ચેતનાવાળા છે. તેથી તેને અપલાપ કરી શકાશે નહિ. એટલા માટે ‘આત્મા નથી’ એ પ્રમાણે અપલાપ કરશે નહિ.

જે મંદ બુદ્ધિવાળા અપ્કાયલોકને નિષેધ કરે છે, તે પ્રત્યક્ષ આદિ-પ્રમાણોથી સિદ્ધ-આત્માને અપલાપ કરે છે, અને જે “આત્મા નથી” અથવા “હું નથી” એ પ્રમાણે આત્માને અપલાપ કરે છે તે મહામૂઢ મનુષ્ય ચોતાના અજ્ઞાનના બળથી

ટીકા—

સોઝ્હં=ભગવદ્વચનેન જ્ઞાતાપ્કાયસ્વરૂપઃ, વ્રવીમિ=યથા ભગવતઃ સકાશાન્મયા શ્રુતં તથા કથયામીત્યર્થઃ । લોકમ્=અપ્કાયલોકં, નૈવ સ્વયમ્ અભ્યાહ્યાત્='આપો જીવા ન સન્તી'—ત્યેવં નાપલપેદિત્યર્થઃ । અભ્યાહ્યાનં નામાસદ્ભિયોગઃ, યથા કશ્ચિદ્ચૌરમુદ્દિશ્ય વદતિ—ચોરોડ્યમિતિ । અત્ર તુ—'ઘૃતતૈલાદિવજ્જીવાનામુપકરણમાત્રં જલં, ન તુ તદ્ જીવો ભવિતુમર્હતિ, જીવોપકરણત્વાત્' એતત્કથનમેવાસદ્ભિયોગઃ, યતો હિ તુરગાદીનાં જીવાનામપિ જીવોપકરણત્વેન દૃષ્ટત્વાદુક્તરીત્યા જલસ્ય જીવ-ત્વં નાપલપિતું શક્યતે ।

નન્વજીવાનામપાં જીવત્વારોપણમેવાભ્યાહ્યાનં કુતો ન ભવતિ ? મૈવમ્,

ટીકાર્થ—ભગવાન્ કે વચનોં કે અનુસાર અપ્કાય કા સ્વરૂપ જાનને વાલા મેં કહતા હું, અર્થાત્ મૈને ભગવાન્ કે સમીપ જૈસા જાના હૈ વૈસા હી કહતા હું—સ્વયં અપ્કાયરૂપ લોક કા અપલાપ ન કરે અર્થાત્ એસા ન કહે કિ—'જલ જીવ નહીં હૈ' ।

અસત્ આરોપ કો અભ્યાહ્યાન કહતે હૈં, જૈસે અચૌર કો ચૌર કહના । યહાં “ ઘી તેલ આદિ કે સમાન જલ, જીવોં કા ઉપકરણમાત્ર હી હો સકતા હૈ, વહ સ્વયં જીવ નહીં હૈ, ક્યોંકિ જીવ કા ઉપકરણ હૈ” । ઇસ પ્રકાર કા કથન હી અસત્—અભિયોગ હૈ । ક્યોં કિ ઘોડા વગેરે જીવ મી જીવોપકરણ કે રૂપ મેં દેલે જાતે હૈં, અતઃ જલ કે જીવપન કા અપલાવ નહીં કિયા જા સકતા ।

શંકા—અજીવ જલ મેં જીવક વ કા આરોપ કરના હી અભ્યાહ્યાન ક્યોં ન સમજા જાય ?

ટીકાર્થ—ભગવાનનાં વચનો પ્રમાણે અપ્કાયનું સ્વરૂપ જાણવાવાળો હું કહું છું, અર્થાત્ મેં ભગવાનની પાસેથી જેવું સાંભળ્યું છે તેવું જ કહું છું—પોતે અપ્કાય રૂપ ઠોકરને અપલાપ કરે નહિ, અર્થાત્ એવું કહે નહિ કે:—'જલ જીવ નથી.' અસત્ આરોપને અભ્યાહ્યાન કહે છે, જેમકે અચૌરને ચૌર કહેવો. અહિં “ ઘી તેલ આદિ પ્રમાણે જલ એ જીવોં ઉપકરણમાત્ર જ હોઈ શકે છે, તે સ્વયં જીવ નથી, કારણ કે—” તે જીવનું ઉપકરણ છે, આ પ્રકારનું કહેવુંજ—અસત્ (મિથ્યા) અભિયોગ છે, કારણકે ઘોડા વગેરે જીવ પણ જીવોપકરણના રૂપમાં જોવામાં આવે છે. તેથી જલનું જીવપણું અપલાપ કરી શકાય નહિ.

શંકા—અજીવ પાણીમાં જીવપણાને આરોપ કરવો તેજ અભ્યાહ્યાન શા માટે નહિ સમજવું ?

विरुवरुवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारंभेणं उदयसत्त्वं समारभमाणा अण्णे अणेगरुवे पाणे विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः यदिसं विरूप-
रूपैः शस्त्रैः उदककर्मसमारम्भेण, उदकशस्त्रं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपाम् प्राणान्
विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

एके=अन्ये लज्जमानाः=अप्कायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितहृदयतया
संकोचमापद्यमानाः, पृथक्=विभिन्नाः, केचित्तु प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेव-
लिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति पश्य । इमे
सूक्ष्मवादराप्कायारम्भकरणे मीतास्त्रस्ता उद्दिग्नास्त्रिकरणत्रियोगैरप्कायारम्भपरि-
त्यागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

अप्काय का आरम्भ करते हैं वे अप्काय के शस्त्रों का आरंभ करने वाले अनेक प्राणियों के
प्राणों का हनन करते हैं ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—तीव्रकरुणा से द्रवित हृदयवाले कोई-कोई (अनगार) अप्काय के आरंभ
में संकोच करते हैं—अप्काय का आरंभ नहीं करते वे विभिन्न हैं—कोई अवधिज्ञानी कोई
मनःपर्ययज्ञानी और कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा अनगार हैं, उन्हें देखो । ये सूक्ष्म वादर
अप्काय का आरंभ करने में मीत हैं, त्रस्त हैं, उद्दिग्ण हैं, और तीन कारण तीन योग से
अप्काय के आरंभ के त्यागी हैं, उन्हें देखो ।

अप्कायने आरंभ करे छे; ते अप्कायना शस्त्रेणे आरंभ करवावाणा अनेक प्राणी-
आना प्राणोणे नाश करे छे. (सू. ५)

टीकार्थ—तीव्र कर्षुधी द्रवित हृदयवाणा डोह-डोह अप्काय आरंभमां
संकोच करे छे—अप्कायने आरंभ करता नथी ते नूदा छे. डोह अवधिज्ञानी, डोह
मनःपर्ययज्ञानी अने डोह परोक्षज्ञानी भावितात्मा अप्काय छे, तेने नुआः—ते
सूक्ष्म अने वादर अप्कायने आरंभ करवामां लय पावेला छे, त्रसित छे, उद्दिग्ण
छे, अने त्रलु करलु त्रलु योगधी अप्कायना आरंभना त्यागी छे. तेने नुआ.

સ્વાજ્ઞાનવલાદભ્યાख्याતિ । કરચરણમુલાઘચયવસદ્ધિતશરીરાધિષ્ટાતા મુવ્યક્તોપયોગા-
દિલક્ષણઃ સ્વાત્માઽપિ યેનાભ્યાख्याતસ્તસ્યાવ્યક્તોપયોગાદિલક્ષણસ્યાપ્કાયસ્યામ્બ્યા-
ચ્યાનં કિં નુ નામ દુષ્કરમ્ ? ॥ સૂ. ૫ ॥

અપ્કાયલોકસ્યામ્બ્યાચ્યાને વહુદોપાપાતો ભવતીતિ પર્યાલોચ્યાનગારા અપ્-
કાયં નોપમર્દયન્તિ । દષ્ટિશાક્યાદયસ્તુ નાનગારા ભવિતુમર્હન્તિ, તેપામપ્કાયોપ-
મર્દકત્વાદિત્યાહ—‘લજ્જમાણા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

લજ્જમાણા પુઠો પાસ, અણગારા મો—તિ એને પત્રયમાણા જમિણં

અપ્કાય કા અપલાપ કરતા હૈ । જિસ ને હાથ, પૈર, મુખ આદિ અવયવોં સે યુક્ત શરીર કે
અધિષ્ટાતા, તથા અત્યન્ત સ્પષ્ટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોં વાલે આત્મા કા હી અપલાપ કર દિયાતો
ઉસ કે લિષ્ટ અસ્પષ્ટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોં વાલે અપ્કાય કા અપલાપ કરના કુચ્છ મી કઠિન
નહી હૈ ॥ સૂ. ૫ ॥

અપ્કાય કા અપલાપ કરને સે વહુત સે દોષ આતે હૈં, ઈસા વિચાર કર અનગાર
અપ્કાય કી વિરાધના નહીં કરતે । દણ્ડી ઓર શાક્ય આદિ, અનગાર નહીં હો સકતે, ક્યોં કિ
વે અપ્કાય કી વિરાધના કરતે હૈં । યહ વાત ઈસ સૂત્ર મેં વતલાતે હૈં—‘લજ્જમાણા’
ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—અપ્કાય કી હિંસાસે સંકોચ કરને વાલોં કો અલગ સમસો, ઓર
‘હમ અનગાર હૈં’ ઈસા કહને વાલોં કો અલગ સમસો । જો નાના પ્રકાર કે શક્તોં સે

અપ્કાયનો અપલાપ કરે છે. જેણે હાથ, પગ, મુખ આદિ અવયવોથી યુક્ત, શરી-
રના અધિષ્ટાતા, તથા અત્યન્ત સ્પષ્ટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોવાળા આત્માનો અપલાપ
કરી દીધો, તેને માટે અસ્પષ્ટ ઉપયોગ આદિ લક્ષણોવાળા અપ્કાયનો અપલાપ કરવા તે
કાંઈ કઠિન નથી. (સૂ. ૫)

અપ્કાયનો અપલાપ કરવાથી ઘણા હોષ આવે છે, એવો વિચાર કરીને
અણગાર અપ્કાયની વિરાધના કરતા નથી, ઠંડી અને શાક્ય આદિ, અણગારે થઈ
શકતા નથી, કારણ કે તેઓ અપ્કાયની વિરાધના કરે છે. તે વાત આગળના સૂત્રમાં
ખતાવે છે—‘લજ્જમાણા’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—અપ્કાયની હિંસાને સંકોચ કરવાવાળાને બૂદા બન્યા અને “અમે
અણગાર છીએ.” એ પ્રમાણે ઠહેવાવાળાને પણ બૂદા બન્યા. જે નાના પ્રકારનાં શસ્ત્રોથી

दाली-चणक-वह्नादिकम् । तदुभयशस्त्रं-मृत्तिकादिमिश्रं जलम् । भावशस्त्रम्=अपः प्रति मनोवाक्यानां दुष्प्रणिहितत्वम् । एतैः शस्त्रैः उदककर्मसमारम्भेण=उदककर्मसमारम्भः उदककर्मसमारम्भः=उदकमाश्रित्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनियन्धनसावधव्यापारस्तेन, इमम्=अप्कायं विहिंसन्ति ।

अप्कायद्विसायां मृत्ताः खलु पृथ्वीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह—'उदकशस्त्र'—मित्यादि, उदकशस्त्रम्=उदकोपमर्दकं शस्त्रं, शस्यते=हिंस्यते अनेनेति शस्त्रं, तत् पूर्वोक्तमकारं द्रव्यभावभेदमिन्नं समारम्भमाणः=उदककायं प्रति व्यापारयन्तः, अन्यान्=अप्कायभिन्नान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन्—स्यावरान्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च विहिंसन्ति ।

शस्त्र है । मिट्टी आदि से मिला हुआ जल उभयकायशस्त्र है । जल के विषय में मन, वचन और कायका दूषित प्रयोग करना भावशस्त्र है । इन शस्त्रों से जलकर्म का समारंभ कर के अर्थात् जल के आरंभद्वारा ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों के बंध कारणभूत सावध व्यापार कर के जलकाय की हिंसा करते हैं ।

जो जलकाय की हिंसा में प्रवृत्त होते हैं वे पृथ्वीकायरूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, यह बतलाते हैं—'उदयसत्त्वं.' इत्यादि ।

जिस के द्वारा हिंसा की जाय उसे शस्त्र कहते हैं । शस्त्र दो प्रकार के हैं—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र । जिस से अप्काय की हिंसा हो वह अप्कायशस्त्र है । अप्कायशस्त्र का अप्काय के विषय में प्रयोग करने वाले अप्काय से भिन्न अनेक पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की हिंसा करते हैं ।

हाल, अण्डा, बाल आदि परकायशस्त्र छे. भाटी आदिथी भण्डुं जल उलयकायशस्त्र छे. जलना विषयभां मन, वचन अने कायानो दूषित प्रयोग करवे ते भावशस्त्र छे. अशस्त्रोथी जलकर्मनो समारंभ करीने, अर्थात् जलना आरंभद्वारा ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारना कर्मोना बंधना कारणभूत सावध व्यापार करीने जलकायनी हिंसा करे छे.

जलकायनी हिंसाभां जे प्रवृत्त थाय छे ते पृथ्वीकायरूप समस्त लोकनी हिंसा करे छे. अथ तावे छे—'उदयसत्त्वं'. इत्यादि जेना द्वारा हिंसा करी शक्य तेने शस्त्र कहे छे. शस्त्र जे प्रकारना छे—(१) द्रव्यशस्त्र अने (२) भावशस्त्र जेनाथी अप्कायनी हिंसा थाय ते अप्कायशस्त्र छे. अप्कायशस्त्रनो अप्कायना विषयभां प्रयोग करवावाणा अप्कायथी सिद्ध अनेक पृथ्वीकाय आदि स्थावरानो द्वीन्द्रिय विगेरे त्रस जीवोनी हिंसा करे छे.

एके=पुनरन्ये तु वयमनगाराः=साधवः स्मः, इति सामिमानं प्रवदमानाः
'वयमेव अप्कायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति व्यर्थं प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः
सन्ति तान् पृथक्=पृथग्भावेन पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते,
नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः, द्रव्यभावरूपैः शस्त्रैः ।
तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकाय-परकाय-तदुभयरूपम् । स्वकायशस्त्रं-तडागाधुदकस्य कूपा-
धुदकम् । कूपाधुदकस्य तडागाधुदकं च । परकायशस्त्रं द्राक्षा-शाक-तण्डुल-पिष्ट-

और कोई-कोई लोग 'हम साधु हैं' इस प्रकार अभिमान के साथ कहते हुए—
अर्थात् 'हम ही अप्काय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं' इस प्रकार वृथा प्रलाप करते
हुए द्रव्यलिङ्गी हैं, उन्हें अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी, अनगार के गुणों में तनिक भी
प्रवृत्ति नहीं करते, और न गृहस्थ के किसी कार्य का त्याग करते हैं । यही बात आगे बतलाते
हैं—'जमिणं.' इत्यादि ।

वे नाना प्रकार के शस्त्रों से जलका आरंभ करते हैं । शस्त्र अनेक प्रकार के हैं,
उन में से द्रव्यशस्त्र-स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप है । तालाव का जल, कूप का
जल परस्पर स्वकायशस्त्र है । इसी प्रकार कूप आदि के जल का शस्त्र-तालाव आदिका
जल है यह स्वकायशस्त्र है । दास, शाक, चावल, आटा, दाल, चना, बाल आदि परकाय

અને કોઈ-કોઈ લોક "અમે સાધુ છીએ" આ પ્રમાણે અભિમાન સાથે કહેતા
અર્થાત્ 'અમેજ અપકાયના રક્ષક અને મહાવ્રત ધારણ કરવાવાળા છીએ' આ
પ્રમાણે વૃથા પ્રલાપ કરતા થકા દ્રવ્યલિંગી છે તેને જૂઠા જણો.

અણુગાર હોવાનું અભિમાન કરવાવાળા એ દ્રવ્યલિંગી સાચા અણુગારના ગુણોમાં
જરાપણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, અને ગૃહસ્થના કોઈપણ કાર્યોના ત્યાગ કરતા નથી,
તે વાત આગળ બતાવે છે—'જમિણં' ઇત્યાદિ.

તે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી જલનો આરંભ કરે છે. શસ્ત્રો અनेक प्रकारના છે,
તેમાંથી દ્રવ્યશસ્ત્ર-સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય-રૂપ છે. તલાવનું પાણી,
કૂવાનું પાણી, પરસ્પર સ્વકાયશસ્ત્ર છે. એ પ્રમાણે કૂવા વગેરેના જલનું શસ્ત્ર
તાલાવ આદિનું જલ છે, તે પણ સ્વકાયશસ્ત્ર છે. દાસ, ચાવલ, લોઢ,

“सम्यक् स्नात्वोचिते काले, संस्नाप्य च जिनान् क्रमात् ।
पुष्पाहारस्तुतिभिश्च, पूजयेदिति तद्विधिः” ॥ १ ॥ (धर्मसंग्रहः)

“कुसुमकवयध्रुवेहि, दीवयवासेहि सुन्दरफलेहि ।
पूया घयसल्लिलेहि, अट्टविहा तस्स कायव्वा” ॥ १ ॥

(दर्शनशुद्धिः सटीका १ तत्त्व)

छाया—“कुसुमाक्षतधूपै-दीपकवासैः सुन्दरफलैः ।

पूजा घृतसल्लिलै, -रष्टविधा तस्य कर्त्तव्या ॥ १ ॥” इति ।

“विहिणा उ कीरमाणा, सव्व चिय फलवई भवे चेद्वा ।

इअलोह्या वि किं पुण, जिणपूया उभयलोगहिया” ॥ १ ॥

(पञ्चाशक. ४ चित्र.)

छाया—विधिना तु क्रियमाणा, सर्वा चैव फलवती भवेचेष्टा ।

इहलीकिकाऽपि किं पुन, -जिनपूजा-उभयलोकहिता ॥ १ ॥ इति ॥

तथैव पूजामतिष्ठादिषु अप्कायोपमर्दनरूपे शास्त्रनिषिद्धे सावधकार्ये प्रवृत्त्याऽपि
द्रव्यलिङ्गिनो दण्डिनः शाक्यादयश्च स्वात्मानमनगारमेव मन्यन्ते ।

“उचित काल में सम्यक् प्रकार से स्नान कर के और क्रम से जिनप्रतिमा को
स्नान करा के पुष्प, आहार और स्तुतिसे पूजा करे । यह पूजा की विधि हैं” । (धर्मसंग्रह)

“विधिपूर्वक की हुई समस्त इस लोकसंबंधी चेष्टाएँ भी सफल होती है तो जिनेन्द्र
भगवान् की पूजा का तो कहना ही क्या है, अर्थात् वह दोनों लोकों में हितकारी है” ।
(पञ्चाशक ४ चित्र.)

इसी प्रकार पूजा प्रतिष्ठा आदि अप्काय की हिंसारूप, शास्त्रनिषिद्ध सावध कार्य
में प्रवृत्ति करके भी द्रव्यलिङ्गी दंडी शाक्य आदि अपने आप को अनगार ही मानते हैं ।

“उचित कालमां सम्यक्प्रकारथी स्नान करीने अने कर्मथी जिनप्रतिमाने
स्नान करावी, पुष्प, आहार अने स्तुतिथी पूजा करे. आ प्रमाणे पूजनी
विधि छे. (धर्मसंग्रह)

“विधिपूर्वक करवाभां आवेली लोकसंबंधी समस्त चेष्टाओ. (क्रियाओ.)
पणु सकल थाय छे, तो जिनेन्द्र लगवाननी पूजनुं तो कडेपुं नुं ? आ तो
अन्ने लोकमां हितकारी छे ॥ १ ॥” (पञ्चाशक-४-चित्र)

ओ प्रमाणे पूजा प्रतिष्ठा आदि अप्कायनी हिंसारूप शास्त्रनिषिद्ध सावध कार्यमां
प्रवृत्ति करीने पणु द्रव्यलिङ्गी दंडी, शाक्य आदि पोट-पोताने अणुगारण
माने छे.

જગતિ સ્વલુ વહવો દ્રવ્યલિંગિનો વિધન્તે, યથા—‘વયં પશ્ચળહાત્રતધારિણઃ સર્વારમ્ભપરિત્યાગિનઃ પટ્કાયરક્ષકા અનગારાઃ સ્મઃ’ ઇતિ વદન્તો દણ્ડિશાક્યાદયઃ સન્તિ । તત્ર કેચિદેહશુદ્ધયેં વહુદકસ્નાયિનો ભવન્તિ । કેચિત્સ્વનિવાસર્થે શુદ્ધાદિ-નિર્માણકરણે મૃત્તિકાપાપાણચૂર્ણાદિપુ નિક્ષેપણેનાપ્કાયમુપમર્દયન્તિ । કેચિત્ સ્ત્રોદર-પૂર્વ્યર્થે કૃષ્યાદિપુ જલસેચનં કુર્વન્તિ । કેચિચ્ચ દેવકુલાદ્યર્થે સાવધમુપદિશન્તિ, પાર્થિવોં દેવગુર્વાદિમતિમામનેકઘટજલૈઃ સ્નપયન્તિ । તે હિ સવિધિજિનપૂજાયાં, પ્રતિમાપ્રતિષ્ઠાપને વહુવિધસચિત્તજલૈઃ પ્રતિમાસ્નપને ચ મહામીમભવસમુદ્રાદાત્મનઃ સમુદ્ધારો ભવતીતિ મન્યન્તે, ઉપદિશન્તિ ચ—

સંસાર મેં વહુતસે દ્રવ્યલિંગી હેં । જૈસે—‘હમ પંચમહાત્રતધારો, સવ આરમ્ભ કે ત્યાગી, ઓર પટ્કાય કે રક્ષક અનગાર હેં’ ઁસા કહને વાલે દણ્ડી તથા શાક્ય આદિ હેં । ઇન મેં કોઈ—કોઈ દેહ કી શુદ્ધિ કે લિપ્ વહુત—સે જલ સે સ્નાન કરને વાલે હેં । કોઈ અપને રહને કે વાસ્તે મકાન આદિ બનાને કે લિપ્ મિટ્ટી કંકર ઓર ચૂને વગેરહ મેં મિલાકર જલકાય કી હિંસા કરતે હેં । કોઈ અપના પેટ ભરને લિપ્ કૃષિ (લેતી) મેં જલ સીંચતે હેં । કોઈ દેવકુલાદિકે લિપે સાવધ ઉપદેશ કરતે હેં । કોઈ દેવ ઁવં ગુરુ કી પાર્થિવ પ્રતિમા કો વહુત સે—ઘડે પાની સે સ્નાન કરાતે હેં । લે વિધિપૂર્વક જિનપૂજા મેં ઓર પ્રતિમા કી પ્રતિષ્ઠા મેં વહુત પ્રકાર કે સચિત્ત જલ સે પ્રતિમા કે સ્નાન મેં, મહા-મયંકર ભવસાગર સે આત્મા કા ઉદ્ધાર હોના માનતે હેં ઓર ઉપદેશ દેતે હેં—

સંસારમાં બહુ સંખ્યામાં દ્રવ્યલિંગી છે. જેમ કે—‘અમે પંચમહાત્રતધારી, સર્વ પ્રકારના આરંભના ત્યાગી અને પટ્કાયના રક્ષક અણુગાર છીએ’ આ પ્રમાણે કહેવાવાળા ઠંડી તથા શાક્ય આદિ છે, તેમાંથી કેટલાક તેા દેહની શુદ્ધિ માટે ઘણા જ જલથી સ્નાન કરવાવાળા હોય છે. કેટલાક તેા પોતાને રહેવા માટે મકાન આદિ બનાવવા માટે માટી કાંકરા અને ચુના વગેરેમાં મેળવીને જલકાયની હિંસા કરે છે. કોઈ—કોઈ પોતાનું પેટ ભરવા માટે ખેતીમાં જલ સીંચે છે. કોઈ દેવકુલ વગેરે માટે સાવધનેા ઉપદેશ આપે છે, અને કોઈ દેવ અને શુરૂની પાર્થિવ પ્રતિમાને ઘણાં જ—ઘડાં પાણીથી સ્નાન કરાવે છે. તે વિધિપૂર્વક જિનપૂજામાં અને પ્રતિષ્ઠામાં ઘણાં જ પ્રકારના સચિત્ત જલથી પ્રતિમાને સ્નાન કરાવામાં મહાભયંકર ભવસાગરથી આત્મા-નેા ઉદ્ધાર થાય છે, એવું માને છે. અને ઉપદેશ આપે છે:—

“सम्यक् स्नात्वोचिते काले, संस्लाप्य च जिनान् क्रमात् ।
पुष्पाहारस्तुतिमिथ, पूजयेदिति तद्विधिः” ॥ १ ॥ (धर्मसंग्रहः)

“कुसुमकखयधूवेहि, दीव्यवासेहि सुंदरफलेहि ।

पूया घयसलिलेहि, अट्टविहा तस्स कायव्वा” ॥ १ ॥

(दर्शनशुद्धिः सटीका १ तत्त्व)

छाया—“कुसुमाक्षतधूपै-दीपकवासैः सुन्दरफलैः ।

पूजा घृतसलिलै, -रष्टविधा तस्य कर्त्तव्या ॥ १ ॥” इति ।

“विहिणा उ कीरमाणा, सञ्च चिय फलवई भवे चेद्वा ।

इअलोइया वि किं पुण, जिणपूया उभयलोगहिया” ॥ १ ॥

(पञ्चाशक ४ चित्र.)

छाया—विधिना तु क्रियमाणा, सर्वा चैव फलवती भवेचेष्टा ।

इहलौकिकाऽपि किं पुन, -जिनपूजा-उभयलोकहिता ॥ १ ॥ इति ॥

तथैव पूजामतिष्ठादिषु अष्कायोपमर्दनरूपे शास्त्रनिषिद्धे सावधकार्ये प्रवृत्त्याऽपि
द्रव्यलिङ्गिनो दण्डिनः शाक्यादयश्च स्वात्मानमनगारमेव मन्यन्ते ।

“उचित काल में सम्यक् प्रकार से स्नान कर के और क्रम से जिनप्रतिमा को
स्नान करा के पुष्प, आहार और स्तुतिसे पूजा करे । यह पूजा की विधि हैं” । (धर्मसंग्रह)

“विधिपूर्वक की हुई समस्त इस लोकसंबंधी चेष्टाएँ भी सफल होती है तो जिनेन्द्र
भगवान् की पूजा का तो कहना ही क्या है, अर्थात् वह दोनों लोकों में हितकारी है” ।

(पञ्चाशक ४ चित्र.)

इसी प्रकार पूजा प्रतिष्ठा आदि अष्काय की हिसारूप, शास्त्रनिषिद्ध सावध कार्यें
में प्रवृत्ति करके भी द्रव्यलिङ्गी दंडी शाक्य आदि अपने आप को अनगार ही मानते हैं ।

“उचित कालमां सम्यक्प्रकारथी स्नान करीने अने उभथी जिनप्रतिमाने
स्नान करावी, पुष्प, आहार अने स्तुतिथी पूजा करे, आ प्रमाणे पूजनी
विधि छे. (धर्मसंग्रह)

“विधिपूर्वक करवामां आवेली लोकसंबंधी समस्त चेष्टाये। (क्रियाये।)
पक्षु सकल थाय छे, तो जिनेन्द्र भगवान्नी पूजनुं तो कडेपुं न थुं ? आ तो
अने लोकमां हितकारी छे ॥ १ ॥” (पञ्चाशक-४-चित्र)

ये प्रमाणे पूजा प्रतिष्ठा आदि अष्कायनी हिसारूप शास्त्रनिषिद्ध सावध कार्यमां
प्रवृत्ति करीने पक्षु द्रव्यलिङ्गी दंडी, शाक्य आदि पोत-पोताने अंशुगारज
माने छे.

ये उदकशस्त्रं प्रयुञ्जानाः पद्मजीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ति, ते द्रव्य-
लिङ्गिनो नरकनिगोदादिनानाविधदुःखज्वालमालाकुले दीर्घसंसारे परिभ्रमन्ति,
उक्तञ्च-

“ सावज्जपूयकारी, सावज्जं उवदिसंति जे अण्ण ।

आउक्कायवहाओ, भमंति ते दीइसंसारे ॥ १ ॥ ” ॥ सू० ६ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह ‘ तत्थ ’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चव
जीविस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से

જો લોગ જલશસ્ત્ર કા પ્રયોગ કરતે હુપ પદ્મકાયં કે સમસ્ત જીવો કી વિરાધના કરતે
હૈં વે દ્રવ્યલિંગી નરક આદિ કે નાના પ્રકારકે દુઃખો કી જ્વાલાઓ કે સમૂહ સે વ્યાપ્ત લગ્ને
સંસાર મેં ચારો ઓર ચંકર લગાતે હૈં । કહા મી હૈ—

“જો પુરુષ જ્ઞાનરહિત હોકર સાવચ કા ઉપદેશ દેતે હૈં, વે, ઓર, સાવચ પૂજા કરને
વાલે હૈં વે અકાય કી હિંસા સે દીર્ઘ સંસાર મેં ભ્રમણ કરતે હૈં ” ॥ સૂ. ૬ ॥

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામી સે કહતે હૈં—‘ તત્થ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—ભગવાન્ ને પરિજ્ઞા કા પ્રતિબોધ દિયા હૈ । જો ઇસ જીવન કે સુખ
કે લિપ અપની વન્દના, માનના, પૂજા, જન્મ-મરણ સે છુટકારા, તથા દુઃખો કા નાશ

જે લોક જલશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરીને પદ્મકાયના તમામ ભવોની વિરાધના કરે છે
તે દ્રવ્યલિંગી, નરક નિગોદ આદિના નાના પ્રકારના દુઃખોની જ્વાલાઓના સમૂહથી
વ્યાપ્ત લાંબા સંસારમાં ચારેય તરફ ચક્કર લગાવે છે. કહ્યું છે કે:-

“જે પુરુષ જ્ઞાનરહિત થઇને સાવચનો ઉપદેશ આપે છે તે, અને સાવચ
પૂજા કરવાવાળા દીર્ઘ-લાંબા સંસારમાં ભ્રમણ કરે છે.” ॥ ૧ ॥ (સૂ. ૬)

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—‘ તત્થ ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાને બોધ આપ્યો છે. જે આ ભવનના સુખ માટે
પોતાની વંદના, માન્યતા, પૂજા, જન્મ-મરણથી મુક્તિ તથા દુઃખોનાં નિવારણ માટે; તે

सपमेव उदयसत्यं समारंभह, अणोर्हि उदयसत्यं समारंभावेह, अणो वा उदयसत्यं समारंभते समणुजाणह, तं से अहियाए तं से अवोहीए ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखमतिघातहेतुं स स्वयमेवोदकशखं समारंभते, अन्यै-रुदकशखं समारंभयति, अन्यान् वा उदकशखं समारंभमाणान् समनुजानाति, तत्तस्याहिताय तत्तस्यावोधये ॥ सू० ७ ॥

टीका—

तत्र=अपकायसमारंभे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यग्बोधः खलु प्रवेदिता=प्रतियोधिता । कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतियोधितमिति भावः । ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदात् परिज्ञाया द्वैविध्यं, द्विविधा-यास्तस्या लक्षणं च प्रागभिहितम् ।

करने के निमित्त वह स्वयं ही उदकशख का आरंभ करता है, दूसरों से उदकशख का आरंभ कराता है, और उदकशख का आरंभ करने वालों की अनुमोदना करता है । वह उस के अहित के लिए है, वह उसकी अवोधि के लिए है ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—अपकाय के समारंभ के विषय में भगवान् श्री महावीरने सम्यग् बोध का उपदेश दिया है । भगवान्ने कहा है कि—कर्मबंध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञा का आश्रय आवश्यक लेना चाहिए । ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा, इस प्रकार परिज्ञा के दो भेद हैं । दोनों के लक्षण पहले ही कह चुके हैं ।

प्राज्ञो जलशस्त्रेण आरंभं करोति, धीमता पासे जलशस्त्रेण आरंभं करोति । अने जलशस्त्रेण आरंभं करोवावाणानी अनुमोदना करोति । ते प्राज्ञाना अहितं भाटेति । ते तेनी अवोधिने भाटेति । (सू. ७)

टीकार्थ—अपकायना समारंभना विषयमां लगवान श्री महावीरे सम्यग् बोधने उपदेश आश्रय्येति । लगवाने कर्तुं छे कर्मबंधने नाश करवा भाटेति एवोअपे परिज्ञाने आश्रय्येति । ज्ञपरिज्ञा अने प्रत्याख्यानपरिज्ञा, एते प्रमाद्ये परिज्ञाना ये वेद छे । अनेना लक्षणे प्रथमं कडेवामां आख्या छे ।

उपभोगद्वारम्—

जीवः कस्मै प्रयोजनायापकायजीवं प्रति सावधव्यापारं करोती ?—त्याह—
 'अस्य चैवे'—त्यादि । अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य जीवनस्यार्थे—मुखार्थं स्नान-पान-
 -धावन-सेक-यानपात्रो-डुप-गमनागमनाद्यर्थम्, तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय-
 -परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-जलयन्त्रण शीकरवृष्ट्यादौ, 'फुंहारा' इति भाषायाम् ।
 माननं=जन्मसत्कारः, तदर्थं, यथा-मलापकर्षस्नानवस्त्रमलापकर्षणादौ । पूजनं=वस्त्ररत्ना-
 दिपुरस्कारलाभरत्तदर्थं, यथा-देवप्रतिमादिरत्नपूजनादौ । जातिमरणमोचनाय तीर्थ-
 स्नानादौः । दुःखप्रतिघातहेतुं=रोगादिशमनार्थं स्नानपानादौ, स स्वयमेवोदकस्रष्टं
 समारभते=व्यापारयति । अन्यैर्वा उदकस्रष्टं समारम्भयति=उद्योजयति । अन्यान्

उपभोगद्वारम्—

जीव किस प्रयोजन से अप्काय के जीवों के प्रति सावध व्यापार करता है ? इस का उत्तर कहते हैं—इसी क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, अर्थात् स्नान, पान, धोना, सींचना, जहाज, नौका का गमनागमन, इत्यादि के लिए । प्रशंसाके लिए, जैसे—जल से फौहारा चलाने आदि में, लोगों से सत्कार पाने के लिए, जैसे—स्नान और वस्त्र आदि का मूल दूर करने आदि में, पूजा अर्थात् वस्त्र, रत्न आदि का पुरस्कार पाने के लिए, जैसे देवप्रतिमा आदि के स्तपन और पूजन आदि में, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए तीर्थस्नान आदि में । दुःखों का निरोध करने के हेतु, अर्थात् रोग आदि को शान्त करने लिए स्नान-पान आदि में वह स्वयं अप्काय के विराघक द्रव्य और भावशक्त का आरंभ करता

उपभोगद्वारम्—

एव कथा प्रयोजनार्थी अप्कायना एवो प्रति सावध व्यापार करे छे ? तेनो उत्तर कहे छे के—आ क्षणभङ्गुर एवनना सुभ भाटे, अर्थात्, स्नान, पान धोवुं, पाणी सींचवुं, वहाणु आगणोठमांजवुं आववुं, इत्यादि भाटे. प्रशंसाने भाटे, जेमके-नगमांथी कुवारा अदाववा आदिमां, लोकार्थी सत्कार पाभववा भाटे. जेमके-स्नान करवामां अने वस्त्र वगेरेनो भेद हूर करवामां, पूजा अर्थात् वस्त्र, रत्न, आदिनो पुरस्कार भेजववा भाटे, जेम-देवप्रतिमा आदिना स्नान अने पूजन वगेरेमां, जन्म-मरणार्थी मुक्त थवा भाटे, जेम-तीर्थस्नान आदिमां, दुःखोनो निरोध करवाना हेतुथी, अर्थात्-रोग वगेरेनो शान्त भाटे स्नान-पान वगेरेमां ते चाते अप्कायना विराघक द्रव्य अने भावशक्तनो आरंभ करे छे, भीला पासे अप्कायशक्तनो

वा उदकशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति । तत्=अप्कायसमारम्भणं तस्य=अप्कायसमारम्भणं कुर्वतः कारयितुरनुमोदयितुश्च अहिताय भवति, तथा तत् तस्य अवोधये=जिनधर्ममाप्त्यभावाय भवति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थङ्करादीनां समीपेऽप्कायजीवस्वरूपं ज्ञातं स एवं विजानातीत्याह—
'से तं संबुज्जमाणे.' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संबुज्जमाणे आयाणीयं समुद्गाए सोचा भगवओ आणगारारणं वा अंतिए, इहमेगेसिं णायं भवइ—एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए, इच्चत्यं गट्टिए लोए जमिणं विरूवस्सुवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारम्भेणं उदयसत्थं समारभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ८ ॥

है; दूसरों से अप्कायशस्त्रों का समारंभ करवाता है और अप्कायशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है । वह अप्काय का आरंभ, आरंभ करने वाले, कराने वाले और अनुमोदन करने वाले के अहित के लिए होता है और अवोधि—जिनधर्म की अप्राप्ति के लिए होता है ॥सू. ७॥

जिसने तीर्थंकर आदि के सन्निकट अप्काय के जीवों का स्वरूप जान लिया है, वह इस प्रकार जानता है—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान और अनगारों से सुनकर अप्काय का स्वरूप जानता हुआ जीव चारित्र अङ्गीकार करके कोई-कोई इस प्रकार जानता है—यह ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार (मृत्यु) है, यह नरक है । गृह्य पुरुष नाना प्रकार के शस्त्रों से जल का आरंभ करके जलशस्त्र का समारंभ करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥सू. ८॥

समारंभ करवावे छे, अने अप्कायशस्त्रने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आपे छे ते अप्कायने आरंभ करनारने करवावाणाने अने करवावाणाने अनुमोदन आपवावाणाने अे सौने भाटे अहित करनार छे. अने अवोधि—जिनधर्मनी अप्राप्ति भाटे होय छे. (सू ७)

जेजे तीर्थंकर आदिना समीपमां अप्कायना लोवेनुं स्वरूप लखी लीधुं छे ते आ प्रभाणे लखे छे:—'से तं.' इत्यादि.

मूलार्थ—भगवान अथवा आणुगारे पासेधी सांलणीने अप्कायना स्वरूपने लखुनारा लोवे आरित्र अंगीकार करीने कोष्ठ—कोष्ठ आ प्रभाणे लखे छे—आ ग्रंथ छे, आ मोह छे, आ मृत्यु छे, आ नरक छे. गृह्य पुरुष नाना प्रकारनां (अनेक प्रकारनां) शस्त्रेधी लनेना आरंभ करीने, ललशस्त्रने आरंभ करता थका पील अनेक प्रकारना प्राणीअिनी हिंसा करे छे. (सू. ८)

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वाऽन्तिके, ईकेपां, ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृह्यो लोकः यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैरुदककर्मसमारम्भेण, उदकशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्, अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य, आदानीयम्=उपादेयं, सर्वसावद्ययोगपरित्यागरूपं चारित्र्यं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=अपकायसमारम्भणं, संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवति ॥

स हि—एवं विचारयति इह=मनुष्यलोके, एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञात-सम्पगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—‘ एष खलु ग्रन्थः ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—जा पुरुष तीर्थकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के समीप उपदेश सुनकर सर्वसावद्य व्यापार का त्यागरूप चारित्र्य अंगीकार करके विचरता है, वह अपकाय के आरंभ को समझता है—उसे अहितकर और अबोधिजनक जानता है । वह इस प्रकार विचार करता है—इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करनेवाले किन्हीं आत्मार्थियों को ही विदित होता है कि—‘ यह ग्रंथ है ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—जे पुरुष तीर्थकर भगवान तथा तेना अनुयायी श्रमणनिर्ग्रन्थाना समीप उपदेश सांलणीने सर्व सावद्यव्यापारना त्यागरूप चारित्र्य अंगीकार करीने विचरे छे, ते अपकायना आरंभने समझे छे—तेने अहितकर अने अबोधिजनक जान्छे छे, ते आ प्रमाद्ये विचार करे छे के—आ मनुष्य लोकमां श्रमण-निर्ग्रन्थाना उपदेशधी सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य प्राप्त करवावाणा केछि पण आत्मार्थिज्जोना लक्षुवामां होय छे के—‘आ अर्थ छे इत्यादि ।

एपः=उदकशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=ग्रन्थते=वध्यतेऽनेनेति ग्रन्थः
 अष्टविधकर्मवन्धः । कारणे कार्योपचारादुदकशस्त्रसमारम्भस्य ग्रन्थरूपत्वम्, एगमग्रेऽपि
 बोध्यम् । तथा एपः उदकशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः विपरीतज्ञानरूपः । तथा
 एप एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा एप खलु नरकः=नारकजीवानां
 दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मवन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरं दुःख-
 फलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-
 गृद्धः=विषयभोगासक्तः, लोकः संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मवन्ध-मोह-
 मरण-नरकार्थमेव, प्रवर्तते ।

जिस के द्वारा गूँथा जाय-बांधा जाय यह ग्रंथ कहलाता है । यह उदकशस्त्र का
 समारंभ ग्रंथ है, अर्थात् आठ कर्मों का बंध है । यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके
 उदकशस्त्र के समारंभ को ग्रंथ कहा है । वास्तव में वह ग्रंथ (कर्मबंध) का कारण है ।
 आगे भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

यह जलशस्त्र का समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान है । तथा यह मार-निगोद
 आदि के मरणरूप है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को होनेवाली दस प्रकार की
 वेदनाओं का स्थान है । कर्मबंध, मोह, मरण, और नरकरूप घोर दुःखरूप फल को प्राप्त
 कर के भी अज्ञानी लोग फिर इसी के लिए गृद्ध होते हैं । अथवा गृद्ध अर्थात् भोगों
 में आसक्त, संसारी जीव इसी के लिए, अर्थात् कर्मबंध, मोह, मरण तथा नरक के लिए ही
 प्रवृत्ति करते हैं ।

नेना द्वारा गूँथी शक्य-बांधी शक्य ते ग्रंथ कळेवाय छे. ये उदक-जल-
 शस्त्रेना समारंभ ग्रंथ छे अर्थात् आठ कर्मोना बंध छे. अर्द्धि कारणुमां कार्येना उपचार
 करीने उदकशस्त्रेना समारंभने ग्रंथ कळो छे. वास्तविक रीते ते ग्रंथ (कर्मबंध)नुं कारणु
 छे. आगण पणु आ प्रभाणु समजुं नेथंछे.

आ जलशस्त्रेना समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान छे, तथा आ मार-निगोद
 वगेरेना मरणरूप छे, आ नरक छे-अर्थात् नारकी जीवोने थवावाणी दस प्रकारनी
 वेदनाओनुं स्थान छे. कर्मबंध, मोह मरण अने नरक रूप घोरदुःखरूप दलने प्राप्त
 करीने पणु अज्ञानी लोक करीने तेना माटे गृद्ध-आसक्त थाय छे. अथवा गृद्ध
 अर्थात् लोगोमां आसक्त संसारी एव ये माटे, अर्थात् कर्मबंध, मोह, मरण
 तथा नरक माटे प्रवृत्ति करे छे.

यद्यपि विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिवातार्थं चापकायशस्त्रसमारम्भं करोति, तथापि तत्फलं ग्रन्थ-मोह-मरण-नरकरूपमेव लभते, अत उदककर्मसमारंभस्य तदेव फलं भवतीति भावः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव च प्रवर्तते, इति यदुक्तं तत्र हेतुमाह—' यदिमम्. ' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, गृद्धो लोकः, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=स्वकाय-परकायतदुभयरूपैः, उदककर्मसमारम्भेण=अपकायमुद्दिश्याष्टविधकर्मसमुत्पादक-सावधव्यापारेण, इमम्=अपकायं, बिहिनस्ति=पाणरहितं करोति । तथा-उदक-

तात्पर्य यह है कि विषयभोगों में आसक्त जीव, शरीर आदि का पोषण करने के लिए, बन्दन-मान-पूजन के लिए, जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए तथा दुःखों का नाश करने के लिए, अपकाय के शस्त्र का आरंभ करता है मगर उस का फल-ग्रन्थ, मोह, मरण और नरक-रूप ही पाता है । अत एव जलकर्मसमारंभ का वही फल होता है ।

लोक बार-बार कर्मबंध आदि के लिए ही इच्छुक होता है, और उसी के लिए प्रवृत्ति करता है, यह बात पहले कही है । यहाँ उस का कारण बतलाते हैं--

क्यों कि गृद्धजन नाना प्रकार के स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप शस्त्रों से, उदककर्म के आरंभद्वारा, अपकायसंबंधी अष्टकर्म-जनक सावधव्यापारद्वारा अपकाय की हिंसा करता है । तथा जलकाय के विराधक स्वकाय, परकाय और

तात्पर्य ये छे के-विषयभोगोमां आसक्त एव शरीर-आदिना पोषणु करवा भाटे वन्दन, मान, पूजा भाटे, जन्म मरणथी मुक्त थवा भाटे तथा दुःखोना नाश करवा भाटे अपकायना शस्त्रोना आरंभ करे छे, परन्तु तेनुं इण ग्रन्थ, मोह, मरण अने नरक रूपज पाने छे, ये भाटे जलकर्मसमारंभलनुं इल तेज डोय छे.

लोक बार-बार कर्मबंध वगैरे भाटे छंछा करता डोय छे; अने ते भाटे प्रवृत्ति करे छे. ये बात प्रथम कही छे. अर्द्धि तेनुं कारणु पतावे छे केमके-गृद्ध माणुस नाना प्रकारना स्वकाय, परकाय अने उभयकाय रूप शस्त्रोथी उदककर्मना आरंभद्वारा अपकायना संबन्धी आठ कर्मजनक सावधव्यापारद्वारा अपकायनी हिंसा करे छे. तथा

શસ્ત્રમ્-અપ્કાયમર્દકં શસ્ત્રં સ્વકાયપરકાયતદુભયરૂપં, સમારંભમાણઃ=વ્યાપારયન્
અન્યાન્=વૃથિયોકાયાદીન્, અનેકરૂપાન્=ત્રસાન્ સ્થાવરાંશ્ચ, પ્રાણાન્=પ્રાણિનો
વિહિનસ્તિ ।

અપ્કાયહિંસયા પદ્મજીવનિકાયરૂપં લોકં સર્વમેવ પ્રણિહન્તીતિ ઘોરતરં દુરિતં
કુર્વન્ પુનઃ પુનઃ ગ્રન્યાદિનસ્કાન્તં પ્રાપ્યાપિ તદર્થમેવ પ્રવર્તેતે ન પુનર્મોક્ષાયેતિ
ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

પુનરપિ સુધર્માસ્વામી જન્મૂસ્વામિનં પ્રાહ—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

સે વેમિ સંતિ પ્રાણા ઉદયનિસ્સિયા જીવા અળેમે ॥ સૂ૦ ૯ ॥

॥ છાયા ॥

સ વ્રવોમિ સન્તિ પ્રાણા ઉદકનિશ્રિતા જોવા અનેકે ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ઉમયકાય રૂપ શસ્ત્રોં કા આરંભ કરતા હુઆ અન્યકાય-સ્થાવર ઔર ત્રસ જીવોં કો મો હિંસા
કરતા હૈ, વહ જલકાયકો હિંસાદ્વારા પદ્મજીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોક કો હિંસા કરતા હૈ;
અતઃ અત્યન્ત ઘોર પાપ કરતા હુઆ પુનઃપુનઃ પ્રંથ સે ઠેકર નરક તક કૈ દુષ્કલકો પાકરકૈ મો
ઉસો કૈ લિષ્ પ્રવૃત્તિ કરતા હૈ-મોક્ષ કૈ લિષ નહોં ॥સૂ. ૮॥

સુધર્મા સ્વામી ફિર જન્મૂ સ્વામી સે કહતે હૈ-‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—મૈં કહતા હૂં અપ્કાય કૈ આશ્રિત પ્રાણી હૈ ઔર અન્ય અનેક (દ્વોન્દ્રિય
આદિ) જીવ મોં હૈ ॥સૂ. ૯॥

જલકાયના વિરાધક સ્વકાય, પરકાય અને ઉલકાય રૂપ શસ્ત્રોના આરંભ કરીને
અન્યકાય-સ્થાવર અને ત્રસ જીવોની પણ હિંસા કરે છે. તે જલકાયની હિંસાદ્વારા
પદ્મજીવનિકાયરૂપ સમસ્ત લોકની હિંસા કરે છે. તેથી અત્યન્ત ઘોર પાપ કરતા થકા
ફરી ફરી અંધ (કર્મબંધ)થી લઈને નરક સુધીના માઠા-હુઃખકારક ક્ષણને પામીને
પણ તે માટે પ્રવૃત્તિ કરે છે. મોક્ષ માટે કરતા નથી. (સૂ. ૮)

સુધર્મો સ્વામી ફરીથી જન્મૂ સ્વામીને કહે છે-‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—હું કહું છું-અપ્કાયના આશ્રિત પ્રાણી છે, અને અન્ય અનેક (દ્વોન્દ્રિય
આદિ) જીવ પણ છે. (સૂ. ૯)

ટીકા—

સઃ=વિજ્ઞાતાપ્કાયસ્વરૂપોઽહં વ્રત્વીમિ=યથા સાક્ષાદ્ ભગવતઃ સકાશાન્મયા
 શ્રુતં તથા કથયમીત્યર્થઃ । ઉદકનિશ્રિતાઃ જલરૂપં કાયમાશ્રિત્ય વર્તમાનાઃ અપ્-
 કાયિકા इत्यર્થઃ પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃ સન્તિ । તથાઽનેકે=દ્વીન્દ્રિયાદયઃ નાનાવિધાઃ
 જીવા નીલઙ્ગુ-પૂત્રક-મત્સ્યાદયઃ ઉદકનિશ્રિતાઃ=ઉદકાવસ્થિતાઃ સન્તિ । દેહલી-
 દીપન્યાયેનોદકનિશ્રિતા इत्यस्योभयश्रान्वयः, અનેનોદકં સચિત્તમનેકજીવાધિષ્ટિતં
 ચેતિ પ્રતિવોધિતમ્ ।

ટીકાર્થ—અપ્કાય કે સ્વરૂપ કા જ્ઞાતા મેં કહતા હું । જેસા કિ ભગવાન્
 સે મૈને સુના હૈ કિ—અપ્કાય કો આશ્રિત કરકે રહે હુણ અપ્કાયિક પ્રાણી હૈ, તથા
 અનેક દ્વીન્દ્રિય આદિ નાના પ્રકાર કે જીવ નીલંગુ, પૂત્રક, મત્સ્ય આદિ મી જલ મેં
 રહે હુણ હૈ । ઉદકનિશ્રિતાઃ—‘જલકાય કે આશ્રિત’ યહ પદ દેહલી—દીપકન્યાય સે દોનો
 ઓર જોડ લેના યાહિણ । યહોં ઇતના સમજ લેના આવર્યક હૈ કિ—જલકાય કે જીવો
 કા શરીર જલ હી હૈ, જવ કિ જલ મેં રહને બાલે ત્રસ આદિ જીવો કા શરીર ભિન્ન
 હોતા હૈ, ફિરમી વે જલ હી મેં રહતે હૈં ઓર જલ કી વિરાધના કરનેસે उन त्रस
 આદિ જીવો કી મી વિરાધના હોતી હૈ । જહોં જલકાય હૈ વહોં સમી કાય કે
 જીવ હોતે હૈ ।

ટીકાર્થ—અપ્કાયના સ્વરૂપને બાણુનાર હું કહું છું. જેવી રીતે કે મેં ભગવાન
 પાસેથી સાંભળ્યું છે કે—અપ્કાયને આશ્રિત—આશ્રય કરીને રહેલા અપ્કાયના જીવો છે.
 તથા અનેક દ્વીન્દ્રિય આદિ નાના પ્રકારના જીવ નીલંગુ, પૂત્રક, મત્સ્ય આદિ પણ
 જલમાં રહેલા છે. ‘ઉદકનિશ્રિતાઃ’ ‘જલકાયને આશ્રિત’ આ પદ દેહલી—દીપક—ન્યાયથી
 બંને બાણુ બેઠી લેવું બેઠું.

આહિ એટલું સમજ લેવું આવર્યક છે કે—જલકાયના—જીવોનાં શરીર જલજ છે.
 બ્યારે કે જલમાં રહેવાવાળા ત્રસ આદિ જીવોના શરીર ભિન્ન—બૂદ્ધાં હોય છે. તે પણ
 તે જલમાંજ રહે છે, અને જલની વિરાધના કરવાથી તે ત્રસ આદિ જીવોની પણ
 વિરાધના થાય છે. બ્યાં જલકાય છે ત્યાં તમામ કાયના જીવ હોય છે.

अप्कायस्य लक्षणद्वारम्—

ननुदकं सचित्तमस्तीत्यत्र किं प्रमाणम् ? उच्यते—आपः सचित्ताः, शक्तानुपहतत्वे सति द्रवत्वात्, हस्तिशरीरोपादानभूतकललवत् । वसवणादौ दोषवारणाय शक्तानुपहतत्वविशेषणोपादानम् । कललशब्दग्रहणेन सप्तदिवसमात्रवर्तिनो ग्रहणम्, ततः परमष्टमदिवसादौ तदेवार्जुदाघवस्थामापद्यते ।

किञ्च—आपः सर्जीवाः, अनुपहतद्रवत्वात्, अण्डकमध्यस्थितकललवत् ।

किञ्च—आपो जीवशरीराणि, छेद्यत्वात्, भेद्यत्वात्, दृश्यत्वात्, करचरणादिसमुदायवत् ।

अप्कायका लक्षणद्वार

शंका—जल सचित्त है, इस विषय में क्या प्रमाण है ?

समाधान—जल सचित्त है, क्योंकि शक्ल के उपादात के बिना ही वह द्रव (तरल) है, जैसे—हाथी के शरीर का उपादान कलल । यहाँ मूत्र आदि से व्यभिचार हटाने के लिए 'शक्ल के उपादात के बिना' यह विशेषण लगाया गया है । 'कलल' शब्द के ग्रहण करने से सिर्फ सात दिन का गर्भाशयस्थित शुक्रशोणितमिश्रित द्रवपदार्थ लेना चाहिए । आठवें दिन से उसकी अर्बुद आदि अवस्थाएं हो जाती हैं—अर्थात् वह गाढ़ होने लगता है ।

और भी—जल सर्जीव है, क्योंकि वह अनुपहत द्रव है, जैसे अंडे का रस ।

और भी—जल, जीव का शरीर है, क्योंकि उसका छेदन—भेदन किया जाता है और द्रव्य है, हाथ पग आदि के समूह की तरह ।

अप्कायनुं लक्षणद्वारम्—

शंका—जल-पाणी सचित्त छे अने विषयमां शुं प्रमाणु छे ?

समाधान—जल सचित्त छे, केभके शक्लना उपादात बिनाज ते तरल छे, जेवी रीते हाथीना शरीरनु उपादान "कलल". अर्हि भूत आदिथी व्यभिचार उडाववा माटे 'शक्लना उपादात बिना' अने विशेषणु लगाउथुं छे. "कलल." शब्दना ग्रहणु करवाथी मात्र सात दिवसना गर्भाशयमां रहेले शुक्रशोणित-मिश्रित द्रवपदार्थ समजवे लेउथे. आठमा दिवसथी तेनी अर्बुद आदि अवस्थाओ थछ नय छे, अर्थात् ते श्लथु थवा लागे छे.

भीलुं पणु—जल सल्लव छे, केभके ते अनुपहत द्रव छे, जेभके छंडाने रस.

भीलुं पणु जल-जव-शरीर छे, केभके-तेनुं छेदन-भेदन करी शकाय छे अने दृश्य छे; हाथ-पग आदिना समूह प्रमाणु.

किञ्चाऽव्यक्तोपयोगादीनि कपायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिवीकायोद्देशके प्रागुक्तानि, तेषां जीवलक्षणानां समन्वयादायः सचित्ता मनुष्यवदिति विश्वायते ।

एवं तेजस्कायादेरेकेन्द्रियजीवस्यैतानि जीवलक्षणानि सन्तीति बोध्यम् ।

आगमोऽपि यथा—“आऊ चित्तमंतमखाया अणोगजीवा पुढोसत्ता” इति (दशवै. अ० ४)

परूपणाद्वारम्—

अप्काया जीवा द्विविधाः, सूक्ष्मवादरभेदात् । सूक्ष्मनामकर्मादयात्

इस के अतिरक्त—अव्यक्त उपभोग से लेकर कपायपर्यन्त जीव के जो लक्षण पृथ्वीकाय के उद्देशक में बतलाये हैं, उन सब जीव के लक्षणों की विद्यमानता होने के कारण भी जल सचित्त है, जैसे मनुष्य आदि ।

इसी प्रकार तेजस्काय आदि एकेन्द्रिय जीवों में भी जीव के लक्षण हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए ।

आगम प्रमाण से भी जल सजीव सिद्ध होता है—“अप सचित्त कहा गया है । उसमें अनेक जीव हैं और उन का अस्तित्व, अलग—अलग है ।” (दश० अ० ४)

परूपणाद्वारम्—

अप्काय के जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और वादर । जिनके सूक्ष्मनाम

ते सिवाय अव्यक्त उपयोगधी लधने कपाय सुधी लवनां ने लक्षण पृथ्वी-कायना उद्देशकमां अताव्यां छे ते सर्व लवना लक्षणांनी विद्यमानता होवाना कारणे पणु जल सचित्त छे. नेवी रीते मनुष्य आदि. अे प्रमाहे तेजस्काय आदि अेकेन्द्रिय लवोमां पणु लवना लक्षण छे. अे रीते समल लेवुं नेधये.

आगम प्रमाणधी पणु जल सलव सिद्ध थाय छे—

“अप सचित्त कहेवुं छे; तेमां अनेक लव छे. अने तेनु अस्तित्व अलग-अलग छे.” (दश० अ. ४)

परूपणाद्वारम्—

अप्कायना लव अे प्रकारनां छे—(१) सूक्ष्म अने (२) वादर अेने सूक्ष्मनाम

सूक्ष्माः, वादरनामकर्मोदयाद् वादराः । तत्र सूक्ष्मा द्विविधाः-पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च ।
 सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनः । वादरा लोकैकदेशे सन्ति । वादरा अप्काया अनेकविधाः
 -हिमा-वदयाय-मिहिका-करक-हरतनु-शुद्ध-शीतो-ष्ण-क्षाराम्ल-लवण-क्षीर-घृतोद-
 कादयः । ते सर्वे वादरा अप्कायाः संक्षेपतो द्विधा-पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । वादराणां
 यत्रैको जीवस्तत्रासंख्येयैर्वादरजीवैर्नियमतो भाव्यम् । वादराणां स्थानं समुद्रदृ-
 नदीमभृतयः ।

वादराणां सूक्ष्माणां चोभयेपामप्कायानां पर्याप्तापर्याप्तभेदवदन्त्येऽपि
 शरीरत्रयादिभेदाः सन्ति, ते पृथिवीकायोद्देशे प्रागुक्तास्तत एव बोद्धव्याः ।

कर्मका उदय है वे सूक्ष्म कहलाते हैं, और वादरनामकर्म के उदय वाले वादर कहलाते हैं ।
 इन मेंसे सूक्ष्म जीव पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के हैं । सूक्ष्म सम्पूर्ण
 लोक में व्याप्त हैं । वादर लोक के एक देश में हैं, वादरअप्काय के अनेक भेद हैं-
 हिम, ओस, मिहिका (धूँवर) ओले, हरतनु (तृणके अग्र पर रहा हुआ पानी) शुद्ध,
 शीतष्ण, क्षार, आम्ल, लवण, क्षीर, घृतोदक आदि । सब वादर अप्काय संक्षेप से
 पर्याप्त तथा अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के हैं । जहाँ एक वादर जीव होता है
 वहाँ नियम से असंख्यात वादर जीव होते हैं । समुद्र, तालाव, नदी वगैरह वादर जीवों के
 स्थान हैं ।

वादर और सूक्ष्म, दोनों प्रकार के जलकाय के जैसे पर्याप्त और अपर्याप्त भेद किये
 गये हैं उसी प्रकार शरीरत्रय आदि और भेद भी हैं । वे पृथ्वीकाय के उद्देशक में बतलाये
 हैं । वही से जान लेने चाहिए ।

कर्मना उदय छे ते सूक्ष्म कडेवाय छे अने वादरनामकर्मना उदयवाणा वादर
 कडेवाय छे. तेमांथी सूक्ष्म एव पर्याप्त अने अपर्याप्तना सेदधी जे प्रकारनां छे. सूक्ष्म
 सर्व लोकमां व्याप्त छे. अने वादर लोकना ओक देशमां छे. वादर अप्कायना अनेक
 भेद छे. हिम, ओस, हरतनु (तृणना अग्रपर रहेलुं पाणी) शुद्ध
 शीत,ष्ण क्षार,अम्ल, लवण, क्षीर, घृतोदक आदि. सर्व वादर अप्काय संक्षेपथी पर्याप्त
 तथा अपर्याप्तना सेदधी जे प्रकारनां छे. त्यां ओक वादर एव होय छे. त्यां नियमथी
 असंख्यात वादर एव होय छे. समुद्र, तालाव, नदी वगैरे वादर एवोना स्थान छे.

वादर अने सूक्ष्म-अन्ने प्रकारना जलकायना जेही रीते पर्याप्त अने अपर्याप्त
 भेद करवामां आव्या छे. ते प्रमाणे शरीरत्रय आदि जीव सेदो पक्ष छे ते पृथ्वी-
 कायना उद्देशकमां बतावेला छे. ते त्यांथी जलणी वेवा जेछे अ.

पृथिवीकायवद् असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये । केवलं शरीरसंस्थानं स्तिबुकविन्दुक-
संस्थितमेव ।

परिमाणद्वारम्—

ये वादरपर्याप्ता अप्कायाः, ते संवर्तितलोकप्रतराःसंख्येयभाग
प्रदेशराशिपरिमाणाः, ये तु वादरा अपर्याप्ताः, तथा सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च
राशयस्ते पृथक्-पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति । अयमत्र
विशेषः—वादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरपर्याप्ता अप्काया असंख्येयगुणाः,
वादरेभ्योऽपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरा अपर्याप्ता अप्काया असंख्येय-
गुणाः । सूक्ष्मापर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः,

पृथ्वीकाय के समान प्रत्येक प्रकार के जीव असंख्यात हैं । अलवत्ता इन के शरीर का
आकार स्तिबुकविन्दु (बुद-बुद) के समान है ।

परिमाणद्वार—

वादर पर्याप्त अप्काय के जीव संवर्तित लोकप्रतर के असंख्येयभाग प्रदेशों के
बराबर हैं, वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त राशियाँ अलग अलग
असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश के बराबर हैं । यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए
कि—वादर पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर पर्याप्त अप्काय असंख्यातगुणा हैं, और
वादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर अपर्याप्त अप्काय के जीव असंख्यातगुणा हैं ।
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं ।

पृथ्वीकायनी प्रमाणे प्रत्येक प्रकारना एव असंख्यात छे. अलवत्ता तेना शरीरना
आकार स्तिबुकविन्दु-बुद-बुदना प्रमाणे छे.

परिमाणद्वार—

वादर पर्याप्त अप्कायना एव संवर्तित लोकप्रतरना असंख्येय भाग प्रदेशोना
बराबर छे. वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त अने अपर्याप्त राशियो अलग-अलग
असंख्यात लोकाकाशना प्रदेशोनी बराबर छे. अर्हि अटली विशेषता समञ्जी जेधअ के-
वादर पर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा वादर पर्याप्त अप्काय असंख्यात गुणा छे, अने
वादर अपर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा वादर अपर्याप्त अप्कायना एव असंख्यात गुणा छे.
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायना एवोशी सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक एव विशेष अधिक छे.

सूक्ष्म-पर्याप्त-पृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः ॥ सू० ९ ॥

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनमामन्त्र्य कथयति- 'इहं चे.'-त्यादि ।

मूलम्—

इहं च खलु भो ! अणगाराणं उदयं जीवा विवाहिया सू० ॥ १० ॥

छाया—

इह च खलु भोः ! अनगाराणामुदकं जीवा व्याख्याताः ॥ सू० १० ॥

टीका—

'भोः' इति परस्परालापविषयकामन्त्रणे, तेन भोः=हेजम्बूः ! इह=जिनशासने खलु=निश्चयेन अनगाराणां=द्रव्यभावगृहरहितानां मुनीनां प्रति-बोधनायेति शेषः, उदकं जीवा व्याख्याताः' इति, उदकं जीवपिण्डभूत-

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा सूक्ष्म पर्याप्त अप्काय के जीव विशेष अधिक हैं ॥ सू. ९ ॥

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को संबोधन करके कहते हैं:-'इहं च' इत्यादि ।

मूलार्थ—हे शिष्य ! जिन शासन में अनगारों के लिए यह व्याख्या की गई है कि-जल जीव है ॥ सू. १० ॥

टीकार्थ—'भो' शब्द संबोधन के लिए है । इस का तात्पर्य यह हुआ कि-हे जम्बू ! इस जिन शासन में निश्चय से अनगारों अर्थात् द्रव्य और भाव गृह से रहित मुनियों के बोध के लिए 'जल जीव है' यह व्याख्यान किया गया है । जल, जीवों का

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा सूक्ष्म पर्याप्त अप्कायना एव विशेष अधिक थे. (सू. ९)

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने संबोधन करीने कहे थे-'इहं च' इत्यादि.

मूलार्थ—हे शिष्य ! जिनशासनमें अणुगारोंने भाटे आ व्याख्या करवाभां आवी थे, के जल एव थे. (सू. १०)

टीकार्थ—'भो' शब्द संबोधन भाटे थे. तेषु तात्पर्य ये ययुं के-हे जम्बू ! आ जिनशासनमें निश्चयथी अणुगारिना अर्थात् द्रव्य अने भाव गृहथी रहित मुनिज्योना बोध भाटे 'जल एव थे' आ व्याख्यान करवाभां आव्युं थे. जल, एवोनोपिठे थे, ये प्रभाषे

पृथिवीकायवद् असंख्येयाश्च प्रत्येकगुणभये । केरलं शरीरसंस्थानं स्तिबुकचिन्दुक-
संस्थितमेव ।

परिमाणद्वारम्—

ये वादरपर्याप्ता अप्कायाः, ते संवर्तितलोकप्रतराऽसंख्येयभाग
प्रदेशराशिपरिमाणाः, ये तु वादरा अपर्याप्ताः, तथा सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च
राशयस्ते पृथक्-पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति । अयमत्र
विशेषः—वादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरपर्याप्ता अप्काया असंख्येयगुणाः,
वादरेभ्योऽपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरा अपर्याप्ता अप्काया असंख्येय-
गुणाः । सूक्ष्मापर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः,

पृथ्वीकाय के समान प्रत्येक प्रकार के जीव असंख्यात हैं । अलवत्ता इन के शरीर का
आकार स्तिबुकचिन्दु (बुद-बुद) के समान है ।

परिमाणद्वार—

वादर पर्याप्त अप्काय के जीव संवर्तित लोकप्रतर के असंख्येयभाग प्रदेशों के
बराबर हैं, वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त राशियाँ अलग अलग
असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश के बराबर हैं । यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए
कि—वादर पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर पर्याप्त अप्काय असंख्यातगुणा हैं, और
वादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर अपर्याप्त अप्काय के जीव असंख्यातगुणा हैं ।
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं

पृथ्वीकायनी प्रभाञ्छे प्रत्येक प्रकारना एव असंख्यात छे, अलवत्त तेना शरीरना
आकार स्तिबुकचिन्दु-छुद-छुदना प्रभाञ्छे छे.

परिभाञ्छद्वार—

भादर पर्याप्त अप्कायना एव संवर्तित लोकप्रतरना असंख्येय भाग प्रदेशोना
गराणर छे. भादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त अने अपर्याप्त राशियोना अलग-अलग
असंख्यात लोकाकाशना प्रदेशोनी गराणर छे. अर्द्धि ओटली विशेषता समञ्ची ओधओ के-
भादर पर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा भादर पर्याप्त अप्काय असंख्यात गुणा छे, अने
भादर अपर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा भादर अपर्याप्त अप्कायना एव असंख्यात गुणा छे.
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायना एवोथी सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक एव विशेष अधिक छे.

जलम् । मिश्रं सचित्ताचित्तसंमिलितम् । एतद् द्वयं चाग्राह्यम् । अचित्तं द्विविधं स्वभावतः, शस्त्रसंपर्कतश्च । स्वभावतोऽचित्तं जलं केवली-मनःपर्ययाज्वधि-श्रुत-ज्ञानिनस्तज्जानाना अपि न सेवन्ते, अनवरथादोषप्रसङ्गात्, व्यवहाराशुद्धेश्च । प्रसिद्धं च यत् कदाचित्स्वभावतोऽचित्तजलपरिपूर्णं द्रव्यं, स्वभावतोऽचित्तीभूतं तिलादिकं च दृष्ट्वा व्यवहाराशुद्धत्वात्पिपासाक्षुधापरिपीडितानामपि साधूनां पानार्थं भक्षणार्थं च तत्रानुज्ञा न कृता भगवतेति । यत्तु शस्त्रसंपर्कादचित्तं जलं तत् साधूनामुपभोगाय ग्राह्यं, तेन संयमनिर्वाहो भवति । किं तच्छस्त्रम् ? इत्याह-‘सत्यं.’ इत्यादि ।

नदी, कूप, तालाव आदि का जल सचित्त, और अचित्त मिला जल मिश्र कहलाता है । यह दोनों प्रकार का जल साधु के लिये अप्राह्य है । अचित्त जल दो प्रकार का है-स्वभाव से अचित्त और शस्त्र के संयोग से अचित्त । स्वभाव से अचित्त जल को केवली, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, तथा श्रुतज्ञानी, जानते हैं, मगर उस का सेवन नहीं करते । सेवन करने से अनवरथा दोष आता है और व्यवहार अशुद्ध हो जाता है । यह बात प्रसिद्ध है कि-कदाचित् स्वभाव से अचित्त जल से भरा हुआ तालाव, तथा स्वभाव से अचित्त तिल, आदि को देखकर व्यवहार में अशुद्ध होने के कारण प्यास और भूख से पीडित साधुओं को भी पीने-खाने की आज्ञा भगवान् ने नहीं दी है । जो जल, शस्त्र के संयोग से अचित्त हो गया हो वही साधुओं के लिए, प्राह्य होता है । ऐसा करने से ही संयम का पालन होता है । वह शस्त्र क्या है, यह बतलाने के लिए कहते हैं-‘सत्यं.’ इत्यादि ।

नदी, कुवा, तालाव आदिनुं जल सचित्त छे. सचित्त अचित्त अन्ने प्रकारनुं लेशुं थयेतुं जल मिश्रकडेवाय छे. आ अन्ने प्रकारनां जल साधुओ माटे अग्राह्य छे. अचित्त जल छे प्रकारनुं छे. (१) स्वभावथी अचित्त अन्ने (२) शस्त्रना संयोगथी अचित्त. स्वभावथी अचित्त जलने केवली, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी तथा श्रुतज्ञानी जल्ले छे, परंतु तेनुं सेवन करता नथी-सेवन करवाथी अनवरथा दोष आवे छे, अन्ने व्यवहार अशुद्ध थर्छ जाय छे. अे वात प्रसिद्ध छे के-कदाचित् स्वभावथी अचित्त जलथी लेशुं तालाव तथा स्वभावथी अचित्त तल आदिने लेधने व्यवहारमां अशुद्ध होवाना करल्ले तरस अन्ने भूभथी पीडित साधुओने पल्लु पीवा-आवाना आज्ञा लगवाने आपी नथी. अे जल शस्त्रना संयोगथी अचित्त थर्छ गयुं होय ते जल साधुओ माटे अग्राह्य होय छे. अे प्रमाळुं करवाथीज संयमनुं पालन थाय छे. ते शस्त्र शुं छे? अे अताववा माटे कडे छे-‘सत्यं’ इत्यादि.

મસ્તીતિ ભગવતા કેવલાલોકેન વિદ્યાયાનગારેભ્યઃ સંયમરક્ષણાર્થમુદકં જીવત્વેન મતિવોધિતમિત્યર્થઃ । 'ચ'—શબ્દાત્ તદાશ્રિતા અન્યે દ્વીન્દ્રિયાદયોઽપિ જીવા વ્યાખ્યાતા इति વોધિતમ્ । યો ચિન્દુમાત્રોદકવિરાધકઃ, સ પદ્મજીવનિકાય-વિરાધકો ભવતીતિ વર્તુલાર્થઃ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

શસ્ત્રદ્વારમ્—

નનુ યદિ જીવપિણ્ડભૂતમુદકં ભગવતા પ્રોક્તં તદિં ઉદકસેવિનાં મૃનીનામવશ્યં પ્રાણાતિપાતદોષસમ્પાતઃ, તેન કયં સંયમઃ સંયમિનાં સંપદતે ? ઉચ્યતે—

સચિત્તાચિત્તમિશ્રભેદેન ત્રિવિધમુદકમ્ । તત્ર સચિત્તં—નદીરૂપતઢાગાદિ—

પિણ્ડ હૈ, ઇસ પ્રકાર ભગવાન્ ને કેવલજ્ઞાન સે જાનકર સાધુઓ કે સંયમ કી રક્ષા કે લિષ્ જલ કો જીવ બતલાયા હૈ । સૂત્ર મેં દ્રિયે હુણ 'ચ' શબ્દ સે યહ પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ કિ જલ કે આશ્રિત દૂસરે દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવ મી હૈં । સંક્ષેપ મેં તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—જો પુરુષ ઇક ચિન્દુ જલ કી વિરાધના કરતા હૈ વહ પટ્કાય કે જીવોં કા વિરાધક હૈ ॥ સૂ. ૧૦ ॥

શસ્ત્રદ્વાર—

શંકા—યદિ જલ જીવોં કા પિણ્ડ હૈ, ઇસા ભગવાન્ને કહા હૈ તો જલકા સેવન કરને વાલે મુનિયોં કો હિંસા કા દોષ લગતા હૈ । ઇસી સ્થિતિ મેં સાધુઓં કા સંયમ કિસ પ્રકાર કાયમ રહ સકતા હૈ ?

સમાધાન—જલ ત્રીન પ્રકાર કા હૈ—(૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત ઓર (૩) મિશ્ર

લગવાને કેવલજ્ઞાનથી જાણી કરીને સાધુઓના સંયમની રક્ષા માટે જલને જીવ તરીકે બતાવ્યું છે. સૂત્રમાં આપેલા 'ચ' શબ્દથી એ પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે કે—જલના આશ્રિત બીજા દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવ પણ છે. સંક્ષેપમાં તાત્પર્ય એ છે કે—જો પુરુષ એક ટીપા જલની વિરાધના કરે છે તે પટ્કાયના જીવોનો વિરાધક છે. (સૂ. ૧૦)

શસ્ત્રદ્વાર—

શંકા—જો જલ જીવોનો પિંડ છે. એ પ્રમાણે લગવાને કહ્યું છે તો જલનું સેવન કરવાવાળા મુનિઓને હિંસાદોષ લાગે છે. એવી સ્થિતિમાં સાધુઓનો સંયમ કાયમ કેવી રીતે રહી શકે છે ?

સમાધાન—જલ ત્રણ પ્રકારનું છે (૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્ર.

मिश्रजलं च । उभयकायशस्त्रपरिणतमपि न ग्राह्यम्, तत्र मिश्रशङ्कासद्भावात् । परकायशस्त्रपरिणतमेव जलं मुनीनां ग्राह्यम्, परकायशस्त्रं चाप्कायस्य अग्नि-मृत्तिका-द्राक्षा-शाक-तण्डुल-पिष्ट-दाली-चणकादिकम् । परकायशस्त्रपरिणतं=वर्णादीनां पूर्वावस्थावैलक्षण्यपन्नम् । तत्र वर्णतो धूसरत्वादिरूपं, गन्धतस्तत्तद्वस्तुसम्बन्धि-गन्धवत्त्वम्, रसतस्तत्तद्वस्तुसम्बन्धित्ककटुकपायादिरसवत्त्वम् । स्पर्शतः स्निग्धरूक्षत्वादिरूपम् । तदेवम्भूतमचित्तं जलमस्यैवाद्भस्य द्वितीयश्रुतस्कन्धे पानैपणायामेकविंशतिविधं मुनीनां ग्राह्यत्वेन वक्ष्यते भगवता । तथाहि—

जल के लिए गर्म जल अथवा मिट्टी आदि से मिला हुआ जल । उभयकायशस्त्र से परिणत जल भी साधुओं के लिए ग्राह्य नहीं है, क्यों कि उस में मिश्र (सचित्ताचित्त) की शङ्का रहती है । मुनियों के लिए परकायशस्त्रपरिणत जल ही ग्रहण करने योग्य है । अप्काय का परकायशस्त्र—अग्नि, मिट्टी, दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, और चना आदि हैं ।

पहले की अपेक्षा वर्ण, रस गंध आदि बदल जाना परकायशस्त्र से जल के परिणत (अचित्त) हो जाने की पहचान है । वर्ण से जल का धूसर आदि हो जाना, गंध से उस में मिली हुई वस्तुओं की गंध आने लगना, इसी प्रकार जल में मिली हुई वस्तुओं का तीखा, कड़वा, फसैला आदि रस का स्वाद आ जाना, और स्पर्श से जल का रूखा, चिकना आदि हो जाना जल के अचित्त होने के लक्षण हैं ।

भजेतुं जल. उभयकाय शस्त्रथी परिष्कृत जल पक्ष साधुयो भाटे ग्राह्य नथी. केभडे-तेमां मिश्र (अचित्ताचित्त)नी शंका रहे छे. मुनियो भाटे परकायशस्त्रपरिष्कृत जलज अहक्षु करवा योग्य छे. अष्कायतुं परकायशस्त्र, अग्नि, भाटी, द्राक्ष, शाक, चावल, लोट, दाल अने अण्णा आदि छे.

पडेलां करतां लेनां वर्ण, रस, गंध, आदि जहलाथ जय ते परकायशस्त्रथी जल परिष्कृत (अचित्त) थथ ज्वानी अे निशानी अर्थात् अण्णयाथु छे.

वर्णथी जलतुं धूसर आदि थथ जलुं, गंधथी तेमां भजेली वस्तुयोनी गंध आववी, अे प्रभाळु जलमां भजेली वस्तुयोना तीणा, कडवा, फसेला आदि रसनेा स्वाद आवी जवो, अने स्पर्शथी जलतुं रूक्ष शिथळुं आदि थथ जलुं. अे जल अचित्त होवानी लक्षणु छे.

मूलम्—

सत्त्वं चैत्थ अणुवीह पास, पृथो सत्त्वं पवेइयं ॥ सू० ११ ॥

छाया—

शस्त्रं चात्र अनुविचिन्त्य पश्य, पृथक् शस्त्रं प्रवेदितम् ॥ ११ ॥

टीका—

अस्मिन् प्रस्तुतेऽपकाये शस्त्रं—शस्यते=हिंस्यते प्राणी येन तच्छस्त्रम् अनुविचिन्त्य
=‘इदमपकायस्य शस्त्रम्’ इति विचार्य, पश्य=हे शिष्य ! ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य ।
शस्त्रम्=उपमर्दकं प्रस्तुतत्वादपकायस्य पृथक्=विभिन्नरूपं स्वकायपरकायोभयकाय-
भेदात् त्रिविधमित्यर्थः प्रवेदितं=प्रतिबोधितं भगवतेतिशेषः । तत्र स्वकायशस्त्रं
नद्याद्युदकानां कूपाद्युदकम् । कूपाद्युदकानां नद्याद्युदकं च । स्वकायशस्त्रपरिणतं
जलं साधुनामग्राह्यं व्यवहाराशुद्धेः । उभयकायशस्त्रं कूपादिजलस्योष्णजलं मृत्तिकादि-

मूलार्थ—अपकाय के विषय में, हे शिष्य ! शस्त्र का विचार करो । अपकाय के
शस्त्र पृथक्—पृथक् समझाये गये हैं ॥ सू. ११ ॥

टीकार्थ—जिस के द्वारा हिंसा हो वह शस्त्र कहलाता है, हे शिष्य !
अपकाय के विषय में ‘यह अपकाय का शस्त्र है’ इस प्रकार विचार करो अपकाय के
शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय के भेद से नाना प्रकार के भगवान् ने बतलाये हैं ।
कुँए का जल नदी के जल के लिए स्वकायशस्त्र है, इसी प्रकार नदी आदि का जल
कुँए के जल के लिए स्वकायशस्त्र है । स्वकायशस्त्र से परिणत जल साधुओं के लिए
प्राह्य नहीं होता, क्योंकि वह व्यवहार में अशुद्ध है । उभयकायशस्त्र है—कुँए आदि के

मूलार्थ—अपकायना विषयमां हे शिष्य ! शस्त्रना विचार करे। अपकायनां
शस्त्र जहाँ जहाँ समझव्यां छे. (सू. ११)

टीकार्थ—जेना द्वारा हिंसा थई शस्त्रे ते शस्त्र कहेवाय छे, हे शिष्य ! अपकायना
विषयमां ‘आ अपकायनुं शस्त्रे छे’ अये प्रभाळ्णे विचार करे। अपकायनां शस्त्र स्वकाय, परकाय,
अने उलयकायना लेहथी नाना प्रकारनां लगवाने भताव्यां छे. कुवानुं जल, नदी आदिनां
जल भाटे स्वकायशस्त्रे छे. अये प्रभाळ्णे नदी आदिनुं जल कुवानां जल भाटे स्वकायशस्त्रे
छे. स्वकायशस्त्रथी परिष्कृत जल साधुओ भाटे ग्राह्य रहैतुं नथी, कारण्णे ते ते व्यवहारमां
अशुद्धे छे. उलयकायशस्त्रे छे कुवा आदिनां जल. भाटे गरम जल, अथवा भाटी वगेरथी

इति भाषायां, तस्य पानकं=धावनजलम् । (१३) द्राक्षापानकम्=द्राक्षाधावनजलम् । (१४) दाडिमपानकम्=दाडिमधावनजलम् । (१५) खर्जूरपानकम्=खर्जूरधावन-जलम् । (१६) नालिकेलपानकम्=नालिकेलधावनजलम् । (१७) करीरपानकम्=करीरधावनजलम् । (१८) कोलपानकम्=वदरधावनजलम् । (१९) आमलकपानकम्=आमलकधावनजलम् । (२०) चिञ्चपानकम्=चिञ्चा-अम्लिका 'इमली' इति भाषायां, तस्याः पानकं=धावनजलम् । (२१) शुद्धविकृतम्=अग्न्युत्कालितमुष्णं जलं च ।

इह शेषद्वाराणि पृथिविकायवद् विज्ञेयानि ।

ये तु शाक्यादयः सचित्ताष्कायोपभोगिनः सन्ति तेषु शाक्यादयः स्वोपभोगार्थम् 'आपो जीवा न सन्ति' इति प्रतिपादयन्ति, दण्डिनस्तु जलं सचितं मन्यमाना अपि मोहप्रमादवशतः स्वार्थमुत्कालयन्ति, परमुपदिशन्ति, च, यथा त्रिदण्डमुत्कालनीयं जलम्, इत्युपदिश्याष्कायसमारम्भं कारयन्तो न केवलमष्कायं विहिंसन्ति, किन्तु तदाश्रितानन्यानपि द्वीन्द्रियान् विराधयन्ति ।

का धोवन (१५) खजूर का धोवन (१६) नारियल का धोवन (१७) कैर का धोवन (१८) वेर का धोवन (१९) भाँवले का धोवन (२०) इमली का धोवन (२१) अग्नि से उकाला हुआ गर्म जल ।

जो शाक्य आदि सचित्त अप्काय का सेवन करते हैं, उन में से शाक्य आदि अपने उपभोग के लिए 'जल सचित नहीं है' इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं । दण्डी लोक जल को सचित मान कर के भी मोह और प्रमाद के वश हो कर अपने लिए पानी गरम करवाते हैं ओर दूसरों को उकालने का उपदेश देते हैं कि-जल तीन दण्ड, उकालना चाहिए । अर्थात् तीन उकालेका पानी होना चाहिये इस प्रकार उपदेश देकर अप्काय का समारम्भ करते हुए न केवल अप्काय की हिंसा करते हैं अपि तु जल में रहने वाले द्वीन्द्रिय आदि की भी विराधना करते हैं ।

धोवण. (१६) नारीशेलतुं धोवण. (१७) डेरतुं धोवण. (१८) ओरानुं धोवण. (१९) आंणणानुं धोवण. (२०) आंणलीनुं धोवण. (२१) अशिशि उकाणेतुं गरम जल.

ये शाक्य आदि सचित्तअप्कायतुं सेवन करे छे. तेभांशी शाक्य आदि पोताना उपभोग भाटे 'जल सचित्त नहीं' अे प्रकारनी प्ररूपणा करे छे. दंडी जलने सचित्त भाणीने पणु मोह अने प्रमाद वश थरु. पोताना भाटे पाणी गरम करावे छे, अने भीजने पाणी गरम करवाने उपदेश आपे छे डे-जल त्रणु दंड-उकाणा आपीने उकाणतुं जेथअे. आ प्रभावे उपदेश आपीने अप्कायने समारंभ करता थका केवण अप्कायनीज हिंसा करे छे, अेटतुं नही परन्तु जलमां रहेवावाणा द्वीन्द्रिय आदिनी पणु विराधना करे छे.

- (१) उत्स्वेद्यम्=पिष्टसंछिद्यपिठरादिप्रक्षालनजलम् । (२) संस्वेद्यम्=संसेकितं वा=उत्कालिततिलधावनजलं, उत्कालितपत्रशकादिधावनजलं वा ।
 (३) तन्दुलोदकम्=तन्दुलधावनजलम् । (४) तिलोदकम्=तिलधावनजलम् ।
 (५) तुपोदकम्=व्रीहिधावनजलम् । (६) यवोदकम्=यवधान्यक्षालनजलम् ।
 (७) आचामकम्=अवश्रामणजलं 'औसामण' इति भाषामसिद्धम् । (८) सौवीरम्=आरनालं, तक्रपात्रधावनजलं, तक्रोपरिष्ठाभिस्तारितजलं वा 'आंछ' इति भाषायाम् ।
 (९) आम्रफलादिधावनजलम् । (१०) आम्रातकपानकम्=आम्रातकधावनजलम् ।
 आम्रातकमिति 'अम्वाडी' इति भाषामसिद्धम् । (११) कपित्थपानकम्=कपित्थं='कविठ' इति भाषायां, तस्य धावनजलम् । (१२) मातुलिङ्गम् 'विजोरा'

इस प्रकार का अचित्त जल इसी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में 'पानैपणा' प्रकरण में इक्कीस प्रकार का भगवान् ने साधुओं के लिए ग्राह्य कहा है । वह इस प्रकारः—

(१) उत्सेद्य—आटेका मिला हुआ पीठर (फयोटी) आदिका धोवन ।

(२) संस्वेद्य (संसेकित) उकाळे हुए तिलोंका धोवन या उकाळे हुए पत्तों के शाक का धोवन ।

(३) चावलों का धोवन, (४) तिलों का धोवन, (५) धान्यका धोवन, (६) जौ का धोवन (७) ओसामण, (८) आरनाल, छछ के वर्तनों का धोवन, अथवा छछ के उपर का नितारा पानी जिसे 'आंछ' भी कहते हैं ।

(९) आम आदि फलों का धोवन (१०) अम्वाडी का धोवन (११) कविठ (कैथ) का धोवन (१२) विजौरे का धोवन (१३) दास का धोवन (१४) दाडिम (अनार)

आवा प्रक्षारणं अचित्त जलम् सूत्रना भीज्य श्रुतस्कन्धना पानैपण्य—प्रक्षरण्यमां
 अक्षवीश प्रक्षारणं लगवाने साधुयो भाटे ग्राह्य कल्यं छे, ते आ प्रभाण्ये छेः—

(१) उत्स्वेद्य—खोट भणेतुं, कथरोट आदितुं धोवण्यु ।

(२) संस्वेद्य—उकाणेल तलनुं धोवण्यु, अथवा उकाणेल पत्तावाणां शाकनुं धोवण्यु ।

(३) चाणानुं धोवण्यु । (४) तलनुं धोवण्यु । (५) धान्यनुं धोवण्यु । (६) जवतुं धोवण्यु । (७) ओसामण्यु । (८) आरनाल—छासना वासण्युतुं धोवण्यु, अथवा छासनी उपर नीतरेल पाण्यु । जेने 'आछ' पण्यु कळे छे ।

(९) आम्रा—आम्र आदि इण्युं धोवण्यु । (१०) अम्वाडीनुं धोवण्यु (११) कविठनुं धोवण्यु । (१२) विजोरातुं धोवण्यु । (१३) दासतुं धोवण्यु । (१४) दाडमतुं धोवण्यु । (१५)

टीका—

‘अथवा’ शब्दः कथितस्यार्थस्य प्रकारान्तरेण स्पष्टीकरणे वर्तते । येऽप्काया-
रम्भिणस्तेपामदत्तादानदोषापत्तिरपि । यतोऽप्कायजीवैस्तेभ्यो नार्पितानि स्वशरीराण्यु-
पमर्दयितुं, ते च तानि वाङ्मनःकाययोगैः कृतकारितानुमोदितैरुपमर्दयन्ति, तत-
श्चाप्कायारम्भिणामदत्तादानदोषोऽप्यनिवार्यो भवति, तस्मान्मुमुक्षुभिः सर्वथाऽप्काया-
रम्भो वर्जनीयः, इति भगवता साक्षात्प्रोक्तम् ॥ सू० १२ ॥

सच्चित्तजलोपभोगिनो हि पृष्ठाः सन्तो यद् वदन्ति तदाह—

यद्वा-अप्कायारम्भं स्वयं परिहर्त्तुमक्षमाः शाक्यादयो यद्वदन्ति तदाह—
‘कप्पइ णे.’ इत्यादि ।

टीकार्थ—पहले कही हुई बात का दूसरी तरह से स्पष्टीकरण करने के लिये
‘अथवा’ शब्द है । जो अप्काय का आरंभ करते हैं उन्हें अदत्तादान का दोष भी लगता
है । कारण यह है कि—अप्काय के जीवों ने अपने शरीर उपमर्दन करने के लिए उन्हें सौपे
नहीं हैं, फिर भी वे लोग मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदना से उनका
उपमर्दन करते हैं. अतः अप्काय का आरंभ करने वालों को अदत्तादान का दोष अनिवार्य
है । अतः मुमुक्षु पुरुषों को अप्काय का आरंभ त्यागना चाहिए । ऐसा भगवान् ने साक्षात्
कहा है ॥ सू० १२ ॥

सच्चित्त जलका उपयोग करनेवाले पूछनेपर जो उत्तर देते हैं सो कहते हैं—
अथवा जो लोग अप्काय के आरंभ को त्यागने में असमर्थ हैं उनका कथन बतलाते हैं—
‘कप्पइ णे.’ इत्यादि ।

टीकार्थ—प्रथम कहेली बातने भील रीतथी स्पष्टीकरण करवाना अर्थमां
‘अथवा’ शब्द छे. जे अप्कायने आरंभ करे छे, तेने अदत्तादानने दोष पणु लागे
छे, कारण छे छे जे—अप्कायने जीवोअने चोतानुं शरीर उपमर्दन करवा भाटे तेने सोअणुं
नथी. तो पणु ते लोको मन, वचन अने कायाथी अने करवुं, कराववुं तथा अनुमोदवुं
ते वडे करी उपमर्दन करे छे, ते कारणथी अप्कायने आरंभ करवावाणाने अदत्ता-
दानने दोष पणु अनिवार्य (टाणी न शक्य तेवो) छे. अने भाटे मुमुक्षु पुरुषोअने
अप्कायने आरंभ त्यागी हेवो जेअणुं. अने प्रभाणुं लगवाने साक्षात् कणुं छे. (सू. १२)

सच्चित्त जलने उपयोग करवावाणाने पूछतां जे उत्तर आपे छे—ते कहे छे,
अथवा जे लोक अप्कायने आरंभने त्यजवाभांअसमर्थ छे. तेभनुं कहेवुं—कथन
भतावे छे—‘कप्पइ णे.’ इत्यादि.

દૃશ્યન્તે ચ તીર્થાદિપુ અધઃકર્માદિદોષદૂષિતમક્તપાનાદિગ્રહણેનાપ્કાયાદિમહાસમારમ્બે
કુર્વાણાઃ । ન ચ તે સ્વાત્માનં ભવસાગરાત્તારયિતું સમર્થા ભવન્તિ, ઉક્તચ્ચ-ભગવતો-
ત્તરાધ્યયનસૂત્રે-(અધ્ય. ૨૦)

“ ચિરંપિ સે મુંડરુર્દ મવિત્તા, અધિરવ્ય્વ તવનિયમેર્હિ મદ્દે ।

ચિરંપિ અપ્પાણ કિલેસજ્ઞા, ન પારણ દોઢ હુ સંપરાણ ” ॥ સૂ. ૧૧ ॥

ન કેવલં તે હિંસાદોષમાગિનઃ, અપિ ત્વગ્યદોષમાગિનોઽપિ સન્તિ, તદેવ
ભગવાનાહ-‘અદુવા.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

અદુવા અદિદ્વાદાણં ॥ સૂ. ૧૨ ॥

છાયા—

અથવા અદત્તાદાનમ્ ॥ સૂ. ૧૨ ॥

તીર્થ આદિ પર આધાકર્મ આદિ દોષો સે દૂષિત આહારપાની પ્રહણકરકે અપ્કાયકા મહારંભ
કરતે હુણ દેલે જાતે હૈં । વે અપને આત્મા કો ભવસાગરં સે તારને મેં સમર્થ નહીં હૈં । ભગવાન્
ને ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર (અધ્યયન ૨૦) મેં કહા હૈં—

“ જો પુરુષ અસ્થિર વ્રત વાલા હૈ ધૌર તપ તંથા નિયમો સે અષ્ટ હૈ વહ ચિરકાલ તક
અપને આત્મા કો ક્લેશ પહુંચાને પર મી સંપરાય (સંસારં સે) પાર નહીં હો ચકતા ”
(ઉત્ત. ભ. ૨૦) ॥ સૂ. ૧૧ ॥

સચિત્ત જલ કા આરંભ કરને વાલે અકેલી હિંસા કે હી ભાગી નહીં હૈં, કિન્તુ અન્ય
દોષો કે ભાગી મી હૈં । યહી વાત ભગવાન્ કહતે હૈં:—‘અદુવા.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—અથવા અદત્તાદાન કા દોષ લગતા હૈ ॥ સૂ. ૧૨ ॥

તીર્થ આદિ પર આધાકર્મ આદિ દોષોથી દૂષિત આહાર-પાણી ગ્રહણ કરીને
અપ્કાયનો મહારંભ કરતા હોય એમ જોવામાં આવે છે. તે પોતાના આત્માને ભવસાગરથી
તારવામાં સમર્થ નથી. ભગવાને-ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં (અધ્યયન ૨૦માં) કહ્યું છે કે:-

“ જો પુરુષ અસ્થિર વ્રતવાળા છે અને તપ તથા નિયમોથી બ્રહ્મ છે, તે લાંબા
સમય સુધી પોતાના આત્માને કલેશ પહોંચાડવા ઉપરાંત પણ સંસારથી પાર થઈ
શકતા નથી.” (ઉત્તરાં અ. ૨૦) (સૂ. ૧૧)

સચિત્ત જલનો આરંભ કરવાવાળા એકલી હિંસાનાળ ભાગી નથી પરંતુ અન્ય
દોષોના પણ ભાગી છે. તે વાત ભગવાન કહે છે-‘અદુવા.’ ઇત્યાદિ.

મુલાર્થ—અથવા અદત્તાદાનનો દોષ લાગે છે. (સૂ. ૧૨)

ટીકા—

‘અથવા’-શબ્દઃ કથિતસ્યાર્થસ્ય પ્રકારાન્તરેણ સ્પષ્ટીકરણે વર્તતે । યેઽપ્કાયા-
રમ્ભિગસ્તેવામદત્તાદાનદોષાપત્તિરપિ । યતોઽપ્કાયજીવૈસ્તેભ્યો નાર્પિતાનિ સ્વશરીરાણ્યુ-
પમર્દયિતું, તે ચ તાનિ વાહ્મનઃકાપયોગેઃ કૃતકારિતાનુમોદિતૈરુપમર્દયન્તિ, તત-
થાપ્કાયારમ્ભિગામદત્તાદાનદોષોઽપ્યનિવાર્યો ભવતિ, તસ્માન્મુશુભિઃ સર્વથાઽપ્કાયા-
સ્મ્ભો વર્જનીયઃ, ઇતિ ભગવતા સાક્ષાત્પ્રોક્તમ્ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

સચિત્તજલોપમોગિનો હિ પૃષ્ઠાઃ સન્તો યદ્ વદન્તિ તદાહ—

યદ્વા-અપ્કાયારમ્ભં સ્વયં પરિહર્તુમક્ષમાઃ શાક્યાદયો યદ્વદન્તિ તદાહ-
‘કપ્પહ ણે.’ ઇત્યાદિ ।

ટીકાર્થ—પહેલે કહી હુરૂં વાત કા દૂસરી તરહ સે સ્પષ્ટીકરણ કરને કે લિયે
‘અથવા’ શબ્દ હૈ । જો અપ્કાય કા આરંભ કરતે હૈં ઉઠ્ઠે અદત્તાદાન કા દોષ મી લગતા
હૈ । કારણ યહ હૈ કિ-અપ્કાય કે જીવોં ને અપને શરીર ઉપમર્દન કરને કે લિયે ઉઠ્ઠેં સૌપે
નહીં હૈં, ફિર મી વે લોગ મન, વચન, કાય સે ઔર કૃત, કારિત, અનુમોદના સે उनका
ઉપમર્દન કરતે હૈં. અતઃ અપ્કાય કા આરંભ કરને વાલોં કો અદત્તાદાન કા દોષ અનિવાર્ય
હૈ । અતઃ મુમુક્ષુ પુરુષોં કો અપ્કાય કા આરંભ ત્યાગના ચાહિયે ! યેસા ભગવાન્ ને સાક્ષાત્
કહા હૈ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

સચિત્ત જલકા ઉપયોગ કરનેવાલે પૂછનેપર જો ઉત્તર દેતે હૈં સો કહતે હૈં-
અથવા જો લોગ અપ્કાય કે આરંભ કો ત્યાગને મેં અસમર્થ હૈં उनका કथन बतलाते हें:-
‘કપ્પહ ણે,’ ઇત્યાદિ ।

ટીકાર્થ—પ્રથમ કહેલી વાતને ખીલ સીતથી સ્પષ્ટીકરણ કરવાના અર્થમાં
‘અથવા’ શબ્દ છે. જે અપ્કાયનો આરંભ કરે છે, તેને અદત્તાદાનનો દોષ પણ લાગે
છે, કારણ એ છે કે-અપ્કાયના જીવોએ પોતાનું શરીર ઉપમર્દન કરવા માટે તેને સોંપ્યું
નથી. તો પણ તે લોકો મન, વચન અને કાયાથી અને કરબું, કરાવબું તથા અનુમોદવું
તે વડે કરી ઉપમર્દન કરે છે, તે કારણથી અપ્કાયનો આરંભ કરવાવાળાને અદત્તા-
દાનનો દોષ પણ અનિવાર્ય (ટાળી ન શકાય તેવો) છે. એ માટે મુમુક્ષુ પુરુષોએ
અપ્કાયનો આરંભ ત્યાગી દેવો બેધએ. એ પ્રમાણે ભગવાને સાક્ષાત્ કહ્યું છે. (સ્ક. ૧૨)

સચિત્ત જલનો ઉપયોગ કરવાવાળાને પૂછતાં જે ઉત્તર આપે છે-તે કહે છે,
અથવા જે લોક અપ્કાયના આરંભને ત્યજવામાં અસમર્થ છે. તેમનું કહેવું-કથન
બતાવે છે-‘કપ્પહ ણે.’ ઇત્યાદિ.

मूलम्—

कप्पइ णे कप्पइ णे पाउं अट्ठवा विभूसाए ॥ सू० १३ ॥

छाया—

कल्पतेऽस्माकं कल्पतेऽस्माकं पातुं, अथवा विभूपायै ॥ सू० १३ ॥

टीका—

‘कल्पतेऽस्माकं’—मिति । न वयं स्वेच्छयोदकमुपमर्दयामः किन्त्वस्माकमागमे निर्जीवत्वेन प्रतिबोधितत्वादनपिद्धत्वाच्च पातुं कल्पते । ‘कल्पतेऽस्माकम्’ इत्यस्य द्विरुच्चारणेन पुनःपुनरनेकप्रयोजनवशाद् बहुविध उपभोगोऽस्माकं कल्पते, इति बोध्यते । तथाहि—

भस्मस्नायिनो वदन्ति—अस्माकं पातुमेव कल्पते न तु स्नातुमिति ।

शाक्यादयस्त्वेवं जल्पन्ति—स्नान—पानादि सर्वं कल्पते जलेनेति ।

मूलार्थ—हमें कल्पता है, हमें कल्पता है, (जल) पीने और विभूपा करने—हाथ पर आदि धोने, नहाने—के लिए ॥ सू. १३ ॥

टीकार्थ—हम स्वेच्छा से जल की विराधना नहीं करते, वरन हमारे आगम में जल को अचित्त बतलाया है और पीने का निषेध नहीं किया है, अतः हमें पीना कल्पता है । ‘हमें कल्पता है’ यह दो बार कहने से यह सूचित किया गया है कि—प्रयोजन के बश नाना प्रकार का उपभोग करना हमें कल्पता है । जैसे—

भस्म से स्नानकरनेवाले कहते हैं—हमें पीना ही कल्पता है, स्नानकरना नहीं कल्पता ।

शाक्य आदि का कहना है कि—हमें पीना और स्नानकरना—सभी कुछ कल्पता है ।

मूलार्थ—अमने कल्पे छे, अमने कल्पे छे, (जल) पीवाने अने विभूपा—हाथ पर आदि धोवा, नडावा भाटे (सू. १३)

टीकार्थ—अमे स्वेच्छाथी जलनी विराधना करता नथी. परंतु अमारा आग-भमां जलने अचित्त जतायुं छे; अने पीवानो निषेध कथी नथी. तेथी अमारे पीवुं कल्पे छे. ‘अमारे कल्पे छे.’ आ जे वार कडेवाथी अे सूचित करवाभां आयुं छे के:—प्रयोजनवश नाना प्रकारने उपभोग करवानुं अमने कल्पे छे. जेमके—

भस्मथी स्नानकरवावाणा कडे छे—अमारे पीवुं कल्पे छे, स्नान करवुं कल्पतुं नथी.

शाक्य आदिनुं कडेवुं छे के—अमारे पीवुं अने स्नान, सर्वे कांछे कल्पे छे.

ते पुनरेवं वदन्ति-अथवा विभूपायै=शोभायं कल्पतेऽस्माकमुदकमिति । विभूपा नाम-करचरणमुख्यादिप्रक्षालनादिका, वस्त्रादिप्रक्षालनरूपा वा, तदर्थं जलेन व्यवहर-
तामस्माकं नास्ति कोऽपि दोषछेश इति ॥ सू० १३ ॥

पुनः किं कुर्वन्ति ते ? इत्याह-'पुढो सत्येहि,' इत्यादि

मूलम्--

पुढो सत्येहि विउडंति ॥ सू० १४ ॥

छाया--

पृथक् शस्त्रैर्व्यावर्त्तयन्ति (विकुट्टंति वा) ॥ सू० १४ ॥

॥ टीका ॥

आत्मानमनगारं प्रवदमाना शाक्यादयः पृथक्=भिन्नभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः=
स्नानपानधावनोत्सेचनादिभिरप्कायजीवान् व्यावर्त्तयन्ति=प्राणभ्यो व्यपरोपयन्ति ।
यदा विकुट्टन्ती'-तिच्छाया तेन विकुट्टन्ति=विशेषेण छिन्दन्ति, सर्वथा भावेन
विराधयन्तीत्यर्थः ॥ सू० १४ ॥

उनका यह भी कहना है कि-विभूपा-शोभा के लिए भी जल का उपभोग हमें
कल्पता है । हाथ, पैर, मुख, आदि धोना और वस्त्र आदि धोना विभूपा है । इस के लिए
जलका व्यवहारकरने में हमें जरा भी दोष नहीं लगता ॥ सू० १३ ॥

वे और क्या करते हैं, सो करते हैं:-'पुढो,' इत्यादि ।

मूलार्थ--भिन्न-भिन्न शस्त्रों से जलकाय की हिंसा करते हैं ॥ सू० १४ ॥

टीकार्थ--अपन को अनगार कहते हुए शाक्य वगैरह भिन्न-भिन्न प्रकार के शस्त्रों
से स्नान, पान, धोना, सींचना आदि कार्य कर के अप्काय की हिंसा करते हैं । अथवा
पूर्णरूप से उस की विराधना करते हैं ॥ सू० १४ ॥

तेमनुं अये पथु कडेपुं छे डे विभूपा-शोभा माटे पथु जलने उपभोग अमादे
कल्पे छे. हाथ पग, मुख आदिने धोवां अने वस्त्र आदि धोवां ते विभूपा कडेवाय छे.
अये माटे जलने व्यवहार करवाभां अमने जरापथु दोष लागते नथी. (सू. १३)
ते भीणुं शुं करे छे, ते कडे छे 'पुढो,' इत्यादि.

मूलार्थ--जुदा जुदा शस्त्रोथी जलकायनी हिंसा करे छे. (सू. १४)

टीकार्थ--घोताने अणुगार कडेनाश शाक्य वगैरे भिन्न-भिन्न प्रकारना शस्त्रोथी
स्नान, पान, धोवुं, सींचवुं आदि कार्य करीने अप्कायनी हिंसा करे छे. अथवा
पूर्ण रूपथी तेनी विराधना करे छे. (सू. १४)

साम्प्रतमेपां युक्त्यागमयोर्निस्तारत्वं प्रदर्शयन्नाह—'एत्थवि.' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ वि तेसिं नो निकरणाए ॥ सू० १५ ॥

॥ छाया ॥

अत्रापि तेषां नो निकरणायै ॥ सू० १५ ॥

॥ टीका ॥

तेषां शक्यादीनां युक्तयः अत्र=अस्मिन्नपकायारम्भविषये नो=नैव निकरणायै=निश्चयकरणाय समर्थाः सन्ति । अपिशब्देन तेषामागमोऽपि न निश्चेतुं समर्थो भवति । आगमत्वपि तत्र न संभवति, अनाप्तमणीतत्वात्, हिंसाविधायकत्वाच्च । यतो हि स एवागमशब्दवाच्यः यः खलु वीतरागमणीतः सर्वमाणिहितकरो भवति ॥ सू० १५ ॥

उन का कथन युक्ति और आगम से सारहीन है, यह बतलाते हुए कहते हैं—'एत्थवि.' इत्यादि ।

मूलार्थ—उन लोगों को युक्तियाँ अपकाय के विषय में निश्चय नहीं कर सकती ॥ सू० १५ ॥

टीकार्थ—उन शक्य आदि की युक्तियाँ अपकाय के आरंभ के विषय में, निश्चय करने में समर्थ नहीं हैं । 'वि' अपि शब्द से यह सूचित किया है कि—उनका आगम भी निश्चय करने में समर्थ नहीं है । उनका आगम, आगम भी नहीं है, क्योंकि वह आप्तपुरुषद्वारा प्रणीत नहीं है और हिंसा का विधान करनेवाला है । आगम वही कहला सकता है जो वीतरागद्वारा प्रणीत हो और प्राणीमात्र का हितकारी हो ॥ सू० १५ ॥

तेमनुं कथन—कडेबुं-युक्ति अने आगमथी सारहीन छे. अने पतापीने कडे छे—'एत्थवि,' इत्यादि.

सुद्धार्थ—ते बोकेनी युक्तिअओ अप्कायनाविषयमां निश्चय करी शकती नथी. (सू. १५)

टीकार्थ—ते शाक्य आदिनी युक्तिअओ अप्कायना आरंभना विषयमां निश्चय करवामां समर्थ नथी. 'वि' अपि शब्दथी अने सूचित करुं छे के तेमनुं आगम पणु निश्चय करवामां समर्थ नथी. तेमनुं आगम ते आगम पणु नथी. केमके ते आप्त पुरुषो द्वारा प्रणीत नथी. अने हिंसानुं निधान करवावाणां छे. आगम ते कडेवाय छे के ने वीतरागद्वारा प्रणीत होय अने प्राणीमात्रनुं हितकारी होय. (सू. १५)

तदेवमपां जीवत्वं प्रतिबोध्य अस्य उद्देशस्य सकलार्थमुपसंहरन्नाह—'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारभमाणस्य इच्छेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति । एत्थ सत्थं असमारंभमाणसस इच्छेते आरंभा परिण्णाया भवंति । तं परिण्णाय मेधावी णेव सत्थं उदयसत्थं समारंभेज्जा, णेवन्नेहिं उदयसत्थं समारंभावेज्जा, उदयसत्थं समारंभतेऽवि अण्णे न समणुजाणेज्जा । जरसेते उदयसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से ह्नु मुणी परिण्णायकम्मोत्ति वेमि ॥ सू० १६ ॥

तद्गो उद्देशो समत्तो ॥ ३ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रमसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमुदकशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरुदकशस्त्रं समारम्भयेत्, उदकशस्त्रं

इस प्रकार जल को जीव बतलाकर इस उद्देशक के समस्त कथन का उपसंहार करते हैं—'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—अपकाय में शस्त्र का आरंभ करने वाले को ये आरंभ ज्ञात नहीं होते । अपकाय में शस्त्र का आरंभ न करने वाले को ये आरंभ ज्ञात होते हैं । उन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं जल का आरंभ न करे, दूसरों से आरंभ न करावे और आरंभ करने वाले दूसरे को भला न जाने । जो जलकाय के इस आरंभ को जानता है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है । भगवान् से मैंने जो सुना वह कहता हूँ ॥ सू० १६ ॥

आ प्रभाह्णे जलने एव अतापीने आ उद्देशकनां समस्त कथनने उपासंहर करे छे—'एत्थ.' इत्यादि.

मूलार्थ—अपकायमां शस्त्रना आरंभ करवावाणाने आरंभ नालुवामां आवता नथी. अपकायमां शस्त्रना आरंभ नहिं करवावाणाने अे आरंभ नालुवामां आवे छे. तेने नाली करीने बुद्धिमान् पुरुष स्वयं जलने आरंभ करे नहिं. भीज्ज पासे आरंभ करावे नहिं. अने आरंभ करवावाणा भीज्जने लवी नालु नहिं. जे जलकायने आ प्रभाह्णे आरंभ नालु छे. ते परिज्ञातकर्मा मुनि छे, भगवान् पासेथी जे सांलण्युं ते कहुं छुं. (सू. १६)

समारभमाणानन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १६ ॥

। तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ३ ॥

टीका--

अत्र=अस्मिन्नपकाये शस्त्रं=द्रव्यभावरूपं . समारभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते आरम्भाः बन्धहेतुत्वेनापरिज्ञाता भवन्ति । अत्र=अस्मिन्नपकाये शस्त्रं=द्रव्य-भावरूपम् असमारभमाणस्य=अव्यापारयतः इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः । ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति दर्शयति—'तत् परिज्ञाये'-त्यादि । तद्=उदकारम्भणं परिज्ञाय='बन्धाय भवती'—त्येवमवबुध्य मेधावी=साधुमर्यादायां सावधानः, नैव स्वयमुदकशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरुदकशस्त्रं समारम्भ-

टीकार्थ—इस अपकाय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का व्यापार करने वाला अपने व्यापारों को कर्मबंध का कारण नहीं जानता । जो अपकाय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का उपयोग नहीं करते, उन्हें इस व्यापारों का ज्ञान होता है । अर्थात् वे ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देते हैं । ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है सो कहते हैं—जल के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर साधु की मर्यादा में रहने वाले बुद्धिमान् स्वयं जलकाय का आरंभ नहीं करे, दूसरों से आरंभ नहीं करावे और जलका आरंभ करते

टीकार्थ—आ अपकायना विषयमां द्रव्य अने लावर्ष शस्त्रेना व्यापार करवा-वाणा पोताना व्यापारेने कर्मबंधनुं कारणु नष्टता नथी. जे अपकायना विषयमां द्रव्य अने भावरूप शस्त्रेना उपयोग करता नथी, तेने जे व्यापारेनुं ज्ञान होय छे. अर्थात् ते ज्ञपरिज्ञाथी नष्टीने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेना त्याग करी दे छे.

ज्ञपरिज्ञा पछी प्रत्याख्यानपरिज्ञा देवा प्रकारे उत्पन्न थाय छे, ते ठडे छे—जलना आरंभने कर्मबंधनुं कारणु नष्टी करीने साधुनी मर्यादांमां रहेवावाणा बुद्धिमान स्वयं जलकायने आरंभ करे नछि, भीज पासे करावे नछि, अने जलने आरंभ करवावाणने

येत्, उदकशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् अपि न समनुजानीयात् नानुमोदये-
दित्यर्थः । यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा
मुनिर्भवति, इति ब्रवीमि, एतद्व्याख्यानं प्राग्बद् बोध्यम् ॥ सू० १६ ॥

इत्याचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने
तृतीयोद्देशः समाप्तः ॥ १ । ३ ॥

वाले दूसरो का अनुमोदन नहीं करे । जो उदकशस्त्र के आरंभ को जानता है वह
परिज्ञातकर्मा मुनि है । 'इति ब्रवीमि' का अर्थ पहले की तरह जानना चाहिए ॥ सू० १६॥

इति श्री आचाराङ्ग सूत्र की 'आचारचिन्तामणि' टीका के
हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्ययनका
तीसरा उद्देशक समाप्त ॥ १-३ ॥

अनुमोदन आपे नहीं है, वे उदकशस्त्रना आरंभने लखे छे, ते परिज्ञातकर्मा मुनि छे.
'इति ब्रवीमि' ना अर्थ पहलेलानां प्रभाछे लख्ये लोछे. (सू० १६)

इति श्री आचाराङ्ग सूत्रनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना
गुजराती अनुवादमां प्रथम अध्ययनने।
तीजे उद्देशक समाप्त. ॥ १।३ ॥



अथ चतुर्थोद्देशः ।

अनन्तरतृतीयोद्देशके मुनित्वमाप्तयेऽष्कायस्य स्वरूपं निर्णीतं, तदर्थ-
मेवाष्कायशस्त्रसमारम्भे ह्य-प्रत्याख्यान-भेदाद् द्विविधा परिज्ञाऽपि प्रवेदिता ।
अथैतदर्थमेव च क्रममाप्तमग्निफायं प्रतिबोधयितुकामश्चतुर्थमुद्देशकं प्रारभते ।
तत्रादौ 'तेजस्काया जीवाः सन्ती'ति निर्धारयितुमाद्यं सूत्रमाह-'से वेमि'
इत्यादि ।

मूलम्—

से वेमि नेव सयं लोयं अब्भाइक्खेज्जा, नेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा, जे
लोयं अब्भाइक्खइ, से अत्ताणं अब्भाइक्खइ । जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोयं
अब्भाइक्खइ ॥ सू० १ ॥

चौथा उद्देशक—

पिछले तीसरे उद्देशक में साधुता की प्राप्ति के लिए अष्काय के स्वरूप का
निर्णय किया, और अष्कायशस्त्र का उपयोग करने में ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा भी
वतलाई । अब उसी साधुता की प्राप्ति के लिए क्रमप्राप्त अग्निफाय का स्वरूप समझाते हुए
चौथा उद्देशक आरंभ करते हैं । सर्वप्रथम तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व निश्चित करने
के लिए सूत्र कहते हैं-'से वेमि' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् के समीप जैसा मुना है वैसा कहता ह । स्वयं अनिकायरूप
लोक का अपलाप न करे । न आत्माका अपलाप करे । जो अग्निफाय का अपलाप करता है
वह आत्मा का अपलाप करता है, जो आत्मा का अपलाप करता है वह अग्निफाय का
अपलाप करता है ॥ सू० १ ॥

द्विथा उद्देशक—

पाछणना त्रीब्ब उद्देशकमां साधुतानी प्राप्ति भाटे अष्कायनेो निर्णय कथेो
अने अष्काय शस्त्रनेो उपयोग करवाभां ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा पब्ब अतावी.
हुवे ते साधुतानी प्राप्ति भाटे उभप्राप्त अग्निफायनुं स्वरूप समभवता थका-द्विथा
उद्देशकनेो आरंभ करे छे. सर्व प्रथम तेजस्कायना जिवानुं अस्तित्व निश्चय करवा
भाटे सूत्र कहे छे-'से वेमि' इत्यादि.

मूलार्थ—भगवाननी समीप जेवुं सांलब्धुं छे, तेवुं कहुं छुं. स्वयं अशिकाय
रूप लोकनेो अपलाप करे नहि; अने आत्मानो अपलाप पब्ब करे नहि. जे अग्नि-
फायनेो अपलाप करे छे, ते आत्मानो अपलाप करे छे. जे आत्मानो अपलाप करे
छे ते अग्निफायनेो अपलाप करे छे. (सू. १)

छाया—

स ब्रवीमि, नैव स्वयं लोकमभ्याख्यायात्, नैवात्मानमभ्याख्यायात् । यो लोकमभ्याख्याति, स आत्मानमभ्याख्याति । य आत्मानमभ्याख्याति, स लोकमभ्याख्याति ॥ सू० १ ॥

टीका—

येन मया नित्यं गुरुकुलनिवासिना भगवतः समीपे पद्मजीवनिकाय-स्वरूपं निरवशेषविशेषपुरस्सरं श्रवणमननादिना परिज्ञाविषयीकृत्य निर्णीतं, सोऽहं ब्रवीमि—श्रुतं यथा भगवन्मुखात्, तथा कथयामीत्यर्थः ।

लोकम्=अग्निकायलोकम्, प्रकरणसम्बन्धादिह लोकशब्देनाग्निकाय-लोकस्य ग्रहणम् । स्वयम्=आत्मना, नैव अभ्याख्यायात्=नैवापह्नुवीत् । 'अग्निकाय-जीवा न सन्ती'त्येवमग्निकायजीवस्यापलापं नैव कुर्यादित्यर्थः । स्वयमित्यने-नाग्निकायजीवापलपनकर्मणा स्वमात्मानं नैव ब्रवीयादित्यर्थो बोध्यते ।

टीकार्थ—गुरुकुल में निवास करते हुए मैंने भगवान के मुख से पद्मकाय का समस्त विशेषों से युक्त जो स्वरूप श्रवण मनन आदि से परिज्ञा का विषय कर के निर्णीत किया है, उसे मैं कहता हूँ । अर्थात् जैसा भगवान् के मुखारविन्द से सुना है वैसा ही कहता हूँ ।

अग्निकाय का प्रकरण होने के कारण यहाँ 'लोक' का अर्थ अग्निकायरूप लोक समझना चाहिए । इस अग्निकाय का स्वयं अपलाप न करे अर्थात् यह न कहे कि—अग्निकाय के जीव नहीं हैं । स्वयं शब्द से यह अर्थ प्रकट होता है कि अग्निकाय के अपलापरूप कर्म से अपने आप को बद्ध न करे ।

टीकार्थ—गुरुकुलमें निवास करीने में भगवानना सुधधी पद्मकायना संभस्त विशेष-धधी युक्त ने स्वरूपने श्रवण-मनन आदिधी परिज्ञानो विषय करीने निर्णीत कथुं ते-हुं कहुं छुं. अर्थात् ने प्रभाछे भगवानना सुधारविदधी सांलथुं छे. तेधुं-हुं कहुं छुं.

अग्निकायनुं प्रकथुं होवाना डारछे अहिं 'लोक' नेो अर्थ अग्निकायरूप लोक समझवो नेध अे. आ अग्निकायनेो स्वयंअपलाप करे नहिं. अर्थात् अे प्रभाछे कहे नहिं के-अग्निकायना श्रव नधी 'स्वयं' शब्दधी अे अर्थ प्रकट थाय छे के अग्निकायना अपलापरूप कर्मधी पीते पीताने बद्ध करे नहिं.

અથ ચતુર્થોદ્દેશઃ ।

અનન્તરતૃતીયોદ્દેશકે મુનિત્વપ્રાપ્તયેડપ્કાયસ્ય સ્વરૂપં નિર્ણીતં, તદર્થ-
મેવાપ્કાયશશ્વસમારમ્મે જ્ઞ-પ્રત્યાહ્યાન-મેદાદ્ દ્વિવિધા પરિજ્ઞાઽપિ પ્રવેદિતા ।
અથૈતદર્થમેત્ર ચ ક્રમપ્રાપ્તમગ્નિકાયં પ્રતિગ્રોધયિતુકામશ્ચતુર્થમુદ્દેશકં પ્રારમતે ।
તત્રાદૌ 'તેજસ્કાયા જીવાઃ સન્તી'તિ નિર્ધારયિતુમાઘં મૂત્રમાદ્-'સે વેમિ'
શ્ત્યાદિ ।

મૂલમ—

સે વેમિ નેવ સયં લોયં અબ્માહ્વલેજ્ઞા, નેવ અત્તાણં અબ્માહ્વલેજ્ઞા, જે
લોયં અબ્માહ્વલ્હ, સે અત્તાણં અબ્માહ્વલ્હ । જે અત્તાણં અબ્માહ્વલ્હ, સે લોયં
અબ્માહ્વલ્હ ॥ સૂ. ૧ ॥

ચૌથા ઉદ્દેશક—

પિછલે તીસરે ઉદ્દેશક મેં સાધુતા કી પ્રાપ્તિ કે લિપ્તે અપ્કાય કે સ્વરૂપ કા-
નિર્ણય કિયા, ઓર અપ્કાયશશ્વ કા ઉપયોગ કરને મેં જ્ઞપરિજ્ઞા તથા પ્રત્યાહ્યાનપરિજ્ઞા મી
વતલાઈ । અન્ન ઉસી સાધુતા કી પ્રાપ્તિ કે લિપ્તે ક્રમપ્રાપ્ત અગ્નિકાય કા સ્વરૂપ સમજાતે હુપ્
ચૌથા ઉદ્દેશક આરંભ કરતે હેં । સર્વપ્રથમ તેજસ્કાય કા જીવો કા અસ્તિત્વ નિશ્ચિત કરને
કે લિપ્તે સૂત્ર કહતે હેં—'સે વેમિ' શ્ત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—મગવાન્ કે સમીપ જૈસા સુના હૈ વૈસા કહતા હ । સ્વયં અગ્નિકાયરૂપ
લોક કા અપલાપ ન કરે । ન આત્માકા અપલાપ કરે । જો અગ્નિકાય કા અપલાપ કરતા હૈ
વહ આત્મા કા અપલાપ કરતા હૈ, જો આત્મા કા અપલાપ કરતા હૈ વહ અગ્નિકાય કા
અપલાપ કરતા હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

ચૌથા ઉદ્દેશક—

પાછળના ત્રીજા ઉદ્દેશકમાં સાધુતાની પ્રાપ્તિ માટે અપ્કાયને નિર્ણય કર્યો
અને અપ્કાય શશ્વને ઉપયોગ કરવામાં જ્ઞપરિજ્ઞા તથા પ્રત્યાહ્યાનપરિજ્ઞા પણ બતાવી.
હવે તે સાધુતાની પ્રાપ્તિ માટે ક્રમપ્રાપ્ત અગ્નિકાયનું સ્વરૂપ સમજાવતા થકા—ચૌથા
ઉદ્દેશકનો આરંભ કરે છે. સર્વ પ્રથમ તેજસ્કાયના અસ્તિત્વ નિશ્ચય કરવા
માટે સૂત્ર કહે છે—'સે વેમિ' શ્ત્યાદિ.

મૂલાર્થ—મગવાનની સમીપ જેવું સાંભળ્યું છે, તેવું કહું છું. સ્વયં અગ્નિકાય
રૂપ લોકને અપલાપ કરે નહિ; અને આત્માને અપલાપ પણ કરે નહિ. જે અગ્નિ-
કાયને અપલાપ કરે છે, તે આત્માને અપલાપ કરે છે. જે આત્માને અપલાપ કરે
છે તે અગ્નિકાયને અપલાપ કરે છે. (સૂ. ૧)

लक्षणद्वारम्—

ननु तेजस्कायजीवाः सन्तीत्यत्र किं मानम् ? उच्यते—अङ्गारादयो जीवशरीराणि, छेद्यत्वाद्, दृश्यत्वाद्, करधरणादिसमुदायवत् ।

अङ्गारादीनां प्रकाशपरिणामः आत्मयोगाविर्भूतः शरीरस्थत्वात्, स्वद्योतदेहपरिणामवत् । यथा—रजन्यादौ विशिष्टकाले प्राणिविशेषस्य स्वद्योतस्य देहपरिणामो जीवप्रयोगविशेषाद् भवति, एवमङ्गारादीनामपि प्रकाशपरिणामः ।

यद्वा—अङ्गारादीनामूष्मा आत्मसंप्रयोगपूर्वकः, शरीरस्थत्वात्, ज्वरोष्मवत् ।

लक्षणद्वारम्—

शङ्का—तेजस्काय के जीवों के अस्तित्व में क्या प्रमाण है ?

समाधान—अंगार आदि, जीव के शरीर हैं, क्यों कि वह छेद्य हैं, भेद्य हैं और दृश्य हैं, जैसे हाथ—पैर आदि का समूह ।

अथवा—अंगार आदि की प्रकाशरूप पर्याय, आत्मा के प्रयोग से उत्पन्न हुई हैं; क्यों कि वह शरीर में स्थित है, जैसे—जुगनू के शरीर की पर्याय, जैसे रात्रि वगैरह खास समय में जुगनू नामका प्राणी का शरीरपरिणाम (चमकना) जीव के प्रयोग से प्रकट होता है, उसी प्रकार अंगार आदि का प्रकाशरूप परिणाम भी आत्मा के व्यापार से ही उत्पन्न होता है ।

अथवा—अंगार आदि की गर्मी आत्मा के व्यापार से उत्पन्न होती है, क्यों कि वह शरीर में है, जैसे ज्वर की गर्मी. ज्वर की गर्मी जीव से युक्त शरीर में ही उत्पन्न होती है,

लक्षणद्वारम्—

शङ्का—तेजस्कायना लुपेना अस्तित्व (होवापण्यु)मां शुं प्रमाण्यु छे ?

समाधान—अंगार आदि लुपेनां शरीर छे. ठेभके ते छेद्य छे, भेद्य छे, अने दृश्य छे. नेभके हाथ, पग आदिने समूह.

अथवा—अंगार आदिनी प्रकाशरूप पर्याय आत्माना प्रयोगधी उत्पन्न थथ छे; कारण्युके ते शरीरमां स्थित छे. नेवी रीते—जुगनू (आगियो नामना प्राणी)ना शरीरनी पर्याय. नेम रात्री वगेदे आस समयमां जुगनू (आगीज्या)नामक प्राणीने शरीर—परिणाम (चमकण्यु) लुपेना प्रयोगधी प्रकट थथ छे. ते प्रमाण्यु अंगार आदिना प्रकाशरूप परिणाम पण्यु आत्माना व्यापारधी उत्पन्न थथ छे.

अथवा—अंगार आदिनी जरभी आत्माना व्यापारधी उत्पन्न थथ छे. कारण्युके ते शरीरमां छे. नेभके ज्वर—तावनी जरभी. ज्वर—तावनी, जरभी लुपधी युक्त शरीरमां

अयं भावः—कृतकारितानुमोदितभेदेन, मनोवाक्कायभेदेन, तथाऽतीतानागतवर्तमान-
भेदेन च प्रत्येकक्रियायाः सप्तविंशतिभेदा भवन्ति; एवमस्या अपि तेजस्काय-
जीवाभ्याख्यानरूपक्रियाया एकस्या एव सप्तविंशतिभेदा भवितुमर्हन्ति ।
तत्र कस्याश्चिदपि क्रियायां स्वात्मानं न नियुञ्ज्यादिति । उपपद्यतेऽप्ययमर्थः,
अन्यथा हि स्वयंकृतस्यैवाभ्याख्यानस्य प्रतिषेधे कारितानुमोदितरूपानां
तेजस्कायजीवाभ्याख्यानरूपक्रियाणां प्रतिषेधाभावः प्रसज्येत । ततश्च तादृशाभ्या-
ख्यानं पापाय न स्यात् । तथाचोत्सूत्रप्ररूपणापत्तिः ।

तात्पर्यं यह है—प्रत्येक के कृत, कारित, अनुमोदना, मन, वचन काय,
और अतीत, अनागत, वर्तमान के भेद से (इनका परस्पर गुणाकार करने से) सत्ताईस
भेद होते हैं । इसीप्रकार इस तेजस्काय का अपलापरूप क्रिया के भी सत्ताईस भेद हो
सकते हैं । इन भेदों से किसी भी भेद में आत्मा को जोड़ना न चाहिए । अगर ऐसा अर्थ
न लगाया जाता तो यह भी समझ लिया जाता कि—अग्निकाय का स्वयं अपलाप न करे,
मगर अपलाप कराने और अनुमोदन करने की क्रियाओं का निषेध नहीं है । ऐसा
अर्थ संगत नहीं है, क्यों कि ऐसा अर्थ करने से केवल स्वयंकृत अपलापका ही
प्रतिषेध होगा, किन्तु कारित और अनुमोदित अपलायका प्रतिषेध नहीं होगा और इस
प्रकार का अपलाप पाप का कारण न होगा । फिर तो सूत्र के विरुद्ध प्ररूपणा का
दोष आएगा ।

तात्पर्यं ये छे—प्रत्येक क्रियाना करवुं—कराववुं अने अनुमोदना, मन, वचन,
काया अने भूतकाल, लविध्यकाल तथा वर्तमान कालना लेदधी (अनेना परस्पर
शुष्पाकार करवाथी) सत्यावीस लेद थाय छे. ये प्रभावे आ तेजस्कायना अपलापइय
क्रियाना पद्य सत्यावीस लेद थई शके छे. ये लेदोमाथी डोई पद्य लेदमां आत्माने
लेदवे लेईये नई; परन्तु ये प्रभावे अर्थ करवाभां न आवे तो ये पद्य समथ
लेवामां आवत के, अग्निकायने स्वयं अपलाप करे नई. परन्तु अपलाप करवावानी
अने अनुमोदन करवानी क्रियाअनेना निषेध नथी. आ प्रकारने अर्थ संगत नथी,
कैभके—आवे अर्थ करवाथी कैवण स्वयंकृत अपलापनेअ निषेध थरी. किन्तु कारित
अने अनुमोदित अपलापने निषेध थरी नई, अने ये प्रकारने अपलाप पापवुं
कारण न थाय, पछी तो सूत्रना विरुद्ध प्ररूपणाने दोष आवरी.

लक्षणद्वारम्—

ननु तेजस्कायजीवाः सन्तीत्यत्र किं मानम् ? उच्यते—अङ्गारादयो जीवशरीराणि, छेद्यत्वाद्, दृश्यत्वाद्, करघरणादिसमुदायवत् ।

अङ्गारादीनां प्रकाशपरिणामः आत्मप्रयोगाविर्भूतः शरीरस्थत्वात्, खद्योतदेहपरिणामवत् । यथा—रजन्यादौ विशिष्टकाले प्राणिविशेषस्य खद्योतस्य देहपरिणामो जीवप्रयोगविशेषाद् भवति, एवमङ्गारादीनामपि प्रकाशपरिणामः ।

यद्वा—अङ्गारादीनामूष्मा आत्मसंमयोगपूर्वकः, शरीरस्थत्वात्, ज्वरोष्मवत् ।

लक्षणद्वारम्—

शङ्का—तेजस्काय के जीवों के अस्तित्व में क्या प्रमाण है ?

समाधान—अंगार आदि, जीव के शरीर हैं, क्यों कि वह छेद्य हैं, भेद्य हैं और दृश्य हैं, जैसे हाथ—पैर आदि का समूह ।

अथवा—अंगार आदि की प्रकाशरूप पर्याय, आत्मा के प्रयोग से उत्पन्न हुई हैं; क्यों कि वह शरीर में स्थित है, जैसे—जुगनू के शरीर की पर्याय, जैसे रात्रि वगैरह खास समय में जुगनू नामका प्राणी का शरीरपरिणाम (चमकना) जीव के प्रयोग से प्रकट होता है, उसी प्रकार अंगार आदि का प्रकाशरूप परिणाम भी आत्मा के व्यापार से ही उत्पन्न होता है ।

अथवा—अंगार आदि की गर्मी आत्मा के व्यापार से उत्पन्न होती है, क्यों कि वह शरीर में है, जैसे ज्वर की गर्मी. ज्वर की गर्मी जीव से युक्त शरीर में ही उत्पन्न होती है,

लक्षणद्वारम्—

शंका—तेजस्कायना एवोना अस्तित्व (छायापक्ष) में शु प्रमाणु छे ?

समाधान—अंगार आदि एवनां शरीर छे. केभके ते छेद्य छे, लेद्य छे, अने दृश्य छे. नेभके हाथ, पग आदिने समूह.

अथवा—अंगार आदिनी प्रकाशरूप पर्याय आत्माना प्रयोगधी उत्पन्न थथ छे; कारणुके ते शरीरमां स्थित छे. नेवी रीते—जुगनू (आगियो नामना प्राणी)ना शरीरनी पर्याय. नेम रात्री वगेरे खास समयमां जुगनू (आगीयो) नामक प्राणीने शरीर—परिणाम (चमकवुं) एवना प्रयोगधी प्रकट थथ छे. ते प्रमाणु अंगार आदिना प्रकाशरूप परिणाम पक्षु आत्माना व्यापारधी उत्पन्न थथ छे.

अथवा—अंगार आदिनी गरमी आत्माना व्यापारधी उत्पन्न थथ छे. कारणुके ते शरीरमां छे. नेभके ज्वर—तावनी गरमी. ज्वर—तावनी, गरमी एवधी युक्त शरीरमां

यथा—ज्वरोष्मा जीवाधिष्ठितशरीरमेवाश्रित्य भवति, जीवसंयोगं नातिक्रामति । न च मृता ज्वरिणः क्वचिदुपलभ्यन्ते । एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यामग्नेः सच्चित्ता विज्ञेया । न च सूर्यादिभिरनेकान्तो वाच्यः, सर्वपामात्मसंयोगपूर्वक एवोष्ण-परिणामी भवति, तस्मादनेकान्तो न संभवति ।

यद्वा—तेजः सचेतनम्, यथायोग्याहारग्रहणेन वृद्धिविशेषतद्विकार-वत्त्वात्, पुरुषवत् । एवमुक्तलक्षणेन तेजस्कायजीवाः सन्तीति विज्ञायते ।

यद्वा—अव्यक्तोपयोगादीनि कषायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिव्यप्-कायवत् तेजस्कायेऽपि समुपलभ्यन्ते । एवं च जीवलक्षणसद्भावात् तेजस्कायजीवाः सन्तीति निश्चीयते । आगमोऽपि यथा—

जीव के संयोग विना उत्पन्न नहीं होती । मुर्देमें ज्वर फहों नहीं देखा जाता । इस प्रकार अग्नि में अन्वय—व्यतिरेकद्वारा सच्चित्ता समझनी चाहिए । यहाँ सूर्य से हेतु में व्यभिचार नहीं है, क्यों कि सब में आत्मप्रयोगपूर्वक ही गर्माँ हो सकती है, अतः व्यभिचार नहीं है ।

अथवा—तेज सचेतन है, क्यों कि यथायोग्य आहार ग्रहण करने से उस में वृद्धिरूप विकार देखा जाता है, जैसे पुरुष में । इस प्रकार इस लक्षण से तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व विदित होता है । अथवा अप्रकट उपयोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के लक्षण जैसे पृथ्वीकाय और अप्काय में पाये जाते हैं, उसी प्रकार तेजस्काय में भी पाये जाते हैं । इस प्रकार जीव के लक्षण पाये जाने के कारण तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व निश्चित होता है । इसमें आगम प्रमाण भी है—

उत्पन्न थाय छे. एवना संयोग विना उत्पन्न थती नथी. मुडहामां ज्वर-ताव कोर्ध स्थणे जेवामां आवतो नथी; आ प्रभाषे अग्निमां अन्वय-व्यतिरेकद्वारा सच्चित्ता समन्वयी जेधये. अर्द्धि सूर्यथी हेतुमां व्यभिचार नथी. केमके सर्वमां आत्मपूर्वकज गरमी कोर्ध शके छे, अेटला कारणथी व्यभिचार नथी.

अथवा—तेज सचेतन छे. केमके यथायोग्य आहार अर्द्धि करवाथी तेनामां वृद्धिरूप विकार जेवामां आवे-छे. जेवी गीते पुरुषमां. आ प्रकारे एवना लक्षण भणवाथी तेजस्कायना एवोषु अस्तित्व जलुवामां आवे छे.

अथवा—अप्रकट उपयोगथी लधने कषायपर्यन्त एवनां लक्षण जेवामां आवे छे. ते कारणे तेजस्कायना एवोषु अस्तित्व निश्चय होय छे. आमां आगम प्रभाषु यलु छे—

“ तेज चित्तमंतमकराया अपोगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्यपरिणणं ”
इत्यादि । (दशवै० अ० ४)

प्ररूपणाद्वारम्-

अग्निकायजीवा द्विविधाः, सूक्ष्मवादरभेदात् । तत्र सूक्ष्मनामकर्मोदयात्
सूक्ष्माः । वादरनामकर्मोदयाद् वादराः । तत्र सूक्ष्माः द्विधा, पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च ।
सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनः । वादरास्तु लोकैरुद्देशे सन्ति ।
वादरा अग्निकाया अनेकविधाः-अङ्गाराचिरलातशुद्धाग्न्यादयः । सर्वे वादरा
अग्निकाया अपि द्विविधाः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । वादराणां यत्रैको जीवस्तत्रा-

“ तेजस्काय सचित्त कहा गया है । उस में अनेक जीव हैं, उनका अस्तित्व अलग-
अलग है, शत्रुपरिणत अग्नि को छोड़ कर ” इत्यादि । (दशवै० अ० ४)

प्ररूपणाद्वार-

अग्निकाय के जीव दो प्रकार के हैं-(१) सूक्ष्म और वादर, जिनके सूक्ष्म नामकर्म
का उदय हो वे सूक्ष्म और जिनके वादर नामकर्म का उदय हो वे वादर जीव हैं । इनमें
से सूक्ष्म के भी दो भेद हैं-पर्याप्त और अपर्याप्त । सूक्ष्म जीव समस्त लोकाकाश में व्याप्त
हैं और वादर लोक के एक देश में हैं ।

वादर अग्निकाय अनेक प्रकार के हैं । जैसे-अंगार, ज्वाला, अलात (जलता
हुआ काष्ठ), शुद्ध अग्नि आदि । सब वादर अग्निकाय भी दो प्रकार के हैं-पर्याप्त
“ तेजस्काय सचित्त कहेलुं छे. तेमां अनेक एव छे, तेतुं अस्तित्व अलग-
अलग छे, शत्रुपरिणत अग्निने छोडीने. ” इत्यादि. (दशवै. अ. ४)

प्ररूपणाद्वार-

अग्निकायना एव ये प्रकारना छे-(१) सूक्ष्म अने (२) वादर. नेने सूक्ष्म-
नामकर्मना उदय होय ते सूक्ष्म अने नेने वादर नामकर्मना उदय होय ते वादर-
एव छे. तेमांथी सूक्ष्मना पक्ष ये लेह छे. पर्याप्त अने अपर्याप्त. सूक्ष्म एव
समस्त लोकाकाशमां व्याप्त छे. अने वादर लोकना अनेक देशमां छे.
वादर अग्निकाय अनेक प्रकारना छे. नेभके-अंगार, ज्वाला, अणतुं वाकडुं,
शुद्ध अग्नि. वगेरे. सर्व वादर अग्निकाय पक्ष ये प्रकारना छे-पर्याप्त अने अपर्याप्त.

સંખ્યેયેર્નિયમતો ભાવ્યમ્ । વાદરાણાં સ્વસ્થાનં મનુષ્યક્ષેત્રમેવ, ન તતઃ પરમસ્તિ ।

વાદરાસ્તેજસ્કાયાઃ વ્યાઘાતાભાવે સતિ મનુષ્યક્ષેત્રેઽર્ધતૃતીયદ્વીપસમુદ્રેષુ પશ્ચદશક્ષેત્રેષુ વિદ્યન્તે । યુગલસમયરૂપે વ્યાઘાતે સતિ તુ પશ્ચમહાવિદેહેષુ વર્તન્તે, નાન્યત્ર । ઉપપાતાદ્ગ્રીકરણેન લોકસંખ્યેયભાગવર્તિનઃ સન્તિ ।

સમુદ્ઘાતેન સર્વલોકવર્તિનઃ પૃથિવીકાયાદયશ્ચ મારણાન્તિકસમુદ્ઘાતેન સમવહતા વાદરાગ્નિષુ સમુત્પદમાનાસ્તત્તદ્વ્યપદેશભાજઃ સર્વલોકવ્યાપિનઃ સન્તિ ।

યત્ર ચ વાદરાઃ પર્યાપ્તાસ્ત વ વાદરા અપર્યાપ્તાઃ, યતસ્તે તન્નિશ્રયો-

ઔર અપર્યાપ્ત । જહાં એક વાદર જીવ હોતા હૈ વહાં નિયમ સે અસંખ્યાત જીવ હોતે હૈ । વાદર જીવોં કા ક્ષેત્ર મનુષ્યલોક હી હૈ; ઉસસે આગે નહીં ।

વાદર તેજસ્કાય વ્યાઘાત (અન્તર) ન હો તો મનુષ્ય ક્ષેત્ર મેં અઢાઈ દ્વીપ સમુદ્રો મેં પન્દર ક્ષેત્રો મેં રહતે હૈં । યુગલિયોં કૈ સમયરૂપ વ્યાઘાત (અન્તર) કૈ હોને પર પાંચ મહાવિદેહોં મેં રહતે હૈં, અન્યત્ર નહીં । ઉપઘાત કી અપેક્ષા લોક કૈ સંખ્યાત ભાગ મેં રહતે હૈં ।

સમુદ્ઘાત કી અપેક્ષા—સમસ્તલોકવ્યાપી પૃથ્વીકાય આદિ, મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત કરકે વાદર અગ્નિ મેં ઉત્પન્ન હોતે હુએ, ઉસ-ઉસ વ્યપદેશ (નામ) કૈ પાત્ર હો કર સર્વલોકવ્યાપી હૈં ।

જહાં વાદર પર્યાપ્ત હૈં વહી વાદર અપર્યાપ્ત હૈં, ક્યોં કિ—અપર્યાપ્ત જીવ

ન્યાં એક વાદર હવ હોય છે ત્યાં નિયમથી અસંખ્યાત હવ હોય છે. વાદર હવેનું ક્ષેત્ર મનુષ્ય લોકજ છે. તેનાથી આગળ નથી.

વાદર તેજસ્કાય, અન્તર ન હોય તો મનુષ્ય ક્ષેત્રમાં અઢી દ્વીપ-સમુદ્રોમાં, પંદર ક્ષેત્રોમાં રહે છે. યુગલિઆઓના સમયરૂપ અન્તર હોવા પર પાંચ મહાવિદેહોમાં રહે છે, અન્યત્ર નહિ. ઉપપાતાની અપેક્ષા લોકના સંખ્યાત ભાગમાં રહે છે.

સમુદ્ઘાતની અપેક્ષા સમસ્તલોકવ્યાપી પૃથ્વીકાય આદિ મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત કરીને વાદર અગ્નિમાં ઉત્પન્ન થઈને તે-તે વ્યપદેશ-(નામ)ને પાત્ર થઈને સર્વ લોકવ્યાપી છે.

ન્યાં વાદર પર્યાપ્ત છે ત્યાંજ વાદર અપર્યાપ્ત છે; કેમકે—અપર્યાપ્ત હવ પર્યાપ્તના

त्पद्यन्ते, तस्मात् सूक्ष्मा वादराश्च प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्विविधा भवन्ति । सर्वे चैते वर्णगन्धरसस्पर्शभेदैः सहस्राग्रशो भिद्यमानाः संख्येययोनिप्रमुखशतसहस्रभेदपरिमाणा भवन्ति । तेषां संवृतोप्या च योनिः सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रिधा । एषां सप्त लक्षाणि योनयो भवन्ति ।

सूक्ष्मवादराणामुभयेषामग्निकायानां शरीरसंस्थानं सूचीकलापाकृतिकम्, अन्ये शरीरत्रयादिभेदाः पृथिवीकाय वत् । उभयेऽग्निकायाः प्रत्येकमसंख्येयाश्च ।

पर्याप्त के आश्रय ही उत्पन्न होते हैं । अतः सूक्ष्म और वादर, प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो भेद हैं और वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श के भेद से हजारों भेदों को प्राप्त होते हुए इनकी संख्येय योनि वगैरह भेदों की संख्या लाखों की हो जाती है ।

इनकी योनि संवृत और उष्ण है । वह भी सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार की है । इनकी सात लाख योनियाँ हैं ।

सूक्ष्म और वादर—दोनों प्रकार के अग्निकाय जीवों के शरीर का आकार सुइयों के समूह की तरह है । शरीरत्रय आदि अन्य भेद पृथ्वीकाय के समान हैं । दोनों प्रकार के अग्निकाय असंख्यात—असंख्यात हैं ।

आश्रयेण उत्पन्न थाय छे, ओ कारणुथी सूक्ष्म अने वादर प्रत्येकना पर्याप्त अने अपर्याप्तना लेदथी ये लेद छे अने वर्ण, गंध, रस अने स्पर्शना लेदथी उन्नदेश लेदो पाभता थका अनी सख्येय योनि वगेरे लेदोनी संख्या लाणो धर्ष जाय छे.

तेनी योनि संवृत अने उष्ण छे, ते पणु सचित्त, अचित्त अने मिश्रना लेदथी त्रणु प्रकारनी छे. अनी सात लाख योनिओ छे.

सूक्ष्म अने वादर अने प्रकारना अग्निकाय एवोना शरीरना आकार सोयना समूहनी प्रमाणे छे. शरीरत्रय (त्रणु शरीर) आदि अन्य लेद पृथ्वीकायनी समान छे. अने प्रकारना अग्निकाय असंख्यात—असंख्यात छे.

પરિમાણદ્વારમ્—

વાદરપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયજીવાઃ ક્ષેત્રપલ્યોપમસ્યાઽસંખ્યેયમાગમાત્રવર્તિપ્રદે-
શરાશિપરિમાણાઃ સન્તિ । તદપેક્ષયા વાદરા અપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયજીવા
અસંખ્યાતગુણાઃ તદપેક્ષયા સૂક્ષ્મા અપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયા અસંખ્યાતગુણાઃ, તદપેક્ષયા
સૂક્ષ્માઃ પર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયા અસંખ્યાતગુણાઃ સન્તિ । પૃથિવીકાયેન સહાગ્નિકાયસ્ય
પરિમાણસમાલોચનાયાં ત્વેવમવધેયમ્—

યે તેજસ્કાયા વાદરપર્યાપ્તાઃ ક્ષેત્રપલ્યોપમાસંખ્યેયમાગમાત્રવર્તિ-
પ્રદેશરાશિપરિમાણાઃ સન્તિ, તે વાદરપર્યાપ્તેભ્યઃ પૃથિવીકાયેભ્યોઽસંખ્યાત-
ગુણદીનાઃ । શેપાહ્વયોઽપિ રાશયઃ પૃથિવીકાયવદ્ વિદ્વેયાઃ । તન્નાયં વિશેષઃ—

પરિમાણદ્વાર—

વાદર પર્યાપ્ત તેજસ્કાય કે જીવ ક્ષેત્રપલ્યોપમ કે અસંખ્યાતવેં ભાગવર્તી
પ્રદેશો કી રાશિ કે બરાબર હૈં । વાદર અપર્યાપ્ત તેજસ્કાય જીવ અને અસંખ્યાત
ગુણા હૈં, સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત અને સે અસંખ્યાત ગુણા હૈં, ઓર સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત અને સે મો
અસંખ્યાત ગુણા હૈં । પૃથ્વીકાય કે સાથ અગ્નિકાય કે પરિમાણ કા વિચાર ક્રિયા જાય તો
હસ પ્રકાર હૈ—

તેજસ્કાય કે જો વાદર પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્રપલ્યોપમ કે અસંખ્યાતવેં ભાગવર્તી
પ્રદેશો કે બરાબર હૈં, વે વાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાય કે જીવો સે અસંખ્યાતગુણા હીન હૈં ।
શેપ તોનો રાશિયો પૃથ્વીકાય સે સમાન હી સમજ લેની યાહિયે । વિશેષતા સિફ ઇતની હૈ—

પરિમાણ દ્વાર—

વાદર પર્યાપ્ત તેજસ્કાયના એવ ક્ષેત્ર-પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી
પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે. વાદર અપર્યાપ્ત-તેજસ્કાય એવ તેનાથી અસંખ્યાત શુદ્ધ
છે. સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત તેનાથી પણ અસંખ્યાત શુદ્ધ છે. અને સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત તેનાથી
પણ અસંખ્યાત શુદ્ધ છે. પૃથ્વીકાયની સાથે અગ્નિકાયના પરિમાણનો વિચાર કરવામાં
આવે તો આ પ્રકારે છે—

તેજસ્કાયના જે વાદર પર્યાપ્ત એવ ક્ષેત્રપલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની
બરાબર છે; તે વાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના એવાથી અસંખ્યાત શુદ્ધ હીન છે. બાકીની
ત્રણેય રાશિઓ પૃથ્વીકાયની સમાનજ સમજ લેવી જોઈએ, વિશેષતા માત્ર એટલી છે કે—

વાદરાપર્યાપ્તેભ્યઃ પૃથ્વીકાયેભ્યો વાદરા અપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયા અસંખ્યાતગુણહીનાઃ,
 સૂક્ષ્માપર્યાપ્તપૃથ્વીકાયેભ્યઃ સૂક્ષ્મા અપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયા વિશેષહીનાઃ ।
 સૂક્ષ્મપર્યાપ્તપૃથ્વીકાયેભ્યઃ સૂક્ષ્માઃ પર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયા વિશેષહીના इति ।

एवं युक्त्यागमप्रमाणाभ्यामग्नेर्जीवत्वे सिद्धे यदि कश्चिदग््निकाय-
 जीवस्याभ्याख्यानं कुर्यात्, तर्ह्युपयोगादिलक्षणैरनुमितस्य शरीराधिष्ठातुरात्मतोऽ-
 प्यभ्याख्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, परन्तु तन्न उचितं भवतीत्यत आह—'नैवाऽऽ-
 त्मानमभ्याख्याया'—दिति । केनचिदात्मना शरीरमिदं, परिगृहीतं, केनचिच्च
 शरीरमिदं परित्यक्तमिति प्रत्यक्षदर्शनादात्मनः शरीराधिष्ठावृत्तं सिध्यति ।

વાદર અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાય કે જીવો સે વાદર અપર્યાપ્ત તેજસ્કાય કે જીવ અસંખ્યાતગુણ
 કમ હે । સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાય કે જીવો સે સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત તેજસ્કાય કે જીવ
 વિશેષ હીન હે । સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાય કે જીવો સે સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત તેજસ્કાય કે જીવ
 વિશેષ હીન હે ।

इस प्रकार युक्ति और आगमप्रमाण से अग्नि की सजीवता सिद्ध हो जाने
 पर भी यदि कोई अग्निकाय के जीवों का अपलाप करता है तो वह उपयोग आदि
 लक्षणों से अनुमान किये जाने वाले और शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का अपलाप
 करता है, मगर ऐसा करना उचित नहीं है, अतः सूत्रकार कहते हैं—' आत्मा का
 अपलाप न करे ' । किसी आत्माने यह शरीर ग्रहण किया है और किसी ने शरीर का
 त्याग किया है, यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है । इस से यह सिद्ध हो जाता है कि शरीर,
 आत्मद्वारा अधिष्ठित है ।

વાદર અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી વાદર અપર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ અસંખ્યાત
 ગુણ જોયા છે. સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત તેજસ્કાયના
 જીવ વિશેષહીન છે. સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત તેજસ્કાયના
 જીવ વિશેષહીન છે—વિશેષ જોયા છે.

આ પ્રમાણે યુક્તિ અને આગમપ્રમાણથી અગ્નિની સજીવતા સિદ્ધ થઈ જવા
 છતાંય પણ જો કોઈ અગ્નિકાયના જીવોનો અપલાપ કરે છે તો તે ઉપયોગ લક્ષણોથી
 અનુમાન કરવામાં આવેલા અને શરીરના અધિષ્ઠાતા આત્માનો અપલાપ કરે છે. પરન્તુ એ
 પ્રમાણે કરવું તે ઉચિત નથી. તેથી સૂત્રકાર કહે છે—' આત્માનો અપલાપ ન કરો.' કોઈ
 આત્માએ આ શરીર ગ્રહણ કર્યું છે, અને કોઈએ શરીરનો ત્યાગ કર્યો છે, એ વાત
 પ્રત્યક્ષ જોવામાં આવે છે. તેથી એ સિદ્ધ થાય છે કે શરીર આત્માદ્વારા અધિષ્ઠિત છે.

પરિમાણદ્વારમ્—

વાદરપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયજીવાઃ ક્ષેત્રપલ્યોપમસ્યાઽસંખ્યેયમાગમાત્રવર્તિ-
 પ્રદેશરાશિપરિમાણાઃ સન્તિ । તદપેક્ષયા વાદરા અપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયજીવા
 અસંખ્યાતગુણાઃ તદપેક્ષયા સૂક્ષ્મા અપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયયા અસંખ્યાતગુણાઃ, તદપેક્ષયા
 સૂક્ષ્માઃ પર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયયા અસંખ્યાતગુણાઃ સન્તિ । પૃથિવીકાયેન સદાગ્નિકાયસ્ય
 પરિમાણસમાલોચનાયાં ત્વેવમવધેયમ્—

યે તેજસ્કાય વાદરપર્યાપ્તાઃ ક્ષેત્રપલ્યોપમાસંખ્યેયમાગમાત્રવર્તિ-
 પ્રદેશરાશિપરિમાણાઃ સન્તિ, તે વાદરપર્યાપ્તેભ્યઃ પૃથિવીકાયેભ્યોઽસંખ્યાત-
 ગુણદીનાઃ । શોપાસ્ત્રયોઽપિ રાશયઃ પૃથિવીકાયવદ્ વિજ્ઞેયાઃ । તન્નાયં વિશેષઃ—

પરિમાણદ્વાર—

વાદર પર્યાપ્ત તેજસ્કાય કે જીવ ક્ષેત્રપલ્યોપમ કે અસંખ્યાતવે ભાગવર્તી
 પ્રદેશો ક્ષી રાશિ કે બરાબર હૈ । વાદર અપર્યાપ્ત તેજસ્કાય જીવ ઉનસે અસંખ્યાત
 ગુણા હૈ, સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત ઇનસે મી અસંખ્યાત ગુણા હૈ, ઓર સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત ઇન સે મી
 અસંખ્યાત ગુણા હૈ । પૃથ્વીકાય કે સાથ અગ્નિકાય કે પરિમાણ કા વિચાર કિયા જાય તો
 ઇસ પ્રકાર હૈ—

તેજસ્કાય કે જો વાદર પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્રપલ્યોપમ કે અસંખ્યાતવે ભાગવર્તી
 પ્રદેશો કે બરાબર હૈ, વે વાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાય કે જીવો સે અસંખ્યાતગુણા હીન હૈ ।
 શેષ તીનો રાશિઓ પૃથ્વીકાય સે સમાન હી સમજ ઠેની ઇચ્છિય । વિશેષતા સિર્ફ ઇતની હૈ—

પરિમાણ દ્વાર—

વાદર પર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ ક્ષેત્ર-પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી
 પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે. વાદર અપર્યાપ્ત-તેજસ્કાય જીવ તેનાથી અસંખ્યાત ગુણા
 છે. સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત તેનાથી પણ અસંખ્યાત ગુણા છે. અને સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત તેનાથી
 પણ અસંખ્યાત ગુણા છે. પૃથ્વીકાયની સાથે અગ્નિકાયના પરિમાણનો વિચાર કરવામાં
 આવે તો આ પ્રકારે છે—

તેજસ્કાયના જે વાદર પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્રપલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની
 બરાબર છે; તે વાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી અસંખ્યાત ગુણા હીન છે. બાકીની
 ત્રણેય રાશિઓ પૃથ્વીકાયની સમાનજ સમજ લેવી જોઈએ, વિશેષતા માત્ર એટલી છે કે—

त्यपलपने प्रवर्तते, स मूढः लोकम्=अधिकायलोकम् . अभ्याख्याति= 'अग्निकायजीवो नास्ती'—त्यपलपति । अयं भावः—सामान्यरूपेणात्मनः सिद्धौ सत्यामेव हि तस्यात्मनो भेदाः पृथिवीकायादयः सिद्ध्यन्ति, नान्यथा । सामान्यात्मनोऽभ्याख्याने प्रवृत्तः साहसिकः पृथिवीकायादेर्विशेषात्मनोऽभ्याख्यानं सुतरां कर्तुमर्हतीति ।

अपि चायं भावः—करचरणाद्यवयवयुक्तशरीराधिष्ठाता सुव्यक्तोपयोगादिलक्षणः स्वात्माऽपि येनाभ्याख्यातः, तस्याव्यक्तोपयोगादिलक्षणाग्निकायाभ्याख्यानं किं नु दुष्कर ?—मिति ॥ सू० १ ॥

'अग्निकाय नहीं है' इस प्रकार अग्निकाय का निषेध करता है ।

तात्पर्य यह है कि—सामान्यरूप से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होने पर ही उसके पृथ्वीकाय आदि भेद सिद्ध हो सकते हैं अन्यथा नहीं । जो साहसी पुरुष सामान्य आत्मा का ही निषेध करने को तैयार हो गया वह पृथ्वीकाय आदि विशेष आत्माओं का निषेध करे; यह तो स्वाभाविक ही है ।

इससे यह भी आशय निकलता है—हाथ—पैर आदि अवयवों से युक्त शरीर के अधिष्ठाता और भलीभाँति प्रकट उपयोग आदि लक्षणों वाले अपने आत्मा का भी जिसने निषेध कर दिया उसके लिए अप्रकट उपयोग आदि लक्षणों वाले अग्निकाय का निषेध करना कौन बड़ी बात है ? ॥ सू० १ ॥

नथी' आ प्रभाञ्जे अग्निकायनो निषेध करे छे.

तात्पर्य अे छे हे—सामान्यरूपधी आत्मानुं अस्तित्व सिद्ध थवाथी न तेना पृथ्वीकाय आदि लेह सिद्ध थर्ध शके छे, अन्यथा—णीञ्जे रीते नहि. ने साहसी पुरुष सामान्य आत्मानोञ्जे निषेध करवा भाटे तैयार थर्ध गया ते पृथ्वीकाय आदि विशेष आत्मानोञ्जे निषेध करे अे तो स्वाभाविकञ्जे छे.

अेभांथी अे पञ्जे आशय निकणे छे हे—हाथ—पग आदि अवयवोधी युक्त शरीरना अधिष्ठाता ने सारी रीते प्रकट उपयोग आदि लक्षणोवाणा पोताना आत्मानो पञ्जे लेञ्जे निषेध करी दीथे तेने अप्रकट उपयोग आदि लक्षणोवाणा अग्निकायनो निषेध करवा ते थुं भोटी बात छे ? (सू. १)

एवं च युक्त्यागमसंसिद्धः शरीराधिष्ठाता ज्ञानादिगुणवानयमात्मा कथमपि नापलपितुं शक्यः । तस्मादात्मा नास्तीत्येवमभ्याख्यानमात्मनो न-कुर्यादित्यर्थः ।

यः खलु मन्दधीः, लोकम्=अग्निकायलोकम्, अभ्याख्याति, आत्म-वत्सर्वप्रमाणसंसिद्धमप्यग्निकायलोकं प्रत्याचष्टे—‘अग्निकायजीवो नास्ती’ति, स आत्मानमभ्याख्याति=स मूढः खलु युक्त्यागमप्रमाणसंसिद्धमात्मानमपलपति ‘आत्मा नास्ती’ति । सर्वप्रमाणसंसिद्धाग्निकायलोकाभ्याख्याने प्रवृत्तस्य सुकरमेवात्मनोऽभ्याख्यानम्, अग्निकायवदेवात्मन्यपि प्रमाणसत्तायास्तुल्यत्वादिति भावः ।

य आत्मानमभ्याख्याति=यच्चात्मनोऽभ्याख्याने ‘आत्मा नास्ती’

इस प्रकार युक्ति और आगम से सिद्ध शरीर के अधिष्ठाता तथा ज्ञान आदि गुणों वाले आत्मा का निषेध नहीं किया जा सकता । अत एव ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का निषेध नहीं करना चाहिए ।

जो मन्दबुद्धि पुरुष अग्निकायरूप लोक का जो आत्मा की भाँति समस्त प्रमाणों से सिद्ध है—निषेध करता है अर्थात् अग्निकाय के जीवों का निषेध करता है वह युक्ति और आगम से सिद्ध आत्मा का निषेध करता है । सब प्रमाणों से सिद्ध अग्निकाय लोक का अपलाप करने पर आत्मा का अपलाप करना सरल ही है, क्यों कि अग्निकाय और आत्मा के अस्तित्व में प्रमाणों का सद्भाव समान है ।

जो मूर्ख ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का निषेध करता है वह

या प्रमाणों से युक्ति और आगम से सिद्ध, शरीरना अधिष्ठाता तथा ज्ञान आदि गुणोंवाला आत्मानो निषेध करी शकता नही. अतएव भाटे ‘आत्मा नहीं’ या प्रमाणों से आत्मानो निषेध करी शकता नही. अतएव भाटे ‘आत्मा नहीं’ या प्रमाणों से आत्मानो निषेध करवे जेई अ नहि.

जो मन्दबुद्धि पुरुष अग्निकायरूपलोकने के जे आत्मा प्रमाणों से समस्त प्रमाणों से सिद्ध छे तेने, निषेध करे छे, अर्थात् अग्निकायना एवनेो निषेध करे छे, ते युक्ति और आगम से सिद्ध आत्मानो निषेध करे छे. सर्व प्रमाणों से सिद्ध अग्निकायलोकना अपलाप करवाथी आत्मानो अपलाप करवे ते सरल छे. केमके अग्निकाय और आत्माना अस्तित्वमा प्रमाणों से सद्भाव समान छे.

जो मूर्ख ‘आत्मा नहीं’ या प्रमाणों से आत्मानो निषेध करे छे, ते ‘अग्निकाय

ग्निस्तेपां शस्त्रं भवति । तस्य खेदज्ञः=खेदम्=उपमर्दनजन्यदुःखं जानातीति खेदज्ञः, स एव अशस्त्रस्य-अशस्त्रं=संयमः, संयमो हि न व्यापादको भयदो वा कस्यापीत्यशस्त्रमुच्यते । तस्य खेदज्ञः=संयममङ्गभयजनितदुःखानुभवकृशलः । एवं संयमानुष्ठानादेव गुणित्वं लभ्यमिति भावः ।

ननु-कथमिदं ज्ञायते दीर्घलोकशब्दार्थे वनस्पतिरिति ? उच्यते- - कायस्थितिकालेन, परिमाणेन, शरीरावगाहनया च वनस्पतिकायस्य अन्यैकेन्द्रियापेक्षया महत्त्वमस्ति । तथाहि-वनस्पतिकायस्य कायस्थितिकालोऽनन्तः, स चानन्तोत्सर्पिण्यवसर्पिणीरूपः, तस्मिन्नसंख्येयाः पुद्गलपरावर्ता भवन्ति, ते पुद्गलपरावर्ता आवलिकाया असंख्येये भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणाः

करने के कारण अग्नि, वनस्पतिकाय का शस्त्र है । संयम से किसी की विराधना नहीं होती, न वह किसी को भयकारी है, अत एव संयम को अशस्त्र कहते हैं । संयम के भंग होने के भय से उत्पन्न होने वाला दुःख संयम का खेद कहलाता है । इस प्रकार संयम के पालन करने से ही मुनिपन होता है ।

शंका—दीर्घलोक शब्द का अर्थ वनस्पति कैसे समझा जाय ?

समाधान—कायस्थिति के समय, परिमाण और शरीर की अवगाहना से वनस्पतिकाय अन्य एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा महान् है । वनस्पतिकाय की कायस्थिति का काल अनन्त है, और वह अनन्त भी अनन्त उत्सर्पिणीरूप-अवसर्पिणीरूप है । उसमें असंख्यात पुद्गलपरावर्तन होते हैं । वे पुद्गलपरावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग में

कारणार्थी अग्नि वनस्पतिकायनु शस्त्रं छे. संयमार्थी कौर्धनी पणु विराधना यती नथी. ते कौर्धने लयकारी नथी. ये माटे संयमने अशस्त्रं छडे छे. संयमने लंग यवाना लयार्थी उत्पन्न यवावाणुं दुःख ते संयमने जेद छडेवाय छे. आ प्रमाणे संयमनु पालन करवाथीनु मुनिपणुं छेय छे.

शंका—दीर्घलोक शब्दने अर्थ वनस्पति केवी रीते समल शक्य ?

समाधान—कायस्थितिना समय, परिमाण अने शरीरनी अवगाहनाथी वनस्पतिकाय, अन्य ऐकेन्द्रिय लोयानी अपेक्षाये महान् छे. वनस्पतिकायनी कायस्थितिने काल अनन्त छे अने ते अनन्त पणु अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीरूप छे. तेभां असंख्यात पुद्गलपरावर्तनं धाय छे. ते पुद्गलपरावर्तनं आवलिकानां असंख्यातभां

अयमग्निकायलोकः स्वात्मयज्ञैव अभ्याख्येय इति प्रतिबोधितम्,
इदानीमग्निकायजीवोपमर्दनाद् विनिवृत्त एव मुनिर्मवितुमर्हतीत्याह—‘जे दीह०’
इत्यादि ।

मूलम्—

जे दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने, से असत्थस्स खेयन्ने, जे असत्थस्स खेयन्ने
से दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः, सोऽशस्त्रस्य खेदज्ञः । योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः, स
दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः ॥ सू. २ ॥

टीका—

यो भव्यः, दीर्घलोकशस्त्रस्य=दीर्घश्चासौ लोकश्च दीर्घलोकः=वनस्पतिः,
तस्य शस्त्रं दीर्घलोकशस्त्रम्=अग्निः । वनस्पतिकायस्य दाहकरणेन विनाशकतयाऽ-

अग्निकायलोक, आत्मा की तरह निषेध करने योग्य नहीं है, यह बतला दिया ।
अब बतलाते हैं कि—अग्निकाय के जीवों की हिंसा से निवृत्त होने वाला पुरुष ही मुनि होता
है—‘जे दीह०’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो दीर्घलोक (वनस्पतिकाय) के शस्त्र (अग्निकाय) के दुःख को जानता
है वही संयम के खेद को जानता है और जो संयम के खेद को जानता है वह दीर्घलोक के
शस्त्र के खेद को जानता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जो भव्य पुरुष दीर्घलोक अर्थात् वनस्पति के शस्त्र—अग्नि के दुःख को
जानता है, वही अशस्त्र अर्थात् संयम के खेद को जानता है । वनस्पतिकाय की विराधना

अग्निकायलोक, आत्मानि प्रमाद्ये निषेध करवा येज्य नधी; ते अतावी आप्थुं
छे इवे अतावे छे के—अग्निकायना लुपेनी हिंसाथी निवृत्त यवावाणा पुरुषव
मुनि छाय छे—‘जे दीह०’ इत्यादि.

मूलार्थ—जे दीर्घलोक (वनस्पतिकाय)ना शस्त्र (अग्निकाय)ना दुःखने लखे
छे, तेज संयमना भेदने लखे छे, अने जे संयमना भेदने लखे छे, तेज दीर्घ-
लोकना शस्त्रना भेदने लखे छे. (सू. २)

टीकार्थ—जे लव्य पुरुष दीर्घलोक अर्थात् वनस्पतिनुं शस्त्र अग्निना दुःखने
लखे छे, तेज अशस्त्र अर्थात् संयमना भेदने लखे छे. वनस्पतिकायनी विराधना करवाना

पञ्चानुसारी वायुरपि तत्र संभाव्यते, तदेवं वनस्पतिशस्त्रीभूय दहनो बहुतर-
जीवाभाशयतीति सूचनाय भगवता दीर्घलोकशस्त्रशब्दः परिगृहीत इति ।

यद्वा—दीर्घलोकः=पृथिवीकायादिः, पृथिव्यव्यायुवनस्पतिकायानां
भवस्थितिर्याक्रमं द्वाविंशति, -सप्त-त्रि-दश-वर्षसहस्रपरिमाणा, अग्निकायस्य तु
श्रीण्येवाहोरात्राणि । यथा वादरात्रिकायाः पर्याप्तकाः स्वल्पाः सन्ति, अन्ये
पृथिव्यादयः पर्याप्तकाः बहवः सन्ति, अतो दीर्घलोकः पृथिव्यादिस्तस्य
शस्त्रम्=अग्निकायः । अग्निरुत्पाद्यमानः प्रज्वाल्यमानो वा पृथिव्यादिजीवसमूहं
प्रणिहन्तीति तस्य शस्त्रत्वम् । उक्तञ्च—

पत्तो (कोपलो) का अनुसारी वायु भी वहाँ संभव है । इस प्रकार अग्नि वनस्पति का शस्त्र
हो कर बहुतेरे जीवों का विनाश करता है । यह सूचित करने के लिए भगवान् ने
'दीर्घलोकशस्त्र' शब्द का अग्नि के लिए प्रयोग किया है ।

अथवा—'दीर्घलोकका' अर्थ पृथ्वीकाय आदि है । पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय
और वनस्पतिकाय की भवस्थिति क्रम से बाईस, सात, तीन और दश हजार वर्ष की है,
मगर अग्निकाय की तीन रात्रि-दिन ही है । वादर अग्निकाय के पर्याप्त जीव स्वल्प हैं
मगर पृथ्वी आदि के पर्याप्त जीव बहुत हैं । अतः 'दीर्घलोक' शब्द से पृथ्वीकाय आदि
का ग्रहण करना चाहिए और उनका शस्त्र अग्निकाय समझना चाहिए । अग्नि उत्पन्न होते
ही और जलते ही पृथ्वी आदि के जीवों के समूह का घात करता है, अतः वह पृथ्वी आदि
का शस्त्र है । कहा भी हैः—

अने अत्यंत डोमल पत्ता (कुपणो)ना अनुसारी वायुने पञ्च त्यां संभव छे. आ
प्रभाषे अग्नि, वनस्पतिनुं शस्त्र भनी धष्ठांज् एवेना विनाश करे छे. आ इकीकत
सूचववा भाटे भगवाने 'दीर्घलोकशस्त्र' शब्दने अग्नि भाटे प्रयोग कथी छे.

अथवा—दीर्घलोकने अर्थ पृथ्वीकाय आदि छे, पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय,
अने वनस्पतिकायनी भवस्थिति क्रमसे बाईस, सात, त्रि अने दस हजार वर्षनी
छे. परन्तु अग्निकायनी त्रि रात्रि-दिवसञ् छे. केभडे-भादर अग्निकायना पर्याप्त
एव स्वल्प छे. परन्तु पृथ्वी आदिना पर्याप्त एव धष्ठांज् छे. अने भाटे 'दीर्घलोक'
शब्दथी पृथ्वीकाय आदितुं शस्त्र करवुं जेथे अने तेतुं शस्त्र अग्निकाय समञ्चुं
जेथे अने अग्नि उत्पन्न थतांज् अने भणवानी किया थतांज् पृथ्वीआदिना एवेना
समूहने घात करे छे. तेथी ते पृथ्वी आदितुं शस्त्र छे. कहुं पञ्च छे डेः—

सन्ति । एतावान् कालो वनस्पतिकाल इत्युच्यते । परिमाणतन्तु प्रत्युत्पन्नवनस्पति-
कायिकानां निर्लेपना नास्ति ।

शरीरावगाहनया च सातिरेकं योजनसहस्रम् । अतो वनस्पतिकायस्य
दीर्घलोक इति व्यपदेशः । (प्रज्ञापना १८ पदे)

ननु प्रसिद्धमग्निशब्दं विहाय किमर्थमिह दीर्घलोकशब्दोपादानम् ?
उच्यते—वनस्पतिकायदहनप्रवृत्तोऽग्निकायो बहुतरप्राणिनां विनाशको भवति,
वनस्पतिकाये बहुविधाः प्राणिनः कीट पिपीलिका भ्रमरमधुमक्षिकाकपोतादयो
निवसन्ति, तरुकोटरेषु पृथिवीकायाश्च, अवश्यापरूपा अप्काया अपि, मृदुतर-

जितने समय होते हैं उतने हैं, इतना काल वनस्पतिकाल कहलाता है । परिमाण से प्रत्युत्पन्न
वनस्पतिकायिक जीवों की निर्लेपना नहीं है । इनके शरीर की अवगाहना कुछ अधिक एक
हजार योजन है । इसी कारण वनस्पतिकाय को दीर्घलोक कहते हैं ।

अब प्रश्न हो सकता है कि—प्रसिद्ध 'अग्नि' शब्द को छोड़ कर 'दीर्घलोकशब्द'
शब्द का प्रयोग करने की क्या आवश्यकता थी ?

इसका उत्तर यह है कि—वनस्पतिकाय को जलाने में प्रवृत्त अग्निकाय और भी
बहुत से प्राणियों का विनाश करता है । वनस्पतिकाय के सहारे कीड़े, चिउंटी, भैंरे,
मधुमक्खी और कबूतर आदि बहुत से प्राणी निवास करते हैं । वृक्षों को खेतों में
पृथ्वीकाय के जीव भी होते हैं । ओसरूप, अप्काय भी होता है, और अत्यन्त कोमल

लागभां जेटला संभव थाय छे. तेऽला छे अेटला काण ते वनस्पतिकाण कडेवाय छे.
परिभाष्यथी प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकायिक लुवेनी निर्लेपना नथी. तेना शरीरनी अवगाहना
कंठक अधिक अेक हज्जर योजन छे. आ कारण्यथी वनस्पति कायने 'दीर्घलोक' कडे छे.

इवे प्रश्न थर्थ शके छे केः—प्रसिद्ध अग्नि शब्दने छोडीने 'दीर्घलोकशब्द'
शब्दने प्रयोग करवानी शुं आवश्यकता हती ? तेना उत्तर अे छे के—वनस्पतिकायने
जाणवामां प्रवृत्त (याहु) अग्निकाय नील पणु प्राणीओना विनाश करे छे. वनस्पतिना
आश्रये डीडा, भंकाडा, लभश, भधभाभी अने कबूतर आदि घणुंज प्राणीओ निवास करे
छे. वृक्षाना लपोलभां पृथ्वीकायना एव पणु होय छे. आकणइप अप्काय पणु होय छे.

उक्तमर्थं दृष्टीकर्तुं त्रिपर्ययेण पुनः कथयति—‘योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः स दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः’ इति, व्याख्या पूर्ववत् । ॥ सू० २ ॥

॥ शस्त्रद्वारम् ॥

ननु येन शस्त्रेण वह्निः खिद्यते, तत् केन दृष्टम् ? अपि चाशस्त्रं संयम-
स्वरूपमिति केन दृष्टम् ? इति जिज्ञासायामाह—‘वीरेहिं’ इत्यादि ।

मूलम्—

वीरेहिं एष अभिभूय दिष्टं, संजएहिं सया जएहिं सया अप्पमत्तेहिं ॥सू० ३॥

छाया—

वीरैः एतद् अभिभूय दृष्टम्, संयतैः सदा यतैः सदा अप्रमत्तैः ॥सू० ३॥

इसी बात को दृष्ट करने के उद्देश्य से पुनः अन्यरूप से कहते हैं कि—जो अशस्त्र
(संयम) के खेद को जानता है वह दीर्घलोकशस्त्र के खेद को जानता है । इस को व्याख्या
पहले के समान ही समझनी चाहिए ॥ सू० २ ॥

शस्त्रद्वार—

शंका होती है कि—जिस शस्त्र से अग्नि को खेद होता है वह किस ने
देखा है और संयमरूप अशस्त्र किस ने देखा है ? इसके उत्तर में कहते हैं—
‘वीरेहिं’ इत्यादि ।

मूलार्थ—परिपह उपसर्ग आदि को जीतनेवाले संयत सदा यतनावान् और सदा
अप्रमत्त रहने वाले वीर पुरुषों ने यह देखा है ॥ सू० ३ ॥

आ बातने दृष्ट करवाना उद्देश्यी इरी थीना इपथी कडे छे के—जे अशस्त्र
(संयम)ना जेदने जाण्छे छे ते दीर्घलोकशस्त्रना जेदने जाण्छे छे. तेनी व्याख्या प्रथम
कडेली छे ते प्रभाण्छे समजवी जेध्छे. (सू. २)

शस्त्रद्वार—

शंका थाय छे के जे शस्त्रथी अग्निने जेद थाय छे ते कोण्छे जेथुं छे ? अने
संयमरूप अशस्त्र कोण्छे जेथुं छे ? तेना उत्तरमां कडे छे—‘वीरेहिं’ इत्यादि.

मूलार्थ—परीपह—उपसर्ग आदिने छुतवावाणा, संयत—संयमी सदा यतना-
वान् अने सदा अप्रमत्त रहेवावाणा वीरपुरुषोऽप्ये ते जेथुं छे. (सू. ३)

“ભૂયાણમેસમાપાઓ હવ્યવાહો ન સંસઓ” । (દશવૈ ૩ અંગા ૩૫)
 તસ્ય સ્વેદજ્ઞઃ=સ્વેદયતીતિ સ્વેદઃ=અગ્નેર્વ્યાપારઃ, અગ્નિવ્યાપારો હિ પૃથિવ્યાદિ-
 જીવાનાં દહનાત્મકતયા દુઃસ્વમુત્પાદયતીત્યતઃ સ્વેદ-શબ્દેન વ્યપદિશ્યતે, તે
 જાનાતીતિ સ્વેદજ્ઞઃ । અગ્નિકાયસ્ય વ્યાપારઃ સર્વમાણિપીઠાકર ઇતિ વિજ્ઞાતા યઃ
 સ્વલુ ભવતિ, સ એવ અશસ્ત્રસ્ય=સપ્તદશવિધસંયમસ્ય સ્વેદજ્ઞઃ=સંયમક્ષરણજન્ય-
 દુઃસ્વાનુભાવકઃ, અસ્તીતિ શેષઃ । અગ્નિકાયવ્યાપારેણ પૃથિવ્યાદિજીવાનાં
 વિનાશસ્તેન સંયમક્ષરણં, તતશ્ચ મુનિત્વવિશ્રંશ ઇતિ સર્વસ્વનાશકતયાગ્નિવ્યાપારઃ
 સાધુનાં જ્ઞપરિયા વિજ્ઞાય પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયા પરિહરણીય ઇતિ ભાવઃ ।

“યહ અગ્નિ ભૂતોં કા ઘાતક હૈ, ઇસમેં સંદેહ નહીં” । (દશવૈ. ૩. અ. ગા. ૩૫)

ઉસ અગ્નિ કે વ્યાપાર કો પૃથ્વીકાય આદિ કા સ્વેદ કહતે હૈ, ક્યોં કિ દાહક હોને
 કે કારણ વહ પૃથ્વી આદિ કો દુઃસ્વ ઉત્પન્ન કરતા હૈ । ઉસે જાનને વાલા ‘સ્વેદજ્ઞ’ કહલાતા
 હૈ । ‘અગ્નિકાય કા વ્યાપાર સવ પ્રાણિયોં કો પીઠા પહુંચાતા હૈ’—જો એસા જાનતા વહી
 પુરુષ અશસ્ત્ર કા અર્થાત્ સત્તરહ પ્રકાર કે સંયમ કે સ્વેદ કા—સંયમ કે ભંગ સે હોને વાલે
 સ્વેદ કા જ્ઞાતા હોતા હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—અગ્નિકાય કે વ્યાપાર સે પૃથ્વીકાય આદિ કે
 જીવોં કા વિનાશ હોતા હૈ, ઓર ઉસસે સંયમભંગ હોતા હૈ, ઓર સંયમ કે ભંગ સે મુનિપત્ન
 કા ભંગ હોતા હૈ । ઇસ પ્રકાર અગ્નિવ્યાપાર સર્વત્વ કા નાશક હોને સે વહ સાધુઓં કે લિપ્
 જ્ઞપરિજ્ઞા સે જાનકર પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા સે ત્યાગને યોગ્ય હૈ ।

“આ અગ્નિ ભૂતોના ઘાતક છે, એમાં સંદેહ નથી.” (દશ વૈ. અ. ૩. ગા ૩૫)

આ અગ્નિના વ્યાપારને પૃથ્વીકાયને ખેદ કહે છે. કારણ કે દાહક હોવાના
 કારણે તે પૃથ્વીઆદિને દુઃખ ઉત્પન્ન કરે છે તેને બાણવાવાળા ‘ખેદજ્ઞ’ કહેવાય છે.
 ‘અગ્નિકાયને વ્યાપાર સર્વ પ્રાણીઓને પીઠા પહોંચાડે છે.’ જે આ પ્રકારે બાણ છે
 તેજ પુરુષ અશસ્ત્રનો અર્થાત્ સત્તર પ્રકારના સંયમના ખેદનો—સંયમના ભંગથી
 થવાવાળા ખેદનો જ્ઞાતા—બાણનાર હોય છે. તાત્પર્ય એ છે કે—અગ્નિકાયના વ્યાપારથી
 પૃથ્વીકાય આદિના જીવોને નાશ થાય છે. અને તેથી સંયમ ભંગ થાય છે, અને
 સંયમના ભંગથી, મુનિપત્ન ભંગ થાય છે. આ પ્રમાણે અગ્નિવ્યાપાર સર્વસ્વનો નાશક
 હોવાથી સાધુઓ માટે જ્ઞપરિજ્ઞાથી બાણીને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યાગવા યોગ્ય છે.

उक्तमर्थं दृढीकर्तुं त्रिपर्ययेण पुनः कथयति—'योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः स दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः' इति, व्याख्या पूर्ववत् । ॥ सू० २ ॥

॥ शस्त्रद्वारम् ॥

ननु येन शस्त्रेण बहिः खिद्यते, तत् केन दृष्टम् ? अपि चाशस्त्रं संयम-स्वरूपमिति केन दृष्टम् ? इति जिज्ञासायामाह—'वीरेहि'. इत्यादि ।

मूलम्—

वीरेहि एष अभिभूय दिष्टं, संजएहि सया जएहि सया अप्पमत्तेहि ॥सू० ३॥

छाया—

वीरैः एतद् अभिभूय दृष्टम्, संयतैः सदा यतैः सदा अप्रमत्तैः ॥सू० ३॥

इसी बात को दृढ करने के उद्देश्य से पुनः अन्यरूप से कहते हैं कि—जो अशस्त्र (संयम) के खेद को जानता है वह दीर्घलोकशस्त्र के खेद को जानता है । इस की व्याख्या पहले के समान ही समझनी चाहिए ॥ सू० २ ॥

शस्त्रद्वार—

शंका होती है कि—जिस शस्त्र से अग्नि को खेद होता है वह किस ने देखा है और संयमरूप अशस्त्र किस ने देखा है ? इसके उत्तर में कहते हैं—'वीरेहि'. इत्यादि ।

मूलार्थ—परिपह उपसर्ग आदि को जीतनेवाले संयत सदा यतनावान् और सदा अप्रमत्त रहने वाले वीर पुरुषों ने यह देखा है ॥ सू० ३ ॥

आ वातने दृढ करवाना उद्देश्यी इरी भीष्म इपथी कडे छे के—ने अशस्त्र (संयम)ना भेदने लखे छे ते दीर्घलोकशस्त्रना भेदने लखे छे. तेनी व्याख्या प्रथम कडेली छे ते प्रभावे समझवी लेईअे. (सू. २)

शस्त्रद्वार—

शंका थाय छे के ने शस्त्रथी अग्निने भेद थाय छे ते कोखे जेथुं छे ? अने संयमरूप अशस्त्र कोखे जेथुं छे ? तेना उत्तरमां कडे छे—'वीरेहि'. इत्यादि.

मूलार्थ—परीपह—उपसर्ग आदिने छुतवावाणा, संयत—संयमी सदा यतना-वान् अने सदा अप्रमत्त रहेवावाणा वीरपुरुषोअे ते जेथुं छे. (सू. ३)

टीका—

वीरैरिति । घनघातिकर्मरूपरिपुगणक्षपणानन्तरं लब्धातुलकेवला-
लोकलक्ष्म्या विराजन्त इति वीराः । यथा—राजानश्चतुरङ्गसैन्यसमावृतं स्वकीय-
मरिवर्गं निहत्य लब्धराज्यविजयलक्ष्म्या विराजमाना वीरा निगद्यन्ते ।
यद्वा—वि=विशेषेण ईरयन्ति=रागाद्यन्तरङ्गमहासुभटान् निवारयितुमनन्ततपोवीर्यं
व्यापारयन्तीति वीराः । यद्वा—विशेषेण ईरयन्ति=शिवगतिं गमयन्ति भव्यजीवा-
निति वीराः । यद्वा—विशेषेण ईरयन्ति=ज्ञानाचारादीन् प्रति प्रेरयन्ति भव्यजीवानिति
वीराः, तीर्थङ्करा गणधराश्च, तैर्वीरैः, एतद्=अग्निकायस्वरूपं, यद्वा—अग्निशस्त्रम्
अशस्त्रं चेति द्वयं दृष्टं=ज्ञानदृष्टय विलोकितम्, अर्थतस्तीर्थङ्करैः, गणधरैस्तु
भगवद्वचनैरिति विशेषः ।

टीकार्थ—घातियाकर्मरूपी शत्रुओं के समूह को नाश करने के अनन्तर अनुपम
केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त होती है । उस लक्ष्मी से जो विराजमान हैं उन्हें वीर कहते हैं ।
जैसे कोई राजा, चतुरंग सेना से युक्त शत्रुओं को हराकर प्राप्त राग्य और विजय की लक्ष्मी
से सुशोभित हो कर 'वीर' कहलाते हैं । अथवा राग-द्वेष आदि आन्तरिक महायोद्धाओं
को रोकने के लिए अनन्त तपोवीर्य का प्रयोग करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । अथवा भव्य
जीवों को विशेषरूप से मुक्ति की ओर प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । अथवा
विशेषरूप से ज्ञानाचार आदि की ओर भव्य जीवों को प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं ।
ऐसे वीर तीर्थकर गणधर आदि हैं । उन वीरों ने अग्नि के स्वरूप को अथवा अग्निशस्त्र
और अशस्त्र को ज्ञानदृष्टि से देखा है । अर्थ से तीर्थकरों ने और उन के वचनों के अनुसार
गणधरों ने देखा है ।

टीकार्थ—घाति—कर्मरूपी शत्रुओंना समूहको नाश करवाना अनन्तर
अनुपम केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी प्राप्त थाय छे । ते लक्ष्मीधी के विराजमान छे तेने
वीर कहे छे । जेभ केई राज, चतुरंग सेनाधी युक्त (यार प्रकारनी सेना सहित)
शत्रुओंने हरावीने प्राप्त करेहुं रान्य अने विजयरूप लक्ष्मीधी सुशोभित धनी 'वीर'
कहेवाय छे । अथवा—राग-द्वेष आदि आन्तरिक महायोद्धाओंने रोकवावाणने 'वीर'
कहे छे । अथवा भव्य लोयने विशेषरूपधी सुकितनी तरङ्ग प्रेरित करवावाणा 'वीर'
कहेवाय छे । अथवा विशेषरूपधी ज्ञानाचार आदिनी तरङ्ग लोयने प्रेरित
करवावाणा 'वीर' कहेवाय छे । जेवा वीर तीर्थ'कर अने गणधर आदि छे, ते वीरोंजे
अग्निना स्वरूपने अथवा अग्निशस्त्र अने अशस्त्रने ज्ञानदृष्टिधी जेयां छे । अर्थधी
तीर्थ'करोंजे जेयां छे । अने तेभनां वचनो अनुसार गणधरोंजे जेयां छे ।

किं कृत्वा तैरेतद् दृष्टं?—मित्याकाङ्क्षायामाह—‘अभिभूय’ इति । परिपहोपसर्गान्, ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय-ऽन्तरायान्ययातिकर्म-चतुष्टयं च विजित्य केवलं संभाष्येत्यर्थः । कथम्भूतैस्तै ?—रित्याह-संयतैः=सम्=सम्यक्प्रकारेण यताः=परमकरुणया ईर्यासमित्यादियतनावन्तस्तैः, सकलपद्भ्जीव-निकायपरित्राणपरायणैरित्यर्थः । यतना द्विविधा-प्रमत्तयतना, अप्रमत्तयतना च । अथ प्रमत्तस्य कीदृशी यतना ? उच्यते-कृपायादिनिग्रहण ईर्याद्युपयोगवच्चं प्रमत्तयतना कथ्यते ।

अप्रमत्तयतना कृपापरहितवचनसाध्या भवति । अत्र अप्रमत्तग्रहणादि-न्द्रियादिप्रमादवर्जनं गृह्यते । यतनाग्रहणाद् यावज्जीवयतना गृह्यते । अत एव

उन्होंने ने क्या कर के यह देखा है ? इस शंका का उत्तर है—परोपह और उपसर्गों को तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय नामक चार घातिया कर्मों को जीतकर केवल ज्ञान प्राप्त कर के उन्होंने ने देखा है ।

वे देखने वाले किस प्रकार के थे ? इसका उत्तर यह है—सम्यक् प्रकार से, अत्यन्त करुणापूर्वक ईर्यासमिति आदि का पालन करनेवाले अर्थात् समस्त पदकाय की रक्षा में तत्पर थे । यतना दो प्रकार की है—प्रमत्त की यतना और अप्रमत्त की यतना । प्रमत्त की यतना कैसी होती है ? इसका उत्तर यह है कि—कृपाय आदि का निग्रह करने वाला पुरुष ईर्या आदि में जो उपयोग रखता है, वह प्रमत्तयतना है । अप्रमत्त की यतना कृपापरहित वचनों से होती है । यहाँ अप्रमत्त शब्द से इन्द्रिय आदि प्रमादों का त्याग लेना चाहिए । यतना शब्द से यहाँ यावज्जीव यतना का ग्रहण करना चाहिए । अतः

तेमझे शुं करीने जेयां छे ? आ शंकाणे उत्तर जे छे परीपहू अने उपसर्गोने तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय अने अन्तराय नामना आर घातिया कर्मोने लतीने केवलज्ञान प्राप्त करीने तेमझे जेयां छे.

ते जेवावाणा केवा प्रकारना हुता ? तेनो उत्तर—सम्यक्प्रकारे, अत्यन्त करुणापूर्वक ईर्यासमिति आदिना पालन करवावाणा, अर्थात् समस्त पदकायनी रक्षाभां तेजो तत्पर हुता. यतना जे प्रकारनी छे—प्रमत्तनी यतना अने अप्रमत्तनी यतना. प्रमत्तनी यतना केवी डोथ छे ? तेनो उत्तर जे छे के—कृपाय आदिना निग्रह करवावाणा पुरुष ईर्या आदिभां जे उपयोग राजे छे ते प्रमत्तनी यतना छे. अप्रमत्तनी यतना कृपापरहित वचनोधी थाय छे. अहिं अप्रमत्त शब्दधी इन्द्रिय आदि प्रमादोने त्याग देवे जेधजे. यतना शब्दधी अहिं एवमात्रनी यतनानुं थडषु करवुं जेधजे. जे माटे

સદ=સર્વદા યતૈઃ=ચરણકરણવિષયે નિરતિચારતયા યત્નવદ્ધિઃ, તથા-સદા=સર્વકાલે અમમત્તૈઃ=વિષયરૂપાયાદિવર્જિતૈઃ । એવમ્ભૂતૈર્વીરૈરગ્નિકાયસ્વરૂપં તદીયશસ્ત્રમશસ્ત્રં ચ દૃષ્ટમિત્યર્થઃ ।

નતુ કિં નામાગ્નિશસ્ત્રમ્ ? ઉચ્યતે-અન્યુપમર્દકં શસ્ત્રમ્ । તત્ કિં-સ્વરૂપ ?-મિતિચેત્, અવધેદિ-અગ્નિશસ્ત્રં તાવદ્ દ્વિધા-દ્રવ્ય-ભાવભેદાત્ । તત્ દ્રવ્યશસ્ત્રં ત્રિવિધમ્ સ્વકાયપરકાયોભયકાયભેદાત્ । સ્વકાયશસ્ત્રં-અગ્નિકાયસ્યા-ગ્નિકાય એવ, યથા-તૃણાગ્નિઃ, પર્ણાગ્નિઃ શસ્ત્રમ્ । પરકાયશસ્ત્રં-ધૂલિરાપશ્ચ, આર્દ્રશ્ચ-વનસ્પતિઃ, ત્રસાઃ પ્રાણિનશ્ચ । ઉભયકાયશસ્ત્રં તુપકરીપાદિમિત્રોઽગ્નિરન્યસ્યાગ્નેઃ,

સર્વદા ચરણસત્તરી ઓર કરણસત્તરી મેં અતિચારરહિત યતના કરને વાલે તથા સદૈવ વિષય-કપાય આદિ પ્રમાદ સે રહિત વીર પુરુષોને અગ્નિકાય કે સ્વરૂપ કો તથા ડસકે શસ્ત્ર ઓર અશસ્ત્ર કો દેસા હૈ ।

શક્ત્વા—અગ્નિશસ્ત્ર કયા હૈ ?

સમાધાન—અગ્નિ કો વિરાધના કરને વાલા શસ્ત્ર અગ્નિશસ્ત્ર કહલાતા હૈ । ડસકા સ્વરૂપ કયા હૈ ? સો ડસ પ્રકાર સમક્ષો-દ્રવ્ય ઓર ભાવ કે ભેદ સે અગ્નિ શસ્ત્ર ડો પ્રકાર કા હૈ । ડનમેં સે દ્રવ્યશસ્ત્ર કે તોન ભેદ હેં—સ્વકાય-શસ્ત્ર, પરકાય-શસ્ત્ર ઓર ઉભયકાય-શસ્ત્ર । અગ્નિકાય કા સ્વકાયશસ્ત્ર અગ્નિ હી હૈ, જૈસે તિનકે કો અગ્નિ, પત્તો કો અગ્નિ કા શસ્ત્ર હૈ । ધૂલિ ઓર પાની આદિ અગ્નિકાય કા પરકાયશસ્ત્ર હૈ । શીલો વનસ્પતિ મો પરકાયશસ્ત્ર હૈ ઓર ત્રસ પાણી મો । તુપ (ડિલકા) ઓર કરીપ

સર્વદા અરણ્ય સીતેરી અને ડરણ્યસીતેરીમાં અતિચારરહિત યતના કરવાવાળા તથા હુંમેશાં વિષય-કપાય આદિ પ્રમાદથી રહિત વીર પુરુષોએ અગ્નિકાયના સ્વરૂપને તથા તેના શસ્ત્ર અને અશસ્ત્રને જ્ઞેયાં છે.

શંકા—અગ્નિ શસ્ત્ર એ શું છે ?

સમાધાન—અગ્નિની વિરાધના કરવાવાળું શસ્ત્ર તે અગ્નિશસ્ત્ર કહેવાય છે. તેનું સ્વરૂપ કેવું છે ? તે આ પ્રમાણે સમજો—દ્રવ્ય અને ભાવના લેદથી અગ્નિશસ્ત્ર બે પ્રકારનાં છે, તેમાંથી દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ લેદ છે. સ્વકાયશસ્ત્ર પરકાયશસ્ત્ર, અને ઉભયકાયશસ્ત્ર. અગ્નિકાયનું સ્વકાયશસ્ત્ર અગ્નિજ છે. જેમ તણુપાની અગ્નિ, પાંદડાંની અગ્નિનું શસ્ત્ર છે. ધૂળ અને પાણી આદિ અગ્નિકાયનું પરકાયશસ્ત્ર છે. લીલી વનસ્પતિ પણ પરકાયશસ્ત્ર છે. અને ત્રસ પ્રાણી પણ પરકાયશસ્ત્ર છે. તુપ અને છ.ણુ આદિથી મળેલી અગ્નિ

तप्तोदकादिकं च । भावशस्त्रं तु-अग्निं प्रति दुष्पणिहितमनोवाक्यरूपम् । शेषाणि पृथिवीकायवद् बोध्यानि ॥ सू० ३ ॥

यस्तु प्रमादवशादुपभोगार्थमग्निकायजीवानुपमर्दयति, तत्कलमाह—‘जे’ इत्यादि ।

मूलम्—

जे पमत्ते गुणाद्विष्टे से हु दंडेत्ति पवुच्चइ ॥ ४ ॥

छाया—

यः प्रमत्तः गुणार्थिकः (गुणस्थितः) स खलु दण्ड इति प्रोच्यते ।

टीका—

यो हि प्रमत्तः=विषयकषायदिप्रमादवशातः सन् गुणार्थिकः भवतीत्यन्वयः । गुणः=अग्निकायकृतोपकारः. स एवार्थः=प्रयोजनं यस्य स गुणार्थी, स एव गुणार्थिकः, रचन-पचन-प्रकाश-तापनादिप्रयोजनवान् भवति । यद्वा—

(छाये) आदि से मिली अग्नि तथा गर्म जल अग्नि का उभयकायशस्त्र है । अग्नि के प्रति दुष्ट मन वचन और कायका प्रवर्तन भावशस्त्र है । शेष द्वार पृथिवीकाय के समान समझने चाहिए ॥ सू० ३ ॥

प्रमाद के वश होकर उपभोग के निमित्त अग्निकाय के जीवों की विराधना करने वाले को होने वाला फल कहते हैं:—‘जे’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो प्रमादी पुरुष अग्नि के गुणों का अर्था-रांधना आदि में स्थित-है, वह उसके लिए दण्ड कहलाता है ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—विषय कषाय आदि प्रमादों के अधीन होकर पुरुष गुणार्थी होता है । अग्निकाय द्वारा होने वाला उपकार यहाँ गुण कहा गया है । इस गुण का अर्था गुणार्थिक कहलाता है । रांधना, पकाना, उजाला करना आदि अग्नि के गुण हैं । जो

तथा गरम जल अग्निं उल्लस्यकायशस्त्रं च. अग्निं प्रतितुं दुष्टं मन, पचनं चने कायानुं प्रवर्तनं ते लावशस्त्रं च, आशीनां द्वार पृथ्वीकायनीं समानं यशस्त्रं-समन्वा न्नेधये. (सू. ३)

प्रमादने वश यद्य उपभोगना निमित्ते अग्निकायना श्रुतेना विराधना करवा पाणाने ने क्षण थाय च-भणे च. ते क्षण कडे च. ‘जे’ इत्यादि.

मूलार्थ—जो प्रमादी पुरुष अग्निना अर्था-रांधनं विगेदेमां स्थित-छे ते येना माटे दंड कडेवाय च. (सू. ४)

टीकार्थ—विषय कषाय आदि प्रमादोंने आधीन यधने पुरुष शुद्धार्थी थाय च. अग्निकाय द्वारा थवापाणे उपकार तेने आर्द्ध शुद्ध कडेवामां आन्वे च. आ शुद्धने अर्था ते शुद्धार्थिक कडेवाय च. रांधन-पकावडं, अन्वाणुं करवुं आदि अग्निना शुद्ध छे.जे

सद्=सर्वदा यतैः=चरणकरणविषये निरतिचारतया यत्नवद्भिः, तथा-सदा=
सर्वकाले अप्रमत्तैः=विषयकपापादिवर्जितैः । एवमभूतैर्वीरैरग्निकायस्वरूपं
तदीयशस्त्रमशस्त्रं च दृष्टमित्यर्थः ।

ननु किं नामाग्निशस्त्रम् ? उच्यते-अन्युपमर्दकं शस्त्रम् । तत् किं-
स्वरूप ?-मित्तिचेत्, अत्रधेहि-अग्निशस्त्रं तावद् द्विधा-द्रव्य-भावभेदात् । तत्र
द्रव्यशस्त्रं त्रिविधम् स्वकायपरकायोभयकायभेदात् । स्वकायशस्त्रं-अग्निकायस्या-
ग्निकाय एव, यथा-तृणाग्निः, पर्णाग्निः शस्त्रम् । परकायशस्त्रं-धूलिरापश्च, आर्द्रश-
वनस्पतिः, त्रसाः प्राणिनश्च । उभयकायशस्त्रं तुपकरीपादिमिश्रोऽग्निरन्यस्याग्नेः,
सर्वदा चरणसत्तरी और करणसत्तरी में अतिचाररहित यतना करने वाले तथा सदैव विषय-
कपाय आदि प्रमाद से रहित वीर पुरुषोंने अग्निकाय के स्वरूप को तथा उसके शस्त्र और
अशस्त्र को देखा है ।

शङ्का—अग्निशस्त्र क्या है ?

समाधान—अग्नि की विराधना करने वाला शस्त्र अग्निशस्त्र कहलाता है ।
उसका स्वरूप क्या है ? सो इस प्रकार समझो-द्रव्य और भाव के भेद से अग्नि
शस्त्र दो प्रकार का है । इनमें से द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—स्वकाय-शस्त्र, परकाय-शस्त्र
और उभयकाय-शस्त्र । अग्निकाय का स्वकायशस्त्र अग्नि ही है, जैसे तिनके की अग्नि,
पत्तों की अग्नि का शस्त्र है । धूलि और पानी आदि अग्निकाय का परकायशस्त्र है ।
गोली वनस्पति भी परकायशस्त्र है और त्रस पाणी भी । तुप (छिलका) और करीब

सर्वदा चरणसत्तरी અને કરણસત્તરીમાં અતિચારરહિત યતના કરવાવાળા તથા
હંમેશાં વિષય-કપાય આદિ પ્રમાદથી રહિત વીર પુરુષોએ અગ્નિકાયના સ્વરૂપને
તથા તેના શસ્ત્ર અને અશસ્ત્રને જોયાં છે.

શંકા—અગ્નિ શસ્ત્ર એ શું છે ?

સમાધાન—અગ્નિની વિરાધના કરવાવાળું શસ્ત્ર તે અગ્નિશસ્ત્ર કહેવાય છે. તેનું
સ્વરૂપ કેવું છે ? તે આ પ્રમાણે સમજો-દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી અગ્નિશસ્ત્ર બે પ્રકારનાં
છે, તેમાંથી દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે. સ્વકાયશસ્ત્ર પરકાયશસ્ત્ર, અને ઉભયકાયશસ્ત્ર.
અગ્નિકાયનું સ્વકાયશસ્ત્ર અગ્નિજ છે. જેમ તણુખાની અગ્નિ, પાંદડાંની અગ્નિનું શસ્ત્ર છે.
પૂજા અને પાણી આદિ અગ્નિકાયનું પરકાયશસ્ત્ર છે. લીલી વનસ્પતિ પણ પરકાયશસ્ત્ર છે.
અને ત્રસ પ્રાણી પણ પરકાયશસ્ત્ર છે. તુપ અને ઇ.ણુ આદિથી મળેલી અગ્નિ

टीका—

मेधात्री=ग्रहणधारणादिगुणवान्, यद्वा-साधुमर्यादारक्षणे सावधानः, यद्वा-
हेयोपादेयविवेकनिपुणः, तम्=अग्निकायं, यद्वा तम्=अग्निशस्त्रसमारम्भं दण्डनाम-
फलप्रदं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन, प्रत्याख्यानपरिज्ञया हेयत्वेन पर्यालोच्य,
प्रतिजानीते-अहं=मिथ्यात्वादिमलिनान्तःकरणः प्रमादेन=विषयकपायादिप्रमादवशतः
यम्=अग्निशस्त्रसमारम्भं पूर्वम्=अज्ञानावस्थायाम्, अकार्षम्=कृतवान्, यत्तदोर्नित्य-
साकाङ्क्षत्वात् तम् इदानीम्=संप्रति प्रव्रज्यावस्थायाम् नो=नैव करिष्य इति
शेषः ॥ सू० ५ ॥

अथ सर्वथाऽग्निशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्र-
समारम्भे प्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह-‘लज्जमाणा’. इत्यादि ।

टीकार्थ—ग्रहण और धारणादिक गुणों से युक्त, अथवा साधुओं की मर्यादा की
रक्षा करने में सावधान, अथवा हेय और उपादेय के विवेक में निपुण पुरुष अग्निकाय अथवा
अग्निकाय के समारंभ को जानकर अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से उसे कर्मबंध का कारण समझकर और
प्रत्याख्यानपरिज्ञा से हेय समझकर इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हैं-मिथ्यात्व आदि विकारों के
वश होकर मैंने अज्ञानदशा में अग्निकाय का समारंभ किया था । वह समारंभ अब दीक्षा-
अवस्था में नहीं करूँगा ॥ सू० ५ ॥

अग्निशस्त्र का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारों तथा अग्निशस्त्र के समारंभ में
प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिङ्गी पुरुषों को अलग अलग कर के समझाते हैं-‘लज्जमाणा’. इत्यादि ।

टीकार्थ—अहं अने धारणादिक गुणोत्थी युक्त अथवा साधुओंकी मर्यादाकी
रक्षा करवाभां सावधान, अथवा हेय अने उपादेयना विवेकभां निपुण पुरुष अग्निकाय
अथवा अग्निकायना समारंभने लक्ष्मीने अर्थात् ज्ञपरिज्ञाथी तेने कर्मबंधतुं कारण
समझने अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी हेय-(त्याग्य) समझने आ प्रभावे प्रतिज्ञा
करे छे-मे अज्ञान दशाभां मिथ्यात्व आदि विकारोने वश यद्यने अग्निकायना समारंभ
कर्थी हते; ते समारंभ हुवे दीक्षा-अवस्थाभां नहीं करं. (सू. ५)

अग्निशस्त्रना सर्वथा त्याग करवावाणा अणुगारो तथा अग्निशस्त्रना समारंभभां
प्रवृत्ति करवावाणा द्रव्यलिङ्गी पुरुषोने अलग-अलग करीने समझते छे-‘लज्जमाणा’. इत्यादि.

‘ગુણસ્થિતઃ’ इति च्छाया, तेन गुणेषु=अग्निगुणेषु रन्धनपचनादिषु, शब्दादिषु वा स्थितः=आसक्तः, रन्धनाद्यर्थमग्निमुत्पादयति प्रज्वालयति यथाकथञ्चिदुपमर्दयतीत्यर्थः । स मनोवाक्कायस्य द्रुष्पणिधानेनाग्निशस्त्रसमारम्भकरणेन चाग्न्यादीनां प्राणिनां दण्डं प्रति कारणभूतत्वाद् दण्ड इति प्रोच्यते, कारणे कार्योपचाराद्, दण्डवत् प्राणिनां हिंसकतया दण्ड इति निन्धनाम्ना लोके प्रसिध्यतीति भावः ॥ सू० ४ ॥

एवं विज्ञायाग्निशस्त्रसमारम्भाद् विनिवर्तितव्यमित्याह--‘तं’ इत्यादि ।

मूलम्—

तं परिष्णाय मेधावी इयार्णि णो जमहं पुञ्चमकासी पमाणं ॥ सू० ५ ॥

छाया—

तं परिज्ञाय मेधावी इदानीं नो यदहं पूर्वमकार्षं प्रमादेन ॥ सू० ५ ॥

પુરુષ इन गुणों में अथवा शब्द आदि इन्द्रियविषयों में आसक्त है अर्थात् रांधने आदि के लिए अग्नि उत्पन्न करता है, जलाता है और किसी भी प्रकार उसका हनन करता है, वह पुरुष अपने मन, वचन, काय के दूषित व्यापार के कारण तथा अग्निशस्त्र का समारंभ करने के कारण अग्नि के जीवों के दंडका कारण होने से दण्ड कहलाता है। कारण में कार्य का उपचार करने से दंड के कारणभूत पुरुष को दंड कहते हैं। लोक में उस पुरुष की ‘दंड’ इस निन्दनीय नाम से प्रसिद्धि होती है ॥ सू० ४ ॥

अब बतलाते हैं कि पूर्वोक्त कथन जानकर अग्निशस्त्र के समारंभ से वचना चाहिए:— ‘ते’ इत्यादि ।

मूलार्थ—अग्निकाय अथवा अग्निकाय के समारंभ को जानकर बुद्धिमान् पुरुष निश्चय करे कि—प्रमाद के वश होकर मैंने पहले जो किया सो अब नहीं करूंगा ॥ सू० ५ ॥

પુરુષ આ ગુણોમાં અથવા શબ્દ આદિ ઇન્દ્રિયવિષયોમાં આસક્ત છે. અર્થાત્ રાંધવા આદિને માટે અગ્નિ ઉત્પન્ન કરે છે, બાળે છે, અને કોઈ પણ પ્રકારે તેનું હનન કરે છે, તે પુરુષ ચોતાના મન, વચન અને કાયાના દૂષિત વ્યાપારના કારણે તથા અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભ કરવાના કારણે અગ્નિના જીવોને દંડનું કારણ હોવાથી દંડ કહેવાય છે. કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી દંડના કારણભૂત પુરુષને પણ દંડ કહે છે. લોકમાં તે પુરુષની ‘દંડ’ આ નિન્દનીય નામથી પ્રસિદ્ધિ થાય છે. (સૂ. ૪)

હવે બતાવે છે કે—પૂર્વોક્ત કથન બાળીને અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભથી બચવું જોઈએ—‘તં’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—અગ્નિકાય અથવા અગ્નિકાયના સમારંભને બાળી બુદ્ધિમાન પુરુષ નિશ્ચય કરે કે—પ્રમાદના વશ થઈને મેં પહેલાં જે કયું છે તે હવે નહીં કરું. (સૂ. ૫)

सन्तोत्ति पश्य । इमे सूक्ष्मवाद्वाग्नििकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरण-
त्रियोगैरग्निकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेवा-
ग्नििकायजीवरक्षणररा महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तोद्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक्
=पृथग्भावेन पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते,
नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्—यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः द्रव्यभावमेदभिन्नैः शक्तैः=
अग्निकायशक्तैः, अग्निकर्मसमारम्भेण=अग्नेः कर्मसमारम्भः अग्निकर्मसमारम्भः=

अनगार हैं । ये सब सूक्ष्म और वादर अग्निकाय का समारंभ करने में भीत-डरने वाले हैं,
अस्त हैं, उद्विग्न हैं और तीन करण तीन योग से अग्निकाय के समारंभ के त्यागी हैं,
उन्हें देखो ।

इन से विपरीत दूसरे लोग 'हम अनगार हैं, हमीं अग्निकाय की रक्षा
में तत्पर हैं, महाव्रती हैं' इस प्रकार अभिमान के साथ प्रलाप करते हुए द्रव्यलिङ्गी हैं,
उन्हें अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये लोग साधुओं का तनिक भी कर्तव्य नहीं
करते और न गृहस्थकार्य का त्याग करते हैं ।

वे लोग तरह-तरह के द्रव्य और भाव रूप अग्निकाय के शक्तों से अग्निकर्म का

भीत-बधवान् छे, अस्त छे, उद्विग्न छे. अने त्रलुकरषु, त्रलुयोगधी अग्निकायना
समारंभना त्यागी छे, तेने लुओ.

अनाधी विपरीत (उपर कथा तेनाधी उलटो व्यवहार करनार) थीन लोक
'अमे अलुगार छीओ, अमे अग्निकायनी रक्षाभां तत्पर छीओ, महाव्रती छीओ.'
अे प्रभाओ अभिमाननी साथे प्रलाप करे छे ते द्रव्यलिङ्गी छे, तेने अलग समझे.

अलुगार लोवानुं अभिमान करवावाणा आ लोके साधुओना वरापणु कर्तव्यने
करता नथी अने गृहस्थनां कार्योना त्याग करता नथी.

ते लोके तरेह-तरेहना द्रव्य अने लापरूप अग्निकायना शक्तोधी अशिकर्भने

मूलम्—

लज्जमाणा पुटो पास, अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणिकम्मसमारंभेण, अगणिसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं विरूप-
रूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण, अग्निशस्त्रं समारंभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणिनो
विहिंसन्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

लज्जमानाः=अग्निकायसमारम्भे परमकरुणया द्रवीभूतहृदयतया संकुचिता-
त्मानः, अग्निशस्त्रसमारम्भपरित्यागिन इत्यर्थः, पृथक्=विभिन्नाः, केचित् प्रत्यक्ष-
ज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः

मूलार्थ—अग्निकाय के आरंभ में संकोच करने वालों को अलग समझो । और
'इम अनगार हैं' ऐसा कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा अग्निकर्म का समारंभ करने
वाले दूसरे (द्रव्यलिङ्गी, अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—अत्यन्त दया के कारण अग्निकाय के समारंभ में हार्दिक संकोच
करने वाले, इसी कारण अग्निशस्त्र के समारंभ के त्यागी अलग हैं, उन में कोई अवधि-
ज्ञानी हैं, कोई मनःपर्ययज्ञानी हैं, कोई केवलज्ञानी हैं । कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा

मूलार्थ—अग्निकायना आरंभमां संकोच करवावाणाने अलग समझे, अने
'अमे अणुगार छीअे' अे पणु कडेवावाणा नाना प्रकारनां शस्त्रे द्वारा अग्निकर्मने
समारंभ करवावाणा धीण (द्रव्यलिङ्गी) अनेक प्रकारनां प्राणीअेनी हिंसा करे छे. (सू. ६)

टीकार्थ—अत्यन्त दयाना कारणे अग्निकायना समारंभमां हार्दिक संकोच
करवावाणा, आव् कारणे अग्निशस्त्रना समारंभना त्यागी अलग छे—जूहा छे. अेमां
कोछ अवधिज्ञानी छे, कोछ मनःपर्ययज्ञानी छे, कोछ केवलज्ञानी छे. कोछ परोक्षज्ञानी
भावितात्मा अणुगार छे. ते सर्व सूक्ष्म अने पादर अग्निकायने समारंभ करवामां

आचारचिन्तामणि-टीका अध्या० १ उ. ४ मू. ६ अग्निकायसमारम्भकर्तृ निरूपणम् ५६३

सन्तीति पश्य । इमे सूक्ष्मवादाग्नििकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरण-
त्रियोगैरग्नििकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते तानवलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रवदमानाः 'वयमेवा-
ग्नििकायजीवरक्षणपरा महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक्
=पृथग्भावेन पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते,
नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति-'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्-यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः द्रव्यभावभेदभिन्नैः शक्तैः=
अग्नििकायशक्तैः, अग्निकर्मसमारम्भेण=अग्नेः कर्मसमारम्भः अग्निकर्मसमारम्भः=

अनगार हैं । ये सब सूक्ष्म और बादर अग्निकाय का समारंभ करने में भीत-डरने वाले हैं,
प्रस्त हैं, उद्विग्न हैं और तीन करण तीन योग से अग्नििकाय के समारंभ के त्यागी हैं,
उन्हें देखो ।

इन से विपरीत दूसरे लोग 'हम अनगार हैं, हमीं अग्नििकाय की रक्षा
में तत्पर हैं, महाव्रती हैं' इस प्रकार अभिमान के साथ प्रलाप करते हुए द्रव्यलिङ्गी हैं,
उन्हें अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये लोग साधुओं का तनिक भी कर्तव्य नहीं
करते और न गृहस्थकार्य का त्याग करते हैं ।

वे लोग तरह-तरह के द्रव्य और भाव रूप अग्नििकाय के शक्तों से अग्निकर्म का

भीत-भयवान् छे, प्रस्त छे, उद्विग्न छे. अने त्रलुकरलु, त्रलुयोगथी अग्नििकायना
समारंभना त्यागी छे, तेने लुओ.

अेनाथी विपरीत (उपर कछा तेनाथी उलटो व्यवहार करनारा) भीत लोके
'अमे अलुगार छीओ, अमे अग्नििकायनी रक्षाभां तत्पर छीओ, महाव्रती छीओ.'
अे प्रमाळु अभिमाननी साथे प्रलाप करे छे ते द्रव्यलिङ्गी छे, तेने अलग समझे.

अलुगार होवानुं अभिमान करवावाणा आ लोके साधुओना वरापलु कर्तव्यने
करता नथी अने गृहस्थनां कार्येना त्याग करता नथी.

ते लोके तरेह-तरेहना द्रव्य अने भावरूप अग्नििकायना शक्तोथी अभिकर्मने

अग्निं निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मवन्धनियन्धनसावद्यव्यापारस्तेन, इमम्=अग्निकायं विहिंसन्ति ।

अग्निकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु पृथ्वीजीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ती-
त्याह—'अग्निशस्त्र'—मित्यादि । अग्निशस्त्रम्=अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम्, तत् पूर्वोक्तप्रकारं
द्रव्यभावंभेदभिन्नं समारम्भमाणाः=अग्निकायं प्रति व्यापारयन्तः अन्यान् त्रसांश्च
विहिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा—'त्रयं पञ्चमहाव्रतधारिणः
सर्वारम्भपरित्यागिनः पृथ्वीजीवनिकायरक्षका अनगाराः स्मः' इति वदन्तो दण्डि-
शाक्यादयः सन्ति । ते चात्मानमनगारं प्रवदमाना नानगारगुणेषु लेशतोऽपि प्रवर्तन्ते ।

आरंभ कर के अर्थात् अग्नि के निमित्त से ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का कारणभूत सावद्य
व्यापार कर के अग्निकाय की हिंसा करते हैं ।

अग्निकाय की हिंसा में प्रवृत्त पुरुष पट्कायरूप समस्त जीवों की हिंसा करते हैं,
यही बतलाते हैं—अग्नि का घात करने वाले—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र का अग्नि के विषय में
प्रयोग करने वाले अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की तथा द्वीन्द्रिय
त्रस जीवों की हिंसा करते हैं ।

संसार में बहुत से द्रव्यलिङ्गी हैं । 'हम पञ्चमहाव्रतधारी, समस्त आरंभ का
त्याग करने वाले और पट्काय के रक्षक अनगार हैं' । इस प्रकार कहने वाले दंडी
शाक्य आदि हैं । वे अपने को अनगार कहते हुए भी लेशमात्र भी अनगार के गुणों में
प्रवृत्ति नहीं करते ।

आरंभ करीने अर्थात् अग्निना निमित्तार्थी ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंना कारणभूत
सावद्य व्यापार करीने अग्निकायनी हिंसा करे छे.

अग्निकायनी हिंसाभां प्रवृत्त पुरुष पट्कायरूप समस्त जीवोनी हिंसा करे छे.
अने भतावे छे—अग्निना घात करवावाणा—द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्रने अग्निना
विषयभां प्रयोग करवावाणा अग्निकाय साथे जीव पृथ्वीकाय आदि स्थावरानी तथा
द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवोनी हिंसा करे छे.

संसारभां धर्षणं द्रव्यलिङ्गी छे. 'अने पञ्चमहाव्रतधारी समस्त आरंभने
त्याग करवावाणा अने पट्कायना रक्षक अणुगार छीअे.' आ प्रकारे कहेवावाणा दंडी
शाक्य आदि छे. ते योताने अणुगार कहेता थका पणु लेशमात्र अणुगारना गुणोभां
प्रवृत्ति करता नथी.

शाक्यादयः पचन-पाचन-प्रतापन-प्रकाशार्थमग्निकर्मसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति च, तेन पट्कायजीवविराधका भवन्ति ।

दण्डिनोऽपि-‘ वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनवचनाराधका अनगाराः स्मः ’ इत्यादि प्रवृत्तमानाः साध्वभासाः सावद्यमुपदिशन्तः शास्त्रनिषिद्धमप्यग्निकर्मसमारम्भं कारयन्ति ।

दृश्यन्ते हि-शास्त्रव्याख्यानादौ देवकुलादौ प्रतिमाप्रतिश्रयादिप्रति-
ष्ठादौ च धूपदीपहवनानादिभिरग्निकर्मसमारम्भं कारयन्ती दण्डिनः एवं कथयन्ति
च-स्नानादिना पुष्पैर्धूपैश्च पायसापूपलड्डकादिभिर्विधिवर्ने वैद्यैश्च प्रतिमापूजा

शाक्य आदि पचन, पाचन, तापन तथा प्रकाश आदि के लिए अग्निकर्म का समारंभ करते हैं, कराते हैं और करते हुए का अनुमोदन करते हैं, अतः वे पट्काय के विराधक हैं ।

दण्डी कहते हैं-‘ हम पंचमहाव्रतधारी हैं, जिनवचन के आराधक अनगार हैं ’ । ये साध्वभास सावय का उपदेश देते हैं और शास्त्रनिषिद्ध अग्निकर्म का समारंभ करवाते हैं ।

शास्त्र के व्याख्यान आदि में, देवकुल आदि में, प्रतिमा प्रतिश्रय और प्रतिष्ठा आदि में धूप दीप और हवन आदि द्वारा अग्निकर्म का आरंभ करवाते हुए दंडी देखे जाते हैं । वे ऐसा कहते हैं-‘ स्नान कराकर पुष्पों से, धूप से, खीर से, पूसा से, तथा लड्डू आदि से, तथा विविध प्रकार के नैवेद्य से प्रतिमा की पूजा करनी

शाक्य आदि पचन, पाचन, तापन तथा प्रकाश आदि भाटे अग्निकर्मने समारंभ करे छे, करावे छे अने करनारने अनुमोदन आवे छे. तेही ते पट्कायना विराधक छे.

दंडी कहे छे के:-‘ अमे पंचमहाव्रतधारी छीअे, जिनवचनना आराधक अणुगार छीअे. ’ अे साध्वालास सावधना उपदेश आवे छे. अने शास्त्रनिषिद्ध अग्निकर्मने समारंभ करावे छे.

शास्त्रना व्याख्यान आदिमां, देवकुल आदिमां, प्रतिमा प्रतिश्रय तथा प्रतिष्ठा आदिमां धूप, दीप अने हवन आदि द्वारा अग्निकर्मने आरंभ करावता छैय तेवा दंडी नेवामां आवे छे. ते अेअे कहे छे के:-स्नान करावीने, पुष्पायी, धूपयी, खीरयी, मालपूवा तथा लड्डू आदिथी तथा विविध प्रकारनां नैवेद्यथी प्रतिमानां पूजा करवी नेधअे. जिन

कर्तव्येत्यादि । पुनः—जिनस्य वामपार्श्वे धूपः स्थापनीयः, दक्षिणपार्श्वे घृतपूर्णः प्रज्वालितः प्रदीपः स्थाप्यः, पायसापूपघृतपूरलड्डकादि नैवेद्यमपि पुतः स्थापनीयमित्यादि । तच्च विनाग्निर्कर्मसमारम्भं नोपपद्यते । ओषध्यर्थं काथादि, भुण्ठिपाकादि, पातुमुष्णोदकं, भोक्तुं विविधाहारं च कारयन्तीति ॥ सू० ६ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद—‘तत्थ’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिष्णा पवेइया । इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-
माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेवे अगणिसत्थं

चाहिए । जिन भगवान् के चाई (डावी) ओर धूप रखना चाहिए और दाहिनी (जिमणी) ओर घी से भरा जलता दीप रखना चाहिए । सामने खीर, मालपूआ, वेवर और लड्डू आदि नैवेद्य रखना चाहिए । ये सब अग्निर्कर्म का समारंभ किये बिना नहीं हो सकते । वे लोग ओषधि के लिए काथ बगैरह, सौंठ का पाक आदि, पीने के लिए गर्म जल और खाने के लिए विविध प्रकार के आहार बनवाते हैं ॥ सू० ६ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘तत्थखलु’ इत्यादि ।

मूलार्थ—इस विषय में भगवान् ने बोध दिया है । इसी जीवन के लिए, वन्दन, मानना और पूजा के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, तथा दुःखों का निवारण करने के लिए वह स्वयं अग्निशल का आरंभ करता है, दूसरों से अग्निशलका

लगवाननी उणी तरइ धूप राअवेो जेठंअे. अने जभएी तरइ धीने लरेलेो षणतेो. दीपक राअवेो जेठंअे. सामे भीर, मालपूआ, वेवर अने लाडुं आदि नैवेद्य राअवुं जेठंअे. अे सव अग्निर्कर्मना समारंल कयां विना थर् शकतां नथी. ते लोक औषधी माटे कवाथ वगेरे; सुंकेना पाक आदि, पीवा माटे गरम जल अने पावा माटे विध-विध प्रकारना आहार षनावरावे छे. (सू. ६)

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—‘तत्थ खलु’ इत्यादि.

मूलार्थ—आ विषयमां लगवाने जोध आय्ये छे. आ लवन माटे वंदन, मानन, अने पूजने माटे, जन्म-मरणधी सुकत थवा माटे तथा दुःखोनुं निराकरण करवा माटे ते पोते अग्निशलने आरंल करे छे, भीम पासे अग्निशलने आरंल करावे छे, अने

समारंभइ, अण्णेहिं वा अगणिसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा अगणिसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दनमानन-
पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतियातहेतुं स स्वयमेव अग्निशस्त्रं समारभते,
अन्यैर्वा अग्निशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा अग्निशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति,
तत् तस्याहिताय, तत् तस्यावोधये ॥ सू० ७ ॥

टीका—

तत्र=अग्निकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यग्बोधः खलु
प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवने परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति
भगवता प्रतियोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनायाग्निकायमुपमर्दयती ?—त्याह—‘अस्य चैव जीवितस्ये’

आरंभ करवाता है और अग्निशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है, सो यह उस के अहित के लिए है, यह अबोधि के लिए है ॥ सू० ७ ॥

टीकार्थ—अग्निकाय के समारंभ में श्री महावीरने सम्यक् उपदेश दिया है । आशय यह है कि—कर्मबंध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञाका आश्रय अवश्य लेना चाहिए, ऐसा उपदेश दिया है ।

उपभोगद्वार—

किस प्रयोजन से लोग अग्निकाय की हिंसा करते हैं यह बतलाते हैं—इसी

अग्निशस्त्रेणो आरंभ करवावाणा भीजने अनुमोदन करे छे. ते जेना (पैताना)
अहित भाटे छे, ते अबोधिने भाटे छे. (सू. ७)

टीकार्थ—अग्निकायना समारंभमां श्री महावीरि सम्यक् उपदेश आप्थे छे.
आशय जे छे के—कर्मबंधना नाश करवा भाटे छेवे परिज्ञाने आश्रय अवश्य लेवे।
जेठ जे. जेवे उपदेश आप्थे छे.

उपभोग द्वार—

क्या प्रयोजनकी लोक अग्निकायनी हिंसा करे छे. जे जतावे छे—आ क्षणक्षण

त्यादि । अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थं प्रकाशकरणार्थम्, ओदनादिरन्धनार्थं, धूमयानादिगतिसिद्धयर्थं चेत्यर्थः । तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय-परिवन्दनं=प्रशंसा तदर्थं, यथा-अग्नियन्त्रेण 'आतिशवाजी' इति-भाषामसिद्धे क्षणश्वरस्फुल्लिङ्गवृष्ट्यादौ, माननं=जनसत्कारः तदर्थं, यथा-भूपादीन प्रसादयितुं दीपमालादीपवृक्षनिर्माणादौ । पूजनं=वह्नारत्नादिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-देवप्रतिमाद्यर्थं धूपदीपारात्रिकरुकरणादौ । तथा-जातिमरणमोचनाय=जन्म-मरणबन्धमोचनार्थं, यथा-हवनादौ, दुःखप्रतिघातहेतुम्=वातरोगापनयनार्थं शीतापनोदनार्थं ज्वरविषुचिकादिनिवृत्त्यर्थं च दहनप्रतापनादौ, स=नश्वरजीवन-सुखाद्यर्थी स्वयमेव अग्निशस्त्रम्=अग्न्युपमर्दकं द्रव्यभावशब्दं समारभते=व्यापारयति ।

क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, प्रकाश करने के लिए, चावल आदि पकाने के लिए, रेल आदि चलाने के लिए, तथा अपनी प्रशंसा के लिए, जैसे-अग्नियन्त्र से क्षणविनश्वर चिनगारियाँ बरसाने के लिए अर्थात् 'आतिशवाजी' के लिए जन-सत्कार के लिए जैसे-राजा बगैरह को प्रसन्न करने के उद्देश्य दीपमालिका जलाना या दीपकों के वृक्ष की रचना करना, तथा वह्न, रत्न आदि पुरस्कार पाने के लिए, जैसे-देवप्रतिमा आदि के लिए धूप-दीप आदि करना । तथा जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, जैसे हवन आदि में, दुःखों का प्रतीकार करने के लिए, जैसे-वातरोग हटाने के लिए, ठंड दूर करने के लिए तथा ज्वर एवं विषुचिका दूर करने के लिए डाँभ देना या तपाना आदि कार्य करने में । इन सब प्रयोजनों के लिए इस जीवन के सुख का अर्थी पुरुष स्वयं द्रव्य

लवनना सुभ भाटे, प्रकाश करवा भाटे, शोभा आदि रांधवा भाटे, रेल आदि यज्ञाववा भाटे तथा पोतानी प्रशंसा भाटे, जेमके-अग्नियन्त्रथी क्षणविनश्वर चिन-गारीयो बरसाववा भाटे. अर्थात् 'आतशभा' भाटे, जनसत्कार भाटे, जेम-राज्य वगेरेने प्रसन्न करवाना उद्देश्यथी दीपमालिका जगाववी अथवा दीपकोना वृक्षनी रचना करवी, तथा वह्न, रत्न आदि पुरस्कार प्राप्त करवा भाटे जेम-देवप्रतिमा आदि भाटे धूप-दीप आदि करवुं, तथा जन्म-मरणथी मुक्त थवा भाटे जेम-हवन आदिमां, दुःखोना प्रतिकार करवा भाटे जेम-वातरोग हठाववा भाटे, ठंडी दूर करवा भाटे तथा ज्वर-ताप अने कोलेरा दूर करवा भाटे डाँभवुं-आदि कार्य करवामां, आ सब प्रयोजनो भाटे आ लवनना सुभना अर्थी पुरुष पोते द्रव्यभाव रूप अग्निशस्त्रो

अन्यैर्वा अग्निशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति । अन्यान् वा अग्निशस्त्रं समारम्भमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति । तत्=अग्निकायसमारम्भणं, तस्य=अग्निकायसमारम्भणं कुर्वतः, कारयितुः, अनुमोदयितुश्च, अहिताय भवति, तथा तत्, तस्य अयोधये=सम्यक्त्वात्त्वाभाय, भवति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपेऽग्निकायजीवस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह - 'से तं.' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संयुज्जमाणे आयाणीयं समुद्राय सोचा खलु भगवओ अणगाराणं वा अंतिए, इहमेगेसि णायं भवइ-एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरण, इत्थं गदिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं

भावरूप अग्निशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से आरंभ करवाता है और आरंभ करने वालों को अनुमोदना करता है । वह अग्निकाय का आरंभ, करने, कराने और अनुमोदन करने वाले के अहित और सम्यक्त्व की अप्राप्ति के लिए होता है ॥ सू० ७ ॥

जिस ने तीर्थङ्कर आदि से अग्निकाय का स्वरूप समझ लिया है वह इस प्रकार विचार करता है:-'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—जो पुरुष तीर्थङ्कर भगवान् या उनके अनुगारों से उपदेश सुनकर आरित्र अङ्गीकार कर के विचरता है, वह इस प्रकार सोचता है—संसार में किन्हीं-किन्हीं को ही यह ज्ञान होता है कि—यह ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है ।

आरंभ करे छे. जीना पासे आरंभ करावे छे, अने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आये छे—आ अग्निकायने आरंभ करनार, करावनार अने करनारने अनुमोदन आपनारना अहित अने सम्यक्त्वनी अप्राप्ति भाटे थाय छे. (सू. ७)

नेछे तीर्थंकर आदि पासेथी अग्निकायनुं स्वरूप समझ लीधुं छे, ते आ प्रभाछे विचार करे छे:-'सेतं' इत्यादि.

मूलार्थ—जे पुरुष तीर्थंकर भगवान् अथवा ते तेमना अणुगारे पासेथी उपदेश सांभली आरित्र अङ्गीकार करीने विचरे छे—ते आ प्रभाछे विचारे छे छे:-संसारमां कोठ-कोठनेअ आ नलुवामां डाय छे छे—आ ग्रंथ छे, आ मोह छे, आ मार-मृत्यु छे.

त्यादि । अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थं प्रकाशकरणार्थम्, ओदनादिरन्धनार्थं, धूमयानादिगविसिद्धयर्थं चेत्यर्थः । तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय-परिवन्दनं=प्रशंसा तदर्थं, यथा-अग्नियन्त्रेण 'आतिशयाजी' इति-भाषामसिद्धे क्षणनश्वरस्फुल्लिङ्गवृष्ट्यादौ, माननं=जनसत्कारः तदर्थं, यथा-भूपादीन् प्रसादयितुं दीपमालादीपवृक्षनिर्माणादौ । पूजनं=वस्त्ररत्नादिपुरस्कारलामस्तदर्थं, यथा-देवप्रतिमाद्यर्थं धूपदीपारात्रिककरणादौ । तथा-जातिमरणमोचनाय=जन्म-मरणबन्धमोचनार्थं, यथा-हवनदौ, दुःखप्रतिघातहेतुम्=घातरोगापनयनार्थं शीतापनोदनार्थं ज्वरत्रिपूचिकादिनिवृत्त्यर्थं च दहनप्रतापनादौ, स=नश्वरजीवन-सुखाद्यर्थी स्वयमेव अग्निशस्त्रम्=अग्न्युपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं समारभते=व्यापारयति ।

क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, प्रकाश करने के लिए, चावल आदि पकाने के लिए, रेल आदि चलाने के लिए, तथा अपनी प्रशंसा के लिए, जैसे-अग्नियन्त्र से क्षणविनश्वर चिनगारियाँ बरसाने के लिए अर्थात् 'आतिशयाजी' के लिए' जन-सत्कार के लिए जैसे-राजा बगैरह को प्रसन्न करने के उद्देश्य दीपमालिका जलाना या दीपकों के वृक्ष की रचना करना, तथा वस्त्र, रत्न आदि पुरस्कार पाने के लिए, जैसे-देवप्रतिमा आदि के लिए धूप-दीप आदि करना । तथा जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, जैसे हवन आदि में, दुःखों का प्रतीकार करने के लिए, जैसे-घातरोग हटाने के लिए, ठंड दूर करने के लिए तथा ज्वर एवं विपूचिका दूर करने के लिए डाँभ देना या तपाना आदि कार्य करने में । इन सब प्रयोजनों के लिए इस जीवन के सुख का अर्थात् पुरुष स्वयं द्रव्य

लुपनना सुभ भाटे, प्रकाश करवा भाटे, चोथा आदि रांधवा भाटे, रेल आदि चलाववा भाटे तथा चोतानी प्रशंसा भाटे, जेमके-अश्विधंत्रथी क्षणविनश्वर चिन-गारियाँ बरसाववा भाटे. अर्थात् 'आतिशयाजी' भाटे, जनसत्कार भाटे, जेम-शब्द बगेरेने प्रसन्न करवाना उद्देश्यथी दीपमालिका जगाववी अथवा दीपकोना वृक्षनी रचना करवी, तथा वस्त्र, रत्न आदि पुरस्कार प्राप्त करवा भाटे जेम-देवप्रतिमा आदि भाटे धूप-दीप आदि करवुं, तथा जन्म-मरणथी मुक्त थवा भाटे जेम-हवन आदिभां, दुःखोना प्रतिकार करवा भाटे जेम-घातरोग हटाववा भाटे, ठंडी हर करवा भाटे तथा ज्वर-ताप अने कोलेरा हर करवा भाटे डाँभवुं-आदि कार्य करवाभां, आ सब प्रयोजनो भाटे आ लुपनना सुभना अर्थात् पुरुष चोते द्रव्यभाव रूप अग्निशस्त्रने

संजातसम्यग्बोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?
—त्याकाङ्क्षायामाह—‘एष खलु ग्रन्थः’ इत्यादि ।

एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=ग्रन्थते=बध्यतेऽनेनेति-
ग्रन्थः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् कारणभूतोऽग्निशस्त्रसमारम्भ एव
कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः
मोहः=विपर्यासः=अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-
एष नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थः=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि
पुनःपुनरेतदर्थमेव, लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृह्यः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृह्यः=

जिन्हें सम्यग्ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है, उन आत्मारथी पुरुषों को ही विदित होता है ।
क्या विदित होता ? सो कहते हैं—‘यह ग्रंथ है’ इत्यादि ।

यह अग्निशस्त्र का समारंभ निश्चय ही आठ प्रकार का कर्मबंध है । कारण में कार्य
का उपचार करने से अग्निशस्त्र के समारंभ को ही कर्मबंध कहा है, वास्तव में यह समारंभ
कर्मबन्ध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समजना चाहिए । तथा यह अग्निसमारंभ मोह
है—विपर्यास है—अज्ञान है ।

तथा यह समारंभ मृत्युरूप है—निगोद आदि मरणरूप है । और यह नरक है—नरक
को दश प्रकार की यातनाओं का स्थान है ।

कर्मबंध, मोह, मरण और नरक रूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी

नेने सम्यग्ज्ञान અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ ગયા છે, તે આત્માર્થી પુરુષોનેજ જાણવામાં
હોય છે. શું જાણવામાં હોય છે? તે કહે છે—‘આ ગ્રંથ છે.’ આદિ,

આ અગ્નિશસ્ત્રનો આરંભ નિશ્ચય-નક્કીજ આઠ પ્રકારના કર્મબંધ છે, કારણમાં
કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભનેજ કર્મબંધ કહ્યો છે. વાસ્તવિક રીતે
આ સમારંભ કર્મબંધનું કારણ છે. આ પ્રમાણે આગળ પણ સમજાવેલું છે. તથા
આ સમારંભ મોહ છે—વિપર્યાસ—અજ્ઞાન છે, તથા આ સમારંભ મૃત્યુરૂપ છે—નિગોદ
આદિ મરણરૂપ છે. અને આ નરક છે—નરકની દસ પ્રકારની યાતનાઓનું સ્થાન છે.

કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ

अग्निकर्मसमारम्भेण अग्निसत्यं समारम्भमाणे अण्णे अणेग्रह्वे पाणे विहितम्
॥ सू० ८ ॥

छाया—

स तत् संवृध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा
अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष
खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण
अग्निशस्त्रं समारम्भमाणः अन्मान् अनेकरूपान् प्राणान् विहितस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा
अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निश्चय आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावधयोगवितरितरूपं चारित्रं
समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, संवृध्यमानः=अहितावोधि-
जनकत्वेन विज्ञाता भवति ।

स हि एवं विभावयति—इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेश-

गृद्ध लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरंभ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता
हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश
सुनकर सर्वसावधयोग के त्यागरूप चारित्र को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के
समारंभ को अहितकर और अवोधिकर समझ लेता है ।

वह इस प्रकार सोचता है—इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रन्थो के उपदेश से

आ नरक छे. गृद्धलोक नाना प्रकारना शस्त्रेथी अग्निकर्माने समारंभ करीने अग्नि-
शस्त्रेना व्यापार करता थका अनेक प्रकारना प्राणीओनी हिंसा करे छे. (सू. ८)

टीकार्थ—जे पुरुष भगवान तीर्थङ्कर अथवा तेमना अणुगारोनी समीप
उपदेश सांलणीने सर्वसावधयोगना त्यागरूप चारित्रोनी स्वीकार करीने विचरै छे. ते
अग्निकायना समारंभने अहितकर अने अवोधिकर समझ ले छे.

ते आ प्रभाह्ये विचारै छे कः—आ मनुष्य लोकमां श्रमण निर्ग्रन्थोना उपदेशथी

સમારમ્ભેણ=અન્યુપમર્દનરૂપસાવધવ્યાપારેણ, ઇમમ્=અગ્નિકાયં વિહિનસ્તિ । તંથા અગ્નિશક્ત્વં સમારમમાણઃ=વ્યાપારયન્ અન્યાન્=પૃથિવીકાયાદીન્, અનેકરૂપાન્=ત્રસાન્ સ્થાવરાંશ્ચ, પ્રાણાન્=પ્રાણિનો, વિહિનસ્તિ=ઉપમર્દયતિ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

અગ્નિશક્ત્વં સમારમમાણા અનેકવિધાન્ જીવાન્ કથં વિહિસન્તિ ? તત્પતિ-વોષયિતું શ્રીસુધર્મા સ્વામી પ્રાહ-‘ સે વેમિ ’. ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

સે વેમિ-સંતિ પાણા પુઢ્વીનિસ્સિયા તળનિસ્સિયા પત્તનિસ્સિયા કઢ્ઢ-નિસ્સિયા ગોમયનિસ્સિયા કયવરનિસ્સિયા, સંતિ સંપાદ્મા પાણા આહ્ચ સંપયંતિ, અગ્નિં ચ સ્વલુ પુદ્ગા ઇમે સંઘાયમાવજ્જંતિ, જે તત્થ સંઘાયમાવજ્જંતિ,

સાવધ વ્યાપાર કર કે અગ્નિકાય કી હિંસા કરતા હૈ ઓર અગ્નિકાય કા આરંભ કરતા હુઆ અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ નાના પ્રકાર કે સ્થાવર ઇવં ત્રસ પ્રાણિયો કા ઘાત કરતા હૈ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

અગ્નિશક્ત્વ કા આરંભ કરને વાલે અનેક પ્રકાર કે જીવો કી વિરાધના કિસ પ્રકાર કરતે હૈ । યહ સમજાને કે લિષ્ટ શ્રીસુધર્મા સ્વામી કહતે હૈ:-‘ સે વેમિ. ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ--વહી મૈ કહતા હૈ--જીવ પૃથિવી કે આશ્રિત હૈ, તૃણ કે આશ્રિત હૈ, પત્તાં કે આશ્રિત હૈ, કાષ્ટ કે આશ્રિત હૈ ગોવર કે આશ્રિત હૈ, કચરે કે આશ્રિત હૈ; સંપાતિમ જીવ અચાનક આકર અગ્નિ મૈ પડ જાતે હૈ, કોઈ-કોઈ અગ્નિ કો લૂકર સિકુડ

વ્યાપાર કરીને અગ્નિકાયની હિંસા કરે છે. અને અગ્નિકાયનો આરંભ કરવા સાથે અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ નાના પ્રકારના ત્રસ જીવો એ પ્રમાણે સ્થાવર પ્રાણીઓનો ઘાત કરે છે. (સ. ૮)

અગ્નિશક્ત્વનો આરંભ કરવાવાળા અનેક પ્રકારના જીવોની વિરાધના કયા પ્રકારે (કેવી રીતે) કરે છે? તે સમજાવવા માટે, શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે:-‘ સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ--તે હું કહું છું--જીવ પૃથ્વીના આશ્રિત છે. તૃણને આશ્રિત છે. પત્તાં-પાંદડાને આશ્રિત છે. લાકડાંને આશ્રિત છે. છાણને આશ્રિત છે. કચરાને આશ્રિત છે. સંપાતિમજીવ અચાનક આવીને અગ્નિમાં પડી નાશ છે. જે સંકેચાર્થ નાશ છે. તે

भोगाभिलाषी लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मबन्धमोहमरणनरकार्य-
मेव प्रवर्तते इति शेषः ।

अयं भावः-भोगाभिलाषी लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूज-
नार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चाग्निशस्त्रसमारम्भं करोति, तत्फलं स्व
कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपमेव लभते, तस्मादाग्निशस्त्रसमारम्भस्य तदेव फलं
बोध्यमिति ।

‘लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाघर्धमेव प्रवर्तते’ इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ?
इति जिज्ञासायामाह-‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=पूर्वोक्तप्रकारैः अग्निकर्म-

जीव वार-वार इसी की इच्छा करते हैं । अथवा भोगों का अभिलाषी संसारी जीव ईश
कर्मबंध, मोह मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्त होते हैं ।

तात्पर्य यह है-भोगों का अभिलाषी लोक शरीर आदि का पोषण करने के
लिए, बंदना, मानना और पूजा के लिए जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए और दुःख का
प्रतीकार करने के लिए अग्निशस्त्र का समारंभ करता है और फलस्वरूप कर्मबंध, मोह,
मरण और नरक रूप फल पाता है । अत एव अग्निशस्त्र के समारंभ का फल वही बंध
आदि समझना चाहिए ।

‘लोक वार-वार कर्मबंध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करता है’ यह जो कहा है सो
कैसे ज्ञात हुआ ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—

क्यों कि वह नाना प्रकार के पूर्वोक्तशस्त्रों से अग्नि की विराधना करने वाला

અજ્ઞાની છવ વારંવાર તેનીજ ઈચ્છા કરે છે. અથવા-લોગોના અભિલાષી સંસારી
છવ આ કર્મબંધ, મોહ, મરણ અને નરક માટેજ પ્રવૃત્ત થાય છે.

તાત્પર્ય એ છે-લોગોના અભિલાષી માણસો શરીર આદિનું પોષણ કરવા માટે
વંદના, માનના અને પૂજાને માટે, જન્મમરણથી મુક્ત થવા માટે અને દુઃખનો
પ્રતિકાર કરવા માટે અગ્નિશસ્ત્રનો સમારંભ કરે છે અને ફલસ્વરૂપ કર્મબંધ, મોહ,
મરણ અને નરકરૂપ ફલને પ્રાપ્ત કરે છે. એટલા માટે અગ્નિશસ્ત્રના સમારંભનું ફલ
તે બંધ આદિ સમજવાં જોઈએ.

લોક વાર-વાર કર્મબંધ વગેરે માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે. એવું જો કહ્યું તે કેવી
રીતે જાણવામાં આવ્યું ? આ પ્રમાણે જિજ્ઞાસા થવાથી કહે છે—

કેમકે તે નાના પ્રકારના પૂર્વોક્ત શસ્ત્રોથી અગ્નિની વિરાધના ... સાધ

સમારમ્ભેણ=અન્યુપમર્દનરૂપસાવધવ્યાપારેણ, ઇમમ્=અગ્નિકાયં વિહિનસ્તિ । તંયા અગ્નિશસ્ત્રં સમારમ્ભમાણઃ=વ્યાપારયન્ અન્યાન્=પૃથિવીકાયાદીન્, અનેકરૂપાન્=ત્રસાન્ સ્થાવરાંથ, પ્રાણાન્=પ્રાણિનો, વિહિનસ્તિ=ઉપમર્દયતિ ॥ સૂ. ૮ ॥

અગ્નિશસ્ત્રં સમારમ્ભમાણા અનેકવિધાન્ જીવાન્ કથ વિહિસન્તિ ? તત્પતિ-વોષયિતું શ્રીસુધર્મા સ્વામી પ્રાહ-‘ સે વેમિ ’. इत्यादि ।

મૂલ્મ—

સે વેમિ-સંતિ પાણા પુઢવીનિસ્સિયા ત્પનિસ્સિયા પત્તનિસ્સિયા કઢ-નિસ્સિયા ગોમયનિસ્સિયા કયવરનિસ્સિયા, સંતિ સંપાદ્મા પાણા આહ્ચ સંપયંતિ, અગ્નિ ચ સ્વલુ પુદ્દા એ સંધાયમાવજ્જંતિ, જે તત્પ સંધાયમાવજ્જંતિ,

સાવધ વ્યાપાર કર કે અગ્નિકાય કી હિસા કરતા હૈ ઓર અગ્નિકાય કા આરંમ કરતા હુઆ અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ નાના પ્રકાર કે સ્થાવર ંવં ત્રસ પ્રાણિયોં કા ઘાત કરતા હૈ ॥ સૂ. ૮ ॥

અગ્નિશસ્ત્ર કા આરંમ કરને વાલે અનેક પ્રકાર કે જીવોં કી વિરાધના કિસ પ્રકાર કરતે હૈ । યહ સમજાને કે લિષ્ટ શ્રીસુધર્મા સ્વામી કહતે હૈ:—‘ સે વેમિ. ’ इत्यादि।

મૂલ્મર્થ—વહી મૈં કહતા હૈ—જીવ પૃથિવી કે આશ્રિત હૈં, ત્વળ કે આશ્રિત હૈ, પતોં કે આશ્રિત હૈં, કાષ્ટ કે આશ્રિત હૈં ગોવર કે આશ્રિત હૈં, કચરેં કે આશ્રિત હૈં; સંપાતિમ જીવ સ્વાનક આકર અગ્નિ મૈં પઢ જાતે હૈં, કોઈ—કોઈ અગ્નિ કો છૂકર સિકુઢ

વ્યાપાર કરીને અગ્નિકાયની હિસા કરે છે. અને અગ્નિકાયને આરંભ કરવા સાથે અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ નાના પ્રકારના ત્રસ જીવોં એ પ્રમાણે સ્થાવર પ્રાણીઓને ઘાત કરે છે. (સૂ. ૮)

અગ્નિશસ્ત્રને આરંભ કરવાવાળા અનેક પ્રકારના જીવોની વિરાધના કયા પ્રકારે (કેવી રીતે) કરે છે ? તે સમજાવવા માટે, શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે:—‘ સે વેમિ ’ इत्यादि।

મૂલ્મર્થ—તે હું કહું છું—જીવ પૃથ્વીના આશ્રિત છે. ત્વળને આશ્રિત છે. પત્તાં-પાંદડાને આશ્રિત છે. લાકડાંને આશ્રિત છે. છાજીને આશ્રિત છે. કચરાને આશ્રિત છે. સંપાતિમ જીવ અચાનક આવીને અગ્નિમાં પડી નાથ છે. જે સંકેતાર્થ નાથ છે. તે

ते तत्थ परियावज्जंति जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उदायंति ॥ सू० ९ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि—सन्ति प्रागाः पृथिवीनिश्रिताः तृणनिश्रिताः पत्रनिश्रिताः काष्ठनिश्रिताः गोमयनिश्रिताः कचवरनिश्रिताः, सन्ति संपातिमाः प्राणाः आहत्य संपतन्ति, अग्निं च खलु स्पृष्टा एके संघातमापद्यन्ते, ये तत्र संघातमापद्यन्ते ते तत्र पर्यापद्यन्ते, ये तत्र पर्यापद्यन्ते ते तत्रापद्रावन्ति ॥ सू० ९ ॥

टीका—

तद्=अग्निकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रणश्यन्ति, तद् ब्रवीमि=कथयामि, पृथिवीनिश्रिताः=पृथिवीरूपं कायमाश्रित्य वर्तमानाः पृथिवीकायिका इत्यर्थः । 'पृथिवीनिश्रिताः' इत्युपलक्षणम्, तेन तदाश्रिताः कृमि-कुन्धु-पिपी-लिका-भुजङ्गम-मण्डूक-वृश्चिक-कर्कटकादयो गृह्यन्ते । तथा च पृथिवीकायिकास्तदाश्रितास्त्रसाश्रित्यर्थः, वृक्षलतादयश्च । तथा-तृणनिश्रिताः=वनस्पतिकायिकाः,

जाते हैं; जो सिकुड जाते हैं वे मूर्छित हो जाते हैं और जो मूर्छित हो जाते हैं वे मर भी जाते हैं ॥सू० ९॥

टीकार्थ—अग्निकाय की हिंसा से बहुत प्रकार के जीवों का घात होता है, सो मैं कहता हूँ—पृथिवी के सहारे रहने वाले जीव पृथिवीकायिकों के अतिरिक्त और भी बहुत से हैं । जैसे—कृमि, कुन्धुवा, विउंटी, साप, मंडक, विच्छु, कैकडा, आदि । अतः पृथिवी आश्रित का अर्थ यहां पृथिवीकायिक स्थावर तथा त्रस जीव लेना चाहिए । वृक्ष और वेल आदि भी इसी में सम्मिलित है । तथा तृण-आश्रित वनस्पतिकाय के

मूर्च्छित अर्थ नय छे, अने जे मूर्छित थाय छे ते मरी पणु नय छे. (सू. ९)

टीकार्थ—अग्निकायनी हिंसाथी वधुण प्रकारना एवोनो घात थाय ते हुं कहुं भुं-पृथ्वीना आश्रये रहवावाणा एव पृथ्वीकायेनी साथे भीण पणु वधुण छे. जेभ कृमि कुंधवा, कीडीओ, साप, देउकां, पींछी केकडा आदि. जे कारणुथी पृथ्वीआश्रितनो अर्थ अहिं पृथ्वीकायिक स्थावर तथा त्रस एव लेवा नेछंजे. वृक्ष अने वेल-वेल आदि पणु तेमां सम्मिलित छे. तथा तृण-आश्रित वनस्पतिकायना एव अने तृणना आश्रये रहवा-

तृणमाश्रित्वावस्यायिनः मशककीटतृणजलौकादयश्च, तथा-पत्रनिथिताः=वनस्पति-
कायिकाः पत्रमाश्रित्य निवासिनः पिपीलिकाभेदाः 'घोडन' इति मगधदेशे प्रसिद्धाः,
कीटपतङ्गनीलङ्गुमभृतयश्च, तथा-काष्ठनिथिताः काष्ठं शरणीकृत्य स्थिताः घुणोद्दे-
हिका-तदण्डादयः, अत्र काष्ठं शुष्कमिन्धनरूपं सार्द्रं च गृह्यते । तथा-गोमयनिथिताः
=गण्डूषदभूमिस्फोटादयः । तथा कचरनिथिताः-कचरः शुष्कतृणपत्ररजःसमुदा-
यरूपः, तं निथिताः=समाश्रिताः कृमिकुन्धुकीटादयः प्राणाः=प्राणिनः सन्ति ।

तथा-संपातिमाः=उत्प्लुत्योत्प्लुत्य पतनशीलाः, प्राणाः=प्राणिनः दंशमशकम-
सिकापतङ्गपक्षिपवनादयः सन्ति । एते संपातिमा आहत्य=अग्निशिखाकृष्टाः स्वय-
मेवोपेत्य, अग्नीं संपतन्ति ।

जीव और तृण के सहारे रहने वाले मच्छर कीड़े और घास की जलोक (जौंक) आदि
तृण-निथित कहलाते हैं । पतों के सहारे रहने वाले मगध देश में प्रसिद्ध घोडन तथा
कीट, पतंग एवं नीलंगु (लट) आदि जीव हैं । घुन, उड़ई और उनके अण्डे आदि
काष्ठ के सहारे रहने वाले जीव काष्ठनिथित कहलाते हैं । यहाँ 'काष्ठ' शब्द से सूखा
इंधनरूप काष्ठ और गीला काष्ठ, दोनों समझने चाहिए । तथा गोबर के आश्रित गिंडीला और
भूमिस्फोटक (भूफोड) आदि जीव हैं । इसी प्रकार कचरे के सहारे रहने वाले कृमि कुंथुवा
तथा कीड़ा वगैरह, ये सब प्राणी हैं ।

उड-उड कर गिरने वाले डांस, मच्छर, मक्खी पतंग, पक्षी और पवन आदि
संपातिम जीव कहलाने हैं । ये संपातिम जीव आग की शिखा से स्वयं आकर्षित हो कर
आग में गिर जाते हैं ।

वाणा मच्छर, कीड़ा अने घासनी जणो आदि, तृण आश्रित कडेवाय छे. पत्तां-पांदांनाना
आश्रये रहेवावाणा मगधदेशमां प्रसिद्ध घोडन तथा कीट पतंग अने नीलंगु (लट) आदि
एव छे. घुणु उधेध अने तेनां धंडां आदि-लाकडाना सहारे रहेवावाणा एव काष्ठनिथित
कडेवाय छे. अर्द्धि काष्ठ शब्दधी सूकां लाकडारूप काष्ठ अने लीलां काष्ठ, आ अने समन्वां
नेधंअ, तथा छाणुमां आश्रय करीने रहेलां गिंडोणा अने भूक्षेडा आदि एव छे. आ
प्रभाणु क्यराना आश्रये रहेवावाणा कृमि, कुंथुवा तथा कीडा वगेरे, आ सर्व प्राणी छे.

उडी-उडीने पडवावाणा डांस, मच्छर, मापी, पतंग, पक्षी अने पवन आदि
संपातिम एव कडेवाय छे. अने संपातिम एव आगनी-अग्निनी शिखाधी पोते
आकर्षित धरने अग्निमां पडी नय छे.

अग्निकायसमारम्भे पृथिव्यादिसमाश्रितानां स्थावराणां त्रसानां चोपमर्दनादिकं यथा भवति तद् दर्शयितुमाह—अग्निं चेत्यादि ।

एके—केचित् प्राणिनः, अग्निम्=समुत्पादितं प्रज्वालितं चाग्निकायं स्पृष्टाः स्पर्शकर्तारः, आर्पत्वात् कर्तरि क्तः ।

संघातं=पक्षादिदहनेन गात्रसंकोचनम् आपद्यन्ते, प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । तत्र=अग्नौ पतित्वा ये जीवाः संघातमापद्यन्ते, ते तत्र पर्यापद्यन्ते=तापामिभूता मूर्च्छा प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । ये तत्र=अग्नौ पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=अग्नौ, अपद्रावन्ति=प्राणान् परित्यजन्ति । अग्निसमारम्भेण केवलमग्निकायविराधना न भवति, अपितु सर्वदिकू-संचारिणं त्रसानां पृथिव्यादीनां स्थावराणामपि बहुतराणां हिंसाऽवश्यं भवतीति भावः । अत एवोक्तं भगवता—

अग्निकाय का आरंभ करने से पृथिवी आदि में आश्रित स्थावरों और त्रस जीवों का विराधन किस प्रकार होता है ? सो कहते हैं ।

कोई—कोई प्राणी जलती अग्नि को स्पर्श करके सिकुड जाते हैं—उन के पंख वगैरह जल जाते हैं । अग्नि में पड कर जो जीव संघात को प्राप्त होते हैं वे गर्मी से मूर्च्छित हो जाते हैं । अग्नि में गिरने वाले अपने प्राण भी खो देते हैं । अग्नि का समारंभ करने से केवल अग्निकाय की ही विराधना नहीं होती वरन् सभी दिशाओं में संचार करने वाले त्रस और बहुत से स्थावर जीवों की भी हिंसा अवश्य होती है । इसी लिए भगवान् ने कहा है:—

अग्निकायने। आरंभ करवाथी पृथ्वीआदिमां आश्रय करीने रहैलां स्थावरे। अने त्रस एवानी विराधना ने प्रकारे थाय छे, ते कडे छे—

कै।ई—कै।ई प्राणी अग्निनी अग्निने। स्पर्श करीने सं।कै।आ।ई नय छे. तेनी पां।ओ वगेरे अणी नय छे. अग्निमां पडीने ने एव संघातने प्राप्त थाय छे ते गरभीथी मूर्च्छित थई नय छे. अग्निमां पडवावाणा एव ने मूर्च्छित थई नय छे ते चो।ताना प्राण्य पण्य चो।ई नाणे छे. अग्निने। समारं।भ करवाथी केवल अग्निकायनी विराधना थती नथी, परन्तु सर्व दिशाओमां संचार करवावाणा त्रस अने धण्य।ं स्थावर एवानी पण्य हिंसा अवश्य थाय छे. ओ भाटे भगवाने कहुं छे—

“जायतेयं न इच्छन्ति, पावकं जलइत्तए ।
 तिवक्त्रमन्नयरं सत्यं, सन्वओवि दुरासयं ॥ १ ॥
 पाईणं पडिणं वावि, उद्धं अणुदिसामवि ।
 अहे दादिणओ वावि, दहे उत्तरओवि य ॥ २ ॥
 भूयाणमेसमाघाओ, हव्यवाहो न संसओ ।
 तं पईवपयावट्टा, संजओ किंचि नारमे ॥ ३ ॥” (दशवै० अ० ६)

छाया—जाततेजसं नेच्छन्ति, पावकं ज्वालयितुम् ।
 तीक्ष्णमन्यतरत् शखं, सर्वतोऽपि दुरासदम् ॥ १ ॥
 प्राच्यां प्रतीच्यां वापि, ऊर्ध्वमनुदिक्ष्वापि ।
 अथो दक्षिणतो वापि, दहेदुत्तरतोऽपि च ॥ २ ॥
 भूतानामेप आघातो, हव्यवाहो न संशयः ।
 तं मदीपप्रतानार्थं, संयतः किञ्चिन्नारभेत ॥ ३ ॥

“साधु अग्नि को जलाने की इच्छा तक नहीं करते, क्यों कि वह एक बड़ा ही तीखा शख है, जो किसी भी ओर से दुस्तह है—सभी ओर से जलाता है ॥१॥

यह अग्निशख पूर्व से भी और पश्चिम से भी ऊपर से भी और विदिशाओं की तरफ से भी नीचे से भी और दक्षिण से भी तथा उत्तर से भी जलाता है ॥२॥

अग्नि जीवों का घातक है, इस में कोई संशय नहीं है । साधु दीपक जलाने तथा प्रतापने के लिए उस का जरा भी आरंभ नहीं करते ॥३॥ (दशवै. अध्य. ६)

फिर भी कहा है—

“साधु अग्निने सजगाववानी धम्भा सुधी करता नथी, कारखु ते अेक महान तीक्ष्ण शख छे. ते कोऽपिखु आलुधी दुस्तह छे—आरेय तरक्षी भाणे छे. ” ॥ २ ॥

आ अग्निशख पूर्वथी पखु अने पश्चिमथी पखु उपरथी अने विदिशाओंनी तरक्षी पखु नीचेथी अने दक्षिणथी पखु अने उत्तरथी पखु भाणे छे. ॥ २ ॥

अग्नि लोकोना घातक छे, तेमां कांई पखु संशय नथी. साधु दीपक सजगाववा तथा तापवाने भाटे तेना जरा पखु आरंभ करता नथी. ” ॥ ३ ॥ (दशवै. अध्य. ६)

इरी पखु कहे छे—

“दो पुरिसा सरिसवया अन्नमन्नेहिं सद्धिं अगणिकायं समारंभंति, तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं समुज्जालेति, एगे विज्झवेति, तत्थ णं के पुरिसे महाकम्मयराए? के पुरिसे अप्पकम्मयराए? गोयमा! जे उज्जालेति से महाकम्मयराए, जे विज्झवेति से अप्पकम्मयराए” ॥

छाया—द्वौ पुरुषौ सदृशवयस्कौ अन्यान्याभ्यां सार्द्धम् अग्निकायं समारभेते, तत्र खलु एकः पुरुषः अग्निकायं समुज्ज्वालयति, एको विध्यापयति, तत्र खलु कः पुरुषः महाकर्मतरकः? कः पुरुषः अल्पकर्मतरकः?। गौतम! यः (अग्निं) उज्ज्वालयति स महाकर्मतरकः, य (अग्निं) विध्यापयति स अल्पकर्मतरकः (भगवती सूत्र०) ॥ सू० ९ ॥

तदेवमग्निकायहिंसया बहुतरजीवोपमर्दनं भवतीति विदित्वा त्रिकरण-त्रियोगैः कृतकारितानुमोदितैश्चाग्निशस्त्रसमारम्भो वर्जनीय इत्याह—‘एत्थ सत्थं’ इत्यादि ।

“समान उम्र वाले दो पुरुष परस्पर अग्निकाय का आरंभ करते हैं । एक पुरुष अग्निकाय को जलाता है और एक बुझाता है । इन में से कौन—सा पुरुष महाकर्म बाँधता है ? और कौन अल्पकर्म बाँधता है ? । हे गौतम ! जो अग्नि जलाता है वह महा कर्म बाँधता है और जो अग्नि बुझाता है वह अल्प कर्म बाँधता है” (भगवतीसूत्र.) ॥ सू० ९॥

इस प्रकार अग्निकाय की हिंसा होती है, यह जानकर तीन करण, तीन योग से, तथा कृत, कारित और अनुमोदना से अग्निशस्त्र का समारंभ त्याग देना चाहिए, यही बात कहते हैं—‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

“समान उमरवाणा ये पुरुष परस्पर अग्निकायने आरंभ करे छे. ओक पुरुष अग्निकायने सणगावे छे. भाणे छे अने ओक पुआवे—ओआवे छे. ते केमांधी कथे पुरुष महा कर्म बांधे छे. अने केओ अल्प कर्म बांधे छे? हे गौतम! जे अग्नि सणगावे छे—भाणे छे ते महा कर्म बांधे छे. अने जे अग्नि पुआवे छे. ते अल्प कर्म बांधे छे.” (भगवती सूत्र.) (सू. ९)

आ प्रमाणे अग्निकायनी हिंसाथी धरुा प्रकारना एवोनी हिंसा थाय छे. ओ जाली करीने त्रष करष, त्रष योगथी तथा करडुं, करावडुं अने अनुमोदनाथी अग्निशस्त्रने समारंभ त्यल देवे जेधजे, ओज वात कडे छे—‘एत्थ सत्थं,’ इत्यादि.

मूलम्—

एतद्य सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति । एतद्य सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति । तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं अगणिसत्थं समारंभेज्जा, नेवऽण्णेहि अगणि-सत्थं समारंभावेज्जा अगणिसत्थं समारंभमाणे अण्णे न समणु जाणिज्जा जस्सेते अगणिकम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति, से ङु ण्णी परिण्णायकम्मे-त्ति वेमि ॥ सू० १० ॥

॥ चउत्थो उद्देशो समत्तो ॥ १-४ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रंसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमग्निशस्त्रं समारभेत नैवान्यैरग्निशस्त्रं समारम्भयेत्, अग्निशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते अग्निकर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा-इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

॥ चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ १-४ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् अग्निकाये, शस्त्रं द्रव्यभावरूपं प्रागुक्तं :समारभमाणस्य=

मूलार्थ—अग्निशस्त्र का आरंभ करने वाला इन आरंभो को नहीं जानता । अग्निशस्त्र का आरंभ न करने वाला इन आरंभो को जानता है । इन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं अग्निशस्त्र का आरंभ न करे, दूसरों से अग्निशस्त्र का आरंभ न करावे और अग्निशस्त्र का आरंभ करने वालों की अनुमोदना न करे । जो इन समारंभो का ज्ञाता होता है वही मुनि परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं (भगवान् के कथानानुसार) कहता हूँ ॥सू० १०॥

टीकार्थ—अग्निकाय में द्रव्य और भावरूप पूर्वोक्त शस्त्र का व्यापार करने

मूलार्थ—अग्निशस्त्रने आरंभ करवावाणा ये आरंभोने नज्ज्ञता नथी । अग्नि-शस्त्रने आरंभ नहि करवावाणा ये आरंभोने नज्ज्ञे छे । तेने नज्ज्ञीने पुद्धिमान् पुरुष स्वयं अग्निशस्त्रने आरंभ न करे, थीन पासे अग्निशस्त्रने आरंभ करावे नहि । अने अग्निशस्त्रने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आये नहि । ये आ समा-रंभोना ज्ञाता-ज्ज्ञकार छे ते मुनि परिज्ञातकर्मा छे । ये प्रमाज्जे ङु (भगवानना वचनानुसार) ङहुं छुं । (सू. १०)

टीकार्थ—अग्निकायमां द्रव्य अने भावरूप पूर्वोक्त शस्त्रने व्यापार (व्यापार)

વ્યાપારયતઃ, इत्येते=पचनपाचनादयः आरम्भाः=सावधव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=अष्टविधकर्मबंधकारणत्वेनाविज्ञाता भवन्ति, अग्निकाये शस्त्रं प्रयुञ्जानस्य परिज्ञाया अभावादिति भावः ।

अत्र=अस्मिन् अष्काये शस्त्रम्=पूर्वोक्तस्वरूपम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य, इत्येते=पचनपाचनादयः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः, परिज्ञाताः=परिज्ञया परिज्ञाताः भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति तथा दर्शयति-‘तत् परिज्ञाये’-त्यादि । तत्=अग्निकायारम्भणं, परिज्ञाय=‘कर्मबन्धाय भवती’-त्येवમવબુઢ્ય, મેઘાવી=હેયોપાદેયવિવેકકુશલઃ, સાધુમર્યાદાવધાનશીલ इति यावत्, नैव स्वयमग्निशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरग्निशस्त्रं समारम्भयेत्, अग्निशस्त्रं

वाले को अर्थात् पचन-पाचन आदि पापमय कार्य करने वालों को यह ज्ञान नहीं होता कि-यह कार्य आठ प्रकार के कर्मों के बंध का कारण है, क्यों कि अग्निकाय के शस्त्र का प्रयोग करने वाले में परिज्ञा का अभाव होता है ।

अग्निकाय में पूर्वोक्त शस्त्र का व्यापार न करने वाले को सावध व्यापारों का ज्ञान होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से उन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है ? सो कहते हैं-अग्निकाय का आरंभ कर्मबंध का कारण है, यह जानकर हेय-उपादेय के विवेक में प्रवीण साधुमर्यादा का ध्यान रखने वाला स्वयं अग्निशस्त्र का आरंभ नहीं करता, दूसरों से કરવાવાળાને અર્થાત્-પચન-પાચન આદિ પાપમય કાર્ય-કરવાવાળાને એ જ્ઞાન હોતું નથી કે આ કાર્ય આઠ પ્રકારનાં કર્મોનાં બંધનું કારણ છે. કારણ કે અગ્નિકાયનાં શસ્ત્રને પ્રયોગ કરવાવાળાઓમાં પરિજ્ઞાનો અભાવ હોય છે.

અગ્નિકાયમાં પૂર્વોક્ત શસ્ત્રને વ્યાપાર-ઉપયોગ નહિ કરવાવાળાને સાવધ વ્યાપારોનું જ્ઞાન હોય છે. તે જ્ઞપરિજ્ઞાથી તેને બાજુ છે, અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી તેને ત્યાગ કરી આપે છે.

જ્ઞપરિજ્ઞાની પછી પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞા કયા પ્રકારે ઉત્પન્ન થાય છે ? તે કહે છે:-અગ્નિકાયનો આરંભ કર્મબંધનું કારણ છે. એ પ્રમાણે બાજીને હેય-ઉપાદેયના વિવેકમાં પ્રવીણ-કુશળ સાધુમર્યાદાનું ધ્યાન રાખવાવાળા પોતે અગ્નિશસ્ત્રને આરંભ કરતા નથી; ખીજા પાસે આરંભ કરાવતા નથી, અને આરંભ કરવાવાળાને અનુમોહન

समारम्भमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् । शेषं सुगमम् । यस्यैते अग्निकर्मसमारम्भाः=कर्मणां समारम्भाः कर्मसमारम्भाः, अग्नेः कर्मसमारम्भाः अग्निकर्म-समारम्भाः=अग्निं निमित्तीकृत्य कर्मकारणीभूताः उपमर्दनव्यापारा इत्यर्थः, परिज्ञाताः=सर्वथा ज्ञाताः, ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परि-र्ज्ञिता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा-परिज्ञातानि=ज्ञपरिज्ञया स्वरूपतो विपाकतस्त-दुपादानतथावगतानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परित्यक्तानि कर्माणि=सावधव्यापाराः येन-स परिज्ञातकर्मा=मनोवाक्यायैः सकलसावधकरणकारणानुमतिनिवृत्तो मुनिर्भवती-त्यर्थः । 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्यानं पूर्ववद् बोध्यम् ।

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने
चतुर्थोद्देशकः संपूर्णः ॥ १-४ ॥

आरंभ नहीं कराता और आरंभ करने वालों की अनुमोदना नहीं करता । शेष भाग सुगम हैं ।

अग्नि के निमित्त से होने वाले तथा कर्मबंध के कारणभूत यह सब पापमय व्यवहार जिस ने कर्मबंध के कारण ज्ञपरिज्ञा से समझ कर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिये हैं वही परिज्ञातकर्मा मुनि है । जिसने इन व्यापारों का स्वरूप, फल और कारण ज्ञपरिज्ञा से जान लिया है तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग कर दिया है उसे परिज्ञात-कर्मा मुनि कहते हैं । ऐसा मुनि मन, वचन काय से समस्त सावध के करने, कराने और अनुमोदन करने का त्यागी होता है । 'इति ब्रवीमि' की व्याख्या पहले के समान समझ लेना चाहिए ॥सू० १०॥

श्रीआचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीकाके हिन्दी अनुवादमें
प्रथम अध्ययनका चौथा उद्देश संपूर्ण ॥ १-४ ॥

आपता नहीं. शेष-आधीने लाग सुगम छे.

अग्निना निमित्तथी थावावाणा तथा कर्मबंधना कारणभूत आ सर्व पापमय व्यवहारने जेहे कर्मबंधना कारणे ज्ञपरिज्ञाथी समझने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्याग करी आपथे छे तेने परिज्ञातकर्मा मुनि छडे छे. ओवा मुनि-मन, वचन, कायाथी समस्त सावधने करवुं, कराववुं अने अनुमोदन करवुं तेना त्यागी होय छे 'इति ब्रवीमि'नी व्याख्या प्रथमना समान समझ लेवी जेधजे. (स. १०)

श्री आचाराङ्गसूत्रनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना
गुजराती-अनुवादमां प्रथम अध्ययनने
चौथा उद्देशक संपूर्ण. (१-४)

अथ पञ्चमोद्देशकः—

चतुर्थोद्देशोऽग्निकायस्वरूपं मुनित्वप्राप्तये प्रतिबोधितम् । साम्प्रतं तदर्थमेव क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधनावसरे वनस्पतिकायजीवस्वरूपं प्रतिबोधयितुकामः पञ्चमोद्देशकमुपक्रमते—‘तं णो’ इत्यादि ।

ननु क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधनं कथं न प्रक्रम्यते? उच्यते—वायुकायः प्रत्यक्षतया दृष्टिगोचरो न भवति, अतस्तत्र श्रद्धा इटिति नोदेतुं प्रभवति, पृथिव्याद्येकेन्द्रियजीवस्वरूपं प्रतिबुध्य तु सुतरां वायुकायो विज्ञास्यते, अतः स एव क्रमो गुरुभिरुपादेयो भवति, येन जीवादितत्त्वविज्ञानाय शिष्याः

पंचम उद्देशक—

चौथे उद्देश में साधुता प्राप्त करने के लिए अग्निकाय का स्वरूप समझाया है । इसी के लिए क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप समझाने के प्रसंग में वनस्पतिकाय का स्वरूप बतलाने के लिए पाँचवाँ उद्देश आरंभ करते हैं—‘तं णो’ इत्यादि ।

प्रश्न—क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप क्यों नहीं बतलाया गया है ? और वायुकाय को छोड़कर वनस्पतिकाय के विवेचन का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर—वात यह है कि वायुकाय नेत्रों से प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता—सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय से उस की प्रतीति होती है । इस कारण उस के विषय में जल्दी श्रद्धा नहीं होती । हाँ, पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों का स्वरूप समझ लेने पर वायुकाय सहज ही समझ में आ जायगा । गुरुजन वही क्रम काम में लाते हैं जिस से शिष्य जीवादि

पंचम उद्देशक—

चौथा उद्देशकमां साधुता प्राप्त करवाने भाटे अग्निकायानुं स्वरूप समझल्युं छे. आ भाटेक कंम अनुसार वायुकायानुं स्वरूप समझववाना प्रसंगे वनस्पतिकायानुं स्वरूप भताववाने भाटे पांचमो उद्देशकनो आरंभ करे छे—‘तं णो’ इत्यादि.

प्रश्न—कंम प्रभाणे वायुकायानुं स्वरूप शा भाटे भताल्युं नथी ? अने वायुकायने छोडीने वनस्पतिकायना विवेचनमां कथे उद्देश्य छे ?

उत्तर—वात अे छे के—वायुकाय नेत्रथी प्रत्यक्ष नेवामां आवतो नथी. मात्र स्पर्शेन्द्रियथी तेनी प्रतीति थाय छे. आ कारणथी तेना विषयमां जल्दी श्रद्धा थती नथी. हां, पृथ्वीकाय आदि अेकेन्द्रिय लुवोनुं स्वरूप समझ लीधा पछी वायुकाय सहज समझवामां आवी लशे. गुरुजन आ कभने काममां लावे छे, ने वटे करी शिष्य लुवादि

સ્વયમેયોત્સહન્તે, તસ્માદ્ વાયુકાયસ્વરૂપમનભિધાય વનસ્પતિકાયઃ પ્રથમં પ્રસ્તૂયતે—
'તં ણો.' ઇત્યાદિ ।

યદ્વા-અનન્તરચતુર્થોદ્દેશેઽગ્નિકાયો દીર્ઘલોકશસ્ત્રશબ્દેનાદૌ પ્રતિવોધિતઃ ।
તત્ર દીર્ઘલોકશબ્દાર્યો વનસ્પતિરિત્યાશયં સમધિગમ્યાગ્નિકાયમકરણસમાપ્ત્ય-
નન્તરં પ્રથમં વનસ્પતિકાયસ્વરૂપં વિજ્ઞાતુકામસ્ય શિષ્યસ્ય પ્રતિવોધનાય પશ્ચમં
વનસ્પતિકાયોદ્દેશં કથયતિ—'તં ણો.' ઇત્યાદિ ।

યથા વનસ્પતિકાયોપમર્દનનિટ્ટર્યાઽનગારત્વં લભ્યતે, તં પ્રકારં નિર્દિશતિ—
'તં ણો.' ઇત્યાદિ ।

તત્ત્વો કે જ્ઞાન મેં ઉત્સાહિત હોં । યહી કારણ હૈ કિ પહ્લે વાયુકાય કા સ્વરૂપ ન કહ કર
વનસ્પતિકાય કા વર્ણન ક્રિયા જાતા હૈ—'તં ણો.' ઇત્યાદિ ।

અથવા—ચૌથે ઉદ્દેશ મેં અગ્નિકાય કો 'દીર્ઘલોકશસ્ત્ર' વતલાયા હૈ । દીર્ઘલોકકા
અર્થ વનસ્પતિકાય હૈ, યહ આશય જાનકર અગ્નિકાય કે પ્રકરણ કે પદ્ધાત્ હી શિષ્ય કો
વનસ્પતિકાય કા સ્વરૂપ જાનને કી ઇચ્છા હોના સ્વાભાવિક હૈ । જિજ્ઞાસા કે અનુરૂપ
દિયા હુઆ ઉપદેશ હી અધિક સફલ હોતા હૈ, અતઃ શિષ્ય કી જિજ્ઞાસા ત્સ કરને કે
લિટ્ પૌંચવેં ઉદ્દેશ મેં વનસ્પતિકાય કા કથન ક્રિયા જાતા હૈ—'તં ણો.' ઇત્યાદિ ।

વનસ્પતિકાય કો હિંસા સે નિવૃત્ત હોને પર હી સાધુતા પ્રાપ્ત હોતી હૈ, વહ કિસ પ્રકાર
પ્રાપ્ત હોતી હૈ ? સો કહતે હૈ—'તં ણો.' ઇત્યાદિ ।

તત્ત્વોના જ્ઞાનમાં ઉત્સાહિત થાય. આ કારણથી પ્રથમ વાયુકાયના સ્વરૂપને નહિ કહેતાં
વનસ્પતિકાયનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે—'તં ણો.' ઇત્યાદિ.

અથવા—ચોથા ઉદ્દેશકમાં અગ્નિકાયને 'દીર્ઘલોકશસ્ત્ર' તરીકે બતાવ્યું છે.
દીર્ઘલોકકાને અર્થ વનસ્પતિકાય છે; એ આશયને સમજીને અગ્નિકાયના પ્રકરણની પછીજ
શિષ્યને વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપને જાણવાની ઇચ્છા હોય—થવી તે સ્વાભાવિક છે. જ્ઞાસાને
અનુરૂપ આવેલો ઉપદેશજ અધિક સકલ થાય છે, એ કારણથી શિષ્યની જ્ઞાસા વૃપ્ત
કરવાને માટે પાંચમા ઉદ્દેશમાં વનસ્પતિકાયનું વિવેચન કરવામાં આવે છે—'તં ણો.' ઇત્યાદિ.

વનસ્પતિકાયની હિંસાથી નિવૃત્ત થયા પછીજ સાધુતા પ્રાપ્ત થાય છે, તે કયા
પ્રકારે પ્રાપ્ત થાય છે. તે કહે છે—'તં ણો.' ઇત્યાદિ.

મૂલમ્—

તં ણો કરિસ્સામિ સમુદ્દાએ મત્તા મહમં, અમયં વિદિત્તા તં જે ણો કરણ,
એસોવરણ પ્ત્થોવરણ, એસ અણગારેત્તિ પવુચ્ચઇ ॥ સૂં ૧ ॥

છાયા—

તં નો કરિષ્યામિ સમુત્થાય મત્વા મતિમાન્, અમયં વિદિસ્વા તં યો નો કુર્યાત્,
એપ ઉપરતઃ અત્તોપરતઃ, એપઃ અનગાર ઇતિ પ્રોચ્યતે ॥ સૂં ૧ ॥

ટીકા—

મતિમાન્=મેધાવી શ્રમણનિર્ગન્થાદિદેશનાશ્રમણસંજાતહેયોપાદેયવિવેકવા-
નિત્યર્થઃ । મત્વા=વનસ્પતિકાયસ્વરૂપં વિજ્ઞાય વિભાવયતિ—અહં સમુત્થાય
આત્મકલ્યાણાર્થમુદ્યુક્તઃ સન્ મત્રજ્યાં ગૃહીત્વા, તં=વનસ્પતિકાયસમારમ્મં નો
કરિષ્યામીતિ ।

મૂલાર્થ—મેધાવી પુરુષ વિચાર કરતા હૈ—મૈ આત્મકલ્યાણ કે લિપ ઉદત હોકર
વનસ્પતિકાય કા આરંભ નહીં કરૂંગા । જો પુરુષ સંયમ કો જાનકર આરંભ નહીં કરતા હૈ
વહી આરંભ સે ઉપરત હૈ—વહી જિન શાસન મૈ આરંભ સે નિવૃત્ત કહલાતા હૈ । વહી અનગાર
કહલાતા હૈ ॥ સૂં ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગન્થ આદિ કા ઉપદેશ સુનને સે જિસે હેય ળૌર ઉપાદેય કા
વિવેક ઉત્પન્ન હો ગયા હૈ વહ વનસ્પતિકાય કા સ્વરૂપ જાનકર ઇસ પ્રકાર વિચાર
કરતા હૈ:—મૈ આત્મકલ્યાણ કે લિપ ઉદત હોકર—દીક્ષા ળેકર વનસ્પતિકાય કા આરંભ
સમારંભ નહીં કરૂંગા ॥

મૂલાર્થ—મેધાવી પુરુષ વિચાર કરે ળે—હું આત્મકલ્યાણ માટે તૈયાર થઈને
વનસ્પતિકાયને આરંભ નહિ કરું. જે પુરુષ સંયમને જાણીને આરંભ કરતા નથી
તે આરંભથી ઉપરત ળે, તેજ જિનશાસનમાં આરંભથી નિવૃત્ત કહેવાય ળે, તેજ
અણગાર કહેવાય ળે. ॥ ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગન્થ આદિને ઉપદેશ સાંભળવાથી જને હેય અને
ઉપાદેયને વિવેક ઉત્પન્ન થઈ ગયો ળે. તે વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપને જાણીને આ
પ્રમાણે વિચાર કરે ળે:—

હું આત્મકલ્યાણને માટે ઉદત—તૈયાર થઈને—દીક્ષા લઈને વનસ્પતિકાયને આરંભ
સમારંભ કરીશ નહિ.

अस्योद्देशस्य वनस्पतिकायविषयकतयाऽत्र तच्छब्देन वनस्पतिकायसमारम्भः परिगृह्यते । अत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं तत्समारम्भवर्जनप्रतिज्ञाप्रदर्शनेन ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष इति प्रतिबोधितम् । यः अभयं-नास्ति भयं यस्मात् कस्य चित् प्राणिनः इत्यभयः=सर्वप्राणिप्राणत्राणलक्षणः संयमः, तं-विदित्वा तं=वनस्पतिकाय-समारम्भं नो कुर्यात् । एषः उपरतः=वनस्पतिजीवविषये सर्वथा समारम्भाद् विनिवृत्तः, अत्र=अस्मिन् जिनशासने उपरतः प्रोच्यते, इत्यन्वयः । तथा एषः=पूर्वोक्तलक्षण उपरतः 'अनगारः' इति प्रोच्यते । अनगारगुणानां संपूर्णतया तत्र सत्त्वात्, स एवानगारशब्दाच्चोऽस्तीति भावः ।

अथ वनस्पतिकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं प्रागुक्ताष्टविधद्वाराणि निरूपणी-

यह उद्देश वनस्पतिकायसंबंधी है अतः यहाँ 'तत्' शब्द से वनस्पतिकाय का समारंभ लिया जाता है । पहले वनस्पतिकाय का ज्ञान होता है फिर उसके आरंभ का त्याग किया जाता है, यह बतलाकर सूचना की गई है कि मोक्ष, ज्ञान और क्रिया-दोनों से होता है ।

जिससे किसीभी प्राणी को भय नहीं ऐसा, प्राणीमात्र की रक्षारूप संयम अभय कहलाता है । उसे जानकर वनस्पतिकाय का समारंभ न करे । इस प्रकार वनस्पतिकाय के आरंभ से विरत पुरुष जिनशासन में 'उपरत' कहलाता है और वही उपरत पुरुष अनगार है, क्यों कि अनगार के गुण पूर्णरूप से उसीमें पाये जाते हैं ।

वनस्पतिकाय का स्वरूप सम्यक् प्रकार से जानने के लिए पूर्वोक्त आठ

आ उद्देश वनस्पतिकायसंबंधी छे. अे कारणथी अडि 'तत्' शब्दथी वनस्पति-कायने समारंभ लेवामां आवे छे. पडेलां वनस्पतिकायनुं ज्ञान थाय छे. पछी तेना आरंभने त्याग करवामां आवे छे. अे भतापीने सूचना करवामां आवी छे डे-ज्ञान अने किया, आ अन्नेधी मोक्ष थाय छे.

लेनाथी डोछ पछु प्राणीने लय थाय नडि, अे प्रभाषे प्राणीमात्रनी रक्षारूप संयम ते अलय डडेवाय छे. तेने वनस्पतिकायने समारंभ करे नडि. आ प्रभाषे वनस्पतिना आरंभथी विरत पुरुष जिनशासनमां 'उपरत' डडेवाय छे. अने तेन उपरत पुरुष अनगार छे. कारण डे-अणुगारना गुषु पृषुइपथी तेमांन लेवामां आवे छे.

वनस्पतिकायनुं स्वरूप सम्यक्प्रकारे ज्ञापना भाटे पूर्वोक्त आठ द्वारानुं निरूपण

મૂલમ્—

તં જો કરિસ્સામિ સમુદ્ઘાપ મત્તા મદ્મં, અમયં વિદિત્તા તં જો જો કરણ,
 ઇસોવરણ ઇત્યોવરણ, ઇસ અણગારેત્તિ પવુચ્ચઙ્ગ ॥ સૂં ૧ ॥

છાયા—

તં નો કરિણ્યામિ સમુત્યાય મત્વા મતિમાન્, અમયં વિદિસ્વા તં યો નો કુર્યાત્,
 ઇપ ઉપરતઃ અત્રોપરતઃ, ઇપઃ અનગાર ઇતિ પ્રોચ્યતે ॥ સૂં ૧ ॥

ટીકા—

મતિમાન્=મેધાવી શ્રમણનિર્ગન્થાદિદેશનાશ્રમણસંજાતહેયોપાદેયવિવેકવા-
 નિત્યર્થઃ । મત્વા=વનસ્પતિકાયસ્વરૂપં વિજ્ઞાય વિભાવયતિ-અહં સમુત્યાય
 આત્મકલ્યાણાર્થમુદ્યુક્તઃ સન્ મદ્મજ્યાં ગૃહીત્વા, તં=વનસ્પતિકાયસમારંમં નો
 કરિણ્યામીતિ ।

મૂલાર્થ—મેધાવી પુરુષ વિચાર કરતા હૈ—મૈ આત્મકલ્યાણ કે લિપ્ ઉદ્યત હોકર
 વનસ્પતિકાય કા આરંભ નહીં કરૂંગા । જો પુરુષ સંયમ કો જાનકર આરંભ નહીં કરતા હૈ
 વહી આરંભ સે ઉપરત હૈ—વહી જિન શાસન મેં આરંભ સે નિવૃત્ત કહલાતા હૈ । વહી અનગાર
 કહલાતા હૈ ॥ સૂં ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગન્થ આદિ કા ઉપદેશ સુનને સે જિસે હેય જૌર ઉપાદેય કા
 વિવેક ઉત્પન્ન હો ગયા હૈ વહ વનસ્પતિકાય કા સ્વરૂપ જાનકર ઇસ પ્રકાર વિચાર
 કરતા હૈ:—મૈ આત્મકલ્યાણ કે લિપ્ ઉદ્યત હોકર—દીક્ષા ઢેકર વનસ્પતિકાય કા આરંભ
 સમારંભ નહીં કરૂંગા ॥

મૂલાર્થ—મેધાવી પુરુષ વિચાર કરે છે—હું આત્મકલ્યાણ માટે તૈયાર થઈને
 વનસ્પતિકાયને આરંભ નહિ કરું. જે પુરુષ સંયમને બાણીને આરંભ કરતા નથી
 તે આરંભથી ઉપરત છે, તેજ જિનશાસનમાં આરંભથી નિવૃત્ત કહેવાય છે, તેજ
 અણગાર કહેવાય છે. ॥ ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગન્થ આદિને ઉપદેશ સાંભળવાથી જેને હેય અને
 ઉપાદેયને વિવેક ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે. તે વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપને બાણીને આ
 પ્રમાણે વિચાર કરે છે:—

હું આત્મકલ્યાણને માટે ઉદ્યત—તૈયાર થઈને—દીક્ષા લઈને વનસ્પતિકાયને આરંભ
 સમારંભ કરીશ નહિ.

तथा—वृक्षाः अव्यक्तोपयोगप्रवादिमन्तः, अव्यक्तचेतनावत्त्वात्, सुप्तमूर्च्छित-
पुरुषवत् । अत्र वनस्पतीनां दृश्यत्वहेतुना जीवशरीरत्वं सिद्धयति, ततश्च सचित्त-
त्वम् । अपरञ्च—वृक्षाः सचेतनाः, सर्वत्वगपहरणे मरणात्, अजवत् । वनस्पति-
कायस्य सचेतनत्वमग्रेऽपि साधयिष्यते—‘से वेमि—इमंपि जाइधम्मयं एयंपि
जाइधम्मयं’ इत्यत्र ।

यद्वा—अव्यक्तोपयोगादीनि कयायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिवी-

उपयोग (चेतना) और सुख आदि से युक्त है, क्यों कि उन में अव्यक्त चेतना हैं, जो अव्यक्त
चेतनावाला होता है वह अव्यक्त चेतनावाला और सुख आदि वाला होता है, जैसे सुप्त
या मूर्च्छित पुरुष ।

इस प्रकार ‘दृश्यत्व’ हेतु से सिद्ध होता है कि—वनस्पति, जीव का शरीर है और जीव
का शरीर होने के कारण सचित्त भी है । इसके अतिरिक्त और भी प्रमाण है । जैसे वृक्ष
चेतनावान् है क्यों कि उनकी सारी त्वचा (छाल) हटाने पर उनकी मृत्यु हो जाती है,
सारी त्वचा हटाने पर जिस की मृत्यु हो जाती है वह सचेतन ही होता है, जैसे बकरा ।
वनस्पतिकाय को सचेतनता आगे भी—‘से वेमि—इमंपि जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं’
इस सूत्र की व्याख्या करते हुए सिद्ध की जायगी ।

अथवा—अव्यक्त उपयोग से लेकर कयायपर्यन्त जीव के जो लक्षण पृथ्वी-

(चेतना) अने सुभ आदिथी युक्त छे, केमके तेमां अव्यक्त चेतना छे, जे अव्यक्त
चेतनावाना छे ते अव्यक्त चेतनावाना अने सुभ आदिवाणा छे। जे सुतेला
अथवा मूर्च्छित पुरुष, आ प्रकारे ‘दृश्यत्व’ हेतुथी सिद्ध थाय छे के—वनस्पति एवमुं
शरीर छे अने एवमुं शरीर होवाना कारणे सचित्त पणु छे, जेनी साथे जीवुं पणु
प्रमाणु छे, जेमकेः—वृक्ष चेतनावान् छे केमके तेनी तमाभ आभडी—छाल काढी नांभवार्थी
तेनुं मृत्यु थर्ध नय छे; तमाभ छाल काढी नांभवार्थी जेनुं मृत्यु थर्ध नय छे ते चेतन
न छे। जेवी रीते जकरा, वनस्पतिकायनी चेतनता आगण पणु—‘से वेमि—इमंपि
जाइधम्मयं एयंपि जाइधम्मयं’ आ सूत्रनी व्याख्या करती वधते सिद्ध करवाभां आवशे,

अथवा—अव्यक्त उपयोगथी लधने कयाय सुधी एवना जे लक्षण पृथ्वीकायनां

યાનિ, તત્ર લક્ષણ-મરૂપણા-શસ્ત્રો-પમોગદ્વારાણિ પ્રદર્શયામોઽસ્મિન્નુદેશે, શેષાણિ તુ પૃથિવીકાયવદવગન્તવ્યાનિ ।

લક્ષણદ્વારમ્—

નનુ કયમિદં વિજ્ઞાયતે-વનસ્પતિકાયઃ સચિત્તોઽસ્તીતિ ? ઉચ્યતે-યુક્તયાગમા-
ભ્યાં વનસ્પતિકાયસ્ય સચિત્તત્વં નિર્ણાયતે । તયાહિ-

વૃક્ષલતાદયો જીવશરીરાણિ દ્રશ્યત્વાત્, ફરચરણાદિસમુદાયવત્ । તથા વૃક્ષા-
દયઃ કદાચિત્ સચિત્તા અપિ, જીવશરીત્વાત્, ફરચરણાદિસમુદાયવદેવ ।

દ્વારો કા નિરૂપણ કરના યાહિષ્ । ઁનમ્ સે લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શક્ત ઁર ઉપમોગ
દ્વાર યહ્ણ વતલાતે હ્ણ । શેષ દ્વાર પહલે કહે પૃથ્વીકાય કે સમાન સમજ ઁને યાહિષ ।

લક્ષણદ્વાર-

શક્તિ—વનસ્પતિકાય સચિત્ત હૈ, યહ કૈસે જાના જા સકતા હૈ ?

સમાધાન—યુક્તિ ઁર આગમ સે વનસ્પતિકાય કી સચિત્તતા કા નિર્ણય
હોતા હૈ । વહ ઈસ પ્રકાર—વૃક્ષ ઁર લતા આદિ જીવ કે શરીર હ્ણ, ક્યો કિ વે દ્રશ્ય હ્ણ ।
જો દ્રશ્ય હોતે હ્ણ વે સવ જીવ કે શરીર હોતે હ્ણ, જૈસે હાથ-પૈર આદિ । તથા—વૃક્ષ
આદિ કમી-કમી સચિત્ત મી હોતે હ્ણ, ક્યો કિ વે જીવ કે શરીર હ્ણ, જો જીવ કે શરીર
હોતે હ્ણ વે સચિત્ત હોતે હ્ણ, જૈસે હાથ-પૈર આદિ કા સમૂહ । તથા—વૃક્ષ અવ્યક્ત

કરવું ભેદએ, તેમાંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શક્ત અને ઉપમોગ દ્વાર આદિ બતાવે છે.
શેષ-આકીના દ્વાર પ્રથમ પૃથ્વીકાયમાં જે ક્યાં છે તેના પ્રમાણે સમજ લેવાં ભેદએ.

લક્ષણદ્વાર—

શંકા—વનસ્પતિકાય સચિત્ત છે, એ કેવી રીતે બળી શકાય છે ?

સમાધાન—યુક્તિ અને આગમથી વનસ્પતિકાયની સચિત્તતાનો નિર્ણય થઈ શકે છે. તે આ પ્રમાણે છે:—વૃક્ષ અને લતા આદિ જીવના શરીર છે, કેમકે તે દ્રશ્ય છે. જે દ્રશ્ય હોય છે તે સર્વ જીવના શરીર હોય છે. જેવી રીતે હાથ-પગ આદિ. તથા વૃક્ષ આદિ કોઈકોઈ વખત સચિત્ત પણ હોય છે, કારણકે તે જીવના શરીર છે. જે જીવના શરીર હોય છે તે સચિત્ત હોય છે. જેમ હાથ-પગ આદિનો સમૂહ. તથા વૃક્ષ અવ્યક્ત ઉપમોગ

પલ્લવફલકુસુમાદિરૂપો વનસ્પતિરપિ છેદનાદિના મ્લાયતિ, તસ્માદ્ વનસ્પતિઃ સચેતન ઇતિ સિદ્ધમ્ ।

યદ્વા—વનસ્પતિર્જીવઃ, ચેતનાવચ્ચાત્, મનુષ્યવત્, યથા મનુષ્યસ્ય શબ્દાદિગ્રહણશક્તિરૂપા ચેતના, તથૈવ વનસ્પતૌ સમુપલભ્યતે । તથાહિ—ચકુલાદયો ગીત—મુરાગણ્ડૂપ—કામિનીચરણતાડનાદિભિઃ ફલન્તિ, શમીલજ્જાલુપ્રભૃતિષુ ચ સ્વાપાવવ્રોધસંકોચાદયો દશ્યન્તે । શાપાનુગ્રહાભ્યામાન્તરૌ સંકોચવિકાશૌ સમસ્ત-વનસ્પતીનાં ભવતઃ । ઉક્તશ્ચ—

જાતા હૈ उसी प्रकार पत्ता, फल, फूल, आदि वनस्पति भी छेदन-भेदन आदि से मुरझा जाती है, इससे सिद्ध होता है कि वनस्पति सचेतन है ।

અથવા—વનસ્પતિ જીવ હૈ; ક્યો કિ ચેતનાવાલી હૈ, જૈસે મનુષ્ય । જૈસે—મનુષ્ય આદિ મેં શબ્દ આદિ કો ગ્રહણ કરને કી શક્તિરૂપ ચેતના હૈ उसी प्रकार वनस्पति में भी शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना पाई जाती है । ચકુલ આદિ કે વૃક્ષ ગીત, મદિરા કા કુછા, કામિની કે પૈર કે તાડન આદિ સે ફલતે હેં । શમી તથા લગ્જાવતી આદિ મેં સ્વાપ, (સોના) અવવ્રોધ (જાગના) ઔર સંકોચ (સિકુડના) દેસા જાતા હૈ । શાપ ઔર અનુગ્રહ સે સવ વનસ્પતિ મેં સંકોચ ઔર વિકાસ હોતા હૈ । કહા મી હૈ :—

આદિથી કરમાઈ જાય છે સુકાઈ જાય છે, આ કારણથી સિદ્ધ થાય છે કે વનસ્પતિ સચેતન છે.

અથવા—વનસ્પતિ જીવ છે, કેમકે—ચેતનાવાળી છે, જેમ મનુષ્ય. જેવી રીતે મનુષ્ય આદિમાં શબ્દ આદિને ગ્રહણ કરવાની શક્તિરૂપ ચેતના છે. તે પ્રમાણે વનસ્પતિમાં પણ શબ્દ આદિને ગ્રહણ કરવાની શક્તિરૂપ ચેતના જોવામાં આવે છે. બકુલ આદિ વૃક્ષ ગીત, મદિરાના ગંદૂપ (કોગલા), સીના પગથી થયેલું તાડન આદિથી જણે છે. શમી તથા લગ્જાવતી (રીસામણી) આદિમાં સુઈ જલું જાગલું અને સ કોચાઈ જલું વગેરે જોવામાં આવે છે. શાપ અને અનુગ્રહથી સર્વ વનસ્પતિમાં સંકોચ અને વિકાસ થાય છે. કહ્યું છે કે:—

કાયોદેશે પ્રાગભિહિતાનિ, તેપાં જીવલક્ષણાનાં વનસ્પતિકાયેऽપિ સદ્ભાવાદ્ વનસ્પતિઃ સચિત્તોઽસ્તિ, મનુષ્યવદિતિ નિર્ણયતે ।

અર્થ—વનસ્પતિઃ સચેતનઃ, ઘાલાઘવસ્થાસંદર્શનાત્, અનુકૂલ-પ્રતિકૂલાહારાદિના પુષ્ટિકાશ્યાદિદર્શનાત્, છેદનભેદનાદિના મ્લાનતાદિદર્શનાત્ મનુષ્ય-શરીરવત્ ।

યથા મનુષ્યશરીરમનુકૂલેનાહારાદિના પુષ્યતિ, તત્પ્રતિકૂલેન તદભાવેન ચ શુષ્યતિ, એવં વનસ્પતિરપ્યનુકૂલજલવાતાદિભિઃ પુષ્યતિ; પ્રતિકૂલજલવાતાદિભિશ્ચ શુષ્યતિ । યથા વા છેદનાદિના મનુષ્યશરીરં હસ્તાદિ મ્લાયતિ, તથા

કાય કે ઉદ્દેશ મેં પહેલે કહે ગયે હેં વે સવ વનસ્પતિકાય મેં મી પાયે જાતે હેં । ઇસ કારણ વનસ્પતિ મનુષ્ય આદિ કે સમાન સચિત્ત હેં ।

તથા—વનસ્પતિ સચેતન હે, કયો કિ ઉસ મેં બાલ્યાવસ્થા આદિ દેસી જાતી હે, અનુકૂલ આહાર સે પુષ્ટિ ઓર પ્રતિકૂલ આહાર સે કૃશતા આદિ દિસાઈ દેતી હે, ઓર છેદન-ભેદન આદિ કરને સે મુરજાના વગેરહ દેસા જાતા હે, જૈસે મનુષ્ય કા શરીર ।

તાત્પર્યે યહ હે કિ જૈસે મનુષ્ય કા શરીર અનુકૂલ આહાર આદિ સે પુષ્ટિ હોતા હે ઓર પ્રતિકૂલ આહાર સે યા આહાર કે અભાવ સે સૂચ જાતા હે, ઉસી પ્રકાર વનસ્પતિ મી અનુકૂલ જલ-વાયુ આદિ સે પુષ્ટિ હોતી હે ઓર પ્રતિકૂલ જલ-વાયુ આદિ સે સૂચ જાતી હે । અથવા જૈસે છેદન-ભેદન કરને સે મનુષ્ય કા શરીર હાથ આદિ મુરજા ઉદ્દેશમાં પહેલા કઠ્યાં છે, તે સર્વ વનસ્પતિકાયમાં પણ જોવામાં આવે છે. આ કારણથી વનસ્પતિ મનુષ્ય આદિના સમાન સચિત્ત છે.

તથા—વનસ્પતિ સચેતન છે, કેમકે તેમાં બાલ્યાવસ્થા આદિ અવસ્થાઓ જોવામાં આવે છે. અનુકૂલ આહારથી પુષ્ટિ અને પ્રતિકૂલ આહારથી કૃશતા-હૃબલતા આદિ દેખાય છે, અને છેદન, ભેદન આદિ કરવાથી મુરજાઈ જવું-કરમાઈ જવું સુસ્ત કે ખિન્ન થવાપણું વગેરે જોવામાં આવે છે. જેવી રીતે મનુષ્યનું શરીર.

તાત્પર્યે એ છે કે:—જેમ મનુષ્યનું શરીર અનુકૂલ આહાર આદિથી પુષ્ટ થાય છે, અને પ્રતિકૂલ આહારથી અથવા તે આહારના અભાવથી સુકાઈ જાય છે તેવી રીતે વનસ્પતિ પણ અનુકૂલ જલ, વાયુ આદિથી પુષ્ટ થાય છે, અને પ્રતિકૂલ જલ વાયુ આદિથી સુકાઈ જાય છે. અથવા જેવી રીતે છેદન-ભેદન કરવાથી મનુષ્યશરીરના હાથ-પગ આદિ કરમાઈ જાય છે. તે પ્રમાણે પાંદડા, ફલ, ફૂલ, આદિ વનસ્પતિ પણ છેદન-ભેદન

वृक्षलतादयः संकोचमापद्यन्ते, स्तुतिवाक्यैश्च प्रवर्धन्ते, विक्रसन्ति चेति वनस्पतीनां सवेतनत्वे नास्ति केपाञ्चिद् विवादः ।

ये तु सूक्ष्मा वनस्पतिकायास्ते चक्षुषा नैव दृश्यन्ते, अतस्तेषां सचिचत्वं भगवद्वचनमात्रावगम्यमिति तत्रापि श्रद्धा करणीयैव ।

प्ररूपणाद्वारम्-

वनस्पतिजीवा द्विविधाः-सूक्ष्मवादरभेदात् । सूक्ष्माः सर्वलोके कज्जलकूपिकावत् संभृताः । वादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति । सूक्ष्माः पर्याप्तपर्याप्तभेदाद्द्विविधाः ।

वादरा द्विविधाः-प्रत्येकशरीर-साधारणशरीरभेदात् । एकमेकं जीवं

संकोच को प्राप्त होते हैं और प्रशंसा करने से बढ़ते, हैं और फूलते हैं अतः वनस्पति की सचिचत्ता में अब किसी को भी विवाद नहीं है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकाय के जीव आँख से नहीं दिखाई देते । भगवान् के वचनों से ही जाने जा सकते हैं । उन पर श्रद्धा रखनी चाहिए ।

प्ररूपणाद्वार-

वनस्पतिकाय के जीव दो प्रकार के हैं-सूक्ष्म और वादर । सूक्ष्म जीव समस्त लोकाकाश में काजल की कुप्पी की तरह भरे हुए हैं । वादर जीव लोक के एक-एक भाग में होते हैं । सूक्ष्म जीवों के भी दो भेद हैं-पर्याप्त और अपर्याप्त ।

वादर जीव प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर के भेद से दो प्रकार के हैं ।

संकोचने प्राप्त थाय छे अने प्रशंसा करवाधी कृते छे अने भित्ते छे अने कारखुधी वनस्पतिनी सचिचत्तामां हुवे कोषने पणु विवाद नथी.

सूक्ष्म वनस्पतिकायना एव नेत्रधी ज्येष्ठ शकता नथी. ते भगवानना वचनोधी न लखी शकथ छे. तेना पर श्रद्धा राखवी ज्येष्ठ अने.

प्ररूपणाद्वार-

वनस्पतिकायना एव जे प्रकारना छे. (१) सूक्ष्म अने वादर. सूक्ष्म एव समस्त लोकाकाशमां काजलनी कुप्पीनी प्रमाणु भरला छे. वादर एव लोकना अेक-अेक भागमां डाय छे.

सूक्ष्म एवोना पणु जे लेट छे. (१) पर्याप्त अने (२) अपर्याप्त. वादर एव प्रत्येकशरीर अने साधारणशरीरना लेटधी जे प्रकारना छे. अेक-अेक एव सञ्चनधी

“स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति वकुलः शीघ्रगण्डूपसेकात्,
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ।
मन्दारो नर्मवाक्याचदुमृदुहसनाचम्पको वक्त्रवाताद्,
वल्ली गीतान्मेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ” ॥ १ ॥ इति ॥

आगमोऽपि—

“वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुटोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ”
इति । (दशवै०)

प्रदर्शितं चाधुनिकवैज्ञानिकैः प्रत्यक्षतया स्वकृतप्रयोगविशेषेण वनस्पतीनां
सच्चित्तत्वम्, यथा—क्रोधादिमुन्नाटयतां तेषां गालीप्रदानादिभर्त्सनाभ्यामप्यतो

“प्रियंगु का पेड खियों के स्पर्श से विकसित होता है, वकुल मदिरा के कुल्ले से
खिल उठता है । अशोक वृक्ष स्त्री के पैर का आघात लगने से खिल जाता है । तिलक वृक्ष
खियों के देखने से, तथा कुरवक उनके आलिंगन से खिल उठता है । मन्दार वृक्ष विनोदमय
वाक्य सुनकर, चम्पक मृदुहँसी से, वल्ली वक्त्र (मुख) वायु से और नमेरु गीत से विकसित
होता है । कनेर का पेंड सामने नाचने से खिल जाता है ” ॥१॥

वनस्पति की सचेतनता आगम प्रमाण से भी सिद्ध होती है । दश वैकालिक
सूत्र में कहा है—शस्त्रपरिणत को छोड़कर शेष सब वनस्पति सच्चित्त कहो गई है, वह
अनेक जीववाली है और उन जीवों की सत्ता पृथक् पृथक् है ” ।

आधुनिक वैज्ञानिकोंने अपने प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष दिखला दिया है कि-वनस्पति
सच्चित्त है । क्रोध आदि करने से—गाली देने या भर्त्सना करने से वृक्ष, लता आदि

“प्रियंगुने छोड स्त्रीभ्याना स्पर्शेथी विकसित थाय छे, अकुल मदिराना डोगणा
करवाथी भिली उठे छे. अशोक वृक्ष स्त्रीना पगने आघात लागवाथी भिली उठे छे.
तिलक वृक्ष स्त्रीभ्याने जेवाथी तथा कुरवक स्त्रीभ्याना आलिंगनथी भिली उठे छे. मन्दार
वृक्ष विनोदमय वाक्य सांलणीने, चम्पक मृदु हंसीथी, वल्ली वक्त्र (मुख) वायुथी
अने नमेरु गीतथी विकसित थाय छे. कनेरने छोड तेना सामे नाचवाथी भिले छे.” ॥१॥

वनस्पतिनी सचेतनता आगमप्रमाणोपेथी पण्ण सिद्ध थाय छे. दशवैकालिक
सूत्रभां कहुं छे—“शस्त्रेथी परिणत—(छेदायेली)ने छोडीने भाडीनी सर्व वनस्पति
सच्चित्त कडेली छे, ते अनेक लुववाणी छे, अने ते लुवोनी सत्ता पृथक्-पृथक् छे.”

आधुनिक वैज्ञानिकेअये पोताना प्रयोगे द्वारा प्रत्यक्ष-अतावी आभ्युं छे के वनस्पति
सच्चित्त छे. क्रोध आदि करवाथी, गाण देवाथी अथवा तिरस्कार करवाथी वृक्ष, लता आदि

અસ્થિક-તિન્દુક-કપિત્થા-મ્બાઢક-માતુલિંગ-ચિલ્વા-મલક-પનસ-દાડિમાદયઃ ।

एकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलैकजीवमाश्रित्य मूलकन्दस्कन्ध-त्वक्शाखाप्रवालेषु प्रत्येकमसंख्येया जीवाः सन्ति । एको मूलजीवस्तु मूलादिफल-पर्यन्तं सर्वावयवं व्याप्य वृक्षेषु तिष्ठति ।

નન્વેકાસ્થિકાનાં બહુબીજકાનાં ચ વૃક્ષાણાં મૂલકન્દસ્કન્ધત્વક્ષાલાદયઃ પ્રત્યેકમસંખ્યેયજીવાઃ સન્તિ, ઇતિ ચદુક્તં તત્ કથમુપપદ્યતે, મૂલાદિફલપર્યન્તા વૃક્ષાઃ સર્વેઽપ્યેકશરીરાકારા એવોપલભ્યન્તે, યથા-દેવદત્તસ્ય શરીરમત્વપ્દમેકરૂપમુપલભ્યતે તદ્વત્, તસ્માદેકશરીરાત્મકા એવ વૃક્ષાઃ, કથમમી પ્રત્યેકશરીરા અસંખ્યેયજીવા ઇતિ ? ઉચ્યતે—

(તિન્દુ) કપિત્થ (કવિઠ), અમ્બાઢક, માતુલિંગ, ચિલ્વ, આમલા, પનસ ઓર દાડિમ આદિ ।

एकास्थिक और बहुबीजक वृक्षों में मूलके एक जीव के सहारे मूल, कंद, स्कंध, छाल, शाखा, और प्रवाल में अलग-अलग असंख्यात जीव हैं । एक मूल जीव, मूल से लेकर फल तक वृक्ष के सभी अवयवों में व्याप्त होकर रहता है ।

શંકા—એક બીજવાળે ઓર વહુત બીજ વાળે વૃક્ષોં કે મૂલ, કન્દ, સ્કન્ધ, ત્વચા, શાલા આદિ પ્રત્યેક અસંખ્યાત જીવ વાળે હેં, યહ કથન સહી કેસે હો સકતા હૈ ? મૂલ સે લેકર ફલપર્યન્ત વૃક્ષ સમી એક શરીરાકાર હી ઉપલબ્ધ હોતે હેં, જૈસે કિ દેવદત્ત કા શરીર અસંદ એકરૂપ હી દેલા જાતા હૈ । અતઃ વૃક્ષ એક-એક શરીરરૂપ હી હેં । ઁન મેં અસંખ્યાત પ્રત્યેક કિસ પ્રકાર હો સકતે હેં ?

અસ્થિક, તિન્દુક, કપિત્થ, અમ્બાઢક, માતુલિંગ (ખિલ્વેર), ચિલ્વ, (ખીલી), આમલાં, પનસ અને દાડમ આદિ.

એકાસ્થિક અને બહુબીજક વૃક્ષોમાં મૂળના એક જીવના આધારે મૂલ, કંદ, સ્કંધ છાલ, શાખા અને પ્રવાલમાં અલગ-અલગ અસંખ્યાત જીવ છે. એક મૂલ જીવ, મૂલથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષના સર્વ અવયવોમાં વ્યાપ્ત થઈને રહે છે.

શંકા—એકબીજવાળા અને બહુબીજવાળા વૃક્ષોના મૂળ, કંદ, સ્કન્ધ, ત્વચા-છાલ, શાખા આદિ પ્રત્યેક અસંખ્યાત જીવવાળા છે. આ કથન સાચું છે એમ કેવી રીતે કહી શકાય ? અથવા એ કથન સાચું કેવી રીતે હોઈ શકે ?

મૂલથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષ સર્વ એક શરીરાકારજ ઉપલબ્ધ થાય છે. જેમકે દેવદત્તનું શરીર અખંડ એકરૂપજ જોવામાં આવે છે. એ માટે વૃક્ષ એક એક શરીર-રૂપજ છે. તેમાં અસંખ્યાત પ્રત્યેકશરીર કેવી રીતે હોઈ શકે છે ?

प्रति गतं प्रत्येकम्, प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः । प्रत्येकनामकर्मोदयवशा-
देकैकस्य जीवस्य शरीरमौदारिकं वैक्रियं वा पृथक् पृथग् भवति । एवम्भूता जीवाः
प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते । नारकदेवमनुष्याः, द्वीन्द्रियादयः, पृथिव्यादयः, वृक्षगुच्छादि-
वनस्पतयश्च प्रत्येकशरीरिणः सन्ति । इमे प्रत्येकाः प्रत्येकजीवा अपि कथ्यन्ते ।

प्रत्येकशरीरा द्वादशविधाः—वृक्ष—गुच्छ—गुल्म—लता—वल्ली—पर्वग—तृण—वलय-
हरितौ—पधि—जलरुह—कुहणभेदात् ।

तत्र वृक्षा द्विविधाः—एकास्थिकाः (एकबीजकाः) बहुबीजकाश्च । तत्रैकास्थिका
अनेकविधाः—निम्बाम्रजम्बूकौशम्बादयः । बहुबीजका अप्यनेकविधाः—

एक—एक जीवसंबन्धी शरीर प्रत्येकशरीर कहलाता है । प्रत्येकनामकर्म के उदय से एक—एक
जीव के शरीर औदारिक और वैक्रिय अलग—अलग होता है । ऐसे अलग—अलग शरीर
वाले जीव प्रत्येकशरीर कहलाते हैं—नारक, देव, मनुष्य द्वीन्द्रिय आदि, पृथ्वीकाय आदि
तथा वृक्ष, गुच्छ आदि वनस्पतिजीव प्रत्येक शरीरी हैं । इन्हें प्रत्येक और प्रत्येकजीव
भी कहते हैं ।

प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकाय बारह प्रकार के हैं—वृक्ष, गुच्छ गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग,
तृण, वलय, हरित, औषध, जलरुह और कुहण ।

इनमें वृक्ष दो प्रकार के हैं—एकास्थिक अर्थात् एक बीज वाले और बहु-
बीजक अर्थात् बहुत बीजों वाले । एक बीज वाले नीम, आम, जामन और कौशम्ब
आदि अनेक प्रकार के हैं । बहुबीजक भी अनेक प्रकार के हैं । जैसे अस्थिक, तिन्दुक,

शरीर प्रत्येक शरीर कडेवाय छे. प्रत्येकनामकर्मना उदयधी अेक-अेक एवना शरीर
औदारिक अने वैक्रिय अलग-अलग होय छे. अेवा अलग-अलग शरीरवाणा एव
प्रत्येकशरीर कडेवाय छे. नारक, देव. मनुष्य, द्वीन्द्रिय आदि. पृथ्वीकाय आदि तथा
वृक्ष, गुच्छ आदि वनस्पति एव प्रत्येकशरीर छे. तेने प्रत्येक अने प्रत्येक एव पण कडे छे.

प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकाय बार प्रकारना छे—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली,
पर्वग, तृण, वलय, हरित, औषध, जलरुह अने कुहण.

अेमां वृक्ष अे प्रकारना छेः—अेकास्थिक अर्थात् अेक बीजवाणा, अने बहुस्थिक
अर्थात् धुण्डुण बीजवाणां. अेक बीजवाणा—कींअडे, आंणे, नांणु अने कौशम्ब, आदि
अनेक प्रकारना छे. बहुबीजक अेटवे धुण्डुण बीजवाणा पण अनेक प्रकारना छे. अेअेकः—

અસ્થિક-તિન્દુક-કપિત્થા-મ્વાડક-માતુલિંગ-વિલ્વા-મલક-પનસ-દાડિમાદયઃ ।

एकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलैकजीवमाश्रित्य मूलकन्दस्कन्ध-
त्वक्शाखाप्रवालेषु प्रत्येकमसंख्येया जीवाः सन्ति । एको मूलजीवस्तु मूलादिफल-
पर्यन्तं सर्वावयवं व्याप्य वृक्षेषु तिष्ठति ।

नन्वेकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलकन्दस्कन्धत्वक्शाखादयः
प्रत्येकमसंख्येयजीवाः सन्ति, इति यदुक्तं तत् कथमुपपद्यते, मूलादिफलपर्यन्ता वृक्षाः
सर्वेऽप्येकशरीराकारा एवोपलभ्यन्ते, यथा-देवदत्तस्य शरीरमखण्डमेकरूपमुपलभ्यते
तद्वत्, तस्मादेकशरीरात्मका एव वृक्षाः, कथममी प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवा
इति ? उच्यते—

(તિન્દુ) કપિત્થ (કવિઠ), અમ્વાડક, માતુલિંગ, વિલ્વ, આમલા, પનસ ઓર દાડિમ આદિ ।

एकास्थिक और बहुबीजक वृक्षों में मूलके एक जीव के सहारे मूल, कंद, स्कंध, छाल,
शाखा, और प्रवाल में अलग-अलग असंख्यात जीव हैं । एक मूल जीव, मूल से लेकर फल
तक वृक्ष के सभी अवयवों में व्याप्त होकर रहता है ।

શંકા—એક વીજવાલે ઓર વહુત વીજ વાલે વૃક્ષોં કે મૂલ, કન્દ, સ્કન્ધ, ત્વચા,
શાખા આદિ પ્રત્યેક અસંખ્યાત જીવ વાલે હેં, યહ કથન સહી કેસે હો સકતા હૈ ? મૂલ સે
લેકર ફલપર્યન્ત વૃક્ષ સમી એક શરીરાકાર હી ઉપલબ્ધ હોતે હેં, જૈસે કિ દેવદત્ત કા શરીર
અખંડ એકરૂપ હી દેલા જાતા હૈ । અતઃ વૃક્ષ એક-એક ગરીરરૂપ હી હેં । ઁન મેં અસંખ્યાત
પ્રત્યેક કિસ પ્રકાર હો સકતે હેં ?

અસ્થિક, તિન્દુક, કપિત્થ, અમ્વાડક, માતુલિંગ (બિજોરં), બિલ્વ, (બીલી), આમલાં,
પનસ અને દાડમ આદિ.

એકાસ્થિક અને બહુબીજક વૃક્ષોમાં મૂળના એક જીવના આધારે મૂલ, કંદ, સ્કંધ
છાલ, શાખા અને પ્રવાલમાં અલગ-અલગ અસંખ્યાત જીવ છે. એક મૂલ જીવ,
મૂલથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષના સર્વ અવયવોમાં વ્યાપ્ત થઈને રહે છે.

શંકા—એકબીજવાળા અને બહુબીજવાળા વૃક્ષોના મૂળ, કંદ, સ્કન્ધ, ત્વચા-
છાલ, શાખા આદિ પ્રત્યેક અસંખ્યાત જીવવાળા છે. આ કથન સાચું છે એમ કેવી
રીતે કહી શકાય ? અથવા એ કથન સાચું કેવી રીતે હોઈ શકે ?

મૂલથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષ સર્વ એક શરીરાકારજ ઉપલબ્ધ થાય છે. એમકે
દેવદત્તનું શરીર અખંડ એકરૂપજ જોવામાં આવે છે. એ માટે વૃક્ષ એક એક શરીર-
રૂપજ છે. તેમાં અસંખ્યાત પ્રત્યેકશરીર કેવી રીતે હોઈ શકે છે ?

प्रति गतं प्रत्येकम्, प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः । प्रत्येकनामकर्मोदयवशा-
देकैकस्य जीवस्य शरीरमादारिकं वैक्रियं वा पृथक् पृथक् भवति । एवम्भूता जीवाः
प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते । नारकदेवमनुष्याः, द्वीन्द्रियादयः, पृथिव्यादयः, वृक्षगुच्छादि-
वनस्पतयश्च प्रत्येकशरीरिणः सन्ति । इमे प्रत्येकाः प्रत्येकजीवा अपि कथ्यन्ते ।

प्रत्येकशरीरा द्वादशविधाः—वृक्ष—गुच्छ—गुल्म—लता—वल्ली—पर्वग—तृण—वलय-
हरितौ—पथि—जलरुह—कुहणभेदात् ।

तत्र वृक्षा द्विविधाः—एकास्थिकाः (एकबीजकाः) बहुबीजकाश्च । तत्रैकास्थिका
अनेकविधाः—निम्बाम्रजम्बूकौशम्यादयः । बहुबीजका अप्यनेकविधाः—

एक—एक जीवसंबन्धी शरीर प्रत्येकशरीर कहलाता है । प्रत्येकनामकर्म के उदय से एक—एक
जीव के शरीर औदारिक और वैक्रिय अलग—अलग होता है । ऐसे अलग—अलग शरीर
वाले जीव प्रत्येकशरीर कहलाते हैं—नारक, देव, मनुष्य द्वीन्द्रिय आदि, पृथ्वीकाय आदि
तथा वृक्ष, गुच्छ आदि वनस्पतिजीव प्रत्येक शरीरी हैं । इन्हें प्रत्येक और प्रत्येकजीव
भी कहते हैं ।

प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकाय बारह प्रकार के हैं—वृक्ष, गुच्छ गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग,
तृण, वलय, हरित, औपथ, जलरुह और कुहण ।

इनमें वृक्ष दो प्रकार के हैं—एकास्थिक अर्थात् एक बीज वाले और बहु-
बीजक अर्थात् बहुत बीजों वाले । एक बीज वाले नीम, आम, जामन और कौशम्ब
आदि अनेक प्रकार के हैं । बहुबीजक भी अनेक प्रकार के हैं । जैसे अस्थिक, तिन्दुक,

शरीर प्रत्येक शरीर कडेवाय छे. प्रत्येकनामकर्मना उदयथी अेक-अेक लवना शरीर
औदारिक अने वैक्रिय अलग-अलग छेवा छे. अेवा अलग-अलग शरीरवाणा लव
प्रत्येकशरीर कडेवाय छे. नारक, देव, मनुष्य, द्वीन्द्रिय आदि. पृथ्वीकाय आदि तथा
वृक्ष, गुच्छ आदि वनस्पतिअव प्रत्येकशरीर छे. तेने प्रत्येक अने प्रत्येकअव पषु कडे छे.

प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकाय बार प्रकारना छे—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली,
पर्वग, तृण, वलय, हरित, औपथ, जलरुह. अने कुहण.

अेमां वृक्ष के प्रकारना छेः—अेकास्थिक अर्थात् अेक बीजवाणा, अने बहुस्थिक
अर्थात् धेरुं बीजवाणां. अेक बीजवाणा—नीम, आम, जामन अने कौशम्ब, आदि
अनेक प्रकारना छे. बहुबीजक अेकके धेरुं बीजवाणा पषु अनेक प्रकारना छे. अेभकेः—

અસ્થિક-તિન્દુક-કપિત્થા-મ્વાહક-માતુલિંગ-વિન્વા-મલક-પનસ-દાહિમાદયઃ ।

एकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलैकजीवमाश्रित्य मूलकन्दस्कन्ध-त्वक्शाखाप्रवालेषु प्रत्येकमसंख्येया जीवाः सन्ति । एको मूलजीवस्तु मूलादिफल-पर्यन्तं सर्वावयवं व्याप्य वृक्षेषु तिष्ठति ।

नन्वेकास्थिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलकन्दस्कन्धत्वक्शाखादयः प्रत्येकमसंख्येयजीवाः सन्ति, इति यदुक्तं तत् कथमुपपद्यते, मूलादिफलपर्यन्ता वृक्षाः सर्वेऽप्येकशरीराकारा एवोपलभ्यन्ते, यथा-देवदत्तस्य शरीरमद्रण्डमेकरूपमुपलभ्यते तद्वत्, तस्मादेकशरीरात्मका एव वृक्षाः, कथममी प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवा इति ? उच्यते—

(તિન્દુ) કપિત્થ (કવિઠ), અમ્વાહક, માતુલિંગ, વિન્વ, આમલા, પનસ ઓર દાહિમ આદિ ।

एकास्थिक और बहुबीजक वृक्षों में मूलके एक जीव के सहारे मूल, कंद, स्कंध, छाल, शाखा, और प्रवाल में अलग-अलग असंख्यात जीव हैं । एक मूल जीव, मूल से लेकर फल तक वृक्ष के सभी अवयवों में व्याप्त होकर रहता है ।

શંકા—એક બીજવાળે ઓર વહુત બીજ વાળે વૃક્ષો કે મૂલ, કન્દ, સ્કન્ધ, ત્વચા, શાખા આદિ પ્રત્યેક અસંખ્યાત જીવ વાળે છે, યહ કથન સહી કેસે હો સકતા છે ? મૂલ સે લેકર ફલપર્યન્ત વૃક્ષ સમી એક શરીરાકાર હી ઉપલબ્ધ હોતે છે, જૈસે કિ દેવદત્ત કા શરીર અસંખ્દ એકરૂપ હી દેલા જાતા છે । અતઃ વૃક્ષ એક-એક શરીરરૂપ હી છે । ઊન મેં અસંખ્યાત પ્રત્યેક કિસ પ્રકાર હો સકતે છે ?

અસ્થિક, તિન્દુક, કપિત્થ, અમ્વાહક, માતુલિંગ (ખિન્નેર), બિન્વ, (ખીલી), આમલાં, પનસ અને દાહમ આદિ.

એકાસ્થિક અને બહુબીજક વૃક્ષોમાં મૂળના એક જીવના આધારે મૂલ, કંદ, સ્કંધ છાલ, શાખા અને પ્રવાલમાં અલગ-અલગ અસંખ્યાત જીવ છે. એક મૂલ જીવ, મૂળથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષના સર્વ અવયવોમાં વ્યાપ્ત થઈને રહે છે.

શંકા—એકબીજવાળા અને બહુબીજવાળા વૃક્ષોના મૂળ, કંદ, સ્કન્ધ, ત્વચા-છાલ, શાખા આદિ પ્રત્યેક અસંખ્યાત જીવવાળા છે. આ કથન સાચું છે એમ કેવી રીતે કહી શકાય ? અથવા એ કથન સાચું કેવી રીતે હોઈ શકે ?

મૂળથી લઈને ફલ સુધી વૃક્ષ સર્વ એક શરીરાકારજ ઉપલબ્ધ થાય છે. જેમકે દેવદત્તનું શરીર અખંડ એકરૂપજ જોવામાં આવે છે. એ માટે વૃક્ષ એક એક શરીર-રૂપજ છે. તેમાં અસંખ્યાત પ્રત્યેકશરીર કેવી રીતે હોઈ શકે છે ?

मूलस्कन्धादिषु तेषामसंख्येयानामपि जीवानां प्रत्येकनामकर्मोदयात् पृथक् पृथगेव एकैकशरीरसद्भावेन प्रत्येकशरीरत्वं सिध्यति ।

यद्यपि वृक्षाणां मूलादिषु प्रत्येकमसंख्येया अपि जीवाः परस्परं विभिन्नशरीराः, तथापि प्रवलरागद्वेषोपचिततथारूपप्रत्येकनामकर्ममाहात्म्यादेव परस्परं समाश्लिष्टाः संमिश्रिता भवन्ति । यथा श्लेषणद्रव्येण मिश्रीकृत्य निर्मितायां खसखसगुटिकायां प्रत्येकभागे स्वस्वसत्तया खसखसत्रीजानि तिष्ठन्ति । यथा वा—गुडमिश्रितैस्तिलैः कृतायां तिलपर्पटिकायां तिलाः स्वस्वरूपेण वर्तन्ते, तथैव प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवाः मूलकन्दादिषु प्रत्येकं तिष्ठन्ति । साधारण-

समाधान—मूल और स्कन्ध आदि में उन असंख्यात जीवों के, प्रत्येकनामकर्म के उदय से अलग-अलग एक-एक शरीर हैं, अतः वे सब प्रत्येकशरीरी सिद्ध होते हैं ।

यद्यपि वृक्षों के मूल आदि में असंख्यात जीव हैं और उन सब के शरीर भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी तीव्र राग-द्वेष के कारण उपार्जित प्रत्येकनामकर्म के प्रभाव से ही वे सब आपस में मिले हुए-से रहते हैं । जैसे किसी चिपकनी चीज में मिलाकर बनाई हुई खसखस की गोली के प्रत्येक भाग में खसखस के बीज अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं, अथवा जैसे गुड मिले तिलों की बनाई हुई तिलपपड़ी में तिलों के दाने अपने अपने स्वरूप में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येकशरीरी असंख्यात जीव मूल, कन्द आदि में रहते हैं । साधारणवनस्पति से इन में यह भेद है कि—प्रत्येकशरीरी

समाधान—मूल अने स्कंध आदिमां ते असंख्यात जीवाना प्रत्येकनामकर्मना उदयधी अलग-अलग अेक-अेक शरीर छे, ते पणु तीव्र राग-द्वेषना कारणे उपार्जित-प्राप्त करेला प्रत्येकनामकर्मना प्रभावधीन ते सर्व आपसमां-परस्परमां भोजेला रहे छे, जेभ केरि चिपकनी (चीकड़ी-चोटी नथ तेवी) चीजमां भेजवीने बनावेली भसभसनी गोणीना प्रत्येक भागमां भसभसनां भीण पोतानुं अलग अलग अस्तित्व बनावी राखे छे. अथवा जेभ गोण भेजवेली तलनी तलपापडी-तलसांकणीमां तलना दाणु पोत-पोताना स्वरूपमां विद्यमान रहे छे, ते प्रभाणु प्रत्येकशरीरी असंख्यात जीव मूल, कंद आदिमां रहे छे. साधारण वनस्पतिधी तेनामां अे बेद छे के:-प्रत्येकशरीरी

वनस्पतिभ्यस्त्वेतावान् विशेषः— प्रत्येकशरीराः परस्परं संमिश्रिता अपि भिन्ना एव तिष्ठन्ति, साधारणशरीरास्त्वन्योन्यानुविद्धा इति ।

पत्रेषु प्रत्येकं मूलजीवाद्भिन्न एकैको जीवः । उक्तं हि प्रज्ञापनायामेकास्थिकवहुवीजवृक्षप्ररूपणावसरे—“ पत्ता पत्तेयजीविया ” इति ।

तथा—तालसरलनालिकेरवृक्षाणां स्कन्धश्चैकजीवः । तदुक्तम्—

“ गाणाविहसंठाणा, रुक्खाणं एगजीविया पत्ता ।

संधोचि एगजीवो, ताल—सरल—नालिकेरीणं ” ॥

छाया—नानाविध संस्थानानि, वृक्षणाम् एकजीविकानि पत्राणि ।

स्कन्धोऽपि एकजीवः, तालसरल नारिकेलानाम् ॥ (प्रज्ञा०)

जीव आपस में मिले हुए भी भिन्न—भिन्न रहते हैं किन्तु साधारणशरीरवाले जीव आपस में अनुविद्ध—एक रूप होकर रहते हैं । तात्पर्य यह है कि—प्रत्येकशरीरी जीवों का शरीर अलग—अलग होता है किन्तु इन साधारणशरीरी जीवों का शरीर एक ही होता है ।

पत्तों में मूल जीव से भिन्न एक—एक जीव अलग—अलग होते हैं । प्रज्ञापना सूत्र में एकबीज और बहुबीज वृक्षों की प्ररूपणा करते हुए कहा है— ‘पत्ता पत्तेयजीविया’ अर्थात् पत्ते प्रत्येक जीव वाले हैं ।

तथा ताल, साल, नालिकेर आदि वृक्षों का स्कन्ध एक जीव है । कहा है—

“ नाना प्रकार के आकार वाले वृक्षों के पत्ते प्रत्येकजीव हैं और ताल, सरल तथा नारियल के स्कन्ध एकजीव हैं ” ।

एव परस्पर भेदला छातां पद्यु भिन्न—भिन्न रहे छे; परन्तु साधारण शरीरवाणा एव परस्परमां अनुविद्ध—एकरूप यधने रहे छे. तात्पर्य ये छे के—प्रत्येकशरीरी एवेनां शरीर अलग—अलग होय छे. किन्तु आ साधारणशरीरी एवेनां शरीर अकण होय छे.

पत्तां—पांडुंसां, मूल एवधी भिन्न अक—अक एव अलग—अलग होय छे. प्रज्ञापनासूत्रमां अकधीनं अने गडुधीनं वृक्षानी प्ररूपण्यु करता थका कछुं छे के— ‘पत्ता पत्तेयजीविया’ अर्थात् पत्तां प्रत्येक एववाणा छे.

तथा ताल, सरल, नाणिकेर आदि वृक्षानां स्कंध अक एव छे. कछुं छे के—

“ नाना प्रकारना आकारवाणा वृक्षानां पत्तां—पांडुंसां प्रत्येकएव छे. अने ताल, सरल तथा नारिकेलना स्कंध अकएव छे. ”

मूलस्कन्धादिषु तेषामसंख्येयानामपि जीवानां प्रत्येकनामकर्मोदयात् पृथक् पृथगेव एकैकशरीरसद्भावेन प्रत्येकशरीरत्वं सिध्यति ।

यद्यपि वृक्षाणां मूलादिषु प्रत्येकमसंख्येया अपि जीवाः परस्परं विभिन्नशरीराः, तथापि प्रवलरागद्वेषोपचिततथारूपप्रत्येकनामकर्ममाहात्म्यादेव परस्परं समाश्लिष्टाः संमिश्रिता भवन्ति । यथा श्लेषणद्रव्येण मिश्रीकृत्य निर्मितायां खसखसगुटिकायां प्रत्येकभागे स्वस्वसत्तया खसखसबीजानि तिष्ठन्ति । यथा वा—गुडमिश्रितैस्तिलैः कृतायां तिलपर्पटिकायां तिलाः स्वस्वरूपेण वर्तन्ते, तथैव प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवाः मूलकन्दादिषु प्रत्येकं तिष्ठन्ति । साधारण-

समाधान—मूल और स्कन्ध आदि में उन असंख्यात जीवों के, प्रत्येकनामकर्म के उदय से अलग-अलग एक-एक शरीर हैं, अतः वे सब प्रत्येकशरीरी सिद्ध होते हैं ।

यद्यपि वृक्षों के मूल आदि में असंख्यात जीव हैं और उन सब के शरीर भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी तीव्र राग-द्वेष के कारण उपार्जित प्रत्येकनामकर्म के प्रभाव से ही वे सब आपस में मिले हुए-से रहते हैं । जैसे किसी चिपकनी चीज में मिलाकर बनाई हुई खसखस की गोली के प्रत्येक भाग में खसखस के बीज अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं, अथवा जैसे गुड मिले तिलों की बनाई हुई तिलपपड़ी में तिलों के दाने अपने अपने स्वरूप में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येकशरीरी असंख्यात जीव मूल, कन्द आदि में रहते हैं । साधारणवनस्पति से इन में यह भेद है कि—प्रत्येकशरीरी

समाधान—मूल अने स्कंध आदिमां ते असंख्यात जीवाना प्रत्येकनामकर्मना उदयधी अलग-अलग ओक-ओक शरीर छे, तो पणु तीव्र राग-द्वेषना कारणे उपार्जित-प्राप्त करेला प्रत्येकनामकर्मना प्रभावधीन ते सर्व आपसमां-परस्परमां भोजेला रहे छे, जेम केठ चिपकनी (चीकड़ी-चोटी नय तेवी) चीजमां भेजवीने अनावेकी असभसनी गोणीना प्रत्येक भागमां असभसनां धीन पोतानु अलग अलग अस्तित्व अनावेकी राणे छे. अथवा जेम गोण भेजवेली तलनी तलपापडी-तलसांडणीमां तलना दाणु पोत-पोताना स्वभूषमां विद्यमान रहे छे, ते प्रभाणु प्रत्येकशरीरी असंख्यात जीव मूल, कंद आदिमां रहे छे. साधारण वनस्पतिधी तेनामां अे लेह छे हे:-प्रत्येकशरीरी

गुच्छा अनेकविधाः—आढकी—वृन्ताकी—तुलसी—पिप्पलीप्रभृतयः । गुल्माः—
दूस्वस्कन्धबहुकाण्डपत्रपुष्पफलोपेताः, तेऽनेकविधाः—सेरिका—नवमालिका—कोरण्टक—
बन्धुजीवकादयः । लता अनेकविधाः—पन्नलता—नागलताऽशोकलताचम्पकलतादयः ।
यस्य वनस्पतेस्तिर्यक् तथाविधाः शाखाः प्रशाखा वा न प्रसृताः सा लतोच्यते ।

बल्लयोज्जेकविधाः—पुष्पफली—कूष्माण्डी—कालिङ्गी—तुम्बी—त्रपुषी—कोशातकी
—पटोलादयः । पर्वगा अनेकविधाः—इक्षु—वंश—नलवंश—वेतसप्रभृतयः । वृणानि—
अनेकविधानि—कुशदूर्वादीनि । बलयानि—ताल—तमाल—केतकी—कदली—कन्दल्या-

गुच्छ अनेक प्रकार के हैं । जैसे—अरहर वृन्ताकी, तुलसी, पिप्पली आदि ।
जिनका तना छोटा हो, कांड बहुत हो और जो पत्तों, फूलों और फलों से युक्त हों
उन्हें गुल्म कहते हैं । वे भी कई प्रकार के हैं । यथा—सेरिका, नवमालिका, कोरण्टक,
बन्धुजीवक वगैरह । लताएँ भी अनेक प्रकार की हैं; जैसे—पन्नलता, नागलता, अशोकलता,
चम्पकलता आदि । जिस वनस्पति की तिरछी अथवा खास तरह की शाखाएँ—प्रशाखाएँ नहीं
फैलती वह लता कहलाती हैं ।

बड़ी के भी अनेक भेद हैं । जैसे—पुष्पकली, कूष्माण्डी, कालिङ्गी, तुम्बी,
त्रपुषी, (ककड़ी) कोशातकी तथा पटोलादि । पर्वग भी अनेक प्रकार के हैं ।
जैसे—इक्षु, (सिलरी) वंश, (बांस) नलवंश, वेत आदि । कुश और दूब आदि वृण
अनेक प्रकार के होते हैं । ताल, तमाल, केतकी, कदली, कन्दली आदि बलय

शुब्ध अनेक प्रकारनां छे. जेवां के—तुवेर, वृन्ताकी, तुलसी, पिप्पली, आदि.
जेना थर नाना डोय, कांड गडुज डोय अने जे पत्तां—कूल अने इणोथी युक्त डोय
तेने शुद्ध कडे छे. ते पक्षु घषा प्रकारना छे. जेम—सेरिका, नवमालिका, कोरंटक,
बन्धुजीवक वगैरे; लताओ पक्षु अनेक प्रकारनी छे. जेवी रीते के—पन्नलता, नागलता,
अशोकलता, चम्पकलता आदि. जे वनस्पतिनी तिरछी अथवा खास तरहनी
शाखाओ—प्रशाखाओ इलाती नथी ते लता कडेवाय छे.

बदलीना पक्षु अनेक भेद छे. जेवी रीते पुष्पकली, कूष्मांडी, कालिङ्गी, तुम्बी,
त्रपुषी, कोशातकी तथा पटोलादि. पर्वग पक्षु अनेक प्रकारना छे. जेम—शेरकी, बांस,
नलवंश वेत आदि. कुश—दाबडा अने इण—धरे आदि वृण अनेक प्रकारनां डोय छे.
ताल, तमाल, केतकी, कदली—केण, कन्दली आदिने बलय कडेवाय छे. तंडुलीयक, (तांदल)

पुष्पेषु अनेकजीवाः-संख्याता असंख्याता अनन्ता वा सन्ति । उक्तञ्च-
“पुष्पा अणेगजीवा ” इति ।

“पुष्पा जलया थलया, विटवद्वा य नालिवद्वा य ।

संखिज्जमसंखिज्जा, बोधव्वाऽणंतजीवा य ” ॥

छाया-पुष्पाणि जलजानि स्थलजानि, वृन्तवद्धानि च नालिवद्धानि च ।

संख्येयानि (संख्येय जीवानि) असंख्येयानि (असंख्येय जीवानि)

बोद्धव्यानि अनन्त जीवानि च ॥ (प्रज्ञा०)

यत्तु “पुष्पाणि चैकजीवानि मन्तव्यानी”-ति शीलाङ्काचार्यरभिहितं तत्
प्रामादिकम्, प्रज्ञापनासूत्रविरोधात् ।

फलेषु मूलजीवमाश्रित्य प्रत्येकं द्वौ द्वौ जीवौ स्तः । दोषिण य जीवा फले
भणिया ” इति प्रज्ञापनावचनात् । वृक्षाः प्ररूपिताः, अथगुच्छादयः प्रोच्यन्ते-

फूलों में अनेक-संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त जीव होते हैं । कहा भी है-“पुष्पा
अणेगजीवा” फूल अनेक जीव वाले होते हैं ।

“जल में उत्पन्न होने वाले, स्थल में उत्पन्न होने वाले, वृन्तवद् या नालि-
वद् फूल संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त जीव वाले समझने चाहिए” ।
(प्रज्ञापनासूत्र)

“फूल एक जीव वाले होते हैं” यह शीलाङ्काचार्य का कथन भूलभरा है, क्योंकि
यह प्रज्ञापनासूत्र से विरुद्ध है ।

फलों में मूल जीव की अपेक्षा प्रत्येक दो-दो जीव हैं । प्रज्ञापना सूत्र में कहा है-
“ फल में दो जीव कहे गये हैं । ”

यहाँ तक वृक्षों का निरूपण किया । अब गुच्छ आदि के विषय में कहते हैं-

इदोभां अनेक संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त-एव होय छे. कहुं पछे
छे-‘ पुष्पा अणेगजीवा ’ “ इल अनेक एववाणा होय छे. ”

“जलमां उत्पन्न थवावाणां, स्थलमां उत्पन्न थवावाणां वृन्तवद् अथवा
नालिवद् इल संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त एववाणां छे, ओम समणुं
लेधंओ. ” (प्रज्ञापनासूत्र).

“इल ओक एववाणां होय छे.” आ शीलाङ्काचार्यनुं कथन भूलभयुं छे, केमके
ते प्रज्ञापनासूत्रथी विरुद्ध छे.

इदोभां मूल एवनी अपेक्षा प्रत्येक जे-जे एव छे. प्रज्ञापनासूत्रमां कहुं छे-
“ इलमां जे एव कडेला छे. ”

आदि सुधी वृक्षानुं निरूपण कयुं, इवे शुब्र आदिना विषयमां कडे छे:-

जातस्तेन तच्छरीरमुत्पादितं, सर्वथा स्वायत्तीकृतं च, कथं तत्रान्येषां जीवानामव-
काशः, नहि देवदत्तशरीरे देवदत्त इवान्येऽपि जीवाः सर्वावयवेषु सहैव परस्परास्तु-
प्रवेशपूर्वकं प्रादुर्भवन्ति ?

यद्वा—येनैव तच्छरीरं निष्पाद्य सत्यवकाशे स्वेतरैः सह परस्परास्तुप्रवेशेन
स्वाधीनं कृतं, स एव यत्र प्रधानः स्यात्, ततश्च तस्यैव पर्याप्तापर्याप्तव्यवस्था,
प्राणापानादियोग्यपुद्गलोपादानं वा भवेत्, नतु शेषाणाम् ? अत्रोच्यते—

नायं प्रश्नो युक्तिपथमारोहति, शङ्काकर्तुर्जिनशासनपरिज्ञानाभावात् ।

पहल जो जीव उत्पन्न हुआ उसने वह शरीर उत्पन्न किया और उसे पूरी तरह अपना
लिया । फिर उस शरीर में दूसरे जीवों को अवकाश किस प्रकार मिल सकता है ? देवदत्त
के शरीर में देवदत्त की तरह अन्य जीव भी सब अवयवों में, एक दूसरे में मिलकर उत्पन्न
कैसे हो सकते हैं ?

अथवा—जिस जीवने वह शरीर उत्पन्न करके, अवकाश होने पर अपने
से भिन्न अन्य जीवोंके साथ मिलकर ग्रहण किया है वही जीव उस शरीर में प्रधान
होगा । ऐसी स्थिति में उसी की पर्याप्त और अपर्याप्त की व्यवस्था होगी । वही प्राणापान
आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करेगा । शेष जीवों के विषय में किस प्रकार यह व्यवस्था
हो सकती है ।

समाधान—यह शंका उचित नहीं कही जा सकती, क्योंकि शंकाकार को
जिनशासन का परिज्ञान नहीं है ।

वे एव उत्पन्न थये तेणे ते शरीर उत्पन्न कथुं' अने तेणे पूरी रीते पोतानुं करी
लीधुं. पछी अे शरीरमां धीज्ज एवोने अवकाश देवी रीते भणी शके छे ? देवदत्तना
शरीरमां देवदत्तनी प्रभाणे अन्य एव पणु तमाभ अवयवोमां अेक धीज्जने भणीने
उत्पन्न देवी रीते थर्छ शके छे ?

अथवा वे एवे आ शरीर उत्पन्न करीने अवकाश भजतां पोतानाधीं भिन्न
अन्य एवोनी साथे भणीने अडणु कथुं' छे ते एव अे शरीरमां प्रधान थशे. अेवी
अवस्थामां-स्थितिमां अेनी पर्याप्त अने अपर्याप्तनी व्यवस्था थशे. तेअ प्राणु-
अपान आदिना योग्य पुद्गलोने अडणु करशे. शेष-आधीना एवोना विषयमां अे
व्यवस्था देवी रीते थर्छ शके छे ?

समाधान—आ शंका योग्य नथी केभके-शंका करतारने जिन, शासननुं
परिज्ञान नथी.

दीनि । हरितानि-तन्दुलीयक-वस्तुल-मार्जारपादिका-पालह्वयादीनि । ओषध्यः-शालि-व्रीहि-गोधूम-यव-वर्जरी-मुद्ग-मापादयः । जलरुहाः-उत्पल-पद्म-कुमुद-नलिन-पुण्डरीक-शतपत्र-सहस्रपत्र-कोकनदा-रविन्द-पनक-पनकचट्ट-शैवालदयः । कुहणाः भूमिस्फोटकाऽऽपकाय-सर्पच्छत्रादयः ।

उक्ताः प्रत्येकशरीरा वनस्पतयः । अथ साधारणशरीराः प्ररूप्यन्ते—

साधारणनामकर्मोदयादनन्तानां जीवानां साधारणमेकं शरीरं भवति । तस्मात् साधारणमेकं शरीरं येषां ते साधारणशरीराः ।

ननु कथमनन्तजीवानामेकं शरीरं संभवति, तथाहि-यः खलु प्रथमं

कहलाते हैं । तन्दुलीयक, वस्तुल, मार्जारपादिका, पालंकी आदि को हरित कहते हैं । शालि व्रीहि (धान) ओ गेहूँ, जौ, वाजरी, मूग, उडद आदि के पौधे ओषधि कहलाते हैं । उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, पुण्डरीक शतपत्र, सहस्रपत्र, कोकनद, अरविन्द, पनक, पनकचट्ट, शैवाल आदि को जलरुह कहते हैं । भूमिस्फोटक, आपकाय और सर्पच्छत्र आदि कुहण कहलाते हैं ।

यहाँ तक प्रत्येकशरीर वनस्पति का विवेचन हुआ । साधारणशरीर का प्ररूपण इस प्रकार है—

साधारणनामकर्म के उदय से अनन्त जीवों का एक साधारण होता है । जिनका शरीर साधारण अर्थात् एक हो, वे साधारणशरीर कहलाते हैं ।

शङ्का—अनन्त जीवों का शरीर एक कैसे हो सकता हो ? क्यों कि पहले-

वस्तुल (अथवा) मार्जारपादिका, पालंकी (सुवापालक) आदिने हरित कहे थे. शाली, व्रीहि (धान्य) गेहूँ-धौं, जव, भाजरी, मग, उडद आदि ओषधि कहेवाय थे. उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, पुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, कोकनद, अरविन्द, पनक, पनकचट्ट. शैवाल आदिने जलरुह कहे थे. भूमिस्फोटक, आपकाय अने सर्पच्छत्र आदि-कुहण कहेवाय थे.

आदि सुधी प्रत्येक वनस्पतिनुं विवेचन थयुं, साधारणशरीरनुं प्ररूपण आ प्रकारे थे-

साधारणनामकर्मना उदयथी अनन्त ज्योनुं अेक साधारणशरीर डोय थे. ज्योनुं शरीर साधारण अर्थात् अेक डोय ते साधारणशरीर कहेवाय थे.

शङ्का—अनन्त ज्योनां शरीर अेक केवी रीते डोय शके थे ? केमके पडेल वडेवे।

સાધારણમાહારો, સાધારણમાણપાણગ્રહણં ચ ।

સાધારણજીવાણં, સાધારણલક્ષણં એયં” ॥ ૧૮ ॥ (પ્રજ્ઞા૦ ૧૧૫)

છાયા-સાધારણમાહારઃ, સાધારણમાણપાણગ્રહણં ચ ।

સાધારણજીવાનાં, સાધારણલક્ષણમેતત્ ॥ ૧૮ ॥

એવં ચ પરસ્પરાનુવિદ્વાનન્તજીવસમૂહરૂપેણ એકશરીરાવસ્થાપિનો જીવાઃ સાધારણશરીરા ઇતિ સિદ્ધમ્ । એતે સાધારણજીવશબ્દેન સાધારણશબ્દેનાપિ ચ વ્યપદિશ્યન્તે ।

તેઽનેકત્રિધાઃ-સૂરણકન્દ - વજ્રકન્દ-શર્કરાકન્દ - રક્તાલુ-પિંડાલુ - લહસુન-પલાણ્ડુ-ગૃહ્જન-શુદ્ધવેરાદયઃ । વનસ્પતેર્મૂલસંલગ્નો ભૂમ્યન્તર્ગતો ભાગવિશેષઃ કન્દઃ । એતેઽનન્તજીવપિંડસ્વરૂપાઃ સન્તિ ।

સાધારણ જીવોં કા આહાર સાધારણ હોતા હૈ ઓર સાધારણ પ્રાણાપાન કા પ્રહણ હોતા હૈ, ઇસ પ્રકાર ડનકા યહ સાધારણ લક્ષણ કહા ગયા હૈ” ॥૧૮॥ (પ્રજ્ઞા૦ ૧૧૫)

ઇસ પ્રકાર સિદ્ધ હુવા કિ એક ડૂસરે મેં મિલે હુપ અનન્તજીવસમૂહરૂપ સે એક હોં શરીર મેં રહને વાલે સાધારણ જીવ હૈં । ઇન જીવોં કે લિપે ‘સાધારણજીવ’ તથા ‘સાધારણ’ શબ્દ કા મી વ્યવહાર કિયા જાતા હૈ ।

‘ સાધારણ જીવ અનેક પ્રકાર કે હોતે હૈં । જૈસે-સૂરણકન્દ, વજ્રકન્દ, શર્કર-કન્દ, રક્તાલુ, પિંડાલુ, લહસુન, વ્યાજ, ગાજર, અદરસ આદિ । વનસ્પતિ કે મૂલક સાથ જુડા હુવા ઓર જમીન કે અંદર રહને વાલા હિસ્તા કંદ કહલાતા હૈ । યે કંદ અનંત જીવોં કે પિંડ હૈં ।

સાધારણ જીવેનો આહાર સાધારણ હોય છે અને સાધારણ પ્રાણાપાનનું શ્રદ્ધણ હોય છે. એ પ્રમાણે તેનું આ સાધારણ લક્ષણ કહ્યું છે (૧૮)”

આ પ્રમાણે સિદ્ધ થયું કે એક જીવમાં મળેલા અનન્તજીવસમૂહરૂપથી એક જ શરીરમાં રહેવા વાળાં સાધારણ જીવ છે. એ જીવેનો માટે ‘સાધારણ જીવ’ તથા ‘સાધારણ’ શબ્દનો પણ વ્યવહાર કરી શકાય છે.

સાધારણ જીવ અનેક પ્રકારના હોય છે. જેમ-સૂરણકંદ, રક્તાલુ, પિંડાલુ, લહસુ, ડુંગળી, ગાજર, આદુ આદિ. વનસ્પતિના મૂળની સાથે જોડાયેલા અને જમીનની અંદર રહેવાવાળો ભાગ કંદ કહેવાય છે. આ કંદ અનન્ત જીવેના પિંડ છે.

સાધારણનામકર્મ પ્રભાવાદનન્તા અપિ જીવા એકસ્મિન્નેવ કાલે સદૈવોત્પત્તિદેશે તિષ્ઠન્તિ, સદૈવ પર્યાપ્તિં નિર્વર્તયન્તિ, સદૈવ પ્રાણાપાનયોગ્યપુદ્ગલાનુપાદદતે, સદૈવ ચ તેષામાહારાદિપુદ્ગલગ્રહણમ્, તસ્માન્ન કાચિદનુપપત્તિરિતિ । ઉક્તઞ્ચ ભગવતા—

“ સમયં વર્કતાણં, સમયં તેસિં શરીરનિવ્વિત્તી ।

સમયં આણગ્ગહણં, સમયં ઉસ્સાનીસાસા ॥ ૧૬ ॥

એકસ્સ ડ જં ગહણં, વહૂણ સાહારણાણ તં ચેવ ।

જં વહુયાણં ગહણં, સમાસઓ તંપિ એગસ્સ ॥ ૧૭ ॥

છાયા-સમકં વ્યુત્ક્રાન્તાનાં, સમકં તેષાં શરીરનિર્વૃત્તિઃ ।

સમકમાનગ્રહણં, સમકમુચ્છ્વાસનિઃશ્વાસૌ ॥ ૧૬ ॥

એકસ્ય તુ યદ્ ગ્રહણં, વહૂનાં સાધારણાનાં તદેવ ।

યદ્ વહુકાનાં ગ્રહણં, સમાસતસ્તદપ્યેકસ્ય ॥ ૧૭ ॥

સાધારણનામકર્મ પ્રભાવ સે અનન્ત જીવ એક હી કાલ મેં સાથ હી ઉત્પત્તિ દેશ મેં ઉત્પન્ન હોતે હેં, સાથ હી પર્યાપ્તિયાં પૂર્ણ કરતે હેં, સાથ હી પ્રાણાપાન કે યોગ્ય પુદ્ગલોં કો ગ્રહણ કરતે હેં ઓર સાથ હી આહાર આદિ કે યોગ્ય પુદ્ગલોં કો ગ્રહણ કરતે હેં । અત એવ ઇસ કથન મેં તનિક મો અયુક્તિ નહીં હૈ । ભગવાન્ ને કહા હૈ—

“સાથ હી વે જીવ ઉત્પત્તિદેશ મેં આતે હેં, સાથ હી ઉનકા શરીર વનતા હૈ, સાથ હી પ્રાણ ગ્રહણ કરતે હેં, સાથ હી ઉચ્છ્વાસ-નિઃશ્વાસ હોતે હેં (૧૬) એક જીવ જો ગ્રહણ કરતા હૈ વહુ વહુત જીવોં કે લિએ સમાન હોતા હૈ ઓર વહુત જીવ જો ગ્રહણ કરતે હેં વહુ એક જીવ કે લિએ મી હોતા હૈ (૧૭)

સાધારણ નામકર્મના પ્રભાવથી અનન્ત એવ એકજ કાલમાં સાથેજ ઉત્પત્તિદેશમાં ઉત્પન્ન થયા છે. સાથેજ પર્યાપ્તિઓ પૂર્ણ કરે છે. સાથેજ પ્રાણ-અપાનના યોગ્ય-પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, અને સાથેજ આહાર આદિના યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે. એ માટે આ કથનમાં જરાપણ અસ્વાભાવિકતા અથવા અયુક્તતા નથી. ભગવાને કહ્યું છે કે:—

“તે એવ એક સાથેજ ઉત્પત્તિદેશમાં આવે છે, સાથેજ એનાં શરીરો બને છે, સાથેજ પ્રાણ ગ્રહણ કરે છે. સાથેજ નિઃશ્વાસ-ઉચ્છ્વાસ થાય છે. (૧૬) એક એવ જે ગ્રહણ કરે છે તે બધાય એવો માટે સમાનપણે થાય છે, અને તમામ એવો જે ગ્રહણ કરે છે તે એક એવને માટે પણ થાય છે. (૧૭)

आकारतः प्रत्येकवनस्पतिरूपेण दृश्यमाना अपि वनस्पतयोऽनन्तजीवाः सन्ति ।
तेषां लक्षणमुच्यते—

यस्मिन् मूले भग्ने सति समथक्राकारो भद्रो भवति, तत्र नियमतोऽनन्ता जीवा भवन्ति । तथा यस्मिन् स्कन्दे भग्ने संति समथक्राकारो भद्रो दृश्यते तत्राप्यनन्ता जीवाः । एवं शेषेषु स्कन्ध-त्वक्-शाखा-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीजेष्वपि विज्ञेयम् । ईदृशश्च भद्रः प्रायेणापरिक्वावस्थायां भवति ।

तथा-यस्य वनस्पतेर्मध्यगतसारभूतकाष्ठापेक्षया बहुलतरा स्थूला त्वग् भवति सा त्वगनन्तजीवस्वरूपा ।

आकार से प्रत्येकवनस्पति के समान दिखाई देने वाली वनस्पतियाँ भी अनन्त जीव वाली होती हैं । उनका लक्षण यह है—

जिसका मूलभाग तोड़ने पर समान चक्राकार भंग होता है, उसमें नियम से अनन्त जीव होते हैं । इसी प्रकार जिसका कन्द भँगने पर समान चक्राकार भंग दिखाई दे उसमें भी अनन्त जीव होते हैं । यही बात स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीजों के विषय में भी समझनी चाहिए । इस प्रकार के भंग प्रायः सब होते हैं जब वनस्पति कच्ची होती है ।

इसके अतिरिक्त जिस वनस्पति के बीच के सारभाग की अपेक्षा छाल बहुत मोटी होती है वह छाल भी अनन्त जीव वाली होती है ।

आकारधी प्रत्येक वनस्पतिना समान-सरणी-दृष्ट्यावावाणी वनस्पति पशु अनन्त लववाणी डोय छे. तेनुं लक्षयु अे छे. के-नेनां मूलभागने तोडवाधी समान अकाकार लंग थाय छे, तेमां नियमधी अनन्त लव डोय छे. अे प्रमात्ते नेनेा कन्द लांगवाधी समान अकाकार लंग थयेा दृष्टार्थ आवे तेमां पशु अनन्त लव डोय छे. अेन वात स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र-पांढडां, पुष्प, इल अने जीनेना विषयमां पशु समन्वी नेध अे. आ प्रकारनेा लंग प्रायः क्यारे थाय छे के न्यारे वनस्पति कायी डोय छे त्यारे थाय छे.

अेना सिवाय ने वनस्पतिना वन्थमां सारभागनी अपेक्षा छाल धएी न मोटी डोय छे, ते छाल पशु अनन्तलववाणी डोय छे.

वादरा वनस्पतयः संक्षेपतः पद्विधाः—अग्रवीज—मूलवीज—पर्ववीज—स्कन्ध-
वीज—वीजरुह—संमूर्च्छिमभेदात् । अग्रे वीजं येषां ते—अग्रवीजाः कोरण्टकप्रभृतयः ।
मूलमेव वीजं येषां ते मूलवीजाः कदल्यादयः । पर्वणि=ग्रन्थी सन्धिभागे पर्वे वा
वीजं येषां ते पर्ववीजाः इक्षु—वंश—वेत्रप्रभृतयः । स्कन्धः=स्थुडं, स एव वीजं येषां ते
स्कन्धवीजाः=अरणि—शल्लकी—स्तुहीप्रभृतयः । वीजाद् रोहन्ति=प्रादुर्भवन्तीति वीज-
रुहाः=शालि—गोधूम—जव—मक्का—वर्जरीप्रभृतयः । संमूर्च्छन्ति=वीजं विनाऽपि दग्धभू-
मावपि समुद्भवन्तीति संमूर्च्छिमाः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणविशेषाः ।

वादर वनस्पति संक्षेप में छह प्रकार की हैं—(१) अग्रवीज (२) मूलवीज
(३) पर्ववीज (४) स्कन्धवीज (५) वीजरुह और (६) संमूर्च्छिम । जिन वनस्पतियोंका
बीज आगे रहता है ऐसी कोरण्टक आदि वनस्पतियाँ अग्रवीज कहलाती हैं । पर्व
(पोर—संधिभाग) में जिनका बीज हो, या पर्व ही जिनका बीज हो उन्हें पर्ववीज
कहते हैं, जैसे—ईख, बांस, बेंत आदि । स्कंध जिनका बीज हो ऐसी अरणि,
शल्लकी, स्तुही (युहर) वगैरह स्कन्धवीज कहलाती हैं । शाली, गेहूँ, जौ, मक्की, वाजरी वगैरह
बीज से उगने वाली वनस्पति को वीजरुह कहते हैं । बीज के विना भी, जली, हुई
जमीन आदि में भी पृथ्वी और जल के संयोगमात्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पति
संमूर्च्छिम कहलाती है ।

वादर वनस्पति संक्षेपमां छ प्रकारणी छे— (१) अग्रणीज, (२) मूलणीज,
(३) पर्वणीज, (४) स्कन्धणीज, (५) णीजरुह, (६) संमूर्च्छिम. जे वनस्पतिअनुं
णीज आगण रहे छे जेवी कोरंटक आदि वनस्पतिअनुं अग्रणीज कडेवाय छे. मूल
अनुं णीज होय जेवी कदणी आदि वनस्पतिअनुं मूलणीज छे.—(पोर—संधिभाग)मां
जेनुं णीज होय तेने पर्वणीज कडे छे, जेमकेः—शेखरी, वांस, नेतर आदि. स्कंध
जेनुं णीज होय ते अरणी शक्य, स्तुही (थार) वगेरे स्कंधणीज कडेवाय छे. शाली,
घई, जव, मकाई, आजरी वगेरे णीजथी उगवा वाणी वनस्पतिने णीजरुह कडे
छे. णीज विना पणु अणी गज्जेली जमीन आदिमां पणु पृथ्वी अने जलना
अयोगमात्रथी उत्पन्न थवा वाणी वनस्पति ते संमूर्च्छिम कडेवाय छे.

गूढशिराकमिति=गूढाः=अलक्ष्यमाणाः शिरा=नाडीजालं तन्तुजालमिति वा यस्य तत् । प्रणष्टसंधीति-प्रणष्टः=सर्वथाऽनुपलक्ष्यमाणः, सन्धिः=पत्रद्वयसंयोगरूपो भागो यस्य तत् । एतादृशं पत्रं सक्षीरं=सदुग्धम्, निःक्षीरम्=अनुत्पन्नदुग्धं वा तदनन्त-जीवं विजानीहीत्यर्थः ।

एवमन्येऽप्यनेकविधाः शैवालादयोऽनन्तजीवाः स्वबुद्ध्या गुरुगमेन वा परिभाषनीयाः । विस्तरतस्तु जिज्ञासुभिः प्रज्ञापनासूत्रं विलोकनीयम् ।

सूक्ष्मनिगोदास्तु भगवद्वचनावगम्या एव, अनन्तशरीरसंघाते सत्यप्यतिमूक्ष्म-त्वान्नास्माकं चक्षुःपथेऽवतरन्ति । “आणागिज्ज्ञा एए चक्षुष्फासं न ते इति” इति वचनात् । उक्तञ्च प्रज्ञापनायां सदृष्टान्तं निगोदजीवस्वरूपं, यथा—

इसी प्रकार सेवार आदि अन्यान्य वनस्पतियों को भी अपनी बुद्धि से या गुरुगम से अनन्तजीववाली समझ लेनी चाहिए । जिन्हें विस्तरपूर्वक जानना हो उन्हें प्रज्ञापनासूत्र देखना चाहिए ।

सूक्ष्म निगोद भगवान् के वचन से ही समझे जा सकते हैं । एक शरीर में अनन्त जीवों का पिण्ड होने पर भी वे जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि हम अपने नेत्रों से (आगम) उन्हें नहीं देख सकते । कहा भी है—“ये जीव सर्वज्ञको आज्ञा से ही ग्रहण क्रिये (जाने) जाते हैं । आँखे उन्हें नहीं देख सकती” । प्रज्ञापना सूत्र में उदाहरण के साथ निगोद का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

ये प्रभाक्षे सेवाण आदि बूही-बूही वनस्पतिभ्योने पक्षु पोतानी बुद्धिथी अथवा गुरुगमथी अनन्तलववाणी समल लेवी नेधये, नेने विस्तारपूर्वकं लक्षुवानी ध्वथा होय तेभ्योये प्रज्ञापनासूत्र नेधं लेषुं नेधंये ।

सूक्ष्मनिगोद भगवानना वचनथी न समल शकय छे (लक्षु शकय छे) । अथ शरीरमां अनन्त लववेना पिंड होवा छतां पक्षु ते लव अटवा सूक्ष्म होय छे के आपक्षे आपक्षु नेत्रथी तेने नेधं शकता नथी । कक्षुं पक्षु छे के—“ते लव सर्वज्ञनी आज्ञा (आगम)थी न अडक्षु करवामां आवे छे—लक्षुवामां आवे छे, नेत्रथी ते नेधं शकता नथी ।” प्रज्ञापनासूत्रमां उदाहरणुनी साथे निगोदतुं स्वरूप आ प्रभाक्षे अतांथुं छे—

तथा—किसलयरूपे पत्राङ्कुरे उद्गम्यमाने नियमतोज्ज्वला जीवा भवन्ति । उक्तञ्च प्रज्ञापनायां प्रथमपदे ।

“सर्वोऽपि किसलयो खलु, उद्गममाणो अणंतो भणितो ।” इत्यादि ।

छाया—सर्वोऽपि किसलयः खलु उद्गच्छन् अनन्त भणितः इत्यादि ।

वनस्पतिभिद्यमानः पृथिवीसदृशेन भेदेन भिद्यते, सोऽप्यनन्तजीवस्वरूपः । अन्यच्च—

“गूढसिरागं पत्रं, सच्छीरं जं च होइ निच्छीरं ।

जंपि य पदणसंधि, अणंतजीवं वियाणाहि ॥ १ ॥” इति । (प्रज्ञा०)

छाया—गूढशिराकं पत्रं, सक्षीरं यच्च भवति निःक्षीरम् ।

यदपि च प्रणष्टसन्धि, अनन्तजीव विजानीहि ॥ १ ॥ इति ।

तथा—कौपल जब उत्पन्न होती है तो उसमें भी अनंत जीव होते हैं । प्रज्ञापना के पहले पदमें कहा है—

“उगते हुए सभी किसलय अनंतकाय कहे गये हैं ।”

जिस वनस्पति की प्रंथि या पोर, तोड़नेपर रज से भरी हो, या जो वनस्पति, टूटने पर पृथ्वी के समान भेदों से टूटे, वह भी अनंतजीववाली होती है ।

और भी कहा है:—

“जिस के तंतु साफ दिखाई न देते हों, तथा जिसकी संधि बिलकुल दिखाई न देती हो ऐसा पत्रा, अगर दूधवाला हो या उसमें दूध उत्पन्न न हो, उसे भी अनंतजीववाला समझना चाहिए ।”

तथा—कुंपण न्यारे उत्पन्न थाय छे त्यारे तेमां पण्य अनंत एव डोय छे । प्रज्ञापनासूत्रना प्रथम पदमां कहुं छे के:—

“उगतां डोय ते सर्वं किसलय (पक्षप तान्) कुमणा पाननो संभूळ) अनन्तकाय कक्षां छे ।”

जे वनस्पतिनी अंधि—गांड अथवा पोर, तोड़वाथी रजथी लरेली, डोय अथवा जे वनस्पति, टूटवाथी पृथ्वीना समान लोडोथी टूटे ते पण्य अनंत एववाणी डोय छे । भीलुं पण्य कहुं छे के:—

“जेनां तंतुओ चोण्णां देणातां न डोय, तथा जेनी संधि (संधि) भीलकुल देणाती डोय नहि, जेवां पांडश दूधवाणां डोय अथवा जेमां दूध उत्पन्न डोय नहि, तेने पण्य अनंत-एव वाणा समजवा न्हैजे ।”

गूढशिराकमिति=गूढाः=अलक्ष्यमाणाः शिराः=नाडीजालं तन्तुजालमिति वा यस्य तत् । प्रणष्टसंधीति=प्रणष्टः=सर्वथाऽनुपलक्ष्यमाणः, सन्धिः=पत्रद्वयसंयोगरूपो भागो यस्य तत् । एतादृशं पत्रं सक्षीरं=सदुग्धम्, निःक्षीरम्=अनुत्पन्नदुग्धं वा तदनन्त-जीवं विजानीहीत्यर्थः ।

एवमन्येऽप्यनेकविधाः शैवालादयोऽनन्तजीवाः स्वबुद्ध्या गुरुगमेन वा परिभाषनीयाः । विस्तरतस्तु जिज्ञासुभिः प्रज्ञापनासूत्रं विलोकनीयम् ।

सूक्ष्मनिगोदास्तु भगवद्वचनावगम्या एव, अनन्तशरीरसंघाते सत्यप्यतिमूक्ष्म-त्वान्नास्माकं चक्षुःपथेऽवतरन्ति । “आणागिज्ज्ञा ए ए चक्षुष्फासं न ते इति” इति वचनात् । उक्तञ्च प्रज्ञापनायां सदृष्टान्तं निगोदजीवस्वरूपं, यथा—

इसी प्रकार सेवार आदि अन्यान्य वनस्पतियों को भी अपनी बुद्धि से या गुरुगम से अनंतजीववाली समझ लेनी चाहिए । जिन्हें विस्तारपूर्वक जानना हो उन्हें प्रज्ञापनासूत्र देखना चाहिए ।

सूक्ष्म निगोद भगवान् के वचन से ही समझे जा सकते हैं । एक शरीर में अनंत जीवों का पिण्ड होने पर भी वे जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि हम अपने नेत्रों से (आगम) उन्हें नहीं देख सकते । कहा भी है—“ये जीव सर्वज्ञकी आज्ञा से ही ग्रहण किये (जाने) जाते हैं । आंखे उन्हें नहीं देख सकती” । प्रज्ञापना सूत्र में उदाहरण के साथ निगोद का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

ये प्रभाषे सेवाण आदि नृदी-नृदी वनस्पतिभ्योने पषु पोतानी बुद्धिथी अथवा गुरुगमथी अनंतलववाणी समल लेवी नेधये, नेने विस्तारपूर्वक लक्षुवानी धन्धा डोय तेभ्योभ्ये प्रज्ञापनासूत्र नेध लेखु नेधये.

सूक्ष्मनिगोद भगवानना वचनथी न समल शकय छे (लक्षु शकय छे). येक शरीरमां अनंत लववोना पिंड डोवा छतां पषु ते लव अटला सूक्ष्म डोय छे के आपषु आपषु नेत्रथी तेने नेध शकता नथी. कषु पषु छे के:-“ते लव सर्वज्ञनी आज्ञा (आगम)थी न अलक्षु करवामां आवे छे-लक्षुवामां आवे छे, नेत्रथी ते नेध शकता नथी.” प्रज्ञापनासूत्रमां उदाहरणुनी साथे निगोदपुं स्वरूप आ प्रभाषे पतांधुं छे-

“ જહ અયગોલો ધંતો, જાઓ તત્તવગ્નિજ્ઞસંકાસો ।

સવ્વો અગ્નિપરિણ્ણો, નિગોદજીવે તદ્દા જાણ ” ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

છાયા—યથાઽયોગોલો ધ્માતો, જાતસ્તપ્તવપનીયસંકાશઃ ।

સર્વોઽગ્નિપરિણ્ણો, નિગોદજીવાન્ તથા જાનીદિ ॥ ૧ ॥

યથા—અયોગોલોઽગ્નિના ધ્માતઃ તપ્તસુવર્ણસદૃશઃ સર્વાંશ્તોઽગ્નિપરિણ્ણોઽગ્નિ-
રૂપ એવ ભવતિ હે શિષ્ય ! તથૈવ નિગોદજીવાન્ જાનીદિ । નિગોદજીવાનાં પરિમાણ-
સ્વરૂપમેવ વિજ્ઞેયમ્—

અયં લોકશ્ચતુર્દશરજ્જુપરિમિતોઽસ્તિ । એકો રજ્જુરસંખ્યાતયોજનાત્મકઃ, યોજનં
સંખ્યાતાઙ્ગુલપરિમિતમ્, એકમઙ્ગુલમસંખ્યાતાકાશપદેશાત્મકં ભવતિ । તસ્યાઙ્ગુ-
જસ્યૈકૈકાકાશપદેશે નિગોદાનામસંખ્યાતા ગોલકાઃ, એકૈકસ્મિન્ ગોલકે નિગોદાનામ-
સંખ્યાતાનિ શરીરાણિ, એકૈકસ્મિશ્ચ શરીરેઽનન્તા જીવા નિવસન્તિ । ઉક્તશ્ચ—

“જેસે અગ્નિ મેં તપાયા હુવા લોહે કા ગોલા તપે સોને કે સમાન પૂર્ણતયા અગ્નિરૂપ
હી હો જાતા હૈ; હે શિષ્ય ! उसी प्रकार निगोद के जीव समस्तो ” । નિગોદ જીવો કા પરિમાણ
ઇસ પ્રકાર સમજના ચાહિએ—

લોકાકાશ ચૌદ રાજૂ કા હૈ । એક રાજૂ મેં અસંખ્યાત યોજન હોતે હૈં ઓર
સંખ્યાત અંગુલ કા એક યોજન હોતા હૈ । આકાશ કે અસંખ્યાત પ્રદેશ—પરિમિત એક અંગુલ
હોતા હૈ । ઇસ અંગુલ કે એક—એક આકાશ પ્રદેશ મેં નિગોદ જીવો કે અસંખ્યાત ગોલે હોતે
હૈં । એક—એક ગોલક મેં અસંખ્યાત શરીર હોતે હૈં ઓર એક—એક શરીર મેં અનન્ત જીવો કા
નિવાસ હૈ । કહા મી હૈ—

“એમ અગ્નિમાં તપાવેલો લોહાનો ગોળો તપેલા સોના—પ્રમાણે પૂર્ણપણે
અગ્નિરૂપ જ થઈ બચ છે, હે શિષ્ય ! એ પ્રમાણે નિગોદના જીવ સમસ્તે.” નિગોદના
જીવોનું પરિમાણ—એ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ—

લોકાકાશ ચૌદ રાજૂનો છે. એક રાજૂમાં અસંખ્યાત યોજન થાય છે, અને
સંખ્યાત અંગુલનો એક યોજન થાય છે. આકાશના અસંખ્યાતપ્રદેશ—પરિમિત એક
અંગુલ હોય છે. એ અંગુલના એક—એક આકાશપ્રદેશમાં નિગોદ જીવોના અસંખ્ય
ગોળા હોય છે. એક—એક ગોલકમાં અસંખ્યાત શરીર હોય છે અને એક—એક શરીરમાં
અનન્ત જીવોનો નિવાસ છે. કહ્યું પણ છે—

“गोला य असंखिज्जा, हुंति निगोया असंखया गोले ।

एकैको य निगोओ अणंतजीवो मुणेयव्वो ” ॥ १ ॥

छाया-गोलाश्च असंख्येयाः, भवन्ति निगोदा असंख्येया गोले ।

एकैकश्च निगोदः, अनन्त जीवो ज्ञातव्यः ॥ १ ॥ इति ।

तत्रस्थप्रत्येकजीवस्य तैजसकार्मणे द्वे द्वे शरीरे पृथक् पृथक् स्तः । तदेकैकं शरीरमनन्तज्ञानावरणीयादियावदनन्तान्तरायकर्मणां वर्गणाभिः संयुक्तं वर्तते । सा चैकैका वर्गणाऽनन्तसूक्ष्मपरमाणुमयो भवतीति सूक्ष्मत्वं निगोदजीवानां सिद्धम् ।

ये च शरीरत्रयाङ्गुलासंख्येयभागशरीरादिभेदाः पृथिवीकायोद्देशोऽभिहित्वास्ते वनस्पतिकायानामपि बोध्याः, केवलमनित्यंस्थम्=अनियताकारं शरीरसंस्था-

“अंगुल के एक आकाशप्रदेश में असंख्यात गोले, एक गोले में असंख्यात निगोद-शरीर और एक-एक निगोदशरीर में अनंत जीव जानने चाहिए” ॥१॥

निगोद में रहने वाले हरेक जीव के अलग-अलग तैजस और कर्मण शरीर होते हैं, और प्रत्येक शरीर अनन्त ज्ञानावरणीय आदि तथा अनन्त अन्तराय कर्मों की वर्गगाओं से संयुक्त है, वह एक वर्गगा अनन्तसूक्ष्मपरमाणुरूप होती है । इस कथन से निगोदिया जीवों की सूक्ष्मता सिद्ध होती है ।

पृथिवीकाय के उद्देश में तीन शरीर तथा अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना आदि का कथन किया है, वह वनस्पतिकाय के लिए भी समझना चाहिए । यहाँ विशेष बात यह है कि वनस्पति जीवों के शरीर का आकार अनियत होता है ।

“अंगुलना अेक आकाशप्रदेशमां असंख्यात गोणा, अेक गोणाभां असंख्यात निगोद-शरीर अने अेक-अेक निगोद शरीरमां अनन्तएव जणुवा नेधअे.” ॥१॥

निगोदमां रडेवा वाणा हरेक एवने अलग-अलग तैजस अने कार्मण शरीर डोय छे, अने प्रत्येक शरीर अनन्त ज्ञानावरणीय आदि तथा अनन्त अन्तराय कर्मोनी वर्गणुआधी संयुक्त छे. ते अेक वर्गणु अनन्तसूक्ष्मपरमाणुरूप डोय छे. आ वचनधी निगोदना एवोनी सूक्ष्मता सिद्ध थाय छे.

पृथ्वीकायना उद्देशमां त्रणु शरीर तथा अंगुलना असंख्यातमा लागनी अवगाहना आदिनुं निरूपणु कथुं छे. ते वनस्पतिकाय माटे पणु सभए लेवुं नेधअे. अहिं विशेष वात अे छे के:-वनस्पतिना एवोनी आकार अनियत (नियमवगरेनी) डोय छे.

નમેષામ્, શેષમન્યત્ સમાનમ્ । एषां स्थानं घनोदधिवातवलयवादि । संख्यामङ्गीकृत्या-
नन्ताः सर्वे वनस्पतयः ।

एवं वनस्पतीनां वृक्षादिभेदैः प्रत्येकसाधारणभेदैः, तथा-वर्णगन्धरसस्पर्शभेदैश्च
सहस्रशो भेदा भवन्ति । योन्यादिभेदैः पुनर्लक्षशो भेदा जायन्ते ।

वनस्पतेर्योनिः संवृता भवति । तस्याः सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः,
तथा शीतोष्णामिश्रभेदेन त्रयो भेदाः । एवं गणनया प्रत्येकवनस्पतियोनीनां दशलक्ष-
संख्यका भेदा भवन्ति । साधारणवनस्पतीनां चतुर्दशलक्षसंख्यका भेदा जायन्ते ।

શેષ સવ પૂર્વવત્ હૈ । इन का स्थान घनोदधिवातवलय आदि हैं । संख्या की अपेक्षा पूर्वोक्त
सब प्रकार की वनस्पति-संख्या अनन्त है ।

વૃક્ષ આદિ કે ભેદોં કોં અપેક્ષા, પ્રત્યેક-સાધારણ ક્રી અપેક્ષા તથા વર્ણ, રસ ગંધ ઔર
સ્પર્શ કે ભેદ ક્રી અપેક્ષા વનસ્પતિ કે હજારોં ભેદ હોતે હૈં । યોનિ આદિ કે ભેદોં કોં અપેક્ષા
વિચાર ક્રિયા જાય તો લાક્ષોં ભેદ હો જાતે હૈં ।

वनस्पति की योनि संवृत है । संवृतयोनि सचित्त, अचित्त, और मिश्र के भेद से
तीन प्रकार की होती है । शीत, उष्ण तथा मिश्र के भेद से भी तीन प्रकार की है । इस
प्रकार गणना करने से प्रत्येकवनस्पति की दस लाख योनियाँ है । साधारणवनस्पति की
योनियाँ चौदह लाख हैं ।

બાકી તમામ પૂર્વ પ્રમાણે છે. એનું સ્થાન ઘનોદધિવાતવલય આદિ છે. સંખ્યાની
અપેક્ષા પૂર્વોક્ત સર્વ પ્રકારની વનસ્પતિ-સંખ્યા અનન્ત છે.

વૃક્ષ આદિના ભેદોની અપેક્ષાએ, પ્રત્યેક-સાધારણ અપેક્ષાએ તથા વર્ણ, રસ,
ગંધ અને સ્પર્શના ભેદની અપેક્ષાએ વનસ્પતિના હજારો ભેદ થાય છે. યોનિ
આદિના ભેદોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો લાખો ભેદ થઈ વત્ય છે.
વનસ્પતિની યોનિ સંવૃત છે. સંવૃતયોનિ સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્રના ભેદથી ત્રણ
પ્રકારની હોય છે અને શીત ઉષ્ણ તથા મિશ્રના ભેદથી ત્રણ પ્રકારની છે. આ
પ્રમાણે ગણના કરવાથી પ્રત્યેકવનસ્પતિની દસ લાખ યોનિઓ છે, અને સાધારણ-
વનસ્પતિની યોનિઓ ચૌદ લાખ છે.

परिमाणद्वारम्—

उक्तं प्ररूपणाद्वारम् । परिमाणद्वारमुच्यते—पर्याप्तवादराः प्रत्येकवनस्पति-
जीवाः पिण्डीभूत-चतुष्कोणीकृत-लोकश्रेण्यसंख्येयभागवर्त्याकाशप्रदेशराशिममाणाः,
वादरपर्याप्ततेजस्कायजीवराशेश्चासंख्यातगुणाः सन्ति ।

अपर्याप्तवादराः प्रत्येकवनस्पतिजीवास्तु असंख्यातानां लोकानां यावन्तः प्रदेशा-
स्तावन्तः सन्ति । इमेऽप्यपर्याप्तवादरतेजस्कायजीवराशितश्चाऽसंख्यातगुणाः । प्रत्येक-
वनस्पतयः सूक्ष्मा न सन्ति, शास्त्रेऽनुपादानात् ।

साधारणवनस्पतिजीवाः—सूक्ष्मवादरपर्याप्तमेदैश्वर्यविधा अपि पृथक् पृथगन-
न्तानां लोकानां यावन्तः प्रदेशास्तावन्त इति । अत्रायं विशेषः—

परिमाणद्वार—

प्ररूपणाद्वारं हुम्बा । अत्र परिमाणद्वारं कहते हैं—पर्याप्तवादर—प्रत्येकवनस्पति जीव
चौकोन की हुई लोकश्रेणी के असंख्यातवर्ग भागवर्ती आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर
हैं, और वादरपर्याप्ततेजस्काय के जीवों से असंख्यातगुणे हैं । असंख्यात लोककाशों के
प्रदेशों की बराबर अपर्याप्त वादर प्रत्येकवनस्पतिकाय के जीव हैं, और ये भी अपर्याप्तवादर-
तेजस्काय के जीवों से असंख्यात गुणे हैं । प्रत्येक वनस्पति में सूक्ष्म जीव नहीं होते, क्योंकि
कि शास्त्र में कहीं उनका उल्लेख नहीं है ।

साधारण वनस्पति के जीव सूक्ष्म, वादर, पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चार प्रकार
के हैं । इन चारों राशियों में से प्रत्येकजीवराशि की संख्या अनन्त लोकाकाश के प्रदेशों के
बराबर है । इसमें इतनी विशेषता समझ लेनी चाहिए—

परिमाणद्वार—

प्ररूपणाद्वारं यथुं । इवे परिमाणद्वारं कहे છે—पर्याप्तभाદરપ્રત્યેકવનસ્પતિ જીવ,
ચતુષ્કોણી કરેલી લોકશ્રેણિના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી આકાશપ્રદેશોની રાશિ-દગલાના
ખરાબર છે અને બાદરપર્યાપ્તતેજસ્કાયના જીવોથી અસંખ્યાતગણા છે, અસંખ્યાત
લોકાકાશોના પ્રદેશોની ખરાબર અપર્યાપ્તબાદર પ્રત્યેકવનસ્પતિકાયના જીવ છે. અને તે
પણ અપર્યાપ્તબાદર તેજસ્કાયના જીવોથી અસંખ્યાતગણા છે. પ્રત્યેક વનસ્પતિમાં
સૂક્ષ્મજીવ નથી, કેમકે—તેનો શાસ્ત્રમાં કોઈ સ્થાને ઉલ્લેખ નથી.

સાધારણ વનસ્પતિના જીવ સૂક્ષ્મ, બાદર, પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના લેહથી
ચાર પ્રકારના છે. આ ચારેય રાશિઓમાંથી પ્રત્યેકજીવરાશિની સંખ્યા અનન્ત
લોકાકાશના પ્રદેશોની ખરાબર છે. તેમાં એટલી વિશેષતા સમજ લેવી જોઈએ—

સાધારણવાદરપર્યાપ્તકેમ્યઃ સૂક્ષ્મા અપર્યાપ્તા અસંખ્યાતગુણાઃ । તેમ્યોડપિ સૂક્ષ્મપર્યાપ્તકા અસંખ્યાતગુણા વિદ્નેયા ઇતિ ।

સૂક્ષ્માનન્તજીવાનાં પરિમાણં કિયદિતિ સદૃષ્ટાન્તમુચ્યતે-યથા-કચિત્ પ્રસ્થા-દિમાપકવસ્તુના ધાન્યરાશિ પરિમાપ્યાઽન્યત્ર નિક્ષિપતિ, તથા યદિ સાધારણસૂક્ષ્મ-જીવરાશિ લોકરૂપપ્રસ્થેન માંપયેત્ લોકા સંમૃતા મયેયુઃ ।

પર્યાપ્તવાદરનિગોદપરિમાણં ચ યથા—

ઘનીભૂતચતુરસ્રીકૃતસકલલોકપ્રતરસ્યાસંખ્યેયમાગવર્તિપ્રદેશરાશિમમાણાઃ પર્યા-પ્તકવાદરનિગોદાઃ સન્તિ, તે પ્રત્યેકશરીર-વાદરવનસ્પતિ-પર્યાપ્તકેમ્યો-

સાધારણવાદરપર્યાપ્ત જીવોં કો અપેક્ષા વાદર-અપર્યાપ્ત અસંખ્યાતગુણા હૈં । વાદરપર્યાપ્ત કો અપેક્ષા સૂક્ષ્મ-અપર્યાપ્ત અસંખ્યાતગુણા હૈં ઓર સૂક્ષ્મ-અપર્યાપ્ત ઉનસે મી અસંખ્યાતગુણા હૈં ।

સૂક્ષ્મ અનન્ત જીવોં કા પરિમાણ કિતના હૈ, યહ વાત દૃષ્ટાન્ત દેકર સમજાતે હૈ-જૈસે કોઈ પુરુષ પ્રસ્થ (સિર) આદિ વાંટોં સે ધાન્ય તોલકર દૂસરી જગહ રલ દેલા હૈ, ઉસી પ્રકાર યદિ સાધારણસૂક્ષ્મજીવરાશિ કો લોકરૂપી પ્રસ્થ સે નાપા જાય તો અનન્ત લોક ભર જાઈં ।

પર્યાપ્ત વાદર નિગોદ જીવોં કા પરિમાણ ઇસ પ્રકાર કા હૈ—

ચૌકોર (ચતુષ્કોણ) ઘન કિચે હુઈ સમ્પૂર્ણ લોકપ્રતર કે અસંખ્યાતવેં માગવર્તી પ્રદેશોં કે બરાબર પર્યાપ્તવાદરનિગોદ જીવ હૈં । વે પ્રત્યેકશરીર-વાદરવનસ્પતિ

સાધારણપર્યાપ્ત જીવોંની અપેક્ષા વાદરઅપર્યાપ્ત અસંખ્યાતગણુા છે. વાદર-પર્યાપ્તની અપેક્ષા સૂક્ષ્મ-અપર્યાપ્ત અસંખ્યાતગણુા છે અને સૂક્ષ્મ-અપર્યાપ્ત તેનાથી પણ અસંખ્યાતગણુા છે.

સૂક્ષ્મ અનન્ત જીવોંનું પરિમાણ કેટલું છે. એ વાત દૃષ્ટાન્ત આપીને સમજાવે છે-જેમ કોઈ પુરુષ પ્રસ્થ (તોળવાનું વજન ૧ શેર) આદિ તોળવાના ઓંટ-વજનથી. ધાન્ય તોળીને બીજી જગ્યાએ રાખી દે છે તે પ્રમાણે જો સાધારણ સૂક્ષ્મ જીવરાશિને લોકરૂપી પ્રસ્થથી તોળવામાં આવે તો અનન્ત લોક ભરાઈ જાય.

પર્યાપ્તવાદરનિગોદ જીવોંનું પરિમાણ આ પ્રકારે છે-ચતુષ્કોણ ઘન કરેલા સમ્પૂર્ણ લોકપ્રતરના અસંખ્યાતમા-ભાગવર્તી પ્રદેશોંની બરાબર પર્યાપ્તવાદરનિગોદ જીવ છે.

असंख्येयगुणाः । शेषास्त्रयः—अपर्याप्तवाटरनिगोदाः, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदाः, पर्याप्त-
सूक्ष्मनिगोदाश्च प्रत्येकमसंख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणाः क्रमशो बहुतरकाः सन्ति ।
साधारणजीवाश्चैतेभ्यो निगोदपरिमाणेभ्योऽनन्तगुणाः सन्तीति बोध्यम् ।

यदि लोकाकाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैकः प्रत्येकवनस्पतिजीवः स्थाप्यते,
तर्हि असंख्याता लोका भ्रियन्ते । यदि तु लोकाकाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैको
निगोदजीवः स्थाप्यते, तर्हि अनन्ता लोका भ्रियन्ते ।

उक्तञ्च प्रज्ञापनायाम्—१ पदे ।

“लोगागासपप्से, परित्तजीवं ठवेहि एक्केकं ।

एवं ठवेज्जमाणा, हवंति लोगा असंखिज्जा ” ॥ १ ॥

पर्याप्त जीवों से असंख्यातगुणा हैं । शेष तीन अर्थात् अपर्याप्तवाटरनिगोद, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोद
और पर्याप्त सूक्ष्मनिगोद असंख्यात लोकाकाश प्रदेशों के बराबर हैं, और क्रमशः अधिक-
अधिक संख्या में हैं । साधारण जीव इन से अनन्तगुणा हैं ।

यदि लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक प्रत्येकवनस्पति के जीव स्थापित
किये जायँ तो असंख्यात लोक भर जायँ, और यदि लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-
एक निगोदिया जीव रखे जायँ तो अनन्त लोकाकाश भर जायँ । प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम
पदमें कहा है—

“लोकाकाश के एक-एक प्रदेशमें अगर प्रत्येकवनस्पति के एक-एक जीव
रख दिये जायँ तो असंख्यात लोक भर जाए ॥ १ ॥

ते प्रत्येकशरीर-आहरवनस्पति पर्याप्त एवोथी असंख्यात गणुा छे, भाडीना त्रलु
अर्थात्—अपर्याप्तवाटरनिगोद, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोद अने पर्याप्तसूक्ष्मनिगोद
असंख्यात-लोकाकाश प्रदेशोना अराणर छे, अने क्रमशः अधिक-अधिक संख्यामां
छे. साधारण एव एनाथी अनन्त गणुा छे.

जे लोकाकाशना ऐक-ऐक प्रदेशोमां ऐक-ऐक प्रत्येक वनस्पतिना एवने स्थापित
करवामां आवे तो असंख्यात लोक भरार्थ नथ, अने जे लोकाकाशना ऐक-ऐक प्रदेशमां
ऐक-ऐक निगोदिया एवने राखवामां आवे तो अनन्त लोकाकाश भरार्थ नथ.

प्रज्ञापनासूत्रना प्रथम पदमां कलुं छे के:-

“लोकाकाशना ऐक-ऐक प्रदेशमां जे प्रत्येक वनस्पतिना ऐक-ऐक एव
राखवामां आवे तो असंख्यात लोक भरार्थ नथ.” ॥ १ ॥

लोगागासपएसे निगोयजीवं ठवेहि णेक्केकं ।

एवं ठवेज्जमाणा, इवंति लोगा अणन्ताओ ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया-लोकाकाशप्रदेशे, प्रत्येकजीवं स्थापय एकैकम् ।

एवं स्थाप्यमाना भवन्ति लोका असंख्येयाः ॥ १ ॥

लोकाकाशप्रदेशे निगोदजीवं स्थापय एकैकम् ।

एवं स्थाप्यमानाः भवन्ति लोका अनन्ताः ॥ १ ॥

इति परिमाणद्वारम् ॥ सू० १ ॥

शब्दादिविषयासक्त्या वनस्पतिकायापमर्दनपराः पुनः पुनर्भवसिन्धौ निपत-
न्तीत्याशयेनाह-‘ जे गुणे. ’ इत्यादि ।

मूलम्—

जे गुणे से आवट्टे । जे आवट्टे से गुणे ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो गुणः स आवर्तः । य आवर्तः स गुणः ॥ सू० २ ॥

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक निगोद जीव रख दिये जायें तो इस प्रकार रखने से अनन्त लोक हो जाँएँ ” । इति परिमाणद्वार ॥ सू० २ ॥

इन्द्रियों के शब्द आदि विषयों में आसक्त होकर जो वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं वे वारम्बार भवसागर में डूबते हैं । इस अभिप्राय से शास्त्रकार कहते हैं:-
‘ जे गुणे ’, इत्यादि ।

मूलार्थ—जो गुण है सो आवर्त है । जो आवर्त है सो गुण है ॥ सू० २ ॥

“ लोकाकाशना ओक-ओक प्रदेशमां ओक-ओक निगोद एव राषवाभां आवे तो आ प्रकारे राषवाथी अनन्त लोक थर्ध नय. ” इति परिमाणद्वार. ॥ सू० १ ॥

इन्द्रियोना शब्द आदि विषयोमां आसक्त थर्धने ने वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे. ते वारंवार लव-सागरमां डूपी नय छे. ओ अलिप्राथथी शास्त्रकार कहे छे-
‘ जे गुणे. ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—ने शुष् छे ते आवर्त छे. ने आवर्त छे ते शुष् छे. ॥ २ ॥

टीका—

यो गुणः—शब्दादिकः, स आवर्तः—आवर्तन्ते=परिभ्राम्यन्ति जीवा यत्र स
—आवर्तः—जन्मजराधिव्याधिनानाविघ्नक्लेशसंपातस्वरूपः संसारः । कारणे कार्यो-
पचारात् संसारकारणीभूतस्य शब्दादिगुणस्य संसारत्वेन व्यपदेशः । गुणसेवनात्
संसारं प्राप्नोतीति भावः । उक्तमर्थं दृढीकर्तुमुक्तवाक्यं परावर्तयन्नाह—य आवर्त इति ।
यश्चावर्तः=संसारः, स गुणः=शब्दादिः । रागद्वेषवशगः संसारी नैव शब्दादिगुणतो
विरज्यते, न च मोक्षमार्गं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

यद्वा—‘गुणे’ ‘आवर्ते’ इति सप्तम्यन्तम् । यः गुणे=शब्दादीं वर्तते,

टीकार्थ—शब्द आदि जो गुण अर्थात् विषय है वही आवर्त है । जिसमें
आवर्तन अर्थात् भ्रमण किया जाय उसे आवर्त कहते हैं । जन्म—जरा, आधि—व्याधि
आदि नाना प्रकार के क्लेशों से परिपूर्ण यह संसार ही आवर्त है । शब्द आदि विषय
संसार के कारण हैं, स्वयं संसार नहीं हैं, किन्तु यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके
शब्दादि विषयों को ही संसार कहा है । आशय यह है कि—इन विषयों का सेवन करने
से संसार की प्राप्ति होती है । इसी अभिप्राय को दृढ करने के उद्देश्य से वाक्य को
पलट कर शास्त्रकार कहते हैं—‘जो आवर्त है वही गुण है’ । राग—द्वेष आदि के अधीन
रहने वाला संसारी जीव शब्द आदि गुणों से विरक्त नहीं होता और न मोक्षमार्ग
प्राप्त करता है ।

अथवा—मूल में जो ‘गुणे’ और ‘आवर्ते’ पद आये हैं । वे सप्तमीविभक्ति
में हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि—जो पुरुष शब्दादि गुणों में वर्तता है वह आवर्त

टीकार्थ—शब्द आदि ने गुण छे, अर्थात् विषय छे तेन आवर्त छे. नेमां
आवर्तन अर्थात् भ्रमण करवामां आवे तेने आवर्त कहे छे. जन्म, जरा, आधि, व्याधि
आदि नाना प्रकारना क्लेशोधी परिपूर्ण आ संसारन आवर्त छे. शब्द आदि विषय
संसारना कारण छे. स्वयं संसार नथी, परन्तु अर्धी कारणमां कार्यने उपचार करीने
शब्दादि विषयने न संसार कह्यो छे. आशय अे छे के:-विषयानुं सेवन करवाथी
संसारनी प्राप्ति थाय छे. ते अलिप्रायने दृढ करवाना उद्देश्यथी वाक्यने पहलीने शास्त्रकार
कहे छे—‘ने आवर्त छे ते गुण छे.’ रागद्वेष आदिना आधीन रहैवावाणा संसारी
एव शब्द आदि गुणोधी विरक्त रहैता नथी अने मोक्षमार्गने प्राप्त करता नथी.

अथवा—मूलमां ने ‘गुणे’ अने ‘आवर्ते’ पद आप्यां छे. ते सातमी विलक्षितमां
छे. अेनो अर्थ अे थयो के-ने पुरुष शब्दादि गुणोमां वर्ते छे ते आवर्त अर्थात्—

स आवर्ते=संसारे वर्तते । यश्चावर्ते, स गुणे वर्तते ।

ननु 'यो गुणे वर्तते, स आवर्ते वर्तते' इति यदुक्तं तत् सम्पद्यते, परन्तु य आवर्ते वर्तते, न त्वसौ नियमेन गुणे वर्तते । यत्तस्तीर्थङ्करा भावितात्मानो मुनयः प्रतिमाधारिश्चावकाश्चावर्ते वर्तन्ते न तु शब्दादिगुणेषु, तदेतत् कथमुपपद्यते—'यश्चावर्ते वर्तते स गुणे वर्तते' इति ? ।

अनुकूलशब्दादिषु रागः, प्रतिकूलशब्दादिषु द्वेषः समुद्भवतीति रागद्वेषपूर्वकं गुणेषु शब्दादिषु या प्रवृत्तिस्तस्या एवात्राधिकारः । एवं चास्य वाक्यस्य तीर्थङ्करादिविषयकत्वाभावात्प्रत्युक्तशङ्कावसर इति ।

अर्थात् संसार में वर्तता है, और जो संसार में वर्तता है वह शब्द आदि में वर्तता है ।

शङ्का—जो शब्दादि गुणों में वर्तता है वह संसार में वर्तता है, यह कथन तो ठीक है, परन्तु जो संसार में वर्तता है वह नियम से शब्दादि विषयों में नहीं वर्तता । भगवान् तीर्थंकर, भावितात्मा मुनि और प्रतिमाधारी श्रावक संसार में तो वर्तते हैं मगर शब्द आदि विषयों में नहीं वर्तते । अत एव यह कथन किस प्रकार बन सकता है कि जो आवर्त में वर्तता है वह शब्द आदि में वर्तता है ?

समाधान—अनुकूल शब्द आदि में राग उत्पन्न होता है और प्रतिकूल शब्द आदि में द्वेष होता है । इस प्रकार रागद्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति करने का ही यहाँ प्रकरण है । तीर्थंकर आदि राग-द्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति नहीं करते, अतः यह वाक्य तीर्थंकर या भावितात्मा मुनि आदि के लिए लागू नहीं होता । इस प्रकार उक्त शंका का यहाँ स्थान नहीं है ।

संसारमां वर्ते' छे, अने जे संसारमां वर्ते' छे ते शब्द आदिमां वर्ते' छे ।

शंका—जे शब्दादि शुद्धिमां वर्ते' छे, ते संसारमां वर्ते' छे. आ कथन-तो ठीक छे, परन्तु जे संसारमां वर्ते' छे ते नियमथी शब्दादिक विषयोमां वर्तता नथी. भगवान तीर्थंकर भावितात्मा मुनि अने प्रतिमाधारी श्रावक संसारमां तो वर्ते' छे, परन्तु शब्दादि विषयोमां वर्तता नथी. अे भाटे आ कथन केवी रीते धनी शके छे, के- 'जे आवर्तमां वर्ते' छे ते शब्द आदिमां वर्ते' छे. '

समाधान—अनुकूल शब्द आदिमां राग उत्पन्न थाय छे अने प्रतिकूल शब्द आदिमां द्वेष थाय छे. आ प्रभाछे राग-द्वेषपूर्वक विषयोमां प्रवृत्ति करवी तेनुं जे अर्द्धां प्रकरण छे. तीर्थंकर आदि राग-द्वेषपूर्वक विषयोमां प्रवृत्ति करता नथी, भाटे आ वाक्य तीर्थंकर अथवा भावितात्मा मुनि आदिना भाटे लागुं थतुं नथी. आ प्रभाछे पूर्व जे शंका करी छे ते शंकाने अर्द्धां स्थान नथी.

गत्यागतिरूप आवर्तोऽपि न तेषां दुःखजनको भवति । सामान्यतः संसार-
वर्तित्वं सामान्यशब्दादिगुणोपलब्धिश्च सर्वेषां संसारिणां संभवत्येव, तस्माद् गुणोप-
लब्धिर्न प्रतिपिध्यते । किन्तु यस्तत्र रागद्वेषपरिणामः स एव परिवर्जनीयत्वेन प्रति-
बोध्यते, अत एवोक्तं भगवता—

“कण्णसोक्खेहिं सदेहिं पेम्मं नाभिनिवेसए” इत्यादि । किञ्च—

“न शक्यं रूपमद्रष्टुं, चक्षुर्गोचरमागतम् ।

रागद्वेषौ तु यौ तत्र, तौ बुधः परिवर्जयेत् ॥”

इदमत्र तत्त्वम्—शब्दादिविषयासक्ताः खलु वनस्पतिजीवान् बहुशी

गति-आगतिरूप आवर्त भी उनके लिए दुःखजनक नहीं है । सामान्य संसारवर्तीपन
और विषयो की सामान्य उपलब्धि सभी संसारी जीवों में होती है, अतः विषयो की उपलब्धि
का निषेध नहीं किया जा सकता । हैं विषयो में जो राग-द्वेषरूप परिणाम है वही व्याज्य है ।
अतः भगवान् ने कहा है—

“कण्णसोक्खेहिं सदेहिं पेम्मं नाभिनिवेसए” इत्यादि ।

“कानों को सुख देने वाले शब्दों पर अनुराग नहीं करना चाहिए” । तथा—
आंखोंके आगे आया हुआ रूप अनदेख नहीं किया जा सकता, वह तो दीख
ही जाता है, मगर उस से कोई हानि नहीं होती । अलवत्ता उस रूप पर राग या द्वेष करने
से हानि होती है । अतः विवेकी पुरुष राग और द्वेष का त्याग करे ।

आशय यह है—शब्द आदि विषयो में आसक्त पुरुष वनस्पतिकाय के जीवों की

गति-आगतिरूप आवर्त' यद्यु तेभ्योने भाटे दुःखरूप नथी. सामान्य संसार-
वर्तीपणुं अने विषयोनी सामान्य उपलब्धि, सर्व संसारी लोकोभां होय छे. अथी
विषयोनी उपलब्धिने निषेध करी शकतो नथी. डा; विषयोभां ले राग-द्वेषरूप
परिणाम छे, तेन त्याज्य-त्यज्य देवा योज्य छे. अथेवे भगवाने कहुं छे—

“कण्णसोक्खेहिं सदेहिं पेम्मं नाभिनिवेसए” अर्थात् कानोने सुख देवावाणा
शब्दो पर प्रीति नहि करवी जेईअे. तथा नेत्रोनी सामे आवेला रूप, न दीडा-
अदीक करी शकता नथी. ते तो देवोभां आवेज्य छे, परन्तु तेमां डोई डानि
थती नथी. अत्रणत्त अे इय पर राग अथवा द्वेष करवायी डानि थाय छे. अे भाटे
विवेकी पुरुष राग अने द्वेषने त्याग करे.

आशय अे छे डेः—शब्द आदि विषयोभां आसक्त पुरुष वनस्पतिकायना लोकोनी

विहिंसन्ति । तथा हि-अनुकूलशब्दध्वनार्थी वेणुवीणापटहादिवाद्यानि निर्मातुं बहु-
विधान् वनस्पतीन् विनिहन्ति । प्रियरूपविलोकनार्थी काष्ठमययुवतिप्रतिमा-गृह-
तोरण-वेदिका-स्तम्भादि रचयितुं कतिचन वनस्पतीन् विनिकृन्तति । एवं प्राणसुखार्थी
कर्पूर-केतकी-पाटल-लवङ्ग-सरसचन्दना-गुरु-केसर-जातीफल-जातीपत्रिकादीन् परि-
ग्रहीतुं विविधान् वनस्पतीन् विहिनरित । रसास्वादसुखार्थी मूलकन्दादिगतानसंख्या-
ताननन्तान् वा जीवानुपमर्दयति । एवं स्पर्शसुखामिलापी च कमलदलमृणालकदली-
दलवल्कलानुकूलदुकूलतूलादीन् परिग्रहीतुं नानाविधवनस्पतीनां प्राणव्यपरोपणं
प्रकरोति ।

बहुत हिंसा करते हैं । जैसे-अनुकूल शब्द सुनने का अभिलाषी पुरुष वेणु, वीणा,
पटहा (ढोल) आदि वाद्य बनाने के लिए नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के जीवों की
हिंसा करता है । प्रियरूप देखने का इच्छुक युवती की काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण,
वेदिका, और स्तंभ बनाने के लिए वनस्पति को काटता है । इसी प्रकार प्राणेंद्रिय के
सुखका लोचक कर्पूर, केतकी, पाटल, (गुलाब) लोंग, सरस चन्दन अगर, केसर,
जायफल, जायपत्री आदि के उद्देश्य से विविध प्रकार के वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा
करता है । रसास्वाद का अनुरागी मूल आदि कन्दों में रहने वाले असंख्यात और अनन्त
जीवों की हिंसा करता है । इसी प्रकार स्पर्श-सुख का अभिलाषी कमल के पत्ते, कमल की
दंडी, केले के , पत्ते छाल और अनुकूल वृक्ष तथा रुई प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के
वनस्पति जीवों का प्राण लेता है ।

धृष्टीन् हिंसा करे छे. जेम-अनुकूल शब्द सांख्यवाना अभिलाषी पुरुष वेणु-वीणा,
ढोल आदि वाद्य-वाञ्छित् बनानेवा भाटे नाना प्रकारना वनस्पतिकायना लुवोनी हिंसा
करे छे. प्रियरूप लेवाना धृष्टुक युवतीनी काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण, वेदिका
अने स्तंभ बनानेवा भाटे वनस्पतिने कापे छे. जे प्रभाषे प्राणेंद्रिय (नासिका)ना
सुभना लोचुप-लालयु कर्पूर, केतकी गुलाब, लवींग, सरसचन्दन, अगर केसर,
जायफल, जायपत्री आदि भेजववाना उद्देश्यथी विविध प्रकारना वनस्पतिकायिक लुवोनी
हिंसा करे छे. रसास्वादनान् अनुरागी लुव मूल आदि कन्दोभां रडेवावाणा असंख्यात
अने अनन्त लुवोनी हिंसा करे छे. जे प्रभाषे स्पर्शसुभना अभिलाषी लुव कमल-
पत्तां, कमलकाकडी, केवणनां पत्तां, छाल अने अनुकूल वृक्ष तथा इ प्राप्त करवा
भाटे नाना प्रकारना वनस्पति लुवोना प्राण ले छे.

एवं च वनस्पतिनिष्पन्नेषु शब्दादिगुणेषु वर्तमानः संसारं प्राप्नोति, स च संसारी रागद्वेषमलिनात्मकतया पुनः शब्दादिगुणेषु वर्तमानश्चतुर्गतिकसंसारतो न कदाचिद् बहिर्यातीत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

शब्दादिगुणोपलब्धिमात्रं न संसारान्तःपतनस्य कारणं, किन्तु तत्र मूर्च्छंवेत्याह—‘उद्धं’ इत्यादि ।

मूलम्—

उद्धं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रुवाइं पासइ, सुणमाणे सदाइं सुणेइ ।
उद्धं अहं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रुवेसु मुच्छइ सदेसु यावि । एस लोए
वियाहिए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

उर्ध्वम् अधः तिर्यक् प्राचीनं पश्यन् रूपाणि पश्यति, शृण्वन् शब्दान् शृणोति,
ऊर्ध्वम् अधः तिर्यक् प्राचीनं मूर्च्छन् रूपेषु मूर्च्छति, शब्देषु चापि । एष लोकः व्या-
ख्यातः ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार वनस्पति से तैयार होने वाले इन्द्रिय-विषयों में वर्तमान जीव संसार प्राप्त करता है । संसारी जीव राग-द्वेष से मलिन होता है, अतः फिर विषयों में प्रवृत्त होता है । इस प्रकार वह कभी संसार से बाहर नहीं निकल पाता ॥सू० २॥

शब्द आदि विषयों को ग्रहण करने मात्र से संसार में पतन नहीं होता परन्तु उन में मूर्च्छा (गृद्धि) होना ही पतन का कारण है, यह कहते हैं—‘उद्धं’ इत्यादि ।

मूलार्थ—ऊपर, नीचे, और सामने तिरछी दिशा में दृष्टि डालता हुआ रूपों को देखता है, सुनता हुआ शब्द सुनता है । ऊपर, नीचे और सामने तिरछी दिशा में रूपों में मूर्च्छित होता है और शब्दों में भी । यह लोक कहा गया है ॥ सू० ३ ॥

ये प्रमात्रे वनस्पतिथी तैयार थवावाणा धन्द्रिय विषयोभां वर्तमान एव संसारने प्राप्त करे छे. संसारी रागद्वेषथी मलिन थाय छे, तेथी इरीने विषयोभां प्रवृत्त थाय छे. आ प्रमात्रे ते केई दिवस संसारथी अहार नीकणी शकता नथी (सू.२)

शब्द आदि विषयेने अर्द्ध करवा मात्रथी संसारभां पतन थतुं नथी. परन्तु तेभां मूर्च्छा (गृद्धि) थवाथीए पतन थाय छे. ते कहे छे—‘उद्धं’ इत्यादि.

मूलार्थ—ऊपर, नीचे અને સામે તિરછી દિશામાં દષ્ટિ નાંખીને રૂપોને જુવે છે, સાંભળતા થકા શબ્દ સાંભળે છે, ઉપર નીચે અને સામે તિરછી દિશામાં રૂપોમાં અને શબ્દોમાં પણ મૂર્છિત થાય છે. આ લોક કહેવાય છે. ॥ ૩ ॥

विहिंसन्ति । तथा हि-अनुकूलशब्दध्वनार्थी वेणुवीणापटहादिवाद्यानि निर्मातुं बहु-
विधान् वनस्पतीन् चिनिहन्ति । प्रियरूपविलोकनार्थी काष्ठमययुवतिप्रतिमा-गृह-
तोरण-वेदिका-स्तम्भादि रचयितुं कतिचन वनस्पतीन् चिनिहन्ति । एवं घ्राणसुखार्थी
कर्पूर-केतकी-पाटल-लवङ्ग-सरसचन्दना-गुरु-केसर-जातीफल-जातीपत्रिकादीन् परि-
ग्रहीतुं विविधान् वनस्पतीन् चिहिनरित । रसास्वादसुखार्थी मूलकन्दादिगतानसंख्या-
ताननन्तान् वा जीवानुपमर्दयति । एवं स्पर्शसुखामिलापी च कमलदलमृणालवल्ली-
दलवल्कलानुकूलदुकूलतूलादीन् परिग्रहीतुं नानाविधवनस्पतीनां प्राणव्यपरोपणं
प्रकरोति ।

बहुत हिंसा करते हैं । जैसे-अनुकूल शब्द सुनने का अमिलापी पुरुष वेणु, वीणा,
पटह (ढोल) आदि वाद्य बनाने के लिए नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के जीवों की
हिंसा करता है । प्रियरूप देखने का इच्छुक युवती की काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण,
वेदिका, और स्तंभ बनाने के लिए वनस्पति को काटता है । इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय के
सुखका लोभ कर्पूर, केतकी, पाटल, (गुलाब) लोग, सरस चन्दन अगर, केसर,
जायफल, जायपत्री आदि के उद्देश्य से विविध प्रकार के वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा
करता है । रसास्वाद का अनुरागी मूल आदि कन्दों में रहने वाले असंख्यात और अनन्त
जीवों की हिंसा करता है । इसी प्रकार स्पर्श-सुख का अमिलापी कमल के पत्ते, कमलकी
दंडी, केले के , पत्ते छाल और अनुकूल वस्त्र तथा रुई प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के
वनस्पति जीवों का प्राण लेता है ।

धर्षीन् हिंसा करे छे. नेम-अनुकूल शब्द सांलणवाना अमिलापी पुरुष वेणु-वीणा,
ढोल आदि वाद्य-वाग्नि्र बनाववा भाटे नाना प्रकारना वनस्पतिकायना एवोनी हिंसा
करे छे. प्रियरूप नेवाना छच्छुक युवतीनी काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण, वेदिका
अने स्तंभ बनाववा भाटे वनस्पतिने काये छे. ये प्रभावे घ्राणेन्द्रिय (नासिका)ना
सुभना बोधुप-लालयु कर्पूर, केतकी गुलाब, लवींग, सरसचन्दन, अगर केसर,
जायफल, जायपत्री आदि नेणववाना उद्देश्यी विविध प्रकारना वनस्पतिकायिक एवोनी
हिंसा करे छे. रसास्वादाना अनुरागी एव मूल आदि कन्दोभां रडेवावाणा असंख्यात
अने अनन्त एवोनी हिंसा करे छे. ये प्रभावे स्पर्शसुभना अमिलापी एव कमल-
पत्तां, कमलकाकडी, केवणनां पत्तां, छाल अने अनुकूल वस्त्र तथा रु प्राप्त करवा
भाटे नाना प्रकारना वनस्पति एवोना प्राण ले छे.

एवं च वनस्पतिनिष्पन्नेषु शब्दादिगुणेषु वर्तमानः संसारं प्राप्नोति, स च संसारी रागद्वेषमलिनात्मकतया पुनः शब्दादिगुणेषु वर्तमानश्चतुर्गतिकसंसारतो न कदाचिद् बहिर्यातीत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

शब्दादिगुणोपलब्धिमात्रं न संसारान्तःपतनस्य कारणं, किन्तु तत्र भ्रूच्छेवेत्याह—‘उद्दं’ इत्यादि ।

मूलम्—

उद्दं अदं तिरियं पाईणं पासमाणे रुवाईं पासइ, सुणमाणे सदाइं सुणेइ ।
उद्दं अदं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रुवेसु मुच्छइ सदेसु यावि । एस लोए
वियाहिए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

उर्ध्वम् अधः तिर्यक् प्राचीनं पश्यन् रूपाणि पश्यति, शृण्वन् शब्दान् शृणोति,
ऊर्ध्वम् अधः तिर्यक् प्राचीनं भ्रूच्छन् रूपेषु भ्रूच्छति, शब्देषु चापि । एष लोकः व्या-
ख्यातः ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार वनस्पति से तैयार होने वाले इन्द्रिय-विषयों में वर्तमान जीव संसार प्राप्त करता है । संसारी जीव राग-द्वेष से मलिन होता है, अतः फिर विषयों में प्रवृत्त होता है । इस प्रकार वह कभी संसार से बाहर नहीं निकल पाता ॥ सू० २ ॥

शब्द आदि विषयों को ग्रहण करने मात्र से संसार में पतन नहीं होता परन्तु उन में भ्रूच्छा (गृद्धि) होना ही पतन का कारण है, यह कहते हैं—‘उद्दं’ इत्यादि ।

मूलार्थ—ऊपर, नीचे, और सामने तिरछी दिशा में दृष्टि डालता हुआ रूपों को देखता है, सुनता हुआ शब्द सुनता है । ऊपर, नीचे और सामने तिरछी दिशा में रूपों में भ्रूच्छित होता है और शब्दों में भी । यह लोक कहा गया है ॥ सू० ३ ॥

ये प्रभाञ्छे वनस्पतिथी तैयार थवावाणा इन्द्रिय विषयेभां वर्त्तमान एव संसारने प्राप्त करे छे. संसारी रागद्वेषथी मलिन थाय छे, तेथी इरीने विषयेभां प्रवृत्त थाय छे. आ प्रभाञ्छे ते डोई दिवस संसारथी अडार नीकणी शकता नथी (सू.२)

शब्द आदि विषयेने ग्रहण करवा मात्रथी संसारभां पतन थतुं नथी. परन्तु तेभां भ्रूच्छा (गृद्धि) थवाथीन पतन थाय छे. ते कहे छे—‘उद्दं’ इत्यादि.

मूलार्थ—ऊपर, नीचे અને સામે તિરછી દિશામાં દૃષ્ટિ નાંખીને રૂપોને જુવે છે, સાંભળતા થકા શબ્દ સાંભળે છે, ઉપર નીચે અને સામે તિરછી દિશામાં રૂપોમાં અને શબ્દોમાં પણ ભ્રૂચ્છિત થાય છે. આ લોક કહેવાય છે. ॥ ૩ ॥

टीका—

प्रज्ञापकदिशापेक्षया ऊर्ध्वम्=उर्ध्वदिश्यवस्थितं पर्वतशिखरमासादहर्म्याद्युपरि-
भागस्थम्, अधः=अधोदिश्यवस्थितं भूमिगृहादिकं, तिर्यक्=प्राच्यादिदिक्ष्ववस्थितं
विदिक्ष्वस्थितं च गृहभित्तिमासादहर्म्यादिकं, प्राचीनं-तिर्यक्पदस्य विवरणमेतत्,
प्राच्यां दिशि विद्यमानं पदार्थजातम्, एतच्चोपलक्षणम्-अन्या अपि तिर्यग्दिशो
विज्ञेयाः । यद्वा-प्राचीनमिति-ऊर्ध्वाधरतिर्यग्दिगन्वयि, तेनोर्ध्वाधरतिर्यग्दिक्ष्व-
स्थितं, प्राचीनं=पुरातनम्-आधुनिकशिल्पिदुष्करतयाऽऽश्चर्यकारि पदार्थजातं, पश्यन्-
चक्षुर्व्यापारयन्, रूपाणि=चक्षुर्ग्राह्यतया परिणतानि रूपवद्रव्याणि शालमठिजकादीनि
स्यादिरूपाणि वा पश्यति ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-दिशने वाले की) दिशा की अपेक्षा ऊर्ध्व दिशा में-पर्वत के शिखर
पर तथा प्रासाद या महल आदि के ऊपरी भाग में स्थित, भौंहरा आदि अर्धोदिशा में स्थित,
पूर्व आदि तिरछी दिशाओं में स्थित तथा विदिशाओं में स्थित दीवार, हवेली और महल
आदि को देखता है । मूल में आये हुए 'पार्श्व' अर्थात् 'प्राचीन' शब्द को तिरछी दिशा का
विवरणरूप समझना चाहिए । अथवा 'प्राचीन' पद ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् सभी दिशाओं के
साथ संबंध रखता है । तात्पर्य यह निकला कि-ऊर्ध्व दिशा में स्थित अधोदिशा में स्थित
तथा तिरछी दिशाओं में स्थित प्राचीन अर्थात् आधुनिक शिल्पकारों के लिए दुष्कर होने से
आश्चर्य उत्पन्न करने वाले पुराने पदार्थों की ओर नजर करता हुआ सुन्दर पुतलियों वगैरह
को तथा स्त्री आदि के रूप को देखता है ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(जेनारनी) दिशानी अपेक्षा ऊर्ध्व दिशाओं-पर्वतना शिखर
पर तथा प्रासाद अथवा भडेल आदिना ऊपर भागों, स्थित, भोंहरा आदि
अर्धोदिशाओं में स्थित, पूर्व आदि तिरछी दिशाओं में स्थित, तथा विदिशाओं में स्थित
भौंहरा, हवेली और महल आदिने दृष्टे छे. मूलमें आवेला 'पार्श्व' अर्थात् प्राचीन
शब्दने तिरछी दिशाना विवरणरूप समझवे जेछे छे, अथवा प्राचीन पद ऊर्ध्व,
अधः और तिर्यक् सर्व दिशाओंनी साथे संबंध राखे छे. तात्पर्य छे निकले छे के-
ऊर्ध्व दिशाओं में स्थित, अधोदिशाओं में स्थित, तथा तिरछी दिशाओं में स्थित प्राचीन अर्थात्
आधुनिक शिल्पकारों भाटे दुष्कर होवाथी आश्चर्य उत्पन्न करवावाणा पुराणा पदार्थोंनी
तरफ नजर करता थका सुन्दर पुतलीओ वगैरने तथा स्त्रीआदिना रूपने दृष्टे छे.

तथा-एतासु दिक्षु च शृण्वन्=श्रोत्रोपयोगयुक्तः सन् शब्दान् वेणुवीणादि-
समुत्थान् गीतनादादिकान् वा शृणोति । श्रोत्रोपयोगाभावे तु न शृणोतीत्यर्थः ।
उपलक्षणमेतत्-जिघ्रन् गन्धान् जिघ्रति, रसयन् रसान् रसयति, स्पृशन्
स्पर्शान् स्पृशति ।

इह दर्शनश्रवणाभ्यां रूपादिगुणोपलब्धिमात्रं प्रदर्शितम् । ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्पदोपा-
दानेन च श्रोत्रेन्द्रियसंज्ञितेन श्रवणोपयोगेन उपलब्धिहेतुत्वं दर्शयति । अपरिहरोऽस्तीति प्रतिबोधितम् ।
किन्तु रूपादिगुणेषु मूर्च्छयेति
बोधयितुमाह-‘उद्दं.’ इत्यादि ।

इसी प्रकार पूर्वोक्त दिशाओं में श्रोत्रेन्द्रिय का उपयोग लगा कर वेणु वीणा
आदि वाद्यों का, तथा गीत आदि का शब्द सुनता है । श्रोत्र का उपयोग न हो तो
नहीं भी सुनता है । यह कथन उपलक्षण है, इस से यह भी समझ लेना चाहिए कि
घ्राण, रसना और स्पर्श इन्द्रिय का उपयोग लगाकर सूंघता है, चखता है और स्पर्श
करता है ।

यहाँ देखने और सुनने से रूप आदि गुणों की उपलब्धिमात्र सूचित
की है । ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् पद देकर यह प्रकट किया है कि-इन्द्रियों के विषय-
रूप आदि, सभी दिशाओं में भरे पडे हैं । ऐसी स्थिति में उनकी ओर ध्यान न जाने
देना तो बड़ा ही कठिन कार्य है । मगर रूप आदि गुणों की ओर उपयोग जाने
मात्र से संसार के गड़ढे में पतन नहीं होता । पतन तब होता है जब उनमें
मूर्च्छा या राग-द्वेष हो, यह बात प्रकट करने के लिए कहा है-‘उद्दं.’ इत्यादि ।

એજ પ્રમાણે પૂર્વોક્ત દિશાઓમાં શ્રોત્રેન્દ્રિયને ઉપયોગ લગાવીને વેણુ-વીણા
આદિ વાદ્યોના તથા ગીત આદિના શબ્દો સાંભળે છે. શ્રોત્રને ઉપયોગ ન હોત
તો સાંભળત નહિ. આ કથન ઉપલક્ષણ છે, એથી એમ સમજાવેલું છે કે, ઘ્રાણ,
રસના અને સ્પર્શન ઇન્દ્રિયને ઉપયોગ લગાવીને સૂંઘે છે, ચાખે છે, અને સ્પર્શ કરે છે.

અહીં દેખવા અને સાંભળવાથી રૂપ આદિ ગુણોની ઉપલબ્ધિ માત્ર સૂચિત કરી છે.
ઉર્ધ્વ, અધઃ તથા તિર્યક્ પદ આપીને એ સૂચિત કર્યું છે કે-ઇન્દ્રિયોના વિષય
રૂપ આદિ, સર્વ દિશાઓમાં ભર્યા પડ્યાં છે. એવી સ્થિતિમાં તેની તરફ ધ્યાન નહિ જવા
હેતુ તે તો ભારે કઠિન કામ છે. પરંતુ રૂપ આદિ ગુણોની તરફ ઉપયોગ જવા માત્રથી
સંસારના આઠામાં પડવાનું થતું નથી, પતન-પડવાનું તો ભારે થાય છે કે ન્યારે. તેમાં
મૂછા-અથવા રાગ-દ્વેષ થાય. આ વાત પ્રગટ કરવા માટે કહ્યું છે-‘ઉદ્દં.’ ઇત્યાદિ.

टीका—

प्रज्ञापकदिशापेक्षया ऊर्ध्वम्=उर्ध्वदिश्यवस्थितं पर्वतशिखरमासादहर्म्याद्युपरि-
भागस्थम्, अधः=अधोदिश्यवस्थितं भूमिगृहादिकं, तिर्यक्=प्राच्यादिदिक्ष्ववस्थितं
विदिक्ष्वस्थितं च गृहभित्तिमासादहर्म्यादिकं, प्राचीनं=तिर्यक्पदस्य विवरणमेतत्,
प्राच्यां दिशि विद्यमानं पदार्थजातम्, एतच्चोपलक्षणम्-अन्या अपि तिर्यग्दिक्षो
विज्ञेयाः । यद्वा-प्राचीनमिति-ऊर्ध्वाधरतिर्यग्दिगन्वयि, तेनोर्ध्वाधरतिर्यग्दिक्ष्व-
स्थितं, प्राचीनं=पुरातनम्-आधुनिकशिल्पिदुष्करतयाऽऽश्चर्यकारि पदार्थजातं, पश्यन्=
चक्षुर्व्यापारयन्, रूपाणि=चक्षुर्ग्राह्यतया परिणतानि रूपवद्रूप्याणि शालमञ्जिकादीनि
रूप्यादिरूपाणि वा पश्यति ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(दिखने वाले की) दिशा की अपेक्षा ऊर्ध्व दिशा में-पर्वत के शिखर
पर तथा प्रासाद या महल आदि के ऊपरी भाग में स्थित, मौहरा आदि अधोदिशा में स्थित,
पूर्व आदि तिरछी दिशाओं में स्थित तथा विदिशाओं में स्थित दीवार, हवेली और महल
आदि को देखता है । मूल में आये हुए 'पार्श्व' अर्थात् 'प्राचीन' शब्द को तिरछी दिशा का
विवरणरूप समझना चाहिए । अथवा 'प्राचीन' पद ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् सभी दिशाओं के
साथ संबंध रखता है । तात्पर्य यह निकला कि-ऊर्ध्व दिशा में स्थित अधोदिशा में स्थित
तथा तिरछी दिशा में स्थित प्राचीन अर्थात् आधुनिक शिल्पकारों के लिए दुष्कर होने से
आश्चर्य उत्पन्न करने वाले पुराने पदार्थों की ओर नजर करता हुआ सुन्दर पुतलियों वगैरह
को तथा स्त्री आदि के रूप को देखता है ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(जेनारनी) दिशांनी अपेक्षा ऊर्ध्व दिशाभां-पर्वतना शिखर
पर तथा प्रासाद अथवा भडेल आदिना उपर लागमां, स्थित, लोयरा आदि
अधोदिशाभां स्थित, पूर्व आदि तिरछी दिशाओंभां स्थित, तथा विदिशाओंभां स्थित
लींत्, हवेली अने भडेल आदिने देखे छे. मूलभां आवेले 'पार्श्व' अर्थात् प्राचीन
शब्दने तिरछी दिशांना विवरणरूप समझवे जे छे, अथवा प्राचीन पद ऊर्ध्व,
अधः अने तिर्यक् सर्व दिशाओंनी साथे संबंध राखे छे. तात्पर्य छे निकले छे के-
ऊर्ध्व दिशाभां स्थित, अधोदिशाभां स्थित, तथा तिरछी दिशाभां स्थित प्राचीन अर्थात्
आधुनिक शिल्पकारों भाटे दुष्कर होवाथी आश्चर्य उत्पन्न करवावाणा पुराणा पदार्थोंनी
तरङ्ग नजर करता थका सुन्दर पुतलींजे वगेरने तथा स्त्रीआदिना रूपने देखे छे.

વિરુવરુવેહિ સત્યેહિ વણસ્સિક્કમ્મસમારંભેણ વણસ્સહસત્ય સમારંભમાણા અણ્ણે
અણેગરુવે પાણે વિહિસંતિ ॥ સૂ. ૫ ॥

છાયા—

લજ્જમાનાઃ પૃથક્ પશ્ય, અનગારાઃ સ્મ ઇતિ એકે પ્રવદમાનાઃ, યદિમં વિરુપ-
રૂપૈઃ શક્તૈઃ વનસ્પતિકર્મસમારંભેણ વનસ્પતિશસ્ત્રં સમારંભમાણા અન્યાન્ અનેકરૂપાન્
પ્રાણાન્ વિહિસન્તિ ॥ સૂ. ૫ ॥

ટીકા—

લજ્જમાનાઃ=પરમકરુણયાદ્ર્દહદયતયા વનસ્પતિકાયસમારંભે પરાહ્મુરુવાઃ,
વનસ્પતિશસ્ત્રસમારંભપરિત્યાગિનોડનગારા ઇત્યર્થઃ । પૃથક્=વિભિન્નાઃ=કેચિત્ પ્રત્યક્ષ-
જ્ઞાનિનોડવધિમનઃપર્યાયકેવલિનઃ, કેચિત્ પરોક્ષજ્ઞાનિનો ભાવિતાત્માનઃ સન્તીતિ
પશ્ય ।

યદ્વા-પૃથક્=દ્રવ્યલિંગિભ્યઃ પૃથગ્ભાવેન સન્તીતિ પશ્ય । ઇમે-સૂક્ષ્મવાદર-
વનસ્પતિકાયસમારંભકરણે ભીતાસ્ત્વા ઉદ્વિગ્રાસ્ત્રિકરણત્રિયોર્ગૈર્વનસ્પતિકાયસમાર-
ંભપરિત્યાગિનો વિદ્યન્તે ઇતિ ચિલોકયેત્યર્થઃ ।

વનસ્પતિકાય કા આરંભ કરને વાલે, વનસ્પતિશસ્ત્ર કા આરંભ કરતે હુણ અન્ય અનેક પ્રકાર
કે પ્રાણિયો કી હિસા કરતે હૈ ॥ સૂ. ૫ ॥

ટીકાર્થ—અત્યન્ત કરુણા સે આર્દ્ર હૃદયવાલે મુનિ વનસ્પતિકાય કે આરંભ સે વિમુક્ત
રહતે હૈ । એસે મુનિ કોઈ અવધિજ્ઞાની, મનઃપર્યાયજ્ઞાની, ઔર કેવલજ્ઞાની હોતે હૈ, ઔર કોઈ-
કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની (મતિ-શ્રુત જ્ઞાન કે ધારક) ભાવિતાત્મા હોતે હૈ ઉન્હેં દેસો ।

અથવા ઇહેં દ્રવ્યલિંગિયો સે અલગ હી સમજના ચાહિણ । યહ અનગાર સૂક્ષ્મ ઔર
વાદર વનસ્પતિ કા આરંભ કરને મેં મોત, ત્રસ્ત, ઉદ્વિગ્ન હૈ । તીન કરણ, તીન યોગ સે
વનસ્પતિકાય કે આરંભ કે ત્યાગી હૈ ।

કાયનેા આરંભ કરવાવાળા, વનસ્પતિ શસ્ત્રનેા આરંભ કરતા થકા અન્ય અનેક
પ્રકારના પ્રાણીઓની હિસા કરે છે. ॥ ૫ ॥

ટીકાર્થ—અત્યન્ત કરુણાથી આર્દ્ર હૃદયવાળા મુનિ વનસ્પતિકાયના આરંભથી
વિરુદ્ધ રહે છે. એવા મુનિ કોઈ-કોઈ અવધિજ્ઞાની, મનઃપર્યાયજ્ઞાની અને કેવલજ્ઞાની, હોય
છે. અને કોઈ-કોઈ પરોક્ષજ્ઞાની (મતિ-શ્રુતજ્ઞાનના ધારક) ભાવિતાત્મા હોય છે. તેને બુદ્ધિ.

અથવા તેને દ્રવ્યલિંગિઓથી બૃહાવ્ સમજવા નોંધ્યો. તે અણુગાર સૂક્ષ્મ અને
બાહર વનસ્પતિકાયનેા આરંભ કરવામાં બીજોલા-ભયવાળા, ત્રસ્ત, ઉદ્વિગ્ન છે. ત્રણ
કરણ ત્રણ યોગથી વનસ્પતિકાયના આરંભના ત્યાગી છે.

आचारो यस्य स वक्रसमाचारः—असंयमानुष्ठायी, नरकादिगतिजनकत्वात्संयमस्य
वक्रतया व्यपदेशः । इत्यम्भूतः स प्रमत्तः=प्रमादवशाद् विषयेषु मूर्च्छितः, अगारं=
गृहम् आवसति । गृहीतसंयमोऽपि प्रमादवशाद् विषयासक्तः सन् पुनर्गृहस्थो भवती-
त्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

अथ शस्त्रद्वारम्—

अथ सर्वथा वनस्पतिशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्रसमा-
रम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—'लज्जमाणा' इत्यादि ।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मो—ति एगे पवयमाणा, जमिणं

अर्थात् असंयम का सेवन करने वाला प्रमादी फिर घर—वास में आजाता है । वह संयम
धारण करने के पश्चात् भी प्रमाद के बश होकर विषयों में भासक्त होने के कारण फिर
गृहस्थ बन जाता है ॥ सू० ४ ॥

शस्त्रद्वार—

वनस्पतिशस्त्र के आरंभ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारों का तथा
अग्निशस्त्र के आरंभ में प्रवृत्त द्रव्यलिङ्गियोंका विवेचन करके उपदेश देते हैं—
'लज्जमाणा.' इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ में संकोच करने वाले साधुओं को अलग
देखो । तथा 'हम अनगार हैं' इस प्रकार कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रोंसे

सेवन करवावाणा प्रमादी इरी घरवासमां आवी नय छे. ते संयम धारण् कथां पछी पणु
प्रमादने वश थधने विषयेमां आसक्त थवाना कारण् इरी गृहस्थ णनी नय छे. (सू.४)

शस्त्रद्वार—

वनस्पतिशस्त्रना आरंभने सर्वथा त्याग करवावाणा अणुगारेनुं तथा अग्नि-
शस्त्रना आरंभमां प्रवृत्त द्रव्यलिङ्गीओनुं विवेचन करीने उपदेश आवे छे—
'लज्जमाणा.' इत्यादि.

मूलार्थ—वनस्पतिकायना आरंभमां संकोच करवावाणा साधुओने अलग नखे।
तथा 'अमे अणुगार छीओ' आ प्रमादुं कडेवावाणा, नाना प्रकारना शस्त्रोथी वनस्पति-

कुठारादयः । भावशस्त्रं तु वनस्पतिं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् । वनस्पति-
कर्मसारम्भेण=कर्मणां समारम्भः कर्मसमारम्भः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणी-
यादिकर्मबन्धजनकसावद्यव्यापारस्तेन, इमं वनस्पतिकायं विहिंसन्ति ।

वनस्पतिकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु पृथ्वीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ती-
त्याह—‘वनस्पतिशस्त्रं’—मित्यादि । वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिजीवोपमर्दकं शस्त्रं पूर्वोक्त-
प्रकारं, समारम्भमाणाः=वनस्पतिं प्रति प्रयुञ्जानाः, अन्यान्=वनस्पतिकायभिन्नान्,
अनेकरूपां, पृथिवीकायादीन्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च तदाश्रितान् प्राणान्=प्राणिनः
हिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्द-मूल-पत्र-

परकायशस्त्रं हैं । वसूला, दांती, कुठार आदि उभयकायशस्त्रं हैं । वनस्पतिकाय के प्रति मन,
वचन और काय का असत् प्रयोग करना भावशस्त्र है । इन शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकायका
आरंभ करके ज्ञानावरण आदि आठप्रकार के कर्मों को उत्पन्न करने वाला सावद्य व्यापार
करके वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ।

जो वनस्पतिकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह छहों जीवनिकायरूप समस्त लोक
की हिंसा करता है, यह बतलाते हैं, ‘वनस्पतिशस्त्रम्’ इत्यादि ।

वनस्पतिकाय की हिंसाजनक पूर्वोक्त शस्त्रों का आरंभ करनेवाले लोग वनस्पतिकाय के
अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावरों की तथा वनस्पति-आश्रित द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों
की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में अनेक प्रकार के द्रव्यलिङ्गी हैं । उन में से शाक्य आदि कंद, मूल,

सुभ्र अने अग्नि आदि परकायशस्त्रं छे, वसूला दांती-दातरडुं, कुठार-कुडाडे आदि
उभयकायशस्त्रं छे, वनस्पतिकाय प्रति मन, वचन अने कायने असत्-प्रयोग करवे
ते भावशस्त्रं छे, ये शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकायने आरंभ करीने-ज्ञानावरणीय आदि आठ
प्रकारना कर्मोने उत्पन्न करवावाणा सावद्य व्यापार करीने वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे.

ये वनस्पतिकायनी हिंसाभां प्रवृत्त थाय छे, ते छल्लुवनिकायरूप समस्त
लोकनी हिंसा करे छे, ये अतावे छे—‘वनस्पतिशस्त्रम्’ इत्यादि.

वनस्पतिकायना हिंसाजनक पूर्वोक्त शस्त्रने आरंभ करवावाणा लोक वनस्पति-
कायना अतिरिक्त पृथ्वीकाय, आदि अन्य स्थावरोंने तथा वनस्पति आश्रित द्वीन्द्रिय-
ये छद्रिय आदि त्रस लुवोंने पणु हिंसा करे छे.

संसारभां अनेक प्रकारना द्रव्यलिङ्गी छे, तेभांथी शाक्य आदि कंद, मूल, पत्रा,

एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति सामिमानं प्रवदमानाः='वयमेव वनस्पतिजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः=वनस्पतिकायशस्त्रैः, शस्त्रं हि वनस्पतिकायस्य द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम् । तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकाय-परकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं दण्डलकुटादयः । परकाय-शस्त्रं=कर्तरी-पापाण-हस्त-पाद-मुख-बह्मचादयः । उभयकायशस्त्रं=वासी-दान-

इनसे विपरीत कोई-कोई 'हम अनगार हैं' ऐसा अभिमानपूर्वक कहते हैं—'हम ही वनस्पति जीवों की रक्षा करने में तत्पर और महाव्रतधारी हैं,' इस प्रकार प्रलाप करते हुए द्रव्यलिङ्गी साधुओं को अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते । ये गृहस्थ के किसी भी कामका त्याग नहीं करते हैं, यह बात आगे वतलाते हैं—'यदिमम्.' इत्यादि ।

नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकाय का आरंभ करके वनस्पतिकायकी हिंसा करते हैं । वनस्पतिशस्त्र दो प्रकारका है—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र । द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—(१) स्वकायशस्त्र (२) परकायशस्त्र (३) उभयकायशस्त्र । डंडा लकड़ी वगैरह स्वकायशस्त्र हैं । कैंची, पत्थर, हाथ, पैर, मुख और आग आदि

तेनाथी विपरीत-विच्छेद कर्ष-कर्ष 'अमे अलुगार छीअे' आ प्रभाअे अलिमान पूर्वक कहे छे—'अमेअ वनस्पति लुगेानी रक्षा करवाभां तत्पर अने भडान्रतधारी छीअे' आ प्रभाअे प्रलाप-(भकवाठे) करनारा द्रव्यलिङ्गी साधुअेने लुहा सभअे.

अलुगार छेवानुं अलिमान करनारा अे द्रव्यलिङ्गी साअा अलुगारना गुण्णे भाटे अरा पल्लु प्रवृत्ति करता नथी. ते गृहस्थेानां कर्षे पल्लु कामनेा त्याग करता नथी. अे अताये छे. 'यदिमम्.' इत्यादि.

नाना प्रकारना वनस्पतिकायनां शस्त्रो वडे वनस्पतिकायनेा आरंभ करीने वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे. वनस्पतिशस्त्र ये प्रकारनां छे—द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्र. द्रव्यशस्त्रनां त्रल्लु भेद छे—(१) स्वकायशस्त्र, (२) परकायशस्त्र, अने (३) उभयकायशस्त्र. डंडा, लकडी वगेरे स्वकायशस्त्र छे, कैंची-(कातर, सांलुसेा) पत्थर, हाथ, पैर,

कुठारादयः । भावशस्त्रं तु वनस्पतिं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् । वनस्पति-
कर्मसारम्भेण=कर्मणां समारम्भः कर्मसमारम्भः=वनस्पतिं निमिचीकृत्य ज्ञानावरणी-
यादिकर्मबन्धजनकसावद्यव्यापारस्तेन, इमं वनस्पतिकायं विहिंसन्ति ।

वनस्पतिकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु पृथ्वीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ती-
त्याह-'वनस्पतिशस्त्र'-मित्यादि । वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिजीवोपमर्दकं शस्त्रं पूर्वोक्त-
प्रकारं, समारम्भणाः=वनस्पतिं प्रति प्रयुञ्जानाः, अन्यान्=वनस्पतिकायभिन्नान्,
अनेकरूपान्, पृथिवीकायादीन्, द्वीन्द्रियादीन् त्रसांश्च तदाश्रितान् प्राणान्=प्राणिनः
हिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्द-मूल-पत्र-

परकायशस्त्रं हैं । वसूला, दांती, कुठार आदि उभयकायशस्त्रं हैं । वनस्पतिकाय के प्रति मन,
वचन और काय का असत् प्रयोग करना भावशस्त्र है । इन शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकायका
आरंभ करके ज्ञानावरण आदि आठप्रकार के कर्मों को उत्पन्न करने वाला सावद्य व्यापार
करके वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ।

जो वनस्पतिकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह छहों जीवनिकायरूप समस्त लोक
की हिंसा करता है, यह बतलाते हैं, 'वनस्पतिशस्त्रम्' इत्यादि ।

वनस्पतिकाय की हिंसाजनक पूर्वोक्त शस्त्रों का आरंभ करनेवाले लोग वनस्पतिकाय के
अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावरों की तथा वनस्पति-आश्रित द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों
की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में अनेक प्रकार के द्रव्यलिङ्गी हैं । उन में से शाक्य आदि कंद, मूल,

सुभ अने अग्नि आदि परकायशस्त्रं छे. वसूला दांती-कातरडुं, कुठार-कुडाडो आदि
उभयकायशस्त्रं छे. वनस्पतिकाय प्रति मन, वचन अने कायने असत्-प्रयोग करवे
ते भावशस्त्रं छे. अने शस्त्रेद्वारा वनस्पतिकायने आरंभ करीने-ज्ञानावरणीय आदि आठ
प्रकारना कर्मने उत्पन्न करवावाणा सावद्य व्यापार करीने वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे.

वे वनस्पतिकायनी हिंसाभां प्रवृत्त थाय छे. ते छलुवनिकायरूप समस्त
लोकनी हिंसा करे छे. अने अतावे छे-' वनस्पतिशस्त्रम् ' इत्यादि.

वनस्पतिकायना हिंसाजनक पूर्वोक्त शस्त्रने आरंभ करवावाणा लोक वनस्पति-
कायना अतिरिक्त पृथ्वीकाय, आदि अन्य स्थावरोंने तथा वनस्पति आश्रित द्वीन्द्रिय-
अने इंद्रिय आदि त्रस लोकेनी पक्ष हिंसा करे छे.

संसारभां अनेक प्रकारना द्रव्यलिङ्गी छे. तेभांशी शाक्य आदि कंद, मूल, पत्ता,

पुष्पफलादिभोजनार्थं वनस्पतिकर्मसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति च, तेन पञ्चजीवनिकायविराधका भवन्ति । दण्डिनोऽपि “त्रयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः” इत्यादि प्रवदमानाः साध्याभासाः सावधमुपदिशन्ति, शास्त्रमतिपिद्धमपि वनस्पतिकर्मसमारम्भं कारयन्ति ।

ते हि व्याख्यानमण्डपादौ चाशोकवृक्षपत्रादिभिर्वन्दनमालादिकं बन्धयन्ति, नानाविधपुष्पपत्रफलैः पञ्चोपचारादिपूजासु प्रवर्तयन्ति । तथाहि—

“काले सुदभूषणं, विसिद्धपुष्पाइएहिं विहिणा उ ।

सारधुइथोत्तगरुई, जिणपूया होइ कायन्वा ॥ १ ॥” (पञ्चाशकवृत्तिः)

छाया—काले शुचीभूतेन, विशिष्टपुष्पादिकैर्विधिना तु ।

सारस्तुति स्तोत्रकरुचिना, जिनपूजा भवति कर्तव्या ॥ १ ॥

पत्रा, फूल आदि स्वाने के लिए वनस्पति का आरंभ करते हैं, कराते हैं और करने वाले की अनुमोदना करते हैं । ऐसा करके वे पञ्चजीवनिकाय की विराधना के भागी होते हैं । “हम पंचमहाव्रतधारी, जिन भगवान् की आज्ञा के आराधक अनगार हैं” ऐसा कहने वाले दंडी द्धे साधु भी सावध का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध किये हुए वनस्पतिकाय के आरंभ का उपदेश देते हैं ।

वे व्याख्यानमंडप आदि में अशोक वृक्ष के पत्तों से बन्दनवार आदि बँधवाते हैं, नाना प्रकार के फल फूल पत्तों से पंचोपचार आदि पूजाओं में (श्रावकों) को प्रवृत्त करते हैं । जैसे—

“उचित समय पर, विधिपूर्वक विशिष्ट पुष्प आदि के द्वारा सुन्दर स्तोत्र—स्तुतिपूर्वक जिन भगवान्की पूजा करनी चाहिए” ।

कूल आदि भावा भाटे वनस्पतिने आरंभ करे छे, अने करावे छे, अने करवावापाने अनुमोदन आये छे. अये प्रभाछे करीने ते पञ्चजीवनिकायनी विराधनाना लागीदार थाय छे. ‘अमे पंच महाव्रतधारी, जिन भगवान्नी आज्ञाना आराधक अणुगार छीअये.’ आ प्रभाछे कडेवावाणा दंडी साधु पणु सावधना उपदेश आये छे, अने शास्त्रां निषेध करवाभां आवेवैला वनस्पतिकायना आरंभना उपदेश आये छे.

ते व्याख्यान-मंडप आदिमां अशोकवृक्षनां पाँदसंधी तोरषु आदि अंधावे छे. नाना प्रकारना कूल-कूल अने पाँदसंधी पञ्चोपचार आदि पूजायांमां (श्रावकोने) प्रवृत्त करे छे-जोडे छे. जेभ-“उचित समय-योग्य समय पर विधिपूर्वक विशिष्ट-उत्तम पुष्प आदि द्वारा सुन्दर स्तोत्र, स्तुतिपूर्वक जिन भगवान्नी पूजा करवी जेधअये.”

અપરશ્ચ-ઉમાસ્વાતિવાચકકૃતપ્રકરણે—

‘મધ્યાહ્ન કુમ્ભૈઃ પૂજા’ ઇતિ । ‘ગન્ધવાસાસૈઃ સ્તુતિઃ’ ઇતિ ।

‘પ્રધાનૈશ્ચ ફલૈઃ પૂજા’ ઇત્યાદિ । કિશ્ચ—

“ ન શુષ્કૈઃ પૂજયેદેવં, કુમ્ભૈર્ન મહીગતૈઃ ।

ન વિશીર્ણદલૈઃ સ્પૃષ્ટૈઃ, નાશુભૈર્નાવિકાસિભિઃ ” ॥ ૧ ॥

‘ ન શુષ્કૈઃ પૂજયેદેવં કુમ્ભૈર્ન મહીગતૈઃ ’—ઇત્યનેન ‘ આર્દ્રે સ્તોટિ તૈશ્ચ કુમ્ભૈર્ન દેવં પૂજયેત્ ’—ઇત્યર્થોઽવગમ્યતે । અહો ! કીદૃશો મહાસાવધોપદેશસ્તેષામ્ ।

एवं देवमन्दिरादी कदलीस्तम्भादिरोपणेन, अशोकादिवृक्षपत्रैर्वन्दन—

પન્ચાશકવૃત્તિ ઉમાસ્વાતિકૃત પ્રકરણ મેં કહા હૈ—

“મધ્યાહ્ને મેં ફૂલોં સે પૂજા કી જાતી હૈ ।” “ગંધ, વાસ ઓર અક્ષત સે તથા માલાઓં સે પૂજા હોતી હૈ ।” ઉત્તમ ફૂલોં સે પૂજા કી જાતી હૈ ” ઇત્યાદિ । ઓર મી કહા હૈ—

“ સૂઝે, જમીન પર ગિરે હુણ, ટૂટી પંજુડીવાલે, છુણ હુણ, સરાવ ઓર વિના સિલે ફૂલોં સે પૂજા નહીં કરની યાહિણ ” ।

‘ સૂઝે ઓર જમીન પર ગિરે હુણ ફૂલોં સે પૂજા નહીં કરની યાહિયે ’ ઇસકા અભિપ્રાય યહ હુઆ કિ તાજે ઓર તોડે હુણ ફૂલોં સે પૂજા કરની યાહિયે અરેરે ! ઉનકા વહ કૈસા સાવધ ઉપદેશ હૈ ।

इस प्रकार देवमंदिर आदि में कदलीस्तंभ खड़ा करके, अशोक वृक्ष के पत्तों से

પન્ચાશકવૃત્તિ ઉમાસ્વાતિકૃત પ્રકરણમાં કહ્યું છે—

‘ મધ્યાહ્નમાં કુલોવડે પૂજા કરવામાં આવે છે. ’ ‘ ગંધ, વાસ અને અક્ષતથી તથા માળાઓથી પૂજા થાય છે. ’ ‘ ઉત્તમ ફૂલોથી પૂજા કરવામાં આવે છે. ’ ઇત્યાદિ. ઓળખું પણ કહ્યું છે કે:—

“ સૂકાં, જમીન પર ખરી પડેલાં, જેની પાંખડી તુટી ગઈ હોય, સ્પર્શ કરાએલાં; ખરાબ અને ખિલ્યા વિનાનાં કુલોથી પૂજા નહિ કરવી નેઈએ. ”

‘ સૂકાં અને જમીન પર ખરી પડેલાં કુલો વડે પૂજા ન કરવી નેઈએ ’ આને અભિપ્રાય એ થયો કે લીલાં અને તાજાં તોડેલાં કુલોથી પૂજા કરવી નેઈએ: અરેરે ! તેઓને આ સાવધ ઉપદેશ કેવો છે ?

આ પ્રમાણે દેવમંદિર આદિમાં કેળના સ્થંભ ઊભા કરીને અશોકવૃક્ષમાં પાંજુડીથી

मालिकादिवन्धनेन, प्रतिमोपरि सचित्तपत्रपुष्पादिक्षेपणेन सचित्तनालिकेरदाडिम-
सालफलादिनैवेद्योपचारेण च वनस्पतिर्हिंसां कारयन्तस्ते तद्राश्रिताननेकविधान्
त्रसस्थावरान् माणिनो घातयन्ति । नहि-वीतरागाणां सावधा सपर्यां सप्रचिता,
'एस खलु गंधे' इत्यादिवचनेन सर्वारम्भाणामस्मिन्नेवागमेतैः साक्षात् प्रतिपिद्धत्वात् ।
नहि तत्तत्त्यागिभ्यस्तत्तत्त्यक्त्वन्यसमर्पणं तुष्टिकरं भवतीति । नहि लोके मद्यमांस-
त्यागिभ्यो मद्यमांससमर्पणं तत्परितोपाय जायते । अलं बहुना ! हरितकन्दमूलादि-
त्यागिनः श्रावका अपि न हरितकन्दमूलादिसमर्पणेन संतुष्यन्तीति विचारयन्तु
मनीषिणः ॥ सू० ५ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद-‘तत्थ.’ इत्यादि ।

वन्दनवार बाँधकर, प्रतिमा पर सचित्त पत्ते, फूल आदि चढाकर, सचित्त नारियल, दाडिम,
आम आदि नैवेद्य के उपचार से वनस्पति को हिंसा करते हुए वे वनस्पति-आश्रित अनेक
प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों का घात करवाते हैं । वीतराग देव की पूजा सावध होना
उचित्त नहीं है । ‘एस खलु गंधे.’ इत्यादि कथन द्वारा इसी आगम में समस्त आरंभों का
वीतराग भगवान्ने साक्षात् निषेध किया है । जो पुरुष जिस वस्तु का त्यागी है, उसकी तुष्टि
उस वस्तु को अर्पित करने से नहीं हो सकती । लोक में मद्य-मांस का त्याग करने वालों
को मद्य-मांस की भेंट संतोषजनक नहीं होती । अधिक क्या कहें ! हरित कंद मूल के
त्यागी श्रावक भी हरित कन्द मूल की भेंट से प्रसन्न नहीं होते हैं । बुद्धिमान् पुरुष स्वयं
विचार करें ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं-‘तत्थ.’ इत्यादि ।

वंदनवार बाँधीने, प्रतिमा उपर सचित्त पाँडेडा, फूल आदि थढावीने, सचित्त नाजिअर,
दाडम, आंभा आदि नैवेद्यता उपचारथी वनस्पतिनी हिंसा करीने ते वनस्पति-आश्रित
अनेक प्रकारना त्रस-स्थावर जीवोना घात करावे छे. वीतरागदेवनी पूजा साध डोय
ते योग्य नथी. ‘एस खलु गंधे.’ इत्यादि कथन द्वारा आं आगममां तमाभ समा-
रंभोना वीतराग भगवाने साक्षात् निषेध कथी छे. जे पुरुष जे वस्तुना त्यागी छे,
तेनी प्रसन्नता ते वस्तुने अर्पण करवाथी थछ शकती नथी. लोकमां मद्य-मांसना
त्यागी-त्याग करवावाणाने मद्य-मांसनी लेट संतोष उत्पन्न करती नथी, अधिक थुं
कहीअे ! लीला कंदमूलना त्यागी श्रावक पणु लीला कंदमूलनी लेटथी प्रसन्न थता
नथी तो बुद्धिमान् पुरुष पोते विचार करी लीअे. ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे-‘तत्थ.’ इत्यादि.

मूलम्—

तत्र खलु भगवत्या परिण्णा पवेइया । इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदण—
माणण—पूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुःखपडिघायहेउं, से सयमेव वणस्सइसत्थं
समारंभइ, अण्णेहिं वा वणस्सइसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वणस्सइसत्थं समारंभमाणे
समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ६ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवत्या परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन—मानन
—पूजनाय, जातिमरणमोचनाय, दुःखप्रतिघातहेतुं, स स्वयमेव वनस्पतिशस्त्रं समार-
भते, अन्यैर्वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान्
समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ६ ॥

टीका—

तत्र=वनस्पतिकायसमारम्भे, भगवत्या=श्रीमहावीरेण, परिज्ञा=सम्पन्न-
बोधः खलु=निश्चयेन प्रवेदिता=प्रतिबोधिता-कर्मवन्नसमुच्छेदार्थं जीवेन परि-

मूलार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ के संबंध में भगवान् ने सम्यक् बोध दिया है ।
इस जीवन के वन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म—मरण से छुटकारा पाने के लिए तथा
दुःखों का विनाश करने के लिए स्वयं वनस्पतिकायशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से
आरंभ करता और आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है । वह आरंभ उस के
अहित के लिए, उसकी अबोधि के लिए होता है ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—वनस्पतिकाय के आरंभ के विषय में भगवान् श्री महावीर स्वामीने
सम्यक् उपदेश दिया है । अर्थात् भगवान् ने बतलाया है कि—कर्मबंध को नष्ट करने के

मूलार्थ—वनस्पतिकायना आरंभना सम्बंधमां लगवाने सम्भक् बोध आप्थे।
छे. आ लुवनना वंदन, मानन, अने पूजन भाटे, जन्म—मरणधी छुटवाने भाटे
तथा दुःखोने विनाश करवा भाटे स्वयं वनस्पतिकायशस्त्रो आरंभ करे छे, पीला
यासे आरंभ करवे छे, अने आरंभ करवावाणा पीलने अनुमोदन आप्थे छे. ते
आरंभ तेना अहित भाटे तेमज तेनी अबोधि भाटे छेय छे. ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—वनस्पतिकायना आरंभना विषयमां लगवान श्री महावीर स्वामीने
सम्भक् उपदेश आप्थे छे. अर्थात् लगवाने जतावुं छे के—कर्मबंधने नष्ट करवा भाटे

मालिकादिवन्धनेन, प्रतिमोपरि सचिचपत्रपुष्पादिक्षेपणेन सचिचत्नालिकेरदाडिम-
सालफ्लादिनैवेद्योपचारेण च वनस्पतिहिंसां कारयन्तस्ते तदाश्रिताननेकविधान
त्रसस्थावरान् प्राणिनो घातयन्ति । नहि-वीतरागाणां सावधा सपर्यां समुचिता,
'एस खलु गंधे' इत्यादिवचनेन सर्वारम्भाणामस्मिन्नेवागमे तैः साक्षात् प्रतिपिदत्वात् ।
नहि तत्तत्यागिभ्यस्तत्तत्त्यक्तद्रव्यसमर्पणं तुष्टिकरं भवतीति । नहि लोके मद्यमांस-
त्यागिभ्यो मद्यमांससमर्पणं तत्परितोषाय जायते । अलं बहुना ! हरितकन्दमूलादि-
त्यागिनः श्रावका अपि न हरितकन्दमूलादिसमर्पणेन संतुष्यन्तीति विचारयन्तु
मनीषिणः ॥ सू० ५ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद—'तत्थ.' इत्यादि ।

वन्दनवार बाँधकर, प्रतिमा पर सचिच पत्ते, फूल आदि चढाकर, सचिच नारियल, दाडिम,
आम आदि नैवेद्य के उपचार से वनस्पति को हिंसा करते हुए वे वनस्पति-आश्रित अनेक
प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों का घात करवाते हैं । वीतराग देव की पूजा सावध होना
उचित नहीं है । 'एस खलु गंधे.' इत्यादि कथन द्वारा इसी आगम में समस्त आरंभों का
वीतराग भगवान्ने साक्षात् निषेध किया है । जो पुरुष जिस वस्तु का त्यागी है, उसकी तुष्टि
उस वस्तु को अर्पित करने से नहीं हो सकती । लोक में मद्य-मांस का त्याग करने वालों
को मद्य-मांस की भेंट संतोषजनक नहीं होती । अधिक क्या कहें ! हरित कंद मूल के
त्यागी श्रावक भी हरित कन्द मूल की भेंट से प्रसन्न नहीं होते हैं । बुद्धिमान् पुरुष स्वयं
विचार करलें ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं—'तत्थ.' इत्यादि ।

वन्दनवार बाँधीने, प्रतिमा उपर सचिच पांढडा, फूल आदि थढावीने, सचिच नाजिअेर,
दाडिम, आंभा आदि नैवेद्यना उपचारथो वनस्पतिनी हिंसा करीने ते वनस्पति-आश्रित
अनेक प्रकारना त्रस-स्थावर जिवोनो घात करावे छे. वीतरागदेवनी पूजा साध डोय
ते योग्य नथी. 'एस खलु गंधे.' इत्यादि कथन द्वारा आ आगममां तमाम समा-
रंभोनो वीतराग भगवाने साक्षात् निषेध कथो छे. ओ पुरुष ओ वस्तुना त्यागी छे,
तेनी प्रसन्नता ते वस्तुने अर्पण करवाथी थर् शकती नथी. लोकमां मद्य-मांसना
त्यागी-त्याग करवावाणाने मद्य-मांसनी लेट संतोष उत्पन्न करती नथी, अधिक थुं
कहीअे ! लीला कंदभूणना त्यागी श्रावक पण लीला कन्दभूणनी लेटथी प्रसन्न थता
नथी तो बुद्धिमान पुरुष पोते विचार करी लीअे. ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—'तत्थ.' इत्यादि.

गजाश्वमृगव्याघ्रसिंहादीनां स्वरूपं दधाना वृक्षादयस्तस्योपवनादेर्विशिष्टशोभां
जनयन्ति ।

माननं=जनसत्कारस्तदर्थं, यथा—स एव पत्रादिकर्तनकलाकुशलो
मालाकारः स्वमाननार्थं कर्तरीशस्त्रेण वृक्षलतादीनां पत्रादिकं कृन्तति । पूजनं=
वृक्षरत्नादिलोभस्तदर्थम्, यथा—देवप्रतिमाद्यर्थं पत्रपुष्पफलादीनां श्रोतने । तथा—
जातिमरणमोचनाय=जन्ममरणवन्धमोचनार्थं, यथा—मुक्तिकामन पूजायां
पुष्पपत्रादिसमुच्छेदने, तथा—दुःखप्रतिघातहेतुं=व्याधिशमनाद्यर्थम्—ओषधि-
वृक्षलतादीनां मूलकन्दशाखापत्रपुष्पफलादिभेदने, स जीवनसुखाद्यर्थी स्वयमेव

हाथी, घोडा, हिरन, वाघ, सिंह आदि का आकार बन जाता है और इससे उस बगीचे की
सुन्दरता बढ़ती है, ऐसा जानकर करता है ।

जनसत्कार के लिए भी वनस्पति की हिंसा की जाती है, जैसे—पत्ता वगैरह काटने
में कुशल वही पूर्वोक्त माली कैंची से वृक्षों या लताओं के पत्ता आदि काटता है । तथा पूजन
के लिए अर्थात् वृक्षों और रत्नों के लिए भी वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं । जैसे—देव
प्रतिमा आदि के लिए पत्र, फूल, फल तोड़ने में ।

जन्म मरण से छुटकारा पाने से लिए भी उक्त हिंसा की जाती है । जैसे—मुक्ति की
इच्छा से पूजा के लिए फूल—फल तोड़ने में । दुःखों का प्रतीकार करने के लिए भी यह हिंसा
की जाती है । जैसे—रोग मिटाने के लिए ओषधि, वृक्ष, लता, मूल, कन्द, शाखा, पत्र, फूल
आदि तोड़ने में हिंसा की जाती है ।

वृक्ष लता वगैरेने जेवा प्रकारे कापे छे के तेमां हाथी, घोडा, हरण, वाघ, सिंह आदिने
आकार अनी नय छे, अने तेथी जे अगीयानी सुंदरता वधे छे. जेवुं समलनेज करे छे.

जन्म-सत्कार भाटे पशु वनस्पतिनी हिंसा करवामां आवे छे, जेभ-पांढरां
वगैरेने कापवामां कुशल आगण कछेले तेज भाणी ईंथी (कातर)थी वृक्षा अथवा
लताजोनां पत्तां आदि कापे छे. तथा पूजन भाटे अर्थात् वस्त्रो अने रत्नोने भाटे
पशु वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे, जेभ-देवप्रतिमा आदि भाटे पत्र फूल इल तोडवामां.

जन्म-मरणथी छुटवा भाटे पशु पूर्व कछेले हिंसा करवामां आवे छे, जेभके-
मुक्तिनी ध्येछथी पून भाटे इल इल तोडवामां.

इःप्रोना प्रतिकार करवा भाटे पशु जे हिंसा करवामां आवे छे. जेभके-रोगनिवारण
करवा भाटे औषधी, वृक्ष, लता, मूल, कन्द, शाखा, पत्र, फूल आदि तोडवामां हिंसा कर-
वामां आवे छे.

ज्ञाञ्चक्ष्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतियोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय वनस्पतिकायमुपर्दयती ? त्याह—‘अस्य चैव जीवितस्ये’—त्यादि । अस्यैव नश्वरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्—आहार—वस्त्र—पात्र—माल्य—गन्ध—चूर्ण—तालवृन्ता—ज्वाला—संघट्टा—पलंग—शिबिका—शकट—हल—मुसल—पीठ—फलक—सिंहासन—दण्ड—लकड—कपाट—वीणा—शालभञ्जिका—निर्माण—तपन—प्रतापन—प्रकाशने—न्धन—तैलाद्यर्थमित्यर्थः । तथा—परिवन्दन—मानन—पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा—कश्चित् स्वप्रशंसार्थम् उपवनादौ पत्रादिकर्तनकलाकौशलेन वृक्षलतादीनां पत्रादीनि तथा छेदयति यथा तत्कर्तनेन

लिए जीव को परिज्ञा (उपदेश) अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ? यह बतलाते हैं—इसी नाशशील जीवन के सुख के लिए अर्थात् आहार, वस्त्र, पात्र, माला गंध, चूर्ण, तालवृन्त (पंखा), आगल, खाट, पलंग, पालकी, गाडी, हल, मूसल, पीडा, (वाजोटे) फलको (पाट), सिंहासन, डंडा, लकडी, किवाड, वीणा, पुतली आदि बनवाने के लिए, तपाना, विशेष तपाना, प्रकाशन, ईंधन, और तैल आदि के प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं । तथा प्रशंसा के लिए भी वनस्पति की हिंसा करते हैं, जैसे—कोई पुरुष अपनी प्रशंसा के लिए बगीचा आदि में पत्ता बगैरह काटने की कला में कुशलता प्रकट करने के अभिप्राय से वृक्ष लता बगैरह को इस प्रकार काटता है जिससे उसमें

ज्वने परिज्ञा (उपदेश)ने अवश्य स्वीकार करने में लगे हैं।

उपभोगद्वार—

लोक शुं प्रयोजनथी वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे ? ते अतावे छे—आ नाश पाभवावाणा ज्वना सुभ भाटे, अर्थात्—आहार, वस्त्र, पात्र, माला, गंध, चूर्ण, पंखा आगरियो, भाट, पलंग, पालकी, गाडी, हल, मूसल, आगल, पाट, सिंहासन, डंडा, लाकडी, कभाड, वीणा, पुतली वगैरे अनाववा भाटे, तपाववुं विशेष तपाववुं, प्रकाशन, धन्धन—(आणवाना लाकडा) अने तैल आदिना प्रयोजनथी वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे. तथा प्रशंसा भाटे पंखु वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे, जेभके—कोई पुरुष पोतीनी प्रशंसा भाटे अंगीयां आदिमां पांडडा वगैरे कापवाणी कलाभां कुशलतां अताववां अंभियांभी

गङ्गाश्वमृगव्याघ्रसिंहादीनां स्वरूपं दधाना वृक्षादयस्तस्योपचनादेर्विशिष्टशोभां
जनयन्ति ।

माननं=जनसत्कारस्तदर्थं, यथा-स एव पत्रादिकर्तनकलाकुशलो
मालाकारः स्वमाननार्थं कर्तरीश्वरेण वृक्षलतादीनां पत्रादिकं कृन्तति । पूजनं=
वस्त्ररत्नादिलाभस्तदर्थम्, यथा-देवप्रतिमाद्यर्थं पत्रपुष्पफलादीनां त्रोटने । तथा-
जातिमरणमोचनाय=जन्ममरणबन्धमोचनार्थं, यथा-मुक्तिकामन पूजायां
पुष्पपत्रादिसमुच्छेदने, तथा-दुःखप्रतिघातहेतुं=पापशमनाद्यर्थम्-ओषधि-
वृक्षलतादीनां मूलकन्दशाखापत्रपुष्पफलादिभेदने, स जीवनसुखाद्यर्थी स्वयमेव

हाथी, घोडा, हिरन, वाघ, सिंह आदि का आकार बन जाता है और इससे उस वगीचे की
सुन्दरता बढ़ती है, ऐसा जानकर करता है ।

जनसत्कार के लिए भी वनस्पति की हिंसा की जाती है, जैसे-पत्ता वगैरह काटने
में कुशल वही पूर्वोक्त माली कैंची से वृक्षों या लताओं के पत्ता आदि काटता है । तथा पूजन
के लिए अर्थात् वस्त्रों और रत्नों के लिए भी वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं । जैसे-देव
प्रतिमा आदि के लिए पत्र, फूल, फल तोड़ने में ।

जन्म मरण से छुटकारा पाने से लिए भी उक्त हिंसा की जाती है । जैसे-मुक्ति की
इच्छा से पूजा के लिए फूल-फल तोड़ने में । दुःखों का प्रतिकार करने के लिए भी यह हिंसा
की जाती है । जैसे-रोग मिटाने के लिए ओषधि, वृक्ष, लता, मूल, कन्द, शाखा, पत्र, फूल
आदि तोड़ने में हिंसा की जाती है ।

वृक्ष लता वगैरेने जेवा प्रकारे कापे छे के तेभां छाथी, घोडा, हरण, वाघ, सिंह आदिने
आकार जनी जय छे, अने तेथी जे जगीथानी सुंदरता वधे छे. जेबुं समजनेज करे छे.

जन-सत्कार भाटे पणु वनस्पतिनी हिंसा करवाभां आवे छे, जेभ-पांढां
प्रगेरेने कापवाभां कुशल आगण कडेवे। तेज भाणी ईंधी (कातर)थी वृक्षा अथवा
लताजोनानां पत्तां आदि कापे छे. तथा पूजन भाटे अर्थात् वस्त्रे अने रत्नाने भाटे
पणु वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे, जेभ-देवप्रतिमा आदि भाटे पत्र फूल इल तोडवाभां.

जन्म-मरणथी छुटवा भाटे पणु पूर्व कडेली हिंसा करवाभां आवे छे, जेभके-
मुक्तिनी छुटवाथी पूजा भाटे इल इल तोडवाभां.

दुःखाने प्रतिकार करवा भाटे पणु जे हिंसा करवाभां आवे छे. जेभके-रोगनिवारण
करवा भाटे ओषधी, वृक्ष, लता, मूल, कन्द, शाखा, पत्र, फूल आदि तोडवाभां हिंसा कर-
वाभां आवे छे.

वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिकायोपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं समारम्भते=व्यापारयति । अन्यैर्वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयति । अन्यान् वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति ।

तत्=वनस्पतिकायसमारम्भ, तस्य वनस्पतिसमारम्भ कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अद्विताय भवति । तथा-तत् तस्य अवोधये=सम्यक्त्वालाभाय भवति । ॥ सू० ६ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमोपे वनस्पतिकायस्वरूपं परिज्ञातं, स एवं विभावयतीत्याह—'से तं.' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संवुज्झमाणे आयाणीयं समुद्राय सोच्चा खलु भगवओ अण-

इस प्रकार जीवन को सुखी बनाने का अभिलाषी वह पुरुष वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाले द्रव्य और भावशस्त्र का स्वयं उपयोग करता है, दूसरों से उपयोग कराता है और वनस्पतिशस्त्र का उपयोग करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

वनस्पतिकाय का वह आरंभ, आरंभ करने वाले, कराने वाले और अनुमोदन करने वाले के अद्वित के लिए होता है और सम्यक्त्व की अप्राप्ति का कारण बनता है ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट वनस्पतिकाय का स्वरूप जिसने जान लिया है, वह इस प्रकार विचार करता है—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—वह पुरुष भगवान् या अनगारों से मुनकर समझ-बूझकर संयम

ये प्रभाणे एवनने सुधी णनाववाना अबिलाषी ते पुरुष वनस्पतिकायनी हिंसा करवावाणा द्रव्य अने भाव शस्त्रेण स्वयं उपयोग करे छे, अनीन पासे उपयोग करावे छे अने वनस्पतिशस्त्रेण उपयोग करवावाणा अनीनने अनुमोदन आये छे ।

वनस्पतिकायने आ आरंभ, आरंभ करवावाणाने, कराववावाणाने अने अनुमोदन करवावाणाने अद्वित भाटे छे अने सम्यक्त्वनी अप्राप्तितुं कारण्य णने छे । ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदिना समीपे वनस्पतिकायतुं स्वयं लेले लक्ष्मी लीधुं छे, ते आ प्रभाणे विचार करे छे—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—ते पुरुष भगवान् अथवा अणुगारे पासेथी सांभणी-सभल-अुजीने

गाराणं वा अन्ति ए इहमेगेसि णायं भवइ-एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए । इच्चत्थं गट्टिए लोए, जमिणं विरुवरुवेहिं सत्थेहिं षणस्सइ-कम्मसमारंभेणं षणस्सइसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरुवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ७ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेपां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः । इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरुवरुपैः शत्रैः वनस्पतिकर्मसमारम्भेण वनस्पतिशत्रुं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ७ ॥

टीका—यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा, आदानीयम्=उपादेयसर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्र्यं, समुत्थाय=भङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=वनस्पतिकायसमारम्भणं संबुध्यमानः=अहितावोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन् एवं विभावयति—‘एवं खलु०’ इत्यादि ।

ग्रहण करके विचरता है । वह इस प्रकार समझता है—वनस्पतिकाय का आरंभ ग्रंथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । गृद्ध लोग इसके लिए नाना प्रकार के शत्रुओं से वनस्पतिकाय का आरंभ करके, शत्रु का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्राणियों का पात करते हैं ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर से या उनके श्रमण निर्ग्रन्थों से सर्वसावद्य त्याग रूप संयम स्वरूप समझकर और उसे अंगीकार करके विचरता है वह वनस्पतिकाय के आरंभ को अहितकर और अवोधिजनक समझकर इस प्रकार विचार करता है—‘एवं खलु०’ इत्यादि ।

संयम अक्षु करीने विचरे छे. ते आ प्रभाण्णे समञ्जे छे-वनस्पतिकायने आरंभ ग्रंथ छे, अे मोह छे, अे मार छे, अे नरक छे. गृद्ध लोक अे भाटे नाना प्रकारना शत्रोथी वनस्पतिकायने आरंभ करीने शत्रुने प्रयोग करता थका णीणां पण्ण अनेक प्राणीओने धात करे छे. ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—जे पुरुष तीर्थंकरथी अथवा तेमना श्रमण निर्ग्रन्थो पासथी सर्व-सावद्य (कर्मना) त्यागरूप संयमना स्वइधने समञ्जे ने अने तेने अंगीकार करीने विचरे छे, ते वनस्पतिकायना आरंभने अहितकर अने अवोधिजनक समञ्जे आ प्रभाण्णे विचार करे छे—‘एवं खलु०’ इत्यादि.

વનસ્પતિશસ્ત્રં=વનસ્પતિકાયોપમર્દકં દ્રવ્યભાવશસ્ત્રં સમારમ્ભતે=વ્યાપારયતિ । અન્યૈર્વા
વનસ્પતિશસ્ત્રં સમારમ્ભયતિ । અન્યાન્ વા વનસ્પતિશસ્ત્રં સમારમ્ભમાણાન્ સમનુજાનાતિ=
અનુમોદયતિ ।

તત્=વનસ્પતિકાયસમારમ્ભ, તસ્ય વનસ્પતિસમારમ્ભ કુર્વતઃ કારયિતુઃ
અનુમોદયિતુશ્ચ અહિતાય ભવતિ । તથા-તત્ તસ્ય અવોધયે=સમ્યક્તવાલાભાય
ભવતિ । ॥ સૂ૦ ૬ ॥

યેન તુ તીર્થઙ્કરાદિસમીપે વનસ્પતિકાયસ્વરૂપં પરિજ્ઞાતં, સ એવં વિભાવયતી-
ત્યાહ—‘સે તં.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

સે તં સંબુજ્જમાણે આયાણીયં સમુદ્ઘાય સોચા સ્વલુ મગવઓ અળ-

इस प्रकार जीवन को सुखी बनाने का अभिलाषी वह पुरुष वनस्पतिकाय की हिंसा
करनेवाले द्रव्य और भावशस्त्र का स्वयं उपयोग करता है, दूसरों से उपयोग कराता है और
वनस्पतिशस्त्र का उपयोग करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

वनस्पतिकाय का वह आरंभ, आरंभ करने वाले, कराने वाले और अनुमोदन
करने वाले के अहित के लिए होता है और सम्यक्त्व की अप्राप्ति का कारण
बनता है ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट वनस्पतिकाय का स्वरूप जिसने जान लिया है, वह इस
प्रकार विचार करता है—‘से तं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वह पुरुष भगवान् या अनगारों से सुनकर समझ-बूझकर संयम

એ પ્રમાણે જીવનને સુખી બનાવવાના અભિલાષી તે પુરુષ વનસ્પતિકાયની હિંસા
કરવાવાળા દ્રવ્ય અને ભાવ શસ્ત્રનો સ્વયં ઉપયોગ કરે છે, બીજા પાસે ઉપયોગ કરાવે
છે અને વનસ્પતિશસ્ત્રનો ઉપયોગ કરવાવાળા બીજાને અનુમોદન આપે છે.

વનસ્પતિકાયનો આ આરંભ, આરંભ કરવાવાળાને, કરાવવાવાળાને અને અનુમોદન
કરવાવાળાને અહિત માટે છે અને સમ્યક્ત્વની અપ્રાપ્તિનું કારણ બને છે. ॥ સૂ૦૬ ॥

તીર્થંકર આદિના સમીપે વનસ્પતિકાયનું સ્વરૂપ જોણું બાણી લીધું છે. તે આ
પ્રમાણે વિચાર કરે છે—‘સે તં.’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—તે પુરુષ ભગવાન અથવા અણુગારો પાસેથી સાંભળી-સમજી-બુઝીને

इत्यर्थम्=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखकलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=भोगाभिलाषी, लोकः=संसारि जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थ-मोह-मरणनरकार्थमेव भवर्त्त इति शेषः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव भवर्त्त इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः पूर्वोक्तप्रकारैः, वनस्पतिकर्मसमारम्भेण=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपसावधव्यापारेण, इमं=वनस्पतिकायं विहिनस्ति । तथा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भमाणः=व्यापारयन् अन्यान्=पृथिवीकायादीन् अनेकरूपान् =त्रसान् स्थावरांश्च तदाश्रितान् प्राणान्=प्राणिनः विहिनस्ति=उपमर्दयति ॥सू० ७॥

अज्ञानी जीव कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक रूप इन फलों को प्राप्त करके भी बार-बार इसी में गृद्ध होते हैं । अथवा भोग के अभिलाषी पुरुष इसी ग्रन्थ, मोह, मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

लोक पुन-पुनः कर्मबन्ध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं' यह जो कथन किया है सो कैसे ज्ञात हुआ ? इस जिज्ञासा के होने पर कहते हैं—'यदिमम्.' इत्यादि ।

क्यों कि नाना प्रकार के पूर्वोक्त शस्त्रों द्वारा वनस्पतिकाय की हिंसा करने वाले लोग सावध व्यापार से वनस्पतिकाय का घात करते हैं । तथा वनस्पतिकाय का आरंभ करते हुए अन्य पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकार के तदाश्रित त्रस और स्थावर जीवों की घात करते हैं ॥ सू० ७ ॥

अज्ञानी एव कर्मबन्ध, मोह, मरण अने नरकरूप ये इष्टोने प्राप्त करीने पणु वार-वार येमां गृद्ध थाय छे. अथवा लोगना अलिलापी पुरुष आ अंध, मोह, मरण अने नरक भाटेण प्रवृत्ति करे छे.

लोक पुनः पुनः (इरी-इरी) कर्मबन्ध वगेरे भाटेण प्रवृत्ति करे छे; ये कथन ले कथुं छे, ते केवी शीते न्नुवामां आण्युं ? ये जिज्ञासा थवाथी कहे छे. 'यदिमम्.' इत्यादि.

केमके नाना प्रकारनां पूर्वोक्त शस्त्रे द्वारा वनस्पति कायनी हिंसा करवावाणा लोक सावध व्यापारथी वनस्पतिकायने घात करे छे, तथा वनस्पतिकायने आरंभ करता थका, अन्य पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकारना तदाश्रित त्रस अने स्थावर एवेने घात करे छे. ॥ सू. ७ ॥

इह=मनुष्यलोके एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञातसम्यग्बोधवैराग्याणामा-
त्सार्थिनामेवं ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—‘एष खलु०’
इत्यादि ।

एषः=वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे कार्यो-
पचारात् कारणभूतो वनस्पतिशस्त्रसमारम्भ एव कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते ।
एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः-
अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष एव नरकः=
नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इस मनुष्य लोक में जिन्हें श्रमण निर्गर्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है, उन्हीं को यह विदित होता है । क्या विदित होता है ? इस शंका का समाधान करने के लिए आगे कहते हैं—‘ एष खलु ग्रन्थ० ’ इत्यादि ।

वनस्पतिकाय का आरंभ निश्चय से ग्रंथ अर्थात् कर्मबंधरूप है । कारण में कार्य का उपचार करके आरंभ को कर्मबंध कहा है । वस्तुतः वह कर्मबंध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए ।

वनस्पतिकाय का समांरभ मोह अर्थात् अज्ञान है—अज्ञानजनक है । यह मार है अर्थात् निगोद आदि में मृत्यु का कारण है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को दश प्रकार की यातना का कारण है ।

આ મનુષ્યલોકમાં જેને નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન, અને વેરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે. તેઓ આ બાબે છે. શું બાબે છે ? એ શંકાનું સમાધાન કરવા માટે આગળ કહે છે, ‘ એ ખલુ ગ્રન્થ૦ ’—ઈત્યાદિ.

વનસ્પતિકાયનો આરંભ નિશ્ચય ગ્રંથ છે—અર્થાત્ કર્મબંધરૂપ છે, કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને આરંભને કર્મબંધ કહે છે, વસ્તુતઃ તે કર્મબંધનું કારણ છે. એ પ્રમાણે આગળ પણ સમજ લેવું જોઈએ.

વનસ્પતિકાયનો સમારંભ મોહ અર્થાત્ અજ્ઞાન છે—અજ્ઞાનજનક છે, તે માર છે, અર્થાત્ નિગોદ આદિમાં મૃત્યુનું કારણ છે. તે નરક છે, અર્થાત્ નારકી જીવોને દશ પ્રકારની યાતનાઓનું કારણ છે.

આચારચિન્તામણિ—ટીકાઅંધ્ય. ૧૩. ૫ મૂ. ૮ મનુષ્યશરીરવનસ્પતિશરીરયોઃ સામ્યમ્ ૬૩૭

છિન્નં મિલાઈ, इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं, इमंपि अणिचयं एयंपि अणिचयं, इमंपि असासयं एयंपि असासयं, इमंपि चभोवचइयं एयंपि चभोवचइयं, इमंपि विपरिणामधम्मयं एयंपि विपरिणामधम्मयं ॥ सू० ८ ॥

છાયા—

स ब्रवीमि—इदमपि जातिधर्मकम् एतदपि जातिधर्मकम्, इदमपि वृद्धिधर्मकम् एतदपि वृद्धिधर्मकम्, इदमपि चित्तवत् एतदपि चित्तवत्, इदमपि छिन्नं म्लायति एतदपि छिन्नं म्लायति, इदमपि आहारकम् एतदपि आहारकम्, इदमपि अनित्यकम् एतदपि अनित्यकम्, इदमपि अशाश्वतम् एतदपि अशाश्वतम्, इदमपि चयोपचयिकम् एतदपि चयोपचयिकम्, इदमपि विपरिणामधर्मकम् एतदपि विपरिणामधर्मकम् ॥ सू० ८ ॥

ટીકા---

येन साक्षाद्भगवन्मुख्याद् वनस्पतेः सचेतनत्वं श्रुतं सोऽहं ब्रवीमि= यथा भगवता कथितं, तथा कथयामीत्यर्थः । प्रतिज्ञातमर्थं प्रदर्शयति-इदमपीत्यादि ।

यह भी आहारक है, वह भी आहारक है । यह भी अनित्य है, वह भी अनित्य है । यह भी अशाश्वत है, वह भी अशाश्वत है । यह भी चय-उपचय वाला है, वह भी चय-उपचय वाला है । यह भी विविध प्रकार से परिणमनशील है और वह भी विविध प्रकार से परिणमनशील है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जिसने साक्षात् भगवान् के मुख से वनस्पतिकाय की सचेतनता सुनी है वही मैं कहता हूँ—जैसा भगवान् ने कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ । यही बात कहते हैं—‘इदमपि०’ इत्यादि ।

પણ આહારક છે. આ પણ અનિત્ય છે. તે પણ અનિત્ય છે. આ પણ અશાશ્વત છે, તે પણ અશાશ્વત છે. આ પણ ચય-ઉપચયવાળા છે, તે પણ ચય-ઉપચયવાળા છે. આ પણ વિવિધ પ્રકારથી પરિણમનશીલ છે, અને તે પણ વિવિધ પ્રકારથી પરિણમન શીલ છે. ॥સૂ. ૮॥

ટીકાર્થ—જેણે સાક્ષાત્ ભગવાનના મુખથી વનસ્પતિકાયની સચેતનતા સાંભળી છે. તેજ હું કહું છું—જેવું ભગવાને કહ્યું છે, તેવું જ હું કહું છું, એ વાત કહે છે—‘इदमपि.’ ઇત્યાદિ.

वनस्पतिकर्मसमारम्भफलप्रदर्शनपुरस्सरं वनस्पतिसमारम्भेऽनेकत्रसस्थावरजीव-
हिंसाऽवश्यम्भाविनीति प्रदर्शितम्, संपति वनस्पतेः सचेतनत्वसङ्कायां तस्य मनुष्य-
शरीरवत् सचेतनत्वमस्तीति प्रदर्शयति—'से वेमि.' इत्यादि ।

यद्वा—यथा मनुष्यशरीरे चैतन्यं सुगमं, तथा वनस्पतिक्रायेऽपि, तस्माद्
वनस्पतेर्मनुष्यशरीरसादृश्यं दर्शयति सूत्रकारः—'से वेमि.' इत्यादि ।

मूलम्—

से वेमि—इमं पि जाइधम्मयं एयं पि जाइधम्मयं, इमं पि बुद्धिधम्मयं एयं पि
बुद्धिधम्मयं, इमं पि चित्तमंतयं एयं पि चित्तमंतयं, इमं पि छिण्णं मिलाइ एयं पि

वनस्पतिक्राय के आरंभ का फल प्रगट करके यह भी प्रदर्शित कर दिया गया है कि—वनस्पतिक्राय का आरंभ करने से अन्य त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा भी अवश्य होती है । अब वनस्पतिक्राय के सचेतन होने में शंका होने पर उसकी मनुष्य शरीर के समान सचेतनता सूत्रकार प्रकट करते हैं—'से वेमि.' इत्यादि ।

अथवा—जैसे मनुष्यशरीर में चैतन्य को समझना सुगम है उसी प्रकार वनस्पतिक्राय में भी । अत एव वनस्पति मनुष्यशरीर के समान है, यह बात सूत्रकार कहते हैं—'से वेमि.' इत्यादि ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ—यह (मनुष्यशरीर) जन्मशील है, वह (वनस्पतिशरीर) भी जन्मशील है । यह बुद्धिशील है, वह भी बुद्धिशील है । यह सचित्त है वह भी सचित्त है । छेदने पर यह मुरझा जाता है, वह भी छेदने पर मुरझा जाता है ।

वनस्पतिक्रायना आरंभानुं इण प्रगट करीने अे पणु प्रदर्शित करी आणुं छे के-
वनस्पतिक्रायना आरंभ करवाथी अन्य त्रस अने स्थावर जीवोनी हिंसा पणु अवश्य थाय छे. छेवे वनस्पतिक्रायनी सचेतनता छेवाभां शंका छेवाथी तेनी सचेतना मनुष्यशरीरणी सचेतनता समान सूत्रकार प्रगट करे छे—'से वेमि.' इत्यादि.

अथवा—जेम मनुष्य शरीरमां चैतन्यने समज्जवाभां सुगमता छे, ते प्रभाण्णे वनस्पतिक्रायमां पणु सुगमता छे. अे भाटे वनस्पति मनुष्यशरीरना समान छे. अे वात सूत्रकार कहे छे:—'से वेमि.' इत्यादि.

मूलार्थ—ते हुं कहुं छुं—आ (मनुष्य शरीर) जन्मशील छे ते (वनस्पति-
शरीर) पणु जन्मशील छे, आ बुद्धिशील छे; ते पणु बुद्धिशील छे, आ सचित्त छे-
छेवाथी ते सूकाध्णय छे, ते पणु छेवार्थी सूकाध्णय छे. आ पणु आहारक छे, ते

युक्तम्, एतदपि=वनस्पतिशरीरं चित्तवत्=चेतनावत्, लज्जालुधात्र्यादीनां संकोच-
विकास-स्वापा-ववोधदर्शनात् । इदमपि=मनुष्यशरीरं हस्तादि छिन्नं सत् म्लायति=
शुष्यति, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि पल्लवफलपुष्पादि छिन्नं सत् म्लायति=
शुष्कं भवति । इदमपि आहारकम्=क्षीरौदनाद्याहारकरणशीलं, तथैव एतदपि=
वनस्पतिशरीरं भूललाद्याहारभोजि, न चैतदाहारकत्वमचेतनानां दृष्टम् ।

तथा इदमपि=मनुष्यशरीरम् अनित्यकम्= न सर्वदाऽवस्थायि, एतदपि
वनस्पतिशरीरम् अनित्यकम् आयुषोऽवधिसन्नात्, वनस्पतिशरीरस्य हि उत्कृष्ट-
मायुर्दशवर्षसहस्राणि । तथा-इदमपि=मनुष्यशरीरम् अशाश्वतं=प्रतिक्षणमावीचीमर-

क्यों कि लज्जावंती धात्री आदि वनस्पतियों में संकोच, विकास, स्वाप (निद्रा) और अववोध (जागना) देखा जाता है । हाथ आदि मनुष्यशरीर छेदने पर मुरझा जाता है उसी प्रकार पत्ता, फूल, फल आदिरूप वनस्पतिशरीर भी छेदने पर मुरझा जाता है । यह मनुष्यशरीर दूध और जोदन आदि का आहार करता है और वनस्पति शरीर भी पृथ्वी, जल आदि का आहार करता है । आहार करने कि क्रिया अचेतन में नहीं देखी जाती ।

मनुष्यशरीर अनित्य है—सदा टूटने वाला नहीं है, इसी प्रकार वनस्पतिशरीर भी अनित्य है, क्यों कि उसकी आयु की सीमा है । वनस्पतिशरीर की उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्ष की है ।

मनुष्य शरीर अशाश्वत है—आवीचिमरण प्रतिक्षण होता रहता है, और वनस्पति

केमडे लज्जावंती—(रीसाभली), धात्री आदि वनस्पतिशरीरों में संकोचावुं, विकास, निद्रा
अने जागवुं जेवामां आवे छे.

हाथ—आदि मनुष्यशरीर छेदवाधी सूकाई जय छे. ते प्रभाषे पांढडा, इल, कूल
आदि रूप वनस्पतिशरीर पषु छेदवाधी सूकाई जय छे. आ मनुष्यशरीर दूध अने
सात वगेरेना आहार करे छे, तेम वनस्पतिशरीर पषु पृथ्वी, जल आदिना आहार
करे छे, आहार करवानी क्रिया अचेतनमां जेवामां आवती नथी.

मनुष्य शरीर अनित्य छे. हमेशां स्थिर रहेवावाणुं नथी, अे प्रभाषे वनस्पति-
शरीर पषु अनित्य छे. केमडे—तेनी आयुष्यनी सीमा छे. वनस्पतिशरीरनी उत्कृष्ट
आयु दस हजार वर्षनी छे.

मनुष्यशरीर अशाश्वत छे—आवीचिमरण प्रतिक्षण थतुं रहे छे, तेम

इह पुरुषस्योपदेशयोग्यतया सामर्थ्येन संनिहितत्वात्तच्छरीरं संनिष्कृष्टत्वा-
चिनेदमृशब्देन परामृश्यते । इदमपि मनुष्यशरीरं, यद्वा-सामान्यरूपेण त्रसकाये
चैतन्यस्य मुञ्जेयत्वात् इदं=त्रसशरीरं, जातिधर्मकं-जातिः-जननं, तद्दर्मकं-जन-
नस्वभावं, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि जातिधर्मकं=मनुष्यशरीरवद् वनस्पति-
शरीरमपि जननस्वभावकमस्तीत्यर्थः । तथा इदमपि मनुष्यशरीरं वृद्धिधर्मकं=
बालकौमाराद्यवस्थामाश्रित्य वर्धनस्वभावम्, एतदपि वनस्पतिशरीरं अङ्कुरकिसलय-
पत्रस्कन्धशाखाप्रशाखादिना वर्धनशीलम् । इदमपि मनुष्यशरीरं चित्तवत्=चेतना-

‘इदम्’ शब्द का प्रयोग समीपवर्ती वस्तु के लिए किया जाता है । मनुष्य ही
उपदेश का पात्र है और उसका शरीर भी अत्यन्त समीप है अतः मनुष्य के शरीर को
‘इदम्’ शब्दद्वारा निर्दिष्ट किया गया है । अथवा त्रस जीव के शरीर में चैतन्य को समझना
सुगम है, इस कारण ‘इदम्’ का अर्थ मनुष्यशरीर के बजाय त्रस जीव का शरीर समझ
लेना चाहिए ।

यह मनुष्यशरीर या त्रस जीव का शरीर उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है,
उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है । तथा मनुष्य शरीर
वृद्धिशील है-बाल, कुमार आदि अवस्थाओं में बढ़ता जाता है उसी प्रकार वनस्पति-
शरीर भी अंकुर, किसलय, पत्र, स्कंध, शाखा और प्रशाखा आदि रूप से बढ़ता
जाता है । मनुष्यशरीर चेतनावान् है उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी चेतनावान् है,

‘इदम्’ शब्दને પ્રયોગ સમીપવર્તી વસ્તુ માટે કરવામાં આવે છે. મનુષ્યજ
ઉપદેશને પાત્ર છે, અને તેનું શરીર અત્યન્ત સમીપ છે. એ કારણથી મનુષ્યના
શરીરને ‘इदम्’ શબ્દદ્વારા નિર્દિષ્ટ કર્યું છે. અથવા ત્રસ જીવના શરીરમાં ચૈતન્યને
સમજવું સુગમ છે. એ કારણથી ‘इदम्’નો અર્થ મનુષ્ય શરીરના બદલે ત્રસ જીવનું
શરીર સમજ લેવું જોઈએ.

આ મનુષ્યશરીર અથવા ત્રસજીવનું શરીર ઉત્પન્ન થવાના સ્વભાવવાળું છે, તે
પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ ઉત્પન્ન થવાના સ્વભાવવાળું છે. તથા મનુષ્યશરીર વૃદ્ધિ-
શીલ છે-બાલકુમાર, આદિ અવસ્થાઓમાં વધતું જાય છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિશરીર
પણ અંકુર, કિસલય-કુમળાં, પાન, પત્ર, સ્કંધ, શાખા અને પ્રશાખા આદિરૂપથી વધે
જાય છે. મનુષ્યશરીર ચેતનાવાન છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ ચેતનાવાન છે.

युक्तम्, एतदपि=वनस्पतिशरीरं चित्तवत्=चेतनावत्, लज्जालुधात्र्यादीनां संकोच-
विकास-स्वापा-वबोधदर्शनात् । इदमपि=मनुष्यशरीरं हस्तादि छिन्नं सत् म्लायति=
शुष्यति, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि पल्लवफलपुष्पादि छिन्नं सत् म्लायति=
शुष्कं भवति । इदमपि आहारकम्=क्षीरौदनाद्याहारकरणशीलं, तथैव एतदपि=
वनस्पतिशरीरं भूजलाद्याहारभोजि, न चैतदाहारकत्वमचेतनानां दृष्टम् ।

तथा इदमपि=मनुष्यशरीरम् अनित्यकं= न सर्वदाऽवस्थायि, एतदपि
वनस्पतिशरीरम् अनित्यकम् आयुषोऽवधिसन्वात्, वनस्पतिशरीरस्य हि उत्कृष्ट-
मायुर्दशवर्षसहस्राणि । तथा-इदमपि=मनुष्यशरीरम् अशाश्वतं=प्रतिक्षणमावीचीमर-

क्यो किं लज्जावंती घात्री आदि वनस्पतियों में संकोच, विकास, स्वाप (निद्रा) और
अवबोध (जागना) देखा जाता है । हाथ आदि मनुष्यशरीर छेदने पर सुरक्षा जाता है
उसी प्रकार पत्ता, फूल, फल आदिरूप वनस्पतिशरीर भी छेदने पर सुरक्षा जाता है । यह
मनुष्यशरीर दूध और ओदन आदि का आहार करता है और वनस्पति शरीर भी
पृथ्वी, जल आदि का आहार करता है । आहार करने कि क्रिया अचेतन में नहीं
देखी जाती ।

मनुष्यशरीर अनित्य है-सदा ठहरने वाला नहीं है, इसी प्रकार वनस्पतिशरीर भी
अनित्य है, क्योंकि उसकी आयु की सीमा है । वनस्पतिशरीर की उत्कृष्ट आयु दस हजार
वर्ष की है ।

मनुष्य शरीर अशाश्वत है-आवीचिमरण प्रतिक्षण होता रहता है, और वनस्पति

केमके लज्जावंती-(रीसामणी), घात्री आदि वनस्पतियोंमें संकोचावुं, विकास, निद्रा
अने जागवुं जेवामां आवे छे.

हाथ-आदि मनुष्यशरीर छेदवाथी सूकाधं नय छे. ते प्रभाणु पांडडा, इल, कुल
आदि रूप वनस्पतिशरीर पणु छेदवाथी सूकाधं नय छे. आ मनुष्यशरीर दूध अने
भात वगेरेने आहार करे छे, तेम वनस्पतिशरीर पणु पृथ्वी, जल आदिने आहार
करे छे, आहार करवानी क्रिया अचेतनमां जेवामां आवती नथी.

मनुष्य शरीर अनित्य छे. हमेशां स्थिर रहेवावाणुं नथी, ज्ये प्रभाणु वनस्पति-
शरीर पणु अनित्य छे. केमके-तेनी आयुष्यनी सीमा छे. वनस्पतिशरीरनी उत्कृष्ट
आयु दस हजार वर्षनी छे.

मनुष्यशरीर अशाश्वत छे-आवीचिमरण प्रतिक्षण थतुं रहे छे, तेम

ણેન મરણાત્, एतदपि=वनस्पतिशरीरम् अशाश्वतं=प्रतिक्षणमरणशीलम् । यथा-
इदमपि=मनुष्यशरीरं चयापचयिकम्=इष्टानिष्टाद्वारादिकं प्राप्य वृद्धिहासशीलम्,
तथा-एतदपि=वनस्पतिशरीरं चयापचयिकम्=अनुकूल-प्रतिकूलजलवातादिना
वृद्धिहासस्वभावम् । यथा-इदमपि मनुष्यशरीरं विपरिणामधर्मकं=विविधपरिणाम-
शीलम्, तत्तद्व्याधिवशाद् उदरवृद्धिपाण्डुकशत्यादिरूपं, रसायनस्नेहाद्युपचार-
वशाद् विशिष्टरूपबलोपचयादिरूपं वा विविधपरिणामं प्राप्नोति तथा-एतदपि=
वनस्पतिशरीरं विपरिणामधर्मकं=व्याधिवशात् पत्रपुष्पफलादीनां वर्णादिव्यन्यथा-
भावदर्शनात्, विशिष्टदोहदप्रदानेन कदाचित्तेषामुपचयदर्शनाद् विविधपरिणाम-
शीलम् । यथा जननस्वभावादिधर्माणां समुदायः सचेतने मनुष्यशरीरे

શરીર મી અશાશ્વત છે—ઉસકા મી પ્રતિક્ષણ મરણ હોતા છે । મનુષ્યશરીર ઇષ્ટાનિષ્ટ આહાર
આદિ કો પાકર બદતા—ઘટતા રહતા છે, ઊસી પ્રકાર વનસ્પતિ કા શરીર મી અનુકૂલ
જલ—વાયુ સે બદતા ઊર પ્રતિકૂલ જલ—વાયુ સે ઘટતા છે । જીસે મનુષ્યશરીર મેં નાના
પ્રકાર કે પરિણમન હોતે છે—વિવિધ બીમારિયો સે ઊદર કા બદના, પાણ્ડુ, કૃશતા આદિ,
તથા રસાયન ઊર ઘૃત આદિ કે સેવન સે વિશિષ્ટરૂપ ઊર બલ કો વૃદ્ધિ હોતો છે,
ઊસી પ્રકાર વનસ્પતિ કા શરીર મી વિવિધ પ્રકાર કે પરિણમનવાલા છે—રોગ હોને પર
વનસ્પતિ કે પત્તે, ફૂલ, ફલ આદિ ઊર હી તરહ કે દેખે જાતે છે, વિશેષ પ્રકાર કા દોહદ
દેને સે કમી—કમી ઊન મેં ઉપચય મી હોતા છે । ઊસ પ્રકાર વનસ્પતિ કા શરીર મી વિવિધ
પરિણમન વાલા છે । જનનસ્વભાવ આદિ ધર્મો કા સમૂહ સચેતન મનુષ્ય શરીર મેં યા ત્રસ

વનસ્પતિશરીર પણ અશાશ્વત છે—તેનું પણ પ્રતિક્ષણ મરણ થતું રહે છે. મનુષ્ય શરીર
ઈષ્ટાનિષ્ટ આહાર આદિથી વધતું ઘટતું રહે છે તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ
અનુકૂલ જલ—વાયુથી વધે છે અને પ્રતિકૂળ જલવાયુથી ઘટે છે. જેમ મનુષ્યશરીરમાં
નાના પ્રકારનું પરિણમન થાય છે, વિવિધ બિમારીઓથી પેટનું વધવું, પાંડુરોગ,
કૃશતા (દુબલાપણું) આદિ, તથા રસાયન અને ઘૃતઆદિના સેવનથી વિશિષ્ટરૂપ
અને બલવૃદ્ધિ થાય છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ વિવિધ પ્રકારના પરિણમન-
વાળું છે, રોગ થતાં વનસ્પતિના પાંદડાં, ફૂલ, ફલ આદિ જૂદીજ નાતનાં દેખાય
છે, વિશિષ્ટ પ્રકારના દોહદ દેવાથી કોઈ—કોઈ વખત તેમાં ઉપચય થાય છે, એ પ્રમાણે
વનસ્પતિનું શરીર પણ વિવિધ પરિણમનવાળું છે. જનનસ્વભાવ આદિ ધર્મોના સમૂહ
સચેતન મનુષ્યશરીરમાં અથવા ત્રસણવના શરીરમાં જેવામાં આવે છે, તેજ પ્રમાણે

व्रसशरीरे वा वर्तते, तथा—वनस्पतिशरीरेऽपि, तस्माद् वनस्पतिकायः सचेतन इति निःसंशयं जानीहीति भावः ॥ सू० ८ ॥

एवं वनस्पतिकायस्य सचित्तत्वं विदित्वा मुनित्वप्राप्तये त्रिकरणत्रियोगैस्त-
स्ममारम्भो वर्जनीय इत्याशयेनाह—‘ एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति, एत्थ
सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव
सयं वणस्सइसत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहि वणस्सइसत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे

जीव के शरीर में पाया जाता है, उसी प्रकार वनस्पति के शरीर में भी पाया जाता है । अत
एव वनस्पतिकाय सचेतन है, यह बात निःसंशय समझ लेना चाहिए ॥ सू० ८ ॥

इस प्रकार वनस्पतिकाय की सचित्ता जानकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन
करण और तीन योग से वनस्पतिकाय का समारंभ त्यागना चाहिए । इस अभिप्राय से कहते
हैं:—‘ एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिकाय में शल्ल का आरंभ करने वाले को ये आरंभ ज्ञात
नहीं होते । वनस्पतिकाय में शल्ल का आरंभ न करने वाले को ये आरंभ ज्ञात होते हैं ।
इन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष न स्वयं वनस्पतिशल्ल का आरंभ करे, न दूसरों से वनस्पति-
शल्ल का आरंभ करावे और न वनस्पतिशल्ल का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन

वनस्पतिना शरीरमां पथु जेवामां आवे छे. जेव माटे वनस्पतिकाय सचेतन छे, जे
वात अँडेइरुद्धित समथु लेवी जेधजे. ॥ ८ ॥

जे प्रमाछु वनस्पतिकायनी सचित्ता जण्णीने साधुता प्राप्त करवा माटे
त्रथु करथु अने त्रथु योगथी वनस्पतिकायने समारंभ त्यज्जेवे जेधजे. जे
अभिप्रायथी डडे छे:—‘ एत्थ सत्थं.’ इत्यादि.

मूलार्थ—वनस्पतिकायमां शरुने आरंभ करवावाणाने आ आरंभ जण्णुवामां
नथी. (अने) वनस्पतिकायमां शरुने आरंभ नडि करवावाणाने आ आरंभ जण्णुवामां
छे. तेने जण्णीने बुद्धिमान् पुरुष पीते वनस्पतिशरुने आरंभ करता नथी.
णीजनी पासे वनस्पतिने आरंभ करावता नथी. अने वनस्पतिशरुने आरंभ
करवावाणा णीजने अनुमोदन करता नथी. जे वनस्पतिशरुना समारंभना जण्णुकार

वणस्सइसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते वणस्सइसत्थसमारंमा परिण्णाया भवन्ति, से ह्नु मुणी परिण्णापकम्मे-त्ति वेमि ॥ सू० ९ ॥

छाया-अत्र शस्त्रं समारममाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रमसमारममाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति; तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं वनस्पतिशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैर्वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयेत्, वनस्पतिशस्त्रं समारममाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते वनस्पतिशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

टीका-अत्र=अरिमन् वनस्पतिकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं, समारममाणस्य=व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरण-त्रियोगैः आरम्भाः=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपाः सावद्यव्यापाराः अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति । अत्र=अस्मिन्नेव वनस्पतिकाये शस्त्रं=माशुक्तप्रकारम् असमारममाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति तं प्रकारं दर्शयति-

करे । जो वनस्पतिशस्त्र के समारंभ का ज्ञाता है वही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ—वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त प्रकार से शस्त्र का उपयोग करने वाले को पूर्वोक्त-तीन करण तीन योग से होने वाले वनस्पति की हिंसारूप सावद्य व्यापार-अज्ञात होते हैं, अर्थात् वह नहीं जानता कि-इन व्यापारों से कर्म का बंध होता है । जो वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का प्रयोग नहीं करता वह पूर्वोक्त सावद्य व्यापारों का ज्ञाता होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से इन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है । ज्ञपरिज्ञा के पश्चात् ही प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार होती है सो दिखलाते हैं-

छे, तेज्ज मुनि छे, तेज्ज परिज्ञातकर्मा छे. ए प्रभाण्णुं हुं कहुं छुं. ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ—वनस्पतिकायना विषयमां पूर्वोक्त प्रकार्थी शस्त्रेणोपयोग करवावाणाने पूर्वोक्त (आगण कडेला) तथु करणु-तथु योग्थी थवावाणी वनस्पतिनी हिंसारूप सावद्य व्यापार अज्ञात होय छे, अर्थात् तेने जणुवाभां नथी के आ व्यापारोथी कर्मने भंध थाय छे.

जे वनस्पतिकायना विषयमां पूर्वोक्त सावद्य व्यापारोना ज्ञाता होय छे. ते ज्ञपरिज्ञाथी तेने जणु छे. अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्याग करी दे छे.

ज्ञपरिज्ञानी पछीज्ज प्रत्याख्यानपरिज्ञा देवा प्रकारे होय छे. ते अतावे छे-

‘तत् परिज्ञाये’ त्यादि । तद्=वनस्पतिकायारम्भणं, परिज्ञाय=कर्मबन्धनस्य कारणं भवतीत्यवगत्य, मेधात्री=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं वनस्पतिशस्त्रं समारमेत=व्यापारयेत्, अन्यैर्वा नैव वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयेत्, वनस्पतिशस्त्रं समारम्भमाणान् न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् । शेषं सुगमम् ।

यस्यैते वनस्पतिकर्मसमारम्भाः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य कर्मकारणीभूताः सावद्यव्यापाराः परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावद्य-व्यापारः, मुनिर्भवति । ‘इति ब्रवीमि’=इति=एतत्सर्वम्, ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने पञ्चमोद्देशकः संपूर्णः ॥

वनस्पतिकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर हेय-उपादेय का विवेक रखनेवाला बुद्धिमान् पुरुष स्वयं वनस्पतिकाय का आरंभ न करे, दूसरों से आरंभ न करावे और आरंभ करने वालों का अनुमोदन न करे । शेष सब सुगम है । वनस्पतिकाय के आरंभ के निमित्त से होने वाले सावध व्यापारों को जिसने ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जान लिया है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है, वह तीन करण तीन योग से समस्त सावधों का त्यागी ही मुनि होता है । सुधर्मा स्वामी जन्म स्वामी से कहते हैं-हे जन्म ! जैसा भगवान् के समीप मैंने सुना है, वैसा ही यह सब मैं कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ श्री आचाराङ्गसूत्रकी ‘आचारचिन्तामणि’ टीकाके हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्ययनका पाँचवाँ उद्देश समाप्त ॥ १-५ ॥

वनस्पतिकायना आरंभने कर्मबंधतुं कारण् ज्ञानीने हेय-उपादेयने विवेक राषवा-वाणा बुद्धिमान् पुरुष पोते वनस्पतिकायने आरंभ करता नथी, नील पासे आरंभ करावता नथी, अने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आपता नथी, शेष-भाकी सर्व सुगम छे.

वनस्पतिकायना आरंभना निमित्तथी थवावाणा सावध व्यापारने जेछे ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबंधतुं कारण् ज्ञानी लीधुं छे अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्यल आभ्या छे ते त्रलु करलु त्रलु योगथी समस्त सावधोना त्यागीज मुनि छाय छे. सुधर्मास्वामी जन्मस्वामीने कहे छे-हे जन्म ! जेवुं लगवानती समीप में सांलथुं छे; तेवुंज आ सर्व दुं कहुं छुं. ॥सू० ९॥

श्री आचारांगसूत्रनी ‘आचारचिन्तामणि’ टीकाना गुजराती अनुवादमां प्रथम अध्ययनना पांचमो उद्देशक समाप्त. ॥१-५॥

॥ अथ पट्टोद्देशः ॥

अनन्तरपञ्चमोद्देशके वनस्पतिकायस्वरूपं निरूपितम् । अधुना क्रमप्राप्त-
त्रसकायस्वरूपप्रतिबोधनार्थमयं षष्ठ उद्देशकः प्रस्तूयते । इयं हि शैली भगवद्देशनायाः,
यद्-वनस्पतिकायानन्तरं त्रसकायप्रतिबोधनम्, सर्वस्मिन्भागमे तथैव भगवद्देशनायाः
सत्त्वात् । एतत् समीचीनमपि, मनुष्यशरीरदृष्टान्तोपन्यासेन वनस्पतेः सचेतनत्वं
साध्यते, तत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं मनुष्यस्वरूपं जिज्ञासमानस्य शिष्यस्य
प्रतिबोधनाय तस्य त्रसकायान्तर्गतत्वेन त्रसकायोद्देशकथनस्योचित्वात् । त्रसकाय-
स्वरूपं वक्तुमनाः श्री सुधर्मास्वामी कथयति—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

छठाउद्देश

पिछले पाँचवें उद्देश में वनस्पतिकाय का स्वरूप निरूपण किया गया है अब क्रम से
प्राप्त त्रसकाय का स्वरूप बतलाने के लिए छठा उद्देश कहते हैं ।

भगवान् के उपदेश की यही शैली है कि वनस्पतिकाय के अनन्तर त्रसकाय का
स्वरूप समझाया जाता है । तब आगमों में भगवान् का उपदेश इसी प्रकार है । यह ठीक
भी है, क्यों कि मनुष्य के शरीर का दृष्टान्त देकर वनस्पति की सचितता सिद्ध की है तो
वनस्पतिकाय के स्वरूप के पश्चात् मनुष्य का स्वरूप जानने की इच्छा रखने वाले शिष्य के
प्रतिबोध के लिए त्रसकाय का स्वरूप समझना चाहिए, क्यों कि मनुष्य भी त्रसकाय के
अन्तर्गत है । त्रसकाय का स्वरूप कहने की इच्छा रखने वाले श्री सुधर्मा स्वामी अलग सूत्र
कहते हैं—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

छठे उद्देश—

पाछणना पांथभा उद्देशमां वनस्पतिकायना स्वरूपतुं निरूपणुं करवाभां आणुं
छे. हुवे कभयी प्राप्त त्रसकायना स्वरूपने णताववा भाटे छुका उद्देशने कडे छे.

लगवानना उपदेशनी ज्ये शैली छे कैः—वनस्पतिकायनी पछी त्रसकायतुं स्वरूप
समभाववाभां आवे छे. सर्व आगमोभां लगवानना उपदेश आ प्रमाणे छे, अने ते
ठीक पणु छे, केभके मनुष्यना शरीरतुं दृष्टान्त आपीने वनस्पतिनी सचितता सिद्ध
करी छे, तो वनस्पतिकायना स्वरूप पछी मनुष्यस्वरूप लक्षणानी धृच्छा राखवावाणा
शिष्यना प्रतिबोध भाटे त्रसकायतुं स्वरूप समभावतुं नोर्धजे, कारणके मनुष्य पणु
त्रसकायनी अन्तर्गत छे. त्रसकायना स्वरूपने कडेवानी धृच्छा राखवावाणा श्री सुधर्मा
स्वामी आगणतुं सूत्र कडे छेः—‘से वेमि.’ इत्यादि.

मूलम्—

से वेमि संतिमे तसा पाणा, तंजहा-अण्डया, पोयया, जराउया, रसया, संसेयया, संमुच्छिमा, उन्मियया, उववाइया, एस संसारेत्ति पयुचइ मंदस्स अविपाणओ ॥ सू० १ ॥

छाया—

स त्रवीमि, सन्तीमे त्रसाः प्राणाः, तद्यथा-अण्डजाः, पोतजाः, जरायुजाः, रसजा, संसेदजाः, संमूर्च्छिमाः (संमूर्च्छनजाः) उद्भिज्जाः, औपपातिकाः (उपपातजाः) । एष संसार इति प्रोच्यते मन्दस्य अविजानतः ॥ सू० १ ॥

टीका—

येन भगवद्बदनारविन्दनिर्गतसकलार्थाः सम्यग्बधारिताः, सोऽहं त्रवीमि— यथा भगवन्मुखाच्छ्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ।

त्रसाः प्राणा इमे सन्तीत्यन्वयः । त्रसाः—त्रस्यन्ति—त्रसनामकर्मोदयात् तापाऽऽद्युपतप्ताच्छायाऽऽदिकं प्रत्यभिसर्पन्तीति त्रसाः=द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ताः ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ—ये त्रस प्राणी हैं, जैसे—अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संसेदज, संमूर्च्छित, उद्भिज और औपपातिक (उपपातज) । मंद एवं अज्ञानी के लिए यह संसार कहा गया है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जिसने भगवान् के मुखकमल से निकले हुए समस्त जीवादि स्वरूपों को भली भाँति समझ लिया है ऐसा मैं कहता हूँ, अर्थात् हे जम्बू ! भगवान् के मुख से जैसा मैंने सुना है वैसा तुझे कहता हूँ ।

त्रसनामकर्म के उदय से ताप आदि से पीड़ित होकर छाया वगैरह की ओर जाने वाले द्वीन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं । इन में द्वीन्द्रिय जीव के स्पर्शन

मूलार्थ—ते हं हं हं हं—ये त्रस प्राणी छे. जेभ-अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संसेदज, संमूर्च्छिम, उद्भिज अने औपपातिक (उपपातज) मंद अने अज्ञानीओ भाटे आ संसार कडेवाभां आओ छे. ॥सू० १॥

टीकार्थ—जेणे भगवानना मुखकमलधी नीकणेला समस्त एवादि स्वरूपेना अर्थने इडी रीते समज लीधा छे, ओवेो हं हं हं हं, अर्थात् हे जम्बू ! भगवानना मुखधी जेपुं मे सांलज्युं छे तेपुं तने हं हं हं हं.

त्रसनामकर्मना उदयधी ताप वगेरेधी पीडा पाभीने छाया विगेरेनी पासे जवावाणा द्वीन्द्रिय, (पञ्चेन्द्रिय) एवधी लधने पांच्ये द्वीन्द्रियवाणा एवेो सुधी सर्व त्रस

॥ अथ पठोद्देशः ॥

अनन्तरपञ्चमोद्देशके वनस्पतिकायस्वरूपं निरूपितम् । अधुना क्रमप्राप्त-
त्रसकायस्वरूपप्रतिबोधनार्थमयं षष्ठ उद्देशकः प्रस्तूयते । इयं हि शैली भगवद्देशनायाः,
यद्-वनस्पतिकायानन्तरं त्रसकायप्रतिबोधनम्, सर्वस्मिन्भागमे तथैव भगवद्देशनायाः
सत्त्वात् । एतत् समीचीनमपि, मनुष्यशरीरदृष्टान्तोपन्यासेन वनस्पतेः सचेतनत्वं
साध्यते, तत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं मनुष्यस्वरूपं जिज्ञासमानस्य शिष्यस्य
प्रतिबोधनाय तस्य त्रसकायान्तर्गतत्वेन त्रसकायोद्देशकधनस्योचित्यात् । त्रसकाय-
स्वरूपं वक्तुमनाः श्री सुधर्मास्वामी कथयति—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

छठाउद्देश

पिछले पाँचवें उद्देश में वनस्पतिकाय का स्वरूप निरूपण किया गया है अब क्रम से
प्राप्त त्रसकाय का स्वरूप बतलाने के लिए छठा उद्देश कहते हैं ।

भगवान् के उपदेश की यही शैली है कि वनस्पतिकाय के अनन्तर त्रसकाय का
स्वरूप समझाया जाता है । तब आगमों में भगवान् का उपदेश इसी प्रकार है । यह ठीक
भी है, क्यों कि मनुष्य के शरीर का दृष्टान्त देकर वनस्पति की सञ्चितता सिद्ध की है तो
वनस्पतिकाय के स्वरूप के पश्चात् मनुष्य का स्वरूप जानने की इच्छा रखने वाले शिष्य के
प्रतिबोध के लिए त्रसकाय का स्वरूप समझना चाहिए, क्यों कि मनुष्य भी त्रसकाय के
अन्तर्गत है । त्रसकाय का स्वरूप कहने की इच्छा रखने वाले श्री सुधर्मा स्वामी अलग सूत्र
कहते हैं—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

छठे उद्देश—

पाछगना पाँचभा उद्देशमां वनस्पतिकायना स्वरूपतुं निरूपणु करवामां आणुं
छे. हुवे कभधी प्राप्त त्रसकायना स्वरूपने षटाववा भाटे छठ्ठा उद्देशने कडे छे.

लगवानना उपदेशनी अण शैली छे के:—वनस्पतिकायनी पछी त्रसकायतुं स्वरूप
समजववामां आवे छे. सर्व आगमोमां लगवानना उपदेश आ प्रमाणे छे, अने ते
ठीक पणु छे, केभके मनुष्यना शरीरतुं दृष्टान्त आपीने वनस्पतिनी सञ्चितता सिद्ध
करी छे, तो वनस्पतिकायना स्वरूप पछी मनुष्यस्वरूप जणुवानी धरुछा राभवावाणा
शिष्यना प्रतिबोध भाटे त्रसकायतुं स्वरूप समजववुं जेधजे, कारणुके मनुष्य पणु
त्रसकायनी अन्तर्गत छे. त्रसकायना स्वरूपने कडेवानी धरुछा राभवावाणा श्री सुधर्मा
स्वामी आगणतुं सूत्र कडे छे:—‘से वेमि.’ इत्यादि.

तद्योगादभिसन्धिपूर्वकदेशान्तरप्राप्तिलक्षणक्रियायुक्तत्वाद् द्वीन्द्रियादय एव लब्धि-
त्रसा उच्यन्ते । तेजोवायवः किल न त्रसनामकर्मोदयनिर्घृताः, किन्तु स्थावरनाम-
कर्मोदयनिर्घृतत्वाद्दृग्धितः स्थावरा एव; तथाप्यत्र द्वीन्द्रियादयो लब्धित्रसा एव
परिगृह्यन्ते, न तु गतित्रसाः, अग्निकायानां प्रागेव चतुर्थोद्देशे प्रतिबोधितत्वात्,
वायुकायानामग्रे वक्ष्यमाणत्वाच्च ।

यत्तु “लब्ध्या तेजोवायू त्रसौ, लब्धिस्तच्छक्तिमात्रं लब्धित्रसानामि-
हाधिकारो नास्ति, तेजसोऽभिहितत्वाद् वायोश्चाभिधास्यमानत्वाद्, अतः
सामर्थ्यात् गतित्रसा एवाधिक्रियन्ते ” इति कैश्चिदुक्तं, तत् प्रामादिकम्,

त्रसता प्राप्त होती है । इस लब्धि से इरादापूर्वक गतिक्रिया द्वीन्द्रिय आदि में ही पाई
जाती है, अत एव उन्हें लब्धित्रस कहते हैं । तेजस्काय और वायुकाय में त्रसनाम-
कर्म का उदय नहीं होता । उन में स्थावरनामकर्म का उदय है, अतः लब्धि की अपेक्षा ये
दोनों स्थावर ही हैं । फिर भी यहाँ द्वीन्द्रिय आदि लब्धित्रस जीवों का ग्रहण करना चाहिए,
गतित्रस जीवों का नहीं, क्यों कि अग्निकायिक जीवों का चौथे उद्देश में पहले ही वर्णन किया
जा चुका है और वायुकाय का आगे वर्णन किया जायगा ।

किसी ने कहा है—“लब्धि की अपेक्षा तेजस्काय और वायुकाय त्रस हैं । लब्धि
सिर्फ शक्ति को ही कहते हैं । यहाँ लब्धित्रस जीवों का प्रकरण नहीं है, क्यों कि
अग्निकाय का कथन किया जा चुका है और वायुकाय का कथन आगे किया जायगा,
अतः सामर्थ्य से गतित्रस ही यहाँ ग्रहण करने योग्य हैं ” । यह कथन प्रमादपूर्ण है;

प्राप्त છે. એ લબ્ધિથી ઇચ્છાપૂર્વક ગતિ કરવાની ક્રિયા દ્વીન્દ્રિયાદિમાંજ જોવામાં આવે
છે, એટલા માટે તેને લબ્ધિત્રસ કહે છે. તેજસ્કાય અને વાયુકાયમાં ત્રસનામકર્મનો
ઉદય નથી; તેનામાં સ્થાવરનામકર્મનો ઉદય છે. તેથી લબ્ધિની અપેક્ષાએ એ બંને
સ્થાવર જ છે. ક્ષીને પણ અહિં દ્વીન્દ્રિય આદિ લબ્ધિત્રસ જીવોનું જ અહલ્ય કરવું
જોઈએ, ગતિત્રસ જીવોનું નહિ. કારણકે અગ્નિકાયિક જીવોનું ચોથા ઉદ્દેશકમાં પ્રથમ
વર્ણન કરવામાં આવી ગયું છે, અને વાયુકાયનું આગળ ઉપર વર્ણન કરવામાં આવશે.

કોઈએ કહ્યું કે—“લબ્ધિની અપેક્ષા તેજસ્કાય અને વાયુકાય ત્રસ છે:—લબ્ધિ,
માત્ર શક્તિનેજ કહે છે. અહિં લબ્ધિત્રસ જીવોનું પ્રકરણ નથી. કારણકે અગ્નિકાયનું
વિવેચન તો કરી દેવામાં આવ્યું છે, અને વાયુકાયનું વિવેચન આગળ કરવામાં આવશે.
તેથી સામર્થ્યથી ગતિત્રસનું જ અહિં અહલ્ય કરવું યોગ્ય છે.” આ કથન પ્રમાદપૂર્ણ છે.

તત્ર દ્વીન્દ્રિયાણાં સ્પર્શનરસનરૂપે દ્વ ઇન્દ્રિયે, ત્રીન્દ્રિયાણાં સ્પર્શનરસનગ્રાણરૂપાણિ ત્રીણોન્દ્રિયાણિ, ચતુરિન્દ્રિયાણાં સ્પર્શનરસનગ્રાણચક્ષુરૂપાણિ ચત્વારોન્દ્રિયાણિ, પંચેન્દ્રિયાણાં સ્પર્શનરસનગ્રાણચક્ષુઃશ્રોત્રરૂપાણિ પંચેન્દ્રિયાણિ સન્તિ ।

યદ્યપિ—ત્રસ્યન્તિ=અભિસન્ધિપૂર્વકમનમિસન્ધિપૂર્વકં યા ઝર્ષ્વમઘસ્તિર્યક્ષુ ચલન્તોતિ વ્યુત્પત્ત્યા દ્વીન્દ્રિયાદયસ્તથાઽગ્નિકાયા વાયુકાયા અપિ ત્રસા ઉચ્યન્તે । ત્રસાનાં હિ દ્વૌ ભેદૌ મુલ્યતઃ સ્તઃ—ગતિતો લઙ્ઘિતત્થ । તત્ર ગતિઃ=ક્રિયા ચલનં, દેશાન્તરપ્રાપ્તિઃ, સ્વભાવતોઽનમિસન્ધિપૂર્વક—તદ્યોગાદગ્નિકાયા વાયુકાયાશ્ચ ત્રસા ભવન્તીતિ ગતિત્રસા ઉચ્યન્તે । લઙ્ઘિસ્તુ ત્રસનામકર્મોદયે સતિ ભવતિ,

ઔર રસના યે દો ઇન્દ્રિયાં હોતી હૈં । તીનઈન્દ્રિયવાલો' કે સ્પર્શન, રસના ઔર ગ્રાણ, યે તીન ઇન્દ્રિયાં હોતી હૈં । ચતુરિન્દ્રિય જીવોકે સ્પર્શન, રસના, ગ્રાણ ઔર ચક્ષુ, યે ચાર ઇન્દ્રિયાં હોતી હૈં । પંચેન્દ્રિય જીવો કે સ્પર્શન, રસના ગ્રાણ, ચક્ષુ ઔર શ્રોત્રરૂપ પાંચ ઇન્દ્રિયાં હોતી હૈં ।

જો જીવ ઇરાદાપૂર્વક યા વિના હી ઇરાદે કે, ઊપર નીચે યા તિરંછે ચલતે હૈં વે ત્રસ જીવ હૈં । ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર દ્વીન્દ્રિય આદિ તથા અગ્નિકાય ઔર વાયુ મી ત્રસ કહલાતે હૈં । મુલ્યરૂપ સે ત્રસ જીવો કે દો ભેદ હૈં—(૧) ગતિત્રસ ઔર (૨) લઙ્ઘિત્રસ । ગતિ કહિણ અથવા ક્રિયા, ચલના અથવા ઇક દેશ સે દૂસરે દેશ મેં પહુંચના કહિણ । વિના ઇરાદે કે યહ ગતિક્રિયા મૌજૂદ હોને કે કારણ અગ્નિકાય ઔર વાયુકાય મી ત્રસ હૈં । ઉન્હેં ગતિત્રસ કહતે હૈં । ત્રસનાકર્મ કા ઉદય હોને પર લઙ્ઘિ-

કહેવાય છે. દ્વીન્દ્રિય ઊલોને સ્પર્શન (આમડી) અને રસના (જીભ) આ બે ઇન્દ્રિયો હોય છે. ત્રીન્દ્રિયોને આમડી, જીભ અને નાસિકા રૂપ ત્રણ ઇન્દ્રિયો હોય છે ચતુરિન્દ્રિય ઊલોને આમડી, જીભ, નાસિકા અને નેત્ર, આ ચાર ઇન્દ્રિયો હોય છે. પંચેન્દ્રિય ઊલોને આમડી, જીભ, નાસિકા, નેત્ર અને શ્રોત્ર—કાન રૂપ પાંચ ઇન્દ્રિયો હોય છે.

જે જીવ ઇરાદાપૂર્વક અથવા ઇરાદા વિના ઉપર, નીચે અથવા તિરંછા ચાલે છે તે ત્રસ જીવ છે. આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર દ્વીન્દ્રિય આદિ તથા અગ્નિકાય અને વાયુકાય ત્રણ ત્રસ કહેવાય છે. મુખ્યરૂપથી ત્રસ જીવોના બે ભેદ છે—(૧) ગતિત્રસ (૨) લઙ્ઘિત્રસ. ગતિ કહેા અથવા ક્રિયા કહેા તે એકજ છે. ચાલવું અથવા એક દેશથી બીજા દેશમાં પહોંચવું કહેા. વિના ઇરાદાથી આ ગતિ કરવાની ક્રિયા હાજર હોવાથી અગ્નિકાય અને વાયુકાય ત્રણ ત્રસ છે. તેને ગતિત્રસ કહે છે. ત્રસનાકર્મનેા ઉદય હોવાથી લઙ્ઘિત્રસતા

इह सर्वेषां त्रसजीवानामष्टविधं जन्म प्रतिबोधितमूएतदेव समुच्छेदनगर्भोपपातेषु समावेश्य त्रिविधं जन्मेत्यपि शास्त्रेऽभिहितम् । सन्तीत्यनेन त्रसानामप्यस्तित्वं त्रिकालवर्तीति बोध्यते । मन्दस्य=कुशास्त्रवासनायुक्तस्य, अत एव-अविजानतः=हिताहितविवेकरहितस्य, एषः=अण्डजादिसमुदायः संसारः प्रोच्यते, अष्टविधत्रसकाये कुशास्त्रवासनावतः पुनः पुनरुत्पत्तिरूपं संसरणं भवतीति स एषः संसारो निगद्यत इत्यर्थः ।

अथ त्रसकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं लक्षणाद्यष्टद्वाराणि निरूपणीयानि । तत्र लक्षण-प्ररूपणा-परिमाण-शस्त्रो-पभोग-वेदना-द्वाराणि यथाक्रमं प्रदर्श्यन्ते, अवशिष्ट-वध-निवृत्ति-द्वारद्वयं पृथिवीकायोद्देशे यथाऽभिहितं तथैवावगन्तव्यम् ।

यहाँ सभी त्रस जीवों का आठ प्रकार का जन्म बतलाया गया है । इसे समुच्छेदन, गर्भ और उपपात में समाविष्ट कर देने से तीन प्रकार का जन्म शास्त्र में बतलाया है । 'संति' इस पद द्वारा त्रस जीवों का त्रिकालवर्ती अस्तित्व सूचित किया गया है । मन्द अर्थात् मिथ्याशास्त्रों के संस्कार से प्रभावित, अत एव हित-अहित के विवेक से शून्य पुरुष के लिए अण्डज आदि का समूहरूप संसार कहा गया है । आठ प्रकार के त्रसकाय में मिथ्याशास्त्रों के संस्कार वाटे का पुनः पुनः जन्म-मरणरूप संसरण होता है । वही संसरण संसार कहलाता है !

त्रसकाय का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए लक्षण आदि आठ द्वारों का निरूपण करना चाहिए । उन में से लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र उपभोग और वेदना द्वार क्रम से बतलाते हैं । वध और निवृत्ति द्वार जैसे पृथ्वीकाय के उद्देश में कहे हैं वैसे ही यहाँ समझ लेने चाहिए ।

अर्द्धि सर्वं त्रस एवोनेो आठ प्रकारनेो जन्म भतायेो छे. तेने समुच्छेदन, गर्भं अने उपपातमां समावेश करी देवाथी त्रसु प्रकारनेो जन्म शास्त्रमां भतायेो छे. 'संति' आ पद द्वारा त्रस एवोनुं त्रिकालवर्ती अस्तित्व सूचित करवामां आयेो छे. मन्द अर्थात् मिथ्याशास्त्रोना संस्कारथी प्रभावित, अथे छित अर्द्धितना विवेकथी शून्य पुरुष भाटे अउल आदिना समुद्धेरूप संसार कडेवामां आयेो छे. आठ प्रकारने त्रसकायमां मिथ्याशास्त्रोना संस्कारवाजायेोनुं पुनः पुनः जन्म-मरण इय संसरणु थाय छे. अथे संसरणु ते संसार कडेवाय छे.

त्रसकायनुं साईं ज्ञान प्राप्त करवा भाटे लक्षण आदि आठ द्वारोनुं निरूपणु करवुं नेछे अथे, तेमांथी लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र, उपभोग अने वेदना द्वार कथी भताये छे, वध अने निवृत्ति द्वार नेवी रीते पृथ्वीकायना उद्देशमां कथां छे तेवी रीते अर्द्धि समझ लेवा नेछे अथे.

લઘ્વિત્રસાનાં ગતિત્રસત્વેનાહ્નીકારાત્ । ગતિત્રસાનાં લઘ્વિત્રસત્વાભાવાત્, દ્વીન્દ્રિયાદીનાં ગતિત્રસત્વેન શાસ્ત્રેઽનહ્નીકારાચ ।

પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃ, ઈમે=મત્યક્ષતોઽવગમ્યાઃ, યદ્વા-વક્ષ્યમાણમકારકાઃ સન્તિ । તે યથા-(૧) અઘ્નજાઃ=અઘ્નાઞ્જાતાઃ-પશ્ચિમ્ગૃહકોકિલાદયઃ, (૨) પોતજાઃ=પોતા એવ જાયન્ત ઇતિ પોતજાઃ-ઠસ્તિવલ્ગુલીચર્મજલ્કાદયઃ, (૩) જરાયુજાઃ=જરાયુર્ગર્ભવેષ્ટનચર્મ, તત્ર જાતાઃ-ગોમદ્વિપ્યજા, વિક્રમનુષ્યાદયઃ, (૪) રસજાઃ=વિકૃતરસાઞ્જાતાઃ, (૫) સંસ્વેદજાઃ=સંસ્વેદાઞ્જાતાઃ-મત્કુળયુકાદયઃ, (૬) સંમૂર્છિમાઃ=સંમૂર્છનજાઃ મક્ષિકાપિપીલિકાશલમાદયઃ, (૭) ઉદ્ભિજ્જાઃ=ઉદ્ભેદનમ્-ઉદ્ભિત્, તસ્માઞ્જાતાઃ-પતન્નસ્વઞ્જરીટાદયઃ, (૮) ઔપપાતિકાઃ=ઉપપાતે ભવાઃદેવાનાર-

વ્યો કિ લઘ્વિત્રસો કો ગતિત્રસરૂપ મેં અંગીકાર કિયા ગયા હૈ । મગર ગતિત્રસ લઘ્વિત્રસ નહીં હો સકતે । દ્વીન્દ્રિય આદિ મેં ગતિ કા સદ્ભાવ હૈ અતઃ શાસ્ત્ર મેં ઈસા અંગીકાર નહીં કિયા ગયા ।

ત્રસ પ્રાણી ઈસ પ્રકાર હૈ—(૧) અઘ્નજ—અંઠો સે ઉત્પન્ન હોને વાલે પક્ષી, ગૃહકોકિલા આદિ । (૨) પોતજ—પોતરૂપ પૈદા હોને વાલે હાથી, વલ્ગુલી, ચર્મજલ્ક આદિ । (૩) જરાયુજ—ગર્ભ જિસ સે લિપટા રહતા હૈ વહ પતલી ચમડી જરાયુ કહલતી હૈ અસ સે ઉત્પન્ન હોને વાલે ગાય, મૈસ, વકરી, મનુષ્ય આદિ જરાયુજ કહલતે હૈ । (૪) રસજ—નિકૃત રસ મેં પૈદા હો જાને વાલે, (૫) સંસ્વેદજ—પસીને સે પૈદા હોને વાલે સ્વટમલ, જૂં આદિ । (૬) સંમૂર્છિમ—મક્ષી, કીડી, શલમ આદિ । (૭) ઉદ્ભિજ—ઉદ્ભેદન સે ઉત્પન્ન હોને વાલે પતંગ, ઝંજરીટ આદિ । (૮) ઔપપાતિક—દેવ ઓર નારકી ।

કારણ કૈ લઘ્વિત્રસોને ગતિત્રસનાં રૂપમાં અંગીકાર કરવામાં આવ્યો છે, પરન્તુ ગતિત્રસ લઘ્વિત્રસ થઈ શકતા નથી. દ્વીન્દ્રિય આદિમાં ગતિનો સહભાવ છે, તેથી શાસ્ત્રમાં એ પ્રમાણે અંગીકાર કરવામાં આવ્યો નથી.

ત્રસ પ્રાણી આ પ્રમાણે છે—(૧) અંઠજ—ઈંડાથી ઉત્પન્ન થવાવાળાં પક્ષી, ગૃહકોકિલા (ગરોળી) આદિ. (૨) પોતજ—પોતરૂપ પૈદા થવાવાળા હાથી, વલ્ગુલી, ચર્મજલ્ક (જળો) આદિ. (૩) જરાયુજ—ગર્ભ જેનાથી વિટાએલું રહે તે પાતળી ચામડી જરાયુ કહેવાય છે. તેમાં ઉત્પન્ન થવાવાળા ગાય, ભેંસ, વકરી, મનુષ્ય આદિ જરાયુજ કહેવાય છે. (૪) રસજ—વિકૃતરસમાં પૈદા થવાવાળા. (૫) સંસ્વેદજ—પરસેવાથી પૈદા થવાવાળા માકડ, જૂં આદિ. (૬) સંમૂર્છિમ—માખી, કીડી, તીડ આદિ. (૭) ઉદ્ભિજ—ઉદ્ભેદનથી ઉત્પન્ન થવાવાળા પતંગ, ઝંજરીટ આદિ. (૮) ઔપપાતિક—દેવ અને નારકી.

इह सर्वेषां त्रसजीवानामष्टविधं जन्म प्रतिबोधितम् एतदेव समुच्छन्नगर्भोपपातेषु समावेश्य त्रिविधं जन्मेत्यपि शास्त्रेऽभिहितम् । सन्तीत्यनेन त्रसानामप्यस्तित्वं त्रिकालवर्तीति बोध्यते । मन्दस्य=कुशाखवासनायुक्तस्य, अत एव-अविजानतः=द्विताहितविवेकरहितस्य, एषः=अण्डजादिसमुदायः संसारः प्रोच्यते, अष्टविधत्रसकाये कुशाखवासनावतः पुनः पुनरुत्पत्तिरूपं संसरणं भवतीति स एषः संसारो निगद्यत इत्यर्थः ।

अथ त्रसकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं लक्षणाद्यष्टद्वाराणि निरूपणीयानि । तत्र लक्षण-प्ररूपणा-परिमाण-शस्त्रो-पभोग-वेदना-द्वाराणि यथाक्रमं प्रदर्श्यन्ते, अवशिष्ट-वध-निवृत्ति-द्वारद्वयं पृथिवीकायोद्देशे यथाऽभिहितं तथैवावगन्तव्यम् ।

यहाँ सभी त्रस जीवों का आठ प्रकार का जन्म बतलाया गया है । इसे समुच्छन्न, गर्भ और उपपात में समाविष्ट कर देने से तीन प्रकार का जन्म शास्त्र में बतलाया है । 'संति' इस पद द्वारा त्रस जीवों का त्रिकालवर्ती अस्तित्व सूचित किया गया है । मन्द अर्थात् मिथ्याशास्त्रों के संस्कार से प्रभावित, अत एव हित-अहित के विवेक से शून्य पुरुष के लिए अण्डज आदि का समूहरूप संसार कहा गया है । आठ प्रकार के त्रसकाय में मिथ्याशास्त्रों के संस्कार वाले का पुनः पुनः जन्म-मरणरूप संसरण होता है । वही संसरण संसार कहलाता है !

त्रसकाय का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए लक्षण आदि आठ द्वारों का निरूपण करना चाहिए । उन में से लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र उपभोग और वेदना द्वार क्रम से बतलाते हैं । वध और निवृत्ति द्वार जैसे पृथ्वीकाय के उद्देश में कहे हैं वैसे ही यहाँ समझ लेने चाहिए ।

अर्द्धि सर्वं त्रस एवोने आठ प्रकारने जन्म भताव्ये छे. तेने संभूछन्न, गर्भं अने उपपातमां सभावेश करी हेवाथी त्रस प्रकारने जन्म शास्त्रमां भताव्ये छे. 'संति' आ पद द्वारा त्रस एवोनुं त्रिकालवर्ती अस्तित्व सूचित करवामां आव्युं छे. मन्द अर्थात् मिथ्याशास्त्रोना संस्कारथी प्रभावित, एव' द्वित अद्विताना विवेकथी शून्य पुरुष भाटे अंडज आदिना समूहरूप संसार कडेवामां आव्ये छे. आठ प्रकारना त्रसकायमां मिथ्याशास्त्रोना संस्कारवाणाव्योनुं पुनः पुनः जन्म-मरण इष संसरण थाय छे. एव संसरण ते संसार कडेवाय छे.

त्रसकायनुं साईं ज्ञान प्राप्त करवा भाटे लक्षण आदि आठ द्वारोनुं निरूपण करवुं जेछे अने, तेमांथी लक्षण, प्ररूपणा, परिमाण, शस्त्र, उपभोग अने वेदना द्वार कथी भतावे छे, वध अने निवृत्ति द्वार जेथी रीते पृथ्वीकायना उद्देशमां कथां छे तेवी रीते अर्द्धि समझ लेवा जेछे अने.

લક્ષણદ્વાર—

સુખદુઃખેચ્છાદ્વેષાદિકં ચેતનલક્ષણં ત્રસકાયે પરિસ્પષ્ટમસ્તિ । અસ્ય સચેતનત્વે
વિવાદા નાસ્તિ કેપાચ્ચિત્ અસ્ય વ્યક્તોચ્છ્વાસાદિલક્ષણપ્રાણયોગાત્ । અપરચ્ચ—

ત્રસકાયસ્ય લક્ષણં શાસ્ત્રે નવવિધં પ્રજ્ઞપ્તમ્ યથા—(૧) અભિક્રમણમ્, (૨) પ્રતિ-
ક્રમણમ્, (૩) સંકોચનમ્, (૪) પ્રસારણમ્, (૫) રુત્તમ્, (૬) ભ્રમણમ્, (૭)
ત્રસનમ્, (૮) પલાયનમ્, (૯) આગતિગતિવિજ્ઞાનમ્, ઇતિ ॥

અભિક્રમણં=પ્રજ્ઞાપકં પ્રત્યભિમુલ્લં ક્રમણમ્, પ્રતિક્રમણં=પ્રજ્ઞાપકાત્
પ્રતિકૂલં ક્રમણમ્ । સંકોચનમ્=ગાત્રસંકોચકરણમ્, પ્રસારણં=ગાત્રવિતતકરણમ્,

લક્ષણદ્વાર—

સુખ, દુઃખ, ઇચ્છા ઓર દ્વેષ આદિ ચેતના કે લક્ષણ ત્રસકાય મેં સ્પષ્ટ માલુમ હોતે
હે । ઇસ ફી સચેતનતા મેં કિસી કો મી વિવાદ નહીં હે । પ્રકટ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણ હોને કે
કારણ ત્રસ જીવ પ્રાણી હૈં ।

શાસ્ત્ર મેં ત્રસકાય ફા લક્ષણ નવ પ્રકાર સે વતલાયા ગયા હે । જૈસે—
(૧) અભિક્રમણ (૨) પ્રતિક્રમણ (૩) સંકોચન (૪) પ્રસારણ (૫) રુત્ત (૬) ભ્રમણ
(૭) ત્રસન—ત્રાસ પાના (૮) પલાયન—ભાગના ઓર (૯) ગતિ—આગતિ ફા જ્ઞાન ।
પ્રજ્ઞાપક ફી અપેક્ષા સે સામને જાના અભિક્રમણ હે । પ્રજ્ઞાપક ફી અપેક્ષા સે પ્રતિકૂલ
જાના—પીછે લૌટના પ્રતિક્રમણ હે । શરીર કો સિકોહના સંકોચન હે । શરીર કો ફેલાના

લક્ષણદ્વાર—

સુખ, દુઃખ, ઇચ્છા અને દ્વેષ આદિ ચેતનાનું લક્ષણ ત્રસકાયમાં સ્પષ્ટ માલુમ
પડે છે, તેની ચેતનતામાં કોઈને પણ વિવાદ—વાંધો નથી. પ્રકટ ઉચ્છ્વાસ આદિ
પ્રાણ હોવાના કારણથી ત્રસ જીવ પ્રાણી છે.

શાસ્ત્રમાં ત્રસકાયના લક્ષણો અનેક પ્રકારે બતાવવામાં આવ્યાં છે. જેમકે—
(૧) અભિક્રમણ, (૨) પ્રતિક્રમણ, (૩) સંકોચન, (૪) પ્રસારણ, (૫) રુત્ત, (૬) ભ્રમણ,
(૭) ત્રસન—ત્રાસ પામવો, (૮) પલાયન—ભાગવું અને (૯) ગતિ—આગતિનું જ્ઞાન. પ્રજ્ઞાપકની
અપેક્ષાથી સામે જવું તે અભિક્રમણ છે. પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી પ્રતિકૂલ જવું—પાછા ફરવું
તે પ્રતિક્રમણ છે. શરીરને સંકોચવું તે સંકોચન છે. શરીરને ફેલાવવું તે પ્રસારણ છે.

रुतं=शब्दकरणम्, भ्रान्तम्=इतश्चेतश्च गमनम्, त्रसनम्=दुःखादुद्वेजनम्, पलायितम्=पलायनम्, आगतेः कुतश्चित्कचित्, गतेश्च कुतश्चित् कचिदेव च विज्ञानम् ।
उक्तञ्चैतद्भगवता दशवैकालिकसूत्रे - -

“जेसिं केसिचि पाणाणं अभिकंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं आगइगइविण्णाया” ॥ १ ॥ इति ।

प्ररूपणाद्वारम्—

त्रसकायाश्चतुर्विधाः—द्वीन्द्रिय - त्रीन्द्रिय - चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियभेदात् ।
इहैव प्रथमोद्देशके लोकवादिप्रकरणे त्रसानां भेदप्रमेदाः प्ररूपिताः । विस्तरतो

प्रसारण है । बोलना रुत कहलाता है । इधर-उधर जाना भ्रमण है । दुःख से उद्वेग पाना त्रसन है । भागने को पलायन कहते हैं । एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने का विज्ञान आगतिगतिविज्ञान कहलाता है ।

भगवान् ने दशवैकालिक सूत्र में कहा है—

“जिन किन्हीं प्राणियों में अभिक्रमण, संकोचन, प्रसारण, रुत, भ्रमण, त्रसन, पलायन और आगतिगतिका विज्ञान (पाया जाता है वे सब त्रस जीव हैं।)”

प्ररूपणाद्वारम्—

त्रसकाय के चार भेद हैं—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय । इसी शब्द के पहले उद्देश के अन्दर लोकवादी प्रकरण में त्रस जीवों के भेद-प्रमेद कहे हैं । विस्तार से जानने के इच्छुक वहीं से जान लें । इस सूत्र में भगवान् ने

षोडशुं ते इत कडेवाय छे. अह्दीं-तह्दीं ञ्णुं ते भ्रमणु छे. दुःभथी उद्वेग पाभणुं ते त्रसन छे. लागणुं तेने पलायन कडे छे. अेक ञ्णयाथी भाँलु ञ्णयाथे आववा-ण्णवाणुं विज्ञान ते आगतिगतिविज्ञान कडेवाय छे.

भगवाने दशवैकालिक सूत्रमां कथं छे:-

“जे केसिं प्राणीयेमां अलिकमणु, प्रतिकमणु, संकोचयन, प्रसारणु, रुत, भ्रमणु, त्रसन, पलायन अने आगति-गतिनुं विज्ञान (जेवामां आवे छे ते सर्व त्रस लुव छे.)”

प्ररूपणाद्वारम्—

त्रस कायना चार भेद छे:-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रिय. आण शास्त्रना प्रथमना उद्देशमां लोकवादीप्रकरणमां त्रसलुवोना भेद-प्रमेद भताव्या छे, विस्तारथी

જિજ્ઞાસુમિસ્તત एवावगन्तव्याः । अस्मिन् सूत्रेऽपि भगवता-अण्डजपोतजादिभेदाः
प्रदर्शितास्तेऽपि तत्रैव समाचिष्टाः ॥

परिमाणद्वारम्—

क्षेत्रतः संवर्तितलोकप्रतरासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः त्रसकायपर्या-
प्तकाः । एते च वादरतेजस्कायपर्याप्तकेभ्योऽसंख्येयगुणाः, त्रसकायपर्याप्तकेभ्यस्त-
सकायिकाऽपर्याप्तकाः असंख्येयगुणाः ।

तथा काळतः प्रत्युत्पन्नत्रसकायिकाः सागरोपमलक्षणप्रथत्त्वसमयराशिपरिमाणा
जघन्यपदे, उत्कृष्टप्रदेऽपि सागरोपमलक्षणप्रथत्त्वपरिमाणा एवेति । तथा चागमः—

અંહજ ઓર પોતજ આદિ જો મેદ વતલાયે હૈં, યે સમ મી ડહોં મેં અન્તર્ગત હો
જાતે હૈં ।

परिमाणद्वार-

त्रसकाय के पर्याप्त जीव क्षेत्र की अपेक्षा संवर्तित लोकप्रतर के असंख्यातवे भगवता
प्रदेशों की राशि के बराबर हैं । ये वादर तेजस्काय पर्याप्त जीवों से असंख्यातगुणा हैं ।
पर्याप्त त्रसकायिक जीवों की अपेक्षा अपर्याप्त त्रस जीव असंख्यातगुणा हैं । काल की अपेक्षा
जघन्यपद में प्रत्युत्पन्न त्रस जीव एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम की समय-राशि
के बराबर हैं और उत्कृष्ट पद में भी एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम की समयराशि
के बराबर ही है । आगम में भी कहा है—

વજીવાની ઇન્ધવાળા ત્યાંથી જાણી લે. આ સૂત્રમાં લગવાને-અંડજ અને પોતજ
આદિના જે ભેદ ખતાવ્યા છે, તે સર્વનો તેમાં સમાવેશ થઈ જાય છે.

परिमाणद्वार-

त्रसकायना पर्याप्तएव क्षेत्रनी अपेक्षा संवर्तित लोकप्रतरना त्रसख्यातमा
भागवर्ती प्रदेशोनी राशिना बराबर છે. તે વાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવોથી ત્રસખ્યાત
ગણા છે. પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવોની અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસજીવ ત્રસખ્યાત ગણા છે.

કાલની અપેક્ષા જઘન્યપદમાં પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસજીવ એકલાખ થી નવલાખ સુધીના
સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર છે. અને ઉત્કૃષ્ટ પદમાં પણ એક લાખથી નવલાખ
સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર જ છે. આગમમાં પણ કહ્યું છે:-

“પડુપના તસકાદ્યા કેવકાલસ્સ નિલ્લેવા સિયા ? ગોયમા ! જહનપપ સાગરોવમસપસહસ્સપુહત્તસ્સ, ઉક્કોસતપ્પિ સાગરોવમસપસહસ્સપુહત્તસ્સ” ॥ ઇતિ ।

વિરહાપેક્ષયા ત્રસાનાં નિષ્ક્રમણમુપપાતથ જઘન્યત ઇકો દ્વી ત્રયો વા ભવન્તિ, ઉત્કૃષ્ટતસ્તુ પ્રતરસ્યાસંખ્યેયમાગપ્રદેશપરિમાણાઃ । ત્રસેષુ જીવાનાં નૈરન્તર્યેણોત્પત્તિનિષ્ક્રમો વા જઘન્યેનૈકં સમયં દ્વી સમયો ત્રીન્ વા સમયાન્ ભવતિ । ઉત્કૃષ્ટતસ્ત્વાલિકાયા અસંખ્યેયમાગપરિમિતં કાલં સતતમેવોત્પત્તિનિષ્ક્રમો વા ભવતિ । નૈરન્તર્યેણૈકજીવસ્પાવસ્થાનં તુ જઘન્યતોડન્તર્મુહૂર્તં ત્રસકાયે ભવતિ, તદનુ સ પૃથિવ્યાગ્રેકેન્દ્રિયેષુ સમુત્પદ્યતે । ઉત્કૃષ્ટતઃ સાતિરેકં સાગરોપમસહસ્સદ્વયં સતતં નૈરન્તર્યેણ ત્રસકાયે તિષ્ઠતિ । તતઃ

“પત્યુત્પન્ન ત્રસકાયિક જીવ કિતને કાલ કે વરાવર હેં ? ગૌતમ ! જઘન્ય પદ મેં એક લાખ સે નૌ લાખ તક કે સાગરોપમ કે વરાવર ઓર ઉત્કૃષ્ટ પદ મેં ઓ ઇતને હી હે” ।

વિરહ કી અપેક્ષા ત્રસ જીવોં કા નિષ્ક્રમણ ઓર ઉપપાત જઘન્ય એક, દો યા તોન હેં, ઓર ઉત્કૃષ્ટ પ્રતર કે અસંખ્યાતવેં માગવર્તી પ્રદેશોં કે વરાવર હે । ત્રસકાય મેં જીવોં કી નિરન્તર ઉત્પત્તિ યા વ્યવન જઘન્ય એક સમય, દો સમય, તોન સમયતક હે । ઉત્કૃષ્ટ આલિકા કે અસંખ્યાતવેં માગ પરિમિત કાલ તક નિરન્તર ઉત્પત્તિ ઓર વ્યવન હોતા રહતા હે । નિરન્તર એક જીવ કી સ્થિતિ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત તક ત્રસકાય મેં હોતી હે ઓર ઉસકે વાદ વહ પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિય મેં ઉત્પન્ન હોતા હે । ઉત્કૃષ્ટ કુછ અધિક દો હજાર સાગરોપમતક નિરન્તર ત્રસકાય મેં ઠહર સકતા હે । તત્પથાત્

“પત્યુત્પન્ન ત્રસકાયિક એવ ડેટલા કાલની ખરાખર છે ? ગૌતમ ! જઘન્ય પદમાં એક લાખથી નવલાખ સુધીના સાગરોપમની ખરાખર અને ઉત્કૃષ્ટ પદમાં પણ એટલા જ છે.”

વિરહની અપેક્ષા ત્રસ એવોં નિષ્ક્રમણ અને ઉપપાત જઘન્ય એક, બે અથવા ત્રણ છે. અને ઉત્કૃષ્ટ પ્રતરના અસંખ્યાતમા સાગવર્તી પ્રદેશોની ખરાખર છે. ત્રસકાયમાં એવોની નિરંતર ઉત્પત્તિ અથવા નિષ્ક્રમણ (વ્યવન) જઘન્ય એક સમય, બે સમય અથવા ત્રણ સમય સુધી છે. ઉત્કૃષ્ટ આલિકાના અસંખ્યાતમા સાગ પરિમિત કાલ સુધી નિરંતર ઉત્પત્તિ અને નિષ્ક્રમણ (નિકળવું) થતું રહે છે. નિરંતર એક એવની સ્થિતિ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત સુધી ત્રસકાયમાં હોય છે. અને તે પછી તે પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિયમાં ઉત્પન્ન થાય છે. ઉત્કૃષ્ટ કાંઈક અધિક બે હજાર સાગરોપમ સુધી

જિજ્ઞાસુમિસ્તત एवायगन्तव्याः । अस्मिन् सूत्रेऽपि मगवता-अण्डजपोतजादिभेदाः
प्रदर्शितास्तेऽपि तत्रैव समाविष्टाः ॥

परिमाणद्वारम्—

क्षेत्रतः संवर्तितलाकप्रतरासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः त्रसकायपर्याप्तकाः । एते च वादरतेजस्कायपर्याप्तकेभ्योऽसंख्येयगुणाः, त्रसकायपर्याप्तकेभ्यस्त-
सकायिकाऽपर्याप्तकाः असंख्येयगुणाः ।

तथा काळतः प्रत्युत्पन्नत्रसकायिकाः सागरोपमलक्षपृथक्त्वसमयराशिपरिमाणा
जघन्यपदे, उत्कृष्टप्रदेऽपि सागरोपमलक्षपृथक्त्वपरिमाणा एवेति । तथा चागमः—

અંડજ ઓર પોતજ આદિ જો ભેદ વતલાયે હૈં, યે સવ મી ઝઠ્ઠી મેં અન્તર્ગત હો
જાતે હૈં ।

परिमाणद्वार—

त्रसकाय के पर्याप्त जीव क्षेत्र की अपेक्षा संवर्तित लोकप्रतर के असंख्यातवै-भागवती
प्रदेशों की राशि के बराबर हैं । ये वादर तेजस्काय पर्याप्त जीवों से असंख्यातगुणा हैं ।
पर्याप्त त्रसकायिक जीवों की अपेक्षा अपर्याप्त त्रस जीव असंख्यातगुणा हैं । काल की अपेक्षा
जघन्यपद में प्रत्युत्पन्न त्रस जीव एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम की समय-राशि
के बराबर है और उत्कृष्ट पद में भी एक लाख से नौ लाख तक के सागरोपम की समयराशि
के बराबर ही हैं । आगम में भी कहा है—

જાણવાની ઇચ્છાવાળા ત્યાંથી જાણી લે. આ સૂત્રમાં ભગવાને-અંડજ અને પોતજ
આદિના જે ભેદ બતાવ્યા છે, તે સર્વને તેમાં સમાવેશ થઈ જાય છે.

परिमाणद्वार—

त्रसकायना पर्याप्तलव क्षेत्रनी अपेक्षा संवर्तित लोकप्रतरना असंख्यातमा
भागवती प्रदेशोनी राशिना बराबर छे. ते वादर तेजस्काय पर्याप्त लवोधी असंख्यात
गणु छे. पर्याप्त त्रसकायिक लवोनी अपेक्षा अपर्याप्त त्रसलव असंख्यात गणु छे.

કાલની અપેક્ષા જઘન્યપદમાં પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસલવ એકલાખ થી નવલાખ સુધીના
સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર છે. અને ઉત્કૃષ્ટ પદમાં પણ એક લાખથી નવલાખ
સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર જ છે. આગમમાં પણ કહ્યું છે:—

“પટ્ટુપન્ના તસકાઙ્યા કેવદ્કાલસ્સ નિલ્લેવા સિયા ? ગોયમા ! જહ્નપપ સાગરોવમસયસહસ્સપુહ્તસ્સ, ઉક્કોસતપ્પિ સાગરોવમસયસહસ્સપુહ્તસ્સ” ॥ ઇતિ ।

વિરહાપેક્ષયા ત્રસાનાં નિક્રમણમુપપાતથ્થ જઘન્યત ઇકો દ્વો ત્રયો વા ભવન્તિ, ઉત્કુપ્પતસ્તુ પ્રતરસ્યાસંખ્યેયમાગપ્રદેશપરિમાણાઃ । વસેપુ જીવાનાં નૈરન્તર્યેણોત્પત્તિનિક્રમો વા જઘન્યેનૈકં સમયં દ્વૌ સમયો ત્રીન્ વા સમયાન્ ભવતિ । ઉત્કુપ્પતસ્ત્રાવલિકાયા અસંખ્યેયમાગપરિમિતં કાલં સતત-મેવોત્પત્તિનિક્રમો વા ભવતિ । નૈરન્તર્યેણૈકજીવસ્યાવસ્થાનં તુ જઘન્યતોડન્ત-ર્મુહૂર્તે ત્રસકાયે ભવતિ, તદ્વુ સ પૃથિવ્યાગ્રેકેન્દ્રિયેષુ સમુત્પન્નતે । ઉત્કુપ્પતઃ સાત્તિરેકં સાગરોપમસહસ્રદ્વયં સતતં નૈરન્તર્યેણ ત્રસકાયે તિષ્ઠતિ । તતઃ

“પત્યુત્પન્ન ત્રસકાયિક જીવ કિતને કાલ કે વરાવર હેં ? ગૌતમ ! જઘન્ય પદ મેં ઇક લાખ સે નૌ લાખ તક કે સાગરોપમ કે વરાવર ઔર ઉત્કુપ્પ પદ મેં ઔર ઇતને હી હે” ।

વિરહ કી અપેક્ષા ત્રસ જીવો કા નિક્રમણ ઔર ઉપપાત જઘન્ય ઇક, દો યા ત્રીન હેં, ઔર ઉત્કુપ્પ પ્રતર કે અસંખ્યાતવેં માગવર્તી પ્રદેશો કે વરાવર હે । ત્રસકાય મેં જીવો કી નિરન્તર ઉત્પત્તિ યા વ્યવન જઘન્ય ઇક સમય, દો સમય, ત્રીન સમયતક હે । ઉત્કુપ્પ આવલિકા કે અસંખ્યાતવેં માગ પરિમિત કાલ તક નિરન્તર ઉત્પત્તિ ઔર વ્યવન હોતા રહતા હે । નિરન્તર ઇક જીવ કી સ્થિતિ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્તે તક ત્રસકાય મેં હોતી હે ઔર ઉસકે વાદ વહ પૃથ્વીકાય આદિ ઇકેન્દ્રિય મેં ઉત્પન્ન હોતા હે । ઉત્કુપ્પ કુછ અધિક દો હજાર સાગરોપમતક નિરન્તર ત્રસકાય મેં ઠહર સકતા હે । તત્પથાત્

“પત્યુત્પન્ન ત્રસકાયિક ઇવ કેટલા કાલની ધરાધર છે ? ગૌતમ ! જઘન્ય પદમાં ઁક લાખથી નવલાખ સુધીના સાગરોપમની ધરાધર અને ઉત્કુપ્પ પદમાં પણ ઁટલા જ છે.”

વિરહની અપેક્ષા ત્રસ ઇવોન્તુ નિષ્કમણ અને ઉપપાત જઘન્ય ઁક, બે અથવા ત્રણ છે. અને ઉત્કુપ્પ પ્રતરના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની ધરાધર છે. ત્રસકાયમાં ઇવોની નિરંતર ઉત્પત્તિ અથવા નિષ્કમણ (વ્યવન) જઘન્ય ઁક સમય, બે સમય અથવા ત્રણ સમય સુધી છે. ઉત્કુપ્પ આવલિકાના અસંખ્યાતમા ભાગ પરિમિત કાલ સુધી નિરંતર ઉત્પત્તિ અને નિષ્કમણ (નિકળવું) થતું રહે છે. નિરંતર ઁક ઇવની સ્થિતિ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્તે સુધી ત્રસકાયમાં હોય છે. અને તે પછી તે પૃથ્વીકાય આદિ ઁકેન્દ્રિયમાં ઉત્પન્ન થાય છે. ઉત્કુપ્પ કાર્થક અધિક બે હજાર સાગરોપમ સુધી

જિજ્ઞાસુમિસ્તત एवावगन्तव्याः । अस्मिन् सूत्रेऽपि भगवता-अण्डजपोतजादिभेदाः
प्रदर्शितास्तेऽपि तत्रैव समाविष्टाः ॥

परिमाणद्वारम्—

क्षेत्रतः संबर्तितलोकप्रतरासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः त्रसकायपर्या-
प्तकाः । एते च वादरतेजस्कायपर्याप्तकेभ्योऽसंख्येयगुणाः, त्रसकायपर्याप्तकेभ्यस्त्र-
सकायिकाऽपर्याप्तकाः असंख्येयगुणाः ।

तथा काळतः प्रत्युत्पन्नत्रसकायिकाः सागरोपमलक्षप्रथत्त्वसमयराशिपरिमाणा
जघन्यपदे, उत्कृष्टપ્રદેऽपि सागरोपमलक्षप्रथत्त्वपरिमाणा एवेति । तथा चागमः—

अण्डज और पोतज आदि जो भेद वतलाये हैं, ये सब भी उन्हीं में अन्तर्गत हो
जाते हैं ।

परिमाणद्वार-

त्रસકાય કે પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા સંવર્તિત લોકપ્રતર કે અસંખ્યાતર્વે ભાગવર્તા
પ્રદેશો કી રાશિ કે બરાબર હૈં । યે વાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવો સે અસંખ્યાતગુણા હૈં ।
પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવો કી અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસ જીવ અસંખ્યાતગુણા હૈં । કાલ કી અપેક્ષા
જઘન્યપદ મેં પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસ જીવ એક લાખ સે નૌ લાખ તક કે સાગરોપમ કો સમય-રાશિ
કે બરાબર હૈં ઓર ઉત્કૃષ્ટ પદ મેં મો એક લાખ સે નૌ લાખ તક કે સાગરોપમ કી સમયરાશિ
કે બરાબર હી હૈં । આગમ મેં મો કહા હૈ—

બાણવાની ઇચ્છાવાળા ત્યાંથી બાણી લે. આ સૂત્રમાં ભગવાને-અંડજ અને પોતજ
આદિના જે ભેદ બતાવ્યા છે, તે સર્વનો તેમાં સમાવેશ થઈ નથી છે.

परिमाणद्वार-

ત્રસકાયના પર્યાપ્તજીવ ક્ષેત્રની અપેક્ષા સંવર્તિત લોકપ્રતરના અસંખ્યાતમાં
ભાગવર્તા પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે. તે વાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવોથી અસંખ્યાત
ગણા છે. પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવોની અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસજીવ અસંખ્યાત ગણા છે.

કાલની અપેક્ષા જઘન્યપદમાં પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસજીવ એકલાખ થી નવલાખ સુધીના
સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર છે, અને ઉત્કૃષ્ટ પદમાં પણ એક લાખથી નવલાખ
સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર જ છે. આગમમાં પણ કહ્યું છે:-

निधाय=मनसा समालोच्य, प्रतिलेख्य=विलोक्य सम्यग् विज्ञायेत्यर्थः, ब्रवीमि=कथयामि-सर्वेषां प्राणानां=प्राणाः सन्ति येषां ते प्राणाः=पणिनस्तेषां, सर्वेषां भूतानाम्=उत्पत्तिशीलानाम्, सर्वेषां जीवानां=कालत्रये जीवनाद् चैतन्यस्वरूपाणामित्यर्थः, सर्वेषां सत्त्वानां=सर्वदाऽस्तित्ववताम्, त्रसजीवानाम्, यद्वा-सर्वेषामित्यस्य पुनः पुनरुपादानेन स्थावरा अपि गृह्यन्ते, तेन त्रसानां स्थावराणां च जीवानामित्यर्थः। परिनिर्वाणं=सुखं, मत्येकम्=एकैकं पृथक् पृथगस्ति।

शब्दव्युत्पत्त्या विभिन्नार्थबोधकत्वात् प्राणभूतादिशब्दानामुच्चारणं न पुनरुक्तिदोषः। 'निष्णाइत्ता' 'पडिलेहिता' इति पदद्वयेन जीवानां पुनः पुनरनुग्रहानं प्रतिलेखनं च सूचितम्, तदेव पुनः पुनर्विधेयतया प्रतिबोधनार्थ-

स्वरूप मन से विचार करके तथा सम्यक् प्रकार से जानकर कहता हूँ। सभी प्राणियों का सभी मूर्तों अर्थात् उत्पत्तिशील जीवों का, सभी जीवों (त्रिकाल में जीवित रहने वालों) का और सभी सत्त्वों (सर्वदा अस्तित्व वाले त्रस जीवों) का, अथवा बार-बार 'सञ्चेसि' पदका प्रयोग करने के कारण यह अर्थ लेना चाहिए कि-सभी त्रस और स्थावर जीवों का सुख पृथक्-पृथक् है।

शब्दशास्त्र की दृष्टि से भिन्न-भिन्न अर्थ के बोधक प्राण, मृत आदि शब्दों का उच्चारण करने पर भी पुनरुक्ति दोष नहीं है। अथवा प्राण मृत आदि शब्दों को एक ही अर्थ का वाचक मान लिया जाय तो भी पुनरुक्तिदोष नहीं है। 'निष्णाइत्ता' 'पडिलेहिता' इन दो पदों द्वारा जीवों का पुनः पुनः विचार एवं प्रतिलेखन सूचित किया है। उसी को पुनः पुनः विधेयरूप से समझाने के लिए

आदि सभस्त एवेनुं स्वश्य मनथी विचार करीने तथा सम्यक् प्रकारे ज्ञानीने कर्तुं छु-सर्व प्राणीमेनुं, सर्वभूतेनुं अर्थात् उत्पत्तिशील एवेनुं, सर्व एवे (त्रसु काल एवित रहेवावाणा)नुं, अने सर्व सत्त्वो-(सर्वदा अस्तित्ववाणा त्रस एवे)नुं, अथवा बार-बार 'सञ्चेसि' पदने प्रयोग करवाना करणुं अे अर्थ लेवे जेधजे के-सर्व त्रस अने स्थावर एवेनुं सुष पृथक्-पृथक् छे।

शब्दशास्त्री की दृष्टिसे भिन्न-भिन्न अर्थना बोधक प्राण-भूत आदि शब्दानुं उच्चारण करवाधी पण पुनरुक्ति दोष आवतो नथी अथवा प्राणभूत आदि शब्दाने अर्थना वाचक मानी लेवाभां आवे तो पण पुनरुक्तिदोष नथी 'निष्णाइत्ता' 'पडिलेहिता' आ जे पदो द्वारा एवेने पुनः पुनः विचार अर्थात् प्रतिबोधन सूचित करुं छे। तेने पुनः पुनः

પૃથિવ્યાદિપૃત્પદ્યતે । ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ત્રસજીવાનાં સુખં દુઃખં વા યથા ભવતિ તદાહ—‘ નિજ્ઞાહતા.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

નિજ્ઞાહતા પહિલેહિતા પત્તેયં પરિનિવ્વાણં સર્વેસિં પાણાણં સર્વેસિં ભૂયાણં સર્વેસિં જીવાણં સર્વેસિં સત્તાણં અસાયં અપરિનિવ્વાણં મહાભયં દુઃખલં—તિ વેમિ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—

નિધ્યાય પ્રતિલેખ્ય પ્રત્યેકં પરિનિર્વાણં સર્વેષાં પ્રાણાનાં સર્વેષાં ભૂતાનાં સર્વેષાં જીવાનાં સર્વેષાં સત્તાનામ્ અસાતમ્ અપરિનિર્વાણં મહાભયં દુઃખમિતિ વ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

પ્રકરણસમ્બન્ધાત્ ત્રસજીવસ્વરૂપં પૃથિવ્યાદિસકલજીવસ્વરૂપં વા

પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરો મેં ઉત્પન્ન હોતા હૈ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ત્રસજીવો કો સુખ-દુઃખ જિસ પ્રકાર હોતા હૈ સો કહતે હૈં—‘ નિજ્ઞાહતા.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—વિચાર કરકે ઓર અઞ્છી તરહ દેસકર કહતા હૂં કિ-સમી પ્રાણિયો કા, સમી ભૂતો કા, સમી જીવો કા, ઓર સમી સર્વો કા પરિનિર્વાણ અર્થાત્ સુખ પૃથક્-પૃથક્ હૈ । તથા અસાતારૂપ, અપરિનિર્વાણરૂપ મહાભયરૂપ દુઃખ મી પૃથક્-પૃથક્ હૈ । ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ટીકાર્થ—ત્રસ જીવો કા પ્રકરણ હોને કે કારણ ‘વિચાર કરને’ કા આશય યહ હૈ કિ ત્રસજીવો કા સ્વરૂપ, અથવા પૃથ્વીકાય આદિ સમસ્ત જીવો કા

નિરંતર ત્રસકાયમાં રહી શકે છે, તે પછી પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોમાં ઉત્પન્ન થાય છે. ॥સૂ૦ ૧॥

ત્રસ જીવોને સુખ-દુઃખ જે પ્રકારે થાય છે, તે કહે છે—‘નિજ્ઞાહતા.’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વિચાર કરીને સારી રીતે જોઇને કહું છું કે-સર્વ પ્રાણીઓ સર્વ-ભૂતો, સર્વ જીવો અને સર્વ સર્વોનું પરિનિર્વાણ અર્થાત્ સુખ પૃથક્-પૃથક્-બૂદાં-બૂદાં છે, તથા અસાતારૂપ અપરિનિર્વાણરૂપ મહાભયરૂપ દુઃખ પણ બૂદાં-બૂદાં છે. ॥સૂ૦ ૨॥

ટીકાર્થ—ત્રસજીવોનું પ્રકરણ હોવાના કારણે ત્રસજીવોનું સ્વરૂપ અથવા પૃથ્વીકાય

छाया—

त्रस्यन्ति प्राणाः प्रदिशः दिशासु च । तत्र तत्र पृथक् पश्य, आतुराः परित्ताप-
यन्ति, सन्ति प्राणाः पृथक् श्रिताः ॥ सू० ३ ॥

टीका—

प्राणाः=प्राणिनः प्रकरणसम्बन्धात् त्रसजीवाः प्रदिशः=प्रगता दिक् प्रदिक्
विदिगिर्यर्थः, ततः प्रदिशः, तथा—दिशासु प्राच्यादिदिक्षु च समागन्तुकेभ्यो दुःखेभ्यः,
त्रस्यन्ति=विभ्यति । सर्वदिग्विदिक्षु त्रसाः सन्ति, ते च सर्वदिग्विदिग्भ्यः समागन्तु-
केभ्यो दुःखेभ्यस्त्रस्यन्तीत्यर्थः ।

कुतस्तेषां दुःखसंभवः ? इति जिज्ञासायामाह—‘तत्र-तत्रे’ त्यादि । तत्रतत्र=
तेषु-तेषु, पृथक्=विभिन्नेषु प्रयोजधनेषु, आतुराः=अर्चाचर्ममांसादिगृध्नवः त्रसान्
परित्तापयन्ति=परिपीडयन्ति । विविधवेदनोत्पादनेन प्राणव्यपरोपणेन च सर्वथा दुःखं
जनयन्तीत्यर्थः । कीदृशास्ते त्रसाः, यानातुराः परित्तापयन्ति ? इति जिज्ञासाया-

टीकार्थ—त्रस का प्रकरण होने से ‘प्राण’ शब्द का अर्थ यहाँ त्रसजीव समझना
चाहिए । त्रस प्राणी विदिशाओं में आगन्तुक दुःखों से त्रस्त हैं । तात्पर्य यह है कि—सभी
विदिशाओं में और सभी दिशाओं में त्रसजीव विद्यमान हैं और सभी विदिशाओं और
दिशाओं से आने वाले दुःखों से वे पीडित होते हैं ।

उन्हें दुःख क्यों होता है ? इसका उत्तर यह है—विभिन्न प्रयोजनों से
आतुर लोग अर्थात् अर्चा (शरीर), चर्म, मांस, आदि के लोलुप पुरुष त्रस जीवों को पीडा
पहुँचाते हैं । उन्हें भँति-भँति की वेदना उत्पन्न करके उनके प्राणों का व्यपरोपण
करते हैं और सब प्रकार से दुःख उत्पन्न करते हैं । वे त्रसजीव पृथिवी आदि के

टीकार्थ—त्रसनुं प्रकरण्यु ङोवाधी ‘प्राण्यु’ शब्दनेो अर्थ त्रसलुव समलुवो
नेधये त्रस प्राण्यु विदिशाओभां तथा दिशाओभां आगन्तुक दुःखोधी त्रस पाभे छे.
तात्पर्यं ये छे डेः—सर्व विदिशाओभां अने सर्व दिशाओभां त्रस लुवविद्यमान छे,
अने सर्व विदिशाओ तथा दिशाओधी आववावाणा दुःखोधी ते पीडा पाभे छे.

तेने दुःख शा भाटे थाय छे ? तेने उत्तर ये छे डे—भूदा-भूदा प्रयेजनेोधी आतुर
लोड अथोत् अर्था (शरीर), अर्भ, मांस वगेरेना लालयुं पुरुष त्रस लुवोने पीडा पडोत्थाडे
छे, तेने भूदी-भूदी नतनी वेदना उत्पन्न करे छे. ते त्रस लुव पृथ्वी आदिना आश्रये
प्र. आ.-८३

મનેકપર્યાયશબ્દેસ્તેપામુપાદાનાત્ ।

તથા સર્વેપાં દુઃખં પ્રત્યેકં પૃથક્ પૃથગસ્તિ । કથમ્ભૂતં દુઃખમિત્યાહ—
'અસાત'—મિત્યાદિ । અસાતમ્ અસાતાવેદનીયકર્મફલભૂતમ્, તથા—અપરિનિર્વાણમ્—
સર્વથા શરીરમનઃ પીડાકરમ્, તથા—મહાભયમ્—દુઃખાદધિકં ભયમન્યન્નાસ્તિ, યતઃ
સર્વેઽપિ પ્રાણિનઃ શારીરાન્માનસાદપિ દુઃખાદુદ્વિજન્તે, તસ્માન્મહાભયસ્વરૂપમિત્યર્થઃ
॥ સૂ૦ ૨ ॥

एतच्च ब्रवीमीत्याह 'तसंति पाणा.' इत्यादि ।

मूलम्—

तसंति पाणा पदिसो दिसासु य । तत्थ पुढो पास आतुरा, परितावंति,
संति पाणा पुढो सिया ॥ सू० ३ ॥

अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

इसी प्रकार सब जीवों का दुःख भी पृथक्-पृथक् है । दुःख किस प्रकार का है ?
सो कहते हैं—वह असातावेदनीय कर्म का फल है, शरीर और मन को पूरी तरह पीडा
उत्पन्न करता है और महाभयंकर है—दुःख से बढ़कर और कोई भय नहीं है, क्यों
कि सभी प्राणी शारीरिक और मानसिक दुःख से घबराते हैं, अतः वह महाभयकारी
है ॥ सू० २ ॥

और मैं यह कहता हूँ:—'तसंति पाणा.' इत्यादि ।

मूलार्थ—प्राणी विदिशाओ में और दिशाओ में उद्वेग पाते हैं । अलग-
अलग प्रयोजनो के लोलुप लोग उन्हें संताप पहुंचाते है । वे त्रस प्राणी पृथ्वी आदि विभिन्न
आश्रयो पर आश्रित हैं ॥ सू० ३ ॥

વિધેયરૂપથી સમજાવવા માટે અનેક પર્યાયવાચી શબ્દોનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે.
આ પ્રમાણે સર્વજીવોના દુઃખ પણ જુદા-જુદા છે. દુઃખ કયા પ્રકારના છે ?
તે કહે છે—તે આ અસાતાવેદનીય કર્મનું ફળ છે; શરીર અને મનને પૂરી રીતે પીડા
ઉત્પન્ન કરે છે. અને મહા ભયંકર છે. દુઃખથી વધારે કોઈ પણ ભય નથી કારણકે સર્વ
પ્રાણી-શારીરિક અને માનસિક દુઃખથી ગભરાય છે. તેથી તે મહાભયકારી છે. ॥સૂ૦ ૨॥

अने दुं अये पणु कहुं छुः—'तसंति पाणा.' इत्यादि.

मूलार्थ—प्राणी विदिशाओमां અને दिशाओमां उद्वेग पाते છે. અલગ-અલગ
પ્રયોજનોથી લોલુપ લોક તેને સંતાપ પહોંચાડે છે. તે ત્રસ પ્રાણી પૃથ્વી આદિ વિભિન્ન
આશ્રયો પર આશ્રિત છે. ॥સૂ૦ ૩॥

छाया—

त्रस्यन्ति प्राणाः प्रदिशः दिशासु च । तत्र तत्र पृथक् पश्य, आतुराः परिताप-
यन्ति, सन्ति प्राणाः पृथक् श्रिताः ॥ सू० ३ ॥

टीका—

प्राणाः=प्राणिनः प्रकरणसम्बन्धात् त्रसजीवाः प्रदिशः=प्रगता दिक् प्रदिक्
विदिगित्यर्थः, ततः प्रदिशः, तथा-दिशासु प्राच्यादिदिक्षु च समागन्तुकैभ्यो दुःखेभ्य,
त्रस्यन्ति=विभ्यति । सर्वदिग्विदिक्षु त्रसाः सन्ति, ते च सर्वदिग्विदिग्भ्यः समागन्तु-
कैभ्यो दुःखेभ्यस्तस्यन्तीत्यर्थः ।

कुतस्तेषां दुःखसंभवः ? इति जिज्ञासायामाह-‘तत्र-तत्रे’ त्यादि । तत्रतत्र=
तेषु-तेषु, पृथक्=विभिन्नेषु प्रयोजनेषु, आतुराः=अर्चाचर्ममांसादिगृह्यन्तः त्रसान्
परितापयन्ति=परिपीडयन्ति । विविधवेदनोत्पादनेन प्राणव्यपरोपणेन च सर्वथा दुःखं
जनयन्तीत्यर्थः । कीदृशास्ते त्रसाः, यानातुराः परितापयन्ति ? इति जिज्ञासाया-

टीकार्थ—त्रस का प्रकरण होने से ‘प्राण’ शब्द का अर्थ यहाँ त्रसजीव समझना
चाहिए । त्रस प्राणी विदिशाओं में आगन्तुक दुःखों से त्रस्त हैं । तात्पर्य यह है कि—सभी
विदिशाओं में और सभी दिशाओं में त्रसजीव विद्यमान हैं और सभी विदिशाओं और
दिशाओं से आने वाले दुःखों से वे पीडित होते हैं ।

उन्हें दुःख क्यों होता है ? इसका उत्तर यह है—विभिन्न प्रयोजनों से
आतुर लोग अर्थात् अर्चा (शरीर), चर्म, मांस, आदि के लोलुप पुरुष त्रस जीवों को पीडा
पहुँचाते हैं । उन्हें भँति-भँति की वेदना उत्पन्न करके उनके प्राणों का व्यपरोपण
करते हैं और सब प्रकार से दुःख उत्पन्न करते हैं । वे त्रसजीव पृथिवी आदि के

टीकार्थ—त्रसतुं प्रकरण्युं होवाची ‘प्राण्यु’ शब्दनेो अर्थ त्रसलुव सभलुवेो
लेद्ये त्रस प्राणी विदिशाओमां तथा दिशाओमां आगन्तुक दुःखोधी त्रस पाभे छे.
तात्पर्यं ये छे केः—सर्व विदिशाओमां अने सर्व दिशाओमां त्रस लुव विद्यमान छे,
अने सर्व विदिशाओमा तथा दिशाओमाधी आववावाणा दुःखोधी ते पीडा पाभे छे.

तेने दुःख शा भाटे थाय छे ? तेने उत्तर ये छे के—बूहा-बूहा प्रयोन्नोधी आतुर
लोड अर्थात् अर्चा (शरीर), अर्भ, मांस वगेरेना लालस्युं पुरुष त्रस लुवेोने पीडा पडोन्थाडे
छे, तेने बूही-बूही नतानी वेदना उत्पन्न करे छे. ते त्रस लुव पृथ्वी आदिना आश्रये ॥

મનેકપર્યાયશબ્દેસ્તેપામુપાદાનાત્ ।

તથા સર્વેપાં દુઃખં પ્રત્યેકં પૃથક્ પૃથગસ્તિ । કથમ્ભૂતં દુઃખમિત્યાહ—
'અસાત'—મિત્યાદિ । અસાતમ્ અસાતવેદનીયકર્મફલભૂતમ્, તથા—અપરિનિર્વાણમ્—
સર્વથા શરીરમનઃ પીડાકરમ્, તથા—મહામયમ્—દુઃખાદધિકં મયમન્યન્નાસ્તિ, યતઃ
સર્વેઽપિ પ્રાણિનઃ શારીરાન્માનસાદપિ દુઃખાદુદ્વિજન્તે, તસ્માન્મહામયસ્વરૂપમિત્યર્થઃ
॥ સૂ. ૨ ॥

एतच्च ब्रवीमीत्याह 'तसंति पाणा.' इत्यादि ।

मूलम्—

तसंति पाणा पदिसो दिसाष्ट य । तत्थ पुढो पास आतुरा, परितावंति,
संति पाणा पुढो सिया ॥ सू. ३ ॥

अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

इसी प्रकार सब जीवों का दुःख भी पृथक्-पृथक् है । दुःख किस प्रकार का है ?
सो कहते हैं—वह असातावेदनीय कर्म का फल है, शरीर और मन को पूरी तरह पीडा
उत्पन्न करता है और महाभयंकर है—दुःख से बढकर और कोई भय नहीं है, क्यों
कि सभी प्राणी शारीरिक और मानसिक दुःख से घबराते हैं, अतः वह महाभयकारी
है ॥ सू. २ ॥

और मैं यह कहता हूँ:—'तसंति पाणा.' इत्यादि ।

मूलार्थ—प्राणी विदिशाओ में और दिशाओ में उद्वेग पाते हैं । अलग-
अलग प्रयेाजनों के लोलुप लोग उन्हें संताप पहुंचाते हैं । वे त्रस प्राणी पृथ्वी आदि विभिन्न
आश्रयो पर आश्रित हैं ॥ सू. ३ ॥

વિધેયરૂપથી સમજાવવા માટે અનેક પર્યાયવાચી શબ્દોનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે.
આ પ્રમાણે સર્વજીવોના દુઃખ પણ જૂદા-જૂદા છે. દુઃખ કયા પ્રકારના છે ?
તે કહે છે—તે આ અસાતાવેદનીય કર્મનું ફળ છે; શરીર અને મનને પૂરી રીતે પીડા
ઉત્પન્ન કરે છે. અને મહા ભયંકર છે. દુઃખથી વધારે કોઈ પણ ભય નથી. કારણકે સર્વ
પ્રાણી-શારીરિક અને માનસિક દુઃખથી ગભરાય છે. તેથી તે મહાભયકારી છે. ॥સૂ. ૨॥

अने दुं अे पणु कहुं छुः—'तसंति पाणा.' इत्यादि.

मूलार्थ—प्राणी विदिशाओमां અને दिशाओमां उद्वेग पाते છે. અલગ-અલગ
પ્રયેાજનોથી લોલુપ લોક તેને સંતાપ પહોંચાડે છે. તે ત્રસ પ્રાણી પૃથ્વી આદિ વિભિન્ન
આશ્રયો પર આશ્રિત છે. ॥સૂ. ૩॥

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मोत्ति एगे पवयमाणा, जमिणं, त्रिरुवरुवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेणं, तसकायसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणेगरुवे पाणे विहिंसन्ति ॥ सू० ४ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्मः, इति एके प्रचदमानाः, यदिसं विरूपरूपैः शस्त्रैः त्रसकायसमारंभेण, त्रसकायशस्त्रं समारंभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयाऽऽर्द्रहृदयतया त्रसकायसमारम्भे पराङ्मुखाः त्रसकायसमारम्भपरित्पागिनोऽनागारा इत्यर्थः । पृथक्=विभिन्नाः, केचित्-प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित्-परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः, सन्तीति पश्य । यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे त्रस-

मूलार्थ—त्रसकाय के आरंभ में संकोच करने वाले (अनगारों को) अलग समझो । 'हम अनगार हैं' ऐसा कहने वाले कोई-कोई (द्रव्यलिङ्गी) नाना प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं उनको अलग देखो ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—परम करुणा से जिनका हृदय द्रवित है ऐसे अनगार त्रसकाय के आरंभ से सर्वथा विमुख रहते हैं । ये अनगार अलग-अलग हैं । कोई अवधिज्ञानी, कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं । कोई-कोई परोक्षज्ञानी भाविमात्मा हैं,

मूलार्थ—त्रसकायना आरंभमां संकोच करवावाणा अणुगाराने अलग-अलग-समझे, 'अमे अणुगार छीये' ये प्रमाणे कडेवावाणा केहि-केहि द्रव्यलिङ्गी, नाना प्रकारनां शस्त्राधी त्रसकायने आरंभ करीने, त्रसकायनां शस्त्राने प्रयोग करता थका थीण पणु अनेक प्रकारना प्राणीयोगी हिंसा करे छे. तेने अलग अणुओ. ॥सू० ४॥

टीकार्थ—परम कर्षणाधी अणु हृदय द्रवित छे जेवा अणुगार त्रसकायना आरंभधी सर्वथा विमुख रहे छे-दूर रहे छे. ते अणुगार अलग-अलग छे. केहि अवधिज्ञानी, केहि मनः-पर्ययज्ञानी, अने केहि केवलज्ञानी छे. केहि-केहि परोक्षज्ञानी

માહ- ' સન્તિ ' ઇત્યાદિ । શ્રિતાઃ = પૃથિવ્યાદીન્ સમાશ્રિત્યાવસ્થિતાઃ, પૃથક્ = વિભિન્નાઃ દ્વીન્દ્રિયાદયઃ, પ્રાણાઃ = પ્રાણિનઃ સન્તિ ।

યદપિ સર્વદિગ્વિદિગ્મ્ય આગમિનો દુઃસ્વાદ્ વિમ્યન્તસ્ત્રસજીવાઃ સ્વાત્મરક્ષાય પૃથિવ્યાદીન્ સમાશ્રિત્વ વર્તન્તે તથાપિ માંસચર્માદિલુબ્ધ્યા આતુરાસ્તાન્ બન્ધનતાડનાદિના શાવકાઘપહારેણ પ્રાણાઘપહારેણ ચ પરિપીડયન્તિ, તતઃ સંસારં પ્રાપ્નુવન્તિ । તસ્માદેતત્ પરિજ્ઞાય સકલસાવધવ્યાપારપરિહારેણ સંયમાનુષ્ટાને પ્રવર્તિતવ્યમિતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

અથ સર્વથા ત્રસકાયસમારમ્ભપરિત્યાગિનોઽનગારાન્, તથા ત્રસકાય-સમારમ્ભમવૃત્તાન્ દ્રવ્યલિગ્નિનશ્ચ ત્રિવિચ્ય પ્રતિવોધયિતુમાહ- ' લજ્જમાણા. ' ઇત્યાદિ ।

સહારે અલગ-અલગ રહે હુણ. હૈં ।

યદપિ સઘ દિશાઓ ઓર વિદિશાઓ સે આનેવાલે દુઃસ્વો સે ડરને વાલે ત્રસ જીવ અપની રક્ષા કે લિણ પૃથ્વી આદિ કે સહારે ટિકે રહતે હૈં ફિર મી માંસ ઓર ચર્મ આદિ કે લોમી લોગ ડહૈં બંધન ંવં તાડન દ્વારા, ડનકે બચ્ચોકા અપહરણ કરકે તથા ડનકે પ્રાણો કા હનન કરકે ડહૈં પોડા પહુંચાતે હૈં ઓર ડસ કારણ વે ડિસક, સંસાર કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં । આશય યહ હૈં કિ-યહ સઘ જાનકર સમ્પૂર્ણ સાવધ વ્યાપાર કા ત્યાગ કરકે સંયમ કી સાધના મેં પ્રવૃત્ત હોના ડાહિણ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

અથ પૂર્ણરૂપ સે ત્રસકાય કે આરંભ કા ત્યાગ કરને વાલે અનગારો કા તથા ત્રસકાય કે આરંભ મેં પ્રવૃત્તિ કરને વાલે દ્રવ્યલિગિયો કા વિવેચન કરકે સમજાતે હુણ. કહતે હૈં- ' લજ્જમાણા. ' ઇત્યાદિ ।

અલગ-અલગ રહેલો છે.

જો કે સર્વ દિશાઓ અને વિદિશાઓથી આવનારા દુઃખોથી ડરવાવાળા ત્રસજીવ પોતાની રક્ષા માટે પૃથ્વી આદિના આશ્રયે ટકી રહે છે. ફરી પણ માંસ અને ચામડા આદિના લોભી લોક તેને બંધન એ પ્રમાણે તાડનદ્વારા, તેના બચ્ચાઓનું અપહરણ કરીને (ચોરી બંધને) તથા તેના પ્રાણોનું હનન-નાશ કરીને તેને પીડા પહોંચાડે છે. અને આ કારણથી તે ડિસક-સંસારને પ્રાપ્ત થાય છે. આશય એ છે કે-એ સર્વ બળી કરીને સંપૂર્ણ સાવધ વ્યાપારને ત્યાગ કરીને સંયમની સાધનામાં પ્રવૃત્ત થવું જોઈએ. ॥૩॥

હવે પૂર્ણરૂપથી ત્રસકાયનાં આરંભનો ત્યાગ કરવાવાળા અણુગારોનું તથા ત્રસકાયના આરંભમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા દ્રવ્યલિગિઓનું વિવેચન કરીને સમબલતા થકા કહે છે- ' લજ્જમાણા. ' ઇત્યાદિ.

द्वित्रिधम्, तत्र-द्रव्यशस्त्रं-स्वकाय-परकायो-भयकायमेदात् त्रिविधम् । तत्रस्वकाय-
शस्त्रेत्रसकायस्य त्रसकायः, यथा-मृगादीनां व्याधक्कुक्कुरादयः, मनुष्यादीनां मनुष्यादयः ।
परकायशस्त्रम्-पापाणजलाग्निगुडखड्गतोमरछुरिकादयः । उभयकायशस्त्रम्-लगुडखड्गा-
दिधारिणो मनुष्यादयः । भावशस्त्रं तु त्रसकायं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् ।
त्रसकायसमारम्भेण, त्रसः=त्रसनशीलः कायः=शरीरं यस्य स त्रसकायस्तस्य
समारम्भः=पीडाकरः सावधव्यापारस्तेन, इमं=त्रसकायं विहिंसन्ति ।

त्रसकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु पृथ्वीजीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव
विहिंसन्तीत्याह-‘त्रसकायशस्त्रम्.’ इत्यादि । त्रसकायशस्त्रं=त्रसजीवोपमर्दकं शस्त्रं
पूर्वोक्तप्रकारं, समारम्भमाणाः=त्रसकायं प्रति प्रयुञ्जानाः अन्यान्-त्रसकायभिन्नान्

मेद हैं-स्वकाय, परकाय, और उभयकाय । त्रसकाय का त्रसकाय स्वकायशस्त्र हैं,
जैसे मृग आदि के लिए व्याध, कुत्ता आदि, मनुष्य के लिए मनुष्य आदि । परकायशस्त्र जैसे
पथर, जल, अग्नि, लकड़ी, तलवार, तोमर, शेर आदि । उभयकायशस्त्र जैसे लाठी, तलवार
आदि कारण करने वाला मनुष्य आदि । त्रसकाय के प्रति मन, वचन, और कायका अप्रशस्त
व्यापार होना भावशस्त्र है । इन नाना प्रकार के शस्त्रों से त्रसकाय का समारंभ करके लोग
त्रसकाय को पीडा पहुँचाते हैं ।

त्रसकाय की हिंसा में प्रवृत्ति करने वाले यह प्रकार के जीवनिकायरूप सम्पूर्ण
लोक की हिंसा करते हैं, यह बात कहते हैं-त्रसकाय में, त्रसकाय की हिंसा करने वाले
शस्त्रों का जो प्रयोग करते हैं वे त्रसकाय के अतिरिक्त अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि

परकाय अने उलयकाय, त्रसकायतुं त्रसकाय ते स्वकायशस्त्रं छे, जेभ मृग आदिने
भाटे वाध-कुत्तरा आदि, मनुष्यने भाटे मनुष्य आदि. परकायशस्त्र, जेभके पथर,
जल, अग्नि, लाकड़ी, तरवार, लातुं, छरी आदि. उलयकायशस्त्र, जेभके-लाकड़ी,
तलवार आदि धारणु करवावाणा मनुष्य आदि. त्रसकायना प्रति मन, वचन अने
कायानो अप्रशस्त व्यापार थयो ते लावशस्त्रं छे. ते नाना प्रकारनां शस्त्रोथी त्रसकायनो
समारंभ करीने दोक त्रसकायने पीडा पडोयाउ छे.

त्रसकायनी हिंसामां प्रवृत्ति करवावाणा छ प्रकारना एवनिकायइप सम्पूर्ण
दोठनी हिंसा करे छे. जे बात कहे छे-त्रसकायमां, त्रसकायनी हिंसा करवावाणा-शस्त्रोनो
जे प्रयोग करे छे, ते त्रसकायथी बूढा अनेक प्रकारना पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावर

कायसमारम्भकरणे भीतास्वस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैस्सकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते, इति विलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ते तु 'वयमनगाराः स्मः' इति सामिमानं प्रवदमानाः 'वयमेव त्रसकायरक्षणपरा महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्; विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः, शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद्

इन्हें देखो । अथवा इन्हें द्रव्यलिङ्गियों से अलग समझना चाहिए । ये त्रसकाय का आरंभ करते हुए डरते हैं, त्रस्त होते हैं, उद्विग्न होते हैं—तीन करण, तीन योग से त्रसकाय के आरंभ के त्यागी हैं, यह देखो ।

और कोई-कोई 'हम अनगार हैं' इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए तथा 'हम ही त्रसकाय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं' इस तरह प्रलाप करते हुए कई द्रव्यलिङ्गी हैं, उन्हें अनगारों से अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्त नहीं होते और न गृहस्थ के किसी काम का त्याग करते हैं । यह बात आगे बतलाते हैं—'यदिमम्' इत्यादि ।

द्रव्य और भाव के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है । द्रव्यशस्त्र के तीन

लाविनात्मा छे. आने लुब्धो. अथवा अने द्रव्यलिङ्गीअथी अलग समझवा लोभअ. ने त्रसकायने आरंभ करतां उरै छे, त्रस्त थाय छे, उद्विग्न थाय छे—त्रषु करषु, त्रषु योगथी त्रसकायना आरंभना त्यागी छे अे लुब्धो.

अने कोरि-कोरि 'अमे अणुगार छीअे' अे प्रभाळु अलिभाक्तपूर्वक कळेता थका तथा 'अमेअ त्रसकायना रक्षक अने महाव्रतधारी छीअे' अे प्रभाळु प्रलाप-अकवाह करनारा केटलाक द्रव्यलिङ्गी छे. तेने अणुगाराथी नूहा समझे.

अणुगार डोवातुं अलिभान करवावाणा अे द्रव्यलिङ्गी अणुगारना शुलोभां नरापषु प्रवृत्त नथी अने गृहस्थना कोरि पषु कामने तेअेअे त्याग कर्यो नथी. ते वात आगण पतावे छे—'यदिमम्' इत्यादि.

द्रव्य अने लावना लेहथी शस्त्र अे प्रकारनां छे. द्रव्यशस्त्रना त्रषु लेह छे. स्वकाय,

द्विविधम्, तत्र-द्रव्यशस्त्रं-स्वकाय-परकायो-भयकायमेदात् त्रिविधम् । तत्रस्वकाय-
शस्त्रेऽत्रसकायस्य त्रसकायः, यथा-मृगादीनां व्याधकुक्कुरादयः, मनुष्यादीनां मनुष्यादयः ।
परकायशस्त्रम्-पापाणजलायिलगुडखड्गतोमरलुरिकादयः । उभयकायशस्त्रम्-लगुडखड्गा-
दिधारिणो मनुष्यादयः । भावशस्त्रं तु त्रसकायं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् ।
त्रसकायसमारम्भेण, त्रसः=त्रसनशीलः कायः=शरीरं यस्य स त्रसकायस्तस्य
समारम्भः=पीडाकरः सावद्यव्यापारस्तेन, इमं=त्रसकायं विहिंसन्ति ।

त्रसकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु पञ्चजीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव
विहिंसन्तीत्याह-‘त्रसकायशस्त्रम्.’ इत्यादि । त्रसकायशस्त्रं=त्रसजीवोपमर्दकं शस्त्रं
पूर्वोक्तप्रकारं, समारम्भमाणाः=त्रसकायं प्रति प्रयुञ्जानाः अन्यान्=त्रसकायभिन्नान्

भेद हैं-स्वकाय, परकाय, और उभयकाय । त्रसकाय का त्रसकाय स्वकायशस्त्र हैं,
जैसे मृग आदि के लिए व्याध, कुत्ता आदि, मनुष्य के लिए मनुष्य आदि । परकायशस्त्र जैसे
पथर, जल, अग्नि, लकड़ी, तलवार, तोमर, शेरि आदि । उभयकायशस्त्र जैसे लाठी, तलवार
आदि कारण करने वाला मनुष्य आदि । त्रसकाय के प्रति मन, वचन, और कायका अपशस्त
व्यापार होना भावशस्त्र है । इन नाना प्रकार के शस्त्रों से त्रसकाय का समारंभ करके लोग
त्रसकाय को पीडा पहुँचाते है ।

त्रसकाय की हिंसा में प्रवृत्ति करने वाले छह प्रकार के जीवनिकायरूप सम्पूर्ण
लोक की हिंसा करते हैं, यह बात कहते हैं-त्रसकाय में, त्रसकाय की हिंसा करने वाले
शस्त्रों का जो प्रयोग करते हैं वे त्रसकाय के अतिरिक्त अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि

परकाय अने उभयकाय, त्रसकायनुं त्रसकाय ते स्वकायशस्त्रं छे, जेभ मृग आदिने
भाटे वाध-कुत्तरा आदि, मनुष्यने भाटे मनुष्य आदि. परकायशस्त्र, जेभके पथर,
जल, अग्नि, लाकडी, तरवार, लाहुं, छरी आदि. उभयकायशस्त्र, जेभके-लाकडी,
तलवार आदि धारण करवावाणा मनुष्य आदि. त्रसकायना प्रति मन, वचन अने
कायने अपशस्त व्यापार थवे ते लावशस्त्र छे. ते नाना प्रकारनां शस्त्रोथी त्रसकायने
समारंभ करीने लोक त्रसकायने पीडा पहुँचाउ छे.

त्रसकायनी हिंसाभां प्रवृत्ति करवावाणा छ प्रकारना जीवनिकायरूप सम्पूर्ण
लोकनी हिंसा करे छे. जे बात कहे छे-त्रसकायभां, त्रसकायनी हिंसा करवावाणा-शस्त्रोने
जे प्रयोग करे छे, ते त्रसकायथी बूझ अनेक प्रकारना पृथ्वीकाय आदि पांय स्थावर

अनेकयूपान् पृथिवीकायादीन् पञ्चस्थावरान्, प्राणान्=माग्निः, विहिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्दमूलपत्र-
पुष्पफलादि भोक्तुं तदाश्रितत्रसजीवसमारम्भेण पृथिव्यादिस्थावरसमारम्भेण च
त्रसजीवान्, पृथिव्यादीन् स्थावरांश्च ध्नन्ति घातयन्ति हिंसतोऽनुमोदयन्ति च ।
दण्डिनोऽपि—

“ वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगराः स्मः ” इत्यादि
प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति शास्त्रप्रतिषिद्धमपि पद्दजीवनिकाय-
समारम्भं कारयन्ति । प्रतिमामन्दिरादिनिर्माणार्थं गर्तकरणे, पापाणादीनां
खण्डशः करणे, तेषामूर्ध्वतो निपतने च मनुष्यादीन् तथा—बहुतरवृक्षच्छेदने

पाँच स्थावर प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में बहुत प्रकार के द्रव्यलिङ्गी हैं । उन में से शाक्य आदि कन्द, मूल,
पत्र, पुष्प, फल आदि भोगने के लिए उन पर रहे हुए त्रसजीवों का समारंभ करके त्रस और
स्थावर जीवों की घात करते हैं, कराते हैं और घात करने वाले की अनुमोदना करते
हैं । दण्डी भी—

‘ हम पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञा के आराधक अनगर हैं ’ ऐसा
कहने वाले झूठे साधु सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध पद्दजीवनिकाय का
समारंभ कराते हैं । प्रतिमा, मन्दिर, आदि का निर्माण करने के लिए—खड्डे खोदने में,
पत्थरों के टुकड़े करने में, उन्हें ऊपर से पटकने में मनुष्य आदि का घात कराता हैं ।
बहुत—से वृक्षों को छेदने में वृक्षाश्रित अण्डजों के पंचेन्द्रिय बच्चों का घात कराते हैं ।

प्राणीय्यानी पशु हिंसा करे छे.

संसारमां घण्टां प्रकारनां द्रव्यलिङ्गी छे. ज्येमांथी शाक्य आदि कन्द, मूल, पत्र,
पुष्प, फल आदि भोगववा भाटे—उपयोग करवा भाटे, तेना पर रहला त्रस जिवोना-
समारंभ करीने अने पृथ्वी आदि स्थावर जिवोना समारंभ करीने त्रस अने
स्थावर जिवोना घात करे छे. करावे छे, अने घात करवावाणाने अनुमोदन आपे
छे. इंडी पशु “ अमे पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञाना आराधक अणुगार छीजे.” ज्ये
प्रभाषे कडेवावाणा ज्युका साधु सावद्यना उपदेश आपे छे. अने शास्त्रमां निषिद्ध
पद्दजीवनिकायना समारंभ करावे छे.

प्रतिमा, मन्दिर वगैरेनु निर्माण करवा भाटे भाडा जोहवा, पत्थराना टुकडा कराववा,
तेने उपरथी पछाडवामां मनुष्य आदिना घात करावे छे. घण्टां वृक्षाने कापवाथी वृक्षाना

तदाश्रितान् अण्डजशावकादीन्, पञ्चेन्द्रियान् पिपीलिकापतङ्गादिवहुविधविकलेन्द्रि-
यांश्च, प्रतिमापूजनार्थं पुष्पवाटिकाकरणे पुष्पपत्रफलादिश्रोतनेऽपि च पद्मजीवनि-
कायान् घातयन्ति ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं कथयति—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिष्णा पवेइया, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-
माणण-पूयणाए जाइमरणभोयणाए दुःखपट्टिघायहेउं से सयमेव तसकायसत्थं समारं-
भइ, अण्णेहि वा तसकायसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा तसकायसत्थं समारंभमाणे
समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ५ ॥

कीड़ी पतंग आदि बहुत प्रकार के विकलेन्द्रिय जीवों का घात करते हैं । प्रतिमापूजन के
लिए फूलोंका वगीचा बनाने में, फूल, पत्ता और फल आदि तोड़ने में भी पद्मकाय के जीवों
की घात करते हैं ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—त्रसकाय के आरंभ के विषय में भगवान्ने उपदेश दिया है । इसी
जीवन के बन्दन, मानन, और पूजन के लिए, तथा जन्म-मरण से छूटने के लिए और
दुःख का विनाश करने के लिए वह स्वयं त्रसकाय के शत्रु का समारंभ करता है,
दूसरों द्वारा त्रसकाय का समारंभ करता है और त्रसकाय का समारंभ करने वाले अन्य
लोगों का अनुमोदन करता है । यह उसके अहित के लिए है, उसकी अबोधि के
लिए है ॥ सू० ५ ॥

आश्रये रहैला अंडज एवोना पञ्चेन्द्रिय भय्याओना घात करावे छे. कीडी
पतंग आदि घण्टाज प्रकारना विकलेन्द्रिय एवोना घात करावे छे. प्रतिमापूजन भाटे
कृत्ताना पगीया बनाववाभां कूल, पतां (पांढरा) अने इण आदि तोडवाभां पणु
पद्मकायना एवोना घात करे छे. ॥ ४ ॥

इवे सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि.

मूलार्थ—त्रसकायना आरंभना विषयभां लखवाने उपदेश आप्पे छे. आ
एवतना वंदन, मान, अने पूजनने भाटे तथा जन्म-मरण्णी छूटवा भाटे अने
दुःखना नाश करवा भाटे ते पोते त्रसकायना शत्रुना समारंभ करे छे, एवत पासे
त्रसकायना आरंभ करावे छे. अने त्रसकायना समारंभ करवावाणा अन्य लोकाने
अनुमोदन आप्पे छे, ते ओमना अहित भाटे छे, ओमनी अबोधि भाटे छे. ॥सू० ५॥

अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् पञ्चस्थावरान्, माणान्=माणिनः, विहिसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्दमूलपत्र-
पुष्पफलादि भोक्तुं तदाश्रितत्रसजीवसमारम्भेण पृथिव्यादिस्थावरसमारम्भेण च
त्रसजीवान्, पृथिव्यादीन् स्थावरांश्च घ्नन्ति घातयन्ति हिंसतोऽनुमोदयन्ति च ।
दण्डिनोऽपि—

“ययं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः” इत्यादि
प्रवृत्तमानाः साध्याभासाः सावधमुपदिशन्ति शास्त्रमतिपिद्ममपि पद्मजीवनिकाय-
समारम्भं कारयन्ति । प्रतिमामन्दिरादिनिर्माणार्थं गर्तकरणे, पापाणादीनां
खण्डनः करणे, तेषामूर्ध्वतो निपतने च मनुष्यादीन् तथा—बहुतरवृक्षच्छेदने

पाँच स्थावर प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में बहुत प्रकार के द्रव्यलिङ्गी हैं । उन में से शाक्य आदि कन्द, मूल,
पत्र, पुष्प, फल आदि भोगने के लिए उन पर रहे हुए त्रसजीवों का समारंभ करके त्रस और
स्थावर जीवों की घात करते हैं, कराते हैं और घात करने वाले की अनुमोदना करते
हैं । दण्डी भी—

‘हम पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञा के आराधक अनगार हैं’ ऐसा
कहने वाले झूठे साधु सावध का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध पद्मजीवनिकाय का
समारंभ कराते हैं । प्रतिमा, मन्दिर, आदि का निर्माण करने के लिए—खड्डे खोदने में,
पत्थरों के टुकड़े करने में, उन्हें ऊपर से पटकने में मनुष्य आदि का घात कराता है ।
बहुत-से वृक्षों को छेदने में वृक्षाश्रित अण्डजों के पंचेन्द्रिय बच्चों का घात कराते हैं ।

प्राणीयोंनी पशु हिंसा करे छे.

संसारमां धवुं प्रकारनां द्रव्यलिङ्गी छे. अमांधी शाक्य आदि कन्द, मूल, पत्र,
पुष्प, फल आदि भोगववा भाटे-उपयोग करवा भाटे, तेना पर रहेला त्रस जीवोना-
समारंभ करीने अने पृथ्वी आदि स्थावर जीवोना समारंभ करीने त्रस अने
स्थावर जीवोना घात करे छे. करावे छे, अने घात करवावाणाने अनुमोदन आपे
छे. इंडी पशु “अमे पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञाना आराधक अणुगार छीअे.” अे
प्रभावे कडेवावाणा अुडा साधु सावधना उपदेश आपे छे. अने शास्त्रमां निषिद्ध
पद्मजीवनिकायना समारंभ करावे छे.

प्रतिमा, मंदिर वगैरेनुं निर्माण करवा भाटे जाडा जोहवा, पत्थराना टुकडा करवाववा,
तेने उपरथी पछाडवाभां मनुष्य आदिना घात करावे छे. धवुंअं वृक्षोने कापवाथी वृक्षोना

तदाश्रितान् अण्डजशावकादीन्, पञ्चेन्द्रियान् पिपीलिकापतङ्गादिवहुविधविकलेन्द्रि-
यांश्च, प्रतिमापूजनार्थं पुष्पवाटिकाकरणे पुष्पपत्रफलादित्रोटनेऽपि च पृथ्वीवनि-
कायान् घातयन्ति ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं कथयति—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवत्या परिण्णा पवेइया, इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-
माण्ण—पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुःखपट्टियायहेउं से सयमेव तसकायसत्थं समारं-
भइ, अण्णेहि वा तसकायसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा तसकायसत्थं समारंभमाणे
समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ५ ॥

क्रीडी पतंग आदि बहुत प्रकार के विकलेन्द्रिय जीवों का घात कराते हैं । प्रतिमापूजन के
लिए फूलोंका बगीचा बनाने में, फल, पत्ता और फल आदि तोड़ने में भी पट्टकाय के जीवों
की घात कराते हैं ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—त्रसकाय के आरंभ के विषय में भगवान्ने उपदेश दिया है । इसी
जीवन के वन्दन, मानन, और पूजन के लिए, तथा जन्म—मरण से छूटने के लिए और
दुःख का विनाश करने के लिए वह स्वयं त्रसकाय के शत्रु का समारंभ करता है,
दूसरों द्वारा त्रसकाय का समारंभ करता है और त्रसकाय का समारंभ करने वाले अन्य
लोगों का अनुमोदन करता है । यह उसके अहित के लिए है, उसकी अंबोधि के
लिए है ॥ सू० ५ ॥

आश्रये रडेत्ता अंडज एवोना पञ्चेन्द्रिय णञ्चाञ्चोना घात करावे छे. क्रीडी
पतंग आदि बणाव प्रकारना विकलेन्द्रिय एवोना घात करावे छे. प्रतिमापूजन भाटे
कूलोना णगीया अनाववामां कूल, पतां (पांइडा) अने इण आदि तोडवाभां पथ
पट्टकायना एवोना घात करे छे. ॥ ४ ॥

इवे सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि.

मूलार्थ—त्रसकायना आरंभना विषयमां लगवाने उपदेश आये छे. आ
एवणना वंदन, मान, अने पूजने भाटे तथा जन्म—मरणथी छूटवा भाटे अने
दुःखना नाश करवा भाटे ते पोते त्रसकायना शत्रुना समारंभ करे छे, जीवन पासे
त्रसकायना आरंभ करावे छे. अने त्रसकायना समारंभ करवावाणा अन्य लोकेने
अनुमोदन आपे छे, ते अनेना अहित भाटे छे, अनेनी अंबोधि भाटे छे. ॥सू० पा॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दनमानन-
पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतुं, स स्वयमेव त्रसकायशस्त्रं समारभते,
अन्यैर्वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयान्
समनुजानाति, तत्तस्याहिताय, तत्तस्याबोधये ॥ सू० ५ ॥

टीका—

तत्र=त्रसकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=ज्ञ-प्रत्याख्यानभेदाद्
द्विविधा, खलु निश्चयेन प्रवेदितः=प्रतिबोधिता । कर्मरजःपरिहरणार्थं जीवने परिज्ञा-
वश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय त्रसकायमुपमर्दयतीत्याह—‘अस्य चैव
जीवितस्य’ इत्यादि । अस्यैव=अचिरस्थायिनः, जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्-
मांसचर्माद्यर्थम्, तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थम्, यथा-
व्याघ्रादिमृगयादौ, माननं=जनसत्कारस्तदर्थम्, यथा-राजः सकाशात् पदकादि

टीकार्थ—त्रसकाय के समारम्भ के संबंध में श्री महावीरने ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान-
परिज्ञा का उपदेश दिया है । अर्थात् भगवान्ने कहा है कि-कर्मरज को हटाने के लिए जीव
को परिज्ञा अवश्य स्वीकार करनी चाहिए ।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा करते हैं ? सो कहते हैं—इसी
वस्थायी जीवन के सुख के लिए, मांस और चमड़ी के लिए, तथा प्रशंसा के लिए, जैसे
व्याघ्र आदि का शिकार करने में, मानन के लिए, जैसे राजा से पदवी पाने के उद्देश्य से

टीकार्थ—त्रसकायना समारम्भना संभ्रमं श्री महावीरे ज्ञपरिज्ञा अने
प्रत्याख्यानपरिज्ञाने उपदेश आये छे. अर्थात् लगवाने कछुं छे के-कर्म रजने हर
करवा भाटे छे परिज्ञा अवश्य स्वीकारवी जेछे.

उपभोग द्वार—

लोक शुं प्रयोजनथी त्रसकायनी हिंसा करे छे ? ते कहे छे—आ अस्थिर छवनना
सुख भाटे, मांस अने आभडीना भाटे, तथा प्रशंसा भाटे. जेअ के-वाद्य आदिने
शिकार करवाभां. मान भाटे, जेअ के-राज पासेथी पदवी भोगवाना उद्देश्यथी छवता

लब्धुं सजीवसदृशव्याध्यादिमृतकलेवरनिर्माणादौ, तथा-पूजन=वस्त्ररत्नादिलाभस्त-
दर्थम्, यथा-देवीपूजार्थं वलिदानादौ,

तथा-जातिमरणमोचनार्थम् = जन्ममरणबन्धपरिहारार्थं=यथा मोक्षका-
मनया यागादौ, यथा-वातादिव्याधिप्रतीकाराय तैलादौ, सः-जीवनसुखाद्यर्थी
स्वयमेव त्रसकायशस्त्रं समारभते=व्यापारयति, अन्यैर्वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयति=
प्रयोजयति, अन्यान् वा त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति,
तत्=त्रसकायसमारम्भणम्, तस्य=त्रसकाय समारम्भं कुर्वतः, कारयितुः,
अनुमोदयितुश्च, अहिताय भवति । तथा तत्-तस्य अवोधये=सम्यक्त्वलाभाय
भवति ।

जीवित व्याघ्र आदि के समान व्याघ्र आदि का कलेवर बनाने में, और पूजक के लिए जैसे
वस्त्र रत्न आदि की प्राप्ति के लिए, तथा-देवीकी पूजा करने के लिए प्रयोजन से वलिदान
आदि करने में हिंसा करते हैं ।

तथा-जन्म-मरण-बंध आदि से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-मोक्ष की कामना से
यज्ञ आदि करने में, वात आदि के रोगों का प्रतीकार करने के लिए तैल आदि तैयार
करने में, जीवन के सुख का अर्थां स्वयं ही त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करता
है, दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ कराता है और त्रसकाय के शस्त्र का समारंभ करने
वालों का अनुमोदन करता है । यह त्रसकाय का आरंभ उस आरंभकर्ता के लिए अहितकर
और अवोधिजनक होता है ।

वाधना समान वाध आदिनुं कलेवर धनाववाभां अने पूजन भाटे जेमके-वस्त्र, रत्न
आदि प्राप्ति भाटे. तथा देवीनी पूज करवाना प्रयोजनथी अलिदान आदि करवाभां
हिंसा करे छे.

तथा-जन्म, मरण, बंध आदिथी छुटवा भाटे. जेमके-मोक्षनी कामनाथी यज्ञ
आदि करवाभां, वात आदि रोगनो प्रतिकार करवा भाटे (रोगनी दवा करवा भाटे)
जीवनना सुखना अर्थां स्वयं-पोतेज त्रसकायना शस्त्रनो समारंभ करे छे. धीवत
पासे त्रसकायना शस्त्रनो समारंभ करावे छे. अने त्रसकायना शस्त्रनो समारंभ
करवावाणाने अनुमोदन आये छे. ते त्रसकायनो आरंभ जे आरंभ करनारने भाटे
अहितकर्ता अने अवोधि उत्पन्न करनार छे.

वेदनाद्वारम्—

अत्र प्रसङ्गतस्वकायस्य वेदनोच्यते—वेदना यथासंभवं द्विविधा—कायिकी, मानसी च । श्लयमूच्यादिचेधाज्जाता, ज्वरातिसारकासादिव्याधिजनिता वा कायिकी, प्रियचियोगादकृता मानसी ॥ सू० ५ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे त्रसकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह—
'से तं.' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संबुच्छमाणे आयाणीयं समुद्राय सोच्चा भगवओ अनगाराणं वा अंतिए इहमेगेसि णाय भव्ह, एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एस खलु

वेदनाद्वार—

प्रसंग पाकर त्रसकाय की वेदना का निरूपण किया जाता है—यथासंभव वेदना दो प्रकार की है—कायिक और मानसिक । कंठ, सुई आदि चुभने से अथवा ज्वर, अतिसार, खांसी आदि रोगों से उत्पन्न होने वाली वेदना कायिक कहलाती हैं । प्रिय वस्तु के वियोग आदि कारणों से होने वाली वेदना मानसिक वेदना है ॥ सू० ५ ॥

जिसने तीर्थंकर आदि के समीप त्रसकायका स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार विचारता है—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् अथवा अनगारों के समीप सुनकर वह त्रसकाय का ज्ञात त्रसकाय को जानता हुआ संयम धारण करके इस प्रकार जानता है—यह त्रसकाय का आरंभ

वेदनाद्वार—

प्रसंग होवाथी त्रसकायनी वेदानुं निरूपणु करवाभां आवे छे—साधारणु रीते वेदना छे प्रकारनी छे—कायिक अने मानसिक कंठा, सोय आदि वागवाथी, अथवा ज्वर—ताप, अतिसार—आठा, भांसी आदि रोगोथी उत्पन्न थवावाणी वेदना कायिक छेवाथ छे. प्रिय वस्तुना वियोग वगेरेना कारखोथी यनारी वेदना मानसिक—वेदना छे. ॥सू०५॥

जेणे तीर्थंकर आदिना समीपभां त्रसकायनुं स्वरूप समझ लीधु छे, ते आ प्रभाणे विचारे छे—'से तं.' इत्यादि.

मूलार्थ—भगवान् अथवा अणुगारेना समीप सांभणीने ते त्रसकायना ताता त्रसकायने लणुता थका संयम धारणु करीने आ प्रभाणे लणु छे—आ त्रसकायने आरंभ

मारे, एष खलु णरए, इच्चत्यं गढिए लोए, जमिणं विरुवरूवेहिं सत्थेहिं
तसकायसमारंभेण, तसकायसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे
विहिंसइ ॥ सू० ६ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा भगवतोऽनगाराणां वा
अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः एष खलु मोहः, एष खलु
मारः, एष खलु नरकः। इत्यर्थं गृह्यो लोकः, यदिसं विरुपरूपैः शस्त्रैः
त्रसकायसमारम्भेण त्रसकायशस्त्रं समारंभमाणोऽन्यान् अनेकरूपान् प्राणान्
विहिनस्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके
श्रुत्वा, आदानीयम्=उपादेयं सर्वसाधयोगविरतिरूपं चारित्र्यं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य,
विरहति, स तत्=त्रसकायसमारम्भणं संबुध्यमानः=अहितावधिजनकत्वेन विज्ञाता
सन् एवं विभावयति—

ग्रन्थ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है। लोलुप लोग नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा
त्रसकायका आरंभ करके, त्रसकायका आरंभ करते हुए अनेक प्रकारके अन्य प्राणियोंका
(भी) विराधाता करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थंकर के मुख से अथवा उनके अनुयायी निर्ग्रन्थ
श्रमणों के मुख से सुनकर सर्व साध के त्यागरूप चारित्र्य को अंगीकार करके विचरता है,
वह त्रसकाय के समारंभ को अहितकर और अव्यधिजनक समझता है। वह इस प्रकार
सोचता है—

अन्य छे, आ मोह छे, आ मार छे; आ नरक छे, लोलुप लोक नाना प्रकारनो
शस्त्रोद्वारा त्रसकायनो आरंभ करीने, त्रसकायनो आरंभ करता थका अनेक प्रकारनो
अन्य प्राणीओनो पणु घात करे छे ॥सू० ६॥

टीकार्थ—जे पुरुष लगवान तीर्थंकरना सुभधी अथवा तेमना अनुयायी
निर्ग्रन्थ श्रंभणोना सुभधी सांलणीने सर्व साध त्यागरूप आदितने अंगीकार करीने
विचरे छे ते त्रसकायना समारंभने अहितकर अने अवाधिकर-अवाधि उत्पन्न
करनार समजे छे. ते आ प्रमाद्ये विचार करे छे—

इह=मनुष्यलोके, एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञातसम्यग्बोधवैराग्याणा-
मात्मार्थिनामेव ज्ञातं भवति । किं ज्ञातं भवती ?-त्याकाङ्क्षायामाह—' एस खलु
ग्रन्थः. ' इत्यादि ।

एष=त्रसकायसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे
कार्योपचारात्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा एषः=त्रसकायसमारम्भः मोहः=
विपर्यासः-अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष
एव नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थम्=एतदर्थं=ग्रन्थ-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि
पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=
भोगामिलापी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्थ-
मेव प्रवर्तते ।

इस मनुष्य लोक में श्रवण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग् ज्ञान और वैराग्य प्राप्त
कर लेने वाले ही यह ज्ञान लेते हैं कि-त्रसकाय का समारंभ निश्चय ही कर्मबंध है । यहाँ
कारण में कार्यका उपचार करके कर्मबंध के कारण को कर्मबंध कहा है । आगे भी इसी प्रकार
समझना चाहिए । यह त्रसकाय का समारंभ मोह अर्थात् अज्ञान है । वह मार अर्थात्
निगोद आदि में मृत्यु का कारण है । यह समारंभ नरक है अर्थात् दस प्रकार की नारकीय
यातना का स्थान है ।

ग्रंथ, मोह, मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी लोग
बार-बार इसी के इच्छुक होते हैं । अथवा भोगों की अभिलाषा करने वाले संसारी लोग इस
ग्रंथ, मोह, मार और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

આ મનુષ્ય લોકમાં નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરી-
લેવાવાળાજ એમ બાણી શકે છે કે-ત્રસકાયનો સમારંભ નિશ્ચયજ્ઞ ગ્રંથ-કર્મબંધ છે.
અહિં કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને કર્મબંધના કારણને કર્મબંધ કહ્યો છે. આગળ
પણ આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ.

આ ત્રસકાયનો સમારંભ મોહ અર્થાત્ અજ્ઞાન છે. આ માર અર્થાત્ નિગોદ આદિમાં
મૃત્યુનું કારણ છે. આ સમારંભ નરક છે. અર્થાત્ દસ પ્રકારની નારકીય યાતનાનું સ્થાન છે.

ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની
લોક વારંવાર તેની ઇચ્છાવાળા થાય છે. અથવા ભોગોની અભિલાષા કરવાવાળા
સંસારી લોક આ ગ્રંથ, મોહ, માર અને નરક માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે.

‘લોઠુઃ પુનઃ પુનઃગ્રન્થાદ્યર્થમેવ પ્રવર્તતે’ ઇતિ યદુક્તં, તત્ કથં જ્ઞાયતે ? ઇતિ જિજ્ઞાસાયામાહ—‘યદિમમ્.’ ઇત્યાદિ ।

યદ્=યસ્માદ્, ત્રિરૂપરૂપઃ=નાનાવિધૈઃ શસ્ત્રૈઃ=પૂર્વોક્તપ્રકારૈઃ ત્રસકાયસમારંભેણ=ત્રસકાયોપમર્દનરૂપસાત્ત્વવ્યાપારેણ, ઇમં=ત્રસકાયં વિહિનસ્તિ । તથા ત્રસકાય-શસ્ત્રં સમારંભમાણઃ=વ્યાપારયન્ અન્યાન્ પૃથ્વીકાયાદીન્ સ્થાવરાન્, પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ, વિહિનસ્તિ=ઉપમર્દયતિ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

યસ્મૈ પ્રયોજનાય ત્રસકાયો હન્યતે, તત્ પ્રયોજનં યદ્યપિ—‘ઇમસ્સ ચેવ જીવિયસ્સ.’ ઇત્યાદિનાઽભિહિતમ્, તથાપિ વિશિષ્ય તત્તત્પ્રયોજનં પુમઃ પ્રદર્શયિતુમાહ—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

લોગ વારંવાર ગ્રંથ આદિ કે લિષ્ટ હી પ્રવૃત્તિ કરતે હૈં, યહ વાત કૈસે માલ્લમ હુરૂં ? ઇસ કા સમાધાન કે તિર કહતે હૈં—‘યદિમમ્’ ઇત્યાદિ ।

ક્યોં કિ વે નાના પ્રકાર કે શસ્ત્રોં દ્વારા ત્રસકાય કા સમારંભ કરકે ત્રસકાય કી હિંસા કરતે હૈં ઓર ત્રસકાય કા સમારંભ કરતે હુષ્ટ પૃથ્વીકાય આદિ અન્ય સ્થાવર પ્રાણિયોં કા ભી વિરાધના કરતે હૈં ॥ સૂ૦ ૬ ॥

જિસ પ્રયોજન સે ત્રસકાય કી હિંસા કી જાતી હૈં વહ યોજન ‘ઇસ જીવન કે સુલ્લ કે લિષ્ટ’ ઇત્યાદિ કથન દ્વારા વતલાયા જા ચુકા હૈં, ફિર ભી વિશેષ રૂપ સે ડસ હિંસાકા પ્રયોજન વતલાને કે લિષ્ટ શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહતે હૈં—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

લોઠ વારંવાર ગ્રંથ આદિના માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે. એ વાત કેવી રીતે માલ્લમ પડી ? એનું સમાધાન કરવા માટે કહે છે:—‘યદિમમ્.’ ઇત્યાદિ.

કેમ કે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોદ્વારા ત્રસકાયનો સમારંભ કરીને ત્રસકાયની હિંસા કરે છે, અને ત્રસકાયનો સમારંભ કરતા થકા પૃથ્વીકાય આદિ અન્ય સ્થાવર પ્રાણીઓનો પણ ઘાત કરે છે. ॥ સૂ૦ ૬ ॥

જે પ્રયોજનથી ત્રસકાયની હિંસા કરવામાં આવે છે. તે પ્રયોજન “આ જીવનના સુખ માટે” ઇત્યાદિ વિવેચનદ્વારા બતાવ્યું છે. (બતાવી ચૂકયા છીએ.) ફરી પણ વિશેષરૂપથી એ હિંસાનું પ્રયોજન બતાવવાં માટે શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે:— ‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ.

इह=मनुष्यलोके, एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञातसम्यगवबोधवैराग्याणाः
मात्मार्यिनामेव ज्ञातं भवति । किं ज्ञातं भवती ?-त्याकाङ्क्षायामाह—' एत खलु
ग्रन्थः. ' इत्यादि ।

एष=त्रसकायसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे
कार्योपचारात्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा एषः=त्रसकायसमारम्भः मोहः=
विपर्यासः-अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष
एव नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थम्=एतदर्थं=ग्रन्थ-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि
पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशावर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=
भोगामिलापी, लोकः=संसारि जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्य-
मेव प्रवर्तते ।

इस मनुष्य लोक में श्रवण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग् ज्ञान और वैराग्य प्राप्त
कर लेने वाले ही यह जान लेते हैं कि-त्रसकाय का समारंभ निश्चय ही कर्मबंध है । यहाँ
कारण में कार्यका उपचार करके कर्मबंध के कारण को कर्मबंध कहा है । आगे भी इसी प्रकार
समझना चाहिए । यह त्रसकाय का समारंभ मोह अर्थात् अज्ञान है । वह मार अर्थात्
निगोद आदि में मृत्यु का कारण है । यह समारंभ नरक है अर्थात् दस प्रकार की नारकीय
यातना का स्थान है ।

ग्रंथ, मोह, मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी लोग
बार-बार इसी के इच्छुक होते हैं । अथवा भोगों की अभिलाषा करने वाले संसारी लोग इस
ग्रंथ, मोह, मार और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

આ મનુષ્ય લોકમાં નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરી-
લેવાવાળાજ એમ જાણી શકે છે કે-ત્રસકાયનો સમારંભ નિશ્ચયજ્ઞ ગ્રંથ-કર્મબંધ છે.
અહીં કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને કર્મબંધના કારણને કર્મબંધ કહ્યો છે. આગળ
પણ આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ.

આ ત્રસકાયનો સમારંભ મોહ અર્થાત્ અજ્ઞાન છે. આ માર અર્થાત્ નિગોદ આદિમાં
મૃત્યુનું કારણ છે. આ સમારંભ નરક છે. અર્થાત્ દસ પ્રકારની નારકીય યાતનાનું સ્થાન છે.

ગ્રંથ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની
લોક વારંવાર તેની ઇચ્છાવાળા થાય છે. અથવા ભોગોની અભિલાષા કરવાવાળા
સંસારી લોક આ ગ્રંથ, મોહ, માર અને નરક માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે.

टीका—

यदर्थं त्रसजीवा हन्यन्ते, तद् ब्रवीमि-अप्येके=केचिच्च, अत्रापि-
शब्दः वक्ष्यमाणापेक्षया समुच्चयार्थः, अर्चयि-अर्चयते=पूज्यते-इत्यर्चा=शरीरं,
तदर्थं घ्नन्ति=हिंसन्ति, यथा मुलक्षणं पुरुषं व्यापाद्य तच्छरीरेण विद्यामन्त्रं,
साधयन्ति, यद्वा-स्वर्णपुरुषनिर्माणार्थं द्वात्रिंशलक्षणं पुरुषं प्रतप्ततैले निक्षिप्य
निघ्नन्ति । तथा अप्येके=केचन अजिनाय=चर्मार्थं मृगव्याघ्रदीन् घ्नन्ति ।
तथा अप्येके=केचन मांसाय छागादीन् घ्नन्ति । अप्येके=केचन शोणिताय=
त्रिशूललेखकरणादां शोणितं ग्रहीतुं घ्नन्ति । एवं हृदयाय=हृदयं गृहीत्वा
साधका मध्नन्ति, तदर्थं घ्नन्ति । पिताय मयूरादीन्, वसाय व्याघ्रादीन्,
पिच्छाय मयूरादीन्, पुच्छाय रोझादीन्, बालाय चमर्यादीन्, गृङ्गाय मृगादीन्,

टीकार्थ—हे जम्बू जिस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा होती है, वह करता हूँ ।
कोई-कोई अर्चा अर्थात् शरीर के लिए विग्राहना करते हैं, जैसे किसी पुरुष को अच्छे
लक्षण वाला समझकर उसे मार डालते हैं, और उसके शरीर से विद्या तथा मंत्र का
साधन करते हैं । अथवा स्वर्णपुरुष के निर्माण के लिए बत्तीस लक्षण वाले पुरुष को
तपे हुए तेल में डालकर मारते हैं । कोई चर्म के लिए मृग और बाघ आदि का घात
करते हैं । कोई मांस के लिए बकरा आदि को मारते हैं । कोई त्रिशूल का चिह्न बनाने
आदि के लिए तथा रक्त पीने के उद्देश्य से घात करते हैं । इसी प्रकार हृदय के लिए घात
करते हैं—घातक लोग हृदय लेकर मथते हैं । इसी तरह पित्तके लिए मयूरों को चर्बक
लिए बाघ आदि को, पंखों के लिए मयूरों को, पंखके लिए रोझ आदि को, बाल के

टीकार्थ—जे प्रयोजनथी त्रसल्लोवानी हिंसा थाय छे; ते कहूँ छुं. कोर्छ-कोर्छ
अर्था अर्थात् शरीरना भाटे घात करे छे. जेभके-कोर्छ पुइपने सारा लक्षणवाणे समलने
तेम भारी नांणे छे, अने तेना शरीरथी विद्या तथा मंत्रनी साधना करे छे अथवा-
स्वर्ण पुइपना निर्माण भाटे अत्रीस लक्षणवाणा पुइपने तपावेला तेलमां नांभीने
भाटे छे. कोर्छ आभडा भाटे मृग अने बाघ वगेरेने घात करे छे. कोर्छ मांस भाटे
भकरा वगेरेने भाटे छे. कोर्छ त्रिशूलतुं बिक्र पनाववा वगेरे भाटे बोही प्राप्त करवाना
उद्देश्यथी घात करे छे. अे प्रभाणे कोर्छ हृदय भाटे घात करे छे-घातकी लोक हृदय लधने
मथे छे. अे प्रभाणे पित्त भाटे मारने, अरणी भाटे बाघ आदिने बाण भाटे
अमरी-गाय आदिने, शींग भाटे मृग आदिने भाटे छे. विषाणु-शब्द जे के हाथी

मूलम्—

से वेमि-अप्येगे अच्छाए हणंति, अप्येगे अजिघाए वहंति, अप्येगे मंसाए वहंति, अप्येगे सोणियाए वहंति, एवं ह्रिययाए, पित्ताए, वसाए, पिच्छाए, पुच्छाए, वालाए, सिंगाए, विसाणाए, दंताए, दाढाए, णहाए, ष्दारुणीए, अट्टीय, अट्टिमिजाए, अट्टाए, अणट्टाए, अप्येगे 'हिसिसु मे' ति वा वहंति, अप्येगे 'हिसंति मे' ति वा वहंति, अप्येगे 'हिसिस्संति मे' ति वा वहंति ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तद् व्रवीमि-अप्येके अर्चायै घ्नन्ति, अप्येके अजिनाय घ्नन्ति, अप्येके मांसाय घ्नन्ति, अप्येके शोणिताय घ्नन्ति एवं हृदयाय, पित्ताय, वसायै, पिच्छाय, पुच्छाय वालाय, शृङ्गाय, विपाणाय, दन्ताय, दंष्ट्रायै, नखाय, स्नायवे, अस्थे, अस्थिमज्जायै, अर्थाय, अनर्थाय, अप्येके 'अवधीपुरस्मा'-निति वा घ्नन्ति, अप्येके 'हिसन्त्यस्मा' निति वा घ्नन्ति, अप्येके 'हनिप्यन्त्यस्मा'-निति वा घ्नन्ति ॥ सू० ७ ॥

मूलार्थ—मैं वह (प्रयोजन) कहता हूँ—कोई अर्चा शरीर के लिए, त्रसकाय का विराधना करते हैं, कोई चर्म-चमडे के लिए घात करते हैं, कोई मांस के लिए घात करते हैं, कोई रक्त के लिए घात करते हैं, कोई हृदय के लिए, पित के लिए, चर्वा के लिए पंख के लिए, पूँछ के लिए, बाल के लिए, सींग के लिए, विपाण (सुअर का दांत) के लिए, दांत (हाथीदांत) के लिए, दाढों के लिए, नख के लिए, स्नायु के लिए, हड्डी के लिए, मज्जा के लिए, अर्थ के लिए, अनर्थ के लिए—(निरर्थक) कोई 'हमें मारा था' इस भावना से, कोई 'हमें मारता है' इस भावना से, और कोई 'हमें मारेगा' इस भावना से त्रसकाय का घात करते हैं ॥ सू० ७ ॥

मूलार्थ—हुं कहुं छुः—कोई अर्चा (शरीर) भाटे त्रसकायनो घात करे छे. कोई आंभडी भाटे घात करे छे. कोई मांस भाटे घात करे छे. कोई रक्त-लोहडी भाटे घात करे छे. कोई हृदय भाटे, पित्त भाटे, अरणी भाटे, पांजो भाटे, पूँछडा भाटे, नाण भाटे, शींगडा भाटे, विपाण (सुअरना दांत) भाटे, हाथी दांत-भाटे, दाढो भाटे, नख भाटे, स्नायु भाटे, डाडकां भाटे, मज्जा भाटे, अर्थ भाटे, अनर्थ—(निरर्थक). कोई 'अभने भायां छता' अे लापनाथी, कोई 'अभने मारे छे' अे लापनाथी, अने कोई 'अभने मारथे' आ लापनाथी त्रसकायनो घात करे छे. ॥ सू० ७ ॥

टीका—

यदर्थं त्रसजीवा हन्यन्ते, तद् द्रवीमि-अप्येके=केचिच्च, अत्रापि-
शब्दः वक्ष्यमाणापेक्षया समुच्चयार्थः, अर्चयि-अर्चयते=पूज्यते-इत्यर्चा=शरीरं,
तदर्थं घ्नन्ति=द्विसन्ति, यथा सुलक्षणं पुरुषं व्यापाद्य तच्छरीरेण विद्यामन्त्रं,
साधयन्ति, यद्वा-स्वर्णपुरुषनिर्माणार्थं द्वात्रिंशलक्षणं पुरुषं प्रतप्ततेले निक्षिप्य
निघ्नन्ति । तथा अप्येके=केचन अजिनाय=चर्मार्थं मृगव्याघ्रदीन् घ्नन्ति ।
तथा अप्येके=केचन मांसाय छागादीन् घ्नन्ति । अप्येके=केचन शोणिताय=
त्रिशूलालेखकरणादौ शोणितं ग्रहीतुं घ्नन्ति । एवं हृदयाय=हृदयं गृहीत्वा
साधका मध्नन्ति, तदर्थं घ्नन्ति । पित्ताय मयूरादीन्, वसाय व्याघ्रादीन्,
पिच्छाय मयूरादीन्, पुच्छाय रोझादीन्, वालाय चमर्यादीन्, शृङ्गाय मृगादीन्,

टीकार्थ—हे जन्तु जिस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा होती है, वह कहता हूँ ।
कोई-कोई अर्चा अर्थात् शरीर के लिए विराधाना करते हैं, जैसे किसी पुरुष को अच्छे
लक्षण वाला समझकर उसे मार डालते हैं, और उसके शरीर से विद्या तथा मंत्र का
साधन करते हैं । अथवा स्वर्णपुरुष के निर्माण के लिए बत्तीस लक्षण वाले पुरुष को
तपे हुए तेल में डालकर मारते हैं । कोई चर्म के लिए मृग और वाघ आदि का घात
करते हैं । कोई मांस के लिए बकरा आदि को मारते हैं । कोई त्रिशूल का चिह्न बनाने
आदि के लिए तथा रक्त पीने के उद्देश्य से घात करते हैं । इसी प्रकार हृदय के लिए घात
करते हैं-घातक लोग हृदय लेकर मथते हैं । इसी तरह पित्तके लिए मयूरों को चर्बक
लिए वाघ आदि को, पंखों के लिए मयूरों को, पूँछके लिए रोझ आदि को, बाल के

टीकार्थ—जे प्रयोजनथी त्रसजोवानी हिंसा थाय छे; ते कहुं छुं. कोर्ध-कोर्ध
अथी अर्थात् शरीरना भाटे घात करे छे. जेमके-कोर्ध पुरुषने सारा लक्षणवाणो समथने
तेम भारी नांछे छे, अने तेना शरीरथी विद्या तथा मंत्रनी साधना करे छे अथवा-
स्वर्ण पुरुषना निर्माण भाटे अत्रिस लक्षणवाणा पुरुषने तपावेला तेलभां नांछीने
भारे छे. कोर्ध व्याघ्र भाटे मृग अने वाघ वगेरेने घात करे छे. कोर्ध मांस भाटे
बकरा वगेरेने भारे छे. कोर्ध त्रिशूलतुं चिह्न पनाववा वगेरे भाटे बोही प्राप्त करवाना
उद्देश्यथी घात करे छे. जे प्रमाणे कोर्ध हृदय भाटे घात करे छे-घातकी बोह हृदय लधने
भधे छे. जे प्रमाणे पित्त भाटे मारने, अरणी भाटे वाघ आदिने वाण भाटे
अमरी-गाय आदिने, शींग भाटे मृग आदिने भारे छे. विषालु-शब्द जे के हाथी

વિપાણાય, વિપાણશબ્દો ગજદન્તે રુઢસ્તયાપીઠ સુકરદન્તો ગ્રાહાઃ, તદર્થ સુકરમ્, દન્તાય દસ્ત્યાદીન, દંટૂર્યે વરાહાદીન્, નસ્વાય વ્યાઘ્રાદીન, સ્નાયવે ગવાટીન્, અસ્થને શઙ્ગાદીન, અસ્થિમજ્જાયૈ-અસ્થિમજ્જા=અસ્થિગતરસઃ, તદર્થ, મહીપાદીન્, ઘનન્તિ । ઇત્યમ્-અર્થાય=પ્રયોજનવશાત્ કેચિદ્ ઘનન્તિ । તથા- અનર્થાય=વિનાઽપિ પ્રયોજનં કેચિદ્ ઘનન્તિ । અપ્યેકે=કેચિચ્ચ, “ઇમે વ્યાઘ્રસર્પ-સુકરાદયઃ શત્રવો વા અસ્માન અપીહયન્, અસ્મદીયાન્ વાઽવધિપુઃ” ઈતિ દ્વેષવાસનયા ઘનન્તિ । અપ્યેકે=કેચિચ્ચ, “ઇમે વ્યાઘ્રાદયઃ શત્રવો વા વર્તમાનકાલેઽસ્માન્, અસ્મદીયાન્ વા હિંસન્તિ.” ઈતિ મત્વા ઘનન્તિ ।

લિપ્ ચમરી ગાય આદિ કો, સીંગ કે લિપ્ મૃગ આદિ કો મારતે હૈં । વિપાણ શબ્દ યદપિ હાથીદાંત કે અર્થ મેં રુઢ હૈ તથાપિ યહાં ‘સુઞ્ચર કા દાંત’ અર્થ ઠેના યાદિપ્ । સુઞ્ચર કે દાંત કે લિપ્ સુઞ્ચર કા ઘાત કિયા જાતા હૈ । દાંત કે લિપ્ હાથી આદિ કો, દાદોં કે લિપ્ શૂકર વગૈરહ કો, નસ્વ કે લિપ્ વાઘ આદિ કો, સ્નાયુ કે લિપ્ ગાય આદિ કો, હડ્ડહી કે લિપ્ શંસ્ર આદિ કો, અસ્થિમજ્જા અર્થાત્ હૃદિયોં મેં રહને વાઠે એક પ્રકાર કે રસ કે લિપ્ મેંસા વગૈરહ કા ઘાત કરતે હૈં । ઇસ પ્રકાર કોઈ-કોઈ પ્રયોજન કે લિપ્ ત્રસજીવોં કો હિંસા કરતે હૈં ઓર કોઈ-કોઈ વિના પ્રયોજન હી હિંસા કરતે હૈં । કોઈ-કોઈ ‘ઇસ વાઘ, સર્પ ઓર શૂકરને તથા શત્રુઓને હમેં પીડા પહુંચાઈ હૈ, અથવા હમારે આત્મીયજન કા વધ કિયા હૈ’ ઇસ પ્રકાર કો દ્વેષ-વાસના સે ઇનકા ઘાત કરતે હૈં । કોઈ લોગ યહ સોચકર કિ-‘એ વ્યાઘ્ર આદિ અથવા શત્રુ વર્તમાન કાલમેં હમેં યા હમારે લોગોંકો મારતે હૈં’ ઁનકા ઘાત કરતે હૈં । કોઈ લોગ યહ વિચાર કરકે કિ-‘યહ

દાંતના અર્થમાં ૩૬ છે. તેા પણ અહિં ‘સૂચરનાં દાંત’ એવો અર્થ લેવો જોઈએ. સૂચરના દાંત માટે સૂચરનો ઘાત કરવામાં આવે છે. દાંત માટે હાથી આદિનો, દાદોને માટે શૂકર-ભૂંડ વગેરેનો, નખ વગેરે માટે વાઘ આદિનો, સ્નાયુને માટે ગાય આદિનો, હાડકાં વગેરે માટે શંખ આદિનો, અસ્થિમજ્જા અર્થાત્, હાડકાંમાં રહેનારા એક પ્રકાર રસ માટે વેંસા-પાડા વગેરેનો ઘાત કરે છે, આ પ્રમાણે કોઈ-કોઈ પ્રયોજન માટે ત્રસ જીવોની હિંસા કરે છે. અને કોઈ-કોઈ પ્રયોજન વિનાજ હિંસા કરે છે. કોઈ-કોઈ ‘આ વાઘ સર્પ અને શૂકર-ભૂંડે તથા શત્રુઓએ અમને પીડા પહોંચાડી હતી. અથવા અમારા આત્મીય-જનનો (તેણે) વધ કર્યો હતો.’ આ પ્રકારે દ્વેષ-વાસનાથી તેનો ઘાત કરે છે. કોઈ માણસ એવો વિચાર કરીને કે-‘આ વાઘ આદિ, અથવા શત્રુ વર્તમાન કાલમાં મને અથવા

અપ્યેકે=કેચિચ્ચ, 'અસ્માન્ અસ્મદીયાન્ વા ઇમે વ્યાગ્રાદયઃ શત્રવો વા હનિપ્યન્તિ'
 इति हेतोस्तसकायान् घ्नन्ति ॥ सू० ७ ॥

एवं त्रसकायसमारम्भं विदित्वा मृणित्वलाभाय तत्समारम्भः सर्वथा परिहर्तव्यः,
 इत्याशयेनोद्देशकार्यमुपसंहरन्नाह—“ एतथ सत्यं.” इत्यादि ।

मूलम्—

एतथ सत्यं समारंभमाणस्त इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति । एतथ
 सत्यं असमारंभमाणस्त इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी
 णेव सयं तसकायसत्यं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं तसकायसत्यं समारंभावेज्जा,
 णेवऽण्णे तसकायसत्यं समारंभंते समणुनाणेज्जा । जस्सेते तसकायसमा-

व्याघ्र आदि अथवा यह शत्रु हमें या हमारो को मारेंगे' उन्हें मार डालते हैं । इस प्रकार
 लोग त्रसकाय की हिंसा करते हैं ॥ सू० ७ ॥

इस प्रकार त्रसकाय के समारंभ को जानकर साधुता प्राप्त करने के लिए त्रसकाय का
 आरंभ सर्वथा त्याग देना चाहिए । इस आशय से इस उद्देश का उपसंहार करते हुए
 कहते हैं—'एतथ सत्यं'. इत्यादि ।

मूलार्थ—त्रसकाय में शत्रु का समारंभ करने वाले को यह आरंभ अपरिज्ञात
 होते है । त्रसकाय में शत्रु का समारंभ नहीं करने वाले को यह आरंभ परिज्ञात होते हैं ।
 मेधावी पुरुष उन्हें जानकर स्वयं त्रसकाय में शत्रु का समारंभ न करे, दूसरो से त्रसकाय
 के शत्रु का समारंभ न करावे, और त्रसकाय में शत्रु का समारंभ करने वाले का अनु-

અમારાને મારે છે' તેથી તેનો ઘાત કરે છે. કોઈ લોક 'આ વાઘ આદિ અથવા
 આ શત્રુ મને અથવા અમારાને મારશે.' એવું વિચારીને તેને મારી નાંખે છે. આ
 પ્રમાણે લોક ત્રસકાયની હિંસા કરે છે. ॥ સૂ० ૭ ॥

આ પ્રમાણે ત્રસકાયના સમારંભને જાણીને સાધુતા પ્રાપ્ત કરવા માટે
 ત્રસકાયનો આરંભ સર્વથા ત્યાગી દેવો જોઈએ—ત્યજ્ય દેવો જોઈએ. એ આશયથી
 આ ઉદ્દેશકને ઉપસંહાર કરતા થકા કહે છે—' एतथ सत्यं'. इत्यादि.

मूलार्थ—त्रसकायने विषे शत्रुनेो समारंभ करवावाणाने आ आरंभ अपरिज्ञात
 होय છે. ત્રસકાયને વિષે શત્રુનેો સમારંભ નહિં કરવાવાણાને આ આરંભ પરિજ્ઞાત છે.
 (જાણવામાં છે). બુદ્ધિમાન પુરૂષ તેને જાણીને પોતે ત્રસકાયમાં શત્રુનેો સમારંભ કરે નહિ
 ખીલ પાસે ત્રસકાયના શત્રુનેો સમારંભ કરાવે નહિં અને ત્રસકાયમાં શત્રુનેો સમારંભ

रंभा परिष्णाया भवन्ति, से ह्य मुणी परिष्णाय कम्पे-त्ति वेमि ॥ सू० ८ ॥
छट्ठो उदेसो समत्तो ॥ ६ ॥

छाया—अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, तं परिज्ञाय मेधात्री नैव स्वयं त्रसकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैस्त्रसकायशस्त्रं समारम्भयेत्, त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते त्रसकायशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ८ ॥

॥ पष्ठोद्देशः समाप्तः ॥ ६ ॥

टीका—अत्र=अस्मिन् त्रसकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणस्य=व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरणत्रियोगैः आरम्भाः=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपाः सावधव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेवत्रसकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुक्तज्ञानस्य, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञाया बन्धकारणत्वेन विज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञाया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

मोदन न करे । जो त्रसकाय के समारंभो का ज्ञाता है वही मुनि है, परिज्ञातकर्मा है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—त्रसकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार करने वाले को 'तीन करण और तीन योग से होने वाले सावध व्यापार कर्मबंध के कारण हैं' ऐसा ज्ञात नहीं होता ।

और त्रसकाय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार न करने वाला पूर्वोक्त सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण समझता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

हरवावाणाने अनुभोदन आये नडि, जे त्रसकायना समारंभने लखे छे. तेन मुनि छे, परिज्ञातकर्मा छे. ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—त्रसकायना विषयमां पूर्वोक्त (आगण कडेलां) शस्त्रेना व्यापार करवावाणा ' त्रसु करसु अने त्रसु योगथी थवावाणो सावध व्यापार कर्मबंधनुं करसु छे. ' अने प्रभाणु लखुता नथी. अने त्रसकायमां पूर्वोक्त (आगण कडेलां) शस्त्रेना व्यापार नडिं करवावाणा पूर्वोक्त (आगण कडेला) सावध व्यापारिने ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबंधनुं करसु समजे छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेना त्याग करी दे छे.

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति तं प्रकारं दर्शयति- 'तत् परिज्ञाये'-त्यादि । तद्=त्रसकायारम्भणम्, परिज्ञाय=कर्मबन्धस्य कारणं भवतीत्यवबुध्य, मेधात्री=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं त्रसकायशस्त्रं समारमेत=व्यापारयेत्, अन्यैर्वा नैव त्रसकायशस्त्रं समारम्भयेत्, त्रसकायशस्त्रं समारभामाणान् अन्यान् वा न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् ।

यस्यैते त्रसकायसमारम्भाः=त्रसकायोपमर्दकसावधव्यापाराः, परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावधव्यापारः, मुनिर्भवति । 'इति ब्रवीमि' इति । अस्य व्याख्यानं पूर्ववत् ॥ सू० ८ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने पठ उद्देशकः संपूर्णः ॥

ज्ञपरिज्ञापूर्वक होने वाली प्रत्याख्यानपरिज्ञा का स्वरूप शास्त्रकार दिखलाते हैं त्रसकाय के आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर बुद्धिमान् अर्थात् हेय-उपादेय का विवेकी पुरुष स्वयं त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग न करे, दूसरों से त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग न करावे और त्रसकाय के शस्त्र का उपयोग करनेवाले का अनुमोदन न करे ।

जिसने त्रसकाय का घात करने वाले सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से बंध का कारण समझ लिया है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है वही तीन करण तीन योग से सर्व सावध व्यापारों का ज्ञाता पुरुष मुनि होता है । 'इति ब्रवीमि' पदकी व्याख्या पहले के समान समझनी चाहिए ॥ सू० ८ ॥

श्री आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन का छठा उद्देश समाप्त १-६ ॥

ज्ञपरिज्ञापूर्वक धवावाणी प्रत्याख्यानपरिज्ञातं स्वरूप शास्त्रकार अतावे छे- त्रसकायना आरंभने कर्मबंधतुं शरषु ज्ञाणीने बुद्धिमान् अर्थात् हेय-उपादेयने विवेकी पुरुष पीते त्रसकायना शस्त्रने उपयोग करे नहि, भीज पासे त्रसकायना शस्त्रने उपयोग करावे नहि, अने त्रसकायना शस्त्रने उपयोग करवावाणाने अनुमोदन आपे नहि.

जेहे त्रसकायने घात करवावाणा सावध व्यापारने ज्ञपरिज्ञाथी बंधतुं शरषु समल वीधुं छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्यल वीधुं छे. ते त्रषु शरषु, त्रषु योगथी सर्वसावधव्यापारने ज्ञाता-ज्ञाणकार पुरुष मुनि डोय छे. 'इति ब्रवीमि' पदनी व्याख्या पडेवां प्रभाहे समल लेवी जेधं छे. ॥सू० ८॥

॥ श्री आचाराङ्गसूत्रना प्रथम अध्ययनने छठो उद्देश समाप्त ॥ १ । ६ ॥

। અથ સત્તમોદ્દેશકઃ ।

વાયુકાયસ્ય ચાક્ષુષમત્યક્ષચિપયત્વાભાવાત્ તસ્ય સચિત્ત્વે સ્વતઃ શ્રદ્ધા નોત્પદ્યતે, કિન્તુ પૃથિવ્યાયેકેન્દ્રિયાણાં, દ્વીન્દ્રિયાદેસ્રસકાયસ્ય ચ સ્વરૂપં વિદિત્વા જાતશ્રદ્ધો વાયુકાયં સુતરાં વિજાનાતીત્યાશયેન તદ્વિપયકશ્રમઃ સત્તમોઽયમુદ્દેશકઃ પ્રારમ્બ્યતે ।

યયા વાયુકાયોપમર્દનનિવૃત્ત્યા મુનિત્વં પ્રાપ્યતે, તં પ્રકારં પ્રદર્શયિતુમાહ—
'પહ્ એજસ્સ.' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

પહ્ એજસ્સ દુગુંલગાણ આયંકદંસો અહિયં-તિ નચ્ચા । જે અજ્ઞાત્યં

સાતર્થો ઉદ્દેશ-

વાયુકાય કે જીવ ચક્ષુ કે ગોચર નહીં હોતે, અત એવ વાયુ કી સચિત્તા મેં સ્વતઃ શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન નહીં હોતી । કિન્તુ પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિયોં કા, તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોં કા સ્વરૂપ સમજ્ઞ લેને સે જિતે શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન હોગર્દૈ હૈ વહ વાયુકાય કો સ્વર્યં હી જ્ઞાન લેતા હૈ । ઇસ આશય સે વાયુકાયસંબંધી યદ્ અંતિમ સાતર્થો ઉદ્દેશ આરંભ ક્રિયા જાતા હૈ ।

વાયુકાય કી હિંસા ત્યાગને સે હી સાધુપન પ્રાપ્ત હોતા હૈ, યદ્ વાત આગે પ્રદર્શિત કરતે હૈં—'પહ્ એજસ્સ.' ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—દુઃસદર્શોં પુરુષ (વાયુકાય કે આરંભ કો) અહિતકર જ્ઞાનકરકે વાયુકાય કે આરંભ કો ત્યાગને મેં સમર્થ હોતા હૈ । જો અધ્યાત્મ કો જ્ઞાનતા હૈ વહ

સાતર્થો ઉદ્દેશ-

વાયુકાયના એવ નેત્રથી જોવામાં આવતા નથી, એ કારણથી વાયુની સચિત્તામાં સ્વતઃ શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થતી નથી. પરન્તુ પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિયોના તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોના સ્વરૂપને સમજી લેવાથી જોને શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ ગઈ છે, તે વાયુકાયને પોતેજ જાણી લે છે. એ આશયથી વાયુકાયસંબંધી આ અંતિમ-હેત્વા સાતર્થો ઉદ્દેશનો આરંભ કરવામાં આવે છે.

વાયુકાયની હિંસા ત્યાગવાથી સાધુતા પ્રાપ્ત થાય છે. એ વાત આગળ બતાવે છે—'પહ્ એજસ્સ.' ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—દુઃઅદર્શોં પુરુષ (વાયુકાયના આરંભને) અહિતકર જાણીને વાયુકાયના આરંભને ત્યજી દેવામાં સમર્થ હોય છે, જે અધ્યાત્મને જાણે છે. તે બહારને જાણે છે,

પશ્યતીત્યાતઙ્કદર્શી ભવતિ, સ હિતાહિતવિવેકકૃશલત્વાદ્ અહિતમ્=અશુભકરં વાયુ-
કાયસમારમ્ભગમસ્તીતિ જ્ઞાત્વા, એજસ્ય=એજતીત્યેજઃ કમ્પનશીલત્વાદ્ વાયુઃ,
તસ્ય, જુગુપ્સાયાં=નિન્દ્યાયાં, સેવનપરિવર્જને સમારમ્મનિષ્ઠૌ, ઇતિ યાવત્ ,

મશુઃ=સમર્થો ભવતિ । જુગુપ્સા, સંયમના, અકરણા, વર્જના, વ્યાવર્તના,
નિવૃત્તિરિત્યેકાર્થાઃ ।

અયમાશયઃ—વાયુકાયસમારમ્ભકરણે શારીરં માનસં ચ સર્વમેવ દુઃખં મયિ
સમાપદ્યેત, તસ્માદિદમાતઙ્કજનકત્વાદહિતમિતિ વિજ્ઞાતા, તત્સેવનલક્ષણસમારમ્ભ-
પરિહરણે સમર્થો ભવતીતિ ।

યઃ અધ્યાત્મમ્=આત્મનીતિ અધ્યાત્મમ્ સ્વાત્મગતં સુખં દુઃખં વૈત્યર્થઃ,

હિત-અહિત કે વિવેક મેં કુશલ હોને સે વાયુકાય સે આરમ્ભ કો અહિતકર સમજકર વાયુ
કે આરમ્ભ કા ત્યાગ કરને મેં સમર્થ હોતા હૈ । મૂલ મેં આયે હુપ જુગુપ્સા (દુગુંઝા) શબ્દ
કે કઈ અર્થ હોતે હૈ । જૈસે-સંયમન, અકરણ (ન કરના), વર્જન (ત્યાગના), વ્યાવર્તન
(હટના) ઓર નિવૃત્તિ (ત્યાગ) ।

આશય યહ હૈ—'વાયુકાય કા આરમ્ભ કરને સે મુક્તે શારીરિક ઓર માનસિક સમી
દુઃખ પ્રાપ્ત હોગે અતઃ યહ આરમ્ભ અતંકજનક હોને કે કારણ અહિતકર હૈ' । એસા જાનને
વાલા ઉસકે સેવનરૂપ આરમ્ભ કે ત્યાગ મેં સમર્થ હોતા હૈ ।

જો અધ્યાત્મ કો અર્થાત્ અપને આત્મા મેં સ્થિત સુખ-દુઃખ કો જાનતા હૈ

થનાઈ' દુઃખ આંતક કહેવાય છે, અને એને જોવાવાળા આતંકદર્શી છે. તે હિત-
અહિતના વિવેકમાં કુશળ હોવાના કારણથી વાયુકાયના આરંભને અહિતકર સમજીને
વાયુના આરંભને ત્યાગ કરવામાં સમર્થ હોય છે. મૂલમાં આવેલો 'દુગુંઝણા-જુગુપ્સા'
શબ્દના કેટલાય અર્થ થાય છે. જેમકે:-સંયમન, અકરણ-(નહિ કરવું) વર્જન,
(ત્યાગવું) વ્યાવર્તન, (હટવું) અને નિવૃત્તિ (ત્યાગ).

આશય એ છે કે—'વાયુકાયનો આરંભ કરવાથી અને શારીરિક અને માનસિક
સર્વ દુઃખ પ્રાપ્ત થશે; એ માટે એ આરંભ આતંકજનક હોવાના કારણે અહિતકર
છે.' એ પ્રમાણે જાણવાવાળા એના સેવનરૂપ આરંભના ત્યાગમાં સમર્થ હોય છે.

જે અધ્યાત્મને અર્થાત્ પોતાના આત્મામાં સ્થિત સુખ-દુઃખને જાણે છે, તે જાણ

जानाति स वहिः=परकीयं सुखं दुःखं वा जानाति । ममात्मनि दुःखमसातवेदनीय-
कर्मोदयात् समापत्तितं, सुखमपि सातवेदनीयकर्मदियात् स्वानुभवसिद्धम्, एवं
स्वात्मगतसुखदुःखप्रत्यक्षेण परकीयसुखदुःखानुमानं कर्तुं शक्नोतीत्यर्थः । उक्तमर्थं
हृदीकर्तुं पुनस्तपेव परावर्त्तयन्नाह—' यः वहिर्जानाति ' इत्यादि ।

यः, वहिः=परात्मगतं सुखं दुःखं वा जानाति, स अध्यात्मं=स्वात्मगतं
सुखं दुःखं वा जानाति । परेषां स्वस्य च सुखदुःखयोरनुकूलप्रतिकूलवेदनीयरूपे
स्वरूपे साम्यादिति भावः ।

यद्वा—परविराधनापरिहारेण तत्फलभूतं स्वात्मनः सुखं, तथा
परपीडनेन तत्फलभूतं स्वात्मनो दुःखं भवति, एवं परकीयमेव सुखं दुःखं वा

वह बाह्य अर्थात् दूसरे के सुख-दुःख को जानता है । मेरे आत्मा में असातावेदनीय कर्म के
उदय से दुःख आया है और सातावेदनीय कर्म के उदय से सुख स्वानुभव सिद्ध है । इस
प्रकार अपने आत्मा का सुख और दुःख जो प्रत्यक्ष से जानता है, वह दूसरों के सुख-दुःख
का अनुमान कर सकता है । इसी अभिप्राय को पुष्ट करने के लिए यही बात पलटकर कहते
हैं—जो बाह्य को जानता है वह अध्यात्म को जानता है ।

अर्थात्—जो पराये सुख-दुःख को जानता है वह अपने आत्मा के सुख दुःख को
जानता है । पराये और अपने सुख-दुःख का अनुकूल वेदन और प्रतिकूल वेदन रूप
स्वरूप समान है ।

अथवा—परको पीडा पहुंचाने का त्याग करने से सुखरूप फल प्राप्त
होता है और पीडा पहुंचाने से दुःख मिलता है । इस प्रकार पराया सुख और दुःख

अर्थात् भीलना सुખ-दुःખને જાણે છે. મારા આત્માને વિષે અસાતાવેદનીય કર્મના
ઉદયથી દુઃખ આવ્યું છે, અને સાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી સુખ સ્વાનુભવસિદ્ધ છે.
આ પ્રમાણે પોતાનાં આત્માનાં સુખ-દુઃખનું અનુમાન કરી શકે છે. એ અભિપ્રાયને પુષ્ટ
કરવા માટે એજ વાત પલટાવીને કહે છે—જે બાહ્યને જાણે છે તે અધ્યાત્મને જાણે છે.

અર્થાત—જે પરાયા સુખ-દુઃખને જાણે છે, તે પોતાના આત્માના સુખ-દુઃખને
જાણે છે. પરાયા-બીલના અને પોતાના સુખ-દુઃખનું અનુકૂલ વેદન અને પ્રતિકૂલ
વેદનરૂપ સ્વરૂપ સમાન છે.

અથવા—બીલને પીડા પહોંચાડવાના ત્યાગ કરવાથી સુખરૂપ ફલ પ્રાપ્ત થાય
છે. અને પીડા પહોંચાડવાથી દુઃખ મળે છે.

પર્યતીત્યાતઙ્કદર્શી ભવતિ, સ હિતાહિતવિવેકકૃશલત્વાદ્ અહિતમ્=અધુમકરં વાયુ-
કાયસમારમ્ભગમસ્તીતિ જ્ઞાત્વા, એજસ્ય=એજતીત્યેજઃ કમ્પનશીલત્વાદ્ વાયુઃ,
તસ્ય, જુગુપ્સાયાં=નિન્દાયાં, સેવનપરિવર્જને સમારમ્ભનિવૃત્તૌ, ઇતિ યાવત્ ,

પ્રમુઃ=સમર્થો ભવતિ । જુગુપ્સા, સંયમના, અકરણા, વર્જના, વ્યાવર્તના,
નિવૃત્તિરિત્યેકાર્થાઃ ।

અયમાશયઃ—વાયુકાયસમારમ્ભકરણે શારીરં માનસં ચ સર્વમેવ દુઃખં મયિ
સમાપદેત, તસ્માદિદમાતઙ્કજનકત્વાદહિતમિતિ વિજ્ઞાતા, તત્સેવનલક્ષણસમારમ્ભ-
પરિહરણે સમર્થો ભવતીતિ ।

યઃ અધ્યાત્મમ્=માત્મનીતિ અધ્યાત્મમ્ સ્વાત્મગતં સુખં દુઃખં વૈત્યર્થઃ,

હિત—અહિત કે વિવેક મેં કુશલ હોને સે વાયુકાય સે આરમ્ભ કો અહિતકર સમજકર વાયુ
કે આરમ્ભ કા ત્યાગ કરને મેં સમર્થ હોતા હૈ । મૂલ મેં આયે હુએ જુગુપ્સા (દુગુંછી) શબ્દ
કે ફરૂ અર્થ હોતે હૈ । જૈસે—સંયમન, અકરણ (ન કરના), વર્જન (ત્યાગના), વ્યાવર્તન
(હટના) ઓર નિવૃત્તિ (ત્યાગ) ।

આશય યહ હૈ—'વાયુકાય કા આરમ્ભ કરને સે મુક્તે શારીરિક ઓર માનસિક સમી
દુઃખ પ્રાપ્ત હોને અતઃ યહ આરમ્ભ અતંકજનક હોને કે કારણ અહિતકર હૈ' । એસા જાનને
વાલા ઉસકે સેવનરૂપ આરમ્ભ કે ત્યાગ મેં સમર્થ હોતા હૈ ।

જો અધ્યાત્મ કો અર્થાત્ અપને આત્મા મેં સ્થિત સુખ—દુઃખ કો જાનતા હૈ

થનાઈ દુઃખ આતંક કહેવાય છે, અને એને જોવાવાળા આતંકદર્શી છે. તે હિત-
અહિતના વિવેકમાં કુશળ હોવાના કારણથી વાયુકાયના આરંભને અહિતકર સમજને
વાયુના આરંભને ત્યાગ કરવામાં સમર્થ હોય છે. મૂલમાં આવેલા 'દુગુંછના-જુગુપ્સા'
શબ્દના કેટલાય અર્થ થાય છે. જેમકે:—સંયમન, અકરણ—(નહિ કરવું) વર્જન,
(ત્યાગવું) વ્યાવર્તન, (હટવું) અને નિવૃત્તિ (ત્યાગ).

આશય એ છે કે—'વાયુકાયના આરંભ કરવાથી મને શારીરિક અને માનસિક
સર્વ દુઃખ પ્રાપ્ત થશે; એ માટે એ આરંભ આતંકજનક હોવાના કારણે અહિતકર
છે.' એ પ્રમાણે જાણવાવાળા એના સેવનરૂપ આરંભના ત્યાગમાં સમર્થ હોય છે.

જો અધ્યાત્મને અર્થાત્ પોતાના આત્મામાં સ્થિત સુખ—દુઃખને જાણે છે, તે બાહ્ય

અન્યત્ર ચ—“ મર્ત્યમિતિ યદ્દુલ્લં, પુરુપસ્યોપજાયતે ।

શવયસ્તેનાનુમાનેન, પરોઽપિ પરિરિક્ષતુમ્ ” ॥૧॥ ઇતિ ।

સ્વપર—સુખદુઃસ્વસ્તુલ્યસ્વવેદિનો ન વાયુકાયં વિરાધયન્તીત્યાહ—
‘ઇહ શાન્તિગતાઃ’ ઇત્યાદિ । ઇહ=જિનમવચને, શાન્તિગતાઃ=સ્વપરસુખદુઃસ્વયોઃ
સમત્વચિજ્ઞાનાદ્ ઔપશમિકભાવં પ્રાપ્તાઃ સમ્યક્તિવન ઇત્યર્થઃ યદ્વા=શાન્તિઃ=
સાવધન્યાપારપરિહારઃ, તામુપગતાઃ દ્રવિકાઃ=રાગદ્વેપરહિતાઃ, યદ્વા-દ્રવઃ=
સંયમઃ કર્પદ્રવળકારિત્વાત્, સ વિઘટે યેપાં તે દ્રવિકાઃ= કર્મનિવારણશીલાઃ
સંયમિનઃ જીવિતમ્=વ્યજનાદિના વાયુકાયસ્ય સમારમ્ભેણ પ્રાણાન્ પરિરિક્ષતું
નાવકાદ્ક્ષન્તિ=નેચ્છન્તિ ।

દૂસરી જગહ કહા હૈ—

‘તેરા મરના હી અચ્છા હૈ, એસા વાક્ય સુનને માત્ર સે પુરુપ કો જો દુ.સ્વ હોતા હૈ,
હસી મેં અંદાજ લગાકર દૂસરોં કી રક્ષા કરની ચાહિલ્ ” । ૧ ।

જો પુરુપ સ્વ-પર સુખ-દુઃસ્વ કો સમાન સમજતે હૈં વે વાયુકાય કી વિરાધના
નહીં કરતે, યહી વાત કહતે હૈં—

જિનશાસન મેં અપને ઔર પરાયે સુખ-દુઃસ્વ કો સમાન સમજકર જો ઉપશમ
ભાવકો પ્રાપ્ત હુલ્ હૈં અર્થાત્ સમ્યગ્દષ્ટિ હૈં, અથવા પાપમય વ્યાપારોં કે ત્યાગી હૈં, તથા
રાગ-દ્વેષ સે રહિત હૈં, અથવા કર્મોં કો નિવારણ કરનેવાલે સંયમ સે વિમૂપિત હૈં, વે
પંચા આદિ સે વાયુકાય કા સમારમ્ભ કરકે અપને પ્રાણોં કી રક્ષા કરને કી ઇચ્છા
નહીં કરને ।

બીજી જગ્યાએ પણ કહ્યું છે કે:-

“ તારે મરતું જ સાઈ છે.” એ પ્રમાણે સાંભળવાથી પુરુપને જે દુઃખ થાય
છે. તે અનુમાનથી બીજાની રક્ષા કરવી જોઈએ. ॥ ૧ ॥

જે પુરુપ સ્વ-પરના (પોતાનાં અને પારકાના) સુખ-દુઃખને સમાન સમજે છે,
તે વાયુકાયની વિરાધના કરતા નથી. તે વાત કહે છે—

જિન શાસનમાં પોતાનાં અને બીજાનાં સુખ-દુઃખને સમાન સમજીને જે ઉપશમ
ભાવને પ્રાપ્ત થયા છે, અર્થાત્ સમ્યગ્દષ્ટિ છે, અથવા પાપમય વ્યાપારોના ત્યાગી છે.
તથા રાગ-દ્વેષથી રહિત છે, અથવા કર્મોનું નિવારણ કરવાવાળા સંયમથી વિમૂપિત છે તે
પંચા આદિથી વાયુકાયને સમારમ્ભ કરીને પોતાના પ્રાણોની રક્ષા કરવાની ઇચ્છા કરતા નથી.

સ્વાત્મનઃ સુખરૂપેણ દુઃસ્વરૂપેણ વા પરિણમ્યતે । એવં તયોઃ કાર્યકારણમાત્રં યો વિજાનાતિ, સ એવ સ્વાત્મગતસુખદુઃસ્વચિજ્ઞાતેતિ ભાવઃ ।

પરકીયસુખદુઃસ્વચિજ્ઞાતા સ્વાત્મનઃ સુખં દુઃસ્વં વા જાનાતીત્યુક્તાર્થે હેતું પ્રદર્શયન્નાહ— ‘એયં તુલ્લમન્નેસિ’ ઇતિ । એતત્=સુખં દુઃસ્વં વા, તુલ્યં=સદૃશમેવ, અન્યેપામ્=પરેપાં જીવાનાં સ્વસ્વ ચેત્યર્થઃ ।

“ કદ્દ્રેણ કંટણ્ણ વ, પાણ વિદ્વસ્સ વેયણટ્ઠસ્સ ।

જા હોહ અણિવ્વાણી, ણાયવ્યા સન્વજીવાણં ॥

જહ મમ ણ પ્રિયં દુસ્સં, જાણિય એમેવ જીવાણં ” ॥

છાયા-- કાષ્ઠેન કણ્ઠકેન વા પાદે વિદ્વસ્ય વેદનાર્ચસ્ય ।

યા ભવતિ અનિર્વાણિ-જ્ઞાતિવ્યા સર્વજીવાનામ્ ॥

યથા મમ ન પ્રિયં દુઃસ્વં જ્ઞાત્વા એવમેવ સર્વજીવાનામ્ । ” ઇતિ ।

હી અપને સુખ-દુઃસ્વ કે રૂપ મેં પરિણત હો જાતા હૈ । ઇસ પ્રકાર જો અનેકે કાર્યકારણ ભાવ કો જાનતા હૈ વહી અપને આત્મા કે સુખ-દુઃસ્વ કા જ્ઞાતા હોતા હૈ ।

દૂસરોં કે સુખ-દુઃસ્વ કા જ્ઞાતા હી અપને સુખ-દુઃસ્વ કો જાનતા હૈ, ઇસ કથન મેં હેતુ દિશ્વલતે હુણ કહતે હૈં—‘યહ સુખ ઓર દુઃસ્વ દૂસરોં કે ઓર અપને સમાન હી હૈ’ । કહા મી હૈં—

લકડી સે યા કંટક સે પૈર મેં વિંધ જાને કી વેદના સે પીડિત પુરુષ કો જો અસંતોષ હોતા હૈ, વહી સવ જીવોં કો હોતા હૈ ।

જૈસે મુક્તે દુઃસ્વ પ્રિય નહીં હૈ, ઊસી પ્રકાર અન્ય અન્ય પ્રાણિયોં કો મી દુઃસ્વ પ્રિય નહીં હૈ ” ।

આ પ્રમાણે ખીજના સુખ અને દુઃખને પોતાના સુખ-દુઃખના રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે. આ પ્રમાણે જે તેના કાર્ય-કારણ ભાવને જાણે છે, તેજ પોતાના આત્માનાં સુખ-દુઃખના જ્ઞાતા હોય છે.

ખીજનાં સુખ-દુઃખનાં જ્ઞાતા જ પોતાના સુખ-દુઃખને જાણે છે. આ કથનમાં હેતુ બતાવતા થકા કહે છે કે—

“ આ સુખ અને દુઃખ ખીજનાં અને આપણાં સમાન છે. ” કહ્યું છે કે—

“ લાકડીથી અથવા કાંટાથી પગમાં વિધાઈ જવાની વેદનાથી પીડિત પુરુષને જે અંતવેદના થાય છે, તેવીજ સર્વ જીવોને (વેદના) થાય છે. ”

“જેમ અને દુઃખ પ્રિય નથી, તે પ્રમાણે ખીજ પ્રાણીઓને પણ દુઃખ પ્રિય નથી.”

लक्षणद्वारम्—

ननु कथमिदं ज्ञायते वायुः सच्चित्त इति?, अत्रोच्यते—गृह्यतां तावदनुमानं प्रमाणम्, वायुश्चेतनावान् अनन्यप्रेरिताऽनियततिर्यग्गमनवत्त्वात्, हरिणगत्रयादिवदिति । अनियतविशेषणोपादानात् परमाणौ अपरप्रेरिततिर्यग्गतिसत्त्वेऽपि नानैकान्तिकत्वम्, तस्य हि परप्रयोगनिरपेक्षस्य स्वाभाविकी गतिरनुश्रेणिर्भवति तस्मात् सा नियतैव । आगमोऽपि प्रमाणं, यथा—दशवैकालिकसूत्रे—“ वाड चित्तमंतमवखाया अपोगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्यपरिणणं ” । इति,

वायुश्चित्तवानाख्यातोऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वः अन्यत्र शल्लपरिणतात् । इति च्छाया.

लक्षणद्वार—

शंका—वायु सच्चित्त है, यह बात किस प्रकार जानी जाय ?

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही लोत्रिएः—वायु चेतनायुक्त है, क्यों कि वह दूसरों की प्रेरणा बिना अनियत रूप से तिरछी गति करता है, जैसे हिरन, रोझ आदि । हेतु में ‘अनियत’ विशेषण लगा देने से प्रेरणा का अभाव और तिरछी गति होने पर भी परमाणु व्यभिचार नहीं होता । परमाणु दूसरे की प्रेरणा के बिना जो गति करता है वह गति श्रेणी के अनुसार नियत ही होती है—अनियत नहीं । इस विषय में आगम भी प्रमाण है । दशवैकालिक सूत्र में कहा है—

“ वायु सच्चित्त कही गई है । वह अनेक जीवोंवाली है, और उन जीवों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है । सिर्फ शल्लपरिणत वायु सच्चित्त नहीं है ” ।

लक्षणद्वार—

शंका—वायु सच्चित्त छे अे वात केवी रीते लखी शकय ?

समाधान—प्रथम अनुमानप्रमाण लक्षणे—वायु चेतनायुक्त छे, केभके ते भीजानी प्रेरणा बिना अनियतपथी तिरछी गति करे छे, जेम-डरख, रेअ आदि. हेतुमां ‘अनियत’ विशेषण लगावी देवाधी परप्रेरणानो अभाव अने तिरछी गति होवा छतांय पण परमाणुधी व्यभिचार थतो नथी, परमाणु भीजानी प्रेरणा बिना जे गति करे छे, ते गति श्रेणी-अनुसार नियत न होय छे, अनियत नहिं.

आ विषयमां आगम पण प्रमाण छे. दशवैकालिक सूत्रमां कहुं छे—

“ वायु सच्चित्त कहेवामां आये छे. ते अनेक लववायो छे अने ते लववुं अस्तित्व पृथक्-पृथक् (गुडं-गुडं) छे, मात्र शल्लपरिणत वायु सच्चित्त नथी. ”

જિનમવચનોક્તચરણકરણસેવિનઃ સ્વપ્રાણરક્ષણાર્થમપિ પરજીવોપમર્દનં નેચ્છન્તિ,
તે હિ અચાક્ષુષવાયુજીવવિરાધનાવિનિવૃત્તાઃ કથમન્યચાશ્રુપૃથિવ્યાદિજીવોપમર્દને
મવર્તેત, ન કયમપીત્તિ ભાવઃ ।

અથ વાયુવાદરય સમ્યગ્જ્ઞાનાર્થં લક્ષણાદ્યપ્ત દ્વારાણિ નિરૂપણીયાનિ ।
તપ્ત લક્ષણપ્રરૂપણાપરિમાણશસ્ત્રોપભોગદ્વારાણિ યથાક્રમં નિરૂપ્યન્તે । અવ-
શિષ્ટ-વધવેદનાનિવૃત્તિ દ્વારાણિ પૃથિવીકાયોદેશે યથા કથિતાનિ તથૈવાવગન્તવ્યાનિ ।

જિનાગમ મેં કથિત ચરણ-કરણ કા સેવન કરને વાલે કવને પ્રાણો કી રક્ષા
કરને કે લિપ્ મી દૂસરે જીવ કી હિંસા કરને કી અભિલાષા નહીં કરતે । વે ચક્ષુ સે
ન દિસ્વાઈ દેને વાલે વાયુકાય કે જીવો કી વિરાધના સે મી નિવૃત્ત હોતે હૈં તો ચક્ષુ-
ગોચર અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ કે જીવો કી વિરાધના મેં કંસે પ્રવૃત્ત હો સકતે હૈં-કિસી
પ્રકાર મી નહીં ।

વાયુકાય વા સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરને કે લિપ્ લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારો કા નિરૂપણ
કરના ચાહિપ્ । ઁનમેં સે લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર ઁર ઉપભોગ દ્વારો કા કમ સે
નિરૂપણ કરતે હૈં । શેષ વધ, વેદના ઁર નિવૃત્તિ દ્વાર જૈસે પૃથ્વીકાય કે ઉદેશ મેં કહે હૈં
વંસે હો યહાં સમજ લેને ચાહિપ્ ।

જિનાગમમાં કહેલા ચરણ-કરણનું સેવન કરવાવાળા પોતાના પ્રાણોની રક્ષા
કરવા માટે પણ બીજા જીવોની હિંસા કરવાની અભિલાષા કરતા નથી. તે નેત્રથી
નહિ દેખાતા વાયુકાયના જીવોની વિરાધનાથી પણ નિવૃત્ત હોય છે, તો પછી નેત્રથી
બેધ શકાય તેવા બીજા પૃથ્વીકાય આદિના જીવોની વિરાધનામાં કેવી રીતે પ્રવૃત્ત
થઈ શકે છે ? કોઈ પ્રકારે પણ થઈ શકતા નથી.

વાયુકાયનું સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારોનું નિરૂપણ
કરવું બેધબંધ. તેમાંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર અને ઉપભોગ દ્વારોનું ક્રમથી
નિરૂપણ કરે છે, શેષ-(આટી) વધ, વેદના અને નિવૃત્તિ દ્વાર જેવી રીતે પૃથ્વીકાયના
ઉદેશમાં કલા છે, તેવીજ રીતે અહિં સમજ લેવું બેધબંધ.

सचित्ताः, उद्गारोच्छ्वासदयोऽचित्ताः सचित्ताचित्तयोः संमिश्रणेन मिश्राः ।

परिमाणद्वारम्-

ये वादरपर्याप्तका वायुकायास्ते संवर्तितलोकप्रतरासंख्येयभागवर्ति-
प्रदेशराशिपरिमाणाः, शेषास्त्रयोऽपि राशयः पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेश-
परिमाणा भवन्ति, विशेषधायमन्नावगन्तव्यः-वादरापूकायपर्याप्तकेभ्यो वादरवायु-
पर्याप्तका असंख्येयगुणाः, वादरापूकायाऽपर्याप्तकेभ्यो वादरवायुकायाऽ-
पर्याप्तका असंख्येयगुणाः । सूक्ष्मापूकायाऽपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुकायाऽपर्याप्तका
विशेषाधिकाः, सूक्ष्मापूकायपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुकायपर्याप्तका
विशेषाधिकाः ॥ सू० १ ॥

(१) मिश्र । उःकालिकावात आदि सचित हैं, उद्गार और उच्छ्वास आदि अचित हैं, और मिली हुई-सचित-अचित वायु मिश्र है ।

परिमाणद्वार-

वादरपर्याप्तवायुकाय के जो संवर्तित लोकप्रतर के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर है । शेष तीनों प्रत्येक राशियाँ असंख्यात लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर हैं । यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए-वादर अपूकाय के पर्याप्त जीवों की अपेक्षा वायुकाय के वादर पर्याप्त असंख्यात गुणा हैं । अपूकाय के अपर्याप्त वादर जीवों से वायुकाय के अपर्याप्त वादर असंख्यात गुणा हैं । अरूकाय के सूक्ष्म अपर्याप्त जीवों से सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त विशेष अधिक हैं । अपूकाय के सूक्ष्म पर्याप्त जीवों से सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त विशेषाधिक हैं ॥ सू० १ ॥

उत्कालिकावात आदि सचित्ते, उद्गार और उच्छ्वास आदि अचित्ते, अने सचित्ते तथा अचित्ते अने अने अके साथे भण्डा होय ते वायु मिश्र छे.

परिमाणद्वार-

वादरपर्याप्तवायुकायना एव संवर्तित लोक प्रतरना असंख्यातभा भागवर्ती प्रदेशोना बराबर छे. बाकी त्रय प्रत्येक राशीयाँ असंख्यात लोकाकाशना प्रदेशोनी बराबर छे. अर्द्धि अटवी विशेषता समझवी जेधअ-वादर अपूकायना पर्याप्त एवोनी अपेक्षा वायुकायना वादर पर्याप्त असंख्यात गणु छे. अपूकायना अपर्याप्त वादर एवोधी वायुकायना अपर्याप्त वादर असंख्यात गणु छे. अपूकायना सूक्ष्म अपर्याप्त एवोधी सूक्ष्म वायुकायना अपर्याप्त विशेष अधिक छे. अपूकायना सूक्ष्मपर्याप्त एवोधी, सूक्ष्म वायुकायना पर्याप्त विशेषाधिक छे. ॥ सू० १ ॥

प्ररूपणाद्वारम्—

वायुकाया द्विविधाः—सूक्ष्मा वादराश्चेति । तत्र सूक्ष्माः सकललोकव्यापिनः, वादरास्तु लोकैकदेशे सन्ति । वादराः पञ्चविधाः—उत्कलिकावातः, मण्डलिकावातः, गुञ्जावातः, घनवातः, शुद्धवातश्चेति । ये तु ते पौरस्त्यादिभेदा लोकवादिप्रकरणे प्रागभिहितास्तेऽप्यत्रैवान्तर्भूताः । यः स्थित्वा स्थित्वा उत्कलिकाभिर्वाति स उत्कलिकावातः, वातोलीरूपो मण्डलिकावातः, यो गुञ्जन् वाति स गुञ्जावातः, पृथिव्यादीनामाधारतया व्यवस्थितो हिमपटलकल्पोऽतिघनीभूतो घनवातः, मन्द-स्तिमितः शीतकालादिषु शुद्धवातः ।

संक्षेपेण वायुकायास्त्रिविधाः—सचित्ता अचित्ता मिश्राश्च । उत्कलिकावातादयः

प्ररूपणाद्वारम्—

वायुकाय दो प्रकार का है—सूक्ष्म और वादर । सूक्ष्म जीव समस्त लोक में रहते हैं । वादर पाँच प्रकार के हैं—(१) उत्कलिकावात (२) मण्डलिकावात (३) गुञ्जावात (४) घनवात और (५) शुद्धवात । पौरस्त्य आदि जो भेद लोकवादी के प्रकरण में पहले बतलाये हैं वे सब भी इन्हीं भेदों में अन्तर्गत हो जाते हैं । ठहर-ठहर कर उत्कलिकारूप से बहनेवाली वायु उत्कलिकावात है । वातोलीरूप वायु को मण्डलिकावात कहते हैं । गूँज-गूँज कर बहने वाली वायु को गुञ्जावात कहते हैं । पृथ्वी आदि के आधार पर स्थित हिमपटल के समान अत्यन्त सघन वायु को घनवात कहते हैं । शीतकाल आदि में धीमे-धीमे चलने वाली वायु शुद्धवात है ।

संक्षेप से वायुकाय के तीन भेद हैं—(१) सचित (२) अचित और

प्ररूपणाद्वारम्—

वायुकाय के प्रकारना छे. (१) सूक्ष्म अने (२) वादर. सूक्ष्म एव समस्त लोकमां व्याप्त छे. अने वादर, लोकना एक-देशमां रहै छे. वादर पांच प्रकारना छे. (१) उत्कलिकावात, (२) मण्डलिकावात, (३) गुञ्जावात, (४) घनवात अने (५) शुद्धवात.

पौरस्त्य आदि के भेद लोकवादीना प्रकरणमां पहले बतलाया छे, ते सबे आ भेदोमां अन्तर्गत थरुं नय छे. जस-रही-रहीने उत्कलिकारूपमां बहैवावाणी वायु ते उत्कलिकावात छे. वातोलीरूप वायुने मण्डलिकावात कहै छे. गूँज-गूँज ने बहैवावाणी वायुने गुञ्जावात कहै छे. पृथ्वीआदिना आधारपर स्थिति हिमपटल समान अत्यन्त सघन वायुने घनवात कहै छे. शीतकाल आदिमां धीमे-धीमे बहैतो वायु ते शुद्धवायु छे.

संक्षेपधी वायुकायना त्रयुं भेद छे. (१) सचित (२) अचित अने (३) मिश्र.

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयाऽऽर्द्रचित्तया वायुकायसमारम्भे पराङ्मुखः,
वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनागाराः, पृथक्=विभिन्नाः, केचन प्रत्यक्ष-
ज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः सन्तीति
पश्य । यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे वायुकायसमार-
म्भकरणे भीतास्तस्मा उद्विग्नाद्विकरणत्रियोगैर्वायुकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते
इति विलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्येतु 'वयमनगाराः स्मः' इति सामिमानं प्रवदमानाः 'वयमेव
वायुकायरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति मलपन्ती द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान्
पृथक् पश्य ।

टीकार्थ—परम करुणा से आर्द्र-चित्त होने के कारण वायुकाय के समारम्भ से
विमुख, वायुकाय के समारम्भ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगार भिन्न हैं—कोई अवधि-
ज्ञानी कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं, और कोई मतिश्रुतज्ञान के धारक
भावितात्मा साधु हैं. उन्हें देखो । अथवा उन्हें द्रव्यलिङ्गियों से भिन्न समझो । ये अनगार
वायुकाय का समारम्भ करने में भीत हैं, व्रस्त हैं, उद्विग्न हैं तथा तीन करण तीन योग से
वायुकाय का समारम्भ करने के त्यागी हैं ।

और कोई—कोई 'हम अनगार हैं' इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए, 'हम ही
वायुकाय की रक्षा करने वाले पंचमहाव्रतधारी हैं' ऐसा प्रलाप करने वाले द्रव्यलिङ्गी
हैं, उन्हें अनगारों से अलग समझो ।

टीकार्थ—परम करुणाधी आर्द्र-चित्त होवाना कारणे वायुकायना समारंभधी
विमुख, वायुकायना समारंभना सर्वथा त्याग करवावाणा अणुगार नृदा छे—कोई
अवधिज्ञानी, कोई मनःपर्ययज्ञानी अने कोई केवलज्ञानी छे, अने कोई मति-श्रुत
ज्ञानना धारक भावितात्मा साधु छे, तेने नृदो. अथवा तेने द्रव्यलिङ्गिअधी नृदा
नृदो, ते अणुगार वायुकायना समारंभ करवाभां भीत (भीवा वाणा) छे, व्रस्त छे,
उद्विग्न छे. तथा त्रणु करणु त्रणु योगधी वायुकायना समारंभ करवाना त्यागी छे.

अने कोई—कोई 'अमे अणुगार छीअे' आ प्रभाणु अभिमानपूर्वक कहे छे,
के 'अमेअ वायुकायनी रक्षा करवावाणा पंचमहाव्रतधारी छीअे.' अेदो एकवाह
करनारा द्रव्यलिङ्गी छे. तेने अणुगारधी नृदा नृदो.

अथ सर्वथा वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथा वायुकाय-
समारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विचिन्व्य प्रतिबोधयितुमाह—'लज्जमाणा.'
इत्यादि ।

अथ शस्त्रद्वारम्—

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास । अणगारा मो-त्ति एगे पययमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं
सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं, वाउसत्थं समारंभमाणा अणो अणेगरूवे पाणे
विहिंसन्ति ॥ सू० २ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य । अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं
विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकायसमारम्भेण, वायुकायशस्त्रं समारंभमाणा अन्यान् अनेक-
रूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० २ ॥

वायुकाय के समारंभ का सर्वथा त्याग करने वाले मुनियों को और वायुकाय के
समारम्भ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिङ्गियों को अलग-अलग बतलाने के लिए कहते हैं—
'लज्जमाणा.' इत्यादि ।

शस्त्रद्वार—

मूलार्थ—वायुकाय का समारम्भ करने में संकोच करने वाले अनगारों को अलग
देखो, और कोई-कोई 'हम अनगार हैं' ऐसा कहते हुए नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय
का समारम्भ करके, वायुकाय का समारम्भ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की
हिंसा करते हैं उनको अलग देखो ॥ सू० २ ॥

वायुकायना समारंभेना सर्वथा त्याग करवावाणा मुनिय्येने अने वायुकायना
समारंभमां प्रवृत्ति करवावाणा द्रव्यलिङ्गिय्येने बूहा-बूहा भत्ताववा भाटे कडे छे—
'लज्जमाणा.' इत्यादि.

शस्त्रद्वार—

मूलार्थ—वायुकायना समारंभमां संकोच करवावाणा अणुगारेने बूहा बूहा,
अने कोर्ध-कोर्ध 'अमे अणुगार छीये' अबुं कडेनारा अने नाना प्रकारना शस्त्रेथी
वायुकायने समारंभ करीने, वायुकायने समारंभ करता थका भीण, अनेक प्रकारना
प्राणिय्येनी हिंसा कडे छे. तेने पणु बूहा-बूहा बूहा. ॥ सू० २ ॥

टीका—

लज्जमानाः=परमकरुणयाऽऽर्द्रचित्तया वायुकायसमारम्भे पराङ्मुखाः,
वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनागाराः, पृथक्=विभिन्नाः, केचन प्रत्यक्ष-
ज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानः सन्तीति
पश्य । यद्वा—पृथक्=द्रव्यलिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे वायुकायसमार-
म्भकरणे भीतास्तस्मा उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैर्वायुकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्वन्ते
इति विलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्येतु 'वयमनगाराः स्मः' इति सामिमानं प्रवदमानाः 'वयमेव
वायुकायरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति मलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान्
पृथक् पश्य ।

टीकार्थ—परम करुणा से आर्द्र-चित्त होने के कारण वायुकाय के समारम्भ से
विमुख, वायुकाय के समारम्भ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगार भिन्न हैं—कोई अवधि-
ज्ञानी कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं, और कोई मतिश्रुतज्ञान के धारक
भावितात्मा साधु हैं, उन्हें देखो । अथवा उन्हें द्रव्यलिङ्गियों से भिन्न समझो । ये अनगार
वायुकाय का समारम्भ करने में भीत हैं, व्रस्त हैं, उद्विग्न हैं तथा तीन करण तीन योग से
वायुकाय का समारम्भ करने के त्यागी हैं ।

और कोई-कोई 'इम अनगार हैं' इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए, 'इम ही
वायुकाय की रक्षा करने वाले पंचमहाव्रतधारी हैं' ऐसा प्रलाप करने वाले द्रव्यलिङ्गी
हैं, उन्हें अनगारों से अलग समझो ।

टीकार्थ—परम करुणाથી आर्द्र-चित्त होवाना कारणे वायुकायना समारंभधी
विमुख, वायुकायना समारंभने सर्वथा त्याग करवावाणा अणुगार नूदा छे—कोई
अवधिज्ञानी, कोई मनःपर्ययज्ञानी अने कोई केवलज्ञानी छे, अने कोई मति-श्रुत
ज्ञानना धारक भावितात्मा साधु छे, तेने ज्ञेयो. अथवा तेने द्रव्यलिङ्गिज्ज्ञेयोधी नूदा
जणो, ते अणुगार वायुकायना समारंभ करवाभां भीत (भीवा वाणा) छे, व्रस्त छे,
उद्विग्न छे. तथा त्रणु करणु त्रणु योगधी वायुकायना समारंभ करवाना त्यागी छे.

अने कोई-कोई 'अमे अणुगार छीये' आ प्रमाणे अभिमानपूर्वक कहे छे.
के 'अमे वायुकायनी रक्षा करवावाणा पंचमहाव्रतधारी छीये.' जेवा अकवाह
करनास द्रव्यलिङ्गी छे. तेने अणुगारधी नूदा जणो.

इमे खल्वनगाराभिमानीनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः, शस्त्रैः. शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकायपरकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं=शीतवायोरुष्णवायुः, उष्णवायोश्च शीतवायुः पूर्वदिगादिवायोः पश्चिम-दिगादिवायुः स्वकायशस्त्रम् । व्यजन-तालवृन्त-शूर्प-चामर-पत्र-वेलकर्णाभिधार-णादयः, घर्मातौ यद् वहिरवतिष्ठते चातागमनमार्गे साऽभिधारणा,

तथा-चन्दनोशीरादीनां गन्धाः, अग्निज्वालाप्रतापश्च, तथा मुशलादिना

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते और गृहस्थों के किसी कृत्य का त्याग नहीं करते हैं । यह आगे कहते हैं:—

द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है । द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—(१) स्वकाय (२) परकाय और (३) उभयकायशस्त्र । उष्णवायु, शीतवायु का और शीतवायु, उष्णवायु का, तथा पूर्वादिदिशाओंका वायु, पश्चिमादिदिशाओं के वायु का स्वकायशस्त्र है, पंखा, तालवृन्त, सूप, चामर, पत्र, कपडा और अभिधारणा आदि, धूप से पीडित पुरुष हवा आने के रास्ते में ठहरता है उसको अभिधारणा कहते हैं ।

तथा-चन्दन, खसखस आदि की गंध, आगकी ज्वाला, ताप आदि परकायशस्त्र है ।

અણગાર હોવાનું અભિમાન કરવાવાળાઓ દ્રવ્યલિંગી (સાચા) અણગારના ગુણોમાં જરા પણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, અને ગૃહસ્થોના કોઈ પણ કાર્યને ત્યાગ કરતા નથી તે આગળ કહે છે.

દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્રના ભેદથી શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે, દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે. (૧) સ્વકાય, (૨) પરકાય, (૩) ઉભયકાય-શસ્ત્ર, ઉષ્ણવાયુ, શીતવાયુનો અને શીતવાયુ, ઉષ્ણવાયુનો તથા પૂર્વાદિ દિશાઓના વાયુનો પશ્ચિમ આદિ દિશાઓના વાયુ સ્વકાયશસ્ત્ર છે. વાંસનો ખનાવેલો તથા તાલપત્રનો ખનાવેલો પંખો, સૂપડા, ચામર, પત્ર, વસ્ત્રખંડ અને અભિધારણા આદિ, તાપથી પીડિત પુરુષ હવા આવવાના રસ્તામાં થોભી જાય છે, તેને અભિધારણા કહે છે.

તથા-ચન્દન, ખસખસ, આદિની ગંધ, અગ્નિ, અગ્નિની જ્વાલા તાપ આદિ તથા

कण्डनं, तुपाद्यपसारणार्थं शूर्पास्फालनं, वस्त्रादिगतरजःप्रभृतिवारणाय वस्त्रादीना-
माच्छोटनमास्फोटनं प्रस्फोटनं च, तथा शीघ्रगमनं वायुकायस्य विराधकं परकाय-
शस्त्रम् । उभयकायशस्त्रम्-अनाहतमुखेन भाषणम्, एतत्सर्वं द्रव्यशस्त्रम् । भावशस्त्रं
तु मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् । एवंविधैः शस्त्रैः, वायुकायसमारम्भेण=वायुकायो-
पमर्दकसावधव्यापारेण, इमं वायुकायं विहिंसन्ति ।

वायुकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु पद्भ्योऽनिकायरूपं लोकं सर्वमेव
विहिंसन्तीत्याह—‘वायुकायशस्त्रम्’ इत्यादि । वायुकायशस्त्रं=वायुकायोपमर्दकं
द्रव्यभावशस्त्रं पूर्वोक्तमकारं, समारम्भमाणाः=वायुकायं प्रति प्रयुज्जानाः अन्यान्=वायु-
कायभिन्नान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् स्थावरान् द्वीन्द्रियादीन्त्रसांश्च प्राणान्=
प्राणिनः, विहिंसन्ति ।

मूसल से कूटना, छिलके हटाने के लिए सूप से फटकना, धूल-रेत आदि झाड़ने के लिए
वस्त्र आदि को फटकारना-झटकना तथा जल्दो चलना भी वायुकाय का विराधक परकाय
शस्त्र है खुले मुख से बोलना उभयकायशस्त्र । मन, वचन, और कायका अप्रशस्त व्यापार
भावशस्त्र है । इन नाना प्रकार के शस्त्रों से द्रव्यलिङ्गी वायुकाय की हिंसा करने वाले सावध
व्यापार करके वायुकाय की हिंसा करते हैं ।

जो वायुकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह पद्कायरूप समस्त लोक की
हिंसा करता है, यह कहते हैं-वायुकाय की विराधना करने वाले पूर्वोक्त द्रव्य और भावशस्त्रों
का वायुकाय के प्रति प्रयोग करने वाले वायुकाय से भिन्न अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि
स्थावरों की तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रसजोवों की भी हिंसा करता है ।

भूसज्जथी कूटबुं, छाल काढवा भाटे, सूपकाथी आटकबुं, धूल-रेती वगेरेने थं'पेरवा
भाटे वस्त्र वगेरेने आटकबुं-पछाडबुं, तथा जलही-जलही ब्यालबुं ते पक्षु वायुकायन्तुं
विराधक परकाय शस्त्र छे. उधाडा-भूदला भाटे गोलबुं ते उलायकायशस्त्र छे. आ सर्व
वायुकायनां द्रव्यशस्त्र छे, मन, वचन अने कायाने अप्रशस्त (वभाषुवा लायक नहिं ते)
व्यापार ते लावशस्त्र छे. आ नाना प्रकारना शस्त्रोथी द्रव्यलिङ्गी वायुकायनी हिंसा
करवावाणाओ सावध व्यापार करीने वायुकायनी हिंसा करे छे.

ने वायुकायनी हिंसामां प्रवृत्त थाय छे ते पद्कायरूप समस्त लोकनी हिंसा
करे छे. ओ कहे छे:-वायुकायनी विराधना करवावाणा पूर्वोक्त द्रव्य अने लावशस्त्रने
वायुकायना प्रति प्रयोग करवावाणा वायुकायथी भिन्न अनेक प्रकारना पृथ्वीकाय आदि
स्थावरानी, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जिवानी पक्षु हिंसा करे छे.

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः, शस्त्रैः. शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्यशस्त्रं-स्वकायपरकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं-शीतवायोरुष्णवायुः, उष्णवायोश्च शीतवायुः पूर्वदिगादित्रयोः पश्चिम-दिगादिवायुः स्वकायशस्त्रम् । व्यजन-तालवृन्त-शूर्प-चामर-पत्र-बेलकर्णाभिधारणादयः, घर्मातौ यद् वहिरवतिष्ठते वातागमनमार्गे साऽभिधारणा,

तथा-चन्दनोशीरादीनां गन्धाः, अग्निज्वालाप्रतापश्च, तथा मुशलादिना

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते और गृहरथों के किसी कृत्य का त्याग नहीं करते हैं । यह आगे कहते हैं:—

द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है । द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—(१) स्वकाय (२) परकाय और (३) उभयकायशस्त्र । उष्णवायु, शीतवायु का और शीतवायु, उष्णवायु का, तथा पूर्वादिदिशाओंका वायु, पश्चिमादिदिशाओं के वायु का स्वकायशस्त्र है, पंखा, तालवृन्त, शूर्प, चामर, पत्र, कपडा और अभिधारणा आदि, धूप से पीड़ित पुरुष हवा आने के रास्ते में ठहरता है उसको अभिधारणा कहते हैं ।

तथा-चन्दन, खसखस आदि क्री गंध, आगकी ज्वाला, ताप आदि परकायशस्त्र है ।

અણગાર હોવાનું અભિમાન કરવાવાળાઓ દ્રવ્યલિંગી (સાચા) અણગારના ગુણોમાં જરા પણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, અને ગૃહસ્થાના કોઈ પણ કાર્યનો ત્યાગ કરતા નથી તે આગળ કહે છે.

દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્રના ભેદથી શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે, દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે. (૧) સ્વકાય, (૨) પરકાય, (૩) ઉભયકાય-શસ્ત્ર, ઉષ્ણવાયુ, શીતવાયુનો અને શીતવાયુ, ઉષ્ણવાયુનો તથા પૂર્વાદિ દિશાઓના વાયુનો પશ્ચિમ આદિ દિશાઓના વાયુ સ્વકાયશસ્ત્ર છે. વાંસનો બનાવેલો તથા તાલપત્રનો બનાવેલો પંખો, શૂપડા, ચામર, પત્ર, વસ્ત્રપાંડ અને અભિધારણા આદિ, તાપથી પીડિત પુરુષ હવા આવવાના રસ્તામાં થોભી જાય છે, તેને અભિધારણા કહે છે.

તથા-ચન્દન, ખસખસ, આદિની ગંધ, અગ્નિ, અગ્નિની જ્વાલા, તાપ આદિ તથા

छाया—गन्धर्वनृत्यवादित्र—लवणजलारात्रिकादिदीपादयः ।

यत्किञ्चित्कृत्यं तत्सर्वमप्यवतरत्यग्रपूजायाम् ॥ १ ॥ इति ।

किञ्च—सप्तदशभेदिपूजाविधावपि गीतनृत्यवाद्यानि कर्त्तव्यतयोपदिशन्ति ।

किञ्चैकविंशतिविधपूजायामपि नृत्यगीतवादित्रैश्चामरवीजनैश्च वायुकायसमा-
रम्भं कारयन्ति ।

उक्तञ्च—“स्नानं विलेपनविभूषणपुष्पवास—

धूपमदीपफलतन्दुलपत्रपूजाः ।

नैवेद्यवारिवसनैश्चमरातपत्र,—

वादित्रगीतनटनस्तुतिकोशवृद्ध्या ॥ १ ॥

इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा ” इत्यादि ।

“गाना, नाचना, बजाना, लवण—जल, आरती करना, दीपक जलाना आदि जितने कार्य हैं, वे सब अग्रपूजा में किये जाते हैं ” ॥१॥

तथा वे द्रव्यलिङ्गी दण्डी ‘सत्तरहप्रकार की पूजा में भी गीत, नृत्य और वाद्य आदि क्रियाएँ करनी चाहिए’ ऐसा अपदेश देते हैं ।

तथा इक्कीसभेदी पूजा में भी नृत्य, गीत, वादित्र तथा चामर और पंखा आदि के द्वारा वायुकाय का समारंभ कराते हैं । जैसा कहा है:—

“स्नान, विलेपन, आभूषण, पुष्प, वास, धूप, दीप, फल, चावल पत्र, सुपारी, नैवेद्य जल, वस्त्र, चामर, छत्र, वादित्र, गीत, नाटक, स्तुति और कोशवृद्धि, इस तरह इक्कीस प्रकार की जिन भगवान् की पूजा होती है ” ॥१॥

“गातुं, नाचतुं, बजतवतुं, भीतुं, जल, आरती करवी, दीपक—दीवे आणवे आदि जेठलां कथं छे, ते सर्व अथपूजभां करवाभां आवे छे.” ॥ १ ॥

तथा ते द्रव्यलिङ्गी—डंडी ‘सत्तरप्रकारनी पूजभां पण्डु भेशां नृत्य अने वाद्य-
वाद्यत्र आदि क्रियाओ करवी जेठजे.’ जेवे उपदेश आवे छे.

तथा जेकवीसभेदी पूजभां पण्डु नृत्य, गीत, वाद्यत्र तथा चामर अने पंखा आदि द्वारा वायुकायको समारंभ करावे छे. जेभ कहुं पण्डु छे—

“स्नान, विलेपन, आभूषण, पुष्प, वास, धूप, दीप, फल, चोखा, पत्र, सुपारी, नैवेद्य, जल, वस्त्र, चामर, छत्र, वाद्यत्र, गीत, नाटक, स्तुति अने कोशवृद्धि (धर्मादाना नामे नाष्टां—धन—नीवृद्धि) आ प्रमाणे जेकवीस प्रकारनी जिनभगवाननी पूजा थाय छे.” ॥१॥

इह बहुविधद्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, तत्र शाक्यादयो व्यजनादिस्त्रैर्वायुकाय-
समारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति, तथा च संपातिमादीनां हिंसनेन
पद्मजीवनिकायविराधका भवन्ति । दण्डिनोपि—“वयं प्रञ्चमहाव्रतधारिणो जिना-
ज्ञाराधका अनगाराः स्मः” इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति,
शास्त्रप्रतिपिद्धमपि वायुकायसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति च । ते हि अनाट्टममुखेन
वदन्ति गायन्ति च । तथा अग्रपूजादौ विविधवाद्यनृत्यादिकं कारयन्ति, एतत्सर्वं
मिथ्यादर्शनशल्याभिधं पापमाचरन्ति ।

उक्तञ्च—“गंधव्वनट्टवाइय-लवणजलारत्तिआहदीवाई ।

जं किच्चं तं सर्व्वं-पि ओअरइ अग्गपूयाए” ॥ १ ॥

संसार में तरह-तरह के द्रव्यलिङ्गी हैं, उन में से शाक्य आदि पंखा वगैरह से
वायुकाय का आरंभ करते हैं, कराते हैं और आरंभ करने वाले की अनुमोदना करते हैं,
और संपातिम (उडकर अचानक आजाने वाले) आदि जीवों की हिंसा करके पद्मकाय के
विराधक बनते हैं । झूठे साधु दण्डी भी ‘हम पंचमहाव्रतधारी तथा जिन भगवान् की
आज्ञा के आराधक अनगार हैं’ इस प्रकार कहते हुए सावद्य का उपदेश देते हैं । शास्त्र
में निषिद्ध वायुकाय का समारंभ करते हैं और कराते हैं । वे खुले मुख से बोलते और गाते
हैं, तथा अग्रपूजा आदि में विविध प्रकार से वाद्य एवं नृत्य आदि कराते हैं । यह सब
मिथ्यादर्शनशल्यानामक पाप है । वे इसका आचरण करते हैं । जैसे कहा है—

संसारमां तरेहु-तरेहुना द्रव्यलिङ्गी छे, तेमांथी शाक्य आदि पंखा वगैरथी
वायुकायने आरंभ करे छे, करावे छे, अने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आपे
छे, अने संपातिम (उडीने अचानक आववावाणा) आदि लुवोनी हिंसा करीने
पद्मकायना विराधक अने छे, इंठी पणु ‘अने पंचमहाव्रतधारी तथा जिन भगवाननी
आज्ञाना आराधक अणुगार छीअे, ’ आ प्रभाणु कडेता थका सावद्यने उपदेश आपे
छे, शास्त्रमां निषिद्ध मनाअेला वायुकायने समारंभ करे छे अने करावे छे, ते खुला
मुअथी-उघाडा मोठे-मोले छे अने गाय छे, तथा अग्रपूजा वगैरमां विविध प्रकारथी
वाद्य अने नृत्य आदि करावे छे, आ सर्वे मिथ्यादर्शनशल्या नामनुं पाप छे, ते अने
आचरण करे छे, जेभं कहुं छे—

वन्दनमाननपूजनाय, जातिमरणमोचनाय, दुःखप्रतिघातहेतुं स स्वयमेव वायुशस्त्रं समारभते, अन्यैर्वा वायुशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वायुशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्यावोधये ॥ सू० ३ ॥

टीका—

तत्र=वायुकायसमारम्भे, भगवता=श्रीमहावीरेण, परिज्ञा=ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदाद् द्विविधा, खलु=निश्चयेन, प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मरजः=परिहरणार्थं भव्य-जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वार—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय वायुकायसुपमर्दयतीत्याह—‘अस्य चैव जीवितस्य’ इत्यादि । अस्यैव=अल्पकालप्रस्यापिनः, जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम् व्यजन-तालवृन्त-मस्र-ध्मात-फूत्कारा-चञ्चिंसादिभिश्च, शीतोष्णवायु-

टीकार्थ—वायुकाय के समारंभ के विषय में श्री महावीरने ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा बतलाई है । तात्पर्य यह है कि—कर्मरूपी रजको हटाने के लिए भव्य जीव को परिज्ञा अवश्य स्वीकार करना चाहिए, ऐसा उपदेश भगवान्ने दिया है ।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से वायुकाय की विराधना करते हैं ? यह बतलाते हैं—इस अल्पकालीन जीवन के सुख के लिए पंखा, ताड़पंखा हिलाना, घोंकनी का घोंकना, फूंक मारना, आस लेना आदि क्रियाओं द्वारा, तथा शीत और उष्ण वायुका सेवन द्वारा वायुकाय की हिंसा करते हैं ।

टीकार्थ—वायुकायना समारंभना विषयमां श्रीमहावीरे ज्ञपरिज्ञा तथा प्रत्याख्यान-परिज्ञा अतावी छे. तात्पर्य अे छे केः—कर्मरूपी रजने हर करवा माटे लव्य लवोअे परिज्ञाने अवश्य स्वीकार करी देवे. अा प्रभाले लगवाने उपदेश आये छे.

उपभोगद्वार—

लोक कया प्रयोजनशी वायुकायनी विराधना करे छे ? अे अतावे छे. अा अल्प-कायना लवनना सुभ माटे पंखा, ताड़पंखा हलाववा, धमलु धमवी—कूंक मारवी, आस लेवे, आदि क्रियाओद्वारा तथा शीत अने उष्ण (ठंडा अने गरम) वायुना सेवनद्वारा

अलमधिकेन-एवमपि ते मलपन्ति-यदि जिनमत्तयुद्रेकेण साधुरपि नृत्पेत्तदा नास्ति दोष इति ॥ सू० २ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदणमाण्ण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिधायहेउं से सयमेव वाउसत्थं समारंभइ, अण्णेहि वा वाउसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वाउसत्थं समारंमंते समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परि-

ज्यादा क्या कहें । वे यहाँ तक भी बकते हैं कि-जिनराज की भक्ति में मस्त होकर अगर साधु भी नाचने लगे तो भी कोई दोष नहीं है अर्थात् वह आराधक है ॥ सू० २ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं:-‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने वायुकाय के आरंभ के विषय में उपदेश दिया है । इसी जीवन के परिवन्दन, मानन, और पूजन के लिए, जन्म-मरण से छुटकारा पानेके लिए, दुःख का नाश करने के लिए लोग स्वयं वायुकायशख का आरंभ करता है, दूसरों से वायुकायशख का आरंभ कराता है और वायुकायशख का आरंभ करने वाले दूसरों की अनुमोदना करता है । यह उसके अहित के लिए और उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू० ३ ॥

विशेष श्रुं ढहीअे, ते अेटवे सुधी पणु ढडे छे डे-जिनराजनी लकितमां मस्त यधने अगर साधु पणु नाच करवा लागे तो पणु डेअ टोप नथी अर्थात् ते आराधक छे ॥२॥

सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने ढडे छे:-‘तत्थ खलु.’ इत्यादि.

मूलार्थ—भगवाने वायुकायना आरंभना विषयमां उपदेश आये छे. आ एवनना परिवंदन, मानन अने पूज भाटे, जन्म, मरणथी छुटवा भाटे, दुःखना नाश करवा भाटे. लोक स्वयं-चोते वायुकायशखने आरंभ करे छे, भील पासे वायुकायशखने आरंभ करावे छे. अने वायुकायशखने आरंभ करवावाणा भीलने अनुमोदन आये छे. ते अेना (चोताना) अहित भाटे अने तेमनी अबोधिने भाटे छे. ॥ ३ ॥

जानाति=अनुमोदयति । तद्=वायुकायसमारम्भणं, तस्य=वायुकायसमारम्भणं-
कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति । तथा-तद् तस्य अवोपधेय=
सम्यक्त्वालाभाय भवति ॥ सू० ३ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे वायुकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह—
'से तं.' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संवृज्जमाणे आयाणीयं समुद्राय सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणां वा
अंतिप, इहमेगेसि णायं भवइ-एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस
खलु णरए । इच्चत्थं गदिए लोए, जमिणं विस्वस्वेहिं सत्येहिं वाउकम्मसमारंभेणं,
चाउसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगस्वे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ४ ॥

करते हैं । वायुकाय का यह आरंभ करने वाले, कराने वाले और उसकी अनुमोदना करने
वाले को अहितकर होता है तथा अवोपिजनक होता है ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट जिसने वायुकाय का स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार
विचार करता है:—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् से या उनके अनगारों से सुनकर-समझकर जिसने संयम धारण
क्रिया है वह जानता है कि—यह वायुकाय का समारंभ ही ग्रंथ है, यही मोह है, यही मार
है, यही नरक है । इसी में लोग गृह्य हो रहे हैं, क्यों कि नाना प्रकार के शत्रुओं से वायुकाय
के समारंभद्वारा वायुशत्रु का आरंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा
करते हैं ॥ सू० ४ ॥

आरंभ, आरंभ करवावाणाने, करवावनारने अने तेनी अनुमोदना आपवावाणाने
अहितकर थाय छे, तथा अवोपिजनक थाय छे ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदिना समीपमां लेखे वायुकायतुं स्वरूपं समल वीधुं छे, ते आ
प्रभावे विचार करे छे:—'से तं.' इत्यादि.

मूलार्थ—भगवान् पासैथी अथवा तेमना अणुगारे पासैथी सांभणी-समल
ने लेखे संयम धारण करुं छे ते लेखे छे के:—आ वायुकायने-समारंभणं ग्रंथ छे.
अण मोह छे, अण मार छे, अण नरक छे, अणमां लोको गृह्य थई रह्या छे, केमके
नाना प्रकारना शस्त्रैथी वायुकायना समारंभद्वारा वायुशत्रुने आरंभ करता थका
अन्य अनेक प्रकारना प्राणीअनी हिंसा करे छे ॥ सू० ४ ॥

સેવનૈશ્વ, તથા પરિવન્દન-માનન-પૂજનાય, પરિવન્દનં=પ્રશંસા, તદર્થ-દૃતિવાધવેષુ-
 પ્રમૃતિવાદનાદો, માનનં=જનસત્કારસ્તદર્થ, વ્યજનયન્ત્રાદિમ્પચાલનાદો,
 પૂજનં=ચક્ષુરત્નાદિલાભસ્તદર્થ વાયુયાન-વાયુયન્ત્રાદિનિર્માણાદો, તથા જાતિ-
 મરણમોચનાર્થ=દેવપ્રતિમાભિમુલ્લં નૃત્યગીતવાદિત્રયયોગે, વ્યજનચામરાદિવીજને ચ,
 તથા દુઃખપ્રતિઘાતહેતુ=વ્યાધિપ્રતીકારાર્થ નવીનવૈજ્ઞાનિકોદ્ગ્રાહિતવાયુ-
 ચિકિત્સાયાં, તથા-તાલવૃન્તાદિના વાયુકાયોદ્ભાવને સ=જીવનસુલાઘર્થી,
 સ્વયમેવ વાયુશક્તિ=વાયુકાયોપમર્દકં-શક્તિ સમારંભતે=વ્યાપારયતિ, અન્યૈર્વા વાયુ-
 કાયશક્તિ સમારંભયતિ=પ્રયોજયતિ, અન્યાન્ વાયુશક્તિ સમારંભમાણાન્ સમતુ-

તથા પરિવન્દન અર્થાત્ પ્રશંસા પાને કે લિપ્, મશકવાધ ઓર વાંસુરી વજાકર, માનન અર્થાત્
 જનસત્કાર કે લિપ્ વ્યજનયંત્ર (વોજલી કા પંસલા) ગાનયંત્ર (રેડિયો, ગ્રામોફોન આદિ) વજાકર,
 પૂજન અર્થાત્ વલ્લો ંવં રત્નો આદિ કે લામ કે લિપ્ વાયુયાન (પરોલ્હેને) વાયુયંત્ર આદિ કે
 વનાને મેં, તથા જન્મ-મરણ સે છુટકારા પાને કે લિપ્, જૈસે-જિનપ્રતિમા કે આગે નૃત્ય, ગીત
 ઓર વાદિત્ર કા પ્રયોગ કરને મેં, ચામર પંસલા આદિ ડુલને મેં; તથા દુઃખ કા નાશ કરને કે
 લિપ્, જૈસે-વ્યાધિ મિટાને કે લિપ્ આધુનિક વૈજ્ઞાનિકો દ્વારા નિકાલો હુર્ડ વાયુચિકિત્સા
 મેં તથા તાડપંસલા આદિ દ્વારા વાયુકાય કો ડોદોરણા કરને મેં વાયુકાય કી હિંસા કરતે
 હેં । ઇસ પ્રકાર ઇસ જીવન કે સુલ કે અર્થો સ્વયં વાયુકાય કે ઘાતક શક્તો કા સમારંભ
 કરતે હેં, ડૂસરો સે કરાતે હેં ઓર વાયુકાય કા સમારંભ કરને વાલે ડૂસરો કા અંતુમોદન

તથા પરિવન્દન, અર્થાત્ પ્રશંસા મેળવવા માટે મશકવાધ અને વાંસુરી વગેરે
 યજનયંત્ર, વ્યજનયંત્ર તથા ગાનયંત્ર (વિજળીથી ચાલતા પંખા અને રેડિયો
 તથા ગ્રામોફોન) વગેરે યજનયંત્ર, પૂજન અર્થાત્-વલ્લો એવં રત્નો આદિના લાભ
 માટે વાયુયાન (પરોલ્હેન) અને વાયુયંત્ર આદિ યજનયંત્રામાં. તથા જન્મ-મરણથી
 છુટવા માટે. જેમકે:-દેવપ્રતિમાની પાસે નૃત્ય-ગીત અને વાજંત્રનો પ્રયોગ કરવામાં,
 ચામર, પંખા આદિ હલાવવામાં, તથા દુઃખનો નાશ કરવા માટે, જેમકે-વ્યાધિ મટાડવા
 માટે આજકાલના વૈજ્ઞાનિકદ્વારા શોધ કરાયેલી વાયુચિકિત્સામાં, તથા તાડપંસલા
 પંખાદ્વારા વાયુકાયની ઉદોરણામાં વાયુકાયની હિંસા કરે છે. જે પ્રમાણે આ જીવનના
 સુખના અર્થો પોતે વાયુકાયના ઘાતક શક્તોનો સમારંભ કરે છે, યજનયંત્ર પાસે કરાવે છે.
 અને વાયુકાયનો સમારંભ કરવાવાળા યજન અંતુમોદન આપે છે. વાયુકાયનો જે

जानाति=अनुमोदयति । तद्=वायुकायसमारम्भणं, तस्य=वायुकायसमारम्भणं-
कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति । तथा=तत् तस्य अवोधये=
सम्यक्त्वालाभाय भवति ॥ सू० ३ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे वायुकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह—
'से तं.' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संवृज्जमाणे आयाणीयं समुद्राय सोचा खलु भगवओ अणगाराणां वा
अंतिण, इहमेगेसि णायं भवइ-एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस
खलु णरए । इच्चत्थं गट्टिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं,
वाउसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ४ ॥

करते हैं । वायुकाय का यह आरंभ करने वाले, कराने वाले और उसकी अनुमोदना करने
वाले को अहितकर होता है तथा अवोधिजनक होता है ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट जिसने वायुकाय का स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार
विचार करता है:—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् से या उनके अनगारी से सुनकर-समझकर जिसने संयम धारण
क्रिया है वह जानता है कि—यह वायुकाय का समारंभ ही ग्रंथ है, यही मोह है, यही मार
है, यही नरक है । इसी में लोग गृह्य हो रहे हैं, क्योंकि नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय
के समारंभद्वारा वायुशस्त्र का आरंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा
करते हैं ॥ सू० ४ ॥

आरंभ, आरंभ करवावाणाने, करवानारने अने तेनी अनुमोदना आपवावाणाने
अहितकर थाय छे, तथा अणोधिननक थाय छे ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदिना समीपमां जेहे वायुकायनुं स्वइप समलु वीधुं छे, ते आ
प्रभाहे विचार करे छे:—'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् पासैथी अथवा तेमना अणुगारे पासैथी सांलणी-समलु
ने जेहे संयम धारणु कयुं छे ते जलु छे के:—आ वायुकायने-समारंभणं ग्रंथ छे,
जेण मोह छे, जेण मार छे, जेण नरक छे, जेमां लोकें गृह्य अर्थ रह्या छे, केमके
नाना प्रकारना शस्त्रेथी वायुकायना समारंभद्वारा वायुशस्त्रने आरंभ करता थका
अन्य अनेक प्रकारनां प्राणीजिनी हिंसा करे छे ॥ सू० ४ ॥

સેવનૈશ્વ, તથા પરિવન્દન-માનન-પૂજનાય, પરિવન્દન=પ્રશંસા, તદર્થ-દૃતિવાઘવેષુ-
 પ્રભૃતિવાદનાદૌ, માનન=જનસત્કારસ્તદર્થ, વ્યજનયન્ત્રાદિપ્રચાલનાદૌ,
 પૂજન=વસ્ત્રરત્નાદિલાભસ્તદર્થ વાયુયાન-વાયુયન્ત્રાદિનિર્માણાદૌ, તથા જાતિ-
 મરણમોચનાર્થ=દેવપ્રતિમામિમુલ્કં નૃત્યગીતવાદિત્રપયોગે, વ્યજનચામરાદિવીજને ચ,
 તથા દુઃખપ્રતિઘાતદ્દેતુ=વ્યાધિપત્તીકારાર્થ નવીનવૈજ્ઞાનિકોદ્ધાવિતવાયુ-
 ચિકિત્સાયાં, તથા-તાલવૃન્તાદિના વાયુકાયોદ્ભાવને સ=જીવનસુલાઘર્થી,
 સ્વયમેવ વાયુશક્તિ=વાયુકાયોપમર્દકં-શક્તિ સમારંભતે=વ્યાપારયતિ, અન્યૈર્વા વાયુ-
 કાયશક્તિ સમારંભયતિ=પયોજયતિ, અન્યાન્ વાયુશક્તિ સમારંભમાણાન્ સમન્-

તથા પરિવન્દન અર્થાત્ પ્રશંસા પાને કે લિષ્ટ, મશકવાયુ ઓર વૉસુરી વજાકર, માનન અર્થાત્
 જનસત્કાર કે લિષ્ટ વ્યજનયન્ત્ર (વીજલી ક્વા પંક્લા) ગાનયન્ત્ર (રેડિયો, પ્રામોફોન આદિ) વજાકર,
 પૂજન અર્થાત્ વલ્લોં એવં રુનો આદિ કે લામ કે લિષ્ટ વાયુયાન (પ્રોલ્લેને) વાયુયન્ત્ર આદિ કે
 વનાને મેં, તથા જન્મ-મરણ સે છુટકારા પાને કે લિષ્ટ, જૈસે-જિનપ્રતિમા કે આગે નૃત્ય, ગીત
 ઓર વાદિત્ર ક્વા પ્રયોગ કરને મેં, ચામર પંક્લા આદિ ડુલને મેં; તથા દુઃખ ક્વા નાશ કરને કે
 લિષ્ટ, જૈસે-વ્યાધિ મિટાને કે લિષ્ટ આધુનિક વૈજ્ઞાનિકો દ્વારા નિકાલો હુઈ વાયુચિકિત્સા
 મેં તથા તાડપંક્લા આદિ દ્વારા વાયુકાય કો ઉદોરણા કરને મેં વાયુકાય કો હિંસા કરતે
 હેં । ઇસ પ્રકાર ઇસ જીવન કે સુખ કે અર્થો સ્વયં વાયુકાય કે ઘાતક શક્તો ક્વા સમારંભ
 કરતે હેં, દુસરોં સે કરાતે હેં ઓર વાયુકાય ક્વા સમારંભ કરને વાલે દુસરોં ક્વા અનુમોદન

તથા પરિવન્દન, અર્થાત્ પ્રશંસા મેળવવા માટે મશકવાયુ અને વાંસળી વગેરે
 ખબલીને, વ્યજનયન્ત્ર તથા ગાનયન્ત્ર (વિજળીથી ચાલતા પંખા અને રેડીઓ
 તથા ગ્રામોફોન) વગેરે ખબલીને, પૂજન અર્થાત્-વસ્ત્રો એવં રુનો આદિના લાભ
 માટે વાયુયાન (એરોપ્લેન) અને વાયુયન્ત્ર આદિ ખનાવવામાં. તથા જન્મ-મરણથી
 છુટવા માટે. જેમકે:-દેવપ્રતિમાની પાસે નૃત્ય-ગીત અને વાજાંત્રનો પ્રયોગ કરવામાં,
 ચામર, પંખા આદિ હલાવવામાં, તથા દુઃખનો નાશ કરવા માટે, જેમકે-વ્યાધિ મટાડવા
 માટે આજ્ઞાલના વૈજ્ઞાનિકદ્વારા શોધ કરાએલી વાયુચિકિત્સામાં, તથા તાડપત્રના
 પંખાદ્વારા વાયુકાયની ઉદીરણામાં વાયુકાયની હિંસા કરે છે. એ પ્રમાણે આ જીવનના
 સુખના અર્થો પોતે વાયુકાયના ઘાતક શક્તોના સમારંભ કરે છે, ખીબની પાસે કરાવે છે.
 અને વાયુકાયનો સમારંભ કરવાવાળા ખીબને અનુમોદન આપે છે. વાયુકાયનો એ

कार्योपचारात् । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः वायुशस्त्रसमारम्भः, मोहः=विपर्यासः
=अज्ञानम् । तथा एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा एष एव नरकः=
नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थ=एतदर्थं ग्रन्थमोहमरणनरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थ-
मेव, लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृहः=लिप्सुरस्ति । यद्वा गृहः=भोगामिलापी,
लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थ=एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तत इति शेषः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तत इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ? इति
जिज्ञासायामाह—'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः पूर्वोक्तप्रकारैः वायुकर्म-

कार्य का उपचार करके कर्मबंध के कारण को मूल में कर्मबंध कहा है । आगे भी इसी
प्रकार समझ लेना चाहिए । तथा यह वायुकाय का समारंभ अज्ञानरूप है, यह निगोद
आदि में मृत्यु का कारण है, और नरक है अर्थात् नारकीय यातनाओं का स्थान है ।

ग्रंथ, मोह मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल पाकर भी अज्ञानी जीव बार-बार
इसी की लालसा करते हैं । अथवा भोगों के अभिलाषी संसारी जीव इस ग्रंथ, मोह, मरण
और नरकरूप फल के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

लोक कर्मबंध के लिए ही पुनः-पुनः प्रवृत्ति करते हैं, यह जो कहा है सो किस प्रकार
जाना जाय ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—'यदिमम्.' इत्यादि ।

क्यों कि नाना प्रकार के, वायुकाय की विराधना करने वाले सावध व्यापार

कार्येना उपचार करीने कर्मबंधनां कारणेने मूलमां कर्मबंध कडेले छे. आगण पक्ष
आ प्रकारे समझ लेवुं लेईये. तथा ये वायुकायने समारंभ अज्ञानरूप छे. ये
निगोद आदिमां मृत्युनुं कारण छे (अर्थात् निगोदमां लई जावावाणे छे.) अने नरक
छे. अर्थात् नारकीय यातनाओंनुं स्थान छे.

ग्रंथ, मोह, मरण अने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पक्ष अज्ञानी
एव बार-बार अनी लालस करे छे, अथवा भोगेना अभिलाषी संसारी एव आ
ग्रंथ, मोह, मरण अने नरकरूप फल माटेव प्रवृत्ति करे छे.

लोक कर्मबंध माटेव पुनः पुनः प्रवृत्ति करे छे. ये प्रमाणे ने कहुं छे ते
कैवी रीते लखी शक्य ? अनी लालसा थतां कडे छे—'यदिमम्.' इत्यादि.

कैसेके नाना प्रकारधी वायुकायनी विराधना करवावाणा सावधव्यापारद्वारा ते

छाया—

स तत् संयुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्घं गृद्धो लोकः, यदिसं विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकर्मसमारम्भेण वायुशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विदिनस्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावद्ययोगविरितिरूपं चारित्र्यं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य, विहरति, स तत्=वायुकाय समारम्भणं संयुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन्नेवं विभावयति—

इह=मनुष्यलोके, एकैषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञातसम्यगवबोधवैराग्याणा-मात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—' एष खलु ग्रन्थः ' इत्यादि ।

एषः वायुशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे

टीकार्थ— जिस पुरुषने तीर्थंकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के मुखारविन्द से सुनकर सर्व सावद्य का त्यागरूप संयम अंगीकर किया है वह वायुकाय के समारंभ को अहितकर और अबोधिजनक समझता हुआ इस प्रकार विचारता है—

इस लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करने वाले आत्मार्थी जनों को ही यह विदित होता है कि—

वायुशस्त्र का यह समारंभ निश्चितरूप से कर्मबंध का कारण है । कारण में

टीकार्थ—ये पुरुषे तीर्थंकर लगवान् अथवा तेभना अनुयायी श्रमण-निर्ग्रन्थानां मुखारविन्दशी सांलणीने सर्व सावद्यना त्यागरूप संयम अंगीकार करी छे, ते वायुकायना समारंभने अहितकर अने अबोधिजनक समझता थका आ प्रभाले विशारे छे—

आ लोकभां श्रमण निर्ग्रन्थाना उपदेशशी सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य प्राप्त करवा-वाणा आत्मार्थी एवोनेज् अने जणुवामां छे के:-

वायुशस्त्र आने। समारंभ निश्चितरूपशी कर्मबंधनुं कारण छे. कारणभां

टीका—

तद् व्रत्रीमि=वायुकायहिंसया यथा बहुधिधाः प्राणिनः प्रणश्यन्ति, तत् कथयामि—संपातिमाः=उत्पत्योत्पत्यपतनशीलाः, प्राणाः=प्राणिनः सन्ति = वायुकायमाश्रित्व विद्यन्ते । एते संपातिमाः आहत्य=व्यजनतालवृन्तवत्त्वादिभिः प्रोद्भावितवायुकायादाघातं प्राप्य, संपतन्ति=वायुवेगसमाकृष्टाः प्राणापगमायोद्विग्नास्तत्रैव वायुकाये संविशन्ति, संश्लिष्यन्तीत्यर्थः ।

स्पर्शं चेति । स्पर्शोऽस्यास्तीति स्पर्शः=स्पर्शवान्, तं स्पर्शं=वायुकार्यं, स्पृष्टाः=स्पर्शकर्तारः, आर्पत्वात् कर्तरि क्तः । एके=वायुवेगसमाहताः प्राणिनः, संघातमापद्यन्ते=परस्परसंघर्षेण गात्रसंकोचं प्राप्नुवन्ति ।

ये तत्र=वायुकाये संपतिताः संघातमापद्यन्ते, ते तत्र=वायुकाये

टीकार्थ—वायु की हिंसा से अनेक प्रकार के प्राणियों का घात किस प्रकार होता है सो कहता हूँ । संपातिम अर्थात् उड़-ऊड़कर पड़ने वाले अनेक जीव वायुकाय के आश्रित रहते हैं । ये संपातिम जीव पंखा, तालवृन्त—पंखा कि एक जाति, वल आदि से ऊदीरणा की हुई वायुकायद्वारा आघात पाकर गिर पड़ते हैं, अर्थात् वायु के वेग से खिंचकर धराये हुए वायुकाय के साथ हो जुड़-से जाते हैं ।

यहाँ स्पर्श का अर्थ है स्पर्शवान् अर्थात् वायु । कोई-कोई वायु के वेग से आहत हुए जीव संघात को प्राप्त होते हैं अर्थात् परस्पर रगड़ खाकर सिकुड़ जाते हैं ।

वायुकाय में पड़े हुए जो जीव सिकुड़ जाते हैं वे वायुकाय के आघात से

टीकार्थ—वायुकायनी हिंसाथी अनेक प्रकारनां प्राणीयोना घात डेवी रीते थाय छे. ते हुं कहुं छुः—संपातिम—उडी-उडीने पडवावाणा अनेक एव वायुकायना आश्रये रहे छे. ते संपातिम एव, पंभा, तालपत्र, वल आदिथी उदीरणा करायेला वायुकायद्वारा आघात पायीने पडी नय छे. अर्थात् वायुना वेगथी जेआथिने गलरायेला वायुकायनी साथे नोडार्थ नय छे.

अही स्पर्शना अर्थ छे—स्पर्शवान्—अर्थात् वायु डेअर्थ-डेअर्थ वायुना वेगथी आहत-ताडन करायेला एव संघात-जथापक्षाने प्राप्त थाय छे. अर्थात् परस्पर घसडाथिने संकोआर्थ नय छे.

वायुकायमां पडेला जे एवो संकोआर्थ नय छे ते वायुकायना आघातथी भूछिंत

समारम्भेण=वायुकायोपमर्दनरूपसावधव्यापारेण, इमं=वायुकायं विहितस्ति । तथा-
वायुशस्त्रं समारम्भमाणः=व्यापारयन्, अन्यान्=पृथिवीकायादीन्, अनेकरूपान्
स्थावरांश्चसांश्च, प्राणान्=माणिनः विहितस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ४ ॥

वायुशस्त्रं समारम्भमाणा अनेकविधान् जीवान् कथं विहितसन्ति, तत् च प्रति-
शोधयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह—' से वेमि. ' इत्यादि ।

मूलम्—

से वेमि-सन्ति संपादमा पाणा आहृच्च संपर्यति य, फरिसं च खलु पुट्टा एगे
संघायमावज्जन्ति । जे तत्थ संघायमावज्जन्ति, ते तत्थ परियावज्जन्ति । जे तत्थ
परियावज्जन्ति ते तत्थ उदायन्ति ॥ सू० ५ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि-सन्ति संपातिमाः प्राणाः, आहत्य संपतन्ति च, स्पर्शं च खलु
स्पृष्टा एके संघातमापद्यन्ते । ये तत्र संघातमापद्यन्ते, ते तत्र पर्यापद्यन्ते । ये तत्र
पर्यापद्यन्ते ते तत्रापद्रावन्ति ॥ ५ ॥

द्वारा वे वायुकाय का घात करते हैं । तथा वायुकाय के शस्त्रों का प्रयोग करते हुए पृथ्वीकाय
आदि अनेक प्रकार के स्थावरों का, तथा त्रस जीवों का उपमर्दन करते हैं ॥ सू. ४ ॥

वायुकाय के शस्त्रों का प्रयोग करने वाले नाना प्रकार के जीवों की हिंसा कैसे करते
हैं ? यह बतलाने के लिए श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं:—'से वेमि.' इत्यादि ।

मूलार्थ—वह मैं कहता हूँ—एकएक उडकर पडने वाले जीव हैं जो अचानक
आपडते हैं, और वायुकाय से स्पृष्ट होकर कोई-कोई संघात को प्राप्त होते हैं । जो
संघात को प्राप्त होते हैं उनका शरीर सिकुड जाता है, मूर्छित हो जाते हैं, वे मर भी
जाते हैं ॥ सू० ५ ॥

वायुकायनेा घात करे छे. तथा वायुकायना शस्त्रेनेा प्रयोग करता थका पृथ्वीकाय
आदि अनेक प्रकारना स्थावरेा तथा त्रसल्लवेानुं उपमर्दन (नाश) करे छे. ॥ सू. ४ ॥

वायुकायना शस्त्रेना प्रयोग करवावाणा नाना प्रकारना ल्लवेानी हिंसा केवी रीते
करे छे ? अे अताववा भाटे श्री सुधर्मा स्वामी कहे छे:—' से वेमि. ' इत्यादि.

मूलार्थ—हुं ते कहुं धुं-अेकअेक (अेाश्रिता) उडीने पडवावाणा ल्लव छे.
ते अयानक आवी पडे छे, अने वायुकायथी स्पृष्ट थधने डोर्ध-डोर्ध अथाइपे थाय
छे. अे संघात-समुदाय-अथाइपभां प्राप्त थाय छे, तेनुं शरीर संकेआर्ध अय छे,
मूर्छित थर्ध अय छे, अने ते मरी पषु अय छे. ॥ सू. ५ ॥

एत्थं सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति । तं परिण्णाया मेहावी णेव सयं वाउसत्थं समारंभेज्जा, णेवज्जणेहिं वाउसत्थं समारंभावेज्जा, णेवज्जणे वाउसत्थं समारंभते समणुजाणेज्जा, जस्सेते वाउसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति, से ह्मुणी परिण्णायकम्मे—त्ति वेमि ॥ सू० ६ ॥

छाया—

अत्र शस्त्रं समारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रमसारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । तं परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं वायुशस्त्रं समारंभेत, नैवान्यैर्वायुशस्त्रं समारंभेत्, नैवान्यान् वायुशस्त्रं समारंभमाणान् समनुजानीयात् । यस्यैते वायुशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ६ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् वायुकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं समारंभणास्य=व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरणत्रियोगैः कृता आरम्भाः=वायुकायोपमर्दनरूपाः

को कर्मबंध का कारण नहीं समझता । वायुकाय में शस्त्रों का व्यापार न करने वाला इन व्यापारों को कर्मबंध का कारण समझता है । उसे जानकर विवेकी पुरुष स्वयं वायु शस्त्र का आरम्भ न करे, दूसरों से वायुशस्त्र का आरम्भ न करावे और वायुशस्त्र का आरम्भ करने वालों का अनुमोदन न करे । जो वायुकाय के शस्त्रों के व्यापार को जानता है वही मुनि है, वही सावध व्यापार का त्यागी है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—वायुकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का उपयोग करने वाला तीन करण तीन योग से किये जाने वाले और वायुकाय के घातक सावध व्यापारों को कर्मबंध

कर्मबंधनुं कारण्य समञ्जता नहीं, वायुकायमां शस्त्रोना व्यापार नहिं करवावाणा ते व्यापारने कर्मबंधनुं कारण्य समञ्जे छे. तेने जण्णीने विवेकी पुंश्च पोते वायुशस्त्रोना आरंल करे नहिं, भीज्जा पासे वायुशस्त्रोना आरंल करावे नहिं, अने वायुशस्त्रोना आरंल करवावाणोने अनुमोदन आपे नहिं. जे वायुकायना शस्त्रोना व्यापारने जण्णे छे तेज्ज मुनि छे. तेज्ज सावध व्यापारना त्यागी छे. आहुं—(आ प्रभाण्णे) हुं कहुं छुं. ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—वायुकायना विषयमां पूर्वोक्त शस्त्रोना उपयोग करवावाणा, त्रण्य करण्य त्रण्य योग्धीं करवामां आपता अने वायुकायना घातक सावध व्यापारोने कर्मबंधनुं कारण्य

સંશ્લિષ્ટા પર્યાપદન્તે=વાયુકાયાઘાતેન મૂર્છાપાપ્તુવન્તિ-પ્રણયત્ચેતના ભવન્તીત્યર્થઃ ।
 યે તત્ર=પર્યાપદન્તે, તે તત્ર=વાયુકાયા, અપદ્રાવન્તિ=પ્રાણૈર્વિયુજ્યન્તે ।

વાયુશસ્ત્રસમારમ્ભેણ ન કેવલં વાયુજીવવિરાધના જાયતે, કિન્તુ સર્વદિક્-
 સંચારિણાં સંપાતિમજીવાનામન્યેપાં ચ વહુવિધાનાં હિંસાઽપિ દુર્નિવારા ભવતીતિ
 ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

एवं वायुकायस्य सचित्तत्वं चिदित्वा मुनित्वमाप्तये त्रिकरण-त्रियोगैस्तत्समा-
 रम्भो वर्जनीय इत्याशयेनाह—' एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

મૂલમ્—

एत्थ सत्थं समारम्भमाणस्त इच्छेते आरंभा अपरिण्णया भवंति ।

મૂર્છિત્ત હો જાતે હૈં—અનકી ચેતના નષ્ટ હો જાતી હૈ, ઔર જો મૂર્છિત્ત હો જાતે હૈં વે પ્રાણો સે
 રહિત્ત હો જાતે હૈં અર્થાત્ મર જાતે હૈં ।

વાયુકાય કે શસ્ત્ર કા આરમ્ભ કરને સે અકેહે વાયુકાય કી હી વિરાધના નહીં હોતી
 વરન્ સમી દિશાઓ મેં ફિરને વાહે સંપાતિમ જીવો કી તથા અન્ય અનેક પ્રકાર કે જીવો કો
 હિંસા હોના મી અનિવાર્ય હૈ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

इस प्रकार वायुकाय की सचित्तता समझकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन करण
 तीन योग से वायुकाय का समारम्भ त्यागने योग्य है । इस आशय से सूत्रकार कहते हैं—
 'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

મૂલાર્થ—વાયુકાય કે વિષય મેં શસ્ત્ર કા વ્યાપાર કરને વાલા ઇન વ્યાપારો

થઈ જાય છે—તેની ચેતના નાશ પામી જાય છે. અને જે મૂર્છિત્ત થઈ જાય છે તે
 પ્રાણોથી રહિત પણ થઈ જાય છે અર્થાત્ મરણ પામે છે.

વાયુકાયના શસ્ત્રનો આરંભ કરવાથી, એકલા વાયુકાયના જીવોનીજ વિરાધના
 થાય છે એટલુંજ નહિ પરન્તુ સર્વ દિશાઓમાં ફરવાવાળા સંપાતિમ જીવોની તથા
 અન્ય અનેક પ્રકારના જીવોની ઘાત થવી તે પણ અનિવાર્ય છે. ॥સૂ. ૫॥

આ પ્રમાણે વાયુકાયની સચિત્તતા સમજીને સાધુતા પ્રાપ્ત કરવા માટે ત્રણ
 કરણ ત્રણ યોગથી વાયુકાયનો સમારંભ ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે. એ આશયથી
 સૂત્રકાર કહે છે:—'एत्थ सत्थं.' इत्यादि.

મૂલાર્થ:—વાયુકાયના વિષયમાં શસ્ત્રનો વ્યાપાર કરવાવાળાઓ એ વ્યાપારોને

सावधव्यापाराः, परिज्ञाताः=ज्ञ-परिज्ञया बन्धकारणतया विदिताः, प्रत्याख्यान-परिज्ञया च परिवर्जिता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जित-सकलसावधव्यापारः, मुनिर्भवति ।

ननु त्रिकरणत्रियोगैर्वायुकायविराधनापरिहारेण यस्तु परिज्ञातकर्मा स एव मुनिर्भवतीत्युक्तं तत्कथमुपपद्यते ? यतो हि गच्छता तिष्ठता आसीनेन स्वपता भुञ्जानेन भाषमाणेन वायुकायविराधना दुष्परिहरा कथं तर्हि मुनिश्चेत् तिष्ठेत् आसीत् शयीत् भुञ्जीत् भाषेत ? इति । अत्रोच्यते—मुनिनां सर्वं स्वकर्तव्यं यतनयैव संपादनीयम्, अत एवोक्तं भगवता—

कर्मबन्ध का कारण जान लिया और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है वही तीन करण और तीन योग से त्याग करने वाला मुनि होता है ।

शंका—‘तीन करण और तीन योग से वायुकाय की विराधना का त्याग करने वाले ही मुनि होते हैं’ यह कथन किस प्रकार सही हो सकता है ? चलने, ठहरने, बैठने, सोने, आहार करने और भाषण करने में वायुकाय की विराधना से बच नहीं सकते । ऐसी दशा में मुनि कैसे चले, कैसे ठहरे कैसे बैठे, कैसे सोए, कैसे भोजन करे और कैसे बोले ?

समाधान—मुनि को अपनी सब क्रियाएँ यतनापूर्वक ही करनी चाहिए । भगवान् ने कहा हैः—

अन्धन्तुं क्खरुत्थुं छे’ अथे भण्णी लीधुं छे अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाधी तेने त्यत्थुं दीधा छे, ते त्रत्थुं क्खरुत्थुं अने त्रत्थुयोगधी त्याग करवावाणा मुनि होय छे.

शंका—‘त्रत्थुं क्खरुत्थुं अने त्रत्थुयोगधी वायुकायनी विराधनाने त्याग करवावाणा न मुनि होय छे.’ आ वचन केवी रीते सात्थुं होई शके छे ? आलतां, भेसतां, शैकातां, सुतां, बोधन करतां अने लापत्थुं करतां वायुकायनी विराधनाधी अथी शकत्तुं नथी. अथी दशाभां मुनि केवी रीते आले, केवी रीते भेसे, केवी रीते शैकाय, केवी रीते सुवे, केवी रीते बोधन करे अने केवी रीते आले ?

समाधान—मुनिअे पोतानी सर्वं क्रियाअे यतनापूर्वक करवी अेअेअे, भगवाने कथुं छे—

सावधव्यापाराः, अरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगताः भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेव वायुकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्यु-
ञ्जानस्य, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः, परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरि-
ज्ञया परिज्ञाताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति, तं प्रकारं दर्शयति—‘तद्
परिज्ञाय’ इत्यादि । तद्=वायुकायारम्भणं, परिज्ञाय=‘कर्मबन्धस्य कारणं भवती’
त्यवगत्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः स्वयं वायुशस्त्रं नैव समारभेत=नैव
व्यापारयेत्, अन्यैर्वायुशस्त्रं नैव समारम्भयेत्, वायुशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान्
नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते वायुशस्त्रसमारम्भाः=वायुकायमुद्दिश्य शस्त्रैस्तदुपमर्दनरूपाः

का कारण नहीं समझता । अर्थात् उसे यह ज्ञान नहीं होता कि—‘इन पाप-कृत्यों से मुझे
कर्म का बंध होगा’

लेकिन इसी वायुकाय के विषय में शस्त्रों का आरंभ न करने वाला सावध व्यापारों
को ज्ञपरिज्ञा से जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विक प्रत्याख्यानपरिज्ञा जिस प्रकार होती है सो दिखलते हैं—वायुकाय के
आरंभ को कर्मबंध का कारण जानकर हेयोपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष स्वयं वायुशस्त्र
का आरंभ न करे, दूसरों से वायुशस्त्र का आरंभ न करावे और वायुशस्त्र का आरंभ करनेवालों
का अनुमोदन न करे ।

जिसने वायुकायसंबंधी इन आरंभों को अर्थात् सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से

समझता नहीं, अर्थात् तेभने अज्ञान शयुं नहीं है—‘आ पापकृत्येभ्यो भवे कर्मनो
बंध यशे.’ परंतु आ वायुकायना विषयमां शस्त्रोना आरंभ नहि करवावाणा सावध
व्यापारोने ज्ञपरिज्ञाथी नाले छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्यज्ते छे छे. ज्ञपरिज्ञापूर्विक
प्रत्याख्यानपरिज्ञा ले प्रभाले छे छे. ते भतावे छे—वायुकायना आरंभने कर्मबंधनं
कारण नालीने छेय-उपादेयना विवेक राभवावाणा पुरुष पोतेज् वायुशस्त्रोना आरंभ
करे नहि. भील पासे वायुशस्त्रोना आरंभ करवे नहि. अने वायुशस्त्रोना आरंभ
करवावाणाने अनुमोदन आपे नहि.

ले वायुकायसंबंधी अज्ञानसे अर्थात् सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञाथी ‘कर्म-

सावधव्यापाराः, परिज्ञाताः=ज्ञ-परिज्ञया चन्धकारणतया विदिताः, प्रत्याख्यान-परिज्ञया च परिवर्जिता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जित-सकलसावधव्यापारः, मुनिर्भवति ।

ननु त्रिकरणत्रियोगैर्वायुकायविराधनापरिहारेण यस्तु परिज्ञातकर्मा स एव मुनिर्भवतीत्युक्तं तत्कथमुपपद्यते ? यतो हि गच्छता तिष्ठता आसीनेन स्वपता भ्रुञ्जानेन भाषमाणेन वायुकायविराधना दुष्परिहारा कथं तर्हि मुनिश्चरेत् तिष्ठेत् आसीत् शयीत् भ्रुञ्जीत् भाषेत् ? इति । अत्रोच्यते—मुनिनां सर्वं स्वकर्तव्यं यतनयैव संपादनीयम्, अत एवोक्तं भगवता—

कर्मवच का कारण जान लिया और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है वही तीन करण और तीन योग से त्याग करने वाला मुनि होता है ।

शंका—‘तीन करण और तीन योग से वायुकाय की विराधना का त्याग करने वाले ही मुनि होते हैं’ यह कथन किस प्रकार सही हो सकता है ? चलने, ठहरने, बैठने, सोने, आहार करने और भाषण करने में वायुकाय की विराधना से बच नहीं सकते । ऐसी दशा में मुनि कैसे चले, कैसे ठहरे कैसे बैठे, कैसे सोए, कैसे भोजन करे और कैसे बोले ?

समाधान—मुनि को अपनी सब क्रियाएँ यतनापूर्वक ही करनी चाहिए । भगवान्ने कहा हैः—

अन्धर्मुं कश्चिद्दृष्टुं शक्यं न तेषां दृष्टुं शक्यं अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेने त्यज्ज दीधे छे, ते त्रलु कश्चिद्दृष्टुं अने त्रलुयोगथी त्याग करवावाणा मुनि छे।

शंका—‘त्रलु कश्चिद्दृष्टुं अने त्रलुयोगथी वायुकायनी विराधनानो त्याग करवावाणा न मुनि छे।’ आ वचन केवी रीते सासुं छे। शक्यं छे ? आलतां, जेसतां, शकतां, सुतां, बोजन करतां अने लाषण करतां वायुकायनी विराधनाथी अथी शक्यं नथी। जेवी दशाभां मुनि केवी रीते आदे, केवी रीते जेसे, केवी रीते शक्य, केवी रीते सुवे, केवी रीते बोजन करे अने केवी रीते जेदे ?

समाधान—मुनिजे चेतानी सर्वं क्रियाओ यतनापूर्वक करवी जेधजे, लजवाने कहुं छे—

“ જયં ચરે જયં ચિદ્દે, જયમાસે જયં સપ્ ।

જયં શુંજંતો ભાસંતો, પાપકર્મ્મં ન વંધઈ ” ॥ ૧ ॥

નનુ ગમનાગમનાદૌ યતનાયાઃ મુસંપાઘત્વેઽપિ ભાપણયતના કથં વિવેચા ? કથમપિ ભાપણે હિ વાયુકાયવિરાધના પરિહર્તુઃ ન શક્યતે, કથં મુનિર્યતનયા ભાપેત ? ભાપણે વાયુકાયવિરાધનયા સાદ્દં મૃક્ષ્મવ્યાપિસંપાતિમજીવાનામપિ વિરાધના-ઽવશ્યમ્ભાવિની, તેપાં વાયુવેગસમાક્રુપ્ટાનામાહત્ય સંપતનેન, વાયુસંસ્પર્શેન ચ સંઘાત પર્યાપત્ય-પદ્રાવણાન્તં ભવતીત્યત્રૈવોદ્દેશેઽભિદ્ધિતત્વાત્ ? ઇતિ ચેદુચ્યતે—

મુખવલ્લિકાવંધનં ભાપણયતના ભગવતા પ્રતિવોધિતા, ઇપ વાયુકાય-

“યતનાપૂર્વક ચલે, યતનાપૂર્વક સ્વઠા રહે, યતનાપૂર્વક વેઢે, યતનાપૂર્વક સોણ, યતનાપૂર્વક મોજન કરે ઓર યતનાપૂર્વક ઘોલે તો (સાધુ) પાપકર્મ કા વંધ નહીં કરતા હૈ ” ॥૧॥

શુદ્ધા—જાને-આને મેં યતના સરલતા સે હો સકતી હૈ મગર ઘોલને કી યતના કિસ પ્રકાર કરની ઇાહિણ ? ઘોલને મેં વાયુકાય કી વિરાધના કીસી મી પ્રકાર નહીં ટલ સકતી તો મુનિ કિસ પ્રકાર ભાપણ કરે ? ભાપણ કરને મેં વાયુકાય કી વિરાધના કે સાથ સર્વત્ર વ્યાપ્ત ઇોટે-ઇોટે સંપાતિમ જીવો કી વિરાધના મી અવશ્ય હોતી હૈ । ઇસી ઉદ્દેશ મેં વતલાયા ગયા હૈ કિ—સંપાતિમ જીવ વાયુ કે વેગ સે સ્વિચકર આ પડતે હૈ ઓર વાયુ કે સ્પર્શ સે સંઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈ, મૂઢિત્ત હો જાતે હૈ ઓર મર મી જાતે હૈ ।

સમાધાન—મગવાન્ ને મુખવલ્લિકા વાંધના ભાપણો કી યતના વતલાઈ હૈ ।

‘યતનાપૂર્વક ચાલે, યતનાપૂર્વક ઝેસે, યતનાપૂર્વક રોકાય; યતનાપૂર્વક સુવે, યતનાપૂર્વક ઠોળન કરે, અને યતનાપૂર્વક ઘોલે તો (સાધુ) પાપ કર્મને વાંધ કરતા નથી. ॥૧॥

શંકા—જવા આવવામાં યતના સરલતાપૂર્વક થઈ શકે છે, પરંતુ ઘોલવાની યતના કેવી રીતે કરવી જોઈએ ? ઘોલવામાં વાયુકાયની વિરાધના કોઈ પણ પ્રકારથી ટળી શકતી નથી, તો મુનિ કેવી રીતે ભાષણ કરે ? ભાષણ કરવામાં વાયુકાયની વિરાધનાની સાથે સર્વત્ર વ્યાપ્ત નાના-નાના સંપાતિમ જીવોની વિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે. આ ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવ્યું છે કે-સંપાતિમ જીવ વાયુના વેગથી જે સ્પર્શને આવી પડે છે; અને વાયુના સ્પર્શથી સંઘાત-(સમુદાય)ને પામે છે, મૂઢિત થઈ જાય છે. અને મરણ પણ પામે છે.

સમાધાન—મગવાને મુખવલ્લિકા વાંધવી તે ભાષણની યતના બતાવી છે. આ વાયુકાયને

समारम्भः ग्रन्थमोहमारनरकरूपस्तस्मादहितोऽयमिति मत्वा वायुकायविराधनया शान्तिमार्गावलम्बिनः संयमिनः प्राणान् धारयितुमपि नावकाङ्क्षन्तीत्यत्रैवोद्देशे समुपदिशता भगवता भाषणयतनारूपं मुखवस्त्रिकावन्धनमिति सूचितम् । उक्तञ्च समुत्थानसूत्रे—

“.....तओ पच्छा गोयमा ! सर्लिगे मुहपत्तिं मुहेण सद्धिं बंधे ॥ १ ॥

मुहपत्तीः णं भंते ! किंपमाणा ? गोयमा ! मुहप्पमाणा मुहपत्ती । मुहपत्ती णं भंते ! कस्स वत्थस्स कडे ? गोयमा ! एगस्सवि सेयवत्थस्स णं अट्टपुडलाए मुहपत्तिं करेह ॥ २ ॥

कस्सट्ठं मुहपत्तीए णं अट्ट पुडलाइं ? गोयमा ! अट्टकम्मदहणट्ठं ॥

मुहपत्ती णं भंते ?, कहां बंधे ?, गोयमा ! एगकन्नेण दुच्चकन्नप्पमाणेण दोरेण सद्धिं मुहे बंधेह । मुहपत्तीएणं भंते ! के अट्टे ?, गोयमा ? जण्णं मुहअंते सइ वट्ठति से तेणट्ठेणं मुहपत्ती । कस्सट्ठंभंथे ! मुहपत्तिं मुहेणसद्धिं बंधे ?, गोयमा ! सर्लिगवाउ-जीवरक्खणट्ठं ॥ ३ ॥

जइ णं भंते ! मुहपत्ती वाउजीवरक्खणट्ठाए तो किं सुहुमवाउकायजीवरक्खण-ट्ठाए वा वायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए वा ? गोयमा ! णोति सुहुमवाउकायजीवरक्खणट्ठाए वायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए । नो-ति अविसेसं, एवं ते सव्वेवि अरिहंता पवुच्चंति ॥ ४ ॥” इति ।

यह वायुकाय का समारंभ ग्रन्थ है, मोह है, मार है, नरक है और इस कारण अहितकारी है, अत एव शान्ति-मोक्षमार्ग का अवलम्बन करने वाले संयमी वायुकाय की विराधना करके अपने प्राणों की भी इच्छा नहीं करते । इसी उद्देश में भगवान् ने उपदेश देते हुए भाषा यतनारूप मुखवस्त्रिका का बाधना सूचित किया है । समुत्थान सूत्र में कहा भी है:-

समारंभ अथ छे, मोह छे, मार छे, नरक छे, अने ते कारखे अहितकारी छे. ओटला भाटे शान्ति-मोक्ष मार्गनुं अवलम्बन करवावाणा संयमी वायुकायनी विराधना करीने पीताना प्राणुनी पणु इच्छा करता नथी. आ उद्देशमां भगवाने उपदेश आपता थका भाषा यतनाइप मुखवस्त्रिका बाधवानी सूचना करी छे.

समुत्थानसूत्रमां कथुं पणु छे:-

छाया—

“....ततः पश्चात् गौतम ! सलिलो मुखपत्रीं मुखेन सार्द्धं बध्नीयात् । मुखपत्री खलु भदन्त ! किंप्रमाणा ?, गौतम ! मुखप्रमाणा मुखपत्री । मुखपत्री खलु भदन्त ! केन वस्त्रेण कृता ?, गौतम ! एकस्यापि श्वेतवस्त्रस्याष्टपुटकां मुखपत्रीं कुर्यात् ॥ २ ॥

कस्मै अर्थाय भदन्त ! मुखपत्री खलु अष्टपुटका ?, गौतम ! अष्टकर्म-दहनार्थम् । मुखपत्रीं भदन्त ! कथं बध्नीयात् ?, गौतम ? एककर्णेन द्वितीयकर्ण-

“....गौतम । तत्पश्चात् स्वलिङ्गी साधु मुख के साथ मुखपत्ती बाँधे ॥१॥

प्रश्न—भगवान् । मुँहपत्ती का क्या प्रमाण है ?

उत्तर—गौतम । मुँह के बराबर मुँहपत्ती होती है ।

प्रश्न—भगवान् । मुँहपत्ती किस वस्त्र की होती है ?

उत्तर—गौतम । एक सफेद वस्त्र की आठ पुटकी मुँहपत्ती होती है ॥२॥

प्रश्न—भगवान् । मुँहपत्ती आठ पुटकी क्यों होनी चाहिए ?

उत्तर—गौतम । आठ कर्मों को भस्म करने के लिए ।

प्रश्न—भगवान् । मुँहपत्ती किस तरह बाँधनी चाहिये ?

उत्तर—गौतम । एक कान से दूसरे कान तक लम्बे डोरे के साथ मुँहपत्ती मुख पर बाँधनी चाहिए ।

“....गौतम ! तत्पश्चात् स्वलिङ्गी साधु मुख साथे मुखपत्ति बाँधे. (१)

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्तीबुं शुं प्रमाण्युं छे ?

उत्तर—गौतम ! मुखनी परापर मुँहपत्ती डोय छे.

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती कया वस्त्रनी भने छे ?

उत्तर—गौतम ! अेक सफेद वस्त्रनी आठ पठनी मुँहपत्ती डोय छे. (२)

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती आठ पठनी सा भाटे डोयी न्नेधये ?

उत्तर—गौतम ! आठ कर्मेने भस्म करवा भाटे.

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती डेवी रीते बाँधवी न्नेधये ?

उत्तर—गौतम ! अेक कानधी पीण कान सुधी लांणा दोरानी साथे मुँहपत्ती मुख पर बाँधवी न्नेधये.

प्रमाणद्वारेण सद्धं मुखे बध्नीयात् मुखपत्र्या भदन्त ! कोऽर्थः ? , गौतम ! यत्खलु मुखान्ते सदा वर्त्तते तेनार्थेन मुखपत्री । कस्मै अर्थाय भदन्त ! मुखपत्रीं मुखेन सद्धं बध्नीयात् ? , गौतम ! स्वलिङ्गवायुजीवरक्षणार्थम् ॥ ३ ॥

यदि खलु भदन्त ! मुखपत्री वायुजीवरक्षणार्थाय तर्त्कि सूक्ष्मवायुकायजीवरक्षणार्थाय वा वादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय ? गौतम ! नो इति सूक्ष्मवायुकायजीवरक्षणार्थाय, (किन्तु) वादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय, नो इति अविशेषम्, एवं ते सर्वेऽपि अर्हन्तः ब्रुवन्ति ॥ ४ ॥ इति ।

संमति केचिन्मुनिम्मन्या मुखवस्त्रिकावन्धनं प्रतिषेधयन्ति तेषामाचार्यास्तु

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती का अर्थ क्या है ?

उत्तर—वह सदैव मुँह पर बंधी रहती है इस लिए वह मुँहपत्ती कहलाती है ।

प्रश्न—किस प्रयोजन से मुँहपत्ती मुख पर बाँधनी चाहिए ?

उत्तर—मुँहपत्ती बाँधना साधु का स्वलिङ्ग है इस लिए, तथा वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए मुँहपत्ती बाँधी जाती है ॥३॥

प्रश्न—भगवान् अगर वायुकाय की रक्षा के लिए मुँहपत्ती है तो सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए है या वादर वायुकाय की रक्षा के लिए ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए नहीं किन्तु वादर वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए है । सभी अर्हन्त ऐसा ही कहते हैं ” ॥४॥

आजकल अपने को मुनि मानने वाले कोई—कोई मुखवस्त्रिका के बाँधने का

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्तीना अर्थं शुं छे ?

उत्तर—गौतम ! ते हभेशां भुभपर आंधी रडे छे. तेथी ते मुँहपत्ती हडेवाय छे.

प्रश्न—शुं प्रथेज्जन्थी मुँहपत्ती भुभपर आंधवी जेधये ?

उत्तर—मुँहपत्ती आंधवी ते साधुनुं स्वलिङ्ग छे अये भाटे, तथा वायुकायना लुवोनी रक्षा भाटे मुँहपत्ती आंधि. (३)

प्रश्न—भगवान् ! अगर वायुकायनी रक्षा भाटे, मुँहपत्ती छे. तो शुं सूक्ष्म वायुकायनी रक्षा भाटे छे. अथवा आदर वायुकायनी रक्षा भाटे छे ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकायनी रक्षा भाटे नहि परन्तु आदर वायुकायना लुवोनी रक्षा भाटे छे. सर्व अर्हन्त अये प्रभाषेज्ज हडे छे. (४)

आज काल पेटाने मुनि मानवावाणा डोर्ध—डोर्ध भुभवस्त्रिका बाँधवाने निषेध

छाया—

“...ततः पश्चात् गौतम ! सलिलो मुखपत्रीं मुखेन सार्द्धं वच्नीयात् । मुखपत्री खलु भदन्त ! किंप्रमाणा ?, गौतम ! मुखप्रमाणा मुखपत्री । मुखपत्री खलु भदन्त ! केन वस्त्रेण कृता ?, गौतम ! एकस्यापि श्वेतवस्त्रस्याष्टपुटकां मुखपत्रीं कुर्यात् ॥ २ ॥

कस्मै अर्थाय भदन्त ! मुखपत्री खलु अष्टपुटका ?, गौतम ! अष्टकर्म-दहनार्थम् । मुखपत्रीं भदन्त ! कथं वच्नीयात् ?, गौतम ? एककर्णेन द्वितीयकर्ण-

“...गौतम ! तत्पश्चात् स्वर्णिगी साधु मुख के साथ मुखपत्ती बाँधे ॥१॥

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती का क्या प्रमाण है ?

उत्तर—गौतम ! मुँह के बराबर मुँहपत्ती होती है ।

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती किस वस्त्र की होती हैं ?

उत्तर—गौतम ! एक सफेद वस्त्र की आठ पुटकी मुँहपत्ती होती है ॥२॥

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती आठ पुटकी क्यों होनी चाहिए ?

उत्तर—गौतम ! आठ कर्मों को भस्म करने के लिए ।

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती किस तरह बाँधनी चाहिये ?

उत्तर—गौतम ! एक कान से दूसरे कान तक लम्बे डोरे के साथ मुँहपत्ती मुख पर बाँधनी चाहिए ।

“...गौतम ! तत्पश्चात् स्वर्णिगी साधु सुभ साथे सुभपत्ति बाँधे. (१)

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्तीनुं शुं प्रमाण छे ?

उत्तर—गौतम ! सुभनी परापर मुँहपत्ती डोय छे.

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती क्या वस्त्रनी बने छे ?

उत्तर—गौतम ! अेक सफेद वस्त्रनी आठ पठनी मुँहपत्ती डोय छे. (२)

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती आठ पठनी शा भाटे डोवी नेधये ?

उत्तर—गौतम ! आठ कर्मोने भस्म करवा भाटे.

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती डेवी रीते बाँधवी नेधये ?

उत्तर—गौतम ! अेक कानथी धीन कान सुधी लांबा डोरानी साथे मुँहपत्ती सुभ पर बाँधवी नेधये.

प्रमाणदवरकेण सद्धं मुखे वध्नीयात् मुखपत्र्या भदन्त ! कोऽर्थः ? , गौतम ! यत्खलु मुखान्ते सदा वर्त्ते तेनार्थेन मुखपत्री । कस्मै अर्थाय भदन्त ! मुखपत्रीं मुखेन सार्द्धं वध्नीयात् ? , गौतम ! स्वलिङ्गवायुजीवरक्षणार्थम् ॥ ३ ॥

यदि खलु भदन्त ! मुखपत्री वायुजीवरक्षणार्थाय तर्हि सूक्ष्मवायुकायजीवरक्षणार्थाय वा वादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय ? गौतम ! नो इति सूक्ष्मवायुकायजीवरक्षणार्थाय, (किन्तु) वादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय, नो इति अविशेषम्, एवं ते सर्वेऽपि अर्हन्तः ब्रुवन्ति ॥ ४ ॥ इति ।

संपत्ति केचिन्मुनिम्मन्या मुखवस्त्रिकावन्धनं प्रतिपेथयन्ति तेषामाचार्यास्तु

प्रश्न—भगवान् ! मुँहपत्ती का अर्थ क्या है ?

उत्तर—वह सदैव मुँह पर बंधी रहती है इस लिए वह मुँहपत्ती कहलाती है ।

प्रश्न—किस प्रयोजन से मुँहपत्ती मुख पर बाँधनी चाहिए ?

उत्तर—मुँहपत्ती बाँधना साधु का स्वलिङ्ग है इस लिए, तथा वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए मुँहपत्ती बाँधी जाती है ॥३॥

प्रश्न—भगवान् अगर वायुकाय की रक्षा के लिए मुँहपत्ती है तो सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए है या वादर वायुकाय की रक्षा के लिए ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए नहीं किन्तु वादर वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए है । सभी अर्हन्त ऐसा ही कहते हैं ” ॥४॥

आजकल अपने को मुनि मानने वाले कोई-कोई मुखवस्त्रिका के बाँधने का

प्रश्न—भगवन् ! मुँहपत्तीना अर्थं शुं छे ?

उत्तर—गौतम ! ते ङ्गेशां भुअपर आंधी रडे छे. तेथी ते मुँहपत्ती ङ्गेशाय छे.

प्रश्न—शुं प्रयोजनथी मुँहपत्ती भुअपर आंधवी न्नेथ्थे ?

उत्तर—मुँहपत्ती आंधवी ते साधुनुं स्वलिङ्ग छे अथे भाटे, तथा वायुकायना लुवोनी रक्षा भाटे मुँहपत्ती आंधि. (३)

प्रश्न—भगवन् ! अगर वायुकायनी रक्षा भाटे, मुँहपत्ती छे. तो शुं सूक्ष्म वायुकायनी रक्षा भाटे छे. अथवा वादर वायुकायनी रक्षा भाटे छे ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकायनी रक्षा भाटे नहिं परन्तु वादर वायुकायना लुवोनी रक्षा भाटे छे. सर्वे अर्हन्त अथे प्रमाद्येव ङ्गेशे छे. (४)

आज काल पोटाने मुनि मानवावाजा ङ्गेश-ङ्गेश भुअवस्त्रिका आंधवानो निरुध

મુખવલ્લિકાવન્ધનં સ્વીકૃયન્ત્યેવ । ઉક્તશ્ચ જિનપતિશિષ્યપૂર્ણભદ્રગણિકૃતાતિમુક્તક-
ચરિત્રે (શ્લોકેષુ ૮૦-૮૧-૮૨)—

“અધાનન્યમુલ્લસ્તિપ્થન્, પુરતો નિશ્ચલાસનઃ ।
માઞ્જલિવ્વદનદ્વારે, દધાનો મુલ્લવલ્લિકામ્ ॥ ૮૦ ॥
હત્પાદિ યાવત્—

શ્રુશ્રાવાસૌ શ્રુતસ્પાર્થ, -મતિમુક્તમુનિર્મુદા ” ॥ ૨ ॥ ઇતિ

વિક્રમસંવત્સરે દ્વયશીત્યધિકદ્વાદશશત (૧૨૮૨) પરિમિતે પૂર્ણભદ્રગણિના
વિરચિતોડયમતિમુક્તકચરિત્રનાધેયો ગ્રન્થઃ, યસ્યાસ્મિન્ વિક્રમસંવત્સરે દ્વયધિકદ્વિ-
સદ્શ્સ (૨૦૦૨) પરિમિતે વિંશત્યધિકસપ્તશત (૭૨૦) વર્ષાણિ વ્યતીતાનિ, ઇતશ્ચ
સ્ફુટમેતદવગમ્યતે મુલ્લવલ્લિકાવન્ધનં—સાદર પરિગૃહીતં તેપામાચાર્યૈસ્તદનુયાયિભિશ્ચ ।

નિપેદ્ય કરતે હૈં । પરન્તુ અનેકે આચાર્ય મુલ્લવલ્લિકા બાંધના સ્વીકાર કરતે હૈં । જિનપતિ કે
શિષ્યપૂર્ણભદ્રગણિવિરચિત ‘અતિમુક્તકચરિત્ર’ (શ્લોક ૮૦-૮૧-૮૨). મેં કહા હૈં—

“પર-પદાર્થો મેં મુલ્લ ન માનને વાલા, નિશ્ચલ બાસન સે સામને હાથ જોડકર મુલ્લ
પર મુંહપતી ધારણ કિયે હુબ અતિમુક્તક મુનિને શ્રુતકા અર્થ સુના ॥૮૦-૮૨॥

વિક્રમ સંવત ૧૨૮૨ મેં પૂર્ણભદ્ર ગણિને યહ અતિમુક્તકચરિત્ર નામક ગ્રંથ
લિખા હૈ । ઇસ સંવત્ ૨૦૦૨ તક ઉસે ૭૨૦ વર્ષ હો ચુકે હૈં । ઇસ સે સ્પષ્ટ જ્ઞાત હોતા
હૈ કિ અનેકે આચાર્યોને ઓર અનેકે અનુયાયિયોને -મુલ્લવલ્લિકા કા-બાંધના આદરપૂર્વક-
અંગીકાર કિયા હૈ ।

કરે છે. પરન્તુ તેમના આચાર્ય મુખવલ્લિકા બાંધવાનું સ્વીકાર કરે છે. જિનપતિના શિષ્ય
પૂર્ણભદ્રગણિ-વિરચિત ‘અતિમુક્તકચરિત્ર’માં શ્લોક ૮૦-૮૧-૮૨માં કહ્યું છે:-

પર પદાર્થોમાં મુખ નહિ માનવાવાળા નિશ્ચલ બાસનથી સામે હાથ જોડીને
મુખપર મુંહપતી ધારણ કરેલા ‘અતિમુક્તક’ મુનિએ શ્રુતનો અર્થ સાંભળ્યો. ॥૮૦-૮૨॥

વિક્રમ સંવત ૧૨૮૨માં પૂર્ણભદ્ર ગણિએ આ અતિમુક્તકચરિત્ર નામનો ગ્રંથ
લખ્યો છે. આ સંવત્ ૨૦૦૨ સુધીમાં તેને ૭૨૦ વર્ષ વ્યતીત થઈ ચૂક્યાં છે. એથી સ્પષ્ટ
ભણમાં આવે છે કે-તેમના આચાર્યોએ અને તેમના અનુયાયિઓએ મુખવલ્લિકા
બાંધવાનું આદરપૂર્વક અંગીકાર કર્યું છે.

अपरञ्च जिनपतिशिष्य ऋच विरचिते सनत्कुमारचरित्रे सनत्कुमारपैतृय-पूर्व-
भविक—'विक्रमयशो'—नृपवर्णनेऽभिहितम्—

“मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकश्च,
कयामु लेमे विरजा द्विजौधैः ।

निपेवितः प्रान्तनिविष्टराज,—

हंसीव त्रिभ्राजि सरः त्रियं यः ॥ १ ॥ ”

सनत्कुमारः, तृतीयपूर्वजन्मनि विक्रमयशो नाम नृपोऽभवद् । स च परिपदि
धर्मकथाश्रवणार्थं यथोपविष्टस्तद्वर्णनं कुर्वन्नाह—

“मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकश्च ” इत्यादि । व्याख्या—इन्दुरिव मुखं मुखेन्दुः,
मुखेन्दो राजन्ती मुखवस्त्रिका यस्य स मुखेन्दुराजन्मुखवस्त्रिकः, मुखोपरिनिव-
द्वातिशुक्लवस्त्रविनिर्मितदेदीप्यमानमुखवस्त्रिकः । विरजाः=निर्मलान्तः करणः,

इसके अतिरिक्त जिनपति के शिष्य ऋचद्वारा रचित सनत्कुमारचरित्र में सनत्कुमार के
तीसरे पूर्वभववर्ती विक्रमयश नामक राजा का वर्णन करते हुए कहा है—

सनत्कुमार अपने तृतीय पूर्वभव में विक्रमयश नामक राजा था । वह परिषद् में
धर्मकथा सुनने के लिए जिस प्रकार बैठा था उसका वर्णन करते हुए कहते हैं—'मुखेन्दु.'
इत्यादि । इसकी व्याख्या इस प्रकार हैः—

जिसके मुखचन्द्र पर मुखवस्त्रिका सुशोभित थी अर्थात् मुख के ऊपर बँधी
हुई, सफेद वस्त्र की बनी हुई मुखवस्त्रिका से जिसका मुख शोभायमान हो रहा था,
जिसका अन्तःकरण निर्मल था और जो द्विजों के समूह से सेवित था ऐसा विक्रमयश—

ये सिवाय जिनपतिनाशिष्य ऋचद्वारा रचित सनत्कुमारचरित्रमां सनत्कुमारना
त्रीण पूर्वभववर्ती 'विक्रमयश' नामना राजानुं वर्णन करता थका कहे छे केः—

सनत्कुमार पोताना त्रीण पूर्वभवमां 'विक्रमयश' नामना राजा हुता, ते परिषद्मां
(सलाभां) धर्मकथा सांलजवा भाटे ने प्रभाण्णे षेका हुता तेनुं वर्णन करता थका कहे
छे के—'मुखेन्दु.' इत्यादि. जेनी व्याख्या आ प्रभाण्णे छे—

जेना मुखचन्द्र पर मुखवस्त्रिका सुशोभित हुती, अर्थात् मुख उपर आंघेद्वी
सङ्केत वस्त्रनी अनेद्वी मुखवस्त्रिकाथी जेनुं मुख शोभायमान थर्छ रह्युं हुतुं, जेनुं अन्तःकरण
निर्मल हुतुं, अने जे द्विजेना समूहथी सेवित हुता, जेवा विक्रमयश नामना राजा

द्विजौधैः=द्विजसमूहैर्निपेवितः, यः=विक्रमयशो नृपः कथामु=धर्मकथापरिपत्सु
 श्रियं=शोभां लेभे=प्राप्तवान् । किमिव ? प्रान्ते निविष्टा राजहंसी यस्य तत् प्रान्त-
 निविष्टराजहंसि, विभ्राजि=देदीप्यमानं सर इव ।

यथा प्रान्तनिविष्टया राजहंस्या विभ्राजमानं सरः श्रियं लभते तथा मुखो-
 परिनिवद्धदेदीप्यमानमुखवस्त्रिकाया विक्रमयशो नृपः सदसि श्रियं लब्धवानित्यर्थः ।

करेण मुखवस्त्रिकाधारणे तु करतलावृतमुखवस्त्रिकाया दीप्तिः समाच्छादिता
 स्यात्, कथं तर्हि '....राजन्मुखवस्त्रिकः'-इत्यत्र 'राजन्'-पदप्रयोगसंसूचितमुख-
 वस्त्रिकागतप्रभायाः प्रकाशमानता तिरोहिता भवेत्, तर्हि राजहंसीप्रभाया 'विभ्राजी'
 -ति सरोविशेषणेन साम्यमपि न सिद्धयेत् ।

नामक राजा धर्मकथा की परिपद में शोभा को प्राप्त हुआ । कैसी शोभा को प्राप्त हुआ ?
 जैसे जिसके किनारे राजहंसी बैठी हो वह तालाव सुशोभित होता है ।

जिसके किनारे राजहंसी बैठी हो वह तालाव जैसे शोभित होता है उसी प्रकार मुख
 पर बंधी हुई और देदीप्यमान मुखवस्त्रिका से विक्रमयश राजा व्याख्यानपरिपद में
 शोभित हुआ ।

अगर हाथ से मुखवस्त्रिका पकड़ी होती तो मुखवस्त्रिका की दीप्ति हथेली से
 छिप जाती । ऐसी स्थिति में '....राजन्मुखवस्त्रिकः' इस पद में 'राजन्' शब्द के प्रयोग से
 मुखवस्त्रिका की जो प्रभा सूचित की है वह प्रकाशमान कैसी होती ? फिर तो वह छिपी हुई
 प्रभा रहजाती । और फिर सरोवर के किनारे बैठी हुई राजहंसिनो को उगमा भा ठीक नहीं
 बैठ सकती ।

धर्मकथानी सलाभां शोभाने पाभ्या छे. केवी शोभाने पाभ्या छे ? नेभके:-नेना
 किनारे राजहंसी जेकां डोय ते तणाव सुशोभित थाय छे.

नेना किनारे राजहंसी जेकां डोय ते तणाव नेवी रीते सुशोभित डोय छे ते
 प्रभाछे सुभ पर पांधेली अने अंगभगाट शोभायमान सुभवस्त्रिकाथी विक्रमयश राज
 व्याख्यापरिपद-(सला)भां शोभता डता.

अथवा हाथथी सुभवस्त्रिका पकडी छोते तो ते सुभवस्त्रिकानी दीप्ति-प्रकाश
 हथेलीथी ढंकाई नत. अेवी स्थितिभां 'राजन्मुखवस्त्रिकः' आ पदभां 'राजन्'
 शब्दना प्रयोगथी सुभवस्त्रिकानी ने प्रभा-(प्रकाश) सूचित करी छे, ते प्रकाशमान
 केवी रीते थात ? पछी तो ते ढंकाअेली नेवी प्रभा. रही नत अने पछी सरोवरना
 किनारे जेठेकां राजहंसीनी उगमा भराभर घटी शकत नडि.

અપરચ્ચ સરાસિ રાજહંસી યથા સર્વથાડનાવૃતા સતી સરઃશોભાં જનયતિ તથા મુસ્તવલ્લિકા નૃપસ્ય શ્રિયં કરોતીતિ તાત્પર્ય કરતલેન મુસ્તવલ્લિકાધારણે કથમપિ નોપપદ્યતે ।

તસ્માદેતત્સનત્કુમારચરિત્રપદ્યં વિક્રમયશાનૃપસ્ય સદોરકમુસ્તવલ્લિકાવન્ધન- માસીદિતિ મુસ્તવલ્લિકાવેદયતિ ।

અહો! મહીયાન્ મોહમહિમા યત્સ્વકીયગુરુવરાણાં સંપ્રદાયવાક્યમપિસમુલ્લઙ્ઘ્યન્તો નવીના ન કથયિત્વપન્તે ।

વિસ્તરતસ્તુ જિજ્ઞાસુભિર્દશવૈકાલિકસૂત્રસ્ય મત્કૃતાચારમણિમઠ્ઠજૂપાટીકાયાં પ્રથમાધ્યયને વિલોકનીયમ્ ।

इसके अतिरिक्त—जैसे राजहंसिनी बिलकुल उषाडी होकर ही सरोवर की शोभा बढ़ाती है उसी प्रकार मुस्तवल्लिका राजा की शोभा बढ़ाती थी । यह तात्पर्य हाथ से मुस्- वल्लिका धारण करने में किसी भी प्रकार नहीं घट सकता ।

अतः सनत्कुमारचरित्र का यह पद्य स्पष्टरूप से प्रकट करता है कि—विक्रम यश राजा के मुस्त पर डोरासहित मुस्तवल्लिका बंधी थी ।

अहो ! मोह की महिमा महान है, जिस के प्रभाव से आधुनिक लोग अपने गुरुओं के परम्परा वाक्य का उल्लंघन करते हुए भी लज्जित नहीं होते ।

विस्तार से समझने की इच्छा रखने वाले मेरी रची हुई दशवैकालिक सूत्र की 'आचारमणिमंजूषा'-टीका के अन्दर पहले अध्ययन में देख सकते हैं ।

એ સિવાય-જેવી રીતે રાજહંસિની એકદમ ઉષાડી થઈનેજ સરોવરની શોભા વધારે છે, તેવીજ રીતે મુખવલ્લિકા રાજાની શોભા વધારતી હતી. આ તાત્પર્ય હાથથી મુખવલ્લિકા ધારણ કરે તો—અથવા કરવાથી કોઈ પણ પ્રકારે બની શકે નહિ.

એ કારણથી સનત્કુમારચરિત્રનું એ પદ સ્પષ્ટરૂપથી બતાવી આપે છે કે— વિક્રમયશ રાજાના મુખપર ડોરાસહિત મુખવલ્લિકા બાંધી હતી.

અહો! મોહનો મહિમા મહાન છે, જેના પ્રભાવથી આધુનિક લોક પોતાના ગુરુઓના પરમ્પરા વાક્યનું ઉલ્લંઘન કરતા પણ શરમાતા નથી.

વિસ્તારથી સમજવાની ઇચ્છા રાખવાવાળા, મારી રચેલી દશવૈકાલિકસૂત્રની 'આચારમણિમંજૂષા'-ટીકાની અંદર પહેલા અધ્યયનમાં જોઈ શકે છે.

इति द्रवीमि, इति=एतत्सर्वं द्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथया-
मीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

अथ पद्मजीवनिकायारम्भकरणेन कर्मबन्धो भवतीत्याह—‘एत्यपि. इत्यादि ।

मूलम्—

एत्यपि जाण उवादीयमाणा, जे આચારે ણ રમંતિ, આરંભમાણાવિણયં વ્યંતિ,
છન્દોવળીયા અજ્ઞોવવળ્ણ આરંભસત્તા પકરંતિ સંગં ॥ સૂ० ૭ ॥

છાયા—

अवापि जानीहि उवादीयमानाः, ये आचारो न रमन्ते, आत्म-
माणा विनयं वदन्ति, छन्दोपनीता अध्युपपन्नाः, आरम्भसक्ताः प्रकुर्वन्ति सङ्गम्
॥ सू० ७ ॥

સુધર્મા સ્વામી કહતે હૈં—યહ સવ ભગવાન્ કે સમીપ જૈસા સુના હૈ. વૈસા
કહતા હૈં ॥ સૂ० ૩ ॥

अथ यह कहते हैं कि—पद्मजीवनिकाय का आरंभ करने से कर्मबंध होता है—
‘एत्यपि.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में भी आरंभ करने वाले, कर्मों से बद्ध होते हैं,
ऐसा समझो । जो आचार में रमण नहीं करते आरम्भ करते हुए भी अपने को विनय
(चारित्र) वाले मानते हैं, इच्छानुसार चलते हैं, गृह हैं और आरम्भ में आसक्त हैं वे कर्मों
उपार्जन करते हैं ॥ सू० ७ ॥

સુધર્મા સ્વામી કહે છે:—આ સર્વ લગવાનની સમીપમાં જેવું સાંભળ્યું છે
તેવુંજ કહું છું. ॥ ૬ ॥

હવે એ કહે છે કે—પદ્મજીવનિકાયનો આરંભ કરવાથી કર્મબંધ થાય છે—
‘एत्यपि.’ इत्यादि.

મૂલાર્થ—વાયુકાયના વિષયમાં પણ આરંભ કરવાવાળા, કર્મોથી બદ્ધ થાય છે
એ પ્રમાણે સમજો. જે આચારમાં રમણ કરતા નથી, આરંભ કરતા થકા પણ પોતાને
વિનય (ચારિત્ર) વાળા માને છે, ઇચ્છાનુસાર ચાલે છે, ગૃહ છે, અને આરંભમાં
આસક્ત છે, તે કર્મોનું ઉપાર્જન કરે છે. ॥ સૂ० ૭ ॥

ટીકા—

અત્રાપિ=એતરિમન્ વાયુકાયેઽપિ, અપિશબ્દાત્ અવશિષ્ટે પૃથિવ્યાદિચતુષ્કે સ્વાવરે ત્રસકાયે ચ યે ભોગ્લોલુપાઃ સ્વાર્થવશગાઃ આરમ્ભં કુર્વન્તિ, તે ઉપાદીયમાનાઃ =જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મભિર્વધ્યમાના ભવન્તીત્યેવં જાનીહિ ।

એકજીવારમ્ભપ્રવૃત્તઃ શેપજીવનિકાચારમ્ભજનિતકર્મભિર્વદ્ધો ભવતીત્યેવં વિદ્વી-ત્યર્થઃ । કે પુનઃ પૃથિવ્યાધારમ્ભકરણેન શેપજીવારમ્ભજન્યકર્મભિરપિ વધ્યમાના ભવન્તીતિ જિજ્ઞાસાયમાહ—‘યે આચારે ન રમન્તે’ ઇતિ ।

યે આચારે=જ્ઞાનદર્શનાદિપૃચ્ચવિધાચારે ન રમન્તે=ન ધૃતિં કુર્વન્તિ, તાન્ કર્મભિર્વધ્યમાનાન્ જાનીહિ । કે પુનરાચારે ન રમન્તે ? દૃષ્ટિશાક્યાદયઃ ।

કથમેતદ્વિજ્ઞાયતે ? ઇતિ જિજ્ઞાસાયમાહ—‘આરમ્ભમાણા ચિનયં વદન્તિ’

ટીકાર્થ—ઇસ વાયુકાય કે વિષય મેં મી—(અપિ) શબ્દ સે પૃથ્વી આદિ અન્ય સ્થાવરોં મેં તથા ત્રસકાય મેં જો ભોગોં કે લોલુપ ઓર સ્વાર્થપરાયણ હોકર આરમ્ભ કરતે હૈં, વે જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોં સે વદ્ધ હોતે હૈં, એસા સમજો ।

તાત્પર્યં યહ હૈ કિ—એક જીવ કે આરમ્ભ મેં પ્રવૃત્તિ કરને વાલા શેપ જીવનિકાયોંકે આરમ્ભ સે ઉત્પન્ન હોને વાલે કર્મોં સે મી વદ્ધ હોતા હૈ ।

એસે કૌન હૈં જો પૃથ્વી આદિ એક કાયકા આરમ્ભ કરકે શેપ જીવનિકાયોં કે આરમ્ભ સે હોને વાલે કર્મોંદ્વારા વદ્ધ હોતે હૈં ? ઇસ કા સમાધાન કરને કે લિખે કહતે હૈ—

જો જ્ઞાનાચાર દર્શનાચાર આદિ પાંચ આચારોં મેં સ્થિર નહોં હોતે ઉન્હેં કર્મવંધ હોતા હૈ, એસા જાનો । આચાર મેં કૌન સ્થિર નહોં હોતે ? દૃષ્ટી તથા શાક્ય આદિ ।

યહ કૈસે જ્ઞાત હુઆ ? ઇસકે ઉત્તર મેં કહતે હૈં—વે પૃથ્વીકાય આદિ કી વિરાધના

ટીકાર્થ—આ વાયુકાયના વિષયમાં પણ ‘અપિ’ શબ્દથી પૃથ્વી આદિ અન્ય સ્થાવરોમાં તથા ત્રસકાયમાં જે લોભોના લાલચ અને સ્વાર્થપરાયણ થઇને આરંભ કરે છે. તે જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મોથી બદ્ધ થાય છે. એ પ્રમાણે સમજો.

તાત્પર્યં એ છે કે:—એક જીવના આરંભમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા બાકીના જીવ-નિકાયોના આરંભથી ઉત્પન્ન થવાવાળા કર્મોથી પણ બદ્ધ થાય છે.

એવા કોણ છે કે જે પૃથ્વી આદિ એક કાયનો આરંભ કરીને બાકીના જીવ-નિકાયોના આરંભથી થનારા કર્મોદ્વારા થાય છે? તેનું સમાધાન કરવા માટે કહે છે:—

જે જ્ઞાનાચાર-દર્શનાચાર આદિ પાંચ આચારોમાં સ્થિર નથી થતા તેને કર્મ-બંધ થાય છે, એ પ્રમાણે જાણો.

આચારમાં કોણ સ્થિર નથી રહેતા? દંડી અને શાક્ય આદિ.

એ કેવી રીતે જાણ્યું? તેના ઉત્તરમાં કહે છે:—તે પૃથ્વીકાય આદિની વિરાધના

इति । आरभमाणाः, पृथिव्यादीन् पीडयन्तोऽपि विनयं=कर्मणां विनयाद् विनयः संयमस्तं, वदन्ति=‘वयमेव संयमिसेवनपराः’ इति निरशङ्कं निगदन्तीत्यर्थः ।

ननु स्वात्मानं संयमिनं मन्यमानास्ते कस्मात्पृथिव्यादिजीवहिंसनपराः ? इति जिज्ञासायां हेतुगर्भविशेषणपदद्वयमाह—‘छन्दोपनीताः’ ‘अध्युपपन्नाः’ इति । ‘छन्दोपनीताः’=छन्दः=स्वामिमायः, तेनोपनीताः स्वतन्त्राः शास्त्रविरुद्धविचारशीला इत्यर्थः ।

यद्वा छन्दः-अभिमायः=इच्छा, विषयामिलापस्तेनोपनीताः, तथा ‘अध्युपपन्नाः,’ अधि=अधिकम् अतिशयेन उपपन्नाः=तद्गतचित्ताः विषयसंनि-विष्टचित्ताः विषयभोगार्थमातुरा इत्यर्थः । यतश्छन्दोपनीता अध्युपपन्नाश्च तस्मात्ते पृथिव्यादीन् विहिंसन्तीति भावः । एवं पृथिव्यादिहिंसनेन पुनः कर्मबन्धं प्राप्नोतीत्याह—‘आरम्भसक्ताः’ । इत्यादि । आरम्भः=सावधव्यापारः,

करते हुए भी अपने आपको निरशंक होकर संयमी कहते हैं । वे यह मानते हैं कि हम ही संयम का सेवन करने में तत्पर हैं ।

वे लोग अपने आपको संयमी मानते हुए भी पृथ्वीकाय आदि के जीवों की हिंसा में तत्पर क्यों होते हैं ? ऐसी जिज्ञासा होने पर दो विशेषण कहते हैं, जिन में हेतु छिपा है—‘छन्दोपनीत’ और ‘अध्युपपन्न’

छन्द का अर्थ है—अपना अभिप्राय, उससे स्वतंत्र अर्थात् शास्त्र से विरुद्ध विचार करने वाले । अथवा छन्द का अर्थ इच्छा है । कहाँ विषयभोगों की अभिलाषा को छन्द कहा है, उस में जो स्वतंत्र हों । तथा अध्युपपन्न अर्थात् विषयों में अत्यन्त आसक्त-विषयभोगों के लिए आतुर । तात्पर्य यह है कि—छन्दोपनीत और अध्युपपन्न होने के कारण वे पृथ्वी आदि की हिंसा करते हैं और कर्मों का बंध करते हैं । आरम्भ

करवा छत्तांय पण्य पोते-पोताने निःशंक धर्माने संयमी कडे छे, ते ज्येवुं माने छे के:-अभे पण्य संयमनुं सेवन करवाभां तत्पर छीजे.

ते दोष पोते-पोताने संयमी मानता थका पण्य पृथ्वीकाय आदिना लवोनी हिंसाभां तत्पर शा माटे डोय छे ? ज्येवी लज्जासा धर्तां जे विशेषण कडे छे नेभां डेतु छुपाज्येवी छे ‘छन्दोपनीत’ अने ‘अध्युपपन्न’ ‘छन्द’ने अर्थ छे पोताने अभिप्राय तेनाथी स्वतंत्र अर्थात् शास्त्री विरुद्ध विचार करवावाणा. अथवा छन्दने अर्थ छन्द छे. अहिं विषयभोगोनी अभिलाषाने छन्द कडे छे. तेभां जे स्वतंत्र डोय. तथा अध्युपपन्न अर्थात् विषयभां अत्यन्त आसक्त-विषयभोगो माटे आतुर. तात्पर्य ज्ये छे के छन्दोपनीत अने अध्युपपन्न डोवाना करखे ते पृथ्वी आदिनी हिंसा करे छे अने कर्मोनी बंध करे छे. आरंभ अर्थात्-सावध व्यापारभां प्रवृत्त पुरुष ज्ञानापरणीय

તત્ર સક્તાઃ=પ્રવૃત્તાઃ, સદ્ગઃ=સજ્યન્તે=શ્લિષ્યન્તે જીવા અનેનેતિ સદ્ગઃ=જ્ઞાનાવરણી-
યાદિકં કર્મ, તં સદ્ગઃપ્રકુર્વન્તિ=સમુત્પાદયન્તિ ।

एवं पद्मजीवनिकायाारम्भकारिणः खलु कर्मबन्धनपराधीनतां समुपेत्य जन्म-
जरामरणेष्टवियोगानिष्टसंयोगेप्सिताऽसिद्धिविविधव्याधिजनितदुःख संकुलेघोरतर-
संसारदावानले पुनः पुनः स्वात्मानमिन्धनीकुर्वन्तीति भावः ॥ सू० ७ ॥

अथ यस्तु पृथिव्यादिपद्मजीवनिकायाारम्भकरणाद्विनिवृत्तः स एव मुनिर्भवती-
त्युद्देशार्थमुपसंहरन्नाह—‘से वसुमं.’ इत्यादि ।

मूलम्—

से वसुमं सव्वसमण्णागयपण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं णो
अण्णेसि ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स वसुमान् सर्वसगन्त्रागतप्रज्ञानेन आत्मना अकरणीयं पापं कर्म नो अन्वेपयेत्
॥ सू० ८ ॥

अर्थात् सावध व्यापार में प्रवृत्त ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को ऊपार्जन करते हैं ।

इस प्रकार पद्मजीवनिकाय का आरम्भ करने वाले कर्मबन्धन के अधीन होकर
जन्म मरण, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, इष्ट की असिद्धि तथा विविध प्रकार की व्याधियों से
उत्पन्न होने वाले दुःखों से व्याप्त, घोरतरसंसाररूपी दावानल में अपने आत्मा को ईधन
बनाते हैं ॥ सू० ७ ॥

जो पृथ्वी आदि पद्मजीवनिकाय के आरम्भ से निवृत्त है वही मुनि होता है; इस उद्देश
के अर्थ का उपसंहार करते हुए शास्त्रकार कहते हैं:—‘से वसुमं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वही वसुमान् है (सम्यक्त्व-चारित्रवान्-सम्यग्दृष्टि है) जो यथार्थ पदार्थों को
जाननेवाले ज्ञानात्मा से पाप को अकरणीय समझकर नहीं करता है ॥ सू० ८ ॥

આદિ કષોનું ઉપાર્જન કરે છે.

આ પ્રમાણે પદ્મજીવનિકાયના આરંભ કરવાવાળા કર્મબન્ધને આધીન થઈને
જન્મ, જરા, મરણ, ઈષ્ટવિયોગ, અનિષ્ટસંયોગ, ઈષ્ટછેલી વસ્તુની અપ્રાપ્તિ, તથા
વિવિધ પ્રકારની વ્યાધિઓથી ઉત્પન્ન થનારાં દુઃખોથી વ્યાપ્ત, ઘોરતર સંસારરૂપી
દાવાનલમાં પોતાના આત્માને ઈધન—(બળતણુરૂપ) બનાવે છે. ॥ સૂ. ૭ ॥

જે પૃથ્વી આદિ પદ્મજીવનિકાયના આરંભથી નિવૃત્ત છે તેજ મુનિ હોય છે,
આ ઉદ્દેશના અર્થને ઉપસહાર કરીને શાસ્ત્રકાર કહે છે:—‘સે વસુમં.’ ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—તેજ વસુમાન્ છે (સમ્યક્ત્વ-ચારિત્રવાન્ સમ્યગ્દષ્ટિ છે) જે યથાર્થ
પદાર્થોને બાણુવાવાળા જ્ઞાનાત્માથી પાપને અકરણીય (કરવા યોગ્ય નથી એવું)
સમજીને કરતા નથી. ॥સૂ. ૮ ॥

इति । आरम्भमाणाः, पृथिव्यादीन् पीडयन्तोऽपि विनयं=कर्मणां विनयाद् विनयः संयमस्तं, वदन्ति=‘वयमेव संयमिसेवनपराः’ इति निश्चङ्कं निगदन्तीत्यर्थः ।

ननु स्वात्मानं संयमिनं मन्यमानास्ते कस्मात्पृथिव्यादिजीवहिंसनपराः ? इति जिज्ञासायां हेतुगर्भविशेषणपदद्वयमाह—‘छन्दोपनीताः’ ‘अध्युपपन्नाः’ इति । ‘छन्दोपनीताः’=छन्दः=स्वाभिप्रायः, तेनोपनीताः स्वतन्त्राः शास्त्रविरुद्धविचारशीला इत्यर्थः ।

यद्वा छन्दः-अभिप्रायः=इच्छा, विषयाभिलाषस्तेनोपनीताः, तथा ‘अध्युपपन्नाः,’ अधि=अधिकम् अतिशयेन उपपन्नाः=तद्वत्तच्चित्ताः विषयसंनि-
विष्टचित्ताः विषयभोगार्थमातुरा इत्यर्थः । यतश्छन्दोपनीता अध्युपपन्नाश्च तस्मात्ते पृथिव्यादीन् विहिंसन्तीति भावः । एवं पृथिव्यादिहिंसनेन पुनः कर्मबन्धं प्राप्नोतीत्याह—‘आरम्भसक्ताः’ । इत्यादि । आरम्भः=सावद्यव्यापारः,

કરતે હુણ મી અપને આપકો નિશ્ચંક હોકર સંયમી કહતે હૈં । વે યહ માનતે હૈં કિ હમ હી સંયમ કા સેવન કરને મેં તત્પર હૈં ।

વે લોગ અપને આપકો સંયમી માનતે હુણ મી પૃથ્વીકાય આદિ કે જીવોં કીં હિંસા મેં તત્પર કયોં હોતે હૈં ? એસી જિજ્ઞાસા હોને પર દો વિશેષણ કહતે હૈં, જિન મેં હેતુ છિપા હૈ— ‘છન્દોપનીત’ ઓર ‘અધ્યુપપન્ન’

छन्द का अर्थ है—अपना अभिप्राय, उससे स्वतंत्र अर्थात् शास्त्र से विरुद्ध विचार करने वाले । अथवा छन्द का अर्थ इच्छा है । कहाँ विषयभोगों की अभिलाषा को छन्द कहा है, उस में जो स्वतंत्र हों । तथा अध्युपपन्न अर्थात् विषयों में अत्यन्त आसक्त—विषयभोगों के लिए आतुर । तात्पर्य यह है कि—छन्दोपनीत और अध्युपपन्न होने के कारण वे पृथ्वी आदि की हिंसा करते हैं और कर्मों का बंध करते हैं । आरम्भ

કરવા છતાંય પણ પોતે-પોતાને નિઃશંક થઈને સંયમી કહે છે. તે એવું માને છે કે:-અમે પણ સંયમર્નુ સેવન કરવામાં તત્પર છીએ.

તે લોક પોતે-પોતાને સંયમી માનતા થકા પણ પૃથ્વીકાય આદિના જીવોની હિંસામાં તત્પર શા માટે હોય છે ? એવી જિજ્ઞાસા થતાં બે વિશેષણ કહે છે જેમાં હેતુ છુપાએલો છે ‘છન્દોપનીત’ અને ‘અધ્યુપપન્ન’ ‘છન્દ’નો અર્થ છે પોતાને અભિપ્રાય તેનાથી સ્વતંત્ર અર્થાત્ શાસ્ત્રથી વિરુદ્ધ વિચાર કરવાવાળા. અથવા છન્દનો અર્થ ઇચ્છા છે. અહિં વિષયલોગોની અભિલાષાને છન્દ કહેલ છે. તેમાં જે સ્વતંત્ર હોય. તથા અધ્યુપપન્ન અર્થાત્ વિષયોમાં અત્યન્ત આસક્ત-વિષયલોગો માટે આતુર. તાત્પર્ય એ છે કે છન્દોપનીત અને અધ્યુપપન્ન હોવાના કારણે તે પૃથ્વી આદિની હિંસા કરે છે અને કર્મોના બંધ કરે છે. આરંભ અર્થાત્-સાવધ વ્યાપારમાં પ્રવૃત્ત પુરુષ જ્ઞાનાવરણીય

—कलहाभ्याख्यान-पैशुन्य-परपरिवाद-रत्यरति-मायामृषा-मिथ्या-दर्शनशल्या-
मिधानमष्टादशमकारं नान्वेपयेत्—न स्वयं कुर्यात्, न चान्यैः कारयेत्, न चान्यं
कुर्वाणमनुमोदयेदित्यर्थः ।

योऽयमात्मा स्वकीयप्रज्ञानेन सर्वद्रव्यपर्यायसमाकलनयोग्यतां धारयति, येन
च मोक्षमार्गावलम्बनतः शिवपदमपि शक्यते गन्तुम्, तस्यात्मनः पुनरथःपतन-
कारित्वात् पापं कर्म सर्वथा परित्याज्यमिति विभाव्य पद्मजीवनिकायारम्भकरणा-
त्सर्वथा त्रिनिवर्तितव्यमिति भावः ॥ सू० ८ ॥

पद्मजीवनिकायारम्भस्य सर्वथा परिहार एव मुनित्वं प्रापयतीत्याह—‘तं
परिणाय.’ इत्यादि ।

मूलम्—

तं परिणाय मेहायी णेव सयं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभेज्जा
णेवऽण्णेहिं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे छज्जीवनिकायसत्थं
(१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशुन्य (१५) परपरिवाद
(१६) रति-अरति (१७) माया-मृषा और (१८) मिथ्यादर्शनरूप अठारह प्रकार का पाप
जो स्वयं नहीं करता है, दूसरों से नहीं कराता है और दूसरे करने वाले का अनुमोदन नहीं
करता है वही पुरुष वसुमान् है ।

तात्पर्यं यह है कि—जो आत्मा अपने प्रज्ञान से समस्त द्रव्यों और पर्यायों को
भली भाँति जानने की योग्यता धारण करता है और जो मोक्ष-मार्ग का आश्रय लेकर
मुक्तिपद भी प्राप्त कर सकता है उसको ‘आत्मा का अधःपतन करने वाले पापवृत्त्य सर्वथा
त्याग्य है’ ऐसा विचार करके पद्मजीवनिकाय के आरंभ से विरत हो जाना चाहिए ॥सू० ८॥

पद्मकाय के आरंभ का त्याग ही साधुता प्राप्त कराता है, यह बात आगे कहते
हैं—‘तं परिणाय.’ इत्यादि ।

(८) माया, (९) लोल, (१०) राग, (११) द्वेष, (१२) कलह, (१३) अभ्याख्यान,
(१४) पैशुन्य, (१५) परपरिवाद, (१६) रति-अरति, (१७) माया-मृषा अने (१८)
मिथ्यादर्शनरूप अठार प्रकारनां के पाप तेने पोते करता नथी, भीज पासे करावता
नथी, अने भीज करवावाणाने अनुमोदन आपता नथी. तेव पुत्र वसुमान् छे.

तात्पर्यं अे छे केः—जे आत्मा पोताना प्रज्ञानथी समस्त द्रव्ये अने पर्यायाने
इडी रीते ज्ञानुवानी योग्यता धारण करे छे, अने जे मोक्षमार्गाने आश्रय लधने मुक्तिपद
पणु प्राप्त करी शके छे, तेने, ‘आत्मानु अधःपतन करनारां पापवृत्त्य सर्वथा त्याग्य छे’
अथे विचार करीने पद्मजीवनिकायना आरंभथी निवृत्त थई जहुं जेथअे. ॥सू० ८॥
पद्मकायना आरंभने त्यागण साधुता प्राप्त करावे छे. अे वात आगण कहे छेः—
‘तं परिणाय.’ इत्यादि.

ટીકા—

યસ્તુ પદ્મજીવનિકાયારમ્મનિવૃત્ત્યા સંયમપાલનપરાયણઃ, સ વસુમાન્, દ્વિવિધાનિ હિ વસુનિ સન્તિ દ્રવ્યભાવમેદાત્, તત્ર દ્રવ્યવસુનિ-સુવર્ણાદીનિ, ભાવવસુનિ-સમ્યક્ત્વાદીનિ, અત્ર ભાવવસુતાત્પર્યકો વસુશબ્દઃ, તાનિ વસુનિ યસ્ય યસ્મિન્ વા સન્તિ સ વસુમાનિત્યર્થઃ, સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનેન=સર્વાણિ સમન્વાગતાનિ પ્રજ્ઞાનાનિ યંસ્યાત્મનઃ સ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનઃ=યથાવસ્થિતવિષય-ગ્રાહિસર્વવિષયકજ્ઞાનવાન્, તેન ।

યદ્વા-સર્વેષુ દ્રવ્યંપર્યાયેષુ સમન્વાગતં=સમ્યક્પ્રાપ્તં તત્તદ્વિષયમાકલ્પ્ય સર્વ-દ્રવ્યંપર્યાયગતં પ્રજ્ઞાનં યસ્ય સ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનઃ, તેન, આત્મના, અકરણીયમ્=અકર્તૃયમ્, ऐहिकपारलौकिकसुखविघातकत्वाद्नाचरणीयम्, इति मत्वा, पापं कर्म=प्राणातिपात-मृषावादा-दत्तादान-मैथुन-परिश्रह-क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष

ટીકાર્થ—જો પુરુષ પદ્મજીવનિકાયસંબંધી આરમ્ભ કા ત્યાગ કરકે સંયમ કે પાલન મેં તત્પર હોતા હૈ વહી વસુમાન્ હૈ । વસુ કે દો મેદ હૈ—(૧) દ્રવ્યવસુ ઓર (૨) ભાવવસુ । સ્વર્ણ આદિ ધન દ્રવ્યવસુ કહલાતા હૈ, ઓર તપ સંયમાદિરૂપ ઋદ્ધિ કો ભાવવસુ કહતે હૈ । યહાં 'વસુ' શબ્દ સે ભાવવસુ હી સમજના ાહિષ । વસુ જિસે પ્રાપ્ત હો વહ વસુમાન્ હૈ અર્થાત્ સમ્યક્ત્વ આદિ સે યુક્ત પુરુષ વસુમાન્ કહલાતા હૈ ।

જો વસ્તુ જૈસી હૈં ઉસે ડસી રૂપ મેં જાનને વાલા સર્વગ્રાહી જ્ઞાન 'સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન' કહલાતા હૈ । અથવા સમસ્ત દ્રવ્યો ઓરં પર્યાયો કો યથાર્થરૂપ સે જાનને વાલા જ્ઞાન 'સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન' કહલાતા હૈ । ઁસે જ્ઞાનરૂપ આત્મા સે પાપ કો ઇસ લોક તથા પરલોકસંબંધી સુખો કા ઘાતક હોને સે અકર્તવ્ય સમજકર (૧) પ્રાણાતિપાત (૨) મૃષાવાદ (૩) અદત્તાદાન (૪) મૈથુન । (૫) પરિશ્રહ (૬) ક્રોધ, (૭) માન (૮) માયા (૯) લોભ

ટીકાર્થ—જે પુરુષ પદ્મજીવનિકાયસંબંધી આરંભને ત્યાગ કરીને સંયમના પાલનમાં તત્પર થાય છે. તેજ વસુમાન્ (સમ્યક્દષ્ટિ) છે. વસુના બે લેહ છે. (૧) દ્રવ્ય-વસુ અને (૨) ભાવવસુ, સુવર્ણ આદિ ધન દ્રવ્યવસુ કહેવાય છે. અને સમ્યક્ત્વ આદિ રૂપ ઋદ્ધિને ભાવવસુ કહે છે. આદિ 'વસુ' શબ્દથી ભાવવસુ જ સમજવું જોઈએ. વસુ જેને પ્રાપ્ત હોય તે વસુમાન્ છે. અર્થાત્ સમ્યક્ત્વ આદિથી યુક્ત પુરુષ વસુમાન્ કહેવાય છે.

જે વસ્તુ જેવી છે તેને તેવા રૂપમાં જાણવાવાળા સર્વગ્રાહી જ્ઞાન 'સર્વસમન્વા-ગત પ્રજ્ઞાન', કહેવાય છે. અથવા સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને યથાર્થ રૂપથી જાણવા-વાળું જ્ઞાન 'સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન' કહેવાય છે. એવા જ્ઞાનરૂપ આત્માથી પાપને આ લોક તથા પરલોક-સંબંધી સુખોના ઘાતક હોવાથી અકર્તવ્ય સમજીને (૧) પ્રાણાતિપાત, (૨) મૃષાવાદ, (૩) અદત્તાદાન, (૪) મૈથુન, (૫) પરિશ્રહ, (૬) ક્રોધ, (૭) માન,

—कृद्वाऽभ्याख्यान-पैशुन्य-परपरिवाद-रत्यरति-मायामृषा-मिथ्या-दर्शनशल्या-
मिधानमटादशमकारं नान्वेपयेत्—न स्वयं कुर्यात्, न चान्यैः कारयेत्, न चान्यं
कुर्वाणमनुमोदयेदित्यर्थः ।

योऽयमात्मा स्वकीयमज्ञानेन सर्वद्रव्यपर्यायसमाकलनयोग्यतां धारयति, येन
च मोक्षमार्गावलम्बनतः शिवपदमपि शक्यते गन्तुम्, तस्यात्मनः पुनरधःपतन-
कारित्वात् पापं कर्म सर्वथा परित्याज्यमिति विभाव्य पद्दजीवनिकायारम्भकरणा-
त्सर्वथा त्रिनिवर्तितव्यमिति भावः ॥ सू० ८ ॥

पद्दजीवनिकायारम्भस्य सर्वथा परिहार एव मुनित्वं प्रापयतीत्याह—‘तं
परिणाय.’ इत्यादि ।

मूलम्—

तं परिणाय मेहावी षेव सयं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभेज्जा
षेवऽण्णेहिं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभावेज्जा, षेवऽण्णे छज्जीवनिकायसत्थं
(१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशुन्य (१५) परपरिवाद
(१६) रति-अरति (१७) माया-मृषा और (१८) मिथ्यादर्शनरूप अठारह प्रकार का पाप
जो स्वयं नहीं करता है, दूसरो से नहीं कराता है और दूसरे करने वाले का अनुमोदन नहीं
करता है वही पुरुष वसुमान् है ।

तात्पर्य यह है कि—जो आत्मा अपने प्रज्ञान से समस्त द्रव्यों और पर्यायों को
भली भाँति जानने की योग्यता धारण करता है और जो मोक्ष-मार्ग का आश्रय लेकर
मुक्तिपद भी प्राप्त कर सकता है उसको ‘आत्मा का अधःपतन करने वाले पापकृत्य सर्वथा
त्याज्य हैं’ ऐसा विचार करके पद्दजीवनिकाय के आरंभ से विरत हो जाना चाहिए ॥सू० ८॥

पद्दकाय के आरंभ का त्याग ही साधुता प्राप्त करता है, यह बात आगे कहते
हैं—‘तं परिणाय.’ इत्यादि ।

(८) माया, (९) लोल, (१०) राग, (११) द्वेष, (१२) कलह, (१३) अभ्याख्यान,
(१४) पैशुन्य, (१५) परपरिवाद, (१६) रति-अरति, (१७) माया-मृषा अने (१८)
मिथ्यादर्शनरूप अठार प्रकारनां ले पाप तेने पोते करता नथी, भील पासे करावता
नथी, अने भील करावावाणाने अनुमोदन आपता नथी. तेण पुरुष वसुमान् छे.

तात्पर्य अे छे केः—जे आत्मा पोताना प्रज्ञानथी समस्त द्रव्ये अने पर्यायेने
इडी रीते ज्ञानवाणी योग्यता धारण करे छे, अने जे मोक्षमार्गना आश्रय लधने मुक्तिपद
पलु प्राप्त करी शके छे, तेने, ‘आत्मानुं अधःपतन करनारां पापकृत्य सर्वथा त्याज्य छे’
अेवा विचार करीने पद्दजीवनिकायना आरंभथी निवृत्त थर्ध जतुं जेधअे. ॥सू० ८॥

पद्दकायना आरंभना त्यागण साधुता प्राप्त करावे छे. अे वात आगण ठडे छेः—
‘तं परिणाय.’ इत्यादि.

समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते छज्जीवनिकायसत्यसमारंभा परिण्णाया भवंति,
से हु मुणी परिण्णायकम्मे-त्ति वेमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सत्तमो उद्देशो समत्तो ॥ १ । ७ ॥

॥ आचारसूत्रे पढमज्झयणं समत्तं ॥ १ ॥

छाया—

तत् परिज्ञाय मेधात्री नैव स्वयं पङ्जीवनिकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैः
पङ्जीवनिकायशस्त्रं समारम्भयेत्, नैवान्यान् पङ्जीवनिकायशस्त्रं समारभमाणान्
समनुजानीयात् । यस्यैते पङ्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु
मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सप्तम उद्देशः समाप्तः ॥१-७॥

॥ आचारसूत्रे प्रथमाध्ययनं समाप्तम् ॥

टीका—

तत्=पङ्जीवनिकायारम्भणं, परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया 'कर्मबन्धस्य
कारणं भवती'ति बुद्ध्या मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं पङ्जीवनिकाय-
शस्त्रं समारभेत । अन्यैर्नैव समारम्भयेत्=नैव प्रयोजयेत् । अन्यान् पङ्जीवनिकाय-
शस्त्रं समारभमाणान् नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते पङ्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः—पङ्जीवनिकायानां शस्त्रैः=

मूलार्थ—यह बात जानकर बुद्धिमान् पुरुष पङ्जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का
समारंभ न करे, दूसरों से पङ्जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का समारंभ न करावे, और पङ्-
जीवनिकायसंबंधी शस्त्र का समारंभ करने वालों का अनुमोदन न करे । पङ्जीवनिकाय-
संबंधी आरंभ को जो बंध का कारण जान लेता है, वही मुनि है और वही परिज्ञातकर्मा है ।
ऐसा मैं कहता हूँ ॥सू० ८॥

टीकार्थ—पङ्जीवनिकाय के आरंभ को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जानकर
हेय-उपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष पङ्जीवनिकाय के शस्त्र का स्वयं आरंभ न करे,
दूसरों से न करावे और आरंभ करने वालों की अनुमोदन न करे ।

पङ्जीवनिकायसंबंधी जो शस्त्र पहले बतलाये जा चुके हैं उनके द्वारा पङ्जीवनिकाय को

मूलार्थ—ये बात जानने बुद्धिमान् पुरुष पङ्जीवनिकायसंबंधी शस्त्रने।
समारंभ करे नहि, भीन पासे पङ्जीवनिकायसंबंधी शस्त्रने। समारंभ करावे नहि, अने
पङ्जीवनिकायसंबंधी शस्त्रने। समारंभ करवावाणने अनुमोदन आपे नहि.
पङ्जीवनिकायसंबंधी आरंभने ने भंधनुं कारख् नएणी ले छे. तेण मुनि छे, अने
तेण परिज्ञातकर्मा छे. अयुं हुं कहुं छुं. ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—पङ्जीवनिकायना आरंभने ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबंधनुं कारख् नएणीने हेय-
उपादेयने। विवेक राभवावाणा पुरुष पङ्जीवनिकायना शस्त्रने। पोते आरंभ करे नहि,
भीन पासे करावे नहि, अने आरंभ करनारने अनुमोदन आपे नहि.

पङ्जीवनिकायसंबंधी ने शस्त्र प्रथम बतायी आख्यां छे. तेना द्वारा प नकायने

स्वस्वशस्त्रैः समारम्भाः=पीडाकरसावधव्यापाराः परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारण-
त्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहृता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा-
त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्जितसकलसावधव्यापारः, मुनिर्भवति । इति=एतत् सर्वम्,
ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामि ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराद्रसूत्रे आचारचिन्तामणिटीकायां शास्त्रपरिज्ञाख्ये
प्रथमाध्ययने सप्तमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-७ ॥

पीडा पहुँचाने वाळे सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जानकर
प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है वही पुरुष तीन करण और तीन योग से सावध व्यापारों
का त्यागी मुनि होता है । यह सब भगवान् के मुखारविन्द से जैसा मैंने साक्षात् सुना है
वैसाही कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ इति श्री आचाराद्रसूत्रकी आचारचिन्तामणिटीका के हिन्दी-अनुवादमें
प्रथम अध्ययनका सातवाँ उद्देश सम्पूर्ण ॥ १ ॥

पीडा पहुँचाव्यावधाना सावध व्यापारोने जे ज्ञपरिज्ञाधी कर्मबंधनुं क्षरषु ब्रह्मिने
प्रत्याख्यान परिज्ञाधी त्यज्य दे छे, ते पुत्रष त्रषु क्षरषु अने त्रषु योगधी सावध
व्यापारोने त्यागी मुनि होय छे, आ सर्वे भगवानना मुखारविन्दधी जेवु मे साक्षात्
सांलब्धुं छे, तेवुं कहुं छुं. ॥ सू० ९ ॥

इति श्रीआचारांगसूत्रनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना शुभराती अनुवादमां
प्रथम अध्ययनने सातमे उद्देश सम्पूर्ण. ॥ १-७ ॥

आद्ये चाध्ययने प्ररूपितमिदं संसारचक्रेऽनिशं,
भ्राम्यन् दिक्षु विदिक्षु गच्छति ततश्चात्मा समागच्छति ।

इत्येवं कथितं मही-जल-शिलि-प्राण-द्रुमाणां तथा,
जीवत्वं त्रस-कायिकस्यचतदारम्भे परिज्ञाऽपि च ॥ १ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशमापाकलित-
ललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-वादिमानमर्दक-
श्रीशाहूचरपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घासीलालव्रति विरचितायाम् आचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्ता
मणिटीकायां शस्त्रपरिज्ञाख्यं प्रथममध्ययनं संपूर्णम् ॥ १ ॥

प्रथम अध्ययन में यह निरूपण किया गया है कि-आत्मा संसार चक्र में पडकर
नाना दिशाओं में और नाना विदिशाओं में निरन्तर भ्रमण करता रहता है । साथ ही पृथ्वी,
अप, तेज, वायु वनस्पति और, त्रस कौ सचितता भी सिद्ध की गई है, और उनका
आरम्भ करने में परिज्ञा भी प्रदर्शित की गई है ॥ १ ॥

॥ इति श्री-आचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीका के
हिन्दी अनुवाद में 'शस्त्रपरिज्ञा' नामक प्रथम अध्ययन
सम्पूर्ण ॥ १ ॥

प्रथम अध्ययनमें जो निरूपण करवाया आया है के:-आत्मा संसारचक्रमें
पडीने अनेक दिशाओंमें अने अनेक विदिशाओंमें निरन्तर भ्रमण करता रहता है।
साथ ही पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति अने त्रसनी सचितता पण सिद्ध करी
छे, अने तेना आरंभ करवाया परिज्ञा-विदेक पण प्रदर्शित करेला छे ॥ १ ॥

॥ इति श्री आचाराङ्गसूत्रनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना गुणशती
अनुवादमें 'शस्त्रपरिज्ञा' नामक प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण ॥ १ ॥

दाताओनी नामावली

आद्य मुरज्जीशी, मुरज्जीशी, सहायक मेम्भरो
तथा
मेम्भरोनी यादी

गामवार कक्षावारी लीष्ट

ता. १८-१०-४४ थी ता. २८-२-५८ सुधीमां
हापल थ्येल मेम्भरो.

(२५० थी ओळी रकमे आ यादीमां सामेल करी नथी.)

श्री अणिल भारत श्वे.स्था. नैन शास्त्रोद्धार समिति

गरेडीआ कुवा रोड - श्रीन लोन पास

राजकोट.

આદ્યમુરબખીશ્રીઓ-૪

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ બણીતા મીલમાલીક અમદાવાદ		૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ વારીયા. હા. શેઠ લાલચંદભાઈ, જેયંદભાઈ નગીનભાઈ, વૃન્દલાલભાઈ, તથા વલ્લભદાસભાઈ ભાણુવડ		૬૦૦૦
૩	કેઠારી જેયંદભાઈ અન્જરામર હા. હરગોવીંદભાઈ જેયંદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર	૫૦૦૧

મુરબખીશ્રીઓ-૨૨

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કેઠારી હા. કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મહેતા શુભાખચંદ પાનાચંદ	„	૩૨૮૯૧૧૧
૪	સ્વ. પિતાશ્રી જગનલાલ શામળદાસના રમરજીથિં હા. ભાવસાર ભોગીલાલ જગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સંઘવી પીતામ્બરદાસ શુભાખચંદ	ભામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ દહેરચંદ કુંવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદ દહેરચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ જગનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુંબઈ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરબી	૧૯૬૩
૧૨	મહેતા સોમચંદ તુલસીદાસ તથા તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	ભામનગર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા. દલપતરામભાઈ	„	૧૦૦૨
૧૫	કમરીશ્રી જગજીવનદાસ રતનશી	ભામનગર	૧૦૦૨

૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ ભાણુભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા (દેવે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧
૧૯	મહેતા સોમચંદ નેણુસીભાઈ (કરાંચીવાલા)	મોરબી	૧૦૦૧
૨૦	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખંભાત	૧૦૦૧
૨૧	ઢોકારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	સુબંધ	૧૦૦૦
૨૨	ઢોકારી રંગીલદાસ હરખચંદભાઈ	સિહોર	૧૦૦૦

સહાયક મેમ્બરો-૩૬

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રંગભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોઢી દેશવલાલ હરીચંદ્ર	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી ટ્રેન સંઘ હા. શેઠ જુઝાભાઈ વેલસીભાઈ	વઢવાણ શહેર	૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ	જોરાવરનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા. ગોરધનદાસભાઈ	વતમનોધપુર	૫૫૫
૬	ખાટવીયા ગીરધર પ્રમાણુદ હા. અમીચંદભાઈ	ખાખીનખીઆ	૫૨૭
૭	મોરબીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણુસીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્નિ અ. સૌ. મણીબાઈ તરફથી હા. મુળચંદ દેવચંદ (કરાંચીવાળા)	મલાઠ	૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસળીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ. સૌ. ચંપાબેન ગોસળીયા	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૦	શેઠ પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ. સૌ. સમરતબેન (રાજસીતાપુરવાળા)	અમદાવાદ	૫૦૨
૧૧	શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ અંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ (કરાંચીવાળા)	સીંબઢી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૦
૧૬	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૭	શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામજીભાઈ શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧

६	शेठ त्रेभयंठ साकरयंठ	२५०
७	शाह रतीलाल वाडीलाल	२५१
८	शेठ लालबाई मंगणदास	२५१
९	स्व. अमृतलाल वर्धमानना स्मरणार्थे हस्ते कानल्लबाई अमृतलाल देशाई	२५१
१०	भावसार लोगीलाल जमनादास (पाटणुवाणा)	२५१
११	शाह नटवरलाल चंडुलाल	२५१
१२	शाह नरसिंहदास त्रीलोकनदास	२५१
१३	श्री शाहपुर हरीयापुरी आठकैटी स्था. जैन उपाश्रय डा. वहीवटकर्ता शेठ धंश्वरलाल पुरपोतमदास	२५१
१४	श्री छीपापोण हरीयापुरी आठकैटी स्था. जैनसंघ डा. चंडुलाल अमृतलाल	२५१
१५	शाह यीनुबाई आलाबाई C/O शाह आलाबाई मडासुभराम	२५१
१६	शाह बाईलाल ज्ञानश्री	२५१
१७	श्री सुभलाल डी. शेठ डा. डॉ. कु. सरस्वतीदेवि शेठ	२५१
१८	श्री सौराष्ट्र स्था. जैनसंघ डा. शाह कान्तीलाल लुवणुलाल	२५१
१९	मोदी नाथालाल मडादेवदास	२५१
२०	शाह मोहनलाल त्रीकमदास	२५१
२१	श्री छकैटी स्था. जैनसंघ डा. शाह पोथालाल पीताम्बरदास	२५१
२२	शेठ पोपटलाल हंसराजना स्मरणार्थे डा. शेठ आर्जुलाल पोपटलाल	२५१
२३	देशाई अमृतलाल वर्धमान आपोहरावाणा डा. बाईलाल अमृतलाल देशाई	२५१
२४	शाह नवनीतलाल अमुलभराम	२५१
२५	शाह मणीलाल आशाराम	२५१
२६	शाह यीनुबाई साकरयंठ	२५१
२७	शाह वरलोकनदास उमेदयंठ	२५१
२८	शाह रजनीकान्त कस्तुरयंठ	२५१
२९	संघवी लुवणुलाल छगनलाल (स्था. जैन)	२५१
३०	शाह शांतिलाल मोहनलाल धांगडावाणा	२५१
३१	अ. सौ. जेन रतनबाई नादेया डा. शाह धुलाळ चंपालाल	२५१
३२	शाह हरिलाल जेठालाल लाडलावाणा	२५१
३३	श्री सरसपुर हरीयापुरी आठकैटी स्था. जैन उपाश्रय डा. भावसार लोगीलाल छगनलाल	२५१
३४	शेठ पुभरामलु सभतीरामलु साहडीवाणा	२५१
३५	शेठ लालयंठ गीश्रीलाल	२५१

૧૯	સ્વ. પિતાશ્રી નંદાલના સ્મરણાર્થે		
	હા. વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જાણુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઠાકરશી કરસનજી યાનગઢ		૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઐરંગાબાદ	૫૦૦
૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ઐરંગાબાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ શેવમજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ „ અનરાજજી લાલચંદજી		
	૧૨૫ ધુકડચંદજી રૂપચંદજી		
	૧૦૦ દગડુમલજી ચાંદમલજી		
	૫૦૦		
૨૩	મહેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ પ્રાક્ષા		૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરપોત્તમ હા. ઇન્દુકુમારભાઈ	ચૌરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા	રાણાવાસ	૫૦૧
૨૬	સ્થા. જૈનસંઘ હા. બાટવીયા અમીચંદ ગૌરધરભાઈ ખાંખીજાળીઆ		૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ ખાવાભાઈ		
	હા. કુલચંદભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	મુંબઈ	૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. મુંજણભાઈ મણીલાલ મુંબઈ		૫૦૧
૨૯	સ્વ. કાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ ખાલચંદ સાકરચંદ મુંબઈ		૫૦૧
૩૦	કામદાર સ્તીલાલ દુર્લભજી (જેતપુરવાળા)	મુંબઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જયંતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વેરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ ગુલાબચંદ જીવરભાઈ	ખારરોડ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી જૈન ધીરજીકુંવર સુનીલાલ મહેતા	ભાણવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ	પ્રાક્ષા	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧

*

૩૧૬ મેમ્બરોનું ગામવાર લીસ્ટ

અમદાવાદ તથા પરચિયા

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હસ્તે કૃષ્ણીચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીલોખનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	૨૫૧

६	शेठ प्रेमचंद साकरचंद	२५०
७	शाह रतीलाल वाडीलाल	२५१
८	शेठ लालभाई मंगणदास	२५१
९	स्व. अमृतलाल वर्धमानना स्मरणार्थे हुस्ते कानलभाई अमृतलाल देशाई	२५१
१०	बावसार लोगीलाल जन्मनादास (पाटञ्जवाणा)	२५१
११	शाह नटवरलाल चंडुलाल	२५१
१२	शाह नरसिंहदास त्रीलोकनदास	२५१
१३	श्री शाहपुर हरीयापुरी आठकोटी स्था. जैन उपाश्रय डा. वहीवटकर्ता शेठ धरिंदरलाल पुरपोतमदास	२५१
१४	श्री छीपापोण हरीयापुरी आठकोटी स्था. जैनसंघ डा. चंडुलाल अमृतलाल	२५१
१५	शाह यीनुभाई भावाभाई C/o शाह भावाभाई मंडासुभराम	२५१
१६	शाह भाईलाल जन्मश्री	२५१
१७	श्री सुभलाल डी. शेठ डा. डॉ. कु. सरस्वतीदेन शेठ	२५१
१८	श्री सौराष्ट्र स्था. जैनसंघ डा. शाह कान्तीलाल लवणुलाल	२५१
१९	मोदी नाथलाल मंडादेवदास	२५१
२०	शाह मोहनलाल त्रीकमदास	२५१
२१	श्री छकोटी स्था. जैनसंघ डा. शाह पोयालाल पीताम्बरदास	२५१
२२	शेठ पोपटलाल हंसराजना स्मरणार्थे डा. शेठ भाणुलाल पोपटलाल	२५१
२३	देशाई अमृतलाल वर्धमान आपोहरावाणा डा. भाईलाल अमृतलाल देशाई	२५१
२४	शाह नवनीतलाल अमुलभराय	२५१
२५	शाह मणीलाल आशाराभ	२५१
२६	शाह यीनुभाई साकरचंद	२५१
२७	शाह वरलोकनदास उमेदचंद	२५१
२८	शाह रजनीकान्त कस्तुरचंद	२५१
२९	संघवी लवणुलाल छगनलाल (स्था. जैन)	२५१
३०	शाह शांतिलाल मोहनलाल धांगध्रावाणा	२५१
३१	अ. सौ. जेन रतनभाई नाहेया डा. शाह धुलाल चंपालाल	२५१
३२	शाह हरिलाल जेठालाल भाडलावाणा	२५१
३३	श्री सरसपुर हरीयापुरी आठकोटी स्था. जैन उपाश्रय डा. बावसार लोगीलाल छगनलाल	२५१
३४	शेठ पुभरानल सभतीरामल साहडीवाणा	२५१
३५	शेठ लालचंद भीश्रीलाल	२५१

૧૯	સ્વ. પિતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે		
	હા. વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જાણુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઠાકરશી ઠરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઝોરંગાબાદ	૫૦૦
૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ઝોરંગાબાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ શેખમજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ ,, અનરાજજી લાલચંદજી		
	૧૨૫ ધુકડચંદજી રૂપચંદજી		
	૧૦૦ ઠગડુમલજી ચાંદમલજી		
	૫૦૦		
૨૩	મહેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ દ્રાક્ષા		૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરપોત્તમ હા. ઇન્દુકુમારભાઈ	ચોરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી શુગલીયા	રાણાવાસ	૫૦૧
૨૬	સ્થા. જૈનસંઘ હા. બાટવીયા અમીચંદ ગીરધરભાઈ. બાંખીભળીઆ		૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ બાવાભાઈ		
	હા. કુલચંદભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ મુંબઈ.		૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. મુંબજીભાઈ મણીલાલ મુંબઈ		૫૦૧
૨૯	સ્વ. ઠાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ મુંબઈ		૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી (જોતપુરવાળા)	મુંબઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જયંતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ શુભાચંદ ભુદરભાઈ	ખારરોડ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી જેન ધીરજકુંવર ચુનીલાલ મહેતા	ભાણુવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ	દ્રાક્ષા	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧

*

૩૧૬ મેઘમરોનું ગામવાર લીસ્ટ
અમદાવાદ તથા પરાંચો

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હસ્તે ફકીરચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીલોપનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	૨૫૧

६	शेठ प्रेमचंद साकरचंद	२५०
७	शाह रतीलाल वाडीलाल	२५१
८	शेठ लालभाई भंगणदास	२५१
९	स्व. अमृतलाल वर्धमानना स्मरणार्थे हस्ते कानलुभाई अमृतलाल देशाई	२५१
१०	भावसार लोगीलाल जमनादास (पाटणवाणा)	२५१
११	शाह नटवरलाल चंडुलाल	२५१
१२	शाह नरसिंहदास त्रिलोचनदास	२५१
१३	श्री शाहपुर दरीयापुरी आठकोटी स्था. जैन उपाश्रय डा. वहीवटकती शेठ धर्मरत्नलाल पुत्रपोतमदास	२५१
१४	श्री छीपापोण दरीयापुरी आठकोटी स्था. जैनसंघ डा. चंडुलाल अमृतलाल	२५१
१५	शाह यीनुभाई आलाभाई C/o शाह आलाभाई मंडासुभराम	२५१
१६	शाह भाईलाल उजमशी	२५१
१७	श्री सुभलाल डी. शेठ डा. डॉ. कु. सरस्वतीदेव शेठ	२५१
१८	श्री सौराष्ट्र स्था. जैनसंघ डा. शाह कान्तीलाल लुवणुलाल	२५१
१९	मोदी नाथलाल मंडादेवदास	२५१
२०	शाह मोहनलाल त्रिकमदास	२५१
२१	श्री छकोटी स्था. जैनसंघ डा. शाह पोय्यालाल पीताम्बरदास	२५१
२२	शेठ पोपटलाल हंसराजना स्मरणार्थे डा. शेठ भाणुलाल पोपटलाल	२५१
२३	देशाई अमृतलाल वर्धमान आपोहरावाणा डा. भाईलाल अमृतलाल देशाई	२५१
२४	शाह नवनीतलाल अमुलभराय	२५१
२५	शाह मण्डीलाल आशाराम	२५१
२६	शाह यीनुभाई साकरचंद	२५१
२७	शाह वरलुचनदास उभेदचंद	२५१
२८	शाह रजनीकान्त कस्तुरचंद	२५१
२९	संधवी लुवणुलाल छगनलाल (स्था. जैन)	२५१
३०	शाह शांतिलाल मोहनलाल धांगधारावाणा	२५१
३१	अ. सौ. जेन रतनभाई नादेवा डा. शाह धुलाळ चंपालाल	२५१
३२	शाह हरिलाल नेडालाल लाडलावाणा	२५१
३३	श्री सरसपुर दरीयापुरी आठकोटी स्था. जैन उपाश्रय डा. भावसार लोगीलाल छगनलाल	२५१
३४	शेठ पुभरानल सभतीरामल सादडीवाणा	२५१
३५	शेठ लालचंद भीथीलाल	२५१

૧૯	સ્વ. પિતાશ્રી નંદાલુના સ્મરણાર્થે		
	હા. વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જાણુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઠાકરશી કરસનજી થાનગઢ		૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુષ્પરાજજી	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ શેખમજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ „ અનરાજજી લાલચંદજી		
	૧૨૫ ધુકડચંદજી રૂપચંદજી		
	૧૦૦ દગડુમલજી ચંદમલજી		
	૫૦૦		
૨૩	મહેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ ધ્રાક્ષ		૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરપોત્તમ હા. ઇન્દુકુમારભાઈ	ચોરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા	રાણાવાસ	૫૦૧
૨૬	સ્થા. જૈનસંઘ હા. બાટવીયા અમીચંદ ગીરધરભાઈ ખાખીનળીઆ		૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ બાવાભાઈ		
	હા. કુલચંદભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	મુંબઈ	૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. ગુણજીભાઈ મણીલાલ મુંબઈ		૫૦૧
૨૯	સ્વ. કાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ મુંબઈ		૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી (જોતપુરવાળા)	મુંબઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જયંતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વેરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ ગુલાબચંદ બુદરભાઈ	ખારસોડ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી બેન ધીરજકુંવર ચુનીલાલ મહેતા	લાણવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ	ધ્રાક્ષ	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧

*

૩૧૬ મેમ્બરોનું ગામવાર લીસ્ટ

અમદાવાદ તથા પરાંચો

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હસ્તે કૃષ્ણીચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીલોપનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ ચોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ ચોપટલાલ મોહનલાલ	૨૫૧

- ૬ પૂન્ય પિતાશ્રી મોતીલાલજી મહેતાના સ્મરણાર્થે
હ. સ્વજીતલાલજી મોતીલાલજી મહેતા ૨૫૧
- ૭ હગનલાલજી બાગરેયા ૨૫૧
- ઉમરગાવરોડ**
- ૧ શાહ મોહનલાલ ચોપટલાલ પાનેલીવાળા ૨૫૧
- ઉપલેટા**
- ૧ શેઠ નેહાલાલ ગોરધનદાસ ૨૫૧
- ૨ સ્વ. બેન સંતોકબેન કચરા હા. ઓતમચંદભાઈ, ઘોટાલાલભાઈ
તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કથ્યાણવાળા) ૨૫૧
- ૩ શેઠ ખુશાલચંદ કાનજીભાઈ હા. શેઠ પ્રતાપભાઈ ૨૫૧
- ૪ સંઘાણી મૂળશંકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે
હ. તેમના પુત્રો જ્યંતીલાલભાઈ તથા સમણીકલાલ
એકન કેમ્પ ૨૫૧
- ૧ શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી ૨૫૧
- કલોલ**
- ૧ શેઠ મોહનલાલ નેહાભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ ૨૫૧
- ૨ ડો. મયાચંદ મગનલાલ શેઠ હા. ડો. રતનચંદ મયાચંદ ૨૫૧
- ૩ સ્વ. નાથાલાલ ઉમેદચંદના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રતીલાલ નાથાલાલ ૨૫૧
- ૪ શાહ મણીલાલ તલકચંદના સ્મરણાર્થે
હા. મારકૃતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ ૨૫૧
- કડી**
- ૧ શ્રી સ્વા. દરીયાપુરી જૈનસંઘ હા. બાવસાર દામોદરદાસ ઇન્ધરભાઈ ૨૫૧
- કોલકી**
- ૧ પટેલ ગોવીંદલાલ ભગવાનજી ૨૫૧
- ૨ પટેલ ખીમજી નેહાભાઈ વાઘાણી (તેમના સ્વ. સુપુત્ર
રામજીભાઈના સ્મરણાર્થે) ૩૦૨
- ખીચન**
- ૧ શેઠ દીશનલાલ પૃથ્વીરાજ ૨૫૧
- ખંભાત**
- ૧ શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્વા. જૈનસંઘ હા. પટેલ કાન્તીલાલ અંબાલાલ ૨૫૧
- ૩ શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ ૨૫૧
- ૪ શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ ૨૫૧

36	स्व. पिताश्री जवाहीरलालल तथा पून्य आयाल हुजरीमलल अरडीयाना स्मरलुयै ड़ा. भूजयंड जवाडरलाल	241
37	स्व. लावसार गणालाड (मंगणदाय) पानायंडना स्मरलुयै डा. तेमना धर्मपल्लि पुरीजेन	241
38	स्व. पिताश्री रवलुलाड तथा स्व. मातुश्री भूणीगार्ना स्मरलुयै ड़ा. कडललाड ड़ाडारी	301
39	लावसार केशवलाल मगनलाल	241
40	शाड केशवलाल नानयंड जणडावाणा डा. पार्वतीजेन	241
41	शाड लुतेन्द्रकुमार वाडीलाल माछुकयंड राजसीतापुरवाणा (साणरमती)	241
42	श्री स्था. जैनसंड (साणरमती)	240
43	जीपीनयंड्र तथा उमाकांत युनीलाल गोपाणी (राष्ट्रपुरवाणा)	301

अमलनेर

1	शाड नागरदास वाधलुलाड	241
2	श्री स्था. जैनसंड डा. शाड गांडालाल णीणालाल	241

आलुंड

1	रमणीकलाल जे. कपासी डा. मनसुणलाललाड	241
---	------------------------------------	-----

आसनसोल

1	पानीसी मणीलाल अत्रलुजना स्मरलुयै तेमनां धर्मपल्लि मणीलाड तरइथी डा. रसीकलाल, अनीलकांत, विनोदराय.	241
---	--	-----

आटकेट

1	शाड युनीलाल नारणुल	301
---	--------------------	-----

डडेपुर

1	शेक मोतीलालल रणुलतलालल ड़ींगड	241
2	शेक मगनलालल आगरेया	241
3	अ. सौ. जडेन यंड्रावती ते श्रीमान अडोतलालल नाडरनां धर्मपल्लि डा. शेक रणुलतलालल ड़ींगड	241
4	स्व. शेक काणुलालल लोडाना स्मरलुयै डा. शेक ड़ालतसिडलल लोडा	241
5	स्व. शेक प्रतापमलल साणलाना स्मरलुयै डा. माणुलाल ड़ीरालाल साणला	241

જુનાગઢ

- ૧ શાહ મણીલાલ ત્રીકાભાઈ હા. હરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા) ૨૫૧

જુનારદેવ (મધ્યપ્રાંત)

- ૧ પેલાણી ત્રીકમલ લાધાભાઈ ૨૫૧

જેતપુર

- ૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા. નરભેરામભાઈ (જસાયુરવાળા) ૨૫૧
 ૨ દોશી છોટાલાલ વનેચંદ ૨૫૧
 ૩ કાકારી ડોલરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

જેતલસર

- ૧ શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ ૨૫૧
 ૨ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ જબકબેન તરફથી હા. શાન્તીલાલભાઈ ગોંડલવાળા ૨૫૧

ડભાસ

- ૧ સ્વ. તુરખીઆ લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ જીવતીબાઈ તરફથી હા. જયંતીબાઈ ૨૫૧

ડોંકાઈચા

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શેઠ ચંપાલાલ મારવે ૨૫૦

ધાનગઢ

- ૧ શાહ કાકરશીભાઈ કરસનજી ૨૫૧
 ૨ શેઠ જેઠાલાલ ત્રીલોવનદાસ ૨૫૧
 ૩ શાહ ધારશી પાશવીર હા. સુખલાલભાઈ ૨૫૧

દહાણુ રોડ (યાણા)

- ૧ શાહ હરજીવનદાસ ઝોઘડ ખંધાર (કરાંચીવાળા) ૨૫૧

દિલડી

- ૧ લાલા પૂર્ણચંદજી જૈન (સિન્દ્રલ બેઠવાળા) ૩૫૧

ધાર (મધ્યપ્રાંત)

- ૧ શેઠ સાગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧

ગુંદા

- ૧ સ્વ. મહેતા પુનમચંદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

ગોંડલ

- ૧ સ્વ. ખાખડ વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળબાઈ તરફથી
હા. માણેકચંદલાઈ તથા કપુરચંદલાઈ ૨૫૧
- ૨ પીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ.
લીલાવતી સાકરચંદ કૌકારીના ખીજ વરસીતપની ખુશાલીમાં ૩૦૧
- ૩ કામદાર ભુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા. હરીલાલ ભુઠાભાઈ ૩૦૧

ગોધરા

- ૧ શાહ ત્રીસોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

ઘટકણુ

- ૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

ઘોલવાડ (થાણા)

- ૧ મહેતા શુભાખચંદ ગંભીરભલજી ૩૦૦

ચુડા (ઝાલાવાડ)

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હ. રતીલાલ ગાંધી પ્રમુખ ૨૫૧

જલેસર (ખાલાસોર)

- ૧ સંઘવી નાનચંદ પોપટભાઈ ચાનગઢવાળા ૨૫૧

જામજોધપુર

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ ૩૮૭

- ૨ શાહ ત્રીસોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

જામનગર

- ૧ શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧

- ૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧

- ૩ વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ ૨૫૧

જામખંભાણીઆ

- ૧ શેઠ વસનજી નારણજી ૨૫૧

- ૨ શ્રી સ્થા. જૈન. સંઘ હા. મહેતા રણછોડદાસ પરમાજી ૨૫૧

- ૩ સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

બગસરા (ભાયાણી)

- ૧ સ્વ. પૂજ્ય માતૃશ્રી જ્ઞકલખાઈના સ્મરણાર્થે
હ. દેશાઈ મજલાલ કાળીદાસ ૨૫૧
- ૨ શેઠ ચોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા. શેઠ માનસંગ પ્રેમચંદ
બેરાજી (કચ્છ) ૨૫૧
- ૧ શેઠ ગાંગજી કેશવજી (જ્ઞાનભંડાર માટે) ૨૫૧

બોટાદ

- ૧ સ્વ. વસાણી હરગોવીંદલાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ છબલબેન ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થાનવાસી જૈનસંઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

બોડેલી

- ૧ શાહ પ્રવીણચંદ્ર નરસિંહદાસ (સાણુંદવાળા) ૨૫૧
- ૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

ભાણુવડે

- ૧ શેઠ જ્યેંદભાઈ માણુકચંદ ૩૦૧
- ૨ સંઘવી માણુકચંદ માધવજી ૨૫૧
- ૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણુકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
- ૪ શેઠ રામજી જીણાભાઈ ૨૫૧
- ૫ શેઠ પદમશી લીમજી ફેફરીઆ ૨૫૧
- ૬ ફેફરીઆ ગાંડાલાલ કાનજીભાઈ હા. અ. સૌ. શાંતાબેન વસનજી ૨૫૧

મદ્રાસ

- ૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી ૨૫૧

મનોર (થાણા)

- ૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવંતગઢવાળા
હ. પૂનમચંદજી શેરમલજી બોલ્યા ૨૫૧

માનકુવા (કચ્છ)

- ૧ સ્વ. મહેતા કુંવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ કુંવરબાઈ હરખચંદ
... (માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે) ૨૫૧

ધાંગમાં

૧	શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ હા. શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ.	૩૦૧
૩	ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

ધોરાજી

૧	મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈ સ્મરણાર્થે હા. પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	અ. સૌ. બચીબેન બાણુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર જોઈલ મીલ પ્રા. લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ. રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ રાયચંદ	૩૦૧
૬	ગાંધી પોપટલાલ જેચંદ	૨૫૦

ધંધુકા

૧	ભાવસાર જોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વેરા પોપટલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

નંદુરબાર

૧	શ્રી સ્થાનવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ	૨૫૦
---	--	-----

પાણુસણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	૨૫૧
---	-------------------------	-----

પાલણપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા. મહેતા હરીલાલ પીતાગબરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા. જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

પાલેજ

૧	સ્વ. મનસુખલાલ મોહનલાલ સંઘવીના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧
---	--	-----

ખરવાળા (ઘેલાશા)

૧	સ્વ. મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧
---	---	-----

૨૬	સ્વ. કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતૃશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા. જ્યંતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૨૭	શેઠ ખુશાલભાઈ ખેંગારભાઈ	૨૫૦
૨૮	શાહ પ્રેમજી માલશી ગંગર (મલાડ)	૨૫૧
૨૯	સ્વ. પિતાશ્રી પતુભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા. કાનજી પતુભાઈ	૨૫૧
૩૦	શાહ વેલજી જેશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. સ્વ. નાનબાઈના સ્મરણાર્થે	૩૦૧
૩૧	સ્વ. પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ દામજી રામશી (મલાડ)	૩૦૧
૩૨	શેઠ ત્રંબકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી શ્રી અજરામર શાસ્ત્ર ભંડાર લીંબડી માટે (માટુંગા)	૨૫૧
૩૩	સ્વ. પિતાશ્રી ભીમશી કોરશી તથા માતૃશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ ઉજમશીભાઈ ભીમશીભાઈ કચ્છપતરીવાળા (મલાડ)	૩૦૧
૩૪	શેઠ ચુનીલાલ નરસેરામ વેકરીવાળા	૨૫૧
૩૫	શાહ વૃન્દગભાઈ શીવજી (મલાડ)	૨૫૧
૩૬	રતીલાલ ભાઈચંદ રહેતા	૨૫૧
૩૭	શાહ ખીમજી મૂળજી પૂંજ (મલાડ)	૨૫૧
૩૮	મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા. શેઠ માલુકલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૩૯	ઘેલાણી વલભજી નરસેરામ હા. નરશીભાઈ વલભજી	૨૫૧
૪૦	અ. સૌ. સમતાબેન શાન્તાલાલ C/o શાન્તાલાલ ઉજમશી શાહ (મલાડ)	૨૫૧
૪૧	તેલણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	૨૫૧
૪૨	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	૨૫૧
૪૩	સ્વ. પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે સુરજબેન તરફથી હા. તનસુખલાલભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૪૪	હડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૫	શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાહડીવાળા)	૨૫૧
૪૬	દોશી અત્રભુજ સુંદરજી (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૭	દોશી ભુગલકૃષ્ણ અત્રભુજ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૮	દોશી પ્રવીણચંદ્ર અત્રભુજ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૯	શાહ ત્રીલોવનદાસ માનસિંગ દોઢીવાળાના સ્મરણાર્થે હા. શાહ હરખચંદ ત્રીલોવનદાસ	૨૫૧
૫૦	શાહ જેઠાલાલ ઠામરશી ધાંગધ્રાવાળા હા. શાહ વાડીલાલ જેઠાલાલ	૨૫૦
૫૧	શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ	૨૫૧

ମୁଖ୍ୟ ତଥା ପରାଂଭୋ

୧	ଶେଠ ଛଗନଲାଲ ନାନଲୁଭାର୍ଡ	୨୫୧
୨	ଶାଢ଼ ଛରଞ୍ଜନ କେଶବଲ	୨୫୧
୩	ପେଟାଣୀ ପ୍ରଭୁଲାଲ ଟ୍ରିକିମଲ (ଘୋରୀପଣ୍ଡା)	୨୫୨
୪	ଶେଠ ଛୋଟୁଭାର୍ଡ ଛରଗୋବିନ୍ଦଦାସ ଛଟୋରୀବାଲା	୨୫୧
୫	ଶ୍ରୀବର୍ଧମାନ ସ୍ଵା.ନୈନସଂଘ ଡା.କେଶରୀମଲଲ ଅନୋପସଂଘଲ ଯୁଗାଣୀୟା(ମଲାଠ)	୨୫୧
୬	ଶେଠ କୁଂଗରଶୀ ଛଂସରାଞ୍ଜ ବୀକରୀୟା	୨୫୧
୭	ଶାଢ଼ ରମଣୀକିଲାଲ ଛାଣ୍ଡିଦାସ ତଥା ଅ. ସୌ. ଛାନ୍ତାଞ୍ଜେନ ରମଣୀକିଲାଲ	୨୫୧
୮	ଶାଢ଼ ଛିଂମତଲାଲ ଛରଞ୍ଜନଦାସ	୨୫୧
୯	ଶାଢ଼ ରତନଶୀ ଗୋଷ୍ଠୀଶିନୀ କୁଂପନୀ	୨୫୧
୧୦	ଶାଢ଼ ଶୀବଲ ଭାଣ୍ଡୁକ କଞ୍ଚ (ଘିରାଲବାଣା)	୨୫୧
୧୧	ବୋରା ପାନାସଂଘ ସଂଘଲନା ରମରଞ୍ଜାୟେ ଡା. ଟ୍ରାଞ୍ଜକିଲାଲ ପାନାସଂଘ ବୋରା ଉପଧର୍ଷ	୨୫୧
୧୨	ସ୍ଵ. ପୁ. ପିତାଶ୍ରୀ ବୀରସଂଘ ଚେକ୍ରିଂଗଭାର୍ଡ ଲକ୍ଷ୍ମୀତରବାଣାନା ରମରଞ୍ଜାୟେ ଡା. କେଶବଲାଲ ବୀରସଂଘ ଶେଠ	୨୫୧
୧୩	ଶାଢ଼ କୁଂବରଲ ଛଂସରାଞ୍ଜ	୨୫୧
୧୪	ସ୍ଵ. ମାତୁଶ୍ରୀ ଭାଣ୍ଡୁକଞ୍ଜେନନା ରମରଞ୍ଜାୟେ ଡା. ଶେଠ ପଞ୍ଜାବଦାସ ନାନଲ (ଘିରାଞ୍ଜରବାଣା)	୩୦୧
୧୫	ଶେଠ ଦେବରାଞ୍ଜଲ ଛତମଲଲ ପୁନର୍ଭୀୟା ଛାଣ୍ଡିବାଣା	୨୫୧
୧୬	ଅକ୍ଷୟକ ସଂଘଲ ଡା. ଶେଠ କୁଂବରଲାଲ ଭାଣ୍ଡୁକସଂଘ	୨୫୧
୧୭	ଅ. ସୌ. ପାନଭାର୍ଡ ଡା. ଶେଠ ପଦ୍ମଶୀ ନରସିଂହଭାର୍ଡ (ମଲାଠ)	୨୫୧
୧୮	ଶ୍ରୀ ଅମୃତଲାଲ ବର୍ଧମାନ ଘାଞ୍ଜୋଦରବାଣା ଡା. ଛଣ୍ଡିସଂଘ ଅମୃତଲାଲ	୨୫୧
୧୯	ସ୍ଵ. ଶାଢ଼ ନାଗଶୀ ଛେଞ୍ଜାପାଞ୍ଜ ଯୁଞ୍ଜାପାପାପାପାନା ରମରଞ୍ଜାୟେ ଡା. ରାମଲ ନାଗଶୀ (ମଲାଠ)	୩୦୧
୨୦	ଶାଢ଼ ରାମଲ କରଶନଲ ଧାନଗଢ଼ବାଣା	୨୫୧
୨୧	ଶାଢ଼ ନଗୀନଦାସ କଢ଼୍ୟାଣ୍ଡୁଲ ବୋରାପାପାପା	୨୫୧
୨୨	ଶୀବଲାଲ ଗୁଣାପସଂଘ ଶେଠ ଗୋପାପାପା	୨୫୧
୨୩	ସ୍ଵ. ଗଠାଶଂକର ଦେବଲ ଦୋଶୀନା ରମରଞ୍ଜାୟେ ଡା. ରଞ୍ଜୋଠଦାସ (ଘାଣ୍ଡୁଲାଲ) ଗଠାଶଂକର ଦୋଶୀ	୩୦୧
୨୪	ସ୍ଵ. ଗୋଠା ପଞ୍ଜାବଶୀ ଟ୍ରିକିପନ ସଂରକ୍ଷିତବାଣାନା ରମରଞ୍ଜାୟେ ଡା. ଗଞ୍ଜଲପନ ପଞ୍ଜାବଶୀ ଗୋଠା (ମଲାଠ)	୨୫୧
୨୫	ସ୍ଵ. ଟ୍ରିକିପନଦାସ ଗଞ୍ଜାପାଞ୍ଜ ପିଞ୍ଜିୟାପାପାପାନା ରମରଞ୍ଜାୟେ ଡା. ଛରଗୋବିନ୍ଦଦାସ ଟ୍ରିକିପନଦାସ ଗଞ୍ଜାପାପା	୨୫୧

૬	વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	૨૫૧
૭	સંઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ	૨૫૧
૮	શાહ દેવશી દેવકરજી	૨૫૧
૯	વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા નાનચંદ શીવલાલ	૨૫૧
૧૦	વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈનસંઘ હા. વોરા પાનાચંદ ગોખરદાસ	૨૫૧
૧૧	દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા. દોશી નાનચંદ ઉજ્જમશી	૨૫૧
૧૨	સ્વ. વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા. વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	૨૫૧

વટામણુ

૧	શ્રી વટામણુ સ્થા. જૈનસંઘ હા. શ્રી ડાહ્યાભાઈ હંલુભાઈ પટેલ	૨૫૧
---	--	-----

વલસાડ

૧	શાહ ખીમચંદ મૂળજીભાઈ	૨૫૧
---	---------------------	-----

વણી

૧	મહેતા નાનાલાલ છગનલાલનાં ધર્મપત્નિ સ્વ. ચંચળબેન તથા પુરીબેનના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ	૨૫૧
---	---	-----

વડોદરા

૧	કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ પ્રોફેસર સાહેબ (ગોંડલવાળા)	૨૫૧
૨	વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ	૨૫૧
૩	સ્વ. પિતાશ્રી શાહ ફકીરચંદ પુનભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ સમજીલાલ ફકીરચંદ	૨૫૧

વડીયા

૧	પંચમીયા ભવાનભાઈ કાળાભાઈ (જેતપુરવાળા)	૨૫૧
---	--------------------------------------	-----

વાંકાનેર

૧	માસ્તર કાન્તીલાલ ત્રંબકલાલ ખંડેરીયા	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ (રૂ. ૨૫૦ બાકી)	૨૫૧
૩	દક્તરી સુનીલાલ પોપટભાઈ મોરખીવાળા હા. પ્રાણુલાલ સુનીલાલ	૨૫૧

વીંછીયા

૧	શ્રી. સ્થા. જૈન સંઘ હા. અજમેરા રાયચંદ વજ્રમાળ	૨૫૧
---	---	-----

રંગુન.

૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. કમળાબેન ૨૫૧
લખતર

- ૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ. શાન્તિલાલ રાયચંદ ૨૫૧
૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈ ત્રીલોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧
૩ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧
૪ શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
૫ શાહ જદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈ શાન્તીલાલ જદવજી ૨૫૧
૬ ઠોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ સમરતબેન
વજલાલ તરફથી હા. જયંતીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

લાલપુર

- ૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા. મગનલાલભાઈ ૨૫૧
૨ શેઠ મૂળચંદ પોપટલાલ હા. મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ ૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

- ૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા. મહેતા અમૃતલાલ જેઠલાલ
(સીવીલ એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

લીમડી (પંચમહાલ)

- ૧ શાહ કુંવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧
૨ છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧

લોનાવલા

- ૧ શેઠ ઘનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

વઢવાણ શહેર

- ૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા. સવાઈલાલ ત્રંબકલાલ શાહ ૨૫૧
૨ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા. રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧
૩ સંઘવી મૂળચંદ બેચરભાઈ હા. જીવજીલાલ ગફલદાસ ૨૫૧
૪ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ ૨૫૧
૫ શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

સતારા:

- ૧ સ્વ. મદનલાલજી કુંદનલાલજી કૌઠારીના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ રાજકુંવરબાઈ મદનલાલજી ૨૫૧

સાલબની (બંગાળ)

- ૧ દોશી સુનીલાલ કુલચંદ મોરબીવાળા ૨૫૦

સાણુંદ

- ૧ શાહ હીરાચંદ ઇગનલાલ હા. શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧
૨ અ. સૌ. ચંપાબેન હા. દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧
૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧
૪ શાહ સાંકરચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧
૫ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી લીંબડીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. વાડીલાલ મોહનલાલ કૌઠારી ૨૫૧
૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મૂળીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. પારેખ બીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧
૭ સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા. જયંતીલાલ નારણદાસ ૨૫૧

સુરત

- ૧ શ્રી. સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ છોટુભાઈ અલેચંદ ૨૫૧

સુવઈ (કચ્છ)

- ૧ સાવળા શામજી હીરજી તરકશી સદાનંદી જૈન સુનીશ્રી છોટાલાલજી
મહારાજના ઉપદેશથી સુવઈ સ્થા. જૈનસંઘ જ્ઞાનબંડારને લેટ ૨૫૧

સુરેન્દ્રનગર

- ૧ શેઠ ચાંપશીભાઈ સુખલાલ ૨૫૧
૨ ભાવસાર સુનીલાલ ત્રેમચંદ ૨૫૧
૩ સ્વ. કેશવલાલ મૂળજીભાઈનાં ધર્મપત્નિ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈલાલ કેશવલાલ (યાનગઢવાળા) ૨૫૧
૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧

વીરમજાન

૧	શાહ વાડીલાલ નેમચંદ વડીલ	૨૫૦
૨	શાહ વિકૃતભાઈ મોદી માસ્તર	૨૫૧
૩	શાહ નાગરદાસ માલોકચંદ	૨૫૧
૪	શાહ મણીલાલ જીવણલાલ (શાહપુરવાળા)	૨૫૧
૫	શાહ અમુખલ (બચુભાઈ) નાગરદાસનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. જેન સીલાવતીના વરસીતપના પારણાની ખુશાલીમાં હા. વાઈ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૩૦૦	
૬	સ્વ. શેઠ ઉજ્જવશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૭	સ્વ. મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. ખીમચંદભાઈ (ખારાઘોડાવાળા)	૨૫૧
૮	સ્વ. શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ	૨૫૧
૯	સંઘવી જ્યેષ્ઠભાઈ નારણદાસ	૨૫૧
૧૦	સ્વ. શાહવેલશીભાઈ સાંકરચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ વેલશી (કત્રાસવાળા)	૨૫૧
૧૧	પારખ મણીલાલ ટોકરશી લાલીવાળા તરફથી (મોદીજેનના સ્મરણાર્થે)	૨૫૧
૧૨	શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીલાલભાઈનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. નારંગીજેનના વરસીતપ નીર્મિતે હા. શાન્તીભાઈ	૨૫૧
૧૩	સ્વ. છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ કમળાબેન તરફથી હા. મંજુલાકુમારી	૨૫૧
૧૪	શ્રી સ્થા. જેન શ્રાવિકાસંઘ હા. પ્રમુખ અ. સૌ. રંભાબેન વાડીલાલ	૨૫૧
૧૫	સ્વ. ત્રીલોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ. અ. સૌ. ચંચળબેનના સ્મરણાર્થે હા. ડૉક્ટર હિંમતલાલ સુખલાલ	૨૫૧
૧૬	શાહ મૂળચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા. શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઈ	૨૫૧
૧૭	શેઠ મોહનલાલ પીતાંબરદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલ	૨૫૧
૧૮	શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીતપ નીર્મિતે હા. નથુભાઈ નાનચંદ શાહ	૩૦૧
૧૯	સ્વ. મણીયાર પરસોત્તમ સુંદરજીનાં સ્મરણાર્થે હા. શેઠ સાકરચંદ પરસોત્તમદાસ	૨૫૧
૨૦	શેઠ મણીલાલ શીવલાલ	૨૫૧

વેરાવળ

૧	શાહ કેશવલાલ જ્યેષ્ઠભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ ખીમચંદ સૌભાગ્યચંદ વસનજી	૨૫૧

સંજ્ઞેલી (પંચમહાલ)

૧	શાહ હુણાજી ગુલાબચંદ	૨૫૧
૨	શ્રી. સ્થા. જૈનસંઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ દલીચંદ	૨૫૧

હાટીનામાળીયા

૧	શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઈ	૨૫૦
---	---------------------	-----

હારીજ

૧	શાહ અમુલખભાઈ મૂળજી હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ	૩૦૧
૨	સ્વ. બેન ચંદ્રકાન્તાનાં સ્મરણાયે હા. અમુલખ મૂળજીભાઈ	૩૦૧

હુબલી

૧	શેઠ હીરાચંદ વનેચંદજી કટારીઆ	૨૫૧
---	-----------------------------	-----

કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા તા. ૨૮-૨-૫૮ સુધી

૪ આઘ સુરખીશ્રીઓ	૩૧૬ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૨૨ સુરખીશ્રીઓ	૮૩ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૩૬ સહાયક મેમ્બરો	૪૬૧ કુલ મેમ્બરો

(બીજા વર્ગને સદંતર ધંધ કરવામાં આવેલ છે.)

રાજકોટ, તા. ૧-૩-૫૮

સાંકરચંદ ભાઈચંદ શેઠ
મંત્રી,

શ્રી અ. ભા. જ્વે. સ્થા. જૈન-શા. સ.

નોટા:-તા. ૨૩-૧૨-૫૭ ના દિને સુબંધ સુકાને ધી યુનિયન બેંક ઓફ ઇન્ડિયા લી. માં રૂા. ૨૫૧-૦-૦ એક સફળહસ્થે ભરેલા છે. જેનું નામ તે ભરનાર ભાઈ તરફથી મળેલ નથી તેમજ બેંક તરફથી વધુ વિગત મળી નથી તેા તે રૂા. ૨૫૧ ડીપોઝીટ તરીકે હાલ જમા પડ્યા છે જેનું નામ અમેને મળતાં લીસ્ટમાં લેવામાં આવશે.

